॥ श्रीः ॥

भावप्रकाशः।

(वैद्यकग्रंथः)

श्रीमल्लटकनतनयश्रीभावमिश्रविरचितः।

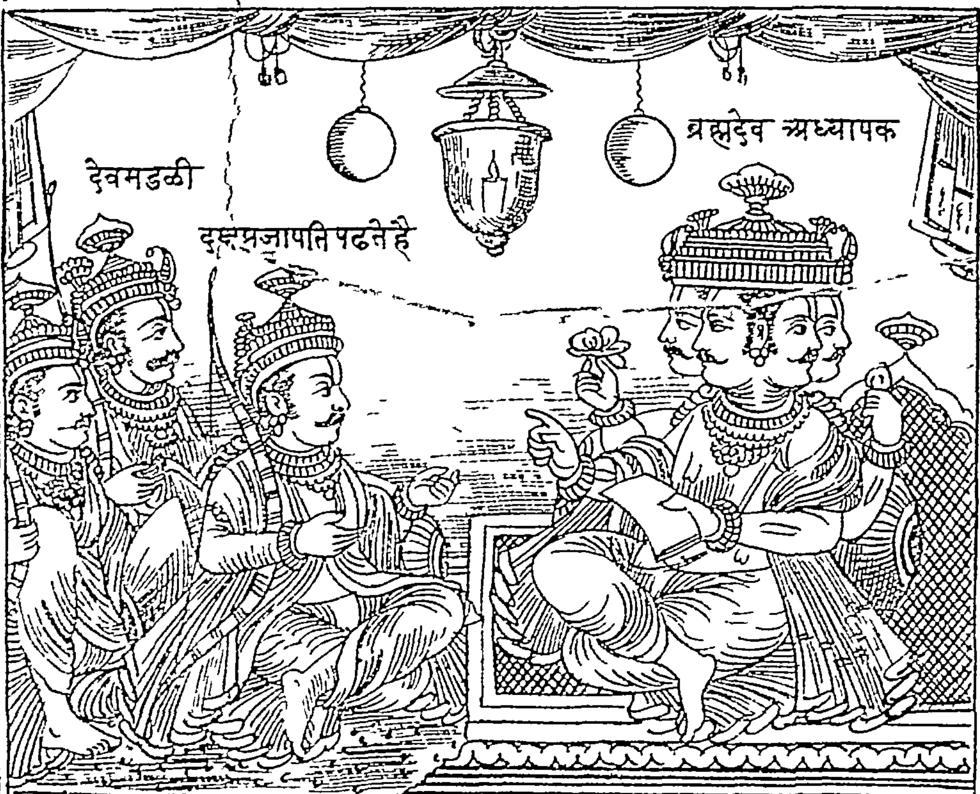
मुरादाबादनिवासिश्रीमदायुर्वेदविद्याविशारदवैद्यराजकविवर-
श्रीलालाशालिग्रामवैश्य-विरचितया
भाषाटीकया समलंकृतः।

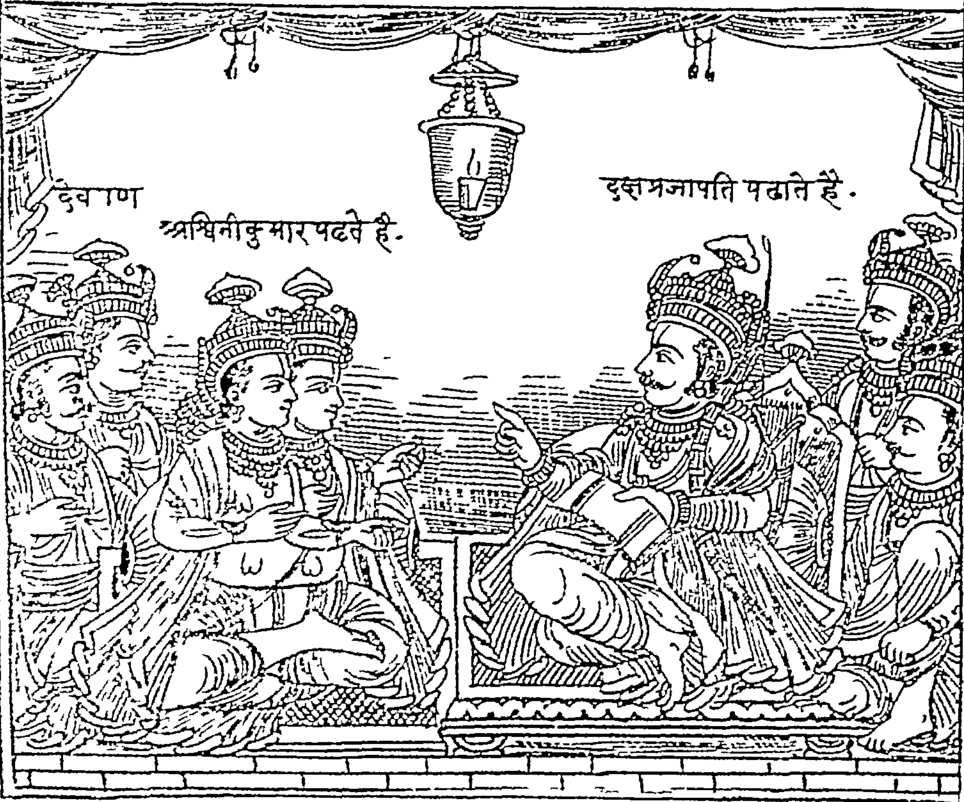
सोऽयं
क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना
मुम्बय्यां
(खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन)
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये
मुद्रयित्वा प्रकाशितः।

संवत् १९७०, शके १८३५.

भाव प्रकाशः




देवमडळी
दक्षप्रजापति पढते है
ब्रह्मदेव अध्यापक


देवगण
अश्विनीकुमार पढते है.
दक्षप्रजापति पढाते है.


अश्विनीकुमार भैरवने काटे हुए ब्रह्मदेवके मस्तकको जोडते है.
देवगण
देवगण

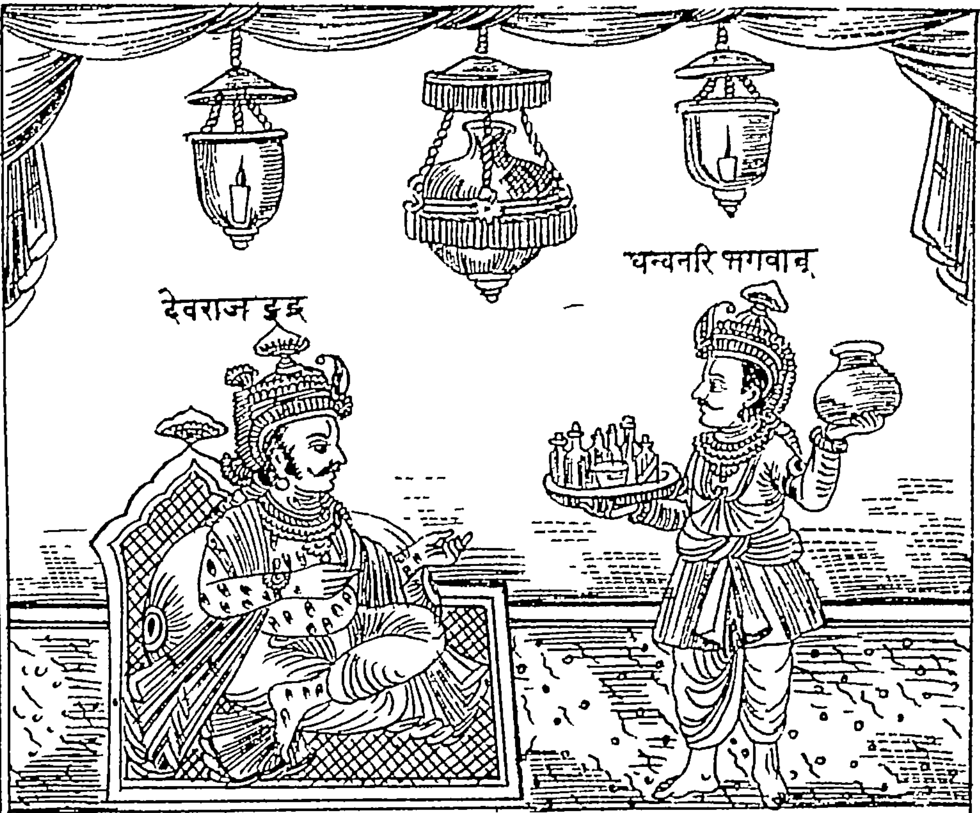

देवगण
देवगण
अश्विनीकुमार पढाते है.
इंद्र पढते है.


आत्रेयादि महर्षि पढ़ते हैं·
इन्द्र पढाते हैं


देवगण
ऋषिमंडळी
देवराज पढाते हैं·
भारद्वाजऋषि पढ़ते हैं·


भारद्वाज ऋषि·
अत्रि
अंगिरा
पुलस्त्य
जमदग्नि
पराशर

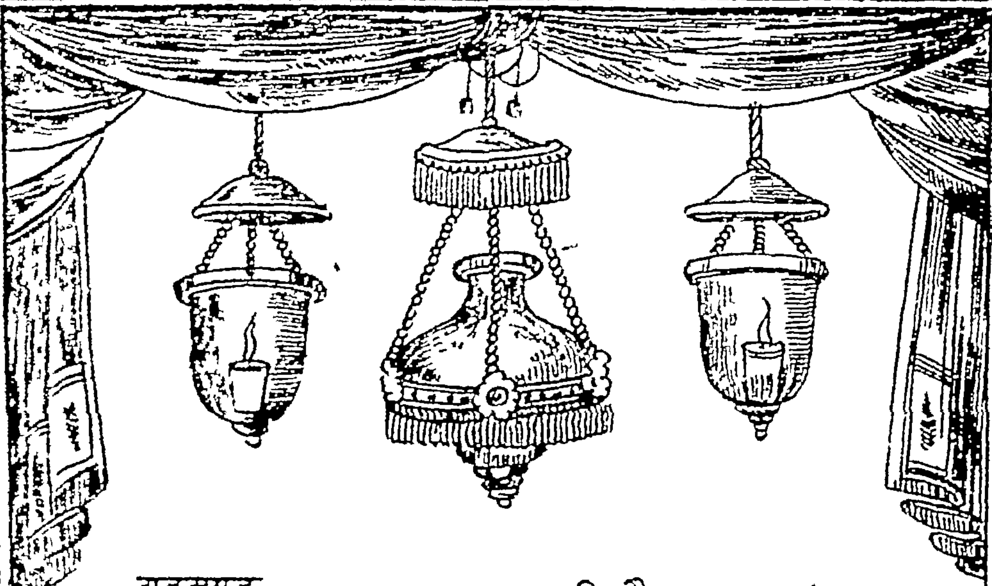

चरक ऋषि पढते है·
मत्स्य भगवान पढ़ाते है·
ऋषी समूह


धन्वनरि भगवान्
देवराज इन्द्र


दिवोदास राजर्षिको काशीपुरीमे ब्रह्मदेवका राज्याभिषेक तिलक करना
धन्वतरी
ब्रह्मदेव
ऋषिगण


सुश्रुतादि विश्वामित्रके १०० पुत्र
विश्वामित्र ऋषि उपदेश करते हैं


काशीनरेश दिवोदास.
सुश्रुतादि ऋषि बालक




गजसमूह
भावमिश्रवैद्य
ब्रह्ममंडळी·

भूमिका।



इस बातको सभी मनुष्य एकसाथ मुक्तकंठसे स्वीकार करतेहैं कि, यह हमारी भारतभूमि साहित्य, गणित, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि सभी विषयोंसे सम्पन्न होनेके कारण सब देशोंमे शिरमौर समझी जातीथी; इस हमारे ही भारत क्षेत्रके ऐश्वर्यका अन्यान्य देशवासी कुछ कुछ अंश सग्रह करके अपने आप ऐश्वर्य और सम्पत्तिका मूलस्वरूप बनकर पृथिवीमें भूषणके समान दीखते हैं। हिन्दू राजाओंके समय भारतवर्षमें प्रायः सभी शास्त्रोंकी चर्चा थी, विद्याकी निर्मल कांति समस्त देशमें व्याप्त थी, उस समय इस पवित्र "आयुर्वेदीय" चिकित्साका अधिक प्रचार होनेसे रोगसंकट अधिकतर उपस्थित नही होता था, एकबार रोगसे निवृत्त होनेपर फिर बहुत दिनोंतक भारतसंतानको रोगकी भीषण मूर्ति नही देखनी पडती थी, उस समय यह पृथिवी स्वर्गके समान दिखाई देती थी, प्रत्येक देशमें "आयुर्वेदीय पाठशाला" स्थापित होनेके कारण प्रायः सभी देशी चिकित्साके पूर्ण विद्वान् और क्रियाओमे कुशल होतेथे, इसकारण भारतवर्षके मनुष्य कभी विदेशी चिकित्साका आश्रय नहीं लेते थे, सदैव आयुर्वेदहीकी योगक्रियाओंसे सहजमें सब रोग छूट जातेथे, इस आयुर्वेदीय चिकित्साकी कहांतक प्रशंसा कीजाय, हमारे पूर्वज इसी आयुर्वेदीय नियमानुसार चलनेसे धीर, वीर, साहसी, पराक्रमी और सर्वगुणसम्पन्न होते थे, इस आयुर्वेदीय चिकित्साके प्रभावसे ही भारतवर्षके वैद्योंकी ससारमें बडी प्रशंसा थी. प्रायः यूरोप, फारिस, अरब, रूम, आदि अनेक अन्य देशवासी यहां आकर इनसे वैद्यकशिक्षा पाते थे, वही विदेशी चिकित्सक समयके फेरसे आज हमे मूर्ख बतला रहेहैं, और इसी भारतभूमिमें समस्त दिव्य औषधियें भी उत्पन्न होती थीं, यहींसे फारिस, अरबस्तान, रूम, रूस, काबुल, कन्धार, जर्मन, इंग्लैंड, एशिया, आफ्रिका, इटाली, पोर्टुगाल, स्वेडेन और फ्रान्स आदि सब देशोंमें औषधिये जाती थीं, और आजतक बराबर जाती हैं, इस देशकी प्रजाके ऊपर इस देशकी औषधियें ही अच्छे प्रकार गुण करती हैं, फिर हमको और देशकी औषधियोंसे क्या प्रयोजन ? आयुर्वेदकी प्राचीन और उत्कृष्टताके विषयमें हमारे पास बहुतसे यूरोपियन वैद्योंके प्रमाण हैं.

किंतु बडे खेदकी बात है कि,हिन्दुओंका राज्य जाते ही समस्त दर्शन, न्याय, ज्योतिष, गणित सब आदि शास्त्रोंकी अवनति होगई और साथमें ही हमारी परमप्रिय प्रयोजनीय आयुर्वेदीय चिकित्साकी भी एक साथ चर्चा उठगई उस समयसे भारतके ऐसे अशुभ दिन आये कि, उसको लिखतेहुए लेखनी काँपती है, सबके रग ढंग बिगड गये, मुसल्मान लोग यहाँतक तंग करने लगे कि जो वस्तु पाते वह उठालेजाते, जिन ग्रन्थोंको विद्वानोंने बडे परिश्रमसे बनाया, यवनोंने उनको आगमे जला जलाकर यमुनाके जलमें बहादिया, सहस्रों कष्ट सहसहकर दिन पूरे करतेथे और जो कुछ औषधिया कंठाग्र थीं उन्हीके बलसे रोगियोंकी चिकित्सा करते थे, दैवयोगसे जब वह वैद्य वैकुंठवासी होगये तो उनकी सन्तान ठेठ मूर्ख हुई, क्योंकि, ग्रथ तो प्रथम ही जलादिये गये, लिखना पढना किसप्रकार होसके ? इस कारण संस्कृत वैद्यक ग्रंथोका नाम ससारसे उठ गया, केवल, वैद्यमनोत्सव, वैद्यजीवन, वैद्यरत्न, दिल्लगन और अमृतसागर ही को बडा ग्रथ समझने लगे, जिसको एक चूर्ण भी स्मरण था वह अपने आपको पूर्ण वैद्य समझता था और ऐसे ऐसे छोटे छोटे ग्रंथोंका ही वैद्योको बडा अभिमान था, यहाँतक प्रमादने घेरा कि, लिखना पढना सब भूल गये. केवल २०-२५ औषधियोके ही नाम याद रहगये. जैसे कि. हरड. बहेडा. आमला.

नाम रहगये, वैद्योंको यह भी ध्यान न रहा कि, इनमें क्या क्या विषय हैं ? और कितने श्लोक हैं ? पठन पाठनका तो कहनाही क्या है ? और औषधियोंको पंसारी लोग ऐसे भूल गये मानों कभी जानते ही नहीं थे; कैसे जाने जब कि, औषधियें बर्त्तनोंमें धरी धरी सड गलजाँय और कोई इनका ग्राहक न हो और जो कुछ पढे लिखे थे वेभी सब भूलगये, इसप्रकार समस्त भारतवर्ष वैद्यकविद्यासे शून्य होगया, डाक्टर और यूनानी हकीमोंका सन्मान होने लगा, जगह जगह सफाखाने और दवाखाने खुलगये, कोनेन और सोडावाटरका नाम सबके मुखसे निकलने लगा, गुलेबनफशः, गावजबाँ, नीलोफर, अजवार आदिकी ही सब सराहना करने लगे ।

धन्य है उसकी गतिको, कभी तो वह चर्चा और कभी यह वेसुधी, क्या था और क्या होगया, वैद्योंकी वह बात न रही, आयुर्वेदीय चिकित्साकी ओरसे मनुष्योंकी दृष्टि फिरगई, उसका किसीको किंचित् मात्र भी विश्वास नहीं रहा, केवल डॉक्टरोंका ही धन्वन्तरिके समान स्थान स्थानपर आदर सत्कार होनेलगा, सबको अच्छे प्रकारसे विश्वास होगया कि, युरोपीय चिकित्साकी अपेक्षा आयुर्वेदीय चिकित्सा फलदायक नहीं है, इससे वैद्य लोग जो कुछ औषधि बनानी जानते भी थे उनका बनाना भी उन्होंने छोड दिया, क्योंकि कोई उनका बूझनेवाला तो रहा ही नहीं, उस समय आयुर्वेदीय चिकित्साकी जो दुर्दशा हुई वह लिखनेमें नहीं आसक्ती, परंतु सदैव एकसे दिन नहीं रहते, जब भारतवासियोंके दिन फिरे और ईश्वरने अपनी दया की तो हमारी परमप्रिय प्रजापालक गवर्नमेन्टकी पूर्ण अनुकंपासे धीरे धीरे आयुर्वेदीय ग्रंथोंका प्रचार होने लगा, जिधर तिधर औषधालय खुलने लगे, अनेक प्रकारके संस्कृत और टीकायुक्त वैद्यक ग्रंथ प्रकाशित होने लगे । प्रियवर ! अब कुछ हमारा औरभी विशेष भाग्य चेता, क्योंकि प्रजामनरंजन भारतहितैषी, श्रीमान् सर एंटोनी मेकडालेन साहेबने हमपर प्रसन्न होकर देश देशान्तरोंमें हिन्दी दफ्तर करदिया, विद्याकी ऐसी चर्चा फैली कि आयुर्वेदके बहुतसे ग्रंथ छपवा दिये । जब बहुत ग्रंथ छपने लगे तो मेरे परममित्र, वैश्यवंशावतंस, सर्वगुणालंकृत, गोब्राह्मणहितकारी, सत्यव्रतधारी, पूर्णसुखराशी बंबईनिवासी श्रेष्ठिवर्य क्षेमराज श्रीकृष्णदासजीने अत्यंत उत्साहके साथ संसारके उपकारके लिये हजारों रुपये खर्च करके अनेक आयुर्वेदीय ग्रंथ मँगाकर भाषानुवाद कराकर अपने "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् यन्त्रालयमें छपवाकर प्रकाशित किये ।

मेरे ऊपर भी परम अनुग्रह करके उक्त श्रीमान्ने "आयुर्वेदीय" ग्रंथोंके लिखनेकी मुझको आज्ञा दी, उसी समय मैंने आज्ञाको शिरोधार्य्य करके "निघण्टुभूषण, औषधिकोष, रसरत्नाकर, भैषज्यभास्कर" आदि कई ग्रंथ लिखकर श्रीमान्को समर्पित किये, उन्होंने अपने "श्रीवेंकटेश्वर" यंत्रालयमें छापकर जगत्में प्रसिद्ध किये । अब श्रीमान्ने "भावप्रकाश" की टीका लिखनेकी आज्ञा दी, सो यह **भावप्रकाश वैद्यसंजीवनीटीकासमेत** आज आपके सन्मुख है, अनेक इतिहास, कोष, निघण्टु, तथा विलसन् साहेब आदि विद्वानोंके मतसे मालूम होताहै कि भावमिश्रको अनुमान तीनसौ वर्षसे अधिक हुए, यह लटकन मिश्रके पुत्र मद्रदेशमें उत्पन्न हुए और काशीमे आयुर्वेदका अध्ययन करके यह अद्वितीय "भावप्रकाश" संग्रह लिखा, जो कि सम्पूर्ण भारतवर्षमे सूर्यके समान प्रकाशित है, इसमें उन्होंने चोपचीनी, फिरंगरोग आदि कई नवीन विषय लिखे हैं, आयुर्वेदीय अर्वाचीन ग्रंथोंमें यह सर्वोत्तम हुआ है ।

इसमें प्रमादके वश अथवा मेरी अल्पज्ञताके कारण जो कुछ अशुद्धि रहगई होय उसको पाठक महाशय सुधार लेवें और मेरे अपराधको क्षमा करें ।

संवत् १९६३.
वैशाखकृष्ण अष्टमी.

आपका कृपाकांक्षी-
शालिग्राम वैश्य,
दीनदारपुरा-मुरादाबाद.

धन्यवादः ।



भवन्तु परःसहस्रान्ता धन्यवादास्तस्मै चराचरजगदुत्पत्तिस्थितिलयकारिणेऽनन्तकोटिब्रह्माण्डनायकाय परमेश्वराय । येनेदं जगन्निजेच्छया समुत्पाद्य नानाविधनिजानुशासनसंभारसंभूतश्रुतिशास्त्राणि तदुज्जीवनाय समनुशिष्टानि । येषु श्रुतिशास्त्रेषु तेनैव स्वात्मकल्पितानन्तवस्तुजातविषयकं ज्ञानं परिप्लुततयोतप्रोतं प्रदर्शितमाचार्यत्वपुरःसरं ब्रह्मादिशिष्योपदेशपरंपरया ।

वेदेभ्य एव तेभ्यश्चतुर्भ्य उपवेदाश्चत्वारः प्रादुरभूवन् । तत्र—ऋग्वेदाद् आयुर्वेदः, यजुर्वेदाद्धनुर्वेदः, सामवेदाद्गान्धर्वः, अथर्ववेदादर्थशास्त्रमित्येत उपवेदाः । एते चोपवेदाः स्वस्वविषयैर्नानाभेदविभेदसंस्करणैरुपबृंहमाणा उन्नतेः परां काष्ठां प्रापद्यन्त भूयसा समतीतेन समयेन ।

तत्रैव चावेदनीयोऽयं विषयो महता समुत्साहेनावेद्यते । आयुर्वेदशास्त्रं हि शरीरसंरक्षणार्थोपायप्रतिपादकम् । अस्मिञ्छास्त्रेऽद्यावधि विविधैर्ब्रह्मेन्द्रादिभिरनेके स्वानुभूतविषयैरुपनिबद्धाः संहिताग्रन्थाः प्रख्याताः सन्ति । ताश्च संहिताः प्रायो बह्वाचार्यप्रणीतत्वेन परस्परविसंवादिन्य इति मनसि कुर्वद्भिरनेकैः पण्डितैर्महता प्रतिभाप्रभावेण ताः सकलव्याध्यविसंवादिस्वरूपेण संगृह्य सुस्पष्टप्रतिपत्तये नवीनान्वैद्यकशास्त्रग्रन्थान्विरच्य बहूपकृतं भूतलम् ।

तत्रैवायं सांप्रतं प्रस्तूयमानस्तावत्प्रशंसासमयः । अस्मिन्वैद्यकशास्त्रे नानाविधसंहिताग्रन्थानां सारसारं संगृह्य श्रीमल्लटकनमिश्रतनयश्रीमद्भावमिश्रमहापण्डितै**र्भावप्रकाशो** नाम वैद्यकशास्त्रीयग्रन्थो विरचितोऽस्ति । अस्मिंश्च ग्रन्थे सकलौषधीगुणदोषवर्णनपुरःसरं समस्तरोगनिदानलक्षणचिकित्साप्रकारः समीचीनतया संवर्णितोऽस्ति । यदीयज्ञानमात्रेण सर्वेऽपि वैद्याः सर्वतो निराकुलं रोगकुलं व्याकुलयन्तो निर्मलयशोभागिनः समुल्लासयन्ति सर्वतो भूमण्डलम् । अतः सन्तु महामहिमशालिभ्यः श्रीभावमिश्रपण्डितेभ्योऽनन्तकालसुरलोकसुखसम्पादकविमलकीर्तिकरग्रन्थविरचनपरिश्रमाभिनन्दनपुरःसरं परःशतं धन्यवादाः ।

अथ च सांप्रतं प्रबलकलिकालविकरालचरितमलीमसमतिवैभवतया प्रायशः संस्कृतभाषापठनपाठनादिव्यवहारो मन्थरं प्रवृत्तः । तेन च संस्कृतभाषोपनिबद्धानेकशास्त्रीयग्रन्थज्ञानपरिपाटी प्रायाऽपचारधाटीसमाटीकृतं इवेति महानयमनर्थो भवितेति निपुणं मनसिकृत्य केवलपरोपकारार्थैकावतारः श्रीमन्महापण्डितमण्डलीसन्मान्यसत्परिश्रमैः श्रीमदायुर्वेदोद्धारकैः श्रीमन्मुरादाबादनगरनिवासिभिः श्रीमन्माथुरवैश्यवंशावतंसैः **श्रीलालाशालिग्राम**महाशयैरस्मदभ्यर्थनां सत्कृत्य श्रीमद्भागवतमहापुराणादिनानाविधसंस्कृतग्रन्थभाषानुवादेन कृतार्थीकृतमिदं भारतभूमीतलम् । अतीव स्तुत्यः खल्वेषां संस्कृतग्रन्थानां शुद्धसरलसुबोधभाषानुवादेन सकलसाधारणभारतीयजनानुजिघृक्षयाऽविश्रान्तः परिश्रमः ।

अहो ! किमु वर्ण्यतामेषां धन्यता । यैः केवलमापष्टिवर्षं वयो व्यवहारेण गार्हस्थ्योन्नत्यै व्ययीकृत्य तदन्वकस्मात्संजातनिर्वेदैः केवलं परोपकृतये संस्कृतग्रन्थोद्धारार्थं प्रचुरं प्रयत्नमारचय्य केवलमद्ययावद्दशवर्षाभ्यन्तरेऽतीवोपकारकान् १ शुकसागर, (श्रीमद्भागवतभाषानुवाद)—२ मार्कण्डेयपुराणभाषाटीका—३ शालिग्रामनिघण्टुभूषण—४ शालिग्रामौषधिशब्दसागर—५ राजवल्लभनिघण्टुभाषाटीका—६ रावणकृतार्कप्रकाशभाषाटीका—७ राजनिघण्टुभाषाटीका—८ धन्वन्तरिनिघण्टुभाषाटीका—९ बोपदेवशतकभाषानुवाद—१० द्रव्यगुणशतकभाषानुवाद—११ भारतभैषज्यभास्करभाषाटीका—१२ वंगसेनभाषाटीका—१३ वैद्यकौस्तुभभाषाटीका—१४ कल्पलताभाषाटीका—१५ सुदामाचरित्र—१६ मयूरध्वजनाटक—१७ माधवानलकामकन्दलानाटक—१८ लावण्यवतीसुदर्शननाटक—१९ अभिमन्युवधनाटक—२० इश्कचमन—प्रभृति ग्रन्थान्निर्माय सकलसाधारणजनानां संस्कृतग्रन्थज्ञानसौलभ्यरूपो व्यवहारज्ञानरूपश्च महानेवोपकारो-

---

१ अत्रार्थे विवदन्ते सूरयः केचन आयुर्वेदो हि—अथर्वणवेदस्योपवेद इति । यथात्रैव—"विधातार्थर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन् । स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम् ॥" इति । परमेतत्कल्पान्तरीयमिति सूरयः समादधते । भवति प्रतिकल्पं भूयान्पर्यावर्तः । ततः संभवतीदमपीति समनुसंधेयं सुधीभिः ।

धन्यवादः ।

ऽकारि । तादृगतीव्रतरप्रयत्नत एव तैरयं भावप्रकाश नामा ग्रन्थोऽपि सरलसुबोधभाषाटीकया विभूष्यास्माकं सविधे प्राहीयत । सोयं ग्रन्थोऽस्माभिः 'मुम्बय्यां' स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रसिद्धिमानीयत।

आवेदनीयं चैतत् । एभिर्महाशयैर्यावानय स्वल्पीयसि समये भूयांस प्रयत्नमारच्य संस्कृतभाषोपनिबद्धग्रन्थोद्धारेण समस्तभारतभूमण्डलोपरि महानेवोपकारः कृतोऽस्ति, अत एषा धन्यतां वक्तु मादृशस्यैकरसनावतः कथमपि शक्तिर्नास्ति । यैः केवलं व्यासचरितमेवानुचरित चतुर्लक्षाधिकभाषाग्रन्थविरचनप्रयासेनातिस्वल्पीयसा समयेनेति संभावयेऽगाधचरिता इमे महामहिमशालिनः श्रीलालाशालिग्रामसमहाशयाः पूर्णप्रशंसाभाजनमिति प्रब्रवीम्येषामनन्तान्धन्यवादानिति ।

प्रार्थये च समस्तसज्जनान्प्राञ्जलित्वेन—श्रीमन्तः समस्तधरणिमण्डलमण्डनायमानभारतभूमण्डलनिवासिनः सज्जनाः ! एतेषां महाशयानां तीव्रतरप्रयत्नसञ्जायमानभाषानुवादविभूषितग्रन्थसंग्रहणेन सफलयन्त्वविश्रान्तपरिश्रमानिति शम् ।

सकलसज्जनसद्गुणप्रेमाभिलाषी—

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयाध्यक्षो-मुम्बयी-स्थः



॥ श्रीः ॥

अथ भावप्रकाशस्थविषयानुक्रमणिका।

प्रथमखण्डविषयानुक्रमणिका.

अथ तृतीय प्रकरण ३.

चतुर्थ प्रकरण ४.

पञ्चम प्रकरण ५.

कर्पूरादिवर्गः।

गुडूच्यादिवर्गः ।

पुष्पवर्गः ।

वटादिवर्गः ।

आम्रादिफलवर्गः ।

धात्वादिवर्गः ।

धान्यवर्गः ।

शाक वर्गः ।

अथ भावप्रकाश पूर्वखंड द्वितीय भाग।

कृतान्नवर्गः ।

वारिवर्गः ।

दुग्धवर्गः ।

दधिवर्गः ।

तक्रवर्गः ।

नवनीतवर्गः ।

घृतवर्गः ।

मूत्रवर्गः ।

धातु नाम शोधन मारण विधि ।

पुटप्रकार ।

रत्नोंकी शोधन मारण विधि ।

विष और उपविषोंकी शोधनविधि ।

जीर्णज्वराधिकारः ।

अतिसाराधिकारः ।

जठराग्निविकाराऽधिकारः ।

कृमिरोगाधिकारः ।

पाण्डुरोगकामलाहलीमकाधिकारः ।

पित्तव्याधि।

श्लेष्मव्याधि।

वातरक्ताधिकारः।

शूलाधिकारः।

उदावर्ताधिकारः ।

गुल्माधिकारः ।

प्लीहयकृदधिकारः ।

शिरोरोगाधिकारः।

नेत्ररोगाधिकारः।

गलरोगाधिकारः ।

समस्त मुखरोग ।

विषाधिकारः ।

स्त्रीरोगाधिकारः ।

सोमरोगाधिकारः।

योनिरोगाधिकारः ।

इति अनुक्रमणिका समाप्ता।

॥ श्रीवेंकटेशाय नमः ॥





अथ भावप्रकाशः

भाषाटीकासमेतः ।

पूर्वखण्डम्

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

मङ्गलाचरणम् ।

गजमुखममरप्रवरं सिद्धिकरं विघ्नहर्त्तारम् ॥
गुरुमवगमनयनप्रदमिष्टकरीमिष्टदेवतां वन्दे १

ध्यात्वा देवमजादिसेवितपदं श्रीरामचंद्रं मुदा
सीतालक्ष्मणसंयुतं हरिवरेणासेवितं सर्वदा ॥
वैद्यानां सुखकारणाय ललितं श्रीवैद्यसंजीवनं
शालग्राममिपक्करोति तिलकं भावप्रकाशस्य च ॥१॥

सम्पूर्ण देवगणोंमें श्रेष्ठ, अणिमादिक अष्ट सिद्धियोंके दायक, और अनेक विघ्नोंके नष्ट करनेवाले गजानन (गणेश) जीको और विज्ञानरूपनेत्रोंके प्रदान करनेवाले श्रीगुरुको और इच्छित फलोंके दाता अपने इष्टदेवको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥

कवेरुक्तिः ।

आयुर्वेदागमनं क्रमेण येनाभवद्भमौ ॥ प्रथमं लिखामि तमहं नानातन्त्राणि संदृश्य ॥२॥

जिस प्रकार संसारमें आयुर्वेद (वैद्यकशास्त्र) का आगमन जिस क्रमसे हुआ, अनेक शास्त्रोंको अवलोकन करके प्रथम मैं उसी वृत्तान्तको लिखताहूँ ॥ २ ॥

अथायुर्वेदस्य लक्षणमाह ।

आयुर्हिताहितं व्याधिर्निदानं शमनं तथा ॥
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥ ३ ॥

जिसमें आयु (अवस्था) के हित अहित पदार्थ, रोगोंका निदान, और व्याधियोंका विनाश (चिकित्सा) कहाहो उसको विद्वान् पुरुष आयुर्वेद कहते हैं ॥ ३ ॥

अथायुर्वेदस्य निरुक्तिमाह ।

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च ॥
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः ॥४॥

शरीरजीवयोर्योगो जीवनं तेनावच्छिन्नः काल आयुः ॥

आयुर्वेदद्वारा आयुष्याणि अनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि ज्ञात्वा तेषां सेवनत्यागा-

भ्यामारोग्येण आयुर्विन्दति । तेनैव हेतुना परस्यापि आयुर्वेत्ति च क्रममाह । तत्रादौ ब्रह्मणः प्रादुर्भावः ॥

इस आयुर्वेदके द्वारा प्राणी आयुको प्राप्त करता है और जानता है, इसीसे मुनिवरोंने इसको आयुर्वेद कहा है। देह तथा जीव इन दोनोंका संबध होनेसे प्राणीका जीवन है, और उस जीवनयुक्त समयका नाम आयु है। आयुर्वेदके द्वारा आयुकी वृद्धि और आयुके विनाश करनेवाले द्रव्य गुण और कर्म्मोंको जान जाता है, जिसको आयुकी वृद्धि करनी होय वह हित (पथ्य) वस्तुके सेवन और अहित (अपथ्य) वस्तुके त्याग करनेसे आरोग्यसहित परमायुको प्राप्त करता है, और उन्हीं कारणोंसे दूसरे प्राणियोंकी आयुको भी जान सक्ता है ॥ ४ ॥

अथ ब्रह्मप्रादुर्भावः ।

विधाताऽथर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन् ॥ स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम् ॥ ५ ॥ ततः प्रजापतिं दक्षं दक्षं सकलकर्मसु ॥ विधिर्धीनीरधिः सांगमायुर्वेदमुपादिशत् ॥ ६ ॥

ब्रह्माजीने अथर्ववेदका सर्वस्व (सारांश) लेकर आयुर्वेदका प्रकाश किया और अपने नामसे एक लाख श्लोकका सरल रीतिसे एक ग्रन्थ (ब्रह्मसंहितानामक) निर्माण किया । तदनन्तर बुद्धिवारिधि ब्रह्माजीने, सम्पूर्ण कार्योंमें दक्ष (चतुर) दक्षप्रजापतिको सांगोपांग आयुर्वेदका उपदेश किया ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ दक्षप्रादुर्भावः ।

अथ दक्षः क्रियादक्षः स्ववेद्यौ वेदमायुषः ॥ वेदयामास विद्वांसौ सूर्य्यांशौ सुरसत्तमौ ॥७॥

ब्रह्माजीसे पढनेके उपरान्त सर्व क्रियाओंमें कुशल दक्षप्रजापतिने, सूर्यके अंशरूप, पूर्णविद्वान् और देवताओंमें श्रेष्ठ ऐसे स्वर्गवैद्य–अश्विनीकुमारोंको इस आयुर्वेदको पढाया ॥ ७ ॥

अथाश्विनीसुतप्रादुर्भावः ।

दक्षादधीत्य दस्रौ वितनुतः संहितां स्वीयाम् ॥ सकलचिकित्सकलोकप्रतिपत्तिविवृद्धये धन्याम् ॥ ८ ॥ स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नं भैरवेण रुपाऽथ तत् ॥ अश्विभ्यां संहितं तस्मात्तौ जातौ यज्ञभागिनौ ॥९॥ देवासुररणे देवा दैत्यैर्ये सक्षताः कृताः ॥ अक्षतास्ते कृताः सद्यो दस्राभ्यामद्भुतं महत् ॥ १० ॥ वज्रिणोऽभूद्भुजस्तम्भः स दस्राभ्यां चिकित्सितः ॥ सोमान्निपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव सुखीकृतः ॥ ११ ॥ विशीर्णा दशनाः पूष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च ॥ शशिनो राजयक्ष्माऽभूदश्विभ्यां ते चिकित्सिताः ॥ १२ ॥ भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन्विकृतिं गतः॥ वीर्यवर्णस्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्यां पुनर्युवा ॥१३॥ एतैश्चान्यैश्च बहुभिः कर्मभिर्भिषजां वरौ ॥ बभूवतुर्भृशं पूज्याविन्द्रादीनां दिवौकसाम् ॥१४॥

अश्विनीकुमारोंने–दक्षप्रजापतिसे वैद्यक विद्या पढकर सम्पूर्ण चिकित्सकोंकी ज्ञानवृद्धिके लिये अपनी अश्विनीकुमारनामकश्लोकसंहिता निर्मित की । क्रोधातुर भैरवने जब ब्रह्माजीका शिरच्छेदन किया, तब इन्हीं दोनों अश्विनीकुमारोंने अनेक उपचारोंसे उनका मस्तक जोडा था उसी दिनसे इन (जातिपतित) अश्विनीकुमारोंको देवयज्ञमें फिर भाग मिलने लगा, जब देवासुरसंग्राममें देवता दैत्योंकरके अंगभंग (घायल) हुए तब उन देवताओंको इन्हीं अश्विनीकुमारोंने शीघ्र अक्षत (व्रणरहित) किया, इनका यह अत्यन्त आश्चर्य्यमय अद्भुत कार्य हुआ, इन्द्रकी स्तम्भित भुजाको इन्हीं अश्विनीकुमारोंने आरोग्य किया था, और अमृत रहित चन्द्रमाको भी अमृत युक्त सुखी करना इन्हींका काम था, पूषादेवताके दॉत टूट गयेथे, भगदेवताके नेत्र फूट गयेथे, चन्द्रमा राजयक्ष्मारोगसे ग्रसित होगया था, इन सबकी औषधि अश्विनीकुमारोंने ही करीथी । भृगु मुनिके गोत्रमें उत्पन्न महावृद्ध कामी च्यवन ऋषि, वृद्धताको प्राप्त होनेसे मलिनीकृत (कुरूप) होगये थे, उनकी भी अश्विनीकुमारोंने ही वीर्य वर्ण और स्वर युक्त कर फिर युवावस्था कर दीथी,

१ शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारतन्त्र, अगदतन्त्र, रसायनतन्त्र और वाजीकरणतन्त्र ये इस आयुर्वेदके आठ अंग है ।

२ पूषादेवता और भगदेवताकी कथा श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कंधमें लिखी है. पूषा और भग यह सूर्यका भेद हैं ।

इस प्रकार अनेक चमत्कृतकार्य करनेसे वैद्योमें श्रेष्ठता पाकर ये दोनो अश्विनीकुमार दोनो इन्द्रादिक देवताओंमे अत्यन्त पूज्य हुए ॥ ८–१४ ॥

अथेन्द्रप्रादुर्भावः।

संदृश्य दस्रयोरिन्द्रः कर्माण्येतानि यत्नवान्॥ आयुर्वेदं निरुद्वेगं तौ ययाचे शचीपतिः॥ ॥ १५ ॥ नासत्यौ सत्यसन्धेन शक्रेण किल याचितौ॥ आयुर्वेदं यथाधीतं ददतुः शतमन्यवे ॥ १६ ॥ नासत्याभ्यामधीत्यैव आयुर्वेदं शतक्रतुः॥ अध्यापयामास बहूनात्रेयप्रमुखान्मुनीन् ॥ १७ ॥

पूर्वोक्त अश्विनीकुमारोके अत्यन्त आश्चर्य्यमय इन कार्य्योंको देखकर यत्नवान् शचीपति (इन्द्र)ने निरुद्वेगहो उनसे इस परम अद्भुत आयुर्वेदकी याचना की। तब सत्यसन्ध इन्द्रके मांगनेपर उन अश्विनीकुमारोंने जिस प्रकार आप आयुर्वेद पढा था उसी प्रकार इन्द्रको पढाया तत्पश्चात् इन्द्रने अश्विनीकुमारोसे आयुर्वेदको अध्ययन कर वही चिकित्सा शास्त्र आत्रेय आदि बहुतसे मुनियोंको अध्ययन कराया ॥ १५–१७ ॥

अथात्रेयप्रादुर्भावः।

एकदा जगदालोक्य गदाकुलमितस्ततः॥ चिन्तयामास भगवानात्रेयो मुनिपुंगवः॥ ॥ १८ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं लोका निरामयाः॥ भवन्ति सामयानेतान्न शक्नोमि निरीक्षितुम् ॥ १९ ॥ दयालुरहमत्यर्थं स्वभावो दुरतिक्रमः॥ एतेषां दुःखतो दुःखं ममापि हृदयोऽधिकम् ॥ २० ॥ आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्याय शरीरिणाम् ॥ इति निश्चित्य गतवानात्रेयस्त्रिदशालयम् ॥ २१ ॥ तत्र मन्दिरमिन्द्रस्य गत्वा शक्रं ददर्श सः॥ सिंहासनसमासीनं स्तूयमानं सुरर्षिभिः॥ ॥ २२ ॥ भासयन्तं दिशो भासा भास्करप्रतिमं त्विषा ॥ आयुर्वेदमहाचार्य्यं शिरोधार्य्यं दिवौकसाम् ॥ २३ ॥ शक्रस्तु तं निरीक्ष्यैव त्यक्तसिंहासनः स्थितः। तमग्रे पूजयामास भृशं भूरितपःकृशम्॥ ॥ २४ ॥ कुशलं परिपप्रच्छ तथागमनकारणम्॥ स मुनिर्वक्तुमारेभे निजागमनकारणम् ॥ २५ ॥ देवराज न जानासि दिव एव यतो भवान् ॥ विधात्रा विहितो यत्नात्त्रिलोकीलोकपालकः ॥ २६ ॥ व्याधिभिर्व्यथिता लोकाः शोकाकुलितचेतसः॥ भूतले सन्ति सन्तापं तेषां हन्तुं कृपां कुरु ॥ २७ ॥ आयुर्वेदोपदेशं मे कुरु कारुण्यतो नृणाम् ॥ तथेत्युक्त्वा सहस्राक्षोऽध्यापयामास तं मुनिम् ॥ २८ ॥ मुनीन्द्र इन्द्रतः सांगमायुर्वेदमधीत्य सः ॥ अभिनन्द्य तमाशीर्भिराजगाम पुनर्महीम् ॥ २९ ॥ अथात्रेयो मुनिश्रेष्ठो भगवान्करुणाकरः॥ स्वनाम्ना संहितां चक्रे नरवर्गानुकम्पया ॥ ३० ॥ ततोऽग्निवेशं भेडञ्च जातूकर्णं पराशरम् ॥ क्षीरपाणिञ्च हारीतमायुर्वेदमपाठयत् ॥ ३१ ॥ तन्त्रस्य कर्त्ता प्रथममग्निवेशोऽभवत्पुरा ॥ ततो भेडादयश्चक्रुः स्वंस्वं तन्त्रं कृतानि च ॥ ३२ ॥ श्रावयामासुरात्रेयं मुनिवृन्देन वन्दितम् ॥ श्रुत्वा च तानि तंत्राणि हृष्टोऽभूदत्रिनन्दनः ॥ ३३ ॥ यथावत्सूत्रितं दृष्ट्वा प्रहृष्टा मुनयोऽभवन्॥ दिवि देवर्षयो देवाः श्रुत्वा साध्विति चाब्रुवन् ॥ ३४ ॥

एक समय मुनिसत्तम भगवान् आत्रेयजी सब संसारको रोगसे व्याकुल देखकर अपने मनमें कहने लगे कि मैं क्या करु ? कहां जाऊँ ? यह लोक किस प्रकार रोगसे मुक्तहो, इन रोगी लोगोंको मैं किसी प्रकार नहीं देख सक्ता, क्योंकि मैं अति कृपालुहूँ, मेरा यह स्वभाव ही दुरतिक्रम है अर्थात् किसी प्रकार बदलता नही, इस कारण इन रोगियोंके दुःखसे मेरा हृदय अत्यन्त दुःखी है, मै इन रोगियोंके रोगोंको दूर करनेके लिये आयुर्वेद पढूँगा, ऐसा विचार करते आत्रेय मुनि स्वर्गको चले गये

वहां इन्द्रके स्थानपर जाकर इन्द्रको देखा कि सुरेन्द्र, सुरर्षियों करके पूजित दिव्य सिंहासन पर विराजमान है। मार्तण्ड (सूर्य) की समान अपनी कान्तिसे दशोंदिशाओंको प्रकाशमान करता हुआ आयुर्वेदका महान् आचार्य्य और देवताओंके शिरोमणि सुरेशको सिंहासन पर बैठा देखा । तप करनेसे जिनका शरीर अत्यन्त दुर्बल होरहा था, ऐसे आत्रेय ऋषिको देखकर इन्द्र सिंहासनसे उतरकर मुनिका पूजन करने लगा, तत्पश्चात् कुशल सहित आनेका कारण पूछा, मुनिने भी अपने आनेका कारण कहना प्रारम्भ किया । हे सुरराज ! आप केवल सुरपुरके ही राजा नहीं हो, किन्तु आपको विधाताने त्रिभुवनका प्रतिपालक बनाया है। इस लिये आपसे यह निवेदन है कि, भूतल (पृथ्वी) मे रोगोंकी पीडासे व्याकुल चित्तवाले व्याधिसे व्यथित होकर प्राणियोंको अत्यन्त सन्ताप है, उनका ताप दूर करनेके लिये दया कीजिये । ससारी जीवोंकी करुणा विचारकर मुझे आयुर्वेदकी शिक्षा दीजिये मुनिके मधुर वचन सुनकर इन्द्रने कहा कि, आपके वचन सत्य हैं, यह कह आत्रेय ऋषिको आयुर्वेद अध्ययन कराना आरम्भ किया । इस प्रकार इन्द्रसे मुनीन्द्र (आत्रेय) ने सांगोपांग आयुर्वेद पढ वारवार आशीर्वाद दे फिर पृथ्वीमे गमन किया । फिर मुनियोंमे श्रेष्ठ भगवान् करुणानिधि आत्रेय मुनिने मनुष्योंपर अनुग्रहकर अपने नामकी एक "आत्रेयसहिता" रची । फिर वही आत्रेयसहिता अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण, पराशर, क्षीरपाणि और हारीत इन छह शिष्योंको पढाई । इन छह शिष्योंमे प्रथम तन्त्र (ग्रथके) कर्त्ता अग्निवेश हुए । तत्पश्चात् भेडादिक महात्माओंने भी अपने अपने नामके तन्त्र निर्माण किये । और मुनिगणोंसे वन्दित महामुनि आत्रेयजीको अपने अपने बनाये हुए तन्त्र सुनाये, उन तन्त्रोंको सुनकर अत्रिनन्दन अत्यन्त हर्षित हुए और कहनेलगे कि, तुमने बहुत उत्तम तन्त्र बनाए यह सुन सम्पूर्ण ऋषि लोग प्रसन्न हुए, और आकाशमे देव ऋषि समेत सुरपुरके देवतागणभी प्रसन्न होकर साधु साधु अर्थात् धन्यहो धन्यहो ऐसा कहने लगे ॥ १८-३४ ॥

अथ भरद्वाजप्रादुर्भावः ।

एकदा हिमवत्पार्श्वे देवादागत्य संगताः॥
मुनयो बहवस्तेषां नामाभिः कथयाम्यहम्॥

॥ ३५ ॥ भरद्वाजो मुनिवरः प्रथमं समुपागतः ॥ ततोऽङ्गिरास्ततो गर्गो मरीचिर्भृगुभार्गवौ ॥ ३६ ॥ पुलस्त्योऽगस्तिरसितो वसिष्ठः सपराशरः ॥ हारीतो गौतमः सांख्यो मैत्रेयश्च्यवनोऽपि च॥ ॥ ३७ ॥ जमदग्निश्च गार्ग्यश्च कश्यपः काश्यपोऽपि च ॥ नारदो वामदेवश्च मार्कण्डेयः कपिञ्जलः ॥ ३८ ॥ शाण्डिल्यः सहकौण्डिन्यः शाकुनेयश्च शौनकः ॥ आश्वलायनसांकृत्यौ विश्वामित्रः परीक्षकः ॥ ३९ ॥ देवलो गालवो धौम्यः काम्यकात्यायनावुभौ ॥ कांकायनो वैजपेयः कुशिको बादरायणः ॥४० ॥ हिरण्याक्षश्च लौगाक्षिः शरलोमा च गोभिलः॥ वैखानसा वालखिल्यास्तथैवान्ये महर्षयः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मज्ञानस्य निधयो यमस्य नियमस्य च ॥ तपसस्तेजसा दीप्ता हूयमाना इवाग्नयः ॥ ४२ ॥ सुखोपविष्टास्ते तत्र सर्वे चक्रुः कथामिमाम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम् ॥ ४३ तपःस्वाध्यायधर्माणां ब्रह्मचर्य्यव्रतायुषाम् ॥ हर्त्तारः प्रसृता रोगा यत्र तत्र च सर्वतः ॥ ४४ ॥ रोगाः कार्श्यकरा बलक्षयकरा देहस्य चेष्टाहरा दृष्टा इन्द्रियशक्तिसंक्षयकराः सर्वांगपीडाकराः । धर्मार्थाखिलकाममुक्तिषु महाविघ्नस्वरूपा बलात्प्राणानाशु हरन्ति सन्ति यदि ते क्षमं कुतः प्राणिनाम ॥ ४५ ॥ तत्तेषां प्रशमाय कश्चन विधिश्चिन्त्यो भवद्भिर्बुधैर्योग्यैरित्यभिधाय संसदि भरद्वाजं मुनि तेऽब्रुवन् ॥ त्वं योग्यो भगवन्सहस्रनयनं याचस्व लब्धं क्रमादायुर्वेदमधीत्य यं गदभयान्मुक्ता भवामो वयम् ॥४६ ॥ इत्थं स मुनिभि-

योग्यैः प्रार्थितो विनयान्वितैः॥ भरद्वाजो मुनिश्रेष्ठो जगाम त्रिदशालयम् ॥४७॥ तथेन्द्रभवनं गत्वा सुरर्षिगणमध्यगम् ॥ दृष्टवान्वृत्रहन्तारं दीप्यमानमिवानलम् ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वैव स मुनिं प्राह भगवान्मघवा मुदा ॥ धर्म्मज्ञ स्वागतं तेऽथ मुनिं तं समपूजयत् ॥ ४९ ॥ सोऽभिगम्य जयाशीर्भिरभिनन्द्य सुरेश्वरम् । ऋषीणां वचनं सम्यक् श्रावयामास तत्त्वतः ॥ ५० ॥ व्याधयो हि समुत्पन्नाः सर्वप्राणिभयङ्कराः ॥ तेषां प्रशमनोपायं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ५१ ॥ अपाठयन्मुनिं साङ्गमायुर्वेदं शतक्रतुः॥ जीवेद्वर्षसहस्राणि देही नीरुङ् निशम्य यम् ॥ ५२ ॥ सोऽनन्तपारं त्रिस्कन्धमायुर्वेदं महामुनिः ॥ यथावदचिरात्सर्वं बुबुधे तन्मना मुनिः ॥ ५३ ॥ तेनायुः सुचिरं लेभे भरद्वाजो निरामयम् ॥ अन्यानपि मुनींश्चक्रे नीरुजः सुचिरायुषः ॥ ५४ ॥ तत्तन्त्रजनितज्ञानचक्षुषा ऋषयोऽखिलाः ॥ गुणान्द्रव्याणि कर्माणि दृष्ट्वा तद्विधिमाश्रिताः ॥ ॥ ५५ ॥ आरोग्यं लेभिरे दीर्घमायुश्च सुखसंयुतम् ॥ आयुर्वेदोक्तविधिनाऽन्येऽपि स्युर्मुनयो यथा ॥ ५६ ॥

एक समय दैवेच्छासे (अकस्मात्) हिमालय पर्वतके ऊपर अनेकमहर्षि आनकर एकत्र हुए, मैं भिन्न२ उनके नाम वर्णन करताहूँ । प्रथम मुनियोंमे श्रेष्ठ, भरद्वाज आये, तदनन्तर अंगिरा, गर्ग, मरीचि, भृगु, भार्गव, पुलस्त्य, अगस्त्य, असित, वसिष्ठ, पराशर, हारीत, गौतम, सांख्य, मैत्रेय, च्यवन, जमदग्नि, गार्ग्य, कश्यप, काश्यप, नारद, वामदेव, मार्कण्डेय, कपिंजल, शांडिल्य, कौण्डिन्य, शाकुनेय, शौनक, आश्वलायन, सांकृत्य, विश्वामित्र, परीक्षक, देवल, गालव, धौम्य, काम्य, कात्यायन, कांकायन, वैजपायन, कुशिक, बादरायण, हिरण्याक्ष, लौगाक्षि, शरलोमा, गोभिल, वैखानस, और वालखिल्य, तथा और अन्य (अनेक) महर्षिलोग ब्रह्मज्ञान और यम नियमके समूह, तप तेजसे होमी हुई प्रदीप्त अग्निके समान प्रकाशमान इसप्रकार आनन्दपूर्वक उस पर्वतपर बैठकर सब मुनि यह कथन करनेलगे कि-धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका मुख्यकारण शरीरही है, परन्तु तप, वेदाध्ययन, धर्म्म, ब्रह्मचर्यादिव्रत और आयुके हरणकर्त्ता रोग जहाँ तहाँ सब स्थानोंमे फैले हुए हैं । यह रोग प्राणियोंके देहोंको दुर्बल करनेवाले, बलका क्षय और शरीरकी चेष्टाको हरनेवाले,इन्द्रियोंकी शक्तिके नाशक सर्वाङ्गमे पीडाकारक, धर्म-अर्थ-अखिलकामना मुक्ति इन उत्तम कार्योंमें महा विघ्नरूप होकर बलपूर्वक तत्क्षण प्राणोंको हरने वाले रोग यदि इसप्रकार दिखाई देते हैं तब विचारे जीवोंको सुख किस प्रकार होसक्ताहै १ इस कारण उन पापात्मा रोगोंकी शान्तिका आप योग्य विद्वानोंको कोई उपाय विचारना चाहिये, जब सब ऋषि लोग यह वचन कहकर भरद्वाज मुनिसे बोले हे भगवन् ! आप इस कार्य करनेके योग्य हैं, इसलिये आपही इन्द्रके पास जाकर आयुर्वेदको लाओ, अर्थात् उनसे पढो फिर जिसको हम सब परस्पर पढकर रोगोंके भयसे मुक्त होजावें । इसप्रकार योग्य योग्य मुनियोंने जब विनयपूर्वक प्रार्थना की तब मुनियोंमे श्रेष्ठ भरद्वाजजी स्वर्गलोकको गये । वहां इन्द्रपुरीमें जाकर प्रज्वलित अनलके सदृश प्रकाशित देवर्षियोंके मध्यमे वृत्रासुरको मारनेवाले देवराज (इन्द्र) को बैठेदेखा । उन मुनिवर भरद्वाजजीको देखकर भगवान् इन्द्रने प्रसन्न होकर कहा कि हे धर्मज्ञ ! आपका शुभागमन परमानन्ददायक हुआ, यह कहकर विधिपूर्वक उनका पूजन किया । फिर भरद्वाजमुनिभी इन्द्रकेपास जाकर आशीर्वाद आदि जयशब्दोंसे उनको प्रसन्नकर, ऋषियोंके कहे हुए वाक्योंको कहनेलगे कि हे देवेश ! भूतल (पृथ्वीतल) मे सब प्राणियोंको भय देने वाले महाभयकर अनेक रोग उत्पन्न हुए हैं, उनके शमन करनेका कोई यथोचित प्रयत्न कहिये अर्थात् मुझको आयुर्वेदका उपदेश कीजिये । तब सुरेन्द्रने भरद्वाजके यह वचन सुने तब सांगोपांग आयुर्वेदको पढाने लगे, जिसको सुनकर प्राणी व्याधिहीन होकर सहस्र वर्ष तक जिये । महामुनि भरद्वाजजीने अनन्त अपार ऐसे त्रिस्कन्ध (तीन काण्ड) वाले सम्पूर्ण आयुर्वेदको थोडेही दिनोंमे

१ इस आयुर्वेदका पार नहीं है अर्थात् अगम्य है ।

२ हेतु, लिंग और औषधात्मक ये तीन इस आयुर्वेदके स्कंध कहे हैं ।

यथावत् रीतिसे विचार किया । जिस आयुर्वेदके पढनेसे भरद्वाजजी व्याधिरहित होकर दीर्घायु हुए और अन्य अन्य मुनियोंको भी रोगोंसे छुटाकर चिरायु किया । फिर भरद्वाज मुनिने अपने नामसे महातन्त्र 'भारद्वाजसंहिता' निर्माण की । जिसमें उत्तम ज्ञानरूप नेत्रोंके द्वारा सब मुनिवरभी गुण द्रव्य और कर्म्मोंको विचार तथा उस तन्त्रमें कहीहुई विधियोंका आश्रय ले, आरोग्य और सुख संयुक्त दीर्घायुको प्राप्तहुए, जैसे कि, आयुर्वेदोक्तविधिसे पूर्वोक्त अन्य मुनिलोग आरोग्य सहित सुखसंयुक्त दीर्घायु हुए ॥ ३५-५६ ॥

अथ चरकप्रादुर्भावः ।

यदा मत्स्यावतारेण हरिणा वेद उद्धृतः ॥ तदा शेषश्च तत्रैव वेदं साङ्गमवाप्तवान् ॥ ॥ ५७ ॥ अथर्वान्तर्गतं सम्यगायुर्वेदं च लब्धवान् ॥ एकदा स महीवृत्तं द्रष्टुं चर इवागतः ॥ ५८ ॥ तत्र लोकान्गदैर्ग्रस्तान्व्यथया परिपीडितान् ॥ स्थलेषु बहुषु व्यग्रान्म्रियमाणांश्च दृष्टवान् ॥ ॥ ५९ ॥ तान्दृष्ट्वातिदयायुक्तस्तेषां दुःखेन दुःखितः ॥ अनन्तश्चिन्तयामास रोगोपशमकारणम् ॥ ६० ॥ सञ्चिन्त्य स स्वयं तत्र मुनेः पुत्रो बभूव ह ॥ प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य वेदवेदाङ्गवेदिनः ॥ ६१ ॥ यतश्चर इवायातो न ज्ञातः केनचिद्यतः ॥ तस्माच्चरकनाम्नासौ ख्यातश्च क्षितिमण्डले ॥ ६२ ॥ स भाति चरकाचार्य्यो वेदाचार्य्यो यथा दिवि ॥ सहस्रवदनस्यांशो येन ध्वंसो रुजां कृतः ॥ ६३ ॥ आत्रेयस्य मुनेः शिष्या अग्निवेशादयोऽभवन् ॥ मुनयो बहवस्तैश्च कृतं तन्त्रं स्वकंस्वकम् ॥ ६४ ॥ तेषां तन्त्राणि संस्कृत्य समाहृत्य विपश्चिता ॥ चरकेणात्मनो नाम्ना ग्रंथोऽयं चरकः कृतः ॥ ६५ ॥

जब मत्स्यावतार धारण कर विष्णुभगवान्ने वेदोंका उद्धार किया, तब शेष भगवानने उसी स्थानपर मत्स्य भगवान्से सांगोपांग वेदोंको पढा । उन वेदोंमें अथर्ववेदके अंतर्गत जो आयुर्वेद मिला हुआथा उसकोभी पढा एकसमय पृथ्वीका वृत्तान्त जाननेके लिये शेषजी चर अर्थात् दूतका वेष धारण कर मृत्युलोकमें आये । इस लोकमें आनकर प्राणियोंको दुःखसे पीडित रोगग्रस्त अथवा अनेक स्थानोंपर रोगोंसे मृत्युको प्राप्त होते हुए देखा । उन जीवोंको देख परमदयालु अनन्त (शेषजी) उनके दुःखसे अत्यन्त दुःखित होकर लोगोंके रोगोंकी शान्तिका उपाय विचारने लगे । इस प्रकार विचारकर आप वेद-वेदांगके पारगामी शुद्ध प्रसिद्ध कुलमें किसी ऋषिके पुत्र[1] हुए । जो शेषजी चर (दूत) सदृश होकर इस भूतलमें आये और किसीने उनको नहीं जाना, इस लिये चरक नामसे वह संसारमें प्रसिद्ध हुए । जैसे देवलोकमें सुरगुरु (बृहस्पति) प्रसिद्ध हैं वैसे ही संसारमें चरकाचार्य प्रसिद्ध हैं । साक्षात् शेषजीका अंश भगवान चरकाचार्य्य हैं जिन्होंने अनेक व्याधियोंका नाश कर दिया । पूर्वोक्त आत्रेयमुनिके शिष्य अग्निवेशादिक अनेक ऋषि हुए और उन्होंने तो अपने अपने नामोंकी पृथक् पृथक् संहिताएँ निर्माण की थी, उन संहिताओंका प्रतिसंस्कार करके चरकने अपने नामसे चरकसंहिता बनाई ॥ ५७-६५ ॥

अथ धन्वन्तरिप्रादुर्भावः ।

एकदा देवराजस्य दृष्टिर्निपतिता भुवि ॥ तत्र तेन नरा दृष्टा व्याधिभिर्भृशपीडिताः ॥ ६६ ॥ तान्दृष्ट्वा हृदयं तस्य दयया परिपीडितम् ॥ दयार्द्रहृदयः शक्रो धन्वन्तरिमुवाच ह ॥ ६७ ॥ धन्वन्तरे सुरश्रेष्ठ भगवन्किञ्चिदुच्यते ॥ योग्यो भवसि भूतानामुपकारपरो भव ॥ ६८ ॥ उपकाराय लोकानां केन किं न कृतं पुरा ॥ त्रैलोक्याधिपतिर्विष्णुरभून्मत्स्यादिरूपवान् ॥ ६९ ॥ तस्मात्त्वं पृथिवीं याहि काशीमध्ये नृपो भव ॥ प्रतीकाराय रोगाणामायुर्वेदं प्रकाशय ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वा सुरशार्दूलः सर्वभूतहितेप्सया ॥ समस्तमायुषो वेदं धन्वन्तरिमुपादिशत् ॥ ७१ ॥ अधीत्य चायुषो वेदमिन्द्राद्धन्वन्तरिः पुरा ॥ आगत्य

[1] किस ऋषिके पुत्र हुए यह इसमें नहीं कहा न अन्यत्र कहीं लिखा देखा ।

पृथिव्यां काश्यां जातो बाहुजवेश्मनि ॥ ॥ ७२ ॥ नाम्ना तु सोऽभवत्ख्यातो दिवोदास इति क्षितौ ॥ बाल एव विरक्तोऽभूच्चचार सुमहत्तपः ॥ ७३ ॥ यत्नेन महता ब्रह्मा तं काश्यामकरोन्नृपम् ॥ ततो धन्वन्तरिर्लोकैः काशीराजोऽभिधीयते ॥ ॥ ७४ ॥ हिताय देहिनां स्वीया संहिता विहिताऽमुना ॥ अथ विद्यार्थिनो लोकान्संहितां तामपाठयत् ॥ ७५ ॥

एक समय देवराज (इन्द्र) की दृष्टि मृत्युलोक पर पडी, वहां देखा कि अनेक मनुष्य व्याधियोंसे परिपीडित होरहे हैं । उनको देख इन्द्रका हृदय करुणासे विदीर्ण होगया, तब दयार्द्रहृदय इन्द्रने धन्वन्तरिसे कहा कि हे धन्वन्तरे ! हे सुरोत्तम ! हे भगवन् ! मैं आपसे कुछ प्रार्थना करताहू आप योग्य है, इसलिये आप प्राणियोंके उपकार पर तत्पर हूजिये । प्राणियोके उपकारके लिये पूर्वकालमे मुनियोने क्या नही किया केवल परोपकारवश त्रिभुवनपति विष्णुभगवान्ने मत्स्यादि रूप धारण कियेहै । इसलिये तुम भूतलमें जाओ और काशीपुरीके नरेश होकर लोगोंके रोगोको नष्ट करनेके लिये आयुर्वेदको प्रकाश करो । यह कहकर सुरशार्दूल (इन्द्र) ने सबप्राणियोंके कल्याण (हित) की इच्छासे धन्वन्तरिको सम्पूर्ण आयुर्वेद पढाया । इस प्रकार पूर्व कालमे इन्द्रसे धन्वन्तरिने आयुर्वेद पढ पृथ्वीमे आनकर काशीनरेश बाहुज (क्षत्रिय) के घरमे जन्मलिया और ससारमे 'दिवोदास' इस नामसे विख्यात होकर बालकपनसेही विरक्त होगये और महाघोर तप करनेलगे । तब बडे यत्नोसे ब्रह्माने उनको काशीका राजा किया, उस दिनसे धन्वन्तरिको लोग काशीराज कहनेलगे । सपूर्ण जीवोके हितके लिये वही काशीराज धन्वन्तरि अपने नामकी संहिता (धन्वन्तरिसंहिता) निर्माण करके विद्यार्थियोको उस संहिताको पढाने लगे ॥ ६६—७५ ॥

अथ सुश्रुतप्रादुर्भावः ।

अथ ज्ञानदृशा विश्वामित्रप्रभृतयोऽविदन् ॥ अयं धन्वन्तरिः काश्यां काशिराजोऽयमुच्यते ॥ ७६ ॥ विश्वामित्रो मुनिस्तेषु पुत्रं सुश्रुतमुक्तवान् ॥ वत्स वाराणसीं गच्छ त्वं विश्वेश्वरवल्लभाम् ॥ ॥ ७७ ॥ तत्र नाम्ना दिवोदासः काशिराजोऽस्ति बाहुजः ॥ स हि धन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेदविदां वरः ॥ ७८ ॥ सर्वप्राणिदयार्त्तार्थादुपकारमहामखात् ॥ आयुर्वेदं पठस्व त्वं लोकोपकृतिहेतवे ॥ ॥ ७९ ॥ पितुर्वचनमाकर्ण्य सुश्रुतः काशिकां गतः ॥ तेन सार्द्धं समध्येतुं मुनिसूनुशतं ययौ ॥ ८० ॥ अथ धन्वन्तरिं सर्वे वानप्रस्थाश्रमे स्थितम् ॥ भगवन्तं सुरश्रेष्ठं मुनिभिर्बहुभिः स्तुतम् ॥ ॥ ८१ ॥ काशिराजं दिवोदासं तेऽपश्यन्विनयान्विताः ॥ स्वागतञ्च तदाचाह दिवोदासो यशोधनः ॥ कुशलं परिपप्रच्छ तथागमनकारणम् ॥ ८२ ॥ ततस्ते सुश्रुतद्वारा कथयामासुरुत्तरम् ॥ भगवन्मानवान्दृष्ट्वा व्याधिभिः परिपीडितान् ॥ ८३ ॥ क्रन्दतो म्रियमाणांश्च जाताऽस्माकं हृदि व्यथा ॥ आमयानां शमोपायं विज्ञातुं वयमागताः ॥ ८४ ॥ आयुर्वेदं भवानस्मानध्यापयतु यत्नतः ॥ अंगीकृत्य वचस्तेषां नृपतिस्तानुपादिशत् ॥ ८५ ॥ व्याख्यातं तेन ते यत्नाज्जगृहुर्मुनयो मुदा ॥ काशिराजं जयाशीर्भिरभिनन्द्य मुदान्विताः ॥ ८६ ॥ सुश्रुताद्याः सुसिद्धार्था जग्मुर्गेहं स्वकं स्वकम् ॥ प्रथमं सुश्रुतस्तेषु स्वतंत्रं कृतवान्स्फुटम् ॥ ८७ ॥ सुश्रुतस्य सखायोऽपि पृथक्तंत्राणि तेनिरे ॥ सुश्रुतेन कृतं तंत्रं सुश्रुतं बहुभिर्यतः ॥ ८८ ॥ तस्मात्तत्सुश्रुतं नाम्ना विख्यातं क्षिति मण्डले ॥ ८९ ॥

पश्चात् विश्वामित्र आदि मुनियोंने ज्ञानदृष्टिसे देखा और मनमे विचारा कि, यह वही धन्वन्तरिहै जो काशीपुरीमें काशीराज नामसे प्रसिद्ध है । उन मुनियोमेसे विश्वामित्रजी अपने पुत्र सुश्रुतसे बोले कि, हे वत्स ! तू श्रीविश्वनाथजीकी परमप्रिय वाराणसी (काशी) को जा और वहॅ

जो बाहुसुत दिवोदास काशीराज नामसे विख्यात हैं, वे आयुर्वेदके ज्ञाताओंमें परमोत्तम, साक्षात् धन्वन्तरिही हैं । इस कारण संसारके उपकारके लिये उनके पास जाकर आयुर्वेद पढो, क्योंकि सब जीवोंपर दया करनाही तीर्थ-यात्रा है और उपकार करनाही महायज्ञ समझा जाता है । इस प्रकार विश्वामित्र–पिताकी आज्ञा मान, सुश्रुत काशीपुरीको चले गये और उनके संग पढनेके लिये मुनियोंके सौ १०० पुत्र और भी गये । वहां जाकर देवश्रेणीमें श्रेष्ठ, वानप्रस्थाश्रममें स्थित, अनेक मुनियों करके पूज्य काशीराज दिवोदास (धन्वन्तरि) को उन मुनिपुत्रोंने विनययुक्त देखा, मुनिपुत्रोंको देख यशोधन दिवोदासने उनका यथोचित स्वागत किया और उनसे कुशल क्षेम सहित शुभागमनका वृत्तान्त पूँछने लगे, तब सब मुनिपुत्रोंने सुश्रुत द्वारा उनको यह उत्तर दिया, कि भगवन् ! अनेक व्याधियोंसे परिपीडित प्राणी भयकर शब्दसे हाहाकार कर मृत्युको प्राप्त होरहे हैं उन प्राणियोंकी कुगति देखकर हमारे हृदयमें अत्यन्त व्यथा उत्पन्न होती है । इस लिये उन रोगोंकी शान्तिका उपाय सीखनेके कारण हम सब आपके पास आयेहैं, आप यत्नपूर्वक आयुर्वेद हम सबको पढाइये । तब उन मुनिपुत्रोंके वाक्योंको स्वीकार करके श्रीदिवोदास राजा उन ऋषि-पुत्रोंको आयुर्वेदका उपदेश करने लगे, और वह सब भी उनके अध्ययन किये हुए पाठको प्रसन्नतापूर्वक आनंदित हो होकर ग्रहण करने लगे । फिर कुछ दिन उपरान्त श्रीकाशीराजकी जय हो,श्रीकाशीराजकी जय हो,इस प्रकार वारवार आशीर्वादोंसे प्रसन्नकर आनन्द सहित सुश्रुतादि ऋषि अपने अपने कार्योंको सिद्ध करके निज निज स्थानोंको चल दिये । उन मुनिपुत्रोंमें प्रथम सुश्रुतने अपना तन्त्र "सुश्रुतसंहिता" को निर्माण किया, फिर पीछे उनके मित्रोंने भी अपनी २ संहिताएँ बनाई । उन सब तन्त्रोंमेंसे सुश्रुतके बनाये हुए तन्त्रको बहुत लोगोंने सुना, इस लिये इनकी संहिता संसारमें सुश्रुतसंहिता नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ७६–८९ ॥

इति आयुर्वेदप्रकरणे नृणां प्रादुर्भावः ।

अथ ग्रन्थारम्भः ।

आयुर्वेदाब्धिमध्यादतिमतिमुनयो योगरत्नानि यत्नाल्लब्ध्वा स्वेस्वे निबन्धे दधुरखिलजनव्याधिविध्वंसनाय॥ तत्तद्ग्रंथाद् गृहीतैः सुवचनमणिभिर्भावमिश्रेश्चिकित्साशास्त्रे जाड्यान्धकारं प्रशमयितुमिमं संविधत्ते प्रकाशम् ॥ ९० ॥ श्रीपतिपदप्रसादादाशीर्भिर्भूमिदेवानाम् ॥ भावप्रकाशनाम्ना ग्रंथोऽयं पठ्यतां सर्वैः ॥ ९१ ॥

बडे २ विलक्षण बुद्धिवाले मुनिवरोंने औषधियोंके योगरूप रत्नोंको आयुर्वेद समुद्रसे निकाल निकालकर मनुष्योंके रोग दूर करनेके लिये अपने अपने ग्रन्थोंमें यत्नपूर्वक स्थापित किया उनही उनही ग्रन्थोंको भले प्रकार विचार विचार कर उनमेंसे वाक्यरूप मणियोंको एकत्र करके वैद्यकशास्त्रके महाघोर अन्धकारका विनाश करनेके लिये श्रीमान् भावमिश्रने मार्त्तण्डरूप "भावप्रकाश" नाम ग्रन्थ निर्माण किया । लक्ष्मीनाथ विष्णुके चरणारविन्दोंके प्रसाद और ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे यह 'भावप्रकाश' नामक ग्रन्थ सर्वजनोंके पठनयोग्य होवै ॥ ९० ॥ ९१ ॥

एतस्य निबन्धस्य फलं चिकित्सा पुरुषस्य । पुरुषस्तु चतुर्विंशतितत्त्वजीवात्मसमवायस्तस्माच्चतुर्विंशतितत्त्वानां जीवात्मनश्च स्वरूपनिरूपणाय सृष्टिक्रममाह ।

आत्मा ज्योतिश्चिदानन्दरूपो नित्यश्च निःस्पृहः ॥ निर्गुणः प्रकृतेर्योगात्सगुणः कुरुते जगत् ॥ ९२ ॥

सगुण इच्छादियुक्तः ॥

सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणास्ते प्रकृतेः समाः॥ सा जडापि जगत्कर्त्री परमात्मचिदव्ययात् ॥ ९३ ॥

सतः साधाभावः सत्त्वं प्रकाशकं ज्ञानं सुखहेतुः रजो रागात्मकं दुःखहेतुः,ताम्यति ग्लानिं प्राप्नोति अनेनेति तमः आवरकं मोहहेतुः । ते गुणाः समाः प्रकृतिरित्यर्थः। तथासति न्यूनाधिकगुणा विकृतिः ॥

इस ग्रन्थके रचनेका मुख्य अभिप्राय पुरुषकी चिकित्सा सिद्ध करना है । और वह पुरुष चौवीस तत्त्व और जीवात्माके संयोगसे रचागया है, इस कारण उन चौवीस तत्त्वोंका तथा जीवात्माका स्वरूप निर्णय करनेके लिए प्रथम सृष्टिका वर्णन करते हैं ।

, आत्मा ज्योतिःस्वरूप, चिदानन्दरूप, नित्य, निस्पृह और निर्गुण है। परन्तु वही प्रकृतिके संयुक्त होनेसे सगुण अर्थात् सप्रयोजन होकर संसारको उत्पन्न करताहै। सत्त्व, रज और तम ये तीन प्रकृतिके समान गुण हैं और यह प्रकृति स्वयं जड है परन्तु चैतन्यरूप परमात्माके आश्रयसे जगत्को निर्माण करती है। सत्का जो प्रकाश है वह सत्त्वगुण कहलाता है। और सत्त्व ही ज्ञानरूप सुखका कारण रूप है। रज जो है वह रागात्मक है और दुःखका कारण है तथा मनुष्यको जो अन्धकार ग्लानिका देनेवाला है वह तमोगुण बुद्धिका आच्छादन करताहै, और मोहका मुख्य कारण है वे तीनो गुण समान प्रकृतिरूप हैं और न्यूनाधिकगुण विकृति कहलाते हैं॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अथ सुश्रुतमुपदिशन् धन्वन्तरिः प्रकृतेः स्वरूपविशेषणमाह ।

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नामेति। अस्यायमर्थः। अव्यक्तं न व्यज्यते स्मेति अव्यक्तं मूलप्रकृत्यपरपर्य्यायं ततः सर्वभूतानां कारणं समवायिकारणम् अकारणम् न विद्यते कारणं यस्य तत् सत्त्वरजस्तमोलक्षणं समसत्त्वरजस्तमःस्वरूपम् अष्टरूपम् अव्यक्तं महान् अहंकारः पञ्चतन्मात्राणि इति अष्टौ रूपाणि यस्य तत्। यत इन्द्रियाणां महाभूतानाञ्च कारणतया महदादयोऽपि सप्त प्रकृतयः एवमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तमित्युपसंहारः॥

वह प्रकृति सम्पूर्ण प्राणियोका कारण, अकारण सत्त्व रज और तमरूप, आठरूप वाली सकल जगत्की उत्पत्तिका कारण और अव्यक्त नामवाली है। अव्यक्त शब्दका अर्थ जो स्पष्टरूपसे नही दीखता उससे अव्यक्त कहते हैं, मूल प्रकृति यह उसका दूसरा नाम है। सम्पूर्ण प्राणियोका कारण, अर्थात् समवायिकारण जानना। अकारण अर्थात् जिसका कारण विद्यमान नही ऐसा 'सत्त्व रज और तमो लक्षण' अर्थात् सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुणकी समान स्वरूपवाली 'अष्टरूपी' अर्थात् अव्यक्त, महान् अहंकार और पञ्चतन्मात्रा ऐसे आठरूपवाली महदादिक सात प्रकृतिये जिस प्रकार इन्द्रिये और महाभूतोके कारणरूप हैं उस प्रकार सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिका कारण रूप अव्यक्त है, इसप्रकार यहां उपसंहार जानना।

प्रकृतिपुरुषयोः साधर्म्यमाह ।

उभावप्यनादी उभावप्यनन्तौ उभावप्यलिंगौ उभावपि नित्यौ उभावप्यपरौ उभावपि सर्वगतौ इति ॥

उभावपि नित्यौ लयं क्वचिदपि न यातः। उभावप्यपरौ ॥

न विद्यते परोऽपरो याभ्यां तावपरौ ॥

प्रकृति पुरुष दोनो अनादि, दोनो अनन्त, दोनों अलिंग अर्थात् चिह्न रहित, दोनो नित्य अर्थात् जिसका कभी नाश न हो, दोनो अपर अर्थात् जिससे परे और दूसरा न हो, और दोनो सर्वव्यापक अर्थात् सबमे विद्यमान हैं।

अथातस्तयोर्वैधर्म्यमाह ।

एका तु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणा बीजधर्मिणी प्रसवधर्मिण्यमध्यस्थधर्मिणी चेति॥

अचेतना जडा, त्रिगुणा तुल्यगुणत्रयात्मिका, बीजधर्मिणी सर्वेषां महदादीनां विकाराणां बीजत्वेनावस्थिता, प्रसवधर्मिणी पुरुषेणाक्रान्ताक्षयं प्राप्य सम्यगतिक्रम्य महदहंकारादिक्रमेण जगतः प्रसवित्री. अमध्यस्थधर्मिणी सुखदुःखभोगभोगिनी, न तु सुखदुःखभोगादुदासीना ॥

पुरुषस्तु चेतनावान् निर्गुणोऽप्रसवधर्माऽबीजधर्मा मध्यस्थधर्मा चेति।

निर्गुणः अविद्यमानसत्त्वादिगुणः, अबीजधर्मा महाप्रलये महदादीनां विकाराणां प्रकृताविव तस्मिन्ननवस्थानात्, मध्यस्थधर्मा सुखदुःखेच्छाद्वेषादिभ्य उदासीनः ॥ ९४ ॥

प्रकृति तो एक, अचेतन, अर्थात् चेतनारहित तीन गुणवाली (जिसमे तीनो गुण सदैव समान जान पडते हैं), बीज धर्मवाली (सम्पूर्ण महत्तत्वादिक विकारोंसे

स्थित), प्रसवधर्मवाली (पुरुषसे क्षोभको प्राप्त होकर समताको त्याग, महत्तत्त्व और अहंकारादिकको सब प्रकारसे उत्पन्न करके क्रमसे संसारको उत्पन्न करनेवाली) अमध्यस्थ धर्मवाली (सुख दुःखके भोगोंको भोगनेवाली परन्तु सुख दुःखके भोगसे उदासीन नहीं) है। पुरुष और चेतनायुक्त निर्गुण, अप्रसवधर्मी अर्थात् उत्पन्न कर्त्ता नहीं है, अबीजधर्मी और मध्यस्थधर्मवाला है, निर्गुण अर्थात् जिसमें सत्त्वादिगुण विद्यमान न हों। अबीजधर्मी अर्थात् प्रलयकालमें जिसप्रकार महत्तत्त्वादिक विकार मायाके भीतर रहतेहैं उसप्रकार पुरुषमें नहीं रहते, मध्यस्थधर्मी अर्थात् सुख दुःख इच्छा और द्वेषादिकसे उदासीन है ॥ ९४ ॥

प्रकृतेर्नामान्याह ।

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा ॥ एतानि तस्या नामानि पुरुषं या समाश्रिता ॥ ९५ ॥

प्रधान, प्रकृति, शक्ति नित्या और अविकृति, पुरुषके आश्रित रहनेसे उस प्रकृतिके ये नाम हैं ॥ ९५ ॥

गुणानाह ।

सत्त्वं रजस्तमश्चेति विज्ञेयाः प्रकृतेर्गुणाः ॥ तैश्च युक्तस्य चित्तस्य कथयाम्यखिलान्गुणान ॥ ९६ ॥

सत्त्व, रज, तम ये तीन प्रकृतिके गुण समझने चाहिये, इन गुणोंसे संयुक्त चित्तके सम्पूर्ण गुणोंको वर्णन करताहू ॥ ९६ ॥

सत्त्वयुक्तस्य मनसो गुणानाह ।

आस्तिक्यं प्रविभज्य भोजनमनुत्तापश्च तथ्यं वचो मेधाबुद्धिधृतिक्षमाश्च करुणा ज्ञानञ्च निर्दम्भता ॥ कर्मानिन्दितमस्पृहं च विनयो धर्म्मः सदैवादरादेते सत्त्वगुणान्वितस्य मनसो गीता गुणा ज्ञानिभिः ॥ ९७ ॥

अस्ति धर्म्ममोक्षपरलोकादिकमितिबुद्ध्या चरतीत्यास्तिकस्तस्य भाव आस्तिक्यम, अनुत्तापः अक्रोधः, धृतिः भूतप्रेतस्मरक्रोधलोभाद्यावेशराहित्यम्, ज्ञानमात्मज्ञानम, निर्दम्भता कपटाभावः, कर्म्म अनिन्दितम, अस्पृहं निष्कामं च ॥

आस्तिकपन (धर्म, मुक्ति, लोक, परलोकका विश्वास इस बुद्धिसे जो कर्म करते हैं, वह आस्तिक हैं उसके धर्मको आस्तिक्य कहते हैं) भलेप्रकार परिवारमें विभाग करके भोजन करना, अनुत्ताप (क्रोध रहित) सत्य बोलना, मेधा(धारणशक्तिवाली बुद्धि), बुद्धि, धृति (भूत, प्रेत, काम, क्रोध, लोभादिकोंके आवेशसे बचना), क्षमा, करुणा (दया), ज्ञान (आत्मज्ञान), निर्दम्भता (कपटरहितता) अनिन्दित, अस्पृह, निष्काम, कर्म, विनय और नित्य प्रति धर्ममें प्रीति ये सब लक्षण सत्त्वगुण युक्त मनके धीमान् पुरुषोंने कहे हैं ॥ ९७ ॥

रजोगुणयुक्तमनसो लक्षणम् ।

क्रोधस्ताडनशीलता च बहुलं दुःखं सुखेच्छाधिका दम्भः कामुकताऽप्यलीकवचनं चाधीरताहङ्कृतिः॥ऐश्वर्य्यादभिमानितातिशयितानन्दोऽधिकश्चाटनं प्रख्याता हि रजोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः॥९८॥ अलीकवचनं मिथ्याकथनम्, अटनं पृथ्वीपरिभ्रमणम् ॥

महाक्रोधी, मार पीट करनेवाला, दुःख सुखकी अधिक इच्छा, दम्भी, कामी, असत्यवादी, अधीर, अहंकारी, ऐश्वर्य पाकर अभिमान करना, अधिक आनन्द मानना और पृथ्वीमें घूमना, ये सब रजोगुणी मनके लक्षण विख्यात हैं ॥ ९८ ॥

अथ तमोयुक्तमनसो लक्षणमाह ।

नास्तिक्यं सुविषण्णतातिशयितालस्यं च दुष्टा मतिः प्रीतिर्निन्दितकर्मशर्मणि सदा निद्रालुताऽहर्निशम्॥ अज्ञानं किल सर्वतोऽपि सततं क्रोधान्धता मूढता प्रख्याता हि तमोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥ ॥ ९९ ॥ तत्र प्रभूतसत्त्वस्तु सात्त्विकः पुरुषः स्मृतः॥ राजसस्तामसश्चैव त्रिविधस्तेन मानवः ॥ १०० ॥ ततोऽभवन्महत्तत्त्वं बुद्धितत्त्वापराभिधम् ॥ १०१ ॥

नास्तिकपन, चित्तमें अत्यन्त खेद, महाआलस्य, नीचबुद्धि, निन्दित काम और निन्दित सुखोंमें निरन्तर प्रीति, दिनरात सोनेकी इच्छा, सबकामोंमें अज्ञानपन, सदैव

क्रोधका अंधकार चित्तमे छाये रहना, सर्व कार्योंमे मूढता, ये सब लक्षण तमोगुण वाले मनके हैं। इनमे अधिक सत्त्वगुणवाला पुरुष सात्त्विक कहलाता है, अधिक रजोगुणवाला राजसी और अधिक तमोगुणवाला तामसी कहलाता है, इस रीतिसे तीन प्रकारके पुरुष संसारमे होतेहै। फिर पीछे "बुद्धितत्त्व" इस नामवाला महत्तत्त्व हुआ॥ ९९–१०१॥

त्रिगुणं सत्त्वबहुलं निर्मलं स्फटिकोपमम्॥ चिच्छायाप्राप्तचैतन्यं तदिच्छामयमीरितम्॥ १०२॥

ततः प्रकृतेस्त्रिगुणं त्रयो गुणा यत्र तत् तच्च सत्त्वबहुलम्। अत्रायमभिप्रायः। यथा निश्चले ह्रदादौ बहुद्रव्यपातात् तदीयं जलं वर्द्धते तथा चिद्रूपपुरुषेणाक्रमणात् तुल्यगुणत्रयात्मिकायाः प्रकृतेर्ज्ञानहेतुः प्रकाशः सत्त्वगुणो वृद्धः प्रवृद्धः सत्त्वतः प्रकृतेः सत्त्वबहुलं बुद्धितत्त्वमभवत्॥

महतस्त्रिगुणाज्जातोऽहङ्कारस्त्रिगुणान्वितः। सात्त्विको राजसश्चापि तामसश्चेति स त्रिधा॥ १०३॥

महतः बुद्धितत्त्वात् त्रिगुणात् त्रयो गुणाः यत्र ततः। ननु महत्तत्त्वं त्रिगुणमुक्तमेव किमर्थं महतस्त्रिगुणादिति विशेषणम्। सत्यम्। त्रिगुणादिति पुनर्विशेषणादुक्तं सत्त्वबहुलमिति विशेषणमत्र नानुवर्त्तत तेनाहङ्कारोत्पादकं महत्तत्त्वं त्रिगुणमपि रजोबहुलं बोद्धव्यम्॥

अहङ्कारस्य रजोगुणान्वितस्य मनोधर्म्मत्वात् अहङ्कारोऽभिमानव्यापारः। अहङ्कारस्त्रिविधस्तमाह सात्त्विक इत्यादि।

वह महत्तत्त्व त्रिगुण विशिष्ट अधिक सत्त्ववाला, स्फटिकमणिके सदृश निर्मल है, और चिच्छाया अर्थात् चिद्घनानन्दके आवरणसे चेतनताको प्राप्त होकर उसी जगदाधारकी इच्छामय कहाहै, यद्यपि उस महत्तत्त्वमे प्रकृतिके तीनों गुणहैं परन्तु सत्त्वगुण, रज, तमस अधिक है, इसका प्रयोजन यह है कि जैसे अचल सरोवरादिकोंमे अनेक द्रव्य डालनेसे उस तालावका जल अधिकताको प्राप्त होता है, इसी रीतिसे चैतन्यरूप पुरुषके आक्रमण करनेसे समगुणत्रयात्मिका प्रकृतिके ज्ञानका कारणरूप प्रकाश ऐसा सत्त्वगुण वृद्धिको प्राप्त होताहै फिर उस वृद्धिवाले सत्त्वगुणसे प्रकृतिका अधिक सत्त्वगुण वाला बुद्धितत्त्व प्रगट हुआ। त्रिगुणात्मक महत्तत्त्वसे तीनोगुणोवाला अहंकार तत्त्व प्रगट हुआ। वह सात्त्विक, राजस और तामस ऐसे तीन प्रकारका है। बुद्धितत्त्वसे कोई यह शंका करै कि महत्तत्त्व तो तीनों गुणवाला कहा ही गया, फिर 'त्रिगुण' यह विशेषण क्यो दिया? इसका समाधान यह है कि, फिर विशेषणके देनेसे यहां यह दिखाया कि, सत्त्वकी बाहुल्यता वाला विशेषण ऐसे स्थानपर नहीं लिया जाता, इससे यह समझना चाहिये कि अहंकारउत्पन्नकर्ता महत्तत्त्व त्रिगुण वाला होनेपर भी रजोगुणवाला अधिक है रजोगुणसे मिला हुआ अहंकार मनका धर्म होनेसे अहंकार–अभिमानरूपी व्यापारका लक्षणवाला है, अहंकार तीन प्रकारका है, सात्त्विक इत्यादि वाक्योंसे उसके तीन प्रकारके भेद कहे हैं॥ १०२॥ १०३॥

तस्य त्रिविधस्य कार्य्यमाह।

जातानि सात्त्विकात्तस्मादिन्द्रियाणि सराजसात्॥ तानि श्रोत्रं त्वचो नेत्रं रसना नासिका तथा॥ १०४॥ वाग्घस्तचरणोपस्थगुदान्येकादशं मनः॥ पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च॥ १०५॥ कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथयन्ति विपश्चितः॥

बुद्धीन्द्रियाणि बुद्धेराश्रयत्वात् कर्मेन्द्रियाणि कर्माश्रयत्वात् सात्त्विकाहङ्काराज्जातत्वादिन्द्रियाणि प्रकाशलक्षणानि सत्त्वस्य प्रकाशकत्वात्॥

मनो बुद्धीन्द्रियं विज्ञैः कर्मेन्द्रियमपि स्मृतम्॥ मनोऽधिष्ठितमेवेदमिन्द्रियं यत्प्रवर्त्तते॥ १०६॥

राजसयुक्त सात्त्विक अहंकारसे ग्यारह इन्द्रिये उत्पन्न हुई इनके नाम यह है,–श्रवण, त्वचा (चमडी), नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पॉंव, लिंग, गुदा और ग्यारहवां मन, इनमे पहिली पॉंच इन्द्रियोंको बुद्धिके आश्रित होनेसे बुद्धिइन्द्रिय कहते हैं, और अन्तकी वाणी

आदि पॉच इन्द्रियाको कर्मके आश्रित होनेसे कर्मेन्द्रिय कहतेहै, सात्त्विक अहकारसे प्रगट हुई इन्द्रियॉ प्रकाशलक्षणवाली हैं, क्योकि सत्त्वगुण प्रकाशक है । विद्वान लोग मनहीको बुद्धीन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय कहतेहैं क्योकि मनहीके अधीन होनेसे इन्द्रिय अपने अपने कर्मोको करती है ॥ १०४-१०६ ॥

तत इन्द्रियाणां विषयानाह ।

शब्दः स्पर्शश्च रूपश्च रसो गन्धो ह्यनुक्रमात् ॥ बुद्धीन्द्रियाणां विषयाः समाख्याता महर्षिभिः ॥ १०७ ॥ वाच्यं ग्राह्यश्च गन्तव्यमानन्दं त्याज्यमेव च ॥ कर्मेन्द्रियाणां विषया ज्ञातव्यो विषयो हृदः ॥१०८॥

हृदः मनसः ॥

तामसादप्यहङ्कारस्तन्मात्राणि सराजसात् ॥ पञ्चाल्पसत्त्वसम्बन्धात्तल्लिङ्गानि भवन्ति हि ॥ १०९ ॥ शब्दतन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम् ॥ रसतन्मात्रकं गन्धतन्मात्रमिति तानि तु ॥ ११० ॥

तल्लिङ्गानि मोहादिलिंगानि तानि अद्भुतस्वभावानि बाह्येन्द्रियग्राह्याणि । शब्दादीन्येव तन्मात्राणि तानि च योगिभिरेव ग्राह्याणि । सा सा मात्रा यस्मिन् तत् तन्मात्रम् ॥

तन्मात्रेभ्यो वियद्वायुर्वह्निर्वारि वसुन्धरा॥ एतानि पञ्च जायन्ते महाभूतानि तत्क्रमात् ॥ १११ ॥

एकोत्तरपरिवृद्ध्या वियदादयो जायन्त इत्यर्थः । तद्यथा । शब्दतन्मात्राच्छब्दगुणं वियज्जायते । शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्राच्छब्दस्पर्शगुणो वायुर्जायते। शब्दतन्मात्रस्पर्शतन्मात्रसहितात् रूपतन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपगुणो वह्निर्जायते । शब्दतन्मात्रस्पर्शतन्मात्ररूपतन्मात्रसहितादसतन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपरसगुणं वारि जायते।शब्दतन्मात्रस्पर्शतन्मात्ररूपतन्मात्ररसतन्मात्रसहिताद्गन्धतन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणा वसुन्धरा जायते ॥

कानोका विषय शब्द, त्वचाका विषय स्पर्श, नेत्रोंका विषय रूप, जिह्वाका विषय रस, और नासिकाका विषय गन्ध, इसप्रकार क्रमसे बुद्धीन्द्रियोके विषय, महर्षि लोगोने वर्णन कियेहैं, वाणीका विषय बोलना, हाथोका विषय देना लेना, पॉवोका विषय चलना फिरना, लिङ्ग (इन्द्रिय) का विषय आनन्द, और गुदाका विषय मलका त्यागना, ये कर्मेन्द्रियोके विषय जानने और मनका विषय जानना है । राजसगुणयुक्त तामस अहकारके सयोगसेभी पॉच तन्मात्रा उत्पन्न हुई इनमे सत्त्वगुणका अल्प सम्बन्ध होनेसे राजस और तामसके मोहादिक चिह्न पाये जाते है, वह अद्भुत स्वभाव वाले बाह्येन्द्रियोकरके ग्राह्यहैं । शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा रसतन्मात्रा, और गन्धतन्मात्रा, ये पॉच तन्मात्रा जाननी । शब्दादितन्मात्रा योगीजनोको ही दृष्टिआती हैं और दूसरे लोगोको नही दीखती, तन्मात्रा जिसमे होय वह तन्मात्र कहाताहै। तन्मात्राओसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, ये पञ्चमहाभूत क्रमसे उत्पन्न होतेहैं, एक एककी उत्तरोत्तर वृद्धिसे आकाशादि उत्पन्न होतेहैं, जैसे शब्दतन्मात्रासे शब्द गुणवाला आकाश प्रगट होताहै, शब्दतन्मात्रासहित स्पर्शतन्मात्रासे शब्दस्पर्श गुणवाला वायु प्रगट होताहै, शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा सहित रूपतन्मात्रासे शब्द स्पर्श रूप गुणवाली अग्नि प्रगट होती है, शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा युक्त रसतन्मात्रासे शब्द स्पर्श रूप रस गुणवाला जल उत्पन्न होताहै, एव शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्राके सम्बन्धसे गन्धतन्मात्रासे शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध गुणवाली पृथ्वी प्रगट होती है ॥ १०७-१११ ॥

अथ महाभूतानां गुणानाह ।

शब्दः श्रोत्रेन्द्रियं वापि छिद्राणि च विविक्तता ॥ वियतः कथिता एते गुणा गुणविचारिभिः ॥ ११२ ॥

विविक्तता शरीराणां भावानां शिरास्नाय्वस्थिपेशीप्रभृतीनां जातिव्यक्तिभ्यां मिथः पृथक्त्वम् ॥

स्पर्शस्त्वगिन्द्रियञ्चापि लघुता स्पन्दनं तनोः ॥ चेष्टा सर्वशरीरस्य वायोरेते गुणाः स्मृताः ॥ ११३ ॥ रूपं नेत्रेन्द्रियं पाकः सन्तापस्तीक्ष्णता तथा ॥ वर्णो

भ्राजिष्णुताऽमर्षः शौर्य्य वह्नेर्गुणा अमी ॥ ११४ ॥

रूपं लावण्यम्। पाकः उदराग्निना आहारपाकः। सन्तापः औष्ण्यम्। तीक्ष्णता आशुकारिता। वर्णो गौरादिः। भ्राजिष्णुता दीप्तिः। अमर्षः क्रोधः॥

रसो रसेंद्रियं शैत्यं स्नेहश्च गुरुता तथा ॥ सर्वद्रवसमूहश्च शुक्रं वारिगुणाः स्मृताः ॥ ११५ ॥ गन्धो घ्राणेन्द्रियं चापि काठिन्यं गौरवं तथा ॥ वसुन्धरागुणा एते गदिता गुणवेदिभिः ॥ ११६ ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपश्च रसो गन्धश्च तत्क्रमात् ॥ तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः ॥ ११७ ॥

तत्क्रमाच्छब्दतन्मात्रादिक्रमात् विशेषाः। अनुभवयोग्यैः सुखदुःखमोहरूपैर्धर्मैर्विशेष्यन्त इति विशेषाः। अत्र कर्मणि घञ् प्रत्ययः। तन्मात्राणि तु अविशेषाणि यतस्तानि अनुभवयोग्यैः सुखादिभिर्विशेष्टुं न शक्यन्ते सूक्ष्मत्वात्॥

शब्द, श्रोत्रेन्द्रिय, (कर्णेन्द्रिय) छिद्र और विविक्तता, यह आकाशके गुण, गुण संबधी विचार करनेवाले गुणी पुरुषोंने कहे हैं। विविक्तता अर्थात् शिरा (छोटी नसें), स्नायु (मोटी नसें) अस्थि और पेशी प्रभृति भावोंका जाति और व्यक्तिमें परस्पर भिन्न भिन्न करना ये सब गुण गुणियोंने आकाशके वर्णन किये है। स्पर्श (छूना), त्वक्-इन्द्रिय, लघुता, देहका स्पन्दन (हिलना) और सब शरीरकी चेष्टा ये सब वायुके गुण कहे हैं। रूप, (लावण्यता), नेत्रेन्द्रिय पाक, (उदरकी अग्निसे आहारका पाक), सन्ताप (गर्मी), तीक्ष्णता(शीघ्र कारीपना), वर्ण(गौर रङ्गादि), भ्राजिष्णुता (दीप्तवना), अमर्ष (क्रोध) और शूरता, ये सब अग्निके गुण है। रस, रसेन्द्रिय (जिह्वा), शीतलता. (नर्मी), स्नेह (चिकनापन), गुरुता, (भारीपन), संपूर्ण वहनेवाले द्रव्योंका एकत्र होना और शुक्र (वीर्य) ये सब जलके गुण है। गन्ध, घ्राणेन्द्रिय (नाक), कठिनता और भारीपन, ये सब विद्वान् लोगोंने पृथ्वीके गुण कहेहैं। स्थूलभावको प्राप्त होकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँचो शब्द तन्मात्रादिकोंके क्रमसे तन्मात्राओंके विशेष है, अर्थात् अनुभव योग्य सुख दुःख और मोहरूपी धर्म विशेष है। किन्तु अतिसूक्ष्मतासे तन्मात्रा अविशेष है क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्मताके हेतु अनुभवके योग्य सुखादिकोंसे विशिष्ट नही करसकती ॥११२--११७

प्रकृतेः कारणायोगान्मता प्रकृतिरेव सा ॥ महत्तत्त्वादयः सप्त शक्तेर्विकृतयः स्मृताः ॥ ११८ ॥

प्रकृतिरेव कारणं न तु कस्यचित् कार्यमित्यर्थः। कार्य्याणि इन्द्रियाणां सर्वभूतानां कारणत्वान्महर्षिभिर्महत्तत्त्वादयः सप्त, महानहंकारः पञ्चतन्मात्राणीति। शक्तेः प्रकृतेर्विकृतयः कार्य्याणि ॥

प्रकृतिही सबका कारणरूप है अर्थात् कार्य्यरूप नही है, इसलिये कार्य्य न होनेसे विद्वान् लोगोंने प्रकृतिहीको प्रकृति मानीहै, और महत्तत्वादिक जो सात हैं वही उस प्रकृतिकी विकृतिहै, प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, और पञ्च तन्मात्रा, यह आठ प्रकृति है ॥ ११८ ॥

इन्द्रियाणां च भूतानां कारणत्वान्महर्षिभिः॥ महत्तत्त्वादयः सप्त प्रोक्ताः प्रकृतयोऽपि च ॥ ११९ ॥

इन्द्रियोंके कार्य और भूतोंके कारण होनेसे महर्षियोंने सात महत्तत्त्वादिकोंकोभी प्रकृति कहाहै ॥ ११९ ॥

दशेन्द्रियाणि चित्तश्च महाभूतानि पञ्च च ॥ एतानि सृष्टिं जानद्भिर्विकाराः षोडश स्मृताः ॥ १२० ॥

विकाराः कार्याणि ॥

दश इन्द्रिय, मन और पंच महाभूत, यह सृष्टिके जाननेवाले पुरुषोंने सोलह विकार कहेहै, उन विकारोंहीका नाम कार्यहै ॥ १२० ॥

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सिद्धे वपुर्गृहे ॥ जीवात्मनियतेर्निघ्नो वसति स्वान्तदूतवान् ॥ १२१ ॥

अत्र शब्दादीनां वियदादिमहाभूतगुणानां धर्मिभ्यो भिन्नतयापृथक्त्वं निरस्यन्नुक्तानां

तत्त्वानामुपसंहारमाह । चतुर्विंशतिभिरिति । तानि च प्रकृतयोऽष्टौ विकाराः षोडशेति । महत्तत्त्वानि प्रकृत्यादीनां भावाः, नियतैः शुभाशुभकर्मणः, निघ्नः आयत्तः, स्वान्तदूतवान् मनोदूतयुक्तः ॥ स देही कथ्यते पापपुण्यदुःखसुखादिभिः ॥ व्याप्तो बद्धश्च मनसा कृत्रिमैः कर्मबन्धनैः ॥ १२२ ॥

स जीवात्मा, तस्य देहिनः,शरीरजीवात्मनोः संयोगकारकेण मनसा ॥

संयोगे येये गुणा उत्पद्यन्ते तानाह ।

इच्छाद्वेषसुखासुखानि विषयज्ञानं प्रयत्नो मनः संकल्पश्च विचारणा स्मृतिरथो बुद्धिः कलाविज्ञता ॥ प्राणस्योपरियापनं गुदवशाद्वायोरधःप्रेरणं नेत्रोन्मेषनिमेषकृत्यकरणोत्साहाश्च जीवे गुणाः ॥१२३॥

इच्छा सुखहेतुरभिलाषः, द्वेषो दुःखहेतुर्मनःप्रवृत्तिः, सुखं प्रीतिः, दुःखमप्रीतिः, विषयज्ञानं शब्दादिज्ञानम्, प्रयत्नः कार्य्ये तात्पर्यम्,मनःसंशयात्मकं तस्य कर्म संकल्पः, विचारणा ऊहापोहाभ्यां वस्तुविमर्शः, स्मृतिः पूर्वानुभूतस्यार्थस्य स्मरणम्, बुद्धिः निश्चयात्मिका, कलाविज्ञता शिल्पशास्त्रादिबोधः, प्राणस्य हृदयस्थितस्य वायोः उपरि यापनं मुखादि प्रति नयनम्,गुदवशाद्वायोरधःप्रेरणं अपानस्याधःप्रेरणम्, नेत्रोन्मेषनिमेषौ नेत्रयोरुन्मीलननिमीलने, कृत्यकरणोत्साहः कार्य्यारम्भे सामर्थ्येन उत्साहः, जीवे मनोयुक्तस्य जीवात्मनोऽमी इच्छादयो गुणाः ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनय-श्रीमन्मिश्रभावविरचितभावप्रकाशे सृष्टिप्रकरणं प्रथमम् ॥ १ ॥

आठ प्रकृति और सोलह विकार, इस प्रकार चौबीस तत्त्वोंसे बनेहुए देहरूप घरमें शुभाशुभ कर्म्मोंके अधीन हो जीवात्मा मनरूप दूतको सगले निवास करताहै, इस कारण वह देही कहाताहै । पाप, पुण्य,सुख, दुःखादिकोंसे व्याप्त और मनके द्वारा कृत्रिम कर्म्मके बधनोंसे बँधा हुआ वह जीवात्मा है. उस शरीरीके शरीर और जीवात्माके संयोग कराने वाले मनके संयोग होनेपर जो जो गुण उत्पन्न होते हैं उनको कहते हैं । इच्छा, द्वेष, दुःख सुख, विषयज्ञान, प्रयत्न, मन, संकल्प, विचारणा, स्मृति, बुद्धि. कलाविज्ञान, प्राण परियापन, गुदवशाद्वायोरध प्रेरण, नेत्रोन्मेषनिमेष और कार्यकरणोत्साह, यह सब जीवके गुण हैं । इच्छा (सुखकी कारणरूप अभिलाषा), द्वेष (कारणरूप मनकी प्रवृत्ति), सुख (प्रीति), दुःख (अप्रीति), विषयज्ञान (शब्दादिक विषयोंका जानना), प्रयत्न (कार्यमें तत्पर होना), मन (संशयात्मक--यह क्या वस्तु है इस प्रकारके सन्देह करनेवाला), संकल्प (मानस कर्म्म), विचारणा (तर्कवितर्कसे वस्तुका विचार), स्मृति (पूर्वमें किये हुये अर्थका स्मरण), बुद्धि (निश्चयात्मिका), कलाविज्ञान (शिल्पादि शास्त्रोंका बोध), प्राणस्योपरियापन (हृदयमें रहनेवाले वायुको मुखादिके प्रति ऊपर चढाना), गुदवशाद्वायोरधः प्रेरण (अपानवायुको नीचे लेजाना), नेत्रोन्मेषनिमेष (दोनों नेत्रोंको खोलना और मीचना), कृत्य करणोत्साह (कार्य आरंभ करनेमें सामर्थ्यसे उत्साह), मनयुक्त जीवात्माके यह इच्छादिक गुण हैं ॥ १२१–१२३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यमजीवनी भाषाटीकायां सृष्टिप्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ गर्भप्रकरणम् ।

चिकित्सायां शरीरी ह्यधिकृतः, स शरीरी यथा उत्पद्यते तद्बोधयितुं गर्भोत्पत्तिक्रममाह । गर्भोत्पत्तिभूमिस्तु रजस्वला स्त्री ।

ततो रजस्वलास्वरूपमाह ।

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापञ्चाशत्समाः स्त्रियः॥मासिमासि भगद्वारा प्रकृत्यैवार्तवं स्रवेत् ॥ १ ॥ आर्तवस्रावदिवसादृतुः षोडशरात्रयः॥ गर्भग्रहणयोग्यस्तु स एव समयः स्मृतः॥ २ ॥

सर्वासामेव चतुर्वर्णस्त्रीणां सर्ववादिसम्मतः पूर्वोक्तः समयः । ग्रन्थान्तरे तु विशेषः । तद्यथा । स्नानदिवसात् ऊर्ध्वं द्वादशरात्रावधि ब्राह्मण्याः,दशरात्रावधिक्षत्रियायाः, अष्टरात्रावधिवैश्यायाः,षड्रात्रावधिशूद्रायाः, गर्भधारणे शक्तिः ॥

चिकित्साशास्त्रमे शरीरी मुख्य है, इस कारण जिस प्रकार वह शरीरी उत्पन्न होता है, उसके जाननेके लिये गर्भकी उत्पत्तिका क्रम वर्णन करते हैं । गर्भोत्पन्न होनेकी भूमि रजस्वला स्त्री है, इस कारण रजस्वलाका स्वरूप कहते हैं ॥

द्वादशवर्षकी आयुसे ऊपर पचास वर्षकी आयु पर्यन्त प्रत्येक महीनेमे स्वभावसे स्त्रीकी योनिसे आर्तव (रक्त) गिरता है । स्त्री आर्तवगिरनेके दिनसे सोलह रात्रि पर्यन्त ऋतुमती होती है और गर्भ ग्रहण करने योग्य भी वह ही समय कहा है । सर्वजातिकी सम्पूर्ण स्त्रियोंके लिये पूर्वोक्त समय सर्व सम्मत है, परन्तु अन्य ग्रन्थोंमे कुछ विशेष कहा है, जैसे कि, स्नानके दिनसे ऊपर द्वादश रात्रि पर्यन्त ब्राह्मणी, दशरात्रि पर्यन्त क्षत्रियाणी, अष्ट रात्रि पर्यन्त वैश्या, और षट् रात्रि पर्यन्त शूद्राणी गर्भग्रहणके योग्य शक्तिवाली रहती है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ रजस्वलाया नियमानाह ।

आर्तवस्रावदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी ॥ शयीत दर्भशय्यायां पश्येदपि पतिं न च ॥ ३ ॥ करे शरावे पर्णे वा हविष्यं त्र्यहमाहरेत् ॥ अश्रुपातं नखच्छेदमभ्यङ्गमनुलेपनम् ॥ ४ ॥ नेत्रयोरञ्जनं स्नानं दिवास्वापं प्रधावनम् ॥ अत्युच्चशब्दश्रवणं हसनं बहुभाषणम् ॥ आयासं भूमिखननं प्रवातञ्च विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

स्त्रीके जिस दिनसे आर्तव गिरै अर्थात् ऋतुमती होय तबसे हिंसा रहित, ब्रह्मचर्य्य सहित, कुशोंकी शय्यापर शयन करै, और पतिको देखे, भी नहीं हाथमे मिट्टीके सकोरमे अथवा पत्तलमे हविष्यान्न तीन दिवस पर्यन्त भोजन करै, रोना, नखोंका काटना, तेल लगाना, चन्दनादि लेपन, नेत्रोमे अञ्जन, स्नान, दिनका सोना, दौडना या आना—जाना, अत्यन्त ऊँचे शब्दका सुनना, हँसना, अत्यन्त बोलना, परिश्रम, भूमिको नाखून आदिमे खोदना और बहुत हवामे बैठना, इत्यादि कार्य छोड देवे ॥ ३–५ ॥

एतस्या नियमाकरणे दोषानाह ।

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लोभाद्वा दैवतश्च वा ॥ सा चेत्कुर्य्यान्निषिद्धानि गर्भो दोषांस्तदाप्नुयात् ॥ ६ ॥ एतस्या रोदनाद्गर्भो भवेद्विकृतलोचनः ॥ नखच्छेदेन कुनखी कुष्ठी त्वभ्यङ्गतो भवेत् ॥ ७ ॥ अनुलेपात्तथा स्नानाद्दुःखशीलोऽञ्जनाद्दृक् ॥ स्वापशीलो दिवास्वापाच्चञ्चलः स्यात्प्रधावनात् ॥ ८ ॥ अत्युच्चशब्दश्रवणाद्बधिरः खलु जायते ॥ तालुदन्तौष्ठजिह्वासु श्यावो हसनतो भवेत् ॥ ९ ॥ प्रलापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात् ॥ स्खलते भूमिखननादुन्मत्तो वातसेवनात् ॥ १० ॥

जो स्त्री मूर्खतासे, प्रमादसे, लोभसे, अथवा प्रारब्धवशहोकर निषिद्ध आचरण करै तौ गर्भ,दोषको प्राप्त होता है । जैसे रजस्वला स्त्रीके रोनेसे बालक विकृत (विकारयुक्त) नेत्रोवाला होता है, नखोंके काटनेसे बुरे नखोंवाला, और तेल लगानेसे कुष्ठताको प्राप्त होता है, चन्दनादिका लेप और स्नान करनेसे दुःखित,अञ्जन लगानेसे अन्धा, दिनमे सोनेसे अत्यन्त निद्रायुक्त, दौडनेमे चञ्चल, अत्यन्त ऊँचे शब्द सुननेसे बधिर होता है, हँसनेसे तालु, दांत, ओठ, जीभ, यह उसके श्याव होना है । अति बोलनेसे बहुत बोलनेवाला, परिश्रम करनेसे उन्मत्त (पागल), भूमि खोदनेसे चलते चलते गिरनेवाला और वायु सेवनेसे उन्मत्त होता है ॥ ६-१० ॥

अथ रजस्वलाकृत्यम् ।

पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमंगना ॥ तादृशं जनयेत्पुत्रं ततः पश्येत्पतिं प्रियम् ॥ ११ ॥

प्रियमिति भर्तारि अनासन्ने पुत्रादिकमपि पश्येत् । चतुर्थादिदिवसेऽपि रजोनिवृत्तौ

स्त्री पत्या सङ्गच्छेत् न तु रजोऽनिवृत्तौ॥ प्रवहत्सलिले क्षिप्तं द्रव्यं गच्छत्यधो यथा ॥ तथा वहति रक्ते तु क्षिप्तं वीर्य्यमधो व्रजेत् ॥ १२ ॥

ऋतुमती स्त्री स्नान करनेके अनन्तर जैसे मनुष्यको प्रथम देखै उसके उसीकी सदृश पुत्र होगा इस कारण पतिको अथवा प्रिय पुत्रादिकको देखै । यहां प्रिय शब्द का यह अभिप्राय है कि पति समीप न होय तो पुत्रादिकको देखै । यदि चौथे दिनमें पहिलेही रुधिरस्रावकी निवृत्ति होजाय तौ स्त्री पतिके पास जाय, परन्तु रुधिरस्राव होने पर पतिके पास कभी नहीं जाय, क्योंकि, जिस प्रकार वहते हुए पानीमें कोई पदार्थ डाला जाय तो वह नीचे बैठ जाता है, वैसेही वहते हुए रजमें जो वीर्य पडै तो वह झट नीचे चला जाता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ भर्तृकृत्यम् ।

तत्र गर्भाधाने निषिद्धं विहितं च कालं तयोः फलं चाह ।

आयुःक्षयभयाद्भर्त्ता प्रथमे दिवसे स्त्रियम्॥ द्वितीयेऽपि दिने त्यजेदृतुमती तथा॥ ॥ १३ ॥ तत्र यश्चाहितो गर्भो जायमानो न जीवति ॥ आहितो यस्तृतीयेऽह्नि स्वल्पायुर्विकलांगकः ॥ १४ ॥ अतश्चतुर्थी षष्ठी स्यादष्टमी दशमी तथा ॥ द्वादशी वापि या रात्रिस्तस्यां तां विधिना भजेत् ॥ १५ ॥

विधिना गर्भाधानोक्तविधिना ॥ अत्रोत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च॥ तन्त्रान्तरे-प्रजासौभाग्यमैश्वर्य्यं बलश्चाभिगमात्फलम् ॥ १६ ॥

यहां प्रथम गर्भाधानमें जो कालका निषेध करना और कालका विधान करना, उन दोनो कालोंके निषेध और विधानका फल कहते है । ऋतुस्नानके पीछे पहिले दिन अथवा दूसरे दिन गमन न करै, क्योंकि, ऋतुमती स्त्रीमें प्रथम दिन गमन करै तो आयुका क्षय होता है और दूसरे दिनके रहे हुए गर्भका बालक नही जीता है, तीसरे दिनका गमन करना भी त्याग दे, क्योंकि, तीसरे दिनका उत्पन्न हुआ बालक विकल अंगयुक्त और अल्पायु होता है इस कारण चौथी, छटी, आठवी, दशवी और बारहवी रात्रिमें विधिपूर्वक गर्भाधानोक्त विधिसे भोग करै । इस प्रकार गमन करनेसे आयु, आरोग्यकी अधिकता होती है । और भी कहा है कि उत्तरोत्तर रात्रियोंमें सम्भोग करनेसे सन्तान, आरोग्य, ऐश्वर्य और बल, वृद्धि होती है ॥ १३ — १६ ॥

मनोभवागारमुखेऽबलानां तिस्रो भवन्ति प्रमदाजनानाम् ॥ समीरणा चान्द्रमसी च गौरी विशेषमासामुपवर्णयामि ॥ प्रधानभूता मदनातपत्रे समीरणा नाम विशेषनाडी॥तस्या मुखे यत्पतितं तु वीर्य्यं तन्निष्फलं स्यादिति चन्द्रमौलिः ॥ १७ ॥ या चापरा चान्द्रमसी च नाडी कन्दर्पगेहे भवति प्रधाना ॥ सा सुन्दरी योषितमेव सूते साध्या भवेदल्परतोत्सवेषु ॥ गौरीति नाडी यदुपस्थगर्भे प्रधानभूता भवति स्वभावात् ॥ पुत्रं प्रसूते बहुधाङ्गना सा कष्टोपभोग्या सुरतोपविष्टा ॥ १८ ॥

स्त्रियोंके कामभवनके मुखमें तीन नाडी है १ समीरणा २ चान्द्रमसी और ३ गौरी । अब इनकी विशेषता कहता हूं । योनिमें समीरणा नामक प्रधान जो नाडी है उसके मुखमें जब वीर्य गिरता है तब वृथा जाता है, इस प्रकार चन्द्रमौलि (श्रीशिवजी) कहते हैं। दूसरी कामभवनमें जो चान्द्रमसी नाडीहै उसमें वीर्य गिरनेसे स्त्री कन्या उत्पन्न करती है और वह थोडे रतोत्सवमें ही साध्य है । प्रधानभूत जो उपस्थगर्भमें गौरी नाडी है वह स्वभावसे ही पुत्रको उत्पन्न करतीहै वह बहुधा सम्भोगमें कष्टोपभोग्य है ॥ १७—१८ ॥

युग्मायुग्मरात्रीणां फलमाह ।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥ १९ ॥

युग्म (सम) रात्रियोंमें स्त्री गमन करनेसे पुत्र और अयुग्म (विषम) रात्रियोंमें गमन करनेसे कन्याएँ उत्पन्न होती हैं ॥ १९ ॥

तत्र दम्पत्योः सम्भोगे यादृक् पुमान्युक्तस्तादृगुच्यते ।

स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोऽर्चितः॥ भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलंकृतः॥ ॥ २० ॥ ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः॥ पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे ॥ २१ ॥

स्नान करके शरीरमे चन्दन लगाये हुए, सुगन्धित अतर आदि द्रव्योंको धारण किये हुए, सुगन्ध पुष्पो करके सहित, वृष्य (वीर्यको पुष्ट करनेवाले) पदार्थ भक्षण किये हुए, सुन्दर वस्त्र धारणकर उत्तम वेशवनाये हुए, मुखमे तांबूल खाये, अधिक कामी, स्त्रीमे आसक्तता युक्त, पुत्रकी इच्छा करनेवाला ऐसा पुरुष शुभशय्यापर स्त्रीके पास जाय ॥ २० ॥ २१ ॥

तत्र अयोग्यं पुरुषमाह ।

अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्वान् सव्यथाङ्गः पिपासितः॥बालो वृद्धोऽन्यवेगार्त्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥ २२ ॥

अत्यन्तभोजन किया हुआ, धैर्यरहित, बुभुक्षित, देहमे पीडायुक्त, प्यासा, बालक, वृद्ध, मलमूत्रादिकोंके वेगयुक्त, और रोगी ऐसा पुरुष मैथुन नही करै ॥ २२ ॥

तत्र स्त्री यादृशी योग्या तादृशी उच्यते।

पुरुषस्य गुणैर्युक्ता विहिता न्यूनभोजना॥ नारी, ऋतुमती पुंसा सङ्गच्छेत्तु सुतार्थिनी ॥ २३ ॥

पुरुषके पूर्वोक्त गुणो करके युक्त, अल्प भोजन किये हुए, पुत्रकी इच्छा करनेवाली, ऐसी ऋतुमनी स्त्री पुरुषके पास जाय ॥ २३ ॥

तत्र अयोग्यां स्त्रियमाह ।

रजस्वला व्याधिमती विशेषाद्योनिरोगिणी॥ वयोऽधिका च निष्कामा मलिना गर्भिणी तथा ॥ २४ ॥ एतासां सङ्गमात्पुंसां वैगुण्यानि भवन्ति हि ॥ २५ ॥

रजस्वला, व्याधियुक्त, विशेषकर योनि रोगवाली, पुरुषकी अपेक्षा अधिक आयुवाली, कामरहित, मलिन और गर्भिणी, ऐसी स्त्रियोंके साथ सगम करनेसे पुरुष रोगी होजाते है ॥ २४ ॥ २५ ॥

तत्र रजस्वला दिनत्रयं यावदृतौ निषिद्धा । यत उक्तम् ।

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी॥ तृतीये रजकी पुंसां यथा वर्ज्या तथाङ्गना २६ व्याधिमती च वर्ज्या तत्र स्त्रीणां व्याधयः प्रदरादयस्तद्युक्ता निषिद्धा तत्रापि विशेषात् योनिरोगिणी ॥

रजस्वला तीन दिनतक अथवा जबतक रज स्रवता हो तबतक त्यागनी कही है उसको यहां कहते हैं, प्रथम दिन रजस्वला स्त्री चांडाली, दूसरेदिन ब्रह्मघातिनी, और तीसरे दिन धोबिनकी सदृश कही है । रोगयुक्त स्त्री त्याज्य कही है सो जिन स्त्रियोंके प्रदरादिक विशेषकर रोग होवें वे त्यागने योग्यहैं और उनमे विशेषकर योनिरोग वाली स्त्रीके साथ तो कभी प्रसग नही करना चाहिऐ ॥२६॥

गर्भावतरणक्रममाह ।

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः॥ गर्भः सञ्जायते नार्य्याः स जातो बाल उच्यते ॥ २७ ॥

गर्भः शुद्धः अशुद्धस्तु गर्भोऽशुद्धशुक्रशोणितयोरपि दम्पत्योः भवति यत आह ।

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः॥ यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितमिति ॥ २८ ॥

कष्ठं सञ्जातं यस्य तत् कुष्ठितम्, अत्र तारकादित्वादितच् प्रत्ययः॥

यत्तु, वातादिदुष्टरेतसः प्रजोत्पादने न समर्थाः । इति सुश्रुतः । तत्र शुद्धप्रजोत्पादने न समर्था इति बोद्धव्यम् । रोगादिना अशुद्धास्तु प्रजा वातादिदुष्टशुक्रा अपि जनयन्ति जन्मान्धबधिरपंग्वादिसम्भवात् ॥

ऋतौ स्त्रीपुंसयोर्योगे मकरध्वजवेगतः॥ मेढ्रयोन्यभिसंघर्षाच्छरीरोष्मानिलाहतः ॥२९॥ पुंसः सर्वशरीरस्थं रेतो द्रावयतेऽथ तत्॥वायुर्मेहनमार्गेण पातयत्यंगना-

भगं ॥ ३० ॥ तत्संस्तुत्य व्यात्तमुखं याति गर्भाशयं प्रति॥तत्र शुक्रवदायातेनार्त्तवेन युतं भवेत् ॥ ३१ ॥

कामके वेगसे परस्पर स्त्री पुरुष दोनोंका संयोग होनेसे शुद्ध रुधिर और शुद्ध वीर्यसे स्त्रीके गर्भ रहता है उससे जो उत्पन्न होताहै वह बालक कहाता है । पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रुधिर जो शुद्ध होय तौ गर्भ शुद्ध होता है, और अशुद्ध होय तौ गर्भ अशुद्ध होता है, क्योंकि "जिस स्त्रीपुरुषका, कुष्ठनामक महारोग होनेसे रुधिर तथा वीर्य बिगड गया होय और उससे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह कुष्ठरोगयुक्त होती है।" (कुष्ठित ऐसा जो मूलमें पद है उसका अर्थ इस प्रकारहै कि, कुष्ठ जिसको भली-भाँति उत्पन्न हुआ होय वह कुष्ठित कहाता है) "वायु आदिसे जिसका वीर्य दूषित होगया होय उस पुरुषको सन्तान उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं होती" ऐसा जो सुश्रुतमें कहा है उसका ऐसा अर्थ जानना कि "वह शुद्ध सन्तान उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होता" रोगादिकसे अशुद्ध और वात आदिसे दूषित वीर्यवाला होनेपर भी सन्तान उत्पन्न करसकता है क्योंकि संसारमें जन्मसे अन्धे, बहिरे, और पगु आदिककी उत्पत्ति देखनेमें आती है क्योंकि, ऐसा न होता तौ उनकी उत्पत्ति ही न होनी चाहिये। काम-देवके वेगसे ऋतुकालमें स्त्री और पुरुष दोनोंका संयोग होनेपर लिंग और योनिके आपसमें घिसनेसे शरीरकी उष्णता वायुसे ताडित होकर पुरुषोंके सम्पूर्ण शरीरमें स्थित वीर्य द्रवता है उसको लिंगके मार्गसे वायु स्त्रीकी योनिमें डाल देती है और खुले हुए मुखवाले गर्भाशयमें वह वीर्य वहकर जाता है और वहां वीर्य्यकी समान वह-कर आये हुए रजके साथ मिलजाता है ॥२७-३१॥

गर्भाशयस्य स्वरूपमाह ।

शंखनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्तिता ॥ तस्यास्तृतीये त्वावर्ते गर्भ-शय्या प्रतिष्ठिता ॥ ३२ ॥ यथा रोहित-मत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः॥तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥ ३३ ॥

अयमर्थः-गर्भशय्याया मुखं रोहितम-त्स्यस्येव भवति यथा च रोहितमत्स्यस्य स्थितिर्जले भवति तथा पित्ताशयपक्वा-शयमध्ये गर्भशय्यायाः स्थितिर्भवति रूपमपि तस्यैव भवति यथा रोहितस्य मुखं स्वल्पमाशयस्तु महानित्यर्थः॥

स्त्रीकी योनि शंखकी नाभिके सदृश तीन आवर्त (चक्र) वाली कही है, उसके तीसरे आवर्तमें गर्भाशय स्थित है। जैसा रोहू मछलीका मुख तथा रूप है पण्डितोंने उसके रूपकी सदृश ही गर्भाशयका स्वरूप कहाहै। अर्थात् जैसा रोहू मछलीका मुख ऊपरसे छोटा और भीतरसे फैला हुआ होता है, तथा जिसप्रकार रोहू मछलीका रहना जलमें होता है, उसीप्रकार गर्भाशयकी स्थिति भी पित्ताशय और पक्वाशयके बीचमें है ॥ ३२-३३ ॥

शुक्रार्त्तवसमाश्लेषो यदैव खलु जायते ॥ जीवस्तदैव विशति यतः शुक्रार्तवान्तरः ॥ ३४ ॥ सूर्यांशोः सूर्यमणित उभयस्मा-द्युतायथा ॥ वह्निः सञ्जायते जीवस्तथा शुक्रार्त्तवाद्युतात् ॥ ३५ ॥ आत्माऽनादि-रनन्तश्चाऽव्यक्तो वक्तुं न शक्यते॥ चिदा-नन्दैकरूपोऽयं मनसापि न गम्यते ॥ ३६ ॥ एवंभूतोऽपि जगतो भाविनीबलवत्तया॥ अविद्यास्वीकृते कर्मवशो गर्भे विश-त्यसौ ॥ ३७ ॥

गर्भे चतुर्विंशतितत्त्वमये ॥

स एव वेत्ता रसतो द्रष्टा घ्राता स्पृशत्यसौ॥ श्रोता वक्ता च कर्त्ता च गन्ता रन्तोत्सृज-त्यपि ॥ ३८ ॥

वीर्य और रजका जिस समय संयोग होता है, तब ही रज और वीर्यके साथ जीव प्रवेश करता है। जैसे सूर्यकी किरण और सूर्यकान्तमणिके संयोगसे अग्नि उत्पन्न होती है, तैसे ही वीर्य और आर्तवके संयोगसे जीव उत्पन्न होता है वह जीव अनादि अनन्त, अव्यक्त, कहनेमें अशक्य, चिदानन्दका एक स्वरूप, और मन करकेभी नहीं जाना जाता है। ऐसा होनेपरभी जगत्में भवितव्यताकी प्रबलतासे कर्मवश होकर जीव अज्ञानको स्वीकारकर उस गर्भरूप चौबीस तत्त्वमय देहमें प्रवेश करता है । वह आत्मा स्वादको जानता है, देखता है, सूँघता है,स्पर्श करता है, सुनताहै, कहता है, करता है, चलता है, रमता है और त्याग करता है ॥ ३४-३८ ॥

दिने व्यतीते नियतं संकुचत्यम्बुजं यथा॥ ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिः संव्रियते तथा॥ ३९॥

ऋतौ रजोदर्शनात् षोडशनिशात्मके काले। योनिरत्र भगद्वारम्॥

दिनके व्यतीत होजानेपर जिसप्रकार निश्चय कमल बंद होजाताहै उसीप्रकार ऋतुके व्यतीत होजानेपर स्त्रीकी योनि (भगद्वार) बन्द होजाता है (प्रथम जिस दिनसे आर्तवका दर्शनहोय उस दिनसे लेकर सोलह रात्रितकको ऋतुकाल कहते हैं)॥ ३९॥

बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ॥ यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ॥ ४०॥ आधिक्ये रेतसः पुत्रः कन्या स्यादार्त्तवेऽधिके॥ नपुंसकं तयोः साम्ये यथेच्छा पारमेश्वरी॥ ४१॥ नन्वेवं सति कथं पुत्रोत्पत्तिः सदैवार्त्तवस्यैव बाहुल्यात्। यत उक्तम्। आर्त्तवं चतुरञ्जलिप्रमाणं शुक्रं प्रसृतिमात्रमिति॥

वाग्भटेऽप्युक्तमात्रेयादिभिः।

मज्जामेदोवसामूत्रपित्तश्लेष्मशकृन्त्यसृक्॥ रसो जलं च देहेऽस्मिन्नेकैकाञ्जलिवर्द्धितम॥ ४२॥ पृथक् स्वप्रसृतं प्रोक्तमोजो मस्तिष्करेतसाम्॥ द्वावञ्जली तु दुग्धस्य चत्वारो रजसः स्त्रियः॥४३॥समधातोरिदं मानं विद्याद् वृद्धिक्षयावतः॥४४॥ इति॥ नैवं, यतो गर्भाशयस्थमेव शुक्रमार्त्तवं च गर्भोत्पत्तिहेतुः शुक्रं कदाचिदत्यन्तहर्षवशाद्दुग्धादिशुक्रलत्वद्रव्यसेवनात् शुक्रबाहुल्यात् गर्भाशये बहु स्रवति कदाचिद्दैमनस्यादिना शुक्राल्पत्वात्त्वल्पमिति एवमार्त्तवमपीति न दोषः॥

अंतरकी वायुकरके गर्भमे वीर्यके दो टुकडे होनेसे दो जीव अर्थात् दो बालक कोखमे आतेहैं। यह धर्म और अधर्मसे उत्पन्न हुए यम जोडला कहलातेहैं। वीर्यकी अधिकता होनेसे पुत्र, और आर्तव अधिक होनेपर कन्या, और वीर्यरजके समान होनेसे नपुंसक होता है, आगे परमेश्वरकी इच्छा। यहाँ शंका होतीहै कि, स्त्रियोका आर्तव सदैव अधिक होताहै और वीर्य कम होताहै तो पुत्रकी उत्पत्ति किस प्रकार होसक्तीहै? जैसे कहाहै कि "आर्तवं चतुरञ्जलिप्रमाणं शुक्रं प्रसृतिमात्रमिति" अर्थात् आर्तव स्त्रीकी देहमे चार अंजलि प्रमाण है और वीर्य पुरुषकी देहमे एक अंजलि ही है। क्योंकि वाग्भटमें आत्रेय आदिने भी कहा है कि "मज्जा, मेद, वसा (चरबी,) मूत्र, पित्त, कफ, मल, रुधिर, रस और जल, यह सब इस देहमे एकसे एक अधिक अंजलि है, और ओज, मस्तिष्क तथा वीर्य, यह एक एक अंजलि हैं, स्त्रीके दुग्ध दो अंजलि और रज चार अंजलि है, यह जिस प्राणीके देहमे समधातु है उसकाही मान जानना। देहकी वृद्धि और क्षय होनेसे धातुका क्षय और वृद्धिभी हो जाती है। इस कारण वीर्य्यके अल्प होनेसे पुत्रोत्पत्ति किस प्रकार होसक्ती है? इसका समाधान कहते है कि जिस समय गर्भ रहता है उसी समय गर्भोत्पत्तिका कारण गर्भाशयमे वीर्य और आर्तव है, परन्तु अत्यन्त हर्ष होनेसे अथवा दुग्धादि शुक्रवर्द्धक पदार्थोंके सेवनसे किसी २ समय वीर्य बढकर गर्भाशयमे अधिक गिरता है और कभी दुःखादिसे मन बिगडकर वीर्यकी न्यूनता होनेसे कम गिरता है। इसी प्रकार रज भी। न्यूनाधिक होता है इससे ही पुत्र कन्या होती है॥ ४०-४४॥

सुश्रुतः पुनराह।

वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैव च॥ दोषधातुमलानां तु परिमाणं न विद्यते४५

वैलक्षण्यात् दीर्घह्रस्वकृशादिभेदेन सादृश्याभावात् अस्थायित्वात् वयोऽहर्निशर्त्तुभुक्तेषु एकमात्रानवस्थानात्॥

फिर सुश्रुत कहते हैं कि, शरीरधारियोकी पृथक् २ विलक्षणतासे तथा उनके अस्थायित्वसे दोष, धातु और मलका परिमाण नही हो सक्ता। (विलक्षणतामे अर्थात् लम्बा, ठिगना, कृश आदिक भेदसे सदृशता नही इस कारण अस्थायित्वसे अर्थात् आयु, दिन, रात्रि और ऋतु भोगमे एक मात्राकी स्थिति न होनेसे दोषादिकका परिमाण ठीक नहीं हो सक्ता)॥ ४५॥

एवं तामभिसंगम्य पुनर्मासाद्व्रजेदसौ ४६॥ मासादूर्ध्वमिति शेषः। अर्वाग्गमनेन गर्भ-

द्वारविघट्टनात् गर्भच्युतिप्रसंगः स्यात् । केचित्तु, पुनः पुष्पदर्शनेन गर्भालाभनिश्चये मासादूर्ध्वं गच्छेदिति वदंति ॥

इस प्रकार एक वार स्त्री समागम करनेके पश्चात् फिर एक मास उपरान्त उसका सेवन करे, क्योंकि मास व्यतीत होनेसे पहले ही स्त्रीमे गमन करै तौ गर्भद्वारका मथन होनेसे गर्भपात होनेकी शंका है । कितनोंका कहना है कि, फिर आर्तवका दर्शन होय तौ गर्भ नही रहा ऐसा जानकर स्त्रीके पास जावे और यदि गर्भ रहगया होय तौ फिर मास बीत जानेपर भी सम्भोग नहीं करै ॥ ४६ ॥

तत्र परिहार्य्यपरिहारार्थं सद्योगृहीतगर्भाया लक्षणमाह ।

शुक्रशोणितयोर्योनेरस्रावोऽथ श्रमोद्भवः॥ सक्थिसादः पिपासा च ग्लानिः स्फूर्त्तिर्भगे भवेत् ॥ ४७ ॥

गर्भ रहनेके पश्चात् त्यागने योग्य बातोंका, त्याग करनेके हेतुसे जिसको तुरन्त गर्भरहा होय ऐसी स्त्रीके लक्षण कहतेहैं कि, योनिसे वीर्य और रुधिरका नही बहना, परिश्रमका होना, जंघाओंमे पीडा, प्यास, ग्लानि और भगका फडकना इन लक्षणोंसे जाने कि, गर्भ रहाहै ॥ ४७ ॥

अथ तस्या एव उत्तरकालीनं लक्षणमाह।

स्तनयोर्मुखकार्ष्ण्यं स्याद्रोमराज्युद्गमस्तथा॥ अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः संमीलयन्ते विशेषतः ॥ ४८ ॥ छर्दयेत्पथ्यभुक्त्वापि गन्धादुद्विजते शुभात्॥ प्रसेकः सदनं चैव गर्भिण्या लिंगमुच्यते ॥ ४९ ॥

स्तनोंके अग्रभागोंका श्याम होजाना, रोमाचोंका खडे होना, विशेषकरके नेत्रोंका मिचना, पथ्य भोजनको भी वमन करदेना, उत्तम सुगंधिसे भी भयभीत होना, मुखसे लारका गिरना और शरीरमे जडता, यह लक्षण गर्भवती स्त्रीके कहेहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

तत्र पुत्रगर्भवत्या लक्षणमाह ।

पुत्रगर्भयुतायास्तु नार्य्या मासि द्वितीयके॥ गर्भो गर्भाशये लक्ष्यः पिण्डाकारोऽपरं शृणु ॥ ५० ॥

पिण्डाकारो वर्तुलाकृतिः। मासि द्वितीयक इत्यस्य गर्भः पिण्डाकारो लक्ष्यः इत्यनेनैवान्वयो न तु अग्रिमश्लोकेऽपि ॥

दक्षिणाक्षिमहत्त्वं स्यात्प्राक्क्षीरं दक्षिणे स्तने ॥ दक्षिणोरुः सुपुष्टः स्यात्प्रसन्नमुखवर्णता ॥ ५१ ॥ पुन्नामधेयद्रव्येषु स्वप्नेष्वपि मनोरथः ॥ आम्रादि फलमाप्नोति स्वप्नेषु कमलादि च ॥ ५२ ॥

पुत्र गर्भवती स्त्रीके दूसरे मासमें गर्भ पिंडाकार (गोल) मालूम होता है और उसका दक्षिण नेत्र किञ्चित् बडासा प्रतीत हो, प्रथम दक्षिण स्तनमें दूध आवे दक्षिण जांघ पुष्ट (भारी) हो, मुखका रंग श्रेष्ठ और प्रसन्नहो, पुरुष संज्ञक द्रव्योंकी इच्छासे स्वप्नमें भी इन द्रव्योंका ही मनोरथ हो, तथा आम्रादि फलोंकी और कमलादि पुष्पोंकी स्वप्नमें प्राप्ति होतीहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

कन्यागर्भवत्या लक्षणम् ।

कन्यागर्भवतीगर्भे पेशी मासि द्वितीयके॥ पुत्रगर्भस्य लिंगानि विपरीतानि चेक्षते५३ पेशी दीर्घाकृतिः ॥

कन्यागर्भवती स्त्रीके गर्भमें दूसरे महीने पेशी (लम्बी दीर्घाकार मांसकी बोटीसी) मालूम हो और पुत्रगर्भवाली स्त्रीसे विपरीत लक्षण मालूम होते हो तो उसके कन्या गर्भवती समझना चाहिये ॥ ५३ ॥

अथ नपुंसकगर्भलक्षणम् ।

नपुंसकं यदा गर्भे भवेद्गर्भोऽर्बुदाकृतिः ॥ उन्नते भवतः पार्श्वे पुरस्तादुदरं महत्५४॥ अर्बुदं वर्तुलं फलार्द्धतुल्यम् ॥

जिस स्त्रीके गर्भमे नपुंसक बालक होताहै उस गर्भमें अर्बुदाकार पिण्ड जातहो, दोनो कोखोंमें गर्भऊँचा प्रतीतहो और आगेसे पेट बडा मालूम होताहै ॥ ५४ ॥

नपुंसकविशेषानाह ।

आसेक्यश्च सुगन्धी च कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा ॥ अमी सशुक्रा बोद्धव्या अशुक्रः षण्ढसंज्ञकः ॥ ५५ ॥

आसेक्य, सुगन्धी, कुम्भीक और ईर्प्यक, यह नपुसक वीर्य सहित होतेहैं, और षढनामक नपुसक वीर्य रहित होताहै ॥ ५५ ॥

एतेषां लक्षणमाह।

पित्रोस्तु स्वल्पवीर्य्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत्॥ स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोन्नतिमसंशयम्॥ ५६॥

पित्रोर्मातापित्रोः स्वल्पवीर्य्यत्वात् स्वल्पशुक्रार्त्तवत्त्वात् आसेक्यनामा मुखयोनीति नामान्तरः स शुक्रं प्राश्येति स पुरुषोऽन्यपुरुषेण स्वमुखे मैथुनं कारयित्वा तस्य शुक्रं प्राश्य मेहनोत्थानं लभते इत्यर्थः॥

यः पूतियोनौ जायेत स हि सौगन्धिको भवेत्॥ स योनिशेफसोर्गन्धमाघ्राय लभते बलम्॥ ५७॥

सौगन्धिकः सौगन्धिकनामा नासायोनीति नामान्तरः बलं मैथुने शक्तिम्॥

स्वे गुदेऽब्रह्मचर्य्याद्यः स्त्रीषु पुंवत्प्रवर्त्तते॥ स कुम्भीक इति ज्ञेयो गुदयोनिस्तु स स्मृतः॥ ५८॥

अब्रह्मचर्य्यात् ब्रह्मचर्यम् अमैथुनम् अब्रह्मचर्य्यं मैथुनम् किन्तु स्त्रीवदधोभूतः स्वे गुदे पुरुषान्तरेण मैथुनं तस्मात्॥

दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्त्तते॥ ईर्ष्यकः स तु विज्ञेयो दृष्टियोनिस्तु स स्मृतः॥ ५९॥ यो भार्य्यायामृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्तते॥ तत्र स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्ढसंज्ञकः॥ ६०॥

स्त्रीचेष्टिताकारः स्त्रीचेष्टितः समेहनोऽपि पुरुषशक्तिरहितः। स्त्र्याकारः श्मश्रुरहितः॥

ऋतौऋतौ पुरुषवत्प्रवर्त्तेताङ्गना यदि॥ तत्र कन्या यदि भवेत्सा भवेन्नरचेष्टिता॥ ६१॥

पुरुषवत्स्त्रियमारुह्य सा तस्या योनौ स्वयोनिघर्षणं करोति॥

माता पिताके शुक्र और आर्तवके अल्प होनेसे आसेक्य नपुंसक होताहै जब वह अन्यपुरुषका वीर्य खाताहै तब मदनोन्मत्त होकर मैथुनकी शक्तिको प्राप्त होताहै इसका दूसरा नाम मुखयोनि है। जो दुर्गन्धित योनिमें उत्पन्न होताहै उसको सागन्धिक नपुंसक कहतेहैं वह जब लिंग और भगकी गन्ध सूँघताहै तब पुरुषताको प्राप्त होताहै, इसका द्वितीय नाम नासायोनि है। जो नपुसक प्रथम स्वयं गुदामें भोग कराकर स्त्रीमें पुरुषकी समान आचरण करताहै वह कुम्भीक नपुसक कहलाताहै इसका दूसरा नाम गुदयोनि है। जो मनुष्य अन्यको मैथुन करता देखकर फिर मैथुन करनेमें प्रवृत्त होताहै उसको ईर्ष्यक नपुसक कहते है। इसका द्वितीय नाम 'दृष्टियोनि' है। और जो पुरुष अज्ञानतासे मोहके वशीभूतहो स्त्रीके तुल्य आप नीचे सोकर और स्त्रीको अपने ऊपर चढाकर उससे मैथुन करै तब उसके जो लडका उत्पन्नहो वह स्त्रीके समान लक्षणोंवाला होताहै अर्थात् जनखा डाढीमूंछ रहित और लिंगसहित होनेपरभी कुछ पुरुषार्थ नही करसक्ता, उसको षढ कहते हैं। तथा स्त्री यदि ऋतुकालमें आप ऊपरहो और पुरुषको नीचे लिटाकर सभोग करे तब उसके जो कन्या जन्मै वह पुरुषके लक्षणोवाली होती है। और वह सदैव पुरुषके सदृ स्त्रीके ऊपर आरूढहो उसकी भगसे अपनी भगको [illegible]सती रहती है तथा उसके डाढीमूछके कुछ कुछ चिह्न प्रतीत होतेहैं॥ ५६-६१॥

अपरा अपि गर्भप्रकृतीराह।

यदा नार्य्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन॥ मुञ्चन्त्यौ शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र जायते॥ ६२॥

अनस्थिः अत्रेषदर्थे नञ् तेनाल्पकोमलास्थिरित्यर्थः॥

ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमाचरेत्॥ आर्त्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि॥ ६३॥ मासिमासि प्रवर्द्धेत स गर्भो गर्भलक्षणः॥ कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः॥ ६४॥

गर्भलक्षणः प्रकृतगर्भलक्षणः। पैतृकैर्गुणैः केशश्मश्रुलोमनखदन्तशिरास्नायुधमनीरेतः-प्रभृतिभिः॥

सर्पवृश्चिककूष्माण्डाकृतयो विकृताश्च ये॥ गर्भास्ते योषितस्ताश्च ज्ञेयाः पापकृतो भृशम्॥ ६५॥ गर्भो वातप्रकोपेण दोहदे

चावमानिते ॥ भवेत्कुब्जः कुणिः पंगुर्मूको मिन्मिन एव च ॥ ६६ ॥

कामके वशीभूत होकर स्त्रीसे स्त्री जिस समय परस्पर मैथुन करें, तब अन्योन्यवीर्यका त्याग करती हैं उसमे अनस्थि (हड्डी रहित अथवा सूक्ष्म हड्डियोवाला) बालक उत्पन्न होताहै। ऋतुकालके स्नान बाद स्त्री यदि स्वप्नमें पुरुषके साथ मैथुन करे तो आर्तवकोही लेकर वायु कोखमे गर्भको उत्पन्न करताहै. वह गर्भ मास मासमें गर्भके लक्षण युक्त बढताहै और जब प्रगट होताहै तब पिताके गुणोंसे वर्जित कलल (कीचड) सा, केश, दाढी, मूँछ, रोम, नख, दन्त, नाडी आदिसे हीन होताहै। जो गर्भ सांप, बीछू, कूष्माण्डकी आकृतिवाले अथवा विकृत होतेहैं वह स्त्रीके पापकर्म करनेसे होते है। वायुके प्रकोपसे दोहद (गर्भचिह्न) मे कुपथ्य करनेसे गर्भ कुबडा, टूटा, पगु, गूगा, और मिनमिना उत्पन्न होताहै ॥ ६२–६६ ॥

पुत्राणामाहाराचारचेष्टाभेदस्य हेतुमाह।

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ ॥ स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ॥ ६७ ॥

समुपेयातां संयोगं गच्छेताम् ॥

जैसे आहार और चेष्टा तथा आचरणसे स्त्री पुरुष मैथुन करते है, उसी प्रकारकी चेष्टावाले उनके पुत्र भी होतेहैं ॥ ६७ ॥

अथ गर्भलक्षणमाह।

गर्भाशयगतं शुक्रमार्त्तवं जीवसंज्ञकः ॥ प्रकृतिः सविकारा च तत्सर्वं गर्भसंज्ञकम् ॥ ॥ ६८ ॥ कालेन वर्द्धितो गर्भो यद्यङ्गोपाङ्गसंयुतः ॥ भवेत्तदा स मुनिभिः शरीरीति निगद्यते ॥ ६९ ॥

अङ्गोपाङ्गसंयुतः व्यक्ताङ्गोपाङ्गः ॥

गर्भाशयमें प्राप्त हुए वीर्य, आर्तव, जीव, आठ प्रकृति और सोलह विकार, इन सबकी गर्भ–संज्ञा है। काल करके बढा हुआ वह ही गर्भ अग और उपाग सहित होजाताहै तब मुनीश्वर उसको शरीरी कहतेहैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

तस्य त्वङ्गान्युपाङ्गानि ज्ञात्वा सुश्रुतशास्त्रतः ॥ मस्तकादभिधीयन्ते शिष्याः शृणुत यत्नतः ॥ ७० ॥ आद्यमङ्गं शिरः प्रोक्तं तदुपाङ्गानि कुन्तलाः ॥ तस्यान्तर्मस्तुलुङ्गं च ललाटं भ्रूयुगं तथा ॥ ७१ ॥ नेत्रद्वयं तयोरन्तर्वर्तते द्वे कनीनिके ॥ दृष्टिद्वयं कृष्णगोलौ श्वेतभागौ च वर्त्मनि ॥ ॥ ७२ ॥ पक्ष्माण्यपाङ्गौ शंखौ च कर्णौ तच्छष्कुलीद्वयम् ॥ पालिद्वयं कपोलौ च नासिका च प्रकीर्त्तिता ॥ ७३ ॥ ओष्ठाधरौ च सृक्किण्यौ मुखं तालु हनुद्वयम् ॥ दन्ताश्च दन्तवेष्टश्च रसना चिबुकं गलः ॥ ॥ ७४ ॥ द्वितीयमंगं ग्रीवा तु यया मूर्द्धा विधार्य्यते ॥ तृतीयं बाहुयुगलं तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे ॥ ७५ ॥ तत्रोपरिमतौ स्कन्धौ प्रगण्डौ भवतस्तथः ॥ कफोणियुग्मं तदधः प्रकोष्ठयुगलं तथा ॥ ७६ ॥ मणिबन्धौ तले हस्तौ तयोश्चाङ्गुलयो दश ॥ नखाश्च दश ते स्थाप्या दश च्छेद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ७७ ॥ चतुर्थमंगं वक्षस्तु तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे ॥ स्तनौ पुंसस्तथा नार्य्या विशेष उभयोरयम् ॥ ७८ ॥ यौवनागमने नार्य्याः पीवरौ भवतः स्तनौ ॥ गर्भवत्याः प्रसूतायास्तावेव क्षीरपूरितौ ॥ ७९ ॥ हृदयं पुण्डरीकेण सदृशं स्यादधोमुखम् ॥ जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतस्तु निमीलति ॥ ८० ॥ आशयस्तत्तु जीवस्य चेतनास्थानमुत्तमम् ॥ अतस्तस्मिंस्तमोव्याप्ते प्राणिनः प्रस्वपन्ति हि ॥ ८१ ॥ चेतनास्थानमुत्तममिति। अयमभिप्रायः—चेतनानामधिष्ठानं मनोदेहश्च सेन्द्रियः ॥ केशलोमनखाग्रं च मलं द्रव्यगुणैर्विना ॥ ८२ ॥

इत्युक्तवता चरकेण सकलं शरीरं चेतनास्थानमुक्तम्, तदपेक्षया हृदयं विशेषतश्चेतनास्थानमिति ॥

कक्षयोर्वक्षसः सन्धी जत्रुणी समुदाहृते ॥ कक्षे उभे समाख्याते तयोः स्यातां च वङ्क्ष

णौ॥ ८३॥ उदरं पञ्चमश्चाङ्गं षष्ठं पार्श्वद्वयं मतम्॥ सपृष्ठवंशं पृष्ठं तु समस्तं सप्तमं स्मृतम्॥ ८४॥ उपांगानि च कथ्यन्ते तानि जानीहि यत्नतः॥ शोणिताज्जायते प्लीहा वामतो हृदयादधः॥८५॥ रक्तवाहिशिराणां स मूलं ख्यातो महर्षिभिः॥ हृदयाद्वामतोऽधश्च फुप्फुसो रक्तफेनजः॥ ८६॥ अधो दक्षिणतश्चापि हृदयाद्यकृतः स्थितिः॥ तत्तु रञ्जकपित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम्॥ ८७॥ अधस्तु दक्षिणे भागे हृदयात्क्लोम तिष्ठति॥८८॥ जलवाहिशिरामूलं कृष्णाच्छादनकृन्मतम्॥ ८९॥

क्लोम तिलकम्। एतत्तु वातरक्तजम्। अत्र वृद्धवाग्भटः 'रक्तादनिलसंयुक्तात्कालीटकसमुद्भवः' ॥ इति ॥

मेदःशोणितयोःसाराद्वृक्कयोर्युगलं भवेत्॥ ता तु पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः॥९०॥ उक्ताःसार्द्धास्त्रयो व्यामाः पुंसामन्त्राणि सूरिभिः॥ अर्द्धव्यासेन हीनानि योषितोऽन्त्राणि निर्दिशेत्॥ ९१॥ उन्दुकश्च कटी चापि त्रिकं वस्तिश्च वङ्क्षणौ कण्डराणां प्ररोहः स्यात्स्थानं तद्वीर्य्यमूत्रयोः॥ ९२॥ स एव गर्भस्याधानं कुर्य्याद्गर्भाशये स्त्रियः॥ शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्त्तिता॥ ९३॥ तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता॥ वृषणौ भवतः सारात्कफासृग्भ्यां च मेदसाम्॥ ९४॥ वीर्य्यवाहिशिराधारौ ता मतौ पौरुषावहौ॥ गुदस्य मानं सर्वस्य सार्धं स्याच्चतुरङ्गुलम्॥९५॥तत्र स्युर्वलयस्तिस्रः शंखावर्त्तनिभास्तु ताः॥ प्रवाहिणी भवेत्पूर्वा सार्द्धाङ्गुलसमा मता॥९६॥उत्सर्जनी तु तदधः सा सार्द्धाङ्गुलसम्मिता॥तस्याधः संवरणी स्यादेकाङ्गुलसमा मता॥९७॥अर्द्धाङ्गुलप्रमाणं तु बुधैर्गुदमुखं मतम्॥मलोत्सर्गस्य मार्गोऽयं पायुर्देहे विनिर्मितः॥ ९८॥ पुंसः प्रोथौ स्मृतौ यौ तु तौ नितम्बौ च योषितः॥ तयोः कुकुन्दरे स्यातां सक्थिनी त्वङ्गमष्टमम्॥९९॥ तदुपांगानि च ब्रूमो जानुनी पिण्डिकाद्वयम्॥ जंघे द्वे घुटिके पार्ष्णीतले च प्रपदे तथा॥पादावंगुलयस्तत्र दश तासां नखा दश॥ १००॥

मै उसके अग उपांगोको सुश्रुतसहितासे जानकर मस्तकसे लेकर सम्पूर्ण अगोको कहताहूँ, हे शिष्यो! तुम यत्नपूर्वक सुनो। प्रथम अग शिरहै, उसके उपांग केश है, उसके भीतर (मगज मस्तकमें जो चिकनी वस्तु होती है वह) ललाट, दोनो भौंह, दोनो नेत्र, उनके भीतर दो पुतली, दो दृष्टि (निगाह), दो काले गोलक, दो सफेद गोलक, दो कोए, दो पलक, और नेत्रोंके मध्यवाले अपांग भाग, दो शख (अर्थात् मस्तककी हड्डी कनपटी, दो कान, दोनों कानोंके छिद्र, पाली, कपोल (गाल), नाक, ऊपर नीचेके ओष्ठ, ओष्ठोके किनारे, मुहँ, तालु, दो जावडे, दांत, मसूडे, रसना (जीभ), चिवुक (ठोडी), और गला है। द्वितीय अग गरदन है, जो मस्तकको धारण कर रहीहै। तृतीय अङ्ग दोनो भुजा है उनके उपागोको कहते है। इनके ऊपर दो कन्धे हैं, उनके नीचे प्रगड (बाजू) हैं उसके नीचे कौनी, उसके नीचे प्रकोष्ठ, उसके नीचे पहुचे, उसके नीचे हाथ, उसके नीचे हथेली, उसके नीचे दश अगुली, और उसमे दश लाल नख, और दश काटने योग्य नख (नाखून) कहेहै। चतुर्थ अग वक्षस्थल (हृदय)है, उसके उपाङ्गोको कहते है—वक्षस्थलमे स्त्री और पुरुष दोनोके दो स्तन है इनमे जब स्त्री यौवनावस्थामे आती है तब दोनो स्तन बडे हो जाते हैं और जब स्त्री गर्भवती होकर प्रसूता होती है तब वे स्तन दूधसे परिपूर्ण होजातेहैं। हृदय, कमलके सदृश अधोमुखवाला होताहै, जाग्रत अवस्थामे तो खुला रहता है, और सोने पर बन्द होजाता है यही जीवका स्थानहै और यह ही चेतनाके रहनेका उत्तम स्थान है इसी कारण इसमें तमोगुण प्राप्त होनेपर प्राणी सोजाते है। उत्तम चेतनाका

स्थान है, इसके कहनेका यह प्रयोजन है कि केश, रोम, नखोंके अग्रभाग, मल और द्रव्यगुण इन करके रहित शेषका इन्द्रियों सहित देह और मन यह चेतनाका स्थान है। (इस प्रकार कहकर चरक मुनिने सम्पूर्ण शरीर चेतनाका स्थान है ऐसा कहा है, परन्तु इतना कहने पर भी विशेष करके हृदय चेतनाका स्थान है ऐसा कहने का प्रयोजन है)। हृदयके समीप, दोनो कोखकी और हृदयके सन्धि जत्रु (हसली) ह, उसके नीचे दो कोख हैं और उसके दो वक्षण (कन्धेके जोड) हैं। पञ्चम अगउदर (पेट) है, षष्ठ अग दोनो पार्श्व (पसली) हैं सप्तम अग पीठके दोना बांसा सहित समस्त पीठ है। अब उसके उपाङ्गोंको कहते हैं उनको तू यत्न पूर्वक जान। वाम हृदयके नीचे रक्तसे उत्पन्न हुई प्लीहा होती है महर्षियोंने रक्तवाहिनी नाडियोंका मूल इसीको कहाहै। हृदयसे नीचे वाम और रुधिरके झागोंसे उत्पन्न हुआ फुप्फुस (फेफडा) है। हृदयसे दक्षिण और नीचे यकृत् है वह रुधिरसे उत्पन्न हुआ, रजक पित्तका स्थान है। हृदयसे दक्षिणकी ओर नीचे क्लोम (पिपासा स्थान) है, यह जलके वहनेवाली नाडियोका मूल है और तृष्णाको आच्छादन करेहै। मेद और रक्तके सारसे दो वृक्क उत्पन्न हुए हैं, यह दोनों उदरमे रहने वाले मेदाको पुष्ट करते हैं, पडितोंने साढेतीन व्यामकी पुरुषोंकी आंत कही है (दोनों भुजाओंकी लम्बाईको व्याम कहते हैं) और स्त्रियोंकी आंतें तीन व्याम प्रमाण हैं। उडुक, कटि, त्रिक (पीठके बांसके नीचेकी तीन हड्डी), वस्ति (मूत्राशय), वक्षण, कण्डराओंका प्ररोह, यह वीर्य और मूत्रके स्थान हैं। यही स्त्रियोंके गर्भाधान करते हैं। शखकी नाभिकी सदृश तीन आवर्त्तवाली तीन चक्रवाली योनि कही है उसके तीसरे आवर्त (चक्र) मे गर्भशय्या है। कफ रक्त, और मेदाके सारांशसे दोनो अडकोश उत्पन्न हुए हैं, यह दोनों वीर्यको वहनेवाली नाडियोंके आधार और पुरुषार्थ देनेवाले कहेहैं। साढेचार अगुल समस्त गुदाका प्रमाण है, शखके आवर्त्तोंकी सदृश उसम तीन वली (गोल) हैं उसमें प्रथम वलीका नाम प्रवाहिणी है, यह डेढ अगुल प्रमाण है इसके नीचे द्वितीय उत्सर्जिनी है इसका प्रमाण भी डेढ अगुलकाहै। सवरणी नामवाली तृतीय वली है इसका प्रमाण एक अगुलकाहै गुदाके मुखका प्रमाण पडितोंने आधे अगुलका कहाहै, यह गुदा विधाताने मल त्यागनेका मार्ग निर्माण किया है उसके नीचे पुरुषोंके दो प्रोथ (कूले) कहे हैं वही स्त्रियोंके नितम्ब हैं और उसके नीचे दो कुकुन्दर (नितम्बोंके ऊपर दो गढे) हैं।

अष्टम अग जांघहैं, उनके उपाङ्गोंको कहते हैं उसके नीचे दोघुटने, उसके नीचे दोपिडली, उसके नीचे टकने, उसके नीचे एडी, तलुए, दो चरण और उनके अग्रभागमें दश अगुली और उनमें दश नख हैं॥ ॥ ७०—१०० ॥

अथेदं शरीरमपरेणापि येनयेन समवायिकारणेन उत्पद्यते तानि सर्वाण्याह।

अथ दोषाः प्रवक्ष्यन्ते धातवस्तदनन्तरम्॥ आहारादेर्गतिस्तस्य परिणामश्च वक्ष्यते ॥ ॥१०१॥ आर्त्तवं चाथ धातूनां मलास्तदुपधातवः॥आशयाश्च कलाश्चापि मर्माण्यथ च सन्धयः ॥ १०२ ॥ शिराश्च स्नायवश्चापि धमन्यः कण्डरास्तथा ॥ रन्ध्राणि भूरिस्रोतांसि जालैः कूर्चाश्च रज्जवः ॥ १०३ ॥ सेवन्यश्चाथ संघाताः सीमन्ताश्च तथा त्वचः ॥ लोमानि लोमकूपाश्च देह एतन्मयो मतः ॥ १०४ ॥

अब आगे दोषोंको कहेंगे, तदनन्तर धातु, आहारआदिकी गति, और उसका परिणाम, आर्तव धातुओंके मल, उपधातु, आशय, कला, मर्म, सधि, शिरा, स्नायु, धमनी, कण्डरा, रन्ध्र, बहुतसे स्रोत, जाल, कूर्च, रज्जु, सेवनी, सघात, सीमन्त, त्वचा, रोम और रोमकूप, यह सब कहेंगे क्योंकि, देह इन सब समवायि कारणोंसे ही बना है ॥ १०१–१०४ ॥

तत्र दोषस्वरूपमाह वाग्भटः

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ॥ विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति वर्द्धयन्ति च ॥ १०५ ॥ ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधो मध्योर्ध्वसंश्रयाः ॥ वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात् ॥ १०६ ॥

वात, पित्त और कफ यह तीन दोष संक्षेपतासे कहेहैं। यह विकृत (दूषित) होनेसे देहका नाश करतेहैं और अविकृत (शुद्ध) होनेसे शरीरका पालन करतेहैं, यह दोष हृदय और नाभिके नीचे, बीचमें और ऊपर व्याप्तहैं। अवस्था, दिन, रात्रि और भोजन इनके अन्त, मध्य और आदिमें क्रमसे गमन करतेहैं ॥ १०५॥१०६ ॥

दोषशब्दस्य निरुक्तिमाह ।

धावतश्च मलाश्चापि दुष्यन्त्येभिर्यतस्त-तः ॥ वातपित्तकफा एते त्रयो दोषा इति स्मृताः ॥ १०७ ॥

दोषा इत्यत्र दुष वैकृत्ये इति दुष्धातोः दुष्यन्ति एभिरिति वाक्येन अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् इत्यनेन सूत्रेण करणेऽर्थे-घञ् प्रत्ययः ॥

ते धातवोऽपि विद्वद्भिर्गदिता देहधार-णात् ॥ १०८ ॥

यत आह सुश्रुतः ।

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्य्यानिला यथा ॥ धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥ ॥१०९॥इति ॥

अत्र यथासंख्येनान्वयो बोद्धव्यः । विसर्गादानं वातस्य एव । विक्षेपः शीतो-ष्णादीनां विविधप्रकारेण प्रेरणम् ॥

मलाश्च ते रसादीनां मलिनीकरणा-न्मताः ॥ ११० ॥

धातु और मल इनसे दूषित होतेहैं इसीकारण वात, पित्त और कफ यह तीनो दोष कहातेहैं, विद्वानोने देह धारण करनेसे इनको धातु भी कहा है। क्योंकि सुश्रुत कहताहै कि, विसर्ग (त्याग करना) आदान (ग्रहण करना) और विक्षेप (डालना), इन तीन क्रियाओंसे जिस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य और वायु जगत्को धारण करेहै उसीप्रकार कफ, पित्त और वायु भी अनुक्रमसे इन तीन क्रियाओंके द्वारा देहको धारण करते हैं।

यहां अन्वय अनुक्रमसे जानना अर्थात् चन्द्र, विसर्ग क्रियासे। सूर्य, आदान क्रियासे। और वायु विक्षेप क्रियासे जगत्को धारण करतेहैं। फिर सोम, सूर्य और वात, तथा कफ, पित्त और वात, इनकी क्रिया अनुक्रमसे जगत्में तथा देहमें समान हैं यह कहना भी ग्रंथकर्त्ताकाहै आशय जानना। फिर उनकी मलसंज्ञा भी है क्योंकि वह रसादिकको मलिन करते हैं ॥ १०७–११० ॥

तत्र वायोः स्वरूपमाह ।

दोषधातुमलादीनां नेता शीघ्रः समीरणः॥ रजोगुणमयः सूक्ष्मो रूक्षः शीतो लघु-श्चलः ॥ १११ ॥

नेता स्थानान्तरं प्रापयिता । शीघ्रः आशुकारी ॥

अन्यच्च ।

उत्साहोच्छ्वासनिःश्वासचेष्टावेगप्रवर्त्तनैः ॥ सम्यग्गत्या च धातूनामिन्द्रियाणाञ्च पाटवैः ॥ अनुगृह्णात्यविकृतो हृदयेन्द्रिय-चित्तधृक् ॥ ११२ ॥ रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः॥ खरो मृदुर्योगवाही संयोगादुभयार्थकृत् ॥ ११३ ॥ दाहकृ-त्तेजसा युक्तः शीतकृत्सोमसंश्रयात् ॥ विभागकरणाद्वायुः प्रधानं दोषसंग्रहे ॥ ११४ ॥ पक्वाशयकटीसक्थिश्रोत्रास्थि स्पर्शनेन्द्रियम् ॥ स्थानं वातस्य तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः ॥ ११५ ॥

वायु–दोष (कफ, पित्त) धातु, (रस रक्तादि और मल इनको एक स्थानसे अन्य स्थानपर पहुँचानेवाला, शीघ्र गमन करनेवाला, रजोगुणयुक्त, सूक्ष्म, रूक्ष, शीतल, हलका और चचल है। और भी कहाहै कि वात अविकृत होनेसे उत्साह, श्वासका लेना और छोडना, इन चेष्टाओंके वेगका प्रवर्त्तन तथा उत्तम गति करके धातु और इन्द्रियोकी चतुरतासे रक्षा करताहै । और हृदय, इन्द्रिय तथा चित्तको धारण करताहै रजोगुणमय, सूक्ष्म, शीतल, रूक्ष, चचल, तीक्ष्ण, नरम, योगवाही, (जिसके साथ मिले उसीकेसे गुण करने लगे) सयोग होनेमें दोनो अर्थको करनेवाला. जैसे तेज (सूर्य्य) के साथ मिलनेसे दाह और चद्रमाके साथ मिलनेसे शीतलताको करैहै। विभाग करनेसे दोष समूहमें वात प्रधान है । पक्वाशय, कमर, जघा, श्रोत्र (कान) अस्थि और त्वचा यह सब वातके स्थान हैं, इनमें पक्वाशय मुख्य स्थान है॥ ॥ १११–११५ ॥

एको वायुः पित्तवत् नामस्थानकर्म्मभेदैः पंचविधः। तेषां वायूनां नामानि आह।
उदानस्तदनु प्राणः समानोऽपान एव च। व्यानश्चैतानि नामानि वायोः स्थानप्रभेदतः ॥ ११६ ॥

एक वायु पित्तके सदृश नाम स्थान और कर्म भेदोंसे पांच प्रकारका है। उदान, प्राण, समान अपान और व्यान यह पांच नाम वायुके स्थानभेदोंसे है ॥ ११६ ॥

अथ उदानादीनां स्थानानि आह।
कण्ठ हृदि तथाधस्तात्कोष्ठवह्नेर्मलाशये ॥ सकलेऽपि शरीरेऽसौ क्रमेण पवनो वसेत् ॥ ११७ ॥

कण्ठ, हृदय, कोठेकी अग्नि मलाशय और सम्पूर्ण शरीरमें क्रम करके वायुका निवास स्थान है। अर्थात् कण्ठमें उदान, हृदयमें प्राण कोठेकी अग्निके नीचे (नाभीमें) समान, मलाशय (गुदा) में अपान और सम्पूर्ण शरीरमें व्यान नामक पवन निवास करताहै ॥ ११७ ॥

अथ तेषां कर्म्माणि आह।
उदानो नाम यस्तूर्ध्वमुपैति पवनोत्तमः॥ तेन भाषितगीतादिप्रवृत्तिः कुपितस्तु सः॥ ॥ ११८ ॥ ऊर्ध्वजत्रुगतान्रोगान्विदधाति विशेषतः॥ यो वायुः प्राणनामासौ मुखं गच्छति देहधृक्॥ ११९॥ सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते॥ प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान्गदान ॥ ॥ १२० ॥ आमपक्काशयचरः समानो वह्निसंगतः॥ सोऽन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान्विविनक्ति हि ॥ १२१ ॥

तज्जान् इत्यादि । अन्नगतान् रसमलमूत्रादीन् पृथक् करोतीत्यर्थः ।

स दुष्टो वह्निमान्द्यातिसारगुल्मान्करोति हि ॥ पक्काशयालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम् ॥ १२२॥ समीरणःशकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्त्तवान्यधः॥क्रुद्धस्तु कुरुते रोगान् घोरान्बस्तिगुदाश्रयान् ॥ शुक्रदोषप्रमेहांश्च व्यानापानप्रकोपजान् ॥ १२३ ॥ कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवाहनोद्यतः ॥ स्वेदाऽसृक्स्रावणश्चापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि ॥ १२४ ॥ गत्यपक्षेपणोत्क्षेपनिमेषोन्मेषणादिकाः ॥ प्रायः सर्व्वाः क्रियास्तस्मिन्प्रतिबद्धाः शरीरिणाम ॥ १२५ ॥ प्रस्पन्दनञ्चोद्वहनं पूरणञ्च विरेचनम॥ धारणञ्चेति पञ्चैताश्चेष्टाः प्रोक्ता नभस्वतः ॥ ॥ १२६ ॥ क्रुद्धः स कुरुते रोगान्प्रायशः सर्वदेहगान् ॥ युगपत्कुपिता एते देहं भिन्द्युरसंशयम ॥ १२७ ॥

देहं भिन्द्युः मारयेयुरित्यर्थः ॥

उदान नामक उत्तम वायु जो गलेमें घूमती है तब उसकी शक्तिसे यह प्राणी भाषण करना और गीतादिकोंके गानेमें प्रवृत्ति होती है। और यही वायु कुपित होकर ऊर्ध्व जत्रुगत रोगोंको अर्थात् नाडके ऊपरके रोगोंको विशेष करके करती है। दूसरी जो मुखमें सदैव रहनेवाली और प्राणोंको धारण करनेवाली प्राणनामक वायुहै सो भोजनके अन्नको भीतर प्रवेश करतीहै और प्राणोंकी रक्षा करतीहै। यह कुपित होकर हिचकी श्वास आदि रोगोंको करतीहै। तीसरी समान नामक वायु, आमाशय और पक्काशयमें विचरनेवाली जठराग्निसे मिलकर अन्नको पचाती है और अन्नसे उत्पन्न हुए मलमूत्र आदिको पृथक् पृथक् करतीहै, यह दूषित होकर मन्दाग्नि, अतीसार गुल्म (वायगोला) आदि रोगोंको उत्पन्न करती है। चौथी पक्काशयमें रहनेवाली अपानवायु है सो मल मूत्र शुक्र,गर्भ और आर्त्तव इनको छोडनेके समय निकालकर बाहर डालदती है। यह वायु कुपित होकर घोर मूत्राशय और गुदाके आश्रित रोगोंको करती है। तथा शुक्रदोष, प्रमेह और अन्य व्यान तथा अपान वायुके कोपसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको उत्पन्न करतीहै। सम्पूर्ण शरीरमें विचरनेवाली पाँचवी व्यान नामक वायु रसोंके बहानेमें उद्यत स्वेद (पसीना) और रक्तको बहानेवाली, तथा पाँच प्रकारकी चेष्टा करानेवाली है। गमन, अपक्षेपण (नीचेको डालना), उत्क्षेपण (ऊपरको फेकना), निमेष (नेत्रोका मीचना) और उन्मेषण (नेत्रोका खोलना) इत्यादि शरीरियोंकी सर्व क्रिया प्रायः इस वायुके ही अधीनहै। प्रस्पन्दन (धीरेधीरे

चलना), उद्वहन (कुछ लेकर चलना), पूरण (भरना), विरेचन (निकालना) और धारण यह वायुकी पांच चेष्टाहै । यह व्यान वायु कुपित होकर प्रायः सर्व शरीरके रोगोको प्रगट करतीहैं । और यदि पाँचो वायु एक साथ ही कुपित होयँ तो निःसन्देह देहका नाश करदेती है अर्थात् उसको मार ही डालती है ॥ ११८-१२७ ॥

अथ पित्तस्य स्वरूपमाह ।

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरम्॥ रसं कटु लघु स्निग्धं तीक्ष्णमम्लन्तु पाकतः ॥ १२८ ॥

पीतं निरामम् । नीलं सामम् ।

पित्त एक प्रकारका पतला पदार्थहै, उष्ण (गरम), पीत (आमसे अलग पित्तका रंग पीला होताहै), नील (आमसे मिले हुए पित्तका रंग नीला होताहै), सत्त्व गुणयुक्त, सारक (दस्त लानेवाला), चरपरा, हलका, स्निग्ध, तीक्ष्ण और पाकके समय इसका स्वाद अम्ल अर्थात् खट्टा हो जाताहै ॥ १२८ ॥

एकं पित्तं वातवत् नामस्थानकर्म्मभेदैः पञ्चविधम् । तेषां पित्तानां नामानि आह ।

पाचकं रञ्जकश्चापि साधकालोचके तथा ॥ भ्राजकश्चेति पित्तस्य नामानि स्थानभेदतः ॥ १२९ ॥

एक पित्त–वातके समान नाम स्थान और क्रियाओंके भेदसे पाँच प्रकारकाहै पाचक,रंजक,साधक,आलोचक और भ्राजक,यह स्थानभेद करके पित्तके पाँच नाम हैं ॥१२९॥

अथ पाचकादीनां स्थानानि आह ।

अग्न्याशये यकृत्प्लीहाहृदये लोचनद्वये॥ त्वचि सर्वशरीरेषु पित्तं निवसति क्रमात् ॥ १३० ॥

अग्न्याशय, यकृत्, प्लीहा, हृदय, दोनो नेत्र,सम्पूर्ण देह और त्वचा, इनमे क्रमसे उक्त पांचो प्रकारका पित्त निवास करता है अर्थात् अग्न्याशयमे पाचक, यकृत् प्लीहामे रंजक, हृदयमे साधक दोनो नेत्रोमे आलोचक सम्पूर्ण शरीर और त्वचामे भ्राजक पित्त रहताहै ॥ १३० ॥

अथ तेषां कर्माणि आह ।

पाचकं पचते भुक्तं शेषाग्निबलवर्द्धनम्॥रसमूत्रपुरीषाणि विरेचयति नित्यशः ॥१३१॥

पाचकं पित्तमामपक्वाशयमध्यस्थं षड्विधमाहारं भोज्यं भक्ष्यं चर्व्यं लेह्यं चोष्यं पेयं पचति दोषरसमूत्रपुरीषाणि पृथक्करोति च । तदग्न्याशयस्थमेव स्वशक्त्या रसरञ्जनहृदयस्थकफतमोऽपनोदनरूपग्रहणप्रभाप्रकाशनाभ्यङ्गलेपादिपाचनाद्यग्निकर्म्मणां विशेषाणां पित्तस्थानानामनुग्रहं करोति शेषाणि अपि पित्तस्थानानि यकृत्प्लीहादीनि भागेन गत्वा तत्रतत्र रसरञ्जनादिकर्म्मभिरुपकरोति इत्यर्थः। कथम्भूतं पाचकं पित्तं शेषाग्निबलवर्द्धनम्। शेषा अग्नयः पृथिव्यादिमहाभूतगणाः ॥

यत उक्तं चरकेण ।

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः॥ १३२ ॥ इति ॥

ऊष्माणः अग्नयः ॥

यत उक्तं वाग्भटे ।

दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनमिति ॥ १३३ ॥

दोषधातुमलादीनामूष्मैवाग्निरित्यर्थः ॥ रसादिधातुगताः सप्त तेषां बलवर्द्धनम् । यथा गृहस्थापितानि रत्नानि खद्योतवदूरभास्वराणि तान्यपि दीपज्योतिषा दूरप्रकाशकानि भवन्ति । तथा अग्न्याशयस्थपाचकाग्नितेजसा सर्वेऽग्नयो बलवन्तो भवन्ति ॥

तथा च वाग्भटः ।

अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तॄणामधिको मतः॥ तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मका इति ॥ १३४ ॥

ननु पित्तादन्योऽग्निराहोस्वित्पित्तमिवाग्निरिति सन्देहः । उच्यते । पित्तस्योष्णादिगुणद्वाराआहारपाचनरञ्जनदर्शनादिकर्मणश्च न खलु पित्तव्यतिरेकेण अन्योऽग्निः।

तस्मादग्निरूपस्यैव पित्तस्य स्थानभेदात् पाचकरञ्जकसाधकालोचकभ्राजकसंज्ञाः॥

तथा च वाग्भटः ।

पाचकं तिलमानं स्यात्काठिन्यान्नास्य दोषता ॥ अनुगृह्णात्यविकृतं पित्तं पाकोष्मदर्शनैः ॥ १३५ ॥ क्षुत्तृड्रुचिप्रभामेधाधीशौर्य्यतनुमार्दवैः ॥ पित्तं पञ्चात्मकं तच्च पक्वामाशयमध्यगम् ॥ १३६ ॥ पंचभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयः॥ त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मणानलशब्दितम् ॥ पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा ॥ १३७ ॥ तत्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् ॥ करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम् ॥ १३८ ॥

ननु यदि पित्ताग्न्योरभेदस्तदा कथं घृतं पित्तस्य शमकमग्नेर्दीपकमिति । तथा मत्स्याः पित्तं कुर्वन्ति न च तेऽग्निदीप्तिकरा इति । तथा पित्ताधिक्यात्तीक्ष्णोऽग्निरित्यपि कथं स्यात् । तथा समदोषः समाग्निश्चेत्यपि वक्तुं न युज्यते । तथा द्रवं स्निग्धमधोगञ्च पित्तं वह्निरतोऽन्यथेति । अत्रोच्यते । पित्तमग्नेः सन्तताधिष्ठानम्॥

तथा चोक्तं तन्त्रान्तरे ।

अग्निर्भिन्नगुणैर्युक्तः पित्तं भिन्नगुणैस्तथा ॥ द्रवं स्निग्धमधोगञ्च पित्तं वह्निरतोऽन्यथा ॥ १३९ ॥ तस्मात्तेजोमयं पित्तं पित्तोष्मा यः स शक्तिमान् ॥ स सञ्चरति कुक्षिस्थः सर्वतो धमनीमुखैः ॥ १४० ॥ स कायाग्निः स कायोष्मा स पक्ता स च जीवनम ॥ अनन्यगतिरित्येवं देहे कायाग्निरुच्यते ॥ १४१ ॥

अन्यच्च—वामपार्श्वाश्रितं नाभेः किञ्चित्सोमस्य मण्डलम्॥ तन्मध्ये मंडलं सौर्य्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः ॥ जरायुमात्रप्रच्छन्नः काचकोशस्थदीपवत् ॥ १४२ ॥

तथा च मधुकोषे ।

द्रवतेजःसमुदायात्मकस्यापि पित्तस्य तेजोभागोऽग्निरिति । तेन पित्तमप्यग्निवत् मन्यते अतितापितायोगोलकवत्। परमार्थतस्तु अग्निः पित्ताद्भिन्न एवेति सिद्धांतः॥

अत एवाह रसप्रदीपे ।

जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः॥ सौक्ष्म्याद्रसानाऽऽददानो विवक्तुं नैव शक्यते ॥ १४३ ॥ नाभौ मध्ये शरीरस्य विशेषात्सोममण्डलम्॥ सोममण्डलमध्यस्थं विद्यात्सूर्य्यस्य मण्डलम् ॥ १४४ ॥ प्रदीपवत्तत्र नृणां स्थितो मध्ये हुताशनः॥ सूर्य्यो दिवि यथा तिष्ठंस्तेजोयुक्तैर्गभस्तिभिः॥ विशोषयति सर्वाणि पल्वलानि सरांसि च ॥ १४५ ॥ तद्वच्छरीरिणां भुक्तं ज्वलनो नाभिमाश्रितः॥ मयूखैः पचते क्षिप्रं नानाव्यञ्जनसंस्कृतम्॥ १४६॥ स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रः प्रमाणतः ॥ ह्रस्वकायेषु सत्त्वेषु तिलमात्रः प्रमाणतः॥ कृमिकीटपतंगेषु वालमात्रोऽवतिष्ठते ॥ १४७ ॥ इति । अलमप्रकृतचिन्तनेन ।

आमाशय और पक्वाशयमें स्थित पाचक पित्त छः प्रकारके आहारको पचाताहै और शेषाग्निके बलको बढाता है तथा रस, मूत्र, मल आदिको नित्य पृथक् २ करताहै । यह पाचक पित्त आमाशय और पक्वाशयमें स्थित भक्ष्य, भोज्य, चर्व्य, लेह्य, चोष्य और पेय इन छः भोजनोंको पकाताहै और रस, मल, मूत्र, तथा दोषोंको अलग अलग करताहै । यह पित्त—अग्न्याशयमें स्थित होकर अपनी शक्तिसे रसको रंगना (लाल करना), हृदयमें स्थित कफ और अंधकारको हटाना,रूपका ग्रहण करना, प्रभाका प्रकाश करना,अभ्यंग और लेपादिका पाक करना इत्यादि अग्निकर्मकेद्वारा विशेष पित्तके स्थानोंपर अनुग्रह करताहै अर्थात् यकृत् प्लीहादिक शेष पित्तके स्थानोंमें जाकर

रसका रगना आदिकर्मोंसे उपकार करताहै, और शेषाग्नि (महाभूताग्नि, और धात्वग्नि) की शक्तिको बढाताहै। क्योंकि चरक मुनिने भी कहा है कि "पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच प्रकारकी ऊष्मा (अग्नि) हैं"। वाग्भटमे भी लिखाहै कि "दोष, धातु और मलादिककी ऊष्माही अग्नि है, यह आत्रेयकी आज्ञा है"। जैसे घरमे रक्खे हुए रत्न खद्योत(पटवीजने)के सदृश समीपमें ही प्रकाश करते हैं और उनपर दीपककी ज्योति पडनेसे दूरतक प्रकाश करतेहै, उसी प्रकार अग्न्याशयमे स्थित पाचक अग्निके तेजसे सर्व अग्नि बलवान् होजाती है। जैसे वाग्भटसे कहाहै कि "सब अग्नियोमे अन्नको पकानेवाली अग्नि मुख्य है वही सब अग्नियोका कारण है, और उसीकी वृद्धि तथा क्षयसे सम्पूर्ण अग्नि घटती बढती है"। अब यहां शका उत्पन्न होती है कि, अग्नि पित्तसे अलग है या पित्तकोही अग्नि कहतेहै? तहां कहतेहैं कि पित्तके उष्णादि गुणोसेही आहारका पकना रसका रंगना और दर्शनादिकर्म होतेहै इस लिए अग्नि पित्तसे अलग नही है इसीकारण अग्निरूप पित्तके ही स्थान भेदसे पाचक, रंजक, साधक, आलोचक और भ्राजक नाम हैं। ऐसे ही वाग्भटमे कहा है कि "पाचक पित्त तिलके प्रमाणहै, कठिन होनेसे दोष सज्ञक नही है। विकार रहित पाचक पित्त–पाक, ऊष्म, दर्शन, क्षुधा, तृषा, रुचि, कांति, मेधा, बुद्धि, शूरता और शरीरकी कोमलता करके उपकार करताहै"। पचभूतात्मक पित्त पक्काशय और आमाशयमे रहताहै, यह पचभूतात्मक होनेपर भी इसमे अग्निका गुण प्रगट है; इसकारण इसमे द्रवता नहीं है। यह पाचक पित्त पाक आदि कार्योंके करनेसे अग्नि कहलाताहै। यह अग्नि अन्नको पचातीहै और सारभूत पदार्थ (रस) तथा मल मूत्रादिको भिन्न-भिन्न करतीहै। तथा अपने स्थानोंमे स्थित विशेष पित्तोंको बल देकर उपकार करतीहै, इस कारण इसका नाम पाचक कहाहै। यहां शंका उत्पन्न होतीहै कि पित्त और अग्निमे यदि भेद नहींहै तौ अग्निको दीपन करनेवाला और पित्तको शमन करनेवाला घी किस प्रकार हो सक्ताहै? तथा मछली पित्तकर्तीहै और अग्निको प्रदीप्त करनेवाली नही है और पित्तकी अधिकतासे ही तीक्ष्णाग्नि होतीहै यह भी कैसे होसक्ताहै? अथवा दोषोके सम होनेसे समाग्नि होती है यह भी नही होसक्ता. तथा पित्त द्रवनेवाला, स्निग्ध और नीचेको जानेवाला है, तथा अग्नि इससे अन्यथा अर्थात् कठोर रूक्ष और ऊपर जानेवाली अग्निहै। तहां कहतेहैं कि, पित्त अग्निके सदा रहनेका स्थान है, क्योंकि अन्य ग्रन्थोमे कहाहै कि "अग्नि पृथक् गुणोसे युक्तहै, और पित्त अलग गुणो करके युक्तहै। पित्तद्रवता (पतलापन) युक्त, स्निग्ध और नीचेको जानेवालाहै तथा अग्निसे पृथक् है इसी कारण पित्त तेजयुक्त है और पित्तकी ऊष्मा गरमी शक्तिवान्है, वह कोखमे स्थित धमनीके मुखद्वारा सब शरीरसे विचरती है वहही कायाग्निहै, वही कायोष्मा है, वही पाक करनेवालीहै, वही जीवनरूप है, इसकी अनन्य गति है इस कारण देहमें कायाग्नि कहीहै"। और भी कहाहै कि, नाभिके वामपार्श्वमें चन्द्रमण्डल है, उसके मध्यमे सूर्यका मण्डलहै, और उसके मध्यमे अग्नि स्थित है, वह केवल जरायु (झिल्ली) से ढकी हुई कांचके पात्रमे स्थित दीपककी सदृशहै। सो ही मधुकोषमे कहाहै कि, द्रवरूप तेजके सदृश है। समुदायरूप पित्त है, और उसका तेजभाग अग्नि है. इसी कारण पित्त भी अग्निके सदृश माना जाता है जैसे अत्यन्त तप्त किए हुए लोहेके गोलेको अग्नि ही मानतेहै इसी प्रकार यहां जानना अर्थात् वास्तवमें अग्नि पित्तसे भिन्न है यह सिद्धांत है। ऐसा रसप्रदीप ग्रथमे कहाहै कि–भगवान् जठराग्नि ईश्वर अन्नको पचानेवाली और रसको ग्रहण करनेवाली है, परन्तु अति सूक्ष्म होनेसे उसका विवेक नही हो सक्ता। शरीरके मध्य नाभिमे विशेशतासे सोममण्डल है, उस सोममण्डलके मध्यमे स्थित सूर्यका मण्डल है उसमे दीपकके सदृश मनुष्योंके मध्य अग्नि स्थितहै। जैसे सूर्य आकाशमे स्थित अपनी तेजयुक्त किरणोसे समस्त ताल और सरोवरोंको सुखा देताहै उसी प्रकार नाभिमे स्थित अपनी किरणोंके द्वारा यह जठराग्नि मनुष्योंके अनेक प्रकारके व्यञ्जनो करके खाए हुए भोजनको पचाताहै। स्थूल (बडे शरीरी हाथी, गैंडा) जीवोमे अग्नि यव (जौ) प्रमाण, ह्रस्व शरीरी (मनुष्यादि) जीवोंमें तिलकी प्रमाण और कृमि (गिनार), कीट (कीडे), पतगो (उडनेवाले जीवो) मे वालकी बरावर अग्नि रहतीहै॥ १३१–१४७॥

पुनः प्रकृतमनुसरामः–रञ्जकं नाम यत्पित्तं तद्रसं शोणितं नयेत्॥ यत्तु साधकसंज्ञं तत्कुर्य्याद् बुद्धिं धृतिं स्मृतिम्॥ १४८॥ धृतिं मेधाम्॥

यदालोचकसंज्ञं तद्रूपग्रहणकारणम्॥ भ्राजकं कान्तिकारि स्यालेपाभ्यङ्गादिपाचकम् ॥ १४९ ॥

रंजक नाम जो पित्तहै वह रसका रुधिर बनाताहै, साधक नामक जो पित्तहै वह बुद्धि, धृति (मेधा या धारणा-शक्ति) और स्मृतिको करताहै। आलोचक नामक जो पित्त है वह रूपका ग्रहण अर्थात् देखनेमें कारण है और भ्राजक पित्त कान्ति करता और लेप अभ्यंग (मालिश) आदिको पचाताहै ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

अथ श्लेष्मस्वरूपमाह ।

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतलस्तथा ॥ तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥ १५० ॥

कफ-श्वेत, भारी, स्निग्ध, पिच्छिल शीतल, तमोगुण युक्त और स्वादु (मधुर) है तथा विदग्ध होनेसे खारी होजाता है ॥ १५० ॥

एकः श्लेष्मा वातपित्तवत् च नामस्थानकर्मभेदैः पञ्चविधः । तेषां श्लेष्मणां नामानि आह ।

कफस्यैतानि नामानि क्लेदनश्चावलम्बनः॥ रसनः स्नेहनश्चापि श्लेष्मणः स्थानभेदतः ॥ १५१ ॥

एक कफ, वात, पित्त और नाम स्थान कर्म भेदोंसे पांच प्रकारका है। क्लेदन, अवलम्बन, रसन, स्नेहन और श्लेष्मण यह कफके पांच नाम स्थानभेदसे हैं ॥ १५१ ॥

अथ क्लेदनादीनां स्थानानि आह ।

आमाशयेऽथ हृदये कण्ठे शिरसि सन्धिषु॥ स्थानेष्वेषु मनुष्याणां श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥ १५२ ॥

दोषाणां सकलशरीरव्यापिनामपि पञ्चपञ्च स्थानानीति बाहुल्याभिप्रायेण उक्तानि॥

तथा च वाग्भटः ।

इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्यविकृतात्मनाम्॥ व्यापिनामपि जानीयात्कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥ १५३ ॥ इति ॥

चरकश्च-

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः ॥ १५४ ॥ इति ॥

आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और संधि, इन स्थानोंमें क्रमसे मनुष्योंके कफ निवास करताहै अर्थात् आमाशयमें क्लेदन, हृदयमें अवलम्बन, कंठमें रसन, शिरमें स्नेहन, और सन्धियोंमें श्लेष्मण कफ रहताहै। यद्यपि दोष सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं, तथापि पांच पांच स्थानहैं तथापि बाहुल्यके अभिप्रायसे कहेहैं ऐसे ही वाग्भटमें कहा है कि-दोष एकरूप अर्थात् सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक हो रहेहैं, तौभी वह दोष कर्म विशेष करके भिन्न भिन्न जानने चाहियें । चरकमें भी कहाहै कि-दोष सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं, परन्तु हृदय और नाभिके नीचे मध्य और ऊर्ध्वमें रहतेहैं। अर्थात् वायु नाभिके नीचे पित्त नाभि और हृदयके बीचमें और कफ ऊपर (प्रधानतासे) रहते हैं ॥ १५२--१५४ ॥

अथ तत्तत्स्थानगतस्य श्लेष्मणः कर्माणि आह ।

क्लेदनः क्लेदयत्यन्नमात्मशक्त्याऽपराण्यपि ॥ अनुगृह्णाति च श्लेष्मस्थानान्युदककर्मणा ॥ १५५ ॥

अयमर्थः--क्लेदनोऽन्नं क्लेदयति तेन संहतमन्नं भेदं प्राप्नोति । अपराण्यपि श्लेष्मस्थानानि हृदयादीनि।मार्गेण गत्वा तत्रतत्र हृदयालम्बनत्रिकसन्धारणरसग्रहणसमस्तेन्द्रियतर्पणसन्धिसंश्लेषणाद्युदककर्म्मभिरनुगृह्णाति उपकरोति तदेव उत्तरत्र उच्यते ।

क्लेदन कफ अन्नको क्लेदयुक्त (गीला) करताहै, और अपनी शक्तिसे कफके दूसरे स्थानोंको भी जलकर्मके द्वारा सहायता करताहै, तात्पर्य्य यह है कि-क्लेदन कफ अन्नको भिगोताहै इस कारण इकट्ठा हुआ अन्न पृथक् पृथक् होजाता है। कफ हृदयादि अन्य स्थानोंमें जाकर उन उन स्थानोंमें हृदयका अवलम्बन करना, त्रिकसंधारण, रसग्रहण करना, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको तृप्त करना, संधियोंको जोडना, इत्यादि जलकर्मोंसे सहायता करताहै ॥ १५५ ॥

तथा च अवलम्बनफललक्षणम् ।

रसयुक्तात्मवीर्य्येण हृदयस्यावलंबनम् ॥ त्रिकसंधारणं चापि विदधात्यवलंबनः१५६

त्रिकं शिरोबाहुद्वयसन्धिः ॥

अवलम्बनकफ–रसयुक्त वीर्यसे हृदयके भागका अवलम्बन और त्रिक हड्डीका सन्धारण करताहै (मस्तक और दोनो भुजाओंकी सधिको त्रिक कहतेहैं) ॥ १५६ ॥

रसनकफलक्षणम्।

उभावपि ततः सौम्यौ तिष्ठतश्चान्तिके यतः ॥ यतो रसान्विजानीतो रसनारसनौ समौ ॥ १५७ ॥

रसना रसनेन्द्रियम्। रसनः कण्ठस्थकफः ॥

रसना और रसनकफ, यह दोनों, सौम्यगुणयुक्त हैं दोनों समीप रहते है, इसकारण रसना और रसनकफ यह दोनो रसको जानते हैं (रसना अर्थात् जीभ, रसन अर्थात् कण्ठमे रहनेवाला कफ) ॥ १५७ ॥

स्नेहनश्लेष्मणकफयोर्लक्षणम्।

स्नेहनः स्नेहदानेन समस्तेन्द्रियतर्पणः ॥ श्लेष्मणः सर्वसंधीनां संश्लेषं विदधात्यसौ १५८

स्नेहनकफ, स्नेह देकर समस्त इंद्रियोको तृप्त करता है, वैसे ही श्लेष्मण कफ, सर्व सधियोका सश्लेष करता है अर्थात् भलीभांति जोडताहै ॥ १५८ ॥

अथ धातुशब्दस्य निरुक्तिमाह।

एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यन्नृणाम्॥ रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥ १५९ ॥

धातव इति धा–धातोस्तुप्रत्ययः ॥

रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि (हड्डी) मज्जा और शुक्र ये सातो धातुएँ मनुष्योंमे स्थित होकर देहको धारण करतेहै इस कारण इनको धातु कहते है ॥ १५९ ॥

अथ धातूनां कर्माणि आह।

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणपूरणे ॥ गर्भोत्पादश्च कर्माणि धातूनां कथितानि हि ॥ १६० ॥

प्रीणन, जीवन, लेपन, स्नेहन, धारण, पूरण और गर्भोत्पादन, यह क्रमसे उपरोक्त सातो धातुओंके कार्य हैं, अर्थात् रसका कार्य प्रीणन (तृप्त करना), रक्तका कार्य जीवन, मांसका कार्य लेपन, मेदाका कार्य स्नेहन, अस्थिका कार्य धारण, मज्जाका कार्य पूरण और शुक्रका कार्य गर्भोत्पादन (गर्भ प्रगट करना) है ॥ १६० ॥

तत्र रसशब्दस्य निरुक्तिः।

यत्पाथो रसधातुर्यस्ततोऽभवदपां रसः॥ सद्रवं सकलं देहं रसतीति रसः स्मृतः १६१

रसधातु जलरूपहै, इसकारण जलमेसे रस उत्पन्न होता है तथा वह द्रव युक्त होकर सम्पूर्ण शरीरमें गमन करता है इस कारण रस कहा है ॥ १६१ ॥

अथ रसस्य स्वरूपमाह।

सम्यक्पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः ॥ स तु द्रवः सितः शीतः स्वादुः स्निग्धश्चलो भवेत् ॥ १६२ ॥

सारो यथा–गुडमधूकपुष्पबब्बुलत्वग्बदरीमूलादिभवः, सारो मदिरा ॥

भले प्रकारसे पचेहुए भोजनका जो सार है वही रस है। रस-द्रवतायुक्त, श्वेत, शीतल, स्वादु, स्निग्ध और चचल है। जैसे गुड, महुएके फूल, बबुरकी छाल, बेरकी जड आदिमेसे उत्पन्न हुआ जो सार (मद्य) है उसको सार कहते है ॥ १६२ ॥

अथ रसस्य स्थानमाह।

सर्वदेहचरस्यापि रसस्य हृदयं स्थलम् ॥ समानमरुता,पूर्वं यदयं हृदये धृतः॥ १६३॥

रस यद्यपि सम्पूर्ण शरीरमें विचरने वाला है तथापि उसका मुख्य स्थान हृदय है क्योंकि-पूर्वमें समान वायुने उसको लाकर हृदयमे स्थापन किया है ॥ १६३ ॥

रसस्य कर्माणि।

आरुह्य धमनीर्गत्वा धातून्सर्वानयं रसः ॥ पुष्णाति तदनु स्वीयैर्व्याप्नोति च तनुं गुणैः ॥ १६४ ॥

गुणैः शीतस्निग्धपोषकत्वगुणैः ॥

यह रस–धमनीनाडियोंमे जाकर सपूर्ण धातुओंको पुष्ट करताहै, तदनन्तर अपने गुणो करके शरीरमे व्याप्त होता है (गुण अर्थात् शीत, स्निग्ध, पोषकत्व, आदिगुणो करके व्याप्त है ऐसा जानना) ॥ १६४ ॥

विदग्धरसः ।

मंदवह्निविदग्धस्तु कटुर्वाम्लो भवेद्रसः ॥ स कुर्याद्बहुलान्रोगान्विषकृत्यं करोत्यपि ॥ १६५ ॥

रस मन्दाग्निसे विदग्ध (अधकच्चा होकर) कटु (चरपरा) अथवा अम्ल होजाता है, तब अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है तथा विषके सदृश मारणादिक कार्यको भी करता है ॥ १६५ ॥

अथ रक्तस्य स्वरूपमाह ।

यदा रसो यकृद्याति तत्र रञ्जकपित्ततः॥ रागं पाकं च संप्राप्य स भवेद्रक्तसंज्ञकः ॥ १६६ ॥ रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम्॥ स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवेत् ॥ १६७ ॥

रस जब यकृत्स्थान (कलेजे) मे जाताहै तब रंजक पित्तकी उष्णतासे रग और पक्वताको प्राप्त होकर रुधिर बनताहै, वह रुधिर सम्पूर्ण शरीरमें रहता है, जीवका सर्वोत्तम आधार है । स्निग्ध, भारी, चचल और स्वादु है, तथा विदग्ध होकर पित्त सदृश होजाताहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

जीवस्याधारमुत्तममित्यत आह ।

जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेषतः॥ वीर्य्ये रक्ते मले यस्मिन्क्षीणे याति क्षयं क्षणात् ॥ १६८ ॥

इति वीर्य्ये रक्ते मले च शरीरारम्भके वाग्भटोक्तपरिमाणमिते शुद्धे जीवो वसति। न तु दुष्टे प्रवृद्धे रक्तस्रावणोपदेशस्य वैयर्थ्यप्रसंगात् ॥ पित्तवद्भवेत्, अम्लं भवेदित्यर्थः ।

जीव संपूर्ण शरीरमे रहताहै किंतु विशेषतासे वीर्य, रक्त, और मलमे रहताहै, क्योंकि जिस समय इनका क्षय होता है उसी समय जीवका क्षय होजाताहै (वीर्य, रुधिर और मलमें जीव रहताहै, ऐसा जो ऊपर कह आयेहैं उसमे ऐसा समझना कि, वाग्भटके कथनानुसार परिमितशरीरारम्भक शुद्धवीर्य, रक्त और मलमें जीव रहताहै, परन्तु दोषयुक्त और बढेहुए रुधिरमे जीव नही रहता क्योंकि, बढेहुए और बिगडे हुए रुधिरको निकालनेकी आज्ञाहै)॥१६८॥

अथ रक्तस्य स्थानमाह ।

यकृत्प्लीहा च रक्तस्य मुख्यस्थानं तयोः स्थितम् ॥ अन्यत्र संस्थितवतां रक्तानां पोषकं भवेत् ॥ १६९ ॥

रुधिरके, यकृत् (कलेजा) और प्लीहा (तिल्ली) ये दो मुख्य स्थान हैं । इनमे रहनेवाला रुधिर अन्य स्थानोंमे रहनेवाले रक्तको भी पुष्ट करता है ॥ १६९ ॥

अथ मांसस्य स्वरूपमाह ।

शोणितं स्वाग्निना पक्वं वायुना च घनीकृतम् ॥ तदेव मांसं जानीयात्तस्य भेदानपि ब्रुवे ॥ १७० ॥

शोणितमिति शोणितस्थानगतत्वात् रस एव शोणितसंज्ञां लभते । एवमग्रे रसस्यैव मांसातिव्यपदेशः ॥

रुधिरमें रहनेवाली अग्निसे पक्व हुए तथा वायुसे घनरूप (गाढे) किये हुए रुधिरको ही मांस जानना । अब मांसके भेद कहते हैं । पूर्वमे कहाहै कि जिस प्रकार रुधिरके स्थानमें गया हुआ रस रुधिर सज्ञाको पाताहै, उसी प्रकार यहाँ मांसके स्थानमे गया हुआ रुधिर मांस होजाताहै ॥ १७० ॥

अथ मांसस्य पेशीमाह ।

यथार्थमूष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत् ॥ अनुप्रविश्य पिशितं पेशीर्विभजते तथा ॥ १७१ ॥

यथार्थं यथाप्रयोजनम् ॥

जिस प्रकार यथार्थ उष्णतायुक्त वायु स्रोतो (शिराओं) को विदीर्ण करतीहै उसीप्रकार वह, मांसमे प्रवेश करके मांसकी पेशियोंका भी विभाग करतीहै । (पेशी अर्थात् मासके छोटे छोटे टुकडे) ॥ १७१ ॥

मांसपेशीनां संख्यामाह ।

मांसपेश्यः समाख्याता नृणां पंच शतानि हि ॥ तासां शतानि चत्वारि शाखासु कथितान्यथ ॥ १७२ ॥ कोष्ठे षडुत्तरा षष्टिः कथिता मुनिपुङ्गवैः॥ ग्रीवाया ऊर्ध्वगास्तास्तु चतुस्त्रिंशत्प्रकीर्त्तिताः ॥ १७३ ॥

मांसकी पेशी मनुष्योंके पांचसौ (५००) कहीहैं, उनमेंसे चारसौ (४००) पेशी शाखा अर्थात् हाथ पावोंमें है, छयासठ (६६) कोठेमे और चौंतीस (३४) गरदनसे ऊपरके भागमें विद्वानोंने कहीहैं॥१७२॥१७३॥

ताः शाखागताः प्राह।

एकैकस्यान्तु पादांगुल्यां तिस्रस्तिस्रस्ताः पञ्चदश १५। पादाग्रे दश १०। पादोपरि कूर्चसन्निविष्टा दश १०। गुल्फतलयोर्दश १०। गुल्फजानुनोरन्तरे विंशतिः २०। जानुनि पञ्च ५। ऊरौ विंशतिः २०। वंक्षणे दश १०। एवमेकस्मिन् सक्थिनि शतं भवन्ति। एतेन इतरसक्थिनि बाहू च व्याख्यातौ एतासां समष्टिः चतुःशतम् ॥

एक एक पांवकी अंगुलीमे तीन (३) तीन (३) हैं इस प्रकार पांचों अंगुलियोमें पंद्रह (१५), पांवके अग्रभागमे दश (१०), पांवके ऊपर कूर्चस्थानमें दश (१०), गुल्फ और तलुओंमे दश (१०), गुल्फ और जानुके बीचमें बीस (२०), जानु (घुटने) मे पांच (५), ऊरु (जंघा) में बीस (२०), वंक्षण (ऊरु की संधि) मे दश (१०), इसप्रकार सब मिलकर एक सक्थि मे (पंजेसे लेकर जांघतक अंगमे) सौ (१००) पशीहैं इसीप्रकार दूसरे पांवमे तथा दोनो भुजाओंमें भी सौ सौ पेशी हैं ऐसे इन चारों शाखाओंमे चारसौ (४००) पेशी हुई ॥

अथ कोष्ठगताः प्राह।

गुदे तिस्रः ३। शेफसि एका १। सेवन्यामेका १। वृषणयोर्द्वे २। स्फिचोः पञ्च पञ्च ५। वस्तिमूर्द्धनि द्वे २। उदरे पञ्च ५। नाभ्यामेका १। पृष्ठोर्द्ध्वं सन्निविष्टा उभयतः पञ्च पञ्च ५ दीर्घाः। पार्श्वयोः षट् ६। वक्षसि दश १०। अक्षकांसौ प्रति समन्तात् सप्त ७। अक्षक अंसु आ इति लोके, अंसौ स्कन्धौ। हृदि द्वे २। यकृति द्वे २। प्लीह्नि द्वे २। तुण्डके द्वे २। एतासां समष्टिः ६६ षट्षष्टिः ॥

गुदामे तीन (३), लिंगमे एक (१), सेवनी (सिमन) में एक (१), अंडकोषोंमे दो (२), दोनोकूलो मे पांच पांच (५–५), वस्तिके नीचे दो (२), पेटमे पांच (५), नाभिमें एक (१), पीठके ऊपर दोनों ओर पांच पांच (५–५), दोनों पँसलियोमें छः (६), छातीमे दश (१०), हंसली और स्कन्धोंके इधर उधर सात (७), हृदयमें दो (२), यकृत्मे दो (२), प्लीहामे दो (२), और तुण्डक (कन्धेके निकटकी गली)में दो (२), इस प्रकार कोठेमे छयासठ (६६) मांसकी पेशी हैं ॥

अथ ग्रीवोर्द्ध्वगाः प्राह।

ग्रीवायाश्चतस्रः ४। हन्वोरष्टौ ८। एका काकलके कंठमणौ घंटिकायामिति यावत्। गले एका १। तालुनि द्वे २। जिह्वायामेका १। ओष्ठयोर्द्वे २। नासायां द्वे २। नेत्रयोर्द्वे २। गण्डयोश्चतस्रः ४। कर्णयोर्द्वे २। ललाटे चतस्रः ४। शिरसि एका १। आसां समष्टिः ३४। एवं सर्वसमष्ट्या मांसपेश्यः पञ्चशतानि भवन्ति ॥

गरदनमें चार (४), हनु (ठोडी), मे आठ (८), टेंटुए में (१), गलेमे एक (१) तालुमें दो (२), जीभमें एक (१), होठोमें दो (२), नाकमें दो (२), दोनों नेत्रोंमें दो (२), कपोलों (गालों) मे (४), कानोमे दो (२), ललाट (मस्तक मे चार (४), और शिरमें एक (१) इस प्रकार गरदनके ऊपरके भागमे चौंतीस मांस पेशीहैं, यह सम्पूर्ण शरीरमे कुल पांचसौ (५००)पेशी हुई ॥

स्त्रीणामपि भवन्त्येताः किन्तु विंशतिरुत्तराः॥ गर्भाशये गर्भमार्गे योनौ च स्तनयोरपि ॥ १७४ ॥

एताः पञ्चशतानि मांसपेश्यः। स्त्रीणाम् अधिका विंशतिर्यथा ॥

गर्भाशये तिस्रः ३। गर्भच्छिद्रसंस्थिताः शुक्रार्तवप्रवेशिन्यस्तिस्रः ३। योनावभ्यन्तरतो मुखाश्रिते प्रसृते द्वे २। योनावेव बहिर्निर्गते स्रोतःपार्श्वद्वयस्थिते वर्तुले योनिकर्णिकेतियावत्।

क्षे २ । स्तनयोः पञ्च ५ पञ्च ५ । यौवने तासां वृद्धिर्भवति ॥

ये मांस पेशी पुरुषोंके हैं वेही स्त्रियोंकेभी हैं, किन्तु स्त्रियोंके बीस अधिक हैं, ये बीस गर्भाशय, गर्भमार्ग, योनि और स्तन इनमें होतीहैं अधिक जो बीसहैं सो इस प्रकार हैं कि, गर्भाशयमें तीन (३), गर्भके छिद्रमें स्थित वीर्य और आर्तवको गर्भाशयमें प्रवेश करनेवाली तीन (३), योनिमें भीतर सुकडी और फैली हुई दो (२), तथा योनिमें ही कुछ बाहर छेदके दोनों पार्श्वोंमें स्थित शोभित करते हैं वहां दो (२), और स्तनोंमें पांच पांच (५-५) हैं यौवनावस्थामें ये वृद्धिको प्राप्त होजातीहैं, इस प्रकार बीस मांसकी पेशी स्त्रियोंके अधिक होती हैं ॥ १७४ ॥

पुंसां पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्ता मेहनमुष्कजाः ॥ स्त्रीणामावृत्य तिष्ठन्ति फलमन्तर्गता हि ताः ॥ १७५ ॥

अस्यायमर्थः-पुंसां मेहनमुष्कयोश्च यास्तिस्रो मांसपेश्यः पूर्वमुक्तास्ताः स्त्रीणां मेहनमुष्काभावात् फलं गर्भाशयम् आवृत्य तिष्ठन्ति ॥

गयदासस्त्वाह ।

स्त्रीणां मांसपेश्यस्त्रिभिर्हीनानि पञ्चशतानि॥

तथा च भोजः ।

पञ्चत्रिंशशतान्येव स्त्रीवर्गे विद्धि भूमिप॥ अतश्च तिस्रो हीयन्ते स्त्रीणां शेफसि मुष्कयोः॥ १७६ ॥

अथ मांसपेशीनां कर्माण्याह ।

शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि सन्धयश्च शरीरिणाम् ॥ पेशीभिः संवृतान्येव बलवन्ति भवन्ति हि ॥ १७७ ॥

प्राणियोंकी शिरा (नस), स्नायु (वायुवाहिनी नाडी), अस्थि (हड्डी), पर्व (पोरुये) और संधि ये सब मांसकी पेशियोंसे लिपटी होनेसे बलवान् होतीहैं ॥ १७७ ॥

अथ मेदसः स्वरूपमाह ।

यन्मांसं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते ॥ तदतीव गुरु स्निग्धं बलकार्यतिबृंहणम् ॥ १७८ ॥

जो मांस अपनी अग्निसे परिपक्व हुआहै उसको मेदा (चर्बी) कहतेहैं. वह अत्यन्त भारी, स्निग्ध, बलकारी और अति बृंहण (पुष्टिकारक है) ॥ १७८ ॥

अथ मेदसः स्थानमाह ।

मेदो हि सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिसंस्थितम्॥ अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ १७९ ॥

सम्पूर्ण जीवोंके मेदा उदर (पेट) में हड्डियोंसे मिलीहुई रहतीहै. इस कारण मेदवाले पुरुषका पेट विशेष करके बढजाताहै अर्थात् इसीकारण मेदस्वी पुरुषका पेट बडा होजाताहै ॥ १७९ ॥

अथ अस्थ्नः स्वरूपमाह ।

मेदो यत्स्वाग्निना पक्वं वायुना चातिशोषितम् ॥ तदस्थिसंज्ञां लभते स सारः सर्वविग्रहे ॥ १८० ॥ अभ्यन्तरगतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः ॥ अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनो ध्रुवम् ॥ १८१ ॥ तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम्॥ अस्थीनि न विनश्यन्ति साराण्येतानि सर्वदा ॥ १८२ ॥

अस्थियोंके सारसे देहको धारण कररहे हे । बहुतकालसे मनुष्योंकी त्वचा, और मांस नष्ट होनेपर भी अस्थि नष्ट नही होती, अत एव सर्व शरीरका सार हड्डिये हैं ॥ ॥ १८० ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

अथ अस्थ्नां संख्यामाह ।

शल्यतन्त्रेऽस्थिखण्डानां शतत्रयमुदाहृतम् ॥ तान्येवात्र निगद्यन्ते तेषां स्थानानि यानि च ॥ १८३ ॥ सविंशतिशतं त्वस्थ्नां शाखासु कथितं बुधैः ॥ पार्श्वयोः श्रोणिफलके वक्षःपृष्ठोदरेषु च ॥ १८४ ॥ जानीयाद्भिषगेतेषु शतं सप्तदशोत्तरम् ॥ ग्रीवायामूर्द्ध्वगां विद्यादस्थ्नां षष्टिं त्रिसंयुताम् ॥ १८५ ॥

हड्डियोकी संख्या शल्यतन्त्रमें तीनसौ कहीहैं, उनको और उनके जो जो स्थानहैं उन सबका वर्णन यहाँ करते हैं । शाखा अर्थात् दोनो हाथो और दोनो पैरोंमे विद्वानोंने एकसौ बीस (१२०) हड्डी कहीहै । दोनो पसली, कमर, नितम्ब, वक्षःस्थल, पीठ और पेट इनमे एकसौ सत्रह (११७) अस्थिहैं और गरदन तथा गरदनके ऊपर तिरसठ (६३) अस्थिहै ॥ १८३ ॥ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

तानि शाखागतान्याह ।

एकैकस्यां पादांगुल्यां त्रीणित्रीणि तानि पञ्चदश १५ । पादतले पञ्चास्थिशलाकास्तदाधारभूतमेकमस्थि १ एवं षट् ६। कूर्चे द्वे २ । गुल्फे द्वे २। पार्ष्ण्यावेकम् १। जङ्घयोर्द्वे २। जान्वन्येकम् १ । ऊरावेकम् १। एवं त्रिंशदेकस्मिन्सक्थिनि भवन्ति । एतेन इतरसक्थिनि बाहू च व्याख्यातौ ॥

एक एक अंगुलीमें तीन तीन, इसप्रकार पाँचों अंगुलियोंमे पंद्रह (१५), पाँवके तलुएमें पाँच (५) अस्थि शलाका(सलाई)हैं और उसके आधारभूत एक(१) अस्थिहै, इस प्रकार छः हुई । कूर्च (घाई) में दो(२), जानुमे गुल्फ (गट्टा) मे दो (२),एडीमे एक (१), जघांमे दो (२), जानुमे एक (१), ऊरु (घुटनो) मे एक (१), सक्थि में (१), इस प्रकार एक पाँवमे तीस तथा दूसरे पाँवमे तीस ये सब साठ (६०) हुई और साठ (६०) दोनो हाथोमे इस भांति कुल अस्थि शाखाओंमे एकसौ बीस (१२०) हैं ॥

अथ पार्श्वादिगतान्याह ।

पार्श्वयोः षट्त्रिंशत्-षट्त्रिंशत् ७२ । गुदे एकम् १। शिश्ने भगे वा एकम् १। नितम्बयोरेकैकम् २ । त्रिके एकम् १ । वक्षसि अष्टौ ८। पृष्ठे त्रिंशत् ३० । अक्षकसंज्ञे द्वे २ ॥

दोनो पसलियोमे छत्तीस (३६–३६), गुदामें (१), लिंग या भगमे एक (१), नितम्बोंमे एक एक (१–१), त्रिकमे एक (१), वक्षःस्थल (हृदय) में आठ (८), पीठमे तीस (३०) और अक्षक (हँसली) मे दो(२)॥

अथ ग्रीवोर्द्ध्वगतान्याह ।

ग्रीवायां नव ९। कण्ठनाड्यां चत्वारि ४। हन्वोरेकैकम् २ । दन्ताः द्वात्रिंशत् ३२ । नासायां त्रीणि ३ । तालुनि एकम् १ । गण्डयोरेकैकम् २ । कर्णयोरेकैकम् २ । भ्रुवोरेकैकम् २ । शिरसि षट् ६ ॥

गरदनमे नौ (९), कंठमे चार (४), हनु (जाबडोमें) एक एक इसप्रकार दो (२), दाँतोमे बत्तीस (३२), नाकमे तीन (३), तालुमे एक (१), गालोंमे एक एक इस प्रकार (२), दोनो कानोमे (२) और दोनो भौंओमे (२), शिरमे छः (६) इस भांति कुल तिरसठ (६३) हड्डी गरदनके ऊपरके भागमे हैं ॥

एतानि अस्थीनि पञ्चविधानि भवन्ति । तानि यथा ।

तरुणानि कपालानि रुचकानि भवन्ति हि॥ वलयानीति तानि स्युर्नलकानि च कानिचित् ॥ १८६॥ अक्षिकोशश्रुतिघ्राणग्रीवासु तरुणानि च ॥ शिरःशङ्खकपोलेषु तात्वंसप्रोथजानुषु ॥ १८७॥ कपालानि भवन्त्येषु दन्तेषु रुचकानि च॥ पाण्योः पार्श्वयुगे पृष्ठे वक्षोजठरपायुषु ॥ १८८॥ पादयोर्वलयानि स्युर्नलकानि ब्रुवेऽधुना ॥ हस्तपादाङ्गुलितले कूर्चे च माणबन्धके॥ बाहुजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नलकानि तु १८९

जानुनितम्बांसगण्डतालुशखङ्खशिरःसु कपालानि । दशनास्तु रुचकाः ॥

यह अस्थि (हड्डी) पांच प्रकारकी हैं । इनमे कोई तरुण, कोई कपाल, कोई रुचक, कोई वलय और कोई नलक हैं । अक्षिकोष (गोलक), कान, नाक और गरदनमे जो अस्थिहैं वे तरुण सज्ञकहैं । शिर, शख (मस्तककी हड्डी), कपोल, तालु, कधे, कूले और जानु (घुटने) मे जो अस्थि हैं वे कपाल सज्ञकहैं । दॉतोमे जो अस्थि हैं वे रुचक सज्ञकहैं । दोनो हाथ दोनो पसली, पीठ वक्षःस्थल, पेट, गुदा और दोनो पॉव इनमे जो हड्डी है वे वलय सज्ञकहैं । हाथ पॉवकी अगुलियोके नीचे, कूर्च मणिबन्ध (पहुँचो) मे, भुजा और दोनो जाङ्घोमे जो अस्थिहैं वे नलक सज्ञकहैं ॥ १८६–१८९ ॥

अथ अस्थ्नां प्रयोजनमाह ।

मांसान्यन्त्राणि बद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा ॥ अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न दीर्य्यन्ते पतन्ति च ॥ १९० ॥

शिरा (नस) और स्नायु (बडी नस) से देहका मांस और ऑंत बॅंधी हुई हैं वे अस्थियोंका अवलवन करके न फटती है और न गिरती हैं ॥ १९० ॥

अथ मज्जास्वरूपमाह ।

अस्थि यत्स्वाग्निना पक्कं तस्य सारो भवेद्घनः॥ यः स्वेदवत्पृथग्भूतः स मज्जेत्यभिधीयते ॥ १९१ ॥

अपनी अग्निसे जब अस्थि पक जाती है तब उसका कठोर रूप सार होताहै वह स्वेदवत् अर्थात् पसीनेके सदृश पृथग् होजाताहै उसका नाम मज्जा है ॥ १९१ ॥

अथ मज्जास्थानमाह ।

स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यन्तरे स्थितः ॥ १९२ ॥

विशेष करके मज्जा मोटी मोटी हड्डियोके भीतर रहतीहै ॥ १९२ ॥

अथ शुक्रस्योत्पत्तिमाह ।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते॥ मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रस्य सम्भवः ॥ १९३ ॥ शुक्रस्येति वचनेन शुक्रसम्भव उक्तः ॥

रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, मांससे मेदा, मेदासे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे वीर्य उत्पन्न होताहै ॥ १९३ ॥

आहारादिगतिः ।

ननु मांसेन रसः शुक्रो भवति स्त्रीणां च आर्त्तवं भवतीति सुश्रुतस्यैव वचनेन रसादेव शुक्रस्य उत्पत्तिरुच्यते । तदेतत् कथं सङ्गच्छते इममेव सन्देहं दूरीकर्तुम् आहारादेर्गतिं परिणामं चाह ।

कोई शका करै कि, एक महीनेमे रससे पुरुषके तौ वीर्य बनताहै, और स्त्रीके उस रससे आर्तव बनताहै, इस प्रकार सुश्रुतके वचनानुसार रससे वीर्य होना कहा है फिर मज्जासे वीर्य उत्पन्न होना कैसे सभव होसक्ता है ? यह शंका दूर करनेके लिये आहारादिककी गति और परिणाम कहते हैं ॥

यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः ॥ माधुर्य्यं फेनभावं च षड्रसोऽपि लभेत सः ॥ १९४ ॥

आहार इत्यत्र आह्रियते इति आहारः । अकर्त्तरि च कारके संज्ञायामिति सूत्रेण कर्म्मणि घञ् । स च षड्विधः ॥

प्रथम प्राणवायुसे प्रेरित होकर आहार आमाशयमे जाताहै, वह आहार छः रसयुक्त होनेपर भी वहां जाकर मधुर और झागोवाला होजाताहै ॥ १९४ ॥

तथा च–आहार्य्यं षड्विधं भोज्यं भक्ष्यं चर्व्यं तथैव च ॥ लेह्यं चोष्यं तथा पेयं तदुदाहरणानि तु ॥ १९५ ॥ भोज्यमोदनसूपादि भक्ष्यं मोदकमण्डकम् ॥ चर्व्यं चिपिटधान्यादि रसालादि तु लेह्यते ॥ चोष्यमाम्रफलेक्ष्वादि पीयते पानकं पयः ॥ १९६ ॥

आहार छः प्रकारका है । भोज्य, भक्ष्य, चर्व्य, लेह्य चोष्य और पेय । इनका उदाहरण इस प्रकार है, जैसे–भात दाल आदि भोज्य, लड्डू मठक आदि भक्ष्य, चने, परमल आदि चर्व्य, रसाल (रसयुक्त पदार्थ खीर, रसाला आदि जो चाटकर खाये जॉय)। आदि लेह्य, आम,

ईख (गन्ना) आदि चोष्य और पानी दूध आदि पेय हैं ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

आमाशयमाह चरकः।

नाभिस्तनान्तरे जन्तोराहुरामाशयं बुधाः ॥ इति ॥

नाभि और स्तन इन दोनोंके बीचमे मनुष्योंके आमाशय है ऐसा विद्वान् लोग कहतेहैं।

अत्र विशेषमाह।

नाभेर्वितस्तिमात्रं च कंठदेशात्षडंगुलम् ॥ उरसस्तद्विजानीयाच्छेषं तु हृदयं मतम्॥ ॥१९७॥ उरोरक्ताशयस्तस्मादधः श्लेष्माशयः स्मृतः ॥ आमाशयस्तु तदधस्तदधो दहनाशयः ॥ १९८ ॥ इति ॥

प्राणानिलेरित इति। हृदयाधिष्ठानेन प्राणनाम्ना वायुना मुखं गतेन अन्तः प्रवेशितः। तथा च सुश्रुतः—यो वायुः प्राणनामाऽसौ मुखं गच्छति देहधृक् ॥ सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥ १९९ ॥

क्लेदननामा कफः क्लेदयति। क्लेदनात्संहतं भिनत्ति च ॥

उक्तश्च सुश्रुते—क्लेदनः क्लेदयत्यन्नं संहतं च भिनत्त्यतः ॥ २०० ॥ इति ॥

स आहारः षड्रसोऽप्यामाशये माधुर्य्यं लभते आमाशयस्थस्य मधुरस्य कफस्य योगात् ॥

नाभिसे एक बालिस्त ऊपर, और कण्ठदेशसे छः अंगुल नीचे, इतना भाग उरस्थान (छाती) है और शेष स्थान हृदय कहलाता है। उरके नीचे रक्तस्थान है अर्थात् रक्ताशयहै। उसके नीचे श्लेष्माशय (कफका स्थान) है। उसके नीचे आमाशय है। और उसके नीचे दहनाशय (अग्निका स्थान) है। 'प्राणवायुसे प्रेरणा पाकर' इस प्रकार पूर्वमे लिखा है इसका अर्थ ऐसाहै कि—हृदयमे रहनेवाली प्राणवायु मुखमे जाकर आहारको प्रवेश करती है, ऐसा सुश्रुतका वाक्यहै कि—जो प्राणनामक वायु है वह मनुष्यके मुखमें जाकर अन्नको प्रवेश करती है। और प्राणोंको भी अवलम्बन करतीहै। क्लेदन नामक कफ आहारको भी भिगोताहै। और भीगे हुए एकत्र अन्नको पृथक् २ करताहै। ऐसाही सुश्रुत कहते हैं कि, क्लेदन नामक कफ अन्नको भिगोता है तथा वह इकट्ठे हुए आहारको अलग अलग करताहै। वह आहार छः रस युक्त होकर भी आमाशयमे जाकर मधुरताको प्राप्त होताहै क्योंकि आमाशयमें रहनेवाले मधुर कफका सयोग होताहै ॥ १९७–२०० ॥

श्लेष्मस्वरूपम्।

उक्तं च—श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतलस्तथा ॥ तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥ फेनभावश्च लभते जठरानलतेजसा ॥ २०१ ॥

यत आह वाग्भटः—सन्धुक्षितः समानेन पचत्यामाशयस्थितम् ॥ औदर्य्योऽग्निर्यथा बाह्यः स्थालीस्थं तोयतण्डुलम् २०२ इति ॥

अथ स एवाहारः प्राणवायुना प्रेरितस्ततः किञ्चित् स्खलितः पाचकाख्यपित्तोष्मणा यत्पक्वोऽम्लरसो भवति। उक्तश्च।

अथ पाचकपित्तेन विदग्धं चाम्लतां व्रजेत् ॥ २०३ ॥

पाचकपित्तेन पाचकपित्तस्योष्मणा। ततः स एवाहारो नाभिमण्डलाधिष्ठानेन समाननाम्ना वायुना प्रेरितो ग्रहणीमभिनीयते।

कफ, श्वेत, भारी स्निग्ध, पिच्छिल, शीतल, तमोगुणयुक्त, स्वादु, और विदग्ध होनेसे खारीहै तथा जठराग्निकी उष्णतासे फेनभाव (झागोंकी सदृशता) को प्राप्त होजाताहै। जैसे वाग्भटमें कहाहै कि—जिस प्रकार हॉडीमे रक्खे हुए पानी और चावलोंको बाहरकी अग्नि पका देतीहै, वैसेही समान वायुसे प्रज्वलितहुई जठराग्नि आमाशयमें स्थित आहारको पका देतीहै। फिर वह आहार प्राणवायुसे प्रेरित हुआ तथा किञ्चित् स्खलित हो (गिरकर) पाचक पित्तकी उष्णतासे पककर अम्लरसयुक्त होजाताहै। जैसे कहाहै कि—पाचक नाम पित्तकी अग्निसे विदग्ध होकर वह आहार अम्लता (खट्टापन) को प्राप्त होजाताहै, पश्चात् वह आहार नाभिमण्डलमें रहनेवाली समान नामक वायुसे प्रेरित हुआ ग्रहणीकी ओर जाताहै ॥ २०१–२०३ ॥

ग्रहणीलक्षणमाह ।

षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्त्तिता ॥ आमपक्वाशयान्तःस्था ग्रहणी साऽभिधीयते ॥ २०४ ॥

पित्तधरा पाचकाख्यं पित्तं यदग्न्याधिष्ठानं तद्धारयति तत्र ग्रहण्यामामाशय-पक्वाशय-मध्यवर्त्ति-पाचकाख्य-पित्ताधिष्ठानेन अग्निना आहारः पच्यते, स कटूष्मा भवति इति आह । तथा च ।

ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठे वह्निना जायते कटुः ॥ २०५ ॥

अयमर्थः-आहारो ग्रहण्यां कोष्ठवह्निना ग्रहणीस्थितपाचकपित्तेन वह्निना पच्यते पच्यमानः स ग्रहणीस्थितस्य कटुरसस्य योगात् कटुर्भवति ॥

आमाशय और पक्वाशयके मध्यमे रहनेवाली पित्तधरा नामक जो छठी कला है उसको ग्रहणी कहते हैं । पाचक नामक पित्तको जो अग्निका अधिष्ठान उसको धारण करताह इस कारण वह पित्तधरा कहलातीहै । वहा ग्रहणाम आमाशय तथा पक्वाशयके मध्यमें रहने वाले पाचक नामक पित्तकी अग्निसे आहार पचताहै । वह कटु तथा गरम होताहै । तहाँ कहतेहैं कि-आहार ग्रहणीमे पचताहै और कोठेमें रहनेवाली अग्निसे कटु (चरपरा) होताहै । इसका यह अर्थ है कि-ग्रहणीमें कोठेकी अग्निसे अर्थात् पाचक पित्तरूप अग्निसे आहार पचताहै । और पचते समय उस ग्रहणीमे रहनेवालेके तीक्ष्ण रसके योगसे कटु होजाताहै ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

आहारस्य पाचनम् ।

एतदाहारपाके विशेषमाह-शरीरं पाञ्चभौतिकम्।तत्र पञ्चसु भूतेषु पञ्चाग्नयस्तिष्ठन्ति इत्याह चरकः ।

भौमाप्याग्नेयवायव्यां पंचोष्माणः सनाभसाः ॥ पंचाहारगुणान्स्वान्स्वान्पार्थिवादीन्पचन्त्यनु ॥ २०६ ॥

अत्रोष्मपदेन अग्निरुच्यते । आहारोऽपि पांचभौतिकः।तत्र पाचकपित्तस्थेन अग्निना उत्तेजितेन शरीरवर्तिना भूभागाग्निना आहार वर्तिभूभागः पच्यते । पक्वो भूभागः स्वकीयान् गुणान् अभिवर्धयति । एवं जलादिभागा अपि पच्यंते । तथा च सुश्रुते ।

पंचभूतात्मके देहे आहारः पांचभौतिकः॥ विपक्वः पंचधा सम्यग्गुणान्स्वानभिवर्धयेत् ॥ २०७॥ इति ॥

गुणशब्देन अत्र गुणिनः पृथिव्यादय उच्यंते । तेन गुणान् शरीरवर्तिनः पार्थिवादीन् भागान् अभिवर्द्धयेदित्यर्थः ।

एवम् अहोरात्रेण पक्व आहारो मिष्टःपटुश्च मधुरो भवति । अम्लस्त्वम्लो भवति । कटुस्तिक्तः,कषायश्च कटुर्भवति। उक्तं च ।

मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः॥ कटुतिक्तकषायाणां विपाको जायते कटुः ॥ २०८ ॥ इति ॥

शरीर पचभूतात्मक है, उन पांचभूतोमे पांच अग्नि रहतीहैं । चरक कहताहै कि-भौम (भूमि सबन्धी), आप्य (जलसबधी), आग्नेय (अग्निसबधी), वायव्य (वायुसबधी) और नाभस (आकाश सबधी) ये पांच ऊष्मा पृथ्वी संबधी आदि अपने अपने आहारके गुणोको पाचन करतीहैं (यहाँ ऊष्मा पदसे अग्नि कहीहै) । आहारभी पांचभौतिक है, उसमे पाचकपित्तस्थ अग्निसे उत्तेजित होकर शरीरकी भौमाग्निसे आहारका भूमिभाग पचाताहै, पक्व हुआ पृथ्वीभाग अपने गुणोंको बढाताहै, इसी प्रकार जलादिक भागभी पचताहै । तैसेही सुश्रुतमे कहाहै कि-पञ्चभूतात्मक शरीरमे आहारभी पांचभौतिक है, वह पांच प्रकारसे पचकर अपने अपने गुणोकी वृद्धि करताहै । (यहाँ गुणशब्द करके गुण युक्त पृथ्वी आदिक कहनेका प्रयोजनहै. उसमें ऐसा समझना कि-गुणोकी अर्थात् शरीरमे रहनेवाले पृथ्वी आदिक भागोंकी वृद्धि करताहै, इसप्रकार एक दिन रातमे मिष्ट (मीठा) और नमकीन आहार पचकर मधुर रसवाला होताहै । खट्टे आहारका परिपाक खट्टाही होताहै । कटु, तिक्त और कषैले स्वादवाले आहारका परिपाक कडुही होताहै ॥ २०६-२०८॥

आहारस्य रसः ।

एवं विपक्वस्य आहारस्य सारो निगदितो

रसः शेषो ग्रहणीस्थो मलद्रवः मलद्रवस्य जलभागः शिराभिर्वस्तिनीतो मूत्रं भवति ।
उक्तश्च-आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः ॥ शिराभिस्तज्जलं नीतं वस्तिं मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥ २०९ ॥ शेषं किट्टश्च यत्तस्य तत्पुरीषं निगद्यते॥ समानवायुना नीतं तत्तिष्ठति मलाशये ॥ २१० ॥

इस प्रकार पके हुए आहारके सारको रस कहतेह. और उसका शेष ग्रहणीमे स्थित भाग मलद्रव है इस मलद्रवमेसे जलका भाग शिराओके द्वारा वस्ति (मूत्राशय) मे जाताहै तथा वहही मूत्र बनताहै । जैसे कहाहै कि--आहारका सार रस है, सारहीनभाग मलद्रव कहलाता है उस मालद्रवका जल शिराओ करके वस्तिमें जाताहै वहां वस्तिमे मूत्रताको प्राप्त होताहै । शेष जो किट्ट (मल) रहा उसको विष्ठा कहतेहै । वह विष्ठा समान वायु द्वारा मलाशयमे जाकर ठहरती है ॥ २०९ ॥ २१० ॥

मूत्रपुरीषस्य निगर्मः ।

तत्र मलाशयस्थेन अपानवायुना प्रेरितं मूत्रं मेढ्रभगमार्गेण,पुरीषं गुदमार्गेण शरीराद्बहिर्याति । उक्तश्च--
मूत्रं चोपस्थमार्गेण पुरीषं गुदमार्गतः॥अपानवायुना क्षिप्तं बहिर्याति शरीरतः ॥२११॥ उपस्थः शिश्नो भगश्च ॥

वह मूत्र मलाशयमे रहनेवाली अपानवायुसे प्रेरित होकर लिंग तथा योनिमार्गद्वारा बाहर निकलताहै । और विष्ठा गुदाके मार्गद्वारा शरीरसे बाहर होताहै कहाभीहै कि-अपान वायुसे प्रेरित होकर मूत्र उपस्थ इन्द्रियके मार्गद्वारा और विष्ठा गुदाकेद्वारा शरीरसे बाहर निकलताहै । (उपस्थ शब्दसे लिंग और योनि जानना) ॥ २११ ॥

रसस्य गमनं परिणामश्च ।

रसस्तु समानवायुना प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकस्य रसस्य स्थानं हृदयं गत्वा तेन सह मिश्रितो भवति-इत्याह ।
रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः॥ स तु व्यानेन विक्षिप्तः सर्वान्धातून्विवर्धयेत् ॥२१२॥ केदारेषु यथा कुल्याः पुष्णन्ति विविधौषधीः ॥ तथा कलेवरे धातून्सर्वान्वर्धयते रसः ॥ २१३ ॥

समानवायुसे प्रेरित होकर रस धमनीके मार्गद्वारा शरीरका आरभ करनेवाला रसका स्थान जो हृदय है उसमे जाकर उसके साथ मिलजाताहै. कहाभीहै कि--समानवायुसे प्रेरित हुआ रस हृदयमें जाताहै तथा वहां व्यानवायुसे फैलाया हुआ सर्व धातुओको बढाताहै जिस प्रकार खेतकी क्यारियोंमे कुल्या (छोटी तलैया) छोटी नालियों (नहरो) का पानी नाना प्रकारकी औषधियोंको पुष्टकरताहै उसी प्रकार रस शरीरमें सर्व धातुओकी वृद्धि करताहै ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

रसस्तु तत्रतत्र त्रिधा विभज्यते ।

उक्तश्च चरकेण ।

स्थूलः सूक्ष्मस्तन्मलश्च तत्रतत्र त्रिधा रसः ॥ स्वं स्थूलोंऽशः परं सूक्ष्मस्तन्मलो याति तन्मलम् ॥ २१४ ॥
अयमर्थः-स्थूलोंऽशः स्वं याति यथास्थितस्तिष्ठति । सूक्ष्मस्त्वंशः परं द्वितीयं धातुं याति । तन्मलः रसादिमलः तन्मलं शरीरारम्भकं तत्तद्धातुमलं यातीत्यर्थः ॥
यथा लौकिकाग्निना इक्षुरसः पच्यते तथा शरीरारम्भकस्य रसस्य अग्निना आहाररसः पच्यते । स पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धदण्डमेकश्च यावत् प्राक्तनरसधातावेव तिष्ठति ।
उक्तं च सुश्रुते--स खलु रसः त्रीणित्रीणि कलासहस्राणि पञ्चदश कला एकैकस्मिन् धातौ उपतिष्ठते । तत्र कलानां विंशतिः मुहूर्त्तः स दण्डद्वयात्मकः,इत्यभिप्रेत्य आह॥

तथा च भोजः ।

धातौ रसादौ मज्जान्ते प्रत्येकं क्रमतो रसः॥ अहोरात्रात्स्वयं पंच सार्द्धं दण्डं च तिष्ठति ॥ २१५ ॥
प्रत्येकमेकैकस्मिन्नित्यर्थः ।

उस स्थानमें जाकर रसके तीनभाग होते हैं । चरकमें भी कहाहै कि "उसस्थलमे वह रस तीन प्रकारका

प्रकार पहिली शेष रही हुई रक्तकी अग्निसे वारवार पककर आहाररससे वारंवार मल निकलताहै। वहाँ रक्तकी अग्नि करके पके हुए रसमेंसे पित्त निकलताहै, वह पित्त समानवायुसे प्रेरित धमनियोंके मार्ग द्वारा शरीरारम्भक पाचक पित्तमें जाकर उसको पुष्ट करताहै, पीछे सारभूत आहारके रसके दो भाग होते हैं एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, इनमेंसे सूक्ष्म भाग रञ्जक अग्निरूप पित्तसे रक्तरूप होताहै. तथा वह शरीरारम्भक रक्तका पोषण करताहै। वह व्यानवायुसे प्रेरित हो धमनीके मार्ग द्वारा जाकर सम्पूर्ण शरीरके रुधिरका पोषण करताहै॥

कर्णमलस्योत्पत्तिः।

ततः स्थूलो भागः व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च शरीरारम्भकाणि मांसानि याति। ततो मांसाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धदण्डश्च यावत् मांसेष्वेव तिष्ठति। ततः पच्यमानात् तस्मात् मलं निर्गच्छति। तद्व्यानवायुना क्षिप्तं कर्णौ आगत्य कर्णविड् भवति। ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च। ततः सूक्ष्मो भागः मांसानि पुष्णाति॥

पश्चात् रसका स्थूलभाग व्यानवायुकी प्रेरणासे धमनियोंके मार्ग तथा शिराओंके मार्गद्वारा शरीरारम्भक मांसमें जाताहै, फिर मांसाग्निसे पचकर पांच अहोरात्र (दिनरात) तथा डेढघडी पर्यन्त मांसमें रहताहै, पीछे पाचन हो होकर उसमेंसे मल निकलताहै, वह मल शीघ्रतासे दोनों कानोंमें जाकर उसका मल होताहै। पश्चात् सारभूत रसके दो भाग होतेहैं एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म, सूक्ष्म भाग मांसका पोषण करताहै॥

प्रस्वेदस्योत्पत्तिः।

ततः स्थूलो भागो व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शरीरारम्भकस्य मेदसः स्थानमुदरं याति। ततो मेदसोऽग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धदण्डं च यावत् मेदसि एव तिष्ठति। ततः पच्यमानात् तस्मात् मलो निर्गच्छति प्रस्वेदरूपः। स च शीतः स्रोतसि एव तिष्ठति। शरीरोष्मणा तप्तश्चेत् तदा व्यानवायुना प्रेरितः शिरामार्गैः लोमकूपेभ्यो बहिर्याति। जिह्वादन्तकक्षामेढ्रादिमलश्च मेदोमलमित्येके। ततः सारभूतरसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च। तत्र सूक्ष्मो भागः मेदः पुष्णाति उदरे तिष्ठन्॥

पश्चात् स्थूलभाग व्यानवायुसे प्रेरित होकर धमनियोंके मार्गद्वारा शरीरारम्भक मेदके स्थान उदरमें जाताहै. तदनंतर मेदकी अग्निमें फिर पचने लगताहै तथा पाँच अहोरात्र और डेढघडी पर्यन्त मेदामेंही रहताहै, पीछे पकजानेपर उसमेंसे प्रस्वेद (पसीना) रूप मल निकलताहै वह शीतल होनेसे स्रोतोमेंही रहताहै, जब वह शरीरकी गरमीसे तपताहै. तब व्यानवायुसे प्रेरित शिराओंके मार्गद्वारा रोमोंके छिद्रोंमें होकर बाहर निकलताहै। जीभ, दाँत, कांख (बगल) लिंग आदिका जो मल है वह मेदका मल है ऐसा किसी २ का मत है। तत्पश्चात् सारभूत रसके दो भाग होते हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, उसमेंसे सूक्ष्मभाग उदरमें रहकर मेदका पोषण करता है॥

नखस्योत्पत्तिः।

स्थूलो भागः व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च शरीरारम्भकाणि अस्थीनि याति ततः अस्थ्यग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्ध दण्डश्च यावत् अस्थिष्वेव तिष्ठति। ततः पच्यमानात् तस्मात् मलो निर्गच्छति, स च व्यानवायुना प्रेरितः शिराभिः मार्गेण आगत्यागत्य अंगुलिषु नखाः तनौ लोमानि च भवन्ति। ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मभागो अस्थीनि पुष्णाति॥

तदनतर उसका स्थूलभाग व्यानवायुसे प्रेरित धमनी और शिराओंके मार्गद्वारा शरीरारम्भक अस्थि (हड्डियों) में जाताहै, पीछे अस्थियोंमें रहनेवाली अग्निसे पचकर पांच अहोरात्र और डेढ़घडी पर्यन्त अस्थियोंमेंही रहताहै पश्चात् पाचन होते समय उसमेंसे मल निकलताहै वह व्यानवायुकी प्रेरणासे शिराओंके मार्गद्वारा अंगुलियोंमें आकर नख होजाते है तथा रोम होते हैं पश्चात् सारभूत रसके दोभाग होतेहैं एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, उनमेंसे सूक्ष्मभाग अस्थियोका पोषण करता है॥

नेत्रमलस्योत्पत्तिः।

ततः स्थूलभागो व्यानवायुना प्रेरितः स्रोतोमार्गैः मज्जस्थानानि स्थूलास्थ्यभ्यन्त

राणि याति। ततो मज्जाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धदंडश्च यावत् मज्जनि एव तिष्ठति। ततः पच्यमानात् तस्मात् मलं निर्गच्छति। तच्च व्यानवायुना प्रेरितं शिरामार्गैर्नयनयोरागत्य नेत्रविट्त्वक्षु स्नेहश्च भवति। ततः सारभूतस्य द्वौ भागौ भवतः, स्थूलः सूक्ष्मश्च। तत्र सूक्ष्मभागो मज्जानं पुष्णाति॥

पश्चात् स्थूलभाग व्यानवायुकी प्रेरणासे शिराओंके मार्ग द्वारा मज्जा, नाभि और अस्थियोंके भीतरके भागमें जाता है तदनन्तर मज्जामें रहनेवाली अग्निसे पचकर पाँच अहोरात्र और डेढ घडीपर्यन्त मज्जामें ही रहता है, पीछे पाचन होते समय उसमेंसे मल निकलताहै, वह मल व्यानवायुकी प्रेरणासे शिराओंके मार्गद्वारा दोनो नेत्रोंमें आकर नेत्रमल (कीचड) और चक्षुःस्नेह (नेत्रोंकी चिकनाई) होजाताहै, तत्पश्चात् सारभूत पदार्थके दो भाग होते हैं एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, सूक्ष्मभाग मज्जाका पोषण करताहै॥

शुक्रस्योत्पत्तिः।

ततः स्थूलो भागो व्यानवायुना प्रेरितः धमनीभिः शिराभिश्च शुक्रस्य स्थानं सकलं शरीरं गत्वा शरीरारम्भकेण शुक्रेण सह मिश्रितो भवति ततः शुक्रस्य अग्निना पुनः पच्यते पच्यमाने तस्मिन् मलं नास्ति॥

स हि सहस्रधा ध्मातसुवर्णवत् इति उत्तरत्र उपदिश्यते उक्तश्च।

स्वाग्निभिः पच्यमानेषु मलः षट्सु रसादिषु॥ षट्सु धातुषु जायन्ते मलानि मुनयो जगुः ॥ २१७ ॥ यथा सहस्रधाध्माते न मलं किल काञ्चने। तथा रसे मुहुः पक्वे न मलं शुक्रतां गते ॥ २१८ ॥

तदनन्तर उसका स्थूलभाग व्यानवायुकी प्रेरणासे धमनी (नाडी) और शिरा (नसों) के मार्गद्वारा वीर्यका स्थान जो सम्पूर्ण शरीर है उसमें जाकर शरीरारम्भक वीर्यके साथ मिश्रित होता है, पीछे वीर्यमें रहनेवाली अग्निसे फिर उसका पाचन होताहै, पाचन होते समय उसमें मैल नहीं होता, क्योंकि वीर्य तो हजार वार तपाये हुए सुवर्णके सदृश है। कहाहै कि—रसादिक छहों धातुओंमें रहनेवाली अग्निसे पकेहुए रसको आदि लेकर छहों धातुओंमें मल निकलता है ऐसा मुनिजन कहतेहैं, परन्तु जिसप्रकार हजार वार तपाये हुए सुवर्णमें मल नहीं निकलता उसी प्रकार वारम्वार पकेहुए तथा वीर्यरूप हुए रसमेंसे मल नहीं निकलता ॥ २१७ ॥ २१८ ॥

ओजस उत्पत्तिः।

ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च। तत्र सूक्ष्मः स्नेहभागः ओजः तस्य लक्षणमाह।

ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम्॥ सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम् ॥ २१९ ॥

बलं चेष्टापाटवम्॥

तथा च—

चेष्टासु पाटवं यत्तु बलं तदभिधीयते॥२२०॥ यत्तु सुश्रुते रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खलु तेजस्तदेव बलमिति। तेजस्तेजोद्भवः। अत्रायमभिप्रायः—यस्मात् रसादोजो भवति स रसः सर्वधातुस्थानगत्वात् तत्तद्धातुवत् मन्यत इति सर्वधातूनां स्नेहमोजः, क्षीरे घृतमिव तदेव बलमिति तत्कार्य्यकारणयोरभेदोपचारात्। अभेदकथनञ्च चिकित्सैक्यार्थम्॥

पश्चात् सारभूत रसके दोभाग होते हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, उसमेंसे सूक्ष्मभाग—स्नेहभागको ओज कहते है, उसका लक्षण कहते हैं कि—" ओज सम्पूर्ण शरीरमें रहता है, स्निग्ध शीतल, स्थिर, श्वेत, सोमात्मक और शरीरमें बल तथा पुष्टि करनेवाला है।" (बल अर्थात् चेष्टाकी समर्थता) सोई कहाहै कि "चेष्टामें जो चतुरता (समर्थता फुर्त्ती) है उसकोही बल कहते हैं"।

सुश्रुतमें जो ऐसा कहाहै कि—"रसको आदि लेकर वीर्य पर्यन्त धातुओंमें जो परम तेज है वह धातुओंमेंसे उत्पन्न हुआ है उसीको बल कहाहै।" इसका यह अभिप्राय है कि—जो रसमेंसे ओज होता है वह रस सम्पूर्ण धातुओंके स्थानमें जाता है इसकारण वह धातुके सदृश माना जाता है इस प्रकार सर्व धातुओंका स्नेह ओज है, जिस प्रकार दूधमें घी होताहै उसी प्रकार उसमें बल है, क्योंकि उसके कार्य कारणका उपचार अभेदरूप है इसी कारण 'अभेदरूप' कहाहै। यहां तेज और बलकी ऐक्यता चिकित्साकी ऐक्यताके लिये कहीहै ॥ २१९॥२२० ॥

ओजसो गुणाः।

अन्यच्च—गुरु शीतं मृदु स्निग्धं सांद्रं स्वादु स्थिरं तथा ॥ प्रसन्नं पिच्छिलं सूक्ष्ममोजो दशगुणं स्मृतम् ॥ २२१ ॥
चरके तु—अष्टबिंदुप्रमाणं तदीषद्रक्तं सपीतकम् ॥ अग्निसोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितं तु तत् ॥२२२॥ वाग्भटश्च—ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रांतानां परं स्मृतम् ॥ हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबंधनम् ॥ ॥ २२३ ॥ यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयाः॥ यन्नाशे नियतो नाशो यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम् ॥ २२४ ॥ निष्पद्यंते यतो भावा विविधा देहसंश्रयाः॥उत्साहप्रतिभाधैर्य्यलावण्यसुकुमारताः ॥२२५॥

भारी, शीतल, मृदु, स्निग्ध, सान्द्र (गीला) स्वादु, स्थिर, निर्मल, पिच्छिल और सूक्ष्म, इन दश गुणोंयुक्त ओज कहाता है चरकमे तो आठ बिंदु प्रमाण, कुछ लाल और पीले रंगका कहा है और अग्नि सोमात्मक होनेके कारण दो रूपवाला कहागयाहै। वाग्भटभी कहते हैं कि— रससे लेकर शुक्रतक सब धातुओंका परमोत्तम जो तेज है वही ओज है। वह हृदयमें रहता है, तथापि सपूर्ण शरीरमें व्याप्त है, तथा देहकी स्थितिको धारण करताहै। जब वह ओज बढताहै तबही तुष्टि, पुष्टि और बलका उदय होताहै, और उसके नाश होनेसे देहका भी नाश होता है, और ओजके रहनेसे प्राणींका जीवन रहताहै, इसी ओजमें देहके आश्रित रहने वाले, उत्साह, प्रतिबिंब, धैर्य, लावण्य और सुकुमारता आदि अनेक प्रकारके भाव प्रगट होते हैं ॥ २२१—२२५ ॥

ततः स्थूलो भागो रसो मासेन पुंसां शुक्रं स्त्रीणां त्वार्त्तवं शुक्रश्च भवति। उक्तश्च सुश्रुते—एवं मासेन रसः शुक्रो भवति। स्त्रीणाश्चेति चकारात् स्त्रीणामपि शुक्रं भवति अत एवोक्तं सुश्रुते—
योषितोऽपि स्रवत्येवं शुक्रं पुंसः समागमे ॥ तत्र गर्भस्य किञ्चित्तु करोतीति न चिन्त्यते ॥ २२६ ॥ गर्भस्य शुद्धस्य विकृतस्य तु गर्भस्य कारणं तदपि भवति। यत उक्तम्।
यदा नार्य्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथश्चन ॥ मुश्चन्त्यौ शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र जायते ॥ २२७ ॥ इति ॥
एतेन स्त्रीणां सप्तमो धातुरार्त्तवं शुक्रमष्टममिति बोधितम्। आशयाधिक्यवत्॥ स्त्रीणां गर्भोपयोगि स्यादार्तवं सर्वसम्मतम् ॥ तासामपि बलं वर्ण शुक्रं पुष्टिं करोति हि ॥ २२८ ॥

पश्चात् उस रसका स्थूल भाग एक महीनेमें पुरुषोंका वीर्य और स्त्रियोंका आर्तव तथा वीर्य होजाता है। सुश्रुतमें भी कहाहै कि—"इसप्रकार रस एक महीनेमें पुरुषोंके वीर्य होताहै तथा स्त्रियोंके भी"। (भी शब्द कहनेसे स्त्रियोंके भी वीर्य होताहै ऐसा जानना) सोही सुश्रुतमें भी कहा है कि, "पुरुषका समागम होनेसे स्त्रीके भी वीर्यपात होता है परन्तु वह वीर्य गर्भोपयोगी नहीं होता इसकारण वह नहीं माना जाता" स्त्रियोंका वीर्य्य यद्यपि शुद्धगर्भको धारण नहीं करता तथापि विकृत गर्भका कारण तो होताही है। जैसे कहाहै कि—"जब किसी प्रकार दो स्त्री परस्पर मैथुनकरैं और अन्योन्य वीर्य त्यागैं तब उससे अस्थि रहित गर्भ उत्पन्न होताहै" (इसलिये स्त्रियोंके सप्तम धातु आर्तव और अष्टम धातु वीर्य भी जानना, इसी कारण स्त्रियोंके एक आशय अधिकहै) स्त्रियोंका आर्तव गर्भ धारण करनेमें उपयोगी है ऐसा सबने मानाहै तथा वीर्य उसको भी बल, वर्ण और पुष्टि देता है ॥ २२६—२२८ ॥

एवं च—रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ॥ मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रस्य सम्भवः ॥ २२९ ॥
एवं रस एव केदारकुल्यान्यायेन सर्वान् धातून् पूरयन् मासेन नवदण्डोत्तरेण शुक्रमार्तवं भवतीति सिद्धान्तः। एवं सति रसाद्रक्तमिति सङ्गतमेव। ततो मांसं ततो रक्तोत्पत्तेरनन्तरं मांसं जायते रसादेवेत्यर्थः। मांसान्मेदः प्रजायते इति। मांसादनन्तरं मेदः प्रजायते रसादेवेत्यर्थः। मेदसोऽस्थि जायते

रसादेवेत्यर्थः। एवं ततो मज्जा अग्रे शुद्धं शुक्रं सम्भवतीत्यर्थः॥

इसप्रकार केदारकुल्यान्याय करके रसही सम्पूर्ण धातुओंको परिपूर्ण कर एक मास नौ घडीमें वीर्य और आर्तव होताहै यह सिद्धांत है। ऐसा होनेपर रससे रक्त उत्पन्न होताहै, रक्त उत्पन्न होनेसे उसी रससे रुधिरका मांस होताहै, मांससे मेदा होतीहै, (मांस होनेपर रससे मेदा होतीहै)। मेदा होनेपर रससे अस्थि होतीहै, इसीप्रकार रससे मज्जा होतीहै, तदनन्तर रससे शुद्ध वीर्य होताहै॥

रसः शरीरे त्रिधा सञ्चरति इत्याह।

तथा चोक्तम्--रसः शरीरे शब्दार्चिर्जलसन्तानवत्त्रिधा॥ सञ्चरत्यनुरूपोऽयं नित्यमेव हि देहिनाम्॥ २३०॥

अस्यायमभिप्रायः—पुरुषास्तीक्ष्णाग्नयो मध्यमाग्नयो मन्दाग्नयश्च भवन्ति। तत्र तीक्ष्णाग्नीनां स रसः शब्दसन्तानवत् शीघ्रं सञ्चरति। मध्यमाग्नीनामर्चिःसन्तानवत् मध्यवेगेन चरति। मन्दाग्नीनां जलसन्तानवत् मन्दं चरति। तेन मासेन रसात् शुक्रं भवतीति यदुक्तम्, तन्मध्यमाग्नीनधिकृत्य उक्तम्। दीप्ताग्नीनां तु रसः किञ्चिन्न्यूनेन मासेन शुक्रं भवति। मन्दाग्नेः किञ्चिदधिकेन मासेन इति सिद्धान्तः॥

प्राणियोंके शरीरमें रस तीन प्रकारसे विचरता(फिरता) है। सो कहाभीहै कि—"शब्द, अर्चि, (अग्नि) और जलके प्रवाहके सदृश प्राणियोंके शरीरमें अनुरूप यह रस तीन प्रकारसे सदा सञ्चार करताहै, इसका यह अभिप्रायहै कि—पुरुष तीक्ष्णाग्नि, मध्यमाग्नि और मंदाग्नि, इन तीन प्रकारके होते हैं। उनमेंसे तीक्ष्णाग्निवाले जो पुरुष हैं उनके रस शब्दके विस्तारवत् शीघ्रतासे सञ्चार करताहै, मध्यमाग्निवाले पुरुषोंके रस अग्निके विस्तारवत् मध्यमचालसे सञ्चार करताहै, और मन्दाग्निवाले पुरुषोंके जलके विस्तारवत् रस मंदचालसे सञ्चार करता है। इसलिये यह जो कहाहै कि एक महीनेमें रससे वीर्य होताहै वह मध्यम अग्निवालोंके जानना। दीप्ताग्नि वालोंके तौ रस कुछ कम एक महीनेमें वीर्य होजाताहै और मंदाग्नि वालोंके रस एक महीनेसे कुछ अधिक दिनोंमें वीर्य होता है यह सिद्धांत है॥ २२९॥ २३०॥

तर्हि वाजीकरिणीनामौषधीनां किं प्रयोजनमित्याह।

वाजीकरिण्य औषध्यः स्वप्रभावगुणोच्छ्रयात्॥ विरेचयन्ति ताः शुक्रं विरेकिद्रव्यवन्नृणाम्॥ २३१॥

वाजीकरिण्यः याभिः औषधीभिः पुरुषः शुक्राधिक्यात् स्त्रीषु वाजिवत् सामर्थ्यं प्राप्नोति ताः वाजीकरिण्यः स्वप्रभावगुणोच्छ्रयात्। तत्र काश्चिदौषध्यः स्वप्रभावाधिक्यात्, काश्चित् स्वगुणाधिक्यात्, काश्चित् स्वप्रभावगुणाधिक्यात्। तत्र सङ्कल्पपादलेपविशिष्टकान्तास्पर्शादयः स्वप्रभावाधिक्यात् शुक्रं विरेचयन्ति। घृतक्षीरादयः स्वगुणाधिक्यात् स्निग्धत्वाधिक्यात्। माषादयः स्वप्रभावस्निग्धत्वादिगुणाधिक्यात्। वाजीकरिण्य इति बहुवचनमाद्यर्थानुवर्त्तनम्। बल्यबृंहणजीवनीयगणादयः, तद्वत् बोद्धव्याः। विरेचयन्ति स्वप्रभावगुणाधिक्यात् शीघ्रमेव रसाद्युत्पादनपूर्वकं शुक्रं जनयित्वा प्रवर्तयन्ति॥

यत आह उत्तरत्र।

दुग्धं माषाश्च भल्लातः फलमज्जाऽऽमलानि च॥ जनकानि निगद्यन्ते रेचनानि च रेतसः॥ २३२॥

कोई शंका करै कि—जब रससे नियमित समय पर वीर्य उत्पन्न होताहै तौ वाजीकरण औषधियोंका क्या प्रयोजन है? उसका उत्तर कहतेहैं कि—"वाजीकरण औषधियें अपने २ प्रभाव और गुणकी विशेषताके लिये विरेचन (जुलाब) द्रव्यके सदृश मनुष्योंके वीर्यका विरेचन करतीहैं" (वाजीकरण औषधि अर्थात् जिन औषधियोंसे वीर्य अधिक होनेपर पुरुष स्त्रियोंमें घोडेके सदृश सामर्थ्यको प्राप्त होता है उनको वाजीकरण औषधि कहतेहैं) अपने प्रभाव गुणकी विशेषताके लिये, इस कहनेका यह प्रयोजनहै कि—'उनमें कितनीएक औषधियें

अपने प्रभावकी' अधिकतासे और कितनी एक गुणकी अधिकतासे तथा कितनी एक प्रभाव और गुण इन दोनोंकी अधिकतासे वीर्यका विरेचन करतीहैं, उनमें स्त्रीका चितवन-रूप सकल्प, पादलेप, विशेष सुन्दरता आदिक गुणवाली स्त्रियोंका स्पर्श इत्यादि अपने प्रभावकी अधिकतासे वीर्यका विरेचन करतीहैं। घी, दूध आदि अपने गुणकी अधिकतासे, वीर्यका विरेचन करते हैं, उडद आदि स्निग्धत्वादि अपने गुणकी अधिकतासे तथा अपने वीर्यजनक प्रभावकी आधिक्यतासे वीर्यका विरेचन करते हैं। 'वाजीकरण औषधियां' इसमें बहुवचन कहनेका मतलब यहहै कि–इनके सिवाय दूसरी भी औषधियें जो वाजीकरण होयँ तौ उनको भी समझना अर्थात् बलदायक, पुष्टिकर्त्ता, जीवनीय आदि भी औषधियें जाननी। 'विरेचन करती हैं' इसका यह अर्थ है कि–अपने प्रभाव और गुणकी अधिकतासे शीघ्रही रसादिकको उत्पन्न करके वीर्य्यको पैदा करती और निकालती हैं। कहाहै कि–"दूध, उडद, भिलावे फलकी मींग और आमले यह सब औषधियें वीर्यको उत्पन्न करनेवाली तथा प्रवर्तने वाली है।" ॥ २३१–२३२ ॥

ननु बालानां कथं शुक्रं न दृश्यते इत्याह ।

बालानां शुक्रमस्त्येव किन्तु सौक्ष्म्यान्न दृश्यते ॥ पुष्पाणां मुकुले गन्धो यथा सन्नपि नाप्यते ॥ २३३ ॥ तेषां तदेव तारुण्ये पुष्टत्वाद्व्यक्तिमेति हि॥कुसुमानां प्रफुल्लानां गन्धः प्रादुर्भवेद्यथा ॥ २३४ ॥ रोमराज्यादयः पुंसां नारीणामपि यौवने ॥ जायन्तेऽत्र च यो भेदो ज्ञेयो व्याख्यानतः स च ॥ २३५ ॥

व्याख्यानं यथा पुंसां रोमराजीश्मश्रुप्रभृतयः। नारीणां तु रोमराजीस्तनस्तन्यार्तवप्रभृतयः॥

कोई कहै कि–बालकोंके वीर्य क्यों नहीं दीखता? उसका कारण कहतेहैं कि–बालकोंके वीर्य तौ होताहै, परन्तु सूक्ष्म होनेसे दीखना नहीहै, जिस प्रकार पुष्पोंकी कच्ची कलियोंमें गन्ध तौ होती है, परन्तु मालूम नहीं होती, तथा जब फूल खिलता है तब उसकी गंध प्रगट होती है उसी प्रकार बालकोंकेभी वीर्य युवावस्थामें पुष्ट होनेकेकारण प्रकट होता है, इसी प्रकार पुरुष और स्त्रियोंके रोमावली आदि भी युवावस्थामें प्रगट होती है इसका भेदभी इसी प्रकार व्याख्यानसे जानना। (व्याख्यान–अर्थात् जैसे पुरुषके रोमावली ढाढी, मूछ आदि और स्त्रियोंके रोमावली स्तन, स्तनोंमें दूध, आर्तव आदि)॥२३३॥२३४॥२३५

ननु, अन्नरसो वृद्धस्य धातुवृद्धिं कथं न करोतीत्यत आह ।

वार्द्धके वर्द्धमानेन वायुना रसशोषणात्॥ न तथा धातुवृद्धिः स्यात्ततस्तत्रानिलं जयेत् ॥ २३६ ॥

अन्नका रस, वृद्धकी धातुको क्यों नहीं बढाता? ऐसी शंका होनेपर समाधान करतेहैं कि–वृद्धावस्थामें बढे हुए वायुद्वारा रस सूखनेसे युवाओंके सदृश धातुकी वृद्धि नहीं होसक्ती, इसकारण वृद्धकी धातु बढानी होय तो उसकी वायुको जीतैं अर्थात् दूर करै ॥ २३६ ॥

अथ शुक्रस्य स्वरूपमाह ।

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम् ॥ गर्भबीजं वपुःसारो जीवस्याश्रय उत्तमः ॥ २३७ ॥

जीवस्याश्रय उत्तम इत्यत आह।

जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेषतः॥ वीर्य्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणे याति क्षयं क्षणात् ॥ २३८ ॥

वीर्य–सोमात्मक, श्वेत, स्निग्ध, बल और पुष्टिकारक, गर्भका बीज, देहका साररूप और जीवका उत्तम आश्रयरूप कहा है। जीवका उत्तम आश्रय क्याहै? सो कहते हैं कि–जीव सम्पूर्ण देहमें रहता है परंतु विशेष करके वीर्यमें, रुधिरमें और मलमें रहता है इसीलिये वीर्य, रुधिर और मलका क्षय होनेसे एक क्षणमें शरीरकाभी क्षय होजाताहै ॥ २३७ ॥ २३८ ॥

अथ गर्भसञ्जननशुक्रस्य लक्षणमाह ।

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च ॥ शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभञ्च तत् ॥ २३९ ॥

गर्भोत्पत्ति करनेवाला वीर्य्य–स्फटिक मणिके सदृश, निर्मल, प्रवाही, स्निग्ध, मधुर, और मधु (सहत) के सदृश गन्धवाला है। कोई कहते हैं कि तैल और मधुकी समान वर्णवाला वीर्य्य उत्तम होताहै ॥ २३९ ॥

अथ शुक्रस्य स्थानमाह ।

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा॥ एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ॥ २४० ॥

अत्र सर्पिर्दृष्टान्तो बहुशुक्रे अल्पमथनेन सर्पिःशुक्रयोर्लाभात्। इक्षुरसदृष्टान्तस्तु स्वल्पशुक्रे पुंसि अतिपीडनेन इक्षुरसशुक्रयोर्लाभात्।

जिस प्रकार दूधमें घी, तथा ईखमें रस गुप्ततासे रहता है उसी प्रकार देहधारियोंके सम्पूर्ण शरीरमें वीर्य रहताहै । (यहाँ जो घीका दृष्टान्त कहाहै उसमें ऐसा समझना कि- जिस प्रकार दूधको थोडा मथनेसे घी निकल आताहै, वैसे ही बहुवीर्यवाले देहकोभी थोडा मथनेसे वीर्य निकल आताहै)। ईखका दृष्टान्त इसप्रकार जानना कि-जिसप्रकार ईखको-अत्यत पेरनेसे रस निकलताहै उसीप्रकार अल्पवीर्यवाले पुरुषके शरीरमेंसे भी अत्यत मथन करनेसे वीर्य प्राप्त होता है ॥ २४० ॥

अथ शुक्रस्य क्षरणमार्गमाह ।

द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः ॥ मूत्रस्रोतःपथे शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥२४१॥

वृद्धवाग्भटोऽप्याह-सप्तमी शुक्रधरा द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधो मूत्रमार्गमाश्रिता सकलशरीरव्यापिनी शुक्रं प्रवर्त्तयतीति सप्तमी कला ॥

वस्तिद्वारके नीचे और दक्षिण (दाहिने) पार्श्वके दो अंगुलके ऊपर मूत्रवाही शिराओंके मार्गसे पुरुषका वीर्य प्रवृत्त होताहै । वृद्धवाग्भटभी कहतेहैं कि- वस्तिद्वारके नीचे दहिने पार्श्वमें दो अंगुल ऊपर सातमी शुक्रधरा नामक कला जो मूत्रमार्गके आश्रयमें रहतीहै वह सकल शरीरमें व्याप्त होकर वीर्यको प्रवर्ताती है ॥ २४१ ॥

अथ शुक्रक्षरणकारणमाह ।

कृत्स्नदेहस्थितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा ॥ स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते ॥ २४२ ॥

स्त्रीषु व्यायच्छतः स्त्रीसुरतरूपं व्यायामं कुर्वतः ॥

अन्यच्च-शुक्रं कामेन कामिन्या दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ शब्दसंश्रवणाद्ध्यानात्संयोगाच्च प्रवर्तते ॥ २४३ ॥

सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाला वीर्य, जब मनुष्यका मन प्रसन्न होताहै तथा जब स्त्रीके साथ संभोग करते समय हर्ष होताहै तब प्रवृत्त होताहै, (मूलमें 'स्त्रीषु व्यायच्छत' यह पढहै उसका यह अर्थ है कि-स्त्रियाके साथ रतिरूप व्यायाम करते समय) और भी कहाहै कि-' स्त्रीको कामभावसे, दर्शन, स्पर्श, शब्दश्रवण, तथा ध्यानका सयोग होनेसेभी वीर्य प्रवृत्त होताहै ॥ २४२ ॥ २४३ ॥

अथार्तवस्य स्वरूपमाह ।

स्त्रीणां रस एव मासेन आर्तवं भवति इत्युक्त्वा पुनराह शुक्रत एव ।

रसादेव रजः स्त्रीणां मासिमासि त्र्यहं स्रवेत् ॥ तद्वर्षाद्द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥ २४४ ॥ मासेनोपचितं काले धमनीभ्यस्तदार्त्तवम् ॥ ईषद्विवर्णं कृष्णञ्च वायुर्योनिमुखं नयेत् ॥ २४५ ॥

स्त्रियोंके रसही एक महीनेमें आर्तव होताहै, इसप्रकार कहकर फिर कहते हैं कि-वीर्यसेही आर्तव होताहै, रससेही स्त्रियोंके महीने २ तीन दिनतक आर्तव होकर बहताहै वह रज बारह वर्षकी आयुके ऊपर स्रवताहै और पचास वर्षके पीछे बंद होजाताहै । एकमहीनेका इकट्ठा हुआ आर्तव समय आनेपर धमनी (नाडियोंके) मार्गमें कुछ विवर्ण और काले रगका होजाताहै तथा वायु उसको योनिके मुखपर लेआताहै ॥ २४४ ॥ २४५ ॥

गर्भग्रहणयोग्यस्य आर्त्तवस्य लक्षणमाह ।

शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् ॥ तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत् ॥ २४६ ॥

आर्तवस्य वर्णद्वयाभिधानं वातादिप्रकृतिभेदेन वर्णभेदात्। यद्वासो न विरञ्जयेत् । यद्वासोलग्नं प्रक्षालितं तद्वासस्त्यजति न तु विकृतरक्तं कुर्य्यात् । ऋतुः स्त्रीणां रजोदर्शनात् षोडश निशाः तत्र भवमार्त्तवम् । गृहीतगर्भाणां स्त्रीणामार्त्तववहानां स्रोतसां

गर्भेण अवरोधादार्त्तवं न स्रवति । किन्तु तदेवाधः प्रतिहतमूर्ध्वमागतमुपचीयमानमपरा भवति । अपरा तु श्रीवर इति लोके । शेषं चोर्ध्वतरमागतं पयोधरौ याति तस्माद्गर्भिण्यः पीवरपयोधरा भवन्ति ॥

जो आर्तव खरगोशके रुधिरके सदृश अथवा लाखके रसके सदृश होय, तथा जिसका दाग वस्त्र धोनेपर न रहै वह आर्तव शुद्ध कहाताहै अर्थात् गर्भधारण करनेके योग्य होता है, यहां आर्तवके दो रंग इसकारण कहेहैं कि—वाताादिक प्रकृतिसे वर्णोंका भी भेद होजाताहै।इसीकारण कहाहै कि वस्त्रके ऊपर दाग नहीं रहै, इस कहनेका अर्थ यहहै कि—जिसका दाग वस्त्रके ऊपर लगाहोय और उसको धोयाजाय तो वह दाग वस्त्रके ऊपरसे जाता रहै अर्थात् विकृत रंगका दाग नहीं दीखे । स्त्रियोंके जिस दिनसे रजोदर्शन होय उसमे सोलहरात्रिपर्यन्त ऋतुकाल कहाताहै. इस ऋतुकालमे उत्पन्न हुआ वह आर्त्तव कहाताहै. जिन स्त्रियोंके गर्भ रहा होय उन स्त्रियोंका आर्तवके वहनेवाली शिरा (नाडियों) का मार्ग गर्भ रोकदेता है तब आर्तव नहीं निकलता परन्तु वह आर्तव नीचे आनेसे रुककर ऊपरको जाकर इकट्ठा होजाताहै उसकी अपरा (नाल) होजातीहै । इसको श्रीवरभी कहते हैं और शेषरहा आर्तव ऊपर जाकर दोनों स्तनोंमें जाताहै इसीसे गर्भवती स्त्रियोंके स्तन पुष्ट होजाते हैं ॥ २४६ ॥

अथ धातुषु अतिरिक्तान् गुणानाह ।

अतिरिक्ता गुणा रक्ते वह्नेर्मांसे तु पार्थिवाः॥ मेदस्यपां रसे चास्थ्नि पृथिव्यनिलतेजसाम् ॥ २४७ ॥ मज्ज्ञि शुक्रे च सोमस्य मूत्रे च शिखिनो गुणाः ॥ भुवस्तथार्त्तवे स्वम्ने रसे क्षीरे तथाऽम्भसः ॥ २४८ ॥

रक्तमें अग्निका गुण अधिक है, मांसमें पृथ्वीका गुण अधिकहै, मेदमें जलका गुण अधिक है, रसमें भी जलका गुण अधिक है, अस्थि (हड्डी) में पृथ्वी, वायु और तेजका गुण अधिक है, मज्जा और वीर्यमें चन्द्रका गुण अधिक है, मूत्रमें अग्निका गुण अधिक है, आर्तवमें पृथ्वी तथा अग्निका गुण अधिक है, और रस तथा दूधमें जलका गुण अधिक है ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

अथ धातूनां मलाः ।

कफः पित्तं मलः खेषु प्रस्वेदो नखलोम च ॥ नेत्रविट्त्वक्षु च स्नेहो धातूनां क्रमशो मलाः ॥२४९ ॥ नेत्रजिह्वाकपोलानां जलं च रसजं मलम् ॥ २५० ॥ इत्येके॥ खेष कर्णादिस्रोतःसु मलःारसनादन्तकक्षामेढ्रादिमलमपि मेदोमलमित्येके । नेत्रविट्त्वचां स्नेहश्च मज्जमलः । शुक्रस्य मलमेव नास्ति, सहस्रधा ध्मातसुवर्णस्येव॥

कफ, पित्त, कर्णादिक स्रोतस्थानका मल, पसीना, नख, रोम, नेत्रका मल और त्वचाके ऊपरका स्नेह (चिकनापन) ये धातुओंके क्रमसे मल हैं. कोई कहतेहै कि—नेत्र, जीभ और कपोलोंका जल ये रसके मल हैं। मूलमें 'मलः खेषु' जो पढहै उसका यह अर्थ है कि—कर्णादिक स्रोतःस्थानके मैलमे कितनोंका मत ऐसाहै कि—जीभ, दांत, बगल और लिंग आदिका मल, यह मेदाका मल है । नेत्रका मैल, त्वचाके ऊपरकी चिकनाई, यह मज्जाका मैल है । हजारवार तपाये हुए सुवर्णमे जैसे मैल नही होता उसी प्रकार वीर्यमेंभी मैल नहीं होता ॥ २४९ ॥२५०॥

अथ उपधातवः ।

वनितानां प्रसूतानां धमनीभ्यां स्तनौ गतात् ॥ रसादेव हि जायेत स्तन्यं स्तनयुगाशयम् ॥ २५१ ॥ शुद्धमांसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता ॥ मेदसः स्रवमाणस्य स्नेहो वा कथिता वसा २५२॥ शार्ङ्गधरेतु—स्तन्यं रजो वसा स्वेदो दंताः केशास्तथैव च ॥ ओजश्च सप्तधातूनां क्रमात्सप्तोपधातवः ॥ २५३ ॥

प्रसूत हुई स्त्रियोंके दोनों स्तनोंमे दोनों धमनियोंके मार्गसे गये हुए रसकाही दूध होजाता है और वह दोनों स्तनोंमेही रहता है । शुद्ध मांसके स्नेहको वसा कहते हैं अथवा मेदके वहनेसे जो स्नेह उत्पन्न होताहै उसको वसा कहते हैं । शार्ङ्गधरमे तो ऐसा कहाहै कि—दूध, रज वसा, प्रस्वेद, दांत, केश और ओज यह सात धातुओंकी क्रमसे उपधातु हैं ॥ २५१ ॥ २५२ ॥ २५३ ॥

अथाशयाः ।

उरो रक्ताशयस्तस्मादधः श्लेष्माशयः स्मृतः आमाशयस्तु तदधस्तल्लिंगं चरकोऽवदत् ॥ २५४

तद्यथा—नाभिस्तनान्तरं जन्तोराहुरामाशयं बुधाः ॥ २५५ ॥ इति ॥

आमाशयादधः पक्वाशयादूर्ध्वं तु या कला॥ ग्रहणीनामिका सैव कथितः पाचकाशयः॥ ॥ २५६ ॥ ऊर्ध्वमग्न्याशयो नाभेर्मध्यभागे व्यवस्थितः ॥ तस्योपरि तिल ज्ञेयं तदधः पवनाशयः ॥ २५७ ॥ पक्वाशयस्तु तदधः स एव तु मलाशयः ॥ तदधः कथितो वस्तिः स हि मूत्राशयो मतः ॥ २५८ ॥

आशयानुक्रमस्तु वाग्भटेनोक्तः स यथा ।

कफाऽऽमपित्तवातानामाशया मलमूत्रयोः ॥ पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः ॥ २५९ ॥ धरा गर्भाशयः प्रोक्तः पित्तपक्वाशयान्तरे ॥ स्तनौ प्रवृद्धौ तावेव बुधैः स्तन्याशयौ मतौ ॥ २६० ॥

उरस्थान (छाती) ही रक्ताशय है, उसके नीचे श्लेष्माशय अर्थात् कफाशय है, उसके नीचे आमाशय है। उसका स्थान चरकमें ऐसा कहाहै कि—"प्राणियोंकी नाभिसे स्तनपर्यन्तके अन्तरको विद्वान् लोग आमाशय कहते है" आमाशयके नीचे और पक्वाशयके ऊपर जो ग्रहणी नामक कला है उसको पाचकाशय कहतेहैं, नाभिसे ऊपर मध्यभागमें अग्न्याशय रहताहै, उसके ऊपर तिलहै, उस तिलके नीचे पवनाशय है, उसके नीचे पक्वाशय है, वही मलाशय है, उसके नीचे वस्तिहै, उसको ही मूत्राशय कहतेहैं। आशयोंका क्रम वाग्भटमें इस प्रकार कहाहै कि—"कफाशय, आमाशय, पित्ताशय, वाताशय, मलाशय और मूत्राशय, ये आशय हैं। पुरुषोंसे स्त्रियोंके तीन आशय अधिक हैं पित्ताशय और पक्वाशयके बीचमें गर्भाशय कहा है, और दोनों स्तन जब बढतेहैं तब उनकोही विद्वान् स्तन्याशय मानतेहैं ॥ २५४–२६० ॥

अथ कलास्वरूपमाह ।

स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नान्सन्ततांश्च जरायुणा ॥ श्लेष्मणा वेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान्विदुः ॥ २६१ ॥ धात्वाशयान्तरे धातोर्यः क्लेदस्त्वधितिष्ठति देहोष्मणाऽभिपक्वश्च सा कलेत्यभिधीयते ॥ ॥ २६२ ॥ ताः सप्त—आद्या मांसधरा प्रोक्ता द्वितीया रक्तधारिणी ॥ मेदोधरा तृतीया तु चतुर्थी श्लेष्मधारिणी ॥ ॥२६३॥ पञ्चमी तु मलं धत्ते षष्ठी पित्तधरा मता ॥ रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः ॥ २६४ ॥

स्नायुओंकरके ढका हुआ, जरायुसे विस्तृत और कफसे वेष्टित जो होतीहै उनको कला भाग कहतेहैं । धात्वाशय (धातुका स्थान) के मध्यमें धातुओंका जो क्लेद भाग है तथा जो शरीरकी गर्मीसे पकाहुआ होताहै उसको कला कहतेहैं । वे कला सात हैं, पहिली कला मांसधरा, दूसरी रक्तधारिणी, तीसरी मेदोधरा, चौथी श्लेष्मधरा, पांचवी मलधरा, छठी पित्तधरा और सातवी वीर्यधरा है. ये सात कला कही हैं ॥ २६१–२६४ ॥

अथ मर्माणि ।

सन्निपातः शिरास्नायुसंधिमांसास्थिसंभवः ॥ मर्माणि तेषु तिष्ठंति प्राणाः खलु विशेषतः ॥ २६५ ॥ सप्तोत्तरशतं सन्ति देहे मर्माणि देहिनाम्॥तान्येकादश मांसे स्युरष्टावस्थिषु संति हि ॥ २६६ ॥ संधीनां विंशतिस्तानि स्नायूनां सप्तविंशतिः। चत्वारिंशत्तथैकं च शिरामर्माणि तत्र त ॥२६७॥ द्वाविंशतिः सक्थियुगे तावन्त्येव भुजद्वये॥ द्वादशोरसि कुक्षौ च पृष्ठदेशे चतुर्दश ॥ २६८ ॥ ग्रीवायामूर्ध्वभागे त सप्तत्रिंशन्मतानि हि ॥ मर्माणि यानि संतीह पञ्चधा च भवंति हि ॥ २६९ ॥

शिरा, स्नायु, संधि, मांस, और अस्थि (हड्डी) ये जब एकत्र होकर मिलतेहैं तब मर्मस्थल कहलाते हैं उन मर्मस्थानोंमें विशेष करके प्राण रहतेहैं । देहधारियोंके शरीरमें

सब एकसौ सात १०७ मर्म है। उनमेंसे ग्यारह ११ मांसमे होतेहै, आठ ८ अस्थियोमे, वीस २० सधियोमे, सत्ताईस २७ स्नायुओमे और इकतालीस ४१ मर्म शिराओमे होतेहैं। उनमे बाईस २२ मर्म दोनो पॉवोमे, बाईस २२ दोनो हाथोमें, छाती और कोखमे मिलकर बारह १२, पीठमे चौदह १४, गरदन और उसके ऊपरके भागमे सैंतीस ३७ मर्म हैं॥ २६५-२६९॥

तान्याह--सद्यः प्राणहराणि स्युर्मर्माण्येकोनविंशतिः॥ मर्मदेशास्त्रयस्त्रिंशत्स्युः कालान्तरमारकाः ॥ २७०॥ चत्वारिंशच्च चत्वारि वैकल्यं जनयन्ति हि ॥ मर्माष्टकं रुजाकारि विशल्यघ्नं त्रिकं मतम् ॥ २७१॥ शृंगाटकान्यधिपतिः शङ्खौ कण्ठशिरा गुदम् ॥ हृदयं वस्तिनाभी च सद्यो घ्नन्ति हतानि चेत् ॥ २७२॥

शृङ्गाटकानि घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वासन्तर्पकाणां शिरामुखानां शिरसो मध्ये संयोगस्थानम्, तानि चत्वारि शिरामर्माणि चतुरंगुलप्रमाणानि हतानि घ्नन्ति सद्योमारकाणि भवन्ति। अधिपतिर्मस्तकस्याभ्यन्तरे सन्धिशिरसोः सन्निपातः उपरिष्टात् रोमावर्तः स एकः, सन्धिमर्मेदमर्धांगुलप्रमाणं सद्योमारकम्। शङ्खौ भ्रुवोरन्तोपरि कर्णललाटमध्ये तौ द्वौ, अस्थिमर्मणी सार्द्धांगुले सद्योमारके। कण्ठशिरामातृकाः ग्रीवायामुभयपार्श्वयोश्चतस्रः शिरास्ता अष्टौ शिरामर्माणि चतुरंगुलानि सद्योमारकाणि। गुदं प्रसिद्धम्। एकं मांसमर्म चतुरंगुलं सद्योमारकम् ॥ स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायोरस्यामाशयद्वारं सत्त्वरजस्तमसामधिष्ठानं हृदयं नाम एकं शिरामर्मेदं चतुरंगुलं सद्योमारकम् ॥

यह मर्म पॉच प्रकारके हैं, उनमेसे उन्नीस १९ मर्म तत्काल प्राण हरनेवाले हैं, कालांतरमे मृत्यु करनेवाले तेंतीस ३३ मर्मस्थान है, चौवालीस ४४ मर्मस्थान विकलता उत्पन्न करनेवाले हैं, आठ ८ मर्म पीडा उत्पन्न करतेहैं, और तीन ३ मर्मस्थान शल्यनिकालनेपर प्राण नाशक हैं। शृंगाटक, अधिपति, शख, कण्ठकी शिरा, गुदा, हृदय, वस्ति और नाभि इनमे कदाचित् चोट लगजाय तो ये तत्काल प्राणीको मारडालते है।

शृंगाटक—नासिका, कर्ण, नेत्र और जीभ इन इन्द्रियोको तृप्त करनेवाली शिराओके मुखके मस्तकमे जो सयोगस्थान है उसमे चार शिराओंके मर्म चार चार अगुल प्रमाणके हैं, उनके ऊपर प्रहार करनेमे तत्काल मृत्यु होतीहै। अधिपति—मस्तकके अभ्यंतर नाडियोकी सधि और मस्तक जहॉ मिलाहै उसके ऊपर रोमोका आवर्त्त है, यहां एक मर्म है, यह सधिमर्म आधे अगुल प्रमाणका है और तत्काल मारक है। शख—दोनो भौओके अन्तभागके ऊपर कान और ललाटके बीचमे अर्थात् कनपटियोमें दो अस्थिमर्म हैं उनका डेढ डेढ अगुलका प्रमाण है और मारक हैं। कठशिरा—इसका दूसरा नाम मातृका है, गरदनके ऊपर दोनो बाजुओमे चार चार शिराये हैं, वे आठ शिराये मर्मस्थान हैं उनका प्रमाण चार अगुलका है इनमे भी चोट लगनेसे शीघ्र मृत्यु होतीहै। गुदा—वायु और विष्ठाको त्यागनेवाली स्थूल आंतोके बन्धनोसे बॅधीहुई यह प्रसिद्ध है तथा यह मांसमर्म है, इसका प्रमाण चार अगुलका है और इसमे भी चोट लगनेसे यह शीघ्र प्राण हरती है। स्तनोके मध्य अधिष्ठित उरःस्थानमे आमाशयद्वार है, यह सत्त्व, रज, तम इनका अधिष्ठान है, वहॉपर हृदयनामक शिरा मर्म है यह चार अगुलप्रमाणका है और उसमे चोट लगनेसे तत्काल मारकहै॥ २७०-२७२॥

वस्तिर्नाभिः पृष्ठकटीगुदवंक्षणशेफसाम्॥ मध्ये वस्तिस्तनुत्वक्च एकद्वारो ह्यधोमुखः ॥ २७३॥

स्नायुमर्मेदं चतुरंगुलं सद्योमारकम्। नाभिः प्रसिद्धा। शिरामर्मेदं च चतुरंगुलं सद्योमारकम्॥

वस्ति तथा नाभि भी मर्मस्थान है, पीठ, कटि, गुदा, वक्षण (पेडू) और लिग इनके बीचमे वस्ति (थैलीसी) है, उसकी त्वचा पतली है तथा उसका एक द्वार है और मुख नीचे है॥

वस्तिमे स्नायुमर्म चार अगुलका है, तथा यह तत्काल प्राण हरनेवाला है। नाभि प्रसिद्ध स्थान है, पक्वाशय और आमाशयके बीच शिराओके द्वारा बनी हुई है; उसमे चार अगुलका शिरामर्म है और वह तत्काल प्राणोंको हरनेवाला है॥ २७३॥

वक्षोमर्माणि सीमन्तस्तलाः क्षिप्रेन्द्रवस्तयः ॥ बृहत्यौ पार्श्वयोः सन्धी कटीकतरुणे च ये ॥ नितम्बाविति चैतानि कालान्तरहराणि तु ॥ २७४ ॥

वक्षोमर्माणि स्तनयोरधस्तात् द्व्यंगुलं यावत् । स्तनमूले नाम शिरामर्मणी तत्र कफपूर्णकोष्ठतया कालान्तरमारके । स्तनरोहिते स्तनयोरुपरि द्व्यंगुलं यावत् द्वे मांसमर्मणी रक्तपूरितकोष्ठतया कालान्तरमारके । अपलापौ अंसकूटयोरधस्तात् पार्श्वयोरुपरि द्वे शिरामर्मणी अर्द्धांगुले रक्तेन पूयतां गतेन कालान्तरमारके । अपस्तम्भौ उरस उभयोः नाड्यौ वातवहे शिरामर्मणी अर्द्धांगुले वातपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च कालान्तरमारके । सीमन्ताः शिरसि पञ्च सन्धयः सन्धिमर्माणि चतुरंगुलानि उन्मादभयचित्तविनाशैः कालान्तरमारकाः ॥

तलानि मध्यांगुलिमनुक्रम्य हस्तस्य मध्यं तलमेवमपरस्य हस्तस्य पादयोश्चैवं चत्वारि तलानि मांसमर्माणि द्व्यंगुलानि रुजाभिः कालान्तरमारकाणि । क्षिप्राणि अंगुष्ठांगुल्योर्मध्ये क्षिप्रम् ॥ तानि च हस्तयोर्द्वे पादयोर्द्वे चैवं चत्वारि स्नायुमर्माणि अर्द्धांगुलानि आक्षेपकेण कालान्तरमारकाणि । इन्द्रवस्तयः प्रकोष्ठयोर्मध्ये द्वौ जंघयोर्मध्ये द्वौ एवं चत्वारि मांसमर्माणि द्व्यंगुलानि शोणितक्षयेण कालान्तरमारकाणि । बृहत्यौ स्तनमूलादुभयतः सपृष्ठवंशं यावत् । शिरामर्मणी अर्द्धांगुलाधृते शोणितातिप्रवृत्तिनिमित्तैः उपद्रवैः कालान्तरमारके । पार्श्वसन्धी जघनपार्श्वयोः सन्धी प्रति शिरामर्मणी अर्द्धांगुले शोणितपूर्णकोष्ठतया कालान्तरमारके कटीकतरुणे त्रिकसन्निधाने उभयतः श्रोणिकाण्डे लक्षीकृत्यास्थिनी स्थिते अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुले शोणितक्षयात् पाण्डुं विवर्णरूपं कृत्वा कालान्तरमारके । नितम्बौ प्रसिद्धौ द्वे अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुलौ अधःकायशोषेण दौर्बल्येन च कालान्तरमारकौ ॥

वक्षस्थलके मर्म -सीमन्त, तल, क्षिप्र, इन्द्रवस्ति, बृहती, पसलियोंकी संधि, कटीकतरुण और नितम्ब इन स्थानोंके मर्म कालांतरमें प्राण हरण करनेवाले हैं ॥

वक्षःस्थलके मर्म -स्तनोंके नीचेसे लेकर दो अंगुलतक और स्तनोंकी जड़में दो शिरा मर्म हैं वह कफ परिपूर्ण होनेसे कालांतरमें मारक हैं । स्तनरोहित- स्तनोंके ऊपर दो अंगुलतक स्तनरोहित नाम दो, मांस मर्म हैं, इनमें रुधिर भरा हुआ है, इस कारण यह कालान्तरमें प्राण हरण करनेवाले हैं । कन्धेके नीचे और पसलियोंके ऊपर दो शिरामर्म हैं उनको अपलापी कहते हैं, ये आधे आधे अंगुल प्रमाण हैं वे रक्तसे भरे हैं इस कारण कालान्तरमें प्राणनाशक हैं । छातीके दोनों ओर वातवाही शिराओंमें दो मर्म हैं उनको अपस्तम्भ कहते हैं, ये वायुसे भरे हैं इसकारण कास और श्वासको उत्पन्न करके कालान्तरमें प्राणहारक हैं । सीमन्त--शिरमें जो पांच संधि मर्म हैं उनको सीमन्त कहते हैं, ये चार अंगुलप्रमाणके हैं, ये उन्माद और भयके द्वारा चित्तका विनाश कर कालान्तरमें मारते हैं ॥

तल--बिचली अंगुलीसे लेकर हाथकी हथेलीके मध्यभागमें, ऐसेही दूसरे हाथकी हथेलीके मध्यमें तैसेही दोनों पांवोंके तलुओंमें इस प्रकार चार मांसमर्म हैं उनको तलमर्म कहते हैं वे अंगुल प्रमाणके हैं । इनमें पीडा होनेसे कालांतरमें प्राण निकलते हैं । क्षिप्र--अंगूठा और अंगुलियोंमें क्षिप्र मर्म हैं, वह दोनों हाथोंके तथा दोनों पांवोंके मिलकर चार स्नायुमर्म आध अंगुलप्रमाण हैं वे आक्षेपक नाम वायुरोगको उत्पन्न कर कालांतरमें मृत्यु करते हैं । इन्द्रवस्ति--दोनों बाहुओंके मध्य तथा दोनों जंघाओंके मध्यमें इन्द्रवस्ति नामक चार मांस मर्म हैं इनका प्रमाण दो अंगुलका है, वे रुधिर क्षय होनेसे कालांतरमें मारक हैं । बृहती--स्तनोंकी मूलके दोनों ओरसे लेकर पीठके बांसे पर्यन्त बृहतीनामक दो शिरामर्म हैं, उनका प्रमाण आध अंगुल है वे रुधिरके अत्यंत निकलनेसे तथा उपद्रव होनेसे कालान्तरमें प्राणोंको हरते हैं । पार्श्वसन्धि--जांघोंकी दोनों ओरकी संधियें पार्श्वसंधि कहाती हैं । इन प्रत्येकमें शिरामर्म हैं वे आधे अंगुलके प्रमाणके हैं, ये रक्तसे परिपूर्ण हैं, इस कारण कालांतरमें मृत्यु करते हैं । कटीकतरुण-

त्रिक (पीठके तलेकी तीन हड्डी) के पास दोनो श्रोणिकांडोंमें अस्थियोंके मध्यमें कटीकतरुणनामक अस्थिमर्म है, उनका प्रमाण आध अंगुल है, वे रुधिरके क्षय होनेसे पाण्डु तथा विवर्णरूप करके कालान्तरमें प्राणको हरते हैं। नितम्ब–यह दोनो प्रसिद्ध अस्थिमर्म हैं, वे आधे अंगुल प्रमाण हैं यह शरीरके नीचेका भाग शोषण होनेसे तथा दुर्बलता होनेसे कालांतरमें प्राणको हरतेहैं ॥ २७४ ॥

लोहिताक्षाणि जानूर्वोः कूर्चाविटपकूर्पराः॥
कुकुन्दरे कक्षधरे विधुरे सकृकाटिके॥२७५॥
अंसांसफलकापाङ्गा नीले मन्ये फणे तथा॥
वैकल्यकरणान्याहुरावर्तौ द्वौ तथैव च॥२७६॥

लोहिताक्षाणि ऊर्वोरूर्ध्वमधो वंक्षणसन्धेर्लोहिताक्षम्। ते च द्वे बाह्वोर्द्वे ऊर्वोरेवं तानि चत्वारि शिरामर्माणि अर्द्धांगुलानि वैकल्यकराणि। तत्र शोणितक्षयेण पक्षाघातः सक्थिसादो वा। जानुन ऊर्ध्वम् उभयोः पार्श्वयोरुयङ्गुला एकस्मिन् जानुनि द्वे अपरस्मिन् द्वे एवं चतस्रः स्नायुमर्माणि अर्द्धांगुलानि वैकल्यकराणि। तत्र शोथाभिवृद्धिः सक्थिस्तम्भश्च। जानुनी जङ्घयोः सन्धी सन्धिमर्मणी द्व्यङ्गुले वैकल्यकरे तत्र खञ्जता। ऊर्वीः द्वे ऊर्वोर्मध्ये द्वे प्रगण्डयोः मध्ये एवं चतस्रः शिरामर्माणि एकांगुल्यो वैकल्यकर्य्यस्तत्र शोणितक्षयात् सक्थिशोषः। कूर्चाः पादयोरङ्गुष्ठाङ्गुल्योर्मध्ये तयोरूर्ध्वं हस्तयोरधश्च एवं चत्वारि स्नायुमर्माणि वैकल्यकराणि तत्र पादयोर्भ्रमणवेपने भवतः। विटपे द्वे वंक्षणवृषणयोर्मध्ये स्नायुमर्मणी एकाङ्गुले वैकल्यकरे च तत्र षाण्ढ्यमल्पशुक्रता वा। कूर्परौ कफोणिजौ द्वौ सन्धिमर्मणी द्व्यङ्गुलौ वैकल्यकरौ तत्र बाहुमध्ये सङ्कोचः। कुकुन्दरे नितम्बकूपकौ द्वौ सन्धिमर्म्मणी अर्धांगुले वैकल्यकरे। तत्र स्पर्शाज्ञानमधःकायस्य चेष्टोपघातश्च। कक्षधरे वक्षःकक्षयोर्मध्ये द्वे स्नायुमर्म्मणी एकांगुले वैकल्यकरे तत्र पक्षाघातः। विधुरे कर्णपृष्ठाऽधःसंश्रिते किञ्चिन्निम्नाकारे द्वे स्नायुमर्म्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे तत्र बाधिर्यम्। कृकाटिके शिरोग्रीवयोरुभयतः सन्धी द्वे सन्धिमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे तत्र शिरःकम्पः। अंसौ स्कन्धौ स्नायुमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे तत्र बाहुस्तम्भः। अंसफलके पृष्ठोपरि पृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसम्बद्धे ग्रीवायाम् अंसद्वयस्य च संयोगो यत्र तत्त्रिकम्। अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे तत्र बाह्वोः शून्यता शोषश्च। अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ शिरामर्म्मणी अर्द्धांगुलौ वैकल्यकरौ तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातो वा। नीले मन्ये च कण्ठनाडीमुभयतश्चतस्रो धमन्यः द्वे नीले द्वे मन्ये। तत्र एका मन्या एका नीला। एकस्मिन् पार्श्वे मन्या, नीला च अपरस्मिन् पार्श्वे द्वेद्वे शिरामर्म्मणी द्व्यङ्गुले द्व्यङ्गुले वैकल्यकरे, तत्र मूकता विकृतिस्वरता अरसग्राहिता च। फणे घ्राणमार्गमुभयतः मांसमर्म्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र गन्धाज्ञानम्। आवर्त्तौ भ्रुवोपरि निम्नयोः सन्धिमर्म्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातो वा॥

लोहिताक्ष, दोनों जानु, दोनो ऊरु, कूर्चा, विटप, कूर्पर, कुकुन्दर, कक्षधर, विधुर, कृकाटिका, अस, असफलक, अपांग, नील, मन्या, फण और आवर्त ये मर्म अंगमें विकलता उत्पन्न करनेवाले हैं॥

लोहिताक्ष–दोनो ऊरुओके ऊपर और वक्षण (पेडू) सधिके नीचेको लोहिताक्ष मर्म कहतेहै, तथा दोनो ऊरुओकी दो सधिको देवसधि कहतेहै, इस प्रकार यह चार शिरामर्म आध अंगुल प्रमाण है, इनमें चोट लगनेसे ये अगमे विकलता उत्पन्न करते हैं। इनमे रुधिरका क्षय होनेसे सक्थिसाद अथवा पक्षाघात नामक वायुरोग उत्पन्न होताहै। जानुके ऊपर दोनो पार्श्वोंमें तीन अंगुल प्रमाण एक जानुके ऊपर दो, और दूसरे जानुके ऊपर दो, इस प्रकार चार, आध अगुल प्रमाण स्नायुमर्म है, ये विकलता उत्पन्न करें है। इनमें सूजन, वृद्धि और सक्थिस्तभ नामक रोग होतेहैं। जानुनी–दोनो जाँघोंकी सधिमे दो मर्म हैं, वे दो अंगुल प्रमाणके अत्यत विकलता करनेवाले हैं, इन मर्मोमें चोट लगनेसे मनुष्य लगडा होजाताहै। ऊर्वी–ऊरुके मध्यमे दो तथा प्रगड (बाजू) मे दो

इस प्रकार चार शिरामर्म हैं, वे एक अगुलके होकर विकलता सपादन करनेवाले हैं। उनमें रुधिरका क्षय होनेसे पॉव सूख जाता है। कूर्चा:—दोनों पॉवोंके अगूठे और अगूठेके पासकी अगुलीके बीचमें दोनोंके ऊपर और दोनोंके नीचे इस प्रकार चार स्नायुमर्म हैं वे विकलता करनेवाले हैं, उनमें चोट लगनेसे दोनों पॉवोंमें भ्रमण और कम्प होताहै। विटपे—वक्षण (पेडू) और दोनों अण्डकोषोंके बीचमें स्नायुमर्म हैं, वे एक अगुल प्रमाणके दो मर्म विकलताके करनेवाले हैं, उन दोनोंमें चोट लगनेसे नपुंसकता और वीर्याल्पता होजाती है। कूर्परौ—कोंनियोंके ऊपर दो संधिमर्म हैं उनका प्रमाण दो अगुलका है और वे विकलता करनेवाले हैं, उनमें बाहुओंमें सकोच उत्पन्न होताहै। कुकुन्दरे—दोनों नितम्बोंके गड्ढोंके ऊपर दो संधिमर्म हैं, वे आध अगुलप्रमाणके महा विकलता करनेवाले हैं, उनमें चोट लगनेसे स्पर्शका ज्ञान नहीं होता, तथा शरीरके नीचेके भागमें चेष्टाका नाश होताहै। कक्षधरे—छाती और कोखके बीचमें दो स्नायुमर्म हैं, वे एक अगुल प्रमाणवाले और विकलता उत्पन्न करनेवाले हैं, उनमें विकार होनेसे पक्षाघात रोग होता है। विधुरे—कानके पीछे कुछ झुकेहुए दो स्नायुमर्म हैं, वे आध अगुल प्रमाण तथा विकलता करनेवाले हैं। उनमें विकार होनेसे बहरापन होजाताहै। कृकाटिका—शिर और गरदन इन दोनोंकी संधियोंमें दो संधिमर्म हैं उनका प्रमाण आध अगुलका है, और वे विकलता करनेवाले हैं, उनमें विकार होनेसे शिरःकम्प रोग होताहै। असौ—कन्धोंमें दो स्नायुमर्म हैं वे आध अगुल प्रमाणके हैं तथा विकलता करनेवाले हैं उनमें बाहुस्तम्भरोग होताहै। असफलके- गरदनके ऊपर दोनों कधोंका जहॉ संयोग होताहै उसको त्रिक कहते हैं। इस त्रिकसे सम्बन्ध रखनेवाली पीठके ऊपर और पीठके बॉसोंके दोनों ओर दो अस्थिमर्म आध अगुलके प्रमाण हैं वे अगकी विकलता सपादन करतेहैं। इन स्थानोंमें विकार होनेसे दोनों भुजाओंमें शून्यता उत्पन्न करतेहैं और सुखा भी देतेहैं। अपाङ्गौ—दोनों नेत्रोंके अतभागमें दो शिरामर्म हैं वे आध अंगुल प्रमाण तथा विकलता करनेवाले हैं, उनमें विकार होनेसे अंधा वा मंददृष्टिवाला होजाताहै। नीलमन्ये—कठकी नाडियोंके दोनों बाजुओंमें चार धमनी (नाडी) हैं उनमें दो नीला कहाती हैं और दो मन्या कहाती हैं, उनमें एक पसुलीके ऊपर एक नीला और एक मन्या नाडी है तथा दूसरी पसुलीके ऊपर एक नीला और एक मन्या है, इसप्रकार प्रत्येकके निकट दो दो शिरामर्म हैं वे प्रत्येक दो दो अगुलके प्रमाण हैं और विकलता उत्पन्न करनेवाले हैं, उनमें विकार होनेसे गूगापना (गूगापना), स्वरभग (बुरी आवाज) और रसका ग्रहण नहीं होना इत्यादि विकार होते हैं। फणे—नाकके दोनों बाजुओंमें आध आध अगुलके मांसमर्म हैं, उनमें चोट लगनेसे विकलता होतीहै और गन्धग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट होजाती है। आवर्त्तौ—दोनों भौंहोंके ऊपर और नीचे आध-आध अगुलके प्रमाण सन्धिमर्म हैं वे विकलताकारी हैं और चोट लगनेसे अन्धा और मन्दहष्टि होजाताहै ॥ २७५ ॥ २७६ ॥

गुल्फौ द्वौ मणिबंधौ द्वौ तथा कूर्चशिरांसि च ॥ रुजाकराणि जानीयादष्टौ चैतानि बुद्धिमान ॥ २७७ ॥

गुल्फौ घण्टिके संधिमर्म्मणी द्व्यंगुलौ रुजाकरौ। तत्र रुजा पादस्तम्भः खञ्जता च। द्वौ मणिबन्धौ हस्तप्रकोष्ठसन्धी सन्धिमर्म्मणी द्व्यंगुलौ रुजाकरौ। तत्र हस्तयोः क्रियाराहित्यम्। कूर्चशिरांसि। पादसंधेरधः उभयतः एकस्मिन् पादे एकमेकं च द्वितीये हस्तयोर्द्वे च एवं चत्वारि स्नायुमर्माणि एकांगुलानि रुजाकराणि। तत्र रुजा शोफश्च॥

दोनों टकने, दोनों मणिबन्ध (पहुंचे) और कूर्चोंके शिरमें विद्वानोंने मर्मस्थान रोगोंको उत्पन्न करनेवाले कहे हैं॥

गुल्फौ—दोनों घुटनोंमें दो दो अगुलके संधिमर्म हैं और रोगोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, इनमें रोग होनेसे पुरुष पादस्तम्भ (पॉव जकडना) और खजा (लगडा) होजाता है। मणिबन्धौ—हाथके कोंठकी संधियोंमें दो दो अगुलके दो संधिमर्म पीडा करनेवाले हैं तथा हाथको क्रियारहित (जड) करतेहैं। कूर्चशिरांसि—पॉवोंकी सन्धिके नीचे दोनों बाजुओंमें एक एक और दोनों बाजुओंकी संधियोंमें एकएक, इसप्रकार चार स्नायुमर्म एक अंगुल प्रमाणके हैं तथा वे पीडा करनेवाले हैं और रोग होनेसे सूजन करे हैं ॥ २७७ ॥

उत्क्षेपौ स्थपनी चैव विशल्यघ्नं त्रिकं मतम् ॥ २७८ ॥

उत्क्षेपौ शङ्खयोरुपरि केशा यावत्। स्नायुमर्म्मणी अर्द्धांगुले तयोर्विद्धयोः सशल्यो जीवेत्, पाकात् पतितशल्यो वा उद्धृतशल्यस्तु म्रियेत। अत एव विशल्यमुद्धृतशल्यं हन्तीति विशल्यघ्नं मर्म्म। स्थपनी एका भ्रुवोर्मध्ये शिरा मर्मेदमर्द्धांगुलं विशल्यघ्नम् ॥

दो उत्क्षेप और एक स्थपनी ये तीन विशल्यघ्न मर्म हैं॥

उत्क्षेपौ–दोनो कनपटियोके ऊपर बालो पर्यन्त दो आध आध अंगुलके मर्म है। उसके बींधनेसे और शल्य जबतक उसमे रहै तबतक मनुष्य जीवित रहता है परन्तु जब वह पककर निकल जाताहै तब उसकी मृत्यु होजाती है, इसी कारण इनको विशल्यघ्न कहाहै। स्थपनी–दोनों भौंओके बीचमे एक शिरामर्म आध अंगुलका है और वहभी शल्य निकाल लेनेसे प्राणोंको हरताहै॥ २७८॥

सप्तरात्रान्तरे हन्युः सद्यःप्राणहराणि हि॥ कालान्तरप्राणहरं पक्षे मासे च मारकम्॥ ॥ २७९॥ सद्यःप्राणहरं चान्ते विद्धं कालेन मारयेत्॥ कालान्तरप्राणहरमन्ते विद्धं तु दुःखदम्॥ २८०॥

अन्ते मर्म्मसमीपे॥

मर्म्माण्यधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्च्छन्ति काये विविधा नराणाम्॥ प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवन्ति वैद्येन यत्नैरपि साध्यमानाः॥ २८१॥

जो जो मर्म तत्काल प्राण हरनेवाले है वे सात रात्रियोमे प्राणोको हरतेहै। जो कालांतरमे प्राण हरनेवाले हैं वे एक पक्षमे तथा महीनेमे मृत्यु करतेहै। जो मर्म तत्काल प्राण हरनेवाले हैं उन मर्मोका अंतभाग (मर्म समीप) छिदनेसे कालांतरमे प्राणोको हरतेहै और कालांतरमे प्राण हरनेवाले मर्मोका अंत छिदनेसे दुःख देतेहै। पुरुषोंके शरीरमे जो नानाप्रकारके विकार मर्मस्थलमे उत्पन्न होते हैं वे प्रायः अच्छे अच्छे वैद्योके द्वारा यत्न करने पर भी कष्टसाध्य होते है॥ २७९॥ २८०॥ २८१॥

अथ सन्धयः।

ते द्विविधाश्चेष्टावन्तः स्थिराश्च। शाखासु हन्वोः कट्यां च चेष्टावन्तो भवन्ति हि॥ शेषास्तु सन्धयः सर्वे स्थिरास्तज्ज्ञैरुदाहृताः॥ २८२॥ कथिता देहिनां देहे सन्धयो द्वे शते दश॥ शाखासु तेऽष्टषष्टिश्च कोष्ठे त्वेकोनषष्टिकाः॥ २८३॥ ग्रीवाया ऊर्ध्वदेशे तु त्र्यशीतिस्ते प्रकीर्त्तिताः॥ प्रथमं परिगण्यंते तेषु शाखागता इह॥ २८४॥

एकैकस्यां पदांगुल्यां त्रयस्त्रयो द्वावंगुष्ठे ते चतुर्दश॥ गुल्फजानुवंक्षणेष्वेकैकमेवं सप्तदश एकस्मिन् सक्थिनि भवन्ति॥ २८५॥

एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ। एवमष्टषष्टिः शाखासु। अथ कोष्ठगतानाह–त्रयः कटीकपोलेषु। चतुर्विंशतिः पृष्ठवंशे। तावन्त एव पार्श्वयोरष्टावुरसि। एवमेकोनषष्टिः कोष्ठे। अथ ग्रीवोर्ध्वगतानाह–अष्टौ ग्रीवायाम्, त्रयः कण्ठे, नाडीहृदयक्लोमफुप्फुसे निबद्धास्त्वष्टादश, द्वात्रिंशद्दन्तमूलेषु, एकः कण्ठमणौ, नासायां च एकः, द्वौ वर्त्ममण्डलगण्डकर्णशङ्खेषु, द्वौ हनुसन्धौ, द्वावुपरिष्टात् भ्रुवोः, शङ्खयोश्चोपरिष्टात् पञ्च, शीर्षकपोलेष्वेको, मूर्ध्नीति कण्ठमणौ, घण्टिकेति प्रसिद्धे। एते सन्धयोऽष्टविधा भवन्ति॥

सधियें दो प्रकारकी है, चेष्टावन्त और स्थिर। तहाँ हाथ पॉव आदि शाखाओमे तथा ठोडी और कमरमे जो सधि हैं वे चेष्टावालीहैं, शेष सर्व सन्धियें स्थिर हैं। देह धारियोंके शरीरमे दोसौ दश २१० सधि (जोड) हैं, उनमे अडसठ ६८ हाथ पॉवमे, उनसठ ५९ कोठेमें, और गरदनके ऊपरके भागमे ८३ सधि कही हैं। अब उनमेसे प्रथम शाखागतसधियोकी गणना करते हैं॥

एक एक पॉवकी अंगुलीमे तीन तीन और अँगूठेमे दो. इस प्रकार पॉचो अँगुलियोमे चौदह १४ सधि हैं। तथा टकने, घुटए और वंक्षण, इनमे एक एक, इस भाँति

कुल सत्रह १७ संधियें एक पाँवमें होतीहैं । इसी प्रकार दूसरे पाँव तथा दोनों हाथोंमें भी जाननी । इस प्रकार कुल अडसठ (६८) संधि शाखाओं (हाथ पाँव आदि) में जाननी । अब कोठेकी संधियोंको कहते हैं कि—कमर और कपालमें तीन ३, पीठके बाँसमें चौबीस २४, चौबीस २४ ही दोनों पसलियोंमें, उरःस्थानमें आठ ८, इस भाँति उनसठ ५९ संधि कोठेमें जाननी । अब गरदनके ऊपरकी संधियोंको कहते हैं कि—आठ ८ गरदनमें, तीन ३ कंठमें, नाडी—हृदय—क्लोम—और फेफडेमें बँधी हुई अठारह १८, दाँतोंकी जडमें बत्तीस ३२, कंठमणिमें एक १ नाकमें एक १, वर्त्म—मंडल (पलक मंडल)—कपोल—कान और कनपटियोंमें दो दो, इस प्रकार मिलकर आठ ८, ठोडीकी संधियोंमें दो २, भौंहोंके ऊपर दो२ और शंखो-कनपटीके ऊपर दो२, शिर और कपालमें पाँच ५ मूर्धामें एक १, इस भाँति कुल तिरासी ८३ संधि गरदनके ऊपरके भागमें हैं। कंठमणि यह लोकमें घंटिका नामसे प्रसिद्ध है । ये संधियें आठ प्रकारकी हैं ॥ २८२–२८५ ॥

ते यथा—कोरोदूखलसामुद्गाः प्रतरस्तूनसेविनी ॥ काकतुण्डं मण्डलं च शंखावर्तोऽष्टसन्धयः ॥ २८६ ॥

कोरो गर्त्तः, नलिकेत्यन्ये । उदूखलः प्रसिद्धः । समुद्गः सम्पुटः समुद्ग एव सामुद्गः। अत्र स्वार्थे अण् । प्रतरन्त्यनेनेति प्रतरो वेलकः । तूनस्येव तूनीरस्येव सेविनी तूनसेविनी । काकतुण्डं काकमुखम् । मण्डलं प्रसिद्धम् । शङ्खस्यावर्त्तः शङ्खावर्तः । एते यथानामप्रकृतयः सन्धयो भवन्तीत्यर्थः । एषामंगुलिमणिबन्धगुल्फजानुकूर्परेषु कोराः सन्धयः । कक्षावंक्षणदन्तेषूदूखलाः । अंसपीठगुदभगनितम्बेषु सामुद्गाः । ग्रीवापृष्ठवंशयोस्तु प्रतराः । शिरःकटीकपालेषु तूनसेविन्यः । हन्व्योरुभयतः काकतुण्डाख्याः । कण्ठहृदयक्लोमनाडीषु मण्डलाख्याः । शिरःशृङ्गाटकेषु शंखावर्त्ताः ॥

अस्थ्नां तु सन्धयो ह्येते केवलाः समुदाहृताः ॥ पेशीस्नायुशिराणां तु सन्धिसंख्या न विद्यते ॥ २८७ ॥

१ कोर (गढ्ढे) के सदृश और कोई नलीके सदृश कहते हैं, २ उदूखल (ओखली), ३ सामुद्ग (संपुट) ४ प्रतर जो तेरे हैं उसको प्रतर कहते हैं । प्रतर अर्थात् (बेल), ५ तूनसेविनी (तूणीर—तरकस), ६ काकतुण्ड (कौएकी चोंच), ७ मंडल (गोल), ८ शंखावर्त (शंखकी नाभिका चक्र) ये, आठों संधि अपने अपने नामके अनुसार होती हैं । इनमेंसे अँगुली; पहुँचा, टकना, घुटुआ और कोहनी, इन स्थानोंमें कोर नामक संधि हैं । कोख, पेडू और दाँतोंमें उदूखल नामक संधि हैं । कन्धा, पीठ, गुदा, भग और नितंब इनमें सामुद्ग नामक संधि हैं। गरदन और पीठके बाँस इनमें प्रतर नामक संधि हैं । शिर कमर और कपाल, इनमें तूनसेविनी संधि हैं । ठोडीके दोनों ओर काकतुण्ड संधि हैं । कण्ठ, हृदय, क्लोम (पिपासास्थान) इनमें मंडल नामक संधि हैं । शिर और शृंगाटक इनमें शंखावर्त नामक संधि हैं । यह केवल अस्थियोंकी संधियें हैं । मांसकी पेशी स्नायु और शिरा (नस) के संधियोंकी संख्या नहीं है ॥ २८६ ॥२८७॥

अथ शिरामाह ।

सन्धिबन्धनकारिण्यो दोषधातुवहाः शिराः ॥ नाभ्यां सर्वा निबद्धास्ताः प्रतन्वन्ति समन्ततः ॥ २८८ ॥ शरीरं सकलं चैतच्छिराभिः पोष्यते सदा ॥प्रणालीभिरिवारामाः कुल्याभिः क्षेत्रधान्यवत् २८९॥

अत्र प्रणालीभिः कुल्याभिरिति दृष्टान्तद्वयं स्थूलसूक्ष्मशिराभेदात् ॥

प्रसारणाकुञ्चनादिक्रियाभिः सततं तनौ ॥ शिरा एवोपकुर्वन्ति ताः स्युः सप्तशतानि तु ॥ २९० ॥ यथा द्रुमदले साक्षाद्दृश्यन्ते प्रतताः शिराः ॥ तथैव देहिनो देहे वर्त्तन्ते सकलाः शिराः ॥२९१॥ नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिरुपाश्रिता ॥ शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ॥ २९२ ॥

तद्यथा--तासां खलु मूलशिराः चत्वारिंशत्। तासां दश वातवहाः, दश पित्तवहाः, दश श्लेष्मवहाः, दश रक्तवहाः, तासां खलु वातवहानां वातस्थानगतानां सपञ्चसप्ततिशतं भवति। तावन्त्य एव पित्तवहाः पित्तस्थानगताः श्लेष्मवहाः तावन्त्यः श्लेष्मस्थानगताः। रक्तवहा यकृत्प्लीहगताः, एवं शिराः सप्तशतं भवन्ति। तत्र वातवहाः एकस्मिन् सक्थ्नि पञ्चविंशतिः। एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ। विशेषतः कोष्ठे चतुस्त्रिंशत्। तासां श्रोण्यां गुदमेढ्रादिश्रिता अष्टौ ८। द्वे द्वे पार्श्वयोः ४। षट् पृष्ठे ६। तावन्त्य एव उदरे ६। दश वक्षसि १०। एकचत्वारिंशत् जत्रुणः ऊर्ध्वम्। तासां चतुर्दश १४ ग्रीवायाम्। चतस्रः ४ कर्णयोः। नव ९ जिह्वायाम्। षट् ६ नासिकायाम्। अष्टौ ८ नेत्रयोः। एवं वातवहानां सपञ्चसप्ततिशतं भवति। एवं विभागः। पित्तवहानामपि विशेषस्तु पित्तवहा नेत्रयोर्दश १०। कर्णयोर्द्वे २। एवं रक्तवहाः। श्लेष्मवहास्तु षोडश १६ ग्रीवायाम्। कर्णयोर्द्वे २। एवं शिराणां सप्तशतानि व्याख्यातानि॥

सन्धियोंका बंधन करनेवाली और दोष (वातादि) तथा धातु (रसरक्तादि) को बहानेवाली शिरायें हैं वे सब नाभिमें बँधीहैं और चारो ओरको फैलरहीहैं। जिसप्रकार प्रणालियों (नहरों) से बाग और कुल्यायों (छोटी छोटी नदियो) से खेतोंके खेत पुष्ट होतेहैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर सदा शिराओंसे पुष्ट होताहैं।

यहां प्रणाली और कुल्या ये जो दो दृष्टान्त लिखेहैं वे स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकारकी शिराओंके भेदसे है। शरीरके फैलने और सुकडने आदि क्रियाओंसे ही निरतर इस शरीरसे शिरा ही उपकार करतीहैं। इन शिराओंकी सख्या सातसौ (७००) है। जिस प्रकार वृक्षके पत्तोमें शिराओंका जाल प्रत्यक्ष दीखताहै, उसी प्रकार प्राणियोके सर्व देहमे शिरायें रहतीहैं। प्राणियोंके प्राण नाभिमें रहते है और नाभि प्राणोके आश्रित रहतीहै। जैसे पहियेकी नाह आरे सलाईके द्वारा चारो ओरसे घिरी हुई है वैसे ही शिराओसे नाभि लिपटीहुई है। उनमें मूल चालीस शिरा (४०) है,। तिनमेसे दश (१०) वात बहानेवाली, और दश (१०) पित्तको बहानेवाली, दश (१०) कफको बहानेवाली, और दश (१०) रुधिरको बहानेवाली है। उनमे वात बहानेवाली वातस्थानमे जाकर एकसौ पछत्तर (१७५) होगई है। एकसौ पछत्तर (१७५) ही पित्त बहानेवाली पित्तस्थानमे जाकर होगई हैं, इतनी ही (१७५) कफ बहानेवाली कफस्थानमे जाकर और एकसौ पछत्तर (१७५) ही रुधिरको बहनेवाली यकृत्प्लीहामे जाकर होगई हैं, इस प्रकार कुल सख्या सातसौ (७००) है। वात बहानेवाली शिरा एकसौ पछत्तर (१७५) कहीहैं उनमेसे पचीस (२५) एक पावमे, पचीस (२५) दूसरे पॉवमे, पचीस (२५) एक हाथमे, पचीस (२५) दूसरे हाथमे, चौतिस (३४) कोठेमे, उनमेसे कमर, गुदा, लिंग आदिके आश्रित आठ (८) हैं, दोनो पसलियोंमे दो दो (२-२) इसप्रकार चार (४), पीठमे छः (६), छः (६) ही उदरमे, वक्षःस्थलमे दश (१०), जत्रु (हँसुलीके ऊपर) इकतालीस (४१) कहीहैं। उनमेसे चौदह (१४) गरदनमे, चार (४) कानोमे, नौ (९) जीभमे, छः (६) नासिकामे, और आठ (८) ऑखोमे इस भांति एकसौ पछत्तर (१७५) वात बहानेवाली है। पित्तको बहानेवाली जो एकसौ पछत्तर शिरा कहीहैं वेभी उपरोक्त कहे प्रमाणसे विभाजित है, उनमें इतना विशेष है कि-दोनों नेत्रोमे दश (१०) और कानोमे दो (२) हे। इसीप्रकार रुधिरको बहानेवाली शिरा है। कफको बहानेवालियोमे तौ सोलह (१६) गरदनमे, और दो कानोमे हैं, शेष उपरोक्त प्रकार है। इसभांति सातसौ (७००) शिरा कहीह॥ ॥ २८८-२९२॥

क्रियाणामप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्मणाम्॥
करोत्यन्यान्गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन्॥ २९३॥

क्रियाणां प्रसारणाकुञ्चनादीनाम्। अमोहं बुद्धिकर्म्मणाम्। बुद्धीन्द्रियाणां मनसो बुद्धेश्च स्वेस्वे विषये अज्ञानं न करोतीत्य-

र्थः । अन्यान् गुणान् रसादिव्यापनद्वारा शरीरपोषणादीन् ॥

यदा तु कुपितो वायुः स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥ तदास्य विविधा रोगा जायन्ते वातसम्भवाः ॥ २९४ ॥ भ्राजिष्णुतामन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम् ॥ करोत्यन्यान्गुणांश्चापि पित्तमात्मा शिराश्चरन् ॥ २९५ ॥

अरोगतां पैत्तिकरोगानुत्पत्तिं करोति । अन्यान् गुणान् मेधाबुद्धिदर्शनशक्त्यादीन् ।

यदा तु कुपितं पित्तं सेवत स्ववहाः शिराः ॥ तदास्य विविधा रोगा जायन्ते पित्तसम्भवाः ॥ २९६ ॥ स्नेहमङ्गेषु सन्धीनां स्थैर्य्यं बलमरोगताम् ॥ करोत्यन्यान्गुणांश्चापि बलासः स्वाः शिराश्चरन् ॥ २९७

अरोगतां श्लैष्मिकरोगानुत्पत्तिम् । अन्यान् गुणान् बलपुष्ट्यादीन् ॥

यदा तु कुपितः श्लेष्मा स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥ तदाऽस्य विविधा रोगा जायन्ते श्लेष्मसम्भवाः ॥ २९८ ॥ धातूनां पूरणं वर्णं स्पर्शज्ञानमसंशयम् ॥ स्वशिरासु चरन्रक्तं कुर्य्याच्चान्यान्गुणानपि ॥ २९९ ॥

अन्यान् गुणान् बलपुष्ट्यादीन् ॥

यदा तु कुपितं रक्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदास्य विविधा रोगा जायन्ते रक्तसम्भवाः ॥ ३०० ॥ तत्रारुणा वातवहाः पूर्य्यन्ते वायुना शिराः ॥ ३०१ ॥ पित्तदुष्टाश्च नीलाश्च शीता गौर्यः स्थिराः कफात् ॥ असृग्धरास्तु ता रक्ताः स्युश्च नात्युष्णशीतलाः ॥ ३०२ ॥

अपनी शिराओंमे फिरनेवाली वायु, अंगोंका विस्तार संकोच आदि क्रियाओंमें कोई विकार नहीं आनेदेती ज्ञानेन्द्रियका, मनका, तथा बुद्धिका ज्ञान और अन्यअन्य गुणोंको भी करतीहै । यह वायु जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरतीहै तब शरीरमें वातसे उत्पन्न हुए अनेक रोगोंको करतीहै । जब अपनी शिराओंमें पित्त विचरताहै तब पित्त कान्तिको करताहै, अन्नमें रुचि उपजाताहै, अग्निको दीपन करताहै, पित्तसंबंधी रोगोंको उत्पन्न नहीं होनेदेता, और धारणाशक्ति, बुद्धि तथा देखनेकी शक्ति आदि अन्यगुणोंको करताहै । यह पित्त जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरताहै तब शरीरमें पित्तसे होनेवाले (गरमी) के रोग उत्पन्न होतेहैं । जब कफ अपनी शिराओंमें विचरताहै तब अंगोंमें स्निग्धता तथा सन्धियोंकी स्थिरता करताहै, और बल देताहै और कफसंबंधी रोगोंको उत्पन्न नहीं होने देता, और पुष्टिआदि अन्य गुणोंको भी करताहै । यह कफ जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरताहै तब शरीरमें कफसे होनेवाले हृल्लासादिक रोग उत्पन्न होतेहैं । जब रक्त अपनी शिराओंमें विचरताहै तब धातुओंको पूरताहै, निःसंशय रीतिसे स्पर्शका ज्ञान करताहै और बल पुष्टि आदि अन्य गुणोंको भी करताहै । यह रक्त जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरताहै, तब शरीरमें रक्तसे उत्पन्न होनेवाले फोडा फुंसी आदि रोगोंको प्रगट करता है । वात बहानेवाली शिरायें लाल हैं और वायुसे पूरित है । पित्त बहानेवाली शिरायें काली हैं तथा पित्तसे पूरित हैं । कफको बहानेवाली शिरायें सफेद, शीतल, स्थिर, और कफसे परिपूर्ण हैं । और रुधिरकी बहानेवाली शिरायें लाल, किंचित् गरम, तथा रक्तसे परिपूर्ण है ॥ २९३–३०२ ॥

अथ स्नायुः ।

तत्र स्नायोः स्वरूपमाह ।

मेदसः स्नेहमादाय शिरा स्नायुत्वमाप्नुयात् ॥ शिराणां हि मृदुः पाकः स्नायूनां तु ततः खरः ॥ ३०३ ॥ स्नायवो बन्धनानि स्युर्देहमांसास्थिमेदसाम् ॥ सन्धीनामपि यत्तास्तु शिराभ्यः सुदृढाः स्मृताः ॥ ३०४ ॥ नौर्यथा फलकास्तीर्णा बंधनैर्बहुभिर्युता ॥ नियुक्ताऽगाधसलिले भवेद्भारसहा भृशम् ॥ ३०५ ॥ एवमेव शरीरेऽस्मिन्यावन्तः सन्धयः स्मृताः ॥

स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः॥३०६॥ फलकैः काष्ठपट्टैः आस्तीर्णा व्याप्ताः॥ शतानि नव जायंते शरीरे स्नायवो नृणाम् ॥ तासां विवरणं ब्रूमः शिष्याः शृणुत यत्नतः ॥३०७॥ शाखासु षट्शतानि: स्युः कोष्ठे त्रिंशच्छतद्वयम्॥ग्रीवाया-मूर्ध्वदेशे तु स्नायूनां सप्ततिः स्मृता ॥३०८॥

उपरोक्त शिरा नामक नाडियोमें जो मेदसे स्नेह आता है तब वहही स्नायु होजाती है। शिराओका पाक कोमल होताहै, और स्नायुका पाक कठिन होताहै. देहमें जो मांस, हड्डी तथा संधियें हैं उनका बंधनरूप स्नायुही हैं, क्योंकि, स्नायु शिराओकी अपेक्षा दृढ है । जिस प्रकार अगाध पानीमें काष्ठसे बनी हुई नाव अनेक बंधनोंसे बँधी हुई बहुत बोझको सहार सक्ती है उसी प्रकार इस शरीरमें जितनी संधियें हैं वे अनेक स्नायुसे बँधी हुई हैं. इससे ही मनुष्य बोझको सहन कर सक्ताहै। मनुष्योंके शरीरमें नौसो (९००) स्नायु हैं, उनका विभाग कहताहू । हे शिष्यो! यत्नपूर्वक सुनो । ये स्नायु-हाथ पावोंमें छःसौ (६००) हैं, कोठेमें दोसौ तीस (२३०) हैं, और गरदनमें तथा गरदनसे ऊपरके भागमें सत्तर (७०) हैं ॥

तत्र शाखागताः प्राह ।

एकैकस्यां पादांगुल्यां षट्षट् तास्त्रिंशत्। तावंत्य एव तलकूर्चगुल्फेषु । तावंत्य एव जंघायाम् । दश जानुनि । चत्वारिंशदूरौ । दश वंक्षणे । एवं सार्द्धशतमेकस्मिन् सक्थिन भवंति। एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ॥

अथ कोष्ठगताः प्राह ।

षष्टिः कट्यां, तावंत्य एव पार्श्वयोः, अशीतिः पृष्ठे, त्रिंशदुरसि ॥

अथ ग्रीवोर्ध्वगताः प्राह ।

षट्त्रिंशद्ग्रीवायाम्, चतुस्त्रिंशन्मूर्ध्नि, एवं स्नायूनां नवशतानि भवंति ॥

हाथ पावोंमें जो छःसौ स्नायु कही हैं वे इस प्रकार हैं कि, पावोंकी एक एक अंगुलीमें छ. हैं इस प्रकार पांचों अंगुलियोंमें तीस (३०) हुई, पांवोंके तलुओंमें कूर्चमें और टकनोंमें तीस (३०) हैं, तीस (३०) ही जांघोंमें, दश (१०) जानु (घुटुओं) में, चालीस (४०) उरस्थानमें, दश (१०) वंक्षण (पेडू) में इस प्रकार एक पांवमें डेढसौ (१५०) है। इसी प्रकार दूसरे पांवमें और दोनों हाथोंमें भी है, अर्थात् कुल हाथ पांवोंमें छःसो हैं ॥

कोठेमें जो दोसौ तीस (२३०) कही है वे इसप्रकार है कि साठ (६०) कमरमें, साठ (६०) ही दोनों पसलियोंमें, अस्सी (८०) पीठमें और तीस (३०) उरस्थानमें हे ॥

अब गरदन और गरदनसे ऊपरके भागकी कहते हैं कि-छत्तीस (३६) गरदनमें और चौंतीस (३४) मस्तकमें इस प्रकार सत्तर (७०) हुई । सब मिलकर नौसौ (९००) हुई ॥ ३०३-३०८ ॥

अथ धमन्यः ।

धमन्यो नाभितो जाताश्चतुर्विंशतिसंख्यया ॥ दशोर्ध्वगा दशाऽधोगाः शेषास्तिर्य्यग्गताः स्मृताः ॥ ३०९ ॥

तत्रोर्ध्वगाः-शब्दस्पर्शरूपरसगन्धप्रश्वासोच्छ्वासजृम्भितक्षुतहसितकथितरुदितगीतादिविशेषानभिवहन्त्यः शरीरं धारयन्ति ॥

प्रश्वासः अन्तःप्रविष्टो वायुः । उच्छ्वासः ऊर्ध्वं गच्छन् वायुः ॥

तास्तु हृदयं गतास्त्रिधा जायंते । तास्त्रिंशत् । तासां मध्ये द्वेद्वे वातपित्तकफशोणितरसान् वहतः । ता दश । अष्टाभिः शब्दरसरूपगन्धान् गृह्णाति पुरुषः । द्वाभ्यां भाषते द्वाभ्यां घोषते । द्वाभ्यां स्वपिति । द्वाभ्यां जागर्ति । द्वे अश्रुवाहिन्यौ द्वे स्तन्यं स्त्रिया वहतः, ते एव शुक्रं नरस्य स्तनाभ्यामभिवहतः । एतास्त्रिंशत् । एताभिरुदरपार्श्वपृष्ठोरःस्कन्धग्रीवाशिरोबाहवो धार्यन्ते चाल्यन्ते च । अधोगतास्तु वातमूत्रपुरीषशुक्रार्त्तवादीन् अधो वहंति । तास्तु पित्ताशयं गतास्त्रिधा जायंते । तास्त्रिंशत् ।

तासां मध्ये द्वे द्वे वातपित्तकफशोणितरसान् वहतः । ता दश । द्वे अंतर्वहे अंत्राश्रिते । द्वे तोयवहे । द्वे वस्तिगते मूत्रवहे । द्वे शुक्रस्य प्रादुर्भावाय । द्वे तद्विसर्गाय, ते एव नारीणामार्त्तवप्रादुर्भावाय ते अधिसृजतश्च । द्वे स्थूलांत्रप्रतिबद्धे पुरीषं विसृजतः । अष्टावन्यास्तिर्यग्गताः स्वेदमर्पयंति । एतास्त्रिंशत् । एताभिरधो नाभेः पक्वाशयकटीमूत्रपुरीषवस्तिगुदमेढ्रसक्थीनि धार्य्यंते चाल्यंते च । तिर्यग्गतानां तु चतसृणामेकैका शतधा सहस्रधा च उत्तरोत्तरं विभज्यंते । तास्तु, असंख्येयास्ताभिरिदं शरीरं गवाक्षितं निबद्धमायतम् । गवाक्षवत् निबद्धमायतम्, गवाक्षो वातायनम्, यथा गवाक्षे बहूनि छिद्राणि भवंति तथा अस्मिन् देहे जालवत् शिराः व्याप्य तिष्ठंतीति भावः । निबद्धमायतं गवाक्षितम् । गवाक्षाकारान्त्रानिकरयुक्तं कृतमित्यर्थः । तासां मुखानि रोमकूपानि यैः मुखैः स्वेदः स्रवति । रसश्चाभिसंतर्पयंति अंतर्बहिश्च । तैरेवाभ्यंगपरिषेकावगाहनालेपनवीर्य्याणि त्वचि पक्वानि अन्तः प्रवेशयन्ति । तैरेव स्पर्शं शुभमशुभं वा गृह्णंति ॥

यथा स्वभावतः खानि मृणालेषु बिसेषु च ॥ धमनीनां तथा खानि रसो यैरभितश्चरेत् ॥३१०॥ पञ्चाभिभूतास्त्वथ पञ्चकृत्वः पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयन्ति ॥ पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयित्वा पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले ॥ ३११ ॥

अस्यायमर्थः—धमन्यः कथं भूताः पञ्चाभिभूताः पञ्चभ्यः आकाशादिमहाभूतेभ्यः अभि समंतात् भूताः, पञ्च इंद्रियाणि उभयात्मकं मनश्च यस्य तं पञ्चेन्द्रियं जीवात्मानं पञ्चसु इन्द्रियाधिष्ठानेषु श्रोत्रादिषु पञ्चकृत्वः पञ्चवारान् । पर्य्यायेण तु एकदैव भावयन्ति प्रापयन्ति । पञ्चेन्द्रियं पञ्चानामिन्द्रियाणां समाहारः पञ्चेन्द्रियं श्रोत्रादि तदुपलक्षितं कर्मेंद्रियं मनश्च । पञ्चसु पृथिव्यादिषु बुद्धींद्रियविषयेषु । तदुपलक्षितेषु हस्तादिषु कर्मेंद्रियविषयेषु । मन्तव्ये मनोविषये च भावयित्वा प्राप्य संयोज्येति यावत् । विनाशकाले पञ्चत्वमाकाशादिभावमायान्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥

धमनियें (नाडियें) नाभिमें उत्पन्न हुई हैं उनकी सख्या चोवीस हैं, उनमें दश (१०) ऊपरको जाती हैं, दश (१०) नीचेको जाती हैं, और बाकी टेढी जातीं हैं । उनमें ऊपर जानेवाली दश (१०) धमनियें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध, निःश्वास (भीतर जानेवाली वायु), उच्छ्वास, (ऊपर आनेवाली वायु), जम्भाई, छींक, हास्य कथ, रोना और गीत आदि विशेष कर्म्मोसे बहकर शरीरको धारण करैहैं । वे ऊपर जानेवाली दश धमनियें हृदयमें जाकर एक एकमेंसे तीन तीन अर्थात् सब तीस होती हैं । उनमे दोमे वायुका, दोसे पित्तका, दोसे कफका, दोसे रुधिरका और दोसे रसका वहन होताहै । आठसे शब्द, रस, रूप तथा गधका ग्रहण होताहै । दोसे बोलताहै । दोसे शब्द होताहै, दोसे सोता है, दोसे जागता है, दोसे आसू वहाती है और दो स्त्रीके दूधको वहाती है और जो स्त्रीके दूधको वहानेवाली हैं वह पुरुषके स्तनोमे शुक्रको वहानेवाली जाननी । ये सब तीस (३०) हुई । ये धमनियें पेट पसली, पीठ, उरस्थान, कन्धे, ग्रीवा, शिर और भुजाओंको धारण करें है और हलावें चलावें हैं । नीचे जानेवाली दश (१०) शिरायें वात, मूत्र, विष्ठा, वीर्य और आर्तव इत्यादि पदार्थोंको नीचे लेजाती है, ये दश (१०) धमनियें पित्ताशयमे जाकर एक एकमेंसे तीन तीन अर्थात् सब तीस होती हैं । उनमेसे दो (२) से वायुका, दो (२) से पित्तका, दो (२) से कफका, दो (२) से रुधिरका और दो (२) से रसका वहन होता है । वे सब दश (१०) हैं । दो धमनियें, आंतोके आश्रयसे अन्नको वहानेवाली हैं, दो पानीको वहानेवाली हैं, दो मूत्राशयमे रहकर मूत्रको वहन करें हैं, दोसे वीर्य उत्पन्न होताहै, दोसे वीर्य बाहर निकलताहै । पुरुषोंके वीर्यको उत्पन्न करनेवाली और बाहर निकालनेवाली इन चार धमनियोंके बदले स्त्रियोंके शरीरमें जो चार धमनियें हैं उनमेंसे दो स्त्रियोंके रज उत्पन्न करें हैं और दो बाहर-

निकाले हैं। दो धमनियें मोटी आंतोसे बँधी हुई विष्ठाको बाहर निकालती है और दूसरी आठ टेढी रहकर पसीना उत्पन्न करतीहैं, ये सब तीस हुई, ये धमनियें नाभिके नीचे पक्वाशय, कमर, मूत्र, पुरीष, मूत्राशय, गुदा, लिंग और पाँवको धारण करें हैं और उनको हलावें चलावे है। टेढी रहनेवाली चार धमनियोंमें एकएकमेंसे उत्तरोत्तर सैकडो और हजारो होगई हैं, वे असंख्यात हैं कि, जिनसे यह शरीर जालीकी तरह पूर रहाहै। जिस प्रकार जालीमें अनेक छिद्र होते हैं उसी प्रकार इस देहमें जालीके सदृश ये धमनियें पूर रही हैं. इनके मुखोमें रुएँ लगरहे हैं कि, जिन मुखोंसे पसीना निकलता है और भीतर बाहर रससे सींचा करता है, और बाहरसे अभ्यंग, परिषेक, स्नान, आलेपन इनके वीर्यको त्वचामें पकाकर भीतर प्रवेश करें हैं और येही स्पर्शके शुभअशुभको ग्रहण करें है। जिसप्रकार कमलका दंडा और कमलकन्दमें स्वाभाविक अनेक छिद्र होते हैं, उसीप्रकार धमनियों (नाडियों) में भी स्वाभाविक छिद्र हैं कि जिनसे रस चारों ओर फिरताहै। आकाश आदि पञ्चभूतोंसे नारो ओर उत्पन्न हुई ये धमनियें जीवको जिसके कि ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानकर्म-रूप दोनों स्वभाववाला मन है उसको ज्ञानेन्द्रियोंके, कर्मेन्द्रियोंके और मनके विषयोंमें अनुक्रमसे पाँच वारमें और विना अनुक्रमसे एक ही समयमें जोडदेती है, और इस प्रकार जोडकर जब विनाशका समय आताहै तब पीछे पंचमहाभूतरूप होजाती है ॥ ३०९--३११ ॥

अथ कण्डराः।

महत्यः स्नायवः प्रोक्ताः कण्डरास्तास्तु षोडश ॥ प्रसारणाकुञ्चनयोर्दृष्टं तासां प्रयोजनम् ॥३१२॥ चतस्रो हस्तयोस्तासां तावन्त्यः पादयोः स्मृताः ॥ ग्रीवायामपि तावन्त्यस्तावन्त्यः पृष्ठसङ्गताः ॥ ३१३ ॥

तत्र पादहस्तगतानां कण्डराणां नखाः प्ररोहाः। ग्रीवानिबन्धनानामधोभागगतानां प्ररोहो मेढ्रः। पृष्ठनिबन्धानां प्ररोहा नितम्बमूर्ध्वोरुवक्षोंऽक्षिस्तनपिण्डाः ॥

बडी स्नायुओंको कंडरा कहतेहैं और उनकी संख्या सोलह (१६) हैं. ये कण्डरायें अंगका संकोच विस्तार करनेमें काम आतीहैं। ये कंडरायें दोनों हाथोंमें चार(४), पाँवोंमें चार (४), गरदनमें चार (४) और पीठमें भी चार है, इसप्रकार कुल सोलह (१६) है। उनमेंसे हाथ तथा पाँवोंमें रहनेवाली कंडराँओमेंसे नखरूपी अंकुर फूटतेहैं। गरदनकी चार कंडरायें कि, जो गरदनमें बँधकर नीचे भागमें गई है उनमें लिंगरूप अंकुर निकलताहै, और पीठमें रहनेवाली चार कंडराओंमेंसे नितम्ब, मस्तक, ऊरुस्थान, वक्षस्थल, नेत्र, तथा स्तनरूपी अंकुर निकलतेहैं ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥

अथ रन्ध्राणि।

नेत्रश्रवणनासानां द्वेद्वे रन्ध्रे प्रकीर्तिते ॥ मुखमेहनपायूनामेकैकं रन्ध्रमुच्यते ३१४॥ दशमं मस्तके प्रोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः ॥ स्त्रीणामन्यानि च त्रीणि स्तनयोर्गर्भवर्त्मनि ॥ ३१५ ॥

नेत्रोंमें दो (२), कानोंमें दो (२), नाकमें दो (२), मुखमें एक (१), लिंगमें एक (१) और गुदामें एक (१) इस प्रकार नौ (९) और दशवां (१०) मस्तकमें इसी प्रकार पुरुषोंके शरीरमें मुख्य छिद्र दश है। स्त्रियोंके शरीरमें उपरोक्त संख्यासे अलग स्तनोंमें दो (२) और गर्भाशयमें एक (१) इस प्रकार तीन छिद्र अधिक है ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥

अथ स्रोतांसि।

मनःप्राणान्नपानीयदोषधातूपधातवः ॥ धातूनां च मला मूत्रं मलमित्यादयस्तनौ॥ ॥ ३१६ ॥ सञ्चरन्ति हि यैर्मार्गैस्तानि स्रोतांसि सञ्जगुः ॥ बहूनि तानि संख्याय शक्यन्ते नैव भाषितुम् ॥ ३१७ ॥

मन, प्राण, अन्न, पानी, दोष, धातु, उपधातु, धातुओंके मल, मूत्र और विष्ठा इत्यादि पदार्थ शरीरमें जिन मार्गोंसे विचरण करते है उन मार्गोंका स्रोत (छिद्र) कहते है। ये स्रोत बहुत होनेसे इसकी संख्या नहीं कही जासकती ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥

अथ जालानि।

जालानि तु शिरास्नायुमांसास्थ्नामुद्भवन्ति हि ॥ तानि चत्वारि चत्वारि सर्वाण्येव च षोडश ॥ ३१८ ॥

निरन्तररंध्राणि करकलितानि समूहितानि च जालानीव जालानि ॥

तानि मणिबन्धगुल्फसंसृतानि परस्परनिबद्धानि परस्परसंश्लिष्टानि परस्परगवाक्षितानि चेति, यैर्गवाक्षितमिदं शरीरम् ॥ अयमर्थः--एकस्मिन् मणिबन्धे एकं जालं शिरायाः, अपरं स्नायोः, तृतीयं मांसस्य, चतुर्थमस्थ्नः, एवं चत्वारि जालानि । एतेन इतरमणिबन्धो गुल्फौ च व्याख्यातौ । गवाक्षितं विरचितं निरन्तरजालाकाररन्ध्रनिकरपरिकलितमित्यर्थः ॥

यह जालशिरा, स्नायु, मांस और अस्थियोंसे बने हैं। ये एकएक स्थानमें चार चार हैं, इसप्रकार सब मिलकर सोलह (१६) हुए। निरंतर अनेक छिद्रों करके युक्त और परस्पर मिले हुए जालके सदृश शरीरके भीतर भी जाल हैं। वे पहुँचेमें, टकनेमें स्थित, परस्पर बँधे हुए, मिलेहुए और छिद्रयुक्त होते हैं, जिनसे कि यह शरीर जालोंकी समान छिद्रयुक्त है। इसका तात्पर्य यह है कि, एक हाथके पहुँचेमें एक शिराका, दूसरा स्नायुका, तीसरा मांसका और चौथा अस्थिका इस प्रकार चार जाल हैं। दूसरे हाथके पहुँचेमें और दोनों पाँवोंके टकनोंमें भी इसी प्रकार चार २ जाल हैं जिस प्रकार जालके छिद्र मिले हुए होतेहैं उसी प्रकार इनके भी छिद्र भीतर बाहरमें मिलेहुए होतेहैं ॥ ३१८ ॥

अथ कूर्चाः ।

कूर्चाः स्युर्हस्तयोर्द्वौ तु तावन्तौ पादयोरपि ॥ ग्रीवायामेक एकस्तु मेढ्रे सर्वेऽपि षट् स्मृताः ॥ कूर्चा अपि शिरास्नायुमांसास्थिप्रभवः स्मृताः ॥ ३१९ ॥

दोनों हाथोंमें दो (२), दोनों पाँवोंमें दो (२) गरदनमें एक (१) और लिंगमें एक (१) इस प्रकार सब मिलकर छः (६) कूर्चा हैं (कुशापुञ्जके सदृश पदार्थको कूर्चा कहते हैं वे लाल तेजस्वी होतेहैं) ये कूर्चा शिरा, स्नायु, मांस और अस्थियोंसे बनेहैं ३१९॥

अथ रज्जवः ।

पृष्ठवंशस्योभयत्र महत्यो मांसरज्जवः ॥ चतस्रो मांसपेशीनां बन्धनं तत्प्रयोजनम् ३२० ॥

पीठके बाँसोंकी दोनों ओर मांसकी मोटी मोटी चार (४) रज्जु (डोरी) हैं, मांसकी पेशियोंको बाँधकर रखना यह इनका काम है ॥ ३२० ॥

अथ सेवन्यः ।

सेवन्यः सप्त तासां तु भवेयुः पञ्च मस्तके ॥ एका शेफसि जिह्वायामेका विध्येन्न ताः क्वचित् ॥ ३२१ ॥

शरीरमें सेवनी सात हैं उनमेंसे माथेमें पाँच (५) हैं, लिंगमें एक (१) है और जीभमें (१) है इनको कभी भी न बेधें सुईसे सिली हुई जगहके सदृशको सेवनी कहतेहैं ॥ ३२१ ॥

अथ संघाताः ।

चतुर्दशास्थ्नां संघातास्तेषां त्रयो गुल्फजानुवंक्षणेषु । एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ । त्रिकं शिरसोरेकैकम् । अत्र तु त्रिकपदेन बाहुग्रीवास्थिसंघात उच्यते ॥

हड्डियोंके संघात (समुदाय) चौदह (१४) हैं, उनमेंसे पाँवोंके दोनों टकनोंमें दो (२), दोनों घुटनोंमें दो (२), दोनों वंक्षणोंमें दो (२), दोनों भुजाओं में छः (६), त्रिक (गरदन) मे एक (१) और मस्तकमें एक (१) इस प्रकार सब चौदह (१४) हुए ॥

अथ सीमन्ताः ।

चतुर्दशैव सीमन्ताः कथिता मुनिपुङ्गवैः ॥ संघाताः सीविता यैस्तु सीमन्तास्ते प्रकी- (र्त्तिताः ॥ ३२२ ॥ यः अस्थिभिः) ॥

उत्तम मुनियोंने चौदह (१४) ही सीमंत कहे हैं जिनसे संघात जोडेगये हैं उनही हड्डियोंको सीमंत जानलेना ॥ ३२२ ॥

अथ त्वचः ।

क्षीरस्य पच्यमानस्य यथा सन्तानिका भवेत् ॥ पच्यमानस्य शुक्रस्य रजसश्च तथा त्वचः ॥ पूर्वावभासिनी तासां सिध्मस्थानं च सा स्मृता ॥ ३२३ ॥

अथावभासिनी--भ्राजकेन पित्तेन अवभासनात् ॥ परिणाहेन विस्तारितस्य व्रीहेरष्टादशो भागः प्रमाणं यस्याः ॥ व्रीहिरत्र यवः ॥ सा सिध्मपद्मकण्टकयोरधिष्ठानम् ॥ द्वितीया लोहिता ज्ञेया तिलकालकजन्मभूः ॥ ३२४ ॥

द्वितीया यवषोडशभागप्रमाणा तिलकालकन्यच्छव्यङ्गानामधिष्ठानम् ॥
तृतीया तु भवेच्छ्वेता स्थानं चर्मदलस्य सा ॥ ३२५ ॥
सा यवद्वादशभागप्रमाणा चर्मदलाजगल्लिकामशकानामधिष्ठानम् ॥
ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्रभूमिका ॥ ३२६ ॥
चतुर्थी यवाष्टभागप्रमाणा ॥
पञ्चमी वेदिनी नाम्ना पञ्चभागप्रमाणिका ॥
विसर्पकुष्ठाधिष्ठाना ज्ञेया षष्ठी तु रोहिणी ॥
विख्याता रोहिणी षष्ठी ग्रन्थिगण्डापचीस्थितिः ॥ ३२७ ॥
व्रीहिमात्रप्रमाणा सा रोहिणी ग्रन्थ्यापचीगलगण्डमालार्बुदश्लीपदानामधिष्ठानम् ॥
स्थूला त्वक्सप्तमी ख्याता विद्रध्यादेः स्थितिश्च सा ॥ ३२८ ॥
सा सप्तमी व्रीहिद्वयप्रमाणा ॥
तत एवोक्तं शार्ङ्गधरेण स्थूला व्रीहिद्विमात्रयेति । सप्तापि त्वचः समुदिता विंशतितमभागोनषड्यवप्रमाणाः ।
षड्यवप्रमाणं तु अंगुष्ठोदरतुल्यम् । यत उक्तम्—उदरेष्वंगुष्ठप्रमाणगाढमाविध्येदिति । एतत् प्रमाणं मांसलेषु स्थूलेषु बोद्धव्यम्, न तु ललाटसूक्ष्मांगुल्यादिषु ॥

जिस प्रकार अग्निसे औटेहुए दूधमेसे मलाई होतीहै, उसी प्रकार पित्तसे पके हुए वीर्य और रजसे त्वचा होतीहै, ये त्वचा सात हैं, इनमें पहिली त्वचाका नाम अवभासिनी है और वह सिध्मनामक एक प्रकारके कोढका स्थान है, वह त्वचा भ्राजक नाम पित्तसे प्रकाश होती है, इससे ही अवभासिनी कहाती है । विस्तारमे जौके बीस भाग करके उसमें अठारहवॉ भाग जितना होताहै उतना इसका प्रमाण है । यह त्वचा जिसप्रकार सिध्म नामक कोढका स्थान है—उसीप्रकार पद्मकटक नामक कोढका भी स्थान है। दूसरी त्वचाका नाम लोहिता है और उसका प्रमाण जौके सोलहवे भागके सदृश है, यह त्वचा तिलकालक, न्यच्छ और व्यंग (झाई) रोगका स्थान है। तीसरी त्वचाका नाम श्वेता है, इसका प्रमाण जौके बारहवे भागके सदृश है । यह त्वचा चर्मदल नामक कोढ, अजगल्लिका और मस्से होनेका स्थान है । चौथीका नाम ताम्रा है, उसका प्रमाण जौके आठवे भागके सदृश है, यह त्वचा किलास और श्वित्र नामक कोढका स्थान है । पॉचवी त्वचाका नाम वेदिनी है और उसका प्रमाण जौके पॉचवे भागके सदृश है, यह त्वचा विसर्प नामक कोढका स्थान है । छठी त्वचाका नाम रोहिणी है, इसका प्रमाण एक जौके बराबर है, यह त्वचा गांठ, अपची, गलगंड, गंडमाला, अर्बुद, और श्लीपदादिरोगोके उत्पन्न होनेका स्थान है । सातवी त्वचाका नाम मांसधरा है, यह स्थूलहै, इसका प्रमाण दो जौके बराबर है यह त्वचा विद्रधि आदिका स्थान है, इसके विषयमे शार्ङ्गधरमें भी कहाहै कि—स्थूल त्वचा दो जौके बराबर है । सातो त्वचाका प्रमाण इकट्ठा करनेसे बीसवां भाग छः जौके बराबर है, छः जौओका प्रमाण अगूठेके उदरके बराबर है अर्थात् इसी कारणसे दूसरे ग्रथमे कहा है कि—पेटको शस्त्रसे छेदना होय तो अगूठेके बराबर छेदे, यह प्रमाण मांससे भरेहुए स्थूल भागोंमे जानना, परन्तु ललाट और अगुली आदिक पतले भागोमे नही जानना ॥ ३२३—३२८ ॥

अथ लोमानि लोमकूपाश्च ।

अस्थ्नो मलानि लोमानि चासंख्यानि भवन्ति हि ॥ सन्ति यावन्ति लोमानि तावन्तो लोमकूपकाः ॥ ३२९ ॥

रोम हड्डियोका मैल है, और वे असख्यात है, जितने शरीरमें रोम हैं उतनेही बाल निकलनेके रोमकूप (छिद्र) हैं ॥ ३२९ ॥

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते ॥ सन्निवेशश्च गात्राणां नात्रास्ते कारणान्तरम् ॥ ३३० ॥
निर्वृत्तिः सिद्धिः स्वभावात् ईश्वरात् । सन्निवेशो रचनाविशेषः ॥
अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तौ ये भवन्त्यगुणा गुणाः ॥ तेते गर्भस्य विज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजाः ॥ ॥ ३३१ ॥ दन्तानां पतनं जन्म पुनः पाते त्वसम्भवः ॥ तलेष्वनुद्भवो लोम्नामेतत्सर्वं स्वभावतः ॥ ३३२ ॥

अंग और उपांगोंका बनना, तथा शरीरकी रचना स्वभावसेही होती है, इसमें अन्य कारण कोई नहीं है. गर्भके अंग तथा उपांग बननेमें जो कोई गुण दोष होताहै सो जन्मसे आयेहुए जीवके धर्म और अधर्मके निमित्तसे होताहै, ऐसा जानना। पहिली बारके दांत गिर जानेपर दूसरी बार जमते हैं और दूसरीवार गिरनेपर पीछे नहीं जमते। हाथ पांवके तलुएमें स्वभावसेही बाल उत्पन्न नहीं होते, इनका अन्य कारण नहीं है ॥ ३३०–३३२ ॥

गर्भे मासिमासि यद्भवति तदाह ।

गर्भाशये निपतितं यादृक्शुक्रं तथार्तवम् ॥ तादृगेव द्रवीभूतं प्रथमे मासि तिष्ठति ॥ ॥ ३३३ ॥ मरुत्पित्तकफैस्तत्स्थैः पच्यमानं द्वितीयके ॥ कललस्थं महाभूतं समुदायं घनीभवेत् ॥ ३३४ ॥

अत्र मरुत्कफयोरपि पाकहेतुत्वं तयोरप्यूष्मणोऽधिकरणत्वात् । यत उक्तं चरके—

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः ॥ तृतीये मासि शिरसो हस्तयोः पादयोस्तथा ॥ ३३५ ॥ पिण्डकाः पञ्च सिध्यन्ति सूक्ष्माङ्गावयवास्तनोः ॥ सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि चतुर्थे स्युः स्फुटानि हि ॥ ॥ ३३६ ॥ हृदयव्यक्तभावेन व्यज्यते चेतनापि च ॥ तस्माच्चतुर्थे गर्भस्तु नाना वस्तूनि वाञ्छति ॥ ३३७ ॥ ततो द्विहृदया कल्याणनारी दौहृदिनी मता ॥ दौहृदावज्ञया कुब्जं कुणिं पण्डं च वामनम् ॥ विकृताक्षमनक्षं वा पुत्रं नारी प्रसूयते ॥ ॥ ३३८ ॥ यतः स्त्री दौहृदं प्राप्य वीर्यवन्तं चिरायुषम् ॥ पुत्रं प्रसूयते तस्मात्तस्यै नारीच्छितमर्पयेत् ॥ ३३९ ॥ इन्द्रियार्थांस्तु यान्यान्सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी ॥ गर्भाबाधभयात्तांस्तानभिषगाहृत्य दापयेत् ॥ ३४० ॥

भोक्तुमुपभोक्तुमित्यर्थः ॥

सा प्राप्तदौहृदा पुत्रं जनयेत्तु गुणान्वितम् ॥ अलब्धदौहृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् ॥ ३४१ ॥ येषुयेष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदे सावमानिता ॥ प्रसूयते सुतं सार्ति तस्मिंस्तस्मिंस्तदिन्द्रिये ॥ ३४२ ॥

सार्ति सव्यथम् ॥

दौहृदविशेषफलमाह ।

राजसंदर्शने यस्या दौहृदं जायते स्त्रियः ॥ अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ ॥ ३४३ ॥ दुकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दौहृदात् ॥ अलङ्कारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ ३४४ ॥ आश्रमे संयतात्मानं धर्मशीलं प्रसूयते ॥ देवताप्रतिमायां तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥ ३४५ ॥

आश्रमे तपस्विनामाश्रमे दौहृदात् पार्षदोपमं प्रमथोपमम् ॥

दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते ॥ रक्ताक्षं लोमशं शूरं महिषामिषदौहृदात् । ॥ ३४६ ॥ वाराहमांसे स्वप्नालुं शूरं सञ्जनयेत्सुतम् ॥ मृगमांसे तु तच्छायं विक्रान्तं वनचारिणम् ॥ ३४७ ॥ अतोऽनुक्तेषु या नारी दौहृदं विदधाति हि ॥ शरीराचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥ पञ्चमे मानसं षष्ठे बुद्धिश्चातिप्रबुद्ध्यते ॥ ॥ ३४८ ॥ सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि भृशं व्यक्तानि सप्तमे ॥ ओजोऽष्टमे सञ्चरति मातापुत्रौ मुहुः क्रमात् ॥ ३४९ ॥ तेन तौ म्लानमुदितौ स्यातां जातो न जीवति ॥ न जीवत्यष्टमे जातस्तत्रौजो न स्थिरं यतः ॥ तथा नैर्ऋत्यभागत्वाद्दापयेत्तद्बलिं ततः ॥ ३५० ॥

नैर्ऋताय भागश्च बालेषु रुद्रेण दत्तः ॥

यत उक्तं कुमारतन्त्रे-अष्टमे मासि नैर्ऋत्याय मांसौदनं बलिं दापयेदिति

नवमे दशमे मासि नारी बालं प्रसूयते ॥ एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ ३५१ ॥

वीर्य और रज जब गर्भाशयमें जैसा गिरता है तब वह वैसाही द्रवरूप (पतला) पहिले मासमें रहताहै, यह गर्भाशयमें रहनेवाले वात, पित्त और कफसे पककर वीर्य और रजमें रहनेवाला पञ्चमहाभूतका समुदाय दूसरे महीनेमें घन (गाढा) होजाताहै. वायु और कफसे भी गर्भपाक होताहै, क्योंकि उसमेंभी गरमी रहती है । चरकमें कहाहै कि—"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इसप्रकार पांच प्रकारकी गरमी है" तीसरे महीनेमें दोनों हाथोंके, दोनों पॉवोंके और एक मस्तकका इस प्रकार पांच पिंड और शरीरके सूक्ष्म अवयव निकलते हैं । चौथे महीनेमें सम्पूर्ण अंग और उपांग स्पष्ट होतेहैं, हृदयकी स्पष्टता होनेसे चेतना भी स्पष्ट होजाती है, इसकारण गर्भको चौथे महीनेमें अनेक वस्तुओंकी इच्छा होने लगती है । एक अपना और दूसरा गर्भका, इसप्रकार उस समयमें स्त्रीके दो हृदय होतेहैं; इसकारण गर्भिणी स्त्री दौहृदिनी कहाती है । गर्भवाली स्त्रीकी इच्छा पूर्ण न होनेसे अर्थात् जिस वस्तुपर इच्छा हो वह न देनेसे वह स्त्री कुबडा, टोंटा, नपुंसक, बौना, बुरे नेत्रवाला, अथवा अंधा बालक उत्पन्न करती है । गर्भवाली स्त्रीको खाने पीने आदिकी जो इच्छा होय और वह पूर्ण होजाय तौ वह स्त्री पराक्रमी और बडी आयुवाला बालक जनती है, इस लिये उसको जिस वस्तुकी अभिलाषा होय वही वस्तु देनी चाहिये । गर्भिणी स्त्री जो जो वस्तुएँ भोगनेकी इच्छा करै वह वह वस्तु गर्भवाधाके भयसे वैद्य उसको देवै । जब इच्छा पूरी होजाय तब स्त्री गुणवान् पुत्र जनती है, और जिनकी इच्छा पूरी नहीं होती उन स्त्रियोंके गर्भमें अथवा अपने शरीरमें अनेक बाधा उत्पन्न होती हैं । गर्भिणी स्त्रियोंकी इच्छित वस्तुएँ जिस जिस इन्द्रियके विषय संबधी हों उनकी इच्छा पूर्ण न होनेसे उन उन इन्द्रियोंमें ही व्यथावाला पुत्र होताहै । जिस स्त्रीके राजाके दर्शन करनेकी इच्छा होय तौ स्त्री धनवान् और अत्यंत पूज्य पुत्र जनती है, जिस स्त्रीको उत्तम वस्त्र, रेशमी वस्त्र, और आभरण आदिकी इच्छा होय तौ स्त्री अलकारोंकी इच्छा करनेवाला ललित पुत्र जनती है । जो स्त्री तपस्वियोंके आश्रममें जानेकी इच्छा करै वह जितेन्द्रिय और धर्मात्मा संतान जनती है । जिस स्त्रीको देवताकी मूर्तिका दर्शन करनेकी इच्छा होय वह स्त्री सदा पार्षदके सदृश पुत्र जनती है । स्त्रीको सर्पादिककी जाति देखनेकी इच्छा होय तौ स्त्री हिंसाके (हत्यारे) स्वभाववाला पुत्र जनती है । भैंसका मांस खानेकी इच्छा होय तौ वीर, लाल नेत्रवाले, और अधिक रोमवाले पुत्रको जनती है । सूकरका मांस खानेकी इच्छा होय तौ शूरवीर और विशेष निद्रालु पुत्र जनतीहै । हिरनका मांस खानेकी इच्छा होय तौ हिरनकी कांतिवाला, पराक्रमी और वनमें फिरनेवाला बालक जनती है । और जिस स्त्रीको इनमें कहीहुई वस्तुओंके अतिरिक्त किसी वस्तुकी इच्छा होय तौ स्त्री उसीके सदृश शरीर आचार और स्वभाववान् पुत्रको जनती है । पांचवें महीनेमें मन प्रगट होता है, छठे महीनेमें विशेष कर बुद्धि विकसित होती है । सातवें महीनेमें समस्त अंग और उपांगों करके स्पष्ट होजाता है । आठवें महीनेमें ओज माता और पुत्रमें क्रमसे संचार करता है उससे स्त्री और गर्भ वारवार मलीन (कुम्हलाए) और मुदित रहते हैं इस कारण जो बालक आठवें महीनेमें उत्पन्न होताहै, वह जीवित नहीं रहता, उसका कारण यह है कि उस महीनेमें ओज स्थिर नहीं रहता, तथा आठवें महीनेमें बालकके शरीरपर नैर्ऋत्यनामक देवताका भाग लगता है इसकारण आठवें महीनेमें देवताको दान देवै बालकके शरीरमें नैर्ऋत्यदेवताका भाग रुद्रने दिया है, येही कुमारतंत्रमें भी कहा है कि—"आठवें महीनेमें नैर्ऋत्यदेवताको मांसयुक्तभातका बलिदान देवै" स्त्री नवमें वा दशवें महीनेमें बालक जनती है. कोई कोई ग्यारहवें और बारहवें महीनेमें भी जनती है, कोई विकार होय तो इसमें उपरांतमें भी जनती है ॥ ३३३—३५१ ॥

गर्भे यदंगं प्रथमं भवति, तदाह ।

शिरो भवति चांगस्य पूर्वमित्याह शौनकः ॥ शिरस्येवोपजायन्ते प्रधानानीन्द्रियाणि यत् ॥ ३५२ ॥ हृदयं जायते पूर्वं कृतवीर्योऽवदन्मुनिः ॥ बुद्धेश्च मनसश्चापि यतस्तत्स्थानमीरितम् ॥ ३५३ ॥ पाराशर्य इति प्राह पूर्वं नाभिसमुद्भवः ॥ प्राणो यत्र स्थितो देहं वर्द्धयत्यूष्मसंयुतः ॥

॥ ३५४ ॥ पाणिपादं भवेत्पूर्वं मार्कण्डेयमुनेर्मतम् ॥ देहिनः सकलाश्चेष्टाः पाणिपादाश्रया यतः ॥ ३५५ ॥ प्रथमं जायते कोष्ठं ततः सर्वांगसम्भवः ॥ एतत्तु कथयामास गौतमो मुनिपुंगवः ॥ ३५६ ॥ सर्वाण्यंगान्युपांगानि युगपत्सम्भवन्ति हि ॥ सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते मतं धन्वन्तरेरिदम् ॥ ३५७ ॥ आम्रस्यानुफले भवन्ति युगपन्मांसास्थिमज्जादयो लक्ष्यन्ते न पृथक्पृथक्तनुतया पुष्टास्त एव स्फुटाः ॥ एवं गर्भसमुद्भवे त्ववयवाः सर्वे भवन्त्येकदा लक्ष्याः सूक्ष्मतया न ते प्रकटतामायान्ति वृद्धिं गताः ॥ ३५८ ॥

मज्जादयः इति आदिशब्देन त्वक्केशरमज्जात्वगंकुरवृन्तानि गृह्यन्ते ॥

शौनक ऋषि कहते हैं कि—"सम्पूर्ण अंगोंमें प्रथम मस्तक उत्पन्न होता है, क्योंकि मुख्य इन्द्रियें मस्तकमेंही होती हैं"। कृतवीर्यमुनि कहते हैं कि—"प्रथम हृदय उत्पन्न होता है, क्योंकि मनका और इन्द्रियोंका स्थान हृदयही कहा है" पाराशर्यमुनि कहते हैं कि—"प्रथम नाभि उत्पन्न होती है कारण—जिसमें रहकर प्राण गरमीकी सहायतासे देहको बढाते हैं" मार्कण्डेय मुनिका मत यह है कि—"सम्पूर्ण प्राणियोंमें हाथ पाँवहीसे चेष्टा होती है इस कारण हाथ और पाँवही प्रथम उत्पन्न होने सम्भव है" मुनियोंमें उत्तम गौतम मुनि कहते हैं कि—"प्रथम कोठा (धड) उत्पन्न होता है और पीछे सम्पूर्ण अंग उत्पन्न होते हैं" परन्तु भगवान धन्वन्तरिका मत यह है कि—इस प्राणीके सम्पूर्ण अंग और उपांग एकही साथ होते हैं, परन्तु सूक्ष्म होनेसे देखनेमें नहीं आते जैसे बहुत छोटे छोटे आमके फलमें मांस (गूदा) हड्डी (गुठली), मज्जा (मींग) छाल, केशर, मज्जाकी छाल और अंकुर आदिक पदार्थ एकही समयमें उत्पन्न होते हैं, परन्तु सूक्ष्म होनेसे अलग अलग नहीं दीखते और जब पुष्ट होते हैं तब स्पष्ट दीखने लगते हैं इसी प्रकार गर्भमें सम्पूर्ण अवयव एकही समय उत्पन्न होते हैं, परन्तु सूक्ष्म होनेसे दीखते नहीं हैं; जब बढ जाते हैं तब स्पष्ट दीखने लगते हैं ॥ ३५४—३५८ ॥

अथ शरीरे पितृज-मातृज-रसजात्मजा भागा उच्यन्ते ।

तत्र—केशाः श्मश्रु च लोमानि नखा दन्ताः शिरास्तथा ॥ धमन्यः स्नायवः शुक्रमेतानि पितृजानि हि ॥ ३५९ ॥ मांसासृङ्मज्जमेदांसि यकृत्प्लीहान्त्रनाभयः ॥ हृदयं च गुदं चापि भवन्त्येतानि मातृतः ॥ ३६० ॥ शरीरोपचयो वर्णो बलं देहस्थितिस्तथा ॥ रसादेतानि जायन्ते भिषजो मुनयो जगुः ॥ ३६१ ॥ ज्ञानं विज्ञानमायुश्च सुखदुःखादिक तथा ॥ इन्द्रियाणि च सर्वाणि भवन्त्येतानि चात्मनः ॥ ३६२ ॥

दुःखादिकमित्यादिशब्देन नानायोनिजन्मादिकमुच्यते । आत्मनः आत्मसन्निकर्षात् न तु आत्मनो जायन्ते, आत्मनो निर्विकारात् प्रकृतिभावानुपपत्तेः ॥

केश, डाढी, मूँछ, रोम, नख, दांत, शिरायें, धमनियें, स्नायु और वीर्य, इतने भाग पितासे उत्पन्न होते हैं। मांस, रक्त, मज्जा, मेदा, कलेजा, प्लीहा, आंत नाभि, हृदय और गुदा इतने भाग मातासे उत्पन्न होते हैं। शरीरका उपचय (बढना), वर्ण, बल और देहकी स्थिति ये सब रससे प्रगट होते हैं, ऐसा वैद्य और मुनियोंने कहा है । ज्ञान, विज्ञान, आयु, सुख, दुःख, सम्पूर्ण इन्द्रियें और अनेक योनियोंमें जन्म होना आदि आत्मासे होता है। ऊपर यह जो कहा कि ज्ञान आदि और सम्पूर्ण इन्द्रियें आत्मासे होती हैं' इस कहनेका प्रयोजन यह है कि आत्माके सन्निकर्ष होनेसे उत्पन्न होते हैं। निर्विकार आत्मासे तो कोईभी वस्तु उत्पन्न नहीं होती ॥ ३५९—३६२ ॥

गर्भस्य किंकि विशिष्टोपकारकं तत्तदाह ।

अग्नीषोमौ मही वायुर्नभः सत्त्वं रजस्तमः ॥ पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मा गर्भं सञ्जीवयन्ति हि ॥ ३६३ ॥

अग्निरत्र पाचकालोचकरंजकभ्राजकसाधकानाम्; तथा पांचभौतिकानां तथा सप्तधातुगतानामग्नीनां शक्तिरूपतया अवस्थितो वाचोऽधिदेवत्वं प्राप्तो बोद्धव्यः, स पाचकादिकर्मणा जीवयति । सोमश्च पश्चात्मकश्लेष्मरसशुक्रादीनां सोमात्मकानां भावानां रसेन्द्रियस्य च शक्तिरूपतया अवस्थितो मनसश्चाधिदेवत्वं प्राप्तो बोद्धव्यः, स च सौम्यधातोरोजःप्रभृतेः पोषणेन पवनपावकसंशुष्कभागस्य आर्द्रताविधानेन जीवयतीति शेषः । मही च जलेन क्लिन्नस्यापि कठिनविधानेन । वायुर्दोषधातुमलांगोपांगादीनां सञ्चारणेन उच्छ्वासनिःश्वासाभ्याम् । नभो मनोरूपतया परिणतं जीवात्मनः शरीरांतरे जीवनग्रहणमोक्षणे हेतुरिति तदपि जीवयति । पञ्चेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वङ्नेत्रजिह्वाघ्राणानि । शब्दादिग्रहणकर्मणा भूतात्मा कर्मपुरुषः स च अशेषस्यैव राशेश्चैतन्यहेतुर्जीवतीति ॥

अग्नि, सोम, पृथ्वी, वायु, आकाश, सत्त्व, रज, तम, पांच इन्द्रिये और प्रारब्ध कर्म्म, येही गर्भको जिवाते हैं । यहाँ अग्निशब्दसे पाचक, भ्राजक, आलोचक, रजक और साधक इन पांच प्रकारके पित्तोंमें तथा पचभूतोंमें रहनेवाली गरमियोंकी तथा सात धातुओंमे रहनेवाली अग्नियोंकी शक्तिरूपसे स्थित अग्नि जो कि वाणीके अधिदेवत्वको प्राप्त हुई है वह पाचक आदि कार्योंसे जिवाती हैं । पांच प्रकारका कफ, रस और वीर्य आदि चन्द्ररूप पदार्थोंकी और रसना इन्द्रियकी शक्तिरूपसे स्थित चन्द्रमा जो कि मनके अधिदेवत्वको प्राप्त हुवाहै वह ओज आदि सौम्य धातुओंके पोपणसे और वायु तथा अग्निसे सूखे हुए भागको आर्द्र करके गर्भको जिवाता है । पृथिवी जलसे भीजी होनेपर भी कठिन गुणसे गर्भको जिलाती है । वायु, दोप, धातु, मल, अग और उपांगादिके चलानेसे गर्भकी रक्षा करता है । आकाश अवकाशरूप होनेसे उच्छ्वास और निःश्वासके मार्ग होकर गर्भका पालन करता है । सत्त्व, रज और तम, यह तीन गुण मनरूपसे बदलकर जीवात्माके शरीरान्तरमें जीवके ग्रहण और त्याग और मुक्तिप्रदान करनेके हेतु होनेके कारण गर्भको जिवाते हैं । कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और घ्राण, ये पांचो इन्द्रिये अनुक्रमसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गध इनके ग्रहण करनेसे पालती है । प्रारब्धकर्म, सपूर्ण देहमे चैतन्य रहनेका कारणरूप है इस कारण यह भी गर्भको जिवाता है॥ ३६३॥

अपरं गर्भस्य जीवनोपायमाह ।

गर्भस्य नाभिनाड्या तु नाडी रसवहा स्त्रियाः ॥ संलग्ना तेन गर्भस्य वृद्धिर्भवति नित्यशः ॥३६४॥ निःश्वासोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नांशान्सोऽधिगच्छति॥मातुर्निःश्वसितोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नसंभवान् ॥ ३६५ ॥

संक्षोभः सञ्चलनम्, माता निःश्वासादिका याश्चेष्टाः करोति तास्ता गर्भोऽपि करोतीत्यर्थः ॥

स्त्रीके रसकी बहनेवाली नाडीगर्भकी नाभिकी नाडीके साथ लगी हुई है, इससे जो कुछ गर्भवती भोजन करती है उसका रस गर्भके शरीरमे प्रवेश करताहै, उससे नित्य गर्भकी वृद्धि होती है । गर्भको माताका निःश्वास होनेसे निःश्वास, उच्छ्वास होनेसे उच्छ्वास, सचलन होनेसे संचलन और स्वप्न होनेसे स्वप्न प्राप्त होता है । अर्थात् माता निःश्वास आदि जो जो चेष्टाये करती है वे २ चेष्टाये गर्भभी करता है ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥

अथ गर्भवृद्धेर्हेतूपायावाह ।

गर्भस्य नाभिमध्ये तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम् ॥ तदा धमति वातश्च देहस्तेनास्य वर्धते ॥ ३६६ ॥ ऊष्मणा सहितश्चापि दारयत्यस्य मारुतः ॥ऊर्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च स्रोतांसि तु यथा तथा ॥ ३६७॥

यथा दारयति विस्तारयति तथातथा देहो वर्धत इति पूर्वेणान्वयः ॥

गर्भकी नाभिके मध्यमे एक अविचल तेजका ज्योतिस्थान है. उस स्थानमे सदा पवन चलती रहती है उससे गर्भका शरीर वृद्धि पाताहै । गरमीकी सहायतासे वायु गर्भके ऊँचे नीचे और आडे स्रोतोंमे (मल, मूत्र आदि चलनेके मार्गोंमे) जितना जितना विस्तारित होता है उतना उतना ही गर्भका शरीर बढता जाताहै ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥

दृष्टिरोमकूपानामवृद्धिमाह ।

दृष्टिश्च रोमकूपाश्च न वर्धन्ते कदाचन ॥ ध्रुवाण्येतानि मर्त्यानामिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ३६८ ॥

मनुष्योंके रोमकूप (रुओंके छिद्र) और दृष्टि (नेत्रकी पुतली) यह जितने २ प्रथम होतेहैं उतने उतनेही रहते हैं बढते नही हैं, ऐसा धन्वन्तरिका मत है॥३६८॥

नखकेशानां सदा वृद्धिमाह ।

शरीरे क्षीयमाणेऽपि वर्धते द्वाविमौ सदा॥ स्वभावं प्रकृतिं कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥ ३६९ ॥

प्रकृतिं कृत्वा कारणं कृत्वा । स्थितिः मर्यादा ॥

शरीर क्षीण होजानेपर भी अर्थात् वृद्धावस्थामें भी नख और केश दोनो स्वभावसे ही सदा बढते रहतेहैं ॥३६९॥

अचेतनानि अंगानि आह ।

चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेंद्रियः ॥ केशलोमनखाग्रांतर्मलद्रव्यगुणैर्विना ३७०॥

मन और इन्द्रियोंके सहित शरीर चेतनाका स्थानरूप है, परन्तु केश, रोम, नखोंके अग्रभाग, भीतरके मलरूप पदार्थोंमें और भीतरके गुणोमे चेतना नहीं है ॥ ३७० ॥

गर्भस्य वातविण्मूत्रोत्सर्गाकरणे कारणमाह ।

वातालपत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाशयस्य च ॥ वातमूत्रपुरीषाणि गर्भस्थो न विमश्चति ॥ ३७१ ॥

अयोगात् ईषद्योगात्

वायु-अल्प होनेसे और वायुका तथा पक्वाशयका थोडा योग होनेसे गर्भमें रहनेवाला जीव नीचेको वायु और मूत्र तथा विष्ठाको नही छोडता ॥ ३७१ ॥

गर्भारोदने कारणमाह

जरायुणा मुखे छन्ने कण्ठे च कफवेष्टिते ॥ वायोर्मार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदिति ॥ ३७२ ॥

जरायु (झिल्ली) के द्वारा मुख ढका रहनेसे, कंठ कफसे घिरा रहनेसे और वायुके मार्ग रुकनेसे गर्भमें रहनेवाला जीव नहीं रोता है ॥ ३७२ ॥

अथ गर्भवतीकृत्याकृत्यानि ।

गर्भिणी प्रथमादह्नः प्रहृष्टा भूषिता शुचिः॥ भवेच्छुक्लाम्बरधरा गुरुविप्रार्चने रता ॥ ॥ ३७३ ॥ भोज्यं तु मधुरप्रायं स्निग्धं हृद्यं द्रवं लघु ॥ संस्कृतं दीपनीयं तु नित्यमेवोपयोजयेत् ॥ ३७४ ॥ गर्भिणी न तु कुर्वीत व्यायाममपतर्पणम् ॥ व्यवायं च न सेवेत न कुर्यादतितर्पणम् ॥ ३७५ ॥ रात्रौ जागरणं शोकं यानस्यारोहणं तथा ॥ रक्तमोक्षं वेगरोधं न कुर्यादुत्कटासनम् ॥ ३७६ ॥ दोषाभिघातैर्गर्भिण्या योयो भागः प्रपीड्यते ॥ सस भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥ ॥ ३७७ ॥ मलिनां विकृताकारां हीनांगीं न स्पृशेत्स्त्रियम् ॥ न जिघ्रेदपि दुर्गन्धं न पश्येन्नयनाप्रियम् ॥ ३७८ ॥ वचांसि नापि शृणुया कर्णयोरप्रियाणि च ॥ नान्नं पर्युषितं शुष्कं भुञ्जीत क्वथितं न च॥ ३७९॥ चैत्यश्मशानवृक्षांश्च भावांश्चाप्ययशस्करान् ॥ बहिर्निष्क्रमणं क्रोधं शून्यागारं च वर्जयेत् ॥३८०॥ नोच्चैर्ब्रूयान्न तत्कुर्याद्येन गर्भो विनश्यति ॥ तैलाभ्यंगोद्वर्तनं च नात्यर्थं कारयेदपि ॥ ३८१ ॥ नामृद्वास्तरणं कुर्यान्नात्युच्चं शयनासनम् ॥ एतांस्तु नियमान्सर्वान्यत्नात्कुर्वीत गर्भिणी॥ ३८२॥

गर्भिणी स्त्री प्रथम दिनसे ही आनन्दमें मग्न, भूषणोंसे युक्त तथा पवित्र रहै, श्वेत वस्त्रोंको धारण करै, गुरु और ब्राह्मणोंके पूजनमें तत्पर रहै, अधिकतर मधुर, स्निग्ध, हृदयको प्रिय, पतले और हलके, शुद्ध, भलेप्रकार बनेहुए और अग्निको दीपन करनेवाले पदार्थ सेवन करै । गर्भिणी स्त्री परिश्रम, अपतर्पण (लंघन), मैथुन, तथा अतितर्पण (बहुत भोजन) इत्यादि कभी न करे । रात्रिमें जागरण, शोक, सवारी, रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना), मल, मूत्र आदिके वेगोंको रोकना और घुटुओंसे बैठना, इत्यादि कार्य न करै । शरीरमें दोषोंके आघातसे गर्भिणीके जो जो भाग पीडित होतेहैं, गर्भमें रहनेवाले बालकके भी-

उन उनही भागोंमें पीडा होतीहै । गर्भवती स्त्रिये मलिन, कुरूप, ओछे अगवाली ऐसी स्त्रियोका स्पर्श नही करैं । दुर्गन्धित पदार्थको नही सूंघें । जो नेत्रोको बुरा लगै उसको न देखैं । जो कानोको अप्रिय लगैं ऐसे वचन नही सुनैं । बासी, सूखा, और क्वाथके सदृश अन्न नही खायें । चैत्यवृक्ष (अश्वत्थादि देवतावाचक) श्मशानके वृक्ष और जो प्रतिष्ठानाशक कार्य्य हैं उनके पास नहीं जायें । घरसे बाहर नही निकलैं, क्रोध नही करैं, सूने घरमें नही जायँ, ऊँचेसे नहीं बोलैं और जिससे गर्भ नष्ट होजाय ऐसे कार्य न करैं । शरीरमें तैल नहीं लगावैं, उबटन नही मलै, कठोर बिछौना नहीं करैं और सोनेकी शय्या बहुत ऊँची न करैं । ये सम्पूर्ण नियम गर्भवती स्त्रिये प्रयत्नसे पालन करैं ॥ ३७३-३८२ ॥

अथ प्रसवमासानाह ।

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते ॥ एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ ३८३ ॥

नौमें, दशवें, ग्यारहवें अथवा बारहवें महीनेमेंभी स्त्री गर्भको जननी है और कुछ विकार होय तौ इससे उपरांत समयमें भी जनती है ॥ ३८३ ॥

अथ सूतिकागृहाकृतिः ।

अष्टहस्तायतं चारु चतुर्हस्तविशालकम् ॥ प्राचीद्वारमुदग्द्वारं विदध्यात्सूतिकागृहम् ॥ ३८४ ॥

आठ हाथ लंबा, चार हाथ चौडा, सुन्दर, पूर्वद्वारका अथवा उत्तरद्वारका ऐसा प्रसूतिभवन होना चाहिये ॥ ३८४ ॥

आसन्नप्रसवाया लक्षणमाह ।

जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबन्धने ॥ सशूले जघने नारी विज्ञेया प्रसवोत्सुका ॥ ॥ ३८५ ॥ आसन्नप्रसवायास्तु कटीपृष्ठं तु सव्यथम् ॥ भवेन्मुहुः प्रवृत्तिश्च मूत्रस्य च मलस्य च ॥ ३८६ ॥

कोख शिथिल (ढीली), होजाय, हृदयके बंधन छूट जायँ और पेडू (जांघो) में शूल होने लगे उस स्त्रीको तुरत जननेवाली जाननी । जो स्त्री तत्काल प्रसूत होनेवाली हो उस स्त्रीकी कमर और पीठमें पीडा होने लगती है तथा वारंवार मल और मूत्रकी प्रवृत्ति होतीहै ३८५॥३८६

अथ आसन्नप्रसवाया उपचारः ।

तैलेनाभ्यक्तगात्रान्तां संस्नातामुष्णवारिणा ॥ यवागूं पाययेत्कोष्णां मात्रया घृतसंयुताम् ॥ ३८७ ॥ कृतोपधाने मृदुभिर्विस्तीर्णे शयने शनैः ॥ आभुग्नसक्थी चोत्ताना नारी तिष्ठेद्यथान्विता ॥ ३८८ ॥ आभुग्नसक्थी असङ्कोचितोरुः ॥

जब स्त्री प्रसूत होनेको होय तब उसके शरीरमें तेल लगाकर गरम जलसे स्नान करावै, यथायोग्य जिसमें घी पडा होय और किंचित् गरम ऐसी यवागू पिलावै । जब पीडा होय तब स्त्रीको नरम नरम बिछौने युक्त शय्यापर धीरे धीरेसे घुटुओंको मोडकर बिठावै ॥ ३८७ ॥ ३८८ ॥

अथ जनयित्र्यः ।

चतस्रोऽशंकनीयाश्च स्रावणे कुशला हिताः ॥ वृद्धाः परिचरेयुस्ताः सम्यक्छिन्ननखाः स्त्रियः ॥ ३८९ ॥

जिनके ऊपर किसी प्रकारका संदेह न होय अर्थात् पूर्ण विश्वास युक्त, प्रसूत कर्म्ममें चतुर, परम हितकारिणी, वृद्धा और नख जिनके कटे हुए हों, ऐसी चार दाइयोंसे उपचार करावै ॥ ३८९ ॥

अथ जनयित्रीकृत्यम् ।

अपत्यमार्गं तैलेन समभ्यज्य समन्ततः ॥ एका तु तासु सुभगे प्रवाहस्वेति तां वदत् ॥ ३९० ॥ अव्यथा मा प्रवाहिष्ठाः प्रवाहेथा व्यथा यदि ॥ प्रवाहेथाः शनैः पूर्वं प्रगाढं च ततः परम् ॥ ३९१ ॥ ततो गाढतरं गर्भे योनिद्वारमुपागते ॥ अपरासहितो गर्भो यावत्पतति भूतले ॥ ३९२ ॥

संतान होनेके मार्गको चारों ओर तैल लगाकर उन चार स्त्रियोंमेंसे एक स्त्री उससे कहै कि-हे शुभानने प्रवाहण कर, अगर तुझे गर्भकी व्यथा नही है तो मत प्रवाहण कर और यदि गर्भकी तकलीफ है तो प्रवाहण कर परन्तु पहिले धीरे २ पश्चात् जोरसे प्रवाहण कर (गर्भको बाहिर ढकेल) तेरा गर्भ योनिके द्वारपर आवे तब जोरसे बाहरको ढकेलना कि, जबतक अपरा (जेर आदि) सहित गर्भ पृथ्वीमें न आजाय तबतक ॥ ३९०-३९२ ॥

व्यथारहितायाः प्रवाहणाद्वैगुण्यमाह ।

मूकं वा बधिरं कुब्जं श्वासकासक्षयान्वितम् ॥ सूते स्रस्ततनुं बालमकाले तु प्रवाहणात् ॥ ३९३ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे गर्भप्रकरणं द्वितीयम् ॥ २ ॥

विना समयके जोर करनेसे गूँगा, बहरा, कुब्जा, श्वास, खाँसी और क्षयरोग करके युक्त और शिथिल शरीरवाला बालक उत्पन्न होताहै इसीसे विना समय गर्भको निकाले नहीं ॥ ३९३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतवैश्यमजीवनी-भाषाटीकायां द्वितीय गर्भप्रकरण समाप्तम् ।

अथ तृतीयं बालप्रकरणम् ३.

अथ बालस्य जन्मोत्तरविधिः ।

अथ बाले समुत्पन्ने विदधीत विधिं ततः॥ यथैव कुलवृद्धा स्त्री व्यवहारपरम्परा॥१॥

बालक उत्पन्न होनेके पश्चात् अपने कुलमें वृद्ध स्त्रियोंके व्यवहारानुकूल जो परंपरा चली आती होय उसी प्रकार बालककी विधि करनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ प्रसूताया नियमानाह ।

प्रसूता हितमाहारं विहारं च समाचरेत्॥ व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां विवर्जयेत् ॥ २ ॥ मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते ॥ स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्तत्पथ्यमाचरेत् ॥ ३ ॥

प्रसूता स्त्री हितकारक आहार और विहारोंका सेवन करै । परिश्रम, मैथुन, क्रोध और शीतल वस्तुका सेवन इत्यादि छोड देवै, क्योंकि मिथ्या आचार (आहार विहारमें भूल होने) से जो सूतिकाके व्याधि उत्पन्न होती हैं वे व्याधि कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य होती हैं. इस लिये प्रसूतिका स्त्री पथ्य आचरण करै ॥ २ ॥ ३ ॥

प्रसूताया नियमसमयाऽवधिमाह ।

सर्वतः परिशुद्धा स्यात्स्निग्धपथ्याऽल्पभोजना ॥ स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता ॥ ४ ॥

सर्वतः परिशुद्धा तु अनवसृष्टदुष्टरुधिरा अतन्द्रिता सावधाना ॥

प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्तवे ॥ सूतिकानामहीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ५ ॥ निरुपद्रवां विशुद्धां च विज्ञाय वरवर्णिनीम् ॥ ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यो नियमं परिहारयेत् ॥ ६ ॥

सर्वत. शुद्ध होनेके अनतर प्रसूता स्त्री नित्य एक मास पर्यन्त सावधानीसे पथ्य, अल्प और स्निग्ध (घृतादिक मिले चिकने पदार्थ) भोजन करै । स्वेदन (पसीना निकालना) और अभ्यग (तेलकी मालिश) करै । 'सर्वतः परिशुद्धा' इस कहनेसे दुष्ट रुधिर आदि निकलकर शुद्ध हुई । प्रसूता स्त्री डेढ महीने पर्यन्त अथवा फिर रजोदर्शन होनेपर ' प्रसूता ' नामसे रहित होती है, ऐसा धन्वन्तरिका मत है । योग्य तो यह है कि. स्त्री उपद्रवरहित, शुद्धशरीरवाली जानकर भी चारमास व्यतीत होजानेपर नियमोंको छोडे ॥ ४-६ ॥

अथ स्तन्यस्वरूपमाह ।

रसप्रसादो मधुरः पक्काहारनिमित्तजः॥ कृत्स्नाद्देहात्स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ ७ ॥

रसप्रसादः रसस्य सारः ॥

परिपक्क आहारसे उत्पन्न हुए रसका मधुरसार सम्पूर्ण देहसे स्तनोंमें आकर स्तन्य (दूध) होजाताहै ॥ ७ ॥

अथ स्तन्यस्य प्रवृत्त्यवधिमाह ।

स्तन्यं त्रिरात्रात्स्त्रीणां वा चतूरात्रादनन्तरम् ॥ प्रवर्तयन्ति विवृता धमन्यो हृदये स्थिताः ॥ ८ ॥

स्त्रीके प्रसूत होनेसे तीन रात अथवा चार रातके अनंतर हृदयमें रहनेवाली धमनियोंके मुख खुलकर दूधकी प्रवृत्ति होती है अर्थात् दूधको निकालती हैं ॥ ८ ॥

अथ स्तन्यप्रवृत्तिमाह ।

पयः पुत्रस्य संस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि ॥ ग्रहणादप्युरोजस्य शुक्रवत्सम्प्रवर्तते॥ स्ने-

हो निरन्तरस्तस्य प्रवाहे हेतुरुच्यते ॥९॥

पुत्रके स्पर्शसे, दर्शनसे, स्मरणसे और उसके स्तन पकडनेसे भी वीर्यके सदृश दूध प्रवृत्त होताहै अर्थात् उतरताहै। इसलिये पुत्रके ऊपर निरंतर प्यार होनाही दूधके उतरनेका मुख्य कारण है ॥ ९ ॥

अथ स्तन्यस्य अल्पताहेतुमाह ।

अवात्सल्याद्भयाच्छोकात्क्रोधादत्यपतर्पणात् ॥ स्त्रीणां स्तन्यं भवेत्स्वल्पं गर्भान्तरविधारणात् ॥ १० ॥

पुत्रके ऊपर स्नेह न होनेसे, भयसे, शोकसे, क्रोधसे, भूँखे रहनेसे, अथवा दूसरा गर्भ रहनेसे स्त्रियोका दूध थोडा होजाताहै ॥ १० ॥

अथ स्तन्यस्य वृद्धिहेतुमाह ।

शालिषष्टिकगोधूमान्मांसक्षुद्रझषानपि ॥ कालशाकमलाबूं च नारिकेलं कसेरुकम् ॥ ११ ॥ शृंगाटकं वरी चापि विदारीकन्दमेव च ॥ लशुनं दुग्धवृद्ध्यै स्त्री सेवेत सुमना भवेत् ॥ १२ ॥ कलमस्य तण्डुलानां कल्कं या क्षीरपेषितं पिबति॥ सा भवति भृशं तरुणी क्षीरभरेणैव तुंगकुचयुगला ॥ १३ ॥

कलमो धान्यविशेषस्तस्य लक्षणमाह ।

कलमः कलिविख्यातो जायते स बृहद्वने॥ काश्मीरदेश एवोक्तो महातण्डुलसंज्ञकः ॥ १४ ॥ विदारीकन्दस्य रसं पिबेत्स्तन्यस्य वृद्धये॥ तच्चूर्णं तस्य वृद्ध्यर्थं पिबेद्वा क्षीरसंयुतम् ॥ १५ ॥

स्त्री दूधकी वृद्धिके लिये शालि चावल, साठी चावल, गेहूँ, मांस, छोटी छोटी मछलियें, चौलाईका साग, रामतोरई, नारियल, कसेरू, सिंगाडे, शतावरी, विदारीकंद और लहसुन इन पदार्थोंको सेवन करै, तथा प्रसन्न रहै। जो स्त्री कलमी चावलोंके कल्कको दूधमें पीसकर पीती है उसके दोनों स्तन दूधके भारसे ऊँचे होजातेहैं अर्थात् अधिक दूध युक्त होजातेहैं ॥ कलम एक प्रकारका धान्य होताहै. उसके लक्षण ये हैं कि—कलमी धान्य कलि नामसे प्रसिद्ध है, बड़े बड़े वनोंमें उत्पन्न होता है और काश्मीर देशमें इसको महातण्डुल कहतेहैं। विदारी कंदका रस पीनेसे अथवा विदारी कंदका चूर्ण दूधके साथ फाकनेसे स्त्रियोंका दूध बटजाताहै ॥ ११-१५ ॥

अथ स्तन्यस्य दुष्टताहेतुमाह ।

धात्र्या गुरुभिराहारैर्विहारैर्दोषलैस्तथा ॥ देहे दोषाः प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ १६ ॥ मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः ॥ दूषयन्ति पयस्तेन शरीरं व्याधयः शिशोः ॥ १७ ॥

भारी आहार और अयोग्य विहारके करनेसे माता (धाय) के शरीरमे दोषोका कोप होता है और उससे दूध दूषित हो जाताहै। मिथ्या आहार और विहारोके करनेवाली स्त्रीके दूषित हुए वात, पित्त, और कफ दूधको दूषित करतेहैं और उस दूषित दूधको पीनेसे बालकके शरीरमे अनेक रोग उत्पन्न होतेहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ दुष्टस्तन्यस्य लक्षणमाह ।

कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम्॥ पित्तादम्लं च कटुकं राज्योऽम्भसि तु पीतिकाः ॥१८॥ कफदुष्टं तु यत्तोये निमज्जति च पिच्छिलम् ॥ द्वन्द्वजं तु द्विलिंगं स्यात्त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥ १९ ॥

जो दूध पानीमें डालनेसे ऊपरको तैरनेलगे, तथा स्वादमें कसैला होय, वह वातसे दूषित जानना। पानीमें डालनेसे जिसकी पीली पीली धारासी होजायँ औरस्वादमें खट्टा और चरपरा हो, उसको पित्तसे दूषित हुआ जानना। जो दूध पानीमे डालनेसे डूबजाय और लिबलिबासा होय उस दूधको कफसे दूषित हुआ जानना। और जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिलते होयँ उसको दो दोषोसे दूषित और जिसमें तीनों दोष मिलते होयँ उसको सन्निपातसे दूषित जानना ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ दुष्टस्तन्यस्य शोधनविधिमाह ।

धात्री क्षीरविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशिनी ॥ भार्ङ्गीदारुवचाः पिष्ट्वा पिबेत्साऽतिविषास्तथा ॥ २० ॥ पाठामूर्वाब्दभूनिम्बैर्दारुशुण्ठीकलिंगकैः ॥ सारिवामत्स्यपित्ताख्यैः क्वाथः स्तन्यविशोधनः ॥ २१ ॥

मत्स्यपित्ता कटुकी ॥

पटोलनिम्बासनदारुपाठा मूर्वा गुडूची कटुरोहिणी च ॥ सनागरं च क्वथितं च तोये धात्री पिबेत्स्तन्यविशुद्धिहेतोः ॥ २२ ॥

दूधको शुद्ध करनेके लिये माता मूगका यूप खाय और भारंगी, देवदारु, वच तथा अतीस इनको पीसकर पिये । अथवा पाढा, मूर्वा, नागरमोथा, चिरायता, देवदारु, सोंठ, इन्द्रजौ, सारिवा और कुटकी इनका क्वाथ पीनेसेभी दूध शुद्ध होजाताहै । परवल, नीम, पीतशाल, देवदारु, पाढ, मूर्वा, गिलोय, कुटकी और सोंठ इनका क्वाथ करके पीनेसेभी दूध शुद्ध होजाताहै ॥ २०-२२ ॥

अथ शुद्धस्य लक्षणमाह ।

नीरे स्तन्यं यदेकि स्यादविवर्णमतन्तुमत्॥ पाण्डुरं तनु शीतं च तद्दुग्धं शुद्धमादिशेत् ॥ २३ ॥

जो दूध पानीमें डालनेसे मिलजाय, अन्यरंगका न होय, तार न छूटे, सफेद, पतला तथा किंचित् पीत और शीतल हो वह दूध शुद्ध होताहै ॥ २३ ॥

धात्रीलक्षणमाह ।

पीताय यदि बालस्य विदध्यादुपमातरम् ॥ सुविचार्य गुणान्दोषान्कुर्य्याद्धात्रीं तदेदृशीम् ॥२४॥ सवर्णां मध्यवयसां सच्छीलां मुदितां सदा ॥ शुद्धदुग्धां बहुक्षीरां सवत्सामतिवत्सलाम् ॥ २५ ॥ स्वाधीनामल्पसन्तुष्टां कुलीनां सज्जनात्मजाम् ॥ कैतवेन परित्यक्तां निजपुत्रदृशं शिशौ॥२६॥

बालकको दूध पिलानेके लिये जो धाय रक्खी जाय तो उसके गुण दोपोंको विचारकर रक्खे । अपनी जातिकी, मध्य अवस्थाकी, सरल स्वभाववाली, सदा प्रसन्न रहती हो, अधिक और शुद्ध दूधवाली, पुत्रयुक्त, बहुत प्रेम करनेवाली, अपने अधीन, थोडेमें संतुष्ट होनेवाली, कुलीन, सज्जनकी पुत्री, कपट रहित और बालकको अपने पुत्रके सदृश रखनेवाली धाय रखनी चाहिये ॥ २४-२६ ॥

अथ निषिद्धां धात्रीमाह ।

शोकाकुला क्षुधार्ता च श्रान्ता व्याधिमती सदा ॥ अत्युच्चा नितरां नीचा स्थूलातीव भृशं कृशा ॥ २७ ॥ गर्भिणी ज्वरिणी चापि लम्बोन्नतपयोधरा ॥ अजीर्णभोजिनी चापि तथा पथ्यविवर्जिता ॥ ॥ २८ ॥ आसक्ता क्षुद्रकार्येषु दुःखाता चञ्चलापि च ॥एतासां स्तन्यपानेन शिशुर्भवति सामयः ॥ २९ ॥

जो स्त्री शोकसे व्याकुल, भूखसे पीडित थकीहुई, सर्वदा रोगवाली, बहुत ऊँची, बहुत नीची, बहुत मोटी, बहुत पतली, गर्भिणी, ज्वरयुक्त, लंबे तथा ऊँचे स्तनवाली, अजीर्णमें भोजन करनेवाली, अपथ्य सेवन करनेवाली, छोटे कार्योंमें आसक्त, दुःखसे पीडित और चचल हो ऐसी धायका दूध पीनेसे बालक रोगी होजाताहै ॥२७-२९ ॥

अथ बालस्य स्तन्यपानविधिः ।

तत्र माता प्रशस्तांगी चारुवस्त्रा पुरोमुखी ॥ उपविश्यासने सम्यग्दक्षिणं स्तनमम्बुना ॥ ३० ॥ प्रक्षाल्येषत्परिस्राव्य मन्त्राभ्यामभिमन्त्रितम् ॥ उदङ्मुखशिशुं क्रोडे शनैः सन्धाय पाययेत् ॥ ३१ ॥

माता इत्युपलक्षणम् । धात्री च ईषत्परिस्राव्य ॥

अन्यथा वैगुण्यमाह सुश्रुतः ।

अस्रावित स्तनं बालः पिबन्स्तन्येन भूयसा ॥ पूर्णस्रोता वमीकासश्वासैर्भवति पीडितः ॥ ३२ ॥

माता अथवा धाय अपना अंग स्वच्छ कर निर्मल वस्त्रोंको धारण कर सन्मुख आसनपर बैठ और अपने दहिने स्तनको पानीसे धोकर थोडासा दूध निकाल देवे, फिर आगे लिखे मंत्रसे अभिमंत्रित कर उत्तरकी ओर मुख करके और बालकको धीरेसे गोदमें लिटाकर दूध पिलावे । स्तनोंमेंसे किंचित् दूध निकाले विना पिलावे तो उसकी बुराईमें सुश्रुत कहता है कि- जिनसे प्रथम थोडा दूध न निकाला होय ऐसे स्तनके दूधको बालक पिये तो शरीरके स्रोत पूर्ण होनेसे वमन, खाँसी और श्वाससे पीडित होजाताहै ॥ ३०-३२ ॥

स्तन्याभिमन्त्रणमाह।

क्षीरनीरनिधिस्तेऽस्तु स्तनयोः क्षीरपूरकः॥ सदैव सुभगो बालो भवत्वेष महाबलः॥ ॥ ३३ ॥ पयोऽमृतसमं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ॥ दीर्घमायुरवाप्नोतु देवाः प्राप्यामृतं यथा ॥ ३४ ॥

इमौ मन्त्रौ पित्रा अन्येन वा ब्राह्मणेन पठनीयौ। यावत् मन्त्रपाठस्तावत् मात्रा धात्र्या वा दक्षिणहस्तेन स्तनस्पर्शः कार्यः॥

"हे शुभानने! तेरे दोनो स्तन दुग्धसे क्षीरसमुद्रके सदृश परिपूर्ण रहैं। यह बालक सर्वदा कल्याण पानेवाला और महाबलशाली होय। जिस प्रकार देवता अमृत पीकर बडे और आयुष्यमान् हुए उसीप्रकार तेरा पुत्र अमृतसदृश दूध पीकर चिरजीव हो।" ये दोनो मंत्र पितासे अथवा दूसरे ब्राह्मणसे पढवावै। और जबतक मंत्र पढै तबतक माता अथवा धाय अपने दाहिने हाथसे स्तनको स्पर्श करे रहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ जनन्याः क्षीराभावे धात्र्याश्चालाभे प्रकारमाह।

क्षीरसात्म्यतया क्षीरमाजं गव्यमथापि वा ॥ दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्बालेभ्यो वीक्ष्य मात्रया ॥ ३५ ॥

क्षीरसात्म्यतयेति। यतः शिशोः क्षीरमेव सात्म्यं भवति न तु अन्नादिकम्। आस्तन्यपर्य्याप्तेरिति यावत्, स्त्रियाः स्तन्यस्य सन्तभावेन प्राप्तिर्भवति। अथ यावत् स्तन्यपानस्य योग्यता तावदित्यर्थः॥

बालकोकी प्रकृतिके अनुसार दूध ही होताहै, अन्नादिक नहीं, इस लिये बालककी माताके जबतक दूध होता होय तबतक या बालक जबतक दूध पीनेके योग्य होय तब तक उसको बकरीका अथवा गायका दूध उसकी योग्यतानुसार देवे ॥ ३५ ॥

अथ बालस्य अन्नप्राशनसमयः।

यथोक्तविधिना बालं मासि षष्ठेऽष्टमेऽपि च॥ अन्नं सम्प्राशयेत्किञ्चित्ततस्तद्वर्धयन्क्रमात् ॥ ३६ ॥

छठे अथवा आठवें मासमे शास्त्रोक्त विधिके अनुसार बालकको किंचित् अन्न प्राशन करावे, पश्चात् क्रमक्रमसे उसको बढाता जाय ॥ ३६ ॥

अथ बालस्य परिचर्याविधिः।

बालमंके सुखं दध्यान्न चैनं तर्जयेत्कचित् ॥ सहसा बोधयेन्नैव नायोग्यमुपवेशयेत् ॥ ३७ ॥

अयोग्यमुपवेशनासमर्थम् ॥

नाकृष्य स्थापयेत्क्रोडे न क्षिप्रं शयने क्षिपेत् ॥ रोदयन्न कचित्कार्य्ये विधिमावश्यकं विना ॥ ३८ ॥

आवश्यको विधिः भेषजदानतैलाभ्यङ्गोद्वर्तनादि ॥

तच्चित्तमनुवर्तेत तं सदैवानुमोदयेत्॥ निम्नोच्चस्थानतश्चापि रक्षेद्बालं प्रयत्नतः॥ ३९॥

बालकको आनन्दपूर्वक गोदमें लेकर प्रसन्न करै, कभी दुःखी न करै और जो वह सो रहा होय तौ सहसा (अचानक) जगावै नहीं, और जबतक बैठनेमे असमर्थ होय तबतक बिठावे भी नही, बालकको खैंचकर गोदमें न लेवे, शीघ्रतासे शय्यापरभी न डालै, औषधि देना, तेलकी मालिस उबटन आदि आवश्यक कामके विना किसी काममें रुवावै नहीं. बालकके चित्तानुसार वर्ताव करे और सदैव उसको प्रसन्न रक्खै तथा उसकी नीचे ऊँचे स्थानसे भी यत्न पूर्वक रक्षा करै ॥ ३७-३९ ॥

बालस्य स्वभावतो हितान्याह।

अभ्यंगोद्वर्त्तनं स्नानं नेत्रयोरञ्जनं तथा ॥ वसनं मृदु यत्तच्च तथा मृद्वनुलेपनम् ॥ जन्मप्रभृति पथ्यानि बालस्यैतानि सर्वथा ॥ ४० ॥

तेल लगाना, उबटन करना, स्नान, नेत्रोमे अंजन (सुरमा स्याही) लगाना, कोमल और नवीन वस्त्र पहराना और मृदु पदार्थोंका लेप करना ये बालकको जन्मसे ही पथ्य हैं ॥ ४० ॥

बालस्य कवलादेः समयमाह।

कवलः पञ्चमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्म्म च ॥ विरेकः षोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैव मैथुनम ॥ ४१ ॥

बालकको औषधि आदिकी कवलविधि करनी होय तौ पाँचवें वर्षके उपरांत करै, नस्यकर्म (नाकमे किसी औषधिको डालना) करना होय तौ आठवे वर्षके उपरांत करै, विरेचन (जुलाब) करना होय तौ सोलह वर्षमे देवै, और मैथुनकर्म वीस वर्षसे पहिले करना उचित नहीं अर्थात् इन अवधियोंके पहिले करनेसे शरीरमे बहुत विकार होतेहै ॥ ४१ ॥

वाल्यादेरवधिमाह सुश्रुतः ।

वयस्तु त्रिविधं वाल्यं मध्यमं वार्धकं तथा ॥ ऊनषोडशवर्षस्तु नरो बालो निगद्यते ॥ ४२ ॥ त्रिविधः सोऽपि दुग्धाशी दुग्धान्नाशी तथाऽन्नभुक् ॥ दुग्धाशी वर्षपर्य्यन्तं दुग्धान्नाशी शरद्द्वयम् ॥४३॥ तदुत्तरं स्यादन्नाशी एवं वालस्त्रिधा मतः ॥ मध्ये षोडशसप्तत्योर्मध्यमः कथितो बुधैः ॥४४॥ चतुर्धा मध्यमं प्राह युवा द्वात्रिंशतो मतः ॥ चत्वारिंशत्समा यावत्तिष्ठेद्वीर्य्यादिपूरितः ॥ ततः क्रमेण क्षीणः स्याद्यावद्भवति सप्ततिः ॥ ४५ ॥

वीर्य्यादि इति । आदिशब्देन रसादिसर्वधात्विन्द्रियबलोत्साहा उच्यन्ते । क्षीणः सर्वधात्विन्द्रियबलोत्साहैर्हीनः ॥

ततस्तु सप्ततेरूर्द्ध्वं क्षीणधातुरसादिकः ॥ क्षीयमाणेन्द्रियबलः क्षीणरेता दिनेदिने ॥ ॥ ४६ ॥ वलीपलितखालित्ययुक्तः कर्मसु चाक्षमः ॥ कासश्वासादिभिः क्लिष्टो वृद्धो भवति मानवः ॥ ४७ ॥ बाल्ये विवर्धते श्लेष्मा पित्तं स्यान्मध्यमेऽधिकम् ॥ वार्धके वर्द्धते वायुर्विचार्य्यैतदुपक्रमेत् ॥ ४८ ॥

उपक्रमेत चिकित्सेत् ॥

तन्त्रान्तरे तु–

बाल्यादवृद्धिश्छविर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ ॥ बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो जीवितं क्रमतो ह्रसेत ॥ ४९ ॥

[illegible] वाल्यावस्था, मध्यावस्था और वृद्धा- [illegible] सोलह वर्षसे न्यून अवस्थाका होय तबतक बालक कहाताहै । बालकोंमे भी दूध पीनेवाला, दूध तथा अन्न खानेवाला और केवल अन्न खानेवाला, इसप्रकार तीन भेद हैं । एक वर्षपर्यन्त दूध पीनेवाला, तदनन्तर दो वर्ष पर्यन्त दूध तथा अन्न खानेवाला और उसके पश्चात् केवल अन्न खानेवाला जानना । सोलह और सत्तर वर्षके मध्यमे मध्यम-अवस्था कहाती है, मध्यमके नीचे लिखे भेद हैं । उनमेंमे बत्तीस वर्षपर्यन्त युवा रहताहै, चालीस वर्षपर्यन्त वीर्य रसआदि सम्पूर्ण धातुएँ तथा इन्द्रियोंका बल और उत्साहमे परिपूर्ण रहताहै, पश्चात् सत्तर वर्षपर्यन्त अनुक्रमसे सम्पूर्ण धातुये, इन्द्रियोंका बल और उत्साहमे हीन होता जाताहै । सत्तर वर्षसे पश्चात् धातु तथा रस आदि क्षीण होजातेहैं. दिनों दिन इन्द्रियोंका बल क्षीण होताहै और वीर्य भी क्षीण होता है, वृद्ध मनुष्य वली (गुलझट) पलित, (सफेदबाल) खालित्य युक्त होजाता है; कार्य करनेमे असमर्थता होती है, और कास श्वास आदि रोगोंसे दुःखित होताहै । बाल्यावस्थामे कफ बढताहै, मध्यम अवस्थामें पित्त बढताहै और वृद्ध अवस्थामे बात बढताहै. इस प्रकार विचारकर चिकित्सा करनी चाहिये । दूसरे ग्रंथोंमे लिखा है कि–" दश वर्षतक बालकपन और वीस वर्षतक शरीरकी वृद्धि होतीहै, फिर तीस वर्षके उपरांत कांति, चालीस वर्षके पीछे स्मरणशक्ति, पचास वर्ष पीछे त्वचा, साठ वर्ष पीछे नेत्रकी शक्ति, सत्तर वर्ष पीछे वीर्य, अस्सी वर्ष उपरांत पराक्रम, नब्वे वर्ष पश्चात् बुद्धि, सौ वर्षके उपरात कर्म्मेन्द्रिय, एकसौ दशवर्ष पीछे चेतना और एकसौ वीस वर्ष पश्चात् जीवन न्यून होजाताहै ॥ ४२–४९ ॥

अथ प्रकृतयः ।

सप्त प्रकृतयो नृणां वातात्पित्तात्कफात्तथा ॥ संसर्गात्सन्निपाताच्च भवन्ति भिषजां मते ॥ ५० ॥ शुक्रशोणितसंयोगे यो दोषस्तूत्कटो भवेत् ॥ प्रकृतिर्जायते तेन तस्या लक्षणमुच्यते ॥ ५१ ॥

वाग्भटे तु अत्रियादयः ।

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयान्तरे ॥ यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता ॥ ५२ ॥

सोऽपि दोषः स्वभावावस्थितो न तु दुष्टः दुष्टेन तु शुक्रशोणितयोर्दुष्टौ शुद्धगर्भासम्भवात् ॥

वात पित्त कफ तीन, द्वन्द्वज तीन और सन्निपातसे एक इसप्रकार वैद्योंके मतानुसार मनुष्योंकी सात प्रकृति होतीहैं। वीर्य्य और आर्त्तवके सयोग होने पर जौनसा दोष अधिक होता है, उसीके अनुसार गर्भमे आनेवाले बालककी प्रकृति बनती है। वाग्भटमे आत्रेय आदि मुनियोका वचन है कि–"वीर्य, रुधिर और गर्भिणीका किया हुआ भोजन, उसकी चेष्टा और गर्भाशयके भीतर जो दोष अधिक होताहै उस दोषके अनुसार मनुष्योकी प्रकृति बनतीहै।"(यहां ऐसा समझना कि,उपरोक्त दोष वीर्य आदि दुष्ट न हुए हो क्यो कि अपने स्वभावसे रहनेवाले वात पित्तादिक दोषोंके अनुसार मनुष्योंकी प्रकृति होती है. कारण यह है कि, दोष दुष्ट हुए होय तौ उसी वीर्य और रुधिरसे दुष्ट तथा शुद्ध गर्भ रहना असम्भव है) ॥ ५०–५२ ॥

वातादिप्रकृतयः ।

जागरूकोऽल्पकेशश्च स्फुटितांघ्रिकरः कृशः ॥ शीघ्रग बहुवाग्रूक्षः स्वप्ने वियति गच्छति ॥५३॥ एवंविधः स विज्ञेयो वातप्रकृतिको नरः ॥ पित्तप्रकृतिको लोको यादृशोऽथ निगद्यते ॥५४॥ अकालपलितो गारः क्रोधी स्वेदी च बुद्धिमान् ॥ बहुभोक्तास्रनेत्रश्च स्वप्ने ज्योतींषि पश्यति ॥५५॥ एवंविधो भवेद्यस्तु पित्तप्रकृतिको नरः ॥ श्यामकेशः क्षमी स्थूलो बहुवीर्यो महाबलः ॥ ५६ ॥ स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ दृश्यते प्रकृतो यत्र रूपं दोषद्वयस्य तु ॥ द्विसंसर्गेण जानीयात्सर्वलिंगैस्त्रिदोषजम् ॥ ५७ ॥

वात प्रकृतिवाला मनुष्य, जागनेवाला (कमसोनेवाला) अल्पकेशयुक्त, फटेहुए हाथ पाँववाला, कृश (दुर्बल), शीघ्र चलनेवाला, अधिक बोलनेवाला, रूखे शरीरवाला और स्वप्नमे आकाशमार्गसे गमन करनेवाला, इन लक्षणों वाले मनुष्यकी वातप्रकृति होतीहै। पित्त प्रकृतिवाले मनुष्यके बाल अकालमें ही सफेद होजाते हैं, गौर वर्णवाला, क्रोधी, अधिक प्रस्वेद (पसीना) आनेवाला. परम चतुर, बहुत भोजन करनेवाला, रक्तनेत्रोवाला और स्वप्नमें अग्नि बिजली सूर्यादि ज्योतियुक्त पदार्थोंको देखने वाला इन लक्षणोसे युक्त मनुष्य पित्तप्रकृतिवाला होताहै। कफ प्रकृतिवाला मनुष्य क्षमावान्, कालेकेशोंवाला, मोटा, वीर्यवान्, महाबली और स्वप्नमे जलाशय (नदी तालाव आदि) देखै, इन लक्षणोंवाला मनुष्य कफप्रकृतिवाला होताहै, जिसकी प्रकृतिमे दो दोषोके लक्षण मिलते होय उसकी प्रकृति दो दोषवाली होतीहै, और जिसकी प्रकृतिमे उपरोक्तवातादि तीनो दोषोके लक्षण दीखते होंय उसकी तीन दोषोंवाली प्रकृति होतीहै, ऐसा जानना॥५३–५७॥

वातप्रकृतिलक्षणानि वाग्भटे ।

प्रायस्त एव पवनाध्युषिता मनुष्या दोषात्मकाः स्फुटितधूसरकेशगात्राः ॥ शीतद्विषश्चलधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टाः सौहार्ददृष्टिगतयोऽतिबहुप्रलापाः ॥५८॥ अल्पपित्तबलजीवितनिद्राः सन्नशक्तबहुजर्जरवाचः ॥ नास्तिका बहुभुजः सविलासा गीतहास्यमृगयाकलिलोलाः ॥ ५९ ॥ मधुराम्लकटूष्णसात्म्यकांक्षाः कृशदीर्घाकृतयः सशब्दयानाः ॥ न दृढा न जितेंद्रिया न चार्याः न च कान्तादयिता बहुप्रजा वा ॥ ६० ॥ अक्षीणि चैषां खरधूसराणि वृत्तान्यचारूणि मृतोपमानि ॥ उन्मीलितानीव भवन्ति सुप्ते शैलद्रुमान्ते गगने प्रयान्ति ॥६१॥ अधन्या मत्सराध्माताः स्तनाः प्रोद्बद्धपिण्डिकाः ॥ श्वशृगालोष्ट्रगृध्राखुकाकोलूकाश्च वातिकाः ॥ ६२ ॥

वाग्भटमे कहाहै कि–विशेष करके वातप्रकृतिवाले पुरुष दुष्टस्वभाववाले होतेहैं. उनके केश और शरीर फटेहुए और धूसरवर्णवाले होतेहैं, शीतके द्वेषी होतेहैं. उनकी धृति, स्मृति, बुद्धि और चेष्टा चञ्चल होतीहैं, मैत्री, दृष्टि और चालमे भी चचलता दीखतीहै बहुत बोलनेवाले होतेहैं, पित्त, बल, जीवन और निद्रा, ये अल्प होतेहैं; टूटे फूटे वचन हकलाकर बोलै, नास्तिक, अधिक भोजन करनेवाले, विलासी, गायन, हास्य, शिकार और कलह (लडाई) करनेमे अत्यन्त रुचिवाले होयँ मधुर, खट्टे, चरपरे और गरम ऐसे पदार्थ अनुकूल आवे; शरीर कृश और लंबा होय, पानी आदि पदार्थ पीनेमें शब्द

होय तथा दृढ, जितेन्द्रिय, उत्तम, स्त्रियोंको प्रिय और अधिक सतानवाले नहीं होते और उनके नेत्र रूक्ष, किंचित् धूसरवर्ण, गोल, सुन्दरतारहित, मृतकके सदृश और सोनेपर भी खुलेहुए रहतेहैं । यह स्वप्नमें पर्वतके ऊपर, वृक्षके ऊपर, और आकाशमें गमन करते हैं । भाग्यहीन, मत्सरतायुक्त (दूसरेको देखकर जलनेवाले), और चोर होतेहैं । तथा उनकी पाँवकी पिडली गांठदार होतीहैं । कुत्ता, गीदड, ऊँट, गिज्ज, चूहा, कौआ और उल्लूके सदृश वातप्रकृतिवाले होतेहैं, अर्थात् इनकासा स्वर और रूपादिक वात--प्रकृतिवाले मनुष्यके होतेहै ॥ ५८–६२ ॥

पित्तप्रकृतिलक्षणानि ।

पित्तं वह्निर्वह्निजं चैतदस्मात्पित्तोद्रिक्तस्तीव्रतृष्णो बुभुक्षुः ॥ गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्तादियुग्मः शूरो मानी पिङ्गकेशोऽल्परोमा ॥ ६३ ॥ दयितमाल्यविलेपनमण्डनः सुचरितः शुचिराश्रितवत्सलः ॥ विभवसाहसबद्धिबलान्वितो भवति भीषु गतिर्द्विषतामपि ॥ ६४ ॥ मेधावी प्रशिथिलसन्धिबन्धमांसो नारीणामनभिमतोऽपशुक्रकामः ॥ आवासश्चलिततरंगनीरकेषु भुंक्तेऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ ६५ ॥ धर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगन्धिर्भूर्य्युच्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः ॥ सुप्तः पश्येत्कर्णिकारान्पलाशान्दिग्दाहोल्काविद्युदर्कानलांश्च ॥ ६६ ॥ तनूनि पिङ्गानि चलानि चैषां तन्वल्पपक्ष्माणि हिमप्रियाणि ॥ क्रोधेन मद्येन रवेश्च भासा रागं व्रजन्त्याशु विलोचनानि ॥ ६७ ॥ मध्यायुषो मध्यबलाः पण्डिताः क्लेशभीरवः ॥ व्याघ्रर्क्षकपिमार्जारवृकानूकाश्च पैत्तिकाः ६८

पित्त अग्निरूप है अथवा अग्निसे उत्पन्न हुआहै, इस लिये पित्तप्रकृतिवाले मनुष्यको तृषा और भूख बहुत लगतीहै; अंग गोरा तथा गरम होताहै, हाथ पाँव तथा मुख रक्तवर्णके होते है, केश पीले होतेहैं, रोम थोडे होतेहैं, शूर और अत्यन्त मानी होताहै, पुष्प चन्दनादि लेपनसे प्रीति करनेवाला, सदाचारी, पवित्र, आश्रितोंपर दया करनेवाला, वैभव, साहस तथा बुद्धिबल युक्त होताहै, भयभीत शत्रुकोभी रक्षा करनेवाला, स्मरणशक्तिवाला, सम्पूर्ण सन्धिबन्धन और मांस शिथिल होता है, स्त्रियोंमें अधिक प्रीति नहीं रखनेवाला, वीर्य तथा कामदेव अल्प होताहै, पानीकी चलती हुई तरंगके सदृश कांतियुक्त, मधुर, कसैला, कडुआ और शीतल अन्नमें अधिक रुचि होतीहै, धर्मका द्वेषी, बहुत पसीनेवाला, और शरीर दुर्गन्धयुक्त होताहै । विष्ठा, क्रोध, जलपान, भोजन और ईर्ष्या अधिक होतीहैं, और स्वप्नमें कनेर ढाक आदिके पुष्प, दिग्दाह (जलती हुई दिशा), उल्कापात, बिजली, सूर्य, तथा अग्नि दिखाई देती है, उनकी नेत्रोंकी पुतली पीतवर्ण, तथा थोडे पलकोंवाला और शीतलतासे प्रीति करनेवाला होता है, और क्रोध, मद्य तथा सूर्यकी चमकसे तत्काल रक्तनेत्र होनेवाले होतेहैं; ये लोग पंडित, क्लेशसे डरनेवाले, मध्यम आयु और बलयुक्त होते हैं, तथा बाघ, रीछ, बंदर, बिलाव, भेडिया इनकेभी प्रकृतिवाले होते हैं ॥ ६३–६८ ॥

कफप्रकृतिलक्षणानि ।

**श्लेष्मा सोमः श्लेष्मलस्तेन सौम्यो गूढस्निग्धश्लिष्टसन्ध्यस्थिमांसः ॥ क्षुत्तृड्दुःखक्लेशधर्मैरतप्तो बुद्ध्या युक्तः सात्त्विकः सत्यसन्धः ॥ ६९ ॥ प्रियंगुदूर्वाशरकाण्डदर्भगोरोचनापद्मसुवर्णवर्णः ॥ प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षाः महाललाटो घननीलकेशः ॥ ७० ॥ मृद्वङ्गः समसुविभक्तचारुदेहो बह्वोजा रतिरसयुक् सपुत्रभृत्यः॥धर्मात्मा वदति न निष्ठुरं तु जातु प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरं च वैरम् ॥७१॥ समदद्विरदेन्द्रतुल्ययानो जलदाम्भोधिमृदङ्गशङ्खघोषः॥ स्मृतिमानभियोगवान्विनीतो न च बाल्येऽप्यतिरोदनो न लोलः ॥ ७२ ॥ तिक्तं कषायं कटुकोष्णरूक्षमल्प च भुंक्ते बलवांस्तथापि ॥ रक्तान्तसुस्निग्धविशालदीर्घसुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्षः ॥७३॥ अल्पाहारक्रोधपानाशनेहः प्रज्ञावित्तो दीर्घसूत्रो वदान्यः ॥ हृद्गम्भीरः स्थूलवक्षाः क्षमावान्निद्रालुश्चालुब्धवृत्तः कृतज्ञः ॥ ७४ ॥

ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सलज्जो भक्तो गुरूणां स्थिरसौहृदश्च ॥ स्वप्ने सपद्मान्सविहङ्गमालांस्तोयाशयान्पश्यति तोयदांश्च ॥
॥ ७५ ॥ विष्णुरुद्रेन्द्रवरुणतार्क्ष्यहंसगजाधिपैः ॥ श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथा सिंहाश्वगोवृषैः ॥ ७६ ॥

कफका स्वरूप चन्द्रमाकी सदृश है, इस लिये कफप्रकृतिवाला मनुष्य सौम्य होताहै, इसकी सन्धि हड्डी और मांस परस्पर मिलेहुए स्निग्ध और गूढ होतेहैं । भूख, प्यास, दुःख और क्लेश इनके धर्मसे संतापित नहीं होता; बुद्धिमान्, सत्त्वगुण युक्त और अपने वचनोंका पालनेवाला होताहै । शरीरका रंग प्रियंगु, दूब, मूंज, दर्भ (कुशा), गोलोंचन, कमल और सुवर्णके समान होताहै । लंबी बाहुओंवाला, वक्षःस्थल पुष्ट तथा चौडा होताहै, कपाल बडा होता है, केश बहुत और स्याम होतेहैं, अंग कोमल होता है शरीर सम और सुन्दर होताहै, अधिक ओज (सामर्थ्य) युक्त शृङ्गाररसमें मग्न, पुत्र और भृत्य अधिक होतेहैं । धर्मात्मा, कठोर वचन नहीं बोलनेवाला, गुप्तरीतिसे शत्रुके साथ अधिक कालपर्यन्त दृढ वैर रखनेवाला होताहै।पुष्टता मदोन्मत्त हाथीके सदृश, शब्द--मेघ, समुद्र, मृदंग और शंखके सदृश होताहै, स्मृतिशक्तियुक्त, उद्योगी, नम्र, बाल्यावस्थामें बहुत नहीं रोनेवाला तथा चपलताहीन होता है । कडवे, कसैले, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष और अल्प भोजन करनेवाला होताहै तथापि बलवान् होताहै । नेत्र कोनेकी ओर रक्त, स्निग्ध, बडे लंबे, स्पष्ट, सफेद और काले काले अधिक पलकोंवाले होतेहैं । आहार, जलपान, क्रोध और क्षुधा, अल्प होतीहै । प्रज्ञावान्, दीर्घसूत्री (कार्य करनेमें अधिक देर करनेवाला), मनोहर बोलनेवाला, गम्भीर हृदय युक्त, चौडी छातीवाला, क्षमावान्, निद्रालु, लोभरहित और कृतज्ञ होताहै । सरलस्वभावी, विद्वान्, लज्जावान् तथा गुरुओंका भक्त, प्रेमको स्थिर रखनेवाला होताहै । और स्वप्नमें कमल, तथा चकवा चकवी आदि पक्षियोंकी पंक्तियुक्त जलाशयोंको देखता है । कफप्रकृतिवाला मनुष्य--विष्णु, इन्द्र, रुद्र, वरुण, गरुड, अग्नि, हंस, हाथी, सिंह, घोडा, गौ और बैलके सदृश प्रकृतिवाला होताहै ॥ ६९--७६ ॥

ननु प्रकृतिहेतूनां मध्ये योऽधिकः स स्वव्याधीन्कथं न करोति । इत्याशंकायामाह ।

विषजातो यथा कीटो न विषेण प्रबाध्यते ॥ तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न बाधितुम् ॥ ७७ ॥

एतौ द्वौ नञौ अपि ईषदर्थे । तेन विषेण विषजदाहादिना ईषत् प्रबाध्यते,न तु भृशम् । तथा च प्रकृतयः प्रकृतिहेतवो दोषाः बाधितुं न शक्नुवन्ति । करचरणस्फुटितत्वस्वेदनिद्राधिक्यादिना ईषद्बाधितुं शक्नुवन्त्येव, न तु ज्वरादिभिः ॥

प्रकोपो वाऽन्यभावो वा शमो वा नोपजायते ॥ प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुषः ॥ ७८ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे बालप्रकरण तृतीयम् ॥ ३ ॥

प्रकृति होनेका कारणरूप वात, पित्त और कफ इनमे जो दोष प्रकृतिरूपसे अधिक होयँ वह दोष अपने होनेवाले रोगोंको उत्पन्न क्यों न करै ? ऐसी यहाँ शंका होनेपर कहतेहैं कि, जिसप्रकार विषसे उत्पन्न हुआ कीडा विषसे बाधित नहीं होता, उसीप्रकार उस उस प्रकृतिवाले मनुष्यको वह वह प्रकृति बाधित करनेको समर्थ नहींहै । प्रकृतिरूप हुए दोषसे बाधित नहीं होसक्ता, यह जो ऊपर कहा उसमें ऐसा समझना कि जिसप्रकार विषके कीडेको विषसे मृत्यु आदिककी बाधा नहीं होती उसी प्रकार उस उस प्रकृतिवाले मनुष्योंको वह वह प्रकृतिके कारणरूप दोषोंसे ज्वर आदिकके आनेकी अत्यन्त बाधा नहीं होती, परन्तु हाथ पांवका फूटना, पसीनेका आना और निद्राकी अधिकता आदि थोडी थोडी बाधा होतीहैं । परन्तु जो दोष प्रकृतिरूप होय उसको प्रकोप अथवा अन्यभाव वा उपशम नहीं होता परन्तु वह मनुष्य मृत्युपर्यन्त प्रकृतिके स्वभावके अनुसारही रहताहै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसजीवनीभाषाटीकायां तृतीय बालप्रकरण समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थं दिनचर्यर्तुप्रकरणम् ४.

अथ देशाः ।

भूमिर्देशस्त्रिधाऽनूपो जांगलो मिश्रलक्षणः १॥

पृथ्वीमें देश तीन प्रकारके वर्णन किये हैं । अनूप, जांगल और मिश्र (साधारण) ॥ १ ॥

तत्रानूपलक्षणम् ।

नदीपल्वलशैलाढ्यः फुल्लोत्पलकुलैर्युतः ॥ हंससारसकारंडचक्रवाकादिसेवितः ॥ २ ॥ शशवाराहमहिषरुरुरोहिकुलाकुलः ॥ प्रभूतद्रुमपुष्पाढ्यो नीलशस्यफलान्वितः ॥३॥ अनेकशालिकेदारकदलीक्षुविभूषितः॥आनूपदेशो ज्ञातव्यो वातश्लेष्मामयान्वितः ॥४॥

जहाँ नदियें, छोटे २ सरोवर और पहाड अधिक होय तालावोंमे उत्पल कमल खिल रहेहों, हंस, सारस, कारंडव (एक प्रकारका श्याम हंस), वतक और चकवाक (चकवा) आदि अनेक पक्षी कलोलें कररहेहों, शशा (खरगोश), वराह (सुअर), महिषी (भैंस), रुरु मृग (रोहिनामक मृगादि) अधिक हो और जहां अनेक द्रुम, बेलि फूलोंसे सुशोभित हो, नीले नीले खेतों और फूलोंसे पृथिवी पूर्ण हो नाना प्रकारके शालिधानोंकी खेतीसे संपूर्ण भूमि शोभित होय, केलेके वृक्ष और ईखसे संपूर्ण धरणी शोभायमान हो ऐसे देशको अनूपदेश कहतेहैं । अनूपदेशमे वात और कफसंबधी रोग अधिक होतेहैं ॥ २–४ ॥

अथ जांगललक्षणम् ।

आकाशशुभ्र उच्चश्च स्वल्पपानीयपादपः ॥ शमीकरीरबिल्वार्कपीलुकर्कंधुसंकुलः॥५॥ हरिणैणर्क्षपृषतगोकर्णखरसंकुलः ॥ सुस्वादुफलवान्देशो वातलो जांगलः स्मृतः॥६॥

तन्त्रान्तरे तु ।

बहूदकनगोऽनूपः कफमारुतरोगवान् ॥ जांगलोऽल्पाम्बुशाखी च पित्तासृङ्मारुतोत्तरः ॥ ७ ॥

जो देश आकाशके सदृश स्वच्छ होय, ऊँचा होय, जिसमें वृक्ष और पानी (जलाशय) थोडे होय, शमी (छीकुर), करील, बेल, आक, पीलु (मदार) और बेरीके वृक्ष अधिक होय, हिरण, एण (कृष्ण मृग), रीछ, पृषतमृग (चीता), गोकर्ण मृग (रोज) तथा खर (गधे) आदिक अधिक होय; और स्वादिष्ट फलोंसे वृक्ष आच्छादित होय, उस देशको जाङ्गलदेश जानना । जांगलदेशमे वायुसम्बन्धी रोग अधिकतासे होतेहैं । अन्यग्रंथोंमे तो ऐसा लिखा है कि- जिस देशमे पानी और पर्वत अधिक होय, कफ तथा वायुसम्बन्धी रोग विशेष होंय उसको अनूपदेश जानना और जहां जलाशय और वृक्ष कम हो उसे जांगल जानो, इसमें पित्त रुधिर और वायुसम्बन्धी रोग विशेष होतेहैं ॥ ५–७ ॥

अथ साधारणलक्षणम् ।

संसृष्टलक्षणो यस्तु देशः साधारणो मतः ॥ समाः साधारणे यस्माच्छीतवर्षोष्णमारुताः ॥ समता तेन दोषाणां तस्मात्साधारणो वरः ॥ ८ ॥

जिस देशमे अनूप और जांगल, इन दोनो देशोंके लक्षण मिलते होय उसको मिश्र (साधारण) देश जानना । साधारण देशमे शीत, वर्षा, गर्मी और वायु ये समान होतेहैं, इसकारण वात, पित्त और कफकी भी समता रहतीहै, इसलिये साधारण देश सबसे उत्तम कहाताहै ॥८॥

सुश्रुतः–उचिते वर्तमानस्य नास्ति दुर्देशजं भयम् ॥ आहारस्वप्नचेष्टादौ तद्देशस्य कृते सति ॥ ९ ॥

वृद्धवाग्भटः ।

यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम ॥ देशादन्यत्र वसतस्तत्तुल्यगुणमौषधम् ॥ १० ॥ स्वे देशे निचिता दोषा अन्यस्मिन्कोपमागताः ॥ बलवन्तस्तथा न स्युर्जलजाः स्थलजास्तथा ॥ ११ ॥

सुश्रुत कहताहै कि– यदि उचित रीतिसे आहार और निद्रादि विहारोंका सेवन कियाजाय तो फिर दुर्देशमे रहनेका भी कुछ भय नहीं रहता इसकारण जिस देशमे रहै उसीके अनुसार आहार विहारादि चेष्टा करनी चाहिये । वृद्ध वाग्भट कहताहै कि–“जो प्राणी जिस देशका होय उसको उस देशमें उत्पन्न हुई औषधियें हितकारी होतीहै, अपने देशको छोडकर जो दूसरे देशमे रहता होय उसको अपने देशमे उत्पन्न हुई औषधिके सदृश गुणवाली औषधि हितकारी है ,

अपने देशमे शरीरके भीतर सचित हुए दोष दूसरे देशमे जाने पर कुपित होयँ तौ जैसे अपने देशमे बलवान् होतेहैं तैसे दूसरे देशमे बलवान् नही होते" उसी प्रकार अनूप देशमें रहनेवालेके शरीरके भीतर सचित हुए दोष उस मनुष्यको जांगल देशमे जानेपर कुपित होयँ तो वैसे बलवान् नही होते। उसी प्रकार जांगल देशके सचित दोष अनूप देशमे बली नही होते।

अथ दिनादिचर्याः।

मानवो येन विधिना स्वस्थस्तिष्ठति सर्वदा॥ तमेव कारयेद्वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम्॥ १२॥ दिनचर्यां निशाचर्यामृतुचर्यां यथोदिताम्॥ आचरन्पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा॥ १३॥

मनुष्य जिस विधिके (आहार विहारादि) करनेसे सर्वदा स्वस्थ (प्रसन्न) रहै उसी प्रकार वैद्य उसको करै, क्योकि—स्वास्थ्य सदा सबको प्रिय है। जो मनुष्य सर्वदा शास्त्रानुसार दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या करतेहैं वे मनुष्य सर्वदा स्वस्थ (निरोगी) रहतेहैं। इन क्रियाओको विना किये कोई भी सदा स्वस्थ नहीं रह सक्ते॥ ॥ १२॥ १३॥

तत्र स्वस्थस्य लक्षणमाह सुश्रुतः।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः॥ प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥ १४॥

क्रिया अत्र कर्म, तेन समक्रियः शरीरानुरूपकर्मा॥

सुश्रुतभी कहतेहैं कि—"जिस मनुष्यके वात, पित्त आदि दोष, अग्नि, धातु और मल समान स्थिति होंय जो मनुष्य अपने शरीरके अनुसार समान रूपसे क्रियायें करता होय और जिसके देह, इन्द्रिये और मन प्रसन्न होयँ वह मनुष्य स्वस्थ (निरोगी) कहाताहै"॥ १४॥

अथ दिनचर्यामाह।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः॥ तत्र दुःखस्य शान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम्॥ ॥ १५॥ दध्याज्यादर्शसिद्धार्थबिल्वगोरोचनस्रजाम्॥ दर्शनं स्पर्शनं कार्यं प्रबुद्धेन शुभावहम्॥ १६॥ स्वमाननं घृते पश्येद्यदीच्छेच्चिरजीवितम्॥ आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम्॥ तदन्त्रकूजनाध्मानोदरगौरवबारणम्॥ १७॥

आदिशब्देन वातमूत्रादीनां ग्रहणम्॥

आटोपशूलौ परिकर्तिका च संगः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः॥ पुरीषमास्यादथ वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य॥ १८॥

परिकर्तिका गुदे परिकर्तनवत्पीडा। पुरीषस्य संगो निरोधः। ऊर्ध्ववातः उद्गारबाबाहुल्यम्॥

वातमूत्रपुरीषाणां संगो ध्मानं क्लमो रुजा॥ जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात्॥ १९॥ वस्तिमेहनयोः शूलमूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा॥ विनामो वंक्षणानाहः स्याल्लिंगं मूत्रनिग्रहे॥ २०॥

विनामः शरीरस्य नम्रता। वंक्षणानाहः वंक्षणस्याकर्षणवत्पीडा॥

न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्न वेगानीरयेद्बलात्॥ कामशोकभयक्रोधान्मनोवेगान्विधारयेत्॥ २१॥ गुदादिमलमार्गाणां शौचं कांतिबलप्रदम्॥ पवित्रकरमाख्यातमलक्ष्मीकलिपापहृत्॥ २२॥ प्रक्षालनं मत पाण्योः पादयोः शुद्धिकारणम्॥ मलश्रमहरं वृष्यं चक्षुष्यं राजसापहम्॥ २३॥

स्वस्थ मनुष्य आयुष्यकी रक्षाके लिये चार घडीके तडके अर्थात् ब्राह्ममुहूर्तमे उठै और उस समय दुःखकी शांतिके लिये ईश्वरका स्मरण करै फिर जागकर दही, घी, दर्पण, सफेद सरसो, बेल, गोलोचन और फूलमालाः इनका दर्शन करै, तथा स्पर्श करै, यह शुभकारक है। जो अधिक जीवनकी अभिलाषा होय तौ घीमे अपने मुखको नित्य देखै। प्रातःकाल मल, मूत्र आदिका विसर्जन करनेसे दीर्घायु होतीहै क्योकि इससे पेटका गुडगुडाहट, अफारा, और भारीपन आदि सब दूर होजाते है। मलको रोकनेसे पेटका फूलना, शूल, गुदामे कतरनेके

सदृश पीडा होतीहै तथा मलका अवरोध होता है तथा डकार बहुत आनेलगती हैं अथवा मुखमेंसे मल निकलने लगता है। वात, मूत्र और मल रोकनेसे पेट फूल जाता है, ग्लानि होती है, और पीडा भी होती है। अधोवायुको रोकनेमें पेटमें वायु सम्बन्धी अन्यरोग भी उत्पन्न होजाते हैं। मूत्र रोकनेसे मूत्राशयमें तथा लिंगमें शूल होता है, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकमें दर्द, शरीरकी नम्रता, और वक्षणका सम्पूर्ण सन्धियोंमें खीचनेके सदृश पीडा होती है। मल, मूत्र आदिका वेग होय तौ तुरन्त मल, मूत्रका त्याग करना चाहिये, इसमें पहिले अन्य कार्य न करे. बलात्कारसे (किछकर) मलको नहीं निकाले। काम, क्रोध, भय, और शोक इत्यादि मनके वेगोंको जहाँ तक होसके रोकताही रहै, परन्तु मल मूत्र आदि शरीरके वेगोंको कदापि नहीं रोके। गुदादि जो मल मूत्रके मार्ग हैं उनको स्वच्छ रखनेसे कांति तथा बल बढता है, पवित्रता होती है, अलक्ष्मी, क्लेश, तथा पापोंका नाश होताहै। हाथ तथा पांवोंके धोनेसे शुद्धता होतीहै, मल और परिश्रम दूर होताहै, तथा हाथ पांवोंका धोना पुष्टिकर्ता, नेत्रोंको हितकारी और रजोगुणको दूर करता है ॥ १५–२३ ॥

अथ दन्तकाष्ठविधिः।

भक्षयेद्दन्तपवनं द्वादशांगुलमायतम् ॥ कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलमृज्वग्रंथि तथाऽव्रणम् ॥ ॥ २४ ॥ एकैकं घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकेन तु ॥ दंतशोधनचूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् ॥ २५ ॥ क्षौद्रत्रिकटुकाक्तेन तैलसिन्धुभवेन वा ॥ चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यं विशोधयेत् ॥ २६ ॥

तेजोवती तेजवल्कल इति लोके प्रसिद्धा ॥

मधूको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके तथा ॥ निम्बः स्यात्तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा ॥ २७ ॥ समयं तु समालोक्य दोषं च प्रकृतिं तथा ॥ यथोचितं रसैर्वीर्यैर्युक्तं द्रव्यं प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥ तेनास्य मुखवैरस्यदन्तजिह्वास्यजा गदाः ॥ रुचिवैशद्यलघुता न भवंति भवंति च ॥ २९ ॥ अर्के वीर्यं वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो भवेत ॥ प्लक्षे चैवार्थसंपत्तिर्बदर्य्यां मधुराशनम् ॥ ३० ॥ खदिरे मुखसौगन्ध्यं बिल्वे तु विपुलं धनम् ॥ उदुम्बरे तु वाक्सिद्धिराम्रे त्वारोग्यमेव च ॥ ३१ ॥ कदम्बे तु धृतिर्मेधा चम्पके दृढवाक्श्रुतिः ॥ शिरीषे कीर्तिसौभाग्यमायुरारोग्यमेव च ॥ ३२ ॥ अपामार्गे धृतिर्मेधा प्रज्ञाशक्तिस्तथाऽसने ॥ दाडिम्यां सुन्दराकारः ककुभे कुटजे तथा ॥ ३३ ॥ जातीतगरमंदारैर्दुःस्वप्नं च विनश्यति ॥ ३४ ॥ गुवाकतालहिन्तालं केतकश्च बृहद्दरः ॥ खर्जूरं नारिकेलं च सप्तैते तृणराजकाः ॥ ॥ ३५ ॥ तृणराजसमुत्पन्नं यः कुर्याद्दन्तधावनम् ॥ नरश्चाण्डालयोनिः स्याद्यावद्गंगां न पश्यति ॥ ३६ ॥ न खादेद्गलताल्वोष्ठजिह्वादन्तगदेषु तत् ॥ मुखस्यपाके शोथे च श्वासकासवमीषु च ॥ ३७ ॥ दुर्बलोऽजीर्णभुक्तश्च हिक्कामूर्च्छामदान्वितः ॥ शिरोरुजार्तस्तृषितः श्रान्तः पानक्लमान्वितः ॥ ३८ ॥ अर्दितः कर्णशूली च नेत्ररोगी नवज्वरी ॥ वर्जयेद्दन्तकाष्ठं तु हृदामययुतोऽपि च ॥ ३९ ॥

अजीर्णभुक्तः—न जीर्णं भुक्तं यस्य सः ॥

जिह्वानिर्लेखनं हैमं राजतं ताम्रजं तथा ॥ पाटितं मृदु तत्काष्ठं मृदुपत्रमयं तथा ॥ ४० ॥

तत्काष्ठं दन्तशोधनयोग्यं काष्ठम् ॥

दशांगुलं मृदु स्निग्धं तेन जिह्वां लिखेत्सुखम् ॥ तज्जिह्वामलवैरस्यदुर्गन्धजडताहरम् ॥ ४१ ॥ गण्डूषमपि कुर्वीत शीतेन पयसा मुहुः ॥ कफतृष्णामलहरं मुखान्तःशुद्धिकारकम् ॥ ४२ ॥ सुखोष्णोदकगण्डूषः कफारुचिमलापहः ॥ दन्तजाड्यहरश्चापि मुखलाघवकारकः ॥ ४३ ॥ विषमूर्च्छामदार्तानां शोषिणां रक्तपित्तिनाम् ॥ कुपिताक्षिमलक्षीणरूक्षाणां स न शस्यते ॥ ४४ ॥

स सुखोष्णोदकगण्डूषः ॥ मुखप्रक्षालनं शीतपयसा रक्तपित्तजित् ॥ मुखस्य पिडिकाशोषनीलिकाव्यङ्गनाशनम् ॥ ४५॥ कुर्याद्वापि कटूष्णेन पयसाऽऽस्यविशोधनम् ॥ कफवातहरं स्निग्धं मुखशोषविनाशनम् ॥ ४६ ॥

बारह अंगुल लंबी, कनिष्ठिका अंगुलीके अग्रभागके सदृश मोटी, सीधी, गांठ और छिद्र रहित ऐसी दतौन करै। दतौनकी नरम कूँचीसे एक एक दाँतको घिसे तथा दन्त मलनेके चूर्णादिसे मसूडोंको छोडकर मलै। शहद, सोंठ, मिरच और पीपल इनके मिले हुए चूर्णसे अथवा तेलकी भावना फिर दिये हुए सैंधेनोनके चूर्णसे, वा तेज वल्कल नामक लकडीके चूर्णसे दाँतोंको नित्य शुद्ध करै। मीठी दतौनोंमें महुआ, तीक्ष्णोंमे करंज, कडवियोंमें नीम और कसैलियोंमें खैर श्रेष्ठ है। समय, दोष और प्रकृतिको विचार करके योग्य रस और योग्य शक्तिवाले वृक्षकी लकडीकी दतौन करै और दाँत स्वच्छ करनेका चूर्णभी योग्य ही लेवै। इस प्रकार दतौन करनेसे मुखकी विरसता, (बेजायकापना) दांत, जीभ, तथा, मुखके रोग नही होते। तथा रुचि, स्वच्छता और शरीरमे हलकापन होताहै। आककी दतौन करनेसे शक्ति, वडकी दतौन करनेसे दीप्ति, करज की दतौन करनेसे जय, पाखरकी दतौन करनेसे धनसंपत्ति, बेरकी दतौनसे मिष्टभोजन, खैरकी दतौन करनेसे मुखमे सुगंध, बेलकी दतौन करनेसे अत्यन्त धन, गूलरकी दतौन करनेसे वचनकी सिद्धि, आम्रकी दतौन करनेसे आरोग्य, कदंबकी दतौन करनेसे धैर्य तथा स्मरणशक्ति, चंपेकी दतौन करनेसे वाणी तथा शब्दकी दृढता, सिरसकी दतौन करनेसे कीर्त्ति, सौभाग्य, आयुकी वृद्धि और आरोग्य. चिरचिटेकी दतौन करनेसे धैर्य तथा धारणाशक्ति, विजयसारकी दतौन करनेसे बुद्धिकी शक्ति, दाडिमकी दतौन करनेसे सुन्दरता, ककुभ (अर्जुन) और कुडे (कुरैया) की दतौन करनेसे सुन्दर स्वरूपका लाभ, चमेली, तगर और मन्दारकी दतौन करनेसे खोटे स्वप्न नहीं दीखतेहैं। (सुपारी, ताल, हिताल, केतकी, वृहद्दर (बडाताड), खजूर और नारियल, इन सातोंको तृणराज कहते हैं. जो मनुष्य इनकी दतौन करताहै वह मनुष्य जबतक गंगाका दर्शन न करै तब तक चांडाल रहताहै)। गला, तालु, होंठ, जीभ, और दांतमें जिनके रोग होय उनको, जिनका मुख पका होय तथा सूजन होय उनको, श्वाँस, खाँसी, वमन रोगवाला, दुबला, और अजीर्णमें भोजन करनेवाले, तथा सूजन युक्त उनको, हिचकी, मूर्च्छा, मदात्ययी, शिरके दर्दवाला, तृषित, थकाहुआ, किसी वस्तुके पीनेसे जिसको ग्लानि हुई होय, अर्दित (वात व्याधी), कानके शूलवाला, नेत्ररोगी, नवीन ज्वरयुक्त, और हृदयरोगी, इन सबको दतौन नही करनी चाहिये ॥ जीभी सोनेकी, चाँदीकी, तथा ताँबेकी बनवावै, और जो यह न मिलै तौ कोमल चिरीहुई लकडीकी दतौनकी अथवा नरम पीतल आदिकी बनावै, दश अंगुल लंबी, कोमल और स्निग्ध, ऐसी जीभीसे जीभके मैलको दूर करनेके लिये घिसे। जीभी करनेसे–जीभका मैल, विरसता, दुर्गन्धता, और जडता दूर होती है। शीतल जलके बारबार कुल्ले करे, इससे कफ, तृषा और मल दूर होजाताहै तथा शीतरसे मुख स्वच्छ होताहै। किंचित् उष्ण जलके कुल्ले करनेसे कफ, अरुचि, मैल तथा दाँतोकी जडता दूर होतीहै और मुख हलका होजाताहै। विष, मूर्च्छा और मदसे पीडित, शोषरोगी, रक्तपित्त युक्त, जिसके नेत्र दुखने होंय, और मल क्षीण होगया हो, और रूखे शरीरवाले ऐसे मनुष्योंको–गरम पानीसे कुल्ले नहीं करने चाहिये। (शीतल जल मुख धोनेसे, रक्तपित्त और मुखकी पिडकायें (मुहासे), शोष, नीलिका, और व्यंग (झांई) नष्ट होतीहैं. अथवा किंचित् उष्ण जलके द्वारा मुख धोनेसे, कफ तथा वात दूर होती है, स्निग्धता होतीहै और मुखका शोष नष्ट होताहै)॥ २४–४६ ॥

अथ नस्यविधिः।

कटुतैलादि नस्यार्थे नित्याभ्यासेन योजयेत् ॥ प्रातः श्लेष्मणि मध्याह्ने पित्ते सायं समीरणे ॥ ४७ ॥ सुगन्धवदनाः स्निग्धनिःस्वना विमलेन्द्रियाः ॥ निर्वलीपलितव्यंगा भवेयुर्नस्यशीलिनः ॥ ४८ ॥

नित्यप्रति नाकमे सरसो आदिका तेल डालनेका अभ्यास करै। कफ बढा होय तौ प्रातःकाल, पित्त बढा होय तौ मध्याह्नकाल, और वायु वढी होय तौ सायंकाल, नाकमे तेल डालै। नाकमें तेल डालनेमे मुखमें सुगंध होती है, शब्दमें स्निग्धता होतीहै, इन्द्रिये विमल रहतीहैं, और वली (शरीरमें सिकुडन पडना), पलित (विना समय केश सफेद होजा-

ना) और व्यंग (झांई) ये उस मनुष्यके कभी नहीं होते ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ अञ्जनविधिः ।

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत् ॥ लोचने भवतस्तेन मनोज्ञे सूक्ष्मदर्शने ॥४९॥

सौवीरं श्वेतसुरमा इति लोके प्रसिद्धम् ।

स्रोतोऽञ्जनं मतं श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धुसम्भवम् ॥ दृष्टेः कण्डूमलहरं दाहक्लेदरुजापहम् ॥ ५० ॥ अक्ष्णो रूपावहं चैव सहते मारुतातपौ ॥ नेत्ररोगा न जायन्ते तस्मादञ्जनमाचरेत् ॥ ५१ ॥

स्रोतोऽञ्जनं कृष्णसुर्मा इति लोके विशुद्धं शोधनं विनापि । सिन्धुसम्भवं सिन्धुनामा पर्वतः तत्र सम्भवम् ॥

रात्रौ जागरितः श्रान्तश्छर्दितो भुक्तवांस्तथा ॥ ज्वरातुरः शिरःस्नातो नाक्ष्णोरञ्जनमाचरेत् ॥ ५२ ॥

सफेद सुरमा नेत्रोंको सदा हितकारीहै, इसकारण इसको नेत्रोंमें नित्य लगाना चाहिये. इसको लगानेसे नेत्र मनोहर और सूक्ष्म वस्तुके देखनेवाले होते हैं । सिन्धु नामक देशमें उत्पन्न हुआ काला सुरमा (शुद्ध किया हुआ न होनेपर भी) उत्तम होताहै, इसके लगानेसे नेत्रोंकी खुजली, मैल तथा दाह नष्ट होताहै और क्लेद (नेत्रोंमे पानीका बहना) तथा पीडाको दूर करताहै । नेत्र स्वरूपवान् होते हैं तथा वायु और धूपको सहन करनेमें समर्थ होते हैं । काला सुरमा लगानेसे नेत्रोंमे रोग नहीं होते, इस कारण सबको नित्य प्रति अंजन लगाना चाहिये । रातमे जागा हुआ, थका हुआ, वमन करनेवाला, जो भोजन कर चुकाहो, ज्वररोगी, और जिसने शिरसे स्नान कराहो, उनको सुरमा-अंजन नहीं लगाना चाहिये ॥४९-५०-५१-५२॥

अथ क्षौरकर्म ।

पञ्चरात्रान्नखश्मश्रुकेशरोमाणि कर्तयेत् ॥ केशश्मश्रुनखादीनां कर्तनं सम्प्रसाधनम्॥ पौष्टिकं धन्यमायुष्यं शौचकान्तिकरं परम् ॥ ५३ ॥

१ सौवीर सुपेद सुरमको कहतेहैं ।
२ और स्रोतोजन काला सुरमा होताहै ।

सम्प्रसाधनं शोभाजनकम् ॥

उत्पाटयेच्च लोमानि नासाया न कदाचन ॥ तदुत्पाटनतो दृष्टेर्दौर्बल्यं त्वरया भवेत् ॥ ॥ ५४ ॥ केशपाशे प्रकुर्वीत प्रसाधन्या प्रसाधनम् ॥ केशप्रसाधनं केश्यं रजोजन्तुमलापहम् ॥ ५५ ॥ आदर्शालोकनं प्रोक्तं मांगल्यं कान्तिकारकम् ॥ पौष्टिकं बल्यमायुष्यं पापालक्ष्मीविनाशनम् ॥ ५६ ॥

पांच पांच दिनमें नख, डाढी, केश, और रोम कतरवावे अर्थात् हजामत बनवावे, ऐसा करनेसे शरीरकी शोभा होती है, पुष्टता बढतीहै, धनकी प्राप्ति होती है; आयु बढतीहै, पवित्रता होती है और शरीरमें उत्तम कांति उत्पन्न होतीहै । नाकके रोम कभी नहीं उखाडे, क्योंकि उनको उखाडनेसे तुरन्त नेत्र निर्बल होजाते हैं । कंघेसे बालोंको काढकर पुष्टकरे, इसप्रकार काढनेसे केश स्वच्छ होतेहै, और केशोंकी धूल, कृमि, तथा मैल दूर होताहै । शीशेमें मुख देखना मंगलरूप है, कांतिकारक, पुष्टिकर्ता, बल तथा आयुको बढानेवाला, और पाप तथा अलक्ष्मीका नाश करताहै ॥ ५३-५६ ॥

अथ व्यायामगुणाः ।

लाघवं कर्मसामर्थ्यं विभक्तघनगात्रता ॥ दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥ व्यायामदृढगात्रस्य व्याधिर्नास्ति कदाचन ॥ ५७ ॥ विरुद्धं वा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते ॥ भवन्ति शीघ्रं नैतस्य देहे शिथिलतादयः ॥ ५८ ॥ नचैवं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति ॥ न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित्स्थौल्यापकर्षकम् ॥ ॥ ५९ ॥ स सदा गुणमाधत्ते बलिनां स्निग्धभोजिनाम् ॥ वसन्ते शीतसमये सुतरां स हितो मतः ॥ अन्यदापि च कर्तव्यो बलार्धेन यथाबलम् ॥६०॥ हृदयस्थो यदा वायुर्वक्त्रं शीघ्रं प्रपद्यते॥मुखं च शोषं लभते तद्बलार्धस्य लक्षणम्॥६१॥ किं वा ललाटे नासायां गात्रसन्धिषु कक्षयोः ॥ ६२ ॥ यदा सञ्जायते स्वेदो बलार्धं

तु तदादिशेत् ॥ भुक्तवान्कृतसम्भोगः कासी श्वासी कृशः क्षयी ॥ ६३ ॥ रक्तपित्ती क्षती शोषी न तं कुर्यात्कदाचन ॥ अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिः श्रमः क्लमः ॥ तृष्णाक्षयः प्रतमको रक्तपित्तं च जायते ॥ ६४ ॥

व्यायाम (कसरत) करनेसे–शरीरमे हलकापन और काम करनेकी सामर्थ्य होतीहैं, शरीर सुन्दर तथा पुष्ट होताहै; कफादिक दोषोका क्षय होताहै, और अग्निकी वृद्धि होतीहै। जिसका शरीर व्यायाम करनेसे दृढ होगया है, उसके कभी कोई रोग नही होता, विरुद्ध अन्न पेटमे भलीभांति नहीं पका भी शीघ्र पच जाताहै, और उसके शरीरमे शिथिलता आदि शीघ्रही प्राप्त नही होती, अकस्मात् वृद्धपन भी आनकर नही सताता शरीरकी स्थूलता (मुटापा) नष्ट करनेका इससे उत्तम और कोई उपाय नही है। यह व्यायाम बलवान् मनुष्योको और स्निग्ध (चिकने) पदार्थ खानेवालेको सर्वदा लाभकारी है। वसत ऋतुमे तथा शीतकालमें यह अत्यत हितकारी है और दूसरी ऋतुओंमे भी अपने बलानुसार बलार्द्ध पर्यन्त करै। (जब हृदयमे रहनेवाली वायु शीघ्रमुखमे आनेलगै और मुख सूखनेलगै, तब बलार्ध समझना) अर्थात् बलार्ध होनेपर व्यायाम करना छोडदे। अथवा जब कपालमे, नाकमे, शरीरकी सधियोमे और कोखमे पसीना आजावै तब बलार्द्ध समझना। अर्थात् बलार्द्धमे व्यायाम न करै। खॉसी, श्वास, क्षय, रक्त तथा पित्तरोगी, दुर्बल, क्षती, शोषी, भोजन करनेके पश्चात् और संभोग करनेके पश्चात् कभी कसरत नही करै। बहुत कसरत करनेसे खॉसी, श्वास, ज्वर, वमन, श्रम, इन्द्रियोंमें ग्लानि, तृषा, क्षय, प्रतमक श्वास और रक्तपित्तादि उत्पन्न होते हैं, इसलिये मध्यम रीतिसे व्यायाम करै ॥ ५७–६४ ॥

अथाभ्यंगगुणाः।

अभ्यंगं कारयेन्नित्यं सर्वेष्वंगेषु पुष्टिदम्॥ शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ॥६५॥ सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् ॥ अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥ ६६ ॥

गन्धतैलं गन्धद्रव्याणाम् अगुर्वादीनाम् अग्नियोगेन निष्कासितः स्नेहः ॥

अभ्यंगो वातकफहृच्छ्रमशान्तिबलं सुखम्॥ निद्रावर्णमृदुत्वायुष्कुरुते देहपुष्टिकृत् ॥ ॥ ६७ ॥ अभ्यंगः शीलितो मूर्ध्नि सकलेन्द्रियतर्पकः ॥ दृष्टिपुष्टिकरो हन्ति शिरोभूमिगतान्गदान् ॥ ६८ ॥ केशानां बहुतां दार्ढ्यं मृदुतां दीर्घतां तथा॥कृष्णतां कुरुते कुर्याच्छिरसः पूर्णतामपि॥ ॥६९॥ न कर्णरोगा न मलं न च मन्याहनुग्रहः॥नोच्चैःश्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णपूरणात् ॥ ७० ॥ रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते ॥ तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ ७१ ॥ पादाभ्यंगश्च तत्स्थैर्यनिद्रादृष्टिप्रसादकृत् ॥ पादसुप्तिश्रमस्तम्भसंकोचस्फुटनप्रणुत्७२॥ व्यायामक्षुण्णवपुषं पद्भ्यां संमर्दितं तथा॥ व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगाः ॥ ७३ ॥ लोमकूपं शिराजालं धमनीभिः कलेवरे॥तर्पयेद्बलमाधत्ते स्नेहयुक्तोऽवगाहने॥७४॥ अद्भिः संसिक्तमूलानां तरूणां पल्लवादयः ॥ वर्द्धन्ते हि तथा नृणां स्नेहसंसिक्तधातवः ॥ ७५ ॥ नवज्वरी अजीर्णी च नाभ्यक्तव्यः कथञ्चन ॥ तथा विरक्तो वान्तश्च निरूढो यश्च मानवः॥७६॥

निरूढः दत्तो निरूहवस्तिः यस्मै सः ॥

पूर्वयोः कृच्छ्रताव्याधेरसाध्यत्वमथापि वा॥शेषाणां च विह प्रोक्ता वह्निसादादयो गदाः ॥ ७७ ॥

पूर्वयोः तरुणज्वरिणोऽजीर्णिनश्च ॥

सम्पूर्ण अगोंमे नित्य तैल, तेलका लगाना पुष्टिकारक हैं। किंतु विशेष करके शिरमें, कानोमे और पॉवोमे तेलकी मालिश करै। सरसोंका तेल अग्निके सयोगसे अगर आदि सुगधित पदार्थोंका निकाला हुआ तेल, चंपा, चँवेली, वेला, जुही, मोतिया आदि पुष्पोंसे सुवासित किया तेल और अन्य द्रव्योसे मिलाकर बनाया हुआ

सुगंधित तेल सर्वदा हितकारी है । अभ्यग करनेसे वात तथा कफ और थकावट दूर होतीहै, तथा सुख और बलकी प्राप्ति होतीहै, निद्रा भले प्रकार आतीहै, शरीरका चर्ण सुन्दर होजाताहै । शिरमें मला हुआ तेल सम्पूर्ण इन्द्रियोको तृप्त करताहै, दृष्टिको बल देताहै, और शिरकी त्वचाके रोगोंको दूर करताहै, तथा शिरमे कोमलता आतीहै, आयुकी वृद्धि तथा देहकी पुष्टि होतीहै । केशोमे तेल लगानेसे केश बढतेहैं, लंबे, नरम, दृढ और काले होतेहैं, तथा शिरमे भरे रहतेहैं । नित्य कानमे तेल डालनेसे--कानमे रोग और मैल नही होता, तथा गरदन और हनुग्रहरोग, ऊँचा सुनना और बहरापन भी नही होता । कानमे रस आदि पदार्थ डालने होय तौ भोजनके पहिले डाले और तेल आदि सूर्यके अस्त होनेपर डाले । पाँवोंमे तेल मलना पाँवोकी स्थिरता करताहै, निद्रा और दृष्टिको प्रसन्न रखताहै । पाँवोंका सोना (शून्य होजाना) परिश्रम, स्तम्भ, सकोच और फटना ये सब रोग नही होते । कसरतका अभ्यास करनेसे श्रम युक्त और पाँवोंमे तेलकी मालिश करनेवाले मनुष्योके पास रोग नहीं आते, जैसे गरुडके समीप सर्प नही आतेहैं । स्नानके समय तेलका उपयोग किया हुआ रोमकूप, शिराओके समूह और धमनियोके द्वारा सम्पूर्ण शरीरको तृप्त करैहै और अत्यन्त बलदायक है । जिस प्रकार वृक्षकी जडको जलसे सींचनेसे पत्रादिककी वृद्धि होतीहै उसीप्रकार मनुष्योंके शरीरको तेलके द्वारा सींचनेसे (मलनेसे) धातुओंकी वृद्धि होतीहै । नवीन ज्वरवाला, अजीर्णयुक्त, जिसने जुलाब लियाहो, वमन करनेवाला और जिसने निरूह वस्ति करी हो उनको कदापि तेल मलना नही चाहिये । नवीन ज्वरवालेको तथा अजीर्ण रोगीको तेल मलनेसे रोग कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य होजाताहै और वमन विरेचनादिवालेको तेल मलनेसे मन्दाग्नि आदि रोग होजातेहैं ॥ ६५—७७ ॥

अथोद्वर्तनगुणाः ।

उद्वर्तनं कफहरं मेदोघ्नं शुक्रदं परम्॥बल्यं शोणितकृच्चापि त्वक्प्रसादमृदुत्वकृत् ॥ ॥ ७८ ॥ मुखलेपाद्दृढं चक्षुः पीनो गण्डस्तथाऽऽननम् ॥ कान्तमव्यंगपिडकं भवेत्कमलसन्निभम् ॥ ७९ ॥

मैलके दूर करनेके लिये शरीरमे उबटन मलनेसे कफ और मेदा नष्ट होतीहै, वीर्यकी वृद्धि तथा बलकी प्राप्ति होतीहै, रुधिर यथावत् होताहै और त्वचा स्वच्छ तथा कोमल होतीहैं । मुखपर उबटन मलनेसे नेत्र दृढ होतेहैं, कपोल पुष्ट होतेहैं, मोहासे और झाई नहीं होतीं, हुई होयँ तौ नष्ट होजातीहैं, और मुख कमलके समान शोभायमान होताहै ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ स्नानविधिः ।

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमोजोबलप्रदम्॥ कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मनुत् ॥ ॥८०॥ बाह्यैश्च सेकैः शीताद्यैरुष्मान्तर्याति पीडितः॥नरस्य स्नातमात्रस्य दीप्यते तेन पावकः ॥ ८१ ॥ शीतेन पयसा स्नानं रक्तपित्तप्रशान्तिकृत् ॥ तदेवोष्णेन तोयेन बल्यं वातकफापहम् ॥ ८२ ॥ शिरःस्नानमचक्षुष्यमत्युष्णेनाम्बुना सदा॥ वातश्लेष्मप्रकोपे तु हितं तच्च प्रकीर्तितम् ॥ ८३ ॥ अशीतेनाम्भसा स्नानं पयःपानं नवाः स्त्रियः॥ एतद्वो मानवाः पथ्यं स्निग्धमल्पं च भोजनम् ॥ ८४ ॥

हरिश्चन्द्रस्य एतत् ॥

यः सदामलकैः स्नानं करोति स विनिश्चितम् ॥ वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं नरः ॥८५॥ स्नानं ज्वरेऽतिसारे च नेत्रकर्णानिलार्तिषु ॥ आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥८६॥ स्नानस्यानन्तरं सम्यग्वस्त्रेणांगस्य मार्जनम् ॥ कान्तिप्रदं शरीरस्य कण्डूत्वग्दोषनाशनम्॥८७॥

(स्नान करना--अग्निको दीपन करनेवाला, शक्ति, आयु और ओजको बढानेवाला, उत्साह तथा बलको देनेवाला है, और खुजली, मैल, परिश्रम, पसीना, आलस्य, तृषा, दाह तथा पाप, इनको दूर करताहै । शीतल जलादिकोंके सींचनेसे शरीरके बाहरकी गरमी पीडित होकर भीतर जातीहै तब मनुष्यकी जठराग्नि प्रबल होजातीहै । इससेही स्नान करते ही भूख लगतीहै । शीतल जलसे स्नान करनेसे रक्तपित्त दूर होताहै ।उष्ण जलके द्वारा स्नान करनेसे

बल बढताहै, वात तथा कफका नाश होताहै । शिरसे अत्यन्त उष्ण जलसे स्नान करना सदा नेत्रोंको अहितकारी है, परन्तु वात और कफका प्रकोप होय तौ हितकारी है। हरिश्चन्द्र कहतेहैं कि, उष्णजलसे स्नान, दुग्ध पीना, युवा स्त्रीसे संभोग और स्निग्ध (घृतादि युक्त) अल्प भोजन ये सर्वदा लोगोंको हितकारी हैं। जो मनुष्य सर्वदा देहमें आमलोंको मलकर स्नान करतेहैं वे वलीपलित न होकर सौ वर्ष पर्यन्त जीते हैं। ज्वर, अतीसार, नेत्र, कानके दर्दवाला, वातरोगी, जिसको पेट अफरा होय, पीनसरोग युक्त और अजीर्णरोगवाला इन सबको स्नान करना नहीं चाहिये। भोजनके पश्चात् भी स्नान ठीक नहीं है। स्नान करनेके अनन्तर वस्त्रसे अंगको खूब पोंछडालना चाहिये, इससे कांति बढती है, खुजली और त्वचाके दोष दूर होतेहैं ॥ ८०-८७ ॥

अथ वस्त्रधारणगुणाः।

कौशेयौर्णिकवस्त्रं च रक्तवस्त्रं तथैव च ॥ वातश्लेष्महरं तत्तु शीतकाले विधारयेत् ॥ ८८ ॥

कौशेयं पट्टाम्बरं तसरवस्त्रं च ॥

मेध्यं सुशीतं पित्तघ्नं कषायं वस्त्रमुच्यते ॥ तद्धारयेदुष्णकाले तत्रापि लघु शस्यते ८९

कषायं कौङ्कमी इति लोके कषायरागरक्तं वा ॥

शुक्लं तु शुभदं वस्त्रं शीतातपनिवारणम्॥ न चोष्णं न च वा शीतं तत्तु वर्षासु धारयेत् ॥ ९० ॥ यशस्यं काम्यमायुष्यं श्रीमदानन्दवर्धनम् ॥ त्वच्यं वशीकरं रुच्यं नवनिर्मलमम्बरम् ॥ ९१ ॥

काम्यं कामोद्दीपकम् ॥

कदापि न जनैः सद्भिर्धार्यं मलिनमम्बरम् ॥ तत्तु कण्डूकृमिकरं ग्लान्यलक्ष्मीकरं परम् ॥ ९२ ॥

अलक्ष्मीः अशोभा दारिद्र्यं च ॥

रेशमीवस्त्र (पीतांबर, टसर), ऊनीवस्त्र और रक्तवस्त्र वात तथा कफको हरनेवाले हैं, इस कारण शीतकालमें ऐसे वस्त्र धारण करै। जोगिया रंगसे रँगे हुए वस्त्र पवित्र, शीतल और पित्तको हरनेवाले हैं इसलिये उनको गरमियोंमे धारण करै. इनमे भी महीन और हलके वस्त्र श्रेष्ठ हैं। सुपेद वस्त्र शुभदायक, शीत और धूपनिवारक है। जो न गरम हैं न शीतल हैं ऐसे वस्त्र वर्षा कालमें धारण करै। निर्मल और नवीन वस्त्र कीर्त्तिको देनेवाले हैं, कामको प्रदीप्त करें हैं,आयुको बढावें है,शोभायुक्त करें हैं; आनंद करता, त्वचाको हितकारी, वशीकरण तथा रुचिको उत्पन्न करनेवाले हैं। श्रेष्ठ मनुष्य कभी मैले वस्त्र नहीं पहरें, क्योंकि-मैले वस्त्रोंसे शरीरमे खुजली होतीहै, जुयें इत्यादि जीव उत्पन्न होतेहैं और ग्लानि, अशोभा और दरिद्रता प्राप्त होतीहै ॥ ८८-९२ ॥

अथ प्रलेपगुणाः।

कुंकुमं चन्दनं चापि कृष्णागुरु च मिश्रितम् ॥ उष्णं वातकफध्वंसि शीतकाले तदिष्यते ॥ ९३ ॥ चन्दनं घनसारेण बालकेन च मिश्रितम् ॥ सुगन्धि परमं शीतमुष्णकाले प्रशस्यते ॥ ९४ ॥

घनसारः कर्पूरः बालं ह्रीवेरम् ॥

चन्दनं घुसृणोपेतं मृगनाभिसमायुतम् ॥ न चोष्णं न च वा शीतं वर्षाकाले तदिष्यते ॥ ९५ ॥

घुसृणं कुंकुमम् । मृगनाभिः कस्तूरी ॥

अनुलेपस्तृषामूर्च्छादुर्गन्धस्वेददाहजित् ॥ सौभाग्यतेजस्त्वग्वर्णप्रीत्यौजोबलवर्धनः॥ न स्नानानर्हलोकानामनुलेपोऽपि नो हितः ॥ ९६ ॥

शीतकालमें केशर, चन्दन और काली अगर इन तीनोंको मिलाकर लेप करै, क्योंकि ये गरम हैं, तथा वात और कफको मेटनेवाली हैं। गरमियोंमें चंदन, कपूर और सुगंधवाला इनको मिलाकर लेप करै, क्योंकि, ये सुगंधित हैं और अत्यंत शीतल हैं। वर्षाकालमें चंदन, केशर, और कस्तूरीको मिलाकर लेप करै, क्योंकि, यह लेप गरम नहीं और शीतल भी नहीं. लेपन करनेसे तृषा, मूर्च्छा, दुर्गन्ध, पसीना और दाह दूर होताहै और भाग्यशालीपना, तेजस्वीपना, त्वचाका वर्ण, प्रीति, उत्साह तथा बल बढताहै। जिन मनुष्योंको स्नान अहितकारी है उनके लिये लेपभी हितकारी नहीं है ॥ ९३-९६ ॥

पुष्पाभरणादिधारणगुणाः ।

सुगन्धिपुष्पपत्राणां धारणं कान्तिकारकम् ॥ पापरक्षोग्रहहरं कामदं श्रीविवर्द्धनम् ॥ ९७ ॥ भूषणैर्भूषयेदङ्गं यथायोग्यं विधानतः ॥ शुचिसौभाग्यसन्तोषदायकं काञ्चनं स्मृतम् ॥९८॥ ग्रहदृष्टिहरं पुष्टिकरं दुःस्वप्ननाशनम् ॥ पापदौर्भाग्यशमनं रत्नाभरणधारणम् ॥ ९९ ॥ माणिक्यं तरणेः सुजातममलं मुक्ताफलं शीतगोर्माहेयस्य च विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम् ॥ देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शनेर्नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेदवैदूर्यके ॥१००॥वासःशृंगाररत्नानां धारणं प्रीतिवर्धनम्॥ रक्षोघ्नमर्थ्यमोजस्यं सौभाग्यकरमुत्तमम् १०१॥ सततं सिद्धमन्त्रस्य महौषध्यास्तथैव च ॥ रोचनासर्षपादीनां मांगल्यानां च धारणम् ॥ १०२ ॥ आयुर्लक्ष्मीकरं रक्षोहरं मंगलदं शुभम् ॥ हिंस्रादिभयविध्वंसि वशीकरणकारणम ॥ १०३ ॥

सुगंधित पुष्प और पत्तोंको धारण करनेसे कांति बढतीहै, पाप दूर होताहै,राक्षस और ग्रह आदिकी पीडा दूर होतीहै, काम प्रदीप्त होताहै और लक्ष्मी बढती है।यथा योग्य विधिसे शरीरको भूषणों (गहनो) से विभूषित करै । स्वर्णके अलङ्कार परम पवित्र है, सौभाग्यता और सन्तोषदायक हैं। रत्नजटित आभूषणोंका धारण करना ग्रहोंकी पीडा तथा दुष्टदृष्टि और दुःस्वप्नोंका नाश करनेवाला है। पाप तथा दुर्भाग्यताको शमन करताहै, उत्तमजातिका और निर्मल माणिक्य धारण करनेसे सूर्यकी पीडा, मोती धारण करनेसे चन्द्रमाकी पीडा, मूँगेके धारण करनेसे मंगलकी पीडा, पन्नेके धारण करनेसे बुधकी पीडा, पुखराजके धारण करनेसे बृहस्पतिकी पीडा, हीरा धारण करनेसे शुक्रकी पीडा, नीलम धारणसे शनिकी पीडा गोमेदके धारण करनेसे राहुकी पीडा, और लहसुनियेके धारण करनेसे केतुकी पीडा दूर होतीहै । वस्त्र सुगंध, माला, और रत्नोंके धारण करनेसे प्रीति बढतीहै, राक्षस बाधा दूर होतीहै, धन, ओज (सामर्थ्य) और सौभाग्य इनकी वृद्धि होती है । सिद्ध मंत्र, ब्राह्मी आदि महा औषधियें और गोरोचन तथा सुफेद सरसों आदिका मांगलिक पदार्थोका धारण करनेसे आयु बढती है, लक्ष्मी मिलती है, राक्षसादिकोंका भय दूर होताहै, मंगल तथा शुभकारक है सिंहादि हिंसक जीवोंके भयको दूर करै है और वशीकरणकर्त्ता है ॥ ९७–१०३ ॥

अथ भोजनविधिः ।

ततो भोजनवेलायां कुर्यान्मांगल्यदर्शनम्॥ तस्य प्रदर्शनं नित्यमायुर्धर्मविवर्धनम् ॥ ॥१०४॥लोकेऽस्मिन्मंगलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ॥ पुष्पस्रक्सर्पिरादित्य आपो राजा तथाऽष्टमः ॥१०५॥ पादुकाधारणं कुर्यात्पूर्वं भोजनतः परम् ॥ पादरोगहरं वृष्यं चक्षुष्यं चायुषो हितम्॥१०६॥

पश्चात् भोजनका समय होय तब मांगलिक पदार्थोका दर्शन करै, (संसारमें ब्राह्मण, गौ, अग्नि, पुष्पोंकी माला, घृत, सूर्य, जल और राजा, ये आठ मांगलिक हैं) इनका दर्शन करनेसे नित्य आयु और धर्मकी वृद्धि होती है। भोजनसे प्रथम अथवा भोजनसे पीछे पादुका (खडाऊँ) धारण करे; क्योंकि, इनसे पाँवोंके रोग दूर होतेहैं, शक्ति प्राप्त होतीहै, नेत्रोंको हितकारी है और आयुको बढानेवाले है ॥ १०४–१०६ ॥

क्षुत्तृडाद्यवरोधे हानिः ।

शरीरे जायते नित्यं वाञ्छा नृणां चतुर्विधा ॥ बुभुक्षा च पिपासा च सुषुप्सा च रतिस्पृहा ॥ १०७ ॥ भोजनेच्छाविघातात्स्यादंगमर्दोऽरुचिः श्रमः॥ तन्द्रालोचनदौर्बल्यं धातुदाहो बलक्षयः ॥ १०८ ॥ विघातेन पिपासायाः शोषः कण्ठास्ययोर्भवेत् ॥ श्रवणस्यावरोधश्च रक्तशोषो हृदिव्यथा॥१०९॥निद्राविघाततो जृम्भा शिरोलोचनगौरवम् ॥ अंगमर्दस्तथा तन्द्रा स्यादन्नापाक एव च ॥११०॥ बुभुक्षितो न यो-

श्वाति तस्याहारेन्धनक्षयात् ॥ मन्दीभवति कायाग्निर्यथा चाग्निर्निरिन्धनः ॥ १११ ॥ आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जितः॥ पचति दोषक्षये धातून्प्राणान्धातुक्षयेऽपि च ॥ ११२ ॥ आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारणः ॥ स्मृत्यायुःशक्तिवर्णौजःसत्त्वशोभाविवर्धनः ॥ ११३ ॥ यथोक्तगुण सम्पन्नं नरः सेवेत भोजनम् ॥ विचार्य्य दोषकालादीन्कालयोरुभयोरपि ॥ ११४ ॥

उभयोः कालयोः प्रातः सायं च ॥

तथाच–सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम् ॥ नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ ११५ ॥

प्रातः–प्रथमयामादुपरि द्वितीययामादर्वाक् ॥ तथा च ।

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत् ॥ याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः ११६ अन्यच्च–क्षुत्सम्भवति पक्केषु रसदोषमलेषु च ॥ काले वा यदि वाऽकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ ११७ ॥

मनुष्योंके शरीरमें भोजन करनेकी, पानी पीनेकी, सोनेकी और स्त्रीसे संभोग करनेकी इच्छा नित्य उत्पन्न होतीहै। उनमे भोजनकी इच्छा रोकनेसे शरीर टूटने लगताहै, अरुचि उत्पन्न होतीहै, श्रम होताहै, तंद्रा होती है. नेत्र निर्बल होतेहैं, धातुओंमे दाह और बलका क्षय होताहै। तृषा लगनेपर पानी नही पीनेसे कंठ और मुख सूख जाताहै, कान बंद होजातेहैं, रक्त सूखने लगताहै, और हृदयमे पीडा होतीहै। निद्राको रोकनेसे जम्भाई आने लगतीहैं, शिर तथा नेत्र भारी होजातेहैं, शरीर टूटने लगताहै, आलस्य उत्पन्न होताहै और खाया हुआ अन्न पचता नहीहै। जो मनुष्य भूँख लगनेपर नहीं खाते, उनके शरीरकी जठराग्नि मन्द होजातीहै जैसे लौकिक आग, विना ईंधनके बुझजाती है। शरीरकी अग्नि खाये हुए आहारको पकाती है, आहार नही मिलनेसे वात, पित्त तथा कफको पकातीहै, दोषोंके क्षय होनेपर धातुओंको पचातीहै और धातुओंका क्षय होनेपर प्राणोंको पचातीहै अर्थात् प्राणोंका नाश करतीहै। आहारसे तत्काल देहका पोषण होताहै बलकी वृद्धि होती है तथा स्मृति, आयु, शक्ति, शरीरका वर्ण, उत्साह, धैर्य तथा शोभा इनकी वृद्धि होतीहै। मनुष्योंको दोष और काल आदिका विचारकर प्रातःकाल और सध्या समय वैद्यक शास्त्रके कथनानुसार जिसमें गुण होय ऐसा अन्न खाना उचित है। (सध्या और सवेरे इन दोनों समय भोजन करनेकी शास्त्रकी आज्ञा है, इसकारण इन दोनों समयके मध्यमे नही खाना चाहिये, क्योंकि–यह क्रम अग्निहोत्रके समान है) प्रातःकाल भोजन करना अर्थात् पहिले प्रहरके पश्चात् और दूसरे प्रहरकेभीतर भोजन करै क्योंकि, यह कहाहै कि–प्रथम पहरके भीतर भोजन नही करै और दो प्रहरके बादभी न करे किन्तु दोपहरके भीतरही खालेवे, प्रथम प्रहरमें भोजन नही करनेसे रसकी उत्पत्ति होतीहै, और दूसरे प्रहर बाद भोजन नही करनेसे बलका क्षय होताहै। परन्तु ऐसा भी कहाहै कि–रस दोष और मलके पकजानेपर भूँख लगती है इसलिये समय हुआ होय अथवा न हुआ होय (जब भूँख लगे तबही भोजनका समय है) ऐसा जानना ॥ १०७–११७ ॥

अथ रसादीनां पाकज्ञानमाह ।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः॥ लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ ११८ ॥

शुद्ध डकारका आना, उत्साह होना, वायु आदिके वेगका यथार्थ रीतिसे परित्याग, शरीरमें हलकापन, भूँख और तृषा लगै तब जानना चाहिये कि–आहार पचगया ॥ ११८ ॥

अथ स्थानमाह ।

आहारं तु रहः कुर्यान्निर्हारमपि सर्वदा ॥ उभाभ्यां लक्ष्म्युपेतः स्यात्प्रकाशो हीयते श्रिया ॥ ११९ ॥

निर्हारो मलमूत्रोत्सर्गः ॥

अन्यच्च–आहारनिर्हारविहारयोगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः ॥

मनुष्योंको आहार और मल मूत्रका त्याग सदा ऐसे स्थानमे करना चाहिये, जहाँ कोई अन्य मनुष्य न देखे

होता है, बल बढता है, पुष्टताकी प्राप्ति होती है, उत्साह तथा आयुकी वृद्धि होती है और स्वादरहित अन्न खानेमे उपरोक्त सर्व गुण विपरीत (उलटे) होते हैं। अन्न बहुत उष्ण होय तौ बलका नाश करता है, शीतल होगया होय अथवा सूख गया होय तौ कठिनतासे पचता है और जलादिकसे बहुत गीला होय तो ग्लानि उत्पन्न करता है, इसलिये हमेशा भोजन युक्तिके साथ करै। बहुत शीघ्र खानेसे भोजनके गुण दोष नहीं जाने जाते और बहुत देरसे भोजन किया जाय तौ भोजन शीतल और अहृद्य (हृदयको अप्रिय) होजाता है ॥ १३१-१३९ ॥

गुर्वन्नं त्रिविधं तन्निवारयन्नाह ।

मन्दानलो नरो द्रव्यं मात्रागुरु विवर्जयेत्॥ स्वभावतश्च गुरु यत्तथा संस्कारतो गुरु ॥ ॥१४०॥ मात्रागुरुस्तु मुद्गादिः माषादिः प्रकृतेर्गुरुः ॥ संस्कारगुरु पिष्टान्नं प्रोक्तमित्युपलक्षणम् ॥ १४१ ॥ आहारं षड्विधं चूष्यं पेयं लेह्यं तथैव च ॥ भोज्यं भक्ष्यं तथा चर्व्यं गुरु विद्याद्यथोत्तरम् ॥१४२॥

चूष्यम् इक्षुदाडिमादि, पेयं पानकशर्करोदकादि, लेह्यं रसालाक्वथितादि, क्वथिता 'कढी' इति लोके। भोज्यं भक्तसूपादि, भक्ष्यं लड्डुकं मोदकादि, चर्व्यं चिपिटं चणकादि ॥

स्वभावगुरुसंस्कारगुरुणोः स्वभावलघुनश्च भक्ष्यस्य भोजनपरिमाणमाह ।

गुरूणामर्धसौहित्यं लघूनां तृप्तिरिष्यते ॥

अयमर्थः-माषपिष्टान्नादिभिरर्धसौहित्यं कर्तव्यं मुद्गादिभिः स्वभावादेव लघुभिर्मात्रया तृप्तिः कर्तव्येत्यर्थः ॥

द्रवो द्रवोत्तरश्चापि न मात्रा गुरुरिष्यते ॥ १४३ ॥

द्रवः पेयादिः, द्रवोत्तरः तक्राद्यधिक ओदनादिः। मात्रातोऽधिकोऽपि मात्रागुरुर्न मन्तव्यः, पेयस्य सर्वतो लघुत्वात् ॥

उक्तं च सुश्रुतेन ।

पेयलेह्यादिभक्ष्याणां गुरुर्विद्याद्यथोत्तरम् ॥ १४४ ॥

पेयं पेयादि । लेह्यं रसालादि । आदिशब्दाद्भोज्यमोदनसूपादि । भक्ष्यं मोदकादि ।

द्रवाढ्यमपि शुष्कं तु सम्यगेवोपपच्यते॥

अयमर्थः-शुष्कमपि स्रोतोरोधकमपि द्रवाढ्यं सम्यक्पाकं याति ॥

केवलस्य शुष्कान्नस्य दोषमाह ।

विशुष्कमन्नमित्यादि ।

विशुष्कमन्नमभ्यस्तं न पाकं साधु गच्छति ॥ १४५ ॥

मन्द अग्निवाला मनुष्य मात्रासे भारी, स्वभावसे भारी और संस्कारसे भारी, ऐसे तीनो प्रकारके भारी पदार्थोंको नहीं खाय। मूग आदि पदार्थ मात्रासे अधिक खानेसे भारी होते हैं। उडद आदि पदार्थ स्वभावसे भारी होते हैं। पिसाहुआ अन्न (पिट्ठी आदि) संस्कारसे भारी होता है। ये उपलक्षणमात्र कहे हैं। चूष्य (चूसने योग्य), पेय (पीनेयोग्य), लेह्य (चाटनेयोग्य), भोज्य (भोजन योग्य), भक्ष्य (खाने योग्य), और चर्व्य चाबने योग्य) इस प्रकार छ. प्रकारके आहार हैं. ये क्रमानुसार एकसे एकभारी हैं। ईख और दाडिम (अनार) आदि पदार्थ चूसने योग्य, पानी, दूध और सरबत आदि पीने योग्य, खीर और कढी आदि चाटने योग्य, दाल भात आदि भोजनके योग्य, लड्डू और मडआदि खाने योग्य, और परवल चने आदि चाबने योग्य जानने। उडद और पिसे हुए अन्न आदिसे आधी तृप्ति करनी चाहिए और मूग आदि पदार्थोंसे अथवा जो स्वभावसेही हलके हैं उनसे पूरी तृप्ति करनी चाहिए। पीनेके शरबत आदि द्रवरूप और जिसमें छॉछ आदिरूप पदार्थ अधिक पडे होयँ ऐसे भात आदि पदार्थ मात्रासे अधिक खाने पर भी भारी नहीं होते, क्योंकि, पीनेके पदार्थ सर्व प्रकारसे हलके हैं, सुश्रुत भी कहते हैं कि-"पीनेके, चाटनेके, जीमनेके और भक्षण करनेके पदार्थोंमे उत्तरोत्तर अर्थात् पहिलेसे दूसरेमें, दूसरेसे तीसरेमें, तीसरेसे चौथेमे अधिक गुरुता (भारीपन) है।" दूधआदि पीनेके पदार्थ हैं, खीर आदि चाटनेके पदार्थ हैं, दाल तथा भात आदि जीमनेके पदार्थ हैं, और लड्डू आदि खानेके पदार्थ हैं, ऐसा जानना। जो अन्न शुष्क होनेपरभी अर्थात् शरीरमे रस फिरनेके मार्गोंको रोकनेवाला होनेपरभी उसमे द्रवरूप (पतले) पदार्थ मिलजानेसे वह भले प्रकार पक-

जाता है और केवल सूखा खायाहुआ अन्न भले प्रकार नहीं पचता है ॥ १४०–१४५ ॥

अपक्कं तत्किम्भवतीत्यपेक्षायामाह।

पिण्डीकृतमसंक्लिन्नं विदाहमुपगच्छति १४६

पिण्डीकृतमष्ठीलावद्भूतम्। असंक्लिन्नं न सम्यगार्द्रम्। विदाहमुपगच्छति विदग्धं भवतीत्यर्थः॥

शुष्कादीनां वैगुण्यमाह।

शुष्कं विरुद्धं विष्टम्भि वह्निव्यापदमावहेत् ॥ १४७ ॥

शुष्कं चिपिटकादि, विरुद्धं क्षीरमत्स्यादि, विष्टम्भि चणकमसूरादि, वह्निमांद्यं कुर्यात्॥

द्रवरूप पदार्थोंसे भले प्रकार नही भीजा हुआ शुष्क अन्न भले प्रकार नही पचकर पिंडके सदृश अधपका रहजाता है, चौले आदि शुष्क, दूध मछली आदि विरुद्ध और चने तथा मसूर आदि विष्टम्भि भोजन खानेसे अग्नि मंद होजाती है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

सक्तुभक्षणविधिः।

न भुक्त्वा न रदैश्छित्त्वा न निशायां न वा बहून्॥ न जलान्तरितानद्भिः सक्तूनद्यान्न केवलान्॥ १४८ ॥ पुनर्दानं पृथक्पानं सामिषं पयसा निशि ॥ दंतच्छेदनमुष्णं च सप्त सक्तुषु वर्जयेत्॥ १४९ ॥

सुश्रुतः–सक्तूनामाशु जीर्य्येत मृदुत्वादवलेहिका ॥

भोजन करनेके पश्चात् सत्तू नही खाय. दांतोसे चाबकर, रातमे, अधिकपानीमे घोलकर, दोबार, और विना भोजन केवल इकले सत्तूको न खाय। जिसने सत्तू एकवार खाये होंय उसको दूसरी वार नही देवै, केवल सत्तू अलग न पियै, मांसके साथ न खाय, दूधके साथ भी न खाय, रात्रिमेंभी नही खाय, दांतसे चाबकर और गरम नहीं खाय, सुश्रुत कहताहै कि–"सत्तुओका अवलेहसा बनाकर खाय। क्योंकि अवलेह नरम होनेसे शीघ्र पचजाताहै १४८॥१४९

विषमाशनस्य लक्षणमाह।

आलस्यगौरवाटोपशब्दांश्च कुरुतेऽधिकम्॥ हीनमात्रं तनोः कार्श्यं करोति च बलक्षयम् ॥ १५० ॥

अधिकम् अन्नम् इति यावत्॥

अन्न मात्रासे अधिक खाय तौ आलस्य, भारीपना, पेटका फूलना तथा शब्द (गुडगुड) होना इत्यादि विकार होतेहै और थोडे भोजन करनेसे शरीर दुर्वल होजाताहै और बलका क्षय होताहै ॥ १५० ॥

अकाले भुक्तस्य दोषमाह।

अप्राप्तकाले भुञ्जानो ह्यसमर्थतनुर्नरः॥ तांस्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणं चाधिगच्छति ॥ १५१ ॥

अप्राप्तकाले कालादतिप्राक् भुञ्जानः असमर्थशरीरो भवति। तथा सति तांस्तान् व्याधीन् शिरोव्यथाविषूचिकालसकविलम्बिकादीन् प्राप्नोति। तेषामाधिक्ये मरणमपि प्राप्नोतीत्यर्थः॥

कालेऽतीतेऽश्नतो जन्तोर्वायुनोपहतेऽनले॥ कृच्छ्राद्विपच्यते भुक्तं न स्याद्भोक्तुं पुनः स्पृहा ॥ १५२ ॥

(विनसमय भोजन करनेवाले मनुष्यका शरीर असमर्थ होजाताहै, और उसके असमर्थ होनेसे शिरमे दर्द, विषूचिका, अलसक और विलंबिका आदि रोग उत्पन्न होतेहैं; रोगोकी वृद्धि होनेपर मृत्युभी होजातीहै। जो मनुष्य भोजनके समयको टालकर पीछे भोजन करतेहैं उनकी अग्नि वायुसे नष्ट होजातीहै, खाया हुआ भोजन कठिनतासे पचताहै और फिर दूसरी वार भोजन करनेकी इच्छा भी नही होती)॥ १५१ ॥ १५२ ॥

अथ भोजनप्रमाणम्।

कुक्षेर्भागद्वयं भोज्यैस्तृतीये वारि पूरयेत्॥ वायोः सञ्चारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥ १५३ ॥ रसेनान्नस्य रसना प्रथमेनोपतर्पिता ॥ न तथा स्वादमाप्नोति ततः शोध्याम्बुनान्तरा ॥ १५४ ॥ अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नमनम्बुपानाच्च स एव दोषः ॥ तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥ १५५ ॥ भुक्तस्यादौ जलं पीतं कार्श्यमन्दाग्निदोषकृत् ॥ मध्ये-

ग्निदीपनं श्रेष्ठमंते स्थौल्यकफप्रदम् ॥१५६॥

अन्यच्च-समस्थूलकृशा भुक्तमध्यान्तमथ-
माम्बुपाः ॥ १५७ ॥

इति वाग्भटः । भुक्तं भोजनम् ॥

तृषितस्तु न चाश्नीयात्क्षुधितो न पिबेज्ज-
लम् ॥ तृषितस्तु भवेद्गुल्मी क्षुधितस्तु
जलोदरी ॥ १५८ ॥

ननु शिष्टा भोजनांते दुग्धं पिबंति तत्क-
थमुचितम् । यतस्त्रिधा विभक्तस्य भोजन-
कालस्य प्रथमो भागो वातस्य, द्वितीयः
पित्तस्य, तृतीयः कफस्य ॥

अत एवाह ।

अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं
रसम् ॥ मध्येऽम्ललवणौ पश्चात्कटुतिक्त-
कषायकान् ॥ १५९ ॥

अस्यायमभिप्रायः-भोजनं पूर्वं भुक्तो
मधुरो रसो बुभुक्षितस्य वातपित्तयोः
शमको भवति। भोजनमध्ये भुक्तौ अम्ल-
लवणौ पित्ताशये च वह्निवृद्धिं कुरुतः ।
भोजनान्तसमये भुक्ताः कटुतिक्तकषाय-
रसाः कफं शमयन्तीति । अथ भोजना-
वसानसमयस्य कफकालत्वात् तत्र कथं
श्लेष्मजनकं दुग्धं पातुमुचितं भवति ॥

अत उक्तम् ।

दुग्धं स्वादुरसं स्निग्धमोजस्यं धातुवर्ध-
नम् ॥ वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरु
शीतलम् ॥ १६० ॥ इति ॥

उच्यते-विदाहीन्यन्नपानानि यानि भुंक्ते
हि मानवः ॥ तद्विदाहप्रशांत्यर्थं भोजना-
न्ते पयः पिबेत् ॥ १६१ ॥

तथा च ब्रह्मपुराणे ।

कुर्यात्क्षीरान्तमाहारं न दध्यन्तं कदा-
चन ॥ १६२ ॥ लवणाम्लकटूष्णानि वि-
दाहीन्यत्ति यानि तु ॥ तद्दोषं हर्तुमाहारं
मधुरेण समापयेत् ॥ १६३ ॥

भोजनावसानसमये दुग्धादिमधुरभोज-
नेनैव वर्धितः कफो लवणाम्लकटुभोजनज-
नितपित्तस्य वृद्धिं विनाशयति । पित्तवृद्धि-
विनाशनेन कफस्यापि वृद्धिः क्षीणा भवति ।
क्षीणा कफवृद्धिरग्निमांद्यादीन् व्याधीनुत्पाद-
यितुं न शक्नोति । ननु शत्रोर्नाशनेन शत्रु-
हन्तुर्वृद्धिर्दृश्यते न तु क्षीणता,तत् कथं कफः
क्षीण इति । उच्यते-,बलवच्छत्रुविनाशनेन
शत्रुहन्तुः क्षीणता च दृश्यते ॥ तथा च-

नाशनात्प्रत्यनीकस्य स्वयं च क्षीयते
यथा ॥ वह्निसन्तप्तलोहस्य तप्ततां नाशये-
ज्जलम् ॥ १६४ ॥

ननु भोजनावसानसमये भुक्ताः कटुतिक्त-
कषायाः रसाः कफं शमयिष्यन्ति वात-
स्य वृद्धिं विधास्यन्ति इति चेत्, तन्न कट्वा-
दीनां क्षीणशक्तिकत्वात् ॥ तथा च—

यदेकं नाशयेद्दोषं तदन्यं वर्धयेत्कुतः ॥
नाशने ह्येकदोषस्य यतस्तत्क्षीणशक्ति-
कम् ॥ १६५ ॥

वस्तुतो य एव रसः प्राचुर्येण भुक्तस्तस्यै-
व सर्वे रसा वशा भवन्ति ॥

अत आह सुश्रुतः ।

जग्धाः सर्वेऽपि गच्छन्ति बलिनो वश्यतां
रसाः॥ यथा प्रकुपिता दोषा वशं यान्ति
बलीयसः ॥ १६६ ॥

बलिनः रसस्य । बलीयसः दोषस्य ॥

पेटके दो भागोको अन्नसे भरै, तीसरा भाग जलसे भरै, और चौथा भाग वायुके चलने फिरनेके लिये खाली रहने देवै । अन्नके रससे प्रथम जीभ तृप्त होनेपर दूसरे पदार्थ-के स्वादको नही जानतीहै इसलिये (बीच बीचमे थोडा २ पानी पीकर जीभको साफ कर लेना चाहिये) (अधिक जल पीनेसे अन्न ठीक नही पचताहै, और बिलकुल जलके न पीनेसे भी यही दोष होता है (अन्न नहीं पचता) इसलिये मनुष्योंको अग्नि बढानेके लिये वारवार थोडा २ पानी पीना चाहिये) (भोजन करनेसे प्रथम जल पिये तो अग्नि मद होजाती है और शरीर दुर्बल होजाताहै । भोजनके मध्यमे पानी पीनेसे अग्नि दीपन होतीहै, भोजनके अन्तमें पानी

पीनेसे शरीर मोटा होताहै, और कफकी वृद्धि होतीहै. इसकारण बार बार बीच बीचमे पानी पीना श्रेष्ठ है)। वाग्भट भी कहता है कि—"भोजनके बीच बीचमें पानी पीनेसे शरीर समान स्थितिमें रहताहै, भोजनके पीछे पानी पीनेसे शरीर स्थूल (मोटा) होजाताहै और भोजनके पहले पानी पीनेसे शरीर दुर्बल होताहै"।(तृषित (प्यासा) भोजन नहीं करै और भूखा पानी नही पीवे। जिसको तृषा लगी होय वह तृषाको शान्त किये विना भोजन करै तौ गुल्म (वाय गोलेका) रोग होताहै और जिसको भूँख लगी होय वह भूँखको शान्त किये विना पानी पीवे तो जलोदर रोग होजाताहै ॥)

शका—शिष्ट पुरुष जो भोजनके अतमे दूध पीतेहैं वे क्यो पीतेहैं ? क्योकि भोजनसमयके तीन भाग करेहै, उनमे पहिला भाग वायुका है, दूसरा पित्तका है, और तीसरा भाग कफका है, इसलिये कहाहै कि—"एकाग्र चित्त होकर प्रथम मधुर रस, बीचमे खट्टा, तथा खारी रस और अन्तमे कटु (तीखा), कडवा और कसैला रस भक्षण करै" इस कहनेका यह अभिप्राय है कि "भोजनमे प्रथम मधुररस भक्षण करै" तौ भूँखे मनुष्यकी वायु और पित्तकी शांति होतीहै, बीचमे खट्टा और खारीरस खानेसे पित्ताशयमे अग्निकी वृद्धि होतीहै, और भोजनके अन्तमे कटु, कडवा तथा कसैला रस खाय तौ कफकी शान्ति होती है" इस प्रकार भोजनके अन्तका काल कफका है तौ उसमें कफका उत्पन्न करनेवाला दूध पीना कैसे योग्य हो सक्ताहै ? शास्त्रोंमें दूधके गुण ऐसे लिखेहैं कि "दूध स्वादुरसान्वित, स्निग्ध, सामर्थ्यवान्, धातुवर्द्धक, वायु तथा पित्तहारी, वीर्यवर्धक, कफकारी, भारी और शीतल है" । समाधान—मनुष्य नित्यप्रति दाहकारक जो जो अन्न और पान भक्षण करताहै उन उन अन्न पानोसे होनेवाली दाहकी शान्ति करनेके लिये मनुष्यको भोजनके अंतमें दूध पीना चाहिये। ऐसाही ब्रह्मपुराणमें भी कहाहै कि—(जिसके अतमें दूध पीनेको मिले ऐसा भोजन करै, और जिसके अतमें दही खायाजाय ऐसा भोजन कभी नही करै) खारी, खट्टा, चरपरा, गरम और अत्यन्त दाहकारक पदार्थोंके दोषोको दूर करनेके लिये मधुर पदार्थ खाकर भोजन पूर्ण करै। भोजनके अन्तमे दूध आदि मधुर भोजनसे बढाहुआ कफ खट्टे, खारी, और चरपरे भोजनसे उत्पन्न हुए पित्तकी वृद्धिको दूर करताहै, पित्तकी वृद्धि दूर होनेसे कफकी वृद्धि भी क्षीण होजाती है और क्षीण हुई कफकी वृद्धि अग्नि मन्द आदि रोगोंको उत्पन्न नही करसक्ती। शंका-शत्रुके नाश करनेसे उस शत्रुनाशककी वृद्धि देखनेमे आतीहै परन्तु क्षीणता देखनेमे नही आती तौ उपरोक्त प्रमाणसे अर्थात् पित्तका नाश करनेसे उसके शत्रु कफकी वृद्धि होनी चाहिये, बल्कि, क्षीणता नहीं होनी चाहिये। ऐसा होनेपर फिर कफकी क्षीणता होना ऊपर कैसे कहीहै ? समाधान--बलवान् शत्रुका नाश करनेसे नाश करनेवालेकी भी क्षीणता हुई देखनेमें आतीहै। जैसे जल जब अग्निसे तपेहुए लोहेकी तप्तता नष्ट करताहै तब वहभी क्षीण होजाताहै, ऐसेही जो अधिक बलवान् शत्रुको नष्ट करताहै तौ वह आपभी अधिक क्षीण होजाताहै। भोजनके अन्तमें खाया हुआ चरपरा, कडुआ और कसैला रस कफको शमन करताहै, परन्तु बातकी वृद्धि करेगा. यह शका होनेपर कहतेहैं कि—तीक्ष्णादि रसकी शक्ति कफको शान्त करके आपही नष्ट हो जाती है अर्थात् वायुको नही बढा सक्ती। जो पदार्थ एक दोषका नाश करे है वह दूसरे दोषोको किस प्रकार बढा सक्ता है ? अर्थात् नही बढा सक्ता; क्योंकि, उसकी शक्ति एक दोषके नाश करनेमे ही क्षीण हो जाती है। वास्तवमें तौ यह है कि (जो रस अधिक खाया होय उसीके अधीन सब रस रहतेहैं, क्योकि "जिस प्रकार कुपित हुए दोषके सब दोष अधीन होजातेहैं उसी प्रकार खाये हुए सम्पूर्ण रस बलवान् रसके अधीन होजाते हैं" ऐसा सुश्रुतमे कहा है)॥ १५३–१६६ ॥

एवं भुक्त्वा समाचामेच्चूषग्रहणपूर्वकम् ॥ भोजने दन्तलग्नानि निर्हृत्याचमनं चरेत् ॥१६७॥ दन्तान्तरगतं चान्नं शोधनेनाहरेच्छनैः॥कुर्य्यादनिर्हृतं तद्धि मुखस्यानिष्टगन्धताम् ॥ १६८ ॥ दन्तलग्नमनिर्हार्य लेपं मन्येत दन्तवत् ॥ न तत्र बहुशः कुर्याद्यत्नं निर्हरणं प्रति ॥ १६९ ॥ आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषी स्पृशेत् ॥ भुक्त्वा च संस्मरेन्नित्यमगस्त्यादीन्सुखावहान् ॥ १७० ॥ विष्णुरात्मा तथैवान्नं परिणामश्च वै यथा ॥ सत्येन तेन मद्भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा ॥ १७१॥ अगस्तिरग्निर्वडवानलश्च भुक्तं ममान्नं जरयन्त्वशेषम् ॥ सुखं च मे तत्परिणामसम्भवं यच्छन्त्वरोगं मम चास्तु देहम् ॥१७२॥

अंगारकमगस्तिं च पावकं सूर्यमश्विनौ ॥ पञ्चैतान्संस्मरेन्नित्यं भुक्तं तस्याशु जीर्य्यति ॥ १७३ ॥ इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमाज्य तथोदरम् ॥ अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः ॥ १७४ ॥

अतन्द्रितः निरन्तरं जाग्रत् तिष्ठेत् न तु स्वप्यात् । "भुक्तमात्रस्य तु स्वमाद्धन्त्यग्निं पितः कफः" ॥ इति वचनात् ॥

जीर्णेऽन्ने वर्धते वायुर्विदग्धे पित्तमेधते ॥ भुक्तमात्रे कफश्चापि क्रमोऽयं भोजनोपरि ॥ १७५ ॥

विदग्धे किञ्चित्पक्के किञ्चिदपक्के ॥

भुक्तमात्रेसञ्जातस्यकफस्यप्रतीकारमाह ।

धूमेनापोह्य हृद्यैर्वा कषायकटुतिक्तकैः ॥ पूगैः कर्पूरकस्तूरीलवंगसुमनःफलैः ॥ ॥ १७६ ॥ फलैः कटुकषायैर्वा मुखवैशद्यकारिभिः ॥ ताम्बूलपत्रसहितैः सुगन्धैर्वा विचक्षणः ॥ १७७ ॥

धूमेन अगुर्वादिधूमेन अपोह्य कफं दूरीकृत्य कषायकटुतिक्तकैः फलैः कर्पूरकस्तूरीलवंगादिभिः । पूगैः क्रमुकैः । सुमनःफलैः जातीफलैः एलाहरीतक्यादिफलैः ॥

भोजनके पश्चात् रुक्ष (नमकीन) पदार्थादिकोंसे मुख शुद्ध करके आचमन करे। भोजनके समय दांतोंमें जो कुछ अन्न लगा रह गया हो तो उसको निकालनेके पश्चात् फिर आचमन करे और दाँतोंके अन्तरगत जो अन्न प्रविष्ट हो उसको सुवर्ण वा चाँदी पीतलकी शलाका अथवा तुनका आदिसे धीरे धीरे निकाले। जो निकालनेमें न आवे तौ उससे मुखमें दुर्गन्ध आनेलगतीहै, जो कुछ मैल दाँतोंमें लगा रह जाय बाहर निकलनेके योग्य न होय तौ उसको दाँतही समझे, अर्थात् उसको निकालनेमें अत्यन्त प्रयत्न न करे। आचमन करनेके पश्चात् दोनों भीजे हाथोंसे आँखोंका स्पर्श करे. यह स्पर्श करना नेत्रोंके अन्धकारको बहुत शीघ्र दूर करना है। भोजनके पश्चात् नित्य सुख प्राप्त होनेके लिये अगस्त्य आदिका स्मरण इसप्रकारसे करे कि "आत्मा अन्न और अन्नका परिणाम विष्णुही हैं," तौ इस सत्यके प्रभावसे मैंने जो अन्न खायाहै वह पच जाओ। अगस्त्य, अग्नि और बडवानल ये मेरे खाये हुए अन्नको पचाओ, और अन्नके परिणामसे हुआ सुख मुझे दो, तथा मेरा शरीर रोगरहित रक्खो। मंगलग्रह, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य और अश्विनीकुमार इन पाँचोंका जो मनुष्य नित्य स्मरण करता है उस मनुष्यका खाया हुआ अन्न शीघ्र पच जाता है, इस प्रकार कहता हुआ अपने हाथको पेटपर फेरे. पश्चात् जिसमें परिश्रम नहीं होय ऐसे कार्य करे परन्तु सोवे नहीं। "भोजन करतेही सो रहनेसे कफ कुपित होकर अग्निको नाश करता है" ऐसा शास्त्रका वचन है, इस लिये भोजन करनेके पश्चात् जागते रहना चाहिये। (अन्नके पचनेपर वायु बढती है, अधपका (कुछपका कुछ न पका होनेपर पित्त बढता है।) और भोजन करनेपर कफ बढता है, ऐसा क्रम है। अगर आदिका धुआँ पीनेके द्वारा कफको दूर करके अथवा हृदयको प्रिय कटु, तिक्त, कषाय रस युक्त सुपारी, कपूर, कस्तूरी, लौंग तथा जायफल आदि जो कसैले, चरपरे और कडवे द्रव्य हैं, उनसे अथवा मुखको स्वच्छ करनेवाली इलायची तथा हरडे आदि जो चरपरी और कसैलीहैं उनसे, या पान सहित सुगंधित पदार्थोंसे बुद्धिमान् कफको दूर करे ॥१६७-१७७॥

अथ तांबूलभक्षणम् ।

रतौ सुप्तोत्थिते स्नाते भुक्ते वान्ते च संगरे ॥ सभायां विदुषां राज्ञां कुर्यात्ताम्बूलचर्वणम् ॥ १७८ ॥

सम्भोगके समयमें, सोकर उठनेपर, स्नानकरने पश्चात्, वमन होनेपर, युद्धमें, विद्वानोंकी सभामें और राजाओंकी सभामें पान चबाना चाहिये ॥ १७८ ॥

अथ ताम्बूलगुणाः ।

ताम्बूलमुक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं तुवरं सरम् ॥ तिक्तं क्षारोषणं कामरक्तपित्तकरं लघु ॥ ॥ १७९ ॥ वश्यं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यमलवातश्रमापहम् ॥ मुखवैशद्यसौगन्ध्यकान्तिसौष्ठवकारम् ॥ १८० ॥ हनुदन्तमलध्वंसि जिह्वेन्द्रियविशोधनम् ॥ मुखप्रसेकशमनं गलामयविनाशनम् ॥ १८१ ॥ नवं तदेव मधुरं कषायानुरसं गुरु ॥ बला-

सजननं प्रायः पत्रशाकगुणं स्मृतम् ॥ ॥ १८२ ॥ वंगदेशोद्भवं पर्णं परं कटुरसं सरम् ॥ पाचनं पित्तजनकमुष्णं कफहरं स्मृतम् ॥ १८३ ॥ पर्णं पुराणमकटु क्षुल्लकं तनु पाण्डुरम् ॥ विशेषाद्गुणवद्द्येयमन्यद्धीनगुणं स्मृतम् ॥ १८४ ॥

पान–तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, तुवर (कसैला), सारक (दस्तावर), कडुआ, क्षारोष्ण (उष्ण और खारी), कमोद्दीपक, रक्तपित्तको करनेवाला, हलका, लोगोंको वशमें करनेवाला, कफ, मुखकी दुर्गन्ध, मैल, वायु, तथा परिश्रम इनको दूर करनेवाला है। मुखमें स्वच्छता, सुगध कान्ति और सुन्दरता वर्धक, ओठ तथा दॉतोके मलको दूर करता है। जीभको साफ करताहै, मुखसे लारके गिरनेको हरता है, और गलेके रोगोंको दूर करता है। नवीन पान–मधुर किंचित् कसैला, भारी, कफकारक और विशेष करके शाकके सदृश गुणकारी है। बगाल देशका पान–केवल तीक्ष्ण रसवाला है दस्त साफ लानेवाला, पाचक, पित्तकारक, गरम तथा कफको हरनेवाला है जो पक्का (पुराना), तीक्ष्णतारहित, छोटा, पतला, मृदु और किंचित् रगका पीला होताहै उस पानको उत्तम गुणोवाला जानना। और अन्य पानोंको हीन गुण वाले जानना ॥ १७९–१८४ ॥

अथ पूगीफलगुणाः।

पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफपित्तनुत् ॥ मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् ॥ ॥ १८५ ॥ पूगं स्याद्दृढमध्यं यत्स्विन्नं वापि त्रिदोषनुत् ॥ सरसं गुर्वभिष्यन्दि तद्वच्छं वह्निनाशनम् ॥ १८६ ॥

सुपारी–भारी, शीतल, रूखी, कसेली, कफपित्त नाशक, मोहजनक, अग्निप्रदीपक, रुचिकारी, और मुखकी विरसतानाशक है। जिसका मध्यभाग कठोर हो और उसीजकर बनी हुई (चिकनी) ऐसी सुपारी–त्रिदोष नाशक है। रसभरी हुई नवीन सुपारी–भारी, कफकारक, और अग्निका, अत्यत नाश करनेवाली है ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

अथ खदिरसुधाताम्बूलगुणाः।

खदिरः कफपित्तघ्नश्चूर्णं वातबलासनुत् ॥ संयोगतस्त्रिदोषघ्नं सौमनस्यं करोति च ॥ ॥ १८७ ॥ मुखवैशद्यसौगन्ध्यकान्तिसौष्ठवकारकम् ॥ प्रभाते पूगमधिकं मध्याह्ने खदिरं तथा ॥ निशासु चूर्णमधिकं ताम्बूलं भक्षयेत्सदा ॥ १८८ ॥ आयुरग्रे यशो मूले लक्ष्मीर्मध्ये व्यवस्थिता ॥ तस्मादग्रं तथा मूलं मध्यं पर्णस्य वर्जयेत् ॥ १८९ ॥ पर्णमूले भवेद्व्याधिः पर्णाग्रे पापसम्भवः ॥ पर्णं मध्यं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥ ॥ १९० ॥ आद्यं विषोपमं पीतं द्वितीयं भेदि दुर्जरम् ॥ तृतीयादनुपातव्यं सुधातुल्यं रसायनम् ॥ ताम्बूलं नातिसेवेत न विरिक्तो बुभुक्षितः ॥ १९१ ॥ देहदृक्केशदन्ताग्निश्रोत्रवर्णबलक्षयः ॥ शोषः पित्तानिलास्रं स्याद तिताम्बूलचर्वणात् ॥ १९२ ॥ ताम्बूलं न हितं दन्तदुर्बलेक्षणरोगिणाम् ॥ विषमूर्च्छामदार्तानां क्षयिणां रक्तपित्तिनाम् १९३ ॥

कत्था–कफ तथा पित्तनाशक है और चूना वात तथा कफनाशक है। पान, कत्था और चूना तीनोंको मिलाकर खानेसे तीनो दोष दूर होते हैं और मन प्रफुल्लित होता है। मुखको हलका, सुगधित, कान्ति और सुन्दरता युक्त करता है। प्रात.कालमे पान खाय तौ उसमें सुपारी किञ्चित् अधिक रक्खे, मध्याह्नमें खाय तौ कत्था किञ्चित् अधिक लगावे, और रात्रिमे खाय तौ चूना कुछ अधिक लगावे इस प्रकार सर्वदा पान खाय। पानके अग्रभागमें आयु, मूल (जड) मे यश और मध्यभागमे लक्ष्मी निवास करती है. इसकारण अग्र, मूल, और मध्यभागका त्याग करै। पानका मूल (जड) भाग खानेसे व्याधि होती है, अग्रभाग खानेसे पाप लगता है, मध्यभाग खानेसे आयुका नाश होताहै, और पानके ऊपरकी नसे खानेसे बुद्धिका नाश होताहै, । पानकी पहिली पीक विषके सदृश है इस कारण उसको कभी नहीं पिये. दूसरी पीक दस्तावर तथा दुर्जर है इसकारण इसकोभी नहीं पिये अर्थात् थूकदेवे। तीसरी बारकी पीक पीनी चाहिये वह रसायनके समान

और अमृततुल्य गुणकारी है, इसलिये दूसरी पंक्तिमें पीछेकी सब पीक पीनी चाहिये। जिसने रेचक (दस्तावर) औषधि खाई होय, उसको और भूँखेको बहुत पानका सेवन नहीं करना चाहिये और जो बहुत सेवन करे तो शरीर, दृष्टि, केश, दांत, अग्नि, कान, वर्ण, और बल इनका क्षय होताहै बहुत पान चाबनेसे शोषरोग होता है, पित्त, वात और रुधिरकी वृद्धि होतीहै । निर्बल दांतवाले, नेत्ररोगी, विषसे पीडित, मूर्च्छायुक्त, मद, राजयक्ष्मासे पीडित और रक्तपित्त, रोगवाले मनुष्यको पान हितकारी नहीं है ॥ १८७–१९३ ॥

अथ भोजनोत्तरं चंक्रमणगुणाः ।

भुक्त्वा शतपदं गच्छेच्छनैस्तेन तु जायते॥ अन्नसंघातशैथिल्यं ग्रीवाजानुकटीषु च ॥ ॥१९४॥ भुक्त्वोपविशतस्तन्द्रा शयानस्य तु पुष्टता ॥ आयुश्चंक्रममाणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥ १९५ ॥ चंक्रममाणस्य पदशतं शनैर्गच्छतः ॥

श्वासानष्टौ समुत्तानस्तान् द्विः पार्श्वे तु दक्षिणे ॥ ततस्तद्द्विगुणान्वामे पश्चात्स्वप्यादथासुखम् ॥ १९६ ॥ वामदिशायामनलो नाभेरूर्ध्वेऽस्ति जन्तूनाम् ॥ तस्मात्तु वामपार्श्वे शयीतभुक्तप्रपाकार्थम् ॥ ॥१९७॥ त्रिदोषशमनी खट्वा तूली वातकफापहा ॥ भूशय्या बृंहणी वृष्या काष्ठपट्टी तु वातला ॥ १९८ ॥

अन्यः पुनराह ।

भूशय्या वातलाऽतीव रूक्षा पित्तास्रनाशिनी ॥ सुशय्याशयनं हृद्यं पुष्टिनिद्राधृतिप्रदम ॥ १९९ ॥ श्रमानिलहरं वृष्यं विपरीतमतोऽन्यथा ॥ संवाहनं मांसरक्तत्वक्प्रसादकरं परम् ॥ प्रीतिनिद्राकरं वृष्यं कफवातश्रमापहम् ॥ २०० ॥

भोजन करनेके पश्चात् धीरे धीरे सौ कदम चलना चाहिये, इससे भोजन किया हुआ अन्नका समूह उदरमें शिथिल होताहै और गरदन, घुटने तथा कमरको सुख होताहै । भोजन करके बैठ जानेसे शरीरमें आलस्य और तन्द्रा उत्पन्न होतीहै, सो रहनेसे शरीर पुष्ट होता है, दौडनेसे मृत्यु पीछे दौडती है; और धीरे धीरे चलनेसे आयु बढती है । प्रथम सीधा सोकर आठ श्वास लेवे, फिर दहनी करवटसे सोकर सोलह श्वासलेवे पीछे बाँई करवटसे सोकर बत्तीस श्वास लेवे इस प्रकार भोजनके पश्चात् शयन करके आठ, सोलह और बत्तीस श्वास लेकर फिर जैसी इच्छा हो वैसा करे । प्राणियोंके नाभिसे ऊपर वामभागमें अग्नि रहती है, इसकारण भोजन पचानेके लिये वाम करवटसे सोवे । खाट त्रिदोष नाशक है, पलग वात तथा कफको शमन करे है, पृथ्वीका सोना पुष्टिकारक, तथा वीर्यवर्द्धक है, और लकडीकी पट्टी (तख्त कोच) पर सोना वात कारक है । दूसरे ग्रन्थकार कहते हैं कि "पृथ्वीपर सोनेसे वातकी उत्पत्ति होती है, अत्यन्त रूक्ष है और पित्त तथा रक्तका नाश होता है" सुन्दर शय्यापर सोनेसे मन प्रसन्न होता है, पुष्टि, निद्रा, तथा धैर्यकी प्राप्ति होती है, परिश्रम तथा वायु दूर होती है, और वीर्य उत्पन्न होता है। दुष्ट शय्यापर सोनेसे उपरोक्त सब गुण उलटे होते हैं । अंगोंको (हाथ पाँवों) को दबवानेसे मांस, रुधिर, और त्वचामें अत्यंत आनन्द होताहै । प्रीति, निद्रा, और वीर्यकी वृद्धि होती है, कफ, वात और परिश्रम दूर होता है ॥ १९८–२०० ॥

अथ प्रवाताटनम् ।

प्रवातं रौक्ष्यवैवर्ण्यस्तम्भकृद्दाहपित्तनुत् ॥ ॥२०१॥ स्वेदमूर्च्छापिपासाघ्नमप्रवातमतोऽन्यथा ॥ सुखं प्रवातं सेवेत ग्रीष्मे शरदि चान्तरा ॥ २०२ ॥ निर्वातमायुषे सेव्यमारोग्याय च सर्वदा ॥ पूर्वोनिलो गुरुः सोष्णः स्निग्धः पित्तास्रदूषकः॥ विदाही वातलः श्रान्तिकफशोषवतां हितः ॥ २०३ ॥ स्वादुः पटुरभिस्यन्दी त्वग्दोषार्शोविषक्रिमीन् ॥ सन्निपातं ज्वरं श्वासमामवातं च कोपयेत् ॥ २०४ ॥

स्वादुः भक्ष्यद्रव्येषु बाहुल्येन मधुररसजनकः ॥

दक्षिणः पवनः स्वादुः पित्तरक्तहरो लघुः॥ वीर्येण शीतलो बल्यश्चक्षुष्यो न तु वातलः ॥ २०५॥ पश्चिमः पवनस्तीक्ष्णः शोषणो बलहल्लघुः ॥ मेदः पित्तकफध्वंसी

प्रभञ्जनविवर्धनः॥ २०६॥ उत्तरो मारुतः शीतः स्निग्धो दोषप्रकोपकृत्॥क्लेदनः प्रकृतिस्थानां बलदो मधुरो मृदुः॥२०७॥ दोषप्रकोपकृत आतुराणाम्॥

आग्नेयो दाहकृद्रूक्षो नैर्ऋतो न विदाहकृत्॥ वायव्यस्तु भवेत्तिक्त ऐशानः कटुकः स्मृतः॥ २०८॥ विष्वग्वायुरनायुष्यः प्राणिनां बहुरोगकृत्॥ अतस्तं नैव सेवेत सेवितः स्यान्न शर्मणे॥ २०९॥ व्यजनस्यानिलो दाहस्वेदमूर्च्छाश्रमापहः॥ तालवृन्तभवो वातस्त्रिदोषशमको मतः॥ २१०॥ वंशव्यजनजस्तूष्णो रक्तपित्तप्रकोपणः॥ चामरो वस्त्रसम्भूतो मायूरो वेत्रजस्तथा॥ एते दोषजिता वाताः स्निग्धा हृद्याः सुपूजिताः॥ २११॥

प्रवात (हवामें फिरना)—शरीरमें रूक्षता करता है, वर्णको हरताहै, स्तम्भको करताहै, तथा दाह (जलन), पित्त, पसीना, मूर्च्छा और तृषाको शान्त करता है। जहाँ अधिक वायु न होय ऐसी जगह फिरनेसे उपरोक्त सब गुण विपरीत होते हैं। ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें अपनी इच्छानुसार वातका सेवन करै, और अन्य ऋतुओंमें आयुकी वृद्धिके निमित्त और रोगरहित रहनेके लिये सर्वदा वायुरहित स्थानमें विचरण करै। पूर्वदिशाकी पवन—भारी, गरम, स्निग्ध, रक्तपित्तको दूषित करनेवाली और दाहकारी है, तथा वातको उत्पन्न करनेवाली है। परिश्रम, कफ तथा शोष रोगवालोंको परमहितकारी है। भक्षण करनेवाले पदार्थोंको स्वादिष्ठ करनेवाली, नमकीन, अभिष्यन्दी, त्वचाके दोष, (कुष्ठादि) बवासीर, विषरोग, कृमिरोग, सन्निपात ज्वर, श्वास और आम वातादि रोगोंको कुपित करती है। दक्षिण दिशाकी वायु—मधुररसान्वित, पित्तरक्तनाशक, हलकी, शीतवीर्य, बलकारक, नेत्रोंको हितकारी और वातको उत्पन्न करनेवाली नहीं है। पश्चिम दिशाकी पवन—तीक्ष्ण, शोषकारक, बलहारक, हलकी, मेद, पित्त, तथा कफ विनाशक और वातको बढानेवाली है। उत्तर दिशाकी पवन—शीतल, स्निग्ध, दोषोंको कुपित करनेवाली, ग्लानिकारक, प्रकृतिस्थित प्राणियोंको बलदायक, मधुर और कोमल है। अग्निकोणकी वायु—दाहकारक और रूक्ष है। नैर्ऋत्यकोणकी वायु—दाहकारक नहीं है। वायव्यकोणकी वायु,—कडवी है। और ईशान कोणकी वायु तीक्ष्ण है। चारों दिशाओंकी मिली हुई वायु—आयुनाशक और मनुष्योंके अनेक रोगोंको उत्पन्न करनेवाली है। इसलिये उस पवनका सेवन करना महादुखदायी है और सेवन करनेवालेका कल्याण नहीं होता। पखेकी पवन—दाह, पसीना, मूर्च्छा और परिश्रमको दूर करनेवाली है। ताडके पखेकी पवन—तीनों दोषोंको शान्त करे है. बाँसके पखेकी पवन गरम और रक्तपित्तको कुपित करतीहै. चमर, वस्त्र, मोरके परोंकी और बेतके पखेकी पवन दोषोंको हरनेवाली, स्निग्ध, हृदयको आनन्दकारी, और माननीय है॥ २०१–२११॥

अथ दिवास्वापप्रतिषेधः।

दिवा स्वापं न कुर्वीत यतोऽसौ स्यात्कफावहः॥ २१२॥ ग्रीष्मवर्ज्येषु कालेषु दिवास्वप्नो निषिध्यते॥ उचितो हि दिवास्वप्नो नित्यं येषां शरीरिणाम्॥ वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा॥ २१३॥ व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतान् क्लान्तानतीसारिणः शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान्॥ क्षीणान् क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान्वृद्धान्रसाजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान्कामं दिवा स्वापयेत्॥ २१४॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रा सात्मीकृता तु यैः॥ न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां चोपजायते॥ २१५॥

स्वपतां दिवा इति यावत्। जाग्रतां रात्रौ इति शेषः॥

भोजनानन्तरं निद्रा वातं हरति पित्तहृत्॥ कफं करोति वपुषः पुष्टिसौख्यं तनोति हि॥ २१६॥ शयनं पित्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम्॥ वमनं कफनाशाय ज्वरनाशाय लङ्घनम्॥ आसीनं घूर्णितं तत्तु नाभिष्यंदि न रूक्षणम्॥ २१७॥

दिनमें शयन नहीं करना चाहिये, क्योंकि दिनमें सोनेसे कफकी वृद्धि होती है। ग्रीष्मऋतुको छोडकर शेष सब ऋतुओंमें सोना निषिद्ध है, परन्तु जो मनुष्य नित्यही दिनमें शयन करते हैं वे जो दिनमें नहीं सोवैं तो उनको

वातादि दोषोंका कोप होता है इस लिये उनको दिनमें सोना वर्जित नहीं है । व्यायाम (कसरत) में तत्पर, स्त्रीप्रसंग करचुका हो, मार्ग चलनेसे थकित, घोडे आदि वाहनोंपर चढनेवाला, ग्लानियुक्त, अतिसार, शूल, श्वास, तृषा, हिचकी और पवनसे पीडित, क्षीण, जिसका कफ क्षीण होगया हो, बालक, मदात्यय (नसेवाज), वृद्ध, रसके अजीर्णवाला रात्रिमें जागा हुआ और जिसने उपवास (लंघन) किया हो ऐसे मनुष्योंको आनन्दसे दिनमें सुलावे दिनमें अथवा रातमें जिन्होंने निद्रा स्वाधीन करली है उनको दिनमें सोने और रात्रिमें जागनेसे कुछ दोष नहीं होता । भोजनके उपरान्त निद्रा लेनेसे वात तथा पित्त नष्ट होता है, कफकी वृद्धि, देहमें पुष्टाई और सुखकी प्राप्ति होतीहै, निद्रा लेनेसे पित्तका नाश होताहै तैल मर्दनसे वात नष्ट होती है, वमन करनेसे कफका विनाश होता है । लंघन करनेसे ज्वर नष्ट होता है और बैठे बैठे ओंघनेसे न कफकी वृद्धि और न रूक्षता होतीहै ॥ २१२-२१७ ॥

अपरानप्युदरेऽन्नस्य संस्थापनहेतूनाह ।

शब्दान् स्पर्शांश्च रूपाणि रसान्गन्धान्मनःप्रियान ॥ भुक्तवानपि सेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥ २१८ ॥

उदरे इति शेषः ॥

अन्नस्य उदरे स्थितिहेतूनाह ।

शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धो जुगुप्सितः ॥ भुक्तमप्रयतं चान्नमतिहास्यं च वामयेत् ॥ २१९ ॥

अप्रयतमपवित्रम् ॥

अन्यदपि वर्जनीयमाह ।

शयनं चाशनं चाति न भजेन्न द्रवाधिकम् ॥ नाग्न्यातपौ न प्लवनं न यानं नापि वाहनम् ॥ २२० ॥

प्लवनं बाहुभ्यां जलप्रतरणम्, यानं मार्गे चलनम्, वाहनमश्वादि ॥

व्यायामं च व्यवायं च धावनं यानमेव च ॥ युद्धं गीतं च पाठं च मुहूर्तं भुक्तवांस्त्यजेत् ॥ २२१ ॥

भोजनके पश्चात् भी मनको प्रिय लगे ऐसे शब्द (गाना बजाना), स्पर्श, (सुंदर वस्तुका छूना) रूप, रस और गंधका सेवन करे क्योंकि इनको सेवन करनेसे उदरमें अन्न भलीभाँति ठहरजाता है । मनको अप्रिय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, अपवित्र अन्न और अत्यंत हँसनेसे अन्नकी वमन होजातीहै भोजनके पश्चात् अत्यंत सोना, बैठना, बहुत प्रवाही (पतले) पदार्थोंका सेवन करना, अग्निसे तपना, हाथोंसे पानीमें तैरना, बहुत चलना, घोडे आदि वाहनपर बैठना इन सबको छोडदे । और व्यायाम, मैथुन, दौडना, मार्गचलना, युद्ध करना, गाना, और पढना इत्यादि कार्य एक मुहूर्त अर्थात् दो घडीपर्यन्त त्याग देवे ॥ २१८-२२१ ॥

अजीर्णस्य हेतूनाह ।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ॥ कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ ॥२२२॥ईर्ष्याभयक्रोधसमन्वितेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन ॥ विद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्परिपाकमेति २२३॥

सन्धारणात् अधोवातमलमूत्रादीनाम् ॥

बहुत जल पीनेसे, विषमाशन[1] (थोडा-बहुत-अबेर सबेर खाने) से मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, निद्राकी विषमता (कभी दिनमें सोना कभी रात्रिमें जागना) इत्यादि कारणोंसे हितकारक और हलका भोजन उपयुक्त समय सेवन किया हुआ भी मनुष्योंके नहीं पचताहै । ईर्षा, भय, क्रोध, लोभ, रोग दीनता, दुःख और द्वेषयुक्त मनुष्यका भोजन किया हुआ अन्न शुद्ध रीतिसे परिपाक नहीं होता ॥ २२२ ॥ २२३ ॥

अध्यशनलक्षणमाह ।

अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते ॥ २२४ ॥

तन्निवारयन्नाह ।

प्राग्भुक्ते चानले मन्दे द्विरह्नि न समाहरेत् ॥ २२५ ॥

अस्यायमर्थः-प्रातर्भुक्ते अजीर्णे सति अहन्येव पुनर्न भुञ्जीत इत्यर्थः। रात्रौ पुनस्तथापि सति भुञ्जीतैव । अत आह सुश्रुत एव-

१ विषमाशन (विषम भोजन) इस जगह कई 'विषमासन' पाठ मानकर विषम आसनसे बैठे रहना भी अर्थ करते हैं (म० व०) ॥

प्रातराशे त्वजीर्णे तु सायमाशो न दुष्यति ॥ २२६ ॥ इति ॥ पूर्वं भुक्ते विदग्धेऽन्ने भुञ्जानो हन्ति पावकम् ॥ २२७॥

अस्य तु अयमर्थः-पूर्वं भुक्ते रात्रिभुक्ते अन्ने विदग्धे किञ्चित् पक्के किञ्चिदपक्के प्रातर्भुञ्जानः पावकं हन्तीत्यर्थः ॥

अत आह।

सायमाशे त्वजीर्णे तु प्रातर्भुक्तं विषोपमम् ॥ २२८ ॥ इति ॥

सायमाशाजीर्णे भोजनोपायमाह।

भवेद्यदि प्रातरजीर्णशङ्का तदाभयां नागरसैन्धवाभ्याम् ॥ विचूर्णितां शीतजलेन भुक्त्वा भुञ्जीत चान्नं मितमन्नकाले॥२२९॥

पेटमें अजीर्ण होनेपर जो कुछ उस समय खानेमें आताहै वह अध्यशन अर्थात् अधिक भोजन समझा जाता है। इस कारण पहिला कियाहुआ भोजन जबतक न पचजाय और अग्निमंद होय तबतक दिनमें दूसरी बार भोजन नहीं करै। अजीर्ण हुएपर रात्रिमें भोजन करनेमें भी दोष नहीं होता, "क्योंकि, प्रातःकालके भोजन कियेहुएसे अजीर्ण उत्पन्न हुआ होय तौ संध्यासमय भोजन करनेमें कुछ दोष नहीं है परन्तु संध्याके भोजनसे उत्पन्न हुए अजीर्णमें प्रातःकाल भोजन करै तौ अग्नि मंद होजाती है। और सध्याके भोजनसे अजीर्ण होनेपर प्रातःकालमें भोजन किये हुए अन्नका विषके सदृश परिणाम होताहै" सुश्रुत कहताहै सध्यासमयका भोजन कराहुआ नहीं पचा होय ऐसी शंका उत्पन्न होय तौ प्रातःकाल सोंठ, सैंधानोन और हरडका चूर्णकर शीतलजलके साथ खाकर पश्चात् भोजनका समय होनेपर थोडासा भोजन करै ॥ २२४--२२९ ॥

दिवा स्त्रीसंगनिषेधः।

आयुःक्षयभयाद्विद्वान्नाह्नि सेवेत कामिनीम् ॥ अवशो यदि सेवेत तदा ग्रीष्मवसन्तयोः ॥ २३० ॥

अवशः अजितेन्द्रियः ॥

बुद्धिमान् मनुष्य दिनमें आयुके क्षीण होनेके भयसे स्त्रीका सेवन नहीं करे; परन्तु बहुत कामातुर होनेसे पराधीन होजाय तौ ग्रीष्मऋतुमे और वसन्तऋतुके दिनोमें स्त्रीके साथ सभोग करै॥ २३० ॥

उपवेशनाटनादिगुणाः।

आस्या वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यसुखप्रदा॥ अध्वा वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यविनाशनः ॥ २३१ ॥ यत्तु चंक्रमणं नातिदेहपीडाकरं भवेत् ॥ तदायुर्बलमेधाग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम् ॥ २३२ ॥

बैठे रहनेसे शरीरका वर्ण, कफ, स्थूलता, सुकुमारता और सुखकी प्राप्ति होतीहै। चलनेसे शरीरका वर्ण, कफ, स्थूलता और सौकुमार्यता दूर होती है। देहको अधिक पीडा न होय इस प्रकार धीरे धीरे फिरनेसे आयु, बल और बुद्धि बढतीहै, अग्नि दीपन होतीहै और इन्द्रियें सचेत होतीहैं ॥ २३१ ॥ २३२ ॥

उष्णीषोपानद्गुणाः।

उष्णीषं कान्तिकृत्केश्यं रजोवातकफापहम् ॥ लघु तच्छस्यते यस्माद्गुरु पित्ताक्षिरोगकृत् ॥ २३३ ॥ उपानद्धारणं नेत्र्यमायुष्यं पादरोगहृत् ॥ सुखप्रचारमौजस्यं वृष्यं च परिकीर्तितम् ॥२३४॥ पादाभ्यामनुपानद्भ्यां सदा चंक्रमणं नृणाम् ॥ अनारोग्यमनायुष्यमिन्द्रियघ्नमदृष्टिदम् ॥ २३५ ॥

पगडी धारण करनेसे कांति बढतीहै, केशोंको हितकारी और धूल, वात तथा कफको दूर करनेवाली है। पगडी हलकी रखनी उत्तम है, क्योंकि, भारी पगडी धारण करना पित्त और नेत्ररोगोको उत्पन्न करतीहै। पाँवमे जूतियोका पहरना नेत्रोको सुखकारक, आयु बढानेवाला, पाँवोंके रोगोंका नाशक, मनुष्योंको सुखपूर्वक चलानेवाला, उत्साह और शक्तिको बढानेवाला कहाहै। सर्वदा पाँवोंमे जूती न पहरकर फिरनेसे मनुष्योंके आरोग्यता तथा आयुकी हानि होतीहै, इन्द्रिय और नेत्रोंकी दृष्टि कम होतीहै ॥ २३३--२३५ ॥

अथ छत्रदंडधारणगुणाः।

छत्रस्य धारणं वर्षातपवातरजोऽपहम् ॥ हिमघ्नं हितमक्ष्णोश्च माङ्गल्यमपि कीर्तितम् ॥ २३६ ॥ सत्त्वोत्साहबलस्थैर्य्यधैर्य-

तेजोविवर्धनम् ॥ अवष्टम्भकरं चापि भयघ्नं दण्डधारणम् ॥ २३७ ॥

छत्र (छत्री) धारण करनेसे वर्षा, धूप, पवन और धूलसे बचाव होताहै शीतनाशक, नेत्रोंको हितकारी और संसारमें मंगलरूप कहाहै । लकडी (लाठी) धारण करनेसे शक्ति, उत्साह, बल, स्थिरता, धीरज तथा तेजकी वृद्धि होती है, सहारा देती है, और भयको नष्ट करती है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

अथ शिबिकाद्यारोहणगुणाः ।

ऊर्ध्वाच्छादनसंयुक्ता शिबिका सर्ववल्लभा ॥ तस्यामारोहणं नृणां त्रिदोषशमकं मतम् ॥ २३८ ॥ वातश्लेष्मगदार्तानामहिता भ्रमकृत्तरिः ॥ पित्तानिलकरो हस्ती लक्ष्म्यायुःपुष्टिवर्द्धनः ॥ २३९ ॥ घोटकारोहणं वातपित्ताग्निश्रमकृन्मतम् ॥ मेदोवर्णकफघ्नं च हितं तद्बलिनां परम् ॥ २४० ॥

ऊपरसे ढकीहुई पालकी सबको प्रिय है, और इसमें बैठकर चलनेसे मनुष्योंके वातादि तीनों दोष शान्त होते हैं । नौका वात तथा कफ रोगवालोंके लिये हितकारी नहीं है और भ्रम (चक्र) रोगको करनेवाली है । हाथीपर बैठनेसे पित्त तथा वात उत्पन्न होताहै और लक्ष्मी आयु तथा पुष्टि बढती है । घोडेपर चढनेसे वात, पित्त, तथा अग्निकी वृद्धि होती है । परिश्रमकारक, मेद, वर्ण और कफनाशक है । बलवान् मनुष्योंको घोडेकी सवारी बहुत हितकारी है ॥ २३८-२४० ॥

अथातपादीनां गुणाः ।

आतपः स्वेदमूर्च्छास्रपित्ततृष्णाक्लमश्रमान् ॥ दाहं विवर्णतां कुर्यादेतांश्छाया व्यपोहति ॥ २४१ ॥ वृष्टिर्वृष्या हिमा बल्या निद्रालस्यविधायिनी ॥ भयावहा मोहकरी कुहेलिः कफवातला ॥ २४२ ॥ कुहेलिः कुआशा इति लोके ॥

अग्निर्वातकफस्तम्भशीतवेपथुनाशनः ॥ आमाभिष्यन्दशमनो रक्तपित्तप्रकोपणः ॥ २४३ ॥ सद्यःश्लेष्मकरो धूमो नेत्रयोरहितो भृशम् ॥ शिरोगौरवकृच्चापि वातपित्तं च कोपयेत् ॥ २४४ ॥

धूपको सेवन करनेसे स्वेद (पसीना), मूर्च्छा, रक्तपित्त, तृषा, ग्लानि, परिश्रम, दाह और विवर्णकी उत्पत्ति होती है । छायासे स्वेद (पसीना), मूर्च्छा, रक्तपित्त, तृषा, ग्लानि, परिश्रम तथा दाहका नाश होताहै और वर्ण सुन्दर होता है । वर्षा-वीर्यवर्द्धक, शीतल, बलकारक, निद्रा तथा आलस्यको उत्पन्न करै है । कुहर (कोहरा)-भयकारक, मोहको उत्पन्न करनेवाला और कफ तथा वात बढानेवाला है । अग्नि-वातकफ, स्तम्भ, शीत और कम्पको नष्ट करै है तथा आमाभिष्यन्दको शमन करनेवाली और रक्तपित्तको कुपित करनेवाली है । धुआं तत्काल कफको करनेवाला, नेत्रोंको अहितकारी, शिरको भारी और वात तथा पित्तको कुपित करनेवाला है ॥ २४१-२४४ ॥

अथ सदाचरणम् ।

मैत्री सद्भिः समं कुर्यात्स्नेहं सत्सु तु सर्वथा ॥ संसर्गं साधुभिः कुर्य्यादसत्सङ्गं परित्यजेत् ॥ २४५ ॥

सत्सु सज्जनेषु । सर्वथा मनोवाक्कर्मभिः ॥

सेवेत देवभूदेववृद्धवैद्यनृपातिथीन् ॥ विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत कानपि ॥ २४६ ॥ गुरूणां सन्निधौ तिष्ठेत्सदैव विनयान्वितः ॥ पादप्रसारणादीनि तत्र नैव समाचरेत् ॥ २४७ ॥ अपकारपरेऽपि स्यादुपकारपरः पुमान् ॥ आत्मवत्सकलान्पश्येद्वैरिणो दूरतो वसेत् ॥ २४८ ॥ न किञ्चिदात्मनः शत्रूनात्मानं कस्यचिद्रिपुम् ॥ प्रकाशयेन्नापमानं न च निःस्नेहतां प्रभोः ॥ २४९ ॥ नात्मानमुदके पश्येन्न नग्नः प्रविशेज्जलम् ॥ तथा नाज्ञातगाम्भीर्य्यं न हिंस्रप्राणिसेवितम् ॥ २५० ॥ काले हितं मितं सत्यं संवादि मधुरं वदेत् ॥ भुञ्जीत मधुरप्रायं स्निग्धं काले हितं मितम् ॥ २५१ ॥ न रात्रौ दधि भुञ्जीत न च निर्लवणं तथा ॥ नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं न चाप्यघृतशर्करम् ॥ २५२ ॥ जन-

स्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति ॥ तं तथैवानुवर्तेत पराराधनपण्डितः ॥ ॥ २५३ ॥ नैकः सुखी न सर्वत्र विश्वस्तो न च शंकितः ॥ नोद्यमे विरमेत्क्वापि हेतावीर्ष्येत्फले न तु ॥ २५४ ॥

हेतौ फलहेतौ उद्यमे, फले धनादौ ॥

वेगान्न धारयेज्जातु मनोवेगान्विधारयेत्॥ न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतानतिलालयेत् ॥ २५५ ॥ वर्षातपादिषु च्छत्री दण्डी रात्रौ भयेषु च ॥ सोपानत्कस्तनुं रक्षेद्विचरेद्युगमात्रदृक् ॥ २५६ ॥

युगमात्रदृक् अग्रतो हस्तचतुष्टयमितां भूमिं पश्यन् ॥

नदीं तरेन्न बाहुभ्यां नाग्निस्कंधमभिव्रजेत् ॥ सन्दिग्धनावं वृक्षं च नारोहेदुष्टयानकम् ॥ २५७ ॥

दुष्टयानं दुष्टगजघोटकादि ॥

नासंवृतमुखं कुर्यात्सभायां च विचक्षणः॥ कासं श्वासं तथोद्गारं जृम्भणं क्षवथुं तथा ॥२५८ ॥ नासिकां न विकुष्णीयान्नासीतोत्कटकः क्वचित् ॥ नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेन्न नखेन लिखेद्भुवम् ॥ २५९ ॥ सम्मार्जनीरजो नैव देहे दद्यात्कदाचन ॥ न नखेन तृणं छिन्द्यान्नोच्छिष्टो ब्राह्मणं स्पृशेत् ॥ २६० ॥ नोपरक्तं न चोद्यन्तं नास्तं यातं दिवाकरम्॥ सर्वथा न समीक्षेत न जले प्रतिबिंबितम् ॥२६१॥ नेक्षेत सततं सूक्ष्मं दीप्तामेध्याप्रियाणि च ॥ पौरन्दरं धनुर्नैव दर्शयेत्कमपि क्वचित् ॥२६२॥ नेच्छेद्बलवता युद्धं न भारं शिरसा वहेत् ॥ गात्रं न नादयेत्केशान्हस्तेन धुनुयान्न च ॥ २६३ ॥ न गच्छेत्पूज्ययोर्मध्ये दम्पत्योरन्तरेण च । रिपोरन्नं न भुञ्जीत गणिकान्नमपि क्वचित् प्रतिभूर्न भवेत्क्वापि न च साक्षी वृथा भवेत् ॥ २६४ ॥

प्रतिभूः जामिन् ॥

छागीं न धारयेज्जातु द्यूतं दूरात्परित्यजेत् ॥ २६५ ॥ विश्वासं नाचरेत्स्त्रीणां ताः स्वतंत्रा न चारयेत् ॥ रक्षणीयाः सदा यत्नाद्यौवने तु विशेषतः ॥ २६६ ॥ न भिन्ने शयने स्वप्यान्नानेकाविवरेऽपि च ॥ नैको देवालये नैव रात्रौ तरुतलेऽपि च ॥ २६७॥ एवं दिनानि गमयेत्सदाचारपरः सदा ॥ ततो रात्रिप्रयुक्तानि कुर्य्यात्कर्माणि मानवः ॥ २६८ ॥ इत्याचारं समासेन भाषितं यः समाचरेत् ॥ स विंदत्यायुरारोग्यं प्रीतिं धर्मं धनं यशः ॥ २६९ ॥

श्रेष्ठ मनुष्योंके साथ मित्रता करै, उनके ऊपर सब प्रकारसे स्नेह रक्खै, और मन वचन तथा कर्मसे ससर्गभी उनसेही करै । नीच मनुष्योंका सग सब प्रकारसे छोड देवै, देव, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा तथा अतिथि लोगोंकी सेवा करै । याचक (मांगनेवाले) को निराशकर खाली न जाने दे, और किसीकी भी अवज्ञा न करै । गुरु (बडे) लोगोंके पास सदा नम्रतापूर्वक बैठे, उनके पास पांव पसारकर बैठना आदि अयोग्य कार्य कभी नहीं करै । अपकार करनेवाले मनुष्योंका भी उपकार करनेमे तत्पर रहै । सबको अपने सदृश जाने और शत्रुसे दूर रहै, कोई मनुष्य हमारा शत्रु है अथवा असुक मनुष्यका मैं शत्रु हूँ, ऐसा किसी प्रकार प्रकाशित न करै । किसी स्थानमें अपना अपमान हुआ होय उसको और अपने ऊपर स्वामीका स्नेह न होय उसको भी प्रकाशित न करै । पानीमें अपना प्रतिबिम्ब नही देखै, नग्न होकर जलमें नही घुसना चाहिये, जिसकी गहराई मालूम न हो, तथा जिसमे मगर मच्छ आदि हिंसक जीव रहते होंय ऐसे जलमें प्रवेश नही करै, बोलनेके समयपर थोडा, हितकारी, सत्य, प्रसगके अनुसार और मिष्ट वचन बोले । भोजनके समय अधिक मधुर रसवाले, घीसहित और हितकारी पदार्थोंका प्रमाणानुसार भोजन करै । रात्रिमें दही नही खाय, और विना नमकके दही कभी नही खाय, तथा मूँगकी दाल, शहद, घी और शर्करा (बूरा) के विना भी दही नही खाय । मनुष्योंके अभिप्रायको जानकर जो मनुष्य जिस प्रकारसे प्रसन्न हो उसी प्रकार प्रवर्त्ते, क्योंकि अन्य मनुष्योंको प्रसन्न रखनाही चतुरता है । जिस प्रकार सहाय विना मनुष्य सुखी

नहीं होता, उसी प्रकार सबके ऊपर विश्वास करनेवाला, अथवा सबके ऊपर सन्देह रखनेवाला भी मनुष्य सुखी नहीं होता । कभी उद्यम करलेसे खाली नहीं बैठना चाहिये । किसीके सफलीभूत उद्यमको देखकर उसपर ईर्षा करना नहीं चाहिये । जो पुरुष ऐश्वर्यवान्के ऐश्वर्यको देखकर दुःख मानते हैं, वे सदैव दुःखी रहते हैं । विद्वानोंको यह विचारना चाहिये अमुक पुरुषको किसप्रकार और किस चतुरतासे यह ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है ? उसी विद्या और उसी उपायसें हम भी धन उपार्जन करके समाजमें अपना यश प्रकाश करें । परन्तु चतुर जन किसीके साश्रित किये हुए धनकी इच्छा नहीं करे । मल, मूत्र, अथवा अपान वायु आदिके वेगोंको कदापि नहीं रोके, किन्तु काम क्रोधादिक मनके वेगोंको रोकना चाहिये । इन्द्रियोंको पीडित नहीं करे और उनका बहुत लाड भी नहीं करे । वर्षा अथवा धूप आदिमें छत्र (छत्री) धारण कर चलै । रात तथा भयके समय हाथमें लकडी लेकर चलै । जूते पहरे रहे और देहकी रक्षा करै आगेको, चार हाथ पृथ्वी देखकर चलै । हाथोंसे नदीको नहीं तरे, जहां अग्निका समूह होय वहां नहीं जाय । सन्देहयुक्त वाहनपर नहीं बैठे, वृक्षपर नहीं चढै और उन्मत्त हाथीके पास नहीं जाय । श्रेष्ठ मनुष्योंकी सभामें सन्मुख मुख करके खांसी, श्वास, डकार, जम्भाई और छींक नहीं लेवे । सभामें बैठकर कभी नाकको नहीं कुरेदे, ऊकरू कभी नहीं बैठे, अधिक देरतक घुटुए ऊँचे करके नहीं बैठे और नखोंसे पृथ्वी कभी न खोदे । शरीरपर कभी बुहारीकी धूल न पडने देवे । नखसे तृणकेका नहीं तोडे, जूँटेमुख ब्राह्मणको स्पर्श न करे । राहुसे ग्रसित (ग्रहणके समय), उदय होते और अस्त होते समय सूर्यको न देखे । पानीमें सूर्यका प्रतिविम्ब पडा होय उसको नहीं देखै । सूक्ष्म, प्रकाशयुक्त, अपवित्र और अप्रिय वस्तुको निरंतर न देखै । आकाशमें इन्द्रका धनुष तना होय उसको किसी समय भी किसीको नहीं दिखावे । बलवान्के साथ लडाई करनेकी इच्छा नहीं करे, बोझ मस्तकपर न उठावे, हाथ इत्यादि ठोककर शरीरका शब्द नहीं करे । हाथसे केशोंको नहीं हलावे, दो पूज्य मनुष्य अथवा स्त्रीपुरुष खडे होय उनके बीचमें होकर नहीं जाय, शत्रु अथवा वेश्याका अन्न कदापि नहीं खाय । किसी समय भी किसीका प्रतिभू (जामिन) नहीं बने, किसीका वृथा साक्षी न होय, किसीकी धरोहर न रक्खे और जहां जुआ होता हो उसको दूरसे ही त्याग देवै । स्त्रियोंका विश्वास कदापि नहीं करे, स्त्रियोंको स्वतन्त्रतासे नहीं रक्खे, अधिक प्रयत्नसे स्त्रियोंकी रक्षा करे, उसमें भी युवावस्थामें विशेष रूपसे रक्षा करनी चाहिये । स्त्रीको अलग शय्यापर न सुलावे, पुरुषके स्थानोंमें स्त्रीको न रक्खे, और छिद्रोंवाली फटी टूटी शय्यापर शयन न करे, रात्रिको देवमन्दिरमें अथवा वृक्षके नीचे अकेला न सोवे । इस प्रकार सदा सदाचारमें तत्पर रहकर दिन व्यतीत करे और रात्रिको रात्रिके समयानुकूल कार्य करे । संक्षेपमें यह जो सदाचार कहा उसके अनुसार जो मनुष्य आचार करता है उसको आयु, आरोग्यता, प्रीति, धर्म और यशकी प्राप्ति होतीहै ॥२४५-२६९॥

अथ सन्ध्यायां निषिद्धकर्माणि ।

एतानि पंच कर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेद्बुधः ॥ आहारं मैथुनं निद्रां संपाठं गतिमध्वनि ॥२७०॥ भोजनाज्जायते व्याधिर्मैथुनाद्गर्भवैकृतिः ॥ निद्राया निःस्वता पाठादायुर्हानिर्गतेर्भयम् ॥ २७१ ॥

विद्वान् लोगोंको सध्याकालमें आहार, मैथुन, निद्रा, अध्ययन (पढना) और मार्ग चलना ये पांच कार्य नहीं करने चाहिये । सायंकालमें भोजन करनेसे व्याधि उत्पन्न होती है, मैथुन करनेसे गर्भमें विकार आताहै, निद्रासे निर्धनता प्राप्त होती है, पढनेसे आयुका नाश होता है और मार्गमें चलनेसे भय उत्पन्न होताहै ॥ २७० ॥ २७१ ॥

अथ रात्रिचर्यामाह ।

ज्योत्स्ना शीता स्मरानंदप्रदा तृट्पित्तदाहहृत् ॥ ततो हीनगुणः कुर्यादवश्यायोऽनिलं कफम् ॥ २७२ ॥ तमो भयावहं मोहदिङ्मोहजनकं भवेत् ॥ पित्तहृत्कफहृत्कामवर्धनं क्लमकृच्च तत् ॥ २७३ ॥ रात्रौ च भोजनं कुर्यात्प्रथमप्रहरान्तरे ॥ किञ्चिदूनं समश्नीयाद्दुर्जरं तत्र वर्जयेत् ॥ २७४ ॥

चन्द्रमाकी चांदनी—शीतल, कामदेवसम्बन्धी आनददायक और तृषा, पित्त, तथा दाहको हरनेवाली है । ओस-चांदनीसे हीन गुणोंवाली है और वात कफको करनेवाली है । अन्धकार—भयदायक, मोहकर्त्ता, दिशाओंमें भ्रम करनेवाला, पित्त तथा कफको हरनेवाला, कामदेवको बढानेवाला है और शरीरमें ग्लानि करे है । रात्रिके प्रथम प्रहरमें दिनकी अपेक्षा कुछ कम भोजन करे, और उसमें जो बहुत देरसे पचै ऐसे भोजन नहीं करे॥२७२–२७४॥

अथ मैथुनम् ।

शरीरे जायते नित्यं देहिनः सुरतस्पृहा ॥ अव्यवायान्मेहमेदोवृद्धिः शिथिलता तनोः ॥ २७५ ॥ बालेति गीयते नारी यावद्वर्षाणि षोडश ॥ ततस्तु तरुणी ज्ञेया द्वात्रिंशद्वत्सरावधि ॥ २७६ ॥ तदूर्ध्वमधिरूढा स्यात्पञ्चाशद्वत्सरावधि ॥ वृद्धा तत्परतो ज्ञेया सुरतोत्सववर्जिता ॥ २७७ ॥

अधिरूढा प्रौढा ॥

निदाघशरदोर्बाला हिता विषयिणी मता॥ तरुणी शीतसमये प्रौढा वर्षावसन्तयोः ॥ ॥ २७८ ॥ नित्यं बाला सेव्यमाना नित्यं वर्धयते बलम् ॥ तरुणी ह्रासयेच्छक्तिं प्रौढोद्भावयते जराम् ॥ २७९ ॥ सद्यो मांसं नवं चान्नं बाला स्त्री क्षीरभोजनम् ॥ घृतमुष्णोदके स्नानं सद्यःप्राणकराणि षट् ॥ २८० ॥ पूतिमांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि ॥ प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यःप्राणहराणि षट् ॥ २८१ ॥

प्राणशब्दोऽत्र बलवाचकः । बालार्कः कन्यार्कः ॥

वृद्धोऽपि तरुणीं गत्वा तरुणत्वमवाप्नुयात्॥ वयोऽधिकां स्त्रियं गत्वा तरुणः स्थविरायते ॥ २८२ ॥ आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विताः ॥ स्थिरोपचितमांसाश्च भवंति स्त्रीषु संयताः ॥ २८३ ॥ सेवेत कामतः कामं बलाद्वाजीकृतो हिमे ॥ प्रकामं तु निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे ॥ त्र्यहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वृष्टिनिदाघयोः ॥ ॥ २८४ ॥ सुश्रुतस्तु—त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समेयात्प्रमदां नरः ॥ सर्वेष्वृतुषु घर्मे तु पक्षात्पक्षाद्व्रजेद्बुधः ॥ २८५ ॥

समेयात्संगच्छेत् । घर्मे ग्रीष्मे ॥

शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे वसन्ते तु दिवानिशि ॥ वर्षासु वारिदध्वाने शरत्सु सरसि स्मरः ॥ २८६ ॥ उपेयात्पुरुषो नारीं संध्ययोर्न च पर्वसु ॥ गोसर्गे चार्द्धरात्रे च तथा मध्यंदिनेऽपि च ॥ २८७ ॥ विहारं भार्यया कुर्याद्देशेऽतिशयसंवृते ॥ रम्ये श्राव्याङ्गनागाने सुगन्धे सुखमारुते ॥२८८॥ देशे गुरुजनासन्ने विवृतेऽतित्रपाकरे॥ श्रूयमाणे व्यथाहेतुवचने न रमेत ना ॥२८९॥ स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धः सुमनोऽन्वितः भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेषः समलंकृतः ॥२९०॥ ताम्बूलवदनः पत्न्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः॥ पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे ॥२९१॥ अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्वान्सव्यथाङ्गः पिपासितः॥बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥२९२॥

रोगी मैथुनसंवर्जनीयरोगयुक्तः ॥

भार्यां रूपगुणोपेतां तुल्यशीलां कुलोद्भवाम् ॥ अतिकामोऽभिकामां तु हृष्टो हृष्टामलंकृताम् ॥२९३॥ सेवेत प्रमदां युक्त्या वाजीकरणबृंहितः ॥ रजस्वलामकामां च मलिनामप्रियां तथा ॥ २९४ ॥ वर्णवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम् ॥ हीनाङ्गीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनिरोगसमन्विताम् ॥ २९५ ॥ सगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्रजितामपि ॥ नाधिगच्छेत्पुमान्नारीं भूरिवैगुण्यशंकया ॥२९६॥ रजस्वलां गतवतो नरस्यासंयतात्मनः ॥ दृष्ट्यायुस्तेजसां हानिरधर्मश्च ततो भवेत् ॥२९७॥ लिंगिनीं गुरुपत्नीं च सगोत्रामथ पर्वसु ॥ वृद्धां च सन्ध्ययोश्चापि गच्छतो जीवनक्षयः ॥ २९८ ॥

लिङ्गिनीं प्रव्रजिताम् ॥

गर्भिण्यां गर्भपीडा स्याद्व्याधितायां बलक्षयः ॥ हीनाङ्गीं मलिनां द्वेष्यां क्षामां वन्ध्यामसंवृते ॥ २९९ ॥ देशेऽभिगच्छतो रेतः क्षीणं म्लानं मनो भवेत् ॥

गर्भिणीं गर्भवासदिवसात् द्वितीये मासि गर्भस्थितेरनिश्चये यथोक्तनक्षत्रादिलाभाभावे वा तृतीये मासि पुंसवने कृते नाभिगच्छेत् ॥ यतः पुंसवनानन्तरमाह व्यासः । ततस्त्यजेन्नदीतीरं देवखातोदकं तथा ॥ भर्तुः शय्यां मृतापत्यां तथैवामिषभोजनम् ॥ ३०० ॥ अन्यच्च—आमिषस्याशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेत् ॥ देवारामनदीयानं प्रयोगं पुरुषस्य च ॥ ३०१ ॥ इति ॥ क्षुधितः क्षुब्धचित्तश्च मध्याह्ने तृषितोऽबलः ॥ स्थितस्य हानिं शुक्रस्य वायोः कोपं च विन्दति ॥ ३०२ ॥ व्याधितस्य रुजा प्लीहा मूर्च्छा मृत्युश्च जायते ॥ प्रत्यूषे चार्धरात्रे च वातपित्ते प्रकुप्यतः ॥ ३०३ ॥ तिर्यग्योनावयोनौ वा दुष्टयोनौ तथैव च ॥ उपदंशास्तथा वायोः कोपः शुक्रसुखक्षयः ॥ ३०४ ॥ उच्चारिते मूत्रिते च रेतसश्च विधारणे ॥ उत्ताने च भवेच्छीघ्रं शुक्राश्मर्यास्तु सम्भवः ॥ ३०५ ॥ सर्वमेतत्त्यजेत्तस्माद्यतो लोकद्वयाऽहितम् ॥ शुक्रं तूपस्थितं मोहान्न सन्धार्यं कदाचन ॥ ३०६ ॥ स्नानं सशर्करं क्षीरं भक्ष्यमैक्षवसंस्कृतम् ॥ वातो मांसरसः स्वप्नो सुरतान्ते हिता अमी ॥ ३०७ ॥ शूलकासज्वरश्वासकार्श्यपाण्ड्वामयक्षयाः ॥ अतिव्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः ॥ ३०८ ॥

प्राणियोंके शरीरमें नित्य मैथुन करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है. इच्छा होनेपर मैथुन नहीं करनेसे प्रमेह, मेदेकी वृद्धि और शरीरमें शिथिलता होती है । स्त्री सोलह वर्षपर्यन्त बाला कही जाती है, बत्तीस वर्षपर्यन्त तरुणी कहाती है पचास वर्षपर्यन्त प्रौढा रहती है और उसके आगे वृद्धा कहाती है । स्त्रीको वृद्ध अवस्थामें कामदेव संबंधी उत्सव नहीं रहता । इसकारण वृद्धा स्त्री मैथुनमें त्याज्य है । ग्रीष्मऋतुमें और शरदऋतुमें विषयी पुरुषोंको बालास्त्री अत्यंत हितकारी है. शीतकालमें व स्त्री और वर्षा तथा वसत ऋतुमे प्रौढा स्त्री अत्यत हितकारी है । नित्य बाला स्त्रीके सेवन करनेसे बल बढता है, युवा (तरुणी) स्त्रीके सेवन करनेसे शक्ति हीन होती है, और प्रौढा स्त्रीके सेवन करनेसे वृद्धता प्राप्त होती है । ताजा मांस, नवीन अन्न, बाला स्त्री, दूधका भोजन, घीका सेवन और उष्ण जलसे स्नान, ये छः वस्तु तत्काल बलको देनेवाली हैं । पूति(सडा-हुआ) मांस, वृद्धा स्त्री, बाल (प्रातःकाल उदय हुआ) सूर्य, तत्कालका जमाया हुआ दही, प्रभातकालमें मैथुन और निद्रा ये छः वस्तु तत्काल बलको हरनेवाली हैं । वृद्ध पुरुष भी तरुण स्त्रीके सग सभोग करे तो युवाके सदृश होजाता है और युवा पुरुष वृद्धा स्त्रीके संग सभोग करनेसे वृद्धके सदृश होजाता है । नियमानुसार स्त्रियोंके सग प्रसंग करनेवाले पुरुषकी आयु अधिक होती है, मन्दता और जरा अवस्था शीघ्र नहीं आती, शरीरके वर्णकी उत्तमता, बलकी वृद्धि और मांस स्थिर तथा वृद्धिको प्राप्त होता है । हेमन्तऋतुमें वाजीकरणकी औषधी खाकर बलवान् होकर इच्छानुसार मैथुन करे शिशिरऋतुमेंभी इच्छानुसारही सभोग करना चाहिये । वसन्त और शरदऋतुमें तीन तीन दिनके उपरान्त स्त्रीसग करना उचित है । और वर्षाऋतु तथा ग्रीष्मऋतुमें एक एक पक्ष (पखवाडे) में मैथुन करना चाहिये । सुश्रुत कहता है कि—"बुद्धिमान् पुरुष सम्पूर्ण ऋतुओंमें तीन तीन दिनमें स्त्रीसे सभोग करे परन्तु ग्रीष्मऋतुमें पक्षपक्षमें मैथुन करना उचित है" । शीतकालमें रात्रिके समय मैथुन करे, ग्रीष्मऋतुमें दिनके समय मैथुन करे, वसंतऋतुमें रात्रि तथा दिन दोनोंमें मैथुन करे, वर्षाऋतुमें जब घन गर्जता होय और चपला चमकती होय, उस समय मैथुन करे; और शरदऋतुमें (इच्छानुसार) सरोवरादिके तटस्थ स्थानोमें मैथुन करे । प्रभात, सायंकाल, पर्व, अर्द्धरात्रि गौओंको छोडनेका समय और मध्याह्न कालमें मैथुन नहीं करना चाहिये । अत्यन्त गुप्त, रमणीय, सुगंधित, सुखदायी पवनवाले और जहाँ स्त्रियोंका गान सुननेमें आता हो ऐसे स्थानोमें स्त्रीके साथ विहार करै । जो स्थान बडे पुरुषोंके समीप होय, खुला हुआ होय, अथवा बहुत लज्जादायक स्थान होय, वा जहाँ मनको ग्लानि देनेवाले वचन सुननेमें आतेहो, उस स्थानमें पुरुष स्त्रीके साथ रमण नहीं करे । पुत्रकी इच्छा करनेवाला पुरुष स्नान कर, अंगोमें चन्दनका लेपकर, सुगंधित पदार्थोंको धारण कर, पुष्पोकी

१ बालार्कका अर्थ कन्याराशिका सूर्य (भाद्रपद, आश्विनकी धूप) ऐसा भी कहते हैं (सु घ.)

माला पहर, वीर्यवर्धक पदार्थोंको खाकर, स्वच्छ वस्त्र पहर, भूषणोंसे विभूषित हो, उत्तम वेष धर, पान चाबकर पत्नीमे अनुरक्त हो, कामदेवकी वृद्धि होय तब सुन्दर शय्यापर स्त्रीसे प्रसग करे। बहुत भोजन करनेवाला, धैर्य-रहित, भूखा, दुःखित अगवाला, तृषायुक्त, बालक, वृद्ध, मल मूत्रादिकके वेगसे पीडित, मैथुनसे होनेवाले रोगों करके युक्त, ऐसे मनुष्यको मैथुन करना नही चाहिये। वाजीकरणके उपायसे हृष्ट पुष्ट होकर रूपवती सर्वगुणसंपन्न अपने सदृश स्वभाववाली, श्रेष्ठ कुलोत्पन्न कामदेवके वेगसे अत्यत पीडित, कामयुक्त पुरुषसे प्रसन्न और भूषण तथा वस्त्रोंसे भूषित ऐसी स्त्रीके साथ परम आनदसे युक्तिपूर्वक सभोग करे। पुरुष अनेक दोषोंकी शका होनेसे, रजस्वला, कामके वेगसे रहित, मलिन, अप्रिय, अपनेसे ऊँचे वर्णवाली, अपनी अवस्थासे अधिक अवस्थावाली, रोगोंसे पीडित, हीन अगवाली, गर्भिणी, द्वेषयुक्त, योनिके सोमादि रोगों करके युक्त, अपने गोत्रकी, गुरुकी स्त्री और सन्यास युक्त, इन स्त्रियोंसे प्रसग नहीं करे। जो पुरुष अपने मनको वशमें न रखकर रजस्वलाके सग प्रसग करे है उसकी दृष्टि आयु और तेजकी हीनता होती है, तथा अधर्म होताहै। सन्यासिन, गुरुकी पत्नी, अपने गोत्रमें उत्पन्न हुई, अथवा वृद्ध अवस्थावाली स्त्रीके सग प्रसग करनेसे तथा प्रातःकाल सन्ध्याकाल और पर्वमें स्त्री प्रसंग करनेसे भी जीवनका क्षय होताहै। गर्भिणीके सग प्रसग करनेसे गर्भको पीडा होती है, रोगिणीके सग सगम करनेसे बलका क्षय होताहै, हीन अंगवाली, मलिन, द्वेषयुक्त, दुर्बल, अथवा बाँझ स्त्रीके संग प्रसंग करनेसे तथा खुले स्थानमें प्रसग करनेसे वीर्य क्षीण होताहै और मन मलीन होताहै। 'गर्भिणीका सग नहीं करे' इसके कहनेका प्रयोजन यह समझना कि, गर्भ रहनेके दिनसे दूसरे महीनेमे गर्भ रहनेका निश्चय न हुआ हो तो अथवा ज्योतिष शास्त्रमें कहे हुए नक्षत्र न मिलनेपर, वो तीसरे महीने पुंसवन कर्म करनेपर गर्भिणीसे प्रसंग नही करे, क्योंकि "पुसवन कर्मके पश्चात् स्त्री-नदीका तीर, देवखात (अकृत्रिम जलाशय) का जल, पतिकी शय्या, जिसकी सतान न जीती हो, ऐसी स्त्री और मांस भक्षण इनको त्यागदे" ऐसा व्यासजी कहते है। अन्य ग्रन्थोंमें भी कहाहै कि-"मांसका भक्षण, देवताके बागमें जाना, नदीपरजाना और पुरुषका संभोग इनको गर्भिणी स्त्री त्यागदेवे। भूँखा, व्याकुलचित्तवाला, तृषित (प्यासा) तथा बलरहित पुरुष यदि स्त्रीके साथ सभोग करे तो अथवा मध्याह्नके समय प्रसग करे तो भीतर रहनेवाले वीर्यकी हानि होती है और वायुका कोप होताहै। रोगी पुरुष स्त्रीसे प्रसंग करै तो उसके पीडा, प्लीहारोग, मूर्च्छा और मृत्यु तक होतेहैं। प्रातःकाल अथवा अर्द्धरात्रिके समय स्त्रीका सग करनेसे वायु और पित्तका कोप होताहै। पशुके सग, अथवा सृष्टिक्रमसे विरुद्ध मैथुन करनेसे तथा दुष्टयोनिमे मैथुन करनेसे उपदंश (गरमी), वातका कोप और वीर्य तथा सुखका क्षय होताहै। मलका वेग रोकनेसे, मूत्रका वेग रोकनेसे, चलित वीर्यको रोकनेसे और विपरीत रति करनेसे तत्काल वीर्यकी पथरी होना सम्भव है और यह समझ कर यह लोक तथा परलोकको दोनोंको अहित रूप है इस लिये इनसबको छोडदेवे। चलित हुए वीर्यको कदापि भूलकर भी नहीं रोके। मैथुन करनेके पश्चात् स्नानकर शर्करा (मिश्री, बूरा) सहित दूध पिये और खाँड निर्मित पदार्थ अर्थात् लड्डू आदि खाय, शुद्ध वायुका सेवन करै, मांसका रस पिये और निद्रा लेय, यह सब मैथुनान्तरमे हितकारी हैं। बहुत मैथुन करनेसे शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, कृशता, पाण्डुरोग, क्षयरोग और आक्षेपकादिरोग उत्पन्न होतेहैं॥ २७५-३०८॥

अथ निद्रागुणाः।

रात्रौ जागरणं रूक्षं कफदोषविषार्तिजित्॥ निद्रा तु सेविता काले धातुसाम्यमतन्द्रिताम्॥ पुष्टिं वर्णं बलोत्साहं वह्निदीप्तिं करोति हि॥ ३०९॥ यो लेढि शयनसमये मधुमिश्रं बीजपूरदलचूर्णम्। स तु लज्जाकरवातप्रसरनिरोधात्सुखं स्वपिति॥ ३१०॥

रात्रिमें जागना-रूक्षता और कफ तथा विषकी पीडाको हरनेवाला है। रात्रिमें समयपर सोनेसे धातुओमें समता होती है, आलस्य दूर होता है, और पुष्टिकी प्राप्ति होती है, वर्ण सुन्दर होताहै, उत्साह बढताहै और, जठराग्नि प्रदीप्त होतीहै। जो मनुष्य शयनके समय बिजोरेके पत्तोका चूर्ण शहद मिलाकर चाटे तो यह लज्जा उत्पन्न करनेवाली वायुके प्रसर (वेग) निरोधसे सुखपूर्वक शयन कर सक्ता है॥ ३०९॥ ३१०॥

अथोषःकाले जलपानगुणाः।

सवितुः समुदयकाले प्रसृतीः सलिलस्य

पिबेदष्टौ ॥ रोगजरापरिमुक्तो जीवेद्वत्सरशतं साग्रम् ॥ ३११ ॥

अस्य जलपानस्योपक्रमकाले रात्रेश्चतुर्थप्रहरे प्रवेशः ॥ तथा च भोजः–

पिबति पर्युषितं जलमन्वहं तिमिरिणीचरमे प्रहरे यदि ॥ ३१२ ॥

एतज्जलपानकालमर्यादा सूर्योदयातिसन्निहितप्राप्तः कालः ॥ तथा च तन्त्रान्तरे-

अम्भसः प्रसृतीरष्टौ रवावनुदिते पिबेत् ॥ वातपित्तकफाञ्जित्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ ३१३ ॥ इति ॥

सलिलस्यात्र पर्युषितस्य ग्रहणं भोजवचनानुरोधात् ॥

अर्शःशोथग्रहण्यो ज्वरजठरजराकुष्ठमेदोविकारा मूत्राघातास्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिशूलाक्षिरोगाः ॥ ये चान्ये वातपित्तक्षतजकफकृता व्याधयः सन्ति जन्तोः तांस्तानभ्यासयोगादपहरति पयः पीतमन्ते निशायाः ॥ ३१४ ॥ विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं पिबति खलु नरो यो घ्राणरंध्रेण वारि ॥ स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ ३१५ ॥

निशीथोऽत्र निशान्धकारः ॥

पातव्यं नासया नीरं प्रसृतित्रयमात्रया ॥ व्यङ्गवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकाशशोथहरम्॥ रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिसञ्जननम् ॥ ३१६ ॥ स्नेहे पीते क्षते शुद्धावाध्माने स्तिमितोदरे॥ हिक्कायां कफवातोत्थे व्याधौ तद्वारि वारयेत् ॥ ३१७ ॥

तद्वारि नासा पेयम् ॥

जो मनुष्य सूर्योदयके समय आठ अजली परिमाण (वासी) पानी पीनेका नियम करताहै वह मनुष्य रोग और जरासे छूट कर सौवर्षपर्यन्त जीताहै । जब रात्रिका चौथा प्रहर प्रारभ होय तबसे इस जलके पीनेका समय जानना, भोजका मतभी "रातके चौथे प्रहरमें उठकर नित्य जल पीता है" ऐसा है और इस पानी पीनेका समय सूर्योदय होनेसे कुछ पहिले है । ऐसाही अन्यग्रंथोमे भी लिखा है. कि "जो मनुष्य सूर्योदयसे पहिले पानीकी आठ अजली पीता है वह मनुष्य वात, पित्त और कफको जीतकर सौ वर्ष पर्यन्त जीताहै" यहाँ ऊपर लिखा हुआ भोजके वचन वासी पानी पीनेके विषयमे जानना । रात्रिके अन्तमे पानी पीनेका अभ्यास करनेसे ववासिर, सूजन, संग्रहणी, ज्वर, जठर, जरा, कोढ, मेदके विकार, मूत्राघात, रक्तपित्त, कर्णरोग, गलरोग, शिरोरोग, कटिशूल (कमरका दर्द), नेत्ररोग और जो अन्य वातपित्तक्षत और कफसे हुए रोग हैं वे सब नष्ट होतेहै । रात्रिका अधकार दूर होनेपर जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर नित्य नाकसे पानी पीताहै उसकी बुद्धि पूर्ण होताहै, नेत्रोंकी दृष्टि गरुडके सदृश होतीहै, वली--पलित रहित होताहै तथा सम्पूर्ण रोग नष्ट होतेहैं । तीन अजली प्रमाण पानी नाकके द्वारा पीनेसे व्यग (झाँई), वली--पलित (विनासमय शरीरमें वली पडजाना और केशोंका सफेद होजाना), पीनस, स्वरभंग, खाँसी और सूजन नष्ट होतीहैं । रात्रिके नाश होनेपर नाकसे पानी पीनेसे दृष्टि बढतीहै तथा यह रसायन है जिसने स्नेह पान करा होय (तेल या घी पिया होय), क्षत (घाव) रोगवाला, विरेचन लिया हो, पेट अफर रहा हो, मदाग्नि होगई हो, हिचकी आती हों, कफ और वात व्याधि रोगोंमे नासिकासे पानी नही पीना चाहिये ॥ ३११–३१७ ॥

अथ ऋतुचर्या ।

चयकोपसमा यस्मिन्दोषाणां सम्भवन्ति हि ॥ ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु संक्रमात् ॥ ३१८ ॥ ग्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्तः प्रावृण्मिथुनकर्कटौ ॥ सिंहकन्ये स्मृता वर्षा तुलावृश्चिकयोः शरत् ॥ धनुर्ग्राहौ च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः ॥ ३१९ ॥

मेषवृषौ रविणा संक्रान्तौ । एवं मिथुनकर्कटावित्यादि ॥ अन्ये तु–

शिशिरः पुष्पसमयो ग्रीष्मो वर्षा शरद्धिमाः ॥ माघादिमासयुग्मैः स्युर्ऋतवः षट् क्रमादमी ॥ ३२० ॥ गङ्गाया दक्षिणे देशे

वृष्टेर्बहुलभाक्तः ॥ उभौ मुनिभिराख्यातौ प्रावृड्वर्षाभिधावृतू ॥ ३२१ ॥ उत्तरायणमाद्यैस्तैः परैः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ आद्यमुष्णं बलहरं ततोऽन्यद्बलदं हिमम् ॥ ३२२ ॥

मेषादि राशियोंमें सूर्यके फिरनेसे छः ऋतु होतीहैं कि जिनमे वात, पित्त और कफकी वृद्धि, कोप और शमन होताहै । मेष और वृषकी सक्रान्तिको ग्रीष्म, मिथुन और कर्ककी सक्रान्तिको प्रावृट्, सिह और कन्याकी सक्रान्तिको वर्षा, तुला और वृश्चिककी सक्रान्तिको शरद्, धन और मकरकी सक्रान्तिको हेमन्त और कुम्भ और मीनकी सक्रान्तिको वसन्त ऋतु कहतेहैं । और कोई कहतेहैं कि—"शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, और हेमन्त ये छः ऋतुऍ क्रमसे माघ आदि दो दो महीनोके क्रमसे होतीहैं" अर्थात् माघ और फाल्गुन ये दो महीने शिशिरऋतु, चैत्र और वैशाख वसन्त ऋतु, ज्येष्ठ और आषाढ ग्रीष्मऋतु, श्रावण और भादों वर्षाऋतु, आश्विन और कार्तिक शरद् ऋतु तथा मार्गशिर और पौष हेमन्तऋतु हैं । गगासे दक्षिणदेशमे वृष्टि अधिक होतीहै, इसकारण मुनियोंने प्रावृट् और वर्षा, ये दोनो ऋतु अलग २ कहीहैं और गंगाके उत्तर देशमें शीत अधिक होनेसे हेमन्त और शिशिर दो ऋतु अलग अलग गिनीहै । और छः ऋतुओंमें शिशिरऋतुको नही गिनीहैं । पहिली तीन ऋतुऍ उत्तरायण और दूसरी तीन ऋतुऍ दक्षिणायन हैं । उत्तरायणऋतु—गरम तथा बलको हरनेवाली हैं और दक्षिणायन ऋतु—शीतल तथा बलको बढानेवाली हैं ॥३१८--३२२॥

अथ ऋतूनां गुणदोषाः ।

हेमन्तः शीतलः स्निग्धः स्वादुर्जठरवह्निकृत्॥शिशिरः शीतलोऽतीव रूक्षो वाताग्निवर्धनः ॥ ३२३ ॥

हेमन्तः स्वादुः प्रायेण द्रव्येषु स्वादुरसजनकः । एवमन्यत्रापि बोद्धव्यम् ॥

वसन्तो मधुरः स्निग्धः श्लेष्मवृद्धिकरश्च सः ॥ ग्रीष्मो रूक्षोऽतिकटुकः पित्तकृत्कफनाशनः ॥ ३२४ ॥ वर्षाः शीता विदाहिन्यो वह्निमान्द्यानिलप्रदाः ॥ शरदुष्णा पित्तकर्त्री नृणां मध्यबलावहा ॥ ३२५ ॥ चयप्रकोपोपशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु ॥ वर्षादिषु च पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥३२६॥ चीयते लघुरूक्षाभिरोषधीभिः समीरणः ॥ तद्विधस्तद्विधे देहे कालस्यौष्ण्यान्न कुप्यति ॥३२७॥

तद्विधो रूक्षो लघुश्च । तद्विधे रूक्षे लघौ च ॥

अद्भिरम्लविपाकाभिरोषधीभिश्च तादृशम् ॥ पित्तं याति चयं कोपं न तु कालस्य शैत्यतः ॥ ३२८ ॥

तादृशम् अम्लविपाकम् ॥

चीयते स्निग्धशीताभिरुदकौषाधिभिः कफः ॥ तुल्ये च काले देहे च स्कन्नत्वान्न प्रकुप्यति ॥ ३२९ ॥

तुल्येऽपि काले स्निग्धे शीतले च । स्कन्नत्वाद्देहे शुष्कत्वात् ॥

हिमे याति शमं पित्तं वायुः श्लेष्मा च चीयते ॥ स वायुः शिशिरे कोपं यात्येवोपहतः कफः ॥ ३३० ॥ हेमन्ते सञ्चितः श्लेष्मा शिशिरे त्वतिचीयते॥शीतस्निग्धगुरुद्रव्यैः शैत्यस्कन्नो न कुप्यति ॥३३१॥

स्कन्नः कठिनीभूतः ॥

इति कालस्वभावोऽयमाहारादिवशात्पुनः॥ चयादीन्यान्ति सद्योऽपि दोषाः काले विशेषतः ॥ ३३२ ॥

चयकोपशमाः पूर्वाह्णे वसन्तस्य लिङ्गम्, मध्याह्ने ग्रीष्मस्य, अपराह्णे प्रावृषः, प्रदोषे वार्षिकम् । शरदमर्धरात्रे, प्रत्यूषसि हेमन्तमुपलक्षयेत् । एवमहोरात्रमपि वर्षमिव शीतोष्णवर्षा दोषोपचयप्रकोपोपशमा जानीयादिति सश्रुतः ॥

हेमन्त ऋतु—शीतल स्निग्ध और अधिक करके प्रत्येक पदार्थोंमे स्वादुता उत्पन्न करनेवाली और जठराग्निको दीपन करने वाली है । शिशिरऋतु शीतल, अत्यंत रूक्ष, वायु और अग्निको बढानेवाली है । वसन्तऋतु पदार्थोंमें मधुरताजनक, स्निग्ध और कफकी वृद्धि करनेवाली है । ग्रीष्मऋतु रूक्ष, पदार्थोंमे तीक्ष्णता करनेवाली, पित्तकारक

और कफनाशक है । वर्षा ऋतु-शीतल, दाहकारक, अग्निको मंद करनेवाली और वातको बढानेवाली है । शरदृऋतु-गरम, पित्तकारक और मनुष्योंमे मध्यम बलको देनेवाली है । ग्रीष्मऋतुमे वायु सञ्चय होतीहै, वर्षाऋतुमें वायु कुपित होतीहै और शरद् ऋतुमे शमन होतीहै । वर्षाऋतुमे पित्त सञ्चय होताहै, शरदृऋतुमें पित्तका कोप होताहै और हेमन्तऋतुमे पित्त शमन होताहै । शिशिर ऋतुमें कफ सञ्चय होताहै । वसन्तऋतुमें कफका कोप होता है और ग्रीष्मऋतुमे कफ शमन होताहै ग्रीष्मऋतुमें हलकी रूक्ष औषधियोंसे वायुका सञ्चय होताहै, परन्तु सञ्चय हुई हलकी और रूक्ष पवन, हलके और रूक्ष हुए शरीरमें उस कालकी गरमीसें कुपित नही होसक्ती। वर्षाऋतुमे खट्टे पाक-वाले जलसे और वैसेही औषधियोंसे अम्लपाकी पित्तसञ्चय होताहै परन्तु यह सञ्चय हुआ पित्त उस कालकी शीतल-तासे कुपित नही होसक्ता । शिशिरऋतुमे स्निग्ध और शीतल औषधियोंसे तथा वैसेही जलसे कफसञ्चय होताहै, परन्तु वह सञ्चय हुआ कफ रूक्ष और शीतलताके लिये सूखा रहनेसे कुपित नहीं होसक्ता । हेमन्तऋतुमे पित्त शमन होताहै और वायु तथा कफ सञ्चय होताहै, इस हेमन्तऋ-तुमे सञ्चय हुआ वायु शिशिरऋतुमें कुपित होताहै; परन्तु कफ तो बंधाही रहताहै । हेमन्तऋतुमें शीतल, स्निग्ध और भारी पदार्थोंसे सञ्चित हुआ कफ शिशिरऋतुमें शीतल, अत्यन्त वृद्धि पाताहै, परन्तु शीतलताके लिये कठिन होनेसे कुपित नहीं होसक्ता । यह कालका स्वभाव है । इसके सिवाय आहारादिके योगसे वातादि दोपोंका चयादि तत्काल होताहै अर्थात् आहार और विहारोंसे दोपोका च-य, प्रकोप और शमन तत्काल होताहै । और अपने २ समयमें दोषोंकी विशेष करके वृद्धि, प्रकोप और शमनता होती है । सुश्रुतम लिखा है कि-"दिनके पहले भागमे वसन्तके, मध्याह्नमें ग्रीष्मके, अपराह्नमे प्रावृटके, प्रदोषमें वर्षाऋतुके, अर्धरात्रिमे शरदृतुके और पिछली रात्रिमे हेमन्तऋतुके लक्षण शीत, हैं । इस प्रकार एक दिनरात्रिमे भी वर्षके सदृश शीत, गरमी और वर्षाके भाव होतेहैं और दोषोंकी वृद्धि, कोप और शमता होती है; ऐसा जानना ॥ ३२३-३३२ ॥

अथ अकाले दोषवृद्धिः ।

चयकोपशमान्दोषा विहाराहारसेवनैः ॥
समानैर्यान्त्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्य-
यम् ॥ ३३३ ॥
समानैः तुल्यैः, चयादियोग्यैरिति यावत् ।
विपर्ययं कालेऽपि वैपरीत्यं बोध्यम् ॥

विना समयमी जिनसे दोपोकी वृद्धि होय ऐसे आहार और विहारके सेवन करनेसे दोषोंकी वृद्धि होती है. जिनसे प्रकोप होय ऐसे विहार और आहार करनेसे प्रकोप होता है और जिनसे शमन होय ऐसे विहार और आहारके सेवन करनेसे शमन होते है । इस प्रकार समय होनेपर भी जिनसे वृद्धि न होय तो विहार और आहार करनेसे वृद्धि नहीं होती है. जिनसे प्रकोप न होय ऐसे आहार और विहारके सेवन करनेसे प्रकोप नही होता है और जिनसे शमन न हो ऐसे विहार और आहार सेवन करनेसे शमन नहीं होते हैं ॥ ३३३ ॥

अथ दोषचयलक्षणमाह ।

सुश्रुतः-स्वस्थानस्थस्य दोषस्य वृद्धिः
स्याच्छ्वासकोष्ठता ॥ पीतावभासता
वह्निमन्दता चांगगौरवम् ॥ ३३४ ॥
आलस्यं चयहेतौ द्वेषश्च चयलक्षणम्॥
सञ्चयोपहता दोषा लभन्ते नोत्तरां गतिम्
ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः ३३५

सुश्रुत कहताहै कि-"जब अपने स्थानमें स्थित दोषों की वृद्धि होय तब श्वाससे कोष्ठ परिपूर्ण होजाताहै, अंगमें पीलापन दिखाई देता है, अग्नि मन्द होजाती है; शरीरमें भारीपन तथा आलस्य होजाता है और जिन पदार्थोंसे वृद्धि हुई होय उन पदार्थोंमें अरुचि होती है. ये लक्षण दोष संचयके जानने । यदि दोपोकी वृद्धिमे ही दोषोकी चिकित्सा कीजाय तो दोप उत्तरगति अर्थात् वृद्धिको प्राप्त नहीं होते और जो उस समय चिकित्सा न करीजाय तो दोप वृद्धि पाकर बहुत बलवान् होजातेहैं ॥ ३३४ ॥ ३३५ ॥

अथ वर्षर्त्तौ नियमाः ॥

वर्षासु प्रबलो वायुस्तस्मान्मिष्टादयस्त्रयः॥
रसाः सेव्या विशेषेण पवनस्योपशा-
न्तये ॥ ३३६ ॥
मिष्टादयस्त्रयः मधुराम्ललवणाः ॥
भवेद्वर्षासु वपुषः क्लिन्नत्वं यद्विशेषतः ॥
तत्क्लेशशान्तये सेव्या अपि कट्वादय-
स्त्रयः ॥ ३३७ ॥
कट्वादयस्त्रयः कटुतिक्तकषायाः ॥

स्वेदनं मर्दनं सेव्यं दध्युष्णं जांगलामिषम् ॥ गोधूमाः शालयो माषा जलं कौपं जलं च्युतम् ॥ ३३८ ॥ न भजेत्पूर्वपवनं वृष्टिं घर्मं हिमं श्रमम् ॥ नदीतीरं दिवास्वप्नं रूक्षं नित्यं च मैथुनम् ॥ ३३९ ॥

वर्षाऋतुमे वायु प्रबल होती है, इस कारण उसकी शान्ति करनेके लिये विशेष कर मधुर, खट्टे और खारी (निमकीन) रसोका सेवन करना चाहिये । विशेषकर वर्षाऋतुमे शरीर आर्द्र (भीजा) होजाता है इसलिये उसी क्लेदकी शान्तिके लिये तीक्ष्ण, कडवे और कसैले रसको भी सेवन करना चाहिये । वर्षाऋतुमें पसीना लेना, शरीरका मलवाना, दही, गरम पदार्थ, जंगली जीवोका मांस, गेहूँ, शालिधान, उडद इनका भक्षण और कुएँका तथा झरनेका पानी पिये । पूर्वकी पवनका सेवन वर्षामे भीगना, धूपमे रहना, हिम (ओस) का सेवन, परिश्रम करना, नदीके तीरपर रहना, दिनमें शयन करना, रूक्ष पदार्थोंका खाना और नित्य मैथुन करना इत्यादि कार्य वर्षाऋतुमे वर्जित है ॥ ३३६-३३९ ॥

अथ शरदृतौ नियमाः ।

सर्पिः स्वादुकषायतिक्तकरसा यच्छीतलं यल्लघु क्षीरं स्वच्छसितेक्षवः पटुरसः स्वल्पं पलं जाङ्गलम् ॥ गोधूमा यवमुद्गशालिसहिता नादेयमंशूदकं चन्द्रश्चन्दनमिन्दुराजिरजनी माल्यं पटो निर्मलः ॥ ३४० ॥ विश्रामः सुहृदां गणेषु मधुरा वाचः सरःक्रीडनं पित्तानां च विरेचनं बलवतो युक्तं शिरामोक्षणम् ॥ एतान्यत्र घनावसानसमये पथ्यानि भुञ्जेद्दधि व्यायामाम्लकटूष्णतीक्ष्णदिवसस्वप्नं हिमं चातपम् ॥ ३४१ ॥

अंशूदकलक्षणमाह ।

दिवसेऽर्ककरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः ॥ ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् ॥ ३४२ ॥

अत्र समग्रप्राप्त्यर्थं दिवसे दिवापादद्वये निशापादं च । चन्द्रः कर्पूरः ॥

इक्षवः शालयो मुद्गा सरोऽम्भः क्वथितं पयः ॥ शरद्येतानि पथ्यानि प्रदोषे चेन्दुरश्मयः ॥ ३४३ ॥

घीका सेवन करना, मधुर, कसैले तथा कडवे रसका खाना, दूधका पीना, शीतल और हलके पदार्थोंका सेवन स्वच्छ मिश्री, ईख, नमकीन रसवाले पदार्थ और अल्प जंगली जीवोका मांस, गेहूँ, जौ, मूंग और शालि चावलोका खाना, नदीका अथवा अंशूदक जल पीना, कपूर, चन्दन, चांदनीयुक्त रात्रि, पुष्प और निर्मल वस्त्र इनका सेवन करना, मित्रोंकी मंडलीमे बैठना, मधुर वचन बोलना, सरोवरोंमे क्रीडा करना, पित्त प्रकृतिवालोंको रेचन (जुल्लाब) लेना, बलवान् पुरुषोको फस्त खुलवाना इत्यादि कार्य करने शरदृतुमे हितकारी हैं । दहीका खाना, व्यायाम करना, खट्टा, तीक्ष्ण गरम और कडवे पदार्थोंका सेवन, दिनमे शयन, बरफका सेवन और धूपका सेवन इत्यादि कार्य अपथ्य (अहितकारी) है । ऊपर जो 'अंशूदक' कहा है उसके लक्षण यह हैं कि, -"जिस पानीके ऊपर दिनमें सूर्यकी और रात्रिमें चन्द्रमाकी किरणे पडती होय उसको 'अंशूदक' जानना । यह पानी स्निग्ध है और वातादि तीनो दोषोंको नष्ट करनेवाला है"। जिस जलके ऊपर दिनको सूर्यकी और रात्रिको चन्द्रमाकी किरणे पडती होंय वह जल ठीक अंशूदक है ऐसा जानना । शरदृतुमे ईख, शालिधान, मूँग, सरोवर (तालाव) का जल, उष्ण दूध और प्रदोषकालमे चन्द्रमाकी किरणे, ये पथ्य है ॥ ३४०-३४३ ॥

अथ हेमन्तर्तौ नियमाः ।

प्रातर्भोजनमम्लमिष्टलवणानभ्यंगघर्मश्रमान् गोधूमैक्षवशालिमाषपिशितं पिष्टं नवान्नं तिलान् ॥ कस्तूरीं वरकुंकुमागुरुयुतामुष्णाम्बु शौचं तथा स्निग्धं स्त्रीषु सुखं गुरूष्णवसनं सेवेत हेमन्तके ॥ ३४४ ॥

प्रातःकालमे भोजन, खट्टे, मीठे, तथा खारी (नमकीन) रस वाले पदार्थ खाने चाहिये । शरीरमे तैलमर्दन, पसीने निकालना, परिश्रम, गेहूँ, चावल, उडद और मांस खाना, मिष्टान्न, पकवान, नया अन्न और तेल खाना, केशर, अगर, कस्तूरी इन पदार्थोंका सेवन करना, शरीरको उष्ण जलसे स्वच्छ करना, स्त्रियोंमे स्नेहयुक्त सुख करना और भारी तथा गरम (रुई ऊनके) कपडे पहरना ये हेमन्तऋतुमे सेवन करने चाहिये ॥ ३४४ ॥

अथ शिशिरर्तौ नियमाः ।

शिशिरे शीतमधिकं रौक्ष्यं चादानकालजम् ॥ विशेषतस्ततस्तत्र हेमन्तस्य मतो विधिः ॥ ३४५ ॥

शिशिरऋतुमे शीत अधिक होता हैं, और वायु रसोंको खेंचता है, इसीसे रूक्षता भी अधिक होजाती है इस लिये विशेष करके इस ऋतुमे उपरोक्त हेमन्तचर्य्यानुसार वर्ताव करना चाहिये ॥ ३४५ ॥

अथ वसन्तर्तौ नियमाः ।

वान्तिं नस्यमथाभयां च मधुना व्यायाममुद्वर्तनं संसेवेत मधौ कफघ्नकवलं शूल्यं पलं जांगलम् ॥ गोधूमान्बहुशालिभेदसहितान्मुद्गान्यवान्षष्टिकाँल्लेपश्चन्दनकुंकुमागुरुकृतं रूक्षं कटूष्णं लघु ॥ ३४६ ॥ मिष्टमम्लं दधि स्निग्धं दिवास्वप्नं च दुर्जरम् ॥ अवश्यायमपि प्राज्ञो वसन्ते परिवर्जयेत ॥ ३४७ ॥

वसन्तऋतुमें वमनकी औषधियोंका सेवन, नाकमे औषधियोंको डालना, मधुके साथ हरडोंका खाना, व्यायाम करना, चूर्णसे शरीरको मर्दन करना, कफनाशक औषधियोंके द्वारा कुल्ले करना, लोहेसे सिका हुआ जगली जीवोंका मांस खाना, गेहू, अनेक प्रकारके चावल, मूँग, जौ और सॉठी चावलोका खाना, चन्दन, केशर, और अगरका लेप करना, तथा जो पदार्थ रूक्ष, तीक्ष्ण, गरम, और हलके होयँ उनका सेवन करना अत्यन्त हितकारी है। मीठी, खट्टी और चिकनी वस्तु, दही, दिनमे सोना और जो कठिनतासे पचे ऐसे पदार्थोंका खाना तथा ओसका सेवन यह सब वसन्त ऋतुमे अवश्य त्याग देने चाहिये ॥ ३४६ ॥ ३४७ ॥

अथ ग्रीष्मर्तुनियमाः

स्वादुस्निग्धहिमं लघु द्रवमयं द्रव्यं रसालां सितां सक्तुक्षीरमजाङ्गलानि सितया शालिं रसं मांसजम् ॥ ३४८ ॥ शीतांशुं शयनं दिवा मलयजं शीतं पयः पानकं सेवेतोष्णदिने त्यजेत्तु कटुकक्षाराम्लघर्मश्रमान् ॥ ३४९ ॥

ग्रीष्म ऋतुमे जो पदार्थ स्वादु (मीठे), स्निग्ध, शीतल हलके और द्रवरूप (पतले) होय उनको खाय, रसाला (शिखरन) खॉड, सत्तू, दूध, अनूपदेशके जीवोंका मांस, खॉडके साथ शालिचावलोंका भात और मांस रसका खाना, चन्द्रमाकी किरणोंका सेवन, दिनमे सोना, चन्दनका लगाना शीतल जल और शर्वत या इमली आदिके द्वारा बनाये पानकोंका पीना, ग्रीष्मऋतुमे हितकारी है। चरपरे, खारी और खट्टे पदार्थोंका त्याग करे, तथा धूपमे रहना और परिश्रम करना त्याग देवे ॥ ३४८ ॥ ३४९ ॥

ऋतुष्वेषु य एतैस्तु विधिभिर्वर्तते नरः ॥ दोषानृतुकृतान्नैव लभते स कदाचन ॥ ३५० ॥

इति श्रीलटकनतनय—श्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे दिनचर्यादिप्रकरण चतुर्थम् ॥ ४ ॥

जो मनुष्य इन ऋतुओंमें कही हुई विधिके अनुसार चलता है, वह मनुष्य ऋतुकृत दोषोंको कदापि प्राप्त नहीं होताहै ॥ ३५० ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीवनी भाषाटीकायां दिनचर्यर्तुचर्यानामक चतुर्थप्रकरण समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं मिश्रवर्गप्रकरणम् ५.

अथ व्याधेर्लक्षणम् ।

तत्र वाग्भटः—रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता ॥ रोगा दुःखस्य दातारो ज्वरप्रभृतयो हि ते ॥ १ ॥ ते च स्वाभाविकाः केचित्केचिदागन्तवः स्मृताः ॥ मानसाः केचिदाख्याताः कथिताः केऽपि कायिकाः ॥ २

तत्र स्वाभाविकाः शरीरस्वभावादेवजाताः क्षुत्पिपासासुषुप्तिजरामृत्युप्रभृतयः । अथ वा स्वस्वभावादुत्पत्तेर्जाता स्वाभाविकाः सहजा इति यावत् । ते च जन्मान्धत्वादयः । आगन्तवोऽभिघातादिजनिताः । अथ वा जन्मोत्तरभाविनः । मानसाः कामक्रोधलोभमोहभयाभिमानदैन्यपैशुन्यशोकविषादेर्ष्यासूयामात्सर्यप्रभृतयः। अथ वा उन्मादापस्मारमूर्च्छाभ्रममोहतमःसंन्यासप्रभृतयः । कायिकाः पाण्डुरोगप्रभृतयः ॥

वाग्भटका वचन है कि–"दोषोंकी विषमताका नाम रोग है और दोषोंकी समताका नाम आरोग्यता है। इसमें रोग प्राणियोंको दुःखके देनेवाले हैं और वे ज्वरादिक जानने। उन्होमे कोई स्वाभाविक, कोई आगंतुक, कोई मानसिक और कोई कायिक, इस भाँति रोग चार प्रकारके कहे हैं"। भूँख, प्यास, शयनकी इच्छा, वृद्धावस्था और मृत्यु आदि, स्वाभाविक रोग हैं या जो स्वभावसे जन्मसे ही शरीरके साथ उत्पन्न रहतेहै उनको स्वाभाविक रोग जानै, ऐसे ही जन्मांधता आदि स्वाभाविक रोग समझने चाहिये। लकडी पत्थर आदिकी चोटके लगनेसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनको आगतुक रोग (आकस्मिक–रोग) समझना, अथवा जन्म होनेके पश्चात् जो रोग उत्पन्न होय उनको आगतुक रोग जानना। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अभिमान, दीनता, चुगली, शोक, खेद, ईर्षा, पराये गुणोंमें दोषोका ढूँढना और मात्सर्यता आदि, अथवा उन्माद, अपस्मार (मृगी), मूर्च्छा, भ्रम, मोह, अधकार और सन्यास आदि जो रोग उत्पन्न होतेहैं उनको मानसिक अर्थात् मनसे उत्पन्न हुए रोग जानने और पाण्डुरोग आदि जो रोग उत्पन्न होते हैं उनको कायिक रोग जानने ॥ १ ॥ २ ॥

अथ व्याधिभेदाः।

कर्मजाः कथिताः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे ॥ कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ॥ ३ ॥

कोई व्याधि कर्मसे होती हैं, कोई व्याधि वात पित्त तथा कफ रूप दोषोंसे होती हैं, और कोई व्याधि कर्म तथा दोष इन दोनोंसे होती हैं, अर्थात् कर्मज, दोषज, और कर्मदोषज इस प्रकार व्याधिये तीन प्रकारकी कहीं है ॥ ३ ॥

तत्र कर्मजा व्याधयः।

यत् प्राक्तनं दुष्कर्म प्रबलं केवलभोगनाश्यम्, प्रायश्चित्तनाश्यं वा, ततो जाताः न तु दुष्टवातादिदोषेण जनितास्तथा ॥ यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाव्याधिचिकित्सितः ॥ न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः ॥ ४ ॥

जो पूर्वजन्मके प्रबल दुष्ट कर्म हैं, उनको भोगनेसे अथवा प्रायश्चित्त करनेसे कर्मज व्याधिये दूर होती है। यह कर्मज रोग पूर्वोपार्जित कर्मसे उत्पन्न होते हैं। वातादिक दोषोंकी दुष्टतासे उत्पन्न नही होते हैं। जिनका शास्त्रानुसार निर्णय करके योग्य चिकित्सा करनेसे भी जो शांत नही होते उन रोगोको विद्वान् लोग कर्मज रोग कहते है ॥ ४ ॥

दोषजा व्याधयः।

दोषजाः–मिथ्याहारविहारप्रकुपितवातपित्तकफजाः। ननु मिथ्याहारविहारिणामपि प्राक्तनसुकृतेन नैरुज्यं दृश्यत एव। ततो दोषजेष्वपि प्राक्तनं दुष्कर्मैव कारणम्, तत्कथं दोषजा इत्युच्यंते। दोषजेष्वपि वस्तुतः आदिकारणं दुष्कर्म वर्तत एव, किन्तु तत्र मिथ्याहारविहारदूषिता दोषा हेतवो दृश्यन्त इति दोषजा इत्युच्यन्त इति समाधिः ॥

मिथ्या आहार और विहार करनेपर कुपित हुए वातपित्त और कफसे जो रोग उत्पन्न होयँ उनको दोषज रोग जानना। यहाँ शंका होती है कि–मिथ्या आहार और विहार करनेवाले मनुष्यभी पूर्वजन्मके पुण्यसे रोगरहित देखनेमे आते हैं, इसलिये दोषज रोगोमे भी पूर्वजन्मके पापकर्म ही कारणहै–फिर उनको दोषज रोग कैसे कहा? उसका उत्तर कहते है कि–वास्तवमे दोषज रोगोंमे भी पापकर्म ही आदिकारण है, परन्तु तौभी उन रोगोंमे मिथ्या आहार और विहारसे दूषित हुए वातादिक दोष भी कारणरूप देखनेमे आतेहै. इससे 'दोषज कहे जाते हैं।

कर्मदोषोद्भवा व्याधयः।

स्वल्पदोषा गरीयांसस्ते ज्ञेयाः कर्मदोषजाः ॥ ५ ॥

अत्र कारणं दुष्कर्म प्रबलं यतो दोषाल्पत्वेऽपि व्याधेर्गरीयस्त्वं तत्कर्मक्षयादेव क्षीणं भवति। दोषाः स्वल्पा अपि निदानत्वेनोक्ता दृश्यन्त एवेति दोषाणां कारणता मन्यन्त इति ॥

जो रोग वात पित्त आदि दोषोके अल्प होनेपर भी अधिक भयकर होजायँ उनको कर्मदोषज जानना।

दोष अल्प होनेपरभी अधिक रोगका होना पूर्वजन्मका

पापकर्म ही कारणहै और वे पापकर्मके भोगनेसे ही क्षीण होते हैं. स्वल्पदोष भी रोगोंके निदानरूप हुए देखनेमें आते हैं, इस लिये उन रोगोंमें दोषोंका भी कारणत्व माना है ॥ ५ ॥

अथ रोगक्षयहेतवः ।

कर्मक्षयात्कर्मकृता दोषजाः स्वस्वभेषजैः ॥ कर्मदोषोद्भवा यान्ति कर्मदोषक्षयात् क्षयम् ॥ ६ ॥

दोषजाः स्वस्वभेषजैरिति दोषजेषु आदिकारणं दुष्कर्म तद्भेषजार्थं द्रव्यक्षयादिजनितदुःखभोगेन कटुतिक्तकषायाद्यहृद्यभक्षणादिजनितदुःखभोगेन च क्षयं यान्ति । शेषा दुष्टा हेतवो दोषास्ते स्वस्वभेषजैः क्षयं यान्ति इत्यर्थः ॥

कर्मज रोग कर्मके क्षय होनेसे क्षीण होते हैं, दोषज रोग अपनी अपनी औषधियोंमे क्षीण होते हैं, और कर्म तथा दोष इन दोनोंसे उत्पन्न हुए रोग कर्म तथा दोष इन दोनोंके नष्ट होनेसे क्षय होते हैं । दोषज रोगोंका अपनी अपनी औषधियोंमे क्षय होना कहा रसका ऐसा अर्थ समझना कि—दोषज रोगोंका मूल कारण दुष्कर्म है, वे औषधि आदिके लिये क्षय हुए धनके दुःख भोगनेसे, और तीक्ष्ण, कडवे तथा कषाय आदि अहृद्य पदार्थोंके भक्षणके द्वारा उत्पन्न हुए दुःख भोगनेसे क्षयको प्राप्त होतेहैं, और शेष जो दुष्ट हेतु हैं वे अपने अपने दोषोंकी औषधियोंमें क्षय होतेहैं ॥ ६ ॥

अथ त्रिविधा रोगाः ।

साध्या याप्या असाध्याश्च व्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ॥ सुखसाध्यः कष्टसाध्यो द्विविधः साध्य उच्यते ॥ ७ ॥

साध्य, याप्य और असाध्य इसप्रकार रोग तीन प्रकारके कहेहै तहाँ साध्यके सुखसाध्य और कष्टसाध्य इसप्रकार दो भेद है ॥ ७ ॥

अथ याप्यलक्षणमाह ।

यापनीयं तु तं विद्यात्क्रिया धारयते हि यम् ॥ क्रियायां तु निवृत्तायां सद्यो यश्च विनश्यति ॥ ८ ॥ प्राप्ता क्रिया धारयति सुखिनं याप्यमातुरम् ॥ प्रपतिष्यदिवागारं स्तम्भो यत्नेन योजितः ॥ ९ ॥

जो रोग क्रिया (चिकित्सा) को धारण करले, अर्थात् जो रोग चिकित्सा करनेतक शांत रहे वह रोग यापनीय जानना और क्रिया (चिकित्सा) के निवृत्त होजानेपर रोगीको तुरत नष्ट करदेताहै । जिसप्रकार गिरनेवाले घरको यत्नसे लगाया हुआ खम रोक लेताहै उसीप्रकार याप्यरोग आतुर हुए रोगीकी करी हुई चिकित्सासे ही सुखपूर्वक शरीर धारण करताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

साध्ययाप्ययोश्चिकित्सावश्यकत्वम् ।

साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्यश्चासाध्यतां तथा ॥ घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावताम् ॥ १० ॥

जो रोग साध्य हैं उनकी चिकित्सा न करी जाय तो याप्य होजातेहैं, और जो याप्य हैं उनकी चिकित्सा न करी जाय तो असाध्य होजातेहैं, और जब रोग असाध्य होजाते हैं तब प्राणोंका नाश करतेहैं ॥ १० ॥

अक्रियावतां चिकित्सारहितानाम् ॥

अथ उपद्रवस्य लक्षणम् ।

रोगारम्भकदोषस्य प्रकोपादुपजायते ॥ योऽन्यो विकारः स बुधैरुपद्रव इहोदितः ११

रोगोंको आरम्भ करनेवाले दोषोंका प्रकोप होनेसे जो उनके साथ अन्यविकार उत्पन्न होतेहैं उनको विद्वान्लोग उपद्रव कहतेहैं ॥ ११ ॥

अथ अरिष्टस्य लक्षणम् ।

रोगिणो मरणं यस्मादवश्यम्भावि लक्ष्यते ॥ तल्लक्षणमरिष्टं स्याद्रिष्टं चापि तदुच्यते १२

जिन लक्षणोंके होनेसे रोगीकी अवश्य मृत्यु होना जाना जाय उन लक्षणोंको अरिष्ट कहते हैं और रिष्ट भी कहते हैं ॥ १२ ॥

अथ चिकित्साया लक्षणम् ।

या क्रिया व्याधिहरणी सा चिकित्सा निगद्यते ॥ दोषधातुमलानां या साम्यकृत्सैव रोगहृत् ॥ १३ ॥

क्रियाऽत्र कर्म, व्याधिर्हन्यतेऽनयेति व्याधिहरणी । करणाधिकरणयोश्चेति सूत्रेण करणार्थे ल्युट् ॥ तथा च—

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ॥ सा चिकित्सा विकाराणां कर्म

तद्भिषजां मतम् ॥ १४ ॥ या ह्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ॥ सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥ १५ ॥

क्रियाऽत्र चिकित्सा ॥ तथा च अमरसिंहः—आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं सम्प्रधारणम् ॥ उपायः कर्म चेष्टा च चिकित्सा च नव क्रिया ॥ १६ ॥ इति ॥

जो क्रिया चिकित्सा रोगोको हरण करतीहै, उस क्रियाको उपाय कहते हैं और जो क्रिया दोष, धातु और मलको समान करै वही क्रिया रोगोको हरनेवाली है। और भी लिखाहै कि—जिन क्रियाओंसे शरीरमें धातुयें समान स्थितिमें होयँ उसको चिकित्सा कहतेहैं और वही वैद्योंका कर्म है। जो क्रिया उत्पन्न हुए रोगोंको शमन करैं और अन्य रोगोंको उत्पन्न नहीं करै उसको चिकित्सा समझना चाहिये परन्तु जो एक रोगको शमन करै और अन्य-रोगोको उत्पन्न करै वह क्रिया चिकित्सा नहीं कहातीहै। इस विषयमें क्रियाशब्द चिकित्सावाचक है. उसमें अमरकोशका प्रमाण है कि "क्रिया शब्दके—आरम्भ, निष्कृति (प्रायश्चित्त), शिक्षा, पूजन, सम्प्रधारण (विचार), उपाय, कर्म, चेष्टा और चिकित्सा ये नौ अर्थ हैं॥ १३—१६॥

अथ चिकित्साविध्युपदेशः।

जातमात्रश्चिकित्स्यः स्यान्नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः॥ वह्निशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ १७ ॥ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ॥ ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ १८ ॥

अयमर्थः—भिषक् आदौ रोगं परीक्षेत विचारयेत्। ततः पश्चाद्रोगौषधविचारानन्तरं ज्ञानपूर्वं सावधानो न त्वविज्ञाय कर्म, चिकित्सामौषधदानादिरूपां समाचरेत् इत्यर्थः॥

रोगकी उत्पन्न होते ही तुरन्त चिकित्सा करनी चाहिये, परन्तु रोगको अल्प (थोडा) जानकर उसकी उपेक्षा (बेखबरी) न करै अर्थात् भूल ना जाय, क्योंकि रोग अग्नि, शत्रु और विषके सदृश अल्प होय तो भी अधिक विकारको करताहै। वैद्यको प्रथम रोगकी परीक्षा करनी चाहिये, पश्चात् औषधिका विचार करै और तत्पश्चात् ज्ञानपूर्वक भिषक्कर्म अर्थात् चिकित्सा करै ॥ १७ ॥ १८ ॥

रोगाऽज्ञानेन चिकित्साकरणे दोषः।

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्॥ अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥ १९ ॥

स्वैरितया सिद्धिर्भवति नापि भवतीत्यर्थः॥ अन्यच्च—भेषजं केवलं कर्तुं यो जानाति न चामयम् ॥ वैद्यकर्म स चेत्कुर्याद्वधमर्हति राजतः ॥ २० ॥

जो वैद्य औषधियोंके विधानको जानते हैं और रोगोको विना जाने चिकित्सा करतेहैं उनकी सिद्धि कदाचित् होभी जातीहै और कभी नहीं भी होतीहै। अन्य ग्रंथोमेंभी कहा है कि—"जो मनुष्य केवल औषधि करना जानताहै परन्तु रोगोको नहीं पहिचानता, वह यदि वैद्यकर्म (चिकित्सा) करै तो राजासे वध करनेके योग्य होताहै ॥ १९ ॥ २० ॥

रोगज्ञाने भेषजाज्ञाने दोषः।

यस्तु केवलरोगज्ञो भेषजेष्वविचक्षणः॥ तं वैद्यं प्राप्य रोगी स्याद्यथा नौर्नाविकं विना ॥ २१ ॥

नाविकं कर्णधारं विना यथा नौः सङ्कटे पतति तथा रोगीत्यर्थः॥ अन्यच्च—यस्तु केवलशास्त्रज्ञः क्रियास्वकुशलो भिषक् ॥ स मुह्यत्यातुरं प्राप्य यथा भीरुरिवाहवम् ॥ २२ ॥

जो वैद्य केवल रोग जानता होय, परन्तु औषधि करनेमें विचक्षण न होय वह रोगी उस वैद्यको प्राप्त होकर जिस प्रकार मल्लाहोंके विना नाव संकटमें पडती है उसीप्रकार रोगी संकटमें पडताहै। अन्यग्रन्थमेंभी कहाहै कि—जो वैद्य केवल वैद्यकशास्त्रको जानताहै, परन्तु चिकित्सा करनेमें कुशल नहीं है, वह वैद्य जिस प्रकार कायरपुरुष लडाईको देखकर भयभीत होताहै उसीप्रकार रोगीके पास जाकर मोह अर्थात् भयको प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

रोगौषधयोर्ज्ञाने गुणः।

यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः॥ देशकालविभागज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ २३ ॥ आदावन्ते रुजां ज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः॥ भेषजानां विधानेन ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ २४ ॥

चिकित्सितमित्यत्र भावे क्तः ॥

विकारनामाकुशलो न जिहीयात्कदाचन ॥ न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥ २५ ॥

न जिहीयान्न लज्जेत्। ध्रुवा नियता ॥

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः ॥ अनुक्तमपि दोषाणां लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥ २६ ॥ ये न कुर्वन्त्यसाध्यानां चिकित्सां ते भिषग्वराः ॥ अतो वैद्यैः श्रमः कार्यः साध्यासाध्यपरीक्षणे ॥ २७ ॥

रोगज्ञानोपाया अग्रे वक्ष्यन्ते ॥

जो वैद्य रोगोंके भेदोंको जानता होय, सम्पूर्ण औषधियोंमें विचक्षण होय और देशकालके विभागको भी जानता होय उस वैद्यकी निःसदेह सिद्धि होतीहै। वैद्य आदिमें और अन्तमें रोग जाननेका प्रयत्न करै, पश्चात् औषधियोकी विधिके अनुसार चिकित्सा करै। कोई विकार (रोग) का नाम समझमें नहीं आवे तो वैद्य उसमें कभी लज्जा नहीं करै, क्योंकि, सम्पूर्ण रोगोंकी स्थिति नामसे ही नियत नहीं है। दोषोंके विना रोग नहीं होते इसलिये वैद्य, किसी रोगका नाम शास्त्रमें न कहा होय तौ भी दोषोंका चिह्न देखकर उसी दोषके अनुसार चिकित्सा करै। जो असाध्य रोगोकी चिकित्सा नहीं करते वे उत्तम वैद्य हैं, इसकारण वैद्योको साध्य असाध्यकी परीक्षामें यत्न करना चाहिये। रोग जाननेके उपाय आगे कहेंगे ॥ २३-२७ ॥

अथ चिकित्सापद्धतिः।

शीते शीतप्रतीकारमुष्णे तूष्णनिवारणम् ॥ कृत्वा कुर्यात्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥ २८ ॥ अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न क्रिया कृता ॥ क्रियाहीनाऽतिरिक्ता च साध्येष्वपि न सिध्यति ॥२९॥

अयमर्थः-काले चिकित्साऽवसरे। अप्राप्ते अनागते। या क्रिया चिकित्सा। यथा ज्वरे जीर्णतामप्राप्ते तरुण एव कषायदानक्रिया न सिद्ध्यति। या च क्रिया चिकित्सावसरे प्राप्ते न कृता। अर्थात्पश्चात्कृता। यथा दाहे कथञ्चिच्छान्ते पश्चाच्छीतानुलेपनादिक्रिया, तथा हीनातिरिक्ता च क्रिया साध्येष्वपि न सिध्यति ॥

अतिरिक्तां हीनां च क्रियां वर्जयन्नाह।

विकारेऽल्पे महत्कर्म क्रिया लघ्वी गरीयसी ॥ द्वयमेतदकौशल्यं कौशल्यं युक्तकर्मता ॥ ३० ॥ क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ॥ पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासङ्करो हितः ॥ ३१ ॥

भिन्नरूपाभिस्तु क्रियाभिः सांकर्यमपि न दोषाय। यत आह-

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिर्न क्रियासंकरो हितः ॥ ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः सांकर्यं नैव दुष्यति ॥ ३२ ॥

अत एवोक्तम्-लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ॥ अवलेहोऽञ्जनं चापि प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ३३ ॥

ज्वर इति शेषः ॥

न चैकान्तेन निर्दिष्टे शास्त्रे निविशते बुधः॥ स्वयमप्यत्र भिषजा तर्कनीयं चिकित्सता ॥ ३४ ॥ यत आह-उत्पद्यते च साऽवस्था दोषकालबलं प्रति ॥ यस्यां कार्यमकार्यं स्यात्कर्म कार्यं विवर्जितम् ॥ ३५ ॥

विवर्जितं कर्म कर्तव्यं भवति इत्यर्थः ॥

शीतसे रोग हुआ होय तौ शीतका और गरमीसे रोग हुआ होय तौ गरमीका निवारण करनेके पश्चात् योग्य चिकित्सा करै, परन्तु चिकित्साका समय जाने न देवे। चिकित्साका समय प्राप्त न होनेपर जो चिकित्सा करीजाय अथवा समय प्राप्त होनेपर नहीं करी जाय और पीछेसे करीजाय, अथवा जो चिकित्सा कम रोगमे अधिक और अधिक रोगमें कम करी जाय वह चिकित्सा रोग साध्य होनेपर भी कार्य सिद्ध नहीं करसक्ती। जिस प्रकार ज्वर जीर्ण नही होनेपर नवीन ज्वरमे ही जो काथ आदिक देनेकी चिकित्सा करीजाय वह उपयोगी नहीं होती, तथा जिस प्रकार दाह शान्त होनेके पश्चात् शी लेपादिक चिकित्सा करे तो वह भी

उपयोगी नही होती और वैसेही हीन वा अधिक चिकित्सा करे तो भी किसी कामकी नही होती । अल्पविकार होनेपर भारी चिकित्सा करै अथवा भारी रोगमें अल्प चिकित्सा करे तो ये दोनो अयोग्य हैं । एक क्रियासे गुण होय तो उस क्रियाका वेग शांत होनेके पश्चात् अन्य क्रिया करें परन्तु साथ साथ दोनो क्रिया नही करै, क्योंकि, मिश्रित क्रिया हितकारी नही होती । इसमे भी ऐसा समझना कि–समान प्रकारकी क्रिया इकट्ठी करनेमें दूषित हैं, परन्तु अलग अलग प्रकारकी क्रियाये एकत्र करी जांय तो दूषित नहीं होती, कहा है कि–त्रिदोषसे हुए ज्वरमें प्रथमहीसे लघन वालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह और अंजनका उपयोग करै । इससे उपरोक्त बात सिद्ध होती है। विद्वान् वैद्योंको एक शास्त्रके ऊपर ही आग्रह रखकर नहा बैठना चाहिये परन्तु चिकित्सा करते समय अपनी बुद्धिसे तर्क वितर्क भी करना चाहिये क्योंकि दोष और कालके बलसे कभी कभी रोगकी ऐसी भी स्थिति होती है कि, जिसमें शास्त्रकी रीतिसे करने योग्य होय वह नही करना चाहिये, और नही करने योग्य होय वह करना चाहिये ॥ २८–३५ ॥

अथ चिकित्सायाः फलम् ।

क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः ॥ कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ ३६ ॥ आयुर्वेदोदितां युक्तिं कुर्वाणा विहिताश्च ये॥पुण्यायुर्वृद्धिसंयुक्ता नीरोगाश्च भवन्ति ते ॥३७॥

चिकित्सा करनेसे कही धन मिलता है, कही मित्रता होती है, कही धर्म होता है, कही यश मिलता है और कही क्रिया करनेसे अभ्यास बढता है, इस लिये चिकित्सा किसी समय भी निष्फल नही होती । जो आयुर्वेदोक्त और धर्मशास्त्रोक्त युक्तियोंसे चलता है वह रोगरहित होता है और पुण्य तथा आयुकी वृद्धि होती है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथ वैद्योपजीविका ।

नैव कुर्वीत लोभेन चिकित्सापुण्यविक्रयम् ॥ ईश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थं तु वृत्तये ॥ ॥३८॥ चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः ॥ स यत्करोति सुकृतं सर्वं तद्भिषगश्नुते ॥३९॥ न देशो मनुजैर्हीनो न मनुष्या निरामयाः ॥ ततः सर्वत्र वैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः ॥४०॥

वैद्य लोभके वश हो असमर्थ लोगोंसे धन लेकर चिकित्साका पुण्य विक्रय नही करै, परन्तु जो लोग समर्थ और धनवान् होय उनसे आजीविकाके लिये धन लेनेकी इच्छा करै । जो दुर्बुद्धि मनुष्य अपने शरीरकी चिकित्सा कराकर उसके बदले वैद्यको कुछ नही देताहै, वह मनुष्य जो कुछ पुण्य करता है वह सम्पूर्ण वैद्यको प्राप्त होताहै । मनुष्योंके विना देश नही है और रोगके विना मनुष्य नही हैं इसलिये सर्व स्थानोंमे वैद्यकी आजीविकाकी सिद्धि होती है ॥ ३८–४० ॥

अथ चिकित्साया अङ्गानि ।

रोगी दूतो भिषग्दीर्घमायुर्द्रव्यं सुसेवकः॥ सदौषधं चिकित्साया इत्यंगानि बुधा जगुः ॥ ४१ ॥

रोगी १, दूत २, वैद्य ३, दीर्घायु ४, द्रव्य ५, श्रेष्ठ सेवक ६ और उत्तम औषध ७ ये सात चिकित्साके अग हैं, ऐसा विद्वान् लोग कहतेहै ॥ ४१ ॥

तत्र रोगिणो लक्षणमाह ।

रोगो यस्यास्ति रोगी स स चिकित्स्यस्तु यादृशः ॥ यादृशश्चाचिकित्स्योऽपि वक्ष्यमाणो निशम्यताम् ॥ ४२ ॥

तत्र चिकित्स्यः ।

निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेन चक्षुषा॥ चिकित्स्यो भिषजां रोगी वैद्यभक्तो जितेन्द्रियः ॥ ४३ ॥

सत्त्वं व्यसनाभ्युदयक्रियादिषु अविह्वलताकरं तेन युक्तः । चक्षुषा चक्षुरुपलक्षितेन । ततोऽन्येनापि इन्द्रियेण चिकित्स्यः रोगात् मोचयितव्यः । अन्यच्च–

आयुष्मान्सत्त्ववान्साध्यो द्रव्यवान्मित्रवानपि ॥ चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ४४ ॥

आयुर्वेदोऽस्तीति मतिर्यस्य स आस्तिकः ।

जिसको रोग होय उस मनुष्यको रोगी कहतेहैं. अब उसमे किस रोगकी चिकित्सा करे और किसकी न करे

इस विषयमें कहताहूँ सुनः–जिसकी स्वाभाविक प्रकृति और शरीरका वर्ण बदला न होय, सत्त्वयुक्त (धैर्ययुक्त, आकुलतारहित) होयँ, जिसकी चक्षु आदि इन्द्रियें योग्य स्थितिमें होयँ, जो जितेन्द्रिय होय और जिसकी वैद्यके ऊपर भक्ति होय ऐसा रोगी वैद्यकी चिकित्सा करने योग्य है । ग्रथान्तरमें भी कहा है कि– जो रोगी आयुवान्, धैर्यवान्, धनवान् मित्रवान्, साध्य, वैद्यका कहना माननेवाला और वैद्यक शास्त्रको माननेवाला होय उस रोगीकी वैद्य चिकित्सा करे ॥ ४२–४४ ॥

अथ अचिकित्स्यः ।

चण्डः साहसिको भीरुः कृतघ्नो व्यग्र एव च ॥ शोकाकुलो मुमूर्षुश्च विहीनः करणैश्च यः ॥४५॥ वैरी वैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनश्च शंकितः ॥ भिषजामविधेयाः स्युर्नोपक्रम्या भिषग्विधाः ॥ एतानुपाचरन्वैद्यो बहून्दोषानवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

चण्डोऽत्यन्तक्रोधशीलः । साहसिकः अविचार्यकारी । भीरुर्भयशीलः । कृतघ्नो वैद्यकृतोपकारलोपकः । व्यग्रः व्याकुलः । विहीनः करणैश्च यः निजेन्द्रियशक्तिरहितः । वैरी न चिकित्स्यः, कदाचिद्रोगोद्रेके अपवादभयात् । वैद्यविदग्धो वैद्यधूर्तः ॥

तथा च सुश्रुतः ।

स न सिध्यति वैद्यस्तु गृहे यस्य न पूज्यते ॥ शंकितो वैद्यविश्वासरहितः । भिषजामविधेयाःवैद्यवचनाविधायिनः । भिषग्विधाः वैद्यतुल्याः एते न उपक्रम्याः न चिकित्स्याः ॥

अत्यंत क्रोधी, विना विचारे कार्य करनेवाला, भयभीत, कृतघ्न, व्याकुल, शोकसे व्याप्त, मृत्युकी इच्छा करनेवाला इन्द्रियोंकी शक्ति रहित, श्रद्धा रहित, वैद्यके ऊपर शंका करनेवाला अथवा वैद्यका वचन नहीं माननेवाला ऐसे रोगीकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । वैरीकी चिकित्सा भी नहीं करनी चाहिये क्योंकि, कदाचित् रोग बढजाय तो वैद्यके ऊपर अपवाद आता है । जो रोगी वैद्यके सदृश होय और जो रोगी वैद्यको ठगनेवाला होय उसकी भी चिकित्सा नहीं करे । सुश्रुत कहता है कि–जिस घर वैद्यकी पूजा नहीं होती उसकी कदापि सिद्धि नहीं होती ॥ ४५॥४६ ॥

अथ दूतस्य लक्षणम् ।

यश्चिकित्सकमानेतुं याति दूतः स कथ्यते ॥ स च यादृक् समुचितस्तादृगत्र निगद्यते ॥ ४७ ॥ दूताः सुजातयोऽव्यंगाः पटवो निर्मलाम्बराः ॥ सुखिनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः ॥ ४८ ॥ सजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि संगताः ॥ भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे ॥ ४९ ॥ सजातयः रोगिसमानजातयः ॥

यस्यां प्राणमरुद्याति सा नाडी जीवसंज्ञिता ॥ ५० ॥

जो मनुष्य वैद्यके बुलानेको जाय उसको दूत कहतेहैं, वह दूत कैसा होना चाहिये सो कहतेहैं । दूत–उत्तमकुलका, सम्पूर्ण अंगयुक्त, चतुर, निर्मलवस्त्रों करके युक्त, सुखी, घोडे बैलकी सवारी सहित, श्वेत फल फूल धारण करे, रोगीका जातिवाला, सुन्दर चेष्टायुक्त और सजीव दिशामें स्थित होनेवाला तथा वैद्यके समयमें आयाहुआ ऐसा दूत रोगीके सुखका कारण जानना । दूतकी जिस दिशामें नासिकाकी वायु चलती होय उसे सजीव दिशा कहते हैं उसी दिशामें वैद्यको मिले तो उससे रोगीको सुख होताहै ॥ ४७–५० ॥

अथ दूतस्य यात्रायां शकुनविचारः ।

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ॥ न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं तु सुखावहम् ॥ ५१ ॥ प्रदीप्तमग्निम् ॥

दूतो रोगी च रिक्तहस्तो वैद्यं न पश्येत् । तथाहि–रिक्तहस्तो न पश्येत्तु राजानं भिषजं गुरुम् ॥ दैवज्ञं देवतां मित्रं फलेन फलमादिशेत् ॥ ५२ ॥

दूत रोगीके लिये वैद्यको बुलाने जाता होय तब सौम्य (शांत) शकुन होय तो रोगीको शुभ नहीं है । परन्तु बलतीहुई अग्नि आदि प्रदीप्त शकुन हों तो सुखदायक हैं । दूत अथवा रोगी रीते हाथ वैद्यको नहीं देखे, क्योंकि कहाहै कि, राजा, वैद्य, गुरु, ज्योतिषी, देवता और मित्र इनके समीप रीते हाथों न जाय, फलको लेकर

जाय क्योंकि, फलसे ही श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ सुवैद्यस्य लक्षणम् ।

चिकित्सां कुरुते यस्तु स चिकित्सक उच्यते ॥ स च यादृक्समीचीनस्तादृशोऽपि निगद्यते ॥ ५३ ॥ तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयंकृती ॥ लघुहस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः ॥ ५४ ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान्व्यवसायी प्रियंवदः॥ सत्यधर्मपरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते ॥ ५५ ॥

दृष्टकर्मा दृष्टा परेण कृता चिकित्सा येन सः । स्वयंकृती स्वयं चिकित्साकुशलः । लघुहस्तः सिद्धिमद्धस्तः ॥

जो चिकित्सा करे उसको चिकित्सक अर्थात् वैद्य कहतेहैं, वह वैद्य जैसा उत्तम होना चाहिये सो कहतेहैं। यथार्थ शास्त्रके अर्थको जाननेवाला, जिसने अन्यकी करीहुई चिकित्सा देखीहो, आप भी चिकित्सामें कुशल, हलके हाथवाला अर्थात् सिद्ध हाथवाला, पवित्र, शूर (उत्साह युक्त), जिसके पास औषधि आदि तयार होयँ, जो समयपर योग्य उपचार जानता होय, बुद्धिमान्, उद्योगी, प्रिय बोलनेवाला और सत्य तथा धर्ममे तत्पर रहनेवाला ऐसा वैद्य प्रशंसाके योग्य होताहै ॥ ५३–५५ ॥

अथ निषिद्धो वैद्यः ।

कुचैलः कर्कशस्तब्धो ग्रामीणः स्वयमागतः ॥ पंच वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा यदि ॥ ५६ ॥

कर्कशः अप्रियवादी । स्तब्धः साभिमानः। ग्रामीणः व्यवहाराचतुरः ॥

मलिन वस्त्र युक्त, अप्रिय बोलनेवाला, अभिमानी, कुग्रामी (व्यवहारमें मूर्ख), और विना बुलाया अपने आप आनेवाला ऐसा वैद्य धन्वन्तरिके सदृश भी होय तौ भी पूज्य नही होताहै ॥ ५६ ॥

अथ वैद्यस्य कर्म ।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः॥ एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ५७ ॥

अस्यायमर्थः–व्याधेः सम्यक् परिचयो व्यथाशांतिकरणं च वैद्यस्य कर्म, न तु वैद्यः आयुषः प्रभुरित्यर्थः । अपरे तु एवं व्याचक्षते । व्याधेस्तत्त्वतः परिचयो वेदनायाः शान्तिकरणं च । एतदेव न वैद्यस्य वैद्यत्वं किन्तु वैद्यः आयुषः प्रभुः आगन्तुमृत्युशतहरणात् ॥ तथा च सुश्रुते धन्वन्तरिः–

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते ॥ तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः ॥ ५८ ॥

अयमर्थः–अथर्वाणः अथर्वतत्त्वज्ञत्वेन अथर्वतुल्यः मृत्युमेकोत्तरशतं प्रचक्षते तत्रैको मृत्युः कालसंयुक्तः । काल आयुषोऽन्ते शरीरिणामवश्यं संहर्ता । सर्वैरुपायैर्निवारयितुमशक्यः स ब्रह्मादीनायुषोऽन्ते संहरति ॥

अत आह लिङ्गपुराणे कार्तिकेयं प्रति महादेवः–"ममायुर्ग्रसते कालः कुतः पुत्र रसायनम् ॥" इति ॥

तेन कालेन संयुक्तः संहराय नियुक्तः सोऽवश्यम्भावी । शेषाः शतं मृत्यवः आगन्तवः आगन्तुरूपहेतुजन्मानः कार्यकारणयोः अभेदोपचारात् ॥ आगन्तवो हेतवो यथा–

विषभक्षणमजीर्णमत्यन्तभोजनं, च दुर्देशजलपानम्, तथाऽतिबलवैरिव्याघ्रवनमहिषमत्तमातङ्गादिभिर्युद्धम्, दन्दशूकेन क्रीडनम्, अत्युच्चवृक्षाग्रारोहणम्, बाहुभ्यां महातरङ्गिणीतरणम्, एकाकिनो रात्रौ दुर्गे मार्गे गमनम् इत्यादि । आगन्तुहेतुजा मृत्यवो दुर्निमित्ता भाविभावनाबलवत्त्वात् आयुषि सत्यपि मारयन्ति । यथा मल्लिकातैलवर्तिवह्निषु विद्यमानेषु वात्या दीपं नाशयति ॥

तथा च ।

यथा सत्यपि तैलादौ दीपं निर्वापयेन्मरुत् ॥ एवमायुष्यहीनेऽपि हिंसन्त्यागन्तमृत्यवः ॥ ५९ ॥

किन्तु आगन्तुनिमित्तानि निवारयितुं च। शक्यन्ते ॥

यत आह सुश्रुते धन्वन्तरिः।
दोषागन्तुनिमित्तेभ्यो रसमन्त्रविशारदौ॥
रक्षेतां नृपतिं नित्यं यत्नाद्वैद्यपुरोहितौ॥ ६०

वैद्यमंत्रिणौ नृपतिं नित्यं यत्नाद्रक्षेताम्। कुतः दोषागन्तुनिमित्तेभ्यः। दोषा निषिद्धाहारविहारदूषिताः वातपित्तकफा रोगोत्पादकाः, आगन्तवः निषिद्धा विहारा अतिवरविग्रहादयः। ते निमित्तानि येषां तेभ्यः शतमृत्युभ्यः वैद्यपुरोहितौ कथं शतं मृत्यून् निवारयितुं शक्तौ तत्राह। यतस्तौ रसमन्त्रविशारदौ, प्रथमं वैद्यो दिनचर्यारात्रिचर्यर्तुचर्योक्ताहारविहाराभ्यां वातपित्तकफधातुमलान्समानेव रक्षति ततो रसज्ञत्वाद्रसैर्मृत्युंजयादिभिर्निषिद्धाहारविहारदूषितदोषजनितान्विकारान्मृत्युहेतूनपहरति। मन्त्री च सद्बुद्धिदानेन मृत्युहेतुभ्यो निषिद्धविहारेभ्यो नृपतिं निवारयति। तत आगन्तुमृत्यवो निवारयितुं शक्याः न तु अवश्यम्भाविनः॥

रोगको यथार्थरीतिसे जानना और रोगीकी पीडाको दूर करना, यही वैद्यका वैद्यत्व है. वैद्य कुछ आयुका स्वामी (रक्षक) नहीं है, परन्तु कोई ऐसा कहतेहैं कि-रोगीको यथार्थरीतिसे जानना और रोगीकी पीडा दूर करना, यही वैद्यका काम नहीं है किन्तु वैद्य आयुका मालिकभी है, क्योंकि, सौ प्रकारकी आगन्तुक मृत्युओंके नष्ट करनेको वैद्य समर्थ है। सुश्रुतमें कहा है कि-अथर्ववेदके तत्त्वको जाननेवाले 'एकसौ एक मृत्यु हैं' ऐसा कहते हैं उनमेंसे एक मृत्यु तौ आयुके अन्तमें सर्व प्राणियोंका अवश्य संहार करनेवाली है और सर्व उपायोंसे उसका निवारण नहीं होसक्ता तथा और शेषकी सौ आगतुक मृत्यु कही हैं उनका निवारण होसक्ताहै। सर्व प्राणियोंका अवश्य संहार करनेवाला काल तौ आयुके अन्तमें ब्रह्मादिकका भी संहार करता है यह लिंगपुराणमें महादेवने कार्तिकेयस्वामीके प्रति कहा है कि—"हे पुत्र! काल तौ मेरी आयुका भी ग्रास करता है फिर रसायन क्या है" इस कारण कालसंयुक्त मृत्यु प्राणियोंके संहारके लिये अवश्य होगी। और शेष एक सौ मृत्यु आगन्तुक अर्थात् नये उत्पन्न हुए कारणोंसे आनेवाले हैं; उनका तौ उन उन कारणोंके निवारण करनेसे निवारण होसक्ता है। आगन्तुक हेतु जैसे-विषका भक्षण, अजीर्ण हुएपर अत्यन्त भोजन, खोटे देशका जल पीना, तथा अत्यत बलवान् वैरी, व्याघ्र, जंगली भैंसा, अथवा मदोन्मत्त हाथी आदिके साथ युद्ध, सर्पके साथ क्रीडा करना, बहुत ऊंचे वृक्षपर चढना, बाहुओंसे महानदीमें तैरना, और रात्रिके समय विषम मार्गमें चलना इत्यादि कारण आगन्तुक कहाते हैं। जिस प्रकार दीपकमें बत्ती, तेल और अग्निके होते हुए भी वायुके द्वारा दीपक नष्ट होजाता है उसी प्रकार आगन्तुक हेतुओंके बलवान् होनेसे होनहारकी प्रबलताके द्वारा आयुके शेष रहनेपर मार डालतेहै। कहा है कि-"जिस प्रकार तेल आदि होनेपर भी पवन दीपकको बुझा देती है उसीप्रकार आयु विद्यमान होनेपर भी आगन्तुक मृत्यु प्राणियोंको मार डालती है"। आगन्तुक कारणोंका निवारण होसक्ता है क्योंकि, आगन्तुक मृत्युके निवारण होनेमें सुश्रुतमें लिखा हुआ धन्वन्तरिका वचन प्रमाणरूप है। धन्वन्तरि कहतेहैं कि, रस और मंत्रमें कुशल वैद्य और पुरोहित (मंत्री) यत्नसे दोष और आगन्तुक कारणोंसे राजाओंकी सर्वदा रक्षा करै। दोष अर्थात् निषिद्ध आहार और विहारमें दूषित हुए अथवा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले जो वात, पित्त और कफ उनसे होनेवाली मृत्युओंसे अथवा आगन्तुक अर्थात् अत्यत बलवान् शत्रुसे युद्ध आदि निषिद्ध विहार उससे उत्पन्न हुई मृत्युओंसे रक्षा करै। यहां शंका होतीहै कि-वैद्य और पुरोहित सौ आगन्तुक मृत्यु किस प्रकार निवारण करसक्ते हैं? तहाँ कहतेहैं कि-प्रथम वैद्य-दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्यामें कहेहुए आहार और विहारोंसे वात, पित्त, कफ तथा धातु और मलकी समानतासे रक्षा करताहै। तथा रसज्ञ होनेके कारण मृत्युंजयादि रसोंके द्वारा निषिद्ध आहार विहारसे कुपित हुए जो दोष उनसे उत्पन्न हुई मृत्युके कारणरूप निषिद्ध विहारोंसे राजाको निवारण करताहै। ऐसेही मंत्री भी श्रेष्ठबुद्धिसे मृत्युके कारण निषिद्ध विहारोंसे राजाको बचा सकता है अर्थात् आगन्तुक मृत्युओंका नाश करता है इससे सिद्ध हुआ कि-अवश्य होनेवाली एक मृत्युका ही निवारण नहीं होसक्ता परन्तु सौ आगन्तुक मृत्युओंका निवारण होसक्ताहै॥ ५७-६०॥

अथ आयुर्विचारः।

भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः॥ तत आयुषि विस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत्॥ ६१॥

वैद्य प्रथम यत्नपूर्वक रोगीकी आयुकी परीक्षा करै। क्योंकि, आयु दीर्घ होनेसेही चिकित्सा सफल होतीहै॥ ६१॥

अथ दीर्घायुषो लक्षणानि।

सौम्या दृष्टिर्भवेद्यस्य श्रोत्रं वक्रं तथैव च॥ स्वादु गंधं विजानाति स साध्यो नात्र संशयः॥६२॥ पाणिपादौ च यस्योष्णौ दाहः स्वल्पतरो भवेत्॥ जिह्वा तु कोमला यस्य स रोगी न विनश्यति॥ ६३॥ स्वेदहीनो ज्वरो यस्य श्वासो नासिकया चरेत्॥ कण्ठश्च कफहीनः स्यात्स रोगी जीवति ध्रुवम्॥ ६४॥ यस्य निद्रा सुखेन स्याच्छरीरं द्युतिमद्भवेत्॥ इन्द्रियाणि प्रसन्नानि स रोगी नैव नश्यति॥६५॥

जिस रोगीके नेत्र, कान और मुख सौम्य (श्रेष्ठ) होयँ, और जो रस तथा गधको जानता होय उस रोगीका रोग निःसदेह साध्य होताहै। जिसके हाथ पाँव उष्ण होयँ, दाह अल्प होय और जीभ कोमल होय वह रोगी नष्ट नही होता जिसको स्वेद (पसीने) रहित ज्वर हो, श्वास नाकमें, से चलता होय और कठ कफरहित हो वह रोगी अवश्य जीता है। जिसको निद्रा सुखसे आती हो, शरीर कांति युक्त होय और इन्द्रिये प्रसन्न हो, वह रोगी कभी भी नष्ट नही होगा॥ ६२—६५॥

अथ स्वल्पायुषो लक्षणानि।

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत्॥ तदरिष्टं समासेन व्यासतश्च निबोध मे॥ ६६॥ शृणोति विविधाञ्छब्दान्विपरीताञ्छृणोति च॥ यो न शृणोति चाकस्मात्तं वदन्ति गतायुषम्॥ ६७॥ यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत्॥ उष्णगात्रोऽतिमात्रं यो भृशं शीतेन कम्पते॥ ६८॥

तमपि गतायुषं वदन्तीत्यन्वयः॥

प्रहारं नैव जानाति यो गच्छेदन्यथापि वा॥ पांशुनेवावकीर्णानि यश्च गात्राणि मन्यते॥ ६९॥ वर्णान्यतो वा राज्यो वा यस्य गात्रे भवन्ति हि॥ स्नातानुलिप्तं यं चापि भजन्ते नीलमालिकाः॥ ७०॥ विपरीतेन गृह्णाति रसान्यश्चोपयोजितान्॥ यो वा रसान्न सेवेत तं गतासुं प्रचक्षते॥ ॥ ७१॥ सुगन्धं वेत्ति दुर्गन्धं दुर्गन्धं च सुगन्धवत्॥ गृह्णाति योऽन्यथा गन्धं शान्ते दीपे निरामयः॥७२॥ रात्रौ सूर्य्यं ज्वलन्तं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम्॥ दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति॥७३॥

दिवा वा चन्द्रवर्चसं सूर्यमित्यन्वयः। ज्योतींषि नक्षत्राणि॥

विद्युत्वतोऽसितान्मेघान्गगने निर्घने घनान्॥ विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलमम्बरम्॥७४॥ यश्चानिलं मूर्त्तिमन्तमन्तरिक्षेऽवलोकते॥ धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम्॥७५॥ प्रदीप्तमिव यो लोकं यो वाप्लुतमिवाम्भसा॥ भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति॥७६॥ यो न पश्यति ऋक्षाणि यश्च देवीमरुन्धतीम्॥ ध्रुवमाकाशगङ्गां च तं वदन्ति गतायुषम्॥ ॥७७॥ आदर्शेऽम्बुनि घर्मे वा छायां यश्च न पश्यति॥ पश्यत्येकाङ्गहीनां वा विकृतां वाऽन्यसत्त्वजाम्॥७८॥ श्वकाककङ्कगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम्॥ आतुरो लभते मृत्युं स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात्७९॥ ह्रीश्रियौ नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा॥ अकस्माच्च भजन्ते यं स गतासुरसंशयम्॥ ८०॥

प्रभा प्रतिभा॥

यस्याधरौष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं तथोत्तरः॥

उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥८१॥ आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतन्ति वा ॥ खञ्जनप्रतिभा वापि तं गतायुषमादिशेत् ॥ ८२ ॥ कृष्णा तथानुलिप्ता च जिह्वा शून्या च यस्य वै ॥ कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥ ८३ ॥ कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका॥अवस्फूर्जति भग्ना वा स न जीवति मानवः॥८४॥

स्फूर्जति श्वासवेगेनोच्चैः शब्दं करोतीत्यर्थः ॥

संक्षिप्ते विषमे स्तब्धे रूक्षे स्रस्ते च लोचने॥स्यातां परिश्रुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥ ८५ ॥ केशाः सीमन्तिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ ॥लुठन्ति चाक्षिपक्ष्माणि सोऽचिराद्याति मृत्यवे ॥ ८६ ॥

लुठन्ति पतन्ति ॥

नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः॥ एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान्विमुञ्चति ॥ ८७ ॥ उत्थाप्यमानो बहुशः संमोहं योऽधिगच्छति ॥ बलवान्दुर्बलो वापि तं पक्कं भिषगादिशेत् ॥ ८८॥ निद्रा निरन्तरं यस्य यो जागर्ति च सर्वदा ॥ मुह्येद्वा वक्तुकामश्च प्रत्याख्येयः स जानता॥८९॥ उत्तरौष्ठं च यो लिह्यादुत्करांश्च करोति यः॥ प्रेतैर्वा भाषते सार्यं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥ ९० ॥

उत्करान् हस्तपादादिविक्षेपान् ॥

खेभ्यश्च रोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते॥ पुरुषस्याविषार्तस्य स सद्यो जीवितं त्यजेत् ॥ ९१ ॥ सम्यक् चिकित्स्यमानस्य विकारो योऽभिवर्धते ॥ प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद्गतायुषः॥ ९२ ॥ भूताः प्रेताः पिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च ॥ मरणाभिमुखं जन्तुमुपसृत्य च नित्यशः ॥ ॥ ९३ ॥ तानि भेषजवीर्याणि प्रतीच्छन्ति जिघांसया ॥ तस्मान्मोघाः क्रियाः सर्वा भवन्त्येव गतायुषः ॥ ९४ ॥

ननु आयुषि सति चिकित्सायाः साफल्यमुक्तम्, आयुरस्ति चेत्तदा तदेव जीवनहेतुः, किं चिकित्साविधानेन ? तत्र उच्यते। आयुषि सति चिकित्सायाः फलं वेदनानिग्रहः ॥ उक्तञ्च—

आयुष्मान्पुरुषो जीवेत्सन्यथा भेषजं विना ॥ भेषजेन पुनर्जीवेत्स एव हि निरामयः ॥ ९५ ॥

किञ्च आयुषि सत्यपि रोगी चिकित्सां विना उत्थातुं न शक्नोति। यत आह चरकः—

सति चायुषि नोपायं विनोत्थातुं क्षमो रुजी ॥ दर्शितश्चात्र दृष्टान्तः पंकमग्नो यथा गजः ॥ ९६ ॥

किञ्च चिकित्सां विना आयुष्मानपि अवसीदति । यत आह स एव—

सति चायुषि नष्टः स्यादामयैश्चाचिकित्सितः॥ यथा सत्यपि तैलादौ दीपो निर्वाति वात्यया ॥ ९७ ॥

अत एव उक्तम् ।

साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्या गच्छन्त्यसाध्यताम् ॥ घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावताम् ॥ ९८ ॥ इति ॥

चिकित्सा तु अनिश्चितायुषोऽपि कर्तव्या यत आह ।

तावत्प्रतिक्रिया कार्या यावच्छ्वसिति मानवः ॥ कदाचिद्दैवयोगेन दृष्टारिष्टोऽपि जीवति ॥ ९९ ॥

इति तु यस्यासाध्यत्वं सन्दिग्धं तं प्रत्युक्तम् । येषु तु असाध्यता शास्त्रेण अनुभवेन विनिश्चिता ते पुनर्न चिकित्स्याः॥यत उक्तम्—

सद्वैद्यास्ते न येऽसाध्यानारभन्ते चिकित्सितुम् ॥ १०० ॥ इति ॥

शरीरकी प्रकृति बिगडगई हो और स्वभाव बदल गया हो, ये संक्षेपसे अरिष्टके लक्षण हैं। अब विस्तारसे कहता हूं, सुन. जो रोगी अनेक प्रकारके शब्द सुने, विपरीत (उलटे) शब्द सुने और अकस्मात् सुनेही नही उसको गतायु कहतेहैं। जो रोगी शीतल वस्तुको उष्ण जाने और उष्ण वस्तुको शीतल जाने जिसका शरीर अत्यन्त उष्ण होय और शीतसे कॉपता होय उसको भी गतायु जानना। जिसके शरीरमे प्रहार (चोट) लगनेसे खबर न मालूम होती हो अथवा कुछका कुछ जाने, जो अपने सर्वदेहको धूलसे आच्छादित जाने, जिसके शरीर रंगसे विपरीत प्रकारकी देहमे काली पीली रेखा होजायॅ स्नानकर चन्दन आदिका लेप करनेपर भी जिसके शरीरपर नीला मक्खी बैठे, खायेहुए रसका स्वाद विपरीत जाने और जो किंचित्मात्रभी रसके स्वादको न जाने उसको भी गतायु जानना। जो सुगन्धको दुर्गन्ध और दुर्गन्धको सुगन्ध इस प्रकार विपरीत जाने, दीपक शांत होनेपर रोगकी शांति मालूम हो, जो रात्रिमे सूर्यको और दिनमें चन्द्रमाको प्रकाशित देखै, अनेक नक्षत्रोंको दिनमे प्रकाशित तथा बादलोंके विना आकशमे बिजलीयुक्त काले मेघ देखै, जो आकाशको विमान, वाहन तथा महलोंसे युक्त देखै, जो अन्तरिक्षमें पवनको मूर्तिमान् देखै, जो पृथ्वीको धुआं, कोहर और वस्त्रोंसे आच्छादित देखै, जो सम्पूर्ण जगत्को जलता हुआ अथवा जलमे डूबताहुआ देखै, जो पृथिवीमे खेलनेकी चौपडकी समान रेखा वाली देखे। जिसको नक्षत्र, अरुन्धती तारा, ध्रुव और आकाशगगा (शिशुमारचक्र) नहीं दीखे उसको भी गतायु जानना। जिसको दर्पण, जल और धूपमे अपनी परछाई न दीखै, दीखै भी तो एक अंगरहित दीखै और विकृत (बुरेरूपकी) दीखै वा अन्य प्राणियोंकी दीखै, अथवा कुत्ता, कौवा, ककपक्षी, गिद्ध, प्रेत, यक्ष और राक्षसकी छाया दीखै वह रोगी होय तो मृत्यु हो जाती है और स्वस्थ (निरोगी) होय तो रोगी होजाताहै। जिस रोगीकी लज्जा, शोभा, तेज, ओज, स्मृति और कांति ये नष्ट होजायॅ, अथवा लज्जा शोभा आदि अकस्मात् प्राप्त हो जायॅ, उसको निश्चय गतायु समझना। जिसके नीचेका होठ नीचेको लटक जाय, और ऊपरको होठ उपरको चढगया हो, अथवा जिसके होंठ जामुनके सदृश काले होजायॅ, उस मनुष्यका जीना दुर्लभ है। जिसके दांत लाल या काले होजायॅ गिरपडैं अथवा खञ्जन पक्षीकी भांति वर्णवाले होजायॅ उसको तत्काल मृत्युवाला जानना। जिसकी जीभ काली, चिकनी, शून्य और कठोर होजाय वह प्राणी शीघ्र मृत्युको प्राप्त होगा। जिसकी नाक कुटिल (टेढी) फटी सी सूखी सी, झुकी सी होजाय, अथवा श्वासके वेगसे शब्द करै वह मनुष्य नहीं जियेगा। जिसके नेत्र छोटे, विषम (टेढे), पथराये हुए, रूखे और आंसुओसे भरे हुए हो वा जिसके नेत्रोसे आंसू गिरैं वह मनुष्य शीघ्र मरेगा। जिसके केश गुथेसे, भौयें झुकी हुई सकुचित हो जायॅ और जिसके पलकोंके वाल गिरजॉय वह मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होगा। जो रोगी मुखमे अन्न देनेपर भी नही निगलसके, मस्तकको स्थिर न रख सक्ता हो, दृष्टि एकाग्र होजाय अथवा जिसका मन मूढ होगया हो, वह मनुष्य तत्काल मरैगा। जो वारंवार उठानेपर भी मोहवश होजाय वह मनुष्य चाहे बलवान् हो अथवा दुर्बल हो परन्तु मृत्युके किनारेपरहै, अर्थात् गतायु जानना। जो सदा सोयाही करै, अथवा निरतर जागाही करै, वा जो बोलनेकी इच्छा होनेपर भी मोहको प्राप्त होजाय उस रोगीको विद्वान् वैद्य त्याग दे। जो ऊपरके होंठको चाटै और हाथ पांवोको इधर उधर पटकै और सायकालमे प्रेतोंके साथ भाषण करता होय उस मनुष्यको तुरन्त मृत्युप्राप्त जानना। विषसे पीडित न होनेपर भी जिस मनुष्यके रोमकूपोंमेसे रुधिर निकलने लगै वह मनुष्य प्राणोंको शीघ्र त्याग देताहै। भली भांति चिकित्सा करनेपर भी जिस मनुष्यका बल, मांस, क्षीण होजाय और विकार बढता जाय वह मनुष्य शीघ्र मृत्युवाला जानना। जिसकी मृत्यु निकट आगई हो उस मनुष्यके पास नित्य भूत, प्रेत, पिशाच और अनेक प्रकारके राक्षस आतेहैं वे इस मनुष्यको मारनेकी इच्छासे औषधियोकी शक्तिको नष्ट कर देतेहैं इस लिये जिसकी मृत्यु आगई हो उस मनुष्यकी जो जो चिकित्सा कीजाती है, वह सब निष्फलही हो जाती है॥

यहां शका होती है कि आयु होय तबही चिकित्सा सफल होती है ऐसा कहा तब तौ जिसकी आयु होय वही जीने योग्य है इस कारण चिकित्सा करनेसे क्या प्रयोजन है? तहां उत्तर कहतेहैं कि—आयु होनेपर चिकित्साका फल पीडाका रोकना है. जैसे कहा है कि—"आयु होनेपर चिकित्सा न करै तो वेदना सहित जीता है और औषधि करै तो वेदनारहित जीता है" आयुके रहनेपर भी रोगी विना चिकित्सासे नही उठ सक्ता। इसमे चरक कहते, हैं कि "आयुके होनेपर भी रोगी विना उपाय करे नहीं उठ सक्ता, जिस प्रकार कीचमे फँसा हुआ हाथी विना

निकाले नहीं निकलसक्ता" आयु होनेपर भी चिकित्सा न करीजाय तो रोगी मरजाताहै. यह भी चरकके वचनसे सिद्ध होता है; क्योंकि, चरक कहते हैं कि जिस प्रकार तैलादि होनेपर भी पवनसे दीपक बुझ जाता है उसी प्रकार आयु होनेपर भी जो चिकित्सा न करी जाय तौ रोगी रोगोंसे मर जाता है। यह ऊपर प्रथमही कहनेमें आया है कि- जो चिकित्सा न करी जाय तौ मनुष्योंके साध्य रोग याप्य होजाते हैं और याप्य रोग असाध्य. होजाते है तथा असाध्य होयँ तौ प्राण लिये विना नहीं रहते। जिनकी आयुका निश्चय नहीं हुआ होय उन मनुष्योंकी भी चिकित्सा करनी चाहिये। इस विषयमें कहा है कि, जबतक मनुष्य श्वास लेता होय तबतक चिकित्सा करे क्योंकि, जिसकी मृत्युके चिह्न दीखते होयँ वह मनुष्य भी कदाचित् दैवयोगसे जी जाता है। इस प्रकार जो वचन है उसका अभिप्राय यह है कि, जिसके असाध्यपनेमें संदेह हो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये क्योंकि, शास्त्रसे तथा अनुभवसे जिसके असाध्यपनेका पक्का निश्चय होय उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, इसमें कहा है कि-जो असाध्यकी चिकित्सा करना आरंभ नहीं करते वे ही वैद्य श्रेष्ठ हैं॥ ९६-१००॥

अथ द्रव्यावश्यकता ।

सर्वे द्रव्यमपेक्षन्ते रोगिप्रभृतयो यतः ॥ विना वित्तं न भैषज्यं चिकित्साङ्गं ततो धनम् ॥ १०१ ॥

रोगीको आदि ले सब लोगोंको धनकी अपेक्षा होती है और धनके विना औषधि नहीं होसक्ती इस कारण धन भी चिकित्साका अंग है ॥ १०१ ॥

अथ परिचारकस्य लक्षणम् ।

स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान्युक्तो व्याधितरक्षणे ॥ वैद्यवाक्यकृदश्रान्तो युज्यते परिचारकः ॥ १०२ ॥

स्निग्धः प्रीतः, अजुगुप्सुः अनिन्दकः ॥

रोगीका परिचारक अर्थात् रोगीकी टहल करनेवाला मनुष्य स्नेही, निंदा न करनेवाला, बलवान्, रोगीकी रक्षा करनेमें तत्पर, वैद्यके कहे अनुसार करनेवाला और नहीं थकनेवाला ऐसा होना चाहिये ॥ १०२ ॥

अथ भेषजस्य लक्षणम् ।

वैद्यो व्याधिं हरेद्येन तद्द्रव्यं प्रोक्तमौषधम् ॥ तद्यादृशमवश्यं स्याद्रोगघ्नं तादृश ब्रुवे ॥ १०३ ॥

वैद्य जिस पदार्थसे रोगको नष्ट करताहै वह पदार्थ औषध कहाताहै. वह औषध कैसा हो जो रोगोंको अवश्य नष्ट करै उसको कहतेहै ॥ १०३ ॥

अथ औषधग्रहणपरिभाषा ।

प्रशस्तदेशे सञ्जातं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ॥ अल्पमात्रं बहुगुणं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ १०४ ॥ दोषघ्नमग्लानिकरमविकं न विकारि यत् ॥ समीक्ष्य काले दत्तं च भेषजं स्याद् गुणावहम् ॥ १०५ ॥ आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिः स्मृतः ॥ अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ॥ १०६ ॥

आग्नेयाः अधिकाग्न्यंशाः, सौम्यः अधिकसोमांशः । ओषधय एवौषधानि । अत्र स्वार्थे अण् । अनुरूपाणि सदृशानि ॥

अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूपवनेषु च ॥ गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे ॥ १०७॥ आदित्यसम्मुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ॥ साधारणधराद्द्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥ १०८ ॥

साधारणधराद्द्रव्यं, सर्वभूमिभवं द्रव्यम् । उत्तराश्रितं स्वस्मात् उत्तरदिग्भवम् ॥

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोपरमार्गजाः॥ जन्तुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः ॥ १०९ ॥ शस्त्राखिलकार्य्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ॥ विरेकवमनार्थं तु वसंतान्ते समाहरेत् ॥ ११० ॥

वसन्तान्ते वसन्तमध्ये । समाहरेत् संगृह्णीयात् ॥

अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो ध्रुवम् ॥ गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥ १११ ॥ अन्यच्च-महान्ति येषां मूलानि काष्ठगर्भाणि सर्वतः ॥ तेषां तु वल्कलं ग्राह्यं

ह्रस्वमूलानि सर्वशः ॥ ११२ ॥ न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारः स्याद्बीजकादितः ॥ तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात्रिफलादितः ॥ ११३ ॥ क्वचिन्मूलं क्वचित्कन्दः क्वचित्पत्रं क्वचित्फलम् । क्वचित्पुष्पं क्वचित्सर्वं क्वचित्सारः क्वचित्त्वचः ॥ ११४ ॥ चित्रकं सूरणं निम्बो वासा च त्रिफला क्रमात् ॥ धातकी कण्टकारी च खदिरः क्षीरपादपः ॥ ११५ ॥ क्वचिन्निम्बस्य गृह्णीयात्पत्राभावे त्वचामपि ॥ बालं फलं तु बिल्वस्य पक्वमारग्वधस्य च ॥ ११६ ॥ अङ्गेऽनुक्ते जटा ग्राह्या भागेऽनुक्तेऽखिलं समम् ॥ पात्रेऽनुक्ते मृदः पात्रं कालेऽनुक्त त्वहर्मुखम् ॥ ११७॥ नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ॥ विना विडङ्गकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥ ११८ ॥

धान्यमन्नम् ॥

पुराणं तु प्रशस्तं स्यात्ताम्बूलं काञ्जिकं तथा ॥ शुष्कं नवीनद्रव्यं तु योज्यं सकलकर्मसु ॥ ११९ ॥ आर्द्रं तु द्विगुणं युञ्ज्यादेष सर्वत्र निश्चयः ॥ गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी ॥ १२० ॥ अश्वगन्धा सहचरः शतपुष्पा प्रसारिणी ॥ प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणं नैव कारयेत् ॥ १२१ ॥

सहचरः कुरण्टकः कटसरैया इति लोके ॥ वासानिम्बपटोलकेतकबलाकूष्माण्डकेन्दीवरीवर्षाभूकुटजाश्च कन्दसहिता सा पूतिगन्धाऽमृता ॥ ऐन्द्रीनागबलाकुरुण्टकपुरच्छत्रामृताः सर्वदा सार्द्रा एव तु न क्वचिद्द्विगुणिताः कार्येषु योज्या बुधैः ॥ १२२ ॥

वरी शतावरी । पूतिगन्धा गन्धप्रसारणी । ऐन्द्री इन्द्रवारुणी । नागबला (गुलशकरी)। कुरण्टकः पीतपुष्पं (कटसरैया) पुरो गुग्गुलुः ॥

घृतं तैलं च पानीयं कषायं व्यञ्जनादिकम् ॥ पक्त्वा शीतीकृतं चोष्णं तत्सर्वं स्याद्विषोपमम् ॥ १२३ ॥

जो औषधि श्रेष्ठ देशमे उत्पन्न हुई, श्रेष्ठ दिनमें उखाडी हुई, अल्पमात्रासे बहुत गुण करनेवाली उत्तम वर्ण, रस, इन करके युक्त, दोषोको नष्ट करनेवाली, ग्लानि नही करनेवाली, और अधिक देनेसे भी विकार न करे ऐसी औषधि जो विचारपूर्वक समयपर दीजाय तौ गुणकारक होती है। विन्ध्याचल आदि पर्वतोमे अग्निका भाग अधिक है और हिमालयमे चन्द्रमाका भाग अधिक है, इस कारण विन्ध्याचल आदिमे उत्पन्न हुई औषधियोमें उष्णता अधिक होतीहै और हिमालयमे उत्पन्न हुई औषधियोंमे शीतलता अधिक होती है कार्यमे कारणके सदृश ही गुण होतेहैं। अन्य वनों और उपवनोमे भी औषधि उत्पन्न होती है उनको प्रसन्नचित्त हो, पवित्रतापूर्वक स्वच्छ हो, सूर्यके सन्मुख खडे होकर, महादेवको हृदयमें नमस्कार कर, प्रातःकालके समय मौनी हो, शुभदिनमे ग्रहण करे. साधारण पृथ्वीमेसे अपनेसे उत्तर दिशामें उत्पन्न हुई जो औषधि होयँ उनको लेवै। जो औषधि सर्पकी बमईमें, अशुद्ध स्थानमे, अनूपदेश (बहुत जलवाले स्थानमे), श्मशानमें, ऊपर (कल्लडधरती) मे, तथा मार्गमे उत्पन्न हुई हो अथवा जो औषधि जीवोसे, गरमीसे तथा शीतलतासे व्याप्त होयँ वे औषधि कार्य सिद्ध करनेवाली नहीं हैं शरदृऋतुमे औषधिये रसयुक्त होतीहैं. इसकारण सब कामोके लिये शरदृऋतुमे ही लेनी चाहिये, परन्तु विरेचन और वमन करानेके लिये जो औषधियें लेनी होयँ वे वसन्त ऋतुके मध्यमें लेवै। बुद्धिमान् वैद्य जिन वृक्षोकी जड बहुत मोटी होय उनकी छाल ही लेवैं। और जिनकी जड सूक्ष्म होय उनका सम्पूर्ण भाग लेवैं। अन्य ग्रंथोमे भी कहाहै कि—जिन वृक्षोंकी जड मोटी और भीतरसे लकडी युक्त होय उनकी छालही लेना और सूक्ष्म मूलवाले वृक्षका सम्पूर्ण भाग लेना चाहिये। वड आदिकी छाल लेवै विजयसार आदिका सार लेवै, तालीसपत्र आदिकोंके पत्ते और त्रिफला आदिके फल लेवै। किसीकी जड, किसीका कन्द, किसीके पत्ते, किसीके फल, किसीके फूल, किसीका सम्पूर्ण भाग,

किसीका सार और किसीकी छाल लेनी चाहिये । जैसे कि, चीतेकी जड, सूरनका कन्द, नीव तथा अडूसेके पत्ते, त्रिफलेके फल, धवईके फूल, कटेरीका सर्वांग, खैरका सांगंग और दूधवाले वृक्षोंकी छालही लेनी चाहिये। किसी समयमें नीवके पत्ते न मिलैं तौ छालही लेवै। बेलका कच्चा फल और अमलतासका पक्का फल लेवै । जहाँ औषधिका अंग न कहा हो वहाँ उसकी जड लेवै, जहाँ औषधियोंकी तोल न लिखी होय वहाँ सम्पूर्ण औषधि समान भाग लेवै। जहाँ केवल पात्र ही कहा होय वहाँ मृत्तिकाका पात्र लेना चाहिये। और जहां औषधि लेनेका समय न कहाहो वहाँ प्रातःकालमे लेवै। सम्पूर्ण कामोंमें नये पदार्थोंका उपयोग करै, परन्तु वायविडंग, पीपल, गुड, धान्य (चावल), घी और मधु ये सब वस्तु पुरानी ही लेवै। पान और काँजी भी पुरानी ही श्रेष्ठ होतीहैं। सम्पूर्ण औषधियोंमें सूखे ओर नये पदार्थोंका उपयोग करै, और जो गीली लेवे तौ दो भाग लेवै, यह सम्पूर्ण स्थानोंमे निश्चय है । गिलोय, कुडा, अडूसा, पेठा, सतावर, असगंध, कटसरैया, सोफ और पसरन ये औषधि सदैव गीली लेवै और दो भाग न लेवै। अडूसा, नीव, परवल, केतकी (केवडा), खिरेटी, पेठा, सतावर, सोंठ, कुडाकन्द, गन्धप्रसारिनी, तुलसी इन्द्रवारुणी (इन्द्रायानि) नागबला, कटसरैया, गूगुल, सोफ और गिलोय ये पदार्थ स्वरसयुक्त लेवै और दूने कदापि नहीं लेवै । घी, तेल, जल, क्वाथ और व्यंजन (भोजनके शाकादि पदार्थ) आदि अग्निसे एकवार सिद्ध करके शीतल होनेपर पश्चात् फिर गरम करै तौ विषके सदृश दोषकारक होजातेहैं इसलिये फिर उनको गरम न करै ॥ १०४–१२३ ॥

अथ द्रव्याणां परीक्षा ।

सूक्ष्मास्थिमांसला पथ्या सर्वकर्मणि पूजिता ॥ क्षिप्ताम्भसि निमज्जेद्या भल्लातक्यस्तथोत्तमाः ॥ १२४ ॥ वराहमूर्द्धवत्कन्दो वाराहीकन्दसंज्ञकः ॥ सौवर्चलं तु काचाभं सैन्धवं स्फटिकप्रभम् ॥ १२५ ॥ सुवर्णच्छविकं ज्ञेयं स्वर्णमाक्षिकमुत्तमम् ॥ इन्द्रपुष्पप्रतीकाशा मनोह्वा चोत्तमा मता ॥ १२६ ॥ श्रेष्ठं शिलाजतु ज्ञेयं प्रक्षिप्तं न विशीर्यते ॥ तोयपूर्णे कांस्यपात्रे प्रतानेन विवर्धते ॥ १२७ ॥ कर्पूरस्तुवरः स्निग्धः एला सूक्ष्मफला वरा ॥ श्वेतचन्दनमत्यन्तं सुगन्धि गुरुपूजितम् ॥ १२८ ॥ रक्तचन्दनमत्यन्तं लोहितं प्रवरं मतम् ॥ काकतुण्डनिभः स्निग्धो गुरुः श्रेष्ठो गुरुर्मतः ॥ ॥ १२९ ॥ सुगन्धि लघु रूक्षं च क्षुरदारु वरं मतम् ॥ सरलं स्निग्धमत्यर्थं सुगन्धि च गुणावहम् ॥ १३० ॥ अतिपीता प्रशस्ता तु ज्ञेया दारुनिशा बुधैः ॥ जातीफलं गुरु स्निग्धं समं शुभ्रान्तरं वरम् ॥ ॥ १३१ ॥ मृद्वीका सोत्तमा ज्ञेया या स्याद्गोस्तनसन्निभा ॥ करमर्दफलाकारा मध्यमा सा प्रकीर्तिता ॥ १३२ ॥

गोस्तनसन्निभाः मुनक्का इति लोके । करमर्दफलाकारा करम्वा इति लोके ॥

खण्डं तु विमलं श्रेष्ठं चन्द्रकान्तसमप्रभम् ॥ गव्याज्यसदृशं रुच्यं गन्ध मधु वरं मतम् ॥ १३३ ॥

(जो हरड छोटी गुठलीवाली और अधिक गूदेवाली होय वह सर्व कार्योंमे उत्तम है । भिलावा–जो पानीमें डालनेमे डूव जाय वह उत्तम जानना । वाराहीकंद–जो सुअरके मस्तकके सदृश हो वह उत्तम है । सञ्चरनोन–जो काँचके सदृश हो वह उत्तम कहाहै । सैंधानोन–स्फटिक मणिके सदृश कांतिवाला हो वह उत्तम है, सोनामक्खी–सोनेके सदृश कांतिवाली, मनशिल–इन्द्रपुष्पके सदृश हो वह उत्तमहै और जो शिलाजीत गिरनेपर फैलै नहीं, तथा जलसे भरे काँसीके पात्रमे डालनेसे सूतके सदृश बढै वह उत्तम जानना । कपूर–कसैला, और स्निग्ध होय, इलायची–सूक्ष्मफलो वाली हो, सफेद चंदन भारी और सुगंधित हो वह श्रेष्ठ होताहै । लालचंदन–अधिक लाल हो । अगर–काककी चोंचके सदृश स्निग्ध तथा भारी हो वह उत्तम है । देवदारु–सुगंधित, हलका तथा रूक्ष होय वह उत्तम कहाहै । सरल–बहुत स्निग्ध तथा सुगंधित होय । दारुहलदी–अत्यत पीली होय वह उत्तम है । जायफल–भारी, स्निग्ध, गोल और भीतरसे श्वेत होय वह उत्तम है । जो दाख (मुनक्का) गायके स्तनोंके सदृश हो वह उत्तम है और करोंदेके फलके आकारवाली होय वह मध्यम है । जो खाँड–निर्मल और चन्द्रकान्तमणिके समान

सफेद होय वह उत्तम है और जो मधु (शहद) गायके घीके सदृश, रुचिकारक और सुगंधित होय वह श्रेष्ठ कहा है ॥ १२४-१३३ ॥

अथ स्वभावतो हितानि ।

शालीनां लोहितः शालिः षष्टिकेषु च षष्टिकः ॥ शूकधान्येष्वपि यवो गोधूमः प्रवरो मतः ॥ १३४ ॥ शिम्बीधान्ये वरो मुद्गो मसूरश्चाढकी तथा ॥ रसेषु मधुरः श्रेष्ठो लवणेषु च सैन्धवः ॥ १३५ ॥ दाडिमामलकं द्राक्षा खर्जूरं च परूषकम्॥ राजादनं मातुलुंगं फलवर्गेषु शस्यते ॥ १३६ ॥

परूषकं फालसा इति लोके । राजादनं खिरणी इति लोके । मातुलुंगं बिजउरा इति लोके ॥

पत्रशाकेषु वास्तूकं जीवन्ती पोतिका वरा॥ पटोलं फलशाकेषु कन्दशाकेषु सूरणम् ॥ ॥ १३७ ॥ एणः कुरंगो हरिणो जांगलेषु प्रशस्यते ॥ पक्षिणां तित्तिरिर्लावो वरो मत्स्येषु रोहितः॥१३८॥हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णतया मतः ॥ कुरंगस्ताम्र उद्दिष्टो हरिणः कृत्तिको महान्॥ १३९ ॥ जलेषु दिव्यं दुग्धेषु गव्यमाज्येषु गोभवम् ॥ तैलेषु तिलजं तैलमैक्षवेषु सिता हिता ॥ १४० ॥

शाली चावलोंमे लाल चावल, षष्टिकधानोंमे सॉठी चावल, शूक (भूसीवाले) धान्योंमे जौ तथा गेहूँ श्रेष्ठ हैं । शिंबी (फलीवाले) धान्योंमे मूग, मसूर, तथा अरहर, रसोमे मधुर रस और नमकोंमे सैंधानमक श्रेष्ठ है । फलोंमें अनार, आमला, दाख (अंगूर), खजूर (छुहारा), फलसा, खिन्नी, और बिजौरा नींबू श्रेष्ठ है । पत्रशाकोंमे बथुआ, जीवन्ती तथा पोई, फल शाकोंमे परवल और कन्दशाकोंमे सूरणकन्द (जिमीकन्द) उत्तम है । जंगली जीवोंमे काला, लाल तथा चित्रित हरिण, पक्षियोंमे तीतर और लवा उत्तम है । मछलियोंमे रोहू और जलोंमे दिव्य जल उत्तम है । दुग्धोंमें गायका दूध और घृतोंमे गायका घी श्रेष्ठ है । तैलोमे तिलका तेल और ईखसे बने पदार्थोंमे मिश्री ही उत्तम है । तांबेके सदृश वर्णवाला हरिण काले वर्णवाला एण और काले तथा ताम्र मिश्रित वर्णका बडा जो हरिण है उसे कुरंग कहते हैं ॥ १३४-१४० ॥

अथ स्वभावादहितानि ।

शिम्बीषु माषान्ग्रीष्मर्तौ लवणेष्वौषरं त्यजेत् ॥ फलेषु लकुचं शाके सार्षपं न हितं मतम् ॥ १४१ ॥ गोमांसं ग्राम्यमांसेषु न हितं महिषीवसा ॥ मेषीपयः कुसुम्भस्य तैलं त्याज्यं च फाणितम्॥ १४२॥

इक्षुरसः परिपक्वो योऽर्धघनः फाणितम् । तद्धि छोयाराब इति लोके ॥

शिंबी धान्योंमे उडद, ऋतुओंमे ग्रीष्मऋतु, लवणोंमे खारी (पृथ्वीका उत्पन्नहुआ) लवण त्यागने योग्य है । फलोंमे लुकुच (बडहर), शाकोंमे सरसोंका शाक हितकारी नहीं है । ग्राम्य जीवोंके मांसोंमे गायका मांस और वसाओंमे भैंसकी वसा (चर्बी) अहितकारी है । दूधोंमे भेडका दूध, तैलोमे कुसूमका तेल और मिठाइयोंमे राब त्याज्य है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अथ संयोगविरुद्धानि ।

मत्स्यमानूपमांसं च दुग्धयुक्तं विवर्जयेत्॥ कपोतं सर्षपस्नेहभर्जितं परिवर्जयेत् ॥ ॥ १४३ ॥ मत्स्यानिक्षोर्विकारेण तथा क्षौद्रेण वर्जयेत् ॥ सक्तून्मांसपयोयुक्तानुष्णैर्दधि विवर्जयेत् ॥ १४४ ॥ उष्णैर्नभोऽम्बुना क्षौद्रं पायसं कृसरान्वितम् ॥ रम्भाफलं त्यजेत्तक्रदधिबिल्वफलान्वितम् ॥ ॥ १४५ ॥ दशाहमुषितं सर्पिः कांस्ये मधुघृतं समम् ॥ कृतान्नं च कषायं च पुनरुष्णीकृतं त्यजेत् ॥ १४६ ॥ एकत्र बहुमांसानि विरुध्यन्ते परस्परम् ॥ मधुसर्पिर्वसा तैलं पानीयं वा पयस्तथा ॥ १४७ ॥

मछली और अनूपदेशका मांस दूधके साथ भक्षण करना त्याज्य है । कबूतरका मांस तेलसे भूनाहुआ परित्याग करने योग्य है । मच्छीको इक्षुविकार (गुड आदि) के साथ अथवा शहदके साथ खाना वर्जित है । मांस

और दूधके साथ सत्तू, गरम पदार्थोंके साथ दहीको नहीं खाना चाहिये। गरम वस्तुओंके साथ तथा वर्षाके जलके साथ शहद और खीरके साथ खिचडी त्याज्य है। तक्र (छाछ) दही और बेलफलके साथ केलेकी फली न खाय। जो घी कांसीके पात्रमें दश दिन रक्खा रहा हो वह घी तथा मधु और घी बराबर भाग मिलेहुए, भोजन और क्वाथ फिर गरम कियाहुआ त्याज्य हैं। बहुतसे मास मिलानेसे परस्परमें विरुद्ध होजातेहैं उसी प्रकार शहद, घी, वसा (चर्बी), तेल, पानी तथा दूध भी मिलानेसे परस्परमें विरुद्ध होजातेहैं ॥ १४३–१४७ ॥

अथ भेषजग्रहणसंकेतः।

लवणं सैन्धवं प्रोक्तं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ चूर्णलेहासवस्नेहाः साध्या धवलचन्दनैः ॥ कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥ १४८ ॥ अन्तःसम्मार्जने ज्ञेया ह्यजमोदा यवानिका ॥ बहिः सम्मार्जने सैव विज्ञातव्याऽजमोदिका ॥ १४९ ॥ पयः सर्पिः प्रयोगेषु गव्यमेव हि गृह्यते ॥ शकृद्रसो गोमयको मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥ १५० ॥

जहां लवण कहा होय वहां सैंधानोन और चन्दन कहा हो वहां लालचन्दन लेना चाहिये। चूर्ण, अवलेह, आसव तथा तेल बनानेमें सफेद चंदन लेवै और क्वाथ अथवा लेपमें अधिकतासे लालचन्दन लेवै। शरीरके भीतरका भाग शुद्ध करनेमें जहां अजमोदा लेना कहा हो वहां अजवायन लेवै और बाहरका भाग शुद्ध करनेमें जहां अजमोदा आवै वहा अजमोदाही डाले। दूध और घीके प्रयोगमें गायका दूध तथा गायका घी लवै। वैसेही विष्ठा, मूत्र आदिका रस लेना लिखा हो वहां गायका मूत्र और गायके गोबरका रस लेना चाहिये ॥ १४८–१५० ॥

अथ प्रतिनिधिः।

चित्रकाऽभावतो दन्ती क्षारः शिखरिजोऽथ वा ॥ अभावे धन्वयासस्य प्रक्षेप्या तु दुरालभा ॥ १५१ ॥

शिखरी अपामार्गः ॥

तगरस्याप्यभावे तु कुष्ठं दद्याद्भिषग्वरः ॥ मूर्वाभावे त्वचो ग्राह्या जिङ्गिनीप्रभवा बुधैः ॥ १५२ ॥ अहिंस्राया अभावे तु मानकंदः प्रकीर्तितः ॥ लक्ष्मणाया अभावे तु नीलकण्ठशिखा मता ॥ १५३ ॥

नीलकण्ठशिखा मयूरशिखा ॥

बकुलाऽभावतो देयं कह्लारोत्पलपंकजम् ॥ नालोत्पलस्याभावे तु कुमुदं देयमिष्यते ॥ १५४ ॥ जातीपुष्पं न यत्रास्ति लवंगं तत्र दीयते ॥ अर्कपर्णादिपयसो ह्यभावे तद्रसो मतः ॥ १५५ ॥ पौष्कराभावतः कुष्ठं तथा लांगल्यभावतः ॥ स्थौणेयकस्याभावे तु भिषग्भिर्दीयते गदः ॥ १५६ ॥ चविकागजपिप्पल्यौ पिप्पलीमूलवत्स्मृतौ ॥ अभावे सोमराज्यास्तु प्रपुन्नाटफलं मतम् ॥ यदि न स्याद्दारुनिशा तदा देया निशा बुधैः ॥ १५७ ॥

सोमराजी बाकुची। प्रपुन्नाटफलं चक्रमर्दफलम्। दारुनिशा दारुहरिद्रा। निशा हरिद्रा ॥

रसाञ्जनस्याभावे तु सम्यग्दार्वी प्रयुज्यते ॥ सौराष्ट्र्यभावतो देया स्फटिका तद्गुणा जनैः ॥ १५८ ॥

सौराष्ट्री सोरटीमाटी इति लोके। स्फटिका फटकिरी इति लोके ॥

तालीसपत्रकाभावे स्वर्णताली प्रशस्यते ॥ भार्ङ्ग्यभावे तु तालीसं कण्टकारीजटाऽथ वा ॥ १५९ ॥ रुचकाऽभावतो दद्याल्लवणं पांशुपूर्वकम् ॥ अभावे मधुयष्ट्यास्तु धातकीं च प्रयोजयेत् ॥ १६० ॥

रुचकं चौहार इति लोके। पांशुलवणं खारी अथ वा रेह इति लोके ॥

अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमिष्यते ॥ द्राक्षा यदि न लभ्येत प्रदेयं काश्मरीफलम् ॥ १६१ ॥ तयोरभावे कुसुमं बन्धूकस्य मतं बुधैः ॥ लवंगकुसुमं देयं नखस्याभावतः पुनः ॥ १६२ ॥ कस्तूर्यभावे

कंकोलं क्षेपणीयं विदुर्बुधाः ॥ कंकोलस्याप्यभावे तु जातीपुष्पं प्रदीयते ॥ १६३ ॥ सुगन्धिमुस्तकं देयं कर्पूराभावतो बुधैः ॥ कर्पूराभावतो देयं ग्रन्थिपर्णं विशेषतः ॥ ॥ १६४ ॥ कंकमाभावतो दद्यात्कुसुम्भः कुसुमं नवम् ॥ श्रीखण्डचन्दनाभावे कर्पूरं देयमिष्यते ॥१६५॥ अभावे त्वेतयोर्वैद्यः प्रक्षिपेद्रक्तचन्दनम् ॥ रक्तचन्दनकाभावे नवोशीरं विदुर्बुधाः ॥ १६६ ॥ मुस्ता चातिविषाभावे शिवाभावे शिवा मता ॥ अभावे नागपुष्पस्य पद्मकेशरमिष्यते ॥ ॥ २६७ ॥ मेदाजीवककाकोलीऋद्धिद्वन्द्वेऽपि वाऽसति ॥ वरीविदार्यश्वगन्धावाराहीश्च क्रमात् क्षिपेत् ॥ १६८ ॥

वरी शतावरी ॥

वाराह्याश्च तथाभावे चर्मकारालुको मतः॥ वाराहीकन्दसंज्ञस्तु पश्चिमे गृष्टिसंज्ञकः ॥ १६९ ॥ वाराहीकन्द एवान्यश्चर्मकारालुको मतः ॥ अनूपसम्भवे देशे वराह इव लोमवान् ॥ १७० ॥ भल्लातकासहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते ॥ भल्लाताभावतश्चित्रं नलश्चेक्षोरभावतः ॥ १७१ ॥ सुवर्णाभावतः स्वर्णमाक्षिकं प्रक्षिपेद्बुधः ॥ श्वेतं तु माक्षिकं ज्ञेयं बुधै रजतवद्भवम् ॥१७२॥ माक्षिकस्याप्यभावे तु प्रदद्यात्स्वर्णगैरिकम् ॥ सुवर्णमथ वा रौप्यं मृतं यत्र न लभ्यते ॥ १७३ ॥ तत्र कान्तेन कर्माणि भिषक्कुर्याद्विचक्षणः ॥ कान्ताभावे तीक्ष्णलोहं योजयेद्वैद्यसत्तमः ॥ १७४ ॥ अभावे मौक्तिकस्यापि मुक्ताशुक्तिं प्रयोजयेत् ॥ मधु यत्र न लभ्येत तत्र जीर्णगुडो मतः ॥ १७५ ॥ मत्स्यण्ड्यभावतो दद्युर्भिषजः सितशर्कराम् ॥ असम्भवे सितायास्तु बुधैः खण्डं प्रयुज्यते ॥ १७६ ॥ क्षीराभावे रसो मौद्गो मासूरो वा प्रदीयते ॥ अत्र प्रोक्तानि वस्तूनि यानि तेषु च तेषु च ॥१७७॥ योज्यमेकतराभावे परं वैद्येन जानता ॥ रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च ॥ १७८॥ युञ्ज्याद्विविधमन्यच्च द्रव्याणां तु रसादिवित् ॥ योगे यदप्रधानं स्यात्तस्य प्रतिनिधिर्मतः ॥१७९॥ यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते ॥ व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपि तत्त्यजेत्॥ अनुक्तमपि युक्तं यद्योजयेत्तद्रसादिवित् ॥ १८० ॥

चीतेके अभाव (न मिलनेमे) दन्ती अथवा चिरचिटेका खार लेवे। धमासेके अभावमे जवासा लेवे। तगर न मिले तो कूटका प्रयोग करे। मूर्वा न मिले तो वैद्य जिगिनी (मजीठ) की छाल लेवे। अहिस्राके अभावमे मानकन्द और लक्ष्मणाके अभावमे मोराशिखा लेवे। मौलशिरीके अभावमे लालकमल और नीले कमल लेवे। नीलोत्पल (नीले कमल) के अभावमे कमोदिनी (नीलोफर) लेनी चाहिये। चमेलीके फूलके अभावमे लौग लेनी चाहिये। आकके पत्ते आदिका दूध न मिले तो उसका रसही लेवे। पोहकरमूल और कलिहारीके अभावमे कूट लेना चाहिये थूनेरके अभावमें भी वैद्य कूट देवै। चव और गजपीपलके अभावमे पीपलामूल डाले। बावचीके अभावमे पँवार (चकवड) के बीज लेवे यदि दारुहलदी न मिलै तो हलदी ही लेवै। रसौतके अभावमे दारुहलदीका प्रयोग करै। सोरठकी मट्टीके अभावमे फटकरी लेनी चाहिये। तालीसपत्र न मिलै तौ स्वर्णतालीस लेवै। भारगीके अभावमें तालीस अथवा कटेरीकी जड लेवै। काले नमकके अभावमे पांशु (रेहगमा) लवण लेना। मुलहटीके अभावमें धायके फूल लेवै। अमलवेत नीबूके अभावमे चूका लेना चाहिये। यदि दाख न मिलै तौ कुभेरका फल देना चाहिये। दाख और कुम्भेरके फलके अभावमे वधूकका फूल देवै। नखके अभावमे लौगका फूल देवै। कस्तूरीके अभावमे वैद्य ककोल डालै। ककोलके अभावमे चमेलीका फूल देवै कर्पूरके अभावमे सुगध मोथा देवै। विशेष करके कर्पूरके अभावमे गठौना देवै। केशरके अभावमे कसूमके नये फूल लेवै। सफेद चदनके अभावमे कपूर देवै। सफेद चदन और कपूर इन दोनोंके अभावमे लालचदन

डालै । लाल चंदनके अभावमें नई खस लेवै । अतीसके अभावमें मोथा और हरडके अभावमें आँवला लेना चाहिये । नागकेशरके अभावमें कमलकी केशर देनी चाहिये । मेदा महामेदाके अभावमें शतावरी, जीवक ऋषभकके अभावमें विदारीकंद, काकोली क्षीरकाकोलीके अभावमें असगन्ध और ऋद्धि वृद्धिके अभावमें वाराही-कन्द लेना चाहिये । वाराहीकंदके अभावमें चर्मकारालु देवै । वाराहीकन्दको पश्चिममें गृष्टि (गेंठी) कहतेहैं । वाराहीकंदका भेदही चर्मकारालु कहा है । यह अनूप देशमें उत्पन्न होताहै और उसके ऊपर सुअरके सदृश रोम होतेहैं । जिस औषधिमें भिलावेका प्रयोग हो, उसके बदले लालचन्दन डाले । भिलावा न मिले तो चीता और इसके अभावमें नरसल देनी चाहिये । सुवर्णके अभावमें सोनामक्खी डाले, और चाँदीके अभावमें रूपा-माखी डालै । सोनामाखी और रूपामाखीके अभावमें पीला गेरू डाले । सुवर्णकी भस्म और चाँदीकी भस्म जहाँ प्राप्त न हो वहाँ कान्तलोहकी भस्म ही डालै । कान्तलोहके अभावमें उत्तम वैद्य तीक्ष्ण लोह डालै । मोतीके अभावमें मोतीकी सीप लेवै । जहाँ शहद न मिले वहाँ पुराना गुड लेना चाहिये । मिश्रीके अभावमें सुफेद खांड लेवै । सफेद चीनी (बूरेके) अभावमें खांडका उपयोग करे । और दूधके अभावमें मूंगका यूष (रस) अथवा मसूरका रस लेवे । यहाँ जो प्रतिनिधि रूप औषधियें कही हैं उनको उन २ पदार्थोंकी जो प्रतिनिधि हैं विद्वान् वैद्य उन्हें डाले जैसे चित्रकके अभावमें दंती और दंतीके अभावमें चित्रक छोडै । पदार्थोंके रस आदिको जानने-वाला वैद्य रस, वीर्य और विपाक आदिसे समान द्रव्य विचारकर इस प्रकरणमें कहे सिवाय भी अन्य अनेक पदार्थोंका प्रयोग करै । औषधिके योगमें जो औषधि गौण (अप्रधान) होय उसकी प्रतिनिधि डाले और जो मुख्य (प्रधान) औषधि होय उसकी प्रतिनिधि औषधि नहीं ग्रहण करै । जो द्रव्य रोगके अयोग्य होय वही पदार्थ यदि उसी रोग नाशक औषधियोंकी गिनतीमें कहा होय तो भी उस-को त्याग देवै और जो पदार्थ उसकी गिनतीमें न भी कहा होय और वह यदि रोगके योग्य होय तो उस पदार्थका रसादिको जाननेवाला वैद्य प्रयोग करै ॥ १५१–१८० ॥

अथ द्रव्यगतपञ्चपदार्थकर्माणि ।

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥ पदार्थाः पञ्च तिष्ठन्ति स्वंस्वं कुर्वन्ति कर्म च ॥ १८१ ॥ तत्र वाग्भटः-

रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणकषाय-काः ॥ षड्द्रव्यमाश्रितास्ते च यथापूर्वं बलावहाः ॥ १८२ ॥

ऊषणः कटुः ॥

तत्राद्या मारुतं घ्नन्ति त्रयस्तिक्तादयः कफम् ॥ कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते ॥ १८३ ॥ ये रसा वातशमना भवं-ति यदि तेषु वै ॥ रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम् ॥ १८४ ॥ ये रसाः पित्तशमना भवंति यदि तेषु वै ॥ तीक्ष्णो-ष्णलघुता चैव नैते तत्कर्मकारिणः ॥ ॥ १८५ ॥ ये रसाः श्लेष्मशमना भवंति यदि तेषु वै ॥ स्नेहगौरवशैत्यानि न ते हन्युः कफं तदा ॥ १८६ ॥

प्रत्येक पदार्थमें रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति ये पांच पदार्थ रहतेहैं और वे अपने अपने काम करतेहैं, वाग्भटका वचन है कि–"मधुर, अम्ल, खारी, कडवा, चरपरा और कसैला ये छः रस पदार्थोंमें रहतेहैं और उन-में पहिला पहिला रस पीछे पीछेके रससे अधिक बलवाला है । मधुर, खट्टा और खारी ये पहिले तीन रस वातनाशक हैं और इनके सिवाय दूसरे तीन रस वात करनेवाले हैं । कडवा, चरपरा और कसैला ये तीन रस कफको हरनेवाले हैं और इनके सिवाय दूसरे तीन रस कफ करनेवाले हैं । कसैला, कडवा और मधुर ये तीन रस पित्तको हरनेवाले हैं और इनसे अन्य तीन रस पित्तको करनेवाले हैं, जो रस वातको हरनेवाले हैं, उन रसवाले पदार्थोंमें रूक्षता, शीतलता और हलकापन यदि होय तो वह वायुको नष्ट नहीं करसके । जो रस पित्तको शमन करनेवाले हैं उन रसवाले पदार्थोंमें जो तीक्ष्णता, उष्णता और हलकापन होय तो वह पित्तको नहीं शमन करसके । जो रस कफको शमन करनेवाले हैं उन रसवाले पदार्थोंमें जो स्निग्धता, भारीपन और शीतलता होय तो वह कफको नष्ट नहीं करसके ॥ १८१–१८६ ॥

अथ मधुररसस्य गुणाः ।

मधुरो हि रसः शीतो धातुस्तन्यबलप्रदः ॥ चक्षुष्यो वातपित्तघ्नः कुर्यात्स्थौल्यमल-

क्रिमीन् ॥ रसेषु प्रवरश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषोर्हितः ॥ १८७ ॥ बालवृद्धक्षतक्षीणवर्णकेशेन्द्रियौजसाम् ॥ प्रशस्तो बृंहणः कण्ठ्यो गुरुः सन्धानकृन्मतः ॥ विषघ्नः पिच्छिलश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषोर्हितः १८८

मधुररस शीतल है, धातु और स्तनोंमें दूध तथा बलको उत्पन्न करनेवाला है, नेत्रोंको हितकारी, वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाला है। शरीरमें स्थूलता, मल और कृमियोंको उत्पन्न करनेवाला है सम्पूर्ण रसोंमें उत्तम है। स्निग्ध है प्रीति करनेवाला, आयु वर्द्धक तथा बालक, वृद्ध, क्षतसे क्षीणहुए मनुष्योंके तथा वर्ण, केश, (बाल) इन्द्रिय और ओजके लिये हितकारी है। बृंहण, पुष्टि करता, कण्ठको शुद्ध करनेवाला, भारी, सन्धान कारक, (टूटेको जोडने वाला) विषविनाशक, पिच्छिल, स्निग्ध, प्रीति और आयुका हित करनेवाला है ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

अथातियुक्तस्य मधुररसस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तो ज्वरश्वासगलगण्डार्बुदक्रिमीन् ॥ स्थौल्याग्निमान्द्यमेहांश्च कुर्यान्मेदःकफामयान् ॥ १८९ ॥

मधुररसका अत्यन्त उपयोग करनेसे ज्वर, श्वास, गलगण्ड, अर्बुद, कृमि, स्थूलता, अग्निकी मन्दता, प्रमेह, मेद और कफके रोगोंको करताहै ॥ १८९ ॥

अथाम्लस्य गुणाः ।

रसोऽम्लः पाचनो रुच्यः पित्तश्लेष्मास्रदो लघुः ॥ लेखितोष्णो बहिःशीतः क्लेदनः पवनापहः ॥ १९० ॥ स्निग्धस्तीक्ष्णः सरः शुक्रविबन्धानाहदृष्टिहा ॥ हर्षणो रोमदन्तानामक्षिभ्रूविनिकोचनः ॥ १९१ ॥

लेखितः लेखनः । बहिःशीतः स्पर्शशीतः । विनिकोचनः सङ्कोचनः ॥

अम्ल (खट्टा) रस पाचक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, पित्त, कफ तथा रुधिरको बढानेवाला, बलका, लेखन, उष्ण, स्पर्श करनेमें शीतल, क्लेद कारक, वातनाशक, स्निग्ध, तीक्ष्ण, और दस्तावर है। वीर्य, विबन्ध, आनाह और दृष्टिको नष्ट करनेवाला है। रोमांच करनेवाला, दांतोको हर्ष (खट्टा) करनेवाला और नेत्र भौंहोंको संकोच करनेवाला है ॥ १९० ॥ १९१ ॥

अथातियुक्तस्य अम्लस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तो भ्रमं कुर्यात्तृड्दाहतिमिरज्वरान् ॥ कण्डूपाण्डुत्ववीसर्पशोथविस्फोटकुष्ठकृत् ॥ १९२ ॥

अम्लरसका अत्यन्त उपयोग करनेसे भ्रम, तृषा, दाह, तिमिर, ज्वर, खुजली, पाण्डुता, विसर्प, सूजन, विस्फोटक और कुष्ठको उत्पन्न करता है ॥ १९२ ॥

अथ लवणस्य गुणाः ।

लवणः शोधनो रुच्यः पाचनः कफपित्तदः ॥ पुंस्त्ववातहरः कायशैथिल्यमृदुताकरः ॥ चक्षुर्नासास्यजलदः कपोलगलदाहकृत् ॥ १९३ ॥

लवणरस शुद्ध करनेवाला, रुचिकारक, पाचक, कफ तथा पित्तको करनेवाला, पुरुषता तथा वातको नष्ट करनेवाला है, शरीरमे शिथिलता तथा मृदुता करनेवाला है। नेत्र, नाक, तथा मुखमें पानीका लानेवाला और गाल तथा गलेमें दाह करनेवाला है ॥ १९३ ॥

अतियुक्तस्य लवणस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तोऽक्षिपाकास्रपित्तकोठक्षतादिकृत् ॥ वलीपलितखालित्यं कुष्ठवीसर्पतृट्प्रदः ॥ १९४ ॥

कोठो वरटीकृतदंशशोथवत् । पलितं केशशुक्लता । खालित्यं शिरसि केशनाशः ॥

लवणरस अत्यन्त खानेसे नेत्रपाक, रक्तपित्त (चकत्ते) और क्षतादि रोगोंको करनेवाला है, वली (शरीरमे सलवट), पलित (सफेद्बाल), खालित्य (बालोका उडजाना), कुष्ठ, विसर्प और तृषाको करनेवाला है ॥ १९४ ॥

अथ कटुगुणाः ।

कटुरुष्णश्च तीक्ष्णश्च विशदो वातपित्तकृत् ॥ श्लेष्महल्लघुराग्नेयः कृमिकण्डूविषापहः ॥ १९५ ॥ रूक्षः स्तन्यहरश्चापि मेदःस्थौल्यापकर्षणः ॥ अश्रुदो नासिकास्याक्षिजिह्वाग्रोद्वेजको मतः ॥ दीपनः पाचनो रुच्यो नासिकाशोषणो भृशम् ॥ १९६ ॥

क्लेदमेदोवसामज्जशकृन्मूत्रोपशोषणः ॥ स्रोतःप्रकाशका रूक्षो मेध्यो वर्चोविबन्धकृत् ॥ १९७ ॥

आग्नेयः अधिकाग्न्यंशः । मेध्यो मेधायै हितः । वर्चोविबन्धकृत् मलबन्धं करोति ॥

कटु (चरपरा) रस, गरम, तीक्ष्ण, विशद, वातपित्तको करनेवाला, कफको हरनेवाला, हलका, अग्निका अधिक भागवाला, कृमि, खुजली तथा विषको हरनेवाला है । रूक्ष, स्तनोंमें दूध नष्ट करनेवाला, मेदसे हुई स्थूलताको हरनेवाला, आखोंमें आसू देनेवाला, नाक, मुख, नेत्र और जीभको उद्वेगकारक, अग्निको दीप्त करनेवाला, पाचक, रुचिकारक, नाकको सुखानेवाला, क्लेद, मेद, वसा(चरबी), मज्जा, विष्ठा और मूत्रको सुखानेवाला है। स्रोतोंको स्वच्छ करनेवाला, रूक्ष, बुद्धिवर्धक और मलरोधक है ॥ १९५-१९७ ॥

अतियुक्तस्य कटुरसस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तो भ्रान्तिदाहमुखताल्वोष्ठशोषकृत् ॥ कण्ठादिपीडामूर्च्छान्तर्दाहदो बलकान्तिहृत् ॥ १९८ ॥

कटुरसका अत्यन्त प्रयोग करनेसे भ्रम तथा दाहको करनेवाला, मुख, तालु, होठ इनको सुखानेवाला, कंठादिमें पीडा करनेवाला, मूर्च्छा तथा अन्तर्दाह कारक और बल तथा कांतिनाशक है ॥ १९८ ॥

अथ तिक्तरसस्य गुणाः ।

तिक्तः शीतस्तृषामूर्च्छाज्वरपित्तकफाञ्जयेत् ॥ कृमिकुष्ठविषोत्क्लेददाहरक्तगदापहः ॥ १९९ ॥ रुच्यः स्वयमरोचिष्णुः कण्ठस्तन्यविशोधनः ॥ वातलोऽग्निकरो नासाशोषणो रूक्षणो लघुः ॥ २०० ॥

रुच्यः अन्येषु वस्तुषु रुचिमुत्पादयति । स्वयमरोचिष्णुः यथा निम्बः स्वयं न रोचते अन्येषु वस्तुषु रुचिं करोति ॥

तिक्त (कडुआ) रस शीतल, तृषा, मूर्च्छा, ज्वर, पित्त तथा कफको जीतनेवाला है, कृमि, कुष्ट, विष, उत्क्लेद, (जी मिचलना) दाह और रुधिर सम्बन्धी रोगोंको हरनेवाला है । आप अरुचिकारक होनेपरभी अन्यपदार्थोंमें रुचि करताहै । कण्ठको तथा दूधको शुद्ध करनेवाला है । वातकारक, अग्निको बढानेवाला, नाकको सुखानेवाला, रूक्ष और हलका है ॥ १९९ ॥ २०० ॥

अतियुक्ततिक्तगुणाः ।

सोऽतियुक्तः शिरःशूलमन्यास्तम्भश्रमार्त्तिकृत् ॥ कम्पमूर्च्छातृषाकारी बलशुक्रक्षयप्रदः ॥ २०१ ॥

तिक्तरसका अत्यन्त उपयोग करनेसे शिरमें दर्द, गर्दनमें स्तम्भता, परिश्रम, पीडा, कम्प, मूर्च्छा और तृषाको उत्पन्न करनेवाला तथा बल और वीर्यको क्षय करनेवाला है ॥ २०१ ॥

अथ कषायगुणाः ।

कषायो रोपणो ग्राही स्तम्भनः शोधनस्तथा ॥ लेखनः पीडनः सौम्यः शोषणो वातकोपनः ॥ २०२ ॥ कफशोणितपित्तघ्नो रूक्षः शीतो लघुर्मतः ॥ त्वक्प्रसाधन आमस्य स्तम्भनो विशदो मतः ॥ जिह्वाया जाड्यकृत्कण्ठस्रोतसां च विबन्धकृत् ॥ २०३ ॥

रोपणः घ्राणस्य । स्तम्भनो गात्राणाम् । शोधनो व्रणस्य । लेखनो व्रणाद्युत्सन्नमांसस्य । पीडनो हृदयस्य वातकारित्वात् । सौम्यः सोमादुत्पन्नः । शोषणो व्रणमज्जादीनाम् ॥

कसैला रस घावको भरनेवाला, मलबंध करनेवाला, शरीरका स्तम्भन कर्ता, व्रणशोधक व्रणादिकोंमें उठेहुए मासको छीलनेवाला, लेखन, हृदयमें पीडाकारक, सोम (चन्द्रमा) से उत्पन्नहुआ, व्रण तथा मज्जा आदिकों सुखानेवाला, वायुको कुपित करनेवाला, कफ, रुधिर तथा पित्तको हरनेवाला, रूक्ष, शीतल, हलका, त्वचाको शुद्ध तथा ठीक करनेवाला, आमको रोकनेवाला, विशद जीभको जड करनेवाला और कण्ठ तथा स्रोतो (छिद्रों) को रोकनेवाला है ॥ २०२ ॥ २०३ ॥

अतियुक्तस्य कषायस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तो ग्रहाध्मानहृत्पीडाक्षेपणादिकृत् ॥ २०४ ॥

कषायरसका अत्यन्त उपयोग करनेसे ग्राही, अफारा, हृदयकी पीडा और आक्षेपक आदि रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है ॥ २०४ ॥

अथ मधुरादीनामपरे विशेषाः।

मधुरं श्लेष्मलं प्रायो जीर्णशालियवादृते ॥ मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात्सितायां जांगलामिषात् ॥ २०५ ॥ अम्लं पित्तकरं प्रायो विना धात्रीं च दाडिमीम् ॥ लवणं प्रायशो द्वेषि नेत्रयोः सैन्धवं विना ॥ २०६ ॥ प्रायः कटु तथा तिक्तमवृष्यं वातकोपनम् ॥ शुण्ठीकृष्णारसोनानि पटोलममृतां विना ॥ २०७ ॥ चरकेऽपि–पिप्पली नागरं वृष्यं कटु चावृष्यमुच्यते ॥ प्रायशः स्तम्भनं प्रोक्तं कषायमभयां विना ॥ ॥ २०८ ॥ सामान्येनात्र निर्दिष्टा गुणाः षड्रससम्भवाः ॥ रसानां योगतस्तु स्यादन्य एव गुणोदयः ॥ २०९ ॥ संयोगाद्विषतां याति सममाज्येन माक्षिकम् ॥ अमृतत्वं विषं याति सर्पदष्टस्य वै यथा ॥ २१० ॥

पुराने चावल, जौ, मूँग, गेहूँ, शहद, मिश्री और जंगली जीवोंका मांस इनको छोडकर शेष सम्पूर्ण मधुर रसवाले पदार्थ प्रायः कफको करनेवाले हैं। आमला और दाडिम (अनार) को छोडकर शेष सम्पूर्ण अम्लरसवाले पदार्थ प्रायः पित्तको उत्पन्न करनेवाले हैं। सैंधेनोनको छोडकर शेष सम्पूर्ण लवण (नमक) नेत्रोंको अहितकारी हैं। सोंठ, पीपल, लहसुन, परवल और गिलोयको छोडकर शेष सम्पूर्ण चरपरे और कडवे पदार्थ वातको कुपित करनेवाले तथा वीर्यको अहितकारी हैं। चरकमें भी कहा है कि, "सोंठ और पीपल ये वीर्यको बढानेवाली हैं और अन्य चरपरे पदार्थ वीर्यके हानिकारक है" हरडके विना शेष समस्त कसैले रसवाले पदार्थ प्रायः शरीरको स्तंभन करनेवाले हैं। इस प्रकरणमे छहौ रसोंके गुण सामान्यरीतिसे कहे हैं, परन्तु उनमे विशेष बात यह है कि अन्य रसोंका सयोग होनेसे दूसरे प्रकारके ही गुण प्रगट होते हैं. जैसे कि, मधु घीके साथ मिलनेसे विषरूप होताहै और जिस प्रकार सर्पके डसेपर विष अमृतकी समान कार्य्य करताहै ॥ २०५–२१० ॥

अथ द्रव्यगुणाः।

लघुर्गुरुस्तथा स्निग्धो रूक्षस्तीक्ष्ण इति क्रमात् ॥ नभोभूवारिवातानां वह्नेरेते गुणाः स्मृताः ॥ २११ ॥

हलकापन आकाशका गुण है, भारीपन पृथ्वीका गुण है, चिकनापन जलका गुण है, रूक्षता वायुका गुण है और तीक्ष्णता अग्निका गुण है ॥ २११ ॥

अथ लघ्वादिगुणवतां गुणाः।

लघु पथ्यं परं प्रोक्तं कफघ्नं शीघ्रपाकि च ॥ २१२ ॥

लघु द्रव्यम्। एवं गुर्वादि ॥

तथा चोक्तम्।

गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये॥ रसेषु व्यपदिश्यंते साहचर्योपचारतः ॥ २१३ ॥ गुरु वातहरं पुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाकि च ॥ स्निग्धं वातहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहम् ॥ रूक्षं समीरणकरं परं कफहरं मतम् ॥ २१४ ॥ तीक्ष्णं पित्तकरं प्रायो लेखनं कफवातहृत् ॥ सुश्रुते तु गुणा एते विंशतिस्तान्ब्रुवे शृणु ॥ ॥ २१५ ॥ गुरुर्लघुः स्निग्धरूक्षौ तीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः ॥ पिच्छिलो विशदः शीत उष्णश्च मृदुकर्कशौ ॥ स्थूलः सूक्ष्मो द्रवः शुष्कः आशुर्मन्दः स्मृता गुणाः ॥ २१६ ॥

तत्र गुरुलघुस्निग्धरूक्षतीक्ष्णा गुणा उक्ता एव।

श्लक्ष्णः स्नेहं विनापि स्यात्कठिनोऽपि हि चिक्कणः ॥ २१७ ॥ स्थिरो वातमलस्तम्भी सरस्तेषां प्रवर्तकः ॥ पिच्छिलस्तन्तुलो बल्यः सन्धानः श्लेष्मलो गुरुः ॥ २१८ ॥

सन्धानो भग्नस्य ॥

क्लेदच्छेदकरः ख्यातो विशदो व्रणरोपणः ॥ शीतस्तु ह्लादनः स्तम्भी मूर्च्छातृट्स्वेददाहनुत् ॥ उष्णो भवति शीतस्य विपरीतश्च पाचनः ॥ २१९ ॥

ह्लादनः सुखजनकः । स्तम्भी रक्तातिप्रवृत्त्यादीनाम् । उष्णः शीतस्य विपरीतस्तेन असुखजनकः । रक्तातिप्रवृत्त्यादीनामस्तम्भनः । मूर्च्छातृट्स्वेददाहकृत् पाचनो व्रणादीनाम् । मृदुकर्कशौ प्रसिद्धौ ॥

स्थूलः स्थौल्यकरो देहे स्रोतसामवरोधकृत् । देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ॥ २२० ॥ द्रवः क्लेदकरो व्यापी शुष्कस्तद्विपरीतकः ॥ आशुराशुकरो देहे धावत्यम्भसि तैलवत् ॥ मन्दः सकलकार्येषु शिथिलोऽल्पोऽपि कथ्यते ॥ २२१ ॥

हलके पदार्थ अत्यत पथ्य, कफनाशक और शीघ्र पचनेवाले हैं । भारी पदार्थ वातनाशक, पुष्टिकारक, कफको करनेवाले और देरसे पचनेवाले हैं । स्निग्ध (चिकने) पदार्थ–वातनाशक, कफकारक वीर्यवर्द्धक और बलको देनेवाले हैं । रूक्षपदार्थ अत्यत वायुवर्द्धक, और कफको हरनेवाले हैं । तीक्ष्ण (तीखे) पदार्थ अधिक पित्तको करनेवाले, लेखन (छीलनेवाले) और कफ तथा वातको हरनेवाले हैं । सुश्रुतमें वीस गुण कहे है सो कहता हूँ, सुन भारी १, हलका२, स्निग्ध ३, रूक्ष ४, तीक्ष्ण ५, श्लक्ष्ण ६, स्थिर ७, सर ८, पिच्छिल ९, विशद १०, शीत ११, उष्ण १२, मृदु १३, कर्कश १४, स्थूल १५, सूक्ष्म१६, द्रव १७, शुष्क १८, आशु १९ और मद २०, ये वीस गुण हैं । इनमे भारी, हलका, स्निग्ध, रूक्ष और तीक्ष्ण ये गुण कह चुके हैं । अब शेष गुण कहते हैं कि, श्लक्ष्णगुण स्नेहयुक्त पदार्थोंके विना भी होताहै और वह कठिन होनेपर भी चिकना है । स्थिरगुण--वायु और मलको रोकनेवाला है । सरगुण–वायुको तथा मलको प्रवृत्त करनेवाला । पिच्छिलगुण- ततु (रेसे) वाला, बलकारक, संधानकारक, कफकारी और भारी है । विशदगुण–आर्द्रताको मिटानेवाला और व्रणको भरनेवाला है । शीतगुण-सुख देनेवाला, रक्तकी अतिप्रवृत्तिको रोकनेवाला और मूर्च्छा, तृषा, दाह तथा स्वेद (पसीने) को रोकनेवाला है । उष्णगुण–शीतगुणसे विपरीत गुणोवाला है । मृदुगुण और कर्कशगुण ये दोनो प्रसिद्ध हैं । स्थूलगुण–शरीरमे स्थूलताको करनेवाला और स्रोतोको रोकनेवाला है । शरीरके सूक्ष्म छिद्रोंमे तैल आदि पदार्थ जो प्रवेश करताहै वह सूक्ष्मगुण है । द्रवगुण–क्लेद (आर्द्रता) कारक और व्यापक है । शुष्कगुण–द्रवगुणसे विपरीत है । आशुगुण जिस प्रकार पानीमे तेल फैल जाताहै वैसेही शरीरमे यह आशुगुण फैल जाताहै । मन्दगुण–सम्पूर्ण कार्योंमे शिथिल और अल्प कहाताहै ॥ २१२–२२१ ॥

अथ गुणप्रस्तावाद्दीपनादयो गुणाः सलक्षणाः ।

पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिसिः ॥ वह्निकृत् वह्निदीप्तिकृत् ॥

ननु यद्वह्निं प्रदीपयति तदामं कथं न पचेदित्याशंकायामुच्यते, दीपनद्रव्यं तावन्तं वह्निं प्रदीपयति यथा अन्ने भोक्तुमिच्छामुत्पादयति, न तु आमं पक्तुं क्षमम् । यथा सूक्ष्मदीपाग्निः उद्द्योतं करोति न तु बृहत्स्थालीस्थान् तण्डुलान् ओदनं कर्तुं क्षमः ॥

पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम् ॥ नागकेशरवद्विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः ॥ २२२ ॥

ननु यद्वह्निं न दीपयति तदामं कथं पचतीत्याशङ्कायामाह–पाचनं वह्निदीप्तिमकुर्वाणमप्यामं पचति । यथाग्न्याधानीस्थोऽङ्गारसमूहोऽन्नं पचति, न तु दीपवत्सर्वतः प्रदीपयति ॥

न शोधयति यद्दोषान्समान्नोदीरयत्यपि ॥ समीकरोति विषमाञ्छमनं तद्यथा–ऽमृता ॥ २२३ ॥

यद्द्रव्यं दोषत्रयं न शोधयति, नोर्द्ध्वाधोमार्गाभ्यामानयति, समान्दोषान् नोदीरयति न वर्धयति शमनं तत् ॥

कृत्वा पाकं मलानां च भित्त्वा बन्धमधो नयेत् ॥ तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ २२४ ॥

मलानामपक्वानां वातपित्तश्लेष्मणां बन्धं वायुबन्धं भित्त्वा अधो नयेत् । मलानधः पातयति ॥

पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ॥ नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात्कृतमालकम् ॥ २२५ ॥

मलादिकम्—आदिशब्दात् कफपित्ते। कृतमालः धनबहेरा सोंदालवा इति लोके ॥

मलादिकमबद्धं यद्बद्धं वा पिण्डितं मलैः ॥ भित्त्वाऽधः पातयति यद्भेदनं कटुकी यथा ॥ २२६ ॥

अबद्धं शिथिलं, बद्धं गाढं, मलैः दोषैः तत्रापि वातैः, बहुत्वमाधिक्यबोधनार्थं तैः पिण्डितं गुटिकीकृतम् ॥

विपक्कं यदपक्कं वा मलादि द्रवतां नयेत् ॥ रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥ २२७ ॥

रेचयत्यपि अधःपातयति च। त्रिवृता तेओडि इति लोके ॥

अपक्कं पित्तश्लेष्मान्नं नयत्यूर्ध्वं नयेत्तु यत् ॥ वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥ २२८ ॥

ऊर्द्धं नयेन्मुखमार्गेण बहिष्कुर्यात्। मदनस्य फलं मयनाफलइति लोके ॥

स्थानाद्बहिर्नयेदूर्द्धमधो वा मलसञ्चयम्॥ देहसंशोधनं तत्स्याद्देवदालीफलं यथा२२९

देवदाली सोनैआ इति लोके ॥

दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम् ॥ ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली ॥ २३० ॥ रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत् ॥ वातकृत्स्तम्भनं तत्स्याद्यथा वत्सकटुण्टुकौ॥२३१॥

वातकृत् प्रतिलोमवातकृत्। स्तम्भनमधोगामि मलादीनाम्। वत्सक (कुरैआ) टुण्टुकः (सोनापाठा) ॥

श्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयति यद्बलात् ॥ छेदनं तद्यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु ॥ २३२ ॥

क्षारा यवक्षारादयः ॥

धातून्मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत् ॥ लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचा यवाः ॥ २३३ ॥

उल्लेखयेत्कृशीकुर्यात्। लेखनं कृशीकारकम्। क्षौद्रं मधु। यवा इन्द्रयवाः ॥

यस्माद्द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं हि तत् ॥ यथाश्वगन्धा मुसली शर्करा च शतावरी ॥ २३४ ॥

हर्षो रन्तुं समुत्साहः ॥

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं हि तदुच्यते ॥ यथा नागबलाद्याः स्युर्बीजं च कपिकच्छुजम् ॥ २३५ ॥

नागबला गोरक्षचाकुलिया इति लोके ॥

दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जा मलानि च ॥ एतानि जनकानि स्यू रेचकानि च रेतसः ॥ २३६ ॥

जनकानि प्रभावाच्छीघ्रमेव रसाद्युत्पादनपूर्वकं शुक्रं जनयन्ति। रेचकानि आधिक्यात्प्रवर्तयन्ति च ॥

प्रवर्तिनी स्त्री शुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम्॥ जातीफलं स्तंभकं स्यात्कालिङ्गं क्षयकारि च ॥ २३७ ॥

स्त्रीस्मरणकीर्तनदर्शनसम्भाषणस्पर्शनचुम्बनालिङ्गननिधुवनैः समस्तैः व्यस्तैश्च शुक्रस्य प्रवर्तिनी प्रवृत्तिकारिणी। रेचनं बृहतीफलम्, बृहत्कण्टकारीफलमपि शुक्रस्य रेचकं प्रवर्तकम्। कालिङ्गं राजकर्कटी ॥

रसायनन्तु तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्॥ यथा हरीतकी दन्ती गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ २३८ ॥ पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकश्च गच्छति ॥ व्यवायि तद्यथा भङ्गा फेनश्चाहिसमुद्भवम् ॥ २३९ ॥

कहाताहै, जैसे कि–सोंठ, जीरा और गजपीपल। जो पदार्थ रूक्ष, शीतल, कसैला और लघुपाकी होनेसे वायुका प्रतिलोम करता है वह पदार्थ स्तंभन कहाता है, जैसे कि–कुडा और सोनापाठा। यह नीचे जानेवाले मलादिको रोककर रखताहै इसलिये स्तम्भन कहाताहै। जो पदार्थ शरीरमे चिपटे हुए कफादिक दोषोंको बलात्कारसे उखाड डालै वह पदार्थ छेदन कहाता है जैसे कि–जवाखार आदिखार, कालीमिरच और शिलाजीत। जो पदार्थ देहकी धातुओंको अथवा मलको सुखाकर दुर्बल करै वह पदार्थ लेखन है, जैसे कि–मधु, उष्णजल, वच और इन्द्रजौ। जिस द्रव्यके प्रयोग करनेसे स्त्रीके साथ रमण करनेका उत्साह होय वह द्रव्य वाजीकरण कहाताहै, जैसे कि, असगध, मुसली, मिश्री और शतावर। जिस द्रव्यसे वीर्यकी वृद्धि होय वह द्रव्य शुक्रल कहाताहै, जैसे कि–नागवला आदि और कौंछके बीज। दूध, उडद, भिलावेकी मींगी और आमले ये अपने प्रभावसे शीघ्रही रसादिकको उत्पन्न करके वीर्यको प्रगट करतेहैं और वीर्यकी अधिकता होनेपर उसकी प्रवृत्ति करतेहैं। स्त्री वीर्यको प्रवर्त्त करनेवाली, कटेरीका फल वीर्यका रेचक, जायफल वीर्यका स्तम्भन करनेवाला और तरबूज वीर्यका क्षय करनेवाला है। स्त्री–स्मरण, कीर्तन, दर्शन, सभाषण, स्पर्श, चुंबन, आलिंगन और मैथुन इन सम्पूर्ण क्रियाओंसे अथवा इनमेंसे थोडी क्रियाओंसे वा एकही क्रियासे वीर्यको प्रवर्त करने (निकालने) वाली है। जो पदार्थ जरा और व्याधिका नाश करने वाला होय वह पदार्थ रसायन कहाताहै, जैसे कि–हरड, दती, गूगल और शिलाजीत। जो पदार्थ प्रथम सम्पूर्ण शरीरमे व्याप्त होकर पश्चात् पाकअवस्थाको प्राप्त होयँ वह पदार्थ व्यवायि कहाताहै, जैसे कि–भाँग और अफीम। अन्य द्रव्य परिपाकको प्राप्त होकर अपना गुण करतेहैं और व्यवायि द्रव्य तौ कच्चे ही अपने गुणोंसे सम्पूर्ण शरीरमे व्याप्त होकर पीछे पकतेहैं। जो द्रव्य सम्पूर्ण शरीरमे रहनेवाले वीर्यमेंसे ओजको सुखाकर शरीरकी सधियोंके बधनको शिथिल (ढीला) करतेहैं उनको विकाशी जानना, जैसे सुपारी और कोदौं। जो द्रव्य अधिक तमोगुणवाले होनेके कारण बुद्धिका नाश करतेहैं वह मदकारी अर्थात् मादक द्रव्य कहातेहैं, जैसे कि–मदिरा आदिक। जो पदार्थ व्यवायी, विकाशी, कफ नष्ट करनेवाला मद करनेवाले, आग्नेय गुणविशिष्ट, प्राणनाशक और योगवाही होय वह पदार्थ विष कहाताहै, जैसे कि–वत्सनाभ और शकुक आदि। वत्सनाभ आदि द्रव्य–सम्पूर्ण शरीरमे व्याप्त होनेपर पकतेहैं इसलिये व्यवायी हैं और ओजको सुखाकर सधियोंके बधनको शिथिल करते हैं इसलिये विकाशी हैं। तमोगुणका भाग अधिक होनेसे बुद्धिका नाश करके मद करते है, अग्निके अधिक अंशयुक्त होनेसे आग्नेय हैं। जिस पदार्थके साथ मिलकर उस पदार्थकी समान गुणोंको करनेवाले होनेसे योगवाही भीहैं। जो द्रव्य अपनी शक्ति करके स्रोतोंसे दोषोंके समूहको निकालै वह द्रव्य प्रमाथी कहाताहै, जैसे कि–मिरच और वच। जो पदार्थ रसको बहानेवाली शिराओंको पिच्छिल और भारीपनसे रोककर शरीरमे भारीपन करताहै वह अभिष्यन्दी कहाताहै, जैसे कि–दही। जिस द्रव्यके खानेसे खट्टी डकार आवैं, प्यास लगै, हृदयमें दाह हो वह पदार्थ विदाही कहाता है, विदाही द्रव्यका पाक बहुत देरसे होताहै। जोद्रव्य पकते समय अपने साथ मिली हुई वस्तुओंके गुणको ग्रहण करै वह पदार्थ योगवाही कहाताहै, जैसे कि–शहद, तेल, घी, पारा और लोहा आदि ॥ २२२–२४६ ॥

अथ वीर्यम्।

तत्र वाग्भटः–उष्णशीतगुणोत्कर्षाद्बुधैर्वीर्यं द्विधा स्मृतम् ॥ यत्सर्वमग्निषोमीयं दृश्यते भुवनत्रयम् ॥ २४७ ॥ उष्णं वातकफौ हन्याच्छीतं तु तनुते जराम् ॥ शीतं वातकफातङ्कान्कुरुते पित्तहृत्परम् ॥ २४८ ॥ अन्यच्च–तत्रोष्णं भ्रमतृड्ग्लानिस्वेददाहाशुपाकताम् ॥ शमश्च वातकफयोः करोति शिशिरं पुनः ॥ ह्लादनं जीवनं स्तम्भं प्रसादं रक्तपित्तयोः ॥ २४९ ॥

सम्पूर्ण संसार अग्नि और चन्द्रसे संबंध रखनेवाला देखनेमे आताहै, इसकारण किसी द्रव्यमे गरमी और किसी पदार्थमे शीतलता अधिक देखीजातीहै, इसीसे विद्वानोंने पदार्थोंमे उष्ण और शीत ऐसे दो प्रकारका वीर्य मानाहै। उष्ण वीर्यसे वात तथा कफ नष्ट होताहै और पित्त बढताहै। शीतवीर्यसे पित्त नष्ट होताहै और वात तथा कफकी पीडा होतीहै। अन्य ग्रथमे भी कहाहै कि– उष्णवीर्यसे भ्रम, तृषा, ग्लानि, स्वेद, तथा दाह होताहै, वायु तथा कफ शांत होताहै। तैसेही शीतवीर्यसे आनन्द, जीवन, मलादिकका स्तभन और रक्तपित्त स्वच्छ होताहै ॥२४७–२४९॥

अथ विपाकः ।

जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम् ॥ रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः ॥ २५० ॥ मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः ॥ कटुतिक्तकषायाणां पाकः स्यात्प्रायशः कटुः ॥ २५१ ॥

तथा च वाग्भटः-

त्रिधा रसानां पाकः स्यात्स्वाद्वम्लकटुकात्मकः ॥ प्रायःपदेन व्रीहिः स्यात्स्वादुरम्लो विपाकतः ॥ २५२ ॥

शिवा कषाया मधुरा पाके, शुण्ठी कटुका मधुरपाकेत्यादि ॥

जठराग्निके संयोगसे रसका परिणाम (मीठा, खट्टा आदि) होनेपर जो अन्य रस उत्पन्न होताहै उसको विपाक कहतेहैं । मधुर और खारीरसके अधिकतासे मधुर विपाक होताहै, खट्टे रसका प्रायः खट्टा पाक होताहै । और तीक्ष्ण (चरपरे) कडवे तथा कसैले रसका प्रायः कटु पाक होताहै । वाग्भटमें भी कहाहै कि—रसोंका मधुर, खट्टा और तीक्ष्ण ऐसे तीन प्रकारके पाक होते हैं, यहाँ प्रायः शब्दका यह अभिप्राय है कि, किसी स्थानमें यह नियम बदल भी जाताहै, जैसे कि—चावल मधुर होनेपर उनका पाक खट्टा होताहै, हरड कसैली होनेपर उसका पाक मधुर होताहै, सोंठ चरपरी होनेपर भी उसका विपाक मधुर होताहै । इत्यादि ॥ २५०-२५२ ॥

अथ विपाकानां गुणाः ।

श्लेष्मकृन्मधुरः पाको वातपित्तहरो मतः ॥ अम्लस्तु कुरुते पित्तं वातश्लेष्मगदापहः ॥ ॥ २५३ ॥ कटुः करोति पवनं कफं पित्तञ्च नाशयेत् ॥ विशेष एवं रसतो विपाकानां निदर्शितः ॥ २५४ ॥

मधुरपाक—कफको उत्पन्न करनेवाला, वात तथा पित्तको हरनेवाला है । खट्टापाक- पित्तको उत्पन्न करताहै, वात तथा कफसंबधी रोगोंको नष्ट करताहै । कटु (तीक्ष्ण) पाक— वातजनक और पित्त तथा कफनाशक है। इसप्रकार विपाक रससे विशेष होताहै वह दिखाया है ॥ २५३ ॥ २५४ ॥

अथ प्रभावः ।

रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम् ॥ दन्ती रसाद्यैस्तुल्यापि चित्रकस्य विरेचनी ॥ २५५ ॥ मधूकस्य च मृद्वीका घृतं क्षीरस्य दीपनम् ॥ प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः ॥ २५६ ॥ समापि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् ॥ क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्प्रभावतः ॥ ज्वरं हन्ति शिरोबद्धा सहदेवीजटा यथा ॥ २५७ ॥

तथा नानौषधियोगेषु फलं प्रति स्वभाव एव आश्रयणीयो न तु तत्र रसादिरूपहेतुविचारः कर्तव्यः ॥ अत आह सुश्रुतः- अमी सामान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ॥ आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ २५८ ॥ प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः ॥ नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान्परीक्षेत कदाचन ॥ २५९ ॥ विरुद्धगुणसंयोगे भूयसाल्पं हि जीयते ॥ रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान्व्यपोहति ॥ २६० ॥

॥ इति मिश्रवर्गः ॥

रस आदि समान होनेपरभी कोई पदार्थ किसी पदार्थसे जो अधिक काम करताहै वह काम उसके प्रभावसे होताहै, ऐसा जानना । जिस प्रकार कि—दन्तीके रस आदिसे चीता समानही है तो भी दन्तीमें रेचकता अधिक प्रभावसे है किन्तु चीतेमें नहीं है । दाखके रस आदिसे महुआ समान भी है तो भी दाखमें विरेचनशक्ति अधिक है. घीके रस आदिसे दुग्ध समान भी है तो भी घीमें अग्निको दीपन करनेका गुण अधिक है, वैसेही आंवलेके रस आदिसे लकुच (बडहर) समानही है. परन्तु तो भी आँवला तीनों दोषोंका नाशक है । कहीं कहीं एकही द्रव्य अपने प्रभावसे काम करताहै । जैसे कि—सहदेईकी जड शिरमें बाँधनेसे ज्वर नष्ट होताहै; वैसेही अनेक प्रकारकी औषधियोंका संयोग करनेमे जो गुण उत्पन्न होताहै सो उनमे स्वभावकोही कारणरूप जानना, परन्तु उनमें रस आदि कारणोंका विचार नहीं करना क्योंकि, सुश्रुत कहता है कि—" जो औषधि प्रसिद्ध स्वभाववाली है उनमें रस आदि कारणोंका विचार तथा तर्क नहीं करना चाहिये । विद्वान् वैद्य शास्त्रके ऊपर आधार रखकर उनको कार्यमें लावै । जिन औषधियोंका फल प्रत्यक्ष

देखनेमें आताहै और स्वभावसेही प्रसिद्ध है, उन औषधियोंके उन रस आदि कारणोंसे विद्वान् परीक्षा नहीं करै । परस्पर विरुद्ध गुणवाली औषधियोंका संयोग होनेसे उनमें रस आदिकी न्यूनाधिकता होजाती है अर्थात् अल्पको बलवान् जीतलेताहै । क्योंकि रसको विपाक जीत लेताहै, रस तथा विपाकको वीर्य जीतलेताहै और रस, विपाक तथा वीर्य इन तीनोंको प्रभाव जीत लेताहै ॥ २५५-२६० ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे मिश्रवर्गः ॥

अथ हरीतक्यादिवर्गः ।

रसगुणवीर्यविपाकप्रभावाणां स्वरूपाणि अभिधाय कुत्र द्रव्ये के रसगुणवीर्यविपाकप्रभावाः सन्तीति बोधयितुं द्रव्यगतान् रसगुणवीर्यविपाकप्रभावान् आह । तत्र प्रथमं हरीतक्या उत्पत्तिनामलक्षणगुणानाह-

दक्षं प्रजापतिं स्वस्थमश्विनौ वाक्यमूचतुः ॥ कुतो हरीतकी जाता तस्यास्तु कति जातयः ॥ १ ॥ रसाः कति समाख्याताः कति चोपरसाः स्मृताः ॥ नामानि कति चोक्तानि किं वा तासां च लक्षणम् ॥ २ ॥ के च वर्णा गुणाः के च का च कुत्र प्रयुज्यते ॥ केन द्रव्येण संयुक्ता कांश्च रोगान्व्यपोहति ॥ ३ ॥ प्रश्नमेतद्यथा पृष्टं भगवन्वक्तुमर्हसि ॥ अश्विनोर्वचनं श्रुत्वा दक्षो वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥ पपात बिन्दुर्मेदिन्यां शक्रस्य पिबतोऽमृतम् ॥ ततो दिव्यात्समुत्पन्ना सप्तजातिर्हरीतकी ॥ ५ ॥

इसप्रकार रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभावका स्वरूप कहकर अब किस किस पदार्थमें कैसे कैसे रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव हैं यह जाननेके लिये प्रत्येक पदार्थका रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव कहतेहैं । तहाँ प्रथम हरडकी उत्पत्ति, नाम, लक्षण और गुण कहते हैं—

स्वस्थता पूर्वक बैठे हुए दक्षप्रजापतिसे अश्विनीकुमारोंने पूँछा कि—"हरड कहाँसे उत्पन्न हुई है और कितनी जातिकी है ? इसमें कितने रस और कितने उपरस हैं ? इसके नाम और लक्षण क्या हैं ? इसका वर्ण और गुण किन ... प्रश्नोका य... रोंका वचन सुन... इन्द्रने अमृत पिया तब... उससे सात प्रकारकी हरडे ...

... विशेष कर कसेली है तथा ... बुद्धिको हित- ... ल्की

हरीतकीनाम ।

हरीतक्यभया पथ्या कायस्था पूतनाऽमृता ॥ हैमवत्यव्यथा चापि चेतकी श्रेयसी शिवा ॥ ६ ॥ वयस्था विजया चापि जीवन्ती रोहिणीति च ॥

हरीतकी, अभया, पथ्या, कायस्था, पूतना, अमृता, हैमवती, अव्यथा, चेतकी, श्रेयसी, शिवा, वयस्था, विजया, जीवती और रोहिणी ये हरडके संस्कृत नाम हैं । हिन्दीमें—हरड, हड, हर्र । बं० हरीतकी । म०—हिरडा, हिरडे । क०—अणीले । गु०—हरडा । ता०—कडुकाई । फा०—हलैले जर्द, अस्कर । अ०—एलही लज, कावली, अहलीज अस्कर । इं०—ब्लाकमेराबोलम चेबुलिक Black Myrabolam Chebulic लै०—टरमिनेलिया चेबुला Terminalia Chebula ॥ ६ ॥

सप्त हरीतकीभेदाः ।

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताऽभया ॥ ७ ॥ जीवन्ती चेतकी चेति विज्ञेयाः सप्तजातयः ॥

विजया १, रोहिणी २, पूतना ३, अमृता ४, अभया ५, जीवती ६ और चेतकी ७ हरडकी यह सात जाति हैं ॥ ७ ॥

---

१ **विन्ध्याद्रौ विजया हिमाचलभवा स्याच्चेतकी पूतना । सिन्धौ स्यादथ रोहिणी निगदिता जाता प्रतिस्थानके ॥ चम्पायाममृताभया च जनिता देशे सुराष्ट्राह्वये । जीवन्तीति हरीतकी निगदिता सप्तप्रभेदा बुधैः ॥**

अर्थ-विजया हरड विन्ध्याचल पर्वतपर उत्पन्न होती है, चेतकी हरड हिमालय पर्वतपर होती है, पूतना हरड सिन्धुनदीके किनारेपर होती है, और रोहिणी हरड प्रतिस्थानमें होतीहै, अमृत और अभया हरड चम्पारण्य देशमें उत्पन्न होती है और जीवन्ती हरड सौराष्ट्रदेशमें उत्पन्न होती है, इस प्रकार सातों जातिकी हरडोंके स्थान वैद्य लोगोंनें वर्णन कियेहैं ॥

अथ सप्तलक्षणानि ।

अलाबुवृत्ता विजया वृत्ता सा रोहिणी स्मृता ॥ ८ ॥ पूतनास्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसलाऽमृता ॥ पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी ॥ ९ ॥ त्रिरेखा चेतकी ज्ञेया सप्तानामियमाकृतिः ॥

जो हरड–तोंबीके सदृश गोल होय वह विजया हरड कहाती है । जो साधारण गोल होय वह रोहिणी हरड कहाती है । जो बडी गुठलीवाली तथा सूक्ष्म होय वह पूतना हरड कहाती है । अधिक गूदेवाली अमृता हरड होती है । पॉच रेखायुक्त होय सो अभया कहाती है । जो सुवर्णके सदृश वर्णवाली होय वह जीवन्ती जाननी । और तीन रेखावाली जो होय वह चेतकी हरड कहातीहै. इसप्रकारकी हरडोंकी ये सात आकृति हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

हरीतकीप्रयोगाः ।

विजया सर्वरोगेषु रोहिणी व्रणरोहिणी ॥ १० ॥ प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता ॥ अक्षिरोगेऽभया शस्ता जीवन्ती सर्वरोगहृत् ॥ ११ ॥ चूर्णार्थे चेतकी शस्ता यथायुक्तं प्रयोजयेत ॥ चेतकी द्विविधा प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः ॥ १२ ॥ षडंगुलायता शुक्ला कृष्णा त्वेकांगुला स्मृता ॥ काचिदास्वादमात्रेण काचिद्गन्धेन भेदयेत् ॥ १३ ॥ काचित्स्पर्शेन दृष्ट्याऽन्या चतुर्द्धा भेदयेच्छिवा ॥ १४ ॥ चेतकीपादपच्छायामुपसर्पन्ति ये नराः ॥ भिद्यंते तत्क्षणादेव पशुपक्षिमृगादयः ॥ १५ ॥ चेतकी तु धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः ॥ तावद्भिद्येत वेगैस्तु प्रभावान्नात्र संशयः ॥ १६ ॥ नृपाणां सुकुमाराणां कृशानां भेषजद्विषाम् ॥ चेतकी परमा शस्ता हिता सुखविरेचनी ॥ १७ ॥ सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजया स्मृता ॥ सुखप्रयोगा सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते ॥ १८ ॥

विजया हरड सम्पूर्ण रोगोंमे उत्तम है । व्रण (घाव) के भरनेमे रोहिणी हरड उत्तम है । पूतना हरड लेपके कार्यमे उत्तम है । अमृता हरड रेचनकार्य (जुलाब) में उत्तम है । अभया हरड नेत्र रोगोंपर उत्तम है । जीवंती सम्पूर्ण रोगोंको हरनेवाली है । और चेतकी हरड चूर्णके लिये उत्तम है । इनकी योग्यता विचारकर यथास्थानोंमे प्रयोग करै । सफेद रंगकी और काले रंगवाली इसप्रकार चेतकी हरड दो प्रकारकी है । सफेद छः अंगुलकी विस्तारमे होतीहै और काली एक अंगुलकी विस्तारमे होतीहै । कोई हरड खानेमात्रसे, कोई गंधमात्रसे, कोई स्पर्शमात्रसे और कोई देखनेमात्रसे, इस भाँति चारप्रकारसे हरड दस्त लातीहै । मनुष्य, पशु, पक्षी तथा मृग आदि कोई भी प्राणी चेतकी हरडके वृक्षकी छायामें जाय तो उसको उसी समय दस्त होने लगतेहैं । मनुष्य चेतकी हरडको जबतक हाथमे धारण करे रहैगा तबतक निःसन्देह उसके प्रभावसे दस्त होते रहेंगे । राजा, सुकुमार (नाजुक) मनुष्य, दुर्बल शरीरवाला, और जिसकी औषधिपर अरुचि होय, उनके लिये चेतकी हरड बहुत उत्तम है, क्योंकि–उससे सुखपूर्वक रेचन होताहै और हितकारी है । हरडोंकी साती जातियोंमे विजया हरड मुख्य है क्योंकि–सहजहीमे सर्वत्र प्राप्त होसक्ती है उसका प्रयोग सहजमे होसक्ता है और सर्व रोगोंमे उत्तम है ॥ १०—१८ ॥

हरीतकीगुणाः ।

हरीतकी पञ्चरसाऽलवणा तुवरा परम् ॥ रूक्षोष्णा दीपनी मेध्या स्वादुपाका रसायनी ॥ १९ ॥ चक्षुष्या लघुरायुष्या बृंहणी चानुलोमिनी ॥ श्वासकासप्रमेहार्शःकुष्ठशोथोदरक्रिमीन् ॥ २० ॥ वैस्वर्यग्रहणीरोगविबन्धविषमज्वरान् ॥ गुल्माध्मानतृषाछर्दिहिक्काकण्डूहृदामयान् ॥ २१ ॥

१ हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी ॥ कदाचित्कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी ॥
अर्थ–हरड मनुष्योंको माताके समान हित करनेवाली है, माता तो कभी कुपित भी हो जातीहै, परन्तु उदरमें स्थित अर्थात् खाई हुई हरड कभी भी हानिकारक नहीं होती, सदैव रक्षा ही करती है ॥

कामलां शूलमानाहं प्लीहानञ्च यकृत्तथा ॥ अश्मरीमूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातञ्च नाशयेत् ॥ २२ ॥ स्वादुतिक्तकषायत्वात्पित्तहृत्कफहृत्तु सा ॥ कटुतिक्तकषायत्वादम्लत्वाद्वातहृच्छिवा ॥ २३ ॥ पित्तकृत्कटुकाम्लत्वाद्वातकृन्न कथं शिवा ॥ प्रभावाद्दोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत्प्रकाश्यते ॥ हेतुभिः शिष्यबोधार्थं नापूर्वं क्रियतेऽधुना ॥ २४ ॥ कर्मान्यत्वं गुणैः साम्यं दृष्टमाश्रयभेदतः ॥ यतस्ततो नेति चिन्त्यं धात्रीलकुचयोर्यथा ॥ २५ ॥ पथ्याया मज्जनि स्वादुः स्नाय्वामम्लो व्यवस्थितः॥ वृन्ते तिक्तस्त्वचि कटुरस्थिरस्तुवरो रसः ॥ २६ ॥ नवाः स्निग्धा घना वृत्ता गुर्वी क्षिप्ता च याऽम्भसि ॥ निमज्जेत्सा प्रशस्ता च कथिताऽतिगुणप्रदा ॥ २७ ॥ नवादिगुणयुक्तत्वं तथैकत्र द्विकर्षता ॥ हरीतक्याः फले यत्र द्वयं तच्छ्रेष्ठमुच्यते ॥ २८ ॥ चर्विता वर्द्धयत्यग्निं पेषिता मलशोधिनी॥ स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा प्रोक्ता त्रिदोषनुत् ॥ २९ ॥ उन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां निर्मूलिनी पित्तकफानिलानाम् ॥ विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां हरीतकी स्यात्सह भोजनेन ॥ ३० ॥ अन्नपानकृतान्दोषान्वातपित्तकफोद्भवान् ॥ हरीतकी हरत्याशु भुक्तस्योपरि योजिता॥३१॥ लवणेन कफं हन्ति पित्तं हन्ति सशर्करा ॥ घृतेन वातजान्रोगान्सर्वरोगान्गुडान्विता॥३२॥ सिंधूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्॥ वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥ ३३ ॥ अध्वातिखिन्नो बलवर्जितश्च रूक्षः कृशो लंघनकर्षितश्च ॥ पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्तरक्तस्त्वभया न खादेत् ॥ ३४ ॥

हरड लवण (खारी) रसके अतिरिक्त और सब (पांचों) रसवाली है, और विशेष कर कसेली है तथा रूखी, गरम, अग्निको दीपन करनेवाली, बुद्धिको हितकारी, मधुरपाकवाली, रसायन, नेत्रोंके लिये उत्तम हलकी आयुवर्द्धक, शरीरको पुष्ट करनेवाली और वायुको अनुलोम करनेवाली है । हरड-श्वास, खांसी, प्रमेह, कोढ, शोथ, उदर, कृमि, स्वरभग, सग्रहणी, मलबद्धता, विषमज्वर, गुल्म, अफारा, प्यास, वमन, हिचकी, खुजली, हृदयरोग, कामला, शूल, आनाह, प्लीहा, यकृत्, पथरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात इन सब रोगोंको हरनेवाली है । हरडमें-मधुर, तीक्ष्ण और कसैला रस होनेसे पित्तको नष्ट करती है । तीक्ष्ण (चरपरा), कडवा और कसैला रस होनेसे कफको हरतीहै और खट्टारस होनेसे वातको दूर करतीहै । "हरड तीक्ष्ण और खट्टी होनेके कारण वायुको और पित्तको क्यों उत्पन्न नही करती ?" ऐसी शका इस स्थानमे नहीं करनी चाहिये क्योंकि "हरडमे स्वाभाविक प्रभावके कारण दोषोंका निवारण करना जो सिद्ध है उसका यहां हम शिष्योंको समझानेके लिये सम्पूर्ण कारण दिखाकर प्रकाश करतेहैं; परन्तु वह कुछ हम नवीन रचकर नहीं दिखातेहैं । जैसे आमले और बडहल ये गुणोंमे समान होनेपर भी पृथक् पृथक् कार्य करतेहैं, यह कितना अन्तर है । इसलिये गुण समान होनेपर भी उन गुणोंके आश्रयके भेदसे उनका कार्य भिन्न भिन्न है वैसेही हरड भी तीक्ष्ण और अम्लरसके आश्रयभेदसे पित्त तथा वायुको उत्पन्न नहीं करसक्ती, ऐसा विचारकर किञ्चिन्मात्र भी सन्देह करना नही चाहिये । हरडकी मीगमे मधुररस, नसोंमें खट्टारस, डडीमे कडवारस, छालमें चरपरारस और गुठलीमें कसैलारस रहताहै । जो हरड-नई, चिकनी, घन, गोल तथा भारी होय और जलमे डालनेसे डूबजाय वह हरड उत्तम और अतिगुणकारक है । जिस हरडके फलमे नवीनता आदि ऊपर कहेहुए गुण होयँ तथा दो तोलेकी तोलमें भारी होय ऐसी हरड श्रेष्ठ होतीहै । चाबी हुई हरड अग्निको बढातीहै । पीसकर खाईहुई हरड मलको शुद्ध करतीहै अर्थात् रेचन करनेवाली है । जलमे पकाई हुई हरड दस्तोंको बन्द करतीहै । और भुनी हुई हरड तीनों दोषोंको नष्ट करतीहै । भोजनके साथ हरड खाई हुई बुद्धि, बल तथा इन्द्रियोंको प्रकाशित करनेवाली है । वात पित्त तथा कफनाशक है, और मूत्र तथा मलको निकालनेवाली है । भोजन करनेके पश्चात् खाई हुई हरड अन्न पानसे प्रगट हुए तथा वात, पित्त और कफमे उत्पन्न हुए दोषोंको तुरन्त हरनेवाली है । नमकके साथ हरडको

खाय तौ कफको, चीनी (बूरा) के साथ खाय तौ पित्तको, घृतके साथ खाय तौ वायुसे उत्पन्न हुए सब रोगोको शान्त करैहै, और गुडके साथ हरड खानेसे सपूर्ण रोगोको नष्ट करतीहै । छहौं ऋतुओंमे जिनको रसायनके गुणोकी इच्छा होय उनको वर्षाऋतुमे सेंधेनोनके साथ, शरदृऋतुमे बूरा (चीनी) के साथ, हेमन्तऋतुमे सोंठके साथ, शिशिरऋतुमे पीपलके साथ, वसन्तऋतुमे मधुके साथ और ग्रीष्म ऋतुमे गुडके साथ हरड खानी चाहिये । मार्ग चलनेसे थका हुआ निर्बल, रूक्ष प्रकृतिवाला, दुर्बल शरीरवाला, लघन किये हुए, अधिक पित्तवाला, इनको और गर्भवती स्त्रियोको तथा जिनका रक्त निकल गयाहो उनको हरड नही खानी चाहिये ॥ १९–३४ ॥

हरडका विवरण ।

हरडके पेड बडे बडे होतेहै और इसकी गणना शाखी वृक्षोमे है, इसकी लकडी बहुत पक्की होती है, इमारत वगैरहके कामके लिये बहुत उत्तम है इसके पत्ते बडेबडे अडूसेके पत्तोंके समान दो दो पत्ते एकएक शाखोमे इधर उधर लगतेहै, और कुछ कुछ ललाई लिये हरे और रूखे होते हैं । फूल बहुत छोटे छोटे पीले रगके होते हैं । इसके हरे फल बिहारीनींबूके समान दोनो ओरसे लबे नोकदार और बीचमे गोल होते हैं, जब सूख जातीहै तौ ऊपरसे खरदरीसी दीखने लगतीहै और पांचरेखावाली विदित होती हैं । बहुत लोग अधसुखियोंको फोड फोटकर धूपमे डाल देतेहै उसको हर्रा कहतेहैं । प्रायः उसको छीपी लोग रंगत काममे लातेहै. साधारण रूपसे व्यवहारमे आनेसे सम्पूर्ण ससारमे हरडका नाम प्रसिद्धहै त्रिफलेमे हरड मुख्य औषधि समझी जाती है । आध इञ्चीसे लेकर पाच इञ्ची-तक लम्बी, तोलमे छः मासेसे लेकर पाच तोलेकी होती है परन्तु पाच तोलेकी हरड सर्वत्र नहीं होती है कहीं कहीं पाई जातीहै । मात्रा इसकी १ मासेसे लेकर छ. मासे तककी है ॥

अथ विभीतकस्य नामानि गुणाश्च ।

विभीतकस्त्रिलिङ्गः स्यान्नाक्षः कर्षफलस्तु सः ॥ कलिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः ॥ ३५ ॥

विभीतकं स्वादुपाकं कषायं कफपित्तनुत्॥ उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम् ॥३६॥ रूक्षं नेत्रहितं केश्यं कृमिवैस्वर्यनाशनम् ॥ विभीतमज्जा तृट्छर्दिकफवातहरो लघुः ॥ कषायो मदकृच्चाथ धात्रीमज्जापि तद्गुणः ॥ ३७ ॥

विभीतक, विभीतकी, अक्ष, कर्षफल, कलिद्रुम, भूतावास, कलियुगालय, (कल्पवृक्ष, सम्वर्त्त, सम्वर्त्तक, विभीत, तुष, कलि, कुशिक, बहुवीर्य, तैलफल, वासन्त, बहेडुक, हार्य, विपघ्न, कलिन्द, अनिलघ्नक, कासघ्न और तिलपुष्प) ये बहेडेके संस्कृत नाम है । हिन्दीमे--बहेडा । ब०–बेहरो । गु०–बेहेडा । म०–बेहडा । ता०–तनीकाइक । क०–तोरे । फा०–बलेले । अ०–बलेलज । इ०–बेलेरिक मेरा बोलम Belleric Myrabolam लै० टर्मिनेलिया बेलेरिका Terminalia Bellerica (प्रथमका विभीतक शब्द तीनो लिगोमे प्रवर्त्तता है और शेप सम्पूर्ण शब्द पुल्लिगमे प्रवर्त्तते हैं) ॥ बहेडा--मधुर पाकवाला, कसैला, कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाला, वीर्यमे उष्ण, स्पर्शमे शीतल, दस्तको भेदन करनेवाला, खासीको नष्ट करनेवाला, रूक्ष, नेत्रोको हितकारी, केशोको उत्तम और कृमि तथा स्वरहीनताको नष्ट करताहै । बहेडेकी मीग तृपा, वमन, कफ तथा वायुको नष्ट करनेवाली है, शीतल कसैली और मदकारक है । आमलेकी मीग भी इनही गुणोवाली है ॥ ३५–३७ ॥

बहेडेका विवरण ।

बहेडेके वृक्ष शाखी जातिके बहुत ऊंचे और ऊंची धरतीपर होते हैं, पत्ते इसके महुएके समान होते हैं, फूल बहुत छोटे २ होते हैं, गुच्छेसे लटकते हैं, फल छोटे कागजी नींबूके समान गोल गोल होतेहै, वसन्तऋतुमें फलता है, विशेष करके इसके वृक्ष पर्वतोपर बहुत होते है । बहेडा औषधि प्रयोगके सिवाय तन्त्रशास्त्रवालोके प्रयोगमे भी अधिक आता है–मथुरा और काशीके मार्गमे भी इसके पेड बहुतायतसे देखे जाते हैं तोलमे इसका फल एक तोलेका होता है । त्रिफलेकी बहेडा दूसरी औषधि है । मात्रा १ मासेसे ३ मासेतककी ॥

अथ आमलक्या नामानि गुणाश्च ।

त्रिष्वामलकमाख्यातं धात्री तिष्यफलामृता ॥ हरीतकीसमं धात्रीफलं किन्तु विशेषतः ॥ ३८ रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम् ॥ हन्ति वातं तदम्लत्वात्पित्तं माधुर्य्यशैत्यतः ॥ ३९ ॥ कफं रूक्ष-

कषायत्वात्फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित् ॥ यस्ययस्य फलस्येह वीर्यं भवति यादृशम् ॥ तस्यतस्यैव वीर्य्येण मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥ ४० ॥

आमलक, धात्री, तिष्यफला, अमृता, (आमलकी, पंचरसा, श्रीफली, धात्रिका, शिवा, अंकरा, वयस्था, वृष्या, कायस्था, बहुफली, शान्ता, अमृतफला, वृत्तफला, रोचनी, कर्षफला, तिष्या, धात्रीफल, श्रीफल, अमृतफल, शिव, जातीफल) ये आमलेके सस्कृत नाम हैं। हि०—आंवला बं०—आमलकी। म०—आंवळा, आवळी । गु०—आमली ता०—उसरकाय । फा०—आमलज । अ०—अमलज । क०नेल्लि । इ०—एम्ब्लिक मिरोबेलन Emblic Myrobalau लै०—फेलेन्थस एम्ब्लिका Phyllenthusl Amblica (प्रथमका आमलक शब्द तीनो लिंगोमे प्रवर्त्तता है और शेपके सम्पूर्ण शब्द स्त्री लिगमे प्रवर्त्तते है) आमलेका फल प्रायः गुणोमें हरडके सदृश ही है, परन्तु उसमें विशेषता यह है कि—आमला रक्त पित्त तथा प्रमेहको नष्ट करनेवाला है, वीर्यको अत्यन्त बढानेवाला और रसायन है। आमला अम्ल होनेसे वायुको नष्ट करताहै, मधुर तथा शीतल होनेसे पित्तका नाश करताहै, और रूक्ष तथा कसैला होनेसे कफको नष्ट करताहै । इस भाति आमला तीनो दोषोका नाश करनेवाला है । यहा ऐसा समझना कि—जिस जिस फलका जैसा जैसा वीर्य होताहै उसकी मज्जा भी वैसेही वीर्यवाली होतीहै ॥ ३८–४० ॥

आमलाका विवरण ।

आमला शाखीजातिका बडा वृक्ष होताहै, जगलमे और बागोमे उत्पन्न होताहै, परन्तु जगली आमला छोटा और देशी आमला बहुत बडा और गुणदायक होताहै, यह शरदृऋतुमे अधिक फलताहै इसके पत्ते छोटे २ इमलीकेसे होतेहै, इसकी डालियोंपर छोटे २ सरसोके दानेके समान पीले पीले फूल होतेहैं, माघ और फागुनके महीनेमे आमले पक जाते हैं। देखनेमें गोल गोल कुछ हरे पीलेसे होतेहैं। काशी और रामनगरके आमले सब देशोमे प्रसिद्ध हैं। काशीके बराबर बडा आमला और कही नही होता। इसके ऊपर छः रेखा होती हैं और उसके भीतर छः कोनेवाली महा कठोर गुठली होती है । प्रायः अत्तार लोग इसका अचार और मुरब्बा बहुत बनातेहैं. आमला त्रिफलेकी प्रधान औषधि है । आमला तोलमे तीन तोलेका होताहै । मात्रा इसकी चार मासेसे लेकर छ. मासे तककी है ।

अथ त्रिफलाया लक्षणनामगुणाः ।

पथ्याविभीतधात्रीणां फलैः स्यात्रिफला समैः ॥ फलत्रिकश्च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्तिता ॥ ४१ ॥ त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठहरा सरा ॥ चक्षुष्या दीपनी रुच्या विषमज्वरनाशिनी ॥ ४२ ॥

हरड, बहेडा और आंवला इन तीनो फलोंको समान भाग लेकर एकत्र करै उसको त्रिफला, फलत्रिक अथवा वरा कहतेहैं । यह त्रिफला कफ, पित्त, प्रमेह तथा कुष्ठको नष्ट करतीहै। दस्तावर, नेत्रोको हितकारी, अग्निको दीपन करनेवाली, रुचि उत्पन्न करनेवाली और विषमज्वरको नष्ट करतीहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ शुण्ठ्या नामानि गुणाश्च ।

शुण्ठी विश्वा च विश्वश्च नागरं विश्वभेषजम् ॥ ऊषणं कटुभद्रश्च शृङ्गवेरं महौषधम् ॥४३॥ शुण्ठी रुच्यामवातघ्नी पाचनी कटुका लघुः॥ स्निग्धोष्णा मधुरा पाके कफवातविबन्धनुत् ॥४४॥ वृष्या स्वर्य्या वमिश्वासशूलकासहृदामयान्॥ हन्ति श्लीपदशोथार्शआनाहोदरमारुतान् ॥ ४५ ॥ आग्नेयगुणभूयिष्ठं तोयांशपरिशोषि यत् ॥ संगृह्णाति मलं तत्तुग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा ॥४६॥ विबन्धभेदनी या तु सा कथं ग्राहिणी भवेत् ॥शक्तिर्विबन्धभेदे स्याद्यतो न मलपातने ॥ ४७ ॥

शुठी, विश्वा, विश्व, नागर, विश्वभेषज, ऊषण, कटुभद्र, शृगवेर, महौषध, (शुष्कार्द्र, भेषज, कफारि, नागर, इन्द्रभेषज, विश्वौषध, कटुग्रन्थि, शुठि, कटूत्कट, कटूषण, सौवर्ण, आर्द्रक, शोषण, नागराह्व) ये सोठके सस्कृत नाम हैं। हि०—सोंठ। बं०—सठ । म०—सुठ । ०—शुण्ठ्य । क०—शुठि । तै०—शौटी । फा०—जंजवील । इ०—डाइजिजिररूट Dyginger Root लै०—जिजिबिर औफिसिनल Zingiber Officinoe सोंठ--रुचिकारक, आमवातनाशक, पाचक, चरपरी, हलकी, स्निग्ध, गरम, पाकमे मधुर, कफ, वात तथा मलके बधको तोडनेवाली है । वीर्यवर्द्धक, स्वरको उत्तम करनेवाली और वमन,

[illegible], शोथ, [illegible] नष्ट करनेवाली है । [illegible] पदार्थ [illegible] ॥ ४२–४७ ॥

अथ आर्द्रकस्य नामानि गुणाश्च ।

आर्द्रकं शृंगवेरं स्यात्कटुभद्रं तथार्द्रिका ॥ आर्द्रिका भेदिनी गुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी मता ॥ ४८ ॥ कटुका मधुरा पाके रूक्षा वातकफापहा ॥ ये गुणाः कथिताः शुण्ठ्यास्तेऽपि सन्त्यार्द्रकेऽखिलाः ॥ ४९ ॥ भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम् ॥ अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥ ५० ॥ कुष्ठपाण्ड्वामये कृच्छ्रे रक्तपित्ते व्रणे ज्वरे ॥ दाहे निदाघशरदोर्नैव पूजितमार्द्रकम् ॥ ५१ ॥

[illegible] रोगवालेको तथा ग्रीष्म और शरद्ऋतुमें अदरक खाना वर्जित है ॥ ४८–५१ ॥

विरण ।

सोंठ और अदरक दोनों सर्वत्र प्रसिद्ध हैं । गीले कन्दको अदरक और उसको सुखा लेनेसे सोंठ कही जाती है । अदरक गुल्म जातिकी औषधिका कन्द है । इसके पत्ते बांसकीसमान होतेहैं । नीचे वृक्षकी जड़में कन्दकी गांठें होतीहैं उसको अदरख कहतेहैं । अदरखको दूधमें पकाकर सुखानेसे सोंठ होजातीहै । सोंठकी अनेक जाति हैं परन्तु बांसकी सोंठ सबमें उत्तम होतीहै । जिसमें तंतु (रेशे) अधिक होतेहैं वह अच्छी नहीं समझी जाती मात्रा-सोंठकी तथा अदरककी १ मासेसे ३ मासे तककी है ॥

अथ पिप्पल्या नामानि गुणाश्च ।

पिप्पली मागधी कृष्णा वैदेही चपला कणा ॥ उपकुल्योषणा शौण्डी कोला स्यात्तीक्ष्णतण्डुला ॥ ५२ ॥ पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादुपाका रसायनी ॥ अनुष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्महरी लघुः ॥ ५३ ॥ पिप्पली रेचनी हन्ति श्वासकासोदरज्वरान् ॥ कुष्ठप्रमेहगुल्मार्शःप्लीहशूलाममारुतान् ॥ ५४ ॥ आर्द्रा कफप्रदा स्निग्धा शीतला मधुरा गुरुः ॥ पित्तप्रशमनी सा तु शुष्का पित्तप्रकोपिणी ॥ ५५ ॥ पिप्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी ॥ श्वासकासज्वरहरा वृष्या मेध्याग्निवर्द्धिनी ॥ ५६ ॥ जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली ॥ कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुकृमिरोगनुत् ॥ द्विगुणः पिप्पलीचूर्णाद्गुडोऽत्र भिषजां मतः ॥ ५७ ॥

[illegible]

पिपळी। वं०-विपुल। गु०-लैंडीपीपर। क०-हिप्पली। तै०-पिप्पलु। ता०-पिपिलि। फा०-पिलपिल दराज। अ०-डारफिल फिल। इं०-लौंगपिपर Long Pepper लै०-पिपरलोंगम Piper Longum पीपल-अग्निको दीप्त करनेवाली, वीर्यको बढानेवाली; पाकमे मधुर, रसायन, गरम नही, चरपरी, चिकनी. वात तथा कफको नष्ट करनेवाली, हलकी, रेचक और श्वास, खाँसी, उदर, ज्वर, कोढ, प्रमेह, गुल्म, बवासीर, प्लीहा, शूल तथा आमवातको नष्ट करनेवाली है। पीपल गीली होय तौ स्निग्ध, कफकारक, शीतल, भारी, मधुर और पित्तको शांत करनेवाली है और जो सूखी होय तौ पित्तको कुपित करैहै। शहदके साथ पीपल खानेसे मेदा तथा कफको घटानेवाली और वीर्यको बढानेवाली है, बुद्धि और अग्निको करतीहै। और श्वास, खाँसी और ज्वरको हरनेवाली है। जीर्णज्वर तथा मदाग्नि होय तो गुडके साथ पीपल खाना श्रेष्ठ है। गुडके साथ पीपल खानेसे खासी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृदयके रोग, पाण्डुरोग और कृमिरोग नष्ट होतेहैं। गुडके साथ पीपल खाय तौ पीपलके चूर्णसे दुगुना गुड लेवै यह वैद्योका सिद्धांत है॥ ५२-५७॥

विवरण।

यह एक प्रकारकी गुल्मजातिका तीक्ष्ण फल है इसकी वेल चलती है, पत्ते पानके समान कोमल होते हैं, इसकी जडको पीपलामूल कहतेहैं। मालवे आदि देशोंमे यह बहुत होतीहै, वहाँसे देश देशान्तरोंको जातीहै, पीपल दो प्रकारकी होतीहै एक छोटी जातिकी और दूसरी बडी जातिकी, इनमें छोटी अधिक गुणदायक है। पुरानी पीपल प्रयोगमें लानी चाहिये, मात्रा चार रत्तीकी लेनी उचित है॥

अथ मरीचस्य नामानि गुणाश्च।

मरिचं वेल्लजं कृष्णमूषणं धर्मपत्तनम्॥ मरिचं कटुकं तीक्ष्णं दीपनं कफवातजित्॥ ५८॥ उष्णं पित्तकरं रूक्षं श्वासशूलकृमीन्हरेत्॥ तदार्द्रं मधुरं पाके नात्युष्णं कटुकं गुरु॥ किञ्चित्तीक्ष्णगुणं श्लेष्मप्रसेकि स्यादपित्तलम्॥५९॥

मरिच, वेल्लज, कृष्ण, ऊपण, धर्मपत्तन, (पवित, श्याम, वेणुज, यवनप्रिय, वल्लीज, शुद्धकोलक, कोल, वरिष्ठ, यवनेष्ट, वृत्तफल, शाकाग, वेणुक, कटुक, शिरोवृत्त, वार, कफविरोधि, मृष्ट, कृष्ण,) ये कालीमिरचके संस्कृत नाम है। हिन्दी-कालीमिरच, गोल मिरच। व०-मरिच। म०-मिऱ्ये। क०-मेणसु। गु०-मरि। तै०-मरियालु। फा०-फिलफिल अस्वद। अ०-फिलफिले अवीयद। ता०-मिलगु-मिलाओ। इं०-ब्लाक्पेपर Black Pepper लै०-पाइपरनिगरम Piper Nigrum कालीमिरच-चरपरी, तीक्ष्ण, अग्निको दीपन करनेवाली, कफ तथा वातको नष्ट करनेवाली, गरम, पित्तकारक, रूखी और श्वास, शूल तथा कृमिको हरनेवाली

हरी कालीमिरच-पाकमे मधुर, बहुत गरम नही, चरपरी, भारी, कुछ तीक्ष्णता युक्त, कफनिःसारक और पित्तकारी नहीं है॥ ५८॥ ५९॥

विवरण।

मिरचकी वेल होतीहै, पत्ते नागरवेल अर्थात् पानोके समान नोकदार होतेहैं। फल गोल छोटे छोटे झुमकेमे पोईके फलोके समान आतेहै। कच्ची अवस्थामे इसके फल हरे रगके और बहुत चरपरे नही होते और पकनेपर अत्यन्त तीक्ष्ण होजाते हैं। यह मिरच दो प्रकारकी होतीहै एक पूर्वी दूसरी दक्षिणी, इनमे दक्षिणी अत्यन्त गुणदायक हैं, बहुत लोग सफेद मिरचोको दक्षिणी कहतेहैं, परन्तु वह दक्षिणी नही हैं. वह तो पूर्वी मिरचे धोनेसे सुफेद होजाती हैं और दक्षिणी मिरचे तो ऊपरसे भूरी और भीतरसे हरियाई लिये हुए होती हैं। और जिसमे तीक्ष्णता अधिक होतीहै उनको दक्षिणी जानना। मिरचकी वेल विना वृक्षके आश्रय नहीं चल सकती। इसकी मात्रा दे रत्तीसे लेकर एक मासेतक लेना॥

अथ त्रिकटुकनामलक्षणगुणाः।

विश्वोपकुल्या मरिचं त्रयं त्रिकटु कथ्यते॥ कटुत्रिकं तु त्रिकटु त्र्यूषणं व्योष उच्यते॥ ६०॥ त्र्यूषणं दीपनं हन्ति श्वासकासत्वगामयान्॥ गुल्ममेहकफस्थौल्यमेदःश्लीपदपीनसान्॥ ६१॥

सोंठ, पीपल और मिरच इन तीनोको एकत्र मिलानेसे त्रिकुटा कहाजाताहै। कटुत्रिक, त्रिकटु, त्र्यूषण और व्योष ये त्रिकुटके संस्कृत नाम हैं। त्रिकुटा-अग्निको दीपन करनेवाला और श्वास, खासी, त्वचाके रोग, गुल्म, प्रमेह, कफ, स्थूलता, मेद, श्लीपद और पीनस रोग, इनको नष्ट करताहै॥ ६०॥ ६१॥

अथ पिप्पलीमूलस्य नामानि गुणाश्च ।

ग्रन्थिकं पिप्पलीमूलमूषणं चटकाशिरः ॥ दीपनं पिप्पलीमूलं कटूष्णं पाचनं लघु ॥ ॥ ६२ ॥ रूक्षं पित्तकरं भेदि कफवातोदरापहम् ॥ आनाहप्लीहगुल्मघ्नं कृमिश्वासक्षयापहम ॥ ६३ ॥

ग्रन्थिक, पिप्पलीमूल, ऊषण, चटकाशिर (मूल, कणामूल, कोलमूल, चटिका, सर्वग्रथिक, ग्रन्थीक, षड्ग्रन्थि, शिर, कटुग्रथि, कटुमूल, कटूषण, सर्वग्रन्थि, पत्राढ्य, विरूप, गोपसम्भव, सुगधि, ग्रथिल, मागध, मागधीजटा) ये पीपलामूलके संस्कृत नाम हैं । हिन्दी–पीपलामूल । ब०–पिपुलमूल । म०–पिपळमूल । गु०–पीपरीमूल । क०–हिप्पलिय वेरु । फा०–फिल्फिल् मोया। अ०–असलुल फिल् फिल् । तै०–पिप्पली वेरु । इं०–पीपररोट Piperroot लै०–पिपर औफिसिनेरम Piperi Officinarum पीपलामूल–दीपन, चरपरा, गरम, पाचन, हलका, रूक्ष, पित्तकारक, मलभेदक और कफ, वात, उदररोग, आनाह, प्लीहा, गुल्म, कृमि, श्वास तथा क्षयको नष्ट करनेवाला है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ चतुरूषणस्य लक्षणगुणाः ।

त्र्यूषणं सकणामूलं कथितं चतुरूषणम् ॥ व्योषस्यैव गुणाः प्रोक्ता अधिकाश्चतुरूषणे ॥ ६४ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल और पीपरामूल इन चारोंको चतुरूषण कहते हैं । चतुरूषणमें उपरोक्त त्रिकुटेहीके गुण अधिक रहतेहैं ॥ ६४ ॥

अथ चव्यनामगुणाः ।

भवेच्चव्यं तु चविका कथिता सा तथोषणा ॥ कणामूलगुणं चव्यं विशेषाद्गुदजापहम् ॥ ६५ ॥

चव्य, चविका, ऊषण (चवण, उच्छिष्ट, कोलवल्लिका, चव्या, चविक, चवी, चवि, पुरन्दर, तेजोवती, कोल्य, नाकुली, चव्यक, वशिर, गन्धनाकुली, वल्ली, कोलवल्ली, कोल, कुक्कुट मस्तक, कणावल्ली, कूकर, कुटिलन्तक, कटुरू और कटुपाकिनी) यह चव्यके संस्कृत नाम हैं । हिन्दी–चव्य । ब०–चईगाछ । म०–गु०–चवक । क०–चव्य । तै०–सेवामु, चैकार्ण । लै०–चविकारास्सवर्घी पाइपर चव Chavica Rax Burghi Piper Chava चव्यमें भी पीपलामूलके सदृश गुण हैं और विशेष करके यह गुदाके रोगोको नष्ट करतीहै ॥ ६५ ॥

विवरण ।

चव्यका पेड क्षुपजातिका होताहै, पत्ते केलेकेसे छोटे होतेहैं, परन्तु कोमल और पतले होतेहैं । और इसके फलको गजपीपल कहते हैं । यह सर्वत्र भारतवर्षमें प्रसिद्ध है. मात्रा चार मासेकी लेनी चाहिये ॥

अथ गजपिप्पल्या नामानि गुणाश्च ।

चविकायाः फलं प्राज्ञैः कथिता गजपिप्पली ॥ कपिवल्ली कोलवल्ली श्रेयसी वशिरश्च सा ॥ ६६ ॥ गजकृष्णा कटुर्वातश्लेष्महृद्वह्निवर्धिनी ॥ उष्णा निहन्त्यतीसारं श्वासकण्ठामयक्रिमीन् ॥ ६७ ॥

विद्वान् लोग चव्यके फलकोही गजपीपल कहते हैं । कपिवल्ली, कोलवल्ली, श्रेयसी, वशिर, (गजकृष्णा, करिपिप्पली, इभकणा, कपिल्लिका, कपिवल्लिका, गजाह्वा, इभोषणा, कुञ्जरपिप्पली, गजोषणा, चव्यफल, चव्यजा, छिद्रवैदेही, दीर्घग्रथि, तेजसी, वर्तुली और स्थूलवैदेही) ये गजपीपलके संस्कृत नाम हैं । हि०–गजपीपल । बं०–गजपिपुल । गु०–मीरचेलीला । म०–गजपिंपली । क०–गजहिप्पली । तै०–पेद्दापिप्पलु । लै०–स्केडापसस औफिसीनेलिस Scendapsus officinalis गजपीपल–चरपरी, वातकफनाशक, अग्निको दीपन करनेवाली और गरम है, तथा अतीसार, श्वास, कंठके रोग और कृमिरोगको नष्ट करनेवाली है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

अथ चित्रकस्य नामानि गुणाश्च ।

चित्रकोऽनलनामा च पीठो व्यालस्तथोषणः ॥ चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत्पाचनो लघुः ॥ ६८ ॥ रूक्षोष्णो ग्रहणीकुष्ठशोथार्शःकृमिकासनुत् ॥ वातश्लेष्महरो ग्राही वातार्शःश्लेष्मपित्तहृत् ॥ ६९ ॥

चित्रक अनलनामा (अग्निसंज्ञक सम्पूर्ण नाम चीतेके हैं) पीठ, व्याल, ऊषण, (पाठी, कृष्णवर्त्मा, जातवेदा, बर्हि, विभाकर, विभावसु, बृहद्भानु, वैश्वानर, शिखावान्,

शुचि, शुष्मा, सप्तार्चि, हिमाराति, हिरण्यरेता, अग्नि, शार्दूल, चित्र, पाठी, कुट, शिखी, कृशानु, दहन, व्याल, ज्योतिष्क, पालक, अनल, दारुण, वह्नि, पावक, शम्बर, द्वीपी, चित्राङ्ग, दाहक, शूर, पाटीन, दारुण, अग्निक, वल्लरी, पाली, लोहिताङ्ग, हुतभुक्, माली, वह्निनामा) ये चीतेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—चीता, चित्रक । बं०—चिता । म०—चित्रक । गु०—चित्रो । क०—चित्रमूल । फा०—शेखवरदा । अ०—शितरज्ञ । तै०—चित्रमूलमु । लै०—प्लम्बगोरोजिआ—प्लम्बेगो-जिलेलिका Plumbagcrosia Plumbago Zeylanica चीता—पाकमे चरपरा, अग्निवर्द्धक, पाचन, हलका, रूक्ष, गरम और ग्राही है, तथा संग्रहणी, कोढ, सूजन, बवासीर, कृमि, खाँसी, वात, कफ और पित्तको नष्ट करनेवाला है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

विवरण ।

चीतेका छोटा पेड होता है, पत्ते गोल होते हैं, सुफेद, काले और लाल तीन प्रकारके फूल आते हैं । सुफेद फूलवाला बहुत गरम होता है । उसको पानीमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे चकत्ते पड जाते हैं, इसी कारण इसका नाम वैद्य लोगोने अग्नि रक्खा है । इसकी मात्रा एक मासेसे अधिक कभी देनी नहीं चाहिये ॥

अथ पञ्चकोलस्य लक्षणगुणाः ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः ॥ पञ्चभिः कोलमात्रं यत्पञ्चकोलं तदुच्यते ॥ ७० ॥ पञ्चकोलं रसे पाके कटुकं रुचिकृन्मतम् ॥ तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं दीपनं कफवातनुत् ॥ गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥ ७१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, और सोंठ इन पाँचोंको एक एक कोल (आठ आठ मासे) ले, इसको पंचकोल कहतेहैं । पचकोल—रसमें तथा पाकमे चरपरा, रुचिकारी, तीक्ष्ण, गरम, पाचक, अग्निको दीपन करनेवाला और कफ तथा वातनाशक, श्रेष्ठ, पित्तको कुपित करनेवाला है, तथा गुल्म, प्लीहा, उदर, आनाह और शूल इन रोगोंको नष्ट करनेवाला है । तथा पित्तको प्रकुपित करताहै ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथ षडूषणस्य लक्षणगुणाः ।

पञ्चकोलं समरिचं षडूषणमुदाहृतम् ॥ पञ्चकोलगुणं तत्तु रूक्षमुष्णं विषापहम् ॥ ७२ ॥

पचकोलमें मिरच मिलादेनेसे षडूषण कहाजाताहै । षडूषण—पचकोलके सदृशगुणोंवाला, रूक्ष, गरम और विषको हरनेवाला है ॥ ७२ ॥

अथ यवान्या नामानि गुणाश्च ।

यवानिकोग्रगन्धा च ब्रह्मदर्भाऽजमोदिका ॥ सैवोक्ता दीप्यका दीप्या तथा स्याद्यवसाह्वया ॥ ७३ ॥ यवानी पाचनी रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुका लघुः ॥ दीपनी च तथा तिक्ता पित्तला शुक्रशूलहृत् ॥ वातश्लेष्मोदरानाहगुल्मप्लीहकृमिप्रणुत् ७४

यवानिका, उग्रगधा, ब्रह्मदर्भा, अजमोदिका, दीप्यका, दीप्या, यवसाह्वा (यवानी, दीप्या, भूतिक, यवाग्रज, यवाह्वा, भूकदंबक, क्षेत्रयवानिका, यवसाह्व, दीपनी, वातारि, यवज, दीपनीय, शूलहन्त्री, यमानिका, उग्रा, तीव्रगधा, अजमोदिका, तीक्ष्णगधा, हृद्या, अग्निवर्धिनी) ये अजवायनके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०—अजवाइन, अजमायन । बं०—यमानी, योयान् । म०—ओवा । गु०—यवान, जवाइन, अजमो । क०—ओडू । तै०—वामु । ता०—अमन । फा०—नानरव्वा । अ०—बुरा नीकतिया । इं०—बिशप्स विडसीड Bisaops weed-seed ल०—पटीचोटीस अजवान Patychotisajwan अजवायन—पाचक, रुचिकारी, तीक्ष्ण, गरम, चरपरी, हलकी, अग्निको दीपन करनेवाली, कडवी, पित्तकारक और वीर्य, शूल, वात, कफ, उदर, आनाह, गुल्म, प्लीहा तथा कृमि इनको नष्ट करनेवाली है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

विवरण ।

अजवायनके क्षुप चारचार फुट ऊँचे होतेहैं किसान लोग खेतोंमे बहुत बोते हैं । पत्ते छोटे छोटे हालोंकेसे कटीले होतेहैं, डालियोंपर छत्तेसे आते हैं, उनपर सफेद सफेद फूल लगते हैं, जब वह छत्ते पक जाते हैं तब उनमें अजवायन उत्पन्न होती है उनको कूटनेसे छोटे छोटे दानेसे निकलते है उनको अजवायन कहतेहैं ॥

अथ अजमोदाया नामानि गुणाश्च ।

अजमोदा खराश्वा च मयूरो दीप्यकस्तथा ॥ तथा ब्रह्मकुशा प्रोक्ता कारवी च

समस्तका ॥ ७५ ॥ अजमोदा कटुस्तीक्ष्णा दीपनी कफवातनुत् ॥ उष्णा विदाहिनी हृद्या वृष्या बलकरी लघुः ॥ नेत्रामयकफच्छर्दिहिक्कावस्तिरुजो हरेत् ॥७६॥

अजमोदा, खराश्वा, मयूर, दीप्यक, ब्रह्मकुशा, कारवी, समस्तका, (लोचमस्तका, खराह्वा, वस्तमोदा, उग्रगन्धा, मर्कटी, मोदा, गन्धदला, हस्तिकावरी, गन्धपत्रिका, मायूरी शिखिमोदा, मोदाढ्या, वह्निदीपिक, ब्रह्मकोशी, विशाली, ह्वयगंगा, फलमुख्या और विशल्या) ये अजमोदके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०—अजमोद । बं०—वनयमानी । म०—अजमोदा । गु०—बोडी अजमोद । क०—अजमोद । तै०—आजामोदा । फा०—करपस । अ०—ह्बुळकर्त्तुकेरफस । इं०—सेलेरीसीड Celeryseed लै०—एप्युम ग्रेवियोलेन्स Apium Graneolens अजमोद—चरपरा, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, कफ तथा वायुको नष्ट करनेवाला, गरम, दाहकारक, हृदयको प्रिय, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, हल्का और नेत्ररोग, कफ, वमन, हिचकी, तथा वस्तिगत—मसानेके रोगोंको हरनेवाला है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

विवरण ।

अजमोदके क्षुप भी छोटे छोटे अजवायनके समान होतेहैं, मालीलोग खेतमें बोते हैं इसकी शाखाओंपर बडेबडे छत्तेसे लगते हैं, उनपर सफेद सफेद फूल लगते हैं, छत्तोंके पकनेपर उनमें जो दाने उत्पन्न होतेहैं उन छत्तोंको कूटनेसे उनके दाने अलग होजाते हैं उसको अजमोद कहते हैं, परन्तु वह दाने अजवायनके दानोंसे बडे होतेहैं ॥

अथ पारसीकयवानीगुणाः ।

पारसीकयवानी तु यवानीसदृशी गुणैः ॥ विशेषात्पाचनी रुच्या ग्राहिणी मादिनी गुरुः ॥ ७७ ॥

पारसीक यवानी, यावनी, तीव्रा, तुरुष्का, मदकारिणी, दीप्य, श्याम, कुबेराख्य, मादक और मदकारक ये खुरासानी अजवायनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दीमें खुरासानी अजवायन । बं०—खुरासानी योयान् । गु०—करमाणी छुहारी अजमोद । म०—करमाणी ओवा । तै०—खुरसाण वामू । ता०—खोरसनी ओनाम गिट्टामुट्टि । फा०—तुख्म वजे । अ०—बजरूल वज अबीद शीकरान् । इं०—हेनवन Henbane लै०—आर्टिमीसिया मारिटिमा Artemisia Maritimt खुरासानी अजवायनके गुण अजवायनके सदृश ही हैं यह विशेषकरके पाचन, रुचिकारी, ग्राही, मादक और भारी है ॥ ७७ ॥

विवरण ।

खुरासानी अजवायन खुरासानके जंगलमें उत्पन्न होती है. इसके क्षुप और पत्ते अजवायनसे बडे होते हैं. इसकी शाखाओंमें भी छत्ते आतेहैं और उनही छत्तोंपर सफेद सफेद फूल लगते हैं । जब वह छत्ते पकपक सूख जातेहैं तब पठान लोग उन छत्तोंको तोड तोडकर लाठियोंसे कूटते हैं उससे अजवायनसे दूने बडे दाने निकलते हैं, उनका नाम खुरासानी अजवायन है, परन्तु इसके खानेसे थोडा थोडा नशा भी होताहै ॥

अथ शुक्लजीरककृष्णजीरककालिकानां नामानि गुणाश्च ।

जीरको जरणोऽजाजी कणा स्याद्दीर्घजीरकः ॥ कृष्णजीरः सुगन्धश्च तथैवोद्गारशोधनः ॥ ७८ ॥ कालाजाजी तु सुषवी कालिका चोपकालिका ॥ पृथ्वीका कारवी पृथ्वी पृथुकृष्णोपकुञ्चिका ॥ ७९ ॥ उपकुञ्ची च कुञ्ची च बृहज्जीरक इत्यपि ॥

जीरक, जरण, अजाजी, कणा, दीर्घजीरक, (जीर, दीप्यक, जरणा, जीर्ण, दीप्य, जीरण, अजाजिका, वह्निसख, मागध और दीपक) ये जीरेके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०—जीरा सफेदजीरा । बं०—शुक्लजीरा, सादाजीरा । म०—जिरें, पांढरे जीरे । गु०—धोळुजीरूँ, सादुजीरु । क०—बिलीय जीरगे, जिरिगे । तै०—जीलकारा, जिलकरर । इं०—क्युम्मिनन, सीड Cumminon seed लै० क्युमिनम् सेमिनम् Cumminum Cyminum

कृष्णजीर, सुगंध, उद्गारशोधन, कृष्णाजाजी, जरणा सुगंधा, कालजीरक, वर्षाकाली, हृद्या, उद्गारशोधिनी, कृष्णा, जरणा, बहुगंधा, मेदिनी, पटु, भेदनिका, रुच्या, नीला, नीलकणा, काश्मीरजीरका, वान्तिशोधिनी, कालमेषी, सुगंधा, सुगंध, कृष्णजीरक और उद्गारशोधक) ये काले जीरेके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी—कालाजीरा, कृष्णजीरा । बं०—कालजीरे । म०—शहाजिरें । गु०—शाजीरू । तै०—नल्लजीर । क०—करिजीरके । इं०—ब्लाक् कार वेसीड्स Black

Caraveyseedro लै०-केरम्‌ग्रम् Carum Nigrum फा०-जीरे स्याह। अ०-कमुन् किरमानी ॥

कालाजाजी, सुषवी, कालिका, उपकालिका, पृथ्वीका, कारवी, पृथ्वी, पृथुकृष्णा, उपकुचिका, उपकुंची, कुची, बृहज्जीरक, (पृथिवी, पृथुका, पृथु, कुञ्चिका, स्थूलजीरक, दिव्या, काला, स्थूलकणा, मनोज्ञा, जारिणी, जीर्णा, तरुणी, पतिवरा, उपकुचि, भेषज, कृष्णा, जरणा, शाली, बहुगधा, कालिका, उपकोलिका ये कलौंजीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी०-कलौंजी। बं०-मोटा केले जीरे, म०-काळे जिरे। गु०-कलौंजीजीरुं। क०-करि दोड्ड जीरिगे। तै०-नल्लाजीरा कारा। फा०-शोनिज्ञ स्यादाने। अ०-हेवतुम्सोदा। इं०-स्मॉल फेनल फ्लॉवर Small Fenel Flower लै०-निगेल्ला सेटिवा Nigella Sativa ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

विवरण।

कलौंजीकी खेती पूर्वके देशोमें अधिकतासे होती है। इसका क्षुप छोटा होताहै, पत्ते लम्बे लम्बे मूलीकेसे होते हैं, बीचमें एक लम्बी सॉठ निकलती है, उसपर सफेद फूल आते हैं, झूलोंमेंसे दो दो तीन तीन अगुल लम्बी फलिये निकलतीहै, उन फलियोंमेंसे काले काले रगके छोटे छोटे दाने निकलते हैं, उसीको कलौंजी कहतेहैं ॥

जीरकत्रितयं रूक्षं कटूष्णं दीपनं लघु ॥ ८० ॥ संग्राहि पित्तलं मेध्यं गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥ ज्वरघ्नं पाचनं वृष्यं बल्यं रुच्यं कफापहम् ॥ चक्षुष्यं पवनाध्मानगुल्मच्छर्द्यतिसारहृत् ॥ ८१ ॥

तीनो प्रकारके जीरे, रूक्ष, चरपरे, गरम, अग्नि प्रदीपक, हलके, ग्राही, पित्तकारक, मेधाको हितकारी, गर्माशयको शुद्ध करनेवाले, ज्वरनाशक, पाचक, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, रुचिकारी, कफनाशक, नेत्रोको हितकारी, और वायु, आध्मान, गुल्म, वमन तथा अतीसारको नष्ट करनेवाले हैं॥ ८० ॥ ८१ ॥

विवरण।

जीरा क्षुपजातिकी वनस्पति है, और सब स्थानोंमे प्रसिद्ध है। जीरा दोप्रकारका होताहै, एक काला और दूसरा सफेद। काला जीरा काबुल देशमें होताहै। इसके क्षुप छोटेछोटे होते हैं, और खेतोमे बोये जाते हैं, पत्ते छोटेछोटे, सोयेके समान छत्ते आते हैं उनहीमे जीरा उत्पन्न होताहै। कालाजीरा रगका श्याम और छोटा होताहै॥

अथ धान्यकस्य नामानि गुणाश्च।

धान्यकं धानकं धान्यं धाना धानेयकं तथा ॥ कुनटी धेनुका छत्रा कुस्तुम्बुरु वितुन्नकम् ॥ ८२ ॥ धान्यकं तुवरं स्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु ॥ तिक्तं कटूष्णवीर्यञ्च दीपनं पाचनं स्मृतम् ॥ ८३ ॥ ज्वरघ्नं रोचकं ग्राहि स्वादुपाकि त्रिदोषनुत् ॥ तृष्णादाहवमिश्वासकासकार्श्यक्रिमिप्रणुत् ॥ आर्द्रन्तु तद्गुणं स्वादु विशेषात्पित्तनाशि तत् ॥ ८४ ॥

धान्यक, धानक, धान्य, धाना, धानेयक, कुनटी, धेनुका, छत्रा, कुस्तुबुरु, वितुन्नक, (धनिक, धन्याक, धन्य, धनीयक, धन्या, तुम्बुरु, धान्याक, धनेयक, धानेय, धनिका, सुगन्धि, शाकयोग्य, सूक्ष्मपत्र, जनप्रिय, धान्यबीज, बीजधान्य, वेधक, धेनिका, धना, अल्लका, हृद्यगधा, वेशण, धानी और निःसार) ये धनियेके संस्कृत नामहैं ॥

हिन्दी०-धनियॉ। बं०-धने। गु०-धणा। म०-धणें। क०-कोथुंबुरी। तै०-कोथुमिलु। ता०-कोटमाल्लि। फा०-तुख्मेकश्नीज। अ०-कुजवर। इं०-कोर्याण्डिर सीड Coriander seed लै०-कोर्याण्डुरम सेटाइवम Coriandrum sativum गुण-धनियॉ कसैला, स्निग्ध, वीर्य्यके लिये उत्तम नही, मूत्रकारक, हलका, कडवा, चरपरा, उष्णवीर्य, दीपन, पाचक, ज्वरनाशक, रुचिकारी, ग्राही, पाकमे मधुर, त्रिदोषनाशक और तृष्णा, दाह, वमन, श्वास, खॉसी, कृशता तथा कृमिको नष्ट करनेवाला है। गीले धनियेके गुण भी सूखेके सदृशही हैं, परन्तु विशेष करके गीला धनियॉ मीठा और पित्तनाशक है॥ ८२-८४ ॥

विवरण।

धनियेके क्षुप खेतोंमें बोयेजातेहैं, इसके पत्ते कटीले और कोमल होतेहैं, इसकी डालियोंपर छत्तेसे लगते हैं, पकनेपर उनमेसे धनियेके गोल गोल दाने मूँगके समान निकलते हैं, सब देश देशान्तरोमे धनियाका अधिकतासे व्यवहार कियाजाताहै। इसकी मात्रा दोमासेसे लेकर छः मासेपर्यन्त है॥

शतपुष्पामिश्रेययोर्नामानि गुणाश्च ।

शतपुष्पा शताह्वा च मधुरा कारवी मिसिः ॥ अतिलम्वी सितच्छत्रा संहिता छत्रिकापि च ॥ ८५ ॥ छत्रा शालेयशालीनौ मिश्रेया मधुरा मिसिः॥ शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृद्दीपनी कटुः ॥ ८६ ॥ उष्णा ज्वरानिलश्लेष्मव्रणशूलाक्षिरोगहृत्॥ मिश्रेया तद्गुणा प्रोक्ता विशेषाद्योनिशूलनुत्॥८७॥ अग्निमान्द्यहरी हृद्या वद्धविट् कृमिशुक्रहृत् ॥ रूक्षोष्णा पाचनी कासवमिश्लेष्मानिलान्हरेत् ॥ ८८ ॥

शतपुष्पा, शताह्वा, मधुरा, कारवी, मिसि, अतिलम्बी, सितच्छत्रा, संहिता, छत्रिका, छत्रा, शालेय और शालीन ये सौंफके संस्कृत नाम हैं । मिश्रेया, मधुरा और मिसि ये सोयाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०—सौंफ, सोया । व०—मौरी, शुल्फा । म०—बडी शोफ, बाळत शोफ । गु०—वरियाली, सुवा । क०—कासव्वसिगे, सब्बसिगे । तै०—पेद्दजिल्कुरह सोफ, पेद्द सदापचेट्ट सदापा । फा०—बादियान, तुख्मेशृत । अ०—एजियानज, शीतव्वतवजरुल । इ—फेनलसीड Fenelseed डिलसीड Dillseed ल०—फेनिक्युलम वल्गोरी Faeniculum vulgore एनिथं ग्रेवीयोलेन्स Anethum Graveyalens गुण सौंफ हलकी, तीक्ष्ण, पित्तकारक, दीपन, चरपरी, गरम और ज्वर, वात, कफ, व्रण, शूल तथा नेत्रके रोगोंको नष्ट करैहै सोयेके भी ऐसे ही गुण हैं परन्तु सोया विशेष करके योनिका दर्द, अग्निकी मदता, कृमि तथा वीर्यको हरनेवाला है । हृदयको प्रिय, मलको बाँधनेवाला, रूखा, गरम पाचक और खाँसी, वमन, कफ तथा वायुको नष्ट करनेवाली है ॥ ८५–८८ ॥

विवरण ।

सौंफ सोयेके समान खेतोंमे अधिकतासे बोई जाती है और सोयेहीके समान क्षुप और पत्ते होते हैं, परन्तु नई सौंफका रग हरा होताहै । इसकी मात्रा एक मासेसे लेकर छः मासे तक देनी चाहिये ॥

सोयेके भी छोटे छोटे क्षुप खेतोंमे बोये जाते है, पत्ते माजूफलके समान कटीले और छोटे छोटे होते हैं; उन पत्तोंका शाक बहुत अच्छा बनताहै, डालियों पर फूलोंके छत्तेसे लगते हैं, पक जानेपर उनहीं छत्तोंमेसे सोये बीज कलञ्जवॉपन लिये सौंफके समान निकलतेहैं ॥

अथ मेथीवनमेथीनामगुणाः ।

मेथिका मिथिनी मेथी दीपनी वहुपत्रिका ॥ बोधिनी वहुवीजा च जातिगन्धफला तथा ॥ ८९ ॥ वल्लरी चक्रिका मन्था मिश्रपुष्पा च कैरवी ॥ कुश्चिका वहुपर्णी च पित्तजिद्वायुनुद्धिधा ॥ ९० ॥ मेथिका वातशमनी श्लेष्मघ्नी ज्वरनाशिनी। ततः स्वल्पगुणा वल्या वाजिनां सा तु पूजिता ॥ ९१ ॥

मेथिका, मिथिनी, मेथी, दीपनी, बहुपत्रिका, बोधिनी बहुबीजा, जाति, गधफला, वल्लरी, चक्रिका, मथा, मिश्र पुष्पा, कैरवी, कुञ्चिका और बहुपर्णी ये मेथी और बन मेथीके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०-ब०-म०-गु०-इन सब भाषाओंमे मेथी ही कहते हैं । क०—मेथयक । तै०—मेतुलु । ता०—वेनड्यम । इ० फेनुग्रीक Fenugreek ल०—फ्रीगोनेला फकनुम अर्थेक्स Frigonella Facnum arthex गुण मेथी—वात, कफ और ज्वर नाशक है । बनमेथी--इसकी अपेक्षा गुणोंमे अल्प हैं, परन्तु घोडोंके लिये परमोत्तम है ॥८९–९१॥

विवरण ।

मेथी सम्पूर्ण पृथिवीमे विख्यात है, इसका क्षुप छोटासा होताहै, यह खेतोंमे अधिकतासे बोई जाती है, पत्ते गोल और छोटे होते हैं, एक हरे रगकी वाल निकलती है, फिर उसपर पीले पीले फूल आते हैं, उस पै फली लगती हैं, उन फलियोंमेसे जो दाने निकलते हैं उसीको मेथी कहते हैं, मेथीके पत्तोंकी भाजी बहुत अच्छी बनती है ॥

अथ चन्द्रिकागुणाः ।

चन्द्रिका चर्महन्त्री च पशुमेहनकारिका॥ नन्दिनी कारवी भद्रा वामपुष्पा सुवासरा ॥९२॥ चन्द्रशूरं हितं हिक्कावातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ असृग्वातगदद्वेषि बलपुष्टिविवर्द्धनम् ॥ ९३ ॥

चन्द्रिका, चर्म्महन्त्री, पशुमेहनकारिका, नन्दिनी, कारवी, भद्रा, वामपुष्पा, सुवासरा, (अम्लालिक, कालमेषा, दरकृष्ण, दीर्घवाज, रक्तराजी और प्रयोजना) ये चन्द्रशूर हालो के सस्कृत नाम हैं ॥

हि०—हालो । व०—हालिम । म०—अहालीम । गु०—अगेलियो । फा०—हालमतुख्म । अ०—हवररशाद, वजरुल जिर जिर । अं०—कॉमन क्रेस Common Cress ल०—लेपीडियम सेटीवम LepidiumSativum गुण—चन्द्रशूर (हालो) हिचकी, वात, कफ, अतिसार, रुधिर तथा वायुके रोगोंमे हितकारी है, बलवर्द्धक और पुष्टिकारक है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

विवरण ।

हालोंके क्षुप खेतोंमे बोये जाते है, देखनेमे धनियेके समान पत्ते और पेड होते हैं, फूल असमानी रगके होते हैं, बीज काले और छोटे होतेहैं, शाक वहुत अच्छा बनताहै ।

अथ चतुर्बीजगुणाः ।

मेथिका चन्द्रशूरश्च कालाऽजाजी यवानिका ॥ एतच्चतुष्टयं युक्तं चतुर्बीजमिति स्मृतम् ॥ ९४ ॥ तच्चूर्णं भक्षितं नित्यं निहन्ति पवनामयम् ॥ अजीर्णं शूलमाध्मानं पार्श्वशूलं कटिव्यथाम् ॥ ९५ ॥

मेथी, हालों, कालाजीरा और अजमाइन इन चारो मिलेहुए द्रव्योंको चतुर्बीज अर्थात् चारदाना कहते है । चतुर्बीजका चूर्ण सदैव खानेसे वायुके रोग, अजीर्ण, शूल, अफारा, पसलीका शूल और कमरकी पीडा नष्ट होती है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

अथ हिङ्गु ।

सहस्रवेधि जतुकं वाह्लीकं हिंगु रामठम् ॥ हिङ्गूष्णं पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वातबलासहृत् ॥ शूलगुल्मोदरानाहकृमिघ्नं पित्तवर्द्धनम् ॥ ९६ ॥

सहस्रवेधि, जतुक, वाह्लीक, हिंगु, रामठ, (शूलद्विट् रामठ, जतु, सूपाङ्ग, सूपधूपन, हिंगुक, पिण्याक, वाह्ली, ग्रहिणी, मधुरा, केसर, जातुक, रसठध्वनि, शूलहृत्, उग्रगध, भूतारि, जन्तुनाशन, रक्षोघ्न, उग्रवीर्य, अगूढगन्ध, जरण, भेदन और दीप्त) ये हींगके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—हींग । ब०—हिगु । म०—हिग । गु०—हिग । क०—लेसु । तै०—इंगुरा । फा०—अगुज, दर्खते अगुज खालीस । अ०—हिलसीत । इ०—आस्सा फोयटीडा Assafoetida ल०—फेरुलानार्थेक्स Ferulanarthex नार्थेक्स आस्सा फिटिडा । Narthex Assa Foetida हींग—गरम, पाचन, रुचिकारी, तीक्ष्ण और वायु, कफ, शूल, गुल्म, उदर, आनाह तथा कृमि इनको नष्ट करनेवाली और पित्तवर्द्धक है ॥ ९६ ॥

विवरण ।

हींगके वृक्ष ईरान और खन्धार आदि देशोंमे होते हैं, इसके पत्ते और छालमे चीरा देनेसे दूध निकलताहै, वह रखनेसे गोंदके समान जम जाता है, उसको पत्तोंमें अथवा बकरेकी खालमे रखकर सुखा लेते हैं, उसीको हीग कहतेहै यह हींग कई प्रकारकी होती है, परन्तु सबमें उत्तम हीरा हीग है, उसीको वैद्य लोग प्रयोगमे लाते हैं । हीगको— प्रायः पठान लोग काबुल, हिरात खुरासानसे बेचनेको लाते हैं, कोई कोई धूर्त्त लसुन और चनेका चूर्ण मिलाकर उसमे हीगका जल डालकर नकलीहिंग बनाते हैं उसको लसुनिया हींग कहते हैं, शाकादिक पदार्थोंमें उस हीगको डालनेसे कुछभी स्वाद नही आता और भी कईप्रकारसे नकली हींग बनाई जातीहै ।

अथ वचानामानि गुणाश्च ।

वचोग्रगन्धा षड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका ॥ क्षुद्रपत्री च मङ्गल्या जटिलोग्रा च लोमशा ॥ ९७ ॥ वचोग्रगन्धा कटुका तिक्तोष्णा वान्तिवह्निकृत् ॥ विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोधिनी अपस्मार कफोन्मादभूतजन्त्वनिलान्हरेत् ॥ ९८ ॥

वच, उग्रगधा, षड्ग्रन्था, गोलोमी, शतपर्विका, क्षुद्रपत्री, मंगल्या, जटिला, उग्रा, लोमशा, (विजया, उग्रा, रक्षोघ्नी, वच्या, काङ्गा, भद्रा, इक्षुपर्णी, शोधनीया, भूत-

नाशिनी, श्लेष्मघ्नी, तीक्ष्णपत्रा और इक्षुपत्रिका) ये वचके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–वच । बं०–वच । म०–वेखंड । गु०–घोडावज । क०–वच । तै०–वासा । ता०–वशम्बु । फा०–सोसनजर्द । अ०–उदलवुज । इं०–स्वीट फ्लागरूट Sweet Flagroot लै०–एकोरस केलेमस् Achorus Calamus वच–उग्रगंध युक्त है, चरपरी और कडवी है । गरमी, वमन, तथा अग्निको अधिक करनेवाली है, मल मूत्रको शुद्ध करनेवाली और मलादिका बन्ध, अफारा, (पेटका फूलना) शूल, अपस्मार (मृगी), कफ, उन्माद, भूत, जन्तु (क्रिमि) और वातको हरनेवाली है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

विवरण ।

वचके गुल्म अनूपदेश और रेतली भूमिमें अधिकतासे होते हैं, पत्ते ईखके समान लम्बे लम्बे होते है और इसपर फूल नहीं आता, जडकी लकडीको वच कहतेहैं । रंग इसका भूरा होताहै, इसकी गन्धसे चित्तमें ग्लानि उत्पन्न होती है, उत्तम जातिकी वच कलकत्तेसे आती है । वचकी अनेक जाति हैं परन्तु सुफेद वच विशेष करके औषधिके प्रयोगमें डाली जातीहै । शुद्धवच, खुरासानीवच, सुफेद वच, महाभरीवच, कुलीजन और अकरकरा ये सब वचहीकी जातिमें हैं ॥

अथ पारसीकवचा ।

पारसीकवचा शुक्ला प्रोक्ता हैमवतीति सा ॥ हैमवत्युदिता तद्वद्वातं हन्ति विशेषतः ॥ ९९ ॥

पारसीकवचा, शुक्ला, हैमवती (शतपर्वा, मेध्या, शुक्ला मंगवती, दीर्घपत्रा और कर्पिणी) यह खुरासानीवचके संस्कृत नाम हैं । हिन्दी–खुरासानीवच, सफेदवच । बं०–खोरासानीवच, श्वेतवच । म०–पांढरे वेखंड । गु०–खुरासानीवज । क०–विलीववज । तै०–एल्लवस ॥

खुरासानी वचके गुणभी वचके ही सदृश है, विशेषकरके यह वातविनाशक है ॥ ९९ ॥

अथ कुलिञ्जना ।

सुगन्धाप्युग्रगन्धा च विशेषात्कफकासनुत् ॥ सुस्वरत्वकरी रुच्या हृत्कण्ठमुखशोधिनी ॥ १०० ॥

सुगधा, उग्रगंधा, (गन्धमूल, तीक्ष्णमूल और कुलिंजना) ये कुलिजनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कुलीजन । बं०–कुलंजन । म०–कोलिंजन । गु०–कुलिजन । फा०–खिरदारु । अ०–इर्कखोलिजान । इं०–ग्रेटर गैलन्गाल । Greater Galangal लै०–अल्हीनिया ऑफिसिनेरम Alhinia Officinarum कुलीजन–विशेष करके कफ तथा खासीको हरनेवाला, स्वरको उत्तम करनेवाला रुचिकारक और हृदय, कंठ तथा मुखको शुद्ध करताहै ॥ १०० ॥

विवरण ।

कुलीजनकी वनोंमें बेल होती है, उसका आकार दाखकी बेलकैसा होताहै, इसके पत्ते पानके समान होतेहैं उसकी जडको कुलीजन कहतेहैं और बहुतसे वैद्यलोग पानहीकी जडको कुलीजन कहतेहैं ॥

अपरा सुगन्धा स्थूलग्रन्थिः यस्या लोके महाभरी इति नाम ॥

स्थूलग्रन्थिः सुगन्धा स्यात्ततो हीनगुणा स्मृता ॥ १०१ ॥

दूसरी वच सुगधयुक्त मोटी गांठकी लोकमें महाभरी वचके नामसे प्रसिद्ध है । यह वच सुगन्ध युक्त और कुलीजनसे हीन गुणवाली है ॥ १०१ ॥

अथ चोबचीनाति लोके या प्रसिद्धा तस्या गुणाः ।

द्वीपान्तरवचा किञ्चित्तिक्तोष्णावह्निदीप्तिकृत् ॥ विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोधिनी ॥ १०२ ॥ वातव्याधीनपस्मारमुन्मादं तनुवेदनाम् ॥ व्यपोहति विशेषेणफिरङ्गामयनाशिनी ॥ १०३ ॥

द्वीपांतरकी वचको चोपचीनी कहतेहैं । हिन्दी–चोपचीनी, चोबचीनी । बं०–म०–गु०–चोबचीनी । तै०–फिरंगिचेक्का । फा०–रवन । अ०–रायन । इं०–चाईनारूट Chinaroot लै०–स्माईलाक्स चाइना Smilax

China चोबचीनी—किंचित् कडवी, गरम, अग्निको दीपन करनेवाली, मलमूत्र शोधक और मलबन्ध, अफारा, शूल, वायुके रोग, अपस्मार, उन्माद और शरीरकी पीडाको नष्ट करनेवाली है। विशेष करके फिरंग—गरमी रोगको दूर करनेवाली है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

विवरण।

चोबचीनी यूरोपदेशमे उत्पन्न होती है और चीन देशसे आती है, यह वचके समान सफेद होती है, पत्ते असगन्धके समान होतेहैं, इसकी गांठे होतीहैं, तोडनेमे दृढ और लालरंगकी होती है। भारी गाठ अच्छी होती है, घुनीहुई गुणदायक नही होती ॥

अथ हवुषाद्वयम्।

तन्मध्ये प्रथमं फलं मत्स्यसदृशं विस्रगन्धं द्वितीयमश्वत्थफलसदृशं मत्स्यगन्धम्, तयोर्नामानि गुणाश्च ॥

हवुषा वपुषा विस्रा पराश्वत्थफला मता ॥ मत्स्यगन्धा प्लीहहन्त्री विषघ्नी ध्वांक्षनाशिनी ॥ १०४ ॥ हवुषा दीपनी तिक्ता मृदूष्णा तुवरा गुरुः ॥ पित्तोदरसमीरार्शोग्रहणीगुल्मशूलहृत् ॥ १०५ ॥ पराप्येतद्गुणा प्रोक्ता रूपभेदो द्वयोरपि ॥

हाऊवेर दो प्रकारके हैं, उनमें एक तो मच्छीके सदृश दुर्गन्धवाला और दूसरा पीपलके फलके सदृश मच्छीकी गन्धवाला होताहै। हवुषा, वपुषा, विस्रा, (विस्रगन्धा, विगन्धिका) ये पहिले हाऊवेरके संस्कृत नाम हैं॥ अश्वत्थफला, मत्स्यगन्धा, प्लीहहन्त्री, विषघ्नी, ध्वांक्षनाशिनी (स्वल्पफला, कच्छुघ्नी, प्लीहशत्रु, कफघ्नी, अपराजिता) ये दूसरे हाऊवेरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०--हाऊवेर। ब०--हवुषा। म०--होश। गु०--पलाशी। क०--परडुहव्वे। लै०--थेवेटियानेरिफोलिया Thevetia Narifolia हवुषा (हाऊवेर)-- अग्निप्रदीपक, कडवा, कोमल, गरम, कसैला, भारी और पित्त, उदर, वायु, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म तथा शूलरोगनाशक है। दूसरा भी इसहीकी समान गुणोवाला है परन्तु दोनोके रूपमे भेद है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

विवरण।

हाऊवेर छोटे पत्ते और बडे पत्तोका इन भेदोसे दो प्रकारका है। बडे हाऊवेरको बडे पत्तोका, हाऊवेर कहते हैं, इसका वृक्ष कोकणदेशमे नदीके किनारे अथवा सरोवरके किनारे सजल भूमिमे उत्पन्न होताहै। इसके पत्ते झुमकेदार होतेहैं। इसके वृक्षकी ऊँचाई तीन हाथसे अधिक नहीं होती। पत्ते नागचम्पेके पत्तोके समान छः अगुलपर्यन्त लम्बे होते हैं, इसके वृक्षका रग लाल होता है। छोटे पत्तोवाले हाऊवेरके वृक्ष कोकणादि देशोमे अधिक नहीं होते। छोटे पत्तोंके हाऊवेर चीन और जापानमे अधिकतासे पाये जातेहैं। इसके पत्ते शरूके पत्तोके समान बहुत छोटे होतेहैं, इसके वृक्ष भी ललाई लियेहुए होते है। देखनेमे जालदार घनेघने वटाटोपसे अत्यन्त सुन्दर मालूम होतेहैं, लिखनेके लिये इसकी लकडीकी कलमे बनातेहैं ॥

अथ विडंगनामगुणाः।

पुंसि क्लीबे विडंगः स्यात्कृमिघ्नो जन्तुनाशनः॥ तण्डुलश्च तथा वेल्लममोघा चित्रतण्डुला ॥ १०६ ॥ विडङ्गं कटु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं वह्निकरं लघु। शूलाध्मानोदर श्लेष्म कृमिवातविबन्धनुत् ॥ १०७ ॥

विडग, कृमिघ्न, जन्तुनाशन, तडुल, वेल्ल, अमोघा, चित्रतडुला, (भस्मक, मोघा, कृमिकंटक, कैराल, केवल, विडगा, तडुला, जन्तुनाशक, कृमिकटक, रसायन, पावक, कृमिरिपु, जन्तुघ्न, चित्रतडुल, कृमिशत्रु, गर्दभ, कृमिहा, चित्रा, तंडुलीयका, वातारि, जन्तुघ्नी, मृगगामिनी, कैराली, गहरा, कापाली, वरा, वृषणाशन, जन्तुहन्त्री, कृष्णतडुला, शूद्रतंडुला, चित्रबीजा और घोषा) ये वायविडगके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--वायविडग। ब०--विडंग। म०--गु०--वावडिग। क०--वायुविडंग। तै०--वायुविडघमु। ता०--वायविल। फा०--बरगकावली। अ०--बरंजकावली। इ०--बेब्रेग Babreng लै०--एवेलियारिबीस Embelia Ribis वायविडंग--चरपरी, तीक्ष्ण, गरम, रूखी, अग्निकारक और हलकी है, तथा शूल, अफारा, उदररोग, कफ, कृमि, वात और मलबन्धको नष्ट करनेवाली है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

विवरण।

पहाडकी तलहटी-भावरमें वायविडगके वृक्ष बहुत होते हैं, फूलोंके गुच्छेसे होते हैं, उनपर लाल लाल बीरबहुटीके समान गोल गोल फूल लगते है, पत्ते कडे और चिकने,

ललाई लिये गोटनीके समान होते हैं, कवीला इसीके फलोंकी रज हैं और उसके दाने वायविडंग हैं ॥

अथ तुम्बुरुफलम् ।

तुम्बुरुः सौरभः सौरो वनजः सानुजोऽन्धकः ॥ तुम्बुरु प्रथितं तिक्तं कटुपाकेऽपि तत्कटु ॥ रूक्षोष्णं दीपनं तीक्ष्णं रुच्यं लघु विदाहि च ॥१०८॥ वातश्लेष्माक्षिकर्णौष्ठशिरोरुग्गुरुताकृमीन् ॥ कुष्ठशूलारुचिश्वासप्लीहकृच्छ्राणि नाशयेत् ॥ १०९ ॥

तुम्बुरु, सौरभ, सौर, वनज, सानुज, अन्धक,(द्विज, तीक्ष्णवल्कल, तीक्ष्णफल, तीक्ष्णपत्र, महामुनि, स्फुटल, सुगंधि, शूलघ्न, सौरज, गन्धालु और स्फुटितफल) ये तुम्बुरुके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०-व०-तुम्बुरु। गु०-तुवरुफल ॥ तुम्बरु-कडवा, पचनेमें चरपरा, रूक्ष, गरम, अग्निको दीपन करनेवाला, तीक्ष्ण, रुचिकारक, हलका, दाहकारक और वात, कफ, नेत्ररोग, कर्णरोग ओष्ठरोग, शिरके रोग, भारीपन, कृमि, कोढ, शूल, अरुचि, श्वास, प्लीहा और मूत्रकृच्छ्रनाशक हैं ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

विवरण ।

तुम्बरुके बडे बडे वृक्ष होतेहैं, उनमें कॉटे बहुत होते हैं, दक्षिणकी ओर और कोंकणदेशमे अधिकतासे पाये जाते हैं । इसके फल मालकॉगुनीके झुमकेके समान जानपडते हैं, जिस प्रकार मालकागुनीकेझुमकेसे लाल बीज निकलते हैं, उसी प्रकार तुम्बरुके फलका मुख खोलनेसे मिरचके समान काले रंगके बीज निकलते हैं, उन बीजोंको तोडनेसे पीले रंगकी मींग निकलती है, और उस मींगके भीतर तेलके समान चिकनाई होती है, इसके बीजोंमें अत्यन्त झलझलाहट होता है ।

अथ वंशलोचननामगुणाः ।

स्याद्वंशरोचना वांशी तुगाक्षीरी तुगा शुभा ॥ त्वक्क्षीरी वंशजा शुभ्रा वंशक्षीरी च वैणवी ॥ ११० ॥ वंशजा बृंहणी वृष्या बल्या स्वाद्वी च शीतला ॥ तृष्णाकासज्वरश्वासक्षयपित्तास्रकामलाः॥ हरेत्कुष्ठं व्रणं पाण्डुं कषाया वातकृच्छ्रजित् ॥ १११ ॥

वंशरोचना, वांशी, तुगाक्षीरी, तुगा, शुभा, त्वक्क्षीरी, वंशजा, शुभ्रा, वंशक्षीरी, वैणवी, (वंशलोचना, क्षीरिका, त्वक्सारा, कर्मारी, श्वेता, कर्पूररोचना, तुगा, रोचनिका, पिंगा, वंशशर्करा और वंशकर्पूर) ये वंशलोचनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-व० म० गु०-वंशलोचन । क०-वंशरोचना ते०-वंशलोचना । फा०-तवाशीर । अ०-तवाशीर । इ०-दीसिलिस्युम् कंक्रसिन The Siliceons Concretion वमवुस अरण्डिनेसिया Bambusa Arundinacia ॥ वंशलोचन-शरीरकी धातुओंको बढानेवाला, वीर्यवर्द्धक बलदायक.स्वादिष्ठ, शीतल और तृष्णा, खाँसी, ज्वर, श्वास, क्षय, पित्त, रुधिरविकार, कामला, कोढ, व्रण, पाण्डुरोग तथा वायुके रोगोंको दूर करनेवाला और कसेला है ॥ ११० ॥ १११ ॥

विवरण ।

वंशलोचन बडे और मोटे पोलीजातिके पहाडी बांसोंके भीतर रसके समान गाँठ गाँठमें होताहै, जब बांस पक जाते हैं तब वह नरियलके दूधके तुल्य जम जाताहै, उन बाँसोंको काट काटकर सुखा देते हैं तब वह रसभी सूख जाताहै, जब उन बाँसोंको फाडते हैं, तब गाँठ गाँठमेंसे सफेद सफेद वह सूखा हुआ रस निकलता है वही वंशलोचन कहलाता है ॥

अथ समुद्रफेनः ।

समुद्रफेनः फेनश्च डिण्डीरोऽब्धिकफस्तथा॥ समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलश्चसः ॥ कषायो विषपित्तघ्नः कर्णरुक्कफहृत्सरः ११२

समुद्रफेन, फेन, डिण्डीर, अब्धिकफ, (अर्णवजमल, अर्णवज, सिन्धुकफ, डिण्डीर, समुद्रकफ, जलहास, फेनक, उदधिमल, श्वेतधामा, लवणोदधिसम्भव, वार्द्धिफेन, पयोधिज, सुफेन, अब्धिडिण्डीर, सामुद्र. शुष्काशुष्क, विध्याह, दधिफेन और सारमल) ये समुद्रझागके संस्कृतनाम हैं ॥

हिन्दी-समुद्रफेन, समुद्रझाग । व०-समुद्रफेन । म०-समुद्रफेन । गु०-समुद्रफीण । क०-कडलनागले । तै०-सामुद्रनालिके । फा०-कफेदरिया । अ०-जुवदुलवेदर । इ०-कटलफीशबोन Catilefishbone लै० सेपिया ऑफिसिनेलीस Sepia Offisinalis समुद्रफेन-

नेत्रोंको हितकारी, लेखन, शीतल, चंचल, कषायरसयुक्त और विष, पित्त, कर्ण तथा कफ रोगनाशक है तथा सारक है ॥ ११२ ॥

विवरण।

समुद्रके झागोका खार जो मछली खा जाती है और फिर उसको उगल देती है वह जो एकत्र हो जाता है उसको समुद्रफेन कहते हैं ॥

अथाष्टवर्गस्य लक्षणगुणाः।

जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ॥ अष्टवर्गोऽष्टभिर्द्रव्यैः कथितश्चरकादिभिः ॥ ११३ ॥ अष्टवर्गो हिमः स्वादु, बृंहणः शुक्रलो गुरुः॥भग्नसन्धानकृत्कामबलासबलवर्द्धनः ॥ वातपित्तास्रतृड्दाहज्वरमेहक्षयप्रणुत् ॥ ११४ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि इन आठ औषधियोंके मिलनेसे अष्टवर्ग होताहै, ऐसा चरक आदि मुनियोंने कहा है। यह अष्टवर्ग--शीतल, मधुर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, भारी, टूटे हुएको जोडनेवाला और काम, कफ तथा बलको बढानेवाला तथा वात, पित्त, रक्त, तृषा, दाह, ज्वर, प्रमेह तथा क्षय इन रोगोको नष्ट करनेवाला है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

तत्र जीवकर्षभकयोरुत्पत्तिलक्षणनामगुणाः।

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ ॥ रसोनकन्दवत्कन्दौ, निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ ॥ ११५ ॥ जीवकः कूर्चकाकार ऋषभो वृषशृङ्गवत् ॥

जीवक और ऋषभक ये दोनो हिमालय पर्वतके शिखरमे उत्पन्न होतेहैं। ये दोनो कद लहसुनकदके सदृश भीतरसे खाली होते हैं और उनके पत्ते सूक्ष्म होते हैं। जीवकका आकार कूँचीके सदृश और ऋषभकका आकार बैलके सींगके सदृश होताहै ॥ ११५ ॥

जीवको मधुरः शृङ्गो ह्रस्वाङ्गः कूर्चशीर्षकः॥११६॥ऋषभो वृषभो धीरो विषाणी द्राक्ष इत्यपि ॥ जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ ॥ मधुरौ पित्तदाहास्रकार्श्यवातक्षयापहौ ॥ ११७ ॥

जीवक, मधुर, शृग, ह्रस्वाग, कूर्चशीर्षक, (क्ष्वेड, दीर्घायु, शृंगक, प्रिय, शृंगकूर्च, शीर्ष, मधुरक, चिरजीवक, जीवन, प्राणद, जीव्य, भृगाह्व, चिरञ्जीव, मगल्य, वृद्धिद, आयुष्मान्, जीवद और बलद) ये जीवकके सस्कृत नाम हैं ॥

ऋषभ, वृषभ, धीर, विषाणी, द्राक्ष (दुर्द्धर, मातृक, वल्लुर, नृप, ऋषभक, वृष, वीर, पृथिवीपति, गोपति, ककुद्मान, पुगव, बोढी, शृगी, धुर्य्य, भूपति, कामी, रूक्षप्रिय, उक्षा, लागली, गौवन्धुर, बन्धूर, गोरक्ष, वनवासी, ऋषिप्रिय, मधुर, शीतल और कामद) ये ऋषभकके सस्कृतनाम हैं ॥ ये दोनो कद--बलदायक, शीतल, वीर्यको तथा कफको बढानेवाले और मधुर हैं। तथा पित्त, दाह, रक्त, दुर्बलता, वायु और क्षय इनको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

अथ मेदामहामेदयोरुत्पत्तिलक्षणनामगुणाः।

महामेदाभिधः कन्दो मोरङ्गादौ प्रजायते॥ महामेदा खनीमेदा स्यादित्युक्तं मुनीश्वरैः ॥ ११८ ॥ शुक्लार्द्रकनिभः कन्दो लताजातः सुपाण्डुरः ॥ महामेदाभिधो ज्ञेयो मेदालक्षणमुच्यते ॥ ११९ ॥ शुक्लकन्दो नखच्छेद्यो मेदोधातुमिव स्रवेत् ॥ यः स मेदेति विज्ञेयो जिज्ञासातत्परैर्जनैः॥१२०॥

महामेदा नामक कंद मोरग आदि स्थानोंमे होताहै और इस महामेदाकी खानिमें ही मेदा होती है यह मुनीश्वरोने कहा है। महामेदा नामक कद सूखे हुए अदरकके सदृश सुफेद रगका होताहै, पीले रगकी लतासे उत्पन्न होताहै। यह महामेदाके लक्षण जानने ॥ अब मेदाके लक्षण कहतेहैं मेदाका भी कद श्वेत होताहै और जिसमे नखके छेदनेसे मेदाधातुके सदृश रस निकले उसको मेदा जानना ॥ ११८--१२० ॥

शल्यपर्णी मणिच्छिद्रा मेदा मेदोभवाध्वरा ॥ महामेदा वसुच्छिद्रा त्रिदन्ती देवतामणिः ॥ १२१ ॥ मेदायुगं गुरु

स्वादु वृष्यं स्तन्यकफावहम् ॥ बृंहणं शीतलं पित्तरक्तवातज्वरप्रणुत् ॥ १२२ ॥

शल्यपर्णी, मणिच्छिद्रा, मेदा, मेदोद्भवा, अध्वरा, (धीरा, मधुरा, जीवनी, स्नेहा, श्रेष्ठा, विभावरी, वसा, स्वल्पपर्णिका, मेदसारा, स्नेहवती, मेदिनी, स्निग्धा, द्रवा, साध्वी, बहुदा, बहुगन्धिका, मेदोवती, पुरुषदन्तिका, दृढगन्धा, मधुरा, जीवनिका और स्वल्पपर्णी) ये मेदाके संस्कृत नाम हैं ॥ और महामेदा, वसुच्छिद्रा, त्रिदन्ती, देवतामणि (देवमणि) सिताङ्कुरा, जीवनी, पांडुरोगिणी, महामेदा, पुरोद्भवा, देवेष्ट, सुरमेदा, दिव्या, देवगन्धा, सुवर्णा, सोमा, देवेष्टा, सुरमेदा और मेदोद्भवा) ये महामेदाके संस्कृत नाम हैं ॥ मेदा और महामेदा--भारी, स्वादिष्ठ, वीर्यवर्द्धक, दुग्ध तथा कफको बढानेवाली, पुष्टिकारक, शीतल, रक्तपित्त तथा वातज्वरको दूर करनेवाली हैं ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

अथ काकोलीक्षीरकाकोल्योरुत्पत्तिलक्षणनामगुणाः ।

जायते क्षीरकाकोली महामेदोद्भवस्थले ॥ यत्र स्यात्क्षीरकाकोली काकोली तत्र जायते ॥ १२३ ॥ पीवरीसदृशः कन्दः क्षीरं स्रवति गन्धवान् ॥ स प्रोक्तः क्षीरकाकोली काकोलीलिङ्गमुच्यते ॥ १२४ ॥ यथा स्यात्क्षीरकाकोली काकोल्यपि तथा भवेत् ॥ एषा किञ्चिद्भवेत्कृष्णा भेदोऽयमुभयोरपि ॥ १२५ ॥

काकोली वायसोली च वीरा कायस्थिका तथा ॥ सा शुक्ला क्षीरकाकोली वयस्था क्षीरवल्लिका ॥ १२५ ॥ कथिता क्षीरिणी धारा क्षीरशुक्ला पयस्विनी ॥ काकोलीयुगलं शीतं शुक्रलं मधुरं गुरु ॥ बृंहणं वातदाहास्रपित्तशोषज्वरापहम् ॥ १२७ ॥

काकोली, वायसोली, वीरा, कायस्थिका, (शीतपाकी, वयस्या, वायसोलिका, क्षीरा, धीरा, शुक्ला, मेदुरा, ध्वाङ्क्षिका, स्वादुमांसी, वयस्था, जीवती, मधुरा, शुक्लक्षीरा, पयस्विनी, कायस्थिका और जीवनीया) ये काकोलीके संस्कृत नाम हैं ॥

जो काकोली सफेद होय वह क्षीरकाकोली कहाती है । क्षीरकाकोली, वयस्था, क्षीरवल्लिका, कथिता, क्षीरिणी, धारा, क्षीरशुक्ला, पयस्विनी, (पयस्या, महावीरा, क्षीरकाकोलिका, सुकोली, अष्टमी, क्षीरविषाणिका, जीववल्ली, जीवशुक्ला, क्षीरा, क्षीरवल्ली, वयस्था, क्षीरमधुरा और दुग्धाढ्या) ये क्षीरकाकोलीके संस्कृत नाम हैं ॥ दोनों काकोली--शीतल, वीर्यवर्द्धक, मधुर, भारी, शरीरके धातुओंकी वढानेवाली और वात, दाह, रुधिरके रोग, पित्त, शोष तथा ज्वर इनको नष्ट करै हैं ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

अथ ऋद्धिवृद्ध्योरुत्पत्तिलक्षणनामगुणाः ।

ऋद्धिर्वृद्धिश्च कन्दौ द्वौ भवतः कोशयामले ॥ श्वेतलोमान्वितः कन्दो लताजात सरन्ध्रकः ॥ १२८ ॥ स एव ऋद्धिर्वृद्धिश्च भेदमप्येतयोर्ब्रुवे ॥ तूलग्रन्थिसमा ऋद्धिर्वामावर्त्तफला च सा ॥ १२९ ॥ वृद्धिस्तु दक्षिणावर्त्तफला प्रोक्ता महर्षिभिः ॥

ऋद्धि और वृद्धि ये दोनों कन्द कोशयामल नामक देशमें होतेहैं । ये कन्द लता (बेल) में छिद्रोंयुक्त और श्वेत रोमवाले होतेहैं । अब इनमें जो भेद है सो कहतेहैं ऋद्धि कपासकी गांठके सदृश होवे और वामे घूमे हुए फलवाली होतीहै और वृद्धिका फल होवे और दहिना घूमा हुआ होताहै ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

ऋद्धियुग्मं सिद्धिलक्ष्म्यौ वृद्धेरप्याह्वया इमे ॥ १३० ॥ ऋद्धिर्बल्या त्रिदोषघ्नी शुक्रला मधुरा गुरुः ॥ प्राणैश्वर्यकरी मूर्च्छारक्तपित्तविनाशिनी ॥ १३१ ॥ वृद्धिर्गर्भप्रदा शीता बृंहणी मधुरा स्मृता ॥ वृष्या पित्तास्रशमनी क्षतकासक्षयापहा ॥ १३२ ॥

ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, (प्राणप्रिया, वृष्या, प्राणदा, सम्पदाह्वया, योग्या, प्राणप्रदा, सिद्धा, जीवदात्री, योग्या, चेतनीया, रथांगी, मंगल्या, लोककान्ता, जीवश्रेष्ठा और यगस्या) यह ऋद्धिके सस्कृत नाम हैं ॥ वृद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, (बोधनिका, प्रिया, सुरोत्तमा, योग्या, ऋद्धि, पुष्टिदा, वृद्धिदात्री, मगल्या, श्री, सम्पत्, आशी, जनेष्टा, भूति, मुत्, सुख और जीवभद्रा) ये वृद्धिके सस्कृत नाम है। ऋद्धि बलदायक, त्रिदोषनाशक, वीर्यवर्द्धक, स्वादिष्ठ, भारी, आयु तथा ऐश्वर्यको बढानेवाली है और मूर्च्छा तथा रक्तपित्तको नष्ट करती है। वृद्धि—स्त्रियोंको सुखदायक, गर्भधारण करनेवाली है तथा शीतल, पुष्टिकारक, मधुर, वीर्यवर्द्धक, पित्त तथा रुधिरको शात करै है और क्षत, खाँसी तथा क्षयको क्षय करनेवाली है ॥ ॥ १३०–१३२ ॥

विवरण ।

अष्टवर्ग--जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि वृद्धि ये आठों औषध कन्द हैं और पर्वतोंमे होते हैं। इनके लक्षण और आकृति तथा उत्पत्ति अनेक ग्रन्थकारोंने लिखी हैं परन्तु वह ठीक ठीक नहीं मिलती हमने शालिग्रामनिघण्टुभूषणमे प्रत्येक औषधिके अनेक भाषाओमे बहुतसे नाम लिखे है, परन्तु हमको इस अष्टवर्गकी औषधियोके, शिवाय सस्कृत नामोके और किसी भाषाका कोई भी नाम नहीं मिला, इसलिये हमने इसका कुछ विवरण नही लिखा। जान पडता है कि, बहुत समय व्यतीत होनेसे सब वैद्यलोग इनको भूल गये और किसीने परिश्रम करके भलेप्रकार इनका खोज भी नही किया। आजकलके कितने एक यूनानी वैद्य अष्टवर्गकी औषधियोको बहमनसुफेद, बहमनसुर्ख, सालवमिश्री, सकाकुलमिश्री आदि नामोसे जाहिर करते हैं, सो हमारी समझमे यह उनका कहना किसी प्रकार भी ठीक नहीं सूझता क्योंकि प्राचीन ऋषियोंने जो उनके लक्षण और आकृति लिखे हैं वे उनसे कदापि नहीं मिलते। दूसरे यह कलियुगमे राजाओको भी मिलनी कठिन हैं, ऐसा लिखा है, इसलिये इनके अभावमे इनकी प्रतिनिधि ही लेनी चाहिये ॥

राज्ञामप्यष्टवर्गस्तु यतोऽयमतिदुर्लभः ॥ तस्मादस्य प्रतिनिधिर्गृह्णीयात्तद्गुणं भिषक् ॥ १३३ ॥

मुख्यसदृशः प्रतिनिधिः ॥

अष्टवर्गस्य प्रतिनिधिमाह ।

मेदाजीवककाकोलीऋद्धिद्वन्द्वेऽपि चासति ॥ वरीविदार्यश्वगन्धावाराहींश्च क्रमात् क्षिपेत् ॥ १३४ ॥

मेदामहामेदास्थाने शतावरीमूलम् । जीवकर्षभकस्थाने विदारीमूलम् । काकोलीक्षीरकाकोलीस्थाने अश्वगन्धामूलम् । ऋद्धिवृद्धिस्थाने वाराहीकन्दं गुणैस्तत्तुल्यं क्षिपेत् ॥

यह अष्टवर्ग राजाओको भी बहुत दुर्लभ, है अर्थात् नहीं प्राप्त होता इसलिये वैद्य इसके स्थानमें सदृश गुणवाली प्रतिनिधिका उपयोग करै। मेदा और महामेदाके अभावमे शतावर, जीवक और ऋषभकके अभावमे विदारीकद, काकोली और क्षीरकाकोलीके अभावमें असगन्ध और ऋद्धि तथा वृद्धिके अभावमे वाराहीकद डाले ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

अथ मधुयष्टीनामगुणाः ।

यष्टीमधु तथा यष्टीमधुकं क्लीतकं तथा ॥ अन्यत्क्लीतनकं तत्तु भवेत्तोये मधूलिका ॥ १३५ ॥ यष्टी हिमा गुरुः स्वाद्वी चक्षुष्या बलवर्णकृत् ॥ सुस्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्या पित्तानिलास्रजित् ॥ व्रणशोथविषच्छर्दितृष्णाग्लानिक्षयापहा ॥ १३६ ॥

यष्टीमधु, यष्टीमधुक, क्लीतनक, क्लीतक, (यष्टी, मधुयष्टी, यष्ट्याह्वा, यष्टाह्विका, मधुक, यष्टिका, मधुयष्टिका यष्टिमधु, यष्टिमधुका, यष्टीक, यष्ट्याह्व, यष्ट्याह्वक, यष्टि, मधुस्रवा और मधुयष्टिक) ये मुलेठीके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--मुलहठी । ब०--यष्टीमधु । म०--ज्येष्ठमधु । गु०--जेठीमधु । फा०--बेखमहक । अ०--असलुस् सूस । तै०यष्टीमधुकमु । इं०--लिकरिसरूट Liquoriceroot लै०--ग्लाई कैर्रहीज ग्लैब्रा Glycyrhiza Glabra

मुलहटी--शीतल, भारी, मधुर, नेत्रोंको हितकारी, बल तथा वर्णके लिये उत्तम, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, केशोंको और स्वरको हितकारी है। पित्त, वात, रुधिरविकार, व्रण, शोथ, विष, वमन, तृषा, ग्लानि, तथा क्षय इनको नष्ट करै है दूसरी एक जलमें मुलैठी उत्पन्न होतीहै उसको क्लीतनक और मधूलिका कहतेहैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

विवरण ।

मुलेठीका क्षुप होताहै, पत्ते छोटे और गोल होतेहैं । फली छोटी और पतली होती हैं। फूल लाल होताहै, इसकी लकडी मीठी और तिक्त होती है, दूसरी बेलवाली मुलेठी अधिक मीठी होती है, वह जलमे उत्पन्न होती है।

अथ काम्पिल्लगुणाः ।

काम्पिल्लः कर्कशश्चन्द्रो रक्तांगो रोचनोऽपि च ॥ कामिलः कफपित्तास्रकृमिगुल्मोदरव्रणान्॥हन्ति रेची कटूष्णश्च मेहानाहविषाश्मनुत् ॥ १३७ ॥

काम्पिल्ल, कर्कश, चन्द्र, रक्ताग, रोचन, (कम्पिल्लक, काम्पील, कम्पिल्य, काम्पिल्यरेचनी, काम्पिल्लका, रेचना पिकाक्ष, रोचनी, लघुपत्रक, कम्पील्लक, रेची, रेचन, रंजक लोहिताग, रक्तचूर्णक, रक्तफल, नदीवास, बहुपुष्प और बहुफल) ये कबीलेके संस्कृत नाम हैं ।

हिं०–कबीला । बं०–कमलागुडि । म०–कपिला । गु०–कपीलो । क०–काम्पिल्लक । फा०–कन्विलाय । अ०–किन्बीर । इं०–केमिला Kamila रोटलीर Rootlera लै०–मल्लोटस फिलिपाइनसिस Mellotus philippinesis कबीला–रेचक, चरपरा, गरम और कफ, पित्त, रुधिरविकार, कृमि, गुल्म, उदररोग, व्रण, प्रमेह, आनाह, विप तथा पथरी इन सबको नष्ट करै-हैं ॥ १३७ ॥

विवरण ।

कबीला वायविडगकी रजका नाम है, वायविडगके ऊपर जो लाल लाल रजसी होती है, उसके फलोको तोड-तोडकर बॉसकी झरहरी(टोकरियों) मे डालकर और नीचे कपडा बिछाकर पॉवोंसे मलते हैं, उसकी जो रज छूट छूटकर कपडेपर गिरती है उसीको कबीला कहतेहैं और कोई कोई उसका नाम रोहिणी भी कहते हैं । मैंने पहाड-पर देखाहै कि इसको हजारों गिरबोझी गठरिये बॉध-बॉधकर लाते थे और सैकडो काबुली खानलोग ऊॅटोमें भर-भरकर लेजाते थे ।

अथ आरग्वधः (धनवहेरा-अमलतास)।

आरग्वधो राजवृक्षः शम्याकश्चतुरंगुलः ॥ आरेवतो व्याधिघातः कृतमालः सुवर्णकः ॥ १३८ ॥ कर्णिकारो दीर्घफलः स्वर्णांगः स्वर्णभूषणः ॥ आरग्वधो गुरुः स्वादुः शीतलः स्रंसनो गुरुः ॥१३९॥ ज्वरहृद्रोगपित्तास्रवातोदावर्त्तशूलनुत् ॥ तत्फलं स्रंसनं रुच्यं कुष्ठपित्तकफापहम्॥ज्वरे तु सततं पथ्यं कोष्ठशुद्धिकरं परम् ॥१४०॥

आरग्वध, राजवृक्ष, शम्याक, चतुरगुल, आरेवत, व्याधिघात, कृतमाल, सुवर्णक, कर्णिकार, दीर्घफल, स्वर्णांग, स्वर्णभूषण, (जठरनुत्, चक्रपारिव्याध, सम्यक्, मन्थान, रोचन, नृपद्रुम, हिमपुष्प, राजतरु, कण्डघ्न, महाकर्णिकार, ज्वरान्तक, अरुज, स्वर्णपुष्प, स्वर्णद्रु, कुष्ठसूदन, कर्णाभरणक, महाराजद्रुम, आरोग्यशिम्बी, व्यथान्तक, आमहा, स्वर्णस्थाली, रेचन, कुण्डली, हेमपुष्प, शेफालिका, नक्तमाल, स्वर्णवृक्ष, सारफल, कुष्ठघ्न और द्रुमोत्पल)ये अमलतासके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–अमलतास, धनबहेडा । बं०–सोनालु, सोंदाल एखालनडी । म०–बाहवा । गु०--गरमालो । क०–हेगके । तै०–रेल्लकाया । फा०–ख्यारेशम्बर । इं०–पुडिंग पाइपट्री Pudding Pipetree ल०--केसिया फीस्टुला Cassia Fistula अमलतास--भारी, मधुर, शीतल, स्रसन (मलादिकको ढीला करनेवाला) और ज्वर, हृद्रोग, पित्त, रक्तविकार, वात, उदावर्त तथा शूलको नष्ट करनेवाला है। इसकी फलीमलको शिथिल करनेवाली, रुचिकारी, कोढ, पित्त तथा कफको नष्ट करनेवाली, है । यह ज्वरमें सर्वदा पथ्य और कोठेको अत्यत शुद्ध करनेवाली है ॥ १३८--१४० ॥

विवरण ।

अमलतासके वृक्ष बडे बडे होतेहै, पत्ते बडी जामुनके समान होतेहैं, और शाखाओंमें दोनो ओर लगे रहते हैं. फूल इसके पॉच पॉच पंखुरीके पीले पीले प्रत्येक डालीमें जटित होते हैं, उनकी ऐसी शोभा दिखाई देती है मानो पीताम्बर धारण कररहे हैं इसकी फली दो बालिस्तसे लेकर चार बालिस्ततक लम्बी होती है । उसके भीतर काला काला गूदा और शिरसके बीजोके समान बीज निकलते हैं, इसका गूदा वैद्यलोग प्रयोगमे लाते हैं, इसकी मात्रा दो तोलेसे लेकर चार तोलेतककी है ॥

अथ कटुका (कुटकी) ।

कट्वी कटुका तिक्ता कृष्णभेदा कटुम्भरा॥अशोका मत्स्यशकला चक्रांगी शकुलादनी ॥१४१ मत्स्यपित्ता काण्ड-

रुहा रोहिणी कटुरोहिणी ॥ कट्वी तु कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमा लघुः ॥१४२॥ भेदिनी दीपनी हृद्या कफपित्तज्वरापहा॥ प्रमेहश्वासकासास्रदाहकुष्ठक्रिमिप्रणुत् १४३

कट्वी, कटुका, तिक्ता, कृष्णभेदा, कटुम्भरा, अशोका, मत्स्यशकला, चक्राङ्गी, शकुलादनी, मत्स्यपित्ता, कांडरुहा, रोहिणी, कटुरोहिणी (काण्डेरुहा, अरिष्टा, तिक्तरोहणिका, जननी, तिक्तरोहिणी, शतपर्वा, द्विजाङ्गी, मलभेदिनी, अशोकरोहिणी, कृष्णा, कृष्णभेदी, महौषधी, अजनी, कटु, केदारकटुका, वातघ्नी, वान्तिदा, कटंबरा और आतिक्तिका) ये कुटकीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--कुटकी । ब०—कट्की । म०—कुटकी । गु०—कडु । क०--केदार कटुकी । तै०--काटकरोहिणी । फा०—खर्वकेसियाह । अ०—खर्वकअस्वद । इ०—ब्लाक हेल्ले-बोर Black Hellebore ल०—पिकरोरहिजा कुरोआ Picrorrhiza Kurroa ॥ कुटकी--रसमे कडवी, पाकमे चरपरी, रूखी, शीतल, हलकी, मलभेदक, अग्निदीपक, हृदयको हितकारी, और कफ, पित्त, ज्वर, प्रमेह, श्वास, खाँसी, रुधिरविकार, दाह, कोढ तथा कृमि-रोगनाशक है ॥ १४१-१४३ ॥

अथ किरातकः (चिरायता) ।

किराततिक्तः कैरातः कटुतिक्तः किरातकः ॥ काण्डतिक्तो नार्यतिक्तो भूनिम्बो रामसेनकः ॥ १४४ ॥ किरातकोऽन्यो नैपालः सोऽर्द्धतिक्तो ज्वरान्तकः ॥ किरातः सारको रूक्षः शीतलस्तिक्तको लघुः ॥ १४५ ॥ सन्निपातज्वरश्वासकफपित्तास्रदाहनुत ॥ कासशोथतृषाकुष्ठज्वरव्रणकृमिप्रणुत् ॥ १४६ ॥

किराततिक्त, कैरात, कटुतिक्त, किरातक, कांडतिक्त, नार्यतिक्त, भूनिंब और रामसेनक ये चिरायतेके सस्कृत नाम है ॥ इसी तरहका एक चिरायता नैपालदेशमे होताहै, उसको अर्धतिक्त और ज्वरान्तक कहते हैं ॥

हिन्दी—चिरायता । ब०—चिरता, चिराता, नेपाले निम्ब । म०--किराइत । गु०--करीयातु । क०--नेलर्व-उसु । तै०--नेलामेसु । फा०--नोनिहाट । अ०--कसबुज, जारिरा । इ०--चिरेता Chueta लै०--स्विर्टिया चिराता SovirtiaChireta ॥ चिरायता--दस्तावर, रूखा, शीतल, कडवा, हलका और सन्निपातज्वर, श्वास, कफ, पित्त, रुधिरविकार, दाह, खांसी, सूजन, तृषा, कुष्ठ, ज्वर, व्रण और कृमिरोग नाशक है ॥ १४४--१४६ ॥

विवरण ।

चिरायतेके वृक्ष अनेक स्थानोमे होतेहैं; यह दो तीन वालिस्त ऊँचे होते हैं । पत्ते लम्बे लम्बे और छोटे छोटे और फूल डालियोमे सफेद रगके अधिकतासे आते है इसके दो भेद हैं एक कडुवा और एक मीठा, इसका सर्वाग प्रयोगमे लिया जाता है, मात्रा तीन मासेसे लेकर छः मासे पर्यंत लेनी चाहिये ॥

अथेन्द्रयवः ।

उक्तं कुटजबीजं तु यवमिन्द्रयवं तथा ॥ कलिंगं चापि कालिंगं तथा भद्रयवा अपि ॥१४७॥ इति धन्वन्तरिः प्राह । अमरेऽप्याह-कचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्तदभिधायकम्॥फलानीन्द्रयवास्तस्य तथा भद्रयवा अपि ॥१४८॥ इन्द्रयवं त्रिदोषघ्नं संग्राहि कटु शीतलम् ॥ ज्वरातीसाररक्तार्शोवमिवीसर्पकुष्ठनुत् ॥ दीपनं गुदकीलास्रवातास्रश्लेष्मशूलजित् ॥ १४९ ॥

कुटजबीज,यव,इद्रयव,कलिग,कालिग,भद्रयव,(कलिगक, शक्राह्व, शक्रबीज, वत्सक, वत्सकबीज कलिगबीज, कुटज और भद्रज) ये इन्द्रजौके सस्कृत नाम हैं ॥ इन्द्रके जितने सस्कृत नाम हैं उनके पीछे यवशब्द जोड देनेसे इन्द्रजौके अनेक नाम बनजाते हैं, जैसे इन्द्रयव भद्रयव इत्यादि ।

हिन्दी—इन्द्रजौ । ब०—इन्द्रयव । गु०—इन्द्रजव । म०—कुडयाचे बीज, इन्द्रजव । फा०—जवान कुचिस्क । अ०—लेसानुत् असाफीर । लै०—होलर्र हेना अन् टिडि सेन्ट्रिस् Holarrhena Antidysenteiis ॥ इन्द्रजौ-त्रिदोषनाशक, ग्राही, चरपरे, शीतल और ज्वर, अती सार, रुधिरविकार, अर्श, (बवासीर) वमन, विसर्प तथा कुष्ठ इन सबको नष्ट करे है । अग्निप्रदीपक और गुदाके रोग, वात, रुधिरके दोष, कफ तथा शूलको जीतनेवाले हैं ॥ १४७-१४९ ॥

विवरण ।

इन्द्रजौ कुडेके बीज है, इन्द्रयव कडवे और मीठे दो प्रकारके होते हैं, और पसारी लोगोकी दुकानोपर बहुत बिकते हैं ॥

अथ मदनः (मयनाफल) ।

मदनश्छर्दनः पिण्डो नटः पिण्डीतकस्तथा ॥ करहाटो मरुवकः शल्यको विषपुष्पकः॥१५०॥मदनो मधुरस्तिक्तो वीर्योष्णो लेखनो लघुः ॥ वान्तिकृद्विद्रधिहरः प्रतिश्यायव्रणान्तकः ॥ रूक्षः कुष्ठकफानाहशोथगुल्मव्रणापहः ॥ १५१ ॥

मदन, छर्दन, पिंड, नट पिंडीतक, करहाट, मरुवक, शल्यक विषपुष्पक (पिचुक, मुचुकुन्द, कटकी, करहाटक, शल्य, कठ, रामच्छर्दनक, रामाच्छर्दनक, कैटर्य्य, धाराफल, नगर, राठ, गाल्ह, ग्रंथिफल, घटाल और वस्तिशोधन) ये मैनफलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–मैनफल । बं०–मयनाफल । म०–गेळ । गु०–मींडोल । क०–वोनगरे । तै०–वसन्तकडिमिचेट्टु । ता०–मड्डुकक्रय । औत्क०–पातर । नैपाली–मैढल । पश्चि०–सिण्डकोल्ल । दक्षि०–मेठहाल । अ०–जौजुल्की । इं०–बुशीगार्डिनिया Bushy Gardenia लै०–रेंडिया डयुमेटोरम Randadumetarum मैनफल–मधुर, कडवा, उष्णवीर्य, लेखन, हलका, वमनकारक, विद्रधिनाशक, रूक्ष और प्रतिश्याय (जुखाम), व्रण, कोढ, कफ, अफारा (पेट फूलना), सूजन और गुल्मको नष्ट करनेवाला है ॥ १५० ॥ १५१ ॥

विवरण ।

मैनफलका वृक्ष बडा होता है पत्ते लम्बे लम्बे और गोल गोल खरदरेसे आमने सामने दोनो ओर होते हैं, सूरत चिरचिटेकीसी होती है, फूल गोल पाच पखुरीका, रंग सफेद और कुछ कुछ पीलासा होता है. फल अखरोटके सदृश गोल और उसमे रेखा पडी होती है, यह वृक्ष कांटेदार होता है ॥

अथ रास्ना ।

रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहा रसना रसा ॥ एलापर्णी च सुरसा सुगन्धा श्रेयसी तथा ॥१५२॥ रास्नामपाचिनी तिक्ता गुरूष्णा कफवातजित् ॥ शोथश्वाससमीरास्रवातशूलोदरापहा ॥ कासज्वरविषाशीतिवातिकामयसिध्महृत् ॥ १५३ ॥

रास्ना, युक्तरसा, रस्या, सुवहा, रसना, रसा, एलापर्णी, सुरसा, सुगधा, श्रेयसी, (नाकुली, सर्पगधा, पलकपा, द्रोणगंधिका, गन्धनाकुली, नकुलेष्टा, भुजगाक्षी, छत्राकी, सुगंधिमूला, रसाढ्या, अतिरसा, मुक्तरसा और युक्तरसा) ये रायसनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–रायसन रासना, रास्ना । बं०–रास्ना । म०–नावलीच्या मूळया । गु०–रासना । क०–रसना केदारे । फा०–रासुन । अ०–जजवीलश्यामी । लै०–मेन्डारोक्स बुर्घी Vandarox Burghi ॥ रायसन–पाचक, कटवी, भारी, गरम, कफ तथा वातको जीतनेवाली और सूजन, श्वास, वातरक्त, वातशूल, उदररोग, खाँसी, ज्वर, विष, अस्सी प्रकारके वात रोग, तथा सिध्मकुष्ठ नाशक है ॥ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

विवरण ।

रास्नाके वृक्ष नदीके किनारे और पर्वतोकी तलहटीमे विशेष करके होते हैं, इसकी जडमें कुछ कुछ सुगन्ध आती है, पत्ते इसके सनायसे दूने लम्बे चौडे होते हैं, परन्तु आकृति सनायहीकेसी होती है प्रयोगमें इसका सर्वांग ग्रहण किया है । यह बदरीनारायण केदारनाथमें बहुत होती है ॥

अथ नाकुली (नाई) ।

नाकुली सुरसा नागसुगन्धा गन्धनाकुली॥ नकुलेष्टा भुजङ्गाक्षी सर्पाङ्गी विषनाशिनी ॥ १५४ ॥ नाकुली तुवरा तिक्ता कटुकोष्णा विनाशयेत्॥भोगीलूतावृश्चिकाखुविषज्वरकृमिव्रणान् ॥ १५५ ॥

नाकुली, सुरसा, नागसुगधा, गधनाकुली, नकुलेष्टा, भुजगाक्षी, सर्पांगी, विषनाशिनी, (महासुगधा, सुवहा, फणिहत्री, नकुलाढचा, अहिभुक्, विषमर्दनिका, अहिमर्दिनी, विषमर्दिनी, महाहिगधा और अहिलता) ये नाईके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--नाई, नाकुलीकन्द, नकुलकद । बं०--नाकुली, सुगधनाकुली । म०--मुगुसवेल, सापसद । गु०--नोरवेल । तै०--पत्रपुचेट्टु । फा०--विषमुगरी, छोटा चांदा । लै०--रोवोलफिया सर्पेटिना Rauwolfia Serpentina नाकुली--कसैली, कडवी, चरपरी, गरम और सर्प, लूता, बिच्छू तथा चूहेका विष, ज्वर, कृमि और व्रणविनाशक है ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

विवरण।

नाकुली जंगलमे होती है, पत्ते नागरवेलके समान होते है और इसके नीचे कन्द निकलता है, उसीको वैद्यलोग प्रयोगमे लाते हैं ॥

अथ माचिका।

(पश्चिमदेशे मोइआ इति लोके प्रसिद्धो वृक्षविशेषः)

माचिका प्रस्थिकाम्बष्ठा तथा चाम्बालिकांबिका॥ मयूरविदला केशी सहस्रा बालमूलिका ॥ १९६ ॥ माचिकाऽम्ला रसे पाके कषाया शीतला लघुः॥ पक्वातीसारपित्तास्रकफकण्ठामयापहा ॥ १९७ ॥

माचिका, प्रस्थिका, अम्वष्ठा, अम्वालिका, आम्बिका, मयूरविदला, केशी, सहस्रा, बालमूलिका, (बालिका,बाला, शठाम्रा, अम्रा, दृढवल्का, मयूरिका, गधपत्री, चित्रपुष्पी, श्रेयसी, मुखवाचिका, छिन्नपत्री और भूरिमल्ली) ये मोइयेके संस्कृत नाम हैं।)

हिन्दी–मोइया। गु०–नाहानी पीलुडी । व०–माचिका। म०–लघुकावळी। क०–कावईकाके । फा० रोवातरीख। अ०--एनवुससालव। इ०–सोलनुम निगरम Solenum Nigrum ॥ मोइया—रसमे खट्टा, पाकमे कसैला, शीतल हलका और पक्वातीसार, पित्त, रुधिरविकार, कफ तथा कठके रोगोको नष्ट करनेवाला है ॥१९३--१९७॥

अथ तेजवती।

(तेजवल्कल तेजपात इति च लोके)

तेजस्विनी तेजवती तेजोह्वा तेजनी तथा॥ तेजस्विनी कफश्वासकासास्यामयवातहृत् ॥ पाचन्युष्णा कटुस्तिक्ता रुचिवह्निदीपनी ॥ १९८ ॥

तेजस्विनी, तेजवती, तेजोह्वा, तेजनी, (लघुवल्कला, महौजसी, पारिजाता, शीतातिक्ता, अतितेजनी, वल्कली, सुवर्णनाकुली, बिडालघ्नी और सुतेजसी) ये तेजवलके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी—व०—म०—गु०--तेजबल । दक्षि०—जलधरी । इ०—टुथएकट्री Toothache tree लै०-जन्थोक्सिलोन होस्टिली Zanthoxylon Hostile तेजवल--पाचन, गरम, चरपरा, कडवा, रुचिकारक, अग्निको उत्पन्न करनेवाला, और कफ, श्वास, खांसी, मुखरोग तथा वायुरोगको नष्ट करे है ॥ १९८ ॥

विवरण।

तेजबलकी बेल बनमें होती है, उसकी छाल लाल होती है उसीको तेजवल्कल और तेजवती कहते हैं। और इसके फल कालीमिरचके समान होते है । यह सुगधित पदार्थ है। इसकी मात्रा एक मासेकी है ॥

अथ ज्योतिष्मती [मालकांगनी]

ज्योतिष्मती स्यात्कटभी ज्योतिष्का कंगनीति च॥ पारावतपदी पण्या लता प्रोक्ता ककुन्दनी ॥ १९९ ॥ ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफसमीरजित् ॥ अत्युष्णा वामनी तीक्ष्णा वह्निबुद्धिस्मृतिप्रदा ॥ १६० ॥

ज्योतिष्मती, कटभी, ज्योतिष्का, कगनी, पारावतपदी, पण्या, लता, ककुदनी, तीक्ष्णा, कगुनी, बृहत्कगुनी, तेजोवती, बहुरसा, कनकप्रभा, सुवर्णनकुली, लवणा, अग्निदीप्ता, तेजस्विनी, सुरलता, अग्निफला, अग्निगर्भा, शैलसुता, सुतैला, सुवेगा, वायसी, तीव्रा, काकाण्डी, वायसादनी, गीर्लता, श्रीलता, सौम्या, काकाण्डी, त्रिपर्णी और पीञ्या , ये मालकागनीके सस्कृत नाम है ॥ हिन्दी मालकांगनी । व०—लताफटकी। म०—मालकागणी। गु०—मालकाकणा। क०—कौगुएरडु । तै०—वावजी। फा०—काल। इ०–स्टाफट्री Stafftree लै०–सिलेस्ट्रस पेनिक्युलेटा Celastrus Peniculata मालकागनी—चरपरी, कडवी, दस्तावर, कफ तथा वायुको जीतनेवाली, अत्यत उष्ण, वमनकारक, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक और बुद्धि तथा स्मृतिको तीव्र करनेवाली है ॥१९९॥१६०॥

विवरण।

मालकांगनीकी वेल जगल और वनोमे वृक्षोके आश्रयसे चलती है पत्ते गोल गोल कुछ कुछ अनीदार और थोडे थोडे कँगूरेदार दडीमे बराबर भरेहुए होते है, फूल छोटे छोटे पाच पखडीके और झुमकेदार लगते हैं, फल भी झुमकेदार चने अथवा मटरके समान बडा होताहै । यह फल कच्ची अवस्थामें हरा और पकजानेपर पीला होजाता है। इसके भीतर लाल रगके छः बीज निकलतेहैं, बहुत लोग उन बीजोको कोल्हूमे पिलवाकर तेल निकाल लेते है इसके फलोका शाक भी बनताहै ॥

अथ कुष्ठम् । [कूठ]

कुष्ठरोगाह्वयं वाप्यं पारिभव्यं तथोत्पलम् ॥ कुष्ठमुष्णं कटु स्वादु शुक्रलं तिक्तकं लघु ॥ हन्ति वातास्रवीसर्पकासकुष्ठमरुत्कफान् ॥ १६१ ॥

वाप्य, पारिभाव्य उत्पल और जितने कुष्ठरोगके नाम हैं वे सब (कुष्ठ, व्याधि, पाकल, कटाख्य, दुष्ट, वाप्य, गदाख्य, आप्य, जरण, कौबेर, भासुर, गदाह्व, गदाह्वय, कुटिल, पाकल, नीरुज, आमय, रुजा, गद, वाणीराज, परिभद्रक कृमिघ्न, पद्मक, पावन, रोग, रोगाह्वय, किंजल्क और परिभद्रक) ये कूठके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०—कूठ । बं०—कुड़ । म० कोष्ठ । गु०—कट । क०—कोट । तै०—चंगल, कुष्ठ । फा०—कोस्तह् । अ०—कुस्तोली । इ०—कोष्टसुरत । Costor root ले०—सौसुरिआलप्पा Saurueatappa कूठ—गरम, चरपरा, मधुर, वीर्यवर्द्धक, कडवा, हलका और वातरक्त, विसर्प, खांसी कुष्ठ, वात तथा कफको नष्ट करनेवाला ॥ १६१ ॥

विवरण ।

[illegible] कूठके फूल पीले रंगके होते हैं । पत्ते अदरकके समान होते हैं परन्तु इस देशमें नहीं होते अन्य देशोंमें अधिक होते हैं । [illegible] इसके सिन्धुनदीके किनारेका कूठ, उत्तम होता है । [illegible] उसीका [illegible] है । कूठ दो प्रकारका होता है । एक कडवा और दूसरा मीठा । [illegible] औषधोंमें मीठा कूठ लेना, [illegible] ॥

अथ कुष्ठभेदः—पुष्करमूलम् ।

उक्तं पुष्करमूलं तु पौष्करं पुष्करश्च तत् ॥ पद्मपत्रश्च काश्मीरं कुष्ठभेदमिमं जगुः ॥ १६२ ॥ पौष्करं कटुकं तिक्तमुक्तं वातकफज्वरान् ॥ हन्ति शोथारुचिश्वासान् विशेषात्पार्श्वशूलनुत् ॥ १६३ ॥

म०—पुष्करमूल । गु०—पोकरमूल । क०—पुष्करमूल । पोहकरमूल—चरपरा, कडवा और वात तथा कफसे उत्पन्न हुए ज्वर शोथ, अरुचि तथा श्वास रोगको दूर करैहै । विशेषकरके पसलीके शूलको निर्मूल करताहै ॥ १६२ ॥ १६३

विवरण ।

पुष्करमूल भी कूठहीका भेद है, क्योंकि इसके और कूठके पत्तोंमें तथा शाखाओंमें किसी प्रकारका भेद नहीं जान पडता; गुणभी एकहीसे हैं । इसीलिये कूठके अभावमें पुष्करमूल और पुष्करमूलके अभावमें कूठ लिया जाता है ।

अथ कटुपर्णी (चोक)

कटुपर्णी हैमवती हेमक्षीरी हिमावती ॥ हेमाह्वा पीतदुग्धा च तन्मूलं चोकमुच्यते ॥ १६४ ॥ हेमाह्वा रेचनी तिक्ता भेदिन्युत्क्लेशकारिणी ॥ कृमिकण्डूविषानाहकफपित्तास्रकुष्ठनुत् ॥ १६५ ॥

कटुपर्णी, हैमवती, हेमक्षीरी, हिमावती, हेमाह्वा, पीतदुग्धा, (स्वर्णक्षीरी, हेमगिरजा, पटुपर्णी, पीतपुष्पा, स्वर्णदुग्धा, स्वर्णाह्वा, रुक्मिणी, सुवर्णा, कांचनी, क्षीरिणी, काचनक्षीरी, कर्षिणी, तिक्तदुग्धा, हिमाद्रिजा, यवचिञ्चा, हिमोद्भवा, हैमी और हिमजा) ये चोकके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी—चोक, सत्यानाशी कटेरी । बं०—चोक । म०—कांटेधोत्रा । गु० दारुडी । क०—चिक्नीके । इ०—गमश्रोत । विलाइति Gamboge Thistle ले०—आर्गिमानेमेक्सीकाना Argemone Maxicana ॥ चोक—रेचक, (दस्तावर) कडवा, भेदक ग्लानिकारक और कृमि, खुजली, विष, अफारा, कफ, पित्त, रुधिर और कोढको शमन करनेवाली है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

विवरण ।

सत्यानाशी, कटेरीका क्षुप होता है, विशेष करके यह [illegible] मारवाड और रुहेलखण्ड [illegible] अधिक उत्पन्न होताहै इसके पत्ते [illegible] आदि सब अंगोंमें कांटे होते हैं और फूल पीले रंगके होते हैं फलका डोडा होता है उसमेंसे काले रंगके बीज निकलते हैं उनका तेल निकालते हैं इसके पत्ते तोडनेसे पीला दूध निकलता है । [illegible] चोक कहते हैं इस देशके लोग इसको [illegible] । [illegible] नहीं है ॥

अथ कर्कटशृंगी [काँकडासिंगी]।

शृङ्गी कर्कटशृङ्गी च स्यात्कुलीरविषाणिका ॥ अजशृङ्गी च वक्रा च कर्कटाख्या च कीर्त्तिता॥१६६॥शृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफवातक्षयज्वरान् ॥ श्वासोर्ध्ववाततृट्कासहिक्कारुचिवमीन्हरेत् १६७

शृगी, कर्कटशृगी, कुलीर, विषाणिका, अजशृगी, वक्रा, कर्कट, (कर्कटशृगिका, कासविनाशिनी, कुलिगी, महाघोषा, चक्रागी, कर्कटी, वनमूर्द्धजा, कुलीरशृगी, घोषा, चक्रा, शिखरी, कर्कटाख्या, कौलिरा, विषाणिका, चन्द्रास्पन्दा, नवागा, कुलीरविषाणिका, नतांगी, वक्रा और अजशृंगी) ये काकडासिगीके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-काकडासीगी। बं०-काकडाशृगी। म०-काकड शिगी। गु०-काकडासींगी। क०-कर्कटीशृगी। तै०-कर्कटाशृगी लै०-पिष्टेकिया इनटीग्रीरमा Pistacia Integnirrima काकडासिगी कसैली, कडवी, गरम और कफ, वात, क्षय, ज्वर, श्वास, ऊर्ध्ववात, तृषा, खासी हिचकी, अरुचि तथा वमनको नष्ट करनेवाली है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

विरण।

काकडासीगीका वडा वृक्ष होताहै, इसका आकार जियापोतेके पेडके सदृश होताहै, इसकी फली भीतरसे खुक्खल होतीहैं उसी फलीहीका नाम काकडासीगी है ॥

अथ कट्फलस्य[कायफलके]नामगुणाः।

कट्फलः सोमवल्कश्च कैटर्य्यः कुम्भिकापि च ॥ श्रीपर्णिका कुमुदिका भद्रा भद्रवतीति च ॥ १६८ ॥ कट्फलस्तुवरस्तिक्तः कटुर्वातकफज्वरान् ॥हन्ति श्वासप्रमेहार्शःकासकण्ठामयारुचीः ॥ १६९ ॥

कट्फल, सोमवल्क, कैटर्य, कुम्भिका, श्रीपर्णिका, कुमुदिका, भद्रा, भद्रवती (त्वक्फल, कुम्भी, कैटर्य, कायफल, कुम्भिपाकी, पुरुष, कुमुदी, सोमवृक्ष, रोहिणी, अरण्य, कृष्णगर्भ, प्रचेतसी, भद्रावती, महाकुम्भी, रामसेनक, कुमुदा, उग्रगन्ध, भद्राराजनक, लघुकाश्मर्य और श्रीपर्णी) ये कायफलके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी-कायफल। बं०-कट्फल। गु०-कायफल। म०-कुम्याची साल। क०-किरुसिवन्नि। तै०-पापरवुडम फा०-उदुलवर्क अ०-दारशीशवान। लै०-मिरिकासापिडा Myricasapida ॥ कायफल-कसैला, कडवा, चरपरा और वात, कफ, ज्वर, श्वास, प्रमेह, ववासीर, खासी, कठके रोग तथा अरुचि इन सवको दूर करनेवाला है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

विवरण।

कायफलका वडा वृक्ष होता है, पत्ते पानके समान और फूल लाल लाल होतेहैं। फल जायफलके समान गोल होते हैं, उस फलके ऊपरकी छाल जो जावित्रीकी समान होती है उसको रामपत्री कहतेहैं, इस वृक्षकी छाल मोटी और भारी वजनदार होतीहै. इसके फूल और छाल दोनों प्रयोगमे आते हैं ॥

अथ भार्गी (भारंगी)।

भार्गी भृगुभवा पद्मा फञ्जी ब्राह्मणयष्टिका ॥ भार्गी रूक्षा कटुस्तिक्ता रुच्योष्णा पाचनी लघुः ॥ १७० ॥ दीपनी तुवरा गुल्मरक्तनुन्नाशयेद्ध्रुवम् ॥ शोथकासकफश्वासपीनसज्वरमारुतान् ॥ १७१ ॥

भार्गी, भृगुभवा, पद्मा, फञ्जी, ब्राह्मणयष्टिका,(भारगी, ब्राह्मणी, भृङ्गजा, अगारवल्लरी, मुखधौता, दूर्वा, गर्दभशाक, गर्दभशाका, फजिका, वर्वर, बालेयशाक, वर्द्धक, ब्रह्मयष्टि, यष्टि, ब्रह्मयष्टिका, शाकवालेय, अगारवल्ली, बालेय, ब्रह्मिका, गर्दभशाखी,ब्राह्मी, ब्राह्मणयष्टी, वान्तारि, वातारि, कासजित्, भ्रमरेष्टा, शक्रमाता, भृगुभवा, खरशाका, कासघ्नी, भृगुजा, भार्गवी और कालिगवल्ली) ये भारगीके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-भारगी। बं०-वामुनहाटी। म०-भारग। गु०-भारंगी। क०-किरुंदेगु। तै०-भटभारगी। नैपाचूया। लै०-क्लेरोडेनड्रन्सीरेटन Clerodendron Seietun भारंगी-रूखी, चरपरी, कडवी, रुचिकारी, गरम,पाचक, हलकी, अग्निको दीपन करनेवाली, कसैली, और गुल्म, रुधिरविकार, सूजन, खासी, कफ, श्वास, पीनस, ज्वर तथा वातविनाशक है ॥ १७० ॥ १७१ ॥

विवरण।

भारंगीके वडेवडे वृक्ष वनमे होते हैं, पत्ते लम्बे २ और फूल गोल गोल सफेद रगके ललाई लिये होते हैं। पत्ते जडमें विशेष करके होते हैं, पत्तोका शाक वहुत अच्छा वनता है ॥

अथ पाषाणभेदः।

पाषाणभेदकोऽश्मघ्नो गिरिभिद्भिन्नयाजनी ॥ अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो वस्तिशोधनः ॥ १७२ ॥ भेदनो हन्ति दोषार्शोगुल्मकृच्छ्राश्महृद्रुजः ॥ योनिरोगान्प्रमेहांश्च प्लीहशूलव्रणानि च ॥ १७३ ॥

पाषाणभेद, अश्मघ्न, गिरिभित्, भिन्नयाजनी, (शिलाभेद, उपलभेद, नगभिद्, शैलगर्भज, अश्मभित्, पाषाणभेदक, पाषाणभेदन, पाषाणभेदी, श्वेता, उपलभेदी, उपलभित् और शिलागर्भज) ये पाषाणभेदके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पाखानभेद । ब०–पाथरचुरी । म०–गु०–पाषाणभेद । क०–आलेलगया । तै०–तेल्लामुरूपिण्डी । फा०–गोशाद । अ०–जितियाना । इं०–आइरिसस्प Iris Sp. लै०–कोसियस् एरोमेटिकम् Cocius Arometicum ॥ पाखानभेद–शीतल, कडवा, कसैला, वस्तिशोधक, मलभेदक, (दस्तकरता) और बवासीर, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, हृदयके रोग, योनिरोग, प्रमेह, प्लीहा, शूल और व्रण इन सब रोगोंको दूर करता है ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

विवरण।

पाषाणभेदके वृक्ष पर्वती भूमिमें अधिकतासे होते हैं। पाषाणभेद दो प्रकारका होता है; एक वनस्पतिकी जड होती है उसको पाषाणभेदकी लकडी कहते हैं और दूसरा खनिज होता है वह पाषाणभेद पत्थरके नामसे प्रसिद्ध है यह अन्यद्वीपोंसे आता है इस लिये इसका विशेष वर्णन नहीं किया ॥

अथ धातकी (धाई)।

धातकी धातुपुष्पी च ताम्रपुष्पी च कुञ्जरा ॥ सुभिक्षा बहुपुष्पी च वह्निज्वाला च सा स्मृता ॥ १७४ ॥ धातकी कटुका शीता मृदुकृत्तुवरा लघुः ॥ तृष्णातीसारपित्तास्रविषक्रिमिविसर्पजित् ॥ १७५ ॥

धातकी, धातुपुष्पी, ताम्रपुष्पी, कुञ्जरा, सुभिक्षा, बहुपुष्पी, वह्निज्वाला, (धातुपुष्पिका, वह्निपुष्पी, धावनी, अग्निज्वाला, पार्वती बहुपुष्पिका, कुमुदा, सीधुपुष्पी, मद्यवासिनी, गुच्छपुष्पी, सद्यपुष्पी, रोध्रपुष्पिणी, तीव्रज्वाला, वह्निशिखा और मद्यपुष्पा) ये धायके फूलोंके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–धायके फूल, धवईके फूल । ब०–धाइफुल । म०–धायटीफूल । गु०–धावडीना फूल । क०–धायिफूल । तै०–धातुकी पुड । लै०–वुडफोर्डिया फ्लोरिबंडा Woodfordia Plsribunda धायके फूल–चरपरे, शीतल, मृदुता करनेवाले, कसैले, हलके और तृषा, अतीसार, पित्त, रुधिरदोष, विष, कृमि तथा विसर्पनाशक हैं ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

विवरण।

धायके वृक्ष वनमें बहुत होते हैं, पत्ते अनारके पत्तोंके समान होते है परन्तु अनारके पत्ते हरे होते हैं और धायके पत्ते कुछ कुछ पीलापन लियेहुए होतेहैं। फूल अत्यन्त लाल कलीके समान होते है, इसके फूलमें पखरी नहीं होती हैं, इसके पुष्पही प्रयोगमें लिये जाते हैं ॥

अथ मञ्जिष्ठा (मँजीठ)।

मञ्जिष्ठा विकसा जिङ्गी समङ्गा कालमेषिका ॥ मण्डूकपर्णी भण्डीरी भण्डी योजनवल्ल्यपि ॥ १७६ ॥ रसायन्यरुणा काला रक्ताङ्गी रक्तयष्टिका ॥ भण्डीतकी च गण्डीरी मंजूषा वस्त्ररञ्जिनी ॥ १७७ ॥ मञ्जिष्ठा मधुरा तिक्ता कषाया स्वरवर्णकृत् ॥ गुरुरुष्णा विषश्लेष्मशोथयोन्यक्षिकर्णरुक् ॥ रक्तातीसारकुष्ठास्रवीसर्पव्रणमेहनुत् ॥ १७८ ॥

मंजिष्ठा, विकसा, जिंगी, समगा, कालमेषिका, मण्डूकपर्णी, भंडीरी, भंडी, योजनवल्ली, (योजनवल्लिका, मण्डूका, काण्डीरा, वस्त्ररजनी, रक्तांगी, रक्तयष्टि, रक्ता, योजनपर्णिका, लतायष्टि, हेमपुष्पी, भिंडीरी, काण्डिरी, भण्डिल, भंडिरी, भंडिका, भंडि, भंडीतकी, रसायनी, गंडीरी, हरिणी, गौरी, वप्रा, रोहिणी, चित्रलता, चित्रा, चित्रांगी, जननी, विजया, मजूषा, रक्तयष्टिका, क्षत्रिणी, रागाढया, कालभण्डिका, अरुणा, ज्वरहन्त्री, छत्रा, नागकुमारिका, भण्डीरलतिका, रागांगी, वस्त्रभूषणा, क्षेत्रिणी, ताम्रमूली, ताम्रिका, लोहितलता और ताम्रवल्ली) ये मजीठके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मजीठ । व०-क०-मजिष्ठा । म०-मंजिष्ट । गु० मजीठ । तै०—मजिष्ठतीठी । ता०—मजिट्टी । फा०—रुनास । अ०—कुवहतुसिवग । इं०—मैडररुट् Madder root लै०—रूबिया कोर्डिफोलिया Rubia Cordifolia मजीठ—मधुर, कडवा, कसैला, स्वर तथा वर्णको उत्तम करनेवाला, भारी, गरम और विष, कफ, शोथ, योनिरोग, नेत्ररोग, कर्णरोग रक्तातिसार, कुष्ठ, रुधिरविकार, विसर्प, व्रण तथा प्रमेहको नष्ट करै है ॥१७८॥

विवरण ।

मजीठ खेतोंमे बोया जाता है. इसका क्षुप लताके समान होताहै, जड लालरगकी होती है, औषधिके सिवाय रगतके काममे बहुत आतीहै ॥

अथ कुसुम्भम् ।

स्यात्कुसुम्भं वह्निशिखं वस्त्ररञ्जकमित्यपि ॥ कुसुम्भं वातलं कृच्छ्ररक्तपित्तकफापहम् १७९

कुसुम्भ, वह्निशिख, वस्त्ररंजक (लौहित, ग्राम्यकुंकुम, महारजन, कुकुटशिख, पावक, पीत, पद्मोत्तर, रक्त, वस्त्ररजन और अग्निशिख) ये कसूमके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी—कसूम (कर्ड) व०—कुसुमफूल, । म०—कडयांचे फूल । गु०कुसुबो । क०कसुम्भ । फा०—गुलेमास्कर । अ०—अखरीज, अवुलअस्फर । इं०—आफिसिनल कार्थेमस् Officinal Carthamus लै०—कार्थेमस् टिकटोरियस Carthamus Tinctorius कसूम—वातकारक और मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त तथा कफको नष्ट करने वाला है ॥ १७९ ॥

विवरण ।

कसूम खेतोंमें बहुत बोया जाताहै, इसके क्षुप दो दो हाथ ऊँचे कटेरीके समान काँटेदार होते हैं और पत्तोपर भी छोटे छोटे काँटे होते हैं इसके ऊपर गैंदेके फूलके समान फूल आताहै, उसमे केशरके समान महीन महीन तारसे होतेहै, उसका नाम कसूम है । कसूम वहुधा रगतके काममे वहुत आताहै, इसके बीजोको कर्ड कहते हैं, इसका तेल निकाला जाता है ॥

अथ लाक्षा (लाही) ।

लाक्षा पलंकषाऽलक्तो यावो वृक्षामयो जतुः ॥ लाक्षा वर्ण्या हिमा बल्या स्निग्धा च तुवरा लघुः ॥ ब्राह्मण्यंगारवल्ली च खरशाखा च हञ्जिका ॥ १८० ॥ अनुष्णा कफपित्तास्रहिक्काकासज्वरप्रणुत् ॥१८१॥ व्रणोरःक्षतवीसर्पकृमिकुष्ठगदापहा॥ अलक्तको गुणैस्तद्वद्विशेषाद्व्यंगनाशनः १८२॥

लाक्षा, पलकषा, अलक्त, याव, वृक्षामय, जतु, ब्राह्मणी, अगारवल्ली, खरशाका, हजिका, (कीटजा, राक्षा, शतघ्नी, रक्तमातृका, द्रुमामय, गरात्रिका, खदिरका, रक्ता, रंगमाता, पलकषा, कृमिहा, द्रुमव्याधि, अलक्तक, पलाशा, मुद्रिणी, दीप्ति, जन्तुका, गन्धमादिनी, नीला, द्रवरसा, पित्तारि, कृमिजा, क्रिमिजाजतुका और गर्णधका) ये लाखके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०—लाख, लाही । व०—लाहा । म०—गु०—लाख । क०—अरगु । तै०—लाका । फा०—लाक । अ०—लुक, लुकमकसुल । इं०शेललाक Shell lac लै०कोकसलाका, Coccus lacca ॥ लाख—वर्णको सुन्दर करनेवाली, शीतल, वलदायक, स्निग्ध, कसैली उष्णतारहित और कफ, पित्त, रुधिरविकार, हिचकी, खाँसी, ज्वर, व्रण, उरःक्षत, विसर्प, कृमि और कुष्ठ रोगको नष्ट करै है, आलके गुणभी लाखकी समान है विशेषकर व्यगनाशक है ॥ १८०—१८२ ॥

विवरण ।

पीपल, पिलखन, बेर, शीशम आदि वृक्षोकी शाखाओंकेऊपर जो लाल लाल पदार्थ लगा होताहै, उसको लाख कहतेहैं । इनमे पीपलकी लाख उत्तम होती है और अनेक औषधियोके प्रयोगमे आती है। इसी लाखको गरम पानीमें पकाकर महावर बनाते है, इसी लाखके रंगकी रोगनाई बहुत पक्की बनती है, उसके लिखेहुए ग्रन्थ हजारो वर्षतक नहीं मिटते ॥

अथ हरिद्रा ।

हरिद्रा काञ्चनी पीता निशाख्या वरवर्णिनी ॥ कृमिघ्ना हलदी योषित्प्रिया हट्टविलासिनी ॥ १८३ ॥ हरिद्रा कटुका तिक्ता रूक्षोष्णा कफपित्तनुत् ॥ वर्ण्या त्वग्दोषमेहास्रशोथपाण्डुव्रणापहा ॥ १८४ ॥

हरिद्रा, कांचनी, पीता, निशाख्या, वरवर्णिनी, कृमिघ्ना, हलदी, योषित्प्रिया, हट्टविलासिनी और जितने रात्रिके नाम हैं वे सब, (निशाह्वा, युवती, हेमरागिणी, कांचनी, क्षणदा, गौरी, मेदघ्नी, यामिनी, क्षपा, तमसिनी, गन्धप-

लाशिका, सुवर्णवर्णा, मंगलप्रदा, कावेरी, उमा, वर्णवती, पिंजा, पीतवालुका, हेमरागी, रंभगवासा, घर्षणी, पीतिका, रजनी, निशा, बहुला, वर्णिनी, रात्रिनामिका, हरित्, सुवर्णा, शिवा, दीर्घरागा, वरांगी, अनेष्टा, वरा, वर्णदात्री, पवित्रा, हरिता, विषघ्नी पिंगा, मङ्गल्या, मंगल्या, लक्ष्मी, भद्रा, शिफा, शोभा, शोभना, सुभगाह्वया, श्यामा, ज्वरान्तिका, कृमिघ्नी, जयन्ती, हलदी और वर्णविलासिनी) ये हलदीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–हलदी । बं०–हलुद । म०–हळद । गु०–हलदर । क०–अरसीन । तै०–पासुपु । फा० जरदचोब । अ०उरुस्सुफुर । इं०–टरमेरिक Turmeric लै० करक्युमालोंगा Curcumalonga हलदी–चरपरी, कडवी, रूखी, गरम, कफ, पित्त, त्वचाके दोष, प्रमेह, रुधिरविकार, सूजन, पांडुरोग और व्रण विनाशक है ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

विवरण ।

पहाडकी ओर जंगलोंमें हलदीके खेत बोये जाते है । उसके क्षुप छोटे छोटे और अदरकके समान चौडे चौडे पत्तेवाले होते हैं, उसके नीचे बुद्दयोंके समान गाँठें होती हैं, उनको खोद खोदकर धूपमें डाल देते हैं, जब वह सूख जाती हैं तो उनको हलदी कहते हैं । हरी हलदीकी भाजीभी अच्छी बनती है ॥

कर्पूरहरिद्रा ।

दार्वी मेदाऽऽम्रगन्धा च सुरभीदारु दारु च ॥ कर्पूरा पद्मपत्रा स्यात्सुरीमत्सुरतारका ॥ ॥ १८५ ॥ आम्रगन्धिर्हरिद्रा या सा शीता वातला मता ॥ पित्तहृन्मधुरा तिक्ता सर्वकण्डूविनाशिनी ॥ १८६ ॥

दार्वी, मेदा, आम्रगधा, सुरभीदारु, दारु, कर्पूरा, पद्मपत्रा, सुरीमत्, सुरतारका, (और सुरनायिका) ये कपूरहलदीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कपूरहलदी, अम्बिया हलदी । बं०–आमआदा । म०–आंबेहळद । गु०–आंबा हलदर । क०–हुली अरसिना । तै०पालुपसुपु । इं०–मेंगो जिंजर Mango Jinger लै०–करक्यूमाएरोमेटिका ॥ Curcu maaromatica ॥ अम्बिया हलदी–शीतल, वातकारक, पित्तनाशक, मधुर, कडवी और सर्वप्रकारकी खुजलीको करे है ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

विवरण ।

अम्बियाहलदी विशेष करके उत्तरकी ओरके जंगलोंमें उत्पन्न होती हैं, इसकी गाँठें हलदीसे बडी होती हैं, उसके टुकडे करके सुखा देतेहैं, उसीको अम्बियाहलदी कहते हैं और उसीको कपूरहलदी कहते हैं ॥

अथ वनहरिद्रा ।

अरण्यहलदीकन्दः कुष्ठवातास्रनाशनः ॥

संस्कृत–वनहरिद्रा । हिन्दी–वनहलदी, जंगलीहलदी । म०–रानहळद । गु०–वनहलदर । तै०–अडविपसुपु । ता०–कस्तुरिमञ्जुळ, काट्टमजळ वनहलदी०–कुष्ठ, वात और रुधिरविकारको नष्ट करे है ॥

दारुहरिद्रा ।

दार्वी दारुहरिद्रा च पर्जन्या पर्जनीति च ॥ कटङ्कटेरी पीता च भवेत्सैव पचम्पचा ॥ सैव कालीयकः प्रोक्तस्तथा कालेयकोऽपि च ॥ १८७ ॥ पीतद्रुश्च हारिद्रुश्च पीतदारु कपीतकम् ॥ दार्वी निशागुणा किंतु नेत्रकर्णास्यरोगनुत् ॥ १८८ ॥

दार्वी, दारुहरिद्रा, पर्जन्या, पर्जनी, कटकटेरी, पीता, पचपचा, कालीयक, कालेयक, पीतद्रु, हरिद्रु, पीतदारु, कपीतक, (द्वितीयाभा, हरिद्रा, काष्ठा, मर्मरी, पीतिका, स्थिररागा, कामिनी, दारुनिशा, कामवती, दारुपीता, कर्कटिनी, हेमकान्ति, पीतत्वक्, पीतचन्दन, निर्दिग्धा, काष्ठरजनी, हैमवती और हेमकान्ता) ये दारुहलदीके संस्कृत नाम है । दारुहलदी–हलदीके सदृश गुणवाली है और विशेष करके नेत्रके रोग, कानके रोग तथा मुखके रोगोंको शमन करे है ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

विवरण ।

दारुहलदीके वृक्ष वनमें बडेबडे ऊँचे होते हैं. कुडेके वृक्षके समान होते हैं । विशेष करके यह पर्वतोंमें अधिक उत्पन्न होते हैं, इसकी लकडी पीली होती हैं. यही दारुहलदी है ॥

अथ रसाञ्जनम् ।

दार्वीकाथसमं क्षीरं पादं पक्का यथाघनम् ॥ तदा रसाञ्जनाख्यं तन्नेत्रयोः परमं हितम् ॥ १८९ ॥ रसाञ्जनं तार्क्ष्यशैलं रसगर्भश्च तार्क्ष्यजम् ॥ रसाञ्जनं कटु श्लेष्मवि-

षनेत्रविकारनुत् ॥ उष्णं रसायनं तिक्तं छेदनं व्रणदोषहृत् ॥ १९० ॥

दारुहलदीका काढा करके उसमे उतना ही दूध डाले जब क्राथका और दूधका चौथा भाग शेष रहकर गाढा होजाय तब उतारले उसको रसौत कहते हैं, यह रसौत नेत्रोको परम हितकारी है ॥

रसांजन, तार्क्ष्यशैल, रसगर्भ, तार्क्ष्यज, (दार्वी क्राथो, द्भव, बालभैषज्य, तार्क्ष्य, रसोद्भूत, रसाग्रज, कृतक, वीर्याञ्जन, रसनागर्भ और अग्निसार) ये रसौतके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–रसौत । ब०–रसवत । गु०–रसवती । म०–रसांजन । तै०–रसांजनमु । क०–रसांजन । अ०–हुजूज । इं०–एक्सट्राक आफ इंडियन बरबरी Extract of Indian Berbery लै०–एक्सट्राक्ट वर्बेरिस Extractum Berberis रसौत–चरपरी, गरम, रसायन, कडवी, छेदन और कफ, विष, नेत्रविकार, तथा, व्रणदोषको हरनेवाली है ॥ १८९ ॥ १९० ॥

विवरण।

दारुहलदीकी कच्ची और गीली लकडियोको लेकर चौगुने जलमे पकावे, जब चौथा भाग शेष रहजाय तब उसको छान लेवे, फिर उस क्राथको चौगुने दूधमे औटावे जब औटते औटते दूध जल जाय और क्राथ गाढा होजाय तब उतार लेवे और पत्तोमे लपेटकर रखदेवे उसीको रसौत कहतेहैं ॥

अथ बाकुची।

अवल्गुजो बाकुची स्यात्सोमराजी सुपर्णिका ॥ शशिलेखा कृष्णफला सोमा पूतिफलीति च ॥ १९१ ॥ सोमवल्ली कालमेषी कुष्ठघ्नी च प्रकीर्तिता॥ बाकुची मधुरा तिक्ता कटुपाका रसायनी ॥ १९२ ॥ विष्टम्भहृद्धिमा रुच्या सरा श्लेष्मास्रपित्तनुत् ॥ रूक्षा हृद्या श्वासकुष्ठमेहज्वरकृमिप्रणुत् ॥१९३॥ तत्फलं पित्तलं कुष्ठकफानिलहरं कटु॥ केश्यं त्वच्यं वमिश्वासकासशोथामपाण्डुनुत् ॥ १९४ ॥

अवल्गुज, बाकुची, सोमराजी, सुपर्णिका, शशिलेखा, कृष्णफला, सोमा, पूतिफली, सोमवल्ली, कालमेषी, कुष्ठघ्नी (वेजानी, सुवल्ली, सोमवल्लिका, चन्द्रलेखा, कृष्णा, पूतिफला, वागुजी, वाकुजी, सोमराजिका, ऐन्दवी, शूलोत्था, कृमिघ्नी, सुवल्लिका, सिता, सितावरी, चन्द्री, सुप्रभा, कुष्ठहन्त्री, काम्बोजी, पूतिगन्धा, वल्गुजा, चन्द्रराजी, त्वग्दोषापहा, कान्तिदा, अवल्गुजा, चन्द्रप्रभा, पूतिगन्धिका, कण्डूघ्नी और असिततत्वचा) ये बावचीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–बावची, बाकुची, बायची । ब०–हाकुच, सोमराज । म०–बावची । गु०–बावची । क०–बाउचिगे तै०–तिप्पतीगे नेलवयलिये । ता०–वोगिविट्टलु । इं०–एसक्यूलट फाकुर्टिया Esculent Flacourtia लै०–सोरेलिया कोरिलीफोलिया P Sorlia Corylifolia ॥ बावची–मधुर, कडवी, पाकमे चरपरी, रसायन, विष्टम्भनाशक, शीतल, रुचिकारी, दस्तावर, रूखी, हृदयको हितकारी और कफ, रक्तपित्त, श्वास, कोढ, प्रमेह, ज्वर तथा कृमिको नष्ट करनेवाली है । बावचीका फल पित्तकारक, केश तथा त्वचाको हितकारी, चरपरी और कुष्ठ, कफ, वात, वमन, श्वास, खाँसी, शोथ, आम और पाण्डुरोग विनाशक है ॥ १९१–१९४ ॥

विवरण।

बावचीका क्षुप होताहै, पत्ते ग्वालके समान होतेहैं, फूल काला होताहै, फल गुच्छेमे लगतेहैं; बीज काले होते हैं, और उसमे दुर्गन्ध आतीहै । इसके बीजही व्यवहारमे विशेष आतेहैं ॥

अथ चक्रमर्दः [चकवड]।

चक्रमर्दः प्रपुन्नाटो दद्रुघ्नो मेषलोचनः ॥ पद्माटः स्यादेडगजश्चक्री पुन्नाट इत्यपि ॥ १९५ ॥ चक्रमर्दो लघुः स्वादू रूक्षः पित्तानिलापहः ॥ हृद्यो हिमः कफश्वासकुष्ठदद्रुकृमीन्हरेत् ॥ १९६ ॥ हन्त्युष्णं तत्फलं कुष्ठकण्डूदद्रुविषानिलान् ॥ गुल्मकासक्रिमिश्वासनाशनं कटुकं स्मृतम् ॥ १९७॥

चक्रमर्द, प्रपुन्नाट, दद्रुघ्न, मेषलोचन, पद्माट, एडगज, चक्री, पुन्नाट (तर्किण, तर्किल, प्रपुन्नड, मेषाक्षि, कुसुम प्रपुन्नाल, अडगज, गजाख्य, मेषाह्वय, एडहस्ती, व्यावर्त्तक, चक्रगज, पुन्नाड, विमर्दक, तर्वट, चक्राह्व, शुकनाशन, दृढबीज, प्रपुन्नाड, खर्ज्जूघ्न, चक्रमर्दक, उरणाख्य, उरणाख्यक, उरणाक्ष, उरणाक्षक और चक्रगन्धाड) ये चक्रमर्दके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–चकवड, पवाड, पमाड (र)। व०–चाकुन्दा, एडांचि । म०–टायकडा, तरोटा । गु०–कुवाडियो । क०–चगचे । तै०–तांटयमु । फा०–सजिसवोया इं०–ओवललीवड् कैशिया Ovalleaved cassia लै०–कैशिया टोरा Cassiatora ॥ चकवड–हलकी, मधुर, रूक्ष, हृदयको हितकारी, शीतल और पित्त, वात, कफ, श्वास, कोढ, दाद तथा कृमिको नष्ट करनेवाली है । चकवडका फल गरम तथा चरपरा है, और कोढ, खुजली, दाद, विष, वात, गुल्म, खाँसी, कृमि तथा श्वास इन सब रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १९६-१९७ ॥

विवरण ।

पमार–(चकवड) वर्षाऋतुमे अधिकतर उत्पन्न होता है, इसके क्षुप होतेहैं, विशेष करके यह जगलमें और पहाडकी तलहटीमें अधिक होते हैं, पत्ते गोल और एक दंडीमे पाँच पाँच पत्ते होते हैं, फूल पीले आते हैं. फलियें पतली पतली मूँगकी फलीसे तिगुनी लम्बी होती हैं; उनमें छोटे छोटे मोठकेसे दाने होतेहै इसके पत्तोका शाक भी अच्छा वनता है ॥

[अथ अतिविषा अतीस]।

विषा त्वतिविषा विश्वा शृङ्गी प्रतिविषाऽरुणा॥शुक्लकन्दा चोपविषा भंगुरा घुणवल्लभा ॥ १९८ ॥ विषा सोष्णा कटुस्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत् ॥ कफपित्तातिसारामविषकासवमिक्रिमीन् ॥ १९९ ॥

विषा, अतिविषा, विश्वा, शृंगी, प्रतिविषा, अरुणा, शुक्लकन्दा, उपविषा, भगुरा, घुणवल्लभा, (काश्मीरा, श्वेता, प्रविषा, शृंगीका, शृंगी, महौषध, श्वेतकन्दा, भृंगी, विरूपा, श्यामकन्दा,विषरूपा, वीरा, माद्री,अमृता, श्वेतवचा (मृद्वी) शिशुभैषज्य और अतिसारघ्नी ये अतीसके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–अतीस । वं०–आतइच । म०–अतिविष । गु०–अतलसनी कली । क०–अतिविषा । तै०–अतिवासा । लै०–एकोनाइटम हिटरोफाइल्लम Aconitum Hete-rophyllum अतीस–गरम, चरपरा, कडवा, पाचन, अग्निको दीपन करनेवाला, और कफ, पित्त, अतीसार, आम, विष, खाँसी, वमन और कृमिरोगनाशक है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

विवरण ।

अतीसका क्षुप करेलेकेसा पत्तोवाला होताहै उसके नीचे कन्द होताहै । अतीस–काला, सफेद, और लाल, इन भेदोसे तीन जातिका होता है, परन्तु गुण तीनोंका समान है । इसीकी जडको अतीस कहते हैं ॥

अथ शावरलोध्र–पटिआलोध इति लोके।

लोध्रस्तिरीटकश्चैव शावरो मालवस्तथा॥ द्वितीयः पट्टिकालोध्रः क्रमुकः स्थूलवल्कलः ॥ २०० ॥ जीर्णपत्रो बृहत्पत्रः पट्टी लाक्षाप्रसादनः॥ लोध्रो ग्राही लघुः शीतश्चक्षुष्यः कफपित्तनुत् ॥ कषायो रक्तपित्तासृग्ज्वरातीसारशोथहृत् ॥ २०१ ॥

लोध, तिरीटक, शावर, मालव, (लोध्रक, लोध्रवृक्ष, मार्जन, तिन्दुक, लक्तकर्मा, शुक्ल, शवरलोध्र, महालोध्र, मार्जन, वलिप्रिय, वानराघात, वलभद्र, रोध्र, भिल्लतरु, तिल्लक, काण्डकीलक, शम्बर, हस्तिलोध्रक, तिलक, काण्डनील, हेमपुष्पक, भिल्ली, शावरक और तिरीट) ये लोधके सस्कृत नाम हैं ॥

दूसरे प्रकारका जो पट्टिका लोध्र (पठानी लोध) होता है, उसके पट्टिकालोध्र, क्रमुक, स्थूलवल्कल,जीर्णपत्र, बृहत्पत्र, पट्टी, लाक्षाप्रसादन, (पट्टिकाख्य, पट्टिका, पट्टिलोध्र, पट्टिलोकध्र, वल्कलोध्र,बृहद्दल, जीर्णवुध्न, बृहद्वल्क, शीर्णपत्र, अक्षिभेषज, शावर, श्वेतलोध्र, गालव बहुलत्वच और वल्क) ये सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–लोध, पठानीलोध । व०–लोध्रकाष्ठ, पाटियालोध । म०–लोध । गु०–लोदर, पठाणी लोदर । क०–लोध । तै०–तेल्ल लोदुगचेट्टुग । अ०–सुगाम् । लै०–सिम्प्रोको सरेसिमोसा (वृक्ष) Symploco sıacemosa लोध–ग्राही, हलका, शीतल नेत्रोको हितकारी ॥ कसैला, और कफ, पित्त, रक्तपित्त, रुधिरविकार, ज्वर, अतीसार तथा शोथको हरनेवाला है ॥ २०० ॥ २०१ ॥

विवरण ।

लोधके वडेवडे ऊँचे वृक्ष हिमालय आदि पर्वतोंमे उत्पन्न होतेहै, पत्ते वडे और लम्बे होते हैं, फूल सफेद, पीले और लाल रंगके मिश्रित होतेहै. इसकी छाल (लोध) औषधि और रगतके काममें बहुत आती है ॥

अथ लशुनः।

लशुनस्तु रसोनः स्यादुग्रगन्धो महौषधम्॥ अरिष्टो म्लेच्छकन्दश्च यवनेष्टो रसोनकः॥२०२॥ यदामृतं वैनतेयो जहार सुरसत्तमात॥ तदा ततोऽपतद्बिन्दुः स रसोनोऽभवद्भुवि॥ पञ्चभिश्च रसैर्युक्तो रसेनाम्लेन वर्जितः॥२०३॥ तस्माद्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः॥कटुकश्चापि मूलेषु तिक्तः पत्रेषु संस्थितः॥॥२०४॥ नाले कषाय उद्दिष्टो नालाग्रे लवण स्मृतः॥ बीजे तु मधुरः प्रोक्तो रसस्तद्गुणवेदिभिः॥२०५॥ रसोनो बृंहणो वृष्यः स्निग्धोष्णः पाचनः सरः॥ रसे पाके च कटुकस्तीक्ष्णो मधुरको मतः॥२०६॥ भग्नसन्धानकृत्कण्ठ्यो गुरुः पित्तास्रवृद्धिदः॥ बलवर्णकरो मेधाहितो नेत्र्यो रसायनः॥२०७॥ हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूलविबन्धगुल्मारुचिकासशोफान्॥ दुर्नामकुष्ठानलसादजन्तुसमीरणश्वासकफांश्च हन्ति॥२०८॥ मद्यं मांसं तथाम्लश्च हितं लशुनसेविनाम्॥ व्यायाममातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम्॥रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतान्निरन्तरम्॥२०९॥

लशुन, रसोन, उग्रगंध, महौषध, अरिष्ट, म्लेच्छकन्द, यवनेष्ट, रसोनक, (शुक्लकन्द, महाकन्द, वातारि, दीर्घपत्रक, रसुन, गृंजन, रसोनक, कटुकन्द, राहूच्छिष्ट, राहूत्सृष्ट और भूतघ्न) ये लहसुनके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–लहसन। बं०–लसुन। म०–लसूण। गु०–लसण। क०–बेळ्ळुळ्ळि। तैं०–तेल्लउल्ली। फा०–सीर अ०–सुमइस्कुर्दीयुन। इं०–गारलिकरूट Zarlicroot लै०–एलियम् सेटाइवम् Allium Sativam॥ उत्पत्ति–किसी समय देवराज इन्द्रसे गरुडजीने अमृत हरण करलियाथा. उस समय झटकेसे अमृतका एक बिन्दु पृथ्वीपर गिरपडा, उसी बिन्दुसे यह रसोन उत्पन्न हुआ, पृथ्वीपर छे रस हैं उनमेसे एक अम्लरसको छोडकर अमृतमे पांचोरस विद्यमान हैं, इसलिये गुणके जाननेवालोंने उस अमृतसे प्रगट हुए पदार्थका नाम रसोन रक्खा है। लहसुनकी जडमें चरपरा रस, पत्तोमे कडवारस, नालमे कसैलारस, नालके अग्रभागमें खारी रस और बीजोमे मधुररस रहताहै। लहसुन पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध, गरम, पाचन, दस्तावर, पाकमें तथा रसमें तीक्ष्ण और मधुर है। और भग्नस्थानको जोडनेवाला, कठको उत्तम करनेवाला, भारा, पित्त तथा रुधिरको बढानेवाला और बल, वर्णके लिये उत्तम है। मेधाको हितकारी, नेत्रोको सुखदायक, रसायन और हृदयरोग, अजीर्ण, ज्वर, कोखका दर्द, मलबन्ध, गुल्म, अरुचि, खाँसी, सूजन, बवासीर, कुष्ठ, मंदाग्नि, कृमि, वात, श्वास तथा कफको नष्ट करनेवाला है। लहसुन खानेवालोको मद्य, मांस और खटाई ये परम हितकारी हैं। व्यायाम (कसरत), धूप, क्रोध, बहुत जल, दूध और गुड। इनपदार्थोंको निरतर छोडदे ये अहितकारी है॥ २०२—२०९॥

विवरण।

लहसुन सर्वत्र अधिकतासे होताहै. इसके पत्ते प्याजके समान लम्बे होते हैं. और नीचे गुलाबी रगका कन्द होता है उसीको लहसुन कहते हैं। लहसुनमे महादुर्गन्ध आती है परन्तु इतनेपर भी कई जातिके लोग उसको बहुत खातेहै।

अथ पलाण्डुः [पियाज]।

पलाण्डुर्यवनेष्टश्च दुर्गन्धो मुखदूषकः॥पलाण्डुस्तु गुणैर्ज्ञेयो रसोनसदृशो गुणैः॥॥२१०॥ स्वादुः पाके रसेऽनुष्णः कफकृन्नातिपित्तलः॥हरते केवलं वातं बलवीर्यकरो गुरुः॥२११॥

पलाण्डु, यवनेष्ट, दुर्गन्ध, मुखदूषक, (सुकन्दक,) निकेतन, नीचभोज्य, लोहितकन्द, तीक्ष्णकन्द, उष्ण, मुखदूषण, शूद्रप्रिय, दीपन, कृमिघ्न, मुखगन्धक, बहुपत्र, विश्वगन्ध,रोचन और सुकन्द) ये पियाजके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–पियाज, प्याज। बं०–पेयाज। म०–कादा। गु०–डुगरी। क०– (नि) ईरुळ्ळी। तै०–नीरउली। फा०–प्याज। ता०–ईरवगाइ। अ०–बसल। इ०–बल्बअनियन Bulb onion लै०–एलियम सेहा Allium Seha॥प्याज–लहसुनके सदृश ही गुणवाला है.पाक तथा रसमें मधुर, गरम नहीं; कफकारक, अत्यत पित्तकारक नहीं, बल तथा वीर्यकी वृद्धि करनेवाला, भारी और केवल वायुको नष्ट करनेवाला है॥ २१०॥ २११॥

विवरण ।

प्याजका क्षुप दो बालिस्त ऊँचा होताहै, बागवान् लोग खेतोमे बोतेहैं, पत्ते नालकी तुल्य भीतरसे खुक्खल और कोमल होतेहैं. नीचे धरतीमे उसका कन्द होताहै, वह कन्द गुलाबी रंगका होताहै, उस कन्दपर छिलके बहुत होतेहैं, दुर्गन्ध अधिक आती है, परन्तु खानेवाले उसकी प्रशंसा करते हैं ॥

अथ भल्लातकः [भिलावा] ।

भल्लातकं त्रिषु प्रोक्तमरुष्कोऽरुष्करोऽग्निकः॥ तथैवाग्निमुखी भल्ली वीरवृक्षश्च शोफकृत् ॥ ॥२१२॥ भल्लातकफलं पक्वं स्वादुपाकरसं लघु ॥ कषायं पाचनं स्निग्धं तीक्ष्णोष्णं छेदि भेदनम् ॥ २१३ ॥ मेध्यं वह्निकरं हन्ति कफवातव्रणोदरम् ॥ कुष्ठार्शोग्रहणीगुल्मशोफानाहज्वरक्रिमीन् ॥ २१४ ॥ तन्मज्जा मधुरो वृष्यो बृंहणो वातपित्तहा॥ वृन्तमारुष्करं स्वादु पित्तघ्नं केश्यमग्निकृत् ॥२१५॥ भल्लातकः कषायोष्णः शुक्लो मधुरो लघुः ॥ वातश्लेष्मोदरानाहकुष्ठार्शोग्रहणीगदान् ॥ हन्ति गुल्मज्वरश्वित्रवह्निमान्द्यकृमिव्रणान् ॥ २१६ ॥

भल्लातक, अरुष्क,अरुष्कर, अग्निक, अग्निमुख, भल्ल, वीरवृक्ष, शोफकृत्, (व्रणकृत्, भूतनाशन, भल्लातकी, अग्निमुखी, अह्वला, अन्तःसत्वा, भल्लिका, भल्ली, निर्दहन, तपन, अनल, कृमिघ्न, शैलबीज, वातारि, स्फोटबीजक, पृथग्बीज, धनुर्वृक्ष, बीजपादप, वह्नि, महातीक्ष्णा, अग्निक, स्फोटहेतु, शोफनुत्, स्नेहबीज और रक्तहर) ये भिलावेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–भिलावा । ब०–भेला । म०–बिब्बा, भिलावा। गु०–भिलामा । क०–केरबीज । तै०–नल्लजीडी । ता०–तेताकोट्टै । फा०–बिलादुर । अ०–हबुल कल्व । इं०–मार्किंगनट Markingnut लै०–सेमीकार्पस् एनेकार्डियम Semicarpus Anacardium भिलावेका पक्का फल–पाकमे और रसमे मधुर, हलका, कसैला, पाचक, स्निग्ध तीक्ष्ण, गरम, मलको छेदन करनेवाला, भेदन (फोडनेवाला), मेधाको हितकारी, अग्निकारक, और कफ,वात व्रण, उदररोग, कोढ, बवासीर, सग्रहणी, गुल्म, सूजन, अफरा, ज्वर और कृमि इन सबको नष्ट करनेवाला है। भिलावेकी मींग–मधुर, वीर्यवर्द्धक पुष्टिकारक और वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाली है । भिलावेकी टेंडी–मधुर, पित्तनाशक, केशोंको हितकारी और अग्निको दीपन करनेवाली है । भिलावा–कसैला. गरम, वीर्यवर्द्धक, मधुर, हलका और वात, कफ. उदररोग. अफरा. कोढ. बवासीर, सग्रहणी, गुल्म, ज्वर, श्वेतकुष्ठ, अग्निकी मदता, कृमि और व्रणको हरनेवाला है ॥ २१२–२१६ ॥

विवरण ।

भिलावेका वृक्ष बहुत बडा होता है । पत्ते उसके बडके समान होतेहैं, फूल लाल रंगके बडे बडे होते हैं. फल किञ्चित् लम्बाई लिये गोल गोल करौंदेके सदृश होते हैं, सूखकर काले पडजाते हैं, परन्तु उनका रस नहीं सूखता–रस उनमे बनाही रहताहै ॥

अथ भंगा [भांग] ।

भंगा गञ्जा मातुलानी मादिनी विजया जया॥ भंगा कफहरी तिक्ता ग्राहिणी पाचनी लघुः ॥ तीक्ष्णोष्णा पित्तला मोहमन्दवाग्वह्निवर्द्धिनी ॥ २१७ ॥

भंगा, गजा, मातुलानी, मादिनी, विजया, जया, (शक्राशन, त्रैलोक्यविजया, मत्कुणारि, इन्द्राशन, वीर, पत्रा, चपला, अजया, आनन्दा, हर्षिणी, मोहिनी, भृंगी, धूर्तवधू, मातुलानी, मातुली, नीली, मनोहरा,हरा, उन्मत्तिनी, योगिनी, धूर्त्तपत्नी, कामाग्नि, तन्द्रारुचिवर्द्धिनी, वीरपत्री, शिवा, माया, शिवप्रिया, मत्ता, और ज्ञानवल्लिका) ये भगके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–भांग. भग, गाजा । ब०–सिद्धि, भाग, गांजा । म०–गु०–भाग । ब्रह्मी०–बिन । तै०–जनपरितुलुगाजाई । फा०–कनक, जुजब आजम । अ०–किन्नबकेन बुर्वाररु रहुलवज । इं०–इंडियन हेम्प Indian Hemp लै०–केनाबिस इंडिका Cannabis Indica॥ भाँग–कफनाशक, कडवी, ग्राही, पाचक, हलकी, तीक्ष्ण गरम, पित्तकारक, और मोह, मद, वचन तथा अग्निवर्द्धक है ॥ २१७ ॥

विवरण ।

भांगके बडे बडे क्षुप होते है परन्तु आठ फुटसे अधिक ऊँचे नही होते, फूल हरे हरे गुच्छेदार होतेहै पत्ते नीवके पत्तोंके समान लम्बे और कँगूरेदार होतेहैं, परतु लम्बाई चौडाईमें नीवके पत्तोसे छोटे होते हैं; प्रत्येक दडीपर

तीन पांच अथवा सात पत्ते होते हैं। भांग दो प्रकारकी होती है, एक पुरुषके नामसे दूसरी स्त्रीके नामसे पुरुष जातिके क्षुपसे भांगके पत्ते लिये जाते हैं जिनको लोग घोटकर पीते हैं, और स्त्री जातिके क्षुपसे गांजेकी उत्पत्ति होती है जिसके पत्तोसे चरस बनता है, रातमे जब ओस पडनेसे गाजेके पत्ते तर होजाते हैं, तब प्रातःकाल उसमे मनुष्योंको फिराते हैं, जब ओस और पत्तोका मैल मनुष्योके शरीरोंको लगजाता है तब वह मनुष्य अपने शरीरको मलमलकर मैल उतारलेते हैं, जब वह मैल एकत्र होजाताहै तब उसको चरस कहतेहैं, वह काबुल और बलकबुखारेसे बहुत आता है, दोनो जातिके क्षुप एक स्थानपर होनेसे जटा नही बाधी जासक्ती, हिन्दू लोगोंको भांग अत्यन्त प्यारी है; पूर्व और दक्षिणके देशोमें भगका अधिक प्रचार है, वैद्यकशास्त्रमे भग और भगके बीजोके सिवाय इसके और किसी अगका व्यवहार नही होता। और गाजा तो किसी किसी प्रयोगमे लियाजाता है ॥

अथ खाखसः [पोस्ता]।

तिलभेदः खसतिलः कासश्वासहरः स्मृतः॥ स्याद्वा खसफलोद्भूतं वल्कलं शीतलं लघु ॥ २१८ ॥ ग्राहि तिक्तं कषायश्च वातकृत्तत्कफास्रहृत् ॥ धातूनां शोषकं रूक्षं मदकृद्वाग्विवर्धनम् ॥ मुहुर्मोहकरं रुच्यं सेवनात्पुंस्त्वनाशनम् ॥ २१९ ॥

तिलभेद, खसतिल और खाखस ये पोस्तके डोडेके संस्कृत नाम हैं। हिन्दी—पोस्तके डोडे, खसखस। म०—पोस्त। ब०—टेरीवृक्ष, पोस्तदानार गाछ। गु०—अफीणना डोडवा। फा०—कोकनार। अ०—अनुनास। इ०—पोपी सीड Popee Seed ल०-पापावरीस्कापस्युले Papabarisa Capsule खसखसका छुकला खासी तथा श्वासको हरनेवाला है शीतल, हलका, ग्राही, कडवा कसैला, वातकारक, कफ तथा रक्तनाशक, धातुओको सुखानेवाला, रूक्ष, मदकारक, वचनवर्द्धक, वारंवार मोहजनक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला और सेवन करनेसे पुरुषार्थहीन होजाता है ॥ २१८ ॥ २१९ ॥

विवरण।

पोस्तके खेत पूर्व दक्षिण और रुहेलखण्डमें अधिक होतेहैं, इसके क्षुप चार फुटसे अधिक ऊँचे नही होते उनपर लाल और सफेद रगके बहुत सुन्दर गुलालेके समान फूल आते हैं, इसपै डोरे लगते है, उन डोरोको छुरीकी नोकसे गोद देतेहै, उसमेसे जो दूध निकलताहै उसको पकाकर अफीम बनाते है,उन डोडोके भीतरसे जो दाने निकलते है उनको खसखस कहतेहैं ॥

अथ अहिफेनकम् [अफीम]।

उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकम् ॥ आफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम् ॥ तथा खसफलोद्भवतवल्कलप्रायमित्यपि ॥ २२० ॥

खसफलक्षीर, आफूक, अहिफेनक, (अफेनु खसखसरस, निफेन, नागफेन, पोस्तरस और भुजगफेन) ये अफीमके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—अफीम। बं०—आफि, अहिफेन। म०—अफू। गु०—अफीण। क०—अफेन। तै०—नाल्लामन्दु। फा०—अफयून, तिर्याक। अ०—लवनुल खसखास। इ—ओपियम Opium लै०—ओप्यम Opium ॥अफीम—शोषक, ग्राही, कफनाशक, वायु तथा पित्तकारक और जो पोस्तके छालके गुण हैं वेही गुण अफीमके है ॥ २२० ॥

विवरण।

अफीमका वृत्तान्त पोस्तमें देखो, सम्पूर्ण विदित हो जायगा ॥

अथ खाखसतिलाः।

उच्यन्ते खसबीजानि ते खाखसतिला अपि ॥ खसबीजानि बल्यानि वृष्याणि सुगुरूणि च ॥ २२१ ॥ जयवन्ति कफं तानि शमयन्ति समीरणम् ॥

खसबीज, खाखसतिल, (सूक्ष्मतडुल, सूक्ष्मबीज, सुबीज, तिलभेद और खसतिल) ये खसखसके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—खसखस, पोस्तके दाने। ब०—पोस्तदाना। म०—खसखस। गु०—पोस्तबीज। फा०—तुख्मेकोकनार। अ०—हबुलकोकनार। इ०—पोपीसीड्स popee Seeds लै०—पापावर सोम्निफरम Papabari Sonifarum ॥ खसखसके दाने बलदायक, वीर्यवर्द्धक, भारी, कफको उत्पन्न करनेवाले और वातको शात करनेवाले हैं ॥ २२१ ॥

अथ सैन्धवम्।

सैन्धवोऽस्त्री शीतशिवं माणिमन्थश्च सिन्धुजम् ॥ २२२ ॥ सैन्धवं लवणं स्वादु

दीपनं पाचनं लघु ॥ स्निग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत् ॥ २२३ ॥

सैंधव, शीतशिव, माणिमन्थ, सिन्धुज, (सिन्धूद्भव, नादेय, लवणोत्तम, मितशिव, सितसिव, शितशिव, सिन्धूपल, वशिर, सिन्धुदेशज, माणिबन्ध, सिन्धुमन्थज, सिन्धुलवण, सिधूभव, सिंधुसभव, शिवसिद्ध, शिवात्मज और पथ्य) ये सैंधनोनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सैंधानोन । व०-सैंधवलवण । म०-शेंदलोण । गु०-सिंधालुण । क०-सैंधव- । तै०-सिंधुउप्पु । फा०-नमकसंग । अ०-मिल्हेहिन्दी । इं०-क्लोराइड आफ सोडियम् Chloride of Sodium लै०-सोडिया क्लोरीडयुम Sodia Chloridum ॥सैंधानोन-स्वादिष्ट, अग्निको प्रदीप्त करनेवाला, पाचन, हलका, स्निग्ध, रुचिकारक, शीतल, वृष्य, सूक्ष्म, नेत्रोंको हितकारी और तीनो दोषोंको हरनेवाला है ॥ २२२ ॥ २२३ ॥

विवरण ।

सैंधेनोनकी सिन्धुकी ओर अनेक खानें हैं उन खानोंमें पत्थरकी तुल्य निकलताहै, यह सम्पूर्ण नमकोंमें शुद्ध और उत्तम होताहै, लाल और सुफेद इन भेदोंसे सैंधानोन दो प्रकारका होताहै परन्तु सफेदकी बहुत प्रशंसा है ॥

अथ शाकम्भरीयम् ।

शाकम्भरीयं कथितं गुडाख्यं रौमकं तथा ॥ गुडाख्यं लघु वातघ्नमत्युष्णं भेदि पित्तलम् ॥ तीक्ष्णोष्णं चापि सूक्ष्मश्चाभिष्यंदि कटुपाकि च ॥ २२४ ॥

शाकम्भरीय, रोमक और गुडके जितने नाम है वे सब (वसुक, रौमलवण, रौमक, गडलवण, शुभ्र, पृथ्वीज, गाडदेशज, गडोत्थ, महारम्भ, साम्भर और ममरोद्भव) ये सांभरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी साभरनोंन । व०सामरलुण । म०-सांवरलोण साम्भमीठ । गु०-सामरलून । क०-गादलवण, सम्भर देशज । फा०-मिल्हेअवकीर । साभर-हलकी, वातविना, शक, अत्यन्त गरम, भेदक, पित्तकारक, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अभिष्यन्दी और पाकमें चरपरी है ॥ २२४ ॥

विवरण ।

साम्भरनोन मरुदेशके खारी सरोवरमें उत्पन्न होताहै ॥

अथ सामुद्रं लवणम् [पाङ्गा] ।

सामुद्रं यत्तु लवणमक्षीवं वशिरश्च तत् ॥ सामुद्रजं सागरजं लवणादधिसम्भवम् ॥ ॥ २२५ ॥ सामुद्रं मधुरं पाके सतिक्तं मधुरं गुरु ॥ नात्युष्णं दीपनं भेदि सक्षारमविदाहि च ॥ श्लेष्मलं वातनुत्तिक्तमरूक्षं नातिशीतलम् ॥ २२६ ॥

समुद्र, अक्षीव, वशिर, समुद्रज, सागरज, लवणोदधिसभव, (सामुद्रिक, त्रिकूट, लवणाब्धिज, आसर, कटक, शिव और अक्षीर) ये समुद्रनोनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-समुद्रनोन, पांगा । व०-करकचनुन । म०-मीठ । गु०-दरियाईलूण । कं०-सागरलवण । तै०-उप्पु । फा०-नमक । अ०-मिल्हदरिंगी । इं०-साल्ट । Salt लै०-सोडिया मुरास Sodia Muras॥समुद्रनोन-पाकमें मधुर चरपरा और मधुर, भारी, वहुत गरम नहीं, अग्निप्रदीपक, मलभेदक, खारी रस युक्त, दाहहीन, कफकारक, वातनाशक, कडवा, निरूक्ष और अत्यन्त शीतल भी नहीं है ॥ २२५ ॥ २२६ ॥

विवरण ।

समुद्रनोन-समुद्रके जलको जमा कर बनाया जाताहै ॥

अथ विडलवणम् [विरिआ संचर]।

विडं पाक्यश्च कृतकं तथा द्राविडमासुरम् ॥ विडं सक्षारमूर्ध्वाधः कफवातानुलोमनम् ॥ २२७ ॥

ऊर्ध्वं कफमधो वातं तच्चारयेदित्यर्थः ॥

दीपनं लघु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं रुच्यं व्यवायि च ॥ विबन्धानाहविष्टम्भहृद्रुग्गौरवशूलनुत् ॥ २२८ ॥

विड, पाक्य, कृतक, द्राविड, आसुर, (विडलवण, धूर्त, विडूगन्ध, काललवण, द्राविडक, खण्ड, क्षार, सुपाक्य, खंडलवण, कृत्रिमक और विड) ये विरियासञ्चर नोंनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-विरियासञ्चरनोन, कचीलानोन । व०-विट्नून । म०-वीडलोण । गु०-वीडलूण ॥ विरियासञ्चरनोन-खारी रसयुक्त, कफको ऊपर और वातको नीचे खेंचनेवाला, दीपन, हलका, तीक्ष्ण, गरम, रूक्ष, रुचिकारी, व्यवायि और विबन्ध, आनाह, विष्टम्भ, हृदयके रोग भारीपन तथा शूलको नष्ट करै है ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

विवरण।

विडनोन–प्रसारिणीके कल्कका क्षार बनाते है उसका नाम विडलोन है ॥

अथ सौवर्चलं लवणम्।

सौवर्चलं स्याद्रुचकं मन्थपाकश्च तन्मतम्॥ रुचकं रोचनं भेदि दीपनं पाचनं परम् ॥२२९॥सुस्नेहं वातनुन्नातिपित्तलं विशदं लघु॥उद्गारशुद्धिदं सूक्ष्मं विबन्धानाहशूलजित् ॥ २३० ॥

सौवर्चल, रुचक, मन्थपाक (अक्ष, रुच्य, दुर्गन्ध, शूलनाशन, कृष्णलवण, तिलक, हृद्यगन्ध, कोद्रविक, पाक्य और मेचक) ये कालेनोनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कालानोन, सोचरनोंन। बं०–सचरलवण। गु०–सचललूण। क०–सौवर्चल। तै०–नल्लुपु। फॉ०–नमकसियाह। अं०–मलाअस्वद। इं०–ब्लाक साल्ट Blaek salt लै०–अनाक्कासोडिकलोराइडुम् unaqua Sodicloredun ॥ कालानोन–रुचिकारक, मलभेदक, दीपन, अत्यत पाचन, स्निग्ध, वातनाशक, अत्यत पित्तकारी नहीं, विशद, हलका, डकारको शुद्ध करनेवाला, सूक्ष्म और विबन्ध, आनाह, पेटफूलना तथा शूलको जीतनेवाला है ॥ २२९ ॥ २३० ॥

विवरण।

कालानोन–सज्जी और मीठे नोन अर्थात् मरसोंभरसे बनाया जाता है ॥

अथ खानिजं लवणम्।

औद्भिदं पांशुलवणं यज्जातं भूमितःस्वयम्॥क्षारं गुरु कटु स्निग्धं शीतलं वातनाशनम् ॥ २३१ ॥

यह निमक भूमिसे स्वय उत्पन्न होता है। इसलिये इसे औद्भिद कहते हैं औद्भिद और पांशुलवण ये इसके संस्कृत नाम हैं ॥ हिन्दी०–खारीनोन, रेहगवांनोन। गु०–खारानुं लूण ॥

यह नोन–खारी, भारी, चरपरा, स्निग्ध, शीतल और वातनाशक है। (इसकी पोटलीको गरम करके वातपीडावालेके सेंक करे तो वातकी पीडाके सब रोग दूर होते हैं) इसीका कचलोन बनताहै ॥ २३१ ॥

विवरण।

औद्भिदनोन–रेतीली, खारी, जंगलदेशकी भूमिमे उत्पन्न होता है और उसको रेह भी कहतेहैं ॥

अथ चणकाम्लकम्।

चणकाम्लकमत्युष्णं दीपनं दन्तहर्षणम् ॥ लवणानुरसं रुच्यं शूलाजीर्णविबन्धनुत् ॥ २३२ ॥

स०–चणकाम्लक। हिन्दी०–चनेका खार, चनकलोनी। म०–हरभऱ्याची आम। गु०–चणानो खार ॥

चनेका खार–बहुत गरम, अग्निको दीपन करनेवाला और दॉतोंको हर्ष करै है। खारीरसवाला, रुचिकारक और शूल, अजीर्ण तथा मलबंधको दूर करै है ॥ २३२॥

विवरण।

चनाका खार–एक सफेद चादर लेकर प्रातःकाल चनेके छोटे छोटे क्षुपोंके ऊपर जो ओसके कण मोतीके सदृश झलकते हैं, उस ओससे उस चादरको भिगोकर सुखा ले इसीप्रकार इक्कीसवार भिगोवे और सुखावे, पश्चात् उस चादरमें जो अम्लपदार्थ लगजाता है उसको जलमे धो लेवे, उसके ऊपरका पानी नितार देव नीचे जो जम जाय उसीका नाम चनाखार है ॥

अथ यवक्षारः स्वर्जिका च।

पाक्यक्षारो यवक्षारो वायशूको यवाग्रजः॥ स्वर्जिकापि स्मृतः क्षारः कापोतः सुखवर्चकः ॥ २३३ ॥ कथितः स्वर्जिकाभेदो विशेषज्ञैः सुवर्चिकः ॥ यवक्षारो लघुः स्निग्धः सुसूक्ष्मो वह्निदीपनः ॥ २३४ ॥ निहन्ति शूलवातामश्लेष्मश्वासगलामयान् ॥ पाण्ड्वर्शोग्रहणीगुल्मानाहप्लीहहृदामयान् ॥ २३५ ॥ स्वर्जिकाल्पगुणा तस्माद्विशेषाद्गुल्मशूलहृत् ॥ सुवर्चिका स्वर्जिकावद्बोद्धव्या गुणतो जनैः ॥२३६॥

पाक्यक्षार, यवक्षार, यावशूक, यवाग्रज (यवलाम, यवशूक, सारक, रेचक, यवनालक, तिर्य्य. तीक्ष्णरस, यवनालज, यवज, यवशूकज, यवाह्व और यवापत्य) ये जवाखारके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०–जवाखार। व०–क०–यवक्षार। म०–गु०–जवाखार। तै०–यवखार। अ०–नुतरुन्। इं०–कार्बोनेट आफ पॉटाश Carbonate of Potash ०–लैपोटासियुम कार्बोनस Potassium Carbonass क्षारकापोत, सुखवर्चक, स्वर्जिका (स्वर्जि, यूलघ्नी, सौवर्चल, रुचक, सुजिकाक्षार, सर्जिका, अर्वर्चिक,

सुम्री. योगवाही, स्वर्जिका, सुरवर्चक, सुम्निका, सर्जि, सर्जिक्षार, स्वर्जिक, स्वर्जी, सुखोर्जिक, सुवर्जिक, स्वर्जिक्षार, सुवर्चि, सुवची और स्वर्जिकाक्षार) ये सज्जीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०–सज्जी । बं०–साजिखार, साजिमाटि । म०–सज्जीखार । गु०–साजीखार । क०–साजीखार । फा०–सजार कलिया । अ०–कलीव शग्नुल अस्फर इं०–कार्बोनेट आफ सोडा Carbonate of Soda लै०–केरोक्सी लन् बोएटीडुम Caraxylonsboetidum ॥ जवाखार–हलका. स्निग्ध, बहुत सूक्ष्म, अग्निदीपक और शूल, वात. आम कफ श्वास तथा गलेके, रोगोंको नष्ट करनेवाला है । पाण्डुरोग, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, मल बंध, प्लीहा और हृदय रोगको नष्ट करै है ॥

सज्जी–जवाखारसे हीन गुणवाली है, विशेष करके गुल्म तथा शूलको नष्ट करै है । सुवर्चिकामें भी सज्जीके सदृशही गुण जानना ॥ २३३–२३६ ॥

विवरण ।

कच्चे जोओंके पञ्चागको अग्निमें जलाकर राखकर लेवे, फिर उस राखकी कसूमकी भाँति रैनी टपका लेवे फिर उसको अग्निपर कढाईमे चढाकर उसका पानी जला देवे जब वह जम जाय तो उसको खुर्चकर एक काँचके पात्रमें रख देवे, उसीका नाम जवाखार है ॥

अथ टंकणक्षारः [सुहागाखार] ।

सौभाग्यं टंकणक्षारो धातुद्रावकमुच्यते ॥ टंकणं वह्निकृद्रूक्षं कफहृद्वातपित्तकृत् ॥ २३७ ॥

सौभाग्य, टंकणक्षार, धातुद्रावक, (लोहद्रावी, सुभग धातुवल्लभ, पाचनक, मालतीतीरज, लोहश्लेषण, रसशोधन, रसाधिक, रसघ्न वर्त्तुल, कनकक्षार मलिन, मालतीतीरसम्भव, द्रावक, लोहशुद्धिकारक, रगद, स्वर्णपाचक, टंक, धातुसन्धिकर, सौभाग्य और श्वेतटंकण) ये सुहागेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सुहागा । बं०–सोहागा । म०–स्वागीखार । टांकणखार । गु०–टंकणखार । क०–विलीयटकण । तै०–एलिगारम् । फा०–तीगार । अ०–बुरग । इं०–बोराक्स Borax बायबोरेट आफ सोडा Baiborate of Shda लै०–सोडास बायबारास Sod Baiboras सुहागा–अग्निको उत्पन्न करनेवाला, रूक्ष, कफनाशक और वायु तथा पित्तकारक है ॥ २३७ ॥

विवरण ।

सुहागा–उत्तर दिशाकी ओर भोटानदेशमें इसकी खानि है, भोटिये लोग वहाँसे खोद खोदकर बकरोंमें भर लातेहैं, उसकी चार चार छः छः रत्तीकी सफेद सफेद चौकिये होती हैं, उसको कच्चा सुहागा कहतेहैं । कुछ तो वैसाही देशदेशान्तरोंको चला जाता है, और कुछ रामनगरकी मटीमें पकाया जाता है उसके नौसादरके समान बडे बडे टुकडे होते हैं ॥

अथ क्षारद्वयं क्षारत्रयं च ।

स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारद्वयमुदाहृतम् ॥ टंकणेन युतं तत्तु क्षारत्रयमुदीरितम् ॥ मिलितं तूक्तगुणकृद्विशेषाद् गुल्महृत्परम् ॥ २३८

सज्जी और जवाखार इन दोनो मिले हुएको क्षारद्वय कहतेहैं, और इनमें सुहागा मिलानेसे यह क्षारत्रय होजाताहै, ये उपरोक्त सम्पूर्ण गुण करतेहैं और विशेष करके गुल्मको तो अवश्य ही विध्वंस करै हैं ॥ २३८ ॥

अथ क्षाराष्टकम् ।

पलाशवज्रिशिखरिचिञ्चार्कतिलनालजाः ॥ यवजः स्वर्जिका चेति क्षाराष्टकमुदाहृतम् ॥ क्षारा एतेऽग्निना तुल्या गुल्मशूलहरा भृशम् ॥ २३९ ॥

पलाश (ढाक), थूहर, ओंगा (चिरचिटा), इमली, आक, तिलनाल (तिलखडे), इनका खार और जवाखार तथा सज्जीखार इन आठ खारोंको क्षाराष्टक कहते हैं । यह क्षाराष्टक–अग्निके सदृश है गुल्म और शूलको निर्मूल करै है ॥ २३९ ॥

अथ चुक्रम् [चूक] ।

चुक्रं सहस्रवेधि स्याद्रसाम्लं शुक्रमित्यपि ॥ चुक्रमत्यम्लमुष्णश्च दीपनं पाचनं परम् ॥ २४० ॥ शूलगुल्मविबन्धामवातश्लेष्महरं सरम् ॥ वमितृष्णास्यवैरस्यहृत्पीडावह्निमान्द्यहृत् ॥ २४१ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे हरीतक्यादिवर्गः ॥

चुक्र, सहस्रवेधि, रसाम्ल और शुक्त ये चूकके संस्कृत नाम हैं ॥ हिन्दीमे—चूक । गु०—चुका ॥

चूक—अत्यन्त खट्टा, गरम, अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन, दस्तावर और शूल, वायगोला, मलबंध, आमवात, कफ, वमन, तृषा, मुखकी विरसता, हृदयकी पीडा तथा अग्निकी मदताको नष्ट करै है ॥ २४० ॥ २४१ ॥

विवरण।

चूक—दाडिमी, अनार, आमले, नींबू और इमलीका रस निकालकर पका लेते हैं, उसीको चूक कहतेहैं। दाडिमीका चूक उत्तम होता है। अथवा पालक्के शाककी भाँति एक खट्टा शाक चूका नामसे प्रसिद्ध है उसको चूक कहते है ॥

इति. श्रीभावप्रकाशे पचमप्रकरणे
हरीतक्यादिवर्गः समाप्तः ॥

अथ कर्पूरादिवर्गः।

तत्रादौ कर्पूरस्य नामानि गुणाश्च।

पुंसि क्लीबे च कर्पूरः सिताभ्रो हिमवालुकः ॥ घनसारश्चन्द्रसंज्ञो हिमनामापि स स्मृतः ॥ १ ॥ कर्पूरः शीतलो वृष्यश्चक्षुष्यो लेखनो लघुः ॥ सुरभिर्मधुरस्तिक्तः कफपित्तविषापहः ॥ २ ॥ दाहतृष्णास्यवैरस्यमेदोदौर्गन्ध्यनाशनः ॥कर्पूरो द्विविधः प्रोक्तः पक्कापक्वप्रभेदतः ॥ पक्कात्कर्पूरतः प्राहुरपक्कं गुणवत्तरम् ॥ ३ ॥

कर्पूर, सिताभ्र, हिमवालुक, घनसार और जितने चन्द्रमाके तथा हिम (बरफ) के जितने नाम है वे सब औषधीश, सोमसज्ञ, सिताभ्रक, शिला, हिमांशु, शीतांशु, चन्द्रभस्म, निशापति, तरुसार, भस्माह्वय, रेणुसार, हिमाह्वय, वेधक, रेणुसारक, शीतमरीचि, भस्मवेधक, विधु, शीतमयूख, जैवातृक, ग्लौ, कुमुदबान्धव, हिमवालुका, इन्दु, द्विजराज, नक्षत्रेश, निशीथिनीनाथ, यामिनीपति, शशधर, सोम, क्षपाकर, हिमाह्व, क्षपापति, सिताम, शीत, घनसारक, शीतकर, शशाक हिमकर, शीतप्रभ, शाम्भव, शुभ्रांशु, स्फटिकाभ्र, कारमिहिका, चन्द्रार्द्रक, चन्द्र, नाकतुसार, गौर, कुमुद, शीतलरज, सिताह्व, स्फटिक, शशि और हिमोपल) ये कपूरके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—कपूर । बं०—क०—कर्पूर । म०—कापूर। गु०—कपूर । तै०कर्पूरासु । फा०—कापूर । अ०—कापूर । इ०—केम्फर Camphor लै०—केम्फोरा Camphora॥

कपूर—शीतल, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, लेखन, हलका, सुगन्धित, मधुर, कडवा और कफ, पित्त, विष, दाह, तृषा, मुखकी विरसता, मेद तथा दुर्गन्धता, इनको नष्ट करै है पक्का और कच्चा, इस भाँति कपूर दो प्रकारका है पके कपूरसे कच्चा कपूर अधिक गुणकारी हैं॥ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ चीनाककर्पूरः[चिनिया]॥

चीनाकसंज्ञः कर्पूरः कफक्षयकरः स्मृतः ॥ कुष्ठकण्डूवमिहरस्तथा तिक्तरसश्च सः ॥४॥

चीनाकसज्ञ, (चीनक, चीनकपूर, कृत्रिम, धवल, कट्टु, मेघसार, तुषार, और द्वीपकर्पूरज) ये चिनिया कपूरके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—चीनिया कपूर । गु०—चीनाई कपूर, चीनिया कपूर—कडवा और कफ, कोढ, खुजली तथा वमन, इन सबको नष्ट करै है ॥ ४ ॥

विवरण।

कपूरके वृक्ष चीन और जापानमे बहुत होते है ये वृक्ष तजकी जातिहीमें गिने जाते है इसकी शाखाओंकी छाल ऊपरसे खरदरी और भीतरसे चिकनी होती है पत्ते लम्बेलम्बे कुछ गोलाई लिये होते हैं, डालियोंपर मौर आता है, फल मटरके समान गोल गोल गुच्छोंमें लगते हैं. फलके बीजोमें कपूरकीसी सुगन्धि आती है और उस वृक्षकी छाल गोदनेसे दूध निकलताहै, उस दूधका कपूर बनताहै, कपूरकी अनेक जाति है जैसे भीमसेनी, पिञ्ज, पोतास, हिम, सित, पासु, शकरावाससज्ञ, अब्दसार, जूतिका, तुषार, पत्रिका, रूप, शीतल, और पर्णकपूर इत्यादि। दूसरे चीनियाकपूर और कृत्रिम कपूर भी होते हैं ॥

अथ कस्तूरी।

मृगनाभिर्मृगमदः कथितस्तु सहस्रभित् ॥ कस्तूरिका च कस्तूरी वेधमुख्या च सा स्मृता॥५॥काश्मरी कपिलच्छाया कस्तूरी त्रिविधा स्मृता॥कामरूपोद्भवा श्रेष्ठा नैपाली मध्यमा भवेत्॥६॥कामरूपोद्भवा कृष्णा नैपाली नीलवर्णयुक् ॥ काश्मीरदेशसम्भ-

ता कस्तूरी ह्यधमा मता ॥ ७॥ कस्तूरिका कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुः ॥ कफवातविषच्छर्दिशीतदौर्गन्ध्यशोषहृत् ॥ ८॥

मृगनाभि, मृगमद, सहस्रभित्, कस्तूरिका, कस्तूरी, वेधमुख्या, (गन्धधूलि, मदाह्वा, मृगनाभिजा, अण्डजा, नाभी, मिश्रा, योजनगन्धिका, गन्धशेखर, मृग, मृगी, नाभि, मदलता, योजनगन्धा, मार्गगन्धबोधिका. कालांगी धूपसचारी, गन्धपिशाचिका, वातामोद, मदनी, गन्धकेलिका, मार्जारी, सुभगा, बहुगन्धदा, सहस्रवेधी, श्यामा, कामान्धा, मृगाण्डजा, कुरङ्गनाभि, ललिता, श्यामला और मोदिनी) ये कस्तूरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कस्तुरी । बं०–मृगनाभि । म०–गु०–क०–कस्तूरी । फा०–मुष्क । अ०–मिस्क । इ०–मुस्क । Musk लै०–मोस्कस् Moscus ॥ कस्तूरीके लक्षण–कामरूप देशकी कस्तुरी काली, नेपालकी नीली और काश्मीर देशकी कस्तूरी भूरे रंगकी होती है । इनमें कामरूप देशकी कस्तुरी उत्तम, नेपालकी मध्यम और काश्मीर देशकी अधम होती है ॥

कस्तुरी–तीक्ष्ण, कड़वी, खारी, गरम वीर्यवर्द्धक, भारी और कफ, वात, विष, वमन, शीत, दुर्गन्धता तथा शोषको हरनेवाली है ॥ ५–८ ॥

विवरण ।

कस्तूरी हिरनकी नाभिमें उत्पन्न होती है, उस हिरनको मारकर उसकी नाभिको काट लेते हैं, वह नाभा तोलमें तीन तथा चार तोलेका होताहै और उसको कस्तूरीका नाभा कहतेहैं, उसका आकार गोल होताहै उसके ऊपर छोटे छोटे बाल होतेहैं । रंग भूरा होताहै, एक ओरसे कटे हुएका चिह्न होताहै । देखनेमें आड़्के बराबर होता है, उस नाभिको चीरकर कस्तूरी निकाल लेते हैं । किसीमें मक्काके चूनके समान निकलती है, किसीमें सिलमिलीके दानोंकी समान निकलती है, किसीमें तिलके दानेके समान, किसीमें कुल्थीके बीजके समान, किसीमें कलौंजीके दानेके समान और किसी नाभिमेंसे इलायचीके दानेकी समान निकलती है । जिन हिरनोंकी नाभिसे कस्तुरी निकलती है वे हिरन काश्मीर नेपाल और कामरू देशमें होते हैं, उनको कस्तूरीमृग कहतेहैं ॥

अथ मुष्कबीजम् ।

लता कस्तूरिका तिक्ता स्वाद्वी वृष्या हिमा लघुः ॥ चक्षुष्या छेदिनी श्लेष्मतृष्णावस्त्यास्यरोगहृत् ॥ ९ ॥

मुष्क दानोंको संस्कृतमें लताकस्तूरी कहते हैं ॥ मुष्कदाना–कड़वा, मधुर, वीर्यवर्द्धक, शीतल, लघु, नेत्रोंको हितकारी, मलभेदक और कफ, तृषा, वस्तिगतरोग तथा मुखके रोगोंको नष्ट करे है ॥ ९ ॥

जवादिकस्तूरी ।

गन्धमार्जारवीर्य्यन्तु वीर्य्यकृत्कफवातहृत ॥ कण्डूकुष्ठहरं नेत्र्यं सुगन्धं स्वेदगन्धनुत् ॥ १० ॥

जवादि कस्तूरीको संस्कृतमें गधमार्जारवीर्य और गुजरातीमें जवादिया कस्तूरी कहतेहैं । यह कस्तूरी-वीर्यवर्द्धक और कफ, वात खुजली कोढ तथा पसीनेकी दुर्गन्धको दूर करे है ॥ १० ॥

अथ चन्दनः ।

श्रीखण्डं चन्दनं न स्त्री भद्रश्रीस्तैलपर्णिकः ॥ गन्धसारो मलयजस्तथा चन्द्रद्युतिश्च सः ॥ ११ ॥ स्वादे तिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौ सितम् ॥ ग्रन्थिकोटरसंयुक्तं चन्दनं श्रेष्ठमुच्यते ॥ १२ ॥ चन्दनं शीतलं रूक्षं तिक्तमाह्लादनं लघु ॥ श्रमशोषविषश्लेष्मतृष्णापित्तास्रदाहनुत् ॥ १३ ॥

श्रीखंड, चंदन, भद्रश्री. तैलपर्णिक, गन्धसार, मलयज, चन्द्रद्युति, (चन्द्रकान्त, गोशीर्ष, भोगिवल्लभ, भद्रसार, एकांग, पटीर, वर्णक, भद्राश्रय, सेव्य, रौहिण, ग्राम्य, सर्पेष्ट, पीतसार, महार्ह, श्वेतचदन, तिलपर्णी, मङ्गल्य, मलयोद्भव, गन्धराज, सुगन्ध, सर्पावास, शीतलगन्धाढ्य, पावन, शीतगन्ध, भद्रप्रिय, सितहिम, सर्वप्रिय और राजयोग्य) ये चन्दनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सफेद चदन, चन्दन । बं०–म०–तै०–चन्दन । गु०–सुखड । क०–श्रेट्टपचेगन्ध । फा०–सन्दल सुफेद । अ०–सदले अबीयद । इ०–सेडल वुड Saudal wood लै०–सेन्टलम् अलबम् Santalum–Album जो चन्दन स्वादमें कड़वा, घिसनेमें पीला, काटनेमें लाल, देखनेमें सुफेद और गांठदार तथा कोटर युक्त होय वह चन्दन श्रेष्ठ कहा है । चन्दन–शीतल, रूखा, कड़वा, आह्लादजनक, हलका और परिश्रम, शोष, विष, कफ, तृषा, पित्तरुधिरविकार तथा दाहको नष्ट करे है ॥ ११–१३ ॥

विवरण ।

सफेद चन्दनके वृक्ष वडे वडे ऊंचे और सघन होतेहैं पत्ते तुनकी समान कुछ नोक मुडी हुईसी विल्वुवेकेसे खमदार लम्बे चौंडे होते हैं, पुष्प होतेही नहीं, किसी कविका वचन है । "नाकारि पुष्पं खलु चन्दनेषु" वीज गोल मटरसे कुछ मोटा होताहै; कर्णाटकादि देशोंमें और मलयागिरि पर चन्दनके वृक्ष बहुत होतेहैं, मलयागिरिचन्दन सम्पूर्ण हिन्दुस्थानमें प्रसिद्ध है । इसकी लकडीमें अत्यन्त सुगन्धि आती है, इसकी सुगन्धिसे ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिक देवता भी प्रसन्न होते हैं और मृत्युलोकके मनुष्योंका तो कहनाही क्या है ? यह सब सुगन्धित पदार्थोंका सार है; इसीका साराश लेकर सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंका सार निकाला जाताहै ॥

अथ पीतचन्दनम् ।
(कलम्बक इति लोके)

कालीयकं तु कालीयं पीताभं हरिचन्दनम् ॥ हरिप्रियं कालसारं तथा कालानुसार्य्यकम् ॥ कालीयकं रक्तगुणं विशेषाद्व्यङ्गनाशनम् ॥ १४ ॥

कालीयक, कालीय, पीताभ, हरिचदन, हरिप्रिय, कालसा, कालानुसार्यक ये पीले चदनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—पीलाचंदन, कलबक । ब०—गु०—पीतचंदन । म०—पिवळा चदन । फा—सदल अबीयज । लै०—सट्लम् फ्लौनम् Saxtame Flonum पीले चदनमें लाल चदनकेही सदृश गुण है, विशेष करके व्यंग (झाई) को नष्ट करताहै ॥ १४ ॥

विवरण ।

पीले चन्दनके वृक्ष उत्तर खण्डमे गन्धमादनपर होते है, और सब आकृति मलयागिरिहीके समान होती हैं; वही सुगन्धि वही शीतलता, वही गुण परन्तु पीला हरदीकी लकडीके सदृश होताहै ।

अथ रक्तचन्दनम् ।

रक्तचन्दनमाख्यातं रक्तांगं क्षुद्रचन्दनम्॥ तिलपर्णं रक्तसारं तत्प्रवालफलं स्मृतम् ॥ ॥ १५ ॥ रक्तं शीतं गुरु स्वादुच्छर्दितृष्णास्रपित्तहृत् ॥ तिक्तं नेत्रहितं वृष्यं ज्वरव्रणविषापहम् ॥ १६ ॥

रक्तचन्दन, रक्ताग, क्षुद्रचदन, तिलपर्ण, रक्तसार प्रवालफल, (ताम्राभ्र, ताम्रसार, रञ्जन, रक्तवीज, कुचन्दन, तिलपर्णी, पत्राङ्ग, कुमोद, रक्ताक्त, ताम्रवृक्ष लोहितचदन, ताम्रसारक, अर्कचन्दन, तिलपर्णिका, पतङ्ग पत्राङ्ग, और भास्करप्रिय) ये लाल चन्दनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—लालचन्दन । ब०—क०—म०—रक्तचन्दन गु०—रताजली । तै०—रक्तचन्दनम् । ता०—सेनगाण्डनम् । फा०—संदलेसुर्ख । अ०—सदलेअह्मर । इं०—रेड सडलवुड् Red sandawood लै०—पटेरो कारपस् सेन्टेलम Patero carpus Santalum रक्तचन्दन—शीतल भारी, मधुर, कडवा, नेत्रोंको हितकारी, वीर्यवर्द्धक और वमन, तृषा, रुधिरके रोग, पित्त, ज्वर तथा विष इन सबको नष्ट करै है ॥ १५ ॥ १६ ॥

विवरण ।

लाल चन्दनके वृक्ष सिरसके समान बडेबडे ऊँचे होते हैं । पत्ते कुछ लम्बे और कोने गोल गोल होते है । दोदो तीनतीन इंच लम्बी फलियें लगती है, उन फलियोंमें लाल लाल चोटलीकेसे दाने निकलते है, इसकी लकडी लाल रंगकी होतीहै उसीको लालचन्दन कहते हैं ॥

अथ पतङ्गः ।

पतङ्गं रक्तसारश्च सुरङ्गं रञ्जनं तथा ॥ पट्टरञ्जकमाख्यातं पत्तूरश्च कुचन्दनम्॥ १७॥ पतङ्गं मधुरं शीतं पित्तश्लेष्मव्रणास्रनुत् ॥ हरिचन्दनवद्वेद्यं विशेषाद्दाहनाशनम् ॥ ॥ १८ ॥ चन्दनानि तु सर्वाणि सदृशानि रसादिभिः ॥ गन्धेन तु विशेषोऽस्ति पूर्वः श्रेष्ठतमो गुणैः ॥ १९ ॥

पतङ्ग, रक्तसार, सुरङ्ग, रजन, पट्टरजक, पत्तूर, कुचदन, (पत्राग, रक्तकाष्ठ, सुरंगद, पत्राण्य, पट्टरग, भार्यावृक्ष, रक्तक, लोहितरगकाष्ठ, रोगकाष्ठ और पट्टरजनक) ये पतगके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—म०—क०—पतङ्ग, पतङ्गवृक्ष । ब०—बकम् काष्ठ । तै०—आँक तुकट्टु । ता०—वट्टङ्गी । फा०—अ०—

चकम् । इं०- सेप्पन वुड् Sappan wood लै०-सेसाल्पिनिया सेप्पन Caisalpinia Sappan ॥ पतङ्ग-मधुर, शीतल और पित्त तथा कफनाशक है इसमें पीले चन्दनके सदृश गुण है और विशेष करके दाहनाशक है सब प्रकारके चन्दन रसादिकमें एकसारखे हैं, केवल गंधकीही विशेषताहै। सम्पूर्ण चन्दनोंके गुणोंमें सफेद चन्दन सर्वोत्तम है ॥ १७—१९ ॥

विवरण ।

पतंगके वडेवडे वृक्ष होतेहैं, परन्तु वह किसी देशान्तरमें होते हैं, इसकी लकडी लालरंगकी गठीली होती है। पत्ते वडे वडे और फूल भी लालरंगके होतेहैं, उसकी लकडीको पतंग कहते हैं, उसका रंग छीपी आदि रंगनेवालोंके काममें वहुत आता है ॥

अथागुरुः [अगर] ।

अगुरु प्रवरं लोहं राजार्हं योगजं तथा ॥ वंशिकं कृमिजं वापि कृमिजग्धमनार्यकम् ॥ २० ॥ अगुरूष्णं कटु त्वच्यं तिक्तं तीक्ष्णञ्च पित्तलम् ॥ लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीतवातकफप्रणुत् ॥ २१ ॥ कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लोहवद्वारि मज्जति ॥ अगुरुप्रभवः स्नेहः कृष्णागुरुसमः स्मृतः ॥ २२ ॥

अगुरु, प्रवर, लोह, राजार्ह, योगज वंशिक, कृमिज, कृमिजग्ध, अनार्यक, (अगरु, लघु, लोहाख्य (लोहके सम्पूर्ण नाम) जोगक, कृष्ण, वर्णप्रसादन, वंशक, पिच्छिल, भृगज, पातक, अनार्यज, असार, अग्निकाष्ठ, और काष्ठक) ये अगरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-क०-ता०-अगर, काली अगर । म०-कृष्णागर । व०-गु०-अगरु । तै०-हरुगुहचेट्ट । फा०-कशबेववा । अ०-उदगरकी । इं०-इगल वुड् Eagale wood लै०-एग्वीलेरियाएकोलेका Agularia Agallocha अगर-गरम, चरपरी, त्वचाको हितकारी, कडवी, तीक्ष्ण पित्तकारक, हलकी और कर्णरोग, शीत, वात, तथा कफनाशक है। जो अगर काले रंगकी होती है उसमें अधिक गुण है और वह अगर लोहेके सदृश पानीमें डूब जाती है अगरसे उत्पन्न हुए तेलमें भी काली अगरके सदृशही गुण हैं ॥ २०—२२ ॥

विवरण ।

मलय पर्वत, आसाम प्रदेश और प्रशान्त सागरके टापुओंमें अगरके वृक्ष उत्पन्न होतेहैं, इसकी शाखा कदापि सीधी नहीं होती, अगर अनेक प्रकारकी होतीहै; उन सबमें काली अगर उत्तम और गुणदायक वैद्यकमें कही है, और वही सब औषधियोंके प्रयोगमें लीजाती है। इसकी यही उत्तमता है कि भारी हो और जलमें डूबजाय और नरम ऐसी होती है; कि दाँतोंके दवानेसे दाँतोंको चुपटजाती है, इसको जलमें पीसनेसे सुगन्धि निकलती है काली अगरके समान और अगरमें ऐसी सुगन्धि नहीं आती ॥

अथ देवदारुः ।

देवदारु स्मृतं दारुभद्रं दार्विन्द्रदारु च ॥ मस्तदारु द्रुकिलिमं कृत्रिमं सुरभूरुहः ॥ ॥ २३ ॥ देवदारु लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटुपाकि च ॥ विबन्धाध्मानशोथामतन्द्राहिक्काज्वरास्रजित् ॥ प्रमेहपीनसश्लेष्मकासकण्डूसमीरनुत् ॥ २४ ॥

देवदारु, दारुभद्र, इन्द्रदारु, मस्तदारु, द्रुकिलिम, कृत्रिम, सुरभूरुह, (सुराह्नय, भद्रदारु, देवकाष्ठ, पीतद्रु, भद्रवत्, शतपादप, पारिभद्रक, पीतदारु, पूतिकाष्ठ, कल्पपादप, किलिम, दारुक, स्निग्धदारु, अमरदारु, शिवदारु, शाम्भव, भूतहारि, भवदारु, शक्रद्रुम, इन्द्रवृक्ष, सुराह्व, स्नेहवृक्ष सुरद्रुम, सुरदारु और सुरकाष्ठ) ये देवदारुके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-वं०-देवदार । म०-तेल्या देवदार । गु०-फा०-देवदार । तै०-देवदार चेका । अ०-शजर तुलजीन । लै०-सिड्रस देवदार Cadrus-deodara ॥ देवदार-हलका, स्निग्ध, कडवा, गरम, पाकमें चरपरा और विवन्ध, अफारा, सूजन, आम, तन्द्रा, हिचकी, ज्वर, रुधिरविकार, प्रमेह, पीनस, कफ, खाँसी खुजली तथा वातविनाशक है ॥ २३ ॥ २४ ॥

विवरण ।

देवदारुके वडे वडे ऊँचे झाडेदार वृक्ष होते हैं, पत्ते लम्वे कुछ गोलाई लिये हुए होते हैं, और फूल अरंडके फूलोंके समान गुच्छेके गुच्छे लगतेहैं, इसके तख्ते, कडी, चौखट, किवाड और लट्ठे वडे वडे स्थानोंमें लगाये जाते हैं और उस लकडीमें सुगंध भी ऐसी आती है कि, संपूर्ण स्थान सुगन्धिसे सदैव परिपूर्ण रहता है इसकी दो जाति हैं, एकमें तेलके समान चिकनाई होती हैं और दूसरीमें रूखापन होता है ॥

अथ धूपसरलः।

सरलः पीतवृक्षः स्यात्तथा सुरभिदारुकः॥ सरलो मधुरस्तिक्तो कटुपाकरसो लघुः॥ २५॥ स्निग्धोष्णः कर्णकण्ठाक्षिरोगरक्षोहरः स्मृतः॥ कफानिलस्वेददाहकासमूर्च्छाव्रणापहः॥ २६॥

सरल, पीतवृक्ष, सुरभिदारुक, (पूतिकाष्ठ, मनोज्ञ धूपवृक्षक, पीतद्रु, पीतदारु, भद्रदारु, धूपवृक्ष, पीत, स्निग्धदारुसंज्ञक, स्निग्ध, मरिचपत्रक और सुरभिदारु) ये धूपसरलके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—धूपसरल। बं०—सरलगाछ, सरलकाष्ठ। गु०—पीलो देवदारु। म०—सरल देवदार। क०—सरली देवदारु विशेष। इं०—लोंग लेवडपाइन Long Leved pine लै०—पाइनस लोंगिफोलिया Pinus Longifalia धूपसरल—मधुर, कडवी, पाकमे चरपरी, हलकी, स्निग्ध, गरम और कानके रोग, गलेके रोग, नेत्ररोग, भूतादिककी पीडा, कफ, वात, पसीना, दाह, खाँसी, मूर्च्छा और व्रणादिकको दूर करै है॥ २५॥ २६॥

विवरण।

धूपसरलके वृक्ष हिमालय आदि पर्वतोंमे उत्पन्न होतेहैं. इसके पत्ते ढाकके समान होतेहैं, फूल निर्गन्ध और सफेद रंगके होतेहैं, इसकी लकडीमेसे गोंदके सदृश रस निकलताहै॥

अथ तगरः।

कालानुसार्यं तगरं कुटिलं नहुषं नतम्॥ अपरं पिण्डतगरं दण्डहस्ती च बर्हिणम्॥ २७॥ तगरद्वयमुष्णं स्यात्स्वादु स्निग्धं लघु स्मृतम्॥ विषापस्मारशूलाक्षिरोगदोषत्रयापहम्॥ २८॥

कालानुसार्य, तगर, कुटिल, नहुष, नत, (जिह्म, दीपन, कालानुसारि, वक्र, कुञ्चित, चक्र, शठ, महोरग, दीपन, पादिका, विनम्र, नहुषाख्य और दीन) ये तगरके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—गु०—क०—तगर। बं०—तगरपादुका। म०—गोडेतगर। तै०—गन्धितगर पुचेट्टु। नेपाली—चम्मा। अं०—सारून। लै०—वेलेरी आना हार्डवीक Veleriana Hardwick॥ दोनों प्रकारकी तगर—गरम, मधुर, स्निग्ध, हलकी और विष, मृगी, शूल, नेत्रके रोग तथा वातादि तीनो दोषोंको हरनेवाली है॥ २७॥ २८॥

विवरण।

तगर—सुगन्ध जातिका वृक्ष होताहै, पिण्डीतगर इसकी दूसरी जाति है, उसको नन्दीतगर, कहतेहैं, नन्दीतगर और पिण्डीतगर दोनोंके गुण समान हैं, इसके वृक्ष उत्तरखण्डके पहाडोपर बहुत उत्पन्न होतेहैं, वृक्ष बडा होता है, पत्ते कनेरकेसे लम्बे २ होतेहैं, फूल छोटे छोटे पीले रंगके पाँच पखुडीवाले होतेहैं॥

अथ पद्मकम्।

पद्मकं पद्मगन्धि स्यात्तथा पद्माह्वयं स्मृतम्॥ पद्मकं तुवरं तिक्तं शीतलं वातलं लघु॥ २९॥ वीसर्पदाहविस्फोटकुष्ठश्लेष्मास्रपित्तनुत्॥ गर्भसंस्थापनं रुच्यं वमिव्रणतृषाप्रणुत्॥ ३०॥

पद्मक, पद्मगन्धि और पद्मवाचक सम्पूर्ण शब्द, (मलयचारु, पीतरक्त, सुप्रभ, पीत, पीतक, मालेय, शीतल, हिम, शुभ, केदारज, रक्त, पाटलापुत्रसन्निभ, पद्मवृक्ष, पद्मकाष्ठ, केदार, शीतवीर्य और पाटलापुष्पवर्णक) ये पद्माकके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—पद्माख (क)। म०—बं०—पद्मकाष्ठ। गु०—क०—पद्मक। तै०—पद्मपुचेका। लै०—प्रनसपदम Pranuspadam॥ पद्माख—कसैली, कडवी, शीतल, वातकारक, हलकी, गर्भस्थापन, करनेवाली, रुचिकारक और विसर्प, दाह, विस्फोटक, कोढ, कफ, रक्तपित्त, वमन, तृषा तथा व्रणको नष्ट करनेवाली है॥ २९॥ ३०॥

विवरण।

पद्माखके बडे बडे वृक्ष केदाराश्रम और बद्रिकाश्रमके निकट हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होतेहै, पत्ते छोटे छोटे छिन्न भिन्न होतेहै, फूलही आकर गिर जातेहै, फल नहीं आते, इसकी लकडी औषधिके प्रयोगमे अधिक ली जातीहै॥

अथ गुग्गुलुः।

गुग्गुलुर्देवधूपश्च जटायुः कौशिकः पुरः॥ कुस्तालूखलकं क्लीबे महिषाक्षः पलंकषः ३१

गुग्गुलु, देवधूप, जटायु, कौशिक, पुर, कुम्भोलूखलक, महिषाक्ष, पलंकष, (कालनिर्यास, धूर्त, शिव. कुम्भ, उलूखलक, कुम्भोलु कुम्भोलूखलक, गुग्गुलु, सर्वसह, उग्र, कुम्भी, कुन्ती, उद्दीप, पवनद्विट्, भवाभीष्ट, निशाटक, जटाल, कुट, भूतहर, शाम्भवदुर्ग, वायुन, महिषाक्षक, देवेष्ट, मरुदिष्ट, रक्षोहा, पलंकषा, रक्षोभक और दिव्य) ये गूगलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–गूगल । बं०–गुग्गुल । म०–गुग्गुळ । गु०–गुगल । क०–इटवोल । फा०–बोएजहुदान । अ०–मुक्लिअर्जक । इं०–इण्डियन डेल्यिम Indian Dellium लै०–बालसमोडिन्ड्रोन राक्स बर्घिआई Balsamo Dindron Rexburghie ॥ ३१ ॥

अथ गुग्गुलुभेदाः । लक्षणानि गुणाश्च ।

महिषाक्षो महानीलः कुमुदः पद्म इत्यपि॥ हिरण्यः पञ्चमो ज्ञेयो गुग्गुलोः पञ्चजातयः ॥ ३२ ॥

महिषाक्ष, महानील, कुमुद, पद्म और हिरण्य इस प्रकार गूगल पांच जातिका है ॥ ३२ ॥

भृंगाञ्जनसवर्णस्तु महिषाक्ष इति स्मृतः॥ महानीलस्तु विज्ञेयः स्वनामसमलक्षणः ॥ ३३ ॥ कुमुदः कुमुदाभः स्यात्पद्मो माणिक्यसन्निभः ॥ हिरण्याक्षस्तु हेमाभः पञ्चानां लिंगमीरितम् ॥ ३४ ॥

जो गूगल–भौंरके और अंजनके सदृश वर्णवाला हो उसको महिषाक्ष कहतेहैं । जो गूगल बहुत नीला हो उसका नाम महानील है । जिस गूगलका रंग कुमुदके समान कांतिवाला होय वह कुमुदगूगल जानना । जो गूगल माणिकके सदृश चमकता हो वह पद्म कहाताहै । और जो गूगल सोनेके सदृश हो वह हिरण्य अथवा हिरण्याक्ष होताहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

महिषाक्षो महानीलो गजेन्द्राणां हितावुभौ ॥ हयानां कुमुदः पद्मः स्वस्त्यारोग्यकरौ परौ ॥३५॥ विशेषेण मनुष्याणां कनकः परिकीर्तितः ॥ कदाचिन्महिषाक्षश्च यतः कैश्चिन्नृणामपि ॥ ३६ ॥ गुग्गुलुर्विशदस्तिक्तो वीर्योष्णः पित्तलः सरः ॥ कषायः कटुकः पाके कटू रूक्षो लघुः परः ॥ ३७॥ भग्नसन्धानकृद् वृष्यः सूक्ष्मः स्वर्यो रसायनः ॥ दीपनः पिच्छिलो बल्यः कफवातव्रणापचीः ॥ ३८ ॥ मेदोमेहाश्मवातांश्च क्लेदकुष्ठाममारुतान्॥ पिडिकाग्रन्थिशोफार्शोगण्डमालाकृमीञ्जयेत् ॥ माधुर्याच्छमयेद्वातं कषायत्वाच्च पित्तहा ॥ ३९ ॥ तिक्तत्वात्कफजित्तेन गुग्गुलुः सर्वदोषहा ॥ स नवो बृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वतिलेखनः ॥४०॥ स्निग्धः काञ्चनसंकाशः पक्वजम्बूफलोपमः॥ नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः ॥ ४१ ॥ शुष्को दुर्गन्धकश्चैव त्यक्तप्रकृतिवर्णकः ॥ पुराणः स तु विज्ञेयो गुग्गुलुर्वीर्यवर्जितः ॥ ४२ ॥ अम्लं तीक्ष्णमजीर्णञ्च व्यवायं श्रममातपम् ॥ मद्यं रोषं त्यजेत्सम्यग्गुणार्थी पुरसेवकः॥४३॥

महिषाक्ष और महानील ये दोनों गूगल हाथियोंको हितकारक हैं । कुमुद और पद्म ये दोनों गूगल घोडोंके लिये सुखदायक हैं । और हिरण्याक्ष गूगल–विशेषकरके मनुष्योंके लिये कल्याणकारी है । कभी कभी महिषाक्ष गूगलभी मनुष्योंके काममें आताहै ऐसा किसी किसीका मत है । गूगल–स्वच्छ कडवा, उष्णवीर्य, पित्तकारक, दस्तावर, कसैला चरपरा, पाकमें कटु रूक्ष, अत्यन्त हलका, टूटे हड्डी आदिको जोडनेवाला, वीर्यकारक, सूक्ष्म स्वरको हितकारी रसायन अग्निको दीपन करनेवाला, चिकना, बलवर्द्धक और कफ, वात, व्रण अपची, मेद प्रमेह पथरी, वात, क्लेद (ग्लानि) कुष्ठ, आमवात, पिटका ग्रन्थि (गाठके रोग), सूजन, बवासीर, गंडमाला तथा कृमिरोगको नष्ट करताहै । गूगल–मधुर होनेसे वातको, कसैला होनेसे पित्तको और कडवा होनेसे कफको जीतताहै; इस कारण गूगल त्रिदोषनाशक है । जो गूगल नवीन होय वह पुष्टि देता है और मैथुनकी शक्ति बढाताहै पुराना होय तो अत्यन्त लेखन है । जो गूगल स्निग्ध, सुवर्णके सदृश, पकी जामुनके सदृश, सुगंधित और पिच्छिल होय वह नया जानना। जो गूगल सूखा, दुर्गन्धित और स्वाभाविक गुण तथा वर्णसे रहित हो उसको पुराना गूगल जानना । पुराना गूगल शक्तिहीन होताहै । गूगलको

सेवन करनेवाले जो पूर्ण लाभके इच्छुक हैं उनको खट्टे, मिरच आदि तीक्ष्ण और अजीर्ण करनेवाले कच्चे पदार्थ, मैथुन, परिश्रम, धूप, मदिरा और रोष (क्रोध) त्याग-देना चाहिये ॥ ३५-४३ ॥

विवरण।

गूगलके वृक्ष रेतली और पर्वतोकी भूमिमे उत्पन्न होते है, पत्ते अनीरहित छोटे छोटे नीवके पत्तोंके समान होते हैं, फूल लालरंगका छोटा पांच पखडीवाला मजरीके मध्यमे निकलताहै, फल छोटे बेरके समान तीन धारवाला होता है, इसके फलोंको गूगलिया कहतेहै, इस वृक्षके गोंदका नाम गूगल है ॥

अथ सरलनिर्यासगुग्गुलुः।

श्रीवासः सरलस्रावः श्रीवेष्टो वृक्षधूपकः ॥ श्रीवासो मधुरस्तिक्तः स्निग्धोष्णस्तुवरः सरः ॥ ४४ ॥ पित्तलो वातमूर्द्धाक्षिस्वर-रोगकफापहः ॥ रक्षोघ्नः स्वेददौर्गन्ध्ययूका कण्डूव्रणप्रणुत् ॥ ४५ ॥

श्रीवास, सरलस्राव, श्रीवेष्ट, वृक्षधूपक, (वेष्टसार, रसावेष्ट, श्रीपिष्ट, पञ्चदर्शन, पायस, वृकधूप, सरलद्रव, रक्तशीर्षक, रसाह्वास, यवास, घृताह्वय, दध्याह्वय, क्षिराह्वय, क्षीरश्री, वायस, वृक्षधूप, चितागन्ध, रसायक, श्रीरस, वेष्ट, लक्ष्मीवेष्ट, वेष्टक, क्षीरशीर्ष, सुधूपक, धूपाङ्ग, तिलपर्ण, सरलांग और तैलपर्णी) ये सरलके गोंदके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सरलका गोंद, सरलका रस, गन्धविरोजा। ब०-टार्पिन तेल, गन्धविरजा। म०-सरलाडीक, चन्द्रस, गु०-चन्द्रस, गन्धवेरीजो। क०-श्रीविष्टक। ता०-पिनै मारु। फा०-सदरुस, काइरुवा। अ०-सदरस। इ०-गमकोपल सडरेक Gomcapal Sandrazack लै०-ट्रेकिलोअम् होर्निमेन्मान कोलिट्रिस कोप्रिवालविस Trachiloam Horniman-man Colutras coipewalbis ॥

सरलका गोंद-मधुर, कडवा, स्निग्ध, गरम, कसैला, दस्तावर, पित्तकारक और वात, शिरके रोग, नेत्रके रोग, स्वररोग, कफ, राक्षसकी पीडा, स्वेद, दुर्गन्धता, यूका (जूँ, लीख) खुजली तथा व्रणको दूर करै है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अथ रालः।

रालस्तु शालनिर्यासस्तथा सर्ज्जरसः स्मृतः ॥ देवधूपो यक्षधूपस्तथा सर्वरसश्च सः ॥ ४६ ॥ रालो हिमो गुरुस्तिक्तः कषायो ग्राहको हरेत् ॥ दोषास्रस्वेदवीसर्प-ज्वरव्रणविपादिकाः ॥ ग्रहभग्नाग्निदग्धा-श्रीशूलातीसारनाशनः ॥ ४७ ॥

राल-शालनिर्यास, सर्जरस, देवधूप, यक्षधूप, सर्वरस, (विरूप, वह्निवल्लभ, कलकल, काल, कलयज, बहुरूप, धूपन, सालज, सालनिर्यास, सर्ज्य, धूनक, शालसार, शाल, शालवेष्ट, सालवेष्ट, अग्निवल्लभ, सर्जमणि, सल, कलकलोद्भव, ललत, देवेष्ट, शीतल, सालरस, सुरभि, सर्जनिर्यासक, सुरधूप, कलकलज, महारूप, क्षण और शालरस) ये रालके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी-राल। ब०-धूना, धूनो। म०-पिवळीराल गु०-राल। क०-सर्जरस। तै०-सर्जरसमुसर्ज। फा०-राल मगरेवी। अ०-किकहर। इ०-यल्ले रिझिन Yellow risin लै०-रेजीन अफिव Risinafleva ॥

राल-शीतल, भारी, कडवी, कसैली, ग्राही और दोष, रुधिरविकार, पसीना, विसर्प, ज्वर, व्रण, विपादिका नामक कोढ, ग्रह, भग्नरोग, अग्निदाह, अलक्ष्मी, शूल तथा अती-सार नाशक है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

विवरण।

शालका वृक्ष वहुत ऊँचा होता है, उसके गोंदको वैद्य लोग राल कहते हैं, यह वृक्ष उत्तराखण्डमे वहुत है ॥

अथ कुन्दुरुः [गंधविरोजा]।

कुन्दुरुस्तु मुकुन्दः स्यात्सुगन्धः कुन्द इत्यपि ॥ कुन्दुरुर्मधुरस्तिक्तस्तीक्ष्णस्त्वच्यः कटुर्हरेत् ॥ ज्वरस्वेदग्रहालक्ष्मीमुखरोग-कफानिलान् ॥ ४८ ॥

कुन्दुरु, मुकुन्द, सुगन्ध, कुन्द, (पालक्या, सौराष्ट्री, शिखरीबली, पालकी, मुकुन्द, कुन्दु, कुन्दुर, तीक्ष्णगन्ध, कुन्दुरुक, कुन्दक, तीक्ष्णगोपुरक, बहुगन्ध, पालिन्द, भीषण, कुन्दारु, बिडालाक्ष, पालक, खपुर, स्राक्ष, नागवृन्दप्रिय और शल्लकीनिर्यास) ये गन्धविरोजेके सम्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-गन्धविरोजा, कुन्दरु। ब०-कुन्दुरु खोटी। म०-अवल, गुन्दर, सालईडीक। गु०-किन्दुरु, शेपगुदर। क०-इडवोल। तै०-कुन्दुरुम. । गुगुलम्, फा०-कन्दुरुमी, खोटीमस्तकी। अ०-कुन्दुरेजकर-इ०-ओलिबेनम Olibanum लै०-बोजवेलिया थेरीफ्रो Bosbelia Therifera ॥

कुन्दुरु—मधुर, कडवा, तीक्ष्ण, त्वचाको हितकारी, चरपरा और ज्वर, पसीना, ग्रह, अलक्ष्मी, मुखके रोग, कफ तथा वातको दूर करे है ॥ ४८ ॥

विवरण।

कुन्दरु—शल्लकी वृक्षके गोंदको कहते हैं इसका रंग सफेद होताहै, इसमे कुछ कुछ सुगन्धि भी आतीहै ॥

अथ शिलारसः।

सिह्लकस्तु तुरुष्कः स्याद्यतो यवनदेशजः॥ कपितैलश्च संख्यातस्तथा च कपिनामकः ॥४९॥ सिह्लकः कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः शुक्रकान्तिकृत् ॥ वृष्यः कण्ठ्यः स्वेदकुष्ठज्वरदाहग्रहापहः ॥ ५० ॥

सिह्लक, तुरुष्क, यवनदेशज, कपितैल और जितने कपि (वदर) नामके शब्द हैं वे सब (कृत्रिम, कपिश, चल, मुक्तिमुक्त, पिंडित, सैंहिकारस, कपि, कपिल, चला, पिण्डात, वर, सिह्लपिण्डक, सिद्ध, पावन, पवन, धूम्र, धम्रवर्ण, सुगधिक, सिह्लसार, पीतमार, पिण्याक, कपिज, कल्क, पिण्डितैलक, करेवर, कृत्रिमक, लेपन, शल्लकीद्रव, पिष्टक, तैलपर्णी, वृकधूप, कपिच्चचल, यावल, तैलाख्य, पिण्डक, याव, यावन, यवनदेशज, अश्मपुष्प और चञ्चलतैलक) ये शिलारसके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—व०—म०—शिलारस। गु०—शेलारस। क०—पिण्डतैल। फा०—सरारस। अ०उसारेकमिया। नियाससाइला। इ०—लिक्विड्एम्बर Liquid Amber लै०—लिक्वीडेम्बर ओरीएन्टेटिस Liquidamber Arientatis

शिलारस—चरपरा, मधुर, स्निग्ध, गरम, वीर्यवर्द्धक, कान्तिकारक, बलदायक, कठको हितकारी और पसीना, कोढ, ज्वर, दाह तथा ग्रहदोष, इन सब रोगोको नष्ट करैहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

विवरण।

शिलारस—शिह्लकवृक्षका गोंद होताहै. यह, अन्यदेशदेशान्तरोसे आताहै. यह पक्के लसोढेके रसके समान चिकना और सुगन्धित होता है। इसका धूम्रवर्ण होताहै ॥

अथ जातीफलम्।

जातीफलं जातिकोशं मालतीफलमित्यपि॥ जातीफलं रसे तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु ॥ कटुकं दीपनं ग्राहि स्वर्यं श्लेष्मानिलापहम् ॥ ५१ ॥ निहन्ति मुखवैरस्यं मलदौर्गन्ध्यकृष्णताः॥ कृमिकासवमिश्वासशोषपीनसहृद्रुजः ॥ ५२ ॥

जातीफल, जातिकोश, मालतीफल (फलजाती, कोषक, सुमनफल, जातिकोष, कोश, कोष, राजभोग्य, जातीकोश, जातीफल, जातिशस्य, शालूक, मज्जसार, जातिसार, पुट, मदशौंड) ये जायफलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—जायफल। व०—म०—गु०—जायफळ। क०—जाईफल। तै०—जाजिकाया। ता०—जोढिकराय। फा०—जोजबोया।अ०—जोज उत्तीब। इ०—नटमेग Nutmeg लै०-मिरिष्टिका ऑफिसिनेलिस् Myristica Officinalis

जायफल—रसमे कडवा, तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, हलका, चरपरा, अग्निप्रदीपक, ग्राही, स्वरको हितकारी. कफ तथा वातको विनष्ट करनेवाला. मुखकी विरसता नाशक, मल, दुर्गन्धता, कृष्णता, कृमि, खाँसी, वमन, श्वास, शोष, पीनस और हृद्रोगको दूर करै है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

विवरण।

पूर्व और दक्षिण दिशाकी ओर जायफलके वृक्ष बहुत होते हैं। फल जामुनके समान कुछ लम्बाई लिये गोल गोल होतेहैं इसकी छालके भीतर वालकासा गुच्छा होताहै, उसको जावित्री कहतेहैं। कुछ कालोपरान्त उसका रंग पीला पडजाताहै, उसके भीतर कठिन वल्कलका बीज होताहै, उसको तोडनेसे जायफल निकलताहै ॥

अथ जातीपत्री।

जातीफलस्य त्वक् प्रोक्ता जातीपत्री भिषग्वरैः ॥ जातीपत्री लघुः स्वादुः कटूष्णा रुचिवर्णकृत् ॥ फलकासवमिश्वासतृष्णाकृमिविषापहा ॥ ५३ ॥

वैद्यलोग जायफलकी छालकोही जावित्री कहतेहैं।

जातिपत्री, जातीपत्री, (जातीकोषा, सुमनपत्रिका, जातीकोषी, सुमनपत्री, मालती, पत्रिका, सौमनसायिनी और जातीफलत्वक्) ये जावित्रीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—जावित्री। व०—जैत्री, जयित्री। म०—जायपत्री। गु०—जावत्री। क०—जायपत्री। तै०—जाजिपत्री। फा०—जवत्री। अ०—बसिवासा। इ०—मेस Mace लै०—मिरिष्टिकाफेग्रन्स Myristica Fragrans।

जावित्री—हलकी, मधुर, कडवी, गरम, रुचिकारक, वर्णको

उत्तम करनेवाली और कफ, खाँसी, वमन, श्वास, तृषा, कृमि तथा विष, इनको नष्ट करैहै ॥ ५३ ॥

विवरण।

जावित्री और जायफल एकही वृक्षसे उत्पन्न होतेहैं. सुमात्रा, सिहल, पिनाग आदिदेश और हिंदुस्थानीय महासमुद्रके टापुओंमें जायफल अधिकतासे होते हैं. देखनेमें सुन्दर हरेरंगका होताहै, आजकल, दक्षिणदेशमें भी इसकी अधिकता होने लगी है, जायफलके ऊपरकी छाल फटकर जो कुछ लालकेशरसी निकलतीहै उसीको जावित्री कहतेहैं. इस-फलके बीजको जायफल कहतेहैं, सुगन्धित होनेके कारण जावित्री पानमें रखकर खाई जाती है मात्रा चार रत्तीसे लेकर एक मासेकी है ॥

अथ लवंगम्।

लवंगं देवकुसुमं श्रीसंज्ञं श्रीप्रसूनकम् ॥ लवंगं कटुकं तिक्तं लघु नेत्रहितं हिमम् ॥५४॥ दीपनं पाचनं रुच्यं कफपित्तास्रनाशकृत्॥तृष्णां छर्दिं तथाध्मानं शूलमाशु विनाशयेत् ॥ कासं श्वासश्च हिक्काश्च क्षयं क्षपयति ध्रुवम् ॥ ५५ ॥

लवंग, देवकुसुम, श्रीसंज्ञ, श्रीप्रसूनक, (कलिकोत्तम, भृंगार, सुषिर, तीक्ष्ण, वारिज, शेखर, लव, प्रसून, लवंगक, लवंगकलिका, दिव्य, श्रीपुष्प, रुचिर, ग्रहणीहर, तोयाधिप्रिय, वारिपुष्प, तीक्ष्णपुष्प, गीर्वाणकुसुम, चंदनपुष्प दिव्यगंध और प्रसूनक) ये लौंगके संस्कृत नाम है ॥

हिंदी–लौंग । म०–व०–लवंग । गु०–लवींग । क०–लवंगकलिका । तै०–लवंगलु । ता०–किरम्बेर । फा०–मेहक । अ०–मीखककर्नफूल । इ०–क्लोविस Cloves लै०–करियो फाइलस एरोमेटिकस Caryo Phyllus aromaticus

लौंग–चरपरी, कडवी, हलकी, नेत्रोंको हितकारी, शीतल, अग्निको दीपन करनेवाली, पाचक, रुचिकारी और कफ, पित्त, रुधिरविकार, तृषा, वमन, अफारा, शूल, खाँसी, श्वास, हिचकी तथा क्षयको अवश्य क्षय करैहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

विवरण।

लौंगके वृक्ष जंगबारमें अधिकतासे उत्पन्न होतेहैं, देखनेमें अत्यन्त मनोहर होतेहै, हरे हरे रंगके पत्तोंमें महा सुगंध आती है,इसके फूलोंको कलियोंको लौंग कहते हैं जब लोंगोंके गुच्छेके गुच्छे वृक्षोंपर लगतेहैं तब महा सुगंधवाली पवन कोसोंतक भूमि और धोरे नेरेके वृक्षोंको सुगंधिसे परिपूर्ण करदेती है. धन्य है, वह मलवारादिक–देश कि जहाँ ऐसे ऐसे शोभायमान वृक्ष उत्पन्न होते है ॥

अथ स्थूलैला [बडीइलायची]।

एला स्थूला च बहुला पृथ्वीका त्रिपुटापि च॥ भद्रैला बृहदेला च चन्द्रबाला च निष्कुटिः॥ ५६ ॥ स्थूलैला कटुका पाके रसे चानलकृल्लघुः॥ रूक्षोष्णा श्लेष्मपित्तास्रकण्डूश्वासतृषापहा हृल्लासविषवस्त्यास्यशिरोरुग्वमिकासनुत ॥ ५७ ॥

स्थूला–एला, बहुला, पृथ्वीका, त्रिपुटा, भद्रैला, बृहदेला, चंद्रबाला, निष्कुटि, (मलेया, ताडकीफल, स्थूला, त्रिदिवोद्भवा, सुरभित्वक्, महिला, कन्या, कुमारी, कुमारिका, पृथ्वी, गोपुटा, कायस्था, काता, घृताची, गर्भसम्भवा, इन्द्राणी, ऐन्द्री, दिव्यगंधा, निष्कुटी, चर्मसम्भवा, बाला, बलवती, एलीका, सागरगामिनी, गंधालीगर्भ और महैला), ये बडी इलायचीके संस्कृत नाम है ॥

हिंदी–बडी इलायची, लाल इलायची । बं०–बड एलाइच । म०–थोरवेला, वेलदोडे । गु०–मोटी एलची–जाडी एलची । क०–परडूलक्की । तै०–पेग एलाकुल एलुकचेट्ठ । ता०–एलम् । फा०–हैलकलॉ । अ०–काकलेकिवार । इ०–लार्जकरडामोम Large Cardamom लै०–एमोमम् सुव्युलेटम् Amomumu Suvalatam।

बडी इलायची–पाकमें और रसमें चरपरी, अग्निदीपक, हलकी, रूक्ष, गरम और कफ, पित्त, रुधिरविकार, खुजली, श्वास, तृषा, हृल्लास (उबकाई), विष, मूत्राशयके रोग, शिरोरोग, वमन और खाँसीको नष्ट करैहै ५६ ॥ ५७ ॥

विवरण।

बडी इलायचीके क्षुप अदरकके समान छोटे छोटे होतेहैं, पत्र भी अदरकके समान होतेहैं, परन्तु अदरकसे अधिक चौडे होतेहैं, बडी इलायचीके बीजोंमें भी छोटी इलायचीके समान सुगंधि आती है; इसका रंग लाल होताहै, ऊपर जटायें होतीहैं जटाओंके उखाडनेसे भीतरसे तिकोनी निकलतीहै उसके भीतर सुगन्धित दाने निकलतेहैं ॥

अथ एला गुजराती ।

सूक्ष्मोपकुञ्चिका तुत्था कोरंगी द्राविडी त्रुटिः ॥ एला सूक्ष्मा कफश्वासकासार्शोमूत्रकृच्छ्रहृत्॥रसे तु कटुका शीता लघ्वी वातहरी मता ॥ ५८ ॥

सूक्ष्मैला, उपकुञ्चिका, तुत्था, कोरंगी, द्राविडी, त्रुटि, (वयस्था, तीक्ष्णगन्धा, मृगपर्णिका, त्रिपुटा, क्षुद्रैला, त्रिपुटि, छर्दिकारिपु, त्वचिसुगधा, पुटिका, चन्द्रसम्भवा, कपोतपर्णी, दिवोद्भवा, चन्द्रवाला, बहुला निष्कुटि, कुनटी, गौराङ्गी, गर्भारा, गन्धफलिका, सुगन्धि, चन्द्रिका और श्वेतैला) ये छोटी इलायचीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–छोटी इलायची, सुफेद इलायची व०–छोट एलाइच, गुजराती एलाइच । म०–लघुवेला । गु०–झीणी एलची, एलची कागदी । तै०–एलाकु । फा०–हैल, हिल । अ०–काकले सगीर–या–काकले सिगार । इं०–शेलीसर कार्डामोम Shelser Cardamum लै०–इलेटेरिया कार्डामोमम Eleteria Cardamamum

छोटी इलायची–रसमें चरपरी, शीतल, हलकी और वात, कफ, श्वास, खाँसी, बवासीर और मूत्रकृच्छ्र नाशक है ॥ ५८ ॥

विवरण ।

छोटी इलायचीके क्षुप गुजरात और मलबार देशोंमें बहुत होतेहैं इसका क्षुप भी लाल इलायचीके समान होताहै, फूल, सफेद इलायचीके और लाल इलायचीके दोनों सुगन्धित होतेहैं, इसके बीज काले और सरस होतेहैं ॥

त्वक्पत्रम् ।

त्वक्पत्रञ्च वरांगं स्याद्भृङ्गं चोचं तथोत्कटम् ॥ त्वचं लघूष्णं कटुकं स्वादु तिक्तञ्च रूक्षकम् ॥ ५९ ॥ पित्तलं कफवातघ्नं कण्डूमारुचिनाशनम् ॥ हृद्वस्तिरोगवातार्शःकृमिपीनसशुक्रहृत् ॥ ६० ॥

त्वक्पत्र, वराग, भृग, चोच, उत्कट (रामेष्ट, विज्जुल, त्वच, गुडत्वच, पत्र. चोच, सुरभिवल्कल, सतकट, त्वचा, हृद्य, त्वक्, वल्कल, सुखशोधन, शकल, सिहल, वल्य, सुरस, कामवल्लभ, बहुगन्ध, घनप्रिय, लटपर्ण, गन्धवल्कल, वर, शीत, सैहल, और तनुत्वक्) ये तजके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०–तज, । गु०–जाटीतज । व०—तज ।

तज–हलकी गरम, चरपरी, मधुर, कड़वी, रूखी, पित्तकारक और कफ. वात, खुजली. आम तथा अरुचिको नष्ट करेहै और हृदयके रोग, मूत्राशयके रोग. बवासीर, कृमि, पीनस, तथा वीर्यविनाशक है ॥५९॥६०॥

[दालचीनी त्वक्].

त्वक्स्वाद्वी तु तनुत्वक्स्यात्तथा दारुसिता मता॥उक्ता दारुसिता स्वाद्वी तिक्ता चानिलपित्तहृत् ॥ सुरभिः शुक्ला वर्ण्या मुखशोषतृपापहा ॥ ६१ ॥

त्वक्स्वादु, तनुत्वक् त्वक् और दारुसिता, ये दारुचीनीके संस्कृत नाम हैं ॥ हिन्दी–दालचीनी । व०–दारुचीनी । म०–दालचिनी । गु०–पातलीतज, तै०–डालचीनी । फा०–दारुचीनी । अ०–सालीखा । इं०–सिनामन बार्क Cinnamon Bark लै०–सिनामन कोर्टक्स Cinnamon Cartex

दालचीनी–मधुर, कड़वी, चरपरी, सुगंधित. वीर्यवर्द्धक, वर्णको उत्तम करनेवाली और वात, पित्त, मुखका शोष तथा तृषाको शमन करेहै ॥ ६१ ॥

विवरण ।

दालचीनीके वृक्ष सिहल, मलबार, कोचीन. चीन, सुमात्रा और जावा आदि देशोंमें अधिकतासे होतेहैं. इसके पत्ते तमालपत्रकी समान होतेहैं, पत्तोंको सुखानेपर उनमेंसे लौंगकेसी सुगन्धि आती है, वृक्षकी टहनीके ऊपर सुफेद फूल आताहै, फूलमें गुलाबके समान सुगन्ध आतीहै, फल करौंदेके समान कुछ सुफेद कुछ लाल होतेहै, इनमेंसे तेल निकलताहै, इसके फूलका अर्क और मारग बनातेहैं, सिहल द्वीपकी दालचीनी बहुत उत्तम होती है । वृक्षकी पतली छालहीको दालचीनी कहते हैं । और दूसरी जातिके मोटे वृक्षकी छालको तज कहते हैं ॥

अथ तमालपत्रकम् ।

पत्रं तमालपत्रञ्च तथा स्यात्पत्रनामकम् ॥ पत्रकं मधुरं किञ्चित्तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं लघु ॥ निहन्ति कफवातार्शोहृल्लासारुचिपीनसान् ॥ ६२ ॥

पत्र, तमालपत्र, और पत्रवाचक सम्पूर्णशब्द (तेजपत्र. गन्धजात, पत्रक, पाकरञ्जन, दलाह्वय, गोमेद, वसनाह्वय,

गोमेदक, छदन, दल, पलाश, अंकुश, वास, तापस, सुकुमारक, वस्त्र, तमालक, गोपन, वसन, तमाल, सुरनिर्गन्ध, इष्टगंध, शीतरस, सुरस और रोमश) ये तेजपातके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–तेजपात । बं०–तेजपत्र, तेजपाता, । म०—तमालपत्र, सभारपान । गु०—तमालपत्र । क०–पत्रक, तै०आकुपत्री । फा०–सादरसु । अ०–साजिज । इं०–फोलिया मालाबथी Falia Malabathy लै०—सिन्नामोम टमाला Sinnamomum Tamala ॥

तेजपात—मधुर, किञ्चित् तीक्ष्ण, गरम, पिच्छिल, हलका और कफ, वात, बवासीर, हृदयरोग, अरुचि तथा पीनस इन सब रोगोंको दूर करनेवाला है ॥ ६२ ॥

विवरण ।

तेजपातके वृक्ष उत्तरखण्डके वनमें वहुत हैं, पत्ते लम्बे लम्बे तजके पत्तोंके समान होतेहैं और कोई कोई वैद्य तजके पत्तोंहीको तेजपात कहतेहैं यह सुगन्धित पदार्थ है ॥

अथ नागकेशरः ।

नागपुष्पः स्मृतो नागः केशरो नागकेशरः ॥ चाम्पेयो नागकिञ्जल्कः कथितः कांचनाह्वयः ॥ ६३ ॥

अयं पुष्पे तु क्लीबः ॥

नागपुष्पं कषायोष्णं रूक्षं लघ्वामपाचनम् ॥ ज्वरकण्डूतृषास्वेदच्छर्दिहृल्लासनाशनम् ॥ दौर्गंध्यकुष्ठवीसर्पकफपित्तविषापहम् ॥ ६४ ॥

नागपुष्प, नागकेशर, चाम्पेय, नागकिंजल्क और जितने सुवर्णके नाम हैं वे सब, (महौषध, राजपुष्प, फलक, स्वरघातन, काचनाह्वय, भुजगाख्य, षट्पदप्रिय, इभाख्य, पुष्परेचन, नागाख्य, केसरी, किंजल्क, नागीय, कांचन, सुवर्ण, हेमकिंजल्क, रुक्म, हेम, पिंजर, फणिकेशर, पुन्नागकेशर, नागपुष्प और नाग) ये नागकेशरके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–म०–गु०–क०–नागकेशर । बं०–नागेश्वर । तै०–नागकेशराल्ड । ता०–नांगल । अ०–नारमुश्क । लै०–मेस्यू आफेरिया Mesu Aferia ॥

नागकेशर–कसैली, गरम, रूखी, हलकी आमको पचानेवाली और ज्वर, खुजली, तृषा, स्वेद, वमन, हृल्लास, दुर्गन्धता, कुष्ट, विसर्प, कफ, पित्त और विषको दूर करै है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

विवरण ।

पुन्नागवृक्षकी केशर अर्थात् नागचम्पेकी कलीको नागकेशर कहते हैं । इसकी दो जाति हैं, ये गोवा और कोकण देशसे आती है, पुन्नागके वडे वढे वृक्ष होते हैं, इसकी लकडी इमारत आदिके काममे आतीहै, पत्ते चिचोडके समान लम्बे होतेहैं, इसपै लाल फूल बहुत बडी जातिका आताहै, उस फूलमें जो छोटे छोटे दानेसे होतेहैं उसीको वैद्यलोग नागकेशर कहतेहैं ॥

अथ त्रिजातं चातुर्जातकं च ।

त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम् ॥ नागकेशरसंयुक्तं चातुर्जातकमुच्यते ॥ ६५ ॥ तद्द्वयं रोचनं रूक्षं तीक्ष्णोष्णं मुखगन्धहृत् ॥ लघुपित्ताग्निकृद्वर्ण्यं कफवातविषापहम् ॥ ६६ ॥

दालचीनी, इलायची और तेजपात इन तीनोको त्रिसुगंधि और त्रिजातक कहते हैं । इसमे नागकेशर और मिलानेसे उसको चातुर्जातक कहतेहैं ॥

ये त्रिजातक और चातुर्जातक दोनो–रेचक, रूक्ष, तीक्ष्ण, गरम, मुखकी दुर्गन्धता नाशक और कफ, वात, तथा विषको नष्ट करैहै । हलके, पित्तकारक, अग्निवर्द्धक और वर्णको सुदर करनेवाले है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अथ कुंकमम् [केशर] ।

कुंकुमं घुसृणं रक्तं काश्मीरं पीतकं वरम् ॥ संकोचं पिशुनं धीरं वाह्लीकं शोणिताभिधम् ॥ ६७ ॥ काश्मीरदेशजे क्षेत्रे कुंकुमं यद्भवेद्धि तत् ॥ सूक्ष्मकेशरमारक्तं पद्मगन्धि तदुत्तमम् ॥ ६८ ॥ वाह्लीकदेशसञ्जातं कुंकुमं पांडुरं मतम् ॥ केतकीगन्धयुक्तं तन्मध्यमं सूक्ष्मकेशरम् ॥ ६९ ॥ कुंकुमं पारसीके यन्मधुगन्धि तदीरितम् ॥ ईषत्पांडुरवर्णं तदधमं स्थूलकेशरम् ॥ ॥ ७० ॥ कुंकुमं कटुकं स्निग्धं शिरोरुग्व्रणजन्तुजित् ॥ तिक्तं वमिहरं वर्ण्यं व्यंगदोषत्रयापहम् ॥ ७१ ॥

कुकुम, घुसृण, रक्त, काश्मीर, पीतक, वर, सकोच, पिशुन, धीर, वाह्लीक और जितने रुधिर (खून) के नाम है वे सब (काश्मीरज, कुसुमात्मक, पीतन, रक्तचन्दन, धन्न, हरिचन्दन, खल, रज, दीपक, लोहित, सौरभ, चन्दन, काश्मीरजन्म, अग्निशिख, वर, वीर, चारु, काश्मीरजन्म, वरवाह्लिक, अग्नि, शेखर, अग्निशेखर, असृक्, रुधिर, शठ, शोणित, वेरेण्य, अरुण, कालेयक, जागुड, कात, वह्निशिख, केसर, गौरकेशर, अस्र,) ये केसरके सस्कृतनाम हैं ॥

हिन्दी–केशर, केसर । म०–केशर, । गु०–केसर । व०–क०–कुकुम । तै०–कुकुमपुत्रु । फा०–करकीमास । अ०–जाफरान । इ०–सेफ्रोन Saffion लै०–क्रोकसटिगमाटा Crocistigmata ॥

जो केसर–काश्मीर देशके क्षेत्रमे होती है वह सूक्ष्म, लाल कमलके सदृश गधयुक्त और उत्तम होतीहै, वाह्लीक देशकी उत्पन्न हुई केशर, सूक्ष्म केतकीके सदृश गधवाली और पाण्डु (भूरे) रगवाली होतीहै यह मध्यम है । पारिस देशमे जो केशर होतीहै, वह मोटी, मधुके सदृश गधवाली और किञ्चित् पाण्डुवर्ण होतीहै यह अधम है ॥

केशर–चरपरी, चिकनी, कडवी, वर्णको उत्तम करनेवाली और शिरोरोग, व्रण, कृमि, (कीडा), वमन, व्यग, (झाई) तथा तीनो दोषोको नष्ट करैहै ॥ ६७–७१ ॥

विवरण ।

केशरके क्षुप काश्मीर वल्खबुखारा, ईरान आदि देशोंमे अधिकतासे होतेहैं, उसका क्षुप न बहुत वडा न छोटा मध्यम जातिका होताहै क्षुपके नीचे मूलमे गठीके समान एक गाठसी होती है, ऊपर एक छत्तेदार फूल लगताहै, उसके ऊपर महीन महीन तन्तु निकलतेहैं, वे कुछ कुछ पीलापन लिये हुए लालरगके होतेहैं, जैसे कसूमके पुष्पमे लालतन्तु निकलतेहैं, वैसेही केशरके पुष्पमे होतेहैं. उनको वीन वीन कर डिव्वोंमे भररखते हैं. सब केशरोमे काश्मीरदेशकी केशर उत्तम समझी जाती है, सूखी हुई सुगधियुक्त गर्भकेशर देशी वैद्यक चिकित्साकी अपेक्षा, ईरानी चिकित्सावालोंके काममे बहुत आतीहै, ईरान देशमे इसका व्यवहार, अनेक प्रकारसे होता है, प्रसव करनेके लिये ईरानदेशकी स्त्रिये केशरकी गोलिये आनन्दपूर्वक सदैव अञ्चलमें बाधे रहती हैं और प्रसव होनेके उपरान्त जरायुकी पीडा दूर करनेके लिये नित्य प्रति नियमानुसार सब भक्षण करती रहती हैं होमियो पैथकके मतसे रजोसम्बन्धी रोगोमे इसका प्रयोग किया जाताहै ॥

अथ गोरोचना ।

गोरोचना तु मंगल्या वन्ध्या गौरी च रोचना ॥ गोरोचना हिमा तिक्ता वश्या मंगलकांतिदा ॥ विषालक्ष्मीग्रहोन्माद-गर्भस्रावक्षतास्रहृत् ॥ ७२ ॥

गोरोचना, मगल्या, वन्ध्या, गौरी, रोचना (गोपित्त, वन्दनीया, मनोरमा, रोचनारुचि, शोभा, रुचिर, शोभना, शुभा, रोचनी, पिंगा, मगल्या, शिवा, पीता, गौतमी, गव्या, चन्दनीया, काचनी, मेध्या, श्यामा, रामा, भूतविद्राविणी, गोपित्तसम्भवा, पिंगला, नन्दिनी, पाविनी और गोरुचि) ये गोरोचनके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–गोरोचन, गोलोचन । गु० म० क०–गोरोचना व०–गोरोचना । तै०–गोरोचनमु । फा०—गावरोहन । अ०–हजरलवक्र । इ०गोल्स्टोन बिजोर Gollaston Bijoor लै०बोस्टोरस Bostarus ॥

गोरोचन–शीतल, कडवा, वश्यकारक, मगल, कान्तिदायक और विष, अलक्ष्मी, ग्रह, उन्माद, गर्भस्राव, क्षत तथा रुधिरविकारनाशक है ॥ ७२ ॥

विवरण ।

गोरोचन—गायके मस्तकमे गोल ककरके समान निकलताहै, उसका रग पीला होताहै यह औषधिके प्रयोगमे बहुत आताहै, तान्त्रिक लोग वशीकरण आदिक कर्म्मोंमें इससे यन्त्र मन्त्र बहुत लिखते हैं, कई इसे गौके पित्ताशयमे उत्पन्न होताहै, ऐसा मानते है ॥

अथ नखं–नखी [गन्धद्रव्यम्] ।

नखं व्याघ्रनखं व्याघ्रायुधं तच्चक्रकारकम् ॥ नखं स्वल्पं नखी प्रोक्ता हनुर्हट्टविलासिनी ॥ ७३ ॥ नखद्रव्यं ग्रहश्लेष्मवातास्रज्वरकुष्ठहृत् ॥ लघूष्णं शुक्रलं वर्ण्यं स्वादु व्रणविषापहम् ॥ अलक्ष्मीमुखदौर्गन्ध्यहृत्पाकरसयोः कटु ॥ ७४ ॥

नख, व्याघ्रनख, व्याघ्रायुध, चक्रकारक, (व्याघ्रनखी व्याडायुध, करज, कूटस्थ, नखाक, नख्य, चक्रनायक, चक्री, चक्रनख, व्यस्तफल, द्वीपिनख, खपुर, व्यालपाणिज, व्यालायुध, व्यालबल और व्यालखड्ग) ये नखके

संस्कृत नाम हैं, (और छोटे छोटे नखोको नखी, हनु और हट्टविलासिनी कहते हैं)।

हिन्दी–नख नखी। ब०–नखी गन्धद्रव्य, छोटनखी गु०–नखला, नखली। म०–नखला, वाघनख। क०–नख, वाघनख। फा०–नाखुविर्या। अ०–अजफारुत्तीव। इ०–शेल Shell लै०–हेलीक्स आश्रा Helix Ashera

दोनो नख–हलके, वीर्यवर्द्धक, गरम, वर्णको उत्तम करनेवाले, मधुर और ग्रह, कफ, वात, रुधिर-विकार, ज्वर, कोढ, व्रण, विप, अलक्ष्मी तथा मुखकी दुर्गन्धताको नष्ट करैहैं और पाक तथा रसमे चरपरे हैं॥ ७३॥ ७४॥

विवरण।

नखद्रव्य–नदीके जीवोके नख होतेहैं. ये सुगन्धित पदार्थ हैं. धूप और तैलादिकमे सुगन्धिके लिये डाले जाते हैं और घोडे हाथियोके नखभी अनेक औषधियोमें डाले जाते हैं। गन्ध अर्थवाली और गन्धयुक्तनखी पाँच प्रकारकी होती हैं, कोई वेरीके पत्तोके समान, कोई कमलके पत्तोके समान, कोई घोडेके खुरकी आकारवाली, कोई हाथीके कानके सदृश और पाँचवीं सुअरके कानके तुल्य होती है, यह चरकमुनिका वचन है॥

अथ बालम् [सुगन्धवाला]।

बालं ह्रीबेरबर्हिष्ठोदीच्यं केशाम्बुनाम च॥ बालकं शीतलं रूक्षं लघु दीपनपाचनम्॥ हृल्लासारुचिवीसर्पहृद्रोगामातिसारजित्॥७५

बाल, ह्रीवेर, बर्हिष्ठ, उदीच्य, बाल और जलके जो नाम वे सब (बालक, वारिद, केशनामक, कचामोद, वरपिग, कुन्तल, केशनामा, अम्बुनामक, केश, केश्य, वज्र, ललनाप्रिय, कुन्तलोशीर, ह्रीवेरक, वारि, तोय और जल) ये सुगधवालाके संस्कृत नाम है॥

हिन्दी–सुगन्धवाला। ब०–वाल्य, गन्धवाला। म०–वाला। गु०–वालो। क०–वालदवेरू। तै०–वाट्टिवेल्ल। फा०–असारूं। लै०–एनड्रोपोगन म्यूरिकेटस Andro-pogan Muricatus

सुगधवाला–शीतल, रूक्ष, हलका, अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन और हृल्लास, अरुचि, विसर्प, हृदय रोग और आमातिसार नाशक है॥ ७५॥

विवरण।

सुगन्धवाला–वालोंके समान, बहुत वारीक और लम्बा वडकी दाढीके समान होताहै, विशेष करके यह जलके समीपकी भूमिमे बहुत होताहै। इसकी जड अधिक प्रभाववाली, होतीहै. कञ्जरलोग कुदालोंसे खोद खोद कर लाते हैं, खसमे और इसमे थोडा ही अन्तर होताहै. खस सरकडेकी जड होतीहै और सुगन्धवाला टॉटलकी जड होतीहैं। मूर्ख वैद्य नाडीके पत्तोहीको सुगन्धवाला मानते हैं. धन्य है आजकलके कलियुगी वैद्योको जो घरहीमें बैठे बैठे डींग मारते है बाहर निकलकर एक रूख भी नही देखा॥

अथ वीरणमुशीरं च।

स्याद्वीरणं वीरतरुर्वीरश्च बहुमूलकम्॥ वीरणं पाचनं शीतं वान्तिहृल्लघु तिक्तकम्॥ ७६॥ स्तम्भनं ज्वरनुद्वान्तिमदजित्कफपित्तहृत्॥ तृष्णास्रविषवीसर्पकृच्छ्रदाहव्रणापहम्॥ ७७॥ वीरणस्य तु मूलं स्यादुशीरं नलदश्च तत्॥ अमृणालश्च सेव्यश्च समगन्धिकमित्यपि॥ ७८॥ उशीरं पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम्॥ मधुरं ज्वरहृद्वान्तिमदनुत्कफपित्तहृत्॥ तृष्णास्रविषवीसर्पदाहकृच्छ्रव्रणापहम्॥ ७९॥

वीरण, वीरतरु, वीर, बहुमूलक, उशीर, नलद, अमृणाल, सेव्य, समगन्धिक, अभय, अवदाह. लामज्जक, लघुभय, इष्टकापथ, मृणाल, लघुलय, अवदात, अवदाहेष्टकापत्र, इन्द्रगुप्त, उशीरक, जलवास, हरिप्रिय, रण, प्रिय, शिशिर, शतिमूलक, वितानमूलक, दाहहरण-जलामोद, गन्धाढय, सुगधिक, सुगाधमूलक सुगधिमूल, कम्भु, कटायन, वीरतर, वीरभद्र और बहुमूलक) ये खसके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–खस, वीरन, गांडरा। ब०–वेणारमूल, वीरणमूल। गु०–कालावालाना झाडनु मूल। म०–काला, वाला। क०–वालदवेस। तै०–अवरुगाट्टि वट्टिवेल्लुनल्ल। ता०–वेत्तेवेर। लै०–अन् ड्रोपोगनम्पूरिकेटम Andro-pogan Muricatum

खस–पाचक, शीतल, वीर्यस्तम्भक, हलकी, कडवी, मधुर, और ज्वर, वमन, मद, कफ, पित्त, तृषा, रुधिरविकार, विप, विसर्प, दाह, मूत्रकृच्छ्र और व्रण-विनाशक है॥ ७६–७९॥

विवरण।

खस वीरणमूल घासकी जड होतीहै, यह जलाशयके समीपकी भूमिमे बहुत उत्पन्न होतीहै. इसकी जड

दोदोफुट नीचे पृथ्वीमें चली जाती है । कञ्जरलोग उसको कुदालोंसे खोद खोदकर एकत्र करलेते हैं फिर उसको पानीसे धोकर स्वच्छ करलेते हैं, उसीको वीरणमूल (खस) कहते हैं, ग्रीष्म ऋतुमें धनाढ्य लोग इसकी टट्टी बनाकर अपने स्थानोंमें लगाते हैं, फिर उन टट्टियोंपर जल छिटकवाते हैं. तब उनमेंसे मन्द मन्द पवनके आश्रयसे सुगन्धि निकलतीहै ॥

अथ जटामांसी ।

जटामांसी भूतजटा जटिला च तपस्विनी ॥ मांसी तिक्ता कषाया च मेध्या कान्तिबलप्रदा ॥ स्वाद्वी हिमा त्रिदोषास्रदाहवीसर्पकुष्ठनुत् ॥ ८० ॥

जटामांसी, भूतजटा, जटिला, तपस्विनी, (जटी, पेसी, लोमशा, मिसि, मांसी, हिंस्रा, मिषिका, चक्रवर्तिनी, नलद, वह्निनी, कृष्णजटा, किरातिनी, क्रव्यादी, पिशिता, पिशी, पेशी, पेशिनी, जटामांसिनी, जटाला, नलदा, मेषी, तामसी, माता, अमृतजटा, जननी, जटावनी मृगभक्षा, मिसी, मिसिका और मिषि) ये जटामांसीके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–गु०–जटामांसी, बालछड । म०–बं०–तै०–जटामांसी । क०–बहुलगन्ध । फा०–सुबुल । अ०–सुबलतीब । इ०–स्पिक नार्ड Spikenard लै०–नारडो सटेकी Nardastachyo ॥

जटामासी–कडवी, कसैली मेधाको हितकारी, कांति तथा बलदायक, मधुर, शीतल हैं और त्रिदोष, रुधिर विकार, दाह, विसर्प तथा कुष्ठनाशक है ॥ ८० ॥

विवरण ।

जटामांसी–बालछड गुल्मजातिकी वनस्पति है, इसके पत्ते सजीवनके समान होतेहैं यह हिमालयके जंगलमे उत्पन्न होतीहै, इसकी जडपर धूसर रंगके रुंए जमे रहते ह, फूल गुच्छोंमे लगतेहैं, इसकी मूल अत्यन्त सुगन्धित होतीहै ॥

अथ शैलेयम् [भूरिछरीला] ।

शैलेयन्तु शिलापुष्पं वृद्धं कालानुसार्य्यकम् ॥ शैलेयं शीतलं हृद्यं कफपित्तहरं लघु॥कण्डूकुष्ठाश्मरीदाहविषहृद् गुदरक्तहृत् ॥ ८१ ॥

शैलेय, शिलापुष्प, वृद्ध, कालानुसार्यक, (शैलाख्य, सुभग, गिरिपुष्पक, शिलासन, शीतशिव, शैलज, शीतल, शैल, कालानुसार्य, शिलेय, शैलक, कालानुसारिवा, अश्मपुष्प, शिलापुष्प, वृद्ध, शिलाभव, शिलोद्भव, स्थविर, पलित, जीर्ण, शिलोत्थ, शिलावल्क, और शिलाप्रसून) ये भूरिछरीलेके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–भूरिछरीला, पत्थरका फूल । बं०–शैलज । म०–दगडफूल । गु०–छडीलो, पत्थरफूल । क०–कलहू । तै०–शैलेय मनेद्रव्यमु । फा०–दहाल । अ०–आर्शानां । लै०–पारमेलिया Parmalia पर्लेटा Parleta ॥

भूरिछरीला–शीतल, हृदयको हितकारी, हल्का, और कफ, पित्त, खुजली, कोढ पथरी, दाह, विष और खूनी ववासीरको दूर करताहै ॥ ८१ ॥

विवरण ।

भूरिछरीला–नदी आदि जलाशयोंके समीप जो पर्वत और वृक्ष होते हैं उन पर्वतोंके पत्थरोंपर और वृक्षोंपर वर्फ पडनेके समय सिवार और काईसी जमजाती है, उसमें छोटी छोटी पत्ती भी निकलती हैं, वह ग्रीष्मऋतुमें सूर्य्यकी किरणोंके तेजसे सूखकर छालसी उतर पडती है, उसीको छारछवीला और भूरिछरीला कहते हैं, इसमें अधिक सुगन्ध आती है ॥

अथ मुस्तकः [नागरमोथा] ।

मुस्तकं न स्त्रियां मुस्तं त्रिषु वारिदनामकम्॥कुरुविन्दश्च संख्यातोऽपरः क्रोडकसेरुकः ॥ ८२ ॥ भद्रमुस्तश्च गुन्द्रा च तथा नागरमुस्तकः ॥ मुस्तं कटु हिमं ग्राहि तिक्तं दीपनपाचनम् ॥ ८३ ॥ कषायं कफपित्तास्रतृड्ज्वरारुचिजन्तुहृत्॥ अनूपदेशे यज्जातं मुस्तकं तत्प्रशस्यते ॥ तत्रापि मुनिभिः प्रोक्तं वरं नागरमुस्तकम् ॥ ८४ ॥

मुस्तक, मुस्त, और जितने मेघके नाम हैं वे सब, (वालेय, परिपेलव, कुरुविन्द, अम्बुवाह, अम्बुभृत्, तडित्वान्, वारिवाह, वलाहक, स्तनयित्नु, तोयद, तोयधर, अभ्रनामक, गांगेय, और कसेरुक) ये नागरमोथेके संस्कृत नाम हैं ॥

कुरुविंद, क्रोड, कसेरुक, भद्रमुस्त, गूंद्रा और नागरमुस्तक, ये सब मोथेकी जाति हैं ॥

हिन्दी–मोथा, नागरमोथा। बं०–मुता, नागर मुता। म०–मोथे, नागरमोथा। गु०–मोथ, नागरमोथा। क०–मुस्ता। नागरमुस्ता। तै०–तुगमुस्त, सकहतुग। ता०–कोरय। फा०–मुश्कजमीन्। अ०–शादकोकी। लै०–साईहेरस रोटडोस Cyherus Rotundaus॥

मोथा–चरपरा, शीतल, ग्राही, कडवा, दीपन, पाचक, कसैला और कफ, पित्त, रुधिरविकार, तृषा, ज्वर, अरुचि तथा कृमिका नाश करनेवाला है। जो मोथा–अनूपदेशमें उत्पन्न होताहै वह उत्तम है, और उसमे भी मुनियोंने नागर मोथा श्रेष्ठ कहाहै॥ ८२–८४॥

विवरण।

नागरमोथा जलभूमिमें अथवा जलाशयकी सनिकट भूमिमें उत्पन्न होता है, यह तृणजातिका क्षुप है. इसके पत्ते घासके समान लम्बे लम्बे होतेहैं इसके बीचमें एक डंडी निकलतीहै वह बहुत लम्बी और तिकोनी होतीहै, उसके ऊपर हरे रगके छोटे छोटे फूल आतेहैं, उन फूलोंके इधर उधर तीन पत्ते भी लम्बे लम्बे होतेहैं उसके नीचे जडमें कसेरूके सदृश काले रगका कन्द होताहै, उसीको नागरमोथा अथवा मोथा कहतेहैं॥

अथ कर्चूरः।

कर्चूरो वेधमुख्यश्च द्राविडः कल्पकः शटी॥ कर्चूरो दीपनो रुच्यः कटुकस्तिक्त एव च॥ ८५॥ सुगन्धिः कटुपाकः स्यात्कुष्ठाऽर्शोव्रणकासनुत्॥ उष्णो लघुर्हरेच्छ्वासं गुल्मवातकफक्रिमीन्॥ ८६॥

कर्चूर, वेधमुख्य, द्राविड, कल्पक, शटी, (कार्श्य, दुर्लभ, गन्धमूलक, गन्धसार और जटाल) ये कचूरके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–कचूर, काली हलदी। बं०–कर्चूर। म०–क०–कचोरा। गु०–कचूरा। तै०–कचोरालु। फा०–जरवाद। अ०–एरकुलकाफर। इं०–लोंग जेडोरी Long Zedoory ल०–करक्युमा जेरमलीट Carcuma umleet॥

कचूर–अग्निदीपक, रुचिकारक, कडवा, चरपरा, सुगंधित, पाकमे चरपरा, गरम, हलका और कोढ बवासीर, व्रण, खाँसी, गुल्म, वात, कफ तथा कृमिको नष्ट करैहै॥ ८५॥ ८६॥

विवरण।

कचूरके क्षुप जगलमे विशेष करके होतेहैं. इसके पत्ते हलदीके समान होतेहैं. इसके नीचे अमिया हलदीके सदृश गाँठे होतीहैं. उस गांठके टुकडे टुकडे करके सुखा लेते है, उसीको कचूर कहतेहैं. यह प्रायः वर्षाऋतुमे बहुत उत्पन्न होताहै॥

अथ मुरा [मुरहरी, एकांगी]।

मुरा गन्धकुटी दैत्या सुरभिः शालपर्णिका॥ मुरा तिक्ता हिमा स्वाद्वी लघ्वी पित्तानिलापहा॥ ज्वरासृग्भूतरक्षोघ्नी कुष्ठकासविनाशिनी॥ ८७॥

मुरा, गन्धकुटी, दैत्या, सुरभि, शालपर्णिका (गन्धिनी, तालपर्णी, गन्धाढ्या, पुरागन्धवती, दिव्या, गन्धमादिनी, भूरिगन्धा, कुटी, भूतगन्धा, तालपर्णिका और मुरामासी) ये मुराके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–मुरा, एकांगी०। गु०–मुरामांसी। म०–मोरमासी, क०–मुरे॥

मुरा–कडवी, शीतल, मधुर, हलकी और पित्त, वात, ज्वर, रुधिरविकार, भूत, राक्षस, कोढ तथा खाँसीको शमन करैहै॥ ८७॥

विवरण।

मरोडफलीके चार पाँच फुट ऊँचे क्षुप वनोंमे बहुत होतेहैं, पत्ते शीशमकेसे होतेहैं, फूल पीले रगके होतेहैं; फलियें इमठी हुई रस्सीकी भांतिकी होतीहै. मरोडीखाये जो होती है इसलिये इनका नाम मरोडफली है, कई मुराको पृथक्‌ही मानते हैं॥

अथ गन्धपलाशी [कपूरकचरी]।

शठी पलाशी षड्ग्रन्था सुव्रता गन्धमूलिका॥ गन्धारिका गन्धवधूर्वधुः पृथुपलाशिका॥ ८८॥ भवेद्गन्धपलाशी तु कषाया ग्राहिणी लघुः॥ तिक्ता तीक्ष्णा च कटुकानुष्णास्यमलनाशिनी॥ शोथकासव्रणश्वासशूलहिध्मग्रहापहा॥ ८९॥

शठी, पलाशी, षड्ग्रन्था, गधमूलिका, गधारिका, गधवधू, वधू, पृथुपलाशिका, (गधमूली, ग्रंथिका, कर्पूर,

पलाश, सटी, पटी, गन्धशटा, कर्चुर, कर्चुर सुगधासटी, गंधमूला, गधोलि, गन्धमूलक, सुगन्धा, गन्धसटी, गन्ध-मूल, गन्धपलाशी, जीमूतमल्ल, कच्छोरा, हिमजा, हेमी, गडुग्रन्थि, पलाशी, हिमग्रन्था, अम्लनिशा, सुगन्धमूला, गन्धोरी, शठिका, पलाशिका, समुद्रा तृणी, दूर्वा, गन्धा-सठी, अम्लहरिद्रा, सौम्या और हिमोद्भवा) ये गन्धपला-शीके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०—गन्धपलाशी, कपूरकचरी । व०—शटी, गन्ध-शटी । म०—कपुरकचरी । गु०—कट, गन्धपलाशी । क०—गन्धशटी । तै०—किचलिगगडूल । अ०—जरवाद । लै०—करक्यूमा आरोमाटिका Carcuma Aromatica

गन्धपलाशी—कसैली, ग्राही, हलकी, कडवी, तीक्ष्ण, चरपरी, उष्णतारहित और मुखका मैल, सूजन, खांसी. व्रण, श्वास, शूल, हिचकी तथा ग्रहबाधाको दूर करनेवाली है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

विवरण ।

कपूरकचरीकी बहुत विस्तारपूर्वक बेल चलतीहै उसकी मूल सुगन्धियुक्त कन्दके समान होतीहै, उसी कन्दके टुकडे करकरके सुखा लेतेहैं. उसीको कपूरकचरी कहते हैं ॥

अथ प्रियंगुः [गन्धप्रियंगु] ।

प्रियंगुः फलिनी कान्ता लता च महिला-ह्वया ॥ गुन्द्रा गुन्द्रफला श्यामा विष्वक्से-नांगना प्रिया ॥ प्रियंगुः शीतला तिक्ता तु-वरानिलपित्तहृत् ॥ ९० ॥ रक्तातियोग-दौर्गन्ध्यस्वेददाहज्वरापहा ॥ गुल्मतृड्-विषमोहघ्नी तद्वद्गन्धप्रियंगुका ॥ ९१ ॥ तत्फलं मधुरं रूक्षं कषायं शीतलं गुरु॥ विब-न्धाध्मानबलकृत्संग्राहि कफपित्तजित् ९२

प्रियगु, फलिनी, कान्ता, लता, महिलाह्वया, गुंद्रा, गुंद्रफला, श्यामा, विष्वक्सेना, अगना प्रिया और जितने स्त्रीके नाम हैं वे सब. (गन्धफला, गोवन्दनी, कृष्णपुष्पी, कृशाङ्गी, कारम्भा, प्रियक, कडु, गोवर्णा, मेदिनी, मिथ-वल्ली, फलप्रिया, गौरी, वृत्ता, करु, कङ्गनी, भगुरा, गौर गौरवल्ली, सुभगा, पर्णभेदिनी, शुभा, पीता मगल्या, प्रेयसी, अगनाप्रिया, वनिता और नारिवल्लभा) ये प्रिय-गुके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०—प्रियगु, फूलप्रियगु, कर्न्दोन । व०—प्रियगु, गन्धप्रियगु । गु०—कांग वऊंला । म०—गहूला । क०—नोपिलगु । नै०—प्रेंकणपुचेट्टु । ता०—प्रियगु । लै०—पुनि-नस महालिब Prunus Mahallb ॥

प्रियगु—शीतल, कडवा, कसैला और वात. पित्त, रुधिरकी अधिकता, दुर्गंध, पसीना, दाह, ज्वर, गुल्म, तृषा, विष तथा मोहनाशक है । जो गुण इसमें हैं वेही फूलप्रियगुमें है । इसका फल मधुर, रूखा. कसैला, शीतल, भारी और मलबन्ध अफरा तथा बलकारक है. ग्राही कफ तथा पित्तको जीतने वाला है ॥ ९०–९२ ॥

विवरण ।

फूलप्रियगुका पर्वतोपर लताके समान क्षुप होता है. पत्ते मौलश्रीके सदृश होतेहैं. इसमें बहुत पतली बाल निकलती-है फल बादामके सदृश, बहुत छोटे गेहूंकेसे दाने होतेहैं. इसके भीतरकी गिरी बहुत सुगन्धित होती है; अरगजे इत्यादिमें पडतीहै ॥

अथ रेणुका-मरिचसदृशा [सम्हालू] ।

रेणुका राजपुत्री च नन्दिनी कपिला द्विजा ॥ भस्मगन्धा पाण्डुपुत्री स्मृता कौन्ती हरेणुका ॥ ९३ ॥ रेणुका कटुका पाके तिक्तानुष्णा कटुर्लघुः ॥ पित्तला दीपनी मेध्या पाचिनी गर्भपातिनी ॥ बलासवातकृच्चैव तृट्कण्डू विषदाह-नुत् ॥ ९४ ॥

रेणुका, राजपुत्री, नंदिनी, कपिला. द्विजा, भस्मगन्धा, पाडुपुत्री, कौंती, हरेणुका, (हरेणु, भस्मगन्धिका, कृतान्ता, स्वरनादिनी, अभीष्टा, वरक्करी, वरमुखी, वरा, कान्ता, म-हिला, हिमा, रेणु, सुपर्णिका, शिशिरा, शान्ता, वृत्ता, हैमगन्धिनी, धर्मिणी, कपिलोमा, हैमवती और पाडुपत्नी) ये रेणुकाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—रेणुका, सम्हालूके बीज । व०—रेणुक । म०—रेणुकबीज । गु०—क०—रेणुका । ता०—वेट्टी । लै०—विटे-क्स स्पेस्योजा Vitex Speciasa ॥

रेणुका—पाकमें चरपरी, कडवी, गरम, नहीं, हलकी, चरपरी, पित्तकारक अग्निको दीपन करनेवाली बुद्धिको हितकारी पाचक गर्भको गिरानेवाली और कफ, वात, विह्वलता तृषा, खुजली विष तथा दाहनाशक है ९३ ॥ ९४ ॥

विवरण।

रेणुकाका बहुत बडा वृक्ष होताहै, पत्ते गोल और फूलभी गोल होतेहैं, उसमेसे मूँग वा काली मिरचके समान जो बीज निकलते हैं उसको रेणुका कहतेहैं कोई वैद्य मेहदीके बीजोको और कोई वैद्य सभालूके बीजोंको रेणुका कहतेहैं ॥

अथ ग्रन्थिपर्णम् [गठिवन]।

ग्रन्थिपर्णं ग्रन्थिकश्च काकपुच्छश्च गुच्छकम् ॥ नीलपुष्पं सुगन्धश्च कथितं तैलपर्णकम् ॥ ९५ ॥ ग्रन्थिपर्णं तिक्ततीक्ष्णं कटूष्णं दीपनं लघु ॥ कफवातविषश्वासकण्डूदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ ९६ ॥

ग्रन्थिपर्ण, ग्रन्थिक, काकपुच्छ, गुच्छक, नीलपुष्प, सुगन्ध, तैलपर्णक, (बर्हिपुष्प, स्थौणेय, ग्रन्थिपर्णक, शुक, कुकुर, वर्ह, शुकवर्ह, विशीर्णाख्य, स्वारामगुच्छक, वर्हि, पुच्छ, शुकच्छद, गुत्थक, बर्हिकुसुम और काकपुष्प) ये गठौनेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—गठौना, गठिवन । व०—गेठेना । म०—गठोनाचे झाड । गु०—तगरनी गाठ ॥

गठिवन—कडवा, तीक्ष्ण, चरपरा, गरम, अग्निप्रदीपक, हलका और कफ, वात, विष, श्वास, खुजली और दुर्गन्धता नाशक है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

विवरण।

गठिवन विशेष करके कामरूदेशमें बहुत उत्पन्न होता है, यह तृण जातिकी औषधि है, इसके पत्ते अंगुलीके समान लम्बे २ होते हैं और फूल नीले आते हैं, उन फूलोके गुच्छे लगते हैं, इसमे बहुतसी गाठी होती हैं, इसीसे इसको गठिवन कहते है, इसमे सुगधि आती है।

अथ स्थौणेयकम् [थुनेर]।

स्थौणेयकं बर्हिबर्हं शुकबर्हश्च कुक्करम् ॥ शीर्णरोमशुकश्चापि शुकपुष्पं शुकच्छदम् ॥ ९७ ॥ स्थौणेयकं कटु स्वादु तिक्तं स्निग्धं त्रिदोषनुत् ॥ मेधाशुक्रकरं रुच्यं रक्षोघ्नं ज्वरजन्तुजित् ॥ हन्ति कुष्ठास्रतृड्दाहदौर्गन्ध्यतिलकालकान् ॥ ९८ ॥

स्थौणेयक, बर्हिवर्ह, शुकवर्ह, कुक्कुर, शीर्णरोम शुक, शुकपुष्प, शुकच्छद, (विकीर्णसंज्ञ, स्थौणेय, हरित, शुक, पुच्छ, बर्हिशिख, मयूरचूड, विकीर्णरोम, कीरवर्णक, बर्हिचूड, शुकपिच्छ, विकच और शीर्णरोमक) ये थुनेरके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—थुनेर । गु०—भरुठ । क०—स्थौणजे ॥

थुनेर चरपरी, मधुर, चिकनी, त्रिदोषनाशक, बुद्धिदायक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारी, भूतप्रेतनाशक और ज्वर, जीव, कोढ, रुधिरविकार, तृषा, दाह, दुर्गन्ध, तथा तिलकालक इन सब रोगोको दूर करैहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

अथ ग्रन्थिपर्णस्यैव भेदः [भटेउर]।

निशाचरो धनहरः कितवो गणहासकः ॥ रोचको मधुरस्तिक्तः कटुः पाके कटुर्लघुः ॥ ९९ ॥ तीक्ष्णो हृद्यो हिमो हन्ति कुष्ठकण्डूकफानिलान् ॥ रक्षाश्रीस्वेदमेदोऽस्रज्वरगन्धविषव्रणान् ॥ १०० ॥

निशाचर, धनहर, कितव और गणहासक ये भटेउरके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—गु०—भटेउर॥ भटेउर—रुचिकर्ता, मधुर, कडवा चरपरा, पाकमेंभी चरपरा, हलका, तीक्ष्ण, हृदयको हितकारी, शीतल और कोढ, खुजली, कफ, वात, भूतादिक, अलक्ष्मी, पसीना, मेद, रुधिरविकार, ज्वर, दुर्गन्ध, विष तथा व्रण विनाशक है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

विवरण।

थुनेर और भटेउर वेभी दोनो गठिवनहीके भेद हैं ॥

अथ तालीसपत्रम्।

तालीसमुक्तं पत्राढ्यं धात्रीपत्रश्च तत्स्मृतम्॥ तालीसं लघु तीक्ष्णोष्णं श्वासकासकफानिलान् ॥ निहन्त्यरुचिगुल्मामवह्निमान्द्यक्षयामयान् ॥ १०१ ॥

तालीस, पत्राढ्य, धात्रीपत्र (तालीसपत्र, शुकोदर, ग्रथिकापत्र, तुलसीच्छद, पत्राख्य, अर्कवध, करिपत्र, करिच्छद, नील, नीलाम्बर, ताल, तालीपत्र, तमाह्वय, तालीसपत्रक, तामलकीदल, मुखरोगहर, हृद्य, सुपत्र, अर्कव्राह, करीपत्र, आमलकीपत्र और घनच्छद) ये तालीसपत्रके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—क०—गु०तालीसपत्र । व०—तालीशपत्र । म०—लघुतालीसपत्र । तै०—तालीशपत्री । द—जन्नव । अ०—तालीसफर । लै०—टेक्ससवेकेटा Tessubaccata॥

तालीसपत्र—हलका, तीक्ष्ण, गरम और श्वास खाँसी,

कफ, वात, अरुचि, गुल्म, आम, अग्निकी मंदता, तथा क्षयको क्षय करैहै ॥ १०१ ॥

विवरण ।

तालीसपत्रका वृक्ष अत्यन्त बडा होताहै, पत्ते लम्बे लम्बे चिकने होतेहैं, आमलेके समान फलोंके गुच्छे आते हैं इसकी लकडी बहुत पक्की होतीहै, व्यवहारमें इसके पत्ते लिये जातेहैं ॥

अथ कङ्कोलं सुगन्धद्रव्यम् ।

[सीतलचीनी]

कंकोलं कोलकं प्रोक्तं तथा कोषफलं स्मृतम् ॥ कंकोलं लघु तीक्ष्णोष्णं तिक्तं हृद्यं रुचिप्रदम् ॥ आस्यदौर्गन्ध्यहृद्रोगकफवातामयान्ध्यहृत् ॥ १०२ ॥

कंकोल, कोलक, कोषफल, (कंकोलक, तैलसाधन कोशफल, फल, कोरक, काकोल, गन्धव्याकुल, कृतफल, कटुकफल, द्वीप, स्थूलमरिच, माधवोचित, कटूफल कालमरिच, कटुक, कोलमरिच, मागधोचित, कृतफल, द्वीपसम्भव और सुगंधिफल) ये शीतलचीनीके सम्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–शीतलचीनी, कवावचीनी, कंकोल। बं०—काकला। म०—कंकोल, कापुरचीनी। गु०—चणकवाव, कंकोल। तै०—कवावचीनी। फा०—कवावह। अ०—कवाव, हव्वउलरुस। इं०—क्यूबेवपेपर Cubeb Pepper लै०—क्यूबेवा आफिसिनेलिस Cubeba Officinalis॥

शीतलचीनी–हलकी, तीक्ष्ण गरम, कडवी, हृदयको हितकारी, रुचिकारक और मुखकी दुर्गन्धता, हृदयरोग, कफ, वात तथा अन्धताको हरनेवाली है ॥ १०२ ॥

विवरण ।

कंकोल मिरच दो जातिकी होतीहैं. बडी और छोटी इन दो भेदोंसे दो प्रकारकी समझनी चाहिये. बडी तो पाचक और क्षुधावर्द्धक है, और छोटी मुखसे डालनेसे शीतलताको उत्पन्न करतीहै, इसमे इलायची और पिपरमेण्टके सदृश सुगंधि आतीहै इसमें मोटे वकलवालीका नाम कंकोल और पतले वकलवालीका नाम शीतलचीनी है और दोनोंके स्वादमें बहुत अन्तर है ॥

अथ गन्धकोकिला गन्धमालती च ।

स्निग्धोष्णा कफहत्तिक्ता सुगन्धा गंधकोकिला ॥ गन्धकोकिलया तुल्या विज्ञेया गन्धमालती ॥ १०३ ॥

गन्धकोकिला–स्निग्ध, गरम, कफको हरनेवाली और सुगंधित है। गंधमालतीभी गन्धकोकिलाके सदृश जाननी ॥ १०३ ॥

अथ लामज्जकम् ।

[उशीरवत् पीतच्छवितृणविशेषः] ।

लामज्जकं सुनालं स्यादमृणालं लयं लघु ॥ इष्टकापथकं सेव्यं नलदश्चावदातकम् ॥ ॥ १०४ ॥ लामज्जकं हिमं तिक्तं लघु दोषत्रयास्रजित् ॥ त्वगामयस्वेदकृच्छ्रदाहपित्तास्ररोगनुत् ॥ १०५ ॥

लामज्जक, सुनाल, अमृणाल, लय, लघु, इष्टकापथ, सेव्यनलद, अवदातक, (सुनील, शीघ्र, दीर्घमूल, जलाशय और अवदाहक) ये लामज्जकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–लामज्जक। बं०—गन्धवेणा। म०—लावज, पिंवळावाळा। गु०—सुगंधिपीलु। तै०—तेल्लवट्टिवेरु।

लामज्जक–शीतल, कडवा, हलका और तीनों दोष, रक्तविकार त्वचाके रोग, पसीना, मूत्रकृच्छ्र, दाह तथा रक्तपित्तको नष्ट करै है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

विवरण ।

लामज्जक–तृणजातिका सुगंधित पदार्थ है. इसका रंग पीला होताहै. इसकी जड लम्बी होती है और यह विशेषकरके जलाशयके निकट उत्पन्न होताहै ॥

अथ एलवालुकम् [कंकोलसदृशं कुष्ठगन्धि] ।

एलवालुकमैलेयं सुगन्धि हरिवालुकम् ॥ एलवालुकमेलालु कपित्थं पत्रमीरितम् ॥ १०६ ॥ एलालु कटुकं पाके कषायं शीतलं लघु ॥ हन्ति कण्डूव्रणच्छर्दितृट्कासारुचिहृद्रुजः ॥ बलासविषपित्तास्रकुष्ठमूत्रगदक्रिमीन् ॥ १०७ ॥

एलवालुक, ऐलेय, सुगन्धि, हरिवालुक, एलालु, कपित्थ, पत्र (वालु, वालुक, एलावालुक, एलवालु, आलुक कपित्थत्वक्, गन्धत्वक्, कुष्ठ, गन्धी, कपित्थ, गन्धत्वक्, एलालु और एल्वालु) ये एलुएके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–एलुआ। बं०—एलवालुका। म०—वेलची। तै०—कुतुखडम। गु०—एलवा ॥

एलुआ—चरपरा, पाकमे कसैला, शीतल, हलका और खुजली, व्रण, वमन, तृषा, खांसी, अरुचि, हृदयरोग, कफ, विष, पित्त, रक्तविकार, कोढ, मूत्रकृच्छ्र, तथा कृमिको शमन करैहै ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

विवरण।

एलुआ सुगंधित पदार्थ है. इसका रंग काला होताहै इसमे कूठके समान गन्ध आतीहै । एलवा गुवारपाठेके रससे बनाया जाता है जिसे मुसब्बर एलवा भी कहतेहैं पर बहुत वैद्य एलवालुक एलवेसे पृथक् मानतेहैं (मु० ध०)॥

कैवर्तीमुस्तकम्।

कुटन्नटं दासपुरं वालेयं परिपेलवम् ॥ प्लवगोपुरगोनर्दकैवर्तीमुस्तकानि च ॥ ॥ १०८ ॥ मुस्तावत्पेलवपुटं शुकाभं स्याद्वितुन्नकम् ॥ वितुन्नकं हिमं तिक्तं कषायं कटु कान्तिदम् ॥ कफपित्तास्रवीसर्पकुष्ठकण्डूविषप्रणुत् ॥ १०९ ॥

कुटन्नट, दासपुर, वालेय, परिपेलव, प्लव, गोपुर, गोनर्द, कैवर्ती, मुस्तक, (वन्य, कुटन्नट, सितपुष्प, दासपूर, कैवर्तमुस्त, दशपूर, कैवर्त्ती, परिपेल, पारिपेल, कैवर्त्तिमुस्तक, कैवर्त्तमुस्तक, वनसम्भव, धान्य, शीतपुष्प और जीर्णबुध्नक) ये केवटी मोथेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—केवटीमोथा, व०—केडट मुथा। गु०—कैवडीमोथ। क०—कोमठी मोथा। केवडी मोथा, मोथेके सदृश कोमल पत्रवाला और तोतेकीसी कांतिके सदृश होताहै इसके वृक्षोको वितुन्नक कहते हैं ॥

केवडीमोथा—शीतल, कडवा, कसैला, चरपरा, कांतिदायक और कफ, पित्त, रुधिरविकार, विसर्प, कुष्ठ, कडू तथा विषनाशक है ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

विवरण।

केवडीमोथेकी तृणजाति है, उसकी जडमें सुगन्ध आती है, और इसपर सुफेद फूल लगतेहैं ॥

अथ स्पृक्का सुगंधिद्रव्यम् (शाकविशेषः)।

स्पृक्काऽसृग्ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता लघुः ॥ समुद्रान्ता वधूः कोटिवर्षाऽलङ्कोपिकेत्यपि ॥ ११० ॥ स्पृक्का स्वाद्वी हिमा वृष्या तिक्ता निखिलदोषनुत् ॥ कुष्ठकण्डूविषस्वेददाहास्रज्वररक्तहृत् ॥ १११ ॥

स्पृक्का, असृक्, ब्राह्मणी, देवी, मरुन्माला, लता, लघु, समुद्रान्ता, वधु, कोटिवर्षा, अलकोपिका, (लतामरुत्, लकारिका, कुटिला, देवपुत्रिका, देवपुत्री, पृक्का, पिशुना, लंकायिका, लकापिका, मनु, मालालिका, मालानी, लघ्वी, पञ्चगुप्तिरसा, समुद्रकान्ता, मरुत्, माला, कोटी, वर्षा, लकोपिका, तस्कर, चोरक और चण्ड) ये असवरगके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—असवरग, असरक। व०—पिडिङ्शाक। म०—कर्पूरवल्ली। गु०—कपूरी मधुरी। ता०—कारी तुव। तै०—स्पृक्कुथनेडुद्रव्यमु। क०—हिके ॥

असवरग—स्वादु, शीतल, शुक्रवर्द्धक, चरपरा और सम्पूर्ण दोष, कोढ, खुजली, विष, पसीना, दाह, रुधिरविकार और रक्तगत ज्वरको दूर करैहै ॥ ११० ॥ १११ ॥

विवरण।

असबरग सुगन्धित पदार्थ है, उत्तरखण्डमे बहुत प्रसिद्ध है ॥

सुगंधिद्रव्यम्।

अथ पर्पटी [पनडी]।

पर्पटी रञ्जना कृष्णा जतुका जननी जनी ॥ जतुकृष्णाग्निसंस्पर्शा जतुकृच्चक्रवर्त्तिनी ॥ ११२ ॥ पर्पटी तुवरा तिक्ता शिशिरा वर्णकृल्लघुः ॥ विषव्रणहरी कण्डूकफपित्तास्रकुष्ठनुत् ॥ ११३ ॥

पर्पटी, रजना, कृष्णा, जतुका, जननी, जनी, जतुकृष्णा, अग्निसंस्पर्शा, जतुकृत्, चक्रवर्त्तिनी, (कृष्णा, जनेष्टा, जतुकारी, तिर्यक्फला, निशान्धा, सुपत्रिका, बहुपुत्री, राजवृक्षा, कपिकच्छुफलोपमा, सूक्ष्मवल्ली, भ्रमरी, कृष्णवल्लिका, विज्जुलिका, कृष्णरुहा, ग्रन्थिपर्णा, सुवर्चिका, तरुवल्ली, दीर्घफला, रजनी, जतुका और जनिजन्तुका) ये पपडीके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी—पपडी, पपरी, पनरी। गु०—पर्पटी। म०—पापडी ॥

पपडी—कसैली, कडवी, शीतल, वर्णको उत्तम करनेवाली, हलकी और विष, व्रण, खुजली, कफ, पित्त, रुधिरविकार, तथा कोढको नष्ट करै है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

विवरण ।

पर्पटी–पपडी–पनडी–सुगन्धित द्रव्य मालवे देशमे अधिक विख्यात है. इस देशमे इसको पनडी नामसे प्रसिद्ध कर रक्खा है ॥

अथ नलिका ।

(उत्तरापथे प्रसिद्धा सुगन्धा वलाकृतिः पवारी इति च क्वचित्प्रसिद्धा)।

नलिका विद्रुमलता कपोतचरणा नटी ॥ धमन्यञ्जनकेशी च निर्मध्या सुषिरा नली ॥११४॥ नलिका शीतला लघ्वी चक्षुष्या कफपित्तहृत् ॥ कृच्छ्राश्मवाततृष्णास्रकुष्ठकण्डूज्वरापहा ॥ ११५ ॥

नलिका, विद्रुमलता, कपोतचरणा, नटी, धमनी, अजनकेशी, निर्मध्या, सुषिरा, नली, (कपोताङ्घ्रि, विद्रुमलतिका, कपोतचाणा, नलिनी, अध्मानी, स्तुत्या, रक्तदला और नर्तकी) ये नलीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–नली । गु०–नलिका ॥

नली–शीतल, हलकी, नेत्रोको हितकारी और कफ, पित्त, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, वात, तृषा, रुधिरविकार, कोढ, खुजली, तथा ज्वरको शमन करैहै ॥११४॥११५॥

विवरण ।

नलिका एक सुगन्धित औषधी है उत्तरखण्डमे नलीनामसे विख्यात है. इसका स्वरूप मूँगेके समान होताहै, पत्ते लाल और फल कुछ लम्बे कुछ गोलाई लियेहुए बिंबाफलके समान लगते हैं कहीं २ यह पवारी और पवाली नामसे प्रसिद्ध है ॥

अथ प्रपौण्डरीकं सुगन्धद्रव्यम [पुण्डेरी] ।

प्रपौण्डरीकं पौण्डर्यं चक्षुष्यं पौण्डरीयकम् ॥ पौण्डर्यं मधुरं तिक्तं कषायं शुक्रलं हिमम्॥चक्षुष्यं मधुरं पाके वर्ण्यं पित्तकफप्रणुत् ॥ ११६ ॥

॥ इति श्रीभावप्रकाशे कर्पूरादिवर्गः ॥

प्रपौण्डरीक, पौण्डर्य, चक्षुष्य, पौण्डरीयक, (श्रीपुष्प, पुण्डरी, शीत, पुण्डरीयक, पुण्डर्य, पुण्डरीक, पौण्डरी, तालपुष्पक, मालपुष्प, दृष्टिकृत्, स्थलपद्म, सुपुष्प, सानुज और अनुज) ये पुण्डरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पुण्डरिया, पुण्डेरी । गु०–पुण्डरिया ॥

पुण्डेरी–मधुर, कडवी, कसैली, वीर्यवर्द्धक, शीतल, नेत्रोको हितकारी, पाकमें मधुर, वर्णको उत्तम करनेवाली और पित्त तथा कफका नाश करै है ॥ ११६ ॥

विवरण ।

प्रपौण्डरीक एक सुगन्धित वृक्ष होताहै, इसको कोई कोई यूनानी वैद्य मगीरा कहतेहैं । पत्ते हरे, फूल, बैंगनी और लकडी पीली होती है ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृते वैद्यसजीविनीटीकायां कर्पूरादिवर्गः समाप्तः ॥

अथ गुडूच्यादिवर्गः ।

गुडूच्या उत्पत्तिर्नामानि गुणाश्च ।

अथ लंकेश्वरो मानी रावणो राक्षसाधिपः॥ रामपत्नीं बलात्सीतां जहार मदनातुरः॥ ॥ १ ॥ ततस्तं बलवान्रामो रिपुं जायापहारिणम् ॥ वृतो वानरसैन्येन जघान रणमूर्धनि ॥ २ ॥ हते तस्मिन्सुराराती रावणे बलगर्विते ॥ देवराजः सहस्राक्षः परितुष्टश्च राघवे ॥३॥ तत्र ये वानराः केचिद्राक्षसैर्निहता रणे॥ तानिन्द्रो जीवयामास संसिच्यामृतवृष्टिभिः ॥ ४ ॥ ततो येषु प्रदेशेषु कपिगात्रात्परिच्युताः ॥पीयूषबिन्दवः पेतुस्तेभ्यो जाता गुडूचिका ॥ ५ ॥

एकदा अभिमानी राक्षसोका अधिपति लंकेश्वर रावण कामातुर हो बलात्कारसे रामपत्नी सीताको हरकर ले गया, तब रामचन्द्रने वानरसेनाकी सहायता लेकर स्त्रीहरण करनेवाले शत्रु रावणको रणभूमिमे मारा. जब देवताओका शत्रु और बलकरके गर्वकरनेवाला रावण मरगया, तब देवताओका राजा इन्द्रने रामचन्द्रपर अत्यंत प्रसन्न होकर युद्धमें राक्षसोके हाथसे मरे हुए वानरोको अमृतकी वर्षा करके जीवित किया. इस प्रकार अमृतसे भीजे वानरोके शरीर परसे जहाँ जहाँ अमृतकी बूँद गिरीं वहीं वहीं गिलोय उत्पन्न हुई है ॥ १–५ ॥

गुडूची मधुपर्णी स्यादमृताऽमृतवल्लरी ॥ छिन्ना छिन्नरुहा छिन्नोद्भवा वत्सादनीति च ॥६॥ जीवन्ती तन्त्रिका सोमा सोम-

वल्ली च कुण्डली ॥ चक्रलक्षणिका धीरा विशल्या च रसायनी ॥ ७ ॥ चन्द्रहासी वयस्था च मण्डली देवनिर्मिता ॥ गुडूची कटुका तिक्ता स्वादुपाका रसायनी ॥८॥ संग्राहिणी कषायोष्णा लघ्वी बल्याग्निदीपनी ॥ दोषत्रयामतृड्दाहमेहकासांश्च पाण्डुताम् ॥ ९ ॥ कामलाकुष्ठवातास्रज्वरक्रिमिवमीन्हरेत् ॥प्रमेहश्वासकासार्शःकृच्छ्रहृद्रोगवातनुत् ॥ १० ॥

गुडूची, मधुपर्णी, अमृता, अमृतवल्लरी, छिन्ना, छिन्नरुहा, छिन्नोद्भवा, वत्सादनी, जीवन्ती, तन्त्रिका, सोमा, सोमवल्ली, कुण्डली, चक्रलक्षणिका, धीरा, विशल्या, रसायनी, चन्द्रहासी, वयस्था, मंडली, देवनिर्मिता, (अमृतवल्ली, तन्त्री, निर्जरा, जीवन्तिका, वातरक्तारि, पामरोद्धारा, पित्तघ्नी, उद्धारा, गुडूची, वरा, ज्वरारि, श्यामा, सुरकृता, मधुपर्णिका, अमृतलता, सोमलतिका, भिषक्प्रिया, कुण्डलिनी, नागकुमारिका, छिन्निका, चन्द्रहासा, अमृतसम्भवा, चक्राङ्गी और नागकन्या) ये गिलोयके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–गिलोय । व०–गुलंच । म०–गुळवेल । गु०–गलो । क०–अमरदवल्ली । तै०–तिप्पतिगे, तियातिज । ता०–सिन्दी, लकोद फा०–गलोय । अ०–गिलोइ । लै०–कोक्यूलस कोर्डी फोलियस Coculus cordifalious ॥

गिलोय–चरपरी, कडवी, पाकमें स्वादिष्ठ, रसायनरूप, ग्राही, कसैली, गरम, हलकी, बलदायक, अग्निप्रदीप और वातादि तीनो दोष, आम, तृषा, दाह, प्रमेह, खासी, पाण्डुरोग, कामला, कोढ, वायु, रुधिरविकार, ज्वर, कृमि, वमन, श्वॉस, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र हृदयरोग, तथा वात विनाशक है ॥ ६–१० ॥

विवरण ।

गिलोयकी बेल वृक्षोंपर फैल जाती है. पत्ते पानके समान शोभायमान होतेहैं वैशाख जेठमे मौर आताहै, उसीमे छोटे छोटे फूल भी आतेहै परन्तु उस समय पुराना पत्ता एकभी नही रहता. पीले पड पड कर सब गिर जाते हैं, कोमल कोमल नवीन पत्ते निकलते है, और गिलोय दो जातिकी होतीहै. एक गिलोयपर फल नही आते, दूसरी जातिपर फल मकोईके समान नीलरंगके गुच्छोंमे लगते हैं, पकनेपर लाल लाल होजातेहैं इसी गिलोयका सत्त्व निकलताहै जिसकी वैद्य लोग अत्यन्त प्रशसा करतेहैं ॥

अथ नागवल्ली [पान] ।

ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागिनी नागवल्लरी ॥ ताम्बूलं विशदं रुच्यं तीक्ष्णोष्णं तुवरं सरम् ॥ ११ ॥ वश्यं तिक्तं कटुक्षारं रक्तपित्तकरं लघु ॥ बल्यं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यमलवातश्रमापहम् ॥ १२ ॥

ताम्बूलवल्ली, ताम्बूली, नागिनी, नागवल्लरी, (नागवल्ली, नागवल्लिका, दिवाभीष्टा, पर्णलता, ताम्बूली, सप्तशिरा, सप्तलता, फणिवल्ली, भुजगलता, भक्ष्यपत्र, ताम्बूलवल्लिका, पर्णग्रहाशया, मुखभूषण और ताम्बूल) ये पानके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पान, नागरवेल । व०–पान, म०–नागवेल पानें । गु०–नागरवेलना पान । क०–नागरवल्ली । तै०–तमलपाकु । ता०–वेट्टिली । फा०–वर्गतंबोल । अ०–कान । इ०–बेटललीफ Betel-leaf लै०–पाइपर बेटल Piper Betel ॥

पान–विशद, रुचिकारी, तीक्ष्ण, गरम, कसेला, दस्तावर, वश्यकारक, चरपरा, खारी, रक्तपित्तकरनेवाला, हलका, बलदायक, और कफ, मुखकी दुर्गन्धता, मल, वात, तथा परिश्रम नाशक है ॥ ११ ॥ १२ ॥

विवरण ।

पानकी वेल अत्यन्त शोभायमान और मनोहर होतीहै. इसकी कई जाति हैं, बगला, मोहवा, महाराजपुर-बिलोआ कपूरी, फुलवा, इन प्रदेशोंमे पान बहुत होतेहैं परन्तु इनमे मोहवे के पानकी और फुलवेके पानकी अधिक प्रशसा है. इसकी वेल विशेष करके जहॉ तहॉ टट्टियोंपर अधिक फैली रहतीहै. कही कही अगस्तियाके वृक्षपर भी इसकी वेल फैली हुई देखनेमे आतीहै ॥

अथ बिल्वः [बेल] ।

बिल्वः शाण्डिल्यशैलूषो मालूरश्रीफलावपि ॥ श्रीफलस्तुवरस्तिक्तो ग्राही रूक्षोऽग्निपित्तकृत् ॥ १३ ॥ वातश्लेष्महरो बल्यो लघुरुष्णश्च पाचनः ॥

बिल्व, शाडिल्य, शैलूष, मालूर, श्रीफल. (महाकपित्थाख्य, गोहरीतकी, पूतिवात, मगल्य, त्रिशिख, कपीतन, महाकपित्थ, अतिमागल्य, महाफल. शल्य, हृद्यगन्ध, कर्कटाह, शैलपत्र, शिवेष्ट, पत्रश्रेष्ठ, त्रिपत्र, गन्धपत्र,

लक्ष्मीफल, गन्धफल, दुरारुह, त्रिशाखपत्र, शिवद्रुम, सदाफल, सत्यफल, सुनीतिके, समीरसार, सत्यधर्म, अधःरारुह कण्टकाढ्य, सितानन, नीलमल्लिक और पीतफल) ये बेलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–बेल । ब०–बिल्व, बेल । म०–बेलवृक्ष, बेलफल । गु०–बीली । क०–बेलड । तै०–मारेडी । इं०–बेंगालकिन्स Bengalkins लै०–इगलमार मेलाज Egalemar Melanz ॥

बेल–कसैला, कडवा, ग्राही, रूखा, अग्नि तथा पित्तको करनेवाला, वात तथा कफको हरनेवाला. बलदायक, हलका, गरम और पाचक है ॥ १३ ॥

विवरण ।

बेलका वृक्ष बडा होताहै. शाखाओंमें कांटे होतेहैं. पत्ते डालियोंमें बहुत होतेहैं. एक डण्ठलमें तीन तीन त्रिशूलाकार होतेहैं. फूल सफेद और सुगन्धित छोटे छोटे होतेहैं. फल गोल गोल कडे छिलकेके तोलमें आधपावसे लेकर ढाईसेर तकका होताहै. खानेमें स्वादिष्ठ और बीज बहुत होतेहैं और गोंदके समान एक पदार्थ चुपकता हुवा उसके गूदेमें मिला होताहै । ग्रीष्मऋतुके आरम्भमें इसके पुराने पत्ते गिरकर नवीन पत्ते लाल रंगके निकलतेहैं परन्तु फिर हरे होजातेहैं. इसकी लकडी बहुत पवित्र गिनी जाती है. बहुत लोग चन्दनके समान मानतेहैं. इसके मूलकी छाल दशमूलके काथमें एक प्रधान औषधि मानी जाती है बेलके वृक्ष हिन्दुस्थानके प्रत्येक स्थानमें होतेहैं और वनमें तो बेलका वनही है इसका कच्चा फल औषधिके प्रयोगमें आताहै ॥

अथ गम्भारी [खम्भारी]।

गम्भारी भद्रपर्णी च श्रीपर्णी मधुपर्णिका ॥ काश्मीरी काश्मरी हीरा काश्मर्यः पीतरोहिणी ॥ १४ ॥ कृष्णवृन्ता मधुरसा महाकुसुमिकापि च ॥ काश्मरी तुवरा तिक्ता वीर्योष्णा मधुरा गुरुः॥१५॥ दीपनी पाचनी मेध्या भेदिनी भ्रमशोषजित् ॥ दोषतृष्णामशूलार्शोविषदाहज्वरापहा ॥ १६ ॥ तत्फलं बृंहणं वृष्यं गुरु केश्यं रसायनम् ॥ वातपित्ततृषारक्तक्षयमूत्रविबन्धनुत् ॥ १७ ॥ स्वादु पाके हिमं स्निग्धं तुवराम्लं विशुद्धिकृत् ॥ हन्याद्दाहतृषावातरक्तपित्तक्षतक्षयान् ॥ १८ ॥

गम्भारी, भद्रपर्णी, श्रीपर्णी, मधुपर्णिका, काश्मीरी, काश्मरी, हीरा, काश्मर्य, पीतरोहिणी. कृष्णवृन्ता, मधुरसा, महाकुसुमिका, (सर्वतोभद्रा, भद्रा, गोपभद्रिका, कम्भारिका, कुमुदा, सद्भद्रा, कृष्णफला, कट्फला, कृष्णवृन्तिका सर्वतोभद्रिका, स्निग्धपर्णी, सुभद्रा, कम्भारी, गोपभद्रा, क्षार्गिणी, विदारिणी महाभद्रा, मधुभद्रा, स्वरुभद्रा, कृष्णा, अश्वेता, रोहिणी, गृष्टि, स्थूलत्वचा, मधुमती, सुफला, मोदिनी महाकुमुदा, सुदृढत्वचा महाकुमुदिका और पीतफला) ये कुम्भेरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कुम्भेर, खम्भारी । ब०–गाम्भारी गाभार । म०–गु०–शिवण । तै०–पाल्गुगुटी चेट्टु । क०–शीवनी। लै०–मीलाइना आर्बोरिया G. milina Arboria॥

कुम्भेर–कसैली, कडवी, उष्णवीर्य, मधुर, दीपन, पाचक, बुद्धिको हितकारी. भेदक और भ्रम, शोष, तृषा, आम, शूल, बवासीर, विष, दाह तथा ज्वरको नष्ट करैहै। कुम्भेरका, फल वीर्यवर्द्धक, बलदायक, भारी केशोंको हितकारी. रसायन, पाकमें मधुर, शीतल, स्निग्ध, कसैला, खट्टा, कोठेको शुद्ध करनेवाला और वात, पित्त, तृष्णा, रुधिरविकार, क्षय मूत्रविबन्ध, दाह, तृषा, वात, रक्तपित्त, तथा क्षतक्षयको शमन करैहै ॥ १४–१८ ॥

विवरण ।

कुम्भेरका वृक्ष बहुत बडा होताहै. पत्ते समुद्रशोष और पीपलके पत्तोंसे कुछेक बडे होतेहैं. फूल पीलेरंगके लगते है. फलभी पीले होतेहै इसकी छाल सफेद रंगकी होतीहै और इसमें दूध निकलताहै ॥

अथ पाटला [पाढल] घण्टापाढलिः [घण्टापाढल]।

पाटलिः पाटलाऽमोघा मधुदूती फलेरुहा ॥ कृष्णवृन्ता कुबेराक्षी कालस्थाल्यलिवल्लभा ॥ १९ ॥ ताम्रपुष्पी च कथिताऽपरा स्यात्पाटला सिता ॥ मुष्कको मोक्षको घण्टापाटलिः काष्ठपाटला॥२०॥

कालस्थलीत्यत्र काचस्थालीत्येके ॥

पाटला तुवरा तिक्तानुष्णा दोषत्रयापहा॥ अरुचिश्वासशोथास्रच्छर्दिहिकातृषाहरी ॥

॥२१॥ पुष्पं कषायं मधुरं हिमं हृद्यं कफास्रनुत्॥ पित्तातिसारहृत्कण्ठ्यं फलं हिक्कास्रपित्तहृत् ॥ २२ ॥

पाटलि, पाटला, अमोघा, मधुदूती, फलेरुहा, कृष्णवृन्ता, कुबेराक्षी, कालस्थाली, अलिवल्लभा, ताम्रपुष्पी, (कर्बूरा, अम्बुवासिनी, कालवृन्ता, कुम्भी, तोयाधिवासिनी, तोयपुष्पी, कुम्भिका, सुपुष्पिका, वसन्तदूती, स्थाली, स्थिरगन्धा, अम्बुवासी, कालवृन्ती, कामदूती, अलिप्रिया और कोकिला) ये पाढलके संस्कृत नाम हैं ॥ और (अमुष्कक, मोक्षक, घटापाटलि, काष्ठपाटला, श्वेतपाटला, श्वेतकुम्भी, श्वेतकुबेराक्षी, श्वेतफलेरुहा, काष्ठकुबेराक्षी और काष्ठपाटलि) ये घटापाढलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पाढल, पाडर। बं०–पारुल । म०–रक्तपाडर गु०–काकच । क०–हादरी । तै०–कलगोरु । ता०–पाड्रि । इं०–बनडूकनट Banduknut लै०–केसलपीनिया बनडूकेला Coesalpinia Banducella ॥

हिन्दी–सफेदपाढल, घण्टापाढल । बं०–घटापारुल । म०–श्वेतपाढल, गु०–धोलीकाकच । क०–बिलीय हादरी । फा०–खायइवली ॥

पाढल–कसैली, कडवी, उष्णतारहित, तीनो दोषनाशक और अरुचि, श्वास, सूजन, रुधिरविकार, वमन, हिचकी तथा तृषाको नष्ट करै है । पाढलका फूल–कसैली, मधुर, शीतल, हृदयको सुख देनेवाला, कफ तथा रुधिर विकार नष्ट करै हैं और फल–कंठको हितकारी और पित्तातीसार, हिचकी तथा रक्तपित्तको दूर करै है ॥ १९–२२ ॥

विवरण ।

पाढलके वृक्ष वनमें होते हैं. फूल गुलाबी और तांबेके रंगका होता है, पत्ते बेलके समान होते हैं. यह पाढल दो प्रकारका होता है, दूसरा सुफेदरंगका पाढल होता है उसको श्वेतपाढल कहते हैं ॥

अथ अग्निमन्थः [अगेथू, अरनी] ।

अग्निमन्थो जयः स स्याच्छ्रीपर्णी गणिकारिका ॥ जया जयन्ती तर्कारी नादेयी वैजयन्तिका ॥२३॥ अग्निमन्थः श्वयथुनुद्वीर्योष्णः कफवातहृत् ॥ पाण्डुनुत्कटुकस्तिक्तस्तुवरो मधुरोऽग्निदः ॥ २४ ॥

अग्निमन्थ, जय, श्रीपर्णी, गणिकारिका, जया, जयन्ती, तर्कारी, नादेयी, वैजयन्तिका, (हविर्मन्थ, कर्णिका, गिरिकर्णिका, श्रीपर्ण, तेजोमन्थ, ज्योतिष्क, पावक, अरणि, वह्निमन्थ, मथन, पावकारणी, अग्निमथन, अरणीकेतु, विजया, अनन्ता, नदीजा, तनुत्वक्, वह्निमूल और अग्निबीजक) ये अरणीके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–अरनी, गनियारी, अगेथु। बं०–गणिर, आगगन्त म०–थोरअरेण । गु०–अरणी । क०–नरुवल । तै०–नैलीचेटटु । उत्क०–अगी वथ । लै०–क्लेरोडेन्ड्रोन फ्लोमोइडिस Clerodendrom Phlomaides ॥

अरनी–उष्णवीर्य, चरपरी, कडवी, कसैली, मधुर, अग्निवर्धक, और, सूजन, कफ, वात, तथा पाण्डुरोगको हरै है ॥ २३ ॥ २४ ॥

विवरण ।

अरणीके बडे नडे वृक्ष सब स्थानोमें होतेहैं, पत्ते गोल किञ्चित् नोकीले और अत्यन्त कोमल होतेहैं, फूल सुफेद रंगके गुच्छेदार होतेहैं, फल छोटे करौंदेके, समान होतेहैं, और इसके पत्तोमे गन्ध आतीहै, डालियें नीचेको झुकी होतीहै, इसकी डालियोंकी लकडी अन्दरसे पोली हुई होती हैं ॥

अथ श्योनाकः [सोनापाठा अरलु] ।

श्योनाकः शोषणश्च स्यान्नटकट्वङ्गटुण्टुकाः॥ मण्डूकपर्णपत्रोर्णशुकनासकुटन्नटाः॥२५॥ दीर्घवृन्तोऽरलुश्चापि पृथुशिम्बः कटम्भरः ॥ श्योनाको दीपनः पाके कटुकस्तुवरो हिमः ॥ २६ ॥ ग्राही तिक्तोऽनिलश्लेष्मपित्तकासप्रणाशनः ॥ टुण्टुकस्य फलं बालं रूक्षं वातकफापहम्॥२७॥ हृद्यं कषायं मधुरं रोचनं लघु दीपनम् ॥ गुल्मार्शःकृमिहृत्प्रौढं गुरु वातप्रकोपणम्२८

श्योनाक, शोषण, नट, कट्वंग, टुण्टुक, मण्डूकपर्ण, पत्रोर्ण, शुकनास, कुटन्नट, दीर्घवृंत, अरलु, पृथुशिम्ब, कटम्भर, (टिण्टुक, कीरनासन, पूतिवृक्ष, पूतिनाग, भूतिपुष्प, मुनिद्रुम, मल्लूक, टेण्टुक, पीतवृक्ष, भूतसार, निःसार, फलवृन्ताक, पूतिपत्र, वसन्तक, पीताग, जम्बूक, पीतपादप, वातारि, पीतक, शोण, कुनट, विरोचन, भ्रमरेष्ट और जघनेत्र) ये अरलूके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सोनापाठा, अरलू, टेंटू । बं०–शोनापाता, सोनालु । म०–डिटं, टेटु । गु०–अरलू । क०–शोणा ।

तै०-पेद्दामानु । ता०-पन । लै०-ऑरोसिलम् इन्डीकम् Orocylum Indicum ॥

अरलू-अग्निको दीपन करनेवाला, पाकमें चरपरा, कसैला, शीतल, ग्राही, कडवा और वात, कफ, पित्त तथा खाँसीको नष्ट करैहै । अरलूका बाल (कोमल) फल रूखा, हृदयको हितकारी, कसैला, मधुर, रुचिकारक, हलका, अग्निप्रदीपक, और वात, तथा कफनाशक है । गुल्म, बवासीर, तथा कृमिको नष्ट करैहैं अरलूका प्रौढ (कच्चा) फल भारी तथा वायुको कुपित करै है ॥ २५-२८ ॥

विवरण ।

अरलूका वृक्ष बहुत ऊँचा होताहै. फली लम्बी लम्बी तलवारके समान दो दो फुटकी होतीहैं. फलीके भीतर रुई और दाने निकलतेहैं, दूसरे प्रकारका श्योनाक भी बहुत वडा होताहै, उसका फूल लाली लिये समुद्रशोषके समान होता है, और उसपर भी फली बहुत बडी बडी लगतीहैं बहुत वैद्य अरडूनामक बडे वृक्षको-जिसके पत्ते नींबके समान बडे होतेहैं, और फलभी नींबके फलके आकार जरा बडा लगताहै, पत्तोंमें कुछ दुर्गंधसी आतीहै उसे-अरलू मानतेहैं ॥

अथ बृहत्पञ्चमूलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

श्रीफलः सर्वतोभद्रा पाटला गणिकारिका॥ श्योनाकः पञ्चभिश्चैतैः पञ्चमूलं महन्मतम् ॥२९॥ पञ्चमूलं महत्तिक्तं कषायं कफवातनुत्॥ मधुरं श्वासकासघ्नमुष्णं लघ्वग्निदीपनम् ॥ ३० ॥

बेल, कुम्भेर, पाढल, अरनी और अरलू इन पाँचोंको बृहत्पचमूल कहतेहैं । यह बृहत्पचमूल-कडवा, कसेला, मधुर, गरम, हलका, अग्निको दीपन करनेवाला और कफ, वात, श्वास, तथा खाँसीको दूर करैहै २९॥३०

अथ शालिपर्णी [सरिवन] ।

शालिपर्णी स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी पीवरी गुहा॥विदारिगन्धा दीर्घांगी दीर्घपत्रांशुमत्यपि ॥ ३१ ॥ शालिपर्णी गुरुश्छर्दिज्वरश्वासातिसारजित् ॥ शोषदोषत्रयहरा बृंहण्युक्ता रसायनी॥तिक्ता विषहरी स्वादुः क्षतकासक्रिमिप्रणुत् ॥ ३२ ॥

शालिपर्णी, स्थिरा सौम्या, त्रिपर्णी, पीवरी, गुहा, विदारिगन्धा, दीर्घांगी, दीर्घपत्रा, अंशुमती, (सुदला, सुपत्री, कुमुदा, सुपर्णिका, दीर्घमूला, दीर्घपत्रिका, वातघ्नी, पीतिनी, तन्वी, गुहा, सर्वानुकारिणी, शोफघ्नी, शुभगा, देवी, शोथघ्नी, निश्चला, व्रीहिपर्णिका, सुमूला, शुभपत्रिका, सुपर्णी, शालिपत्री, शालिदला, विदारी, सालपर्णी, एकमूला, अस्तमती, शालानी, शालिका और कीटविनाशिनी) ये सरिवनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-सरिवन । बं०-शालपानि । म०-साल्वण । गु०-समेरवो । क०-मुरुलुवोने । तै०-मियाकुपना । लै०-डेसमोडियम गेन्जेटिक Desmodium Gangeticum ॥

सरिवन-भारी, पुष्टिकारक, रसायन, कडवी, मधुर और वमन, ज्वर, श्वास, अतीसार, शोष, तीनों दोष, विष, क्षत (घाव), खाँसी, तथा कृमिको दूर करैहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

विवरण ।

शालिपर्णीका छोटासा क्षुप होताहै, पत्ते गोल होतेहैं, उसकी एक एक डंडीमें तीन तीन पत्ते होतेहैं, उसमें छोटी छोटी कली लगतीहैं ॥

अथ पृष्ठिपर्णी [पिठवन] ।

पृष्ठिपर्णी पृथक्पर्णी चित्रपर्ण्यहिपर्ण्यपि॥ क्रोष्टुविन्ना सिंहपुच्छी कलशी धावनी गुहा ॥ ३३ ॥ पृष्ठिपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्णा मधुरा सरा ॥ हन्ति दाहज्वरश्वासरक्तातीसारतृड्वमीः ॥ ३४ ॥

पृष्ठिपर्णी, पृथक्पर्णी, चित्रपर्णी, अहिपर्णी, क्रोष्टुविन्ना, सिंहपुच्छी, कलशी, धावनी, गुहा, (पृश्निपर्णी, तन्वी, क्रोष्टुकपुच्छिका, त्रिपर्णी, पूर्णपर्णी, कलसी, सिंहलाङ्गली, अग्नि, वल्लिका, पिष्टपर्णी, लांगली, क्रोष्टुकमेखला, दीर्घा, शृगालवृन्ता, दीर्घपत्रा, अतिगुहा, घष्टिला, चित्रपर्णिका, क्रोष्टुपुच्छी, कदला, ककगात्र, चक्रकुल्या, चक्रपर्णी, शीर्णमाला, महागुहा, शृगाल, विन्ना, धमनी, मेखला, लांगुलिका, ब्रह्मपर्णी, दीर्घपर्णी, सिंहपुष्पी, अग्निपर्णी और विष्णुपर्णी) ये पिठवनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-पिठवन, पिठौनी, पृश्निपर्णी० पिथिवन । बं०-चाकुले, चाकुल्या । म०-पीठवण, । गु०-नाहानोसमेरवो । क०-तोरेमोड । तै०-कोलाकुपन्ना । लै०-उरेरिया लेगोपोईडिस, उरेरियापिक्ट Uraria Lagopoides, Urariapicta ॥

पिठवन–त्रिदोषनाशक, पुष्टिकारक, गरम, मधुर, दस्तावर और दाह, ज्वर, श्वास रक्तातीसार, तृषा तथा वमन नाशक है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

विवरण ।

पृष्ठपर्णीका वृक्ष गेहुँओंके खेतमें होताहै, ग्रामवासी-लोग इसको कवरा भी कहतेहैं. पत्ते इसके लम्बे लम्बे चार चार इञ्चके होतेहैं, बहुत चौडाई नही होती और नसें चमकतीहैं, फूल सुफेद, कुछकुछ नीलापन और जटायुक्त होतेहैं, फलियोंकी पूँछसी निकलतीहैं, परन्तु अल्पमूल होनेके कारण देशान्तरमें इसका पञ्चांग व्यवहारमे लियाजाताहै ॥

अथ वार्ताकी [बडी कटेरी] ।

वार्त्ताकी क्षुद्रभण्टाकी महती बृहती कुली॥ हिंगुली राष्ट्रिका सिंही महोष्ट्री दुष्प्रधर्षिणी ॥ बृहती ग्राहिणी हृद्या पाचनी कफवातहृत् ॥ ३५ ॥ कटुतिक्तास्यवैरस्यमलारोचकनाशिनी ॥ उष्णा कुष्ठज्वरश्वासशूलकासाग्निमान्द्यजित् ॥ ३६ ॥

वार्ताकी, क्षुद्रभण्टाकी, महती, बृहती, कुली, हिंगुली, राष्ट्रिका, सिंही, महोष्ट्री, दुष्प्रधर्षिणी (प्रसहा, अक्रान्ता, क्षुद्रवार्ताकी, रक्तपाकी, लता, बृहतिका, क्रान्ता, सिंहिका, स्थूलकण्टा, क्षुद्रभण्टा, भण्टाकी, महोटिका, बहुपत्री, कण्टतनु, कण्टालु, कटुफला, डोवडी, बनवृन्ताकी और पारावेदी) ये वडी कटेरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०–बडीकटेरी, बडी भटकटैया, बडी कटाई । बं०–भाण्टा, तितवेगुन । म०–मोठीडोरली । गु०–उभीभोरींगणी । क०–हेग्गुलु । तै०–पेद्दामुलगा । ता०–चेरुचुण्ट । फा०–बादजान । अ०–बाडहिनु जगली । लै०–सोलेनम इंडीकम Solanum indicum ॥

बडीकटेरी–ग्राही, हृदयको हितकारी, पाचक, गरम, चरपरी, कडवी और कफ, वात, मुखकी विसरता, मल, अरुचि, कोढ, ज्वर, श्वास, शूल, खाँसी, तथा अग्निकी मंदताको नष्ट करैहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

विवरण ।

बृहती अर्थात् कटेहरीका छोटासा क्षुप जंगलमे होताहै इसमे कॉटे बहुतकम होतेहैं. इसके पत्ते बैगनकेसे होतेहै. फल गोल २ वडे आमलेके समान चितले और पीले होतेहैं, इसका नाम बडी कटेरी, इसको बैंगना कटेहरी भी कहते हैं ॥

अथ कण्टकारी [कटेरी] ।

कण्टकारी तु दुःस्पर्शा क्षुद्रा व्याघ्री निदिग्धिका ॥ कण्टालिका कण्टकिनी धावनी बृहती तथा ॥ ३७ ॥

उभे च बृहत्यौ । अत आह सुश्रुतः—

क्षुद्रा या क्षुद्रभद्राख्या बृहतीति निगद्यते ॥ श्वेता क्षुद्रा चन्द्रहासा लक्ष्मणा क्षेत्रदूतिका ॥ ३८ ॥ गर्भदा चन्द्रमा चन्द्री चन्द्रपुष्पा प्रियंकरी ॥ कण्टकारी सरा तिक्ता कटुका दीपनी लघुः ॥३९॥ रूक्षोष्णा पाचनी कासश्वासज्वरकफानिलान् ॥ निहन्ति पीनसं श्वासपार्श्वपीडाहृदामयान् ॥ ४० ॥ तयोः फलं कटु रसे पाके च कटुकं भवेत् ॥ शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु ॥ ४१ ॥ हन्यात्कफमरुत्कण्डूकासमेदकृमिज्वरान्॥ तद्वत्प्रोक्ता सिता क्षुद्रा विशेषाद्गर्भकारिणी ॥ ४२ ॥

कंटकारी, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा, व्याघ्री, निदिग्धिका, कटालिका, कटकिनी, धावनी, बृहती, (कुली, कासघ्नी, कटकारिका, स्पृही, धावनिका, दुष्प्रधर्षिणा, कटश्रेणी, प्रचोदनी, राष्ट्रिका, अनाक्रान्ता, भटाकी, सिंही, कुलि, निदिग्धा, क्षुद्रकटिका, बहुकण्टा, क्षुद्रफला, कटालिका और चित्रफला) ये कटेरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कटेरी, लघुकटाई, भटकटैया । बं०–कटकारी । म०–लघुरींगणी । गु०–बेठीभोरीगणी । क०–नेल्लगुल्लु । तै०–बटीमुलगा । लै०–सोलेनम क्सेन्थोकारपम Solenum-xunthocarpum ॥

कटेरी और बडीकटेरी इन दोनोको बृहती कहतेहैं । यह सुश्रुतमे कहाहै कि कटेरी और बडी कटेरी इन दोनोंको बृहती कहते हैं ॥

श्वेता, क्षुद्रा चन्द्रहासा, लक्ष्मणा, क्षेत्रदूतिका, गर्भदा, चन्द्रभा, चन्द्री, चन्द्रपुष्पा और प्रियकरी, ये सफेद फूलवाली कटेरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०–सफेदकटेरी । म०–श्वेतरिंगणी । बं०–श्वेतकटकारी ॥

सफेदकटेरी—दस्तावर, कडवी, चरपरी, अग्निको दीपन करनेवाली, हलकी, रूखी, गरम, पाचन और पीनस, श्वास, पसलीकी पीडा तथा हृदयरोगको नष्ट करैहै; इन दोनोंके फल—चरपरे, पाकमें भी चरपरे, वीर्यरेचक, भेदक, कडवे, पित्त तथा अग्निको करनेवाले, हलके और कफ, वात, खुजली, खाँसी, मेदा, कृमि और ज्वरको दूर करै है। सफेद फूलकी कटेरीके गुण भी कटेरीके सदृशही है, परन्तु विशेष करके ये गर्भकारक है ॥ ३७–४२ ॥

विवरण ।

कटेहरीके क्षुप छत्तेसे पृथ्वीपर फैले हुए होतेहैं, पत्ते कटीले और शाखाओमें भी बहुत काटे होतेहैं, फूल बैंजनीरंगके आतेहैं, फल कच्ची अवस्थामें छोटे गूलरके समान हरे और सुफेद चितले होते हैं, पकनेपर पीले पडजाते है. दूसरी कटेहरी इसीप्रकारकी होती है, परन्तु उसके फूल सुफेद होतेहैं, वह बहुत कम होती है ढूढनेसे कहीं मिलजातीहै ॥

अथ गोक्षुरः ।

गोक्षुरः क्षुरकोऽपि स्यात्त्रिकण्टः स्वादुकण्टकः ॥ गोकण्टको गोक्षुरको वनशृंगाट इत्यपि ॥ ४३ ॥ पलंकषा श्वदंष्ट्रा च तथा स्यादिक्षुगन्धिका॥ गोक्षुरः शीतलः स्वादुर्बलकृद्वस्तिशोधनः ॥ ४४ ॥ मधुरो दीपनो वृष्यः पुष्टिदश्चाश्मरीहरः॥प्रमेहश्वासकासार्शःकृच्छ्रहृद्रोगवातनुत् ॥ ४५ ॥

गोक्षुर, क्षुरक. त्रिकट, स्वादुकंटक,गोकटक, गोक्षुरक. वनशृंगाट, (वनके सिंघाडे)पलकषा, श्वदष्ट्रा, इक्षुगंधिका, (कँटी. पटग, स्थलशृंगाटक. बहुकण्टकक्षुर, कटफल, क्षुद्रक्षुर, भक्षटक, चणद्रुम, वनशृंगाटक, इक्षुगध, और स्वादुकट) ये गोखुरुके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—गोखुरू छोटेगोखुरू । ब०—गोखारि । म०—मराटे, ल्हान गोखरु । गु०—गोखरू । क०—बीडीतीम राटी । तै०—पालेरु । फा०—खुरमेखार । अ०—वजरुली-ख्सक । लै०—पेडेल्य मुरेक्स (बडा) Pedalium Murex ट्रिब्युल्स टेरेस ट्रीस (छोटा) Teriebulus Terrestris ॥

गोखरू—शीतल, मधुर, बलदायक मूत्राशयको शुद्ध करनेवाला, स्वादिष्ठ, अग्निप्रदीपक, वीर्यवर्द्धक पुष्टिदायक और पथरी, प्रमेह, श्वास, खाँसी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, हृदयरोग तथा वातरोगनाशक है ॥ ४३–४५ ॥

विवरण ।

गोखरू दो जातिके होतेहैं, एक पहाडीगोखरू और दूसरे देशीगोखरु. पहाडीसे देशी छोटे होतेहैं. पहाडी गोखरुओके छोटे छोटे क्षुप होते है. उनमे पीले और सुफेदरगके फूल आतेहैं और फलके चार कोने होतेहैं, उनपर एक एक काटा होता है,देशी गोखरुओंका पृथ्वीपर छत्तासा होता है, पत्ते चनेके पत्तोके समान होतेहैं, फूल पीले आतेहैं, फलके ऊपर छह काटे अलग अलग होतेहै ॥

अथ लघुपञ्चमूलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी वार्त्ताकी कण्टकारिका॥गोक्षुरः पञ्चभिश्चैतैः कनिष्ठं पञ्चमूलकम्॥४६॥पञ्चमूलं लघु स्वादु बल्यं पित्तानिलापहम्॥नात्युष्णं बृंहणं ग्राहि ज्वरश्वासाश्मरीप्रणुत् ॥ ४७ ॥

सरिवन, पिठवन, बडीकटेरी छोटी कटेरी और गोखरू इन पाँचोको लघुपंचमूल कहते हैं । लघुपंचमूल—हलका, मधुर, बहुत गरम नहीं, पुष्टिदायक, ग्राही, बलकारक और पित्त, वातज्वर, श्वास, तथा पथरीको नष्ट करनेवाला है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ दशमूलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

उभाभ्यां पञ्चमूलाभ्यां दशमूलमुदाहृतम्॥ दशमूलं त्रिदोषघ्नं श्वासकासशिरोरुजः ॥ तन्द्राशोथज्वरानाहपार्श्वपीडारुचीर्हरेत् ४८

लघुपचमूल और बृहत्पञ्चमूल इन दोनोको मिलाकर दशमूल कहाताहै ॥ दशमूल—त्रिदोषनाशक और श्वास, खाँसी, शिरोरोग, तन्द्रा, सूजन. ज्वर, अफारा, पसलीकी पीडा और अरुचिको नष्ट करैहै ॥ ४८ ॥

अथ जीवन्ती (शाकविशेषः) ।

(शर्करावन्मधुरपुष्पा व्रततिः)

जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुस्रवा॥मंगल्यनामधेया च शाकश्रेष्ठा पयस्विनी ॥४९॥ जीवन्ती शीतला स्वादुः

स्निग्धा दोषत्रयापहा ॥ रसायनी बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघुः ॥ ५० ॥

जीवन्ती, जीवनी, जीवा, जीवनीया, मधुस्रवा, मगल्यनामधेया, शाकश्रेष्ठा, पयस्विनी, (जीवदा, सुखकरी, रक्तांगी, प्राणदा, भद्रा, मंगल्या, मृगराटिका, स्रवा, मधुश्रवा, जीव्या, जीवदात्री, जीवभद्रा, क्षुद्रजीवा, यशस्या, शृगाटी, जीवपुष्ठ, कांजिका, शगशिम्बिका, सुपिगला, पुत्रभद्रा, मधुश्वासा, जीवत्रृपा, जीवपत्री, जीवपुष्पी और जीवनर्द्धिनी) ये जीवन्तीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–जीवन्ती । ब०–जीवई, जीन्ती । म०–हरणवेल । क०–होणहाले । गु०–मीठी खरखोडी । लै०–ड्रेगिया वेल्यू विलिस Dregia Valubilis ॥

जीवन्ती–शीतल, मधुर, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, बलकारक, नेत्रोको हितकारी, ग्राही और हलकी है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

विवरण ।

जीवन्ती अनेक जातिकी होती है, जीवन्तीकी बेल चलती है. इसके फलोंके डोडे होते हैं. उनमेसे आकके समान दूध निकलताहै, इसके पत्ते गोलबेरके समान होतेहैं, उनका शाक बनातेहैं, इसलिये इसका नाम शाकश्रेष्ठा है. एक जीवन्तीकी बेल होती है, उसके फूलोंका शाक बनताहै. दूसरी स्वर्णजीवन्ती होतीहै, उसके डोडेमें पीला दूध निकलताहै. तीसरी छोठी जीवन्ती होतीहै, चौथी कडवी जीवन्ती होतीहै, उसके फल कडवे होते हैं. पॉचवी अर्कपुष्पी होती है, उसके फूल आकके फूलोके समान होते है. छठी जीवन्तीकी बडी बेल होतीहै, उसका बहुत बडा विस्तार होता है, उसके पत्तोंको तोडनेसे पीला दूध निकलताहै, उसके फलोंके डोडे तीन धारवाले होते हैं, उसकी जडको इंग्रेजीमे सारसपरेला कहतेहैं ॥

अथ मुद्गपर्णी ।

मुद्गपर्णी काकपर्णी सूर्यपर्ण्यल्पिका सहा ॥ काकमुद्गा च सा प्रोक्ता तथा मार्जारगन्धिका ॥ मुद्गपर्णी हिमा रूक्षा तिक्ता स्वादुश्च शुक्रला ॥ ५१ ॥ चक्षुष्या क्षतशोथघ्नी ग्राहिणी ज्वरदाहनुत् ॥ दोषत्रयहरी लघ्वी ग्रहण्यर्शोऽतिसारजित् ॥ ५२ ॥

मुद्गपर्णी, काकपर्णी, सूर्यपर्णी, अल्पिका, सहा, काकमुद्गा, मार्जारगधिका, (शिम्बिपर्णिका, शिम्बीपर्णी, क्षुद्रसहा, शिम्बी, वनजा, रिंगिणी, ह्रस्वा, शूर्पपर्णी, कुरंगिका, कोशिला, वनोद्भवा, वनमुद्गा, आरण्यमुद्गा, वन्या और करजिका) ये मुगवनके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–मुगवन । ब०–मुगानि । म०–रानमुग । गु०–जगलीमग । क०–कोहसरु । तै०–कारुपेसारा । लै०–फेसियोलस ट्रायलो वेटस Phasidous Trailo betus ॥

मुगवन–शीतल, रूखी, कडवी, मधुर, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोको हितकारी, ग्राही, तीनों दोषोंको हरनेवाली और क्षत, सूजन, ज्वर, दाह हलकी सग्रहणी, बवासीर और अतीसार नाशक है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

विवरण ।

मुद्गपर्णीकी मूँगके समान बेल होतीहै, उसके पत्ते मूँगके समान हरे हरे होते हैं, फूल पीले रगके आते हैं और फलीभी मूँगके सदृश आतीहै यह एक प्रकारकी वनकी मूँग है ॥

अथ माषपर्णी ।

माषपर्णी सूर्यपर्णी काम्बोजी हयपुच्छिकाः ॥ पाण्डुलोमशपर्णी च कृष्णवृन्ता महासहा ॥ ५३ ॥ माषपर्णी हिमा तिक्ता रूक्षा शुक्रबलास्रकृत् ॥ मधुरा ग्राहिणी शोथवातपित्तज्वरास्रजित् ॥ ५४ ॥

मापपर्णी, सूर्यपर्णी, काम्बोजी, हयपुच्छिका, पाण्डलोमशपर्णी, कृष्णवृन्ता, महासहा, (पर्णिनी, पाण्डुलोमशा, ऋषिप्रोक्ता, हयपुच्छी, सिंहपुच्छिका, सिंहपुच्छी, लोमशपर्णिनी, पाण्डुलोमा, आर्द्रमाषा, मांसमाषा, मगल्या, हसमासा, अश्वपुच्छी, मापपर्णिका, कल्याणी, वज्रमूली, शालिपर्णी, विसारिणी, आत्मोद्भवा, बहुफला, स्वयम्भू, सुलभा, घना, सिंहविन्ना, विशाम्बिका, सूर्यपर्णी और पाण्डुरा) ये मषवनके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–मषवन, वनउर्दी, वनउडद । ब०–माषानी । म०–रानउडीद । गु०–जगली अडद । क०–रानोडिडिकाउद्दु । तै०–कारुमीनुरु । लै०–ग्रेंजिआमेड्रास पटना Grangeamadias patana ॥

मषवन–शीतल, कडवी, रूखी, वीर्य, बल तथा रुधिरवर्द्धक, मधुर, ग्राही और सूजन, वात, पित्त, ज्वर तथा रक्तविकारनाशक है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

विवरण ।

माषपर्णीकी वेल विशेष करके वन, उपवन, और पर्वतोंमें उत्पन्न होतीहै, पत्ते उडदके समान और उनपर बहुत वारीक वारीक रूयें होते हैं और घोडेकी पूँछके वालके आकार उसके वाल होते हैं ॥

अथ जीवनीयगणस्य लक्षणं गुणाश्च ।

अष्टवर्गः सयष्टीको जीवन्ती मुद्गपर्णिका॥ माषपर्णीगणोऽयं तु जीवनीयगणः स्मृतः ॥ ५५ ॥ जीवनो मधुरश्चापि नाम्ना स परिकीर्तितः ॥ जीवनीयगणः प्रोक्तः शुक्रकृद् बृंहणो हिमः ॥ ५६ ॥ गुरुर्गर्भप्रदः स्तन्यः कफकृत्पित्तरक्तहृत् ॥ तृष्णां शोषं ज्वरं दाहं रक्तपित्तं व्यपोहति ॥ ५७ ॥

अष्टवर्ग (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि) मुलहठी, जीवन्ती, मुगवन और मषवन, इन सबको जीवनीय गण कहते हैं। जीवन और मधुर, वे भी इसीके नाम हैं ॥

जीवनीयगण—वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, शीतल, भारी, गर्भदायक, दूध तथा कफको उत्पन्न करने वाला और पित्त, तथा रक्त, तृषा, शोष, ज्वर, दाह, तथा रक्तपित्त-रोगका नाशक है ॥ ५५–५७ ॥

अथ शुक्लरक्तैरण्डौ ।

शुक्ल एरण्ड आमण्डश्चित्रो गन्धर्वहस्तकः॥ पञ्चांगुलो वर्द्धमानो दीर्घदण्डोऽप्यदण्डकः ॥ ५८ ॥ वातारिस्तरुणश्चापि रुवूकश्च निगद्यते ॥ रक्तोऽपरो रुवूकः स्यादुरुवूको रुवूस्तथा ॥ व्याघ्रपुच्छश्च वातारिश्चञ्चुरुत्तानपत्रकः ॥ ५९ ॥ एरण्डयुग्मं मधुरमुष्णं गुरु विनाशयेत् ॥ शूलशोथकटीवस्तिशिरःपीडोदरज्वरान् ॥ ॥ ६० ॥ ब्रध्नश्वासकफानाहकासकुष्ठाममारुतान् ॥ एरण्डपत्रं वातघ्नं कफक्रिमिविनाशनम् ॥ ६१ ॥ मूत्रकृच्छ्रहरं चापि पित्तरक्तप्रकोपणम् ॥ वातार्यग्रदलं गुल्मं वस्तिशूलहरं परम् ॥ ६२॥ कफवातक्रिमीन्हन्ति वृद्धिं सप्तविधामपि ॥ एरण्डफलमत्युष्णं गुल्मशूलानिलापहम् ॥६३॥ यकृत्प्लीहोदराशोंघ्नं कटुकं दीपनं परम् ॥ तद्वन्मज्जा च विड्भेदी वातश्लेष्मोदरापहः ॥ ६४ ॥

शुक्लैरड, आमड, चित्र, गधर्वहस्तक, पञ्चांगुल, वर्द्धमान, दीर्घदड, अदडक, वातारि, तरुण, रुवूक, (व्याघ्रपुच्छ, चित्रक, एरड, त्रिपुटीफल, शूलशत्रु, दीर्घदन्तक, गंधर्वहस्तक, उरुवुक, रुवुक, चंचुक, मण्ड, व्यडत्वक्, एरण्डक, दृष्ट, अमगल, तुच्छद्र, व्रणहा, त्रिपुटी, व्याघ्रदल, उरुवूक, रुवक, वुक, अमड, व्यडम्बन, कान्त, दीर्घपत्रक और स्नेहप्रद) ये सफेद अरडके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–अरड, सफेद अरड । व०–भेराण्डा, शादा-रेडी । म०–एरड । गु०–एरडो । क०–एरडु, आंडकले। तै०आमुडासु । फा०–वेदजीर । अ०–शिखा । इ०–कास्टर ओइल प्लान्ट Castor Oil Plant लै०–रिसिनस्कोम्युनिस Ricinus Comunis ॥

रक्तैरण्ड, रुवूक, उरुवूक, रुवू, व्याघ्रपुच्छ, वातारि, चचू, उत्तानपत्रक, (हस्तिकर्ण, व्याघ्र, व्याघ्रकर, रुवु, त्रिवीज, नागकर्ण, करपर्ण, व्याघ्रवल, रक्तक, चित्रवीर्य, ह्रस्वैरण्ड) ये लाल अरडके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–लाल अरड । व०–लालभेडा, वड भेराण्डा । म०–पारसमोख्या । गु०–रातापरडो । तै०–अमिद पुचेट्टु । फा०–तुख्मेवेदजीर । अ०–हबुलखिरुवा ॥

दोनों प्रकारके एरड–मधुर, गरम, भारी और शूल, सूजन, कमरका दर्द, वस्तिकी पीडा, शिरका दर्द, उदर-पीडा, ज्वर, वद, श्वास, कफ, अफरा, खाँसी, कोढ और आम वात नाशक हैं। एरडके पत्ते–वात, कफ, कृमि और मूत्रकृच्छ्र नाशक हैं, तथा पित्त और रुधिरको कुपित करे हैं। एरडके आगेके कोमल पत्ते–गुल्म, वस्तिशूल, कफ, वात, कृमि और सात प्रकारकी वृद्धिको नष्ट करैहै। एरडका फल–अत्यत गरम, चरपरा, दीपन, और गुल्म, शूल, वात, यकृत्, प्लीहा, उदररोग और अर्शरोग नाशक है। इसकी मींग–भेदक, वायु, कफ, और उदररोग नाशक है ॥ ५८–६४ ॥

विवरण ।

सुफेद अरण्ड और लाल अरण्डके वृक्ष प्रायः खेतोकी वाडपर लगाये जाते है, कहीं कहीं खेतके खेत वोदेतेहैं, पत्ते वहुत वडे वडे पाँच कँगूरेवाले होतेहैं, आकार कपा-

सके पत्तोंकेसा होता है, परन्तु लम्बाव चौडावमे उनसे दशगुने बडे होतेहै, इसके फलोकी गहले होतीहैं अर्थात् बहुत लम्बे लम्बे गुच्छे और उनके ऊपर कोमल कोमल काटे होतेहैं, जिसके लाल फल होतेहैं उसको जोगिया अरण्ड कहतेहैं और जिसके सुफेद फल होतेहै उसको सुफेद अरण्ड कहते हैं और सब आकार एकही प्रकारका होताहै, एक एक फलमेसे तीन तीन बीज निकलते हैं उसको अरण्डी कहतेहैं. वह ऊपरसे चित्रित होतीहै, अरण्डीका रग कत्थई, और सुफेद रेखा होतीहैं, बीजकी मीग सुफेद निकलतीहै, मीगके भीतर तेल होताहै ॥

अथ शुक्लरक्तार्कौ [सफेद आक, लाल आक]।

अलर्को गुणरूपः स्यान्मन्दारो वसुकोऽपि च ॥श्वेतपुष्पः सदापुष्पः सबालार्कः प्रतीयसः ॥ ६५ ॥ रक्तोऽपरोऽर्कनामा स्यादर्कपर्णो विकीरणः॥रक्तपुष्पः शुक्लफलस्तथा स्फोटः प्रकीर्तितः ॥ ६६ ॥ अर्कद्वयं सरं वातकुष्ठकण्डूविषव्रणान् ॥ निहंति प्लीहगुल्मार्शःश्लेष्मोदरशकृत्कृमीन् ॥ ६७ ॥ अलर्ककुसुमं वृष्यं लघु दीपनपाचनम् ॥ अरोचकप्रसेकार्शःकासश्वासनिवारणम् ॥ ॥ ६८ ॥ रक्तार्कपुष्पं मधुरं सतिक्तं कुष्ठक्रिमिघ्नं कफनाशनञ्च ॥ अर्शो विषं हंति च रक्तपित्तं संग्राहि गुल्मे श्वयथौ हितं तत् ॥६९॥ क्षीरमर्कस्य तिक्तोष्णं स्निग्धं सलवणं लघु ॥ कुष्ठगुल्मोदरहरं श्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥ ७० ॥

अलर्क, गुणरूप, मन्दार, वसुक, श्वेतपुष्प, सदापुष्प, सबालार्क, प्रतीयस, (श्वेतार्क, राजार्क, गुणरूपक, तपनश्वेत, दीर्घपुष्प, शिवाह्वय, प्रताप, शीतार्कक, शर्करापुष्प, काष्ठील, वृत्तमल्लिका, वेधा, शम्भु और गुणरूपी) ये सफेद आकके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सफेद आक, मदार । ब०–श्वेत आकन्द । म०–पाढरी रुई । गु०–धोलो आकडो । फा०–दुध । अ०–उषर ॥

अर्कपर्ण, विकीरण, रक्तपुष्प, शुक्लफल, स्फोट और जितने सूर्यके नाम हैं वे सब (क्षीरदल, शुकफल, तुलफल, अर्क, सदासुम, प्रताप, क्षीरकाण्डक, विक्षीर, भास्कर, हरिदश्व, विवस्वान् अहर्मणि, अहर्बान्धव, अर्यमा, अहर्पति, उग्णरश्मि, भानु, विकर्त्तन, गणरूप, मन्दार, प्रभाकर, विभाकर, दिभाकर, विभावसु, विवस्वान्, सप्ताश्व, सविता, सूनु, आस्फोत, वसुक, हिमाराति, पुच्छी, क्षीरी, खर्ज्जूघ्न, शीतपुष्पक, जम्मल, क्षीरपर्णी, विकीरण, सदापुष्प, सूर्याह्व, आस्फोतक, आस्फोटक, रवि, कीरतनुफल ये लाल आकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–लाल आक । ब०–आकन्द । म०–तांबडी रुई । क०–पक्के । गु०–रातो आकडो । फा०–खुर्क । तै०–तैलाजल्लीडे । इ०–जाई गौंटिक स्वालोवर्ट Gigontic Swallow-wart ले०–केलोटोपसि जाइगेटिया Calotropis Gigantea ॥

दोनों प्रकारके आक–दस्तावर और वात, कोढ, खुजली, विष, व्रण, प्लीहा, गुल्म, बवासीर, कफ, उदररोग और मलके कृमिको नष्ट करे हैं। सफेद आकका फूल–वीर्यवर्द्धक, हलका, अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन और अरुचि, मुखसे पानी गिरना, बवासीर, खासी, तथा श्वासविनाशक है । लाल आकका फूल–मधुर, कडवा, ग्राही और कृमि, कोढ, कफ, बवासीर, विष, रक्तपित्त, गुल्म तथा सूजनको नष्ट करैहै । आकका दूध–कडुवा, गरम, चिकना, खारी हलका और कोढ, गुल्म तथा उदररोग नाशक है और विरेचन करानेमे यह परमोत्तम है ॥ ६५–७० ॥

विवरण।

आकके पेड जगल और भूडोपर बहुत होतेहैं. पाच छः फुट ऊँचे होजातेहैं तथा फूल और फलोंके भारसे डालियाँ नीचेको झुक जातीहै, पत्ते वडके सदृश बडे बडे होतेहैं, परन्तु दूध पत्ते और डाली सबमें होताहै, फल तोतेकेसी आकृतिवाले हरे हरे शाखाओंमे लगतेहैं, फलोंके सूखनेपर उसमेंसे काले काले दाने और कोमल कोमल रुई बहुत निकलती है ॥

अथ सीहुण्ड [सेहुण्ड, थूहर]।

सीहुण्डः सिंहतुण्डः स्याद्वज्री वज्रद्रुमोऽपि च ॥ सुधा समन्तदुग्धा च स्नुक् स्त्रियां स्यात्स्नुही गुडा ॥ ७१ ॥सीहुण्डो रेचनस्तीक्ष्णो दीपनः कटुको गुरुः ॥ शूलमष्ठीलिकाध्मानकफगुल्मोदरानिलान् ॥ ७२ ॥ उन्मादमोहकुष्ठार्शःशोथमेदोऽश्मपाण्डुताः ॥ व्रणशोथज्वरप्लीह-

निष्ठ्यौरिं च [illegible] ॥ ७३ ॥ उष्णवीर्यं [illegible] स्निग्धं च कटुकं लघु ॥ गुल्मिनां गृध्रिणामपि [illegible]रोगिणाम् ॥ ॥ ७४ ॥ [illegible] ये चान्ये [illegible] ॥

[illegible]

कपत्यपि ॥ ७५ ॥ शातला कटुका पाके वातला शीतला लघुः ॥ तिक्ता शोथकफानाहपित्तोदावर्त्तरक्तजित् ॥ ७६ ॥

सातला, सप्तला, सारा, विमला, विदुला, भूरिफेना, चर्मकषा, (अमला, बहुफेना, फेना, दीप्ता, निर्पाणिरा, [illegible], [illegible]) ये सातलाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सातला । बं०-[illegible] । म०-[illegible] । गु०-[illegible] । क०-[illegible] । फा०-[illegible] । अ०-[illegible] । इं०-ओरिगेन [illegible] Origanum Vulgaris ॥

[illegible]-पाकमें चरपरी, वातकारक, शीतल, हलकी, चरपरी और सूजन, कफ, अफरा, पित्त, उदावर्त्त तथा रुधिरविकार नाशक है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

विवरण ।

[illegible] ॥

अथ कलिहारी ।

कलिहारी तु हलिनी लांगली शक्रपुष्प्यपि ॥ विशल्याग्निशिखानन्ता वह्निवक्त्रा च गर्भनुत् ॥ कलिहारी सरा कुष्ठशोफाशोंव्रणशूलजित् ॥ ७७ ॥ सक्षारा श्लेष्मजित्तिक्ता कटुका तुवरापि च ॥ तीक्ष्णोष्णा कृमिलघ्वी पित्तला गर्भपातिनी ॥ ७८ ॥

कलिहारी—दस्तावर, खारी, कडवी, चरपरी, कसैली, तीक्ष्ण, गरम, हलकी, पित्तकारक, गर्भको गिरानेवाली और कोढ, सूजन, ववासीर, कृमि, व्रण, शूल, तथा कफको नष्ट करनेवालीहै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

विवरण ।

कलिहारीके क्षुप नागवेलके समान वडके आकारके होतेहैं. पत्ते अधाहूलीकेसे होतेहैं. फूल—लाल और पीले मिश्रितरगके अत्यन्त शोभायमान और मनोहर होतेहैं, फल—तीन रेखावाले लालमिर्चके समान होतेहैं, उसकी लालछालके भीतर इलायचीके बीजोके समान बीज होतेहैं, इसके नीचे एक गाँठ होतीहै उसको वत्सनाभ और तेलिया मीठा कहते—हैं ॥

अथ श्वेतरक्तकरवीरः ।

करवीरः श्वेतपुष्पः शतकुम्भोऽश्वमारकः ॥ द्वितीयो रक्तपुष्पश्च चण्डातो लगुडस्तथा ॥ ७९ ॥ करवीरद्वयं तिक्तं कषायं कटुकश्च तत् ॥ व्रणलाघवकृन्नेत्रकोपकुष्ठव्रणापहम् ॥ ८० ॥ वीर्योष्णं कृमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम् ॥

करवीर, श्वेतपुष्प, शतकुम्भ, अश्वमारक, (प्रतिहास, शतप्रास, चण्डात, हयमारक, अश्वमार, अश्वघ्न, हयारि, शीतकुम्भ, तुरगारि, रगारि, शातकुम्भ, प्रचण्ड, अश्वहा, वीर, हयमार, हयघ्न, शतकुन्द, अश्वरोधक, वीरक, कुन्द, शकुन्द, श्वेतपुष्पक, अश्वान्तक, नखराह्व अश्वनाशक, स्थलकुमुद, दिव्यपुष्प, हरिप्रिय, गौरीपुष्प और सिद्धपुष्प) ये सफेद करनेरके सस्कृत नाम हैं ॥

(रक्तपुष्प, चण्डात, लगुड, रक्तप्रसव, गणेशकुसुम, चण्डीकुसुम, क्रूर, भूतद्रावी और रविप्रिया) ये लाल कनेरके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—सफेद कनेर, लाल कनेर, । व०-श्वेतकरवी, लाल करवी । म०--पाढरी कह्लेर, तांबडी कह्लेर । गु०—धोली कणेर, रातीकणेर । क०—वाकणलिगे, केगणलिगे । तै०—कनेरचेट्टु । फा०—खरजेहरा । अ०-सुमुल,हिमारकदली। इ०—ओलियडर Olender लै०—नीरीयम ओलियडर Nerium Olender ॥

दोनो प्रकारकी कनेर—कडवी, कसैली, चरपरी, उष्णवीर्य, खानेसे विषकी सदृश, व्रणकारक. लाघवता करनेवाली और नेत्रकी पीडा, कोढ, व्रण, कृमि तथा खुजलीको नष्ट करेहै ॥ ७९ ॥ ८० ॥

विवरण ।

कनेरके वृक्ष—वन, उपवन, पुष्पवाटिकाओंमे बहुत होतेहैं, इसके कई भेद, हैं, किसीपर लालफूल किसीपर गुलाबी फूल, किसीपर सफेद फूल और किसीपर काले फूल आतेहैं, पत्ते लम्बे लम्बे और फल गोल आकारका होताहै, इसमे विष बहुत होताहै ॥

अथ धत्तूरः ।

धत्तूरधूर्त्तधूतूरा उन्मत्तः कनकाह्वयः ॥ देवता कितवस्तूरी महामोही शिवप्रियः॥ ॥ ८१ ॥ मातुलो मदनश्चास्य फले मातुलपुत्रकः॥धत्तूरो मदवर्णाग्निवातकृज्ज्वरकुष्ठनुत् ॥ ८२ ॥ कषायो मधुरस्तिक्तो यूकालिक्षाविनाशकः ॥ उष्णो गुरुर्व्रणश्लेष्मकण्डूकृमिविषापहः ॥ ८३ ॥

धत्तूर, धूर्त,धुत्तूर,उन्मत्त और जितने सुवर्णके नाम हैं वे सब, देवता, कितव, तूरी, महामोही, शिवप्रिय, मातुल, मदन और इसके फलको मातुलपुत्रक कहतेहैं (मदनदेविका, खरदूषण, पुरीमोह, धूर्तकृत्—घण्टिक, शठ, मातुलक, श्याम, शिवशेखर, खर्ज्जूघ्न, कोहलापुष्प, खल, कण्टफल, मोहन, कलम, मत्त, शैव, धुस्तुर, धुत्तुर, देवता, उन्मत्तक, मदनक, हरवल्लभ, कनक, सविष, मोहन मदकर, घण्टापुष्प और महाशठ) ये धत्तूरेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—धत्तूरा । व०—धुत्तूरा । म०—धोत्रा, धोतरा । गु०—धतुरो । क०—मदकुणीके । तै०—नाल्लाउम्मीते । ता०—उमतताई । अ०—जोजमासील । इ०—थोर्न आपल Thorn Apple लै०—डाटुरा स्ट्रामोनियम् Datura Stramonium ॥

धत्तुरा—मदकारक, वर्णको उत्तम करनेवाला, अग्नि तथा वायुको करनेवाला, गरम, भारी, कसैला, मधुर, कडवा, जूँ लीखको नष्ट करनेवाला और ज्वर. कोढ, व्रण, कफ, खुजली, कृमि, तथा विषविनाशक है८१–८३

विरण ।

धत्तूरेके वृक्ष—वनमे, बागोंमें, जगलोंमे बहुत होतेहैं; परन्तु इसके कई भेदहैं, काला, नीला, सफेद, पीला, (चार प्रकार तो नेत्रोंसे देखा) काले और सुनहरी फूलका धत्तूरा पुष्पवाटिकाओंमे होताहै. पत्ते पानके आकार जरा कडुए, कोमल होतेहैं, फूल घण्टाकार बीचमें सफेद रंग और ऊपर सफेद रग बीचमे नीला, काला,

और पीला रंग भी होता है, जिसके पाँच भाग होतेहैं, फूलके वाहिरी भागकी पाँच पखुडियें नीले रगकी होतीहैं, फल गोल काँटेदार और भीतर बहुत बीजवाला होताहै। जिस धतूरेका रग अत्यन्त काला और डडी, पत्ते, फूल, फल तथा सर्वांग काला हो, उस धतूरेमें विष अधिक होताहै, फल सूखकर फूटके समान खिल जातेहैं, उन बीजोको वैद्यलोग व्यवहारमे बहुत लातेहैं ॥

अथ आटरूषः [अडूसा] ।

वासको वाशिका वासा भिषड्माता च सिंहिका ॥ सिंहास्यो वाजिदन्ता स्यादाटरूषोऽटरूषकः ॥ ८४ ॥ आटरूषो वृषस्ताम्रः सिंहपर्णश्च स स्मृतः ॥ वासको वातकृत्स्वर्यः कफपित्तास्रनाशनः ॥८५॥ तिक्तस्तुवरको हृद्यो लघुशीतस्तृडर्त्तिहृत्॥ श्वासकासज्वरच्छर्दिमेहकुष्ठक्षयापहः॥८६॥

वासक, वाशिका, वासा, भिषड्माता, सिंहिका, सिंहास्य, वाजिदन्ता, आटरूप, अटरूपक, वृप, ताम्र, सिंहपर्ण, (रामरूपक, मातृसिंही, वैद्यमाता, कफनोत्पाटन, सिंही, वाजिदन्तक, आमलक, वाशा, अटरूप, वास, वाजी, वैद्यसिंही, सिंहपर्णी, रसादनी, सिंहमुखी, कण्ठीरवी, सितकर्णी, वाजिदन्ती, नासा, पचमुखी, सिंहपत्री, मृगेन्द्राणी और सिंहासन) ये अडूसेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–वासा, अडूसा, विसौंटा । व०–वासक । म०–अडुळसा । गु०–अरडूसो । क०–शोणा, शोडील मर । तै०–पेद्दामानु । ता०–अधडोडे । लै०–ओरोकीलम इंडीकम Orocylum Indicum ॥

अडूसा–वातकारक, स्वरके लिये उत्तम, कडवा, कसैला, हृदयको हितकारी, हलका, शीतल और कफ, पित्त, रक्तविकार, तृषाकीपीडा, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, प्रमेह, कोढ तथा क्षयको क्षय करैहै ॥ ८४–८६ ॥

विवरण ।

अडूसा अर्थात् विसौंटेके वृक्ष जगल और वनोमे होतेहै, और ऊँचाईमे चार पाच फुट ऊचा होताहै. एकमें सफेदरगका फूल आताहै और दूसरेमे लाल रगका फूल लगताहै. पत्ते लम्बे लम्बे गोदनीकेसे होतेहैं. इनमे लाल फूलवाला अधिक गुणदायक है और इनही पुष्पोमें शहद निकलताहै ॥

अथ पर्पटः [पित्तपापडा] ।

पर्पटो वरतिक्तश्च स्मृतः पर्पटकश्च सः ॥ कथितः पांशुपर्यायस्तथा कवचनामकः ॥ ॥ ८७ ॥ पर्पटो हन्ति पित्तास्रभ्रमतृष्णा कफज्वरान् ॥ संग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः ॥ ८८ ॥

पर्पट, वरतिक्त, पर्पटक और पांशुकी तथा कवचके जितने पर्याय शब्द हैं वे सब, (त्रियष्टि, तिक्त, चरक, वरक, रेणु, तृणारि, शीत, शीतप्रिय, पांशु, कल्पाग, वर्मकटक, कृष्णशाख, प्रगन्ध, सुतिक्त, रक्तपुष्पक, पित्तारि, कटुपत्र, नक्र और शीतवल्लभ) ये पित्तपापडेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पित्तपापडा । व०–श्वेतपापडा । म०–पित्तपापडा । गु० खडसलियो। क०–पर्पाटक । फा०–श्यातरह । अ०–वकललतल । तै०–पार्पाटकम् । इं०–रगियारेपीनसी Rangiarepinse लै०–फमेरिया पारवीफुलोरा Fumeria Parviflora ॥

पित्तपापडा–ग्राही, शीतल, कडवा, वातकारक, हलका, और पित्त, रक्तविकार, भ्रम, तृषा, कफ, ज्वर, तथा दाह नाशक है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

विवरण ।

पित्तपापडेके क्षुप खेतोंमें बहुत होतेहैं, इसके ऊपर वाल निकलतीहैं, यह दो जातिका होताहै, एकमे नीले फूल और दूसरेमें लाल फूल आतेहैं. पत्ते बहुतही छोटे २ होतेहैं लाल फूलका अधिक फलदायक है ॥

अथ निम्बः ।

निम्बः स्यात्पिचुमर्दश्च पिचुमन्दश्च तिक्तकः ॥ अरिष्टः पारिभद्रश्च हिंगुनिर्यास इत्यपि ॥ ८९ ॥ निम्बः शीतो लघुर्ग्राही कटुपाकोऽग्निवातनुत् ॥ अहृद्यः श्रमतृट्कासज्वरारुचिक्रिमिप्रणुत् ॥ ९० ॥ व्रणपित्तकफच्छर्दिकुष्ठहृल्लासमेहनुत् ॥ निम्बपत्रं स्मृतं नेत्र्यं कृमिपित्तविषप्रणुत् ॥ ॥ ९१ ॥ वातलं कटुपाकश्च सर्वारोचककुष्ठनुत् ॥ निम्बफलं रसे तिक्तं पाके तु कटु भेदनम् ॥ स्निग्धं लघूष्णं कुष्ठघ्नं गुल्मार्शःक्रिमिमेहनुत् ॥ ९२ ॥

निम्ब, पिचुमर्द, पिचुमन्द, तिक्तक, अरिष्ट, पारिभद्र, हिंगुनिर्यास, (नियमन, नेता, सतिक्तक, सर्वतोभद्र,

सुभद्र, पारिभद्रक, शुकप्रिय, शीर्पपर्णी, वरत्वच, छर्दन, पीतसार, रविप्रिय, मालक, पक्कृत्, अर्कपादप, पूकमालक, कीटक, विबंध, निम्बक, कैटर्य, छर्दिघ्न, प्रभद्र, काकफल, कीरेष्ट, सुगना, विशीर्णपर्ण, पीतसारक, शीत और राजभद्रक) ये नीमके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—नीम । ब०—निम्ब । म०—कडुलिम्ब । गु०—लीबडो । क०—बेड । तै०—वेया । फा०—दरख्तहक । इ०—निम्बट्री Nimbtree लै०—एक्सडिरेक्टा इडिका Exadirecta Indica ॥

नीम—शीतल, हलका, ग्राही, पाकमें चरपरा, हृदयको अप्रिय और अग्नि, वात, परिश्रम, तृषा, ज्वर, अरुचि, कृमि, व्रण, पित्त, कफ, वमन, कोढ, हृल्लास और प्रमेहको नष्ट करै है । नीमके पत्ते नेत्रोको हितकारी, वातकारक, पाकमे चरपरे, और सर्वप्रकारकी अरुचि, कोढ, कृमि, पित्त तथा विषको नष्ट करैहैं. नीवके फल—कडवे, पाकमे चरपरे, मलभेदक, स्निग्ध, हलके, गरम और कोढ, गुल्म, बवासीर, कृमि तथा प्रमेहको विनष्ट करैहैं ॥ ८९–९२ ॥

विवरण ।

नीमके वृक्ष—बहुत ऊँचे और घनाकार होतेहै. पत्ते कँगनीदार, अनीदार, नोक कुछ फिरीहुई होतीहै. वसन्त ऋतुके आदिमे कोमल २ लाल रगके नवीन पत्ते निकलतेहैं, मौर भी पत्तोके साथही साथ हरेरगका निकलताहै, और वसन्तऋतुके अन्तमे वारीक और सफेद रगके फूल आतेहैं सुगन्ध कुछ कुछ चमेलीके फूलोकीसी आतीहै, फल लम्बे और गोल खिन्नीके फलोंके सदृश आतेहैं उनको निबौली कहतेहै, वे कोमल बहुत होतींहैं छूते छूते टूट जाती हैं, खानेमे मीठी और हीकदार होतीहैं, कच्ची अवस्थामे हरी और पकनेपर पीली पडजातीहैं, उनके भीतर हरी मीगभी निकलतीहै, उसमें तेल होताहै, इसके वृक्ष नगर और ग्रामोंमें अधिक होतेहैं और इसकी वैद्य बहुत प्रशसा करतेहैं ॥

अथ महानिम्ब [बकायन] ।

महानिम्बः स्मृतो द्रेका रम्यको विषमुष्टिकः ॥ केशमुष्टिर्निम्बकश्च कार्मुको जीव इत्यपि ॥ ९३ ॥ महानिम्बो हिमो रूक्षस्तिक्तो ग्राही कषायकः ॥ कफपित्तभ्रमच्छर्दिकुष्ठहृल्लासरक्तजित् ॥ प्रमेहश्वासगुल्मार्शोमूषिकाविषनाशनः ॥ ९४ ॥

महानिब, द्रेका, रम्यक, विषमुष्टिक, केशमुष्टि, निम्बक, कार्मुक, जीव, (केशमुष्टिक, क्षीर, काकाण्ड, वृहन्निम्ब, महातिक्त, महाद्रेष्क, हिमद्रुम, पार्वत, गैरिक, शुक्लसारक, सकालेयक, गिरिपत्र, यवनेष्ट और कैटर्य्य) ये बकायनके सस्कृत नामहै ॥

हिन्दी—बकाइ (य) न । ब०—घोडानिम । म०—बकाणी निब । क०—महाबेड । गु०—बकान । तै०—पेद्वेया । फा०—तुजा कुनार्य । अ०—बान । लै०—मेलिया एजेडेरक Melia Azedarach ॥

बकायन—शीतल, रूखी, कडवी, ग्राही, कसैली और कफ, पित्त, भ्रम, वमन, कोढ, हृल्लास, (जीमिचलाना) रुधिरविकार, प्रमेह, श्वास, गुल्म, बवासीर, तथा मूसों (चूहो) के विषको दूर करै हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

विवरण ।

बकायनके बडे लम्बे २ झाडेदार वृक्ष होतेहैं. पत्ते नीमके पत्तोंसे कुछ बडे होतेहै. बकायनके फूल भी नीमके समान होतेहै, परन्तु कुछ २ नीलापन होताहै, फल गोल २ होतेहैं और गुच्छेके गुच्छे लटकते रहतेहै ॥

अथ पारिभद्रः [फरहद] ।

पारिभद्रो निम्बतरुर्मन्दारः पारिजातकः॥ पारिभद्रोऽनिलश्लेष्मशोथमेदःकृमिप्रणुत्॥ तत्पत्रं पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधिविनाशनम् ९५

पारिभद्र, निबतरु, मन्दार, पारिजातक, (पालाश, रक्तपुष्प, प्रभद्रक, कण्टकी, कण्टकिशुक, रक्तपुष्पक, कृमिशत्रु, रक्तकुसुम, कृमिघ्न, बहुपुष्प और रक्तकेशर) ये फरहदके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—फरहद, । ब०—पालतेमान्दार । म०—पागेरा (की) पारिगा । गु०फरहद । क०—हरिवाल । तै०—मुल्लमोतिचेट्टु । ता०—मुराक । लै०—एरिथ्रिना इण्डिका Erythrina Indica ॥

फरहद—वात, कफ, सूजन, मेदा तथा कृमिको नष्ट करैहै इसके पत्ते पित्तरोग तथा कर्णरोगको नष्ट करैहै ९५

विवरण ।

फरहद—पारिभद्रके वृक्ष जगल और वनमे बहुत होते हैं, पत्ते टाकके समान एक एक डालीमे तीन तीन पत्ते होतेहैं. फूल लालरगके अत्यन्त शोभायमान होतेहैं, इनपर फलियें लगतीहैं और शाखाओ पर सूक्ष्म कांटे होतेहै ॥

अथ काञ्चनारः रक्तकाञ्चनारश्च

[कचनार] ।

काञ्चनारः काञ्चनको गण्डारी शोणपुष्पकः ॥ ९६ ॥ कोविदारश्च मरिकः कुद्दालो युगपत्रकः ॥ कुण्डली ताम्रपुष्पश्चाश्मन्तकःस्वल्पकेशरी ॥ ९७ ॥ काञ्चनारो हिमो ग्राही तुवरः श्लेष्मपित्तनुत् ॥ कृमिकुष्ठगुदभ्रंशगण्डमालाव्रणापहः ९८॥ कोविदारोऽपि तद्वत्स्यात्तयोः पुष्पं लघु स्मृतम् ॥ रूक्षं संग्राहि पित्तास्रप्रदरक्षयकासनुत् ॥ ९९ ॥

काचनार, काचनक, गडारि, शोणपुष्पक, कोविदार, चमारिक, कुद्दाल, युगपत्रक, ताम्रपुष्प, अश्मन्तक, स्वल्पकेशरी, कुण्डली (कुली, आस्फोतक, कुदार, उद्दालक, स्वल्पकेसर और चमरी) ये कचनारके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी–कचनार । बं०–काचन । म०–कोरल, काचनवृक्ष । गु०–कचनार । क०–कोचाले, कचनार । तै०–देवकाचन । लै०–बोहिनिया वेरियेगेट Bowhenia Variegata ॥

कचनार–शीतल, ग्राही, कसैली और कफ, पित्त, कृमि, कोढ, गुदभ्रंश, गंडमाला और व्रणको नष्ट करेहै. कोविदारकेभी येही गुण है । इन दोनोंके फूल, हलके, ग्राही और पित्त, रुधिरविकार, प्रदर, क्षय, तथा खांसीको नष्ट करेहैं ॥ ९६–९९ ॥

विवरण ।

लाल और सफेद कचनार दो प्रकारका होताहै इसके वृक्ष जगल और पहाडोंमें अधिक होतेहैं, पत्ते एक एक शाखामें बराबर बराबर दो दो होतेहैं, सफेद फूल आतेहैं और फलिये लगतीहैं । दूसरी जातिका कचनार भी इसी प्रकारका होताहै परन्तु फूल लाल रंगके होतेहैं और कोई बात विशेष नहीं होती, इसकी कलियोंका शाक और रायता अच्छा बनताहै ॥

अथ शोभांजनः श्यामः श्वेतो रक्तश्च ।

[सहिञ्जना] ।

शोभाञ्जनः शिग्रुतीक्ष्णगन्धकाक्षीवमोचकाः॥तद्बीजं श्वेतमरिचं मधुशिग्रुःसलोहितः॥शिग्रुः कटुः कटुः पाके तीक्ष्णोष्णो मधुरो लघुः ॥ १०० ॥ दीपनो रोचनो रूक्षः क्षारस्तिक्तो विदाहकृत् ॥ संग्राही शुक्लो हृद्यः पित्तरक्तप्रकोपणः ॥ १०१॥ चक्षुष्यः कफवातघ्नो विद्रधिश्वयथुक्रिमीन॥ मेदोऽपचीविषप्लीहगुल्मगण्डव्रणान्हरेत ॥ ॥ १०२ ॥ श्वेतः प्रोक्तगुणो ज्ञेयो विशेषाद्दाहकृद्भवेत् ॥ प्लीहानं विद्रधिं हन्ति व्रणघ्नः पित्तरक्तहृत् ॥ १०३ ॥ मधुशिग्रुः प्रोक्तगुणो विशेषाद्दीपनः सरः॥ शिग्रुवल्कलपत्राणां स्वरसः परमार्त्तिहृत् ॥ १०४ ॥ चक्षुष्यं शिग्रुजं बीजं तीक्ष्णोष्णं विषनाशनम्॥ अवृष्यं कफवातघ्नं तन्नस्येन शिरोऽर्त्तिनुत् ॥ १०५ ॥

शोभाजन, शिग्रु, तीक्ष्णगन्धक, अक्षीव मोचक, (शुभाञ्जन, सौभांजन, विद्रधिनाशन, मधुरुजन हरितशाक, शाकपत्र, शिग्रुक, सुरक्ष, क्षमादश, कोमलदलक, बहुमूल, दंशमूल, तीक्ष्णमूल, झष, कामिनीश, शोभाक, सुतीक्ष्ण, वनपल्लव, श्वेतमरिच, कटुकन्द, गन्ध, गन्धक, कालीवक, मेचक, आक्षीव. स्त्रीचित्तहारी. द्रविणनाशन, कृष्णगन्धा मूलकपर्णी, मोच, तिल, जलशिग्रु, मुखमोद, कृष्णशिग्रुचलुपा और रुचिराजन) ये साहिजनेके संस्कृत नाम हैं ॥

इसके बीजको श्वेत मरिच कहते हैं, मधुशिग्रु. (रक्तशिग्रु, मुरंगी, शुभाजना, कृष्णबीज, गर्भपातक. रक्तक, मधुर, बहुलद, सुगन्ध, केसरी, सिंह और मृगारि) ये लाल सहिजनेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सहिंजना, लाल सहिंजना । बं०–सजिना, लाल सजिना । गु०–सरगवो, रातो सरगवो । क०–नुग्गीलिनुगी, कपनेयनुगि । तै०–मुलङ्गा । ता०–मोरग० । इं०–हॉर्सरेडीशट्री Horseradish tree लै०–मोरिंगाप्टेरीगास्पेरुमा Moringbgaptree gorpeumatry Gosberulna

सहिंजना–चरपरा, पाकमें चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, मधुर, हलका, अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारक, रूक्ष, खारी, कडवा, दाहकारक, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, हृदयको हितकारी, पित्त तथा रक्तको कुपित करनेवाला, नेत्रोंको हितकारी और कफ, वात, विद्रधि, सूजन, कृमि, मेद, अपची, विष, प्लीहा, गुल्म, गडमाला, तथा व्रणको नष्ट करै है। सफेद सहिंजना भी उपरोक्त गुणोंवालाही है, विशेष करके

दाहकारक, प्लीहा, विद्रधि, व्रण, पित्त तथा रक्तविकारको नष्ट करै है। लाल सहिंजनामें भी येही गुण हैं; विशेष करके अग्निको दीपन करनेवाला तथा दस्तावर हैं। सहिजनेकी छाल और पत्तोका स्वरस अत्यत पीडाको नष्ट करैहै। सहिजनेके बीज नेत्रोको हितकारी, तीक्ष्ण, गरम, वीर्यवर्द्धक नहीं और विष, कफ तथा वायुको शमन करैहै। इसके बीजोका नस्य (नास) लेनेसे शिरका दर्द निःसन्देह दूर होजाता है॥ १००-१०५॥

विवरण।

सहिंजनेके वृक्ष-वन और बागोमें अधिक होतेहै, इसके फूलोका रग देखकर तीन चार प्रकारका भेद जानाजाताहै फूल-नीले, सफेद और लाल आतेहैं, इनमे सफेद फूलका गुण उत्तम होताहै, फूलोकी बडी लम्बी २ डालियें गुच्छेके समान लटकतीहैं, पत्ते सिरसके सदृश डालीके दोनो ओर बराबर होतेहैं, देखनेमे शिरसके समान, परन्तु कुछ बडे होते हैं, फली दो दो फुट लम्बी होती हैं॥

अथ श्वेतपुष्पा नीलपुष्पा चापराजिता। [कोयल]।

आस्फोटा गिरिकर्णी स्याद्विष्णुक्रान्ताऽपराजिता॥ अपराजिते कटू मेध्ये शीते कण्ठ्ये सुदृष्टिदे॥ १०६॥ कुष्ठमूत्रत्रिदोषामशोथव्रणविषापहे॥ कषाये कटुके पाके तिक्ते च स्मृतिबुद्धिदे॥ १०७॥

आस्फोटा, गिरिकर्णी, विष्णुक्रान्ता, अपराजिता, (भूमिलग्ना, नगपर्यायकर्णी, गवाक्षी, गिरिशालिनी, अश्वक्षुरादिकर्णी, कटभी, दधिपुष्पिका, गर्दभी, सितपुष्पा, श्वेतस्पदा, किणिही, श्वेता, भद्रा, सुपुष्पी, विषहन्त्री, सुपुत्री, सिंहपुष्पी, श्वेतवराटा और गवादिनी) ये कोयलके सस्कृत नाम है॥

हिन्दी-कोयल, अपराजिता। बं०-अपराजिता। म०-गोकर्णी, काळी, पाढरी, सुपली। गु०-गरणी, कालीगरणी। क०-बीलीय। तै०-नीलगटुना। इ०-मेजरीन Megerin लै०-क्लीटोरिया टरनेटिया Clitaria Ternetia॥

दोनो प्रकारकी कोयल-चरपरी, मेधाको हितकारी. शीतल, कठको शुद्ध करनेवाली, दृष्टिको उत्तम करनेवाली पाकमे चरपरी, कसैली, स्मृति, तथा बुद्धिको देनेवाली और कोढ, मूत्रका दर्द, तीनों दोष, आम, सूजन, व्रण, तथा विषको दूर करैहै॥ १०६॥ १०७॥

विवरण।

अपराजिता (कोयली) की लता वन बाग और नाय खेतोकी वाडोपर होतीहै, परन्तु इसकी दो जाति होतीहैं, एक सफेद फूलकी. और दूसरी नीले फूलकी होती है, पत्ते बहुत छोटे छोटे महीन जातिके होते हैं॥

अथ सिन्दुवारः [सम्हालू]।

सिन्दुवारः श्वेतपुष्पः सिन्दुकः सिन्दुवारकः॥ नीलपुष्पी तु निर्गुण्डी शेफाली सुवहा च सा॥ १०८॥ सिन्दुकः स्मृतिदस्तिक्तः कषायः कटुको लघुः॥ केश्यो नेत्रहितो हन्ति शूलशोथाममारुतान्॥ ॥ १०९॥ कृमिकुष्ठारुचिश्लेष्मज्वरान्नीलापि तद्विधा॥ सिन्दुवारदलं जन्तुवातश्लेष्महरं लघु॥ ११०॥

सिन्दुवार, श्वेतपुष्प, सिन्दुक, सिन्दुवारक, (इन्द्राणिका, इन्द्रसुरस, निर्गुण्डी, सिन्धुवारक, सिन्धुक, इन्द्रसुरिप, सिन्दुवारित, इन्द्रागी, शक्राणी, कासनाशिनी सुरसा, सिन्धु, शुक्लपुष्पक, विसुगन्धक, सुरस, स्थिरसावनक, अनन्त, सिद्धक, अर्थसिद्धक, और सिन्दुवारिका) ये सफेद फूलवाले सम्हालूके सस्कृत नाम हैं॥ नीलपुष्पी, निर्गुण्डी, शेफाली, सुहवा, (नीलिका, नीलनिर्गुण्डी, सिन्दुक, नीलसिन्दुक, नीलसिन्दुवार, पीतसहा, भूतकेशी, इन्द्राणी, नीलिका, कपिका, शेफालिका, शीतभीरु, नीलमजरी, कर्तरीपत्रा) ये नीले फूलवाले सम्हालूके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-सम्हालू, निर्गुण्डी, मेउडी, नीलसम्हालू। बं०-निशिन्दा, नीलनिशिन्दा,। म०-निर्गुण्डी, पांढरी निरगुण्डी। काळीनिर्गुण्डी। गु०-धोलाफूलवाली नगोड, काला फूलवाली नगोड। क०-करीयह्लो तै०-तेलावाविली। इ-फिवेलियावेड चेस्ट ट्री Fiveleaved Chaste tree लै०-वाइटेक्स निर्गुण्ड Vitex Nigundo॥

दोनो प्रकारके सम्हालू-स्मृतिदायक, कडवे, कसैले, चरपरे, हलके, केशोको उत्तम करनेवाले, नेत्रोको हितकारी, और शूल, शोथ, आमवात, कृमि कोढ, अरुचि, कफ तथा ज्वरको नष्ट करै है। सम्हालूके पत्ते-जन्तु, वात, तथा कफको हरै हैं और हलके है॥ १०८--११०॥

विवरण।

निर्गुण्डीके वृक्ष वन और बागोमे बहुत होते है, पत्ते

अरहरके समान लम्बे होतेहैं. एक एक डण्डी पर पांच पांच लगते हैं. पत्ते बहुत हरे और नीचेसे सफेद होते हैं, निर्गुंडी कई जातिकी होती हैं, किसीपर काले और किसीपर लाल फूल होतेहैं, फल आमके मौरके समान गुच्छेदार और केशरके रंगके समान होतेहैं ॥

अथ कुटजः [कुडा]

कुटजः कूटजः कीटो वत्सको गिरिमल्लिका ॥ कालिंगः शक्रशाखी च मल्लिकापुष्प इत्यपि ॥ इन्द्रो यवफलः प्रोक्तो वृक्षकः पाण्डुरद्रुमः ॥ १११ ॥ कुटजः कटुको रूक्षो दीपनस्तुवरो हिमः ॥ अर्शोऽतिसारपित्तास्रकफतृष्णामकुष्ठनुत् ११२

कुटज, कूटज, कीट, वत्सक, गिरिमल्लिका, कालिंग, शक्रशाखी, मल्लिकापुष्प, इन्द्र, यवफल, वृक्षक, पाण्डुरद्रुम, (वरतिक्त, शक्राशन, शक्र, पाण्डुर, कटुक, कुटक, कौटज, तिक्तक, रक्तनाशक, शक्राह्वय, काही, प्रावृष्य, शक्रपादप, सग्राही, पाण्डुद्रुम, प्रावृषेण्य, महागन्ध, इन्द्रवृक्ष और शक्रशाखी) ये कुडेके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०—कुडा, कौरैया । व०—कुडची, कुरचि । म०—कुडा । गु०—कडो । क०—कोटसिगेयमरनु । तै०—अकेलु चगळकुष्ठ । अ०—तिवाज । इं०—ओवल्लिव्ड रोझबे Ovalleaved Rosebay ल०—प्रोगमिया ग्लेबरा Pangamia Glabra ॥

कुडा—चरपरा, रूखा, अग्निको दीपन करनेवाला, कसैला, शीतल और बवासीर, अतिसार, पित्त, रक्तविकार, कफ, तृषा, आम तथा कुष्ठको नष्ट करै है ॥ १११ ॥ ११२ ॥

विवरण ।

कुडेका वृक्ष बहुत बडा होताहै, पत्ते लम्बे होतेहैं फूल सफेद आतेहैं और फलियोंमें जो बीज होतेहैं उनहीको इन्द्रजो कहतेहैं, इन्द्रजौ दो प्रकारके होतेहैं एक मीठे और दूसरे कडुवे ॥

अथ करञ्जः [करञ्ज] ।

करञ्जो नक्तमालश्च करञ्जश्चिरबिल्वकः ॥ घृतपूर्णकरञ्जोऽन्यः प्रकीर्यः पूतिकोऽपि च ॥ ११३ ॥ स चोक्तः पूतिकरजः सोमवल्कश्च स स्मृतः ॥ करञ्जः कटुकस्तीक्ष्णो वीर्योष्णो योनिदोषहृत् ॥ ११४ ॥ कुष्ठोदावर्तगुल्मार्शोव्रणक्रिमिकफापहः ॥ तत्पत्रं कफवातार्शःक्रिमिशोथहरं परम् ॥ ११५ ॥ भेदनं कटुकं पाके वीर्योष्णं पित्तलं लघु ॥ तत्फलं कफवातघ्नं मेहार्शःक्रिमिकुष्ठजित् ॥ घृतपूर्णकरञ्जोऽपि करञ्जसदृशो गुणैः ॥ ११६ ॥

करज, नक्तमाल, करज, चिरबिल्वक, (पूतिक, पूतिपत्रक, पूतिकरज, कैटर्य, कलिमार, पूतिपर्ण, वृद्धफल, रोचन, करजक और उदकीर्य) ये करजके संस्कृत नाम हैं ॥

घृतपूर्णकरज, प्रकीर्य, पूतिक, पूतिकरंज और सोमवल्क, ये घियाकरजके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—करंज, कज, घियाकरज । ब०—डहरकरंज, नाटाकरज । म०—चोपडाकरज, घाणेराकरंज । क०—नाग्रसीयमरनू, वारुवहु लिगिलु । गु०—करज । तै०—कानुगचट्टू । इं०—स्मूथ लिव्ड Smooth Leaved ल०—पोंगेमिया ग्लेबरा Pongamia Glabra ॥

करंज—चरपरी, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, योनिदोषोंको हरनेवाली और कोढ, उदावर्त्त, गुल्म, बवासीर, कृमि, व्रण, तथा कफनाशक है । करजके पत्ते—मलभेदक, पाकमें चरपरे, उष्णवीर्य, पित्तकारक, हलके और कफ, वात, बवासीर कृमि तथा शोथको हरनेवाले हैं । करजके फल—कफ, वात, प्रमेह, बवासीर, कृमि, तथा कोढको नष्ट करैहैं, घियाकरजके गुण भी करजके सदृशही हैं ॥ ११३–११६ ॥

विवरण ।

कटककरज अर्थात् करजुवेके वृक्ष—मालीलोग पुष्पवाटिकाओंकी बाडों पर रक्षाके लिये लगादेते हैं, और जगलमें भी होजाते हैं, परन्तु वह पेड लताके सदृश होतेहैं, और परस्पर गठजाते हैं, उन झाड झकाडोमें अधिक कॉटे होते हैं. पत्ते सिरसके समान डालीमें आमने सामने लगे होते हैं. फल कचौरीके समान लगते हैं, परन्तु कॉटोसे ऐसे परिपूर्ण होते हैं कि, तिल रखनेको ठौर नहीं रहती, उसमेसे चार पाँच बडी कौडीके बराबर दाने निकलते हैं, उनको करजुवा कहते हैं, ऊपरसे उनकी छाल राखका रगके समान होती है, भीतरसे सफेद गिरी निकलतीहै ॥

अथ अरारी [करंजिया] ।

उदकीर्यस्तृतीयोऽन्यः षड्ग्रन्था हस्तिवारुणी ॥ मर्कटी वायसी चापि करञ्जी करभञ्जिका ॥ ११७ ॥ करञ्जी स्तम्भनी

तिक्ता तुवरा कटुपाकिनी ॥ वीर्योष्णा वमिपित्तार्शःकृमिकुष्ठप्रमेहजित् ॥११८॥

उदकीर्य, षड्ग्रन्था, हस्तिवारुणी, मर्कटी, वायसी, करंजी और करभंजिका, ये उदकीर्य नामक तीसरे करंजके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–अरारी, करजिया । म०–थोरकरज । यह करंज–वीर्यस्तम्भक, कडवी, कसैली, पाकमें चरपरी, उष्णवीर्य, और वमन, पित्त, ववासीर, कृमि, कोढ तथा प्रमेहको नष्ट करैहै ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

विवरण ।

उदकीर्य करजके बहुत बडेबडे वृक्ष वनमे होतेहैं, पत्ते पाखरके पत्तोंकी समान गोल और ऊपर के भागमे चमकदार होतेहैं, इसमे फल आसमानी रगके आतेहैं और फल भी नीले नीले झुमकेदार लगतेहैं, पत्तोमे दुर्गन्ध आतीहै ॥

अथ श्वेतरक्तगुञ्जा ।

श्वेता रक्तोच्चटा प्रोक्ता कृष्णला चापि सा स्मृता ॥ रक्ता सा काकचिञ्ची स्यात्काकानन्ती च रक्तिका ॥ ११९ ॥ काकादनी काकपीलुः सा स्मृता काकवल्लरी ॥ गुञ्जाद्वयन्तु केश्यं स्याद्वातपित्तज्वरापहम् ॥ १२० ॥ मुखशोषभ्रमश्वासतृष्णामदविनाशनम् ॥ नेत्रामयहरं वृष्यं बल्यं कण्डूव्रणं हरेत्॥१२१॥कृमीन्द्रलुप्तकुष्ठानि रक्ता च धवलापि च ॥

सफेद और लाल, इसभाँति दोप्रकारकी घुँघुची होती हैं। उसमे उच्चटा, कृष्णला (श्वेतकाम्बोजी, श्वेतगुजा, भिरिण्डिका, श्वेतोच्चटा, श्वेतबीजा, श्वेतरक्तिका और श्वेत गुंजिका) ये सफेद चोटलीके संस्कृत नाम हैं ॥

काकचिञ्ची, काकानन्ती, रक्तिका, काकादनी, काकपीलु, काकवल्लरी, (गुंजिका, गुंजा, काकजंघा, शिखण्डिनी, कृष्णला, काकिनी, कक्षा, कनीचि, काकणन्तिका, शागुष्ठा, काकतिक्ता, काकतुंडिका, काका, काकिणी, काञ्ची, चूडामणि, सौम्या, शिखडी, अरुणा, ताम्रिका, शीतपाकी, कृष्णचूडिका, रक्ता, काम्बोजी, भीलभूषणा, वन्या, श्यामलचूडा, काकचिंचिका, काकणन्ती, काकशिम्बी, रक्तला, वक्रशल्या, ध्वांक्षनखा, दुर्मोषा, चटकी, तुलाबीजा और अङ्गारवल्लरी) ये लाल चोटलीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–घुँघुची, चोटली, चिरमिटी । ब०–श्वेतकुच, लालकुच । म०–गुंजा । गु०–धोलीचणोठी, रातीचणोठी क०–गुलगुजे । तै०–गुलविंदे । फा०–चश्मेखरुस् । अ०–हबसुर्ख, हबसुफेद । इं०–बिडट्री Bead—Tree ल०एब्रस प्रिकेटोरियस Abrus Precatorius

दोनो प्रकारकी, घुँघुची-केशोको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, बलदायक और वात, पित्त, ज्वर, मुखशोष, भ्रम, श्वास, तृषा, मद, नेत्रके रोग, खुजली, व्रण, कृमि, इन्द्रलुप्त, तथा कोढको नष्ट करैहैं ॥ ११९–१२१ ॥

विवरण ।

लालगुञ्जे और सुफेदगुञ्जे अर्थात् चौटलीकी वेल–जगलोमे अधिकतासे होतीहैं, पत्ते इमलीके समान होतेहैं और फली सेमकी फलीके समान गुच्छोमे लगतीहैं और उन फलियोके भीतर चौटली निकलतीहैं, वह लालरगकी होतीहै और मुखपर किञ्चित् काली होतीहै, और सफेद रगकी चौटली सम्पूर्ण सफेद होतीहैं, इसप्रकार चौटलीके दो भेद कहेहैं ॥

अथ कपिकच्छूः [कोंच] ।

कपिकच्छूरात्मगुप्ता वृष्या प्रोक्ता च मर्कटी॥ अजरा कण्डुरा व्यङ्गा दुःस्पर्शा प्रावृषायणी ॥ १२२ ॥ लांगली शूकशिम्बी च सैव प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ कपिकच्छूर्भृशं वृष्या मधुरा बृंहणी गुरुः ॥ ॥ १२३ ॥ तिक्ता वातहरी बल्या कफपित्तास्रनाशिनी ॥ तद्बीजं वातशमनं स्मृतं वाजीकरं परम् ॥ १२४ ॥

कपिकच्छू, आत्मगुप्ता, वृष्या, मर्कटी, अजरा, कण्डुरा व्यंगा, दुःस्पर्शा, प्रावृषायणी, लागली, शूकशिम्बी, (शुकशिम्बा, कपिप्रभा, शुकपिंडी, स्वयंगुप्ता, कण्डुरा शूकशिम्बिका, जडा, अव्यण्डा, शुकशिम्बि, ऋष्यप्रोक्ता, सद्यशोथा, शूका, शूकवर्ती, गात्रभगा, कच्छूमती, कच्छूरा, ऋषभी, कपिकच्छुरा, ऋषभ, जटा, स्वगुप्ता, अजाह्वा, प्रावृषा, शूकशिवा, अजडा, वानरी, कपिकच्छू, शूकपिण्डी, व्याम्रा, सुतप्ता, महर्षभी, कुण्डली, चण्डा, दुर

---

१ किसी २ पुस्तकमें उच्चटाके स्थानमें घटा ऐसा पाठ दियाहै अर्थात् उच्चटा नाम सफेद घुघुचीका नहींहै । उच्चटा एक दूसरी औषधीहै कि जिसको उटगन कहते हैं ।

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] नाम हैं ॥

[illegible] । [illegible]—आम्रगुठी । [illegible] [illegible] । [illegible]—गुठली । [illegible] [illegible] [illegible] Cowhage [illegible] Mucuna Pruriens ॥

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] और [illegible] है । १२२—१२४ ॥

विवरण ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] समान होती है [illegible] [illegible] होती है, [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] समान और [illegible] ॥

अथ मांसरोहिणी ।

मांसरोहिण्यतिवला वृत्ता चर्मकषा कृशा॥ प्रहारवल्ली विकषा वीरवत्यपि कथ्यते ॥ मांसरोहिणी वृष्या सरा दोषत्रया-पहा ॥ १२५ ॥

[illegible]

[illegible] समान [illegible] सामने सामने [illegible] [illegible] [illegible], होती है, [illegible] छोटे छोटे [illegible] रंगके होते हैं, [illegible] [illegible] [illegible] करते हैं ॥

अथ चिल्हकः ।

चिल्हको वातनिर्हारी श्लेष्मघ्नो धातुपुष्टिकृत् ॥ आग्नेयो विषवल्ल्यस्य फलं मत्स्यनिषूदनम् ॥ १२६ ॥

चिल्हक—वातनाशक, [illegible], धातुको पुष्ट करनेवाला और गरम है । [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] मछलियोंको मारडालता है ॥ १२६ ॥

विवरण ।

चिल्हकके [illegible]—छोटे छोटे होतेहैं विशेषकरके पर्वत [illegible] पथरीली भूमिमें बहुत उत्पन्न होतेहैं, पत्ते [illegible] और [illegible] [illegible] होतेहैं [illegible] [illegible] [illegible] समान [illegible] [illegible] होते हैं ॥

अथ दद्दारी ।

दद्दारी वातजित्तिक्ता श्लेष्मघ्नी दीपनी लघुः ॥ शोथोदरव्यथाहन्त्री हिता पीठविसर्पिणाम् ॥ १२७ ॥

दद्दारी—[illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] है । [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] हित है ॥ १२७ ॥

विवरण ।

[illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] होते हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

अथ वेतसः [बेत] ।

वेतसो नम्रकः प्रोक्तो वानीरो वञ्जुलस्तथा ॥ अभ्रपुष्पश्च विदुलो रथशीतश्च कीर्तितः ॥ १२८ ॥ वेतसः शीतलो दाहशोथार्शोयोनिरुक्प्रणुत् ॥ हन्ति वीसर्पकृच्छ्रास्रपित्ताश्मरीकफानिलान् ॥ १२९ ॥

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible]

हिन्दी–वेंत । ब०–बेत । गु०–नेतर । म०–थोरवेत। क०–वेडिसु । तै०–पीपारुवा । इं०–केन Cane ल०–केलेमस् Calamus ॥

वेत–शीतल और दाह, शोथ, बवासीर योनिरोग, विसर्प, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, पथरी, कफ तथा वातविनाशकहै ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

विवरण ।

वेत और जलवेत इसकी दो जाति हैं, ये वेत जलके निकटकी भूमिमें उत्पन्न होतेहैं, इसके पेड भी लताके आकारके होतेहैं, पत्ते बांसके समान, फल फूल आते ही नही, वेतकी जड बहुत लम्बी २ होती है, वेतके ऊपरका वक्कल बहुत पक्का होताहै, कुरसी आदि उसीसे बुनी जातीहैं । वेंत जलमें भी उत्पन्न होताहै उसके गुण बेतहीके समान होतेहैं ॥

अथ जलवेतसः ।

निकुञ्चकः परिव्याधो नादेयो जलवेतसः॥ जलजो वेतसः शीतः कुष्ठहृद्वातकोपनः १३०

निकुचक, परिव्याध, नादेय, जलवेतस (शाखालु, मेघपुष्प, तोयकाम, अभ्रपुष्पक, नदीकुलप्रिय, नीरप्रिय, सुशीतल और व्याधिघात) ये जलवेंतके संस्कृत नाम हैं ।

हि०–जलवेत । ब०–जलवेत । म०–वेत, जलवेत । गु०–जलजाववो । क०–वेतसु । लै०–इलेटीनवेरटीन वेरटीकेल्लाट Elatine vertia verticellata ॥

जलवेत–शीतळ, कुष्ठनाशक, और वायुको कुपित करनेवाला है ॥ १३० ॥

अथ इज्जलः [समुद्रशोष] ।

इज्जलो हिज्जलश्चापि निचुलश्चाम्बुजस्तथा ॥ जलवेतसवद्वेद्यो हिज्जलोऽयं विषापहः १३१

इजल, हिजल, निचुल और अबुज ये हिज्जलके सस्कृत नाम हैं । हिन्दी–हिजल । गु०–समुद्रशोष ।

हिजल–जलवेतके सदृश ही गुणवाला है, विशेष करके विषविनाशक है ॥ १३१ ॥

विवरण ।

हिज्जलके वृक्ष प्रायः जलाशयके निकट अधिक उत्पन्न होतेहैं पत्ते छोटे २ रामशरके समान होतेहैं. फल तीनरेखायुक्त इलायचीके समान होते हैं जूडी दूर करनेमे कुनैनके समान है ॥

अथ अंकोटः [अंकोल] ।

अंकोटो दीर्घकीलः स्यादंकोलश्च निकोचकः॥अंकोटकः कटुस्तीक्ष्णः स्निग्धोष्णस्तुवरो लघुः ॥ १३२ ॥ रेचनः कृमिशूलामशोफग्रहविषापहः ॥ विसर्पकफपित्तास्रमूषकाहिविषापहः ॥१३३॥ तत्फलं शीतलं स्वादु श्लेष्मघ्नं बृंहणं गुरु॥बल्यं विरेचनं वातपित्तदाहक्षयास्रजित् ॥ १३४ ॥

अकोट, दीर्घकील, अकोल, निकोचक, (कोलक, रेची, विषघ्न, दीर्घकीलक, पीतसार, ताम्रफल, गन्धपुष्प, अकोटक, अकोठ, निकोठक, अकोलक, वोध, नेदिष्ट, रामठ, ककरोल, घलन्त, दृढकण्टक, कोठर, गूढपत्र, मज्जन, गुप्तस्नेह, गूढ वल्लिका, पीत, गुणाढ्यक, लम्बकर्ण, रोचन, विशाल, तैलगर्भ, वामक, और लम्बपर्णक) ये अंकोलके सस्कृत नाम है ॥

हि०–अकोल, ढेरा । ब०–ऑकोड, धलाऑकड । म०–अकोली वृक्ष । कं०–अकले । गु०–अकोली । तै०–उडीके । इ०–टलीविड एल्युरेटीस Trlibibid Alu Retis लै०-एलेन जियालेमार्की आई Alenglale marciai ॥

अकोल–चरपरा, तीक्ष्ण, चिकना, गरम, कसैला, हलका, रेचक और कृमि, शूल, आम, सूजन, ग्रह, विष, विसर्प, कफ, पित्त, रुधिरविकार, तथा साप और मूषक (चूहोका) विष नष्ट करै है । इसका फल–शीतल, स्वादिष्ठ, कफनाशक, पुष्टिकारक, भारी, बलदायक, रेचक; और वात पित्त, दाह, क्षय तथा रुधिरविकार नाशक है ॥ १३२–१३४ ॥

विवरण ।

अकोल अर्थात् ढेरेके वृक्ष बडे बडे होतेहैं, विशेष करके जगल वन और पर्वतोपर अधिक पाये जाते हैं, पत्ते एक अगुल चौडे और पॉच छः अगुल लम्बे होतेहै, फूल सफेद होतेहैं, फल कच्ची अवस्थामे नीले और पकनेपर लाल पडजातेहैं, उनके ऊपर कालापन झलकता रहताहै इस वृक्षपर काटे बहुत होतेहैं ॥

अथ बलाचतुष्टयम् [खिरैंटी] ।

बला वाट्यालिका वाट्या सैव वाट्यालकाऽपि च॥महाबला पीतपुष्पा सहदेवी च सा स्मृता ॥ १३५ ॥ ततोऽन्यातिबला ऋष्यप्रोक्ता कंकतिका च सा ॥ गांगेरुकी

नागबला झषा ह्रस्वगवेधुका ॥ १३६ ॥ बलाचतुष्टयं शीतं मधुरं बलकान्तिकृत्॥ स्निग्धं ग्राहि समीरास्रपित्तास्रक्षतनाशनम् ॥ १३७ ॥ बलामूलत्वचश्चूर्णं पीतं सक्षीरशर्करम् ॥ मूत्रातिसारं हरति दृष्टमेतन्न संशयः ॥१३८॥ हरेन्महाबला कृच्छ्रं भवेद्वातानुलोमनी॥हन्यादतिबला मेहं पयसा सितया समम् ॥ १३९ ॥

बला, वाट्यालिका, वाट्या, वाट्यालक. (वाट्यपुष्पी, इमाशा, विलला. बलिनी, बला, ओदनी, समगा, ओदनिका, भद्रा, भद्रोदनी, खरककाष्ठिका, कल्याणिनी, भद्रबला, मोटापाटी, बलाढ्या, शीतपाकी, वाटी, निलया, वाट्याली, वाटिका, खरयष्टिका, ओदनाह्वा, वातघ्नी, ...नका, रक्ततन्दुला, क्रूरा, महासा, वारिगा, फणिजिह्विका, ...यन्ती और कठोरयष्टिका) ये खिरेटीके संस्कृत नाम हैं॥

हि०–खिरैटी, वरियारी (ला) बं०–श्वेतबेडेला । म०–लघुचिकणा, खिरहटी । गु०–खपाट, बलदाणा । तै०–मुर्पिडी । इं०–होर्नबिमलीव्ड सिडा Hornbeam leaved Sida लै०--सिडाकार्पिनी फोलिया carpini-folia ॥

महाबला, पीतपुष्पा, सहदेवी, (ज्येष्ठबला, करम्भरा, केशरुहा, केसरिका, मृगादिनी, वर्षपुष्पा, केशवर्द्धिनी, प्रसादनी, देवबला, सारिणी, देवाही, गन्धवल्लरी, मृगा, मृगरसा, वर्षपुष्पी, वाट्या, वाट्यायिनी, सहदेवा, देवसहा, वृद्धबला, गन्धवल्ली, महागन्धा और मंगलार्थप्रसादनी) ये दूसरी पीले फूलवाली बला (सहदेई) के संस्कृत नामहैं ॥

हि०–सहदेई । बं०पीतपुष्प, वेडेला । म०–भांमुर्डी । क०–बेणे गरगभेद । लै०–सिडारोंबि फोलिया Sidarombifolia ॥

अतिबला, ऋष्यप्रोक्ता, ककतिका, (बालिका, बल्या, विककता, वाट्यपुष्पिका, घंटा, शीता, शीतपुष्पा, भूरिबला और वृष्यगंधिका) ये तीसरी बला (कंघी, ककई) के संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कंघी, कगही, ककहिया । म०–विककती । गु०–खपाट्य । क०–मुल्लुदुरुवे । इं०–इंडियन मेलो Indian Malaw लै०ऐब्युटिलन् इंडीकम् Abutilan Indicum ॥

गांगेरुकी, नागबला, झषा, ह्रस्वगवेधुका, (खरगन्धिनी, गोरक्षतडुला, भद्रौदनी, खरगंधा, चतुःपला, महोदया, महापत्रा, महाशाखा, महाफला, विश्वदेवा अनिष्टा, देवदण्डा, महागन्धा और खरवल्लरिका) ये चौथी बला (गंगेरन गुलसकरी) के संस्कृत नाम हैं ॥

हि०–गंगेरन, गुलसकरी । बं०–गोरख, चाकुले । म०–गांगेटी, गाडेधामण । क०–बट्टगरुके । लै०–सिडास्पिनोझा Sidaspinosa ॥

चारोंप्रकारकी बला–शीतल, मधुर, बल तथा कांतिदायक, स्निग्ध, ग्राही और वात, रक्तपित्त, रुधिरविकार तथा क्षयनाशक हैं । इसकी जडकीछालका चूर्ण जो दूधबूराके साथ खावे तो मूत्रातिसार रोग नष्ट होताहै, इसमें किंचित् भी संशय नहीं है. यह दृष्टिका देखा हुआ है । महाबला–मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करेहै और वातको अनुलोमन करेहै अर्थात् वादीको गुदाद्वारा निकालेहै । अतिबला–जो दूध और मिश्रीके साथ पीये तो प्रमेहको विनष्ट करै है ॥ १३५–१३९ ॥

विवरण ।

खिरैटीके क्षुप छत्तेदार पृथ्वीहीमें फैलतेहैं, ऊँचे कम होतेहैं, पत्ते गोल और फूल पीले रंगके होतेहैं, मूँगके समान बहुत छोटे २ फल होतेहैं, उसमें राईके समान काले २ बीज निकलतेहैं, उनको वैद्यलोग बीजबन्द कहतेहैं । इसकी चार जाति हैं ॥

अथ लक्ष्मणा ।

पुत्रकाकाररक्ताल्पबिन्दुभिर्लाञ्छिता सदा ॥ लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगन्धाकृतिर्भवेत् ॥ कथिता पुत्रदाऽवश्यं लक्ष्मणा मुनिपुङ्गवः ॥ १४० ॥

लक्ष्मणा, पुत्रजननी, (नागपत्री, पुत्रदा, पुत्रकन्दा पुच्छदा, नागिनी, नागाह्वा, नागपुत्री, तूलिनी और मंजिका) ये लक्ष्मणाके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०–लक्ष्मणा । गु०–हनुमानवेलो ॥

इसकी वेल पुत्रकके सदृश और पत्तोंपर रक्तके सदृश लाल छोटी २ बूँदें होतीहैं ॥ लक्ष्मणा–अवश्य पुत्रको देनेवाली है ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ १४० ॥

विवरण ।

लक्ष्मणा औषधि बहुत कम मिलतीहै, यह कहीं कहीं पर्वत इत्यादिमें उत्पन्न होतीहै. इसके पत्ते चौडे होतेहैं. उनपर लाल २ लाल चन्दनके समान बूँदेंसी पडी होतीहैं, इसके नीचे सफेद रंगका कन्द होता है ॥

स्वर्णवल्ली [सोनवेल]।

स्वर्णवल्ली रक्तफला काकायुः काकवल्लरी ॥ स्वर्णवल्ली शिरःपीडां त्रिदोषान्हन्ति दुग्धदा ॥ १४१ ॥

स्वर्णवल्ली, रक्तफला, काकायु और काकवल्लरी, ये स्वर्णवल्लीके संस्कृत नाम हैं ॥ हिन्दी-स्वर्णवल्ली । म०-सोनेवेल, सोनुली । गु०- स्वर्णवल्ली ॥

स्वर्णवल्ली-मस्तककी पीडा और तीनों दोषोंको हरनेवाली है, तथा स्त्रियोंका दूध बढानेवाली है. ॥ १४१ ॥

विवरण ।

स्वर्णवल्ली अर्थात् सोनेवेल प्रायः. पर्वत, बाग और वनोंमे अधिक होती है, पत्ते गोल अनीदार होते हैं, फल लाल लगते हैं इस लताका रंग सम्पूर्ण पीला होताहै, इसीकारण इसका नाम स्वर्णलता है ॥

अथ कार्पासी [कपास]।

कार्पासी तुण्डकेरी च समुद्रान्ता च कथ्यते ॥ कार्पासकी लघुः कोष्णा मधुरा वातनाशनी ॥ १४२ ॥ तत्पलाशं समीरघ्नं रक्तकृन्मूत्रवर्द्धनम् ॥ तत्कर्णपीडकानादपूयास्रावविनाशनम् ॥ तद्बीजं स्तन्यदं वृष्यं स्निग्धं कफकरं गुरु ॥ १४३ ॥

कार्पासी, तुण्डकेरी, समुद्रान्ता, (वदरा, पटद, बादरा, सूत्रपुष्पा, वदरी, कार्पासिका, कर्पासी, कर्पाससारिणी, चव्या, तुला, तुण्डकेरिका, मरुद्भवा, पिचु, बादर, कार्पास, पटक्षुन और छादन) ये कपासके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कपास, नरमावाडी । व०-कार्पास । म०-कापशी । गु०-वण । क०-हत्ति । तै०पत्तिचेट्टु । फा०-कुतन । अ०-हबुसकुतन । इं०-काटनप्लेन्ट Cotton plant लै०-गोसिपीयं हरवेसियम् Gossy pium Harbeaum ॥

कपास-हलकी, किञ्चित् गरम, मधुर और वातनाशक है । कपासके पत्ते-वातनाशक, रुधिर करनेवाले, मूत्र बढानेवाले और कानकी पीडा, कर्णनाद और पीव (राद) बहना, इन सबको नष्ट करें हैं । कपासका फल-दूधवर्द्धक, वीर्यको बढानेवाला, चिकना, कफकारी और भारी है ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

विवरण ।

कपासके पेड सब हिन्दुस्थानमे बहुत होते हैं. इसकी बडी खेती होती हैं, इसका बहुत बडा व्यापार. होताहै, उत्तम उत्तम वस्त्रादिक सब कपासहीके बनते हैं, कपासके फूल पीले और बीचमें लाल होते हैं; उसमें गूलर, तिकोने आते है उनके भीतर कपास निकलती है, वह कपास चर्खीमें ओटी जाती है, उसमें जो बीज निकलते है उनको बिनौले कहते हैं । इसके पत्तेमे पाँच अनी होती हैं जैसे अरडके पत्तोंमे, परन्तु उनसे बहुत छोटे होते हैं; एक काली कपास होती है जिसके फूल काले और बिनौले भी काले होते हैं, एक नरमावाडी होती है, जिसके पेड बडे बडे होते हैं, फलफूल बारहो महीने आते हैं. रुई नर्म होती है, बिनौले हरे होते हैं, ये सब कपासहीके भेद है ॥

अथ वंशः [वांस]।

वंशस्त्वक्सारकर्मारस्त्वचिसारस्तृणध्वजः ॥ शतपर्वा शतफली वेणुमस्करतेजनाः ॥ १४४ ॥ वंशः सरो हिमः स्वादुः कषायो वस्तिशोधनः ॥ छेदनः कफपित्तघ्नः कुष्ठास्रव्रणशोथजित् ॥ १४५ ॥ तत्करीरः कटुः पाके रसे रूक्षो गुरुः सरः ॥ कषायः कफकृत्स्वादुर्विदाही वातपित्तलः ॥ ॥ १४६ ॥ तद्यवास्तु सरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः ॥ वातपित्तकरा उष्णा बद्धमूत्राः कफापहाः ॥ १४७ ॥

वंश, त्वक्सार, कर्मार, त्वचिसार, तृणध्वज, शतपर्वा, शतफली, वेणु, मस्कर, तेजन, (किलाटी, पुष्पघातक, वृहत्तृण, किष्कुपर्वा, वन्य, सुपर्वा, तृणकेतुक, कण्टालु, कण्टकी, महाबल, दृढग्रन्थि, दृढपत्र, धनुर्द्रुम, यानुग्य, दृढकाण्ड, कीचक, कुक्षिरन्ध्र, पट्पदालय, मृत्युबीज, वादनीय, फलान्तक, तृणकेतु, पर्वयोनि, सुपर्वन्, तृणराजक, बहुपर्वन् और दुरारुह) ये वाँसके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-वाँस । व०-वंश । म०-वेळू । गु०-वांस । क०-यरडु विदीरु । तै०-कीचकई । फा०-कमच । ता०-मनगिल । इं०-वेम्बूकेन Bamboocane लै०-वेम्बुसा वल्गेरिस Bamboosa Valgares ॥

वाँस-दस्तावर, शीतल, स्वादिष्ठ, कसैला, वस्तिशोधक, मलछेदक और कफ, पित्त, कोढ, रुधिरविकार, व्रण तथा सूजनको नष्ट करै है । वाँसके अकुर-पाकमे तथा रसमे चरपरे रूक्ष. भारी, दस्तावर, कसैले, कफकारक, स्वादिष्ट, दाहकारक, वात तथा पित्तको बढानेवाले हैं ॥

बाँसके जौ–दस्तावर, रूक्ष, कसैले, पाकमे चरपरे, वात तथा पित्तकारक, गरम, मूत्ररोधक और कफनाशक हैं ॥ १४४–१४७ ॥

विवरण ।

बाँस दो प्रकारके होते हैं. एक खुक्कल, अर्थात् पोला दूसरा ठोस अर्थात् कडा, ये वन, जगल और पर्वतोपर बहुत उत्पन्न होते हैं, पत्ते तीन चार अगुल लम्बे और एक अगुल चौडे होते हैं. कभी कभी दैवयोगसे दश पाँच वर्षमें बाँस फलतामी हैं, फूल सफेद छोटे छोटे आते हैं, उसमें चावल निकलते हैं, दीन लोगोंके खान पानमें आते हैं. पोले बाँसको फाडनेसे उसके भीतर वगलोचन निकलताहै, वही असली वंशलोचन है ॥

अथ नलः [नरसल]।

नलः पोटगलः शून्यमध्यश्च धमनस्तथा ॥ नलस्तु मधुरस्तिक्तः कषायः कफरक्तजित् ॥ उष्णो हृद्वस्तियोन्यर्त्तिदाहपित्तविसर्पहृत् ॥ १४८ ॥

नल, पोटगल, शून्यमध्य, धमन, (नाल, कळंक, कुक्षिरन्ध्र, कीचक, दीर्घवंश, विभीषण, छिद्रान्त, मृदुपत्र, वंशपत्र, मृदुच्छद, लालवश, नट, नटी, नर्त्तक और मृत्युपुष्प) ये नलके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–नल, नरसल । ब०–नळ । म०–नल, देवनळ । गु०–नडसल । क०–देवनाल । तै०–गुगुण्डुरु । इं०–इण्डियन टोवेका Indian Tobacea लै०–लोबेलिया निकोटिया नेफोलिया Lobelia Nicotia Naefolia ॥

नरसल–मधुर, कडवी, कसैली, गरम और कफ, रुधिरविकार, हृदयकी पीडा, मूत्राशयकी पीडा, योनिकी पीडा, दाह पित्त तथा विसर्पको नष्ट करै है ॥ १४८ ॥

विवरण ।

नरसल अर्थात् नल बाँसके समान जलाशयके निकट जंगलोंमें उत्पन्न होती है; पत्ते ईखके पत्तोंके समान होतेहैं, इसकी आकृति भी ईखहीके सदृश होती है, जिसप्रकार गन्नेके ऊपर अगोल होता है, उसी प्रकार इसके ऊपर भी होता है, परन्तु ऊँचावमें ईखसे तिगुना ऊँचा होताहै यह भीतरसे पोला होताहै ॥

अथ भद्रमुञ्जः [रामशर] ।

भद्रमुञ्जः शरो बाणस्तेजनश्चक्षुवेष्टनः ॥ १४९ ॥

अथ मुञ्जः [मूंज] ।

मुञ्जो मुञ्जातको बाणः स्थूलदर्भः सुमेखलः ॥ मुञ्जद्वयन्तु मधुरं तुवरं शिशिरं तथा ॥ १५० ॥ दाहतृष्णाविसर्पास्रमूत्रकृच्छ्राक्षिरोगजित् ॥ दोषत्रयहरं वृष्यं मेखलामूपयुज्यते ॥ १५१ ॥

भद्रमुज, शर, बाण, तेजन और चक्षुवेष्टन ये रामशरके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–रामसर, सरपत भद्रमूज । ब०–रामशर । गु०–पान बाजरिया । म०–मोळ ॥

मुञ्ज, मुजातक, बाण, स्थूलदर्भ, सुमेखल, (इक्षुगाण्ड, मौञ्जी, तृणाख्य, ब्रह्मण्य, तेजनाह्वय, वानीरक, मुजनक, शीरी, दर्भाह्वयद्दुर्मूल, दृढतृण, दृढमूल, बहुप्रज, रञ्जन और शक्रभग) ये मूजके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–मूज । ब०–मुंज । तै०–मुञ्जगड्डि । गु०–मुज । म०–मोळ ॥

दोनो प्रकारकी मूँज–मधुर, कसैली, शीतल, वीर्यवर्द्धक और दाह, तृषा, विसर्प, आम, मूत्रकृच्छ्र, नेत्ररोग तथा तीनो दोषोंको नष्ट करै है । मूँज मेखलामें उपयोग की जाती है ॥ १४९–१५१ ॥

विवरण ।

मूँज और भद्रमूँजके झुण्ड भी नलके समान जलाशयके समीप या रेतेमे बहुत होते है, इसको वीण भी कहते है, यह वास्तवमे वीरण शब्द था अब विगडकर वीण होगया, इसके वकलको मूँज कहते हैं. फूल, फल, हरे डार लम्बे लम्बे सफेद रगके होते हैं ॥

अथ काशः ।

काशः काशेक्षुरुद्दिष्टः स स्यादिक्षुरसस्तथा ॥ इक्ष्वालिकेक्षुगन्धा च तथा पोटगलः स्मृतः ॥ १५२ ॥ काशः स्यान्मधुरस्तिक्तः स्वादुपाको हिमः सरः ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मदाहास्रक्षयपित्तजरोगजित् ॥ १५३ ॥

काश, काशेक्षु, इक्षुरस, इक्ष्वालिका, इक्षुगधा, पोटगल, (सुकांड, नादेय, नीरज, काकेक्षु, वायसेगिरि, कर्म्ममूल, इक्षुरम्लिका, इपीका, अश्ववाला, चामरपुष्प, चामरपुष्पक, काशी, काशा, काडेक्षु, अमरपुष्पक, नागक, इनहासक, इक्षारि, इक्षुर, इक्षुकाड, शारद, सितपुष्पक,

दर्भपत्र, लेखन, कांड, कांडक, कच्छलकारक और दर्भ-पत्र) ये कासके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कास । बं०–केशेघास । म०–कसई । गु०–कॉसडो । क०–किरियकागच्छ । तै०–रेल्लु । लै०–कुइक्स बारवेटा Coev Bargota ॥

कास–मधुर, कडवा, पाकमें मधुर, शीतल, दस्तावर और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, दाह, रुधिरविकार, क्षय तथा पित्त सम्बन्धी रोगोंको नष्ट करै हैं ॥१५२॥ १५३ ॥

विवरण ।

कास—नदियोंके किनारे कीचडमें उत्पन्न होता है पत्ते बाभरके समान, वरन् एक प्रकारकी देशी बाभर ही होतीहै, फूल सफेद अधिक शोभायमान मञ्जरीके समान आतेहैं ॥

अथ गुन्द्रः [पटेरा]।

गुन्द्रः पटेरको रच्छः शृङ्गवेराभमूलकः ॥ गुन्द्रः कषायो मधुरः शिशिरः पित्तरक्त-जित् ॥ स्तन्यशुक्ररजोमूत्रशोधनो मूत्र-कृच्छ्रहृत् ॥ १५४ ॥

गुन्द्र, पटेरक, रच्छ और शृगवेराभमूलक, ये पटेरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पटेर, गोंदपटेर । म०–पाणीगवत । गु०–घुन्द्रखड । क०आयु । लै०–टाइपा एलिफण्टाइना Typpa Eliphantina ॥

पटेर–कसैली, मधुर, शीतल, और पित्त, रुधिरविकार तथा मूत्रकृच्छ्र नाशक है और दुग्ध, वीर्य, रज तथा मूत्र-को शुद्ध करैहै ॥ १५४ ॥

गुन्द्रपटेर अर्थात् गोंदपटेर पानीमें होतीहै, पत्ते बहुत लम्बे चार पाच फुटतकके और एक इंच चौडे होतेहैं, पत्तेमें पत्ते निकलतेहैं, पत्ते मोटे बहुत होतेहैं बरन् बीचमें से चिर जातेहैं, उनके ऊपर एक बाल बाजरेके समान होतीहै, बालपर एक पतलीसी लकडी ऊपर और होतीहै। इनकी चटाई इत्यादि अनेक पदार्थ बनतेहैं ॥

एरका [मोथी तृणविशेषः]।

एरका गुन्द्रमूला च शिविर्गुन्द्रा शरीति च॥ एरका शिशिरा वृष्या चक्षुष्या वात-कोपिनी ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरीदाहपित्तशो-णितनाशिनी ॥ १५५ ॥

एरका, गुन्द्रमूला, शिवि, गुन्द्रा और शरी ये मोथी तृणके नाम हैं ॥

हिन्दी–मोथीतृण । बं०–होगला । म०–एरका, पाण-लव्हाळा । गु०–एरका ॥

मोथीतृण–शीतल, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोको हितकारी, वातको कुंपित करनेवाली और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, दाह-पित्त, तथा रुधिरनाशक है ॥ १५५ ॥

विवरण ।

मोथीतृण जलमें उत्पन्न होता है, पत्ते बडे बडे लम्बे होतेहैं ॥

अथ कुशः [कुशा]।

कुशो दर्भस्तथा बर्हिः सूच्यग्रो यज्ञ-भूषणः ॥ १५६ ॥

अथ क्षुरपत्रः [डाभ]।

ततोऽन्यो दीर्घपत्रः स्यात्क्षुरपत्रस्तथैव च॥दर्भद्वयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हिमम्॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरीतृष्णावस्तिरुक्प्रदरास्र-जित् ॥ १५७ ॥

कुश, दर्भ, बर्हि, सूच्यग्र और यज्ञभूषण, ये कुशाके संस्कृत नाम हैं॥ जिसके लम्बे पत्ते होतेहैं वह डाभ कहाती है इसको क्षुरपत्र कहते हैं ॥

हिन्दी–कुशा, दाभ डाभ । म०–थारीकदर्भ, मोठे दर्भ । गु०–कुश दाभडो । क०–वीलीय बुट्टशशी । तै०–कुश, दुर्वालु, दुभ । लै०–एण्ड्रोपोगन नारटेइडिस Andrapagon Nardaides ॥

कुशा और दाभ–त्रिदोपनाशक, मधुर, कसैले, शीतल और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, तृषा, वस्तिरोग, प्रदर तथा रुधिर-विकार नाशक हैं ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

विवरण ।

कुशा और दर्भ दोनों एकही जातिके तृण हैं, यह रेतली भूमिमें भूडो और जगलोंमें उत्पन्न होते हैं, पत्ते इसके कॉसहीके समान होतेहैं, तृणोंहीको पत्ते समझना वे सुईके समान नोकदार होतेहैं ॥

अथ कत्तृणम् [रोहिस, सौंधिआ]।

कत्तृणं रौहिषं देवजग्धं सौगन्धिकं तथा॥ भूतीकं व्यामपौरश्च श्यामकं धूमगन्धि-कम् ॥ १५८ ॥ रौहिषं तुवरं तिक्तं कटु-

[illegible] ॥ [illegible]-
[illegible] ॥ १६० ॥

अथ नीलदूर्वा [illegible] ।

नीलदूर्वा रुहानन्ता भार्गवी शतप-
र्विका ॥ शष्पं सहस्रवीर्या च शतवल्ली
च कीर्तिता ॥ १६२ ॥ नीलदूर्वा हिमा
तिक्ता मधुरा तुवरा हरेत् ॥ कफपित्तास्र-
वीसर्पतृष्णादाहत्वगामयान् ॥ १६३ ॥

सिताख्या, चडा, भद्रा, भार्गवी, दुर्मरा, गौरी, विघ्नेशा, नकान्ता, अनन्ता, विद्या, श्वेतकाण्डा, प्रचण्डा, सहस्रवीर्या, सहस्रकाण्डा, सहस्रपर्वा, सुरवल्लभा, शुभा, सुपर्वा, सितच्छदा, स्वच्छा और कच्छान्तरुहा) ये सफेद दूबके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सफेद दूब। ब०–सादा दूर्वा । म०–श्वेत दूर्वा, पाढरी हरियाळी। गु०–धोलीध्रो । क०–विलियकरुके। तै०–गारिकेगाड्डि ॥ सफेददूब–कसैली, मधुर, व्रणमे हितकारी, जीवनरूप, कडवी, शीतल और विसर्प, रक्तविकार, तृषा, पित्त, कफ, तथा दाहको नष्ट करै है ॥ १६४ ॥

विवरण।

सफेद दूब भी नीली दूब अर्थात् हरीदूबकेसी जगह कहीं कहीं कोई छत्ता होजाता है. वह बहुत सफेद होती है परन्तु सब आकृति हरीही दूबकीसी होतीहैं, गणेशादिक देवताओंकी पूजाके लिये तन्त्रोंमे बहुत जगह लिखी है, परन्तु यह बहुत थोडी मिलतीहै ॥

अथ गण्डदूर्वा [गांडरदूब]।

गण्डदूर्वा तु गण्डाली मत्स्याक्षी शकुलाक्षकः ॥ गण्डदूर्वा हिमा लोहद्राविणी ग्राहिणी लघुः ॥ १६५ ॥ तिक्ता कषाया मधुरा वातकृत्कटुपाकिनी ॥ दाहतृष्णाबलासास्रकुष्ठपित्तज्वरापहा ॥ १६६ ॥

गडदूर्वा, गण्डाली, मत्स्याक्षी, शकुलाक्षक, (तीव्रा, मत्स्याक्षिका, जलस्था, ग्रन्थिपर्णी, ब्राह्मी, शकुलादनी, अतितीव्रा, मत्स्याली, ग्रथिला, वारुणी, मतिनेत्रा, श्यामग्रंथि, सूचिपत्रा, श्यामकाण्डा, कलाया, शकुलाक्षी, चित्रा, और शकुलाक्षक) ये गाडर दूबके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–गांडरदूब। ब०–गेटेदूर्वा। म०–गडूर दूर्वा, गांठीहरळी। गु०–गाठावालीध्रो। गडूरध्रो। क०–मीनगत्ते। तै०–पोन्नगडी ॥

गाडरदूब–शीतल, लोहद्रावक, ग्राही, हलकी, कडवी. कसैली, मधुर, वातकारक, पाकमे चरपरी और दाह, तृषा, कफ, रुधिरविकार, कोढ, पित्त तथा ज्वरको नष्ट करैहै ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

विवरण।

गाडर एक प्रकारकी घास होतीहै, इसके क्षुप दो दो तीन तीन फुट ऊँचे होजातेहै, जलाशयके स्थानमें कोसोतक लगा तार इसके खेत होतेह इसके तृण कॉसके समान लम्बे लम्बे होतेहैं घरोके छप्पर आदि इसीके तृणोसे छाये जाते है इसीकी जड खस होतीहै ॥

अथ विदारीकन्दः।

वाराहीकन्द एवान्यैश्चर्मकारालुको मतः ॥ अनूपसम्भव देशे वाराह इव लोमवान् ॥ ॥ १६७ ॥ विदारी स्वादुकन्दा च सा तु क्रोष्ट्री सिता स्मृता ॥ इक्षुगन्धा क्षीरवल्ली क्षीरशुक्ला पयस्विनी ॥ १६८ ॥ वाराहवदना गृष्टिर्वरदेत्यपि कथ्यते ॥ विदारी मधुरा स्निग्धा बृंहणी स्तन्यशुक्रदा ॥ १६९ ॥ शीता स्वर्या मूत्रला च जीवनी बलवर्णदा ॥ गुरुः पित्तास्रपवनदाहान्हंति रसायनी १७०

जहा अधिक पानी होताहै अर्थात् अनूपदेशमें सुअरके सदृश रोमवाला वाराहीकन्द होताहै। कोई २ उसको चर्मकारालुक भी कहते हैं ॥

वाराहीकन्द, चर्मकारालुक, विदारी, स्वादुकन्दा, क्रोष्ट्री, सिता, इक्षुगन्धा, क्षीरवल्ली, क्षीरशुक्ला, पयस्विनी, वाराहवदना, गृष्टि, वरदा (वृष्यकन्दा, त्रिपर्णा, शुक्ला, गजवाजिप्रिया बदरा, विदारिका, शृगालिका, वृष्यवर्द्धिनी, बिडाली, वृष्यवल्लिका, भूकूष्माण्डी, स्वादुलता, गजेष्टा, वाजिवल्लभा, गन्धफला, वृक्षवल्ली और भूमिकूष्माड) ये विदारीकन्दके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–विदारीकन्द, वाराहीकन्द। ब०–भुईकुम्हडा। म०–भुइकोहळा। क०–नेलकुवल । गु०–विदारीकद। तै०–नेलगुबुड । लै०–प्युरेरिहाट्युबरोझा Puraria Tuberosa ॥

विदारीकद–मधुर, चिकना, पुष्टिकारक, दुग्धवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, शीतल, स्वरको हितकारी, मूत्रको बढानेवाला, जीवनरूप, बल तथा वर्णको देनेवाला, भारी, रसायन और पित्त, रुधिरविकार, वात तथा दाहनाशक है १६७–१७०

विवरण।

विदारीकन्दकी बेल अनूपदेशके जंगलोमे होतीहै, कोई कोई उसको चर्मकारालुक भी कहतेहैं, यह कद वराहके समान रोमयुक्त उत्पन्न होता है, पत्ते बडे बडे घुइयांके समान होतेहै, इसके नीचे जडमें बहुत बडा कन्द निकलताहै, उसका रग लाली लिये होताहै, दूसरे क्षीरविदारीकन्दकी भी बेलही चलतीहै, इसका कन्द भी मूलीके समान होताहै, पत्ते एक एक शाखामे

अथाश्वगन्धा।

गन्धान्ता वाजिनामादिरश्वगन्धा हयाह्वया॥ वराहकर्णी वरदा बलदा कुष्ठगन्धिनी॥ १७६॥ अश्वगन्धाऽनिलश्लेष्मश्वित्रशोथक्षयापहा॥ बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णातिशुक्रला॥ १७७॥

गधान्ता वाजिनाम आदि, अश्वगन्धा, हयाह्वया, वराहकर्णी, वरदा, बलदा, कुष्ठगधिनी और जितने अश्ववाचक शब्द है वे सब, (वाजिगन्धा, कटुका, अश्वावरोहक, वाराहकर्णी, तुरगी, बल्या, वाजिकरी, हया, अश्वकन्दिका, काम्बुका, अश्वारोहा, अश्वगधिका, तुरगगन्धा, कम्बुका, अश्वावरोहिका, बलजा, वाजिनी, अवरोहिका, पुष्टिदा, पुष्टिपीवरा, पलाशपर्णी, वातघ्नी, श्यामला, कामरूपिणी, काला, प्रियकरी, गन्धपत्री, हयप्रिया, वाराहपत्री, वरगात्रकरी और कुष्ठगन्धा) ये असगन्धके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—असगन्ध। ब०—अश्वगन्धा। म०—आसगन्ध। गु०—आसोद। तै०—पिल्लीआंगा। क०-आसादु। फा०—मेहेमन् बररी। इं०—विंटरचेरी Winter Cherry लै०—फाइसेलिस सोम्निफेरा Physalis Samnifera॥

असगन्ध—बलदायक, रसायनरूप, कडवी, कसैली, गरम, वीर्यको अत्यन्त बढानेवाली और वायु, कफ, श्वेत कोढ, सूजन तथा क्षयको क्षय करैहै॥ १७६॥ १७७॥

विवरण।

असगन्धके क्षुप छोटे छोटे जगलमें और पहाडमे होते हैं. इसके पत्ते लम्बे लम्बे होतेहैं, फल पनसोखेके समान गोल होतेहै, उसके नीचे छोटी मूलीके समान कन्द होताहै, उस कन्दको निकालकर सुखालेतेहैं, उसका नाम असगन्ध है॥

अथ पाठा [पाढ]।

पाठाम्बष्ठाम्बष्ठकी च प्राचीना पापचेलिका॥ एकाष्ठीला रसा प्रोक्ता पाठिका वरतिक्तिका॥ १७८॥ पाठोष्णा कटुका तीक्ष्णा वातश्लेष्महरी लघुः॥ हन्ति शूलज्वरच्छर्दिकुष्ठातीसारहृद्रुजः॥ दाहकण्डूविषश्वासकृमिगुल्मगरव्रणान्॥ १७९॥

पाठा, अम्बष्ठा, अम्बष्ठकी, प्राचीना, पापचेलिका, एकाष्ठीला, रसा, पाठिका, वरतिक्तिका, (पापचेली, कुचेली, कुचेला, छिन्नवेषिका, अम्बष्ठिका, यूथिका, स्थापनी, श्रेयसी, विद्धकर्णिका, तिक्तपुष्पा, बृहत्तिक्ता, शिशिरा, बृकी, मालती, वरा, देवी, वृतपर्णी, तिक्ता, विद्धकर्णी, अविद्धकर्णा, सुस्थिरा, प्रतानिनी, वत्सादनी, मालवी, त्रिशिरा, त्रिवृत्, वृत्तपर्णी, रक्तघ्नी, विषहन्त्री, महौजसी, रुचिष्या, दीपनी और वह्लिका) ये पाढके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी—पाढ। ब०—आकनादि। म०—पहाडमूळ। फा०—पाठा। तै०—पाढचेट्टु। गु०—कालीपाट। इं०—परारुट Parroroot लै०—सिसाम्पिलोसपरिरा Cissam pelosparera॥

पाढ—गरम, चरपरी, तीक्ष्ण, हलकी और वात, कफ, शूल, ज्वर, वमन, कोढ, अतिसार, हृदयरोग, दाह, खुजली, विष, श्वास, कृमि, गुल्म और विषैला व्रण, इन सबको नष्ट करैहै॥ १७८॥ १७९॥

विवरण।

पाढकी वेल वनोमे होतीहै, पत्ते कुछ गोल गोल होते हैं, जहांसे पत्ते निकलतेहै उनकी जडहीमेंसे श्वेत और सूक्ष्म, मोरके समान फूल निकलतेहैं, फल मकोयके समान लाल रगके होते हैं और वागकी जडको लघु पाठा कहतेहैं तथा वागकी भी वेलही होतीहै, पत्ते कजीके समान होतेहैं. कजीके पत्ते ऊपर हरे और नीचे सफेद होतेहैं, परन्तु वागके पत्ते ऐसे नही होते, आकार गोल और सब कजीके समान कुछेक पीलापन लिये होतेहै, फूल-सूक्ष्म और सफेद होतेहैं. फूल पीलूके सदृश होतेहैं॥

अथ श्वेत त्रिवृत् [निसोत, तिधार]।

श्वेता त्रिवृत्ता भण्डी स्यात्त्रिवृता त्रिपुटापि च॥ सर्वानुभूतिः सरला निशोत्रा रेचनीति च॥१८०॥ श्वेता त्रिवृद्रेचनी स्यात्स्वादुरुष्णा समीरहृत्॥ रूक्षा पित्तज्वरश्लेष्मपित्तशोथोदरापहा॥ १८१॥

श्वेता, त्रिवृत्ता, भडी, त्रिवृता, त्रिपुटा, सर्वानुभूति, सरला, निशोत्रा, रेचनी, (सरा, सुवहा, त्रिभडी, सरसा, सरणा, सहा, रोचनी, मालविका, श्यामा, मसूरी, अर्द्धचन्द्रा, विदला, सुपेली, कालिगिका, कालमेषी, काली, त्रिवेला, त्रिवृत्तिका और सारा) ये निसोथके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—सफेद निसोत। ब०—श्वेततेउडी। म०—निशोत्तर। गु०—वोलीनसोतर। फा०—तुरबुद। ता०—शिवदई। क०—तिगडे। इ०—टरबीथरूट। Tarbithroot लै०—आइपोमिया टरपीथम्। Ipomia turpethum

सफेद निशोत—रेचक (दस्तावर), मधुर, गरम, रूखी और वात, पित्त, ज्वर, कफ, सूजन, तथा उदर रोग नाशक है ॥ १८० ॥ १८१ ॥

विवरण ।

सफेद निसोतकी बेल जंगलमें होतीहै. सफेद फूल आतेहै गोल गोल फल आतेहैं उनमें चार चार बीज होतेहैं पत्ते नोकदार गोल होतेहैं. उसकी बेलकी लकडीमें तीन धारे होती हैं निसोत तीन प्रकारका होताहै, परन्तु सफेद सबसे उत्तम है ॥

अथ श्यामात्रिवृत् [कालानिसोत] ।

त्रिवृच्छ्यामार्द्धचन्द्रा च पालिन्दी च सुषेणिका ॥ मसूरविदला कोलकैपिका कालमेषिका ॥ १८२ ॥ श्यामा त्रिवृत्ततो हीनगुणा तीव्रविरेचनी ॥ मूर्च्छादाहमदभ्रान्तिकण्ठोत्कर्षणकारिणी ॥ १८३ ॥

श्यामा त्रिवृत्, अर्द्धचन्द्रा, पालिन्दी, सुषेणिका, मसूरविदला, कोलकैपिका और कालमेषिका, ये काले निसोतके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—कालानिसोत, श्यामनिलर, । बं०—श्यामतेउडी गु०—कालीनसोतर । क०—केप्पनेयतिगडे ॥

कालानिसोत सफेद निसोतसे हीन गुणोंवाला, अत्यन्त दस्तावर और मूर्च्छा, दाह, मद, भ्रम, तथा कठका घिसना, इन सबके करनेवाला है ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

विवरण ।

काले निसोतकी भी लता ही होतीहै, फूल कालापन लिये बैंजनीसे होतेहैं, पत्ते गोल गोल नोकदार उसी प्रकारके होतेहैं, परन्तु सफेदसे कुछ छोटे और फलभी कुछ छोटे होतेहैं और सब आकार इकसार होताहै, एक निसोत लाल फूलकाभी होताहै परंतु वैद्योंने सफेदकी अधिक प्रशंसा करीहै ॥

अथ लघुदन्ती बृहद्दन्ती च ।

लघुदन्ती विशल्या च स्यादुदुम्बरपर्ण्यपि ॥ तथैरण्डफला शीघ्रा श्येनघण्टा घुणप्रिया ॥ वाराहांगी च कथिता निकुम्भश्च मकूलकः ॥ ॥ १८४ ॥ द्रवन्ती साम्बरी चित्रा प्रत्यक्पर्ण्यर्कपर्ण्यपि ॥ चित्रोपचित्रा न्यग्रोधी प्रत्यक्छ्रेण्याखुकर्ण्यपि ॥ १८५ ॥ दन्तीद्वयं सरं पाके रसे च कटु दीपनम् ॥ गुदांकुराश्मशूलार्शः-कण्डूकुष्ठविदाहनुत् ॥ तीक्ष्णोष्णं हन्ति पित्तास्रकफशोथोदरक्रिमीन् ॥ १८६ ॥

लघुदन्ती, विशल्या, उदुंबरपर्णी, एरंडफला, शीघ्रा, श्येनघण्टा, घुणप्रिया, वाराहांगी, निकुम्भ, मकूलक, (दन्ती, प्रत्यक्पर्णी, दन्तिका, श्येनघण्टा, निकुम्भी, निःशल्या, निकुम्भ, निकुम्भ, नागस्फोता, दन्तिनी, उपचित्रा, भद्रा, रुक्षा, रेचनी, अनुकूला, चक्रदन्ती, मधुपुष्पा, तरुणी, एरंडपत्री, एरण्डपत्रिका, विशोधिनी, कुंभी और उदुंबरदला) ये छोटी दन्तीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—दन्ती, छोटी दन्ती । बं०—दन्तीगाछ । म०—लघुदन्ती । गु०—नाहानो नेपालो । क०—दन्ती । तै०—दन्तीचेट्टु । फा०—दंद । अ०—हबुस्सुलातीन । इं०—क्रोटनगीड्स Crotten-seeds लै०—क्रोटन टिग्लियम् Crotten-tiglium ॥

द्रवन्ती, साम्बरी, चित्रा प्रत्यक्पर्णी, अर्कपर्णी. चित्रोपचित्रा, न्यग्रोधी, प्रत्यक्श्रेणी और आखुकर्णी ये बडी दन्तीके संस्कृतनाम हैं ॥

हिन्दी—बडी दन्ती, मुगलाई अंड । म०—बृहद्दन्ती । गु०—मोटोनेपालो । क०—एरण्डनेदन्ती । इं०—दीफिजिमिनट Thephy sicnet । लै०—कर्कस मल्टी फीडस Curcus Multifidus ॥

दोनों प्रकारकी दन्ती—दस्तावर, पाकमें तथा रसमें चरपरी, अग्निप्रदीपक, तीक्ष्ण, गरम और गुदाके रोग, पथरी, शूल, बवासीर, खुजली, कोढ, दाह, पित्त, रुधिरविकार, कफ, सूजन, उदररोग तथा कृमिरोगको नष्ट करेहै ॥ १८४—१८६ ॥

अथ लघुदन्तीफलम् ।

क्षुद्रदन्तीफलं तु स्यान्मधुरं रसपाकयोः ॥ शीतलं सृष्टविण्मूत्रं गरशोथकफापहम् १८७

छोटी दन्तीका फल—रस तथा पाकमें मधुर, शीतल, मलमूत्रको निकालनेवाला, विषजन्य सूजन और कफनाशक है ॥ १८७ ॥

विवरण ।

छोटी दन्ती और बडी दन्तीके क्षुप वनमें और उपवनमें उत्पन्न होतेहैं, पत्ते छोटे छोटे और मोटे दलके होतेहैं, सम्पूर्ण आकृति गूलरकीसी होतीहै, फूल महुवेके समान होतेहैं इसका फल जमालगोटा होताहै, तीन तीन फल एकत्र लगतेहैं बडी दन्तीका बडा वृक्ष होताहै फल एरण्डके समान होतेहैं, उसमेंसे अण्डीकी समान बीज निकलतेहैं इसमें दूध होताहै ॥

अथ जयपालः [जमालगोटा]।

जयपालो दन्तिबीजं विख्यातं तन्तिलीफलम् ॥ जयपालो गुरुः स्निग्धो रेची पित्तकफापहः ॥ १८८ ॥

जयपाल, दन्तीबीज, तिन्तिलीफल, (जैपाल, तिन्तिडीफल, मलद्रावि, निकुम्भाख्य, बीजरेचक, बीजरेचन, कुम्भीबीज, कुम्भिनीबीज, घण्टाबीज, घाण्टनीबीज, शोधिनीबीज और चक्रदन्तीबीज) ये जमालगोटेके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी—जमालगोटा। व०—जयपाल। म०—जयपाळ। गु०—नेपालनां बीज। क०—जेपाल। फा०—तुख्मे वेदअ-जीरखताई। अ०—हुबुस् सलातीन। इं०—पार्जिंग क्रोटन ParjigCroton ल०—ओलियम् कोटोनिस Olium Cotonis ॥ जमालगोटा—भारी, चिकना, रेचक, दस्तावर-पित्त तथा कफनाशक है ॥ १८८ ॥

विवरण।

जमालगोटे दन्तीके बीज होतेहैं इसकी मीगमे तेल होताहै. वैद्यलोग उसको शुद्धकरके उसकी चिकनाई दूर करदेतेहैं तब वह खानेके योग्य होताहै इसका वृक्ष छोटा दो तीन फुटके अनुमानका होताहै, यह दो प्रकारका होताहै, एकको दन्ती दूसरेको द्रवन्ती (बडी दन्ती) कहतेहै, लघुदन्तीके पत्ते अडूसेके पत्तोंसे कुछ समतावाले होतेहैं और बडी दन्तीके बडे और कटवा होते हैं ॥

अथ इन्द्रवारुणी [फरफेंदुआ]।

ऐन्द्रीन्द्रवारुणी चित्रा गवाक्षी च गवादिनी ॥ वारुणी च पराप्युक्ता सा विशाला महाफला ॥ १८९ ॥ श्वेतपुष्पा मृगाक्षी च मृगैर्वारु मृगादनी ॥ गवादिनीद्वयं तिक्तं पाके कटु सरं लघु ॥ १९० ॥ वीर्योष्णं कामलापित्तकफप्लीहोदरापहम् ॥ श्वासकासापहं कुष्ठगुल्मग्रन्थिव्रणप्रणुत् ॥ प्रमेहमूढगर्भामगण्डामयविषापहम् ॥ १९१

ऐन्द्री, इन्द्रवारुणी, चित्रा, गवाक्षी, गवादिनी। इन्द्रवारुणिका, विशाला, गजचिर्भिटा, क्षुद्रसहा, चित्रपला, भरा, पिटकोटी, मृगादिनी, इन्द्रा, अरुणा, इन्द्रचिर्भिटा सूर्या, विषघ्नी, गणकर्णिका, माता, सुकर्णिका, सुफला, तारका, वृषभाक्षी, पीतपुष्पा, इंद्रवल्लरी, हेमपुष्पी, क्षुद्रफला, बालकप्रिया, रक्तैर्वारु, विषलता, शक्रवल्ली विषापहा, अमृता, विषवल्ली, चित्रवल्ली, बहुफला, कपिलाक्षी, मृगेक्षणा और मृगेक्षणा) ये इन्द्रायणके संस्कृत नाम हैं ॥

वारुणी, विशाला, महाफला, श्वेतपुष्पा, मृगाक्षी, मृगैर्वारु, मृगादनी (महेन्द्रवारुणी, काया, आत्मरक्षा, चित्रफला, तुबसी, त्रपुसी, रम्या, महेन्द्री, त्रपुसा, चित्रवल्ली, दीर्घवल्ली, बृहत्फला, वृहद्वारुणी, सौम्या, श्वेतपुष्पा, हस्तिदन्ती, कटुरसा, कपिलाक्षी, कुम्भसी, उरुप्रिया, चित्रला, ढेवी और गजचिर्भिरा) ये बडी इन्द्रायणके संस्कृत नाम है।

हि०—इन्द्रायण, फरफेंदु। बडी इन्द्रायणा। व०—राखाल शशा। क०—हामेके, हिरियाहामेके। म०—लघुइन्द्रायण, कांडवल। थोर कॉडवल। गु०—इन्द्रायणा, मोटी इन्द्रायणां। तै०—एतिपुच्छा। फा०—खुर्यजातल्ख। अ०—हजल। इं०—कोलोसिन्थ Calocynth ल०—सिटलस कोलोसिन्थिस Citrulluslocynthis ॥

दोनो प्रकारकी इन्द्रायण—कडवी, पाकमे चरपरी, दस्तावर, हलकी, उष्णवीर्य और कामला, पित्त, कफ, प्लीहा, उदर रोग, श्वास, खाँसी, कोढ, गुल्म, गाँठ, व्रण, प्रमेह, मूढ गर्भ, आम, गण्डमाला और विषरोग नाशक हैं ॥ १८९-१९१ ॥

विवरण।

छोटी इन्द्रायण और बडी इन्द्रायणकी वेल अधिकतर कैरोमे और खारी भूमिमें उत्पन्न होती हैं, पत्ते लम्बे २ बीचमे कटेसे होते हैं, फूल पीले रंगके होते है, फल सूक्ष्म काटेयुक्त लाल रगका छोटी नारंगीके समान अत्यन्त शोभायमान होताहै, दूसरी इन्द्रायण रेतली भूमिमे उत्पन्न होती है, उसका फल पीले रगका होताहै ॥

अथ नीली [लील]।

नीली तु नीलिनी तूली कालदोला च नीलिका ॥ रञ्जनी श्रीफला तुत्था ग्रामीणा मधुपर्णिका ॥ १९२ ॥ क्लीतका कालकेशी च नीलपुष्पा च सा स्मृता ॥ नीलिनी रेचनी तिक्ता केश्या मोहभ्रमापहा ॥ १९३ ॥ उष्णा हन्त्युदरप्लीहवातरक्तकफानिलान् ॥ आमवातमुदावर्तं मदं च विषमुद्धतम् ॥ १९४ ॥

नीली, नीलिनी, तूली, कालदोला, नीलिका, रञ्जनी, श्रीफली, तुत्था, ग्रामीणा, मधुपर्णिका, क्लीतका, कालकेशी, नीलपुष्पा (नीला, मेचवर्णा, कुत्सला, दूली, क्लीतकिया, काला, नीलपुष्पिका, तूणी, दोला, दोलिका, द्रोणिका, अक्लीका, ग्रामणी, ग्रामिणी, द्रोणी, भेला, तुच्छा, नीलपत्री, रङ्गी, नीलपुष्पी, काली, श्यामा, शोधिनी, श्रीफला, ग्राम्या, भद्रा, भारवाहा, माची, कृष्णा, व्यञ्जनकेशी, महाफला, अमिता, क्लीतनी, केशी, चारटिका, गन्धपुष्पा, श्याममल्लिका, रंगपत्री, महाबला, स्थिररङ्गा, रङ्गपुष्पी वृत्तिका, अञ्जनकेशिका, चारटी, विजया, गन्धपुष्पी और स्थिररङ्गा) ये नीलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–नील, लील । बं०–नीलगाछी । म०–लवुनीली, थोरली नीली । गु०–गली । तै०–नीलीचेट्ट । क०–हिरियनीली । इं०–इण्डिगो Indigo लै०–इण्डिगोफेरा कोर्डिफोलिया Indigofera Cordfolid ॥

नील–रेचक, कडवा, केशोंको हितकारी गरम और मोह, भ्रम, उदररोग, प्लीहा, वात, रुधिरविकार, कफ, आमवात, उदावर्त्त, मद तथा बडे भारी विषको नष्ट करे है ॥ १९२–१९४ ॥

विवरण ।

नीलके क्षुप छोटे छोटे, किसानलोग खेतोंमें बोते हैं, पत्ते सरफुकके समान नीले और कुछेक कालापन लिये होतेहैं, इसकी फली टेढी और गोल होतीहैं, इसकी डाली और पत्तोंकी कुट्टी कर कुडोंमें पानी भर- उसमें गलातेहैं, तब उसका नील बनातेहैं, वह नीले रंगके काममें बहुत आताहै ॥

अथ शरपुंखः [सरफोंका] ।

शरपुंखा प्लीहशत्रुर्नीलीवृक्षाकृतिश्च सः॥ शरपुंखो यकृत्प्लीहगुल्मव्रणविषापहः ॥ तिक्तः कषायः कासास्रश्वासज्वरहरो लघुः ॥ १९९ ॥

शरपुंख, प्लीहशत्रु, नीलीवृक्षाकृति, (कालशाक, प्लीहारि, कालिका, काण्डपुंखा, बाणपुंखा, इषुपुंखिका, सायकपुंखा और इषुपुंखा) ये सरफोंके के संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सरफोंका, सफेद सरफोंका । बं०–बननील । म०–उन्हाळी । गु०–शरपखो । क०–येरळकोंगि । तै०–पांपाराचेट्टु । ता०–कोल्लुकवकेल्लपि । इं०–परपल टेफ्रोशिया Pupletephrosia लै०–टेफ्रोजिया परपूरिया Tephrosia Purpurea ॥ सरफोंका–कडवा, कसेला, हलका और यकृत्, प्लीहा, गुल्म, व्रण, विष, खांसी, रुधिरविकार, श्वास तथा ज्वर नाशक है ॥ १९९ ॥

विवरण ।

सरफोंकेके क्षुप जंगलमें छोटे छोटे उत्पन्न होजाते हैं, पत्ते नीलके पत्तोंके समान नीले नीले होतेहैं, फूल लाल होताहै, फलियें छोटी छोटी लगतीहैं, उस फलीमें बहुत नान्हे नान्हे रुयें होतेहैं और दूसरी जातिकी फलीमें रुआँ नहीं होता, सफेद सरफोंकेका क्षुप पृथ्वीपर फैला हुआ होताहै, उसके पत्ते कुछेक छोटे होतेहैं, फूल सफेद रंगके आतेहैं ॥

अथ यवासः [जवासा] दुरालभा च ।

यासो यवासो दुःस्पर्शो धन्वयासः कुनाशकः ॥ दुरालभा दुरालम्भा समुद्रान्ता च रोदिनी ॥ १९६ ॥ गान्धारी कच्छुराऽनन्ता कषाया हरिविग्रहा ॥ यासः स्वादुः सरस्तिक्तस्तुवरः शीतलो लघुः ॥ ॥ १९७॥ कफमेदोमदभ्रान्तिपित्तासृक्कुष्ठकासजित् ॥ तृष्णाविसर्पवातास्रवमिज्वरहरः स्मृतः ॥ यवासस्य गुणैस्तुल्या बुधैरुक्ता दुरालभा ॥ १९८ ॥

यास, यवास, दुःस्पर्श धन्वयास, कुनाशक (यवासक, अनन्ता, बालपत्र, अधिकण्टक, दुरमूल, समुद्रान्त, दीर्घमूला, मरुद्भव, कटकी, बहुकण्टक, क्षुद्रेंगुदी, रोदनिका, विघ्न, कटकालुक, त्रिपर्णिका, गन्धारी, वासन्त, वनदर्भ, विवर्णक, तीक्ष्णकण्टक और सूक्ष्म पत्र) ये जवासेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–जवासा । बं०–यववासा । म०–कांटेचुबुक, तावडा धमासा । गु०–जवासो । क०–तोरेदगल्ल । फा०–फाराक्युशन । अ०–अलगुल हाज । लै०–अल्हेजाइमौरोहम Alhagimaurohum ॥ दुरालभा, दुरालभा, समुद्रान्ता, रोदिनी, गाधारी, कच्छुरा, अनता, कषाया, हरिविग्रहा, (दुरभिग्रहा, दुःस्पर्शा, कुनाशक, धनुर्यास, युवस, धन्वयवास, विकटक, आत्ममूली, पद्ममुखी, ताम्रमूला, धन्वी, धन्वयवासक, प्रबोधिनी, सूक्ष्मदला, विरूपा, दुर्लभा, दुष्प्रधर्षा, ताम्रमूली, मरुजन्मा, उष्ट्रभक्ष्या, मृदुपर्णा, कषायका, प्रासादनी, फणि-

हारी, विशारदा, रविग्रहा, अजाभक्ष्या और ग्राहिणी) ये धमासेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–धमासा,। ब०–दुरालभा। म०–धमासा। गु०–धमासो। क०–बल्लीदुरुवे। तै०–पिलरेगटि। फा०–वादावर्द। अ०–शुकाई। लै०–फगोनिया एरेबिका Fagonia Aradica ॥

जवासा–स्वादिष्ठ, दस्तावर, कडवा, कसैला, शीतल, हलका और कफ, मेद, मद, भ्रम, पित्त, रुधिरविकार, कोढ, खाँसी, तृषा, विसर्प, वातरक्त, वमन तथा ज्वरको नष्ट करैहै। जो गुण जवासेमे है वेही गुण पंडितोंने धमासेमे कहेहै॥ १९६ ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

विवरण।

जवासा भी धमासेहीकी आकृतिका होताहै और यह भी जलाशयके समीपकी भूमिमे अधिक उत्पन्न होताहै, परन्तु जवासेके काटे कुछेक धमासेसे बडे होते हैं पत्तोंमे भी कुछ अधिकता पाई जाती हैं, वर्षाऋतुके आदि अन्तमें यह फलता फूलता है और वर्षाऋतुमे तो आपसे आपही जल जाताहै॥ धमासा रेतली और जलाशयके निकट, खादरकी भूमिमे अधिकतासे होताहैं, पत्ते बहुत छोटे और उसपर बहुत छोटेही छोटे फल लगतेहैं और छोटे छोटे कॉटोंसे परिपूर्ण रहताहै, पृथ्वीसे हाथ हाथभर ऊँचे क्षुप होतेहैं ॥

अथ मुण्डी।

मुण्डी भिक्षुरपि प्रोक्ता श्रावणी च तपोधना ॥ श्रवणाह्वा मुण्डतिका तथा श्रवणशीर्षका ॥ १९९ ॥ महाश्रावणिकाऽन्या तु सा स्मृता भूकदम्बिका ॥ कदम्बपुष्पिका च स्याद्व्यथातितपस्विनी ॥ ॥ २०० ॥ मुण्डतिका कटुः पाके वीर्योष्णा मधुरा लघुः ॥ मेध्या गण्डापचीकृच्छ्रकृमियोन्यर्तिपाण्डुनुत् ॥ २०१ ॥ श्लीपदारुच्यपस्मारप्लीहमेदोगुदार्तिहृत् ॥ महामुण्डी च तत्तुल्या गुणैरुक्ता महर्षिभिः ॥ २०२ ॥

मुण्डी, भिक्षु, श्रावणी, तपोधना, श्रवणाह्वा, मुडतिका, श्रवणशीर्षका, (श्रवणा, भूतघ्नी, पलकषा, कदम्बपुष्पा, अरुणा, मुण्डीका, कुम्भला, प्रव्रजिता और परिव्राजिका) ये मुडीके सस्कृत नाम हैं ॥

महाश्रावणिका, भूकदम्बिका, अव्यथा, अतितपस्विनी, (महामुडी, लोचनी, कदम्बपुष्पी, विकचा, क्रोडचूडा, पलकषा, नदीकदम्ब, मुण्डाख्या, महामुण्डनिका, माता, स्थविरा, लोतनी, भूकन्द, अलम्बुषा, वृद्धा, छिन्नग्रन्थिका, नीलकदम्बिका और वोडा) ये बडी मुण्डीके सस्कृत नामहैं॥

हिन्दी–मुण्डी, छोटीमुडी, गोरखमुडी, बडीमुडी, ब०–मुण्डिरी, मुडी, थुलकुडी, बडीथुलकडी। म०–बरसबोडी, बोडथरा,। गु०–गोरखमुडी, मोटीगोरखमुडी। क०–कीयोबोडतर, हिरीयबोडतर। तै०–बोडसरपुचेट्टु। ता०–कोटक। अ०–कमादरयुस। इं० स्फिरेंथस इंडिकस Sphoreunthus Indicus ॥ गोरखमुडी–पाकमें चरपरी, उष्णवीर्य, मधुर, हलकी, मेधाको हितकारी और गलगड, अपची, मूत्रकृच्छ्र, कृमि, योनिकी पीडा, पाण्डुरोग, श्लीपद, अरुचि, अपस्मार, प्लीहा, मेद तथा गुदाकी पीडाको नष्ट करैहै। बडी गोरखमुडीमें भी येही गुण है॥ १९९–२०२ ॥

विवरण।

मुण्डी और महामुण्डी तृणके समान प्रसर जातिकी वनस्पति है, पत्ते अगुलीसमान लम्बे लम्बे होते हैं, फल कदम्बके समान अथवा मुरेठीके तुल्य, किवा घुटीके सदृश होते हैं ॥

अथ अपामार्गः [चिरचिटा]।

अपामार्गस्तु शिखरी ह्यधःशल्यो मयूरकः ॥ मर्कटी दुर्ग्रहा चापि किणिही खरमञ्जरी ॥ २०३ ॥ अपामार्गः सरस्तीक्ष्णो दीपनस्तिक्तकः कटुः ॥ पाचनो रोचनश्छर्दिकफमेदोऽनिलापहः ॥ निहन्ति हृद्रुजाध्मानकण्डूशूलोदरापचीः ॥ २०४ ॥

अपामार्ग, शिखरी, अधःशल्य, मयूरक, मर्कटी, दुर्ग्रहा, किणिही, खरमंजरी, (शैखरिक, धामार्गव, प्रत्यक्पर्णी, कीशपर्णी, अपागक, किणी, कीशपर्णी, शमत्कार, शैखरेय, अपामार्गव, केशपर्णी, स्थलमजरी, प्रत्यक्पुष्पी, क्षारमध्यम, अधोघटा, कान्तरिक, दुर्गभिग्रह वासिर, परा-क्पुष्पी, कटी, कर्कटपिप्पली कटुमञ्जरिका, अघाट, क्षुरक, पांडुकण्टक, नालाकट, कुब्ज और मालाकट) ये ओंगाके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–चिरचिटा, लटजीरा, ओंगा । ब०–अपाग । म०–अघाडा, आघेडा । गु०–अघेडो । अ०–चिन्चिरा, तै०–दुचीणिके । फा०–खारवाखगोता । अ०–आत्मक । इं०–रफचेफट्री Roughchafftree लै०–एचिरेंथिस एस्पिरा Achyran this Aspera ॥

चिरचिटा–दस्तावर, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, कडवा, चरपरा, पाचक, रुचिकारक और वमन, कफ, मेद, वात, हृदयरोग, अफारा, बवासीर खुजली, शूल उदर रोग, तथा अपचीरोगको नष्ट करेहै ॥ २०३ ॥ २०४ ॥

विवरण ।

अपामार्ग अर्थात् चिरचिटेके क्षुप जगलमे विना बोये जोते ही बहुत उत्पन्न होजातेहैं, पृथ्वीसे एक एक हाथ दोदो हाथ ऊचे होजातेहैं, पत्ते गोल होतेहैं. बीचमंसे एक सफेद रगकी बाल निकलती है, उस बालपर छोटे छोटे उलटे कॉटोवाले बीज निकलतेहैं ॥

अथ रक्तोऽपामार्गः [लालओंगा] ।

रक्तोऽन्यो वसिरो वृत्तफलो धामार्गवोऽपि-च ॥ प्रत्यक्पर्णी केशपर्णी कथिता कपि-पिप्पली ॥ २०५ ॥ अपामार्गोऽरुणो वातविष्टम्भी कफकृद्धिमः ॥ रूक्षः पूर्व-गुणैर्न्यूनः कथितो गुणवेदिभिः ॥ २०६ ॥ अपामार्गफलं स्वादु रसे पाके च दुर्जर-म् ॥ विष्टम्भि वातलं रूक्षं रक्तपित्तप्रसा-दनम् ॥ २०७ ॥

रक्तापामार्ग, वसिर, वृत्तफल, धामार्गव, प्रत्यक्पर्णी, केशपर्णी, कपिपिप्पली, (क्षुद्रापामार्ग, आवर्त्तक, दुग्ध-निका, रक्तविट, कल्पपत्रिका, क्षव, अधामार्गव, प्रत्य-क्श्रेणी, खरच्छद, कूट, मर्कटपिप्पली, कुब्ज और दुर-भिग्रह) ये लाल चिरचिटेके सस्कृत नाम हैं ॥

हि०– लाल चिरचिटा, लाल ओंगा । ब०–रक्तापाङ्ग । म०–तावडा अघाडा, अघेडा । गु०–रातो अघेडो । क०–केपीगुत्तरण ॥ लाल चिरचिटा–वायुको रोकने वाला, कफकारक, शीतल, रूक्ष, और पूर्वोक्त चिरचिटेसे यह चिरचिटा गुणज्ञपुरुषोंने हीन गुणवाला कहा है । चिरचिटके बीज रसमें स्वादिष्ट, पाकमें दुर्जर, विष्टम्भी, वातकारक, रूखे और रक्तपित्तको दूर करे हैं २०५–२०७

विवरण ।

लाल चिरचिटा भी उसी प्रकारका होताहै. इसके पत्ते कुछ कुछ गोल और लाल होतेहैं, फूल पीले और फल, लाल लाल, बालपर लगे होतेहैं परन्तु उनके ऊपर कॉटे भी होतेहैं. इसप्रकार लाल और सफेद दोजातिका चिरचिटा होताहै ॥

अथ कोकिलाक्षः [तालमखाना] ।

कोकिलाक्षस्तु काकेक्षुरिक्षुरः क्षुरकः क्षुरः ॥ भिक्षुः काण्डेक्षुरप्युक्तः इक्षुगन्धेक्षुवालिका ॥ २०८ ॥ क्षुरकः शीतलो वृष्यः स्वाद्व-म्लः पित्तलस्तथा ॥ तिक्तोवातामशोथा-ऽश्मतृष्णादृष्ट्यनिलास्रजित् ॥ २०९ ॥

कोकिलाक्ष, काकेक्षु, इक्षुर, क्षुरक, क्षुर, भिक्षु-काण्डेक्षु, इक्षुगन्धा, इक्षुवालिका, (कोकिलाक्षक, कोकि-लनयन, शृगाली, शृखली, शूरक, शृगालघण्टी, वज्रास्थि-शृखला, वज्रकण्टक, वज्र, शृखलिका, पिकेक्षणा, पिच्छिला, वीरतरु, त्रिक्षुर, शुक्लपुष्प और कुलाहक) ये तालम-खानेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–तालमखाना । ब०–कुलियाखाडा । म०–वि-खरा । तै०–गोबी । गु०एखरो । क०–कुळुगोलिके । इं०–लागलेवु बार्लेरिया Longleaved Barlaria लै०–एस्ट्रेकैंथा लोंजिफोलिया Aste cantha Longifolia ॥ तालमखाना–शीतल, वीर्यवर्द्धक, मधुर, खट्टा, पित्तकारक, कडवा और वात सबधी आम, सूजन, पथरी, तृषा, नेत्ररोग तथा रुधिर विकारको नष्ट करे-है ॥ २०८ ॥ २०९ ॥

विवरण ।

कोलिया–तालमखानेके क्षुप प्रायः जलके निकट तथा चौमासेकी तालतलैया और सूखे हुए सरोवरोंमे बहुत उत्पन्न होतेहै. पत्ते लम्बे लम्बे होतेहैं. क्षुपोंपर कॉठे बहुत होतेहैं गूमेके समान ठौर ठौर गाठे होतीहैं, उन गाँठोंमेसे जो बीज निकलतेहैं उसीको तालमखाना कहतेहैं ॥

अथ अस्थिसंहारकः [हडसंधारी] ।

ग्रन्थिमानस्थिसंहारी वज्राङ्गी वास्थिशृ-ङ्खला ॥ अस्तिसंहारकः मोक्तो वातश्लेष्म-हरोऽस्थियुक् ॥ २१० ॥ उष्णः सरः कृमि-घ्नश्च दुर्नामघ्नोऽक्षिरोगजित् ॥ रूक्षः स्वादु-र्लघुर्वृष्यः पाचनः पित्तलः स्मृतः ॥ २११ ॥ काण्डं त्वग्विरहितमस्थिशृंखलाया माषार्द्ध

द्विदलमकंचुकं तदर्द्धम् ॥ सम्पिष्टं तदनु ततस्तिलस्य तैले संपक्कं वटकमतीव वातहारि ॥ २१२ ॥

ग्रन्थिमान, अस्थिसहारी, वज्रांगी, अस्थिशृंखला, (वज्रवल्ली, कुलिश, गिरालक, अमर, अस्थिसंहारक और कोष्टुघण्टिका) ये हडसघारीके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–हडजोडा, हडसघारी। ब०–हाड भागा। म०–कांडवेल। तै०–जाल्हेह। गु०–हाडसाकल। लै०–विटिस् क्रौंटे ग्युलरिस् *Vitiscrount Gularis* ॥

हडसंघारी–हड्डियोंको जोडनेवाली, गरम, दस्तावर, रूखी, मधुर, हलकी, वीर्यको बढानेवाली, पाचक, पित्तकारक और वात, कफ, कृमि, बवासीर, तथा नेत्ररोग नाशक है। इसकी लकडीकी छाल छीलकर एक भाग और छुलके रहित गीली उडदकी दाल आधाभाग दोनोको पीस बडी बनाकर तिलके तैलमे पकावे यह पकी हुई बडी अत्यत वातनाशक है ॥ २१०–२१२ ॥

विवरण।

हडसहारीकी वेल–थूहरकी जातिसे सम्बन्ध रखतीहै, इस वेलमे चार छः अगुलपर गॉठें होतीहै, यह द्विधारी, तिधारी, चौधारी, और पञ्चधारी होतीहै, इनसे एक प्रकारकी हडसहारीकी जाति होतीहै. कण्डवेलके भिन्न भिन्न भाग कण्डवेल होतेहैं, इसको सस्कृतमें काण्डवल्ली कहतेहैं. शकलके समान होतीहैं इसलिये इसको हडसहारी कहतेहै ॥

अथ कुमारी [घीकुआर]।

कुमारी गृहकन्या च कन्या घृतकुमारिका ॥ कुमारी भेदिनी शीता तिक्ता नेत्र्या रसायनी ॥ २१३ मधुरा बृंहणी बल्या वृष्या वातविषप्रणुत् ॥ गुल्मप्लीहयकृद्वृद्धिकफज्वरहरी हरेत् ॥ ग्रन्थ्यग्निदग्धविस्फोटपित्तरक्तत्वगामयान् ॥ २१४ ॥

कुमारी, गृहकन्या, कन्या, घृतकुमारिका, (सहा, घृतकुमारी, दीर्घपत्रिका, अफला, सुरसा, स्थलेरुहा, तरणी, सुवहा, बहुपत्री, अमरा, अजरा, कण्टकप्रावृता, विपुलस्रवा, ब्रह्मघ्नी, वीरा, भृगेष्टा, तरुणी, रामा, कपिला, अम्बुधिस्रवा, सुकण्टका, स्थूलदला, अदला, मंडला, माता, अतिपिच्छिला और कण्टकिनी) ये घीकुवारके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–घीकुवार, घीगुआर, कुआरपाठ। ब०–घृतकुमारी,। म०–कोरफड, कोरकांटा। गु०–कुवार। क०–लोयिसर। तै०–पिन्नगोरिण्टकलवन्द। फा०–दरखते सीत्र। अ०–मुसवर। इं०–वार्वेडोलझ आलाझ Barbodols aloes ल०–आलाई वार्वडेन्स Aloe bar badense ॥ घीकुवार–दस्तावर, शीतल, कडवा, नेत्रोको हितकारी, रसायनरूप, मधुर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक और वात, विष, गुल्म, प्लीहा, यकृत्, अण्डवृद्धि, कफज्वर, ग्रन्थि, अग्निदाह, विस्फोटक, पित्त, रुधिरविकार, तथा त्वचारोग नाशक है ॥ २१३ ॥ २१४ ॥

विवरण।

घीकुवारके क्षुप रेतली भूमिमें वा खतीली पृथ्वीमे अथवा नदीके तटके निकट अधिकतासे उत्पन्न होतेहैं; पत्ते लम्बे और अधिक मोटे होतेहैं; पत्तोके दोनो ओर कॉटे होतेहैं; उन पत्तोके भीतर घीके समान गूदा रसभरा होताहै पत्तोंकी नोक अनीदार होतीहैं, घीकुवारके क्षुपके मध्यसे एक डडा निकलताहै, उसमें लाल फूल आतेहैं; इसी घीकुवारके रससे एलुआ बनताहै ॥

अथ श्वेतपुनर्नवा।

पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नी दीर्घपत्रिका ॥ कटुः कषायानुरसा पाण्डुघ्नी दीपनी परा ॥ शोफानिलगरश्लेष्महरी व्रण्योदरप्रणुत् ॥ २१५ ॥

पुनर्नवा, श्वेतमूला, शोथघ्नी, दीर्घपत्रिका, (कठिल्ल, चिराटिका, वृश्चीरा, श्वेतपुनर्नवा, सितवर्षाभू, वर्षांगी, वर्षाही, विशाख, शशिवाटिका, पृथ्वी, घनपत्र और कठिल्लक) ये श्वेतपुनर्नवाके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सफेद पुनर्नवा, विपखपरा। ब०–श्वेतगादावन्ने, श्वेतपुण्या। म०–घेंटुली, पांढरी, रक्तपन्या। गु०–धोली साटोडी। क०–विलीयदुवेल्लड्किल्ल। तै०–गाल्जेरु ता०–मुकरत्ते किरे। अ०–हदकूकी। इ०–स्प्रेडिग होगविड Spreading Hogweed ल०–बारका विवा डिफ्युझा Boorhaniaviffusa ॥ सफेदपुनर्नवा–चरपरी, कसैली, अत्यन्त अग्निप्रदीपक और पाण्डुरोग, सूजन, वायु, विष, कफ, व्रण, तथा उदररोग नाशक है ॥ २१५ ॥

विवरण।

पुनर्नवा–तीन चार प्रकारका होताहै, पत्ते गोल होते है, फूल लाल सफेद भिन्न भिन्न रगके होतेहै, इसमें

सफेद रंगके फूलका विषखपरा होताहै और लालरंगकी सॉठका गदहसद्द और थुनेरा कहलाता है, विष खपरेका क्षुप पृथ्वीपर फैला हुवा होता है पत्ते गोल और लाल २ किनारीदार होतेहैं, फूल सफेद होतेहैं, सॉट भूडकी रेतली भूमिमे अधिकतासे होतीहैं, पत्ते चौलाई समान ललाई लिये हुए होतेहैं फूल लालरंगके होतेहैं, एक नीले रंगका पुनर्नवा होताहै. उसके फूल भी नीले रंगके होतेहैं ॥

अथ रक्तपुष्पा पुनर्नवा ।

पुनर्नवापरा रक्ता रक्तपुष्पा शिलाटिका ॥ शोथघ्नः क्षुद्रवर्षाभूर्वृषकेतुः कपिल्लकः ॥ ॥ २१६ ॥ पुनर्नवारुणा तिक्ता कटुपाका हिमा लघुः ॥ वातला ग्राहिणी श्लेष्मपित्तरक्तविनाशिनी ॥ २१७ ॥

रक्तपुनर्नवा, रक्तपुष्पा, शिलाटिका, शोथघ्न, क्षुद्रवर्षाभू, वृषकेतु, कपिल्लक, (रक्तपत्रिका, रक्तकांडा, वर्षकेतु, वर्षाभू, प्रावृषायणी, कठिल्लक, कूरा, मण्डलपत्रिका, लोहिता, वैशाखी, रक्तवर्षाभू, शोफघ्नी, रक्तपुष्पिका, विकस्वरा, विषघ्नी, प्रावृषेण्या, सारिणी, वर्षाभव, शोणपत्र, भौम, पुनर्भव और नव्य) ये लाल पुनर्नवाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–लालपुनर्नवा, लाल विषखपरा, लाल साठ । बं०–रक्तगादावन्ने । म०–तांबडीघेंटुळी, रक्तवसु । गु०–राता फूलवाली साटोडी । क०–क्रीय वेळडकिलु । लैं०–ट्रिॲथेमा ओवू कार्डाटा Trianthema Ofcarduta ॥ लालसाठ--कडवी, पाकमें चरपरी, शीतल, हलकी वातकारक, ग्राही और कफ पित्त तथा रुधिरविकार नाशक है ॥ २१६ ॥ २१७ ॥

अथ गन्धप्रसारणी [पसरन] ।

प्रसारणी राजबला भद्रपर्णी प्रतापनी ॥ सरणी सारणी भद्रा बला चापि कटम्भरा ॥ २१८ ॥ प्रसारिणी गुरुर्वृष्या बलसन्धानकृत्सरा ॥ वीर्योष्णा वातहृत्तिक्ता वातरक्तकफापहा ॥ २१९ ॥

प्रसारणी, राजबला, भद्रपर्णी, प्रतापनी, सरणी, सारणी, भद्रा, बला, कटभरा, (गन्धाली, गन्धाढ्या, गन्धभद्रा, शरणा, शरणी, गन्धोली, भद्रभला, सरणि, सुप्रसरा, प्रसरा, सरा, चारुपर्णी, प्रतानिका, प्रबला, राजपर्णी, चन्द्रपर्णी, चन्द्र, वल्ली, प्रभद्रा और प्रसारिणी) ये पसरनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पसरन, गन्धप्रसारणी, .बं०–गन्धभादला । म०–चॉदवेल । गु०–गन्धप्रसारणी, नारी । क०–हेसरणे । तै०–गोन्तेमगोरुचेट्टु । लैं०–पिडेरिया फिटीडा Peaderia Factida ॥ पसरन–भारी. वीर्यवर्द्धक, बलदायक, सधानकारक, दस्तावर, उष्णवीर्य, कडवी और वात, रुधिरविकार तथा कफको नष्ट करतेहै ॥२१८॥२१९॥

विवरण ।

गन्धप्रसारिणीकी बहुत लम्बी और फैलनेवाली बेल होतीहै, इसकी शाखा बडी बडी लम्बी फैलतीहैं, पत्ते रतालूकी आकृतिके होतेहैं, परन्तु छोटे होतेहैं, फल, गोल गोल होतेहैं परन्तु हमको पूर्ण निश्चय नही होता कि, प्रसारिणी क्या है ? संस्कृतमें इसको राजबला, मरहटी चादवेल और गुजरातीमे नारी कहतेहैं, परन्तु चादवेल और प्रसारिणीकी आकृति और नाम गुण अलग अलग लिखेहैं और वह नाम गुण आकृति इससे मिलती भी नहीं, क्योंकि चादवेल मलरोधक है और प्रसारिणी मलनिःसारक है ॥

अथ श्वेतकृष्णसारिवा [करिआवांसा] ।

इन्द्रजम्बूकवत्पत्रा सुगन्धा कलघण्टिका॥ कृष्णा तु शारिवा श्यामा गोपी गोपवधूश्च सा ॥ २२० ॥

इयमपि जम्बूवत्पत्रा दुग्धगर्भा व्रततिर्भवति ॥

धवला शारिवा गोपी गोपा कन्या कृशोदरी ॥ स्फोटा श्यामा गोपवल्ली लतास्फोता च चन्दना ॥ २२१ ॥

गोपी गोपस्य स्त्री । पुंयोगान्ङीप् । गोपी गां पातीति गोपा गोपकन्या ॥ श्यामापदेन कृष्णा श्वेतापि सारिवा कथ्यते, सा श्वेतेन सारिवापदस्य प्रयुक्तत्वात् । तद्यथा–

सारिवायां निशि श्यामाश्यामौ च हरितासितौ॥सारिवायुगलं स्वादु स्निग्धं शुक्र-

करं गुरु ॥२२२॥ अग्निमान्द्यारुचिश्वासकासामविषनाशनम्॥दोषत्रयास्रप्रदरज्वरातीसारनाशनम् ॥ २२३ ॥

सारिवा, श्यामा, गोपी, गोपवधू, कलघटिका (श्यामलता, पालिन्दी, गोपनी, कृष्णशारिवा, चिह्नधारिणी, दृढबन्धिनी, गोपवल्ली, गोपा, सारिवा, उत्पलसारिवा, अनन्ता, कालपेषी, महाश्यामा, सुभद्रा, दीर्घमूला, मसूरविदला, कृष्णमूली, कृष्णा, चन्दनसारिवा, भद्रा, चन्दनगोपा, चन्दना और कृष्णवल्ली) ये कालीसारिवाके संस्कृत नाम हैं। इसके पत्ते इन्द्रजामुनके सदृश सुगन्धित होतेहै ॥

हि०—कालीसर, करियाँसाउ, सालसा कालीसाँव। बं०—कृष्ण अनन्तमूल, श्यामलता। म०—कृष्णउपलसरी, गु०—काला फूलवाली उपलसरी। क०—सारिवा। तै०—नीलतिग। इं०—इंडियन सारसापरेला, Indian Sarsaparela लै०—हेमिडेसमेस इंडीकस् Hemidesemass Indicus ॥

धवला, शारिवा, गोपी, गोपा, गोपकन्या, कृशोदरी, स्फोटा, श्यामा, गोपवल्ली, लता, आस्फोता, चंदना, (सारिवा, अनन्ता, उत्पलसारिवा, भद्रवल्ली, नागजिह्वा, करा-ला, भद्रवल्लिका, सुगन्धा, भद्रा, शारदा, प्रतानिका, काष्ठसारिवा, गोपवधू और धवलसारिवा) ये सफेद फूलवाली सारिवाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—गोरीसर, गौरियासाउ, गोरीसाँव। बं०—अनन्तमूल। म०—श्वेत उपलसरी। गु०—सफेद फूलवाली उपलसरी ॥

इसके भी पत्ते जामुनके सदृश और दुग्धयुक्त होते हैं, 'श्यामा' यह शब्द दोनों सारिवाओंमें लगसक्ता है, क्योंकि शाश्वत कोषमें, सारिवा और रात्रि यह दोनो श्यामा कही है, और हरित तथा कृष्ण ये दोनो वर्ण श्यामाके कहेहैं ॥

दोनों प्रकारकी सारिवा—मधुर, चिकनी, वीर्यकर्त्ता, भारी और अग्निकी मन्दता, अरुचि, श्वास, खाँसी, आम, विष, तीनो दोष, रक्तविकार, प्रदर, ज्वर तथा अतिसारको नष्ट करैहै ॥ २२०—२२३ ॥

विवरण।

काली सारिवा और सफेद सारिवाकी वेल होतीहै; पत्ते दोनो सारिवाओंके जामुनके समान होतेहैं और उन पत्तोंमे सफेद सफेद छींटेसे होतेहैं, इसकी वेलकी जडमे कपूरकचरीके समान सुगन्ध आतीहै और इसमे दोदे फली लगतीहैं, इसको कोई २ मनुष्य सारसापरेला कहतेहैं ॥

अथ भृंगराजः [भाँगरा]।

भृंगराजो भृंगरजो मार्कवो भृंग एव च॥ अंगारकः केशराजो भृंगारः केशरञ्जनः ॥ २२४ ॥ भृंगारः कटुकस्तीक्ष्णो रूक्षोष्णः कफवातनुत् ॥ केश्यस्त्वच्यः कृमिश्वासकासशोथामपाण्डुनुत्॥दन्त्यो रसायनो बल्यः कुष्ठनेत्रशिरोर्तिनुत् ॥ २२५ ॥

भृंगराज, भृंगरज, मार्कव, भृंग, अंगारक, केशराज, भृंगार, केशरंजन, (पितृप्रिय, रंगक, केश्य, कुन्तल वर्द्धन, पतंग, मार्कर, मार्क, नागमार, परुरु, भृंगसोदर, एकरज, रजक, अजागर और पंकजात) ये भांगरेके संस्कृत, नाम हैं ॥

हि०—भांगरा, भंगरा, घमिरा। बं०—भीमराज। म०—माका। गु०—भांगरो। क०—गरुगमरु। तै०—गुण्टकल गरुचेट्टु। फा०—जमर्दर। अ०—हजीज। इं०—ट्रेलिंग इक्लिप्टाक Traling Eclipta लै०—इक्लिप्टाप्रोस्ट्रेटा Eclipta Prostiatal ॥

भांगरा—चरपरा, तीक्ष्ण, रूक्ष, गरम, केशोंको उत्तम करनेवाला, त्वचाके लिये हितकारी, दांतोंको उत्तम करनेवाला, रसायनरूप, बलदायक और कफ, वात, कृमि, श्वास, खांसी, सूजन, आम, पाण्डुरोग, कोढ, नेत्रोंकी पीडा, तथा मस्तककी पीडाको दूर करैहै ॥ २२४ ॥ २२५ ॥

विवरण।

भांगरेके गुल्म प्रायः जलके निकटकी भूमिमें बहुत उत्पन्न होतेहैं, इसकी शाखाओंमे कालापन होताहै, पत्ते लम्बे लम्बे लाहीकेसे होतेहैं, पत्तेके नीचे दाने दार फलसे होतेहै, इसके पत्तोंका रस कालासा होताहै, यह सफेद, काले और पीले इन फूलोंके भेदसे तीन प्रकारका होताहै॥

अथ शणपुष्पी [पटसन]।

शणपुष्पी स्मृता घण्टा शणपुष्पसमाकृतिः॥शणपुष्पी कटुस्तिक्ता वामिनी कफपित्तजित् ॥ २२६ ॥

शणपुष्पी, घंटा, (शण, माल्यपुष्प, वामक, कटुतिक्त, निगाढन, दीर्घशाख और दीर्घपल्लव) ये शणपुष्पीके संस्कृत नाम है।

हि०—शन, पटशन, शणहुली । बं०—वनशणई । म०—सन, ताग । गु०—शणपुष्पी । क०—गिलुगिचि श्वेत, कुलखुला । तै०—शणमतुवेल्ल । फा०—लाटना । इं०—फ्लाक्सहेम्प Flax Hemp ले०—क्रोटेलेरिया जुनसिया Crotalaria Juncia ॥ शणपुष्पी—चरपरी, कडवी, वमनकारक और कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाली है॥२२६॥

विवरण ।

शणपुष्पी भारतवर्षमें सर्वत्र होतीहै वृक्ष झाड हडके समान होताहै, पत्ते छोटे २ होतेहैं फूल पीले २ होतेहैं फल लम्बे और खुक्कल उसके भीतर काले काले दाने बजतेहैं ॥

अथ त्रायमाणा ।

बलभद्रा त्रायमाणा त्रायन्ती गिरिसानुजा ॥ त्रायन्ती तुवरा तिक्ता सरा पित्तकफापहा ॥ ज्वरहृद्रोगगुल्मार्शोभ्रमशूलविषप्रणुत् ॥ २२७ ॥

बलभद्रा, त्रायमाणा, त्रायन्ती, गिरिसानुजा, (सुभद्राणी, बलभद्रिका, वार्षिक, बलदेवा, भद्रनामिका, कुलत्रा, त्रायमाणिका, सुकामा, वार्षिका, गिरिजा, अनुजा, मगल्यार्ही, देवबला, पालिनी, भयनाशिनी, अवनी, रक्षणी और त्राणा) ये त्रायमाणाके सस्कृत नाम हैं ॥

हि०—त्रायमाण । बं०—बलाडुबुर । म०—त्रायमाण । गु०चाहिमान । क०—त्रायमाण । फा०—अस्प्रका । लै०—थेलिकट्रम फोलियो लोजम् Thalicatrum Faliolosam ॥ त्रायमाण—कसैली, कडवी, दस्तावर और पित्त, कफ, ज्वर, हृदयरोग, गुल्म, बवासीर, भ्रम, शूल तथा विष विनाशक है ॥ २२७ ॥

विवरण ।

त्रायमाणके पत्ते गोजियाके समान पृथ्वीपर फैले हुए होतेहैं और बीचमें दो दडीसी निकलतीहैं, उसके बीजोको त्रायमाण कहतेहैं ॥

अथ मूर्वा [चुरनहार] ।

मूर्वा मधुरसा देवी मोरटा तजनी स्रुवा ॥ मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि ॥ २२८ ॥ मूर्वा सरा गुरुः स्वादुस्तिक्ता पित्तास्रमेहनुत्॥ त्रिदोषतृष्णाहृद्रोगकण्डूकुष्ठज्वरापहा ॥ २२९ ॥

मूर्वा, मधुरसा, देवी, मोरटा, तेजनी, स्रुवा, मधूलिका मधुश्रेणी, गोकर्णी, पीलुपर्णी, (धनुर्माला, धनुर्गुणा, कर्म्मकरी, धनुःशाखा, श्रवा, सुरंगिका, देवश्रेणी, पृथक्त्वचा, मधुस्रवा, अतिरसा, पीलुपर्णिका, दिव्यलता, ज्वलिनी और गोपवल्ली) ये मूर्वाके सस्कृत नाम हैं ॥

हि०—मूर्वा, चुरनहार, मुरहरी । बं०—मूर्वा, मुर्हर । म०—मोरवेल । गु०—मोरवेल । क०—मुहुराशि । तै०—सांगा । ता०—मरुल । लै०—क्लिमेटिसट्राइलोवा । Clematistriloba ॥ मूर्वा—दस्तावर, भारी, स्वादिष्ठ, कडवी और पित्त, रुधिरविकार, प्रमेह, तीनों दोष, तृषा, हृदयरोग, खुजली, कोढ तथा ज्वरको नष्ट करे है ॥ ॥ २२८ ॥ २२९ ॥

विवरण ।

मूर्वाकी बेल वनमें होती है, इसमें छोटे २ और मधुर मधुर फल लगते हैं पत्ते, घीकुवारकी समान चिकने और कुछ मोटे २ होते हैं ।

अथ काकमाची [मकोय] ।

काकमाची ध्वांक्षमाची काकाह्वा चैव वायसी ॥ काकमाची त्रिदोषघ्नी स्निग्धोष्णा स्वरशुक्रदा ॥२३०॥ तिक्ता रसायनी शोथकुष्ठार्शोज्वरमेहजित् ॥ कटुर्नेत्रहिता हिक्काच्छर्दिहृद्रोगनाशिनी ॥ २३१ ॥

काकमाची, ध्वाक्षमाची, काकाह्वा, वायसी, (घनाघना, काकमाचिका, काका, वायसाह्वा, सर्वतिक्ता, बहुफला कटुफला, रसायनी, गुच्छफला, काकमाता, स्वादुपाका, सुन्दरी, तिक्तिका, बहुतिक्ता, जघनेफला और काकिनी) ये मकोयके सस्कृत नाम हैं ॥

हि०—मकोय, कवैयानी, केवैया । बं०—काकमाचीर गुडकामाइ । म०—लघुकावळी । गु०—पीलुडीनीजात । क०—कावईकाके । रोवातरीख । अ०—एनवुस्सालव । इं०—नाइट सेड Seed Nite ल०—सोलेनम् नाइग्रम् Solanum Nigrum ॥ मकोय—स्निग्ध, गरम, स्वरको उत्तम करनेवाली, वीर्यको बढानेवाली, कडवी, रसायनरूप, चरपरी, नेत्रोंको हितकारी और तीनों दोष, सूजन, कोढ, बवासीर, ज्वर, प्रमेह, हिचकी, वमन तथा हृदय रोग विनाशक है ॥ २३० ॥ २३१ ॥

विवरण।

मकोयके छोटे २ क्षुप बागोंमें विनाही बोये बहुत हो-जाते हैं. इसके पत्ते लाल मिर्चके समान होते हैं. फूल सफेद और बहुत छोटे २ होते हैं, फल काले रंगके मकोईके समान होते हैं और गुच्छोंमें लगते है ॥

काकनासा [कौआठोढी]।

काकनासा तु काकाङ्गी काकतुण्डफला च सा ॥ काकनासा कषायोष्णा कटुका रसपाकयोः॥कफघ्नी वामनी तिक्ता शोथार्शःश्वित्रकुष्ठहृत् ॥ २३२ ॥

काकनासा, काकाङ्गी, काकतुण्डफला, (ध्वांक्षनासा, काकतुण्डी, वायसी, सुरंगी, ध्वाक्षतुण्डा, सुनासिका, वायसाह्वा, ध्वाक्षनखी, काकाक्षी, ध्वाक्षनासिका, काकप्राणा, काकश्मश्रु, चोरस्नायु और शिरोबाला) ये कौआठोढीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कौआठोढी । बं०–केउयाठूटी, काकटूटी । म०–थोरश्वेत, कावली । क०–हिरीयकागे । तै०–वैखुम-सन्दिचेट्टु । गु०–काकनासा । लै०–जिमुर्दमा सिल्वेस्टि Gımurdma Sylvstre ॥ कौआठोढी–कसैली, गरम, रस तथा पाकमें चरपरी, वमनकारक, कडवी और कफ तथा श्वेतकोढको नष्ट करै है ॥ २३२ ॥

अथ काकजंघा [मसी]।

काकजंघा नदीकान्ता काकतिक्ता सुलोमशा॥पारावतपदी दासी काका चापि प्रकीर्त्तिता ॥ २३३ ॥ काकजंघा हिमा तिक्ता कषाया कफपित्तजित्॥निहन्ति ज्वरपित्तास्रज्वरकण्डूविषक्रिमीन् ॥ २३४ ॥

काकजंघा, नदीकान्ता, काकतिक्ता, सुलोमशा, पारावतपदी, दासी, काका, (काकाह्वी, काकांगी, काकनासिका, काककला, कृषीवल, काकांगा, ध्वाक्षजंघा, काकाह्वा और सुरंगी) ये काकजंघाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–काकजंघा, मसी, चकगोनी । बं०–काकजंघा, केउया ठोडा । म०–कागाचें झाड । गु०–अघेडी । क०–जिरीचिलेच । तै०–नालादुच्चीणीके । लै०–हैंपलेथिस हैंटेक्युलेरीस Hamp Lathıs Hanteculeris॥ काकजंघा–शीतल, कडवी, कसैली और कफ, पित्त, ज्वर, रुधिरविकार, खुजली, विष तथा कृमिको नष्ट करै हैं ॥ २३३ ॥ २३४ ॥

विवरण।

काकजंघाके क्षुप जंगलमें और वनोंमें बहुत होते हैं. पत्ते लम्बे लम्बे होते हैं, परन्तु वह हरे और काले रंगके होते हैं. फूल छोटे छोटे और काले रंगके होतेहैं, पत्तोंपर खरखरापन और बारीक २ रुआँसा होताहै, शाखा गाँठदार होती हैं और उनमें थोडी थोडी दूरपर ऐंडा बैंडापन होताहै ॥

अथ नागपुष्पी।

नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागिनी रामदूतिका॥ नागिनी रोचनी तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कफपित्तनुत् ॥ विनिहन्ति विषं शूलं योनिदोषवमिक्रिमीन् ॥ २३५ ॥

नागपुष्पी, श्वेतपुष्पा, नागिनी और रामदूतिका ये नागपुष्पीके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–नागपुष्पी । म०–नागाली ॥

नागपुष्पी–रेचक, कडवी, तीक्ष्ण, गरम और कफ, पित्त, विष, शूल, योनिरोग, वमन तथा कृमिको नष्ट करै है ॥ २३५ ॥

विवरण।

नागपुष्पीकी बेल चलती है, वनके वृक्षोंपर फैलजाती है, फूल सफेद और काले होतेहैं, एक एक शाखामें एक एक पत्ता होता है, इसके नीचे कन्द होताहै ॥

अथ मेषशृंगी [मेढासींगी]।

मेषशृंगी विषाणी स्यान्मेषवल्ल्यजशृंगिका ॥ मेषशृंगी रसे तिक्ता वातला श्वासकासहृत् ॥२३६॥ रूक्षा पाके कटुस्तिक्ता व्रणश्लेष्माक्षिशूलनुत् ॥ मेषशृंगीफलं तिक्तं कुष्ठमेहकफप्रणुत् ॥ दीपनं स्रंसनं कासक्रिमिव्रणविषापहम् ॥ २३७ ॥

मेषशृंगी, विषाणी, मेषवल्ली, अजशृंगिका, (नन्दीवृक्ष, चक्षुर्बहल, मेढ्रशिंगी, ग्रहद्रुमा, बहलचक्षु, मेषविषाणिका, विषाणिका, अजश्रृंगी, चक्रश्रेणी, अजगन्धिनी, मौर्वी, नेत्रौषधि, आवर्तिनी, वर्तिका, सर्पदंष्ट्रिका, तिक्तदुग्धा, पुत्रशृंगी, कर्णिका और अक्षिभेषज) ये मेढासिंगीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–मेढासिंगी । बं०–मेडासिंगे, गाडलशिंगी। म०–मडफळी । गु०–मरडाशिंगी । क०–उरियमर । फा०–किस्त । अ०–चर्किस्त । इं०–स्क्रूवट्री Screwtree

लै०-हेलीक्टीसूइतोरा Helicteris Isora ॥ मेढाशिगी-रसमें कडवी, वातकारक, रूखी, पाकमें चरपरी और श्वास, खाँसी, व्रण, कफ, तथा नेत्रके शूलको नष्ट करै है । मेढाशिगीका फल-कडवा, अग्निप्रदीपक, स्रसन और कोढ, प्रमेह, कफ, खाँसी, कृमि, व्रण तथा विष विनाशक है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

विवरण ।

मेढासिगीका वडा वृक्ष होताहै, पत्ते फालसेके समान और फूल लाल होते हैं, इसकी फली गोल और लम्बी होती है, इसके वृक्ष प्रायः पर्वतोपर वहुत होते हैं ॥

अथ हंसपदी [हंसराज] ।

हंसपादी हंसपदी कीटमाता त्रिपादिका॥ हंसपादी गुरुः शीता हन्ति रक्तविषव्रणान् ॥ विसर्पदाहातीसारलूताभूताग्निरोहिणीः ॥ २३८ ॥

हसपादी, हसपदी, कीटमाता, त्रिपादिका, (त्रिपादी, मधुस्रवा, सुवहा, हसवती, गोधाघ्रि, गोधापदिका, त्रिदला, चित्रपदा, हसपदिका, हसाघ्रि, रक्तपादी, त्रिपदा, घृतमण्डलिका, विश्वग्रन्थि, त्रिपदिका, त्रिपदी, कीटमारी, कर्णाटी, ताम्रपादी, विक्रान्ता, व्रह्मादनी, पदागी, शीतागी, सुतपादिका, सचारिणी, पदिका प्रह्लादी, कीरपादिका, धार्तराष्ट्रपदी, गोधापदी और त्रिपादिका) ये हसपदीके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-हंसपदी, हसपगी, हसराज । व०-गोयालेलता । गु०हसराज । म०-लाल लाजाळू । क०-नविलडि । तै०-हसपादमु । फा०-परस्यागान । अ०-शारुलजीन । इ०-मडेनहेर Maiden Hair लै०-एडिएण्टम ल्युन्युलेटम Adiantum lunulatum ॥ हसपदी-भारी, शीतल और रुधिरविकार, विष, व्रण, विसर्प, दाह, अतिसार, लूता, भूतवाधा और अग्निरोहिणीको नष्ट करै है ॥ २३८ ॥

विवरण ।

हसपदीके क्षुप जलाशयके समीप, अत्यन्त शीतल थानोमे होते हैं, विशेष करके यह कुएँ, वावडी इत्यादि स्थानोमे वहुत होते हैं; इसको इस देशमें हंसराज कहते है; इसकी जड लाल और कोमल होतीहै, पत्ते हरे रगके वहुत छोटे छोटे होते हैं ॥

अथ सोमलता ।

सोमवल्ली सोमलता सोमक्षीरी द्विजप्रिया ॥ सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसायनी ॥ २३९ ॥

सोमवल्ली, सोमलता, सोमक्षीरी, द्विजप्रिया, (चन्द्रवल्लरी, इन्दुलेखा, सोमवल्लिका, महागुल्मा, यज्ञश्रेष्ठा, धनुर्लता, सोमार्हा, गुल्मवल्ली, यज्ञवल्ली, सोमक्षीरा, सोमा और यज्ञाङ्गा) ये सोमलताके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी-सोमवल्ली, सोमलता । व०-सोमलता म०-थोर सोमवल्ली । गुजराती-सोमलता । तै०-पल्लीटीगे । लै०-सारकोष्टिमा, त्रेविस्टिगम Sarcostemma Brevistigma ॥ सोमलता-त्रिदोषनाशक, चरपरी, कडवी और रसायन है ॥ २३९ ॥

विवरण ।

सोमलता-थूहरकी जो कई प्रकारकी जातिहैं उसमेंसे सोमलता भी एक भाँतिकी वेल है, इसमें शुक्ल पक्षके दिनमे क्रमवार प्रतिपदासे लेकर पूर्णमासीतक एक पत्ता प्रतिवासर निकलताहै, पन्द्रह तिथियोंमे पन्द्रह पत्ते होजातेहैं; फिर कृष्णपक्षकी परिवासे लेकर अमावस्यातक एक पत्ता प्रतिदिन गिरजाताहै, पद्रह दिनमे एक पत्ता नहीं रहता, इस लताका चन्द्रमासे अधिक स्नेह है इसी कारण इस अद्भुत लताका नाम सोमलता है ॥

अथ आकाशवल्ली [अमरवेल] ।

आकाशवल्ली तु बुधैः कथिताऽमरवल्लरी॥ खवल्ली ग्राहिणी तिक्ता पिच्छिलाऽक्ष्यामयापहा ॥ तुवराऽग्निकरी हृद्या पित्तश्लेष्मामनाशिनी ॥ २४० ॥

आकाशवल्ली, अमरवल्लरी, खवल्ली, (दु.स्पर्शा और व्योमवल्लिका) ये आकाशवेलके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-आकाशवेल, अमरवेल । व-आलोकलता, आकाशवेल । म०-आकाशवेल, अतरवेल । गु०-अमरवेल । तै०-इन्द्रजाल । अ०-अफतिमून । लै०-कसुकटारीफ्लेक्सा Cuscutareflexa ॥ आकाशवेल-ग्राही, कडवी, पिच्छिल, नेत्ररोगनाशक, कसैली, अग्निकारक, हृदयको हितकारी और पित्त, कफ तथा आमको नष्ट करै है ॥ २४० ॥

विवरण।

आकाशवेल डोरेकी समान कीकर बेर अडूसे इत्यादि वृक्षोपर फैलीहुई होतीहै, रंग पीला और फूल सफेद २ आतेहै, इसकी जड कही नही होती, इसी कारण इसका नाम आकाशवेलहै ॥

अथ पातालगरुडी।

छिलिहिण्टो महामूलः पातालगरुडाह्वयः॥ छिलिहिण्टःपरं वृष्यःकफघ्नः पवनापहः २४१

छिलिहिण्ट, महामूल, पातालगरुड, (वत्सादनी, तिक्ताङ्गा, मोचकाभिधा, तार्क्षी, सौपर्णी, गारुडी, दीर्घकाण्डा, दृढकाण्डा, महाबला, दीर्घवल्ली और दृढलता) ये पातालगरुडीके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—पातालगरुडी, छिरेटा । ब०—शिलिन्दा । म०—गरुडवेल, भूयपाड । गु०—पातालगरुडी, वेवडीओपल । फा०—फरीदबुटी । तै०—दूसरतोगे । लै०—कोक्युलस् विलोसस् Coculus Villosus ॥

पातालगरुडी—वीर्यको अधिक वढानेवाली और कफ तथा वायुको नष्ट करनेवाली है ॥ २४१ ॥

विवरण।

पातालगरुडी अर्थात् छिरेंटीकी वेल होतीहै, ये बहुत मोटी और दृढ होतीहै इसके तन्तु भी बहुत पक्के होतेहैं, इसके फल छोटे २ और गुच्छोमे लगते हैं तरुण अवस्थामे हरे और पकनेपर काले पडजातेहैं ॥

अथ वन्दा।

वन्दा वृक्षादनी वृक्षभक्ष्या वृक्षरुहापि च ॥ वन्दाकः स्याद्धिमस्तिक्तः कषायो मधुरो रसे ॥ माङ्गल्यः कफवातास्ररक्षोव्रणविषापहः ॥ २४२ ॥

वन्दा, वृक्षादनी, वृक्षभक्ष्या, वृक्षरुहा, (सेव्या, परपुष्टा, पराश्रया, जीवन्तिका, काकुरुहा, वन्दाका, शेखरी, वल्कक, नीलवल्ली, वन्दाकी, परवासिका, वशिनी, पुत्रिणी, वन्ध्या, पादपरुहा, शिखरी, तरुरोहिणी, वृक्षादनी, कामवृक्ष, शेखरी, केशरूपा, तरुरुहा, तरुस्था, गन्धमादनी, कामिनी, तरुभुक्,श्यामा,उपदी, नीलवर्णा,वन्दाकी, गन्धमादनी और रोहिणी) ये वॉदाके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी—वदा, वंदाल, वादा । व०—परगाछा, वान्दडा । म०—वादागुल । गु०—गुन्दी । क०—वदणिके । तै०—वाजिनीके । लै०—लोरेन्थस लोगिफोलियुस् Loranthus Longifolius ॥

वॉदा—शीतल, कडवा, कसैला, मधुर, मगलकारक और कफ, वात, रुधिरविकार, व्रण, तथा विषविनाशक है ॥ २४२ ॥

विवरण।

वन्दा विविधप्रकारके वृक्षोपर वृक्षसरीका होजाताहै, उसकी जड अलग नहीं होती, वृक्षहीमे उत्पन्न होजाती है, कोई कोई ऐसा कहतेहे कि, काकादिक कोई पक्षी किसीवृक्षकी शाखालाकर वृक्षपर रखदेता है, उसीमे पत्ते निकल आतेहैं, और वही फल फूल कर वन्दा होताहै, किसीमे लाल, किसीमे पीला, किसीमे सफेद और किसीमे नीला फूल होता है, और पत्ते भी भिन्नभिन्न जातिके होतेहैं ॥

अथ वटपत्री।

वटपत्री तु कथिता मोहिनी रेचनी बुधैः॥ वटपत्री कषायोष्णा योनिमूत्रगदापहा २४३

वटपत्री, (ऐरावती, इरावती, इनानी, गोधावती, श्यामा और खट्वाङ्गनासिका)यह वटपत्रीके सस्कृत नामहै ॥

हिन्दी—बडपत्री, वटपत्री । म०—वटपत्री । व०—वड, पातारकुचा । तै०—पिण्डि । इ०—लैकोपेडियम Laicopedium ॥

वटपत्री—मोहकारक, रेचन, कसैली, गरम और योनिरोग तथा मूत्ररोग नाशक है ॥ २४३ ॥

विवरण।

वटपत्री पाषाणभेदहीका भेद है इसके पत्ते बडके समान होतेहै, इसीसे इसका नाम वटपत्री है ॥

अथ हिंगुपत्री।

हिंगुपत्री तु कवरी पृथ्वीका पृथुका पृथुः॥ हिंगुपत्री भवेद्रुच्या तीक्ष्णोक्ष्णा पाचनी कटुः ॥ हृद्वस्तिरुग्विबन्धार्शःश्लेष्मगुल्मानिलापहा ॥ २४४ ॥

हिंगुपत्री, कवरी, पृथ्वीका, पृथुका, पृथु, (त्वक्पत्री, पृथुला, वाष्पिका, वाष्पीका, वाष्पी, दीर्घिका, दारुपत्रिका. कारवी, करवी, पृथ्वी, वाप्यका, वाप्या, पत्री, तन्वी, दारुपत्री और विल्वा) ये हिंगुपत्री सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—हिंगुपत्री । व०—रांदुनी । म०—वाफळी । गु०—वहुफली ॥ हिंगुपत्री—रुचिकारक,तीक्ष्ण, गरम,पाचन

और हृदयरोग, बस्तिरोग, मलविबन्ध, बवासीर, कफ, गुल्म तथा वात विनाशक है ॥ २४४ ॥

विवरण ।

हिंगुपत्रीके पत्तोंके गुण और नाम हींगके पत्तोंसे मिलते हैं जैसे कि. हींगके पत्तोंको संस्कृतमें कवरी और कवरी कहतेहैं. सो इसको भी कवरी और कवरी कहतेहैं गुणभी हींगके मिलतेहैं ॥

अथ वंशपत्री ।

वंशपत्री वेणुपत्री पिण्डा हिंगुशिवाटिका ॥ हिंगुपत्रीगुणा विज्ञैर्वंशपत्री च कीर्तिता ॥ २४५ ॥

वंशपत्री, वेणुपत्री, पिण्डा, हिंगुशिवाटिका, (वंशदला और नर्तकी) ये वंशपत्रीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–वंशपत्री. डीकामाली । म०–डीकेमाली । गु०–डीकामाली । क०–... । तै०–चीमहींगवा । ... । इं०–डीकमालीगम, गार्डीनिया Dikamallegam Gardinia लै०–... ल्युसिडा Gardinialucida ॥

वंशपत्रीके गुण–हिंगुपत्रीके सदृश्य जानने ॥२४५॥

विवरण ।

डीकामालीका वृक्ष मध्यम आकारका होताहै. गुजरात देशमें इसके वृक्ष बहुत होतेहैं; वहां इसको मालती कहते हैं ... समान होतेहैं, फूल सफेद होतेहैं, फल ... होतेहैं, इस वृक्षमें गोंदको डिकामाली कहतेहैं ॥

अथ मत्स्याक्षी [मछेछी] ।

मत्स्याक्षी वाह्लिका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनीति च ॥ मत्स्याक्षी ग्राहिणी शीता कुष्ठपित्तकफास्रजित ॥ लघुस्तिक्ता कषाया च स्वाद्वी कटुविपाकिनी ॥ २४६ ॥

विवरण ।

मत्स्याक्षी अर्थात् मछेछीके क्षुप छोटे छोटे होतेहैं. पत्ते उडदके पत्तोंके समान होतेहैं फूल सफेद और पीले रंगके होतेहै, इसमें मछलीके समान गन्ध आतीहै ॥

अथ सर्पाक्षी [सरहटी] ।

सर्पाक्षी स्यात्तु गण्डाली तथा नाडीकपालकः ॥ सर्पाक्षी कटुका तिक्ता सोष्णा कृमिनिकृन्तनी ॥ वृश्चिकोन्दुरसर्पाणां विषघ्नी व्रणरोपिणी ॥ २४७ ॥

सर्पाक्षी, गण्डाली और. नाडीकपालक ये सर्पाक्षीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सरहटी, गटनी ॥ सर्पाक्षी–चरपरी, कडवी, गरम, व्रणरोपक और कृमिरोग, बीछू, मूसा तथा सर्प; इनके विषको नष्ट करेहै ॥ २४७ ॥

विवरण ।

सर्पाक्षी एक सरफोंकेका भेद है. सरफोंकेमें और इसमें किसीप्रकारका भेद नहीं पाया जाता ॥

अथ शंखपुष्पी ।

शङ्खपुष्पी तु शङ्खाह्वा माङ्गल्यकुसुमापि च ॥ शंखपुष्पी सरा मेध्या वृष्या मानसरोगहृत ॥ २४८ ॥ रसायनी कषायोष्णा स्मृतिकान्तिबलाग्निदा ॥ दोषापस्मारभूताश्रीकुष्ठकृमिविषप्रणुत् ॥ २४९ ॥

शंखपुष्पी, शंखाह्वा, माङ्गल्यकुसुमा. (चण्डा, सुपुष्पी, कम्बुमालिनी, पीतपुष्पी, कम्बुपुष्पा मलविनाशिनी, किरीटी. शंखकुसुमा. भूल्या. शंखमालिनी कम्बुपुष्पी, वनमालिनी, रतग, ... रक्तपुष्पी, रक्तपुष्पिका) ये शंखपुष्पीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-शंखाहुली, शंखपुष्पी, कौडिल्ला । बं०–शंखपुष्पी । म०–शंखावली । गु०–शंखावली । क०–शंखपुष्पी । लै०– इवोल् व्युलस् इरेक्टा Ebolvulaserecta

शंखाहुली–दस्तावर, मेधाको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, मानसिकरोगोंको नष्ट करनेवाली, रसायन, कसैली, गरम, स्मृति, कान्ति, बल तथा अग्निको देनेवाली और दोष, अपस्मार, भूत, अलक्ष्मी, कोढ, कृमि, तथा विषको नष्ट करेहै ॥ २४८ ॥ २४९ ॥

विवरण।

शंखपुष्पी अर्थात् शखाहूलीका छत्ता प्रायः ऊपर भूमिमे होताहै. पत्ते छोटे छोटे धूसररंगके घासके समान होतेहैं, फूल बहुत छोटे सफेद रगके शखके सदृश होते हैं, सफेद फूलवालीको सफेद शखाहूली कहतेहैं लाल फूलवालीको लाल शखाहूली कहतेहैं और नीले फूलवाली शंखाहूलीको विष्णुक्रान्ता कहतेहैं ॥

अथ अर्कपुष्पी।

अर्कपुष्पी क्रूरकर्मा पयस्या जलकामुका॥ अर्कपुष्पी कृमिश्लेष्ममेहपित्तविकारजित् ॥ २५० ॥

अर्कपुष्पी, क्रूरकर्मा, पयस्या, जलकामुका (सूर्यवल्ली, कुटुम्बिनी, क्षीरिणी, वक्रशल्या, दुराधर्पा, सिरिण्टिका, शीना, प्रहरकुटकी, शीतला, जलेरुहा, सितपर्णी, शीतपर्णी, और अर्कपुष्पिका) ये अर्कपुष्पीके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—अर्कपुष्पी, अन्धाहुली। बं०—वडक्षीरुई। म०—सूर्यफूलवल्ली। गु०—सुरजमुखी। लै०—माईमोसासेन सिटाइवा Mimosa Sensitiva॥ अर्कपुष्पी—कृमि, कफ, प्रमेह तथा पित्तविकारको नष्ट करैहै ॥ २५० ॥

विवरण।

अर्कपुष्पी जीवन्तीहीका भेद है, इसकी वेल नागरवेलके समान होतीहै, पत्ते गिलोयके तुल्य छोटे छोटे होतेहै. फूल सूर्यमुखीके समान गोल आताहै, और इसमे दूध निकलताहै ॥

अथ लज्जालुः।

लज्जालुः स्याच्छमीपत्रा समंगा जलकारिका॥रक्तपादी नमस्कारी नाम्ना खदिरिकेत्यपि ॥ २५१ ॥ लज्जालुः शीतला तिक्ता कषाया कफपित्तजित् ॥ रक्तपित्तमतीसारं योनिरोगान्विनाशयेत् ॥ २५२ ॥

लज्जालु, शमीपत्रा, समगा, जलकारिका, रक्तपादी, नमस्कारी, खदिरका, (कन्दिरी, खदिरपत्रिका, सकोचिनी, प्रसारिणी, सप्तपर्णी, खदिरी, गडमालिका, लज्जा, लज्जिका, स्पर्शलज्जा, असूरोधिनी, रक्तमूला, ताम्रमूला, स्वगुप्ता, महाभीता और वशिनी। ये छुईमुईके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०—लज्जावन्ती, शर्मीनी, छुईमुई, लजारू। व०—लज्जावती। म०—लाजाळु, लाजरी। गु०—रिसामणी। क०—मुदीदरे मुरुटव। लै०—माईमोसा सेनसिटाईवा-Mimosa Sensitaiva ॥ लज्जावन्ती—शीतल, चरपरी कसैली और कफ, पित्त, रक्तपित्त, अतिसार तथा योनिरोग नाशक है ॥ २५१ ॥ २५२ ॥

विवरण।

लज्जावन्ती अर्थात् छुईमुईके क्षुप वेलके समान होते है, पत्ते छौकर अथवा खैरके समान होतेहैं, फूल, गुलाबी नीले मिश्रित रगके होतेहैं, इसकी जड लाल होतीहै, इसको स्पर्श करनेसे ये लज्जाके मारे सर्माकर सुकड जाती है, पश्चात् विस्तृत होजातीहै. यह दो प्रकारकी होती है, एक काटेवाली और दूसरी विना काँटेकी हाथके लगतेही सुकड सुकडाकर नीचेको झुक जाती है. इसीलिये इसका नाम छुईमुई लज्जावन्ती रक्खा है ॥

अलम्बुषा (लज्जालुभेदः)।

अलम्बुषा खरत्वक् च तथा मेदोगला स्मृता ॥ अलम्बुषा लघुः स्वादुः कृमिपित्तकफापहा ॥ २५३ ॥

अलम्बुषा, खरत्वक् और मेदोगला, ये अलम्बुषाके सस्कृत नाम है ॥

अलम्बुषा (लज्जालुका भेद) हलकी, मधुर और कृमि, पित्त तथा कफको नष्ट करैहै ॥ २५३ ॥

अथ दुग्धिका [दुद्धी]।

दुग्धिका स्वादुपर्णी स्यात्क्षीरा विक्षीरिणी तथा ॥ दुग्धिकोष्णा गुरू रूक्षा वातला गर्भकारिणी ॥ २५४ ॥ स्वादुक्षीरा कटुस्तिक्ता सृष्टमूत्रा मलापहा ॥ स्वादुर्विष्टम्भिनी वृष्या कफकुष्ठक्रिमिप्रणुत् ॥२५५॥

दुग्धिका, स्वादुपर्णी, क्षीरा, विक्षीरिणी (दुग्धी, क्षीरात्मिका, क्षीरी, क्षीरावी, मरुद्भवा, क्षीरिणी, क्षीराविका, ग्राहिणी, कच्छुरा और ताम्रमूला) ये दुद्धीके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी—दुद्धी, दूधिया। बं०—दुधि, दुग्धा, क्षीरुद। म०—लघुदुधी, थोरदुधी। गु०—नागार्जुनी, दुधेली। क०—मरिजवणीगे। तै०—पिलपालचेट्टु। फा०—निगाव्रत। लै०—युफोर्वियाहिर्टा Euphorbia Hirta युफाविल्फोरा Evparviflora युटाईमिफोलिया Euthymefolia ॥ दुद्धी—गरम, भारी, रूक्ष, वातकारक, गर्भ-

दायक, स्वादिष्ठदूधवाली, चरपरी, कडवी, मूत्र लानेवाली, मलको निकालनेवाली, मधुर, विष्टम्भजनक वीर्यवर्द्धक और कफ कोढ तथा कृमिको नष्ट करैहै ॥ २५४ ॥ २५५ ॥

विवरण ।

दुद्धीका क्षुप छत्तासा होताहै ऊपर कोकम उठताहै खेतिहीमे फैलताहै. दुद्धी तीन प्रकारकी होतीहै एक नोकदार लालपत्तोकी, एक गोल पत्तोकी और एक मूगके दानोंके समान छोटे छोटे पत्तोंकी होतीहै, तीनो प्रकारकी दुद्धीमें दूध निकलताहै ॥

अथ भूम्यामलकः [भूआमला] ।

भूम्यामलकिका प्रोक्ता शिवा तामलकीति च ॥ बहुपत्रा बहुफला बहुवीर्या जटापि च ॥ २५६ ॥ भूधात्री वातकृत्तिक्ता कषाया मधुरा हिमा ॥ पिपासाकासपित्तास्रकफकण्डूक्षतापहा ॥ २५७ ॥

भूम्यामलकिका, शिवा, तामलकी, बहुपत्रा, बहुफला, बहुवीर्या, जटा, (भूम्यामलकी, भूम्यामली, ताली, क्षेत्रामली, झारिका, बहुपुष्पी, अध्यण्डा, ताली, अजटा, सूक्ष्मफला, क्षेत्रामलकी, वितुन्नका, अफला, अमला, अजुटा, झटामला, अमलजुटा, तमाली, तमालिका, उच्चट, दृढपादी, वितुन्ना, वितुन्निका, भूधात्री, चारटी, बहुपत्रिका, अहिमपदा, वीरा, विश्वपर्णी, हिमालया, अरुहा, भूपर्वा, दलस्पर्शिनी, बहुपुत्रा, सूक्ष्मदला, दृढपादा, अमली, तमालिनी, पुत्रश्रेणिका और हिलोलिका) ये भूआमलेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–भूँईआमला, भूमिआंवरा । बं०–भूँई आमला। म०–भूयआवळी । क०–आर्रनेल्लि । तैं०–नेलाडसीरीके गु०–भोंआमली । लै०–फाईलेथन्स निरूरी Phyllanthus niruri ॥ भूँईआमला–वातकारक, कडवा, कसैला मधुर, शीतल और तृषा खासी पित्त, रुधिरविकार, कफ, खुजली तथा क्षत नाशक है ॥ २५६ ॥ २५७ ॥

विवरण ।

भूँईआमलेके छोटे छोटे क्षुप होतेहैं. पत्ते छोटे छोटे होतेहैं, पत्तोंके नीचे राईके दानेके समान फूलोंकी शाखा होतीहैं ॥

अथ ब्राह्मी ब्रह्ममण्डूकी च ।

ब्राह्मी कपोतवंका च सोमवल्ली सरस्वती॥ ॥ २५८ ॥ मण्डूकपर्णी माण्डूकी त्वाष्ट्री दिव्या महौषधी ॥ ब्राह्मी हिमा सरा तिक्ता लघुर्मेध्या च शीतला ॥ २५९ ॥ कषाया मधुरा स्वादुपाकायुष्या रसायनी ॥ स्वर्या स्मृतिप्रदा कुष्ठपाण्डुमेहास्रकासजित् ॥ विषशोथज्वरहरी तद्वन्मण्डूकपर्णिनी ॥ २६० ॥

ब्राह्मी, कपोतवंका, सोमवल्ली, सरस्वती, (वयःस्था, मत्स्याक्षी, सुरसा, ब्रह्मचारिणी, सोमवल्लरी, सोम्या, सुरश्रेष्ठा सुवर्चला, कपोतवेगा, वैधात्री, दिव्यतेजा, महौषधि, स्वायम्भुवी, सौम्यलता, सुरेष्टा, ब्रह्मकन्यका, मण्डूकमाता, मण्डूकी, वीरा, भारती, वरा, परमेष्ठिनी, दिव्या और शारदा) ये ब्राह्मीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–ब्राह्मी, बरमी । बं०–ब्रह्मीशाक, । म०–ब्राह्मी। क०–औदेलग । गु०–ब्राह्मी । ता०–वीमी । तैं०–शाम्रनीचेट्टु । फा०–जरनव । इं०–इण्डियन फेनीवर्थ Indian Pennywort लै०–हाईड्रोकोटाइलएश्याटिका Hydro-cotyle Assiatica ॥ मण्डूकपर्णी, माडूकी, त्वाष्ट्री, दिव्या, महौषधी, (मण्डूकी, भेकी, मडूलपर्णिका, ब्रह्ममडूकी, सुप्रिया और दर्दुच्छदा) ये ब्रह्ममडूकीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–ब्रह्ममांडूकी । बं०–अधविर्णी, थालकुनि। गु०–खडभरामी । तैं०–मण्डूकब्रह्मी । ता०–वल्लरी केरी ॥ ब्राह्मी–शीतल, दस्तावर, कडवी, हलकी, मेधाको हितकारी, कसैली, मधुर, पाकमें मधुर, आयुको बढानेवाली, रसायन, स्वरको हितकारी, स्मरणशक्ति दायक और कोढ, पाडु, प्रमेह, रुधिरविकार, खांसी, विष, सूजन तथा ज्वरको नष्ट करैहै, मण्डूकपर्णीके भी येही गुण है ॥ २५८–२६० ॥

विवरण ।

ब्राह्मीके क्षुपका छत्तासा प्रायः सजलभूमि अथवा जलाशयके समीपकी भूमिमे होताहै. पत्ते छोटे छोटे गोल एक ओरसे खुलेहुए होतेहैं, दूसरी ब्रह्ममण्डूकी होतीहै, उसके छोटे पत्ते होतेहैं ॥

अथ गोमा [गूमा] ।

द्रोणा च द्रोणपुष्पी च फलेपुष्पा च कीर्तिता ॥ द्रोणपुष्पी गुरुः स्वादू रूक्षोष्णा वातपित्तकृत् ॥ २६१ ॥ सतीक्ष्णलवणा

स्वादुपाका कटुी च भेदिनी ॥ कफामका-मलाशोथतमकश्वासजन्तुजित् ॥२६२॥

द्रोणा, द्रोणपुष्पी, फलेपुष्पा, (श्वपत्री, कुम्भयोनि, कुरुम्बिका, चित्राक्षुप, कुरुम्बा, सुपुष्पी, चित्रपत्रिका, श्वसनक्, पालिन्दी, कुम्भयोनिका, क्षत्राणी, छत्रका, कौंडिन्य और वृक्षसारक) ये गूमाके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—गूमा, गोमा । व०—द्रोणपुष्पी । म०—कुम्भा, तुम्बा । गु०—कुबो । क०—कुम्भीवृक्ष । तै०—गयसुचेट्टु। लै०—ल्युकासस फेलोटस् Leucas Ceppalotus ॥ गूमा—भारी, मधुर, रूखी, गरम, तीक्ष्ण, खारी, पाकमें मधुर, चरपरी, दस्तावर और वात, पित्त, कफ, आम, कामला, सूजन, तमकश्वास और कृमिको नष्ट करैहै ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

विवरण।

गूमेके क्षुप जगलमे बहुत होते हैं, गुच्छे गॉठ गॉठमें होते हैं, उन गुच्छोंमें सफेद फूल आते हैं, इसके भीतर बीज होतेहैं और फलके ऊपर दो पत्ते होतेहैं ॥

अथ सुवर्चला [हुलहुल]।

सुवर्चला सूर्यभक्ता वरदा बदरापि च ॥ सूर्यावर्त्ता रविप्रीताऽपरा ब्रह्मसुदुर्लभा ॥ ॥ २६३ ॥ सुवर्चला हिमा रूक्षा स्वादुपाका सरा गुरुः॥ अपित्तला कटुः क्षारा विष्टम्भकफवातजित् ॥ २६४ ॥ अन्या तिक्ता कषायोष्णा सरा रूक्षा लघुः कटुः॥ निहन्ति कफपित्तास्रश्वासकासारुचिज्वरान् ॥ विस्फोटकुष्ठमेहास्रयोनिरुक्कृमिपाण्डुताः ॥ २६५

सुवर्चला, सूर्यभक्ता, वरदा, वदरा, सूर्यावर्ता, रविप्रीता, (आदित्यभक्ता, अर्कभक्ता, सूर्यलता, अर्ककान्ता, सुरसम्भवा, सौरि, सुतेजा, अर्कहिता, रवीष्टा,सत्यनाम्नी, मार्तण्डवल्लभा' विकान्ता और भास्करेष्टा,) ये हुरहुरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—हुरहुर, हुलहुल । व०—हुडहुडे, वनगल्ते । म०—कानकोडीहुरहुरे । गु०—तलवणी । क०—नीलवणी । तै०—सूर्यकान्तिपु । फा०—गुले आफताब परस्त । अ०—अदरमून । इ०—सन्फ्लावर । लै०—जिनेन्ड्रोप् सीसपेटाफिला Gynandropsis Pentaphylla॥हुलहुल—शीतल, रूखी,पाकमे मधुर, दस्तावर, भारी, पित्तकारक नही, चरपरी, खारी और मलबंध, कफ तथा वात विनाशक है ॥

ब्रह्मसोंचली--कडवी, कसैली, गरम, दस्तावर, रूखी, हलकी, चरपरी और कफ, पित्त, रुधिरविकार, श्वास, खासी, अरुचि, ज्वर, विस्फोट, कुष्ठ, प्रमेह, योनिरोग, कृमि, तथा पाण्डुताको नष्ट करैहै ॥ २६३--२६५ ॥

विवरण।

ब्रह्मसुवर्चला अर्थात् हुरहुरकी बेल तथा क्षुप होतेहैं, ये विशेष करके बागोमें बोये जातेहैं, प्रायः इसपर सूर्योदय होनेपर फूल प्रफुल्लित होजातेहैं, और सूर्य्यके अस्त होनेपर सकुचित होजातेहैं, बेलवाले हुरहुरमे जो फूल आतेहैं, वे नीले रगके होतेहैं और क्षुपवाले हुरहुरके फूल सफेद होतेहैं. बहुत सुन्दर और सूर्य्याकार होतेहैं परन्तु बहुत छोटे छोटे होतेहै। हुलहुल दूसरी जातिकी भी होतीहै उसको सस्कृतमे ब्रह्मसुदुर्लभा, हिन्दी०—ब्रह्मसोंचली कहतेहैं ॥

अथ वन्ध्याकर्कोटकी [वनककोडा]।

वन्ध्याकार्कोटकी देवी कन्या योगीश्वरीति च ॥ नागारिर्नक्रदमनी विषकण्टकिनी तथा ॥ २६६ ॥ वन्ध्याकर्कोटकी लघ्वी कफनुद्व्रणशोधिनी ॥ सर्पदर्पहरी तीक्ष्णा विसर्पविषहारिणी ॥ २६७ ॥

वन्ध्याकर्कोटकी, देवी, कन्या, योगीश्वरी, नागारि, नक्रदमनी, विषकण्टकिनी, (नागाराति, वन्ध्या,नागहन्त्री, मनोज्ञा, पथ्या, दिवा,पुत्रदा, सकन्दा, कन्दवल्ली, ईश्वरी, श्रीकन्दा, सुगन्धा, सर्पदमनी, विषकन्दकिनी, वरा,कन्दशालिनी, भूतापहा, सर्वौषधी, विषमोहप्रशमनी और महा योगीश्वरी) ये बॉझककोडेके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी—बॉझककोडा, वनककोला, बॉझखसा । व०—तित्कॉकरोल, तित्कॉकडी । म०--बॉझकर्टोली, । गु०—बॉझकण्टोलो । क०--वजेमडवागलु । लै०--मोमोर्डिका डायोइकामेल MoMordica Dioicamale ॥ बॉझककोडा—हलका, कफनाशक, व्रणको शुद्ध करनेवाला, तीक्ष्ण,सर्पका मद हरनेवाला और विसर्प तथा विष विनाशक है ॥ २६६ ॥ २६७ ॥

विवरण।

वन्ध्याकर्कोटकी अर्थात् बॉझककोडेकी बेल ककोडेके समान जंगलके वृक्षोपर फैल जातीहै, परन्तु इसमे फल

नहीं आते इसलिये इसको वाँझ ककोडा कहते हैं फलके स्थानमें खाली एक कोष होताहै और इसकी जडके नीचे खोदनेसे एक कन्द निकलताहै ॥

अथ मार्कण्डिका [भूँईखखसा]।

मार्कण्डिका भूमिवल्ली मार्कण्डी मृदुरेचनी ॥ मार्कण्डिका कुष्ठहरी ऊर्द्ध्वाधकायशोधिनी ॥ विषदुर्गन्धकासघ्नी गुल्मोदरविनाशिनी ॥ २६८ ॥

मार्कण्डिका, भूमिवल्ली, मार्कण्डी, मृदुरेचनी, (पीतपुष्पी, पीतपुष्पा, महौषधी और जालतिका) ये भुईखखसेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–भुई खखसा । बं–काकरोलभेद । म०–भुई तरवड । गु०—धोलीमींढीआवर । क०–तलाडवल्ली । तै०–नेलतवडी । फा०–सना । इ–आलेक्साण्ड्रियन, सेना Alexandrian Sena लै०–सेन्ने फोलिया Sennafolia ॥ भुँईखखसा–ऊपर नीचेसे शरीरको शुद्ध करनेवाला और कोढ, विष, दुर्गन्ध, खाँसी, गुल्म, तथा उदररोग विनाशक है ॥ २६८ ॥

विवरण।

भुँईखखसाकी एक लता होतीहै, पत्ते परवलके समान होतेहैं और फूल पीलेरंगके होतेहैं ॥

अथ देवदाली [घघरवेल] ।

देवदाली तु वेणी स्यात्कर्कटी च गरागरी॥ देवताण्डी वृत्तकोशस्तथा जीमूत इत्यपि॥ पीता परा खरस्पर्शा विषघ्नी गरनाशिनी ॥ २६९॥ देवदाली रसे तिक्ता कफार्शःशोफपाण्डुताः ॥ नाशयेद्वामनी तिक्ता क्षयहिक्काकृमिज्वरान् ॥२७०॥ देवदालीफलं तिक्तं कृमिश्लेष्मविनाशनम् ॥ स्रंसनं गुल्मशूलघ्नमर्शोघ्नं वातजित्परम् ॥ २७१ ॥

देवदाली, वेणी कर्कटी, गरागरी, देवताडी, वृत्तकोश, जीमूत, (जीमूतक, कण्टफला, सहा, कोषफला, कटुफला, घोश, कटम्बा, विषहा, सारमूषिका, वृत्तकोषा, विषघ्नी, टाली, लोमशपत्रिका, तुरगिका, तर्कारी, देवताड, गरनाशिनी घोषा, आखुविषहा, चतुरंगका, देवदालका, पीता और खरस्पर्शा) ये देवदालीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सोनैया, विदाली, घघरवेल । म०–देवदाली । बं०–घोषकलताविशेष, देयाताडा । गु०–कुकड्वेल्य । क०–डेवदगर । तै०–डातरगण्डि । इ०–ब्रिस्टिल्युफीआ Bristylufia लै०–ल्युफा एकिनेटा Luffa Echinata देवदाली–रसमें कडवी, वमनकारक और कफ, बवासीर, सूजन, पाण्डुता, क्षय, हिचकी, कृमि, तथा ज्वरको नष्ट करे है । देवदालीका फल–कडवा, स्रंसन, अत्यन्त वातनाशक और कृमि, कफ, गुल्म, शूल तथा बवासीर नाशक है ॥ २६९–२७१ ॥

विवरण।

देवदाली, वन्दाल, घघरवेल, सुनैया और खखसाके फलवाली बडीवेल होतीहै, खेतकी बाडोपर किसान लोग बहुत लगादेतेहैं, फूल सफेद पीले और लाल तीन रंगके होतेहैं, फलोंके ऊपर बहुत छोटे छोटे काँटे होतेहैं, इसका फल छोटी तोरईकासा होताहै ॥

अथ जलपिप्पली [पनिसगा]।

जलपिप्पल्यभिहिता शारदी शकुलादनी ॥ मत्स्यादनी मत्स्यगन्धा लाङ्गलीत्यपि कीर्तिता ॥ २७२ ॥ जलपिप्पलिका हृद्या चक्षुष्या शुक्रला लघुः ॥ संग्राहिणी हिमा रूक्षा रक्तदाहव्रणापहा ॥कटुपाकरसा रुच्या कषाया वह्निवर्द्धिनी॥२७३॥

जलपिप्पली, अभिहिता, शारदी,शकुलादनी मत्स्यादनी, मत्स्यगंधा, लांगली,(तोलवलरी, अग्निज्वाला, चित्रपत्री, प्राणदा, तृणशीता और बहुशिखा) ये जलपीपलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–जलपीपल, पनिसिगा,गङ्गतिरिया । बं०–काचडाचास । म०–जलपिंपली । गु०–रतवेलियो । क०–होमुगुल । फा०–पीपलआबी । अ०--फिलफिलमाय । इ०-परपल लिप्या । Purple lippia लै०–लिपिया नोडिफ्लोरा Lippia Nodiflora ॥ जलपीपल–हृदयको प्रिय, नेत्रोंको हितकारी, वीर्यवर्धक, हलकी, ग्राही, शीतल, रूखी, कसैली, पाकमें चरपरी, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक और रक्तविकार, दाह तथा व्रणको नष्ट करै है ॥ २७२ ॥ २७३ ॥

विवरण।

जलपीपलके क्षुप प्रायः सजलभूमिमें उत्पन्न होतेहैं, पत्ते बडी नोनियाके समान और नोकदार होतेहैं, इसमें पीपलके समान एक बाल निकलती है ॥

अथ गोजिह्वा [गोभी]।

गोजिह्वा गोजिका गोभी दार्विका खरपर्णिनी ॥ गोजिह्वा वातला शीता ग्राहिणी कफपित्तनुत् ॥२७४॥ हृद्या प्रमेहकासास्रव्रणज्वरहरी लघुः ॥ कोमला तुवरा तिक्ता स्वादुपाकरसा स्मृता ॥ २७५ ॥

गोजिह्वा गोजिका, गोभी, दार्विका, खरपर्णिनी, (कुरसा, दार्विपत्रिका, अनडुजिह्वा, दर्विका, दर्वी, दार्वी, गोजिह्विका, खरपत्री, वातोना, अधोमुखा और अधोपुष्पी) ये गोभीके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०-गोजिया, गोभी। ब०-दाडिशाका। म०-पाथरी। गु०-गलजीभी, भोंपाथरी। तै०-येदुनाकचेट्टु। फा०-कलमरूमी। लै०-एलिफेण्टोपस् स्केबरElophuntopus Scabar ॥ गोभी-वातकारक, शीतल, ग्राही, हृदयको हितकारी, हलकी, कोमल, कसैली, कडवी, पाकमे मधुर और कफ, पित्त प्रमेह, खाँसी, रुधिरविकार, व्रण तथा ज्वरको नष्ट करैहै ॥ २७४ ॥ २७५ ॥

विवरण।

गोभीके क्षुप छोटे २ तीन २ फुट ऊँचे होतेहैं किसानलोग खेतोंमे बोतेहै, पत्ते लम्बे लम्बे और चिकने होतेहैं. सब पत्तोके बीचमे एक फूल बहुत बडा चक्राकार अत्यन्त शोभायमान कोई हरे रंगका और कोई पीले रंगका उत्पन्न होताहै. उस फूलके बीचमें एक डडीसी निकलतीहै उसपर पीले पाले फूल आतेहैं, फिर कुछ दिन उपरान्त उसमे छोटी २ फली लगतीहैं, उन फलियोंमेंसे छोटे २ भूरे रंगके बीज निकलतेहैं, कई गोजिह्वा गावजुबाँको कहतेहैं, जिसके पत्ते अत्यन्त खरदरे होते हैं. सुश्रुतमें गोजीपत्रसे लेखन (खुरचना) या (रगडना) लिखा है इससे गोजीके पत्र खरदरे होतेहैं ॥

अथ नागदमनी [नागदौन]।

विज्ञेया नागदमनी बलामोटा विषापहा ॥ नागपुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरीति च ॥ २७६ ॥ बलामोटा कटुस्तिक्ता लघुः पित्तकफापहा ॥ मूत्रकृच्छ्रव्रणात्रक्षो नाशयेज्जालगर्दभम् ॥ २७७॥ सर्वग्रहप्रशमनी निःशेषविषनाशिनी ॥ जयं सर्वत्र कुरुते धनदा सुमतिप्रदा ॥ २७८ ॥

नागदमनी, बलामोटा, विषापहा, नागपुष्पी, नागपत्रा महायोगेश्वरी, (जम्बु, जाम्बवती, वृक्का, रक्तपुष्पी जाम्बवी, मलघ्नी, दुर्द्धर्षा, दुःसहा, वृत्ता, वृत्तपुष्पा, मदघ्नी, विषमर्दिनी, विफला, वनकुमारी, विषारी, श्रीकिन्दा, और कदशालिनी) ये नागदौनके संस्कृत नाम है ॥

हि०-नागदौन, बरियारा। ब०-नागदमना। म०-नागदवणी। गु०-झीपटो। क०-नागदमनी। तै०-ईश्वरिचेट्टुदरणमु। ता०-मान्चिपत्री। लै०-आर्टिमसिया वुल्गोरिस साइन. इ०-इन्डियन Artimasia Ulgoris Syn E Indian ॥

नागदौन-चरपरी, कडवी, हलकी, सर्व स्थानोमे जय करनेवाली, धनदायक, सुमति देनेवाली और पित्त, कफ, मूत्रकृच्छ्र, व्रण, राक्षसभय, जालगर्दभ, सर्व ग्रहोकी पीडा और सब प्रकारके विष नाशक है ॥ २७६-२७८ ॥

विवरण।

नागदमनको कितने एक वैद्य तो दौना कहतेहै और कितने एक विषज्वर सुदर्शन कहतेहैं, सो हमको ठीक ठीक निश्चय नहीं होता कि, नागदमन क्या वस्तु है ॥

अथ वीरतरुः [वरवेल]।

वेल्लन्तरो जगति वीरतरुः प्रसिद्धः श्वेतासितारुणविलोहितनीलपुष्पः ॥ स्याज्जातितुल्यकुसुमः शमिसूक्ष्मपत्रः स्यात्कण्टकीविजलदेशज एष वृक्षः ॥ २७९ ॥ वेल्लन्तरो रसे पाके तिक्तस्तृष्णाकफापहः ॥ मूत्राघाताश्मजिद्ग्राही योनिमूत्रानिलार्तिजित् ॥ २८० ॥

वेल्लंतर. और वीरतरु, ये वरवेलके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०-वरवेल। गु०-गलतोरो। म०-वेलतूर ॥

यह वृक्ष चारप्रकारके फूलोका होता है। एक सफेद, दूसरा काला, तीसरा लाल और चौथा बहुत लाल रंगका होताहै, इन सबमें काटे होतेहैं और पत्ते शमीके सदृश छोटे २ होतेहैं, तथा ये वृक्ष जांगल देशमे होतेहै।

वरवेल-रसमे तथा पाकमे कडवा, ग्राही और तृष्णा, कफ, मूत्राघात, पथरी, योनिकी पीडा, मूत्रकी पीडा तथा वातरोग नाशक है ॥ २७९ ॥ २८० ॥

अथ छिक्कनी [नकछिकनी]।

छिक्कनी क्षवकृत्तीक्ष्णा छिक्किका घ्राणदुःखदा ॥ छिक्कनी कटुका रुच्या तीक्ष्णोष्णा

वह्निपित्तकृत॥ वातरक्तहरी कुष्ठक्रिमिवा-
तकफापहा ॥ २८१ ॥

छिक्कनी, क्षवकृत्, तीक्ष्णा, छिक्किका, घ्राणदुःखदा, (उग्रा, उग्रगधा, क्षवक, क्रूर और नासासंवेदनापटु) ये नकछिकनीके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०—नकछिकनी । व०—हाँचुटी, छिकनी, हचेता-गाछ । म०—नाकशिकणी । गु०—नाकछीकणा । फा०—वेखगाउजवाँ । अ०—उफरककुदुश । लै०—सेंटिपीटा आर्विक्युलेरीस Centipeda Orbicularis ॥

नकछिकनी चरपरी, रुचिकारक, तीक्ष्ण, गरम, अग्नि तथा पित्त कारक और वातरक्त, कोढ, कृमि तथा कफको नष्ट करैहै ॥ २८१ ॥

विवरण ।

नकछिकनीके क्षुप जलाशयके समीप, आपसे आप उत्पन्न होजाते हैं, पत्ते छोटे २ होतेहैं फूल पीले पीले होते हैं, उसके नीचे एक कन्द होताहै, उसमे अत्यन्त तीक्ष्ण-गन्ध आतीहै, और सूँघनेसे छीके आने लगतीहैं ॥

अथ कुकुन्दरः [ककुरवंदा] ।

कुकुन्दरस्ताम्रचूडः सूक्ष्मपत्रो मृदुच्छदः॥
कुकुन्दरः कटुस्तिक्तो ज्वररक्तकफापहः ॥
तन्मूलमार्द्रं निक्षिप्तं वदने मुखशोष-
हृत् ॥ २८२ ॥

कुकुन्दर, ताम्रचूड, सूक्ष्मपत्र और मृदुच्छद ये कुकरौंदेके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०—कुकरोंदा । व०—कुकुरसुता, कुकुरशोका । म०—कुकुरवदा । गु०—बोडियोकलार । फा०—कमाकिमुस । अ०—सनौवरुल अर्द । लै०—ब्ल्युमिया ओडोरटा Blumea Odoreta ॥

ककरोंदा—चरपरा, कडवा और ज्वर, रुधिरविकार तथा कफको नष्ट करैहै । इसकी गीली जड काटकर मुखमे रक्खे तो मुखशोष नष्ट होताहै ॥ २८२ ॥

विवरण ।

कुकरौंदा अर्थात् भकमरके पेड सजलभूमिके निकट शीतल स्थानोंमे आपसे आप ही उत्पन्न होजातेहैं, पत्ते छोटे और तमाखूकी आकृतिके होतेहैं फूल पीला होताहै, इनके ऊपर रगील चोटीसी होतीहै ॥

अथ सुदर्शनः ।

सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधुपर्णिका॥
सुदर्शना स्वादुरुष्णा कफशोफास्रवात-
जित् ॥ २८३ ॥

सुदर्शना, सोमवल्ली, चक्राह्वा, मधुपर्णिका, (चक्राङ्गी, दण्यानी और वृषकर्णी) ये सुदर्शनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सुदर्शन । व०—सुदर्शन गुलञ्च । गु०—सुदर्शन ॥

सुदर्शन—मधुर, गरम और कफ, सूजन, रक्तविकार, तथा वातको नष्ट करैहै ॥ २८३ ॥

विवरण ।

सुदर्शनका चक्रके समान गोल क्षुप बागोंमें होताहै, मक्खाके समान नरम होताहै ॥

अथ आखुकर्णी [मूसाकर्णी] ।

आखुकर्णी त्वाखुकर्णपर्णिका भूदरीभवा॥
आखुकर्णी कटुस्तिक्ता कषाया शीतला
लघुः ॥ विपाके कटुका मूत्रकफामयकृ-
मिप्रणुत् ॥ २८४ ॥

आखुकर्णी, आखुकर्णपर्णिका, भूदरीभवा (मूषाकर्णी, आखुपर्णी, वृषपर्णी, आखुकर्णिका, भूमिचरी, द्रवन्ती, शम्बरी, भूधराश्रया, कृशिका, उन्दुकर्णी, न्यग्रोधी, मूषिकपर्णी, वृश्चिकपर्णी, बहुकर्णिका, माता, भूमिचरी, चण्टा, बहुपादिका, प्रत्यक्श्रेणी वृषा, पुत्रश्रेणी, आदिम, चित्रा, सुवर्णी, शतमूलिका आखुपर्णिका, प्रतिपर्णशिफा, सहस्रमुखी, विक्रान्तपत्रश्रेणी, उपचित्रा, मूषिकाह्वया, रण्डा, मूषिकाफजिपात्रिका, मूषिपर्णिका, सचित्रा, मूषीकर्णी, सुकर्णिका और न्यग्रोधी) ये मूषाकर्णीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—मूसाकानी । व०—इन्दुरकाणि । म०—उन्दिरकानी । गु०—उन्दरकनी । क०—वल्लिहहे । तै०—एलकचेविचेट्टु । फा०—गोरोमुप, सतर। अ०—आज ानुलफार। लै० आईपोमिया रेनिफोर्मिस I Pomea Reniformis ॥

मूसाकानी—चरपरी, कडवी, कसैली शीतल, हलकी, पाकमें चरपरी और मूत्ररोग, कफसम्बधी रोग, तथा कृमिको नष्ट करै है ॥ २८४ ॥

विवरण ।

मूषाकर्णी अर्थात् मूसाकानीके क्षुप पृथ्वीपर ले हुए होतेहैं हरेक पत्तेके नीचे जड होतीहै, डाली पत और लाली लिये होतीहै, मिर्चके समान पत्तेपत्तेपर फल होतेहैं॥

अथ मयूरशिखा [मोरसिखा] ।

मयूराह्वशिखा प्रोक्ता ...
दा ॥ नीलकण्ठशिखा लघ्वी ...
तिसारजित् ॥ २८५ ॥

॥ इति श्रीभावप्रकाशे गुडूच्यादिवर्गः ॥

मयूरशिखा, सहस्राहि, मधुच्छदा, नीलकठशिखा, (बर्हिचूडा, शिखिनी, शिखालु, सुशिखा, शिखा, शिखिबला, केकिशिखा और मयूरचूडा) ये मोरशिखाके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–मोरशिखा। बं०–मयूरशिखा। म०–मण्याशिखा। गु०–मोरशिखा। क०–होरेयेसुवु। फा०–असनाने, असलान। लै०–सिलोसिया क्रिस्टाटा Cilasia Cristata ॥ मोरशिखा–हलकी तथा पित्त, कफ और अतिसारको नष्ट करै है ॥ २८५ ॥

विवरण।

मोरशिखाके क्षुप होतेहै, इसपर मोरकी चोटीके समान चोटी होतीहै, इसीलिये इसका नाम मोरशिखा है ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसजीविनीटीकाया गुडूच्यादिवर्गः समाप्तः ॥

अथ पुष्पवर्गः।

तत्र कमलस्य नामानि गुणाश्च।

वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलम् ॥ सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम् ॥१॥ पङ्केरुहं तामरसं सारसं सरसीरुहम् ॥ बिसप्रसूनराजीवपुष्कराम्भोरुहाणि च ॥ ॥ २ ॥ कमलं शीतलं वर्ण्यं मधुरं कफपित्तजित् ॥ तृष्णादाहास्रविस्फोटविषवीसर्पनाशनम् ॥ ३ ॥ विशेषतः सितं पद्मं पुण्डरीकमिति स्मृतम् ॥ रक्तं कोकनदं ज्ञेयं नीलमिन्दीवरं स्मृतम् ॥ ४ ॥ धवलं कमलं शीतं मधुरं कफपित्तजित् ॥ तस्मादल्पगुणं किञ्चिदन्यद्रक्तोत्पलादिकम् ॥ ५ ॥

पद्म, (यह शब्द पुल्लिग और नपुसकलिग दोनोंमे होता है) नलिन, अरविन्द, महोत्पल, सहस्रपत्र, कमल, शतपत्र, कुशेशय, पकेरुह, तामरस, सारस, सरसीरुह, बिसप्रसून, राजीव, पुष्कर, अभोरुह, (पकज, अब्ज, अम्बुज, सरोरुह, पाथोज, नल, अभोज, अम्बुजन्म, अम्बुरुह, अम्बुपद्म, सुजल, आस्यपत्र, पाथोरुह, पुष्कर, वार्ज, तामरस, कञ्ज, कज, शतपत्र, बिसकुसुम, वारिरुह, सरसिज, सलिलज, वारिज, कवार, वनशोभन, जलजन्म, जलरुट्, जलरुह, सरोज, सरोजन्म, सरोरुट्, पंकज, श्रीवास, श्रीपर्ण, इन्दिरालय, जलजात, कंज, नालीक, नालिक, वनज, अम्लान, पुटक, अब्ज, सारज और कुटप) यह कमलके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–कमल, सफेद कमल। बं०–पद्म, श्वेतपद्म। म०–कमळ, पाढरे कमळ। गु०–कमल, धोले कमल। क०–विलियतावरे। तै०–कालावा। ता०–अम्वल। फा०–नीलुफर। अ०–करबुलमा। इं०–लोटस Lotus लै०–नीलम्बियम् स्पेसीयोझम् Nelumbium Speciosum ॥ विशेष करके सफेद कमलको पुण्डरीक, लाल कमलको कोकनद और नीलकमलको इन्दीवर कहतेहैं ॥

कमल–शीतल, वर्णको उत्तम करनेवाला, मधुर और कफ, पित्त, तृषा, दाह, रुधिरविकार, विस्फोटक, फोडा, विष तथा विसर्प विनाशक है। सफेद कमल–शीतल, मधुर और कफ तथा पित्तको नष्ट करै है। अन्य लाल कमल आदि इससे कुछ न्यून गुणवाले हैं ॥ १–५ ॥

विवरण।

कमल–लाल, नीले और सफेद इन फूलोके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं, कमल विशेष करके गम्भीर और निर्मल नीरवाले स्वच्छ सरोवर और तालोमे उत्पन्न होते हैं, पत्ते बडे बडे गोल और चिकने जिनपर जलका बिन्दु न ठहरै इसप्रकारके अद्भुत और शोभायमान होते हैं, उन पत्तोंको पुरैनके पातभी कहते हैं, उनके नीचे जो डडी होती है, उसको मृणाल अर्थात् कमलकी नाल कहते हैं. कमलके फूलोंमें जो पीला पीला जीरा होताहै, उसको कमलकेशर कहतेहैं. कमलके फूलोमें जो सरसरस लगा होताहै उसको कमलकी रज और मकरन्द कहते है; कमलमे जो फल लगते है, उनको पद्मकोष कहते हैं उनमे जो बीज निकलते हैं उनका नाम कमलगट्टे हैं, कमलकी जडको भसीडे कहते है ॥

अथ पद्मिनी।

मूलनालदलोत्फुल्लफलैः समुदिता पुनः ॥ पद्मिनी प्रोच्यते प्राज्ञैर्बिसिन्यादि च सा स्मृता ॥ ६ ॥ आदिशब्दान्नलिनी कमलिनीत्यादि ॥ पद्मिनी शीतला गुर्वी मधुरा लवणा च सा ॥ पित्तासृक्कफनुद्रूक्षा वातविष्टम्भकारिणी ॥ ७ ॥

मूल, नाल, पत्र और बीजादि सयुक्त प्रफुल्लित कमलको विद्वान लोग पद्मिनी कहतेहैं. पद्मिनी, बिसिनी (नलिनी, कुन्दिनी, मृणालिनी, कमलिनी, पुटकिनी, कंजिनी, सरोजिनी, अरविन्दिनी, अब्जिनी, नालिकिनी, अम्भोजिनी, पुष्करिणी और जम्बालिनी) ये पद्मिनीके संस्कृत नाम हैं ॥

पद्मिनी—शीतल, भारी, मधुर, खारी, रूखी, वात तथा मलबंधको करनेवाली है और पित्त, रुधिरविकार तथा कफको नष्ट करै है ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ नवपत्रादि ।

संवर्त्तिका नवदलं बीजकोशस्तु कर्णिका॥ किञ्जल्कः केसरः प्रोक्तो मकरन्दो रसः स्मृतः ॥ पद्मनालं मृणालं स्यात्तथा बिसमिति स्मृतम् ॥ ८ ॥

पद्मिनीके नवीन पत्तोंको सवर्त्तिका. बीजकोशको कर्णिका, केसरको किंजल्क और रसको मकरन्द कहतेहैं [पद्मि]नीकी नालको मृणाल अथवा बिस (भसीडा) [कह]ते हैं ॥ ८ ॥

संवर्तिका [नये पत्ते] ।

संवर्तिका हिमा तिक्ता कषाया दाहतृट्प्रणुत् ॥ मूत्रकृच्छ्रगुदव्याधिरक्तपित्तविनाशिनी ॥ ९ ॥

सवर्त्तिका (नवीन पत्ते)—शीतल, कडवी, कसैली और दाह तृषा, मूत्रकृच्छ्र, गुदाके रोग, तथा रक्त पित्तको नष्ट करैहै ॥ ९ ॥

कर्णिका ।

पद्मस्य कर्णिका तिक्ता कषाया मधुरा हिमा ॥ मुखवैशद्यकृल्लघ्वी तृष्णास्रकफपित्तनुत् ॥ १० ॥

कमलकी कर्णिका (बीजकोष)—कडवी, कसैली, मधुर, शीतल, मुखको स्वच्छ करनेवाली, हलकी और तृषा, रक्तविकार, कफ तथा पित्तको नष्ट करैहै ॥ १० ॥

किंजल्कः (केशरः) ।

किञ्जल्कः शीतलो वृष्यः कषायो ग्राहकोऽपि सः ॥ कफपित्ततृषादाहरक्तार्शोविषशोथजित् ॥ ११ ॥

कमलकी केशर—शीतल, वृष्य, कसैली, ग्राही और कफ, पित्त, तृषा, दाह, रक्तविकार, बवासीर, विष. तथा सूजनको नष्ट करै है ॥ ११ ॥

मृणालम् ।

मृणालं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्रजिद्गुरु ॥ १२ ॥ दुर्जरं स्वादुपाकञ्च स्तन्यानिलकफप्रदम् ॥ संग्राहि मधुरं रूक्षं शालूकमपि तद्गुणम् ॥ १३ ॥

मृणाल (कमलकी नाल)—शीतल, वृष्य, भारी, दुर्जर, पाकमें मधुर, दुग्धवर्द्धक, वात कफको करनेवाली, ग्राही, मधुर रूक्ष और पित्त, दाह, तथा रक्तविकारको नष्ट करै है । कमलके कन्दमेंभी नालके सदृश गुण हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ स्थलकमलम् ।

पद्मचारिण्यतिचराऽव्यथा पद्मा च शारदा ॥ पद्मानुष्णा कटुस्तिक्ता कषाया कफवातजित् ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मशूलघ्नी श्वासकासविषापहा ॥ १४ ॥

पद्मचारिणी, अतिचरा अव्यथा. पद्मा, शारदा, (चारिटी, पद्माह्वा, सुगन्धमूला, अम्बुरुहा, लक्ष्मी, श्रेष्ठा, सुपुष्करा, रम्या, पद्मावती, स्थलरुहा, पुष्करिणी, पुष्करपर्णिका और पुष्करनाडी)ये स्थलकमलके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—स्थलकमल । बं०-स्थलपद्म । म०—स्थलकमलिनी । क०—कलुदावरे । गु०—स्थलकमल । लै०अयोनीड्य सुफ्रुटिकोसम Ionidium suffruticosum ॥

स्थलकमल—गरम नहीं, चरपरा, कडवा, कसैला और कफ, वात, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, शूल, श्वास. खाँसी तथा विषविनाशक है ॥ १४ ॥

विवरण ।

स्थलकमल भी कमलकी समानही होताहै, परन्तु यह बात अधिक है कि, पृथ्वीमें उत्पन्न होताहै, आकृति तो सब कमलहीकी होती है, परन्तु पत्ते और फूल फल सब कमलसे छोटे होते हैं ॥

अथ कुमुदम् ।

श्वेतं कुवलयं प्रोक्तं कुमुदं कैरवं तथा ॥ कुमुदं पिच्छिलं स्निग्धं मधुरं ह्लादि शीतलम् ॥ १५ ॥

कुवलय, कुमुद, कैरव, (चन्द्रकान्त, गर्दभ, सौगन्धिक. कन्दोत, कच्छ, कुव, गन्धसोम, सितोत्पल. धवलोत्पल, श्वेतोत्पल, कह्वार, शीतलक, शशिकान्त, चन्द्रिकाम्बुज और इन्दुकमल, (ये कुमुदके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-बबूला कुमुद। गु०-पोयणा। म०-पाढरे कमळ। क०-बिलियेते इटिलु॥

कुमुद-पिच्छिल, चिकना, मधुर, सुखदायक और शीतल है॥ १५॥

अथ कुमुदिनी।

कुमुद्वती कैरविका तथा कुमुदिनीति च॥ सा तु मूलादिसर्वाङ्गैरुक्ता समुदिता बुधैः॥ पद्मिन्या ये गुणाः प्रोक्ता कुमुदिन्याश्च ते स्मृताः॥ १६॥

कुमुदिनी, कुमुद्वती, कैरविका, (उत्पलिनी, कैरविणी, चन्द्रेष्टा, कुवलयिनी, इन्दीवरिणी और नीलोत्पलिनी) ये कुमोदिनीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-कमोदिनी, कमलिनी, तालावकाअनार। ब०-सुंदीपुष्प॥

जो कुमुद-सम्पूर्ण जड आदि सर्वांग करके सहित होय उसको विद्वान् कुमुदिनी कहतेहैं॥

जो गुण ऊपर पद्मिनीमें कहे हैं वेही गुण कमोदनीके जानने॥ १६॥

विवरण।

कुमुद भी कमलके तुल्य तीनप्रकारके होतेहैं, लाल, नीले और सफेद फूलोके भेदसे जानेजाते हैं, कुमुदके फूल, कमलके फूलोसे छोटे होतेहैं और रात्रिको चन्द्रमाके उदयहोने पर खिलतेहैं और सूर्यका प्रकाश होतेही बन्द होजातेहैं. इसके पत्ते फूलके ऊपरही लगे होतेहैं, इसमे जावित्रीके समान कोष होताहै, उस कोषका फल होजाताहै, कच्ची अवस्थामें तो उसके भीतर लाल दाने होतेहैं और पकजानेपर वह दाने काले पडजातेहैं, उस फलको घेंघोल कहतेहैं, इनकी जडको चाच अथवा सालक कहतेहैं॥

अथ वारिपर्णी [काई, सिवार]।

वारिपर्णी कुम्भिका स्याच्छैवालं शैवलञ्च तत्॥ वारिपर्णी हिमा तिक्ता लघ्वी स्वाद्वी सरा कटुः॥ १७॥ दोषत्रयहरी रूक्षा शोणितज्वरशोषकृत्॥ शैवालं तुवरं तिक्तं मधुरं शीतलं लघु॥ स्निग्धं दाहतृषापित्तरक्तज्वरहरं परम्॥ १८॥

वारिपर्णी, कुम्भिका, (वारिमूली, खमूलिका, आकाशमूली, कुतृण, कुमुदा, जलवल्कल, श्वेतपर्णी, अगकुम्भी, पानीयपृष्ठज, कुम्भी, खमूलि, पर्णी, पृश्नी, वारिकर्णिका और वारिकर्णी) ये कुम्भीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-कुम्भी, जलकुम्भी, काई। ब०-पाना, टोका पाना,। म०-जलमण्डवी। गु०-जलऊपरना वेला। क०-हांवलं॥

शैवाल, शैवल, (जलनीली, जलज, शेपान, शेवाल, शिवल, शेपाल, जलनीलिका, जलनील, अम्बुचामर, जलकुन्तल, मञ्जुल, सैवाल, वारिचामर, सलिलकुण्डल, हटपर्णी, अम्बुताल, जलशूक, जलाञ्जन, जलकेश, बावार और जलपृष्ठजा) ये सिवारके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-सिवार। ब०-शेओयाला। म०-गु०-शेवाळ। ते०-नासु। फा०-पसमेदरा,। अ०-तुहलव। लै०-सिरेटोफाइल सबमर्स Serratophyllum Submersum॥

जलकुमी-शीतल, कडवी, हलकी, स्वादिष्ठ, दस्तावर, चरपरी, त्रिदोषनाशक, रूक्ष और रक्तविकार, ज्वर, तथा शोषको नष्ट करै है॥ सिवारकसैली, कडवी, मधुर, शीतल, हलकी, चिकनी और दाह, तृषा, पित्त, रुधिरविकार, तथा ज्वरको अत्यन्त नष्ट करनेवाली है॥ १७॥ १८

अथ शतपत्री [सेवती गुलाब]।

शतपत्री तरुण्युक्ता कर्णिका चारुकेशरा॥ महाकुमारी गन्धाढ्या लाक्षा कृष्णातिमञ्जुला॥ १९॥ शतपत्री हिमा हृद्या ग्राहिणी शुक्रला लघुः॥ दोषत्रयास्रजिद्वर्ण्या कटी तिक्ता च पाचनी॥ २०॥

शतपत्री, तरुणी, कर्णिका, चारुकेसरा, महाकुमारी, गन्धाढ्या, लाक्षा, कृष्णा, अतिमञ्जुला, (सौम्यगन्धा, सुवृत्ता, शतपत्रिका, लाक्षापुष्पा सुमना. सुशीता और शतदला) ये गुलाबके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-गुलाब। ब०-गोलाप। म०-गुलाबाचे फूल। गु०-मोगरामी गुलाब। क०-चेवडे। ते०-गुलाबीपुव्वु। फा०-गुलेसुर्ख। अ०-जरंजवीन। इं०-केबेजरोस Cabbagerose कनफेक्शन् ऑफरोझ Confection Of rosa लै०-रोसाडेमेसेना Roso Damascena॥

गुलाब-शीतल, हृदयको प्रिय, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, हलका, वर्णको उत्तम करनेवाला, कडवा, चरपरा, पाचन और तीनोदोषोंको तथा रुधिरविकारको नष्ट करै है॥ १९॥ २०॥

विवरण ।

सेवती और गुलाब ये दोनो एकही जातिके हैं । परन्तु सेवतीका वृक्ष और गुलाबका क्षुप होताहै, विशेष करके ये दोनो वन, उपवन और पुष्पवाटिकाओंमे बहुत होतेहैं, सेवतीके सफेद फूल होतेहैं, और प्राचीन हैं और गुलाब दो प्रकारका होताहै, एक देशी जिसमें महासुगन्ध आतीहै और फूल गुलाबी होतेहैं, फूल चैत्र वैशाखमे आते हैं, दूसरा मादा गुलाब चीनी वह कई प्रकारका होताहै, लाल, गुलाबी, सफेद और पीले, भाँति भाँतिके फूल बारहों महीने आते हैं, वह नवीन जातिका है, अर्थात् पहिले हिन्दुस्थानमे नहीं होता था, अब ऐसा फैला है कि उसके नामसे गुलाबवाडी और पुष्पोद्यान प्रसिद्ध होगये हैं ॥

अथ वसंती [नेवारी]।

नेपाली कथिता तज्ज्ञैः सप्तला नवमालिका ॥ वासन्ती शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयास्रजित् ॥ २१ ॥

नेपाली, सप्तला, नवमालिका, वासन्ती, (प्रहसन्ती, सुवसन्ता, वसन्तजा, सुकुमारा, शिखरिणी, मधुगन्धा गुच्छपुष्पा, ग्रैष्मिका, राजादनदला, वनजा, सूक्ष्मपुष्पिका, नवमालिका, भद्रवर्म, देवलता, गन्धनिलया, मल्लिका, ग्रीष्मभवा, अतिमोदा, ग्रैष्मी, ग्रीष्मोद्भवा, सुकुमारी, सुरभि शुचिमल्लिका, सुगन्धा, नेवाली, ग्रीष्मी, वनवासिनी, कान्ता और अतिसुलभा, ये नेवारीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-नेवारी, वासन्ती । व०-नेपाली, नेओयार । गु०-वटमोगरा ॥ क०-विरुन्तिगे । लै०-इक्सोरा पार्विफ्लोरा Ixora Parviflora ॥

नेवारी-शीतल हलकी, कडवी और तीनो दोष तथा रक्त विकार नाशक है ॥ २१ ॥

विवरण ।

नेवारीके क्षुप उपवन और पुष्प वाटिकाओंमें होतेहैं, पत्ते मिरचीकी समान होतेहैं, पाच पाच पँखुरीके फूलोंके गुच्छे होतेहैं, और वह फूल प्रायः ग्रीष्मऋतुमे खिलतेहैं, उनमें अत्यन्त सुगन्धि आतीहै, चनेकी बराबर फलोंके गुच्छे लगतेहैं, प्रथम नववस्थामें हरे और पकनेपर काले होतेहैं ॥

अथ वार्षिकी [वेला] ।

श्रीपदी षट्पदानन्दा वार्षिकी मुक्तबन्धना॥ वार्षिकी शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयापहा॥ कर्णाक्षिमुखरोगघ्नी तत्तैलं तद्गुणं स्मृतम् ॥ २२ ॥

श्रीपदी, षट्पदानन्दा, वार्षिकी और मुक्तबन्धना, ये रायवेलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-वेलवार्षिकी, वेला । म०- साटहीमोगऱ्याचा भेद । गु०-लवारो । रायवेल-शीतल, हलकी, कडवी और तीनोंदोष, कर्णरोग, नेत्ररोग तथा मुखरोगोंको नष्ट करैहै, इसके तेलमें भी यही गुण हैं ॥ २२ ॥

विवरण ।

वार्षिकी अर्थात् वेलेके क्षुप वेलकी समान होतेहैं, पत्ते मोतियेकी समान होतेहैं, ग्रीष्मऋतुमे फूल आतेहैं, फूलका रंग सफेद होताहै, एक फूलमे छःसे लेकर बत्तीसतक पँखुरी होतीहैं, उन फूलोंमे ऐसी उत्तम सुगन्धि आतीहै कि, हृदयकमलकी कली २ खिला देतीहै, उन फूलोंका तेल भी बहुत सुगन्धित बनताहै ॥

अथ मालती । स्वर्णजाती [चमेली]।

जातिर्जाती च सुमना मालती राजपुत्रिका ॥ चेतिका हृद्यगन्धा च सा पीता स्वर्णजातिका ॥ २३ ॥ जातीयुगं तिक्तमुष्णं तुवरं लघु दोषजित् ॥ शिरोऽक्षिमुखदन्तार्त्तिविषकुष्ठानिलास्रजित् ॥ २४॥

जाति, जाती, सुमना, मालती, राजपुत्रिका, चेतिका, हृद्यगधा, (सुरप्रिया, चेतकी, सुरभिगन्धा, सुकुमारी, सन्ध्यापुष्पी, मनोहरा, राजपुत्री, मनोज्ञा, तैलमालिनी, जनेष्टा, जातिका, प्रियंवदा, मालिनी, वासती, प्रहसन्ती, सुवसन्ता, वसन्तजा और वार्षिका) ये चमेलीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-चमेली, चँबेली । व०-चामिली । म०-मोगऱ्याचा भेद । गु०-चमेली, फा०-यासमम । इं०-स्पैनिश जास्मीन Spanish Jasmine लै०-जेस्मीनम् ग्राण्डिफ्लोरम् Jasminum Grandiflorum ॥

चमेली और पीलीचमेली-कडवी, गरम, कसैली, हलकी, दोषोंको जीतनेवाली और मस्तकरोग, नेत्ररोग, मुखरोग, दन्तरोग, विष, कोढ, वात तथा रक्तविकारको नष्ट करैहै ॥ २३ ॥ २४ ॥

विवरण।

चमेलीकी वेल वन, बाग और पुष्पवाटिकाओंमें बहुत लगाई जातीहै, फूल बहुत छोटे छोटे और कोमल पंखुरीके होतेहैं, फूलोका रंग सफेद और पंखुरीके नीचे नोकपर कुछ कुछ लालीसी होतीहै, इसकी वन्दकलियां जब खिलतीहैं तब परमानन्ददेनेवाली मन्द मन्द सुगन्ध आतीहै, ये प्रायः चौमासेमें बहुत खिलतीहैं, इसके फूलोका तेल परमोत्तम वनताहै, पीली चमेलीका फूल पीले रगका होताहै, पत्ते कुछ वडे होते हैं ॥

अथ यूथिका [जूही, सुवर्णजूही]।

यूथिका गणिकाम्बष्ठा सा पीता हेमपुष्पिका ॥ यूथीयुगं हिमं तिक्तं कटु पाकरसं लघु ॥ २५ ॥ मधुरं तुवरं हृद्यं पित्तघ्नं कफवातलम् ॥ व्रणास्रमुखदन्ताक्षिशिरोरोगविषापहम् ॥ २६ ॥

यूथिका, गणिका, अम्बष्ठा, (यूथी, वासन्ती, बालपुष्पी, शिखण्डिनी, मागधी, प्रहसन्ती, वालपुष्पिका, भृङ्गानन्दा, पुष्पगन्धा, गुणोज्ज्वला, चारुमोदा, शिखण्डी, हरिणी, शंखयूथिका, सुगन्धिका, यूथितरुणी, सुगन्धा, मोदनी, बहुगन्धा और गजाह्वया) ये जूहीके संस्कृत नाम हैं ॥

हेमपुष्पिका, (स्वर्णयूथी, हेमपुष्पी, मनोहरा, सुवर्णयूथी, हेमपुष्पी,सुगन्धा, हेमयूथिका, युवतीष्टा, रक्तगन्धा, शिखण्डी, नागपुष्पिका, पीतयूथी, पीतिका, कनकप्रभा, हैमा, गन्धाढ्या, सुवर्णाह्वा और व्यक्तगन्धा) ये पीली जूहीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंन्दी–जुही, पीलीजुही । ब०–जुई, स्वर्णजुई । म०–पाढरी, पिवळी,जुई । क०–यरड्डुमोल्ले । तै०–जुइपुप्पालु । लै०–जसमीनम् ओरिक्युलेटम् Jasminum auriecu latum ॥

दोनोप्रकारकी जूही–शीतल, कडवी, पाकमे तथा रसमे चरपरी, हलकी, मधुर, कसैली, हृदयको प्रिय, कफ तथा वातकारक, और पित्त, व्रण, रक्तविकार, मुखरोग, दन्तरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, तथा विष नाशक है ॥ २५ ॥ २६ ॥

विवरण।

जूही दो प्रकारकी होतीहै, एक सफेद फूलकी और दूसरी पीले फूलकी, प्रायः इसकी वेल सुन्दर सुन्दर उपवन और पुष्पोद्यानोंमें अधिक बोई जातीहै, पत्ते चमेलीसे मिलतेहुए होतेहैं परन्तु कुछ छोटे होतेहैं, फूल पंखुरियाँ सफेद रंगकी और महा सुगधि युक्त होतीहैं दूसरी पीले रगकी जूही होतीहै उसपर पीले फूल लगतेहैं। इसकी सुगन्धके आगे गन्धराज भी मलिन जान पडताहै ॥

अथ चंपकः [चम्पा]।

चाम्पेयश्चम्पकः प्रोक्तो हेमपुष्पश्च स स्मृतः॥ एतस्य कलिका गन्धफलीति कथिता बुधैः ॥ २७ ॥ चम्पकः कटुकस्तिक्तः कषायो मधुरो हिमः॥ विषक्रिमिहरः कृच्छ्रकफवातास्रपित्तजित् ॥ २८ ॥

चाम्पेय, चपक, हेमपुष्प, (सुकुमार, सुरभि, शीतल, कांचन, षट्पदातिथि, कुसुमाधिराट्, हेमाह्व, सुभग, शीतलच्छद, कुसुमाधिप, वरलब्ध, उग्रगन्ध, कटु, हेमपुष्पक, पुण्यगन्ध, नागपुष्प, स्वर्णपुष्प, भृंगमोही, भ्रमरातिथि, दीपपुष्प, वनदीप, स्थिरगन्ध, अतिगन्धक, पीतपुष्प और स्थिरपुष्प) ये चम्पाके संस्कृत नाम हैं ॥

गन्धफली, (बहुगन्धा, गन्धमोदिनी और चपककोरक) ये चंपेकी कलीके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–चम्पा । ब०–चांपा। म०–सोनचाफा । गु०–चपो । क०–सपगे । तै०–चपागी पुवुल । लै०–मिचेलिया चम्पेका Michelia Champaca ॥

चपा–चरपरी, कडवी, कसैली, मधुर, शीतल और विष, कृमि, मूत्रकृच्छ्र, कफ, वात, रक्तविकार तथा पित्तको नष्ट करै है ॥ २७ ॥ २८ ॥

विवरण।

चम्पेके वृक्ष वडे वडे बागोंमे और उपवनोमे लगाये जातेहैं, पत्ते लम्बे लम्बे अमरूदके सदृश होतेहैं, फूल पीले और मनोहर अत्यन्त मन्द सुगंधिवाले होतेहै, प्रायः हमारे देशमे इसके वृक्ष बहुत कम होतेहैं पर मालवेमे बहुत होतेहैं ॥

अथ वकुलः [मौलसरी]।

वकुलो मधुगन्धश्च सिंहकेसरकस्तथा ॥ वकुलस्तुवरोऽनुष्णः कटुपाकरसो गुरुः ॥ कफपित्तविषश्वित्रकृमिदन्तगदापहः॥ २९॥

वकुल, मधुगध, सिंहकेसरक, (केसर, कंठ, तैलाङ्ग, मधुपञ्जर, मुकुल, वकुल, मकुल, वरलब्ध, सीधुगन्ध, स्त्रीमुखमधु, दोहल, मधुपुष्प, सुरभि, भ्रमरानन्द, स्थिर-

कुसुम, शारदिक, करक, सिन्धुगन्ध, विशारद, गूढपुष्पक, धन्वी, मदन, मद्यमोद और चिरपुष्प) ये मौलसिरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–मौलसिरी। बं०–बकुलगाछ। म०–बकुळ, बकुळी। गु०–बोलसिरी। क०–करक। तै०–पाघडा। ता०–मोगदम्। इ०–सुरीनाम मेडलर Surinam medlar लै०–माईमुसोप्स इलजी Mimusops Elengi

मौलसिरी–कसैली, गरम नहीं, पाकमें चरपरी, भारी और कफ, पित्त, विष, श्वेतकोढ, कृमि तथा दन्तरोग, नाशक है ॥ २९ ॥

अथ बृहद्बकुल [बडी मौलसिरी]।

शिवमल्ली पाशुपत एकाष्ठीलो बुको वसुः॥ बुकोऽनुष्णः कटुस्तिक्तः कफपित्तविषापहः ॥ योनिशूलतृषादाहकुष्ठशोथास्रनाशनः ॥ ३० ॥

शिवमल्ली, पाशुपत, एकाष्ठील, बुक, वसु, (शैव, शिवपिण्ड, सुव्रत, वसुक, शिवाग, शिवेष्ट, कामिपूरक, शिवाह्लाद और शाम्भव) ये बडी मौलसिरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–बनहुला, बडीमौलसिरी। म०–थोरबकुळ। [illegible]०–मोटीबोलसरी ॥ बडीमौलसिरी–गरम नहीं, चरपरी, [illegible]ची और कफ, पित्त, विष, योनिशूल, तृषा, दाह, कुष्ठ, [illegible]न तथा रुधिरविकारको नष्ट करैहै ॥ ३० ॥

विवरण।

मौलसिरीके वृक्ष वन और उपवनमें बहुत होतेहैं, पत्ते राजजामुनकी समान होतेहैं, फूल सफेद और सूक्ष्म तथा चक्राकार होतेहैं, उनमें महासुगन्धि आतीहै, इसकी सुगन्धि सूखनेपर भी न्यून नहीं होती, मौलसिरीकी नर नारी दोजाति है, एकमें फल आतेहैं और दूसरीमें नहीं आते, जिसमें फल नहीं आते उस मौलरीका फूल कुछ बडा होताहै और रंग सफेद होताहै और जिसपर सिन्दूरी रंगका फूल आताहै, उसका फल कुछ लालीलिये छोटा होताहै. और जिस मौलसिरीमें फल नहीं आता उसको मौलश्री कहतेहैं. और जिसपर फल आताहै उसको मौलसरा कहतेहैं दूसरी बडी मौलश्रीका बडा फूल होताहै ॥

अथ कदम्बः।

कदम्बः प्रियको नीपो वृत्तपुष्पो हलिप्रियः॥कदम्बो मधुरः शीतः कषायो लवणो गुरुः॥ सरो विष्टम्भकृद्रूक्षः कफस्तन्यानिलप्रदः ॥ ३१ ॥

कदम्ब, प्रियक, नीप, वृत्तपुष्प, हलिप्रिय, (सुरभि, प्रावृषेण्य, हरिप्रिय, ललनाप्रिय, प्रियक, हारिद्र, अशोकारि, नीप, कादम्ब, पट्पदेष्ट, जाल, कादम्बर्य, जीर्णपर्ण, महाढ्य और कर्णपूरक) ये कदम्बके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कदम, कदम्ब। बं०–कदमगाछ। म०–राजकदम्ब। गु०–कदब। क०–कडड। तै०–कडिमिचेट्टु। अ०–कदम्ब। लै०–एथोसिफालस केडबा Anthocephalus Cadumba ॥ नोक्लियापार्विफ्लोरा Nauclea Parviflora ॥

कदम्ब–मधुर, शीतल, कसैला खट्टा, हलका, दस्तावर, विष्टम्भकारक, रूक्ष और कफ, दुग्ध और वात, बढानेवाला है ॥ ३१ ॥

विवरण।

कदम्बके वृक्ष बडे बडे होतेहैं, इस हमारे देशमे कम हैं परन्तु मथुरा वृन्दावनमें बहुतहैं, पत्ते गोल गोल महुवेकेसे होतेहैं, फल गोल छोटे नींबूके समान आतेहैं, इसमें फूल भी गोलही होताहै, उसके नीचे फल उत्पन्न होताहै, फूल छोटा और सुगन्धयुक्त होताहै।

अथ कुब्जकः [कूजा]।

कुब्जको भद्रतरणिर्बृहत्पुष्पोऽतिकेसरः। महासहा कण्टकाढ्या नीलाऽलिकुलसंकुला ॥३२॥ कुब्जकः सुरभिः स्वादुः कषायानुरसः सरः॥ त्रिदोषशमनो वृष्यः शीतहर्त्ता च स स्मृतः ॥ ३३ ॥

कुब्जक, भद्रतरणि, बृहत्पुष्प, अतिकेसर, महासहा, कंटकाढ्या, नीला, अलिकुलसकुला, (खर्व, देवतरुणी और वारिकण्टक) ये कूँजाके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–कूजा। गु०–कुजडो ॥

कूजा–सुगन्धि, स्वादिष्ट, कसैला, दस्तावर, तीनों दोषोंको शमन करनेवाला, वीर्यवर्द्धक और शीतलतानाशक है ३२।३३

विवरण।

कूजेका वृक्ष बहुत बडा होताहै, वन और उपवनोंमें बहुत देखनेमें आताहै, पत्ते गुलाबके पत्तोंसे कुछ बडे होतेहैं फूल सेवतीके समान सफेद होतेहैं ॥

अथ मल्लिका।

मल्लिका मदयन्ती च शीतभीरुश्च भूपदी॥ मल्लिकोष्णा लघुर्वृष्या तिक्ता च कटुका

हरेत् ॥ वातपित्तास्यदृग्व्याधिकुष्ठारुचिविषव्रणान् ॥ ३४ ॥

मल्लिका, मदयन्ती, शीतभीरु, भूपदी, (भद्रवल्ली, प्रिया, सौम्या, वनचन्द्रिका, तृणशून्य, तृणशून्या, वनचन्द्रिक, नारीष्टा, सिता और मल्ली) ये मोतियेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—मोतिया । ब०—मल्लिकाफुलेर गाछ।तै०—मल्लिपुष्पाल्लु । लै०-जेस्मिनम् सेविक Jasminum Savihac॥

मोतिया—गरम,हलका, वीर्यवर्द्धक,कडवा, चरपरा और वात, पित्त, मुखरोग, नेत्ररोग, कोढ, अरुचि, तथा विष, व्रणको नष्ट करैहै ॥ ३४ ॥

विवरण ।

मल्लिका अर्थात् मोतियेके क्षुप बेलेकी समान पुष्पवाटिकाओंमे अधिक होते हैं, पत्ते बेलेकी सदृश होते हैं, फूलकी कली गोल गोल मोतियोंकेसे गुच्छ लताकी चोटियोपर लटकते रहते हैं. जब वह खिलती है, तब उसकी महा सुगन्धिको सूँघ सदनबाण भी अपने बाणोंको छिपा, कायर बन वनमें छिपनेकी इच्छा करताहै । उसमें छह पँखुरी होती हैं, फूल सफेद होताहै ॥

अथ माधवी [वसन्ती] ।

माधवी स्यात्तु वासन्ती पुंड्रको मण्डकोऽपि च ॥ अतिमुक्तो विमुक्तश्च कामुको भ्रमरोत्सवः ॥ माधवी मधुरा शीता लघ्वी दोषत्रयापहा ॥ ३५ ॥

माधवी, वासन्ती, पुण्ड्रक, मण्डक, अतिमुक्त, विमुक्त, कामुक, भ्रमरोत्सव, (चन्द्रवल्ली, सुगन्धा, भृङ्गप्रिया, भद्रलता, भूमिमण्डपभूषणा, पुण्ड्रकलता, अतिमुक्तक, माधविका, विमुक्तक, माधवीलता, वसन्तदूती और लतामाधवी) ये माधवीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—माधवी बसन्ती, । ब०—माधवीलता । म०—पीतवेल । गु०—मधुमाधवी । क०—इन्द्रगोचे,विखन्तिगे । तै०—माधवतोगे । इ०—क्लस्टर्ड हिप्टेज Clustered Hiptega लै०—हिप्टेज मेडेब्लोटा Hiptaga Madablota ॥

माधवी—मधुर, शीतल, हलकी और त्रिदोष नाशक है ॥ ३५ ॥

विवरण ।

माधवीकी लता बहुत लम्बी और फैलनेवाली होतीहै, प्रायः मालीलोग बागमे लगादेते हैं, बेलके ऊपरकी छाल भूरी होती है और कुछ कुछ लाली लिये भी हो । पत्ते चमेलीके समान होते हैं और सुगन्धिका तो कहन क्या है,सम्पूर्ण उपवनको सुगन्धिका भाण्डागार बनादेती है ॥

अथ केतकः [केवडा] सुवर्णकेतकी ।

केतकःसूचिकापुष्पो जम्बुकःक्रकचच्छदः सुवर्णकेतकी त्वन्या लघुपुष्पा सुगन्धिनी ॥ ३६ ॥ केतकः कटुकः स्वादुर्लघुस्तिक्तः कफापहः ॥ उष्णा तिक्तरसा ज्ञेया चक्षुष्या हेमकेतकी ॥ ३७ ॥

केतक, सूचिकापुष्प, जम्बुक, क्रकचच्छद, (सूचिपुष्प, हलीन, जम्बुल, चामरपुष्प, केतकी, तीक्ष्णपुष्पा, विफला, धूलिपुष्पिका, मेध्या, कण्टदला, शिवद्विष्टा, नृपप्रिया, क्रकचा, दीर्घपत्रा, स्थिरगन्धा, गन्धपुष्पा, इन्दुकलिका, दलपुष्पा और पांशुला) ये केतकीके संस्कृत नाम हैं ॥

सुवर्णकेतकी, लघुपुष्पा, सुगधिनी, (स्वर्णकेतकी, हेमकेतकी, कनकप्रसवा, पुष्पी, हैमी, छिन्नरुहा, विष्ठारुहा और स्वर्णपुष्पी) ये सुवर्णकेतकीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—केवडा, पीलाकेवडा । ब०—केयागाच्छ, सोणाकेया । म०—पांढरा केवडा, केतकी, । गु०—केवडो । क०—केदगे । तै०—मुगलीपुड़,मोगिलिचेट्टु । फा०—करज । अ०—कादी । लै०—पेन्डनस् ओझेरिटिसिम्स् Pandanus Osoratissimus ॥

केवडा—चरपरा, मधुर, हलका, कडवा और कफनाशक है । पीलाकेवडा—गरम, कडवा और नेत्रोको हितकारी है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

विवरण ।

केवडेके वृक्ष बहुत बडे नही होते, विशेष करके जलके निकटवाले बागोमे बहुत होते है. इसकी शाखाओंमे छोटे छोटे कांटे होते हैं, पत्ते लम्बे लम्बे दो दो फुटके, किनारोंपर कांटे और नोक अनीदार होते हैं, उसके मध्यभागमें एक मोटी बाल सी निकलती है, वह पत्तोमे वेष्टित होती है, उसमे अत्यन्त मनोहारिणी और क्लेशनिवारिणी महातीव्र सुगन्धि आती है, उसीको केवडेका फूल कहते हैं, उन फूलोपर पराग सा लगा होताहै, दूसरी पीलीकेतकी होती है, उसका छोटा क्षुप होताहै, उसका रग पीला होता है, उसपर पीले रगके महासुगन्धित पुष्प आते हैं—सुगन्धिके विषयमें इसका नाम सब ससारमे प्रसिद्ध है ॥

अथ किङ्किरातः (गौडादौ प्रसिद्धः) ।

किङ्किरातो हेमगौरः पीतकः पीतभद्रकः ॥
किङ्किरातो हिमस्तिक्तः कषायश्च हरेदसौ॥
कफपित्तपिपासास्रदाहशोषवमीः कृमीन् ३८

किकिरात, हेमगौर, पीतक, पीतभद्रक (किकिराट, विप्रलम्भी, षट्पदानन्दःवर्द्धन, विप्रलोभी और पीताम्लान) यह किकिरातके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-किकिरात । गु०-रामबावल । म०-देंह बाभूळ । फा०-मधिलान ॥ किकिरात-शीतल, कडवा, कसैला और कफ, पित्त, तृषा, रक्तविकार, दाह, शोष, वमन तथा कृमिनाशक है ॥ ३८ ॥

विवरण ।

किकिरातका वृक्ष बडा होताहै, पत्ते छोटे छोटे बबूरकी समान होते हैं, फूल पीले होते हैं, इसको कोई कोई वैद्यवर रामबबूरकहते है, परन्तु उसमें और इसमें बडा अन्तर है ॥

अथ कर्णिकारः ।

(पांगारा इति महाराष्ट्रे प्रसिद्धः ।)

कर्णिकारः परिव्याधः पादपोत्पल इत्यपि ॥ कर्णिकारः कटुस्तिक्तस्तुवरः शोधनो लघुः ॥ रञ्जनः सुखदः शोथश्लेष्मास्रव्रणकुष्ठजित् ॥ ३९ ॥

कर्णिकार, परिव्याध, पादपोत्पल, ये कर्णिकारके संस्कृत नाम हैं ॥

कर्णिकार-चरपरी, कडवी, कसैली, कोठेको शुद्ध करनेवाली, हलकी, रंगदायक, सुखदायक और सूजन, कफ, रक्तविकार, व्रण तथा कोढको नष्ट करै है ॥ ३९ ॥

विवरण ।

कर्णिकारके वृक्ष प्राय. पर्वतोंपर विशेषकरके होते हैं, पत्ते ढाकके पत्तोंकी समान लम्बे चौडे होते है, फूल लाल होते हैं, इसपर फली लगती है ॥

अथ अशोकः ।

अशोको हेमपुष्पश्च वञ्जुलस्ताम्रपल्लवः ॥ कंकेलिः पिण्डपुष्पश्च गन्धपुष्पो नटस्तथा ॥ ४० ॥ अशोकः शीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्यः कषायकः ॥ दोषापचीतृपादाहकृमिशोषविषास्रजित् ॥ ४१ ॥

अशोक, हेमपुष्प, वञ्जुल, ताम्रपल्लव, ककेलि, पिण्डपुष्प, गन्धपुष्प, नट, (शोकनाश, विचित्र, कर्णपूरक, अङ्गनाप्रिय, वीतशोक, विशोक, वञ्जुलद्रुम, मधुपुष्प, अपशोक, ककेलि, केलिक, रक्तपल्लव, चित्र, कर्णपूर, सुभग, दोहली, रोगितरु, वामाकयातन, पिंडीपुष्प, रामा, पल्लद्रु, कान्ताङ्घ्रिदोहद, कान्ताचरण, दोहद, चक्रगुच्छ, स्त्रीनिरीक्षणदोह, शोकहर्ता, स्मराधिवास, दोषहारी, प्रपल्लव और वामाङ्घ्रिघातक) ये अशोकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-अशोक, अशोगि । बं०-अस्पाल । म०-अशोपक्र । गु०-आसोपालव । लै०-ग्वेटेरियालेंजि फोलिया Guattercia Langifalia इं०-जोनेशिया आशोका Jonesia Asoka ॥ अशोक-शीतल, कडवा, ग्राही, वर्णको उत्तम करनेवाला, कसैला और वातादि दोष, अपची, तृषा, दाह, कृमि, शोष, विष तथा रुधिरविकारको नष्ट करै है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

विवरण ।

अशोक वृक्षकी दो जाति है, एकके पत्ते रामफलकी समान और फूल नारंगीके रंगकी तुल्य होते हैं और माघ फाल्गुनमे खिलते हैं, दूसरे अशोकके पत्ते आमके पत्तोंकी समान होते हैं, फूल सफेद कुछेक साधारण पीले रंगके होते हैं; इसपर चौमासेके आरंभमे फल आतेहैं । इसके कच्चेफल हरे और पकनेपर लाल होजातेहैं इसके फल खानेके योग्य नही होते और इन फलोंमेंसे बीज निकलते हैं; वह बीज किसी औषधिके प्रयोगमे नही लिये जाते, प्रदरादिरोगोंमे केवल छालही काममे आतीहै ॥

अथ बाणपुष्पः [गौडादौ प्रसिद्धः] ।

अम्लातोऽम्लाटनः प्रोक्तस्तथाम्लातक इत्यपि ॥ कुरण्टको वर्णपुष्पः स एवोक्तो महासहः॥अम्लाटनः कषायोष्णः स्निग्धः स्वादुश्च तिक्तकः ॥ ४२ ॥

अम्लात, अम्लाटन, आम्लातक और कुरटक, ये बाण पुष्पके नाम है ॥

बाणपुष्प-कसैला, गरम, स्निग्ध, मधुर और कडवा है ॥ ४२ ॥

अथ सैरेयकः [कटसरैया] ।

सैरेयकः श्वेतपुष्पः सैरयः कटसारिका ॥ सहाचरः सहचरः स च भिन्द्यापि कथ्यते ॥४३॥कुरण्टकोऽत्र पीते स्याद्रक्ते कुरबकः

स्मृतः॥नीले वाणा द्वयोरुक्तो दासी चार्त्तगलश्च सः॥४४॥ सैरेयः कुष्ठवातास्रकफकण्डूविषापहः ॥ तिक्तोष्णो मधुरोऽनम्लः सुस्निग्धः केशरञ्जनः ॥ ४५ ॥

सैरेयक, श्वेतपुष्प, सैरेय, कटसारिका, सहाचर, सहचर, भिन्दी, (मृदुकण्ट, महासह, वाण, उद्यान,पाकी, सौरीयक, कण्टकुरण्ट, झिण्टिका और झिण्टी) ये सफेद फूलकी कटूसरैयाके संस्कृत नाम हैं ॥

पीले फूलकी कटूसरैयाको कुरण्टक, लाल फूलकी कटूसरैयाको कुरवक, और नीले फूलकी कटूसरैयाको वाणा, दासी, तथा आर्त्तगल कहते हैं। इनमे वाण शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनोंमे है ॥

हिन्दी–कटूसरैया, पियावांसा, । बं०–वाँटि, कुलझाँटि। म०–कोरटा । क०–गोरटे । तै०–गोरैंट्ठ । लै०–वार्लेरिया प्रायोनिटूस् Barleria Prianitis ॥

कटसरैया–कड़वी, गरम, मधुर, अम्ल नहीं, चिकनी, केशरजन (बालोंको रँगनेवाला) और कोढ, वात, रक्तविकार, कफ खुजली, तथा विषविनाशक है ॥४३–४५॥

विवरण ।

पियावांसा अर्थात् कटूसरैयाके क्षुप वन और बागोंमे बहुत होतेहैं, इसकी चार प्रकारकी जाति हैं, इसके फूलोंका रगभी चार प्रकारका होताहै, सफेद, पीले, लाल और नीले, इन चारो प्रकारके पियावाँसोमें कांटे होतेहैं, पत्ते भी सबके छोटे छोटे एकसेही होतेहैं, किसीमें विशेष अन्तर नहीं होता ॥

अथ कुन्दः ।

कुन्दं तु कथितं माध्यं सदापुष्पश्च तत्स्मृतम् ॥ कुन्दं शीतं लघु श्लेष्मशिरोरुग्विषपित्तहृत् ॥ ४६ ॥

कुन्द, माध्य, सदापुष्प, (शुक्लपुष्प, दलकोष, वरट, वोरट, मकरन्द, महामोद, मनोहर, मुक्तापुष्प, तारपुष्प, अट्टपुष्पक, दमन, वनहास, मनोज, भृङ्गवन्धु, मनोरम, अट्टहास और भृङ्गसुहृत्) ये कुन्दके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कुन्द, कुन्देका वृक्ष । बं०–कुन्द । म०–कुन्द । क०–सुरागि । तै०–मोल्ल । गु०–डोलर ॥

कुन्द–शीतल, हलका, और कफ, मस्तकरोग, विष तथा पित्तको नष्ट करै है ॥ ४६ ॥

विवरण ।

कुन्दके क्षुप वन और पुष्पवाटिकाओमे बहुत और फूल सफेद मोतीके तुल्य होते हैं, सदैव खि है, सुगन्ध अधिक होती है ॥

अथ मुचुकुन्दः ।

मुचुकुन्दः क्षत्रवृक्षश्चित्रकः [illegible]
मुचकुन्दः शिर[illegible]

मुचुकुन्द, क्षत्रवृक्ष, चित्रक, प्रतिविष्णुक, ([illegible] बहुपत्र, सुदल, मुण्डी, वृक्षानुकारक, हरिवल्लभ, अर्घ्यार्हलक्षणक, और रक्तप्रसव) ये मुचुकु संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–मुचुकुन्द, मचकन । व०–गु०–म० मुचुकुन्द । तै०–लोल्गु । ता०–ट्डो । लै०–स्परमम् सुबेरी फोलियम् Pterosperum Suberifolium ॥

मुचुकुन्द–शिरका दर्द, पित्त, रक्तविकार और वि नाशक है ॥ ४७ ॥

विवरण ।

मुचुकुन्दके वृक्ष वनमे बहुत होतेहैं, पत्ते बडे अखरोटके समान होतेहैं; फूल छोटे छोटे लाल सुगन्धित होतेहैं, फल लम्बे और गोल लकडीके सम चित्रित होतेहैं; दूसरा और एक प्रकारका मुचुकुन्दक क्षुप होताहै, वह जगल और वनोमे बहुत होताहै उसके पत्ते और फूल वेलेके समान होतेहैं, फल करौंदेके तुल्य लगतेहैं, फूलोमे सुगन्धि आतीहै ॥

अथ तिलकः ।

तिलकःक्षुरकः श्रीमान्पुरुषश्छिन्नपुष्पकः॥ तिलकः कटुकः पाके रसे चोष्णो रसायनः॥ कफकुष्ठक्रिमीन्वस्तिमुखदन्तगदान्हरेत् ॥ ४८ ॥

तिलक, क्षुरक, श्रीमान्, पुरुष, छिन्नपुष्पक, (मुखमडनक, विशेषक, पुण्ड्र, पुण्ड्रक, स्थिरपुष्पी, छिन्नरुह, दग्धरुह, मृतजीव, तरुणीकटाक्षकाम. वासन्त, सुन्दर, दुग्धरुह, भालविभूषणसंज्ञ, पुन्नाग, रेचक और शतपत्रक) ये तिलकपुष्पके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–तिलकपुष्प । गु०–तिलक । म०–तिलक वृक्ष। क०–तिलकपुष्प॥तिलकपुष्प–रसमे तथा पाकमें चरपरा, गरम, रसायन और कफ, कोढ, कृमि, वस्तिरोग, मुखरोग, तथा दन्तरोग नाशक है ॥ ४८ ॥

विवरण ।

तिलकके वृक्ष पर्वतोंपर अधिक होतेहैं, पत्ते पीपलके समान और फूल तिलके तुल्य होतेहैं, इसके फूलोंमें मन्द सुगन्धि आतीहै ॥

अथ बंधुजीवः [गोजुनिया] ।

वन्धूको वन्धुजीवश्च रक्तो माध्याह्निकोऽपि च ॥ वन्धूकः कफकृद्ग्राही वातपित्तहरो लघुः ॥ ४९ ॥

वन्धूक, वन्धुजीव, रक्त, माध्याह्निक, (रक्तक, वन्धुजीवक, वन्धुक, वन्धुवन्धुल, वन्धुजीवक, वन्धूजीव, वन्धूली, वन्धुर, सूर्यभक्तक, ओष्ठपुष्प, अर्कवल्लभ, मध्यन्दिन, रक्तपुष्प, रागपुष्प, हरिप्रिय, शरत्पुष्प और सुपुष्प) ये दुपहरियाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–दुपहरिया, गोजुनिया । व०–वान्धुलि फुलेर गाछ । म०–दुपारीचें फूल । गु०–बपोरियो । क०–वन्दुरे । तै०–नितिमल्ली । लै०–पेनटापिटिर फिनिस्या Pentapeter Forincea ॥

दुपहरिया–कफकारक, ग्राही, हलका और वात तथा पित्त नाशक है ॥ ४९ ॥

विवरण ।

दुपहरियाके क्षुप माली लोग बागोंमें बहुत लगादेतेहैं, इसके पत्ते डेढ अंगुल चौडे और एक बालिस्त लम्बे नोकदार नीमके सदृश चारो ओर आरेकेसे चिह्न होतेहैं, फल गोल गोल कुछ नोकदारसे होतेहैं, उसमें कालीमिर्चके सदृश काले बीज होतेहैं, ये दुपहरके समय खिलतीहै, इसलिये इसको दुपहरिया कहतेहैं ॥

अथ जपापुष्पम् [गुडहर] ।

ओड्रपुष्पं जपा चाथ त्रिसन्ध्या सारुणा सिता ॥ जपा संग्राहिणी केश्या त्रिसन्ध्या कफवातजित् ॥ ५० ॥

ओड्रपुष्प, जपा, (प्रातिका, हरिवल्लभा, जवा, ओड्राख्या, रक्तपुष्पी, अर्कप्रिय, रागपुष्पी और ओड्रपुष्पी) ये जपाके संस्कृत नाम हैं ॥

लाल तथा सफेद फूलवाले ओड्रफूलको त्रिसंध्या कहते हैं ॥

हिन्दी–ओण्ड्रहुल, जवा, गुडहर, व०–जवा, फुलेरगाछ । म०–जासवंद । गु०–जासुद । तै०–मन्दारपु० । इं०–शुफलावर Shoeflowar लै०–हिबिस रूकस रोझा साई नेनसिस Hibiscus Rosasinensis ॥

सफेद ओण्ड्रहुल–ग्राही और केशोंको उत्तम है । लाल फूलवाला ओण्ड्रहुल कफ तथा वातनाशक है ॥ ५० ॥

विवरण ।

जपापुष्प अर्थात् गुडहलके क्षुप बागोंमें प्रायः माली- लोग शोभाके लिये लगा देते हैं, पत्ते लम्बे लम्बे और फूल अत्यन्त लाल होते हैं और कुछ कुछ चिकने तथा पतले होते हैं ॥

अथ सिन्दूरी [सेन्दुरिया] ।

सिन्दूरी रक्तबीजा च रक्तपुष्पा सुकोमला ॥ सिन्दूरी विषपित्तास्रतृष्णावान्तिहरी हिमा ॥ ५१ ॥

सिन्दूरी, रक्तबीजा, सुकोमला, (रक्तपुष्पी, वीरपुष्पा, करच्छदा और शोणपुष्पी) ये सिन्दूरियाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी–सिन्दूरिया, जाफर । म०–शेन्द्री । गु०–रातां फूलवाली जासुद । क०–सिन्दूरी । इं०–आरनाटो Arnatto लै०–बिक्सा ओरिमाना Bixa Orrimana ॥

सिन्दूरिया–शीतल और विष, पित्त, रक्तविकार, तृषा तथा वमनको नष्ट करें हैं ॥ ५१ ॥

विवरण ।

सिन्दूरियाके क्षुप उपवनोंमे होतेहै, पत्ते बेलके समान होतेहैं, फूल लाल लाल सिन्दूरकी तुल्य होतेहैं, उसके बीज भी लाल रंगके होतेहै, इनको जलमे डालनेसे जल लाल होजाताहै ॥

अथ मुनिवृक्षः [अगस्तिया] ।

अथागस्त्यो वङ्गसेनो मुनिपुष्पो मुनिद्रुमः ॥ अगस्तिः पित्तकफजिच्चातुर्थिकहरो हिमः ॥ रूक्षो वातकरस्तिक्तः प्रतिश्यायनिवारणः ॥ ५२ ॥

अगस्त्य, वंगसेन, मुनिपुष्प, मुनिद्रुम, (अगस्ति, शीघ्रपुष्प, व्रणारि, दीर्घफलक, रक्तपुष्प, सुरप्रिय, शुक्रपुष्प, व्रणापह, खरश्वसी, पवित्र, मुनितरु, वंगसेनक, कनली और वक्रपुष्प) ये अगस्तियेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–अगथिया, अगस्तिया, हथिया । व०–वक । क०–अगसेयमर । म०–अगस्ता, हदगा । गु०–अगथियो । तै०–अनीसे, अविसि । ता०–अगंति । इं०–लार्जफ्लावर्ड एगेटी Large Flowered Agita लै०–एगाटी ग्लार्डी फ्लोरा Agati Grandiflora ॥

अगथिया—शीतल, रूक्ष, वातकारक, कडवा और पित्त, कफ, चातुर्थिक ज्वर (चौथिया) तथा प्रतिश्याय नाशक है ॥ ५२ ॥

विवरण ।

अगथियोंके वृक्ष पुष्पोद्यानोंमें अधिक होतेहैं, पत्ते सहजिनेकेसे होतेहैं, विशेष करके इसपर नागरवेल अर्थात् पानोंकी बेलें चढा करतीहैं, इसलिये इसके पत्ते उत्तम होतेहै, इसके फूल लाल और सफेद बॉके होतेहैं, इसकी फली अत्यन्त कोमल होतीहैं. यह इसकी ठीक पहिचान है कि, जब अगस्त्यमुनिका उदय होता है तबहीं अगस्तियाके फूल खिलते हैं ॥

अथ तुलसी शुक्ला कृष्णा च ।

तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमंजरी॥ अपेतराक्षसी गौरी शूलघ्नी देवदुंदुभिः ॥ ॥ ५३ ॥ तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत् ॥ दीपनी कुष्ठकृच्छ्रास्रपार्श्वरुक्कफवातजित् शुक्ला कृष्णा च तुलसी गुणैस्तुल्या प्रकीर्तिता ॥ ५४ ॥

तुलसी, सुरसा, ग्राम्या, सुलभा, बहुमजरी, अपेतराक्षसी, गौरी, शूलघ्नी, देवदुन्दुभि, (वैष्णवी, वृदा, सुगधा, गन्धहारिणी, अमृता, पत्रपुष्पा, पवित्रा, सुरवल्लरी, सुभगा, तीव्रा, पावनी, विष्णुवल्लभा, सुरेज्या, कायस्था, सुरदुदुभि, सुरभि, बहुपत्री, मजरी, हरिप्रिया, श्यामा, त्रिदशमञ्जरी, भूतघ्नी, भूतपत्री, वर्णास, कठिञ्जर, कुठेरक, पुण्या, माधवी, सुरवल्ली, प्रेतराक्षसी, सुवहा, विष्णुपत्नी, माला, श्रेष्ठा, पापघ्नी, लक्ष्मी और कृष्णवल्लभा) ये तुलसीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—ब०—तै०—तुलसी । गु०—काली तथा धोली तुलसी । म०—तुळस, तुलसी । क०—एरेडतुलसी । फा०—रेहान् । अ०—उलसी बदरूत । इं०—ह्वाइटबेझिल White Basil परपल स्टाल्कबेझिल Purpale Stalke Basil लै०—ओसिम आल्बम् Ocimum Album ओसिमुम् सेक्ट Ocimumsnctum ॥

तुलसी—चरपरी, कडवी, अग्निप्रदीपक, हृदयको हितकारी, गरम, दाह तथा पित्तको करनेवाली और कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार, पसलीकी पीडा, कफ तथा वातको नष्ट करै है । सफेद और काली तुलसी, दोनो गुणोमें समान कही हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

विवरण ।

तुलसीके क्षुप जगलमे और बागोमे बहुत होतेहैं ए बहुतेरे गृहस्थी लोग पूजाके लिये अपने अपने घरोंमें ल लेते है, इसके पत्ते गोल गोल कुछ लम्बाई लिये अ कोमल होतेहैं और उनमे सुगधि भी आतीहै, उस डाल डालमे बाल निकलतीहैं, उसको मजरी कहते दूसरी श्याम पत्तोंकी श्याम तुलसी होती है, परन्तु ८ दोनोकी एकही प्रकारकी है ॥

अथ मरुबकः [मरुवा] ।

मारुतोऽसौ मरुवको मरुन्मरुरपि स्मृतः॥ फणी फणिज्जकश्चापि प्रस्थपुष्पः समीरणः ॥ ५५ ॥ मरुदग्निप्रदो हृद्यस्तीक्ष्णोष्णः पित्तलो लघुः ॥ वृश्चिकादिविषश्लेष्मवातकुष्ठक्रिमिप्रणुत् ॥ कटुपाकरसो रुच्यस्तिक्तो रूक्षः सुगन्धिकः ॥ ५६ ॥

मारुत, मरुवक, मरुत्, मरु, फणी, फणिज्जक, प्रस्थपुष्प, समीरण, (खरपत्र, गधपत्र, बहुवीर्य, शीतलक, सुराह्व, जबीर, प्रस्थकुसुम, आजन्मसुरभिपत्र और कुलसौरभ) ये मरुवेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—मरुआ, मरुवा । ब०—मरुया । म०—सब्जा, मर्वा । गु०—मरवो । तै०—रुद्रजाड । फा०—मर्जगुस । अ०—मर्जजुस । इं०—स्वीट मार्ज ओरन Sweet Marj Oran लै०—ओरिघेनम मार्ज ओराना Ariganum Marjorna ॥

मरुआ—अग्निकारक, हृदयको हितकारी, तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, कडवा, रूक्ष और सुगधित है, तथा वीछू आदिका विष, कफ, वात, कोढ और कृमिनाशक है५५-५६

विवरण ।

मरुवेके क्षुप बागोंमे अधिक होतेहैं, पत्ते लंबे २ अगुलीके समान अत्यन्त सुगधित होतेहैं, इसमें तुलसके समान बहुत सी बालें निकलतीहैं, मरुवेके सब अगोंमें सुगधि आतीहै ॥

अथ दमनकः [दवना] ।

उक्तो दमनको दांतो मुनिपुत्रस्तपोधनः॥ गन्धोत्कटो ब्रह्मजटो विनीतः कलपत्रकः ॥ ५७ ॥ दमनस्तुवरस्तिक्तो हृद्यो वृष्यः सुगन्धिकः ॥ ग्रहणाद्विषकुष्ठास्रक्लेदकंडूत्रिदोषजित् ॥ ५८ ॥

विवरण ।

तिलकके वृक्ष पर्वतोंपर अधिक होतेहैं, पत्ते पीपलके समान और फूल तिलके तुल्य होतेहैं, इसके फूलोंमें मन्द सुगन्धि आतीहै ॥

अथ बंधुजीवः [गोजुनिया] ।

बन्धूको बन्धुजीवश्च रक्तो माध्याह्निकोऽपि च ॥ बन्धूकः कफकृद्ग्राही वातपित्तहरो लघुः ॥ ४९ ॥

बन्धूक, बन्धुजीव, रक्त, माध्याह्निक, (रक्तक, बन्धुजीवक, बन्धुक, बन्धुबन्धुल, बन्धुजीवक, बन्धूजीव, बन्धूली, बन्धुर, सूर्यभक्तक, ओष्ठपुष्प, अर्कवल्लभ, मध्यन्दिन, रक्तपुष्प, रागपुष्प, हरिप्रिय, शरत्पुष्प और सुपुष्प) ये दुपहरियाके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–दुपहरिया, गोजुनिया । ब०–बान्धुलि फुलेर गाछ । म०–दुपारीचे फूल । गु०–बपोरियो । क०–बन्दुरे । तै०–नितिमह्ली । लै०–पेनटापिटिर फिनिम्या Pentapeter Forincea ॥

दुपहरिया–कफकारक, ग्राही, हलका और वात तथा पित्त नाशक है ॥ ४९ ॥

विवरण ।

दुपहरियाके क्षुप माली लोग बागोंमें बहुत लगादेतेहैं, इसके पत्ते डेढ अगुल चौडे और एक बालिस्त लम्बे नोकदार नीमके सदृश चारों ओर आरेकेसे चिह्न होतेहैं, फल गोल गोल कुछ नोकदारसे होतेहैं, उसमें कालीमिर्चके सदृश काले बीज होतेहैं, ये दुपहरके समय खिलतीहै, इसलिये इसको दुपहरिया कहतेहैं ॥

अथ जपापुष्पम् [गुडहर] ।

ओड्रपुष्पं जपा चाथ त्रिसन्ध्या सारुणा सिता ॥ जपा संग्राहिणी केश्या त्रिसन्ध्या कफवातजित् ॥ ५० ॥

ओड्रपुष्प, जपा, (प्रातिका, हरिवल्लभा, जवा, ओड्राख्या, रक्तपुष्पी, अर्कप्रिया, रागपुष्पी और ओड्रपुष्पी) ये जपाके सस्कृत नाम हैं ॥

लाल तथा सफेद फूलवाले ओड्रफूलको त्रिसध्या कहते हैं ॥

हिन्दी–ओण्ड्रहुल, जवा, गुडहर, ब०–जवा, फुलेरगाछ । म०–जासवद । गु०–जासुद । तै०–मन्दारपु० । इ०–शुफलावर Shoeflowar लै०–हिबिस् स्कस रोझा साई नेनसिस Hibiscus Rosasinensis ॥

सफेद ओण्ड्रहुल–ग्राही और केशोंको उत्तम है । लाल फूलवाला ओण्ड्रहुल कफ तथा वातनाशक है ॥ ५० ॥

विवरण ।

जपापुष्प अर्थात् गुडहलके क्षुप बागोंमें प्रायः मालीलोग शोभाके लिये लगा देते हैं, पत्ते लम्बे लम्बे और फूल अत्यन्त लाल होते है और कुछ कुछ चिकने तथा पतले होते हैं ॥

अथ सिन्दूरी [सिन्दुरिया] ।

सिन्दूरी रक्तबीजा च रक्तपुष्पा सुकोमला ॥ सिन्दूरी विषपित्तास्रतृण्णावान्तिहरी हिमा ॥ ५१ ॥

सिन्दूरी, रक्तबीजा, सुकोमला, (रक्तपुष्पी, वीरपुष्पा, करच्छदा और शोणपुष्पी) ये सिन्दूरियाके सस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी–सिन्दूरिया, जाफर । म०–शेन्द्री । गु०–राता फूलवाली जासुद । क०–सिन्दूरी । इ०–आरनाटो Arnatto लै०–बिक्सा ओरिमाना Bixa Orrimana ॥

सिन्दूरिया–शीतल और विष, पित्त, रक्तविकार, तृषा तथा वमनको नष्ट करै हैं ॥ ५१ ॥

विवरण ।

सिन्दूरियाके क्षुप उपवनोंमें होतेहैं पत्ते बेलके समान होतेहैं, फूल लाल लाल सिन्दूरकी तुल्य होतेहैं, उसके बीज भी लाल रगके होतेहैं, इनको जलमें डालनेसे जल लाल होजाताहै ॥

अथ मुनिवृक्षः [अगस्तिया] ।

अथागस्त्यो वङ्गसेनो मुनिपुष्पो मुनिद्रुमः ॥ अगस्तिः पित्तकफजिच्चातुर्थिकहरो हिमः ॥ रूक्षो वातकरस्तिक्तः प्रतिश्यायनिवारणः ॥ ५२ ॥

अगस्त्य, बगसेन, मुनिपुष्प, मुनिद्रुम, (अगस्ति, शीघ्रपुष्प, व्रणारि, दीर्घफलक, रक्तपुष्प सुरप्रिय, शुक्लपुष्प, व्रणापह, खरध्वसी पवित्र, मुनितरु, बगसेनक, कनली और वक्रपुष्प) ये अगस्तियेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–अगथिया, अगस्तिया, हथिया । ब०–बक । क०–अगसेयमर । म०–अगस्ता, हदगा । गु०–अगथियो । तै०–अनीसे, अविसि । ता०–अगंति । इ०–लार्जफ्लावर्ड एगेटी Large Flowered Agita लै०–एगाटी ग्लाडी फ्लोरा Agati Glandiflora ॥

अगथिया—शीतल, रूक्ष, वातकारक, कडवा और पित्त, कफ, चातुर्थिक ज्वर (चौथिया) तथा प्रतिश्याय नाशक है ॥ ५२ ॥

विवरण।

अगथियोंके वृक्ष पुष्पोद्यानोंमें अधिक होतेहै, पत्ते सहजिनेकेसे होतेहैं, विशेष करके इसपर नागरबेल अर्थात् पानोंकी बेले चढा करतीहैं, इसलिये इसके पत्ते उत्तम होतेहै, इसके फूल लाल और सफेद बॉके होतेहैं, इसकी फली अत्यन्त कोमल होतीहैं. यह इसकी ठीक पहिचान है कि, जब अगस्त्यमुनिका उदय होता है तबहीं अगस्तियाके फूल खिलते हैं ॥

अथ तुलसी शुक्ला कृष्णा च।

तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमंजरी॥ अपेतराक्षसी गौरी शूलघ्नी देवदुंदुभिः ॥ ॥ ५३ ॥ तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत् ॥ दीपनी कुष्ठकृच्छ्रास्रपार्श्वरुक्कफवातजित् शुक्ला कृष्णा च तुलसी गुणैस्तुल्या प्रकीर्तिता ॥ ५४ ॥

तुलसी, सुरसा, ग्राम्या, सुलभा, बहुमजरी, अपेतराक्षसी, गौरी, शूलघ्नी, देवदुन्दुभि, (वैष्णवी, वृंदा, सुगधा, गन्धहारिणी, अमृता, पत्रपुष्पा, पवित्रा, सुरवल्लरी, सुभगा, तीव्रा, पावनी, विष्णुवल्लभा, सुरेज्या, कायस्था, सुरदुदुभि, सुरभि, बहुपत्री, मजरी, हरिप्रिया, श्यामा, त्रिदशमञ्जरी, भूतघ्नी, भूतपत्री, वर्णास, कठिञ्जर, कुठेरक, पुण्या, माधवी, सुरवल्ली, प्रेतराक्षसी, सुवहा, विष्णुपत्नी, माला, श्रेष्ठा, पापघ्नी, लक्ष्मी और कृष्णवल्लभा) ये तुलसीके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी—ब०—तै०—तुलसी। गु०—काली तथा धोली तुलसी। म०—तुळस, तुलसी। क०—एरेडतुलसी। फा०—रेहान्। अ०—उलसी बदरूत। इं०—व्हाइटबेझिल White Basil परपल स्टाल्कबेझिल Purpale Stalke Basil लै०—ओसिम आल्बम् Ocimum Album ओसिमुम् सेक्टं Ocimumsnctum ॥

तुलसी—चरपरी, कडवी, अग्निप्रदीपक, हृदयको हितकारी, गरम, दाह तथा पित्तको करनेवाली और कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार, पसलीकी पीडा, कफ तथा वातको नष्ट करै है। सफेद और काली तुलसी, दोनो गुणोमें समान कही हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

विवरण।

तुलसीके क्षुप जगलमे और बागोमें बहुत होतेहै और बहुतेरे गृहस्थी लोग पूजाके लिये अपने अपने घरोमें लगा लेते है, इसके पत्ते गोल गोल कुछ लम्बाई लिये अत्यन्त कोमल होतेहैं और उनमे सुगधि भी आतीहै, उसकी डाल डालमे बाल निकलतीहैं, उसको मजरी कहतेहै, दूसरी श्याम पत्तोंकी श्याम तुलसी होती है, परन्तु आकृति दोनोकी एकही प्रकारकी है ॥

अथ मरुबकः [मरुवा]।

मारुतोऽसौ मरुबको मरुन्मरुरपि स्मृतः॥ फणी फणिज्जकश्चापि प्रस्थपुष्पः समीरणः ॥ ५५ ॥ मरुदग्निप्रदो हृद्यस्तीक्ष्णोष्णः पित्तलो लघुः ॥ वृश्चिकादिविषश्लेष्मवातकुष्ठक्रिमिप्रणुत् ॥ कटुपाकरसो रुच्यस्तिक्तो रूक्षः सुगन्धिकः ॥ ५६ ॥

मारुत, मरुवक, मरुत्, मरु, फणी, फणिज्जक, प्रस्थपुष्प, समीरण, (खरपत्र, गधपत्र, बहुवीर्य, शीतलक, सुराह्व, जवीर, प्रस्थकुसुम, आजन्मसुरभिपत्र और कुलसौरभ) ये मरुवेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—मरुआ, मरुवा। ब०—मरुया। म०—सब्जा, मर्वा। गु०—मरवो। तै०—रुद्रजाड। फा०—मर्जंगुस। अ०—मर्जंजुस। इं०—स्वीट मार्ज ओरन Sweet Marj Oran लै०—ओरिघ्येनम मार्ज ओराना Ariganum Marjorna ॥

मरुआ—अग्निकारक, हृदयको हितकारी, तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, कडवा, रूक्ष और सुगधित है, तथा वीछू आदिका विष, कफ, वात, कोढ और कृमिनाशक है५५-५६

विवरण।

मरुवेके क्षुप बागोमें आधिक होतेहैं, पत्ते लंबे २ अंगुलीके समान अत्यन्त सुगधित होतेहैं, इसमें तुलसकि समान बहुत सी बालें निकलतीहैं, मरुवेके सब अंगोंमें सुगधि आतीहै ॥

अथ दमनकः [दवना]।

उक्तो दमनको दांतो मुनिपुत्रस्तपोधनः॥ गन्धोत्कटो ब्रह्मजटो विनीतः कलपत्रकः ॥ ५७ ॥ दमनस्तुवरस्तिक्तो हृद्यो वृष्यः सुगन्धिकः ॥ ग्रहणाद्विषकुष्ठास्रक्लेदकंडूत्रिदोषजित् ॥ ५८ ॥

दमनक, दान्त, मुनपुत्र, तपोधन, गन्धोत्कट, ब्रह्मजट, विनीत, कल्पत्रक, (पुष्पचामर, मदनक, दमन, मुनि, जटिला, दंडी, पांडुरोग, ब्रह्मजटा, पुंडरीक, तापसपत्री, पत्री, पवित्रक, देवशेखर, कुलपत्र और तपस्विपत्र) ये दौनाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-दौना, दवना, । बं०-दोना, दना । म०-दवणा, रान दवणा । क०-चित्तरटे । तै०-सावित्रेचट्टु । इं०-आर्टि मिसिया इंडीका Arteemesia Indica लै०-आर्टिमिसिया सिवर्सियाना Artimesia Sieversiana ॥

दौना-कसैला, कडवा, हृदयको प्रिय, वीर्यवर्द्धक, सुगन्धित और ग्रहण, विष, कोढ, रक्तविकार, ग्लानि, खुजली तथा त्रिदोषनाशक है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

विवरण ।

दौनेके छोटे छोटे क्षुप होतेहैं, पत्ते अत्यन्त सुगन्धयुक्त होतेहैं, पत्तोंके ऊपर बहुत रुवासा होताहै, फ़्लोंके छत्तेसे होतेहैं ॥

अथ बर्बरी [वनतुलसी] ।

बर्बरी तुवरी तुंगी खरपुष्पाऽजगन्धिका॥ पर्णाशस्तत्र कृष्णे तु कठिल्लककुठेरकौ ॥ ॥५९॥ तत्र शुक्लेऽर्जकः प्रोक्तो वटपत्रस्ततोऽपरः॥ बर्बरीत्रितयं रूक्षं शीतं कटु विदाहि च ॥ ६० ॥ तीक्ष्णं रुचिकरं हृद्यं दीपनं लघुपाकि च ॥ पित्तलं कफवातास्रकण्डूकृमिविषापहम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पुष्पादिवर्गः ॥

बर्बरी, तुवरी, तुङ्गी, खरपुष्पा, अजगंधिका, पर्णाश, (कबरी, खरपुष्पिका, असुरसा, बर्वा, अजगंधा, कबरा, सुरभि, तुलसीद्वेषा और सुरसा) ये बर्बरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बर्बरी, वनतुलसी, बबई, । बं०-बाबुइ तुलसी, बनबाबुइ तुलसी । म०-रानतुळस । गु०-रानतुलसी भेद । क०-कगोरले, करीयकगोरले । तै०-कालुतुलसी । फा०-पलंगमुश्क । अ०-फरजमुश्क । लै०-ओसिमम् । ग्रैन्टिसिम Ocimum Gratissimum ॥

कालीबर्बरीको कठिल्लक और कुठेरक, सफेद बर्बरीको अर्जक और तीसरी जातिकी बर्बरीको वटपत्र कहते हैं ॥

तीनो प्रकारकी बर्बरी-रुखी, शीतल, चरपरी, दाहकारक, तीक्ष्ण, रुचिको उत्पन्न करनेवाली, हृदयको हितकारी, अग्निप्रदीपक, पाकमें हलकी, पित्तकारक और कफ, वात, रुधिरविकार, खुजली, कृमि तथा विषविनाशक है ॥ ५९-६१ ॥

विवरण ।

बर्बरी अर्थात् वनतुलसी तीन प्रकारकी होतीहैं, वनतुलसी मरुवेका भेद है. वनतुलसी जंगल और वनोंमें अधिक होतीहै. पत्ते पियाबाँसेके समान छोटे होतेहैं, उनमें नीमके पत्तोंकेसे कँगूरे होतेहैं, फूल पीलापन लिये होतेहैं, सुगन्धि भी बहुत आतीहै ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यमझीविनीटीकायां पुष्पादिवर्गः समाप्तः ॥

अथ वटादिवर्गः ।

तत्रादौ वटस्य नामानि गुणाश्च ।

वटो रक्तफलः शृङ्गी न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः ॥ क्षीरी वैश्रवणो वासो बहुपादो वनस्पतिः ॥ १ ॥ वटः शीतो गुरुर्ग्राही कफपित्तव्रणापहः ॥ वर्ण्यो विसर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोषहृत् ॥ २ ॥

वट, रक्तफल, शृङ्गी, न्यग्रोध, स्कन्धज, ध्रुव, क्षीरी, वैश्रवण, वास, बहुपाद, वनस्पति, (नन्दी, शुंग, बृहत्पाद, वैश्रवणालय, वैश्रवणोदय, वृक्षनाथ, यमप्रिय, कर्मज, भाण्डीर, जटाल, रोहिण, अवरोहि, विटपी, स्कन्धरुह, मण्डली, महच्छाय, भृगी, यक्षावास, यक्षतरु, पादरोहण, नील, शिफारुह, बहुपाद, जटिल और जटी) ये बडके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बड । बं०-बट । म०-गु०-वड । क०-आल । तै०-मर्रिचेट्टु । ता०-अल । फा०-दरख्तरेशा । अ०-आव । इं०-बनियन्ट्री Banyantree लै०-फाईकस् इंडीकस् Ficus Indicus ॥

बड-शीतल, भारी, ग्राही, वर्णको उत्तम करनेवाला, कसैला, और कफ, पित्त, व्रण, विसर्प, दाह तथा योनिदोषको नष्ट करैहै ॥ १ ॥ २ ॥

विवरण ।

बडका वृक्ष-महाविशाल होताहै, इसके पत्ते भी लंबे चौडे होतेहैं, फल छोटे छोटे झडबेरके बराबर आतेहैं, इसकी शाखाओंमेसे लाल लाल अंकुर निकलते हैं, जब वह बढजातेहैं उनको बडकी दाढी कहतेहैं, वह इतनी बढती है कि-लटकती लटकती पृथ्वीमें आकर

जमजाती है. जहाँ जहाँ यह दाढी जमजातीहै वहाँ वहाँ वडके वृक्ष होजातेहैं, इसप्रकार एक वडकी अनेक जडे होजातीहैं परन्तु वह सब वास्तवमे एकहीहैं और परस्पर मिलीहुई हैं, ऐसे ही बढते बढते उस वडका वीधोमे विस्तार होजाताहै ॥

अथ पिप्पलः [पीपल]।

बोधिद्रुः पिप्पलोऽश्वत्थश्चलपत्रो गजाशनः॥ पिप्पलो दुर्जरः शीतः पित्तश्लेष्मव्रणास्रजित् ॥ गुरुस्तुवरको रूक्षो वर्ण्यो योनिविशोधनः ॥ ३ ॥

बोधिद्रु, पिप्पल, अश्वत्थ, चलपत्र, गजाशन, (केशवालय, चैत्यद्रु, बोधितरु, कृष्णावास, चैत्यवृक्ष, नागबन्धु, देवात्मा, महाद्रुम, कपीतन, बोधिद्रुम, चलदल, कुञ्जराशन, अच्युतावास, पवित्रक, शुभद, बोधिवृक्ष, याज्ञिक, गजभक्षक, क्षीरद्रुम, विप्र, मगल्य, श्यामल, गुह्यपुष्प, सेव्य, सत्य, शुचिद्रुम और धनुर्वृक्ष) ये पीपल वृक्षके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०पीपलवृक्ष । बं०—अश्वत्थ, अशोथगाछ । म०—पिपळ । क०—अरली । गु०—पीपलो । तै०राईचेट्टु, कुळुज्विचेट्टु । फा०—दरख्तलरजा । इ०—पोप्लरलीव्ड फिग्ट्री Poplarleaved Figtree लै०—फाईकस रिलिजियोझा Ficus Religiasa ॥ पीपल-दुर्जर, शीतल, भारी, कसैला, रूखा, वर्णको उत्तम करनवाला, योनिको शुद्ध करनेवाला और पित्त, कफ, व्रण तथा रक्त विकारोंको नष्ट करै है ॥ ३ ॥

विवरण ।

पीपलका वृक्ष वहुत वडा होताहै यह वृक्ष ग्राम और नगरोंहीमे देखे जातेहैं, वनोंमें वहुत कम होते हैं, इसके पत्ते गोल और अनीदार, डालियोपर लगतेहैं, वे पत्ते सदैव हिलते रहतेहैं, इसपर भी छोटे अकुर होतेहैं, फल भी पत्तोकी मूलमें छोटे झडबेरकी तुल्य लगतेहैं, उनको पिपलौति कहतेहैं, इसकी शाखाओपर लाख भी आतीहै परन्तु सदैव नही, कोई समय पाकर, यह वृक्ष बहुत श्रेष्ठ और पवित्र है और ऋषि मुनियोंने इसको पूजनके योग्य समझ रक्खाहै और ऐसा भी कहीं लिखा है "मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ॥ अग्रतः शिवरूपाय अश्वत्थाय नमो नमः" ॥ "मूल ब्रह्मा त्वचा विष्णुः शाखा शाखा महेश्वरः ॥ पत्राणि देवताः सर्वा वृक्षराज नमोस्तु ते" ॥

अथ पिप्पलभेदः [गजदण्डसहोरा]।

पारीषोऽन्यः पलाशश्च कपिरु (रू) तः कमण्डलुः॥ गर्दभाण्डः कन्दरालः कपीतनसुपार्श्वकौ ॥ ४ ॥ पारीषो दुर्जरः स्निग्धः कृमिशुक्रकफप्रदः ॥ फलेऽम्लो मधुरो मूले कषायस्वादुमज्जकः ॥ ५ ॥

पारीष, पलाश, कपिरुत, कमण्डलु, गर्दभाण्ड, कन्दराल, कपीतन और सुपार्श्वक, ये पारिसपीपलके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-पारिसपीपल, गजदड गजहुड । व०—गजशुण्डी । म०—पिपरीवृक्ष । गु०—पारशपीपलो । क०—वगरली । तै०—घेलमाखी । ता०—पोरिस, पूवरस । फा०—येलासवेंल्प । इं०—हिबिनस् Hibixus लै०—थेसपिसिया पोपलनिया Thaspesia Populnea ॥ पारिशपीपल-दुर्जर, चिकना, फलमे खट्टा, जडमे मीठा, कसैला और स्वादिष्ठ मीगवाला और कृमि, वीर्य तथा कफको वढानेवाला है ॥ ४ ॥ ५ ॥

विवरण ।

पारसपीपलका वृक्ष पीपलके समान होताहै, परन्तु पीपलमे फूल नही होते और पारस पीपलमे भिंडीके समान पीले फूल भी आते हैं और इसके फलके डेरे भिंडीके आकारके होते हैं ॥

अथ नन्दीवृक्षः [वेलिया पीपरा]।

नन्दीवृक्षोऽश्वत्थभेदः प्ररोही गजपादपः ॥ स्थालीवृक्षःक्षयतरुःक्षीरी च स्याद्वनस्पतिः ॥ ६ ॥ नन्दीवृक्षो लघुः स्वादुस्तिक्तस्तुवर उष्णकः॥ कटुपाकरसो ग्राही विषपित्तकफास्रजित् ॥ ७ ॥

नन्दीवृक्ष, अश्वत्थभेद, प्ररोही, गजपादप, स्थालीवृक्ष, क्षयतरु, क्षीरा और वनस्पति, ये नन्दीवृक्षके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—वेलियापीपल । गु०—वेलियो पीपलो । तै०—वट्टिचेट्टु ॥ वेलियापीपल—हलका, मधुर, कडवा, कसैला, गरम पाकमे तथा रसमे चरपरा, ग्राही और विष, पित्त, कफ तथा रुधिरविकारनाशक है ॥ ६ ॥ ७ ॥

विवरण ।

वेलियापीपल भी पीपलका भेदहै इसके पत्ते वडे वडे होतेहैं, इसकी शाखाओमे भी अंकुर होते हैं, इसकी जड वहुत मोटी होती है ॥

अथ उदुम्बरः [गूलर] ।

उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञांगो हेमदुग्धकः ॥ उदुम्बरो हिमो रूक्षो गुरुः पित्तकफास्रजित् ॥ मधुरस्तुवरो वर्ण्यो व्रणशोधनरोपणः ॥ ८ ॥

उदुम्बर, जन्तुफल, यज्ञाङ्ग, हेमदुग्धक, (क्षीरवृक्ष. हेमदुग्ध, सदाफल, अपुष्पफलसम्बन्ध, शीतवल्कल, कृमिकण्ट, कृमिकण्टक, पाणिमुख, पुष्पहीन, यज्ञफल, यज्ञोदुम्बर, ब्रह्मवृक्ष,हेमदुग्धी, सुचक्षु, श्वेतवल्कल, कालस्कन्ध, यज्ञयोग्य, यज्ञीय, सुप्रतिष्ठित, शीतवल्क, यज्ञसार, पुष्पशून्य, पवित्रक, सौम्य, शीतफल, और जघनेफल) ये गूलरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–गूलर,गूलट । बं०–यज्ञउडुमुर । म०–उंबर । गु०–उंबरो । क०–अत्ति । तै०–अत्तिचेट्टु । फा०–अजीरे आदम । अ०–जमीज । इं०–फिगट्री Kigtree लै०–फाइकसग्लोमिरेटा Eicusglomirata ॥

गूलर–शीतल, रूखा, भारी, मधुर, कसैला, वर्णको उत्तम करनेवाला, व्रणको, शुद्ध करनेवाला, रोपण और पित्त, कफ तथा रक्तविकार नाशक है ॥ ८ ॥

विवरण ।

उदुम्बरसे–गूलर, अर्थात् कठूमरका बडा वृक्ष होताहै इसपर फूल नही आते, इसकी शाखाओमेंसे फल उत्पन्न होतेहैं, फल गोल गोल अजीरके समान होतेहैं और इसमेंसे दूध निकलताहै इसके पत्ते लभेडेकेसे होतेहैं. नदी उदुम्बरके पत्ते गूलरके पत्तोंसे छोटे और फल भी छोटे होतेहैं, कठूमरके पत्ते गूलरके पत्तोंसे बडे होतेहैं, वरन् गगेरनके पत्तोंके समान होतेहैं, इसके पत्तोंको छूनेसे हाथोंमे खुजली होने लगती है और पत्तोमे दूध निकलताहै ॥

अथ जघनेफला [कठूमर] ।

काकोदुम्बरिका फल्गुर्मलयूर्जघनेफला ॥ मलयूः स्तम्भकृत्तिक्ता शीतला तुवरा जयेत् ॥ कफपित्तव्रणश्वित्रकुष्ठपाण्ड्वर्शकामलाः ॥ ९ ॥

काकोदुम्बरिका, फल्गु, मलयू, जघनेफला, (उदुम्बरफला, कर्कशच्छदना, असुमा, क्षीरी, खरपत्रिका, कृष्णउदुम्बरिका, खरपत्री, राजिका, क्षुद्रोदुम्बरिका, कुष्ठघ्नी, फल्गुवाटिका, अजाजी, फल्गुनी, चित्रभेपजा, ध्वाक्षनाम्नी, फल्गुफला, बहुफला, खरदला, काकोदुम्बर, काकोदुम्बरिका, अजाक्षी, और भद्रोदुम्बरिका) ये कठूमरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कठूमर, कठगूलरि । बं०–काकडुमुर । म०–काळाउम्बर । गु०–कालो उंबरो । क०–काअत्ति । तै०–ब्रह्ममेडिचेट्टु । फा०–अजीरेदस्ती । अ०–तनवरि । इं०–फिगट्री Kegtree लै०–फाइकस ओपोशिटिफोलिया Eicus Oppocti Folia ॥

कठूमर–मलबंध करनेवाला कडुवा, शीतल, कसैला और कफ, पित्त, व्रण, श्वेतकोट, पाण्डुरोग, अर्श, तथा कामला नाशक है ॥ ९ ॥

अथ प्लक्षः [पाखर] ।

प्लक्षो जटी पर्करी च पर्कटी च स्त्रियामपि ॥ प्लक्षः कषायः शिशिरो व्रणयोनिगदापहः ॥ दाहपित्तकफास्रघ्नः शोथहा रक्तपित्तहृत् १०

प्लक्ष, जटी, पर्करी, पर्कटी, (चारुदर्शिनी, शृङ्गी, वरोहशाखी, अश्वत्थी. पिपरी. कमण्डलुतरु, कपीतन,क्षीरी, सुपार्श्व, कमण्डलु, गर्दभाण्ड, पर्णिन, दृढप्ररोह, प्लवक, प्लवङ्ग, महाबल, कन्दराल. पर्कटी, प्लक्षा और प्लीक्षा) ये पाखरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पाखर. पिलखन, पाकर, पकरिया, । बं०–पाकुडगाछ । म०–पिपरीवृक्ष । गु०–पीपर्य । क०–हसुरी लै०–फाईकस विरेन्स Ficus Virance ॥

पाखर–कसैला, शीतल और व्रण, योनिरोग, दाह, पित्त, कफ, रक्तविकार, सूजन तथा रक्तपित्तको नष्ट करैहै ॥ १० ॥

विवरण ।

पाखरके वृक्ष–वडपीपलकी भाँतिके जंगल और ग्रामोमें बहुत होतेहै पत्ते लम्बे लम्बे आमकेसे होतेहैं, जब नया वृक्ष लगाना होताहै तो इसके गुद्दोंको काटकर बोदेते हैं, उसीमेंसे हरे हरे पत्ते निकलने लगतेहै. पाँच छः वर्पमे वैसाही वृक्ष छायादार होजाताहै, इसके सघनपनकी प्रशंसा है कि,ऐसी उत्तम छाया और किसी वृक्षकी नही होती ॥

अथ शिरीषः [सिरसः] ।

शिरीषो भण्डिलो भण्डी भण्डीरश्च कपीतनः ॥ शुकपुष्पः शुकतरुर्मृदुपुष्पः शुकप्रियः ॥ ११ ॥ शिरीषो मधुरोऽनुष्णस्तिक्तश्च तुवरो लघुः ॥ दोषशोथविसर्पघ्नः कासव्रणविषापहः ॥ १२ ॥

शिरीष, भण्डील, भण्डी, भण्डीर, कपीतन, शुकपुष्प, शुकतरु, मृदुपुष्प, शुकप्रिय, (कर्णपूर, शुकद्रुम, मण्डीर भण्डिर, मूर्द्धपुष्प, विषघाती, विषनाशन, शीतपुष्प, भण्डिक, स्वर्णपुष्पक, शुकेष्ट, वर्हपुष्प, विषहन्ता, सुपुष्पक, उद्दानक, शुक्रतरु, लोमशपुष्पक, कपतिक, कलिंग, श्यामल, शखिनीफल, मधुपुष्प, वृत्तपुष्प, शिखिनीफल, प्लवग और श्यामवर्ण ये शिरसके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--सिरस, सेरसा । ब०-शिरीषगाछ । म०-शिरसी । गु०-सरसडियो । क०-शिरसु । तैं०-दिरसन, शिरीषम्रानु । फा०-दरख्तेजकरिया । अ०-मुलतानुल् असजार । लै०-आल्बीझियालेबेक् Albizziale bbek आल्बीएमरा Albiamara ॥

सिरस-मधुर, गरम नहीं, कडवा, कसैला, हलका और दोष, सूजन, विसर्प, खॉसी, व्रण तथा विषविनाशक है ॥ ११ ॥ १२ ॥

विवरण

सिरसके वृक्ष-बडे ऊँचे ऊँचे और सघन जंगलोंमे होते है, पत्ते आमलेके समान छोटे छोटे और डालियोंमें बराबर होते हैं, फूल छोटे छोटे तन्तुओंसे सुसजित अत्यन्त कोमल हरे हरे कुछ पीले पीले सुगन्धियुक्त बहुत सुन्दर होतेहैं, फली पतली चपटी तीन चार आठ अंगुलतक लम्बी पौन अंगुलसे ज्यादा चौडी होतीहै भीतर उसके भूरे रंगके बीज होतेहैं, एक फलीमें दश बीजका प्रमाण है ॥

अथ क्षीरवृक्षपञ्चवल्कलयोर्लक्षणं । गुणाश्च ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपारीषप्लक्षपादपाः ॥ पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षास्तेषां त्वक् पञ्चवल्कलम् ॥ १३ ॥

केचित्तु पारीषस्थाने शिरीषं, वेतसं वा वदन्तीति शेषः ॥

क्षीरवृक्षा हिमा वर्ण्या योनिरोगव्रणापहाः॥ रूक्षाः कषाया मेदोघ्ना विसर्पामयनाशनाः ॥१४॥ शोथपित्तकफास्रघ्नाः स्तन्या भग्नास्थियोजकाः॥ त्वक्पञ्चकं हिमं ग्राहि व्रणशोथविसर्पजित् ॥१५॥ तेषां पत्रं हिमं ग्राहि कफवातास्रनुल्लघ ॥ विष्टम्भाध्मानजित्तिक्तं कषायं लघु लेखनम् ॥ १६ ॥

बड, गूलर, पीपल, पारसपीपल और पाखर, ये पांच क्षीरी वृक्ष (दूधवाले वृक्ष) कहातेहैं और इन पॉच वृक्षोकी छालको पच वल्कल कहतेहैं । कोई कहतेहैं कि, पारसपीपलके स्थानमे सिरस अथवा जामुनको क्षीरीवृक्षोंमें गिना है ॥ क्षीरीवृक्ष-शीतल, वर्णको उत्तम करने वाले, रूक्ष, कसैले, दुग्धवर्द्धक, टूटी अस्थिको जोडनेवाले और मेद, विसर्प, योनिरोग, व्रण, सूजन, पित्त, कफ तथा रक्तविकार नाशक हैं । इन पॉचोकी छाल-शीतल, ग्राही और व्रण, सूजन तथा विसर्प नाशक है । इन पॉचोके पत्ते-शीतल, ग्राही, हलके, कडवे, कसैले किंचित् लेखन और कफ, वात, रक्तविकार, मलबध, तथा आध्मान नाशक हैं ॥ १३-१६ ॥

अथ शालः [साखू] ।

शालस्तु सर्जकार्श्याश्वकर्णकः सस्यसम्बरः ॥अश्वकर्णः कषायः स्याद्व्रणस्वेदकफक्रिमीन् ॥ ब्रध्नाविद्रधिबाधिर्ययोनिकर्णगदान्हरेत् ॥ १७ ॥

शाल, सर्ज, कार्श्य, अश्वकर्णक, सस्यसवर, (अश्वकर्णिका, उपमेत, दीर्घशाख, जलदासन, लतातरु, लताशख, शकुतरु, शकुवृक्ष, सर्जरस, कल, कललजोद्भव, बल्लीवृक्ष, चीरपर्ण, रालकार्य, अजकर्णक, बस्तकर्ण, कषायी, ललन्, गन्धवृक्षक, वश, रालनिर्यास, दिव्यसार, सुरेष्टक, शूर, अग्निवल्लभ, यक्षधूप, सिद्धक, जरणद्रुम, तार्क्ष्यप्रसव, धन्य, दीर्घपर्ण, कुशिक और कौशिक) ये शालके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०-शाल । बं०-शालगाछ,लताशाल । म०-लधुराळेचा वृक्ष०-सज्जरदामर । तै०-एपचेट्टु । ता०-कुंगलियम् । इ०-सालट्री Saltree लै०-शोरिया रोबुस्टा Shoria Robusta ॥

शाल-कसैला, तथा व्रण, पसीना, कफ, कृमि, ब्रध्न, विद्रधि, बहिरापन, योनिरोग तथा कर्णरोगको नष्ट करैहै १७

अथ शालभेदः (सर्जकः) ।

सर्जकोऽन्योऽजकर्णः स्याच्छालो मरिचपत्रकः॥अजकर्णः कटुस्तिक्तः कषायोष्णो व्यपोहति ॥ कफपाण्डुश्रुतिगदान्मेहकुष्ठविषव्रणान् ॥ १८ ॥

सर्जक, अजकर्ण, शाल और मरिचपत्रक, ये सर्जके संस्कृत नाम है ॥

सर्ज (शालका भेद,) चरपरा, कडवा, कसैला, गरम और कफ, पाडुरोग, कर्णरोग, प्रमेह, कोढ, विष, तथा व्रणविनाशक है ॥ १८ ॥

अथ शल्लकी [तालई] ।

शल्लकी गजभक्ष्या च सुवहा सुरभी रसा॥ महेरुणा कुन्दुरुकी वल्लकी च बहुस्रवा ॥ ॥१९॥ शल्लकी तुवरा शीता पित्तश्लेष्मातिसारजित् ॥ रक्तपित्तव्रणहरी पुष्टिकृत्समुदीरिता ॥ २० ॥

शल्लकी, गजभक्ष्या, सुवहा, सुरभि, रसा, महेरुणा, कुन्दुरुकी, वल्लकी, बहुस्रवा, (गजभक्षा, गजप्रिया, ह्लादिनी, महारुहा, वसा, मोचा, सुरभी, सुरभीरसा, शिल्लकी, सिल्लकी, सल्लकी, सिल्लकी, सिल्हभूमिका, गजाशना, महेरणा, महारणा, ह्लादिनी, अश्वमूत्री, कुम्भी, अम्लफला, करका, सुखमोदा, सुगन्धा, सुरभिस्रवा, गजवल्लभा, ह्रस्वदा, गन्धवीरा, सुस्रवा, वनकर्णिका, नागवधू, सुश्रीका, गन्धमूला, रसाला और जलतिक्तिका) ये सालईके संस्कृत नामहैं

हिन्दी–सालई, सलई, । बं०–शलई, शालविशेष । म०–शालईवृक्ष । गु०–शालेडु । क०–तडीकु । ता०–कुलि । लै०–बोझवेलिया थेरीफेरिया Boswelia Theıifera ॥

सालई–कसैली, शीतल, पुष्टिकारक और पित्त, कफ, अतिसार, रक्तपित्त तथा व्रणविनाशकहै ॥ १९ ॥ २० ॥

विवरण ।

सल्लकी अर्थात् सालईका वृक्ष बहुत बडा होताहै, पत्ते नीमके समान होतेहैं, फलमें तीन रेखा होतीहैं इसी वृक्षका गोंद कुन्दरु होताहै ॥

अथ शिंशिपा [शीसम] ।

शिंशिपा पिच्छिला श्यामा कृष्णसारा च सा गुरुः ॥ कपिला सैव मुनिभिर्भस्मगर्भेति कीर्तिता ॥ २१ ॥ शिंशिपा कटुका तिक्ता कषाया शोषहारिणी ॥ उष्णवीर्या हरेन्मेदःकुष्ठश्वित्रवमिक्रिमीन् ॥ वस्तिरुग्व्रणदाहास्रबलासान्गर्भपातिनी ॥ २२ ॥

शिंशिपा, पिच्छिला, श्यामा, कृष्णसारा, (पिपला, युगपत्रिका, धूम्रिका, वीरा, कपिला, अगरुशिंशिपा, अगुरु, युग्मपत्रिका, कालानुसार्य, वीरा, मडलपत्री और तीव्रधूनका) ये सीसमके संस्कृत नाम हैं ॥

जो सीसम कपिल (भूरे) रंगका होता है उसको भस्मगर्भा कहते हैं ॥

हिन्दी०–सीसम, कपिलवर्ण सीसम । बं०–शिशुगाछ, शादा शिशुगाच्छ । म०–काळाशिसवा । गु०–शिशम । क०–करीयइविडु । तै०–जिट्टेरेगुचेट्टु । ता०–जानुक् कुकट्टइ । अ०–सासम । इं–ब्लाकवुड Black wood लै०–डालवरजिया लेटिफोलिया Dalbergia Latifolıa

सीसम–चरपरा, कडवा, कसैला, उष्णवीर्य, गर्भगिरानेवाला और मेद, कोढ, चित्रितकुष्ठ, वमन, कृमि, वस्तिरोग, व्रण, दाह, रक्तविकार, तथा कफ गर्भको नष्ट करे है ॥ २१ ॥ २२ ॥

विवरण ।

शीशमके वृक्ष बहुत बडे बडे जगलमें होतेहैं. पत्ते गोल गोल नोकदार वेरीके बराबर होतेहैं. फूल बहुत छोटे छोटे गुच्छोंमें लगतेहैं. फली बहुत पतली और चपटी होती है, उसमें छोटे छोटे चपटे बीज निकलतेहैं, शीशमकी लकडी कुछ कुछ श्यामता और ललाई लिये भूरे रगकी होतीहै. दूसरा काले रगका शीशम भी इसी प्रकारका होताहै ॥

अथ अर्जुनाख्यः [कोह] ।

ककुभोऽर्जुननामाख्यो नदीसर्जश्च कीर्तितः॥ इन्द्रद्रुर्वीरवृक्षश्च वीरश्च धवलः स्मृतः ॥ ॥ २३ ॥ ककुभः शीतलो हृद्यः क्षतक्षयविषास्रजित् ॥ मेदोमेहव्रणान्हन्ति तुवरः कफपित्तहृत् ॥ २४ ॥

ककुभ, नदीसर्ज, इन्द्रद्रु, वीरवृक्ष, वीर, धवल और जितने अर्जुनके नाम हैं वे सब, (फाल्गुन, पार्थ, चित्रयोधी, धनजय, वैरान्तक, किरीटी, पांडव, वीरतरु, इन्द्रद्रुम, शम्बर, गाण्डीवी, कर्णारि, करवीरक, कौन्तेय, इन्द्रसूनु, गडीरी शिवमल्लक, सव्यसाची, वीरद्रु, कृष्णसारथि और पृथाज) ये कोहके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कौह, काह, अर्जुनवृक्ष । बं०–अर्जुनगाछ । म०–सारढोल, अर्जुनवृक्ष । गु० आसोदरो । क०–अदमर तै०–मद्दिचेट्टु । लै०–बोहिनिया टोमेन्टोसा Bauhenia tomentosa ॥

कौह–शीतल, हृदयको हितकारी, कसैला और क्षत, क्षय, विष, रुधिरविकार मेद, प्रमेह, व्रण, तथा पित्तको नष्ट करैहै ॥ २३ ॥ २४ ॥

विवरण ।

अर्जुनके वृक्ष बडे २ लम्बे २ और ऊँचे२ और वनोंमें होते हैं, इसके पत्ते लम्बे और गोल अनीदार होतहैं,

इसकी छाल सफेद रंगकी होती है और उसमें दूध निकलता है ।

अथ बीजकः [विजयसार] ।

बीजकः पीतसारश्च पीतशालक इत्यपि ॥ बन्धूकपुष्पः प्रियकः सर्जकश्चासनः स्मृतः ॥ २५ ॥ बीजकः कुष्ठवीसर्पश्वित्रमेहगुदक्रिमीन् ॥ हन्ति श्लेष्मास्रपित्तश्च त्वच्यः केश्यो रसायनः ॥ २६ ॥

बीजक, पीतसार, पीतशालक, बन्धुकपुष्प, प्रियक, सर्जक, असन, (पीतशाल, पीतसालक, पीतसाल, परमायुध, महासर्ज, सौरि, बीजवृक्ष, नीलक, प्रियसालक और असन) ये विजयसारके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–विजयसार । म०–विवला । गु०–वीयो । बं०–पियाशाल । क०–कपिन्नहाने । तै०–मद्दिचेट्टु । फा०–कमरकस । इं०–इन्डियन किनोटी Indian Kinotree लै०–टेरोकार्पस मार्सुपियम् P. Teroacrpus Marsupium ॥

विजयसार–त्वचाको हितकारी, केशोंको उत्तम करनेवाला, रसायन और कोढ, विसर्प, चित्रित कोढ, प्रमेह, गुदाके रोग, कृमि, कफ, रक्तविकार तथा पित्तको नष्ट करै है ॥ २५ ॥ २६ ॥

विवरण ।

असन अर्थात् विजयसारके वृक्ष वनोमे बहुत बडे बडे होतेहैं, पत्ते पीपलके पत्तोसे कुछ कुछ छोटे होतेहैं, फूल पीले आमलेके समान होतेहैं इसकी लकडी कालापन लिये होतीहै ॥

अथ खदिरः ।

खदिरो रक्तसारश्च गायत्री दन्तधावनः॥ कण्टकी वालपत्रश्च बहुशल्यश्च यज्ञियः ॥ २७ ॥ खदिरः शीतलो दन्त्यः कण्डूकासारुचिमेणुत॥ तिक्तः कषायो मेदोघ्नः कृमिमेहज्वरव्रणान् ॥ श्वित्रशोथामपित्तास्रपाण्डुकुष्ठकफान्हरेत् ॥ २८ ॥

खदिर, रक्तसार, गायत्री, दतधावन, कण्टकी, बालपत्र, बहुशल्य, यज्ञिय, (बालतनय, पथिद्रुम, तिक्तसार, कण्टकीद्रुम, प्रसख, यूपद्रु, वालपुत्र, कर्कटी, जिह्मशल्य, कुष्ठहृत्, वालपत्रक, यूपद्रुम, खदपत्री, क्षितिक्षय, सुशल्य, वक्रकण्टक, यजांग, जिह्वाशल्य, सारद्रुम, कुष्ठारि, बहुसार और मेध्य) ये खैरके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०–खैर । ब०–खयेरगाछ । म०–खैर । गु०–खेर । क०–कैंपिन खैर । तै०–चण्डचेट्टु । लै०–एकेश्याकेटेच्यू Acacia Catechu ॥

खैर–शीतल, दातोको हितकारी, कडवी, कसैली और खुजली, खांसी, अरुचि, मेद, कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, चित्रितकोढ, सूजन, आम, पित्त, रुधिरविकार, पांडुरोग, कोढ, तथा कफको नष्ट करै है ॥ २७ ॥ २८ ॥

विवरण ।

खैरके वृक्ष वनमें बडे बडे होते हैं, इसकी छाल खरदरी और चटकी हुई होतीहै, इसके पत्ते आमलेकेसे छोटे छोटे होते हैं, इसपै महीन महीन और टेढे टेढे कॉटे होते हैं, खैरसार और कत्था ये भी खैरकी लकडीका बनाया जाताहै, दूसरे सफेद खैर और दुर्गन्धित खैरके वृक्ष वनमे बहुत होतेहैं ॥

अथ श्वेतखदिरः [पपरियाकत्था] ।

खदिरः श्वेतसारोऽन्यः कदरः सोमवल्कलः॥कदरो विशदो वर्ण्यो मुखरोगकफास्रजित् ॥ २९ ॥

खदिर, श्वेतसार, कदर, सोमवल्कल (सोमवल्क, ब्रह्मशल्य, खदिरोपम, कार्मुक, कुजकण्टक, सोमसार, सोमवृक्ष, पथिद्रुम, श्यामसार, नेमिवृक्ष, कण्टाढय, महावृक्ष और द्विजप्रिय) ये सफेद खैरके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी०सफेद खैर । ब०–पापरी खयेरगाछ । म०–पांढरा खैर । गु०–खेर धोलासारवालो । क०–विळीयर्ति । तै०–रवासुतेल्लचण्ड ॥ सफेदखैर–स्वच्छ, वर्णको उत्तम करनेवाला, और मुखरोग, कफ, तथा रक्तविकार नाशक है ॥ २९ ॥

अथ इरिमेदः [दुर्गन्धखैर] ।

इरिमेदो विट्खदिरः कालस्कन्धोऽरिमेदकः ॥ इरिमेदः कषायोष्णो मुखदन्तगदास्रजित् ॥ हन्ति कण्डूविषश्लेष्मकृतिकुष्ठविषव्रणान् ॥ ३० ॥

इरिमेद, विट्खदिर, कालस्कन्ध, अरिमेदक, (विट्, असिमेद, क्रिमिशात्रव, गिरिमेद, मरुद्द्रुम, गोधास्कन्ध, अहिमार, पूतिमेद और अहिमेदक) ये दुर्गन्ध खैरके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–दुर्गन्धखैर । ब०–गुये बाब्ला, विट्खैर । म०–शेण्या खैर, गधियाहिवर । गु०–गन्धिलोखैर । इ०–स्पज टी Spongetree लै०–एकेशिया । फारनेशीयाना Acacia Farneisiana ॥

दुर्गन्धखैर–कसैली, गरम, और मुखरोग, दन्तरोग, रुधिरविकार, खुजली, विष, कफ, कृमि, कोढ, तथा विषजन्य व्रणको नष्ट करेहै ॥ ३० ॥

अथ रोहीतकः [रोहेडा]।

रोहीतको रोहितको रोही दाडिमपुष्पकः॥ रोहीतकः प्लीहघाती रुच्यो रक्तप्रसाधनः ॥ ३१ ॥

रोहीतक, रोहितक, रोही, दाडिमपुष्पक, (रोहित, कुशाल्मली, सदाप्रसून, कूटशाल्मलि, विरोचन, शाल्मलिक, रक्तपुष्प, सदापुष्प, रक्तघ्न, प्लीहनाश प्लीहघाती, रुच्य, रक्तप्रसाद, प्लीहशत्रु, प्लीहघ्न, मासदलन, यकृद्वैरी, चलच्छद, प्लीहारि, रोहितेय, और रोहिण) ये रोहेडेके संस्कृतनाम हैं ॥

हिन्दी रोहेडा । ब०–रोढा, रयना, । म०–रक्तरोहिडा । गु०–रगतरोहीडो । क०–यरड्डमल्ल । तै०–मुल्लुमोदुगचेट्टु । लै०–टेकोमा अण्डयुलेटा Tecoma Undulata ॥

रोहेडा–रुचिकारक, रुधिरको शुद्ध करनेवाला और प्लीहाको नष्ट करनेवाला है ॥ ३१ ॥

विवरण ।

रोहिडेके वृक्ष सघन वनमे अधिक होते हैं, फूल अनारके समान लाल रगके होतेहैं, लाल और सफेद रगके फूलोंके भेदसे रोहिडेकी दो जाति हैं, राजनिघण्टुमें कूट शाल्मली और लाल रोहिडेको एकही लिखाहै ॥

अथ बब्बूलः [बबूर]।

बब्बूलः किङ्किरातः स्यात्किङ्किराटः सपीतकः॥स एव कथितस्तज्ज्ञैराभाषट्पदमोदिनी॥ बब्बूलः कफनुद् ग्राही कुष्ठक्रिमिविषापहः॥ ३२ ॥

बब्बूल, किकिरात, किकिराट, सपीतक, आभाषट्पदमोदिनी, (मालाफल, युग्मकण्ट, दृढारूह, कण्टकी, सूक्ष्मपत्र, पीतपुष्प, कषायक, युगलाक्ष, कण्टाळु, तीक्ष्णकण्टक, गोशृङ्ग, पक्तिबीज, दीर्घकण्टक, कफान्तक, दृढबीज, अजभक्ष, कण्टल, बब्बोल) ये बबूरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–बबूर, बबूल कीकर । ब०–बाबूलागाछ । म०–बाभूल, बाभळ । गु०–बावल । क०–पुल्ई । तै०–बलवतडु । इ०–एकस्याट्री Acaciatree लै०–आकेशिया आरेबीक Acacia Arabic ॥

कीकर–ग्राही, और कफ कोट, कृमि तथा विष नाशक है ॥ ३२ ॥

विवरण ।

बबूरके बहुतसे वृक्ष जलाशयके समीप जगलादिकमें एकत्र उपज खडे होते हैं, इसमें सुईके समान महातीक्ष्ण काँटे होते हैं, और वे काँटे दो दो एकत्र लगे होते हैं पत्ते बहुत छोटे छोटे आमलेकेसे होते हैं, फूल पीले रगके गोल गोल लगते हैं,उसमें मिरचके सदृश टेडी टेटी फली होती हैं

अथ अरिष्टकः [रीठा]।

अरिष्टकस्तु माङ्गल्यः कृष्णवर्णोऽर्थसाधनः॥ रक्तबीजः पीतफेनः फेनिलो गर्भपातनः॥ अरिष्टस्तु त्रिदोषघ्नो ग्रहभिद्गर्भपातनः ३३

अरिष्टक, मांगल्य, कृष्णवर्ण, अर्थसाधन, रक्तबीज, पीतफेन, फेनिल, गर्भपातन, (गुच्छफल, अरिष्ट, मगल्य, कुम्भबीजक, प्रकीर्य और सोम वल्कल) ये रीठेके संस्कृतनाम हैं ॥

हिन्दी–रीठा । ब०–रिठेगाछ । म०–रीठा । गु०–अरीठा । तै०–कुकडि । फा०–फिदकहिन्दी । अ०–बुदक । इ०–सोपबेरी सोपनट Soapberri Soopnut लै०सेपिन्टस् इमार्जिनटस Sapintuas Emarginatus सेपिडस ट्रिफोलियेटस Sapindus Trifoliatus ॥

रीठा–त्रिदोषनाशक, ग्रहोंको दूर करनेवाला और गर्भ गिरानेवाला है ॥ ३३ ॥

विवरण ।

रीठेके वृक्ष वन और बागोंमे बहुत होते हैं, पत्ते एक डडीमे छः सात नीमकी तुल्य लगे होते हैं, परन्तु उनमें आरेकेसे खार नहीं होते, फलोंके गुच्छे होते हैं, उनको रीठा कहते हैं, उनके भीतर काली गुठली निकलती है; उसके भीतर पीली मींग होती है ॥

अथ गर्भकरः [पितौंजिया]।

पुत्रजीवो गर्भकरो यष्टीपुष्पोऽर्थसाधकः॥ पुत्रजीवो गुरुर्वृष्यो गर्भदः श्लेष्मवातहृत्॥ सृष्टमूत्रमलो रूक्षो हिमः स्वादुः पटुः कटुः ॥ ३४ ॥

पुत्रजीव, गर्भकर, यष्टीपुष्प, अर्थसाधक, (पवित्र-गर्भद, सुतजीवक, अपत्यजीव, सिद्धिद, अपत्यजीवक, जीवपुत्रक, श्लीपदापह, कुमारजीव, यष्टीपुष्प, और अर्थ-साधक) ये पितौजियेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—जियापोता, पितौंजिया, पतिजिया, पतजू। बं०—जियापुन्ता, पुतजिया । म०—पुत्रजीवक वृक्ष । गु०—पुत्रजीवक । क०—पुत्रजीव । तै०—शीग, कुँवर-जुवि । लै०—पुत्रजीवा राक्स-बुर्धिआई Putiajiva Raxburghia ॥

पितौंजिया—भारी, वीर्यवर्द्धक, गर्भदायक, मलमूत्रकी प्रवृत्ति करनेवाला, रूखा, शीतल, मधुर, खारी, चरपरा, नमकीन और कफ तथा वात विनाशक है ॥ ३४ ॥

विवरण।

पुत्रजीवक अर्थात् पतिजियाके वृक्ष सम्पूर्ण इगुदीके वृक्षके समान होतेहैं. पत्ते भी उसी आकारके, फूल भी उसी प्रकारके होतेहैं और इसके बीजोकी माला रुद्राक्षके तुल्य बनतीहै, प्रायः साधुलोग बहुत बना लेतेहै ॥

अथ इंगुदी [हिंगोट]।

इंगुदोऽङ्गारवृक्षश्च तिक्तकस्तापसद्रुमः॥इंगुदः कुष्ठभूतादिग्रहव्रणविषक्रिमीन् ॥ हन्त्युष्णः श्वित्रशूलघ्नस्तिक्तकः कटुपाकवान् ॥ ३५ ॥

इगुद, अगारवृक्ष, तिक्तक, तापसद्रुम, (भल्लकीवृक्ष, इंगुदी, कण्टक, पुत्रिपत्रा, तापसतरु, कण्टक, इगुल, हेगुपत्र, विषकण्ट, अनिलान्तक, गौरत्वक्, तनुपत्र, शूलारि, वेषकण्टक, तीक्ष्णकण्ट, तैलफल, पूतिगन्ध, विगन्धक, कोष्टुफल, तिक्तमज्ज, कुशरक, जलजन्तुविनाशक, दीर्घ-कण्टा, तैलबीजा, दारूपमफला और अंगुलिदला) ये हिंगोटके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—हिंगोट, गोंदी । बं०—इगोट । म०—हिंगण बेट । गु०—इगोरियो । तै०—गरा । अ०—हिलेलजे । फा०—डेलील Delil लै०—बेनेनाइटीस राक्सबुर्घीआई Balanites Raxburghii ॥

हिंगोट—गरम, कडवा, पाकमें चरपरा और कोढ, भूतादिग्रह, व्रण, विष, कृमि, श्वित्रितकोढ तथा शूलको नष्ट करैहै ॥ ३५ ॥

विवरण।

इंगुदीके बडे बडे वृक्ष जगल और वनोमे उत्पन्न होतेहैं. उस वृक्षमे काँटे भी होतेहैं, फल नींबूके समान ठीक लम्बे और गोल होतेहैं, फलके ऊपर गुठलीके ढंग रस लगा रहताहै, मानो फल रसमे तर रहताहै ॥

अथ जिङ्गिनी।

जिङ्गिनी झिङ्गिनी झिङ्गी सुनिर्यासा प्रमोदिनी ॥ जिंगिनी मधुरा सोष्णा कषाया व्रणशोधिनी ॥ ३६ ॥ कटुका व्रणहृद्रोग-वातातीसारहृत्पटुः ॥

जिगिनी, झिगिनी, झिगी, सुनिर्यास, प्रमोदिनी, और (कुलकमंजरी) ये जिगिनीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—जिगिनी । म०—मोई, मोक । गु०—जिगिनी, मवेडी । क०—ओरीय । लै०—ओडिना वोडियर Odina Wodier ॥

जिगिनी- मधुर, गरम, कसैली, व्रणको शुद्ध करने-वाली, चरपरी, नमकीन, और व्रण, वात, अतीसार तथा हृदयरोग नाशक है ॥ ३६ ॥

विवरण।

जिगनीके बडे बडे ऊँचे वृक्ष जगल और पहाडोमें होतेहैं, पत्ते मरुवेके समान शाखाओंमें बराबर दोनो ओर लगे होतेहैं, फूल सफेद और फल बेरके समान आतेहैं ॥

अथ तमालः।

तमालः शालवद्वेद्यो दाहविस्फोटहृत्पुनः॥३७

तमाल, (तापिच्छ, कालस्कन्ध, अमितद्रुम, लोकस्कन्ध, नीलध्वज, नीलताल, तापिञ्ज, तापिच्छ, कृष्णस्कन्ध, तम, तमा, कालताल और महाबल) ये तमालके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—तमाल, श्यामतमाल, । बं०—तामालगाछ । म०—तमालवृक्ष, गु०—तमाल । तै०—तमालु ॥

गुण—तमालके गुण शालके सदृश जानने, विशेष करके दाह तथा विस्फोटको नष्ट करै है ॥ ३७ ॥

विवरण।

तमालके वृक्ष प्रायः यमुना और तापीनदीके निकट बहुत होतेहैं, वृक्षकी मूल और शाखा श्याम रगकी होती हैं, पत्ते गोल शीशमके सदृश और फूल लाल २ होतेहैं और फल छोटे छोटे करोदेके समान होतेहैं ॥

अथ तूणी।

तूणी तुन्नक आपीनस्तुणिकः कच्छक-स्तथा ॥ कुठेरकः कान्तलको नन्दिवृक्षश्च नन्दकः ॥ ३८ ॥ तुणी रक्तः कटुः पाके कषायो मधुरो लघुः॥ तिक्तो ग्राही हिमो वृष्यो व्रणकुष्ठास्रपित्तजित् ॥ ३९ ॥

तूणी, तुनक, आपीन तुणिक, कच्छक, कुबेरक, कान-लक, नन्दिवृक्ष और नंदक, ये तुनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–तुन । बं०–तुदवृक्ष । म०–नांदुरखी, नांद-रुख । गु०–तूणी ॥

गुण–तुन लाल, चरपरी, कसैली, मधुर, हलकी, कड्वी, ग्राही, शीतल, वीर्यवर्द्धक और व्रण, कोढ तथा रक्तपित्त नाशक है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

विवरण ।

तुनके बडे बडे सघन वृक्ष जंगल और वनोंमें होतेहैं, पत्ते नीमके पत्तोंसे कुछेक बडे होतेहैं, फूल बहुत छोटे २ सफेद रंगके आतेहैं, लकडी इसकी बहुत उत्तम होतीहै ॥

अथ भूर्जपत्रः [भोजपत्र] ।

भूर्जपत्रः स्मृतो भूर्जश्चर्म्मी बहुवलल्कलः ॥ भूर्जो भूतग्रहश्लेष्मकर्णरुक्पित्तरक्तजित् ॥ कषायो राक्षसघ्नश्च मेदोविषहरः परः ॥ ४० ॥

भूर्जपत्र, भूर्जचर्मी, बहुलवल्कल, (मुचर्मा, वल्कलद्रुम, भूर्जपत्रक, चित्रत्वक्, बिन्दुपत्र, रक्षापत्र, विचित्रक, भूतघ्न, मृदुपत्र, मृदुचर्मी, शैलेन्द्रस्थ, चर्मद्रुम, छत्रपत्र, शिव, स्थिरच्छद, मृदुत्वक्, त्वलनिर्मोक, पत्रकी, स्निग्धदल पत्रपुष्पक, भुज, बहुपट, बहुत्वक, और मृदुच्छद) ये भोजपत्रके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–भोजपत्र । बं०–भूर्जिपत्र । म०–भूर्जपत्र । गु०–भोजपत्र । क०–भूर्जपत्र । इं०–जेकेमोण्टी Jacquemonti लै०–बिटयुला भोजपत्र Betula Bhojpatra ॥

भोजपत्र–कसैला और भूत, ग्रह, कफ, कर्णरोग, पित्त, रक्तविकार, राक्षसबाधा, मेद तथा विषविनाशक है॥४०॥

विवरण ।

भोजपत्रके वृक्ष हिमालय आदि पर्वतोंपर अधिकतासे उत्पन्न होतेहैं, इस वृक्षकी छालहीको भोजपत्र कहतेहैं. छाल कागज तथा गरेने केलेके पत्तोंके समान होतीहै ॥

अथ पलाशः [ढाक] ।

पलाशः किंशुकः पर्णो यज्ञियो रक्तपुष्पकः ॥ क्षारश्रेष्ठो वातहरो ब्रह्मवृक्षः समिद्वरः ॥ ४१ ॥ पलाशो दीपनो वृष्यः सरोष्णो व्रणगुल्मजित् ॥ कषायः कटुकस्तिक्तः स्निग्धो गुदजरोगजित् ॥ ४२ ॥ भग्नसन्धानकृद्दोषग्रहण्यर्शःकृमीन्हरेत् ॥ तत्पुष्पं स्वादु पाके तु कटु तिक्तं कषायकम् ॥ ४३ ॥ वातलं कफपित्तास्रकृच्छ्रजिद् ग्राहि शीतलम् ॥ तृड्दाहशमकं वातरक्तकुष्ठहरं परम् ॥ ४४ ॥ फलं लघूष्णं मेहार्शःकृमिवातकफापहम् ॥ विपाके कटुकं रूक्षं कुष्ठगुल्मोदरप्रणुत् ॥ ४५ ॥

पलाश, किंशुक, पर्ण, यज्ञिय, रक्तपुष्पक, क्षारश्रेष्ठ, वातहर, ब्रह्मवृक्ष, समिद्वर, (रक्त, क्रिमिघ्नक, वातपोथ, पलाशक, त्रिपर्ण, रक्तपुष्प, पूतद्रु, ब्रह्मवृक्षक, ब्रह्मोपनेता, काष्ठद्रु, बीजस्नेह, कृमिघ्न, वक्रपुष्पक और सुपर्णी) ये ढाकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०–ढाक, टेसू, पलास, केसू, छिउल, । बं०–पलाशगाछ । म०–पळस । गु०–खाखरो । क०–मुत्तुग । तै०–मोदुगचेट्टु । ता०–परसन् । इं०–डाउनी ब्रांच ब्युटिया Dawnybranch Butea लै०–ब्युटिया पार्विफ्लोरा (श्वेत) Butea Parviflora ब्युटिया फ्राण्डोसा Butea Parviflora ॥

पलाश–अग्निको दीपन करनेवाला, वीर्यवर्द्धक, दस्तावर, गरम, कसैला, चरपरा, कडवा, स्निग्ध, टूटेहुएको जोडनेवाला, और व्रण, गुल्म, गुदाके रोग, दोष, संग्रहणी, बवासीर, तथा कृमिको नष्ट करै है ॥

ढाकके फूल–स्वादिष्ट, पाकमें चरपरे कडवे, कसैले, वातकारक, ग्राही, शीतल, और कफ, पित्त, रुधिरविकार, मूत्रकृच्छ्र, तृषा, दाह, वातरक्त, तथा कुष्ठको नष्ट करैहैं ॥

ढाकके फल–हलके, गरम, पाकमें चरपरे, रूक्ष और प्रमेह, बवासीर, कृमि, वात, कफ, कोढ, गुल्म तथा उदरपीडा नाशक हैं ॥ ४१–४५ ॥

विवरण ।

ढाकके वृक्ष जंगल और वनोंमें बहुत होतेहैं एक एक डंडीमें तीन तीन पत्ते होतेहैं, प्रथम लाल रंगके निकलतेहैं फिर हरे होजातेहैं, फूल काले और लाल कुछेक पीलापन लिये अत्यन्त सुन्दर डालियोंमें लगतेहैं. उसमें बडी, बडी फलियें लगतीहैं, उनमेंसे चपटे और गोल बीज निकलतेहैं. उनको सबलोग ढकपन्ना कहतेहैं ॥

अथ शाल्मलिः [सेम ल (र)]।

शाल्मलिस्तु भवेन्मोचा पिच्छिला पूरणीति च ॥ रक्तपुष्पा स्थिरायुश्च कण्टकाढ्या च तूलिनी ॥ ४६ ॥ शाल्मली शीतला स्वाद्वी रसे पाके रसायनी ॥ श्लेष्मला पित्तवातास्रहारिणी रक्तपित्तजित् ॥ ४७ ॥

शाल्मलि, मोचा, पिच्छिला, पूरणी, रक्तपुष्पा, स्थिरायु, कण्टकाढ्या, तूलिनी (शल्मलि, शाल्मली, शल्मली, तूलिफला, दुरारोहा, शाल्मलिनी, शाल्मल, अपूरणी, निर्गन्धिपुष्पी, तुलिनी, कुक्कुटी, कण्ठकाष्ठ, मोचनी, शीमूल, कदला, चिरजीवी, पिच्छिल, रक्तपुष्पक, तूलवृक्ष, मोचाख्य, कण्टकद्रुम, कुकुटी, रक्तोत्पल, रम्यपुष्प, बहुवीर्य, यमद्रुम, दीर्घद्रुम, स्थूलफल, दीर्घायु और दीर्घपादपा) ये सेमलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सेमल, सेमर। बं०–शिमुल। म०–सावरी, शेवरी। गु०–शेमलो। क०–यवलवदमर। तै०–रुगचेट्टु। ता०–पुला। इं०–सिल्ककाटनट्री Silk Cotton Tree लै०–बोम्बेक्स मेले बेरीकम Bambax Malabaricum सालमेलिया, मेलबेरीका, Salmalia Malabarica॥ सेमल–शीतल, मधुर, पाकमें मधुर, रसायन, कफकारक और पित्त, वात, रुधिरविकार, तथा रक्तपित्तको नष्ट करै है ॥४६॥४७॥

विवरण।

सेमलके वृक्ष अत्यन्त बडे और सघन, वनोंमे और जगलोंमें अधिकतासे होते हैं, उसकी एक एक डण्डीमें पाच २ सात २ पत्ते होते हैं, वृक्षमें काँटे होते हैं, वे काँटे जडमे पोले और ऊपरसे महीन होते हैं, फूल लाल कमलके समान बडे होते हैं, उनमें आकके सदृश फल लगते हैं, उनको सेमलगदे कहते हैं, सूखनेपर उनके भीतरसे रुई निकलती है ॥

अथ मोचरसः।

निर्यासः शाल्मलेः पिच्छा शाल्मलीवेष्टकोऽपि च॥ मोचास्रावो मोचरसो मोचनिर्यास इत्यपि ॥ ४८ ॥ मोचास्रावो हिमो ग्राही स्निग्धो वृष्यः कषायकः ॥ प्रवाहिकातिसारामकफपित्तास्रदाहनुत् ४९

शाल्मलीनिर्यास, पिच्छा, शाल्मलीवेष्टक, मोचास्राव, मोचरस, मोचनिर्यास, (मोचसार, मोचश्रुत, मोचस्रुत, पिच्छिलसार, सुरस, मोचाक, मोचाह्व, वेष्मरस और शाल्मलरस) ये मोचरसके संस्कृतनाम हैं ॥

हिन्दी–मोचरस, सेमरका गोंद। बं०–शिमुलेर आठा। म०–सावरीचा डीक। गु०शेमलानो गुद ॥ मोचरस–शीतल, ग्राही, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, कसैला और प्रवाहिका, अतिसार, आम, कफ, पित्त, रुधिरविकार तथा दाहको नष्ट करै है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

विवरण।

मोचरस–सेमलके गोंदहीको मोचरस कहते हैं ॥

अथ कूटशाल्मलिः।

कुत्सितः शाल्मलिः प्रोक्तो रोचनः कूटशाल्मलिः॥कूटशाल्मलिकस्तिक्तः कटुकः कफवातनुत्॥ ५०॥भेद्युष्णः प्लीहजठरयकृद्गुल्मविषापहः ॥ भूतानाहविबन्धास्रमेदःशूलकफापहः ॥ ५१ ॥

कुत्सित–शाल्मलि, रोचन और कूटशाल्मलि ये कूटशाल्मलिके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कालासेमर। कूटशाल्मलि–कडवा, चरपरा, दस्तावर, गरम और कफ, वात, प्लीहा, उदररोग, यकृत् गुल्म, विष, भूत, अफारा, मलबन्ध, रुधिरविकार, मेद, शूल, तथा कफको नष्ट करै है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

विवरण।

कूट शाल्मलीके वृक्ष जगलमें बहुत होते हैं, इसके फूल अनारके समान लाल रगके होतेहैं, दूसरी जातिके सेमलपर सफेद रगतके फूल आते हैं, इस वृक्षके दो भेदहैं ॥

अथ धवः [धौं]।

धवो धटो नन्दितरुः स्थिरो गौरो धुरन्धरः ॥ धवः शीतः प्रमेहार्शःपाण्डुपित्तकफापहः ॥ मधुरस्तुवरस्तस्य फलश्च मधुरं मनाक् ॥ ५२ ॥

धव, धट, नन्दितरु, स्थिर, गौर, धुरधर, (शाकाख्य दृढतरु, मधुरत्वक्, शुष्कवृक्ष, शुष्काङ्ग, पाण्डुतरु, धवल, पाण्डुर, पीतफल और मधुरत्वक् (ये धौके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–धाय, धौं, धव। बं०–वाऊयागाछ। म०–धावडा। गु०–धावडो। क०–सिरिवर। तै०–नारिज-

चेट्टु । लै०-एनोजिमस लटिफोलिया Anogisus Latifolia ॥

धौं-शीतल, मधुर, कसैली और प्रमेह, बवासीर, पाण्डु, पित्त तथा कफको नष्ट करै है । धौंके फल किंचित् मधुर होते हैं ॥ ५२ ॥

विवरण ।

धोंके वृक्ष वनोंमें बहुत बडे बडे होते हैं, इसके पत्ते अमरूदके समान और लाल सफेद रंगके होतेहैं, फल बहुत छोटे छोटे होतेहैं, इसकी लकडीके हल और मूसल बनाते हैं ॥

अथ धन्वंगः [धामिन] ।

धन्वंगस्तु धनुर्वृक्षो गोत्रवृक्षः सुतेजनः ॥ धन्वंगः कफपित्तास्रकासहृत्तुवरो लघुः ॥ बृंहणो बलकृद्रूक्षः सन्धिकृद्व्रणरोपणः ५३॥

धन्वङ्ग, धनुर्वृक्ष, गोत्रवृक्ष और सुतेजन, ये धामिनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-धामिन। म०-धामणीचा वृक्ष । गु०-धामण । धामिन-कसैली, हलकी, पुष्टिकारक, बलदायक, रूक्ष सन्धानकारक, व्रणरोपक और कफ, पित्त रुधिर विकार, खाँसी नाशक है ॥ ५३ ॥

विवरण।

धामिनके बडे बडे ऊँचे वृक्ष वनोंमें होतेहैं, पत्ते बेरीके समान परन्तु कुछ बडे होते हैं, लकडी इसकी बहुत दृढ होती है प्रायः इसकी कडियें बहुत बनाई जाती हैं ॥

अथ करीरः ।

करीरः क्रकरोऽपत्रो ग्रन्थिलो मरुभूरुहः॥ करीरः कटुकस्तिक्तःस्वेद्युष्णोभेदनःस्मृतः॥ दुर्नामकफवातामगरशोथव्रणप्रणुत् ॥५४॥

करीर, क्रकर, अपत्र, ग्रन्थिल, मरुभूरुह, (गूढपत्र, शाकपुष्प, कटुफल, तीक्ष्णसार, कण्टकी, क्रकच, निष्पत्रिका, करीर,करक, तीक्ष्णकण्टक, मृदुफल,निष्पत्र, शोणपुष्प, विदाहिक, शतकुन्त, सुफल, उष्णसुन्दर विष्वक्पत्र और कुदशाख) ये करीरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-करीर,करील। बं०-करील । म०-नेवती।गु०-केरडो । क०-तिष्पतिगे । तै०-कचरकुराक । फा०-कबार । इं०-केपर Caper लै०-केपरिस स्पाईनोजा Capparis Spinosa ॥

करील-चरपरा, कडवा, स्वेदजनक, गरम, मलभेदक (दस्तावर) और बवासीर, कफ, वात, आम, विष, सूजन, तथा व्रणविनाशक है ॥ ५४ ॥

विवरण ।

करीलके वृक्ष छोटे २ होतेहैं, प्रायः यह वृक्ष बंगाल और मारवाडकी भूमिमें बहुत होतेहैं इनकी डंडी नीले रंगकी और फल गुलाबी रंगके होते हैं, फागुन और चैतके महीनेमें इनपर फल फूल आते हैं, पत्ते न होनेके कारण केवल फूल ही फूल दीखतेहैं और कांटे महातीव्र होते हैं । इनके फलोंका अचार होताहै ॥

अथ शाखोटः [सिहोरा] ।

शाखोटः पीतफलको भूतावासः खरच्छदः॥शाखोटो रक्तपित्तार्शोवातश्लेष्मातिसारजित् ॥ ५५ ॥

शाखोट, पीतफलक, भूतावास, खरच्छद, (पिशाचद्रु, पीतफल, कर्कशच्छद, यक्षिणीवास, भूतवृक्ष, खरद, अक्षधर, करच्छद, गवाक्षी, रूक्षपत्र, पीत, कैशिक्योज और क्षीरनाश) ये सिहोरेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सिहोडा (रा) । बं०-सेओडा, शाडा । म० सहोड । गु०-साहोडा । तै०-भारिणिकेचेट्टु । लै०-स्ट्रेप्लस् सासपर Streplusasper ॥

शाखोट-रक्तपित्त, बवासीर, वात, कफ तथा अतिसार नाशक है ॥ ५५ ॥

विवरण ।

सिहोडेके वृक्ष महा गठीले और आड झकाडसे होतेहैं परन्तु बहुत बडे नहीं होते पत्ते छोटे छोटे और चिकने चिकने होते हैं, फूल सफेद सफेद और लकडीमें कांटेसे जान पडते हैं परन्तु कांटे होते नहीं हरियानेमें इसे हींस कहतेहैं ॥

अथ वरुणः [वरना] ।

वरुणो वरणः सेतुस्तिक्तशाकः कुमारकः॥ वरुणः पित्तलो भेदी श्लेष्मकृच्छ्राश्ममारुतान् ॥ ५६ ॥ निहन्ति गुल्मवातास्रकृमींश्चोष्णोऽग्निदीपकः ॥ कषायो मधुरस्तिक्तः कटुको रूक्षको लघुः ॥ ५७ ॥

वरुण, वरण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक, (उरुमाण, सेतुवृक्ष, श्वेतद्रु, मारुतापह, कुमार, अश्मरीघ्न, सेतुक, वराण, शिखिमण्डल, श्वेतवृक्ष और साधुवृक्ष) ये वरनाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—वरना, वरुण। बं०—वरुणगाछ। म०—माटचरणा। गु०—वायवारणो। क०—मदवसले। तै०—उरुमट्टि. जाजिचेट्टु। ता०—मरलिगम्। लै०—क्रैटिवा, रिलिजिओसा Crataeva Religiosa॥

वरना—पित्तकारक, मलभेदक, कसैला, मधुर, कडवा, चरपरा, रूखा, हलका, गरम, अग्निको दीपन करनेवाला और कफ, मूत्रकृच्छ्, पथरी, वात, गुल्म, रक्तविकार तथा कृमिको नष्ट करैहै॥ ५६॥ ५७॥

विवरण।

वरनेके बडे बडे ऊँचे और सघन वृक्ष जगलोंमें होतेहैं पत्ते बेलके समान एक एक दडीमे तीन तीन लगे होतेहैं, फल गोल गोल हरे रगके निम्बूकी आकृतिके होतेहैं, फूल सफेद रंगके छोटे छोटे होतेहैं॥

अथ कटभी।

कटभी स्वादुपुष्पश्च मधुरेणुः कटम्भरः॥ कटभी तु प्रमेहार्शोनाडीव्रणविषक्रिमीन्॥॥ ५८॥ हन्त्युष्णा कफकुष्ठघ्नी कटू रूक्षा च कीर्तिता॥ तत्फलं तुवरं ज्ञेयं विशेषात्कफशुक्रहृत्॥ ५९॥

कटभी, स्वादुपुष्प, मधुरेणु, कटमर, (नाभिका, शौण्डी, पाटली, किणिही, क्षुद्रश्यामा, कैडर्य, श्यामला और भद्रेंद्राणी) ये कटभीके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—कटभी, करही। म०—वाकुम्भा। गु०—टीवरु, क०—वेल्लाल। इ०—केरिसट्री Careystree लै०—केरिया, आर्बोरिया Careya Arborea॥

कटभी—गरम, चरपरी, रूक्ष और प्रमेह, बवासीर, नाडीव्रण (नासूर), विष, कृमि, कफ तथा कोढको नष्ट करै है। इसका फल कसैला है, विशेष करके कफ तथा वीर्यका नाशक है॥ ५८॥ ५९॥

विवरण।

कटभीके मध्यम आकारके वृक्ष होतेहैं, पत्ते गोल और कुछ कुछ लम्बाई लिये होतेहैं, फल अरण्ड खुर्बूजेके समान और छोटे होते हैं॥

अथ मोक्षः [मोखावृक्ष]।

मोक्षस्तु मोक्षकोऽपि स्याद्गोलीढी गोलिहस्तथा॥ क्षारश्रेष्ठः क्षारवृक्षो द्विविधः श्वेतकृष्णकः॥ ६०॥ मोक्षकः कटुकस्तिक्तो ग्राह्युष्णः कफवातहृत्॥ विषमेदोगुल्मकण्डूवस्तिरुक्कृमिशुक्रनुत्॥ ६१॥

मोक्ष, मोक्षक, गोलीढी, गोलिह, क्षारश्रेष्ठ, क्षारवृक्ष (गौलिक, मेहन, पाटली, विषापह, जटाल, वनवासी, सुतीक्ष्णक, क्षारोष्ण, शिखरी, घण्टापाटलि, क्षुद्रपाटलि, मुचक, जटालु, झाटल, क्षारद्रु, कालमुष्कक, घण्टाक, तीक्ष्ण, घण्टक और कालस्थाली) ये मोखाके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—मोखा, फरवाह। बं०—घण्टापारूल। म०—मोकडी। गु०—मरखो। क०—मोखढलाई। तै०—मोकपुचेट्टु लै०—स्क्रीब्रीरा स्वीटेनि ओइडि Schribara Swietine Oides॥

मोखा—सफेद और काला, इस भाँति दो प्रकारका होताहै॥

मोखा—चरपरा, कडवा, ग्राही, गरम और कफ, वात, विष, मेद, गुल्म, खुजली, वस्तिरोग, कृमि तथा वीर्यको नष्ट करैहै॥ ६०॥ ६१॥

विवरण।

मोखेके वृक्ष दो जातिके होतेहैं, एक काला और दूसरा सफेद, पत्ते बडे बडे होते हैं और उनमेसे आकके समान दूध निकलताहै, फल घटाकार होतेहैं॥

जल शिरीषिका [ढाढोन]।

शिरीषिका टिण्टिणिका दुर्बलाम्बुशिरीषिका॥ त्रिदोषविषकुष्ठार्शोहरी वारिशिरीषिका॥ ६२॥

शिरीषिका, टिण्टिणिका, दुर्बला और अंबुशिरीषिका, वारिशिरीषिका ये ढाढोनके सस्कृत नाम हैं।

हिन्दी—ढाढोन। म०—जलशिरसी। गु०—जलसरसडियो। ढाढोन—त्रिदोष, विष, कोढ तथा बवासीरको नष्ट करैहै॥ ६२॥

अथ शमी [छोंकरा]।

शमी सक्तुफला तुंगा केशहन्त्री फला शिवा॥ मंगल्या च तथा लक्ष्मीः शमीरः सालिपका स्मृता॥ ६३॥ शमी तिक्ता कटुः शीता कषाया रेचनी लघुः॥ कफकासभ्रमश्वासकुष्ठार्शःकृमिजित्स्मृता ६४॥

शमी, सक्तुफला, तुङ्गा, केशहन्त्री, फला, शिवा, मगल्या, लक्ष्मी, शमीर (शान्ता, शुभदा, पवित्रा, पापनाशिनी, सक्तुफली, काननारि, कचरिपुफला, केशमथनी, ईशानी, तपनतनया, इष्टा, शुभकरी, हविर्गन्धा, दुरितदम

शक्तुफलिका, समुद्रा, वह्निगर्भा, समीर, ईशान, सुरभि, पापशमनी, भद्रा, शंकरी, सुपुत्रा, सुखदा, ईशाना, शकुफलिका और सुभद्रा) ये छोकरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–छोंकर, शमी, सफेद कीकर । बं०–शाँई । म०–शमी । गु०–खीजडी । क०–बन्नि, कावन्नि । तै०–शमीचेट्टु । इं०–स्पंजट्री Spungtree लै०–प्रोसोपिस स्पाइसिजेरा Prosopis Spicigera ॥

छोकर–कडवा, चरपरा, शीतल, कसैला, रेचक, (दस्तावर) हलका और कफ, खाँसी, भ्रम, श्वास, कोढ, बवासीर तथा कृमि नाशक है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

विवरण ।

शमीके वृक्ष वनोंमें बडे बडे ऊँचे होतेहैं, पत्ते खैरके समान होतेहैं, फली सेंगरीके सदृश होतीहैं, परन्तु यह भी एक कीकर बब्बुलका भेद है, इसको छोकर कहतेहैं॥

अथ सप्तपर्णः [सतौना] ।

सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः॥
सप्तपर्णो व्रणश्लेष्मवातकुष्ठास्रजन्तुजित् ॥
दीपनःश्वासगुल्मघ्नःस्निग्धोष्णस्तुवरःसरः॥

सप्तपर्ण, विशालत्वक्, शारद, विषमच्छद, (विढ, विनद, विन्याक, सारद, देववृक्ष, दलेगन्धि, शिरोरुजा, अहनाश, सुतिपत्र, ग्रहाशी, ग्रहनाशन, गुच्छपुष्प, शुक्तिपर्ण, सुपर्णक, अयुक्छद, अयुग्मच्छद, गुच्छपुष्प, युग्मपर्ण, मुनिच्छद, बृहत्त्वक्, बहुपर्ण, शाल्मलिपत्र, मदगन्ध, शन्विपर्ण, सप्तच्छद, छत्रपर्ण और शारदिष्पुप) ये सतवनके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–सतौना, सतवन, छतिवन । बं०–छातिमगाछ, छेतेन । म०–सात्विण । गु०–सात्विन । क०–एलेलेग । तै०–एडाकुल । लै०–आलस्टोनिया स्कोलेरिस Llstonia Scholaris ॥

सतौना–अग्निको दीपन करनेवाला, स्निग्ध, गरम, कसैला, दस्तावर और व्रण (घाव), कफ, वात, कोढ, रुधिरविकार तथा जन्तु नाशक है ॥ ६५ ॥

सतवनके बडे ऊँचे ऊँचे वृक्ष होतेहैं, पत्ते सेमलके समान और एक एक डालीमें सात सात पत्ते होतेहैं ॥

अथ तिनिशः [तिरिच्छ] ।

तिनिशः स्यन्दनो नेमी रथद्रुर्वञ्जुलस्तथा ॥ तिनिशः श्लेष्मपित्तास्रमेदःकुष्ठप्रमेहजित् ॥ तुवरः श्वित्रदाहघ्नो व्रणपाण्डुकृमिप्रणुत् ॥ ६६ ॥

तिनिश, स्यन्दन, नेमि, रथद्रु, वञ्जुल. (सर्वसार, अश्मगर्भक, तिनाशक, अक्षक, चित्रकर्मा, अतिमुक्तक, चित्रकृत्, चक्री, शताग, शकट, रथ, रथिक, भस्मगर्भ, मेषी, जलधर और स्यदन) ये तिनिशके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–तिनिश, तिरिच्छ । बं०–तिनास । म०–तिवस । गु०–हम्मी । लै०–युजिनियाडाल बर्जिया ओर्डेडिस् Ougeniadal Bargia Oides ॥

तिनिश–कसैला और कफ, पित्त, रुधिरविकार, मेद, कोढ, प्रमेह चित्रिनकोढ, दाह, व्रण, पाण्डु तथा कृमिको नष्ट करेहै ॥ ६६ ॥

विवरण ।

तिनिशके बडे लम्बे और सघन वृक्ष होतेहैं पत्ते छोकरके समान नन्हे नन्हे होतेहैं, इनकी आकृति खैर अथवा कीकरकी सी होतीहै ॥

अथ भूमीसहः [सागोन] ।

भूमीसहो द्वारदारुर्नरिदारुः खरच्छदः ॥
भूमीसहस्तु शिशिरो रक्तपित्तप्रसादनः ६७

॥ इति श्रीभावप्रकाशे वटादिवर्गः ॥

भूमीसह, द्वारदारु, नरिदारु, खरच्छद, (क्रकचपत्र, खरपत्र, अतिपत्रक, महीरुह, श्रेष्ठकाष्ठ, स्थिरसार, गृहद्रुम, अनिल, अर्ण, महापत्र. शाखतरु, शाकवृक्ष, शाखाख्य, अर्जुनोपम, शरपत्र, अतिपत्र, भूमिरुह, दीर्घच्छद, कोलफल, योगी, हलीमक, गन्धसार, स्थिरसार, स्थिरक और ध्रुवसाधन) ये सागोनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सागोन, सागवन, । बं०–शेगुनगाछ । म०–गु०–साग । क०–नैगु । तै०–टेकुचेट्टु । ता०- टेकु । फा०–फिलगोस । अ०–फिलजोश–उजनुलफिल । इं०–इण्डियन टीकट्री Indian Tiktree लै०–टेकटोना, ग्राडीस Tectona Grandis ॥

सागोन–शीतल और रक्तपित्तको शुद्ध करनेवालाहै ६७॥

विवरण ।

सागोनके बडे बडे लम्बे वृक्ष जगलमे होतेहैं, पत्ते बडे बडे और खरखरे होतेहैं, फल सफेद और बहुत छोटे छोटे होतेहैं,

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसजीवनीटीकाया पञ्चमेप्रकरणे वटादिवर्गः समाप्तः ।

अथ आम्रादिफलवर्गः।

तत्रादौ आम्रस्य नामानि गुणाश्च।

आम्रः प्रोक्तो रसालश्च सहकारोऽतिसौरभः॥ कामाङ्गो मधुदूतश्च माकन्दः पिकवल्लभः॥ १॥ आम्रपुष्पमतीसारकफपित्तप्रमेहनुत्॥ असृग्दुष्टिहरं शीतं रुचिकृद्ग्राहि वातलम्॥ २॥

आम्र, रसाल, सहकार, अतिसौरभ, कामाग, मधुदूत, माकन्द, पिकवल्लभ, (चूतक, फलश्रेष्ठ, फलोत्पत्ति, मृष्टालक, चूत, षटपदातिथि, वसन्तद्रु, पिकप्रिय, स्त्रीप्रिय, गन्धबन्धु, अलिप्रिय, ग्ररेष्ठ, मदिरासख, पिकबन्धु, केशवायुध, कोश्री, परपुष्टमहोत्सव, कामशर, कामवल्लभ, कीरेष्ट, माधवद्रुम, भृगाभीष्ट, सीधुरस, माधूली, कोकिलोत्सव, वसन्तदूत, मोदाख्य, मन्मथालय, मध्वावास, मदन, पिकराग, नृपप्रिय, प्रियाम्बु, कोकिलावास, वसन्त, पादप, भ्रमरप्रिय, मनोज्ञ, मन्मथावास, शुकप्रिय, वनोत्सव, मदाढ्य और मजरी) ये आमके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—बं०—आम। म०—ऑबा। गु०—ऑबो। क०—माविन फल। तै०—मामिडि। फा०—आबा। अ०—अम्बज। इ०—मागोट्री Mangotree लै०—मेगीफरा इंडिका Mangifera Indica॥

आमका फूल (मौर)—शीतल, रुचिकारी, ग्राही, वातकारक, और अतिसार, कफ, पित्त, प्रमेह और दुष्टरुधिर नाशक है॥ १॥ २॥

अथ आमाम्रफलम् [अमिया]।

आम्रं बालं कषायाम्लं रुच्यं मारुतपित्तकृत्॥ तरुणं तु तदत्यम्लं रूक्षं दोषत्रयास्रकृत्॥ ३॥

कच्ची अमियाँ—कसैली, खट्टी, रुचिकारक, वात तथा पित्तको करनेवाली हैं। तरुण (बडा और विना पका) आम—खट्टा, रूखा और त्रिदोष तथा रक्तविकारको करनेवाला है॥ ३॥

शुष्कामाम्रफलम् [अमचूर]।

आम्रमामं त्वचाहीनमातपाऽतिविशोषितम्॥ अम्लं स्वादु कषायं स्याद्भेदनं कफवातजित्॥ ४॥

कच्चे आमके ऊपरका छिलका छील टुकडे करके धूपमे सुखालेवे उसको आम्रपेषी (अमचूर), कहते हैं। यह अमचूर—खट्टा, स्वादिष्ठ, कसैला, मलभेदक, दस्तावर और कफ, तथा वातको जीतनेवाला है॥ ४॥

पक्कमाम्रफलम् [पका आम]।

पक्कं तु मधुरं वृष्यं स्निग्धं बलसुखप्रदम्॥ गुरु वातहरं हृद्यं वर्ण्यं शीतमपित्तलम्॥ ॥ ५॥ कषायानुरसं वह्निश्लेष्मशुक्रविवर्द्धनम्॥ तदेव वृक्षसम्पक्कं गुरु वातहरं परम्॥ ६॥ मधुराम्लरसं किञ्चिद्भवेत्पित्तप्रकोपनम्॥ आम्रं कृत्रिमपक्कश्च तद्भवेत्पित्तनाशनम्॥ ७॥ रसस्याम्लस्य हीनस्तु माधुर्यश्च विशेषतः॥ उषितं तत्परं रुच्यं बल्यं वीर्यकरं लघु॥ ८॥ शीतलं शीघ्रपाकि स्याद्वातपित्तहरं सरम्॥ तद्रसो गालितो बल्यो गुरुर्वातहरः सरः॥ ९॥ अहृद्यस्तर्पणोऽतीव बृंहणः कफवर्द्धनः॥ तस्य खण्डं गुरु परं रोचनं चिरपाकि च॥ १०॥ मधुरं बृंहणं बल्यं शीतलं वातनाशनम्॥ वातपित्तहरं रुच्यं बृंहणं बलवर्द्धनम्॥ वृष्यं वर्णकरं स्वादु दुग्धाम्रं गुरु शीतलम्॥ ११॥

पका आम—मधुर, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध, बल तथा सुखदायक, भारी, वातनाशक, हृदयको प्रिय, वर्णको उत्तम करनेवाला, शीतल, पित्तकारक नहीं, तथा कसैले रसयुक्त, अग्नि, कफ और वीर्य बढानेवाला है। वही आम जो वृक्षपरही पका हो वह—भारी वातनाशक, मधुराम्ल (खटमिट्ठा) और किंचित् पित्तको कुपित करनेवाला है। कृत्रिमपक्क (पालसे पकाया हुआ) आम—पित्तनाशक अम्लरसहीन और विशेष करके मधुर होता है॥ उषित (चूँसा हुआ) आम—अत्यन्त रुचिकारी, बलदायक, वीर्यवर्द्धक, हलका, शीतल, शीघ्रपाचक, वात तथा पित्तको हरनेवाला और दस्तावर है॥ आमका निकाला हुआ रस—बलदायक, भारी, वातनाशक, दस्तावर, हृदयको अप्रिय, तृप्तिदायक, अत्यन्त पुष्टिकारक और कफवर्द्धक है॥ आमका खड—भारी, अत्यत रुचिकारी, देरमे पचनेवाला, मधुर, पुष्टिकारक, बलदायक, शीतल और वायुका नाश करनेवाला है॥ दूधके साथ खाया हुआ आम, वातपित्तनाशक, रुचिकारी, पुष्टिदायक, बलकारक, वीर्य

वर्द्धक, वर्णको उत्तम करनेवाला, स्वादिष्ट, भारी, मधुर और शीतल है ॥ ५-११ ॥

आम्रातियोगः [आम बहुत खाना]।

मन्दानलत्वं विषमज्वरं च रक्तामयं बद्धगुदोदरं च ॥ आम्रातियोगो नयनामयं वा करोति तस्मादति तानि नाद्यात् ॥ १२ ॥ एतदम्लाम्रविषयं मधुराम्लपरं न तु ॥ मधुरस्य परं नेत्रहितं त्वाद्या गुणा यतः ॥ १३ ॥ शुण्ठ्यम्भसोऽनुपानं स्यादाम्राणामतिभक्षणे ॥ जीरकं वा प्रयोक्तव्यं सह सौवर्चलेन च ॥ १४ ॥

अत्यन्त आमको खाना—मदाग्नि, विषमज्वर, रुधिरदोष, अत्यन्त मलका रोध और नेत्ररोग करैहै, इस कारण आम अत्यत नहीं खाना चाहिये। यह दोष केवल खट्टे आमसे है मधुर आममें नहीं है, क्योंकि-मधुर आममे तो नेत्रोको हितकारी, इत्यादि गुण रहतेहैं। आम अधिक खाने होय तौ—सोंठके पानीके साथ खावै, अथवा जीरा कालेनोनके साथ खावै ॥ १२-१४ ॥

अथ आम्रावर्त्तस्य लक्षणं गुणाश्च।

पक्वस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः॥ घर्मशुष्को मुहुर्दत्त आम्रावर्त इति स्मृतः ॥ १५ ॥ आम्रावर्तस्तृषाच्छर्दिवातपित्तहरः सरः॥ रुच्यः सूर्यांशुभिः पाकाल्लघुश्च स हि कीर्त्तितः ॥ १६ ॥

पके आमके रसको वस्त्रपर डालकर धूपमे सुखावै, सूखनेपर फिर और रस डालै, इस प्रकार वारंवार करनेसे आम्रावर्त (अमावट) वन जाता है ॥

हिन्दी—अमावट, आम्रावत । आम्रावर्त—दस्तावर, रुचिकारक, सूर्यकी किरणोंसे पकनेके कारण हलका और तृषा, वमन, वात तथा पित्तनाशक है ॥ १५ ॥ १६ ॥

विवरण।

आम जगत्मे प्रसिद्ध फल है इसके समान और कोई दूसरा फल नहीं है आमके वनके वन देखनेमे आतेहैं और बागोमे भी एकसे एक उत्तम वृक्ष छॉट छॉटकर लगाये जातेहैं इसके वृक्ष बहुत बडे बडे होतेहैं, कोई कोई बाग ऐसे सघन है कि वन भी उनको देखकर मनमे सङ्कुचित होताहै वह बाग अन्धेरिया बागके नामसे प्रसिद्ध है, इस देशमे ऐसा कोई ग्राम और नगर नहीं जहॉ दश बीस आमके बाग न हों धन्य है उस परब्रह्म परमात्माको जिसने हमारा ऐसा शोभायमान देश बनाया। उसके पत्ते जामुनकेसे होतेहैं, एक बालिस्त लंबे दो अगुल चौडे, वसन्तऋतुमे और वर्षाऋतुमे लाल लाल कोमल पत्ते निकलते और फिर हरे हो जातेहैं, फलके स्थानमें मौर डाली डालीपर छाजाताहै, फल गोल और कुछ लम्बे, कच्ची अवस्थामे हरे और पकनेपर पीले और हरेही रहतेहैं, उनका रस ऐसा मीठा होताहै कि खाते ही चित्त प्रसन्न होजाय फलकें भीतर एक गुठली होतीहै, वही बोई जातीहै, उसीसे वृक्ष उत्पन्न होता है ॥

अथ आम्रबीजम् [कोइली]।

आम्रबीजं कषायं स्याच्छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ईषदम्लञ्च मधुरं तथा हृदयदाहनुत् ॥ १७ ॥

आमकी गुठली—कसैली, कुछ खट्टी, मधुर और वमन, अतीसार तथा हृदयके दाहको नष्ट करैहै ॥ १७ ॥

अथ नवपल्लवः।

आम्रस्य पल्लवो रुच्यः कफपित्तविनाशनः ॥ १८ ॥

आमके नवीन पत्ते—रुचिकारक और कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाले है ॥ १८ ॥

अथ आम्रातकः [अम्बाडा]।

आम्रातकः पीतनश्च मर्कटाम्रः कपीतनः॥ आम्रातमम्लं वातघ्नं गुरूष्णं रुचिकृत्सरम् ॥ १९ ॥ पक्वन्तु तुवरं स्वादु रसे पाके हिमं स्मृतम् ॥ तर्पणं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं विष्टम्भि बृंहणम् ॥ गुरु बल्यं मरुत्पित्तक्षतदाहक्षयास्रजित् ॥ २० ॥

आम्रातक, पीतन, मर्कटाम्र, कपीतन (पीतनक, कपिचूत, अम्लवाटक, वर्षपाकी, कपिचूड, तनुक्षीरि, कपिप्रिय, मधुराम्लक, अम्रवाटिक, मृगीफल, रसाढ्य, तनुक्षीर, अम्बरातक, कपिचूड, अम्बरीप आम्रात, अल्वगभोग्य, मर्कटाम्र और तुरुगी) ये अम्बाडेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—अम्बाडा। बं०—आमडा । म०—आंवाडा । गु०—जंगली आँवो । क०—ऑवोडेयकायि । तै०—आमाट इं०—स्पोन्डिआस मिनट Spondias Minute लै०—

स्पोन्डिआस् मैंगिफरा Spondias Mangifera ॥

अंबाडा—खट्टा, वातनाशक, भारी, गरम, रुचिकारी और दस्तावर है। पका अंबाडा—कसैला, स्वादिष्ठ, रसमें तथा पाकमें शीतल, तृप्तिकारक, कफकारी, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, ग्राही, पुष्टिकारक, भारी, बलकारक, और वात, पित्त, क्षत, दाह, क्षय तथा रुधिरविकारनाशक है ॥ १९ ॥ २० ॥

विवरण।

आम्रातक अर्थात् अम्बाडेके वृक्ष प्रायः पर्वत और वनोंमें बहुत होतेहैं, पत्ते जिगनीके पत्तोंके समान एक शाखामें बराबर दोनो ओर होतेहै, इसपर आमके तुल्य मौर आताहै, फल कन्दूरीके समान छोटे छोटे होतेहैं, उनको अम्बाडा कहतेहैं। इनका अचार डालतेहैं ये स्वादमें खट्टे होतेहैं ॥

अथ राजाम्रः [कलमीआम]।

राजाम्रष्टंक आम्रातः कामाह्वो राजपुत्रकः ॥ राजाम्रं तुवरं स्वादु विशदं शीतलं गुरु ॥ ग्राहि रूक्षं विबन्धाध्मवातकृत्कफपित्तनुत् ॥ २१ ॥

राजाम्र, टंक, आम्रात, कामाह्व, राजपुत्रक, (राजफल, स्मराम्र, कोकिलोत्सव, मधुर, कामेष्ट और नृपवल्लभ) ये राजाम्र (कलमी) आमके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—कलमी आम, मालदह आम । गु०—हाफुस आँबो ॥ राजाम्र—कसैला, स्वादिष्ठ, स्वच्छ, शीतल, भारी, ग्राही, रूखा, और मलबन्ध, अफारा, तथा वातको करनेवाला है और कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाला है ॥ २१ ॥

अथ कोशाम्रः [कोशम्भ आम]।

कोशाम्र उक्तः क्षुद्राम्रः कृमिवृक्षः सुकोशकः ॥ कोशाम्रः कुष्ठशोथास्रपित्तव्रणकफापहः ॥ २२ ॥ तत्फलं ग्राहि वातघ्नमम्लोष्णं गुरु पित्तलम् ॥ पक्वन्तु दीपनं रुच्यं लघूष्णं कफवातनुत् ॥ २३ ॥

कोशाम्र, क्षुद्राम्र, कृमिवृक्ष, सुकोशक, (घनस्कन्ध, वनाम्र, जन्तुपादप, रक्ताम्र, लाक्षावृक्ष और सुरक्तक) ये कोशाम्रके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी—कोशंभ, छोटा आम । बं०—केओडा, जलपाइ। क०—जूरिमावु । म०—कोशाम्र । गु०—हलकी जातनो आंबो ॥

कोशाम्र—कोढ, सूजन, रक्तपित्त, व्रण और कफनाशक है। इसका फल—ग्राही, वातनाशक, अम्ल, गरम, भारी और पित्तकारी है । इसका पका फल—अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारक, हलका, गरम और कफ तथा वायुको नष्ट करैहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

विवरण।

कोशाम्र जगली आमको कहतेहैं, इसके वृक्ष भी आमके समान होतेहैं, और पत्ते फल छोटे २ देखनेमें आतेहैं ॥

अथ पनसः [कटहर]।

पनसः कंटकिफलः पनसोऽतिबृहत्फलः ॥ पनसं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानिलापहम् ॥ २४ ॥ तर्पणं बृंहणं स्वादु मांसलं श्लेष्मलं भृशम् ॥ बल्यं शुक्रप्रदं हन्ति रक्तपित्तक्षतव्रणान् ॥ २५ ॥ आमं तदेव विष्टम्भि वातलं तुवरं गुरु ॥ दाहकृन्मधुरं बल्यं कफमेदोविवर्द्धनम् ॥ २६ ॥ पनसोद्भूतबीजानि वृष्याणि मधुराणि च ॥ गुरूणि बद्धविट्कानि सृष्टमूत्राणि संवदेत् ॥ २७ ॥ अन्यच्च—मज्जा पनसजो वृष्यो वातपित्तकफापहः ॥ विशेषात्पनसो वर्ज्यो गुल्मिभिर्मन्दवह्निभिः ॥ २८ ॥

पनस, कटकिफल, पनस, अतिबृहत्फल (अपुष्पफलद, स्थूलकण्टफल, कण्टाकाल, आशय, मुरजफल, पनस, फलस, चपकालु, चपाकोष, चपालु, मृदगफल, पागस, महासर्ज्ज, फलिन, फलवृक्षक, कटाफल, मूलफलद, अपुष्पफलद और पूतफल) ये कटहलके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—कटहर, कटहल, कटैल । बं०—काँटाल । म०—फनस । गु०—फनस । क०—हलसिनहण्णु । तै०—पनसकायि । ता०—पेलाकायि । लै०—आर्टोकार्पस इन्टग्रिफोलिया Artocorpus Intergrifolia ॥

कटहलका पका फल—शीतल, स्निग्ध, पित्त तथा वातनाशक, तृप्तिदायक, पुष्टिकारक, स्वादिष्ठ, मासको बढानेवाला, अत्यन्त कफकारक, बलदायक, वीर्यवर्द्धक, और रक्तपित्त, क्षत तथा व्रणविनाशक है ॥ कटहरका कचा फल—ग्राही, वातकारक, कसैला, भारी, दाहकारक, मधुर, बलदायक, कफ तथा मेदको बढानेवाला है ॥ कटहलके बीज—वीर्यवर्द्धक, मधुर, भारी, ग्राही, और मूत्रको बढानेवाले हैं ॥ कटहलकी मीग—वीर्यवर्द्धक, वात, पित्त तथा

कफनाशक है ॥ विशेष करके गुल्मरोगी तथा मदाग्निवालेको इसका खाना वर्जित है ॥ २४-२८ ॥

विवरण ।

कटहरके वृक्ष बहुत बडे बडे होतेहैं, प्रायः बागोंमें माली लोग बहुत लगातेहैं, पत्ते गोल गोल मेंडकेसे होतेहैं, फूल आतेही नहीं, कटहर बहुत बडा फल होताहै, और वह गूलरके समान लकडीको फोडकर निकलताहै; फल हरे रंगका होताहै, ऊपर नरम नरम कांटे होतेहैं, कटहरपर हेमतऋतुके पश्चात् फल लगतेहैं, वह फल गजभर लंबा और बहुत मोटा होताहै तौलमें बीससेरतकका होताहै ॥

अथ लकुचः [बडहर] ।

लकुचः क्षुद्रपनसो लिकुचो डहुरित्यपि ॥ आमं लकुचमुष्णश्च गुरु विष्टम्भकृत्तथा ॥ २९ ॥ मधुरश्च तथाम्लश्च दोषत्रितयरक्तकृत् ॥ शुक्राग्निनाशनं वापि नेत्रयोरहितं स्मृतम् ॥ ३० ॥ सुपक्वं तत्तु मधुरमम्लं चानिलपित्तहृत् ॥ कफवह्निकरं रुच्यं वृष्यं विष्टम्भकश्च तत् ॥ ३१ ॥

लकुच, क्षुद्रपनस, लिकुच, डहु, (ऐरावत, अम्लक, निकुच, कषायी, दृढवल्कल, कार्श्य, शाल, शूर, स्थूलस्कन्ध, और ग्रथिमत्फल) ये बडहरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—बडहल । बं०—डेओ, मादार । म०—वटारफल, गु०—क्षुद्रपनस । लै०—आर्टोकार्पस, लकुचा । इं० Artocarpus Lacoocha ॥

बडहलका कच्चा फल—गरम, भारी, काबिज, मधुर, खट्टा, तीनो दोष तथा रुधिरको करनेवाला, वीर्य तथा अग्निको नष्ट करनेवाला, और नेत्रोंको अहितकारी है ॥ बडहलका पक्का फल—मधुर, अम्ल, वात तथा पित्तनाशक, कफ तथा अग्निको करनेवाला, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, और विष्टम्भकारक है ॥ २९-३१ ॥

विवरण ।

बडहरके वृक्ष बहुत ऊँचे ऊँचे और झाडेदार होतेहैं, प्रायः बागोंमें बहुत देखनेमें आतेहैं, पत्ते पाखरके समान और फल गाटदार गोल गोल कैथके बराबर होतेहैं. कच्ची अवस्थामें हरे हरे होतेहैं, उनको पेडपरसे तोडकर पालमें रखकर पकालेतेहैं, उसके भीतर दरम्यांन सफेद रंगके बीज निकलतेहैं, यह भी कटहरहीका भेद है; इसके फलको लकुच कहतेहैं, ये पीले रंगके होतेहैं ॥

अथ कदली [केला] ।

कदली वारणा मोचाम्बुसारांशुमतीफला ॥ मोचाफलं स्वादु शीतं विष्टम्भि कफनुद् गुरु ॥ ३२ ॥ स्निग्धं पित्तास्रतृड्दाहक्षतक्षयसमीरजित् ॥ पक्वं स्वादु हिमं पाके स्वादु वृष्यश्च बृंहणम् ॥ क्षुत्तृष्णानेत्रगदहन्मेहघ्नं रुचिमांसकृत् ॥ ३३ ॥ माणिक्यमर्त्यामृतचम्पकाद्या भेदाः कदल्या बहवोऽपि सन्ति ॥ उक्ता गुणास्तेष्वधिका भवन्ति निर्दोषता स्याल्लघुता च तेषाम् ॥ ३४ ॥

कदली, वारणा, मोचा, अम्बुसारा, अंशुमतीफला, (सुफला, वारणवल्लभा, सुकुमारा, चर्मण्वती, मत्पत्री, नगरौषधि, वारणबुसा, अंशुमत्फला, काष्ठीला, कदलवारबुसा, वारणबुषा, सकृत्फला, गुच्छफला, हस्तिविषाणी, गुच्छदन्तिका, निःसारा, राजेष्टा, बालकप्रिया, ऊरुस्तम्भा, भानुफला, वनलक्ष्मी, कदलक, मोचक, रोचक, लोचक, वारबूषा, आयतच्छदा और तन्तुविग्रहा,) ये केलेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—केला, कदली । बं०—केला । म०—केळ । गु०—केळ । क०—कबाळे । तै०—अरटि । फा०—मावज, मोज । अ०—तना । इं०—प्लेटेन Plantain ल०—मुसासेपियेन्टम् Musasapientum ॥

केलेका कच्चा फल—मीठा, शीतल, ग्राही, भारी, स्निग्ध, और कफ, पित्त, रक्तविकार, दाह, क्षत क्षय तथा वातको नष्ट करैहै, पक्का केला—स्वादिष्ठ, शीतल, पाकमें मधुर, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, रुचिको करनेवाला, मांसको बढानेवाला और क्षुधा, तृषा, नेत्ररोग तथा प्रमेहको नष्ट करैहै ॥

माणिक्यकदली, मर्त्यकदली, अमृतकदली और चम्पक कदली इत्यादिक केलेकी अनेक जाति हैं । ये सब प्रकारके केले उपरोक्त गुणवाले हैं, तथा निर्दोषता और हलकापन ये गुण अधिक हैं ॥ ३२-३४ ॥

विवरण।

केला सम्पूर्ण भारतवर्षमे और उत्तरखण्डके वन और पहाडोमें अधिकतासे होताहै, केलेकी अनेक जाति हैं, जैसे पहाडीकेला, चम्पैकेला, जगलीकेला, बडाकेला, काठकेला इत्यादि, परन्तु गुणमें सब समान हैं, केलेका, बहुत ऊँचा वृक्ष होताहै, पत्ते दो चार गजतक लम्बे और आध २ गज चौंडे होतेहैं, ये वृक्ष खम्भके समान होतेहैं और पत्तेमे पत्ते निकलते चले जाते है, सिवाय पत्तोंके कोई शाखा इसमें नहीं होंती, केवल पत्तोंहीसे वेष्टित होता है, उसमें वक्कलके भीतर वक्कल ही वक्कल निकलताहै कुछ सार नही होता, उसके बीचमे एक डडा निकलता है, उस डण्डेपर एकहजार फली आतीहैं, बीचमे सबसे ऊपर कमलकलीसे भी बडा लालरगका एक फूल नोकदार बुरजीके तुल्य आताहै, फली कच्ची अवस्थामे हरी होतीहैं, उनको तोडकर रखनेसे पीले रगकी होजातीहैं. पहाडमे मुनियोंके भोजनके लिये एक अत्यन्त उत्तम पदार्थ है॥

अथ चिर्भिटम् [कचरिया, फूट]।

चिर्भिटं धेनुदुग्धं च तथा गोरक्षकर्कटी॥ चिर्भिटं मधुरं रूक्षं गुरु पित्तकफापहम्॥ अनुष्णं ग्राहि विष्टम्भि पक्वमुष्णञ्च पित्तलम्॥ ३५॥

चिर्भिट, धेनुदुग्ध, गोरक्षकर्कटी, (सुचित्रा, चित्रफला, क्षेत्रचिर्भिटा, पाण्डुफला, पथ्या, रोचनफला, चिर्भिटिका और कर्कचिर्भिटा) ये चिर्भिटके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—कचरिया, सैंध फूट,। ब०—काकुड, गोमुक। म०—चिबूड शेंदाड। गु०—चिभडु। तै०—बुडरगपडु। फा०—खयार। इ०—पुबेसेटक्युकॅवर Pubescentcu cumber ल०—क्यूक्युमिसप्युबीसेन्स Cucumis Bubescens॥

कचरिया—मधुर, रूक्ष, भारी, पित्त तथा कफनाशक, गरम नही और ग्राही काविज है.पकी कचरिया—गरम और पित्तकारक है॥ ३५॥

विवरण।

कचरियाकी वेल चलतीहै, यह वेल खेत और बागोंमे बोईजातीहै, फल चित्रित कण्डूके समान और फूल पीले २ होतेहैं, उन फलोंमे खर्बूजेके सदृश बीज निकलतेहैं॥

अथ नालिकेरः [नारियल]।

नालिकेरो दृढफलो लाङ्गली कूर्चशीर्षकः॥ तुङ्गः स्कन्धफलश्चैव तृणराजः सदाफलः॥ ३६॥ नालिकेरफलं शीतं दुर्जरं वस्तिशोधनम्॥ विष्टम्भि बृंहणं बल्यं वातपित्तास्रदाहनुत्॥ ३७॥ विशेषतः कोमलनालिकेरं निहन्ति पित्तज्वरपित्तदोषान्॥ तदेव जीर्णं गुरु पित्तकारि विदाहि विष्टम्भि मतं भिषग्भिः॥ ३८॥ तस्याम्भः शीतलं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु॥ पिपासापित्तजित्स्वादु वस्तिशुद्धिकरं परम्॥ ३९॥ नालिकेरस्य तालस्य खर्जूरस्य शिरांसि तु॥ कषायस्निग्धमधुरबृंहणानि गुरूणि च॥ ४०॥

नालिकेर, दृढफल, लागली, कूर्चशीर्पक, तुङ्ग, स्कन्धफल, तृणराज, सदाफल, (नारीकेली, नारीकारी, नारिकेरि, नारिकेली, सदापुष्प, शिरःफल, मृदुफल, पुटोदक, नारिकेर, रसफल, सुतुङ्ग, कूर्चशेखर, दृढनीर, नीलतरु, मङ्गल्य, उच्चतरु, स्कन्धतरु, दाक्षिणात्य, दुरारुह, त्र्यम्बकफल, शिराफल, करकाम्भा, पयोधर, मुत्कुण, कौशिकफल, फलमुण्ड, जटाफल, मुण्डफल, विश्वामित्रप्रिय, नारकेर, सुभग, फलकेशर, वरफल, महाफल, श्रीफल, सदाफल, तोयगर्भ और त्र्यक्षफल) ये नारियलके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—नारियल, नरियल,। ब०—नारिकेल,नारकोल। म०—नारळी, नारळ,। गु०—नालीएर। तै०—टेकायां, नारिकदम। ता०—टेन्ना, टेगा। फा०—जोजहिन्दीनारीयल। अ०—नारजिल। इ०—कोकोनट पाल्म Coconut Palm ल०—कोकोसन्यूसिफेरा Cocosnusifera॥

नारियलका फल (गोला)-शीतल, दुर्जर, मूत्राशयशोधक, ग्राही, पुष्टिकारक, बलदायक, और वात, पित्त, रक्तविकार तथा दाहनाशक है॥ कोमल नारियलका फल—विशेषकरके पित्तज्वर तथा पित्तके दोषोंको नष्ट करैहै॥ नारियल पुराना—भारी, पित्तकारक, विदाही तथा विष्टम्भकारक वैद्योंने कहाहै॥ नारियलका पानी—शीतल, हृदयको प्रिय, अग्निको दीपन करनेवाला, वीर्यवर्द्धक, हलका, तृषा तथा पित्तको नष्ट करनेवाला, मधुर और मूत्राशयको शुद्ध करैहै॥ नारियल, ताड और खजूर इनके

शिरा (रेशा) कसैली, स्निग्ध, मधुर, पुष्टिकारक और भारी हैं ॥ ३९–४० ॥

विवरण ।

नारियलका वृक्ष बहुत बडा होताहै, आकार खजूर और ताडके समान होताहै. यह वृक्ष पूर्वकी ओर कलकत्ते और जगन्नाथमें और बम्बईमें बहुत हैं, विशेष करके नदी अथवा समुद्रके निकट अधिक उत्पन्न होतेहैं, इसमें शाखा नहीं होती, इसमे ऊपरके भाग खजूरकेसे पत्ते होतेहैं, उनही पत्तोके बीचमे नारियल लगतेहैं, उस नारियलको फोडके निचोडनेसे जो रस निकलताहै, उसको नारियलका दूध कहतेहैं, जब वे नारियल सूखजातेहैं तो उनके भीतरके भागको गोला अथवा खोपरा कहतेहैं, ये फल मगलादि कार्य्योंमे बहुत लियेजातेहैं ॥

अथ कालिन्दम् [तरबूज] ।

कालिन्दं कृष्णबीजं स्यात्कालिङ्गञ्च सुवर्तुलम् ॥ कालिन्दं ग्राहि दृक्पित्तशुक्रहृच्छीतलं गुरु ॥ पक्वन्तु सोष्णं सक्षारं पित्तलं कफवातजित् ॥ ४१ ॥

कालिन्द, कृष्णबीज, कालिग, सुवर्त्तुल, (मासफल, चैत्रफल, चित्रवल्लिका, चित्र, मधुरफल, वृत्तफल, तृणाफल, तासल, अल्पप्रमाणक, सुखाश, राजतिनिप, लतापनस, टाम्र, ग्रेट, शीर्णवृन्त, वृहद्गोल, सुखवास, सेट, गोडुम्ब, रक्तबीज, चेलान और मूत्रल) ये तरबूजके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–तरबूज, हिंदोनो । ब०–तरमुज । म०–कलिगड । गु०–तरबूज । क०–कौंडे । तै०–तरबूज, पुच्चकाया । फा०–हिंदवाना । अ०–बत्तिखहिंदी । इ०–वाटरमेलन Water Melon ल०–सार्ट्रूलस वलगेरीस Citrullus vulgaris ॥

तरबूज–ग्राही, शीतल, भारी और दृष्टिकी शक्ति, पित्त तथा वीर्यको हरनेवाला है ॥

पक्का तरबूज–गरम, खारी, पित्तकारक और कफ तथा वातविनाशक है ॥ ४१ ॥

विवरण ।

तरबूज रेतली भूमिमे नदीके निकट बोये जातेहैं, बेल चलतीहैं. पत्ते गोल, कटीले और कँगूरेदार होतेहैं, फूल हरे काले विचित्र और सफेदरगके होतेहैं, कच्चे फलका गूदा सफेद और पकनेपर गूदा लाल और बीजभी लाल होतेहैं. चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, इन तीन महीनामे असख्यात तरबूज आतेहैं, दूसरे सरदे तरबूज होतेहैं, उनका सब आकार तो इसी प्रकारका होताहै; परन्तु गूदा पीला और बीज काले रंगके होतेहैं, इनकी बहार कार्तिक अगहनमे होतीहैं, इनका रंग हरा और सफेद चित्रित होताहै, और असली तरबूज चैत्र वैशाखवाले कोई काले और कोई सफेद और कोई कोई चीतल भी होतेहैं ॥

अथ खर्बूजम् [खर्बूजा] ।

दशांगुलं तु खर्बूजं कथ्यंते तद्गुणा अथ ॥ खर्बूजं मूत्रलं बल्यं कोष्ठशुद्धिकरं गुरु ॥ ४२ ॥ स्निग्धं स्वादुतरं शीतं वृष्यं पित्तानिलापहम्॥ तेषु यच्चाम्लमधुरं सक्षारञ्च रसाद्भवेत् ॥ रक्तपित्तकरं तत्तु मूत्रकृच्छ्रकरं परम् ॥ ४३ ॥

दशांगुल, खर्बूज, (फलराज, अमृताह, पट्भुजा, मधुफला, पट्रेखा, वृत्तकर्कटी, तिक्ता, तिक्तफला, मधुपाका, वृत्तेर्वारु और षण्मुखा) ये खरबूजेके सस्कृत नामहैं॥

हिन्दी–खरबूजा । ब०–खरमुज, खरबुजा । म०–खर्बुज । गु०–खरबुज, तलीआचीभडा । क०–प्रढज सौते । तै०–खरबूज । फा०–खरपुजा । अ०–बित्तिख । इ०–मेलन Melon ल०–फुक्युमिसमेलो Fucumis-melo ॥

खरबूजा–मूत्रकारक, बलदायक, कोठेको शुद्धकरनेवाला, स्निग्ध, अत्यत स्वादिष्ठ, शीतल, वीर्यवर्द्धक और पित्त तथा वातनाशक है । जो खरबूजा खट्टा–मीठा और खारी रसका होय वह रक्तपित्त तथा अत्यत मूत्रकृच्छ्रको करैहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

विवरण ।

खर्बूजेकी बेल–नदीके निकट रेतीमे उत्पन्न होतीहै पत्ते गोल गोल और फूल पीले रगके होतेहैं, चैत वैशाखमे फल लगतेहैं. फल देखनेमे अत्यन्त शोभायमान और दश रेखा युक्त होतेहैं, रग पीला और रेखाओंका रग नीला होताहै, उसके भीतर गूदे समेत बीज निकलतेहैं, उस गूदेको धोकर बीज निकाललेतेहैं, बीजोंको छीलकर मींग निकाल लेतेहैं ॥

अथ त्रपुसम् [खीरा, बालमखीरा] ।

त्रपुसं कण्टकिफलं सुधावासः सुशीतलम्॥ त्रपुसं लघु नीलञ्च नवं तृट्क्लमदा-

हृजित् ॥ ४४ ॥ स्वादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरं परम् ॥ तत्पक्वमम्लमुष्णं स्यात्पित्तलं कफवातनुत् ॥ तद्बीजं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्तास्रकृच्छ्रजित् ॥ ४५ ॥

त्रपुस, कटकिफल, सुधावास, सुशीतल, (पीतपुष्पा, काण्डालु, कण्टालु, त्रपुस, कर्कटी, बहुफला, कटकिलता, कोपफला, तुन्दिलफला और सुधावासा) ये खीरेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-खीरा । ब०-शशा । म०-तौंसे, खिरा । गु०-तांस्लि । क०-तसेयकायि । तै०-दोजकइअ । ता०-महेवेहरिकोङ्कणो । फा०-शियार खुर्द । इ०-दीकुक्युम्बर The Cucumber ल०-कुक्युमिस् सेलिव्युस् Cucumis Salivus ॥

छोटा, नीला और नवीन, खीरा-मधुर, शीतल और तृषा, ग्लानि, दाह, पित्त तथा अत्यत रक्तपित्त रोग नाशक है ॥ पक्का खीरा-खट्टा, गरम, पित्तकारक, और कफ तथा वातनाशक है ॥ खीरेका बीज-मूत्रकारक, शीतल, रूखा और पित्त रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र नाशक है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

विवरण ।

खीरे मालीलोग खेतोंमे बहुत बोतेहैं, और इसकी बेल चलतीहै, परन्तु इनकी दो जाती होतीहैं, एक तो खेतोंमें बोयेजातेहैं. भूमिहीमें बेल फैलकर फल फूल आतेहैं, फूल पीले और फल एक एक बालिस्त लम्बे होतेहैं, दूसरे बालमखीरे कहलाते हैं, उनकी भी बेल चलती है। खीरे लम्बे लम्बे होते हैं, और रंगके पीले बीच बीचमे कॉटोकेसे चिह्न होतेहैं, और सब आकार उसी प्रकारके परन्तु पकजानेपर दोनों जातिके खीरोंमे बीज निकलतेहैं । बालम खीरे (बालम काकडी) मालवेमें बहुत होतेहैं ।

अथ पूगीफलम् [सुपारी छोटी] ।

पूगी पूगश्च घोरण्टः गुवाकः क्रमुकोऽस्य तु ॥ फलं पूगीफलं प्रोक्तमुद्वेगं च तदीरितम् ॥ ४६ ॥ पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफपित्तजित् ॥ मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्य नाशनम् ॥ ४७ ॥ आर्द्रं तद्गुर्वभिष्यन्दि वह्निदृष्टिहरं स्मृतम् ॥ स्विन्नं दोषत्रयच्छेदि दृढमध्यं तदुत्तमम् ॥ ४८ ॥

पूगी, पूग, घोरट, गुवाक, क्रमुक, (घोण्टा, गूवाक, कवीतन, क्रमु, क्रमुकी, पूगवृक्ष, दीर्घपादप, दृढवल्कल, वल्कतरु, चिक्कण, अकोट, तन्तुसार, सुरजन, गोपदल, राजताल, छटाफल और करमट्ट) ये सुपारीके संस्कृत नाम हैं ॥ इसका फल पूगीफल और उद्वेग नामसे कहाहै ॥

हिन्दी-सुपारी । ब०-सुपारी । म०-सुपारी । गु०-सोपारी । क०-अडके यद्देसरु । तै०-पाकोकाया । फा०-पोपिल । अ०-फोफिल । इ०-बिटल नट्पाम् Betel nut palm ल०-एरिका केटेचु Areca-catechu ॥

सुपारी-भारी, शीतल, रूक्ष, कसैली, मोहजनक, अग्निप्रदीपक, रुचिकारी और कफ, पित्त तथा मुखकी विरसताको दूर करैहै । गीली (कच्ची) सुपारी-भारी, अभिष्यन्दि और जठराग्नि तथा नेत्रोंकी दृष्टिको हरैहै ॥ स्विन्न (चिकनी)- त्रिदोषनाशक है॥ जिस सुपारीका मध्य भाग दृढ होय वह सुपारी उत्तम है ॥ ४६-४८ ॥

विवरण ।

सुपारीके वृक्ष ताड और नारियलकी जातिके तथा लम्बे, बागोमें बहुत होतेहै, इसका वृक्ष, खम्भके समान सीधा चलाजाताहै, इसके पत्ते बडे बडे नारियलकेसे होतेहैं इसके ऊपर बडे बडे बेरके गिरके सदृश कुछ लम्बाई लिये गोल गोल फल आतेहैं, उनके छीलनेसे भीतरसे सुपारी निकलतीहै, सुपारीकी अनेक जातिहैं, जिहाजी, श्रीवर्धनी, मानिकचन्दी, चिकनी और अनेक प्रकारकी होतीहैं ॥

अथ तालः [ताड] ।

तालस्तु लेखपत्रः स्यात्तृणराजो महोन्नतः ॥ पक्वं तालफलं पित्तरक्तश्लेष्मविवर्द्धनम् ॥ ॥४९॥ दुर्जरं बहुमूत्रश्च तन्द्राभिष्यन्दशुक्रदम् ॥ तालमज्जा तु तरुणः किञ्चिन्मदकरो लघुः ॥ श्लेष्मलो वातपित्तघ्नः सस्नेहो मधुरः सरः ॥ ५० ॥

ताल, लेखपत्र तृणराज महोन्नत, (तल, भूमिपिशाच, दीर्घतरु, द्रुमश्रेष्ठ, द्रुमेश्वर, तालद्रुम, पत्री, दीर्घस्कन्ध, ध्वजद्रुम, मधुरस, मदाढय, दीर्घपादप, चिरायु, तरुराज, दीर्घपत्र, गुच्छपत्र, आसवद्रु, करपत्रवान्, दीर्घद्रु, तन्तुनिर्यास, तन्तुगर्भ और शतपर्वा) ये ताडके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—ताड । बं०—ताल । म०—गु०—ताड । ता०—लंमपनम । फा०—ताल। अ०—तार । इं०—पालमेरा पाम Palmyra Palm लै०—बोरस समफ्लेबेलि फॉर्मिस Baralsus Flabelleformis ॥

ताडका पका फल—पित्त, रक्त तथा कफवर्द्धक, दुर्जर (सहजमें नहीं पचनेवाला), बहुत मूत्र लानेवाला, अभिष्यन्दि, तन्द्रा और वीर्यवर्द्धकहै । नवीन ताडकी मींग—किञ्चित् मदकारी, हलकी, कफकारक, वात तथा पित्त नाशक, स्निग्ध, मधुर और दस्तावर है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

विवरण ।

ताडके वृक्ष बडे बडे ऊँचे होतेहैं. इनकी दो जाति हैं, एक नर और दूसरी नारी, उनकी यह परीक्षा है कि, नरमें फल नहीं आते और नारीमें फल आतेहैं. नरमें डाली नहीं होती और खम्भके समान इकसार और बहुत ऊँचा होताहै और नारी जातिके ताडमें बडे बडे नारियलके सदृश फल लगतेहैं, उस वृक्षको ऊपरसे गोद देते हैं, उसमें जो रस निकलताहै, उसको किसी पात्रमें लेलेतेहैं. उस रसको ताडी कहतेहैं, ताडके पत्ते लम्बे चौडे चार चार फुटके होतेहैं, इनके पंखे बडे २ बनते हैं, उसके फलोंको तडवे कहतेहैं ॥

अथ तालरसः [ताडी] ।

तालजं तरुणं तोयमतीव मदकृन्मतम् ॥ अम्लीभूतं तदा तु स्यात्पित्तकृद्वातदोषहृत् ॥ ५१ ॥

ताडीका नवीन रस—अत्यत मदकारक (नसा लानेवाला) है । यदि यह खट्टा होगया होय तो—पित्तकारक और वातनाशक है ॥ ५१ ॥

अथ बिल्वः [बेल] ।

बिल्वः शण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि॥ बालं बिल्वफलं बिल्वकर्कटी बिल्वपेशिका ॥ ग्राहिणी कफवातामशूलघ्नी बिल्वपेषिका ॥ ५२ ॥ अन्यच्च—बालं बिल्वफलं ग्राहि दीपनं पाचनं कटु॥कषायोष्णं लघु स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम् ॥ ५३ ॥ पक्कं गुरु त्रिदोषं स्याद्दुर्जरं पूतिमारुतम्॥ विदाहि विष्टम्भकरं मधुरं वह्निमान्द्यकृत्॥ ॥५४ ॥ फलेषु परिपक्वं यद्गुणवत्तदुदाहृतम् ॥ बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणाधिकम् ॥ द्राक्षाबिल्वशिवादीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम् ॥ ५५ ॥

बिल्व, शाण्डिल्य, शैलूष, मालूर, श्रीफल, (महाकपित्थाख्य, गोहरीतकी, पूतिवात, मगल्य, शिविप्र, कोलक, महाकपित्थ, अतिमंगल्य, महाफल, शल्य, हृद्यगन्ध, शलाटु, कर्कटाह, शैलपत्र, शिवेष्ट, पत्रश्रेष्ठ, त्रिपत्र, गन्धपत्र, लक्ष्मीफल, गन्धफल, दुरारुह, त्रिशाखपत्र, शिवद्रुम, सदाफल, सत्यफल, सुभूतिक, समीरसार, नन्दभर्ती, अवरारुह, कण्टकाढ्य, धितानन, नीलमल्लिक, पीतफल और सोमहरीतकी) ये बेलके संस्कृत नाम हैं ॥ कच्चे बेलको—बिल्वकर्कटी, बिल्वपेशिका कहतेहैं ॥

हिन्दी—बेल । बं०—बिल्व, बेल । म० बेलवृक्ष, बेलफळ, बेलफल । गु०—बीली । क०—बेलदु । तै०—मारेडुपिंडुम बिल्व । ता०—बिल्वपालम । इं०—बेंगालक्विन्स Bangalkins लै०—एग्लमारमेलास Eaglemar melos ॥

कच्चा बेल- ग्राही और कफ, वात, आम तथा शूलनाशक है । अन्यग्रंथोंमें भी कहाहैकि—कच्चा बेल ग्राही, अग्निप्रदीपक, पाचक, चरपरा, कषैला, गरम, हलका, स्निग्ध, चिकना, कडवा और वात तथा कफनाशक है ॥ पका बेलफल—भारी, तीनों दोषवाला, दुर्जर, दुर्गन्धित, विदाहि (दाह करनेवाला), ग्राही, मधुर और अग्निको मंद करनेवाला है । बेलके अतिरिक्त शेष सब फल पके हुए गुणदायक हैं, परन्तु बेल तो कच्चाही अधिक गुणवाला है ॥ दाख, बेल और आंवला हरड आदि फल सूखे हुए होयें तो अधिकगुणवाले हैं ॥ ५२–५५ ॥

बेलका विवरण प्रथम गुडूच्यादि वर्गमें लिखदिया है ॥

अथ कपित्थः [कैथ] ।

कपित्थस्तु दधित्थः स्यात्तथा पुष्पफलः स्मृतः ॥ कपिप्रियो दधिफलस्तथा दन्तशठोऽपि च ॥ ५६ ॥ कपित्थमामं संग्राहि कषायं लघु लेखनम् ॥ पक्कं गुरु तृषाहिक्काशमनं वातपित्तजित् ॥स्यादम्लं तुवरं कण्ठशोधनं ग्राहि दुर्जरम् ॥ ५७ ॥

कपित्थ, दधित्थ, पुष्पफल, कपिप्रिय, दधिफल, दन्तशठ, (मन्मथ, कवित्थ, देवपादाढ्य, मालूर, मगल्य, नील, मल्लिका, ग्राहिफल, चिरपाकी, ग्रन्थिफल, कुचफल,

कपीष्ट, गन्धफल, दतफल, करिवल्लभ, काठिन्यफल, करजफलक और अक्षसस्य) ये कैथके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कैथ, कैथा । ब०–कयेथ, गाछ, कत्वेल । म०–कवठ । गु०–कोठ । क०–बेललु । तै०–एलागाकाया । इं०–वुडएपल Wood Apple एलिफट एपल Elephant Apple लै०–फेरोनिया एलिफेंटिनम् Feronia Elephantinum ॥

विवरण ।

कैथका कच्चा फल–ग्राही, कसैला, हलका और लेखन है ॥ कैथका पक्काफल–भारी और तृषा, हिचकी, वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाला है । बहुतही छोटा फल–कसैला, कण्ठको शुद्ध करनेवाला ग्राही तथा दुर्जरहै ॥५६॥५७॥

कैथके वृक्ष सम्पूर्ण हिन्दुस्थानमें पायेजातेहैं, लबाईमे अत्यन्त ऊँचे और झादेदार होतेहैं. पत्ते छोटे और चिकने मेहँदीके पत्तोंके समान होतेहैं; फूल छोटे छोटे सफेद रगके होतेहैं, वर्षाऋतुमें इसकी कलियें निकलतीहैं, फल बेलके समान गोल गोल आतेहैं. उन फलोंमें एक बडा आश्चर्यजनक गुण यह है कि, उस फलको कोई हाथी खाजाय तो उसके पेटमे उसका सार भाग अर्थात् गूदा निकल जायगा और गूदे रहित और देखनेमे जैसेका तैसा कहीसे टूटा फूटा नही साबित, मलके साथ निकलजाताहै ॥

अथ नारंगः । [नारंगी] ।

नारंगो नागरंगः स्यात्त्वक्सुगन्धो मुखप्रियः ॥ नारंगो मधुराम्लः स्याद्दीपनो वातनाशनः ॥ अपरं त्वम्लमत्युष्णं दुर्जरं वातहृत्सरम् ॥ ५८ ॥

नारङ्ग, नागरङ्ग, त्वक्सुगन्ध, मुखप्रिय, (नार्यग, नागर, ऐरावत, नागरुक, चक्राधिवासी, किर्मिर, किर्मिरत्वक्, सुरग, त्वग्गन्ध, इरावत, वक्रवास, योगरग, गधाढ्य, गधपत्र, और वरिष्ठ) ये नारगीके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–नारगी । ब०–नारंगालेबु । म०–नारिग । गु०–नारिगी । क०–माधवला । तै०–दयाकाया । ता० किच्चिलि । फा०–अ०–नारज । इ०–ओरेंज Orange लै०–साईट्रस ओरेंटियन् Citrus Aurantium ॥

नारगी–मधुर, खट्टी, अग्निको दीपन करनेवाली और वातनाशक है । दूसरी जातिकी नारगी खट्टी, बहुत गरम, दुर्जर, वातनाशक और दस्तावर है ॥ ५८ ॥

विवरण ।

नारगीके वृक्ष मध्यमजातिके बागोंमे बहुत होतेहैं. पत्ते निम्बूके समान होतेहैं, फूल अत्यन्त सुगंधित और सफेद, रगके आतेहैं, फल गोल गोल होतेहैं, कच्ची अवस्थामे हरे और पकनेपर लाल सिन्दूरिया रगके होजातेहैं, बागेश्वरकी नारगी सर्वत्र स्थानोमे प्रसिद्ध है ॥

अथ तिन्दुकः [तेंदू, आवनूस] ।

तिन्दुकः स्फूर्जकः कालस्कन्धश्चासितकारकः ॥ स्यादामं तिन्दुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु ॥ पक्वं पित्तप्रमेहास्रश्लेष्मघ्नं मधुरं गुरु ॥ ५९ ॥

तिन्दुक, स्फूर्जक, कालस्कन्ध, असितकारक, (अनिलवार, अतिमुक्तक, स्फूर्जन, सृष्ट, स्यन्दन, रावण, रव, कृष्णत्वक्, कृष्णसार, सुसार, विरूपक, शितिसारक, स्फूर्तिक, तिदु, केन्दु, तिन्दुल, तिन्दुकि, तिन्दुकी, नीलसार, स्वर्य्यक, रावण और स्यन्दनाह्वय) ये तेन्दूके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–तेदू । ब०–गाव, तेद । म०–टेमुणी, आयन । गु०–टिबरवो । क०–रुबुरु । तै० तमिक् । ता०–तुम्बिक । फा०–अवनुसुझाड । इ०, एवनी Ebony लै०–डायोस्पाईरोसएम्ब्रिऔपटेरिस Diospyros Embryopteris॥

तेदूका कच्चा फल–ग्राही, वातकारक, शीतल और हलका है । तेदूका पक्का फल–मधुर, भारी और पित्त, प्रमेह, रक्तविकार तथा कफको नष्ट करैहै ॥ ५९ ॥

विवरण ।

तेंदूके वृक्ष अत्यन्त ऊँचे ऊँचे होतेहैं, पत्ते गोल गोल नोकदार शीशमकेसे होतेहैं. छाल काली काली होतीहै, उसमे खार होता है, इसकी लकडी स्थानादिकोंके बनानेके काममे आती है. इसके भीतरका सार काला और वजनदार होताहै, हिन्दुस्थानी लोग इसको आवनूस कहतेहैं, तेदूके फल गोल और शोभायमान निबूके समान हरे हरे होते हैं, पकनेपर पीले पडजाते हैं ॥

अथ कुपीलुः [कुचला, मकरतेंदुआ] ।

तिन्दुको यस्तु कथितो जलदो दीर्घपत्रकः ॥ कुपीलुः कुलकः कालस्तिन्दुकः कालपीलुकः ॥ ६० ॥ काकेन्दुर्विषतिन्दुश्च तथा मर्कटतिन्दुकः ॥ ६१ ॥ कुपीलुः शीतलस्तिक्तो वातलो मदकृल्लघुः ॥ पादव्यथाहरो ग्राही कफपित्तास्रनाशनः ॥ ६२ ॥

तिन्दुक, जलद, दीर्घपत्रक, कुपीलु, कुलक, कालतिन्दुक, कालपीलुक, काकेन्दु, विषतिन्दु, मर्कटतिन्दुक, (कारस्कर, किम्पाक, विषद्रुम, गरद्रुम, रम्यफल, कुपाक, कालकूटक, कचीर, वर्तुल और चिपिट) ये कुचलेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—कुचला । ब०—कुचिले । म०—काजरा कारस्कार । गु०—झेरकोचलु । क०—काजिवार । तै०—मुष्टिगिजा, काचोराल्ल । फा०—इफराकी । अ०—कातिलुल, कल्क फलूजमाही । इं०—पाइसन नट Paison Nut लै०—स्ट्रिकनास नवसवामिका Strychnos Nux vomica ॥

धुचला—शीतल, कडवा, वातकारक, मदकर्त्ता (नशा करनेवाला), हलका, पाँचकी पीडाको दूर करनेवाला, ग्राही और कफ, पित्त, तथा रुधिरविकार नाशक है ॥ ६०—६२

विवरण ।

कुचिलेके वृक्ष मध्यम आकारके होतेहैं, प्रायः वनोंमें बहुत देखनेमें आतेहैं, पत्ते पानके समान और फल नारङ्गीकेसे सुन्दर सुन्दर होतेहैं, इसके बीजोंको कुचिला कहतेहैं ॥

अथ राजजम्बूः [बडीजामून] ।

फलेन्द्रा कथिता नन्दी राजजम्बूर्महाफला ॥ तथा सुरभिपत्रा च महाजम्बूरपि स्मृता ॥ राजजम्बूफलं स्वादु विष्टम्भि गुरु रोचनम् ॥ ६३ ॥

फलेन्द्रा, नन्दी, राजजबू, महाफला, सुरभिपत्रा, महाजंबू, (स्वर्णमाता, शुकप्रिया, कोकिलेष्टा, महानीला, बृहत्फला, महापत्रा, फलेन्द्र और नन्द) ये बडी जामुनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—बडीजामुन, फरेन्द । ब०—बडजाम । म०—नदी । जाम्भूळ । गु०—जाम्बु । क०—दोडुनिरलु । तै० पेद्दानेरेडि । इं०—जाम्बिल ट्री Jambil Tree लै० युजिनिया, जाम्बोलेना Eugenia Jambolana ॥

बडी जामुन—स्वादिष्ट, विष्टम्भि भारी और रुचिकारी है ॥ ६३ ॥

अथ जलजम्बुका [छोटीजामुन, नदीजामुन] ।

क्षुद्रा जम्बूः सूक्ष्मपत्रा नादेयी जलजम्बुका ॥ जम्बूः संग्राहिणी रूक्षा कफपित्तास्रदाहजित् ॥ ६४ ॥

क्षुद्रजम्बू, सूक्ष्मपत्रा, नादेयी, जलजम्बुका, (दीर्घपत्रा, और सूक्ष्मकुणफला) ये छोटी जामुनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—छोटी जामुन । ब०—क्षुद्रजाम । गु०—क्षुद्रजंबु ॥

छोटी जामुन—ग्राही रूक्ष और कफ, पित्त, रुधिरविकार तथा दाहनाशक है ॥ ६४ ॥

विवरण ।

जामुनके वृक्ष तीन चार प्रकारके होतेहैं, एक नदीके निकट होतेहैं, जिनके पत्ते कनेरके समान होतेहैं. उनको नदीजामुन कहतेहैं, दूसरी बडी जामुन होती है उसके पत्ते पीपलकेसे होतेहैं, उसको जमुना कहतेहैं । तीसरी साधारण जामुन होतीहै, उसके पत्ते आमकेसे होतेहैं, फल मध्यम जातिका होताहै, कच्ची अवस्थामें हरी हरी होतीहैं और पकनेपर उनका रग बैंजनी होजाताहै, फूलके स्थानमें जामुनपर मौरही आताहै ॥

अथ बदरी [बेर] ।

पुंसि स्त्रियाञ्च कर्कन्धूर्बदरी कोलमित्यपि ॥ फेनिलं कुवलं घोंटा सौवीरं बदरं महत् ॥ अजप्रिया कुहा कोली विषमोभयकण्टका ॥ ६५ ॥

तत्रबदरविशेषाणांलक्षणानिगुणाश्च ।

पच्यमानं सुमधुरं सौवीरं बदरं महत् ॥ सौवीरं बदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम् ॥ ॥ ६६ ॥ बृंहणं पित्तदाहास्रक्षयतृष्णानिवारणम् ॥ सौवीरं लघु सम्पक्वं मधुरं कोलमुच्यते ॥ ६७ ॥ कोलन्तु बदरं ग्राहि रुच्यमुष्णञ्च वातलम् ॥ कफपित्तकरञ्चापि गुरु सारकमीरितम् ॥ ६८ ॥ कर्कन्धूः क्षुद्रबदरं कथितं पूर्वसूरिभिः॥अम्लं स्यात्क्षुद्रबदरं कषायं मधुरं मनाक् ॥६९॥ स्निग्धं गुरु च तिक्तञ्च वातपित्तापहं

स्मृतम् ॥ शुष्कं भेद्यग्निकृत्सर्वं लघुतृष्णाक्लमास्रजित् ॥ ७० ॥

कर्कन्धु(स्त्रीलिंग पुलिंग) बदरी, अजप्रिया, कुहा, कोली, विषमा और उभयकंटका, ये छोटे बेरके संस्कृत नाम हैं। कोल, फेनल, कुवल, घोंटा, सौवीर और बदर, ये बडे बेरके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–बेर, छोटाबेर । व०–कुलफल, बडकुलगाछ । म०–बोर, रायबोर । क०–येरनु । तै०–रेगचेट्टु । ता० रेयन्ति । फा०–कुनार । अ०–सीदरनवक । इ–जुजब Jujab लै०–जिजिफस जुजुबा Zizy.phus Jujuba॥

पका हुआ और बहुत मीठा जो बडा बेर होताहै उसे सौवीर कहतेहैं । सौवीर (बडा बेर शीतल. दस्तावर, भारी, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक और पित्त, दाह, रुधिरविकार, क्षय तथा तृषाको नष्ट करनेवाला है। जो पका हुआ और छोटा बेर होय वह कोल कहाताहै। कोलबेर–ग्राही, रुचिकारक, गरम, वात, कफ तथा पित्तकारक, भारी और दस्तावर है। बहुत छोटे अर्थात् झडिया बेरको कर्कन्धु कहते हैं। कर्कन्धुबेर–खट्टा, कसैला, किंचित् मीठा, स्निग्ध, भारी, कडवा और वात तथा पित्तनाशक है। सूखा हुआ बेर–दस्तावर, अग्निवर्द्धक, हलका और तृषा ग्लानि तथा रक्तविकारनाशक है ॥ ६५–७० ॥

विवरण।

बेरके वृक्ष अनेक जातिके होतेहैं और ये सब स्थानोंमें देखे जातेहैं इसके वृक्ष कॉंटेदार मध्यम भागके होतेहैं पत्ते छोटे छोटे और गोल कुछेक लम्बाई लिये होतेहैं, फूल बौरहीमें छोटे छोटे सफेद रगके होतेहैं, फल अपनी १ जातिके आतेहैं, छोटे, बडे, लम्बे, गोल, पैवन्दी, कठा, पौंडा और रामपुरी इत्यादि। एक और झडबेरके नामसे कहलातेहैं, उनके क्षुप छोटे छोटे पृथ्वीपर फैले हुए होतेहैं, उनका एक वनही है जिसका नाम श्री बद्रिकाश्रम है और दिल्लीसे आगे बढकर जो देखा तो कोसोंतक बेरीहीके वृक्ष देखनेमें आये, उनहीं क्षुपोंको काट काटकर और उनके पत्ते झाड झाडकर बडे बडे ऊँचे ढेर लगादेतेहैं, उसको पाला कहतेहैं, उसीसे गाय भैंसोंकी उदर पूरणा होतीहै उन क्षुपोंमें छोटे छोटे बेर भी लगतेहैं. प्रथम हरे होतेहैं, मध्यम अवस्थामे पीले और अन्त समय लाल पडकर सुकडेसे होजातेहैं ॥

अथ प्राचीनामलकः

प्राचीनामलकं लोके पानीयामलकं स्मृतम् ॥ प्राचीनामलकं दोषत्रयजिज्ज्वरघाति च ॥ ७१ ॥

प्राचीनामलक, पानीयामलक. ये पानी आमलेके सस्कृत नाम है

हिन्दी–पानीआमला । व०–पानि अम्बरा । म०–पानआवळे । गु०–पाणिआंवला । इ–फ्लाकुर्या काटाफ्राक्टा Flacautia Cataphracta लै०–फ्लारो मोंचिआई Flaro Montchii ॥

प्राचीनअमलेको लोकमे. पानीयामलक कहते हैं । पानीआमला तीनो दोष तथा ज्वरनाशक है ॥७१॥

विवरण।

पानीआमलेके वृक्ष जलाशयके समीप होतेहैं, इसमे कॉंटे भी होतेहैं, पत्ते लम्बे और फल लाल लाल बेरके समान कठिया होतेहैं ॥

अथ लवली [हरफारेवडी]।

सुगन्धमूला लवली पाण्डुः कोमलवल्कला ॥ लवलीफलमश्मार्शःकफपित्तहरं गुरु ॥ विशदं रोचनं रूक्षं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे ॥ ७२ ॥

सुगधमूला, लवली, पाण्डु और कोमलवल्कला ये लवलीफलके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–लवलीफल, हरफारेवडी । व०–नोयाड, नोयाल । म०–रायऑवळा । गु०–हरफारेवडी, लै०–साईकाडिस्टिका Ciccodisticha ॥

लवलीफल–भारी, विशद, रुचिकारक, रूक्ष, स्वादु, अम्ल, रसमे कसैला और पथरी, बवासीर, कफ तथा पित्तनाशक है ॥ ७२ ॥

विवरण।

हरफारेवडीके बहुत सुन्दर सुन्दर वृक्ष पुष्पोद्यानोंमें होतेहैं. पत्ते कसौंदीके समान होतेहैं, फल गूलरके सदृश शाखाओमेसे निकलते है ॥

अथ करमर्दः [करौंदा, करौंदी]।

करमर्दः सुषेणः स्यात्कृष्णपाकफलस्तथा॥ तस्माल्लघुफला या तु सा ज्ञेया करमर्दिका ॥ ७३ ॥ करमर्दद्वयं त्वाममम्लं गुरु तृषाहरम् ॥ उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्तकफप्रदम् ॥ तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्तसमीरजित् ॥ ७४ ॥

करमर्द, सुषेण, कृष्णपाकफल, (वनेक्षुद्रा, कराम्ल, करमर्दक, अविग्न, करामर्द, कृष्णफल, पाककृष्णफल कृष्णफलपाक, पाककृष्ण, फलकृष्ण, वनालय, वनालक, कराम्लुक, कराम्लक, पाणिमर्द, कण्टकी, अविग्न, सुपुष्प, दृढकण्टक, जातिपुष्प, क्षीरफल, डिण्डिम, गुच्छी, भारी और बहुदल) ये करौंदेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—करोंदा, करोंदी । ब०—करमचा, । म०—करवंदे । गु०—करमदां । क०—कररजिगे । तै०—वाका । इं०—जस्मिन्फ्लावर्ड Jasmineflowered carissa ले०—केरिसा कोरंदास Carissa Corndas ॥

जिसमें छोटा फल आता है उसको करोंदी कहतेहैं । दोनों करोंदेके कच्चे फल–खट्टे, भारी, तृषानाशक, गरम, रुचिकारी, रक्तपित्त तथा कफकारक है ॥ पका करोंदा—मीठा, रुचिकारी, हलका और पित्त तथा वात विनाशक हैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

विवरण ।

करोंदेके क्षुप बागोंमें बहुत होतेहैं. फूल सफेद और सुगन्धित जुईके समान आतेहैं, फलोंके गुच्छे बेरोंके समान लगतेहैं, परन्तु वे दो जातिके होतेहैं. एक सफेद नोंकोंपर लाली लिये अत्यन्त मनोहर होतेहैं. दूसरे कच्चे हरे आधे लाल और पकनेपर काले काले होजातेहैं ॥

अथ प्रियालः [चिरौंजी] ।

प्रियालस्तु खरस्कन्धश्चारो बहुलवल्कलः॥ राजादनस्तापसेष्टः सन्नकद्रुर्धनुष्पटः ॥ ७५ ॥ चारः पित्तकफास्रघ्नस्तत्फलं मधुरं गुरु ॥ स्निग्धं सरं मरुत्पित्तदाहज्वरतृषापहम् ॥ ७६ ॥ प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ॥ हृद्योऽतिदुर्जरः स्निग्धो विष्टम्भी चामवर्द्धनः॥७७॥

प्रियाल, खरस्कन्ध, चार, बहुलवल्कल, राजादन, तापसेष्ट, सन्नकद्रु, धनुष्पट, (असट्ट, ललन, चारक, बहुवल्क, सन्नद्रु, तापसप्रिय, स्नेहबीज, उपवट, मोक्षवीर्य, द्रुसलक, राजातन, प्रियाल, हसन्नक और पियालक) ये, चिरौंजीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—चिरौंजी, ब०—चिरौंजी, पियाल । म०—चारोळी । गु०—चारोली । क०—चारबीज, । तै०—सारुपपु । ता०—कारमरा । फा०—तुख्मे ग्याजा । अ०—हब्बुस्समाना ले०—बुकनानिया लैटिफोलिया Buchanania Latrifolia ॥

चिरौंजी–पित्त, कफ तथा रुधिरविकार नाशक है । चिरौंजीका फल–मधुर, भारी स्निग्ध, दस्तावर और वात, पित्त दाह, ज्वर तथा तृषाको नष्ट करै है । चिरौंजीकी मींग–मधुर, वीर्यवर्द्धक, पित्त तथा वातनाशक हृदयको प्रिय, अति दुर्जर, स्निग्ध, विष्टम्भी और आमवर्धक है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

विवरण ।

चिरौंजीके वृक्ष कोंकण आदि देशोंमें अधिक होतेहैं पत्ते महुएके पत्तोंके समान मोटे लगते छोटे छोटे नोंकदार लगतेहैं. उसमें जो मींग निकलतीहै, उसीको चिरौंजी कहते हैं ॥

अथ राजादनः [खिरनी] ।

राजादनः फलाध्यक्षो राजन्या क्षीरिकापि च ॥ क्षीरिकायाः फलं वृष्यं बल्यं स्निग्धं हिमं गुरु॥ तृष्णामूर्छामदभ्रान्तिक्षयदोषत्रयास्रजित् ॥ ७८ ॥

राजादन, फलाध्यक्ष, राजन्या, क्षीरिका, (राजफल, कपीष्ट, क्षीरवृक्ष, नृपद्रुम, निम्बबीज, मधुफल, माधवोद्भव, क्षीरी, गुच्छफल, भूपेष्ट, राजवल्लभ, श्रीफल, दृढस्कन्ध और क्षीरशुक्र) ये खिरनीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—खिन्नी, खिरनी, । ब०—क्षीरिणी, राजणी । म०—खिरणी । गु०—रायण, । क०—रोणे मारिले ता०—पल्ल । इं०ओबटयुस लीव्डमाई मुसोप्स Obtuse Leaved Mimusops ले०—माइमुसोप्स हेग्झान्ड्रा Mimusops Hexandra ॥

खिरणीका फल–वीर्यवर्द्धक, बलदायक, स्निग्ध, शीतल, भारी और तृषा, मूर्च्छा, मद, भ्रान्ति, क्षय, तीनों दोष तथा रक्तविकारनाशक है ॥ ७८ ॥

विवरण ।

खिरनीके वृक्ष बडे बडे ऊँचे होतेहैं, पत्ते नेवाडीके समान होतेहैं, इसके शीतऋतुमें मौर आताहै, और वसन्तऋतुमें फल आतेहैं, फल निंबोलीके समान और गुच्छे लगतेहैं, वे कची अवस्थामें हरे और पकने पर पीले होजातेहैं, और कोई २ पकनेपर भी हरेही रहतेहैं उनको हरियल कहतेहैं. उन फलोंमेसे दूध भी निकलता है ॥

अथ विकंकतः [कण्टाई]।

विककतः स्रुवावृक्षो ग्रन्थिलः स्वादुकण्टकः ॥ स एव यज्ञवृक्षश्च कण्टकी व्याघ्रपादपि ॥ विकंकतफलं पक्कं मधुरं सर्वदोषजित् ॥ ७९ ॥

विककत, स्रुवावृक्ष, ग्रथिल, स्वादुकंटक, यज्ञवृक्ष, कंटकी, व्याघ्रपात्, (वैककत, वृत्तिकर, कटकारी, किकिरी, स्रुग्दारु, कण्टपत्र, स्रुग्दारु, मधुपर्णी, कण्टपाद, वहुफल, गोपघोण्टा, स्रुवद्रुम, किकिणी, पृथुवीज, सुधावृक्ष, पादरोहिण और रावण) ये कटाईके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कटाई, किकिणी । व०–वइँचिगाछ । म०–वेहकळ । गु०–विकलो । क०–हलुमाणिका मालेगु । तै०–कानवेगुचेट्टु । लै०–सिलस्ट्रस् मोंटेना Selastrus Montana ॥

कटाईका पक्का फल–मधुर और सम्पूर्ण दोप नाशक है ७९

विवरण ।

विककतके वृक्ष जगल और वनोंमें वहुत वडे वडे होते हैं, उनके पत्ते छोटे छोटे और डालियोंमें काटे होते हैं, इसमें वहुत अच्छे २ वेरके समान गोल गोल फल लगतेहैं ॥

अथ पद्माक्षम् [कमलगट्टा] ।

पद्मवीजं तु पद्माक्षं गालोड्यं पद्मकर्कटी ॥ पद्मवीजं हिमं स्वादु कषायं तिक्तकं गुरु ॥ ८० ॥ विष्टम्भि वृष्यं रूक्षश्च गर्भसंस्थापकं परम् ॥ कफवातकरं बल्यं ग्राहि पित्तास्रदाहनुत् ॥ ८१ ॥

पद्मवीज, पद्माक्ष, गालोड्य, पद्मकर्कटी, (कन्दली, भेण्डा, क्रोञ्चादनी, क्रौञ्चा और श्यामा) ये कमलगट्टेके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–कमलगट्टा । व०–पद्मवीचि । म०–कमळाक्ष । गु०–कमलकाकडी । क०–पद्माक्ष । तै०तामरकाडा । अ०–वालके कुवति ॥ कमलगट्टा–शीतल, स्वादिष्ट, कसैला, कडवा, भारी, विष्टम्भि, वीर्यवर्द्धक, रूक्ष, गर्भ स्थापित करनेवाला, वलदायक, ग्राही, कफ तथा वात करने वाला और पित्त, रक्तविकार तथा दाहको नष्ट करे है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

विवरण ।

कमलगट्टे कमलके वीजोंको कहते है, ये कमलकोपके भीतर रीठेकी गुठलीके समान होते हैं, इनके भीतर सफेद रगकी गिरी निकलती है ॥

अथ मखान्नम् [मखाना] ।

मखान्नं पद्मबीजाभं पानीयफलमित्यपि ॥ मखान्नं पद्मवीजस्य गुणैस्तुल्यं विनिर्दिशेत् ॥ ८२ ॥

मखान्न, पद्मवीजाभ और पानीयफल, ये मखानेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०–मखाना । व०–माखाना । गु०–मखाना । म०–मखाणे । लै०–युर्यलोफेरोक्स Euryeloferox ॥ मखानेमे कमलगट्टेके सदृश गुण जानने ॥ ८२ ॥

विवरण ।

कमलगट्टोंको भाडमें भूननेसे मखाने वन जाते हैं, उनकी वतासेकेसी आकृति होजाती है ॥

अथ शृंगाटकम् [सिंघाडा] ।

शृंगाटकं जलफलं त्रिकोणफलमित्यपि ॥ शृंगाटकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं कषायकम्॥ ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मप्रदं पित्तास्रदाहनुत् ८३

शृगाटक, जलफल, त्रिकोणफल, (जलसूचि, सघाटिका, वारिकंटक, शुक्रदुग्ध, शृगाट, वारिकुब्जक, क्षीरशुक्ल, जलकटक, शृगरुह, जलवल्ली, जलाशय, शृगकन्द, शृगमूल, विपाणी, जलकन्द, त्रिकोट, त्रिकट और त्रिक) ये सिगाडेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सिघाडे, सिगाडे । व०–पाणिफल, सिगाडे। म०–सिगाडे । गु०–सिगोडा । क०–सिघाडे । तै०–परिकेगड्डु । फा०–सुरजान् । इ०–वाटरकेलट्राप Water caltiap लै०-ट्रापा वाईस्पाइनोज Trapa Bispinosa ॥

सिगाडा–शीतल, स्वादिष्ठ, भारी, वीर्यवर्द्धक, कसैला ग्राही, वीर्य, वात तथा कफको करनेवाला और पित्त, रक्तविकार तथा दाहको नष्ट करे है ॥ ८३ ॥

विवरण ।

सिघाडेकी वेल वडे वडे तालोंमे और झीलोंमे होती है. पत्ते गोल गोल, हरे रगके और लाल रगके होते है. वेलमें तीन धारवाले फल लगते हैं, उन फलोंके ऊपर दो काँटे और एक अनी वनी होती है और कहींमे ऊँचा कहींसे नीचा परमेश्वरने उसका अद्भुतही प्रकारका रग-

ढग रचा है, कोई हरे रगका कोई लाल रगका और कोई धूसर रगका अच्छे रग विरगे बनाये, उनको छीलनेसे भीतर एक ऐसी सफेद गिरी निकलती है, मानो कपूरकी तिकोनी डली, उसको सिघाडेकी मींग कहते हैं, और उसको बहुत शुद्ध समझकर व्रतमें खाते हैं ॥

अथ कैरविणीफलम् [वेरी] ।

उक्तं कुमुदबीजन्तु बुधैः कैरविणीफलम् ॥
भवेत्कुमुद्वतीबीजं स्वादु रुक्ष हिमं गुरु ८४॥

कुमुदबीज, कैरविणीफल, कुमुद्वतीबीज, (कुमुदिनी, चन्द्रेष्टा, कुवलयिनी, इन्दीवरिणी और नीलोत्पलिनी) ये कैरविणी फलके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—कैरविणीफल,वेरी। गु०—पोयणाना बीज॥कुमोदिनीके बीज—स्वादिष्ट, रुक्ष, शीतल और भारी हैं ॥८४॥

अथ मधूकः [महुआ, वनमहुआ] ।

मधूको गुडपुष्पःस्यान्मधुपुष्पो मधुस्रवः॥
वानप्रस्थो मधुष्ठीलो जलजेऽत्र मधूलकः॥
॥ ८५ ॥ मधूकपुष्पं मधुरं शीतलं गुरु बृंहणम् ॥ बलशुक्रकरं प्रोक्तं वातपित्तविनाशनम् ॥ ८६ ॥ फलं शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वातपित्तनुत् । अहृद्यं हन्ति तृष्णासदाहश्वासक्षतक्षयान् ॥ ८७ ॥

मधूक, गुडपुष्प, मधुपुष्प, मधुस्रव, वानप्रस्थ, मधुष्ठील, मधूलक (मधुवृक्ष, गैरिकपुष्प, माधव, मध्वग तीक्ष्णसार, डोलाफळ, महाद्रुम, मधुक, मधुवार और मध्वल ये महुवेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—महुआ, जलमहुआ। व०मौल, मडल, मौया। गु०—महुडा । क०महूइये। तै०इप्पाचिन्ना। ता०—कटइल्लपि। फा०—चका। इ०—इलूपाट्री Elloo patree लै०—वेसियालाटिफोलिया Bassialatifolia ॥ जलमें होनेवाले महुएको मधूलक कहते हैं। महुएका फूल—मधुर, शीतल, भारी, पुष्टिकारक, बल तथा वीर्यवर्द्धक और वात तथा पित्तनाशक है ॥ महुएका फल—शीतल, भारी, मधुर, वीर्यवर्द्धक, हृदयको अप्रिय और वात, पित्त, तृषा, रक्तविकार, दाह, श्वास, क्षत तथा क्षयको नष्ट करे है ॥ ८५–८७ ॥

विवरण ।

महुवेके वृक्ष वनमें और पर्वतोंमें बडे बडे ऊंचे होते है. पत्ते बादाम अथवा वटके पत्तोंके समान होते हैं, फूलमें शहदके समान गन्ध आती है और उसमेंसे गरीफैके फलके समान बीज निकलते हैं, इसके फलोंमेंसे तेल निकलता है ॥

अथ परूपकम् [फालसा] ।

परूषकं तु परुषमल्पास्थि च परापरम् ॥
परूषकं कषायाम्लमामं पित्तकरं लघु ॥
॥ ८८ ॥ तत्पक्वं मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि बृंहणम् ॥ हृद्यन्तु पित्तदाहास्रज्वरक्षयसमीरहृत् ॥ ८९ ॥

परूषक, परुष, अल्पास्थि, परापर, (गिरिपीलु, नागरलोपम, परावत, नीलचर्म, नीलमण्डल और मृदुफल) ये फालसेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—फालसा, परुषा, । ब०—फलसा । म०— गु०—फालसा। क०—बेट्टा, दागलि । तै०—पुटिकी। फा०—पालसा। अ०—फालसा, । इ०—एशियाटिक ग्रेविया Asiatic Grewia लै०—ग्रेविया एशियाटिका Grewia Asitica ॥

कच्चा फालसा—कसैला, खट्टा, पित्तकारक और हलका है। पका फालसा—पाकमें मधुर, शीतल, विष्टम्भि पुष्टिकारक, हृदयको प्रिय और पित्त, दाह, रक्तविकार, ज्वर, क्षय तथा वातको नष्ट करे है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

विवरण ।

फालसेके वृक्ष मध्यम आकारके होते हैं; माली लोग अपने बागोंमें बहुत लगालेते हैं; पत्ते बेलके समान तीन तीन मिले हुए होते हैं, फल दो तीन एकत्र होते हैं, फल कच्चीअवस्थामें हरे और पकनेपर ऊदे रगके हो जाते हैं ॥

अथ तूतः । [सहतूत] ।

तूतः स्थूलश्च पूगश्च क्रमुको ब्रह्मदारु च॥
तूतं पक्वं गुरु स्वादु हिमं पित्तानिलापहम्॥
तदेवामं गुरु सरमम्लोष्णं रक्तपित्तकृत्९०॥

तूत, स्थूल, पूग, क्रमुक, ब्रह्मदारु, (नूद, ब्रह्मकाष्ठ, ब्रह्मण्य, मृदुसार, सुपुष्प, नीलरगक, तूल, ब्राह्मणेष्ट, नीलवृन्तक, क्रमुक, विप्रकाष्ठ, मदसार, पूण, ब्रह्मनेष्ट, नूद, पूप, और पलाशिक) ये सहतूतके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—सहतूत। ब०—तूँत, तूँद । म०—तूते, सेंतूत । गु०शेतूत । तै०—कम्बलिचेट्टु । ता०—मुपुकट्टइचेडि। फा०—शाहतूत, तूततुर्श। अ०—तूत, तूर्द शामीज। इ०—मलबेरीझ Mulberrias लै०—मोरस इण्डिका Morus

Indica मोरस निग्रा Morusnigra ॥

पक्का सहतूत–भारी, स्वादिष्ठ, शीतल, पित्त तथा वातनाशक है। कच्चा सहतूत–भारी, दस्तावर, खट्टा, गरम और रक्तपित्तको करनेवाला है ॥ ९० ॥

विवरण।

सब तूतके वृक्ष बागोमे बहुत होतेहै, पत्ते अजीरके समान तीनतीन कँगूरेवाले और नीमके पत्तोंके सदृश चारों ओर आरेकेसे चिह्न होतेहैं ये वृक्ष दोप्रकारके होतेहैं एकपर काले सहतूत आतेहैं, और दूसरेपर सफेद सहतूत आतेहैं, इसके फल फलीके समान होतेहैं और उनमे बाजरेकेसे दाने सर्वत्र लगे रहते हैं, वह फली अत्यन्त कोमल और रसीली होतीहैं ॥

अथ दाडिमः [अनार]।

दाडिमः करको दन्तबीजो लोहितपुष्पकः ॥ तत्फलं त्रिविधं स्वादु स्वाद्वम्लं केवलाम्लकम् ॥ ९१ ॥ तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं तृड्दाहज्वरनाशनम् ॥ हृत्कण्ठमुखगन्धघ्नं तर्पणं शुक्रलं लघु ॥ ९२ ॥ कषायानुरसं ग्राहि स्निग्धं मेधाबलावहम् ॥ स्वाद्वम्लं दीपनं रुच्यं किञ्चित्पित्तकरं लघु॥ अम्लन्तु पित्तजनकमम्लं वातकफापहम्॥९३

दाडिम, करक, दन्तबीज, लोहितपुष्पक, (दाडिमीसार, कुट्टिम, फलषाडव. रक्तबीज, सुफल, दन्तबीजक, मधुबीज, कुचफल, शुकवल्लभ, मणिबीज, वल्कफल, पिण्डपुष्प, दाडिम्ब, पर्वरुट, स्वाद्वम्ल, पिण्डीर, फलशाडव, मुखवल्लभ, रक्तपुष्प, डालिम, शुकादन, फलसाडव, सुनील, नीलपत्र और नीलपत्रक,) ये दाडिमके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–दाडिम, अनार। बं०–डाडिम, डालिम। म०–डाळिंब, दालिंब। गु०–दालिम। क०–दालिंब। तै०–डानिम्मचेट्टु, दालिम्बकाया। ता०–मादलई चेडेड्डी। फा०–अनार तुरस। अ०–रुमान हामीज। इं० पोम् ग्रानेट Pomegranate लै०–प्युनिका ग्रानेटम् Punica - Granatum ॥

अनारका फल–मीठा, खटमीठा और केवल खट्टा, इसभाँति तीन प्रकारका होताहै। इनमें मीठा अनार–त्रिदोषनाशक, तृप्तिदायक, वीर्यवर्द्धक, हलका, कसैले रसवाला, ग्राही, स्निग्ध, बुद्धि तथा बलदायक और तृषा, दाह, ज्वर, हृदयरोग, कण्ठरोग तथा मुखकी दुर्गन्धको नष्ट करैहै। खट्टा मीठा अनार–अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारी, किंचित् पित्तकारक और हलका। केवल खट्टा अनार–पित्तको उत्पन्न करनेवाला, खट्टा और वात तथा कफको नष्ट करैहै ॥ ९१–९३ ॥

विवरण।

अनारका वृक्ष मध्यम आकारका होताहै, ये वृक्ष सब स्थानोंमे मिलतेहैं, उत्तरखण्डके पहाडोमें, काबुलमें, खन्धारमें, इसके सिवाय और २ देशोमे भी अधिक होतेहैं, पत्ते हरे और लम्बे लम्बे होतेहैं. फूल अत्यन्त शोभायमान सिन्दूरिया रगका होताहै। अनारकी दो जाति हैं, एक नर, दूसरा नारी. नरमे फूल बहुत बडा आताहै और फल नही लगते, नारी जातिके अनारमे फूल छोटे फल गोल और बडे लगते हैं. फलके भीतर दाने मणियोंके समान और लाल कान्तिवाले होतेहैं, वह मधुर, खटमधुरे, और सम्पूर्ण खट्टे, ऐसे तीनप्रकारके होतेहैं. रगमे कोई लाल और कोई धूसरा होताहै ॥

अथ बहुवारः [लिसोडा]।

बहुवारस्तु शीतः स्यादुद्दालो बहुवारकः ॥ शेलुः श्लेष्मातकश्चापि पिच्छिलो भूतवृक्षकः ॥ ९४ ॥ बहुवारो विषस्फोटव्रणवीसर्पकुष्ठनुत् ॥ मधुरस्तुवरस्तिक्तः केश्यश्च कफपित्तहृत् ॥ ९५ ॥ फलमामन्तु विष्टम्भि रूक्षं पित्तकफास्रजित् ॥ तत्पक्वं मधुरं स्निग्धं श्लेष्मलं शीतलं गुरु ॥९६॥

बहुवार, शीत, उद्दाल, बहुवारक, शेलु, श्लेष्मातक, पिच्छिल, भूतवृक्षक, (कर्बुदार, लेखशाटक, शेळु, गन्धपुष्प, शापित, द्विजकुत्सित, शीतफल, शाकट, कर्बुदारक, भूतद्रुम, और श्लेष्मात) ये लिसोडेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–लिसोडा, निसोरा। बं०–बहुयार, चालतागाछ। म०–भोकर, शेलवट। गु०–गुंदी। क०–चेलु गोंदिगी। तै०–नाकेरु. नुक्केरु। ता०–विडि। फा०–सपिस्तॉ अ०–सेफिस्तॉ दबक। इं०–नेरो लिव्ड सेपिस्ट Narrowleaved Sepistun लै०–कोर्डिया माइजा Cordia Myza ॥

लिसोडा–मधुर, कषैला, कडवा, केशोंको हितकारी और विष, विस्फोट, व्रण, विसर्प, कोढ, कफ तथा पित्तनाशक हैं ॥ लिसोडेका कचाफल–विष्टम्भी, रूखा, और पित्त कफ तथा रक्तविकारको नष्ट करे है।

लिसोडेका पक्वफल—मधुर, स्निग्ध, कफकारक, शीतल और भारी है ॥ ९४–९६ ॥

विवरण ।

लिसोडेके वृक्ष जगल और वनमे अधिक होतेहैं, पत्ते गोल कुछ लम्बाईलिये हुए होतेहैं, फल अलूचेके समान गोल रसीले गुच्छोंमे लगतेहैं, भीतरसे चुपकतेहैं इसी प्रकारके लसेडेके वृक्ष भी होतेहैं, पत्ते भी इसी भॉतिके होतेहैं, परन्तु फल इससे छोटे होतेहैं, कच्चे, रंगमे हरे और पकनेपर कुछ गुलाबीसे होजातेहैं, फलके भीतर बीज और कुछ गोंदसा निकलताहै ॥

अथ कतकः [निर्मली] ।

पयःप्रसादी कतकः कतकं तत्फलं च तत् ॥ कतकस्य फलं नेत्र्यं जलनिर्मलताकरम् ॥ वातश्लेष्महरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥ ९७ ॥

पय.प्रसादि, कतक, (छेदनीय, श्लक्ष्ण, तोयप्रसादन, कात्य, कतकरेणु, शोधनात्मक, अम्बुप्रसादनफल, रुचिष्य, लेखनात्मक, अम्बुप्रसाद, कत, तिक्तफल, गुच्छफल, तिक्तमरिच और तोयप्रसादफल) ये निर्मलीफलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—पायपसारी, निर्मलीफल, । व०—निर्मलफल, म०—निवळीच्या बिया, चिह्नार । गु०—निर्मली । क०—चिल्लिकायि । इं०—ए नट विच क्लिअर्स वाटर A nut Which clears water ल०—स्ट्रिक्नोस पोटे टेरम् Strychnos Potetarum ॥

निर्मलीका फल—नेत्रोंको हितकारी, जलको निर्मल करनेवाला, वात तथा कफनाशक, शीतल, मधुर कसैला और भारी है ॥ ९७ ॥

विवरण ।

कतक अर्थात् निर्मलीफल गोल होतेहैं, और उसके ऊपरकी छाल कुचिलेकी छालके समान होतीहै. विशेष करके इसकी सब आकृति कुचिलेसे मिलतीहै ॥

अथ द्राक्षा [दाख] ।

द्राक्षा स्वादुफला प्रोक्ता तथा मधुरसापि च ॥ मृद्वीका हारहूरा च गोस्तनी चापि कीर्तिता ॥ ९८ ॥ द्राक्षा पक्वा सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरुः ॥ स्वादुपाकरसा स्वर्या तुवरा सृष्टमूत्रविट् ॥ ९९ ॥ कोष्ठमारुतकृद्वृष्या कफपुष्टिरुचिप्रदा ॥ हन्ति तृष्णाज्वरश्वासवातवातास्रकामलाः ॥ कृच्छ्रास्रपित्तसंमोहदाहशोषमदात्ययान् ॥ ॥ १०० ॥ आमा स्वल्पगुणा गुर्वी सैवाम्ला रक्तपित्तकृत् ॥ वृष्या स्याद्गोस्तनी द्राक्षा गुर्वी च कफपित्तनुत् ॥ १०१ ॥

गोस्तनी 'मुनक्का' इति लोके ॥

अबीजाऽन्या स्वल्पतरा गोस्तनीसदृशी गुणैः ॥ द्राक्षा पर्वतजा लघ्वी साम्ला श्लेष्माम्लपित्तकृत् ॥ द्राक्षा पर्वतजा यादृक्तादृशी करमर्दिका ॥ १०२ ॥

अबीजा ईषद्बीजा 'किस्मिस्' इति लोके । पर्वतजा 'पहाडी' इति लोके । करमर्दिका करौंदी इति लोके ॥

द्राक्षा, स्वादुफला, मधुरसा, मृद्वीका, हारहूरा, गोस्तनी, (स्वाद्वी, चारुफला, रसा, यक्ष्मघ्नी, तापसप्रिया, प्रियाल, गुच्छफला, रसाला, अमृतफला, स्वादुफला, फलोत्तमा और सुफला) ये दाखके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—दाख, अगूर । व०—मनेका, आगूर । म०—काळी द्राक्षे । गु०—द्राक्ष । क०—द्रेडगणद्राक्षे, चिकुद्राक्षे । तै०—द्राक्षा । ता०—कोडिमाड्डि । फा०—अंगूर, मुनक्का, अ०—एनवजवीब, हबुसजवीब । इं०—ग्रेप रोझिन्स Grape Roisins ल०—वाइटिन्स विनिफेरा Witins Venifera ॥

पक्का अंगूर—दस्तावर, शीतल, नेत्रोको हितकारी, पुष्टिकारक, भारी, पाकमे तथा रसमे मधुर स्वरको उत्तम करनेवाला, कसैला, मल तथा मूत्रकी प्रवृत्ति करनेवाला; कोठेमें वात कारक, वीर्यको बढानेवाला, कफ तथा रुचिको उत्पन्नकर्ता और तृषा, ज्वर, श्वास, वात, वातरक्त, कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, मोह, दाह, शोष तथा मदात्ययनामक रोगको नष्ट करैहै । कच्चा अगूर—हीनगुणवाला तथा भारी है । खट्टा अगूर—रक्तपित्तको करनेवाला है । गोस्तनी (गायके स्तनके सदृश) दाख—वीर्यवर्धक, भारी और कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाली है । किसमिस (जिसमें बीज नही होते अथवा छोटे बीजोंवाली होती है वह) गोस्तनी दाखके सदृश गुणोंवाली है ।

पर्वतमे उत्पन्न हुई दाख—हलकी तथा अम्ल होतीहै और कफ तथा अम्लपित्तको करनेवाली है ॥ पर्वतोत्पन्नदाखके सदृश करमर्दिका (करौंदी) के गुण हैं ॥

विवरण।

दाख–काली, लाल और किसमिस–हरी लाल इत्यादि अनेक जातिकी होतीहै. उत्पत्ति इसकी काबुल. खन्धहार तथा उनहीं देशान्तरोंमे होतीहै. काठकी टट्टि-योंपर इसकी वेल चलतीहै, पत्ते हाथकी आकृतिके होते-हैं, मानों हथेलीमें पांचो उँगलियें लगादीहैं. फल गुच्छोंमें लगतेहैं, उनको अंगूर कहतेहैं, वह अंगूर सूखकर दाखें बनजाती हैं; काले अगूरोंकी काली दाखें और भूरे अगू-रोंकी भूरी दाखें होतीहैं॥

अथ क्षुद्रखर्जूरी, पिण्डखर्जूरी [खजूर] ।

भूमिखर्जूरिका स्वाद्वी दुरारोहा मृदुच्छदा॥ तथा स्कंधफला काककर्कटी स्वादुमस्तका ॥ १०३ ॥ पिण्डखर्जूरिका त्वन्या सा देशे पश्चिमे भवेत्॥ खर्जूरी गोस्तनाकारा परद्वीपादिहागता॥१०४॥जायते पश्चिमे देशे सा छोहारेति कीर्त्यते ॥ खर्जूरीत्रितयं शीतं मधुरं रसपाकयोः ॥ १०५ ॥ स्निग्धं रुचिकरं हृद्यं क्षतक्षयहरं गुरु॥तर्पणं रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्टम्भशुक्रदम् ॥ १०६॥ कोष्ठमारुतहृद्वल्यं वान्तिवातकफापहम्॥ ज्वरातिसारक्षुत्तृष्णाकासश्वासनिवारकम् ॥ १०७॥ मदमूर्च्छामरुत्पित्तमद्योद्भूतगदान्तकृत् ॥ महतीभ्यां गुणैरल्पा स्वल्पखर्जूरिका स्मृता॥ १०८ ॥ खर्जूरीतरुतोयं तु मदपित्तकरं भवेत् ॥वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत् ॥ १०९ ॥

भूमिखर्जूरिका, स्वाद्वी, दुरारोहा, मृदुच्छदा, स्कन्धफला, काककर्कटी, स्वादुमस्तका, (खर्जु, खर्जू, खर्जूरी, खरस्कन्धा, दुष्प्रधर्षा, दुरारुहा, कषायी, नि.श्रेणी, यवनेष्टा और हरिप्रिया) ये खजूरके सस्कृत नाम हैं॥ और जो एक जातिका पिडखजूर है वह पश्चिमदेश(काबुलआदि) में होतीहै. दूसरी एक जातिकी खजूर गायके स्तनके सदृश अन्य द्वीपसे आई हुई पश्चिमदेशमे उत्पन्न होती है,उसको छुहारा कहते हैं ॥

हिन्दी–खजूर, पिडखजूर, छुहारा। व०–खजूर, पिड खेजूर, छोहारा। म०–शिंदी, खजूरी, । गु०–खजूरी, छुवारी, खारेक, । क०–इन्चिलु, सिटइन्चिलु, करीइन्चिलु। तै०–इंटाचेट्टु, खजुरपंडु । फा०–तमररुतव । अ०–खुर्मातर, खुर्माखुश्क। इ०–डेटपाम Date Palm लै०–फिनिक्स मांटेना Phoenix Montana ॥

तीनो प्रकारकी खजूर–शीतल, रसमें तथा पाकमें मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक, हृदयको प्रिय, भारी, तृप्तिदायक, पुष्टिकारक, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, बलदायक हैं और क्षत, क्षय, रक्तपित्त, कोठेकी वायु, वमन, कफ, ज्वर, अतीसार, भूँख, तृषा, खासी, श्वास, मद, मूर्च्छा, वातपित्त, तथा मद्यसे उत्पन्न हुए रोगोंको नष्ट करैहैं ॥ बडी खजूरसे छोटी खजूरमें अल्प गुण हैं ॥

खजूरके वृक्षोंका पानी–मद तथा पित्तको करनेवाला, वात तथा कफको हरनेवाला, रुचिकारी, अग्निको दीपन करनेवाला और बल तथा वीर्यवर्द्धक है ॥ १०३–१०९ ॥

अथ पिण्डखर्जूरीभेदः [सुलेमानीखजूर] ।

सुलेमानी तु मृदुला दलहीनफला च सा ॥ सुलेमानी श्रमभ्रान्तिदाहमूर्च्छास्रपित्तहृत् ॥ ११० ॥

सुलेमानी, मृदुला और दलहीनफला, ये सुलेमानी खजूरके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सुलेमानीखजूर। गु०–सुलेमानी, सुसी, खारेक । म०–खारीक ॥ सुलेमानी खजूर–परिश्रम, भ्राति (भौंर), दाह, मूर्च्छा, रुधिरविकार तथा पित्तनाशक है ॥ ११०॥

विवरण।

खजूर–पिण्डखजूर और छुहारेके वृक्ष सीधे लम्बे लम्बे चलेजातेहै. उनमें पत्ते लम्बे और शाखा भी लम्बी लम्बी होती है, वृक्षपर खपटेरेसे खपटेरेसे वकल जमा रहताहै, ऊपर शाखाओंमें फल लगते हैं, वे खानेमे उत्तम नही होते बखसे बखसे होतेहैं; इस लिये उनको धनाढ्य लोग नही खाते, दीन लोग खातेहै. दूसरी पिण्डखजूर होतीहै, उसके फल तोड तोडकर बोरियोंमें भर देतेहैं. तीसरा छुहारा होताहै. ये दोनों खजूरके समान आकारवाले होतेहै ॥

अथ वातादः [बादाम] ।

वातादो वातवैरी स्यान्नेत्रोपमफलस्तथा॥ वाताद उष्णः सुस्निग्धो वातघ्नः शुक्रकृद् गुरुः ॥ १११ ॥ वातादमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ॥ स्निग्धोष्णः कफकृन्नेष्टो रक्तपित्तविकारिणाम् ॥ ११२ ॥

वाताद, वातवैरी, नेत्रोपमफल, (मुफल, वाताव और वातवैरि) ये वादामके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–बादाम । बं–बादाम । म०–गोडे बदाम, कडवे बदाम । गु०–बदाम । तै०–वेदम । ता०–नट्टवडुम । फा०–बदामशीरी, बादाम तल्ख । अ०–लोजलहलु, लौजल मुर । इं०–अल्मण्ड Almond लै०–एमिग्डेलस् कम्युनीस Amygdalus Communis ॥

बादाम, गरम, स्निग्ध, वीर्यकारक, भारी और वात नाशक है । बादामकी मींग–मीठी, वीर्यवर्द्धक, पित्त तथा वातनाशक, स्निग्ध, गरम, कफकारक और रक्तपित्तवाले रोगियोंको अहितकारक है ॥ १११ ॥ ११२ ॥

विवरण ।

बादामके वृक्ष बडे २ होतेहैं. पत्ते महुवेके पत्तोंके समान लम्बे चौडे होतेहैं उसके फलके बीज बदाम कहलातेहैं ॥

अथ सेवम् ।

मुष्टिप्रमाणं बदरं सेवं सिवितिकाफलम् ॥ सेवं समीरपित्तघ्नं बृंहणं कफकृद्गुरु ॥ रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचिशुक्रकृत् ॥ ११३ ॥

मुष्टिप्रमाण, बदर, सेव और सिवितिकाफल ये सेवके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सेव । बं०–सेउ । म०–सोर्ठेबोर । गु०–सेवफल । क–सेव । फा०–सेव । अ०–तुफाह । इं०–एपल Apple लै०–पाइरस मेलस Pyrus Malus ॥

सेव–वात तथा पित्तविनाशक, पुष्टिकारक, कफकारक, भारी, पाकमें तथा रसमें मधुर, शीतल, रुचिकारक और वीर्यको बढानेवाला है ॥ ११३ ॥

अथ अमृतफलम् ।

(यत्काण्डाहारकाबिलप्रभृतिषु देशेषु नाशपातीति नाम्ना प्रसिद्धम्)

अमृतफलं लघु वृष्यं सुस्वादु त्रीन्हरेद्दोषान् ॥ देशेषु मुद्गलानां बहुलं तल्लभ्यते लोकैः ॥ ११४ ॥

अमृतफलको खुरासान और काबुल आदि देशोंमें नासपाती कहतेहैं । नासपाती–हलकी, वीर्यवर्द्धक, बहुत मीठी, वातादि तीनों दोषोंको नष्ट करनेवाली और मुगलोंके देशोंमें अधिक मिलती है ॥ ११४ ॥

विवरण ।

सेव, बीह और नासपाती इन तीनोंकी एकही जाति है इनमें अन्तर थोडाही है, जैसे छुहारे पिण्डखजूर खजूरकी एकही जाति है, सेवके वृक्ष कश्मीर और काबुलमें बहुत होतेहैं, पर नासपाती हिन्दुस्तानमें भी बहुत होतीहै, इनके वृक्ष अमरूदके वृक्षके बराबर होतेहैं, पत्ते भी अमरूदके पत्तोंके बराबर कुछ चौडे होतेहैं. कश्मीरका सेव बहुत मधुर होताहै. और काबुलका तुरश–कश्मीरकी नासपाती भी बहुतही मधुर होती है, जिसे नाक कहते है बीहका मुरब्बा दस्तोंकी व्याधिमें काम आताहै, और बलदायक होताहै ॥

अथ पीलुः ।

पीलुर्गुलफलः स्रंसी तथा शीतफलोऽपि च ॥ पीलु श्लेष्मसमीरघ्नं पित्तलं भेदि गुल्मनुत् ॥ स्वादु तिक्तञ्च यत्पीलु तन्नात्युष्णं त्रिदोषहृत् ॥ ११५ ॥

पीलु, गुलफल, स्रंसी, शीतफल, (शीतसह, धानी, गुडफल, विरेचनफल, शाखी, श्याम, करभवल्लभ, कलभवल्लभ और पीलुक) ये पीलुके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी–पीलु । बं०–पीलुगाछ । म०–लघुपीलु । गु०–पीलु । क०–मिरीये ऊगनि । तै०–गोल्लुगचेट्टु । ता०–कोकु । फा०–दरख्ते मिस्वाक् । अ०–ईराक । इं०–मस्टर्डट्री आफस्क्रीपचर Mustardtree of Scripture लै०–सालवेडोरापर्सिका Salvadora Parsica-सालवेडोराओलि ओइडिस Salvadora Oleoides ॥

पीलु–पित्तकारक, मलभेदक (दस्तावर) और कफ, वात तथा गुल्मनाशक है । जो पीलु मीठा और कडवा होय वह–अत्यंत गरम नहीं और त्रिदोषनाशक है ॥ ११५ ॥

विवरण ।

पीलुके वृक्ष दो जातिके होतेहैं, एक छोटा और दूसरा बडा. छोटे पीलूपर बहुत छोटे छोटे फल आतेहैं और पकनेपर लाल पड जातेहैं. दूसरा बडा पीलु होताहै उसके फूल पीले और फल लाल और काले होतेहैं ॥

अथ अक्षोटः [अखरोट] ।

पीलुः शैलभवोऽक्षोटः कर्परालश्च कीर्तितः ॥ अक्षोटकोऽपि वातादसदृशः कफपित्तकृत् ॥ ११६ ॥

पर्वतके पीलूको अक्षोट कहते हैं और कर्पराल भी कहतेहैं (अखरोट, पार्वतीय, फलस्नेह, गुडाशय, कीरेष्ट, स्वादुमज्ज, पृथक्छद, रेखाफल, वृत्तफल, मदनाभफल, अक्षोटक, अखोट, आखोट, आक्षोड, आक्षोट, कन्दराल और आस्फोटक) ये अखरोटके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—अखरोट । बं०—आक्रोट । म०—अक्रोड । गु०—अखोड । क०—अखोट । फा०—चार्तगज । अ०—जोझ अक्रुपम् मगज । इं०—वालनट् Walnut बेलगाम वालनट Belgaum Walnut लै०—एल्युराइटीस ट्रायलेबा Aleurites Trileba ॥

अखरोटके गुण बदामके समान हैं और कफ तथा पित्तको करैहै ॥ ११६ ॥

विवरण ।

अखरोटके वृक्ष बडे बडे ऊँचे होतेहैं, फूल सफेद-रंगके छोटे छोटे और गुच्छेमें कई कई आतेहैं. पत्ते गोल और कुछ कुछ लम्बाई लिये हुए मोटे मोटे होतेहैं । फल गोल गोल मैनफलके समान होतेहैं, उन फलोंके ऊपर हरी हरी छाल होतीहै, उसको छील डालतेहैं, उसके छीलनेसे चार रेखावाली खरदरे खरदरे गुठलियें निकलतीहैं उनको अखरौट कहतेहैं. उनके फोडनेसे एक स्निग्ध जातिकी गिरी निकलतीहै वह अखरोटकी गिरी कहलातीहै ॥

अथ बीजपूरः [बिजौरा]।

बीजपूरो मातुलुङ्गो रुचकः फलपूरकः ॥ बीजपूरफलं स्वादु रसेऽम्लं दीपनं लघु ॥ ॥ ११७ ॥ रक्तपित्तहरं कण्ठजिह्वाहृदयशोधनम्॥श्वासकासारुचिहरं हृद्यं तृष्णाहरं स्मृतम् ॥ ११८ ॥

बीजपूर, मातुलुंग रुचक, फलपूरक, (अम्लकेशर, बीजपूर्ण, पूर्णबीज, सुकेशर, बीजक, सुपूर, बीजफलक, जन्तुघ्न, दन्तुरच्छद, पूरक और रोचनफल) ये बिजौरेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—बिजौरा नींबू । बं०—टावालेबु । म०—महाळुंग । गु०—बीजोरु । क०—माधवला । तै०—दब्बाकाया । फा०—तुरञ्ज । अ०—उतरज । इं०—साईट्रस Citrus लै०—साईट्रस एसीडा Citrus Acida ॥

बिजौरेका फल—मधुर, रसमे खट्टा, अग्निको दीपन करनवाला, हलका कंठ, जीभ तथा हृदयको शुद्ध करनेवाला, हृदयको प्रिय, और श्वास, खाँसी, अरुचि, तथा तृषानाशक है ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

विवरण ।

बिजौरे नीबूके वृक्ष मध्यम आकारके बागोमे बहुत होतेहैं. इसके पत्ते नीबूकी आकृतिके होतेहैं परन्तु लम्बाई चौडाईमें उनसे आठ दशगुणे होतेहैं फल गोल और नोकदार अमरूदकी आकृतिवाला नीचेसे भारी ऊपरसे पतला होताहै. इसमे बीज अधिक होतेहैं, फूल सफेद रंगके होतेहैं ये नींबू खट्टे बहुत होतेहै. किसी किसी देशमे बिजौरा नीबू मीठा भी होताहै ॥

अथ मधुकर्कटी [बिजौराभेद, चकोतरा] ।

बीजपूरो परः प्रोक्तो मधुरो मधुकर्कटी॥ मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः ॥ रक्तपित्तक्षयश्वासकासहिक्काभ्रमापहा ॥ ११९ ॥

एक दूसरी जातिका बिजौरा होताहै, उसको मधुर और मधुकर्कटी कहतेहैं । हिन्दी—चकोतरा । बं०—वातविलेबु ॥ चकोतरा—स्वादिष्ठ, रुचिकारक, शीतल, भारी और रक्तपित्त, क्षय, श्वास, खाँसी, हिचकी, तथा भ्रमनाशक है ॥ ११९ ॥

विवरण ।

चकोतरेके पेड नींबूसे कुछही बडे होतेहैं, पत्ते बिजौरे नीबूके समान होतेहैं, परन्तु फल बहुत बडे बडे खरबूजेकी आकृतिके होतेहैं, खरबूजेके ऊपर दशरेखा होतीहैं और चकोतरेके भीतर दशरेखा होतीहैं, रगमें दोनो पीले होतेहै, फूल सफेद रगके होतेहैं इसके बीज नीबूसे बडे होतेहैं ॥

अथ जम्बीरद्वयम् ।

स्याज्जम्बीरो दन्तशठो जम्भजम्भीरजंभलाः॥जंबीरमुष्णं गुर्वम्लं वातश्लेष्मविबन्धनुत् ॥ १२० ॥ शूलकासकफोत्क्लेशच्छर्दितृष्णामदोषजित् ॥ आस्यवैरस्यहृत्पीडावह्निमान्द्यकृमीन्हरेत ॥ स्वल्पजम्बीरिका तद्वत्तृष्णाछर्दिनिवारिणी ॥१२१॥

जम्बीर, दन्तशठ, जभ, जभीर, जम्भल, (रोचनक, मुखशोधी, जाड्यारि, जन्तुजित्, जम्भक, जम्भर, दन्तहर्षण, दन्तकर्षण, गम्भीर, जम्भिर, रेवत, वक्त्रशोधी, दन्तहर्षक और जम्भी) ये जंबीरी नीबूके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–जम्भीरी नींबू । बं०–जामीर लेबू । म०–ईड लिंबु । गु०–लाबा लींबु । क०–कनिले । तै०–जभिर । फा०–लिमुनेशिरि ॥ जभीरी नींबू–गरम, भारी, खट्टा और वात, कफ, मलबंध, शूल, खाँसी कफोत्क्लेश, वमन, तृषा, आमसंबंधी दोष, मुखकी विरसता, हृदयकी पीडा, अग्निकी मंदता तथा कृमिविनाशक है । एक जभीरी दूसरी भाँतिका छोटा होताहै, वह तृषाको तथा वमनको नष्ट करैहै ॥ १२० ॥ १२१ ॥

विवरण ।

जभीरी नींबूके वृक्ष बागोंमें,अधिक देखे जातेहैं फूल सफेदरंगके होतेहैं. पत्ते कागजी नींबूके समान परन्तु लंबाई चौडाईमें दूने तिगुने होतेहैं. फल कागजी नींबूसे चौगुने बडे होतेहैं. कच्ची अवस्थामें हरे रंगके और पकजानेपर पीले पडजातेहैं. ये जभीरी नींबू गोल गोल पीले रंगके अत्यन्त शोभा देतेहैं ॥

अथ निम्बूकम् [कागजी नींबू] ।

निम्बूः स्त्री निम्बुकं क्लीबे निम्बूकमपि कीर्तितम् ॥ निम्बूकमम्लं वातघ्नं दीपनं पाचनं लघु ॥ १२२ ॥ ॥ अन्यच्च- निम्बुकं कृमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमम्लमुदरग्रहापहम् ॥ वातपित्तकफशूलिने हितं कष्टनष्टरुचिरोचनं परम् ॥ १२३ ॥ त्रिदोषवह्निक्षयवातरोगनिपीडितानां विषविह्वलानाम् ॥ मन्दानले बद्धगुदे प्रदेयं विषूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ १२४ ॥

निंबू स्त्रीलिंग, निंबूक, निंबुक, ये दो नपुंसकलिंग, अम्लजंबीर, वह्निदीप्य, वह्निबीज, अम्लसार, दन्ताघात, शोधन, जन्तुमारी और रोचन) ये कागजी नींबूके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कागजी नींबू । बं०–कागजी लेबु । म०–कागदी लिंबु । गु०–खाटा गोल लींबु, कागदीलिंबु । क०–कंचिले । तै०–निम्मपंडु । फा०–लिमुनेतुर्श । अ०–लिमुनेहाजिम । इं०–लेमन्स Lemons लं०–लेमोनं एसिड Lemonum Acidum ॥

कागजीनींबू–खट्टा, वातनाशक, दीपन, पाचक और हलका है । अन्यत्र भी कहा है कि–यह नींबू कृमिसमूहको नष्ट करनेवाला तीक्ष्ण, खट्टा, उदरपीडानाशक, ग्रहबाधाको दूर करनेवाला अत्यंत रुचिकारक और वात, पित्त, कफ तथा शूलवालेको अत्यंत हितकारी है । तीनों दोष, अग्नि, क्षय तथा वातसंबंधी पीडावालेको, विषसे विह्वलहुएको, अग्निकी मंदता, मलबंध तथा विषूचिका रोगवालेको यह नींबू देना चाहिये ऐसा मुनि कहते हैं ॥ १२२–१२४ ॥

विवरण ।

कागजी नींबूके तरुवर उत्तम उत्तम वाटिकाओंमें माली-लोग लगातेहैं. वे वृक्ष न बहुत बडे न छोटे मध्यम आकारके होतेहैं. पत्ते जामुनके समान चिकने चिकने होतेहैं, फूल सफेद रंगके छोटे छोटे और फल गोल गोल हरे रंगके होतेहैं, पकनेपर पीले पड जातेहैं, पतले वल्कलके कारण कागजी नींबू कहतेहैं ॥

अथ मिष्टनिम्बूफलम् [मीठा नींबू] ।

मिष्टनिम्बूफलं स्वादु गुरु मारुतपित्तनुत् ॥ गररोगविषध्वंसि कफोत्क्लेशि च रक्तहृत् ॥ शोषारुचितृषाछर्दिहरं बल्यश्च बृंहणम् ॥ १२५ ॥

सं०–मिष्टनिंबू । हिन्दी–सर्वतीनींबू ,मीठानींबू । बं०–कमलालेबु । गु०–मीठा लींबु ॥

सर्वतीनींबू–मधुर भारी और वात, पित्त, विष, सर्पविष, रक्तविकार, शोष, अरुचि, तृषा, तथा वमन इनको नष्ट करैहै । और कफसंबंधी रोगोंको करनेवाला, बलदायक और पुष्टिकारक है ॥ १२५ ॥

सर्वतीनींबू सबसे शोभायमान होताहै और अनुमान यह भी जानपडताहै कि यह पूर्ण रसकी खान है, माली लोग शोभाहीके लिये इनको लगा लेतेहैं, इसके फूल भी सफेद सफेद और पत्ते हरे हरे अधिक सुन्दरताको प्राप्त होतेहैं, जिसके उपरान्त हरे और पीलेफल गोल गोल नारंगीके सदृश चित्तपर मोहिनी डालकर जालमें फँसादेते हैं. धन्य है उस विधाताको जिसने ऐसे ऐसे अद्भुत फल संसारमें बनायेहैं ॥

अथ कर्मरंगः (कमरख)

कर्मरंगं हिमं ग्राहि स्वाद्वम्लं कफवातहृत् ॥ १२६ ॥

कर्मरंग. (कारुक, शिराल, शुकप्रिय, बृहद्दल, रुजाकर, कर्मार, कर्मरक, पीतलफल, कर्मर, धाराफल और कर्मारक) ये कमरखके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कमरख । बं०–कामराङ्गा । म०–कर्मर । गु०–कर्मरंग । इं०–करबोला Carambola लें०

एवरहोया करबोला Averhoa Carambola ॥

कमरख–शीतल, ग्राही, स्वादिष्ट, खट्टी और कफ तथा वातविनाशक है ॥ १२६ ॥

विवरण।

कमरखके वृक्ष बहुत बडे नहीं होते, बागोंमेही लगाये जातेहैं, पत्ते गुलाबके वृक्षके समान होतेहैं, फूल लालरंगके रंगीले होतेहैं. फल गुच्छेके सदृश एक एक डालीमे दश २ पन्द्रह पन्द्रह लगते हैं, उन फलोंपर तीन तीन-चार चार पॉच पॉच धारसी खडी होतीहैं अद्भुत आकारका यह फल विधाताने बनाया है, उसकी कर्तव्यताको वारवार नमस्कार है ॥

अथ अम्लिका [इमली]।

अम्लिका चुक्रिकाम्ली च चुक्रा दन्तशठापि च ॥ अम्ला च चिंचिका चिश्चा तिन्तिडीका च तिन्तिडी ॥ १२७ ॥ अम्लिकाऽम्ला गुरुर्वातहरा पित्तकफास्रकृत् पक्का तु दीपनी रूक्षा सरोष्णा कफवातनुत् ॥ १२८ ॥

अम्लिका, चुक्रिका, अम्ली, चुक्रा, दन्तशठा, अम्ला, चिंचिका, चिंचा, तिन्तिडीका, तिन्तिडी, (तिन्तिडीक, तिन्तिलिका, वृक्षाम्ल, अम्लीका, आम्लिका, तिन्तिड, तिन्तिला, तिन्तिका, आम्दिका, चुक्र, अत्यम्ला, भुक्ता, सुर्क्रिका, चरित्रा, गुरुपत्रा, पिच्छिला, यमदूतिका, चरित्रा, शाकचुक्रिका, सुचुक्रिका, सुतिन्तिडी, पक्तिपत्रा और सर्वाम्ला) ये इमलीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–इमली। बं०–तेतुल। म०–चिंच। गु०–आंवली। क०–हुणिचे। तै०–चिंताचेट्टु। ता०–पुलि। अ०–तमरहिंदी। इं०–टेमेरिंडट्री Tamarind Tree लै०–टेमेरिंडस् इंडिकस् Tamarindus Indicus ॥

कच्ची इमली–खट्टी, भारी, वातविनाशक और पित्त, कफ, रुधिरविकार करनेवाली है। पक्की इमली–अग्निप्रदीपक, रूखी, दस्तावर, गरम और कफ तथा वातनाशक है ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

विवरण।

इमलीके वृक्ष बहुत बडे बडे ऊँचे और सघन जंगल तथा नगरके निकट घरबाहर सर्वत्र स्थानोंमे. होतेहैं, पत्ते चौटलीके समान डालियोंमे दोनो ओर बराबर लगे होतेहैं और छट्टे होतेहैं, फूल गुच्छोंमे लगे होतेहैं, रंग पीला पीला उनमे कुछ लाल लाल विन्दुसे पडे होते हैं, फलियें तिरछी और लम्बी होतीहैं, उसको कटारा कहते हैं, उन कटारोंपर सूखेहुए छिलके होतेहैं, छिलकोंके छीलनेसे गूदा निकलता है परन्तु उस गूदेके भीतर भी बीज निकलते हैं, उनको चोइये कहते है. वह इमली दो प्रकारकी होती है एक लाल गूदेकी, दूसरी सफेद गूदेकी ॥

अथ अम्लवेतसः [अम्लवेत]।

स्यादम्लवेतसश्चुक्रं शतवेधि सहस्रनुत् ॥ अम्लवेतसमत्यम्लं भेदनं लघु दीपनम् ॥ १२९ ॥ हृद्रोगशूलगुल्मघ्नं पित्तलं लोमहर्षणम् ॥ रूक्षं विण्मूत्रदोषघ्नं प्लीहोदावर्त्तनाशनम् ॥ १३० ॥ हिक्कानाहारुचिश्वासकासाजीर्णवमिप्रणुत् ॥ कफवातामयध्वंसि छागमांसद्रवत्वकृत् ॥ चणकाम्लगुणं ज्ञेयं लोहसूचीद्रवत्वकृत् ॥ १३१ ॥

अम्लवेतस, चुक्र, शतवेधि, सहस्रनुत्, (अम्ल, रसाम्ल, आम्लवेतस, वेतसाम्ल, अम्लसार, वेधक, भीम, भेदन, भेदी, बोधि, राजाम्ल, अम्लभेदक, अम्लांकुश, रक्तसार, फलाम्ल, अम्लनायक, सहस्रवेधि, वीराम्ल, गुल्मकेतु, वराभिध, शंखद्रावी, मांसद्रावी, वराङ्गी, और महाक्षार) ये अमलवेतके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी–अमलवेत। बं०–थैकड, अम्लवेतस। म०–चुका। गु०–अम्लवेद। फा०–तुर्षक। इं०–कामनसोरेल Common Soral लै०-असीडोजेफोलिया Acido Zeyfolia ॥

अमलवेत–अत्यंत खट्टा, मलभेदक, हलका, अग्निप्रदीपक, पित्तकारक, रोमहर्षक, रूक्ष, बकरीका मांस और लोहेकीसुईको गलानेवाला, चनेके खारके सदृश गुणोवाला और हृदयरोग, शूल, गुल्म, मल तथा मूत्रके दोष, प्लीहा, उदावर्त्त, हिचकी, अफारा, अरुचि, श्वास, खॉसी, अजीर्ण, वमन, कफ तथा वातसंबंधी रोग नष्ट करै है ॥ १२९–१३१ ॥

विवरण।

अमलवेतके वृक्ष मध्यम आकार और दो प्रकारके होते हैं, एक अम्लवेत, दूसरी वेती; ये छोटे होतेहैं, ये पेड मालियोंके बागोंमे बहुत होते हैं, फूल सफेद रंगके फल गोल खरबूजेके समान कच्चा हरा, पकनेपर पीला पडजाता है और चिकना होताहै ॥

अथ वृक्षाम्लम् [कोकम] ।

वृक्षाम्लं तिन्तिडीकश्च चुक्रं स्यादम्लवृक्षकम् ॥ वृक्षाम्लमाममम्लोष्णं वातघ्नं कफपित्तलम् ॥ १३२ ॥ पक्वन्तु गुरु संग्राहि कटुकं तुवरं लघु ॥ अम्लोष्णं रोचनं रूक्षं दीपनं कफवातकृत् ॥ तृष्णार्शोग्रहणीगुल्मशूलहृद्रोगजन्तुजित् ॥ १३३ ॥

वृक्षाम्ल, तिन्तिडीक, चुक्र, अम्लवृक्षक, (अम्लशाक, चुक्राम्ल, तिन्तिडीफल, शाकाम्ल, अम्लपूर पूराम्ल, रक्तपूरक, चूडाम्ल बीजाम्ल, फलाम्लक, अम्लवृक्ष, अम्लफल, रसाम्ल, श्रेष्ठाम्ल, अत्यम्ल, अम्लबीज और चुक्रफल) ये विषाविलके संस्कृत हैं ॥

हिन्दी–विषाविल कोकम । बं०–महादा । म०–आमसोल । गु०–कोकम । क०–तित्तीडिक । ते०–कोकवटम्ट्री Kokam Buttertree लै०–गारसीनिया परप्यूरिया Garcinia Purpurea ॥

कच्चा विषाविल–खट्टा, गरम, वातनाशक और कफ तथा पित्तकारक है । पक्का विषाविल–भारी, ग्राही, चरपरा, कसैला, हलका, खट्टा, गरम, रुचिकारक, रूक्ष, अग्निप्रदीपक, कफ तथा वात हरनेवाला और तृषा, बवासीर, संग्रहणी गुल्म, शूल, हृदयरोग तथा जन्तुनाशक है ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

अथ चतुरम्लपञ्चाम्लयोर्लक्षणम् ।

अम्लवेतसवृक्षाम्लबृहज्जम्बीरनिम्बुकैः ॥ चतुरम्लं हि पञ्चाम्लं बीजपूरयुतैर्भवेत् १३४

अमलवेत, विषाविल, बडाजम्भीरी और कागजी नींबू, इन चारोंको चतुराम्ल (चारखटाई) और बिजौरा नींबूके मिलानेसे पञ्चाम्ल (खटाईपंचक) कहतेहैं ॥१३४॥

विवरण ।

विषाविलके वृक्ष गोवाकी ओर अधिक होतेहैं, देखनेमें अत्यन्त सुन्दर और झाडेदार होतेहैं, पत्ते लम्बे और चिकने शीतऋतुमें मौर आताहै और वसन्तऋतुमें फल लगतेहैं, फल नारंगीके समान होतेहैं, इसके सब अंग खट्टे होतेहैं ॥

अथ परिभाषा ।

फलेषु परिपक्वं यद्गुणवत्तदुदाहृतम्॥ बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामंतद्धि गुणाधिकम्॥ फलेषु सरसं यत्स्याद्गुणवत्तदुदाहृतम्॥ ॥ १३५ ॥ द्राक्षाबिल्वशिवादीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम् ॥ फलतुल्यगुणं सर्वं मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥ १३६ ॥ फलं हिमाग्निदुर्वातव्यालकीटादिदूषितम् ॥ अकालजं कुभूमीजं पाकातीतं न भक्षयेत् ॥ १३७ ॥

पाकातीतं पाकमतिक्रम्य स्थितम् ।

इति श्रीभावप्रकाशे फलवर्गः ॥

बेलके अतिरिक्त शेष सब फल पकेही गुणकारक जानने और बेल तो कच्चाही अधिक गुणवाला होताहै. दाख, बेल और हरड आदि सूखीहुई होवें तो अधिक गुणदायक हैं । शेष सब फल सरसही अधिक गुणकारक है । जो गुण फलमें कहे हैं वेही गुण उनकी मींगमें जानने । जो फल हिम (बरफ) से, अग्निसे, खराब पवनसे, सर्पसे अथवा कीडे आदिसे दूषित हुआ होय, विना समय हुआ होय, खराब भूमिमें उत्पन्न हुआ होय, अथवा पककर बिगड गयाहोय, वह फल कदापि नहीं खाना चाहिये ॥ १३५–१३७ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्राम-
वैश्यकृतवैद्यरञ्जनीटीकायाम्
आम्रादिफलवर्गः समाप्तः ॥

अथ धातूपधातुरसोपरसरत्नोपरत्नविषोपविषवर्गः ।

तत्र धातूनां लक्षणानि गुणाश्च ।

स्वर्णं रूप्यञ्च ताम्रञ्च रंगं जशदमेव च ॥ सीसं लोहञ्च सप्तैते धातवो गिरिसम्भवाः ॥ १ ॥ वलीपलितखालित्यकार्श्याबल्यजरामयान् ॥ निवार्य्य देहं दधति नृणां तद्धातवो मताः ॥ २ ॥

सुवर्ण (सोना), चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, सीसा और लोहा, ये सात धातु पर्वतोंमें होतीहैं ॥

ये धातु–वली (त्वचाका सुकडजाना), पलित(केशोंका श्वेत होजाना), खालित्य(बालोंका गिरसे उड जाना), कृशता, निर्बलता, वृद्धता और रोग, इनको नष्ट करके मनुष्योंके शरीरको धारण करतीहैं इसीकारण ये धातु कहातीहैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ सुवर्णस्य उत्पत्तिर्नामानि लक्षणं गुणाश्च।

मरीचिरंगिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥ वसिष्ठश्चेति सप्तैते कीर्तिताः परमर्षयः॥ ३॥ पुरा निजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जितात्मनाम्॥ पत्नीर्विलोक्य लावण्यलक्ष्मीः संपन्नयौवनाः॥४॥ कंदर्पदर्पविध्वस्तचेतसो जातवेदसः॥ पतितं यद्धरापृष्ठे रेतस्तद्धेमतामगात्॥५॥ कृत्रिमश्चापि भवति तद्रसेन्द्रस्य वेधतः॥ स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम्॥६॥ तपनीयं च गांगेयं कलधौतं च कांचनम्॥ चामीकरं शातकुम्भं तथा कार्त्तस्वरं च तत्॥७॥ जांबूनदं जातरूपं महारजतमित्यपि॥ दाहे रक्तं सितं छेदे निषेके कुंकुमप्रभम्॥ ८॥ तारं शुल्वोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत्॥

सत् उत्तमम्॥

तच्छ्वेतं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम्॥ दाहे छद सित श्वेतं कषे त्याज्यं लघु स्फुटम्॥ ९॥

दलं जोर इति लोके। स्फुटं यद्घनाहतं स्फुटति॥

सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम्॥ स्वादु तिक्तं च तुवरं पाके च स्वादु पिच्छिलम्॥१०॥ पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृतिमतिप्रदम्॥ हृद्यमायुःकरं कान्तिवाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत्॥विषद्वयक्षयोन्मादत्रिदोषज्वरशोषजित्॥ ११॥ बलं सवीर्यं हरते नराणां रोगव्रजान्पोषयतीह काये॥असौख्यकृच्चापि सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणञ्च कुर्य्यात्॥ १२॥ असम्यङ्मारितं स्वर्णं बलं वीर्य्यञ्च नाशयेत्॥करोति रोगान्मृत्युं च तद्धन्याद्यत्नतस्ततः॥ १३

उत्पत्ति—मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ, ये सातो मुनि परमर्षि कहातेहैं। ये जितात्मा महर्षि अपने आश्रममे रहतेथे, तहाँ रूप, लावण्य, लक्ष्मी और यौवन सम्पन्न इनकी स्त्रियोंको देखकर, काम के बाणोंसे पीडित चित्तवाले अग्नि देवका जो वीर्य पृथ्वीपर गिरा वह सुवर्ण (सोना) होगया। पारेके वेधसे नवीन कृत्रिम सोना भी बनाते हैं॥

नाम—स्वर्ण, सुवर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, हाटक, तपनीय, गाङ्गेय, कलधौत, कांचन, चामीकर, शातकुम्भ, कार्त्तस्वर, जाबूनद, जातरूप, महारजत, (द्राविण, भूरिपिञ्जर, भर्म, कर्बूर, रुक्म, अष्टापद, करहाटक, ऋक्थ, सानसि, अकुप्य, लोहोत्तम, भूत्तम, पुरट, रेकन, कर्वुर, भद्र, गैरिक, चाम्पेय, भरु, चन्द्र, कल्याण, अभ्रक, अग्निवीज, लोहवर, ऊर्ध्व=सारुक, स्पर्शमणिप्रभव, मुख्यधातु, शतखड, उज्ज्वल, मनोहर, अग्निवीर्य, अग्निभास्कर, पिजान, आपिजर, तेज, दीप्त, अग्निभ, दीप्तक, मङ्गल्य, सौमेरुक, भृगार, जाम्वव, आग्नेय, निष्क, तपनीयक, अग्निशिख, चड, अय, पेग, कृशन, लोह, अमृत, मरुत्तदत्त, चारुरत्न, पीतक, श्रीनिकेत, भूपणार्ह और जितने सूर्यके नाम है वे सब) ये सुवर्णके सस्कृत नाम हैं॥३–८॥

हिन्दी—सुवर्ण, सोना। ब०—सोना। म०—सोने। गु०—सोनु। क०—स्वर्ण। तै०—भगार। फा०—तिला। अ०—जहव। इं०—गोल्ड Gold लै०—ओरम Auram॥

परीक्षा—जो सुवर्ण तपानेमें लाल, काटनेमे सफेद कसौटीमें (कसनेमें) केशरके सदृश, चादी और ताबा रहित, चिकना, कोमल (नरम) और भारी होवे वह सोना उत्तम होता है॥

जो सोना सफेद, कठोर, रूखा, खराब वर्णवाला, मलसहित, गाठके सदृश, तपानेमे तथा काटनेमे सफेद, कसनेमे भी सफेद, हलका और चोट मारनेसे फूट जाय, ऐसा सुवर्ण त्यागने योग्य है औपधमें इसे न लेना।

गुण—सुवर्ण—शीतल, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, भारी, रसायन, स्वादिष्ठ, कडवा, कसैला, पाकमें मीठा, पिच्छिल, पवित्र, पुष्टिकारक, नेत्रोंको हितकारी, बुद्धि, स्मरणशक्ति तथा विचारशक्ति दायक, हृदयको प्रिय, आयुको बढानेवाला, कान्ति तथा वाणीको स्वच्छ करनेवाला, स्थिरतादायक और दोप्रकारके स्थावर जगम विप, क्षय, उन्माद, तीनों दोप, ज्वर तथा शोप नाशक है॥ ९–११॥

अशुद्ध सोना—मनुष्योंका बल तथा वीर्यको हरताहै. अनेक रोग उत्पन्न करके शरीरको सुखा देताहै, सर्वदा दुःख करनेवाला है और मृत्यु भी करदेताहै॥ १२॥

भली भांति नही मारा हुआ सोना—बल तथा वीर्यको नष्ट करताहै. रोगोंको उत्पन्न करनेवाला और मृत्युदायक है, इस कारण यत्नपूर्वक मारना चाहिये॥ १३॥

पहो नृणाम् ॥ सीसं व्रध्नं च वप्रं च योगेष्टं नागनामकम् ॥ ३३ ॥

नागनामकम् नागः भुजंग इत्यादि ॥

सीसं रंगगुणं ज्ञेयं विशेषान्मेहनाशनम् ॥ ॥३४॥ नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति ॥ वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति मृत्युं च नाशयति सन्ततसेवितः सः ॥ ३५ ॥ पाकेन हीनौ किल वंगनागौ कुष्ठानि गुल्मांश्च तथाऽतिकष्टान् ॥ कंडूं प्रमेहानिलसादशोथभगन्दरादीन्कुरुतः प्रयुक्तौ ॥ ३६ ॥

उत्पत्ति–भोगिसर्पकी रमणीय कन्याको देखकर वासुकिनागका जो वीर्य गिरा उससे सीसा उत्पन्न हुआहै, और वह सीसा मनुष्योंके सर्व रोगोंको दूर करताहै ॥

नाम–सीस, व्रध्न, वप्र, योगेष्ट, और नागके जितने नाम हैं वे सब, (सुवर्णक, चीन, पिष्ट, सिन्दूर, कारण, सीसक, सीसपत्रक, नाग, गण्डूपदभव, वङ्ग, स्वर्णारि, यवनेष्ट, चीर, व्रध्न, पिच्चट, सुवर्णारि, त्रपु, वध्रक, महाबल, यामुनेष्टक, बहुमल, श्वेतरजन, जड, भुजङ्गम, उरग, कुरग, परिपिष्टक, मृदुकृष्णायस, पद्म, तारशुद्धिकर शिरावृत्त, वयोरग, चीनपिष्ट, चीतरग, धातुमल और पार्वत) ये सीसेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सीसा, । बं०–सीसे सीसा । म०–शिसें । गु०–शीसु । क०–सीसा। तै०–शिशू । फा०–सुर्ब। अ०–रुसासुल। इं०–लेड Lead ल०–प्लम्बम् Plumbum ॥

गुण–सीसेमें रांगेके सदृश गुण हैं, विशेष करके प्रमेह नाशक है । जो सीसा निरन्तर सेवन करै तो हाथियोंके सदृश बल देताहै, रोगोंको नष्ट करताहै. जीवनका विस्तार होताहै, अग्नि दीपन होतीहै, कामदेवका बल बढताहै और और मृत्यु दूर होतीहै ॥

यदि सीसा और रांगा कच्चा खानेमें आवे तो कोढ, अत्यन्त दुःखदायी गुल्म, खुजली, प्रमेह, वातकी पीडा, सूजन और भगंदर आदि रोगोंको करैहै ॥ ३३–३६ ॥

अथलोहस्योत्पत्तिर्नामलक्षणंगुणाश्च ।

पुरा लोमिनदैत्यानां निहतानां सुरैर्युधि ॥ उत्पन्नानि शरीरेभ्यो लोहानि विविधानि च ॥ ३७ ॥ लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसमायसी ॥ गुरुताद्दृढतोत्क्लेदः कश्मलं दाहकारिता ॥ ३८ ॥ अश्मदोषः सुदुर्गन्धो दोषाः सप्तायसस्य तु ॥ लोहं तिक्तं सरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥ ३९ ॥ रूक्षं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् ॥ कफं पित्तं गरं शूलं शोथार्शःप्लीहपाण्डुताः ॥ मेदोमेहक्रिमीन्कुष्ठं तत्किट्टं तद्वदेव हि ॥ ४० ॥ पाण्डुत्वकुष्ठामयमृत्युदं भवेद्धृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीश्च ॥ नानारुजानाश्च तथा प्रकोपं करोति हृल्लासमशुद्धलोहम् ॥ ४१ ॥ जीवहारि मदकारि चायसं देहशुद्धिमदसंस्कृतं ध्रुवम् ॥ पाटवं न तनुते शरीरके दारुणां हृदि रुजाश्च यच्छति ॥ ४२ ॥ कूष्माण्डं तिलतैलञ्च माषान्नं राजिकां तथा ॥ मद्यमम्लरसं चापि त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥ ४३ ॥

उत्पत्ति–पहिले देवताओंके युद्धमें मरेहुए लोमिन नामक दैत्योंके शरीरमेंसे अनेक प्रकारके लोह उत्पन्न हुए हैं ॥

नाम–लोह (पुँल्लिंग और नपुंसकलिंग), शस्त्रक, तीक्ष्णपिंड, कालायस, आयस, (तीव्र, लोहकान्तक, कान्त, लौह, शस्त्रालय, शस्त्र, शस्त्रक, पिंड, पिंडायस, शठ, मुण्डज, निशित, खड्ग, अयस, कान्त, चित्रायस और चालज) ये लोहेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–लोहा । बं०–लौह । म०–लोखण्ड । गु०–लोढु । क०–अयस्कान्त । तै०–इनुमु । फा०–आहन । अ०–हदीद । इं०–आइरन स्टील Iron Steel ल०–फेरम् Ferrum ॥

लक्षण–लोहेमें भारीपन, दृढता, ग्लानि–कारकता, मूर्च्छा तथा दाहकारकता, पथरीदोष और बहुत दुर्गन्धता, ये सात दोष हैं ॥

गुण–लोहा–कडवा, दस्तावर, शीतल, मधुर, कसैला, भारी, रूक्ष, आयुदाता, नेत्रोंको हितकारी, लेखन, वातकारक और कफ, पित्त, विष, शूल, सूजन, बवासीर, प्लीहा, पाण्डु, मेदरोग, प्रमेह, कृमि तथा कोढको नष्ट करैहै ॥ लोहेकी कीट (मैल) मे भी येही गुण हैं ।

जो अशुद्ध लोहा खानेमें आवे तो पाण्डुरोग, कोढ, मरण, हृदयके रोग, शूल, पथरी, हृल्लास और अनेक प्रकारके रोगोंका कोप होता है ॥

भली भाँति न शुद्ध कियाहुआ लोहा–जीवनको हरनेवाला, मदकारक, देहकी स्वच्छताको नष्ट करनेवाला सामर्थ्य हरनेवाला और हृदयमे दारुण पीडा उत्पन्न करे हैं॥

लोहा सेवन करनेवालोंको–पेठा, तिलका तेल, उडद, राई, मद्य (दारू) और खटाई, ये सब त्यागने चाहिये ॥ ३७–४३ ॥

अथ सारलोहस्य लक्षणं गुणाश्च ।

क्षमाभृच्छिखराकाराण्यङ्गान्यम्लेन लेपयेत् ॥ लोहे स्युर्यत्र सूक्ष्माणि तत्सारमभिधीयते ॥ ४४ ॥ लोहं साराह्वयं हन्याद्ग्रहणीमतिसारकम् ॥ अर्द्धं सर्वांगजं वातं शूलं च परिणामजम् ॥ छर्दिं च पीनसं पित्तं श्वासं कासं व्यपोहति ॥ ४५ ॥

लक्षण–जो लोहेके कठोर बडे बडे टुकडोको अम्ल (खट्टे) रससे लेप करनेपर टुकडोपर पर्वताकार जौहर सूक्ष्म २ होजाय वह लोहा सारलोह कहाता है ॥

गुण–सारलोह सग्रहणी, अतीसार, अर्द्धांगवात, सर्वांग वात, परिणामज शूल, वमन, पीनस, पित्त, श्वास तथा खांसीको अवश्य नष्ट करैहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अथ कान्तलोहस्य लक्षणं गुणाश्च ।

यत्पात्रे न प्रसरति जले तैलबिन्दुः प्रतप्ते हिंगुर्गन्धं त्यजति च निजं तिक्ततां निम्बवल्कः ॥ तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमिं कृष्णांगः स्यात्सजलचणकः कान्तलोहं तदुक्तम् ॥ ४६ ॥ गुल्मोदराशःशूलाममामवातं भगन्दरम् ॥ कामलाशोथकुष्ठानि क्षयं कान्तमयो हरेत् ॥ ॥ ४७ ॥ प्लीहानमम्लपित्तञ्च यकृच्चापि शिरोरुजम् ॥ सर्वान्रोगान्विजयते कान्तलोहं न संशयः ॥ बलं वीर्यं वपुःपुष्टिं कुरुतेऽग्निं विवर्द्धयेत् ॥ ४८ ॥

लक्षण–जिस लोहेके पात्रमे उष्ण जल भरकर तेलकी बूँद डालनेसे नही फैलै, तथा जिसमें डालनेसे हींग अपनी गन्ध त्याग दे और तैसेही नीमका वल्कल रखनेसे कडवेपनको त्यागदे, और दूध गरम करनेसे शिखराकार उफान ऊपरको खडा होजाय तथा भूमिमे न गिरे और जिस पात्रमें चने भिजोनेसे काले होजायँ उसको कांतलोह कहते ह॥

गुण–कांतलोहा–गुल्म (गोला), उदररोग, बवासीर आम, आमवात, भगदर, कामला, शोथ, कुष्ठ, क्षय, प्लीहा, अम्लपित्त, यकृत और शिरके रोग इत्यादि सबरोगोंको निःसन्देह नष्ट करताहै । तथा बल, वीर्य और शरीरमे पुष्टता करैहै, जठराग्निकी वृद्धि करताहै॥४६-४८॥

अथ किट्टी ।

ध्मायमानस्य लोहस्य मलं मण्डूरमुच्यते॥ लोहसिंहानिका किट्टी सिंहानश्च निगद्यते ॥ यल्लोहं यद्गुणं प्रोक्तं तत्किट्टमपि तद्गुणम् ॥ ४९ ॥

लोहेको अग्निमे धमानेसे जो मैल निकलताहै, उसको मण्डूर, लोह, सिहानिका, किट्टी और सिहान कहतेहैं ।

गुण–जिस लोहेमें जो गुणहै वेही उसकी कीटमेभी हैं४९॥

अथोपधातूनां लक्षणं गुणाश्च ।

सप्तोपधातवः स्वर्णमाक्षिकं तारमाक्षिकम् ॥ तुत्थं कांस्यं च रीतिश्च सिन्दूरश्च शिलाजतु ॥ ५० ॥

उपधातवः गौणा धातवः ॥

उपधातुषु सर्वेषु तत्तद्धातुगुणा अपि ॥ सन्ति किं तेषु तेऽन्योनास्तत्तदंशाल्पभावतः ॥ ५१ ॥

सोनामाखी, रूपामाखी, तूतिया, कासी, पीतल, सिन्दर और शिलाजीत, ये सात, उपधातु हैं ॥

गुण–सम्पूर्ण उपधातुवोंमे उसी उसी धातुके गुण हैं, परन्तु उसमे धातुओका अंश अल्प होनेसे हीन गुणवाली होती हैं ॥ ५०॥५१ ॥

तत्रसुवर्णमाक्षिकस्यनामानिगुणाश्च ।

स्वर्णमाक्षिकमाख्यातं तापीजं मधुमाक्षिकम् ॥ ५२ ॥ ताप्यं माक्षिकधातुश्च मधुधातुश्च स स्मृतः ॥ किञ्चित्सुवर्णसाहित्यात्स्वर्णमाक्षिकमीरितम् ॥ ५३ ॥ उपधातुः सुवर्णस्य किञ्चित्स्वर्णगुणान्वितम् ॥ तथा च काञ्चनाभावे दीयते स्वर्णमाक्षिकम् ॥

॥५४॥ किन्तु तस्यानुकल्पत्वात्किञ्चिदूनगुणास्ततः ॥ न केवलं स्वर्णगुणा वर्त्तंते स्वर्णमाक्षिके ॥ ५५ ॥ द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणा यतः ॥ सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम् ॥५६॥ चक्षुष्यं वस्तिरुक्कुष्ठपाण्डुमेहविपोदरान्॥ अर्शः शोथं विषं कण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥ ५७ ॥ मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान् ॥ तथैव मालां व्रणपूर्विकां च करोति तापीजमशुद्धमेतत् ॥ ५८ ॥

स्वर्णमाक्षिक, तापीज, मधुमाक्षिक, ताप्य, माक्षिकधातु, मधुधातु, (धातुमाक्षिक, ताप्यक, स्वर्णाह्वय, सुवर्णमाक्षिक, तापिच्छ, आपीत, पीतमाक्षिक, आवर्त्त, क्षौद्रधातु, माक्षिकधातु, कदम्ब, चक्रनामा, तापिञ्ज, स्वर्णवर्ण, हेमद्युति) ये सोनामाखीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—सोनामाखी । बं०—स्वर्णमाक्षिक । म०—दगडी सोनामुखी । गु०—सोनामखी । क०—धातुमाक्षिक । त०—स्वर्णमाखी । अ०—मुर्कशीशाजहबी । इं०—आर्यन पाईराइटीस Iron Pyrites लै०—फेरीसल्फुरेटम् Ferri Sulphuretum ॥

इसमे किंचित् सुवर्ण मिला होताहै । इसकारण इसको स्वर्णमाक्षिक कहतेहैं । सोनामाखी सोनेकी उपधातु है, इससे इसमें किंचित् सुवर्णकेभी गुण रहतेहैं; इसलिये सोनेके अभावमें सोनामाखी देतेहैं । परन्तु ये सोनेके अभावमे देते हैं. इससे इसमें सोनेसे कुछ हीन गुण हैं सोनामाखीमें केवल सोनेके गुण रहते हैं, यह नहीं किन्तु उसमे अन्यपदार्थोंका संसर्ग होनेसे अन्य गुण भी रहतेहैं ।

गुण—सोनामाखी—स्वादु, कडवी, वीर्यवर्द्धक, रसायनें, नेत्रोंको हितकारी और वस्तिरोग, कुष्ठ, पाण्डु, प्रेमह, विष, उदररोग, बवासीर, सूजन, खुजली और त्रिदोषनाशक, है । अशुद्ध सोनामाखी—अग्निकी मंदता, बलकी हानि, विष्टम्भिता, नेत्ररोग, कोढ और अनेक व्रण (घाव) उत्पन्न करती है ॥ ५२–५८ ॥

अथ तारमाक्षिकस्य नाम गुणाः ।

तारमाक्षिकमन्यत्तु तद्भवेद्रजतोपमम् ॥ किञ्चिद्रजतसाहित्यात्तारमाक्षिकमीरितम् ॥ ५९ ॥ अनुकल्पतया तस्या ततो हीनगुणाः स्मृताः॥ न केवलं रूप्यगुणा यतः स्यात्तारमाक्षिकम् ॥ ६० ॥ स्वादु पाके रसे किञ्चित्तिक्तं वृष्यं रसायनम्॥चक्षुष्यं वस्तिरुक्कुष्ठपाण्डुमेहविषोदरम ॥ अर्शः शोथं क्षयङ्कण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत ६१॥ मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान् ॥ तथैव मालां व्रणपूर्विकाञ्च करोति तापीजमिदञ्च तद्वत्॥६२॥

रूपामाखी चाँदीके सदृश होतीहै और उसमें किंचित चाँदी रहतीहै इससे रूपामाखी कहलातीहैं ।

नाम—तारमाक्षिक, (विमल, माक्षिकश्रेष्ठ. श्वेताभ्ररूप्यमाक्षिक और रौप्यमाक्षिक) ये रूपामाखीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—रूपामाखी । बं०—रौप्यमाक्षी । म०—रौप्यमाक्षिक । गु०—रूपामाखी । क०—यरडुमाक्षिक तै०—रूपामाखी । अ०—मुर्कशीशाफिद्दा ॥

चाँदीके अभावमें रूपामाखी देते हैं उसकारण चाँदीसे हीनगुण है । रूपामाखीमें चाँदीके ही गुण हैं ऐसा नहीं किन्तु अन्य गुणभी रहते हैं ॥

गुण—रूपामाखी पाकमें मीठी, रसमें किंचित् कडवी, वीर्यवर्द्धक, रसायन, नेत्रोंको हितकारी और वस्तिरोग, कोढ, पाण्डु, प्रमेह, विष,उदररोग, बवासीर, सूजन,क्षय, खुजली तथा त्रिदोषनाशक है ॥

अशुद्धरूपामाखी—मंदाग्नि, बलकी हानि, विष्टंभिता, नेत्ररोग, कोढ, गंडमाला और अनेक व्रण उत्पन्न करै है ॥ ५९–६२ ॥

अथ तुत्थम् [तूतिया] ।

तुत्थं वितुन्नकं चापि शिखिग्रीवं मयूरकम्॥ तुत्थं ताम्रोपधातुर्हि किञ्चित्ताम्रेण तद्भवेत् ॥ ६३ ॥ किञ्चित्ताम्रगुणं तस्माद्वक्ष्यमाणं गुणं च तत् ॥ तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु॥६४॥लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥ विषाश्मकुष्ठकण्डूघ्नं खर्परं चापि तद्गुणम् ॥ ६५ ॥

तुत्थ, वितुन्नक, शिखिग्रीव, मयूरक, (मूषातुत्थ कांस्यनील, तुत्थक शिखिकंठक, हरिताश्म, नीलांजन,

मयूरग्रीवक,ताम्रगर्भ, अमृतोद्भव, मयूरतुत्थ, भृतक,शिखिकण्ठ,नील, तुत्थाजन, हेमसार,मृताभिद और ताम्रोपधातु) ये तूतियाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–तूतिया, नीलाथोथा। ब०–तूँतिया,। म०–मोरचूत। गु०–मोरथुथु। क०–मयूरतुत्थ। तै०–मेलतुतु। फा०–दूदिया। अ०–तूतियाअकजर। इ०–सल्फेट आफ कॉपर Sulphate of Copperलै०–क्युप्रिसल्फास Cupresulphas ॥

नीलाथोथा ताबेकी उपधातु है इसमे कुछ तावका योग होता है, इससे कुछ ताबेके गुण रहते हैं और अन्य भी गुण रहते हैं ॥

गुण–नीलाथोथा–चरपरा, खारी, कसैला, वमनकारक, हलका, लेखन, मलभेदक (दस्तावर), शीतल, नेत्रोको हितकारी और कफ, पित्त, विष, पथरी, कोढ तथा खुजलीको दूर करैहै। जो इसमे गुण हैं वेही खपरियामे भी है ॥ ६३–६५ ॥

अथ कांस्यम् [काँसी]।

ताम्रत्रपुजमाख्यातं कांस्यं घोषं च कंसुकम् ॥ उपधातुर्भवेत्कांस्यं द्वयोस्तरणिरङ्गयोः ॥ ६६ ॥ कांसस्य तु गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशा जनैः ॥ संयोगजप्रभावेण तस्यान्येऽपि गुणाः स्मृताः ॥६७॥ कांस्यं कषायं तिक्तोष्णं लेखनं विशदं सरम् ॥ गुरु नेत्रहितं रूक्षं कफपित्तहरं परम्॥६८॥

ताम्रत्रपुज, कांस्य, घोप, कसुक (विद्युत्प्रिय, कस, ताम्रार्द्ध, वगशुल्वज, कंसास्थि, प्रकाश, घटाशब्द, असुराह्वय, सौराष्ट्रक, कासीय, घोरपुष्प, वह्निलोहक, दीप्तलोहक, घोरपुप, दीप्तलोह, कांसक, कास और दीप्ति) ये कासेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कासी। ब०–कासा,। म०–कासे। गु०–कासु। क०–कचु। तै०- कंचु। फा०–रोईन। अ०–तालिकून। इ०–बेलमेटल Bellmetal ब्रॉंजBrınze॥

कासी–ताबा और रॉगा दोनोके मिलनेसे बनतीहै और इनकीही उपधातु हैं। जो तावेमें और रॉगेमे गुण रहतेहैं वेही गुण कासेमे हैं। सयोगके प्रभावसे इसमे अन्य गुण भीहैं॥

गुण–कासी कसैली, कडवी, गरम, लेखन, विशद, दस्तावर, भारी, नेत्रोको हितकारी, रूखी और कफपित्तको अत्यन्त नष्ट करैहै ॥ ६६–६८ ॥

अथाऽऽरकूटम् [पीतल]।

पित्तलं त्वारकूटं स्यादारो रीतिश्च कथ्यते ॥ राजरीतिर्ब्रह्मरीतिः कपिला पिङ्गलापि च ॥ ६९ ॥ रीतिरप्युपधातुः स्यात्ताम्रस्य जसदस्य च॥पित्तलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशा जनैः ॥७०॥ संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः॥ रीतिकायुगलं रूक्षं तिक्तश्च लवणं रसे॥शोधनं पाण्डुरोगघ्नं कृमिघ्नं नातिलेखनम् ॥ ७१ ॥

पित्तल, आरकूट, आर, रीति, राजरीति, ब्रह्मरीति, कपिला,पिगला (कपिलोह, सुवर्णकारिरी, पीतलोह, सुलोहक, ब्राह्मी, राजा, महेश्वरी, पतिकावेर, द्रव्यदारु, रीती, मिश्र, क्षुद्रसुवर्ण, सिहल, पीतनक, लोहितक, पिगललोह, पीतक, पाकतुण्डी, राजपुत्री, ब्रह्माणी हरिलोह और पिग) ये पीतलके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पीतल। ब०–पितल। म०–पितळ। गु०–पीतल। क०–पित्तालेयरडु। तै०–इत्तडी।फा०–बिरज। इ०–ब्रास Brass ॥

पीतल तपाकर काजीमें डालनेसे ललाई झलकै वह पीतल राजरीति और जिसमें पीलापन झलकै वह पीतल ब्रह्मरीति कहाती है ॥

गुण–पीतल–तावा और जस्ताके मिलनेसे बनताहै, यह तॉवा और जस्तकी उपधातु है, इस कारण इसमें तावे और जस्तके सदृश गुण हैं। सयोगके प्रभावसे उसमे अन्य गुण भी हैं। दोनों जातिका पीतल–रूखा कडवा, रसमें खारी, शोधक, अत्यन्त लेखन नही, और पाडुरोग तथा कृमिरोगको नष्ट करैहै ॥ ६९–७१ ॥

अथ सिन्दूरः।

सिन्दूरं रक्तरेणुश्च नागगर्भश्च सीसजम् ॥ सीसोपधातुः सिन्दूरो गुणैस्तत्सीसवन्मतम् ॥७२॥संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः॥ सिन्दूरमुष्णं वीसर्पकुष्ठकण्डूविषापहम् ॥ भग्नसन्धानजननं व्रणशोधनरोपणम् ॥ ७३ ॥

सिन्दूर, रक्तरेणु, नागगर्भ, सीसज, सीसोपधातु (नागजबीर, रक्तसन्ध्यक, शिव, रक्तवालुका, रगज, वगज, शृङ्गारभूषण, नागरक्त, नागसम्भव, रक्त, चूर्ण, रक्तवालुक, रक्तशासन, आलदर्शन, नागरेणु, सीमन्तक, शोण वीररज, गणेशभूषण, सध्याराग, शृङ्गारक, सौभाग्य,अरुण, मगल्य) ये सिन्दूरके सस्कृत नाम हैं।

हिन्दी–सिन्दूर । ब०–सिन्दुर । म०–शेंदुर । तै०–सिन्दुरम् । फा०–सिरिन्ज । इ०–ओर्मिनोटो Ornotto लैं०–ब्रीजा वरिमाना Briza Orman ॥

सिन्दूर–सीसेकी उपधातु है इसकारण इसमे सीसेके सदृश गुण हैं और सयोगके प्रभावसे अन्यगुण भी है। सिन्दूर–गरम, टूटे हुएको जोडनेवाला, व्रणशोधक,रोपण, घावको भरनेवाला और विसर्प, कोढ, खुजली तथा विषको नष्ट करैहै ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अथ शिलाजतु ।

(तदुत्पत्तिनामलक्षणगुणाः) ।

निदाघे घर्मसन्तप्ता धातुसारं धराधराः ॥ निर्यासवत्प्रमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु कीर्तितम् ॥ ७४ ॥ सौवर्णं राजतं ताम्रमायसं तच्चतुर्विधम् ॥ शिलाजत्वद्रिजतु च शैलनिर्यास इत्यपि ॥ ७५॥ गैरेयमश्मजं चापि गिरिजं शैलधातुजम् ॥ शिलाजं कटु तिक्तोष्णं कटुपाकं रसायनम् ॥ ७६ ॥ छेदि योगवहं हन्ति कफमेदोश्मशर्कराः॥ मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं वातार्शांसि च पाण्डुताम् ॥७७॥ अपस्मारं तथोन्मादं शोथकुष्ठोदरक्रिमीन् ॥ सौवर्णं तु जपापुष्पवर्णं भवति तद्रसात् ॥ ७८ ॥ मधुरं कटु तिक्तं च शीतलं कटुपाकि च ॥ राजतं पाण्डुरं शीतं कटुकं स्वादुपाकि च ॥७९॥ ताम्रं मयूरकण्ठाभं तीक्ष्णमुष्णं च जायते॥लौहं जटायुपक्षाभं तत्तिक्तं लवणं भवेत्॥विपाके कटुकं शीतं सर्वं श्रेष्ठमुदाहृतम् ॥ ८० ॥

उत्पत्ति–गरमियोंमे पर्वत धूपसे सन्तापित होकर धातुओंके सारको गोदके सदृश छोडतेहैं, उसको शिलाजीत कहतेहैं, सोनेका, चादीका, ताबेका, और लोहेका इस भाति चार प्रकारका शिलाजीत होताहै ॥

नाम–शिलाजतु, अद्रिजतु, शैलनिर्यास, गैरेय,अश्मज, गिरिज, शैलधातुज, (अर्थ्य, शिलाज, अगज,शैल,शैलेय, शीतपुष्पक, शिलाव्याधि, अश्मोत्थ, अश्मलाक्षा, अश्मजतुक और जत्वश्मक) ये शिलाजीतके सस्कृत नाम हैं।

हिन्दी–म०–शिलाजीत । क०–कलुवेचरु।इ०–आसफाल्ट Asphalt लैं०–आस फल्टम् फजाबिनम् । Asphcltum Funjabinum ॥

शिलाजीत–चरपरा, कडवा, गरम, पाकमे चरपरा, रसायन, मलको छेदन करनेवाला, योगवाही, और कफ, मेद, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र,क्षय, श्वास,वादी बवासीर, पाडु, अपस्मार (मृगी), उन्माद, सजन, उदररोग तथा कृमिनाशक है ॥

सोनेका शिलाजीत जपाके फूलके सदृश लाल वर्णवाला होताहै और वह स्वमे मीठा, चरपरा, कडवा, शीतल तथा पाकमे चरपरा होताहै ॥

चादीका शिलाजीत–सफेद होताहै, वह शीतल, चरपरा और पाकमे मधुर है ॥

ताबेका शिलाजीत–मोरके गलेके सदृश वर्णवाला होताहै, वह तीक्ष्ण और गरम होताहै ॥

लोहेका शिलाजीत–गिद्धके पखोंके सदृश वर्णवाला होताहै और वह कडवा, खारी, पाकमें चरपरा, शीतल तथा सबमे श्रेष्ठ कहाहै ॥ ७४–८० ॥

अथ रसशब्दस्य निरुक्तिः ।

रसायनार्थिभिर्लोकैः पारदो रस्यते यतः॥ ततो रस इति प्रोक्तः स च धातुरपि स्मृतः ॥ ८१ ॥

रसायनकी इच्छा करनेवाले लोग इस पारेका भक्षण करतेहैं इसमे पारा रस कहाताहै और धातु भी कहतेहैं॥८१

अथ पारदस्योत्पत्तिर्लक्षणं नामानि गुणाश्च ।

शिवांगात्प्रच्युतं रेतः पतितं धरणीतले ॥ तद्देहसारजातत्वाच्छुक्लमच्छमभूच्च तत् ॥ ॥ ८२ ॥ क्षेत्रभेदेन विज्ञेयं शिववीर्यं चतुर्विधम् ॥ श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं तत्तु भवेत्क्रमात्॥८३॥ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च खलु जातितः ॥ श्वेतं शस्तं रुजां नाशे रक्तं किल रसायनम् ॥८४॥ धातुवादे तु तत्पीतं खे गतौ कृष्णमेव च॥ पारदो रसधातुश्च रसेन्द्रश्च महारसः ॥८५॥ चपलः शिववीर्यं च रसः सूतः शिवाह्वयः॥ पारदः षड्रसः स्निग्धस्त्रिदोषघ्नो रसायनः ॥ ८६ ॥ योगवाही महावृष्यः सदा दृष्टिबलप्रदः॥सर्वामयहरः प्रोक्तो विशेषात्सर्व-

कुष्ठनुत् ॥ ८७ ॥ स्वस्थो रसो भवेद्ब्रह्मा बद्धो ज्ञेयो जनार्दनः॥रञ्जितः कामितश्चापि साक्षाद्देवो महेश्वरः ॥८८॥ मूर्च्छितो हरति रुजं बन्धनमनुभूय खे गतिं कुरुते॥ अजरीकरोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाकरः सूतात् ॥८९॥असाध्यो यो भवेद्रोगो यस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥ रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जरवाजिनाम्॥९०॥ मलं विषं वह्निगिरित्वचापलं नैसर्गिकं दोषमुशन्ति पारदे ॥ उपाधिजौ द्वौ त्रपुनागयोगजौ दोषौ रसेन्द्रे कथितौ मुनीश्वरैः॥ ॥९१॥ मलेन मूर्च्छा मरणं विषेण दाहोऽग्निना कष्टतरः शरीरे॥देहस्य जाड्यं गिरिणा सदा स्याच्चाञ्चल्यतो वीर्यहतिश्च पुंसाम् ॥ ९२ ॥ वङ्गेन कुष्ठं भुजगेन षण्डो भवेदतोऽसौ परिशोधनीयः ॥९३॥ वह्निर्विषं मलं चेति मुख्या दोषास्त्रयो रसे ॥ एते कुर्वन्ति सन्तापं मृतिं मूर्च्छां नृणां क्रमात् ॥ ९४ ॥ अन्येऽपि कथिता दोषा भिषग्भिः पारदे यदि॥तथाप्येते त्रयो दोषा हरणीया विशेषतः ॥९५॥ संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम्॥देहस्य नाशं विदधाति नूनं कष्टांश्च रोगाञ्जनयेन्नराणाम् ॥ ९६ ॥

उत्पत्ति—शिवके अङ्गसे स्खलित हुआ वीर्य पृथ्वीपर गिरा, उनके देहका सार होनेसे सफेद और स्वच्छ हुआहै वह पारा कहाता है ॥ ८२ ॥

लक्षण—क्षेत्रके भेदसे यह पारा सफेद, लाल, पीला, और काला, ऐसे चार प्रकारका जानना । सफेद पारा ब्राह्मणजातिका, लाल क्षत्रियजातिका, पीला वैश्यजातिका और काला शूद्रजातिका है ॥

सफेद पारा रोगोंके नष्ट करनेमें उत्तम है, लाल पारा रसायन है, पीला पारा धातुवाद (सोना चांदी आदि बनाने) में उत्तम है, और काला पारा आकाशमें चलनेकी गति देनेमें उत्तम है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

नाम—पारद, रसधातु, रसेन्द्र, महारस, चपल, शिववीर्य, रस, सूत और जितने महादेवके नाम हैं वे सब, (रसराज, रसनाथ, महातेज, रसलह, रसोत्तम, सूतराट्, जैत्र, शिवबीज, शिव, अमृत, लोकेश, दुर्द्धर, प्रभु,रुद्रज, हरतेज, अचिन्तज, अवित्तज, खेचर, अमर, देहद, मृत्युनाशक, स्कन्द, स्कन्दांशक, देव, दिव्यरस, रसायनश्रेष्ठ, यशोद, सूतक, सिद्धधातु, पारद, रजस्वल, मूर्ति, पार, लोहेश, दुर्धर, मृत्युनाशन, हेमनिधि, त्रिनेत्र, स्वामी और रोषण) ये पारेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—म०—पारा । ब०—पारद । गु०—पारो । क०—पारदरस । तै०—पारदरस । फा०-सिमाव । अ०—जीवक। इ०—मर्क्युरी Mercury लै०—हेड्रार्जिर Hydrargyrum ॥ ८५ ॥

गुण—पारा—छहोंरसयुक्त, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, योगवाही,अत्यत वीर्यवर्द्धक,सर्वदा नेत्रोंमें बलदायक, सम्पूर्ण रोगनाशक, और विशेष करके सर्व प्रकारके कोढोंको नष्ट करैहै ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

स्वस्थ पारा—ब्रह्मारूप, बद्धपारा (बँधा हुआ) विष्णुरूप, रजित और कामित पारा साक्षात् महेश्वररूपहै ॥ ८८॥

मूर्च्छित पारा रोगोंको नष्ट करै है, बद्धपारा आकाशमे चलनेकी शक्ति देताहै, और मारा हुआ पारा प्राणीको अजर अमर करताहै, इसकारण पारेसे अन्य करुणाकारक कौन है ? मनुष्य हाथी और घोडोंके जो रोग असाध्य हैं, अथवा जिन रोगोंकी चिकित्सा नहीं होसक्ती उन रोगोंको पारा नष्ट करता है । मल, विष, अग्नि, गिरिदोष और चपलता, ये दोष पारेमें स्वाभाविक हैं । रांगेके तथा शीशेके योगसे अन्य दो आगन्तुक दोष भी हैं, ऐसे सात दोष मुनियोंने कहे ह । मलसे मूर्च्छा, विषसे मृत्यु, अग्निसे शरीरमें महाभयकर दाह, गिरिदोषसे सर्वदा देहमे जडता, चपलतासे पुरुषोंका वीर्य नष्ट करताहै, रांगेके योगसे कोढ होताहै और शीसेके योगसे नपुंसकताभी होतीहै, इस कारण पारेको शुद्ध करना चाहिये । अग्नि, विष और मल ये तीन दोष पारेमें मुख्य है और ये दोष क्रमसे मनुष्योंके सन्ताप, मरण तथा मूर्च्छा करतेहैं । यद्यपि वैद्योंने पारेमें और भी दोष कहेहैं तौभी विशेष करके ये तीन दोष अवश्य नष्ट करने चाहिये । जो संस्काररहित पारेका सेवन करताहै उसके इतनी बाधा करता है, कि—देहका नाश और महाभयकर रोग अवश्य उत्पन्न होतेहैं ॥ ८९-९६ ॥

अथ उपरसानां लक्षणम् ।

गन्धो हिंगुलमभ्रतालकशिलाः स्रोतोऽञ्जनं टङ्कणं राजावर्तकचुम्बकौ स्फटिकया शङ्खः खटी गैरिकम् ॥ कासीसं रसकं कपर्दसिकताबोलाश्च कंकुष्ठकं सौराष्ट्री च मता अमी उपरसाः सूतस्य किञ्चिद्गुणैः ॥ ९७ ॥

उपरसा गौणा रसाः ॥

गधक, हिंगुल, अभ्रक, हरताल, मैनशिल, सुरमा, सुहागा, राजावर्त्त (रावटी), चुम्बक, फटकरी, शख, खरिया, गेरू, कसीस, खपरिया, कौडी, वालू, बोल, कंकुष्ठ (मुरदासग) और सोरटकी मट्टी, ये उपरस हे, क्योंकि इनमे पारेके कुछ गुण रहते हैं । उपरस अर्थात् गौणरस ९७

अथ हिंगुलस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च ।

हिंगुलं दरदं म्लेच्छमिंगुलं चूर्णपारदम् ॥ दरदस्त्रिविधः प्रोक्तश्चर्मारः शुकतुण्डकः ॥९८॥ हंसपादस्तृतीयः स्याद् गुणवानुत्तरोत्तरम् ॥ चर्मारः शुक्लवर्णः स्यात्स पीतः शुकतुण्डकः ॥ जवाकुसुमसङ्काशो हंसपादो महोत्तमः ॥९९॥ तिक्तं कषायं कटु हिंगुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्तहारि ॥ हृल्लासकुष्ठज्वरकामलांश्च प्लीहामवातौ च गरं निहन्ति ॥ १०० ॥ ऊर्द्धपातनयुक्त्या तु डमरुयन्त्रपाचितम् ॥ हिंगुलं तस्य सूतं तु शुद्धमेवं न शोधयेत् ॥ १०१ ॥

नाम-हिंगुल, दरद, म्लेच्छ, इगुल, चूर्णपारद, (हसपाद, रसस्थान, रक्तपारद, हिंगुलि, हिंगुल, रक्त, मर्कटशीर्ष, रस, उरु, उन्द, कपिशीर्षक, वर्वर, सुरङ्ग, सुनर, रजन, मनोहर, चित्राङ्ग, चर्म्मारक, रसोद्भव, रंजक, रसगर्भ, चर्म्मार और नानाशृङ्गारवर्द्धन) ये सिंगरफके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी-हिंगुल, सिगरफ । व०-हिगुल । म०-हिंगूळ । गु०-हिंगलो । क०-इगुलिनक । तै०-हंगिलाकमु । फा०-सिंग्रफ । अ०-जजफर । इं०-सल्फरेट आफमर्क्युरी Sulphuret of Mercury सिनेबॉनेटिव Cinnabar Nativa लै०-सल्फ्युरेट हैड्रार्जिरी Sulphuretum Hydrargyri ॥

लक्षणचर्मार, शुकतुण्डक और हसपाद, इस भांति सिगरफ, तीन प्रकारका है । सफेद वर्णवाला सिगरफ चर्मार कहाताहै. पीतरगका सिगरफ शुकतुण्डक कहाताहै. और जवाके फूलके सदृश लाल सिगरफ हसपाद कहाताहै. इनमे पहिलेसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा हिंगुल उत्तमहै॥

गुण । सिगरफ-कडवा, कसेला, चरपरा और नेत्ररोग, कफ, पित्त, हृल्लास, कोढ, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात तथा विषविनाशक है । हिंगुलको ऊर्ध्वपातनयुक्तिसे डमरुयन्त्रमे पकावे, इस हिंगुलका पारा शुद्ध है, इसको शुद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ९८-१०१ ॥

अथ गन्धकस्योत्पत्तिर्नामानि लक्षणं गुणाश्च ।

श्वेतद्वीपे पुरा देव्याः क्रीडन्त्या रजसाप्लुतम् ॥ दुकूलं तेन वस्त्रेण स्नातायाः क्षीरनीरधौ ॥ १०२ ॥ प्रसृतं यद्रजस्तस्माद्गन्धकः समभूत्ततः ॥ गन्धको गन्धिकश्चापि गन्धपाषाण इत्यपि ॥ १०३ ॥ सौगन्धिकश्च कथितो बलिर्बलरसोऽपि च ॥ चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः ॥ १०४ ॥ रक्तो हेमक्रियासूक्तः पीतश्वेतौ रसायने । व्रणादिलेपने श्वेतः कृष्णः श्रेष्ठः सुदुर्लभः ॥ १०५ ॥ श्रेष्ठः हेमक्रियादिषु सर्वत्र प्रशस्ततरः ॥ गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्तुवरः सरः ॥ पित्तलः कटुकः पाके जन्तुकण्डूविसर्पजित् ॥ हन्ति कुष्ठक्षयप्लीहकफवातान्रसायनः ॥ १०६ ॥ अशोधितो गन्धक एष कुष्ठं करोति तापं विषमं शरीरे ॥ शोषं च रूपं च बलं तथौजः-शुक्रं निहन्त्येव करोति चास्रम् ॥ १०७ ॥

उत्पत्ति-पहिले श्वेतद्वीपमे पार्वती क्रीडा करती थी, वहा उसके जब रजोदर्शनसे वस्त्र भीगगये तब उन कपडोयुक्त पार्वतीने क्षीरसागरमें स्नान किया उस समय उन वस्त्रोंमेसे जो रज फैला उससे गधक उत्पन्न हुआ है ॥ १०२ ॥

नाम—गन्धक, गन्धिक, गन्धपाषाण, सौगंधिक, बलि, बलरस, (गौरीबीज, गधाश्म, पामाघ्न, सुगधिक, पामारि, शुल्वारि, गन्धी, गन्धमोदन, वर, पूतिगध, गन्ध, दिव्यगन्ध, सुगन्ध, रसगधक, कुष्ठारि, कीटघ्न, क्रूरगन्ध और शरभूमिज) ये गंधकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—बं०—म०—गु०—क०—गंधक । तै०—गधकमु । फा०—गोदीर्द । अ०—किब्रीत । लै०—सल्फर । Sulphur ॥

लक्षण—लाल, पीला, सफेद और काला, इस भाँति गधक चार प्रकारका है. इनमे सोना बनानेवालोंको लाल, रसायनके काममें पीला तथा सफेद, व्रण आदिपर लगानेके काममें सफेद और काला गधक सोना बनाना आदि सब क्रियाओमे उत्तम है, परन्तु यह दुर्लभ है ॥ १०३–१०५ ॥

गुण—गधक—चरपरा, कडवा, उष्णवीर्य, कसैला, दस्तावर, पित्तकारक, पाकमे चरपरा, रसायन और खुजली, विसर्प, कृमि, कोढ, क्षय प्लीहा, कफ तथा वातको नष्ट करैहै ॥

अशुद्ध गधक—कोढ, विषमज्वर, सूजन, तथा रक्तविकार उत्पन्न करैहै. और रूप, बल, ओज तथा वीर्यका नाश करैहै ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

अथ अभ्रकस्य उत्पत्तिर्नामानि लक्षणं गुणाश्च ।

पुरा वधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतम्॥ विस्फुलिङ्गास्ततस्तस्य गगने परिसर्पिताः ॥ १०८ ॥ ते निपेतुर्घनध्वानाच्छिखरेषु महीभृताम् ॥ तेभ्य एव समुत्पन्नं तत्तद्गिरिषु चाभ्रकम् ॥ १०९ ॥ तद्वज्रं वज्रजातत्वादभ्रमभ्ररवोद्भवात् ॥ गगनात्स्खलितं यस्माद्गगनं च ततो मतम् ॥ ॥११० ॥ विप्रक्षत्रियविट्शूद्रभेदात्तस्याच्चतुर्विधम् ॥ क्रमेणैव सितं रक्तं पीतं कृष्णं च वर्णतः ॥ १११ ॥ प्रशस्यते सितं तारे रक्तं तत्तु रसायने॥ पीतं हेमनि कृष्णं तु गदेषु द्रुतयेऽपि च ॥ ११२ ॥ पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रं चेति चतुर्विधम्॥ मुञ्चत्यग्नौ विनिक्षिप्तं पिनाकं दलसञ्चयम् ॥ ११३ ॥ अज्ञानाद्भक्षणं तस्य महाकुष्ठप्रदायकम् ॥ दर्दुरं त्वग्निनिःक्षिप्तं कुरुते दर्दुरध्वनिम् ॥ ११४ ॥ गोलकान्बहुशः कृत्वा स स्यान्मृत्युप्रदायकः ॥ नागं तु नागवद्वह्नौ फूत्कारं परिमुञ्चति ॥११५॥ तद्भक्षितमवश्यं तु विदधाति भगन्दरम् ॥ वज्रं तु वज्रवत्तिष्ठेत्तन्नाग्नौ विकृतिं व्रजेत् ॥ ११६ ॥ सर्वाभ्रेषु वरं वज्रं व्याधिवार्द्धक्यमृत्युहृत् ॥ अभ्रमुत्तरशैलोत्थं बहुसत्त्वं गुणाधिकम् ॥दक्षिणाद्रिभवं स्वल्पसत्त्वमल्पगुणप्रदम् ॥ ११७ ॥ अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुष्करं धातुविवर्द्धनं च ॥ हन्यात्त्रिदोषं व्रणमेहकुष्ठप्लीहोदरग्रन्थिविषक्रिमींश्च ॥ ११८ ॥ रोगान्हन्ति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ॥ दीर्घायुष्काञ्जनयति सुतान्विक्रमैः सिंहतुल्यान्मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥ ११९ ॥ पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदं च शोथम् ॥ हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यशुद्धमभ्रं त्वसिद्धं गुरु तापदं स्यात् ॥ १२० ॥

उत्पत्ति—पहिले वृत्रासुरके मारनेको इन्द्रने वज्र उठाया उस समय उसमेसे निकलकर जो चिनगारी आकाशमे फैलगई और पश्चात् मेघका शब्द होनेपर पर्वतोंके शिखरोंमे गिरगई उससेही यह अभ्रक उत्पन्न हुआहै । यह अभ्रक वज्रसे उत्पन्न हुआहै, इससे अभ्रक कहाताहै और आकाशसे गिराहै, इससे गगन कहाताहै ॥

लक्षण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन भेदोंसे अभ्रक चार प्रकारका है । सफेद अभ्रक ब्राह्मण है; लाल क्षत्रिय है, पीला वैश्य है और काला शूद्र है। चाँदी बनाने आदिमे सफेद, रसायनकार्यमे लाल, सुवर्ण बनाने आदिमे पीला और रोग नष्ट करनेमें काला अभ्रक उत्तम है । पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र, इस भाँति अभ्रककी चार जाति हैं। जिस अभ्रकको अग्निमे डालनेसे उसके पुरत छूटजाँय, वह पिनाक जानना ॥

अजानतासे जो इसको भक्षण करले तो यह महाकुष्ठ उत्पन्न करता है। जो अभ्रक अग्निमे डालनेसे मेडककी भाँति शब्द करै वह दर्दुर अभ्रक जानना, यह अभ्रक शरीरमे अनेक गाठोंको उत्पन्न करके मृत्यु कर देता है। जो अभ्रक अग्निमें डालनेसे सर्पके सदृश फुँकार मारै वह अभ्रक नाग जानना इस नाग अभ्रकको भक्षण करनेसे अवश्यमेव भगदर रोग उत्पन्न होता है। जो अभ्रक वज्र (हीरेके) सदृश किसी प्रकारका विकार नहीं पाकर अग्निमें स्थिर रहै उसको वज्र जानना, सम्पूर्ण जातिके अभ्रकोंमे वज्र अभ्रक उत्तम है और यह-रोग, वृद्धता तथा मृत्युनाशक है। उत्तरदिशाके पर्वतोंमें उत्पन्न हुआ अभ्रक अत्यंत सामर्थ्यवान् और अत्यत गुणकारी है। दक्षिणदिशाके पर्वतोंमे उत्पन्न हुआ अभ्रक हीन गुणवाला और अल्पसामर्थ्ययुक्त है ॥ १०८-११७ ॥

नाम-अभ्रक, गगन और आकाश वाचक सम्पूर्ण शब्द, (गिरिजावीज, निर्मल, गिरिजामल, अब्द, व्योम, घन, शुभ्र, बहुपत्र, घनाह्वक, गिरिज, अमल, गौरीमल, गरजध्वज, अभ्र, भृग, अम्बर, अन्तरिक्ष, आकाश, ख, अनन्त, गौरीज और गौरिजेय) ये अभ्रकके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-अभ्रक, अबरख। व०-अभ्र। म०-गु०-क०-अभ्रक। तै०-अभ्रकम्। फा०-सितारे जमीन। अ०-तह्लक। इ०-टाल्क, ग्लिमर Talc, Glimmer लैं०-मायका Mica ॥

गुण-अभ्रक-कसैला, मधुर, शीतल, आयु तथा धातुवर्द्धक और त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कोढ, प्लीहा, उदररोग, गाठ, विष तथा कृमि, इनको नष्ट करैहै जो माराहुआ अभ्रक निरतर सेवन करै तो रोग नष्ट होते हैं, शरीर दृढ होताहै; वीर्यकी वृद्धि होतीहै, नित्य तरुणता युक्त सौ स्त्रियोंको भोग सक्ताहै, दीर्घायुवाले तथा सिंहके सदृश पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करैहै तथा मृत्युके भयको दूर करताहै ॥

अशुद्ध अभ्रक-मनुष्योंके अनेक प्रकारकी पीडा कोढ, क्षयरोग पाण्डु, सूजन, हृदय तथा पार्श्वपीडाको करता है। असिद्ध अभ्रक अत्यत ताप करता है॥११८-१२०॥

अथ हरितालस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

हरितालं तु तालं स्यादालं तालकमित्यपि ॥ हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिण्डसंज्ञकम् ॥ १२१ ॥ तयोराद्यं गुणैः श्रेष्ठं ततो हीनगुणं परम् ॥ स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चाभ्रपत्रवत् ॥ १२२ ॥ पत्राख्यं तालकं विद्याद् गुणाढ्यं तद्रसायनम् ॥ निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथा गुरु ॥ १२३ ॥ स्त्रीपुष्पहारकं स्वल्पगुणं तत्पिण्डतालकम् ॥ हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् ॥ कण्डूकुष्ठास्यरोगास्रकफपित्तकचव्रणान् ॥ ॥ १२४ ॥ हरति च हरितालं चारुतां देहजातां सृजति च बहुतापश्चांगसङ्कोचपीडाम् ॥ वितरति कफवातौ कुष्ठरोगं विदध्यादिदमसितमशुद्धं मारितं चाप्यसम्यक् ॥ १२५ ॥

नाम-हरिताल, ताल, आल, तालक, (पिंजर, पित्तल, मनोज्ञ, हरितालक, छत्राङ्ग, काचनरस, गोदन्त, नटमण्डन, विस्रगन्धि, पीतक, कर्बूर, पीतन, हरिवीज, सिद्धधातु, पिंजल, लोमहृत्, वंशपत्रक, वर्णक, नटभूषण, अल, पीतगोरोच, चित्राङ्ग, पिञ्जरक, वैदल, कनकरस, काञ्चनक, विडालक, चित्रगध, पिङ्ग, पिङ्गसार और गौरीललित) ये हरतालके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०-व०-म०-गु०-हरताल। क०-हरिदाल। तै०-हरीतालमु। इ०-ओरपीमेंट Orpiment लै०-ब्योपनो आरसेनीक सुलफीडम् Yellow Arsenicum Sulphidum ॥

लक्षण-हरताल दो प्रकारका है, जिसमेसे पत्र निकले वह पत्राख्य (तबकिया) और जो पिंडके सदृश हो वह पिंड कहाताहै, इन दोनोंमे पहिला हरताल श्रेष्ठ है और दूसरा हरताल हीन गुणवाला है। सुवर्णके सदृश वर्णवाला, भारी, स्निग्ध और अभ्रकके सदृश पत्रोंवाला पत्राख्य हरताल गुणोंकरके युक्त तथा रसायन है। और जो पत्ररहित पिंडके सदृश हरताल होताहै वह अल्पसत्त्ववाला, भारी स्त्रीके पुष्पको नष्ट करनेवाला और अल्पगुणवाला है ॥

गुण-हरताल-चरपरा, स्निग्ध, कसैला, गरम और, विष, खुजली, कोढ, मुखके रोग, रुधिरविकार, कफपित्त, केश तथा व्रण, इनको नष्ट करैहै ॥

अशुद्ध और भलेप्रकार नही मारा हुआ हरिताल देहकी शोभाको नष्ट करताहै, अत्यन्त सताप तथा अगोमे सकोचकी पीडाको करताहै और वात तथा कुष्ठको उत्पन्न करे हैं ॥ १२१-१२५ ॥

अथ मनःशिलाया [मैनसिलके] नामानि गुणाश्च ।

मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका॥ नैपाली कुनटी गोला शिला दिव्यौषधिः स्मृता ॥ १२६ ॥ मनःशिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः ॥ तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकासभूतकफास्रनुत् ॥ १२७ ॥ मनःशिला मन्दबलं करोति जन्तुं द्रुवं शोधनमन्तरेण ॥ मलानुबन्धं किल मूत्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदं च कुर्यात्॥ १२८॥

मनःशिला, मनोगुप्ता, मनोह्वा, नागजिह्विका, नैपाली, कुनटी, गोला, शिला, दिव्यौषधि, (मनोज्ञा, रोगशिला, कुलटी, नेपालिका, कल्याणिका, नागमाता और रसनेत्रिका) ये मैनशिलके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—मनशिल मैनशिल । ब०—मनशाछ । म०—मनशील । गु०—मणशीळ । क०—मणिशिले । तै०-मानुशीला । इ०—रेलजर Realgar लै०—आर्सेनी कम सल्फीडम Arsenicum Sulphidum ॥

गुण—मैनसिल- भारी, वर्णको उत्तम करनेवाली,दस्तावर, गरम, लेखन, चरपरी, कडवी, स्निग्ध और विषविकार, श्वास, खाँसी, भूतबाधा, कफ तथा रक्तविकारनाशक है ॥

अशुद्ध मैनशिल—बलको मद करती है, तथा मलका अनुबध, (दस्तका रोकना) मूत्ररोध और शर्करायुक्त मूत्रकृच्छ्र रोगको करै है ॥ १२६-१२८ ॥

अथ स्रोतोऽजनं सौवीरं च [काला, सफेद सुरमा]।

अञ्जनं यामुनं चापि कापोताञ्जनमित्यपि॥ तत्तु स्रोतोऽञ्जनं कृष्णं सौवीरं श्वेतमीरितम् ॥ १२९ ॥ वल्मीकशिखराकारं भिन्नमञ्जनसन्निभम् ॥ घृष्टं तु गैरिकाकारमेतत्स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम्॥ १३०॥ स्रोतोऽञ्जनसमं ज्ञेयं सौवीरं तत्तु पाण्डरम् ॥ स्रोतोऽञ्जनं स्मृतं स्वादु चक्षुष्यं कफपित्तनुत् ॥ १३१ ॥ कषायं लेखनं स्निग्धं ग्राहि च्छर्दिविषापहम् ॥ सिध्मक्षयास्रहृच्छीतं सेवनीयं सदा बुधैः ॥ १३२ ॥ स्रोतोऽञ्जनगुणाः सर्वे सौवीरेऽपि मता बुधैः ॥ किन्तु द्वयोरञ्जनयोः श्रेष्ठं स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम् ॥ १३३ ॥

नाम—अजन, यामुन और कापोतांजन, ये सुरमेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—सुरमा, अजन, । ब०—श्वेतसुरमा, नीलसुरमा । म०—काळा पाढरा सुरमा । गु०—सुरमो, कालो सुरमो । क०—स्रोतोञ्जन । तै०—सौवीरांजन । फा०—सूर्मे अस्फहानी । अ०—कुहलइसवद । इ०—सल्फरेट आफ् आटिमनी Sulphuret of Antimony लै०आटिमोनीआईसल्फुरेटम् Antimonii sulphuretum ॥

लक्षण—काला सुरमा स्रोतोञ्जन कहाताहै और सुफेदसुरमा सौवीर कहाताहै. बांबीके शिखरके सदृश और तोडनेमें अजनके टुकडेके समान, तथा घिसनेसे गेरुके सदृश होय वह स्रोतोञ्जन कहाताहै । सफेद सुरमा भी स्रोतोञ्जनके सदृश होताहै, परन्तु कुछ पीले रगका होता है ॥

गुण—स्रोतोञ्जन—मधुर, नेत्रोको हितकारी, कसैला, लेखन, स्निग्ध, ग्राही, शीतल और कफ, पित्त, वमन, विष, सफेदकोढ, क्षय तथा रक्तविकार, इनको नष्ट करे है, यह सदा बुद्धिमानोको सेवनीय है । जो स्रोतोजनमे गुण हैं वे सौवीरमें भी हैं, ऐसा विद्वानोने कहा है किन्तु दोनो अजनोमे स्रोतोञ्जनही श्रेष्ठ कहा है ॥ १२९-१३३ ॥

अथ टंकणः [सोहागा] ।

टंकणोऽग्निकरो रूक्षः कफघ्नो वातपित्तकृत् ॥ १३४ ॥

अयमुपरसत्वात् पुनरुक्तः ॥

सुहागा—अग्निकारक, रूखा, कफनाशक, वात तथा पित्तकारक है, (यह उपरस होनेसे यहा द्वितीय वार लिखा है इसके नामादिक हरीतक्यादिवर्गमे कहे हैं) ॥ १३४ ॥

अथ स्फटिका [फटकिरी] ।

स्फटी च स्फटिका प्रोक्ता श्वेता शुभ्रा च रंगदा ॥ दृढरंगा सुरंगा च दृढा रंगापि

कथ्यते ॥ १३५ ॥ स्फटिका तु कषायोष्णा वातपित्तकफव्रणान् ॥ निहन्ति श्वित्रवीसर्पान्योनिसंकोचकारिणी ॥ १३६ ॥

स्फटी, स्फटिका, श्वेता, शुभ्रा, रंगदा, दृढरंगा, सुरंगा, दृढा रंगा, (स्फटिकारी, स्फटिकारिका, रंगांगा और गतरंगा) ये फटकिरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—बं०—फटकिरी । म०—तुरटी । गु०—फटकडी । क०—स्फटीकी । तें०पटीके । फा०—जाक सफेद । अ०—शबेयमानी । इं०—एलम Alum ल०—एलमीनम् सल्फस् Aluminum Sulphas ॥

गुण—फटकिरी-कसैली, गरम, योनिको संकुचित करनेवाली और वात, पित्त, कफ, व्रण, कोढ तथा विसर्पनाशक है ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

अथ राजावर्तः [रेवटी] ।

राजावर्तः कटुस्तिक्तः शिशिरः पित्तनाशनः ॥ राजावर्तः प्रमेहघ्नश्छर्दिहिक्कानिवारणः ॥ १३७ ॥

संस्कृत—राजावर्त्त । हिन्दी रेवटी ॥

गुण—रेवटी—चरपरी, कडवी, शीतल और पित्त, प्रमेह, वमन तथा हिचकीको नष्ट करै है ॥ १३७ ॥

अथ चुम्बकः ।

चुम्बकः कान्तपाषाणोऽयःकान्तो लोहकर्षकः ॥ चुम्बको लेखनः शीतो मेदोविषगरापहः ॥ १३८ ॥

चुम्बक, कान्तपाषाण, अयस्कान्त और लोहकर्षक ये चुम्बक (लोहेके खेचनेवाले) लोहेके संस्कृत नाम हैं॥ (यह लोह कांतलोहकीही एक जाति है)

हिन्दी—चुम्बक । म०—लोहचुंबक । गु०— चमक॥

गुण—चुम्बक—लेखन, शीतल और मेद, विष तथा गरलविषविनाशक है ॥ १३८ ॥

अथ गैरिकं [गेरू] सुवर्णगैरिकं च ।

गैरिकं रक्तधातुश्च गैरेयं गिरिजं तथा ॥ सुवर्णगैरिकं त्वन्यत्ततो रक्ततरं हि तत् ॥ ॥ १३९ ॥ गैरिकद्वितयं स्निग्धं मधुरं तुवरं हिमम् ॥ चक्षुष्यं दाहपित्तास्रकफहिक्काविषापहम् ॥ १४० ॥

गैरिक, रक्तधातु, गैरेय, गिरिज, (गिरिमृत्, लोहितमृत्तिका, गिरिधातु, गवेधुक, धातु, सुगन्धधातु, गिरिमृद्भव वनाञ्जन, गवेरुक, अग्निभ और ताम्रधातु) ये गेरूके संस्कृत नाम हैं ॥

दूसरा सुवर्णगेरू जिसको सोनागेरू कहते हैं ॥

हिन्दी—गेरू, सोनागेरू । बं०—गिरिमाटी । म०—गेरु, तांबेगेरू । गु० गेरु, सोनागेरु । क०—काव्, केम्पु-काव् । फा०—गिलेमुर्ख । अ०—तीनअह्मर । इं०—रेड-ओकर Oker रेडलम्बर Redlumber ल०—बोलेरूब्रा Bolerubra ॥

गुण—दोनों प्रकारका गेरू—स्निग्ध, मधुर, कसैला, शीतल, नेत्रोंको हितकारी और दाह, पित्त, रक्तविकार, कफ, हिचकी तथा विषको नष्ट करै है ॥ १३९ ॥ १४० ॥

अथ खटिका [खडिया, गोरखरिया] ।

खटिका कठिनी चापि लेखनी च निगद्यते॥ खटिका दाहजिच्छीता मधुरा विषशोथजित् ॥ १४१ ॥ लेपादेतद्गुणाः प्रोक्ता भक्षिता मृत्तिकासमा । खटी गौरखटी द्वे च गुणैस्तुल्ये प्रकीर्तिते ॥ १४२ ॥

खटिका, कठिनी, लेखनी, (पाण्डरा, शिलाधातु, खटि, खटी, खटी, कठिनी, धवलमृत्तिका, श्वेतधातु, पाण्डुमृत्तिका, शितधातु, पाण्डुमृत्, कक्खटी, वर्णलेखा, मृत्तिकालता, अनीलधातु, वर्णलेखिका, शुद्धधातु, धातुरुन्द, कठिनिका और सकटा) ये खटियाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—खरिया, खडियामट्टी । बं०—खडिमाटी । म०—खडू । गु०—खडी । क०—बेणेचहु । फा०—गिले सफेद । अ०—तिनेअबीयद । इं०—पाईपक्ले Pipeclay ल०—कार्बोनिटआफ कल्कम Carbonate of Calcum ॥

गुण—खडिया-दाहनाशक, शीतल, मधुर विष और शोथनाशक है, खरियामें लेप करनेसे ये गुण हैं, खानेसे तो मिट्टीकी सदृशही है, खरिया और गौर खरिया यह दोनों गुणोंमें समान हैं ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अथ वालुका [वालू] ।

वालुका सिकता प्रोक्ता शर्करा रेतजापि च॥वालुका लेखनी शीता व्रणोरःक्षतनाशिनी ॥ १४३ ॥

वालुका, सिकता, शर्करा, रेतजा, (सिक्ता, शीतला, सूक्ष्मशर्करा, प्रवाहोत्था, महाश्लक्ष्णा, सूक्ष्मा, पानीयचूर्णिका, वालिका, प्रवाही, महासूक्ष्मा और पानीयवर्णिका) ये वालूके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी—वालू, रेत। बं०—वाली। म०—वाळू। गु०—रेती, वेळु। क०—हाउलू। तै०—विग्रिका। फा०—रेग। अ०—रमला। इं०—सेन्ड Sand लै०—सीलीका Silica॥

गुण—रेत—लेखन, शीतल, व्रण तथा छातीके घावको नष्ट करै है॥ १४३॥

अथ तुत्थभेदः [खपरिया]।

खर्परी तुत्थकं तुत्थादन्यत्तद्रसकं स्मृतम्॥ ये गुणास्तुत्थके प्रोक्तास्ते गुणा रसके स्मृताः॥ १४४॥

खर्परी, तुत्थक, रसक, (चक्षुष्य, अमृतोत्पन्न, दार्विका, खर्पर, खर्परिका, तुत्थ, खर्परीतुत्थ, खर्परी, तुत्थक और जगदोपधातु) ये खपरियाके सस्कृत नाम है॥

हिन्दी—खर्परिया, खापरिया। बं०—खापर। म०—कलखापरी। गु०खापरियो। क०—खर्परी। तै०—खर्पर। फा०—सगवसरी,। अ०—तूतिया किरमानी। इं०—ब्लाक जेक Black jack लै०—जिंकि सल्फाईड Zincisulafindum॥

गुण—खरपरिया—एक जातिका तूतियाही है परन्तु तूतियेसे पृथक् है और रसक खपरिया नामसे प्रसिद्ध है। पहिले तूतियेमे जो गुण कहे हैं वही गुण खपरियासे हैं॥१४४॥

अथ काशीशम् [कसीस]।

काशीसं धातुकाशीसं पांशुकाशीसमित्यपि॥ तदेव किञ्चित्पीतं तु पुष्पकाशीसमुच्यते॥ २४५॥ काशीसमम्लमुष्णं च तिक्तश्च तुवरं तथा॥ वातश्लेष्महरं केश्यं नेत्रकण्डूविषव्रणुत्॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरीश्वित्रनाशनं परिकीर्त्तितम्॥ १४६॥

काशीस, धातुकाशीस, पांशुकाशीस, (खाचर, धातुशेखर, शोधन, हसलोमश, शुभ्र, कासीस और नेत्रौषधि) ये काशीसके सस्कृत नाम हैं। किंचित् पीले वर्णका होता है उसको पुष्पकाशीस कहते हैं॥

हिन्दी—कसीस, पुष्पकसीस। बं०—धातुकासीस, पुष्पकासीस। म०—हिराकस, श्वेतनीली। गु०—हीराकसी। क०—कासीस। फा०—जाकेसब्ज। अ०—जाजे अखदर। इं०—सल्फेट आफ् आयर्न Sulphate of Iron लै०—फेरिसल्फास Ferry sulphas.॥

गुण—कसीस—खट्टा, गरम, कडवा, कसैला, केशोंको हितकारी और वात, कफ, नेत्रोंकी खुजली, विष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, तथा चित्रित कोढको नष्ट करै है॥ १४५॥ १४६॥

अथ सौराष्ट्री मृत्तिका [गोपीचंदन]।

सौराष्ट्री तुवरी कांक्षी मृत्तालकसुराष्ट्रजे॥ आढकी चापि सा ख्याता मृत्स्ना च सुरमृत्तिका॥ स्फटिकाया गुणाः सर्वे सौराष्ट्र्या अपि कीर्त्तिताः॥ १४७॥

सौराष्ट्री, तुवरी, कांक्षी, मृत्तालका, सुराष्ट्रजा, आढकी, मृत्स्ना, सुरमृत्तिका, (पर्पटी, कालिका, सती, सुजाता, पार्वती, ससी, मृदाह्वया, मृत्त, आसङ्ग, कालीमृत्तिका, कसोद्भवा, और सौराष्ट्र) ये गोपी चन्दनके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—गोपीचन्दन,। सोरठकी मिट्टी। म०—गोपीचन्दन। गु०-सोरठी माटी। लै०—सिलिकेट आफ एल्युमीना Silicat of Alumina॥

गुण—जो गुण फट्करीमें हैं वही गुण सोरटकी मट्टीमे हैं॥ १४७॥

अथ कृष्णमृत्तिका [काली मट्टी]।

कृष्णमृत्क्षतदाहास्रप्रदरश्लेष्मपित्तनुत्॥ १४८

कृष्णमृत्, (मृदा, मृत्तिका, मृत्स्ना, क्षेत्रजा और कृष्णामृत्तिका) ये काली मट्टीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—काली मिट्टी, मिट्टी। बं०—माटी, काल माटी। म०—माती। गु०—काली माटी। तै०—नोवुलु॥

गुण—काली मिट्टी—क्षत, दाह, रक्तविकार, प्रदररोग, कफ तथा पित्तनाशक है॥ १४८॥

अथ कर्दमः [कीचड]।

कर्दमो दाहपित्तार्त्तिशोथघ्नः शीतलः सरः॥ १४९॥

कर्दम, (पक, जलकल्क, चुळुक, मल, चिकिल, पलित, द्राप, पलल, निपद्वर, जम्बाल, साद, और दम) ये कीचडके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—कीचड। बं०—कादा। म०—चिखल। गु०—कादव। इं०—मडब्लक् क्ले Mudblack Clay लै०—हैड्रासिस सिलिकेट आफ् आल्युमीनीयम Hydrasis Silicate of Alumunum॥

कीचड—शीतल, दस्तावर और दाह, पित्तकी पीडा, तथा शोथ नाशक है॥ १४९॥

अथ बोलम् ।

बोलगन्धरसप्राणपिण्डगोपरसाः समाः॥ बोलं रक्तहरं शीतं मेध्यं दीपनपाचनम् ॥ १५० ॥ मधुरं कटु तिक्तञ्च दाहस्वेदत्रिदोषजित्॥ज्वरापस्मारकुष्ठघ्नं गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥ १५१ ॥

बोल, गंधरस, प्राण, पिंड, गोपरस, (निर्लोह, बर्बररस, सुगन्ध, नालक, पार, रसगन्ध, मित, रक्तापह, मुण्ड, मुरम, पिण्डक, विप, बर्बर, सौरभ, रसगंधक, महागन्ध, विश्व शुभगंधक, विश्वगन्ध, व्रणारि, गोप, गोरस, पिण्डगोस,शश, गोपशश,गान्धार,मसिवर्द्धन,बोलज, गोपक और गोल) ये बोलके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–बोल, हीराबोल । बं०–गंधरस, बोल । गु०–हिराबोल । म०–बाळतबोल । क०–बोल। तै०–वालिमूत्रोपोलम् । ता०–बेल्ल, इपपोलम् । फा०–मुर । अ०–मुरमाफ । इं०–मिर्हा Myrrha लैं०–बालसामेंडिड्रन मिर्हा Balsa Modendran Myrrha ॥

बोल–रुधिरनाशक, शीतल, मेधाको हितकारी, अग्निप्रदीपक, पाचक, मधुर, चरपरा, कडवा, गर्भाशयशोधक और दाह, पसीना, त्रिदोष, ज्वर, मृगी तथा कुष्ठरोग नाशक है ॥ १५० । १५१ ॥

अथ कंकुष्ठस्य [मुरदासंगकी] उत्पत्तिः लक्षणं नामानि गुणाश्च ।

हिमवत्पादशिखरे कंकुष्ठमुपजायते॥ तत्रैकं रक्तकालं स्यात्तदन्यदण्डकं स्मृतम् १५२॥ पातप्रभं गुरु स्निग्धं श्रेष्ठं कंकुष्ठमादिशेत्॥ श्यामं पीतं लघु त्यक्तसत्त्वं नेष्टं तथाण्डकम् ॥ १५३ ॥ कंकुष्ठं काककुष्ठं च वरांगं कोलकाकुलम्॥कंकुष्ठं रेचनं तिक्तं कटूष्णं वर्णकारकम्॥ कृमिशोथोदराध्मानगुल्मानाहकफापहम् ॥ १५४ ॥

उत्पत्ति–कंकुष्ठ हिमालयपर्वतके शिखरोंमें उत्पन्न होताहै ॥

लक्षण–कंकुष्ठ–रक्तकाल और अण्डक इस भाँति दो प्रकारका है, जो भारी, स्निग्ध और पीत कांतिवाला हो वह पहिला कंकुष्ठ श्रेष्ठ है । जो श्याम, पीला और हल्का तथा त्यक्तसत्व(सत्त्वहीन)हो वह अण्डक है,यह श्रेष्ठ नहींहै॥

नाम–कंकुष्ठ, काककुष्ठ, वराग, कोलकाकुल (विरग, रंगदायक, पुलक, शोधक और कालपालक) ये कंकोठके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कंकोठ, मुरदासग । बं०–पार्वतीय मृत्तिकाविशेष । म०–कंकुष्ठ, मुरदाडसिंग । गु०–पीलियो । फा०–मुरदारसग ॥

गुण–कंकोट–रेचक (दस्तावर), कडवा, चरपरा, गरम, वर्णकारक और कृमि, शोथ, उदररोग, अफरा, गुल्म, आनाह तथा कफनाशक है ॥१५२–१५४ ॥

अथ रत्नस्य निरुक्तिः ।

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्तेऽस्मिन्नतीव यत् ॥ ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशारदैः ॥ १५५ ॥

अथ रत्न नामानि स्वरूपनिरूपणञ्च ।

रत्नं क्लीबे मणिः पुंसि स्त्रियामपि निगद्यते॥ तत्तु पाषाणभेदोऽस्ति मुक्तादि च तदुच्यते ॥१५६॥ तथा चामरसिंहः-रत्नं मणिर्द्वयोरश्मजातौ मुक्तादिकेऽपि च ॥ १५७॥

धनकी इच्छा करनेवाले मनुष्य जिसमे अत्यत रमते हैं इस कारण शब्दशास्त्र जाननेवालोने इसको रत्न कहा है । रत्नशब्द नपुसकलिंगमे है और उसका पर्याय मणि पुँल्लिंग तथा स्त्रीलिंगमे होताहै, रत्न पत्थरकी जाति है और मोती आदि भी रत्नमे ही कहेहैं । अमरकोशमें भी कहा है कि–रत्न और मणि दोनो पत्थरकी जाति है और मोती आदि भी पत्थरकी जाति हैं ॥१५५–१५७॥

अथ रत्नानां निरूपणम् ।

रत्नं गारुत्मतं पुष्परागो माणिक्यमेव च॥ इन्द्रनीलश्च गोमेदस्तथा वैदूर्यमित्यपि ॥ मौक्तिकं विद्रुमश्चेति रत्नान्युक्तानि वै नव ॥ १५८ ॥

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि नवरत्ननिरूपणम् ।

मुक्ताफलं हीरकं च वैडूर्यं पद्मरागकम् ॥ १५९॥ पुष्परागं च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा॥ प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव ॥ १६० ॥

रत्न (हीरा), गारुत्मत (पन्ना), पुष्पराग (पुखराग), माणिक्य (माणिक पद्मराग), इन्द्रनील (नीलम्), गोमेद

वैडूर्य (लहसुनिया), मौक्तिक (मोती) और विद्रुम (मूँगा) ये नौ रत्न कहेहैं। विष्णुधर्मोत्तरमे भी कहा है कि "मोती, हीरा, लहसुनिया, पद्मराग, पुखराज गोमेद, नीलम, पन्ना और मूँगा, ये नौ महारत्न हैं" ॥१५८–१६०॥

अथ हीरकस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

हरिकः पुंसि वज्रोऽस्त्री चन्द्रो मणिवरश्च-सः॥ स तु श्वेतः स्मृतो विप्रो लोहितः क्षत्रियः स्मृतः॥ १६१॥ पीतो वैश्योऽसितः शूद्रश्चतुर्वर्णात्मकश्च सः॥ रसायने मतो विप्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः॥ १६२॥ क्षत्रियो व्याधिविध्वंसी जरामृत्युहरः स्मृतः॥ वैश्यो धनप्रदः प्रोक्तस्तथा देहस्य दार्ढ्यकृत्॥ १६३॥ शूद्रो नाशयति व्याधीन्वयःस्तम्भं करोति च॥ पुंस्त्रीनपुंसकानीह लक्षणीयानि लक्षणैः॥ १६४॥ सुवृत्ताःफलसम्पूर्णास्तेजोयुक्ता बृहत्तराः॥ पुरुषास्ते समाख्याता रेखाबिन्दुविवर्जिताः॥ रेखाबिन्दुसमायुक्ताः षडस्रास्ते स्त्रियः स्मृताः॥ १६५॥

षडस्राः षट्कोणाः॥

त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः॥ तेषु स्युः पुरुषाः श्रेष्ठा रसबन्धनकारिणः॥१६६॥ स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीणां सुखप्रदाः॥ नपुंसकास्त्ववीर्याः स्युरकामाः सत्त्ववर्जिताः॥१६७॥ स्त्रियः स्त्रीभ्यः प्रदातव्याः क्लीबं क्लीबे प्रयोजयेत्॥ सर्वेभ्यः सर्वदा देयाः पुरुषा वीर्यवर्धनाः॥ १६८॥ अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा॥ पाण्डुतां पंगुलत्वं च तस्मात्संशोध्य मारयेत्॥ १६९॥

हीरक (पुँल्लिंग), वज्र अस्त्री (पु नपुसकलिंग) चन्द्र-मणिवर, (अशिर, षट्कोण, दृढगर्भक, हीर, दधीच्यस्थि, वज्रक, सूचीमुख, वरारक, रत्नमुख्य, अभेद्य, दृढाङ्ग और वज्रपर्यायनामक) ये हीरेके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–हीरा–ब०–हिरे। म०–हिरा। गु०–हिरो। क०–वज्र। तै०–वज्र। फा०–इल्माश। इ०–डायमोण्ड Diamond लै०–पियोरकार्बन् एडमस् Purecarbon Adamas॥

लक्षण–हीरेकी चार जाति है, उसमे सफेदवर्णका ब्राह्मण, लाल वर्णवाला क्षत्रिय, पीलेवर्णका वैश्य और काले रगका शूद्र जानना। ब्राह्मणहीरा रसायनके काममे तथा सर्व सिद्धिदायक है। क्षत्रिय हीरा रोग नाशक है, तथा जरा मरण हरनेवाला है। वैश्यहीरा धन देनेवाला, तथा देहकी दृढता करनेवाला है। और शूद्रहीरा व्याधियोंको नष्ट करैहै, तथा आयुस्थापक है। हीरेके लक्षणो करके पुरुष, स्त्री और नपुसक भेद भी जानना। जो हीरा उत्तम, गोलाकार, फलयुक्त, कांतियुक्त, बहुत बडा और रेखा बिन्दु करके रहित हो वह पुरुषसज्ञक है। जो हीरा रेखा बिन्दु करके युक्त हो तथा छः कोनेवाला हो वह स्त्रीसज्ञक है। और जो हीरा तीन कोनोंवाला तथा बहुत लम्बी हो वह नपुसक हैं, इनसे पुरुष हीरा सर्वोत्तम है और इससे रसका बधन होताहै। स्त्री जातिका हीरा शरीरको सुन्दर करनेवाला और स्त्रियोंको सुखदायक है। और नपुसक जातिका हीरा वीर्यरहित, सुखदायक नहीं और शक्तिरहित है। स्त्रीजातिका हीरा स्त्रियोको देवै और नपुसक जातिका हीरा नपुसकोंको देवै तथा पुरुषजातिका हीरा सर्वदा सबको देना चाहिये और वीर्यवर्द्धक है॥

अशुद्धहीरा–कोढ, पसलीकी पीडा, पाण्डुरोग तथा पगुता (लगडापन) करताहै इस कारण हीरेको शुद्ध करके मारना चाहिये॥ १६१–१६९॥

अथ मारितस्य वज्रस्य गुणाः।

आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च॥ सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न संशयः॥ १७०॥

माराहुआ हीरा–आयुको बढानेवाला, बलदायक, वीर्यकी वृद्धि करनेवाला, वर्णको उत्तम कर्त्ता, सुखदायक तथा सर्व रोगनाशक है॥ १७०॥

अथ गारुत्मत–[पन्ना] नामानि।

गारुत्मतं मरकतमश्मगर्भो हरिन्मणिः॥ १७१॥

गारुत्मत, मरकत, अश्मगर्भ, हरिन्मणि, (गारुत्मक, गरुडाश्म, मरक्त, राजनील, गरुडाङ्कित, रौहिणेय, सौपर्ण, गरुडोद्गीर्ण, बुधरत्न, अश्मगर्भज, गरलारि, वापवोल, गारुड, गरुडोत्तीर्ण और वाप्रवोल) ये पन्नेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—पन्ना । बं०—पन्ना । म०—पाचूरत्न । गु०—पाना । क०—पाच्चिवच्चे । तै०—नीलम् । फा०—जुमुरईय । अ०—जुमुईद । इं०—इमराल्ड Emerald लै०—स्मेरेग्लस् Smaragolus ॥ १७१ ॥

अथ माणिक्य [चुन्नी] नामानि ।

माणिक्यं पद्मरागः स्याच्छोणरत्नश्च लोहितम् ॥ १७२ ॥

माणिक्य, पद्मराग, शोणरत्न, लोहित, (लोहितक, शोणरत्नक, रत्नराट्, रविरत्नक, तरणिरत्न, शृंगारी, रगमाणिक्य, तरुण, रत्ननायक, रागयुक्, रत्न, शोणोपल, सौगंधिक, कुरुविंद, कुरुविल्व, कुरुविन्दक, लक्ष्मीपुष्प और अरुणोपल) ये चुन्नीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—चुन्नी, मानिक, लाल । बं०—माणिक । म०—माणिक । गु०—माण्यक, चुनी । क०—माणक । तै०—माणिक्य । फा०—लालबदख्शानि । अ०—लाल । इं०—रुबी Ruby लै०—रुबिनस् Rubinus ॥ १७२ ॥

अथ पुष्पराग—[पुखराज] नामानि ।

पुष्परागो मञ्जुमणिः स्याद्वाचस्पतिवल्लभः ॥ १७३ ॥

पुष्पराग, मञ्जुमणि, वाचस्पतिवल्लभ, (जीवरत्न, पीतस्फटिक, पुखराज, पीत, पीतरक्त, पीताश्मा, गुरुरत्न, और पीतमणि) ये पुखराजके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—पुखराज । बं०—पुष्पराग, म० पुष्कराज । गु० पुखराज, पीलुरत्न । क०—पुष्पराग, तै०—पुष्पराग । इ—टोपाज Topaz लै०—टोपाजियो Topazio ॥ १७३ ॥

अथ इन्द्रनीलगोमेदयोः [नीलम और गोमेदमणिके] नामानि ।

नीलं तथेन्द्रनीलश्च गोमेदः पीतरत्नकम् ॥ १७४ ॥

नील, इन्द्रनील, (शौरिरत्न, नीलाश्मा, नीलरत्नक, तालोपल, तृणग्राही, महानील और सुनीलक) ये नीलमणिके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—नीलम, नीलमणि । बं०—म०—नीलमणि । गु०—निलम, । क०—नील । तै०—नील । इं०—सेफायर Saffire ल०—सेफायर्स Saffiıus ॥

गोमेद, पीतरत्नक, (पिङ्गस्फटिक, अगस्तिसत्त्व, तमोमणि, गोमेदक, राहुरत्न और स्वर्भानव) ये गोमेदके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—म०—बं०—गु०—बं०—गोमेदमणि । तै०—गोमेदक । इ०—ओनिक्स Onyx ल०—ओनिक्स Onyx ॥ १७४ ॥

अथ वैदूर्यम् [लहसुनिया] ।

वैदूर्यं दूरजं रत्नं स्यात्केतुग्रहवल्लभम् १७५॥

वैदूर्य, दूरज, रत्न, केतुग्रहवल्लभ, (राष्ट्रक, वैडूर्य, केतुरत्न, मेघखराङ्कुर, वालवायज, वालसूर्य, वालसूर्यक, कैतव, प्रावृष्य, अभ्ररोह, शराब्दाकुर, विदुररत्न और विदूरज,) ये लहसुनियेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—वैडूर्यमणि, लहसुनिया । बं०—वैदूर्य । म०—वैडूर्यरत्न, । गु०—लसणीयो । क०—वैडूर्य । इं०—केट्स-आइ Catseye ॥ १७५ ॥

अथ मौक्तिकस्य नामानि गुणाश्च ।

मौक्तिकं शौक्तिकं मुक्ता तथा मुक्ताफलश्च तत् ॥ शुक्तिः शंखो गजः क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः ॥ १७६ ॥ वेणुरेते समाख्यातास्तज्ज्ञैर्मौक्तिकयोनयः ॥ मौक्तिकं शीतलं वृष्यं चक्षुष्यं बलपुष्टिदम् ॥ १७७ ॥

मौक्तिक, शौक्तिक, मुक्ता, मुक्ताफल (शुक्तिज, शौक्तिकेय, शशिप्रभ, अम्भसार, विन्दुफल, मुक्तिका, शौक्तेयक, इन्दुरत्न, लक्ष्मी, हिम, शुक्तिवीज, हारी, कुवल, सौम्य, तार, तारा, भौतिक, शीतल, नीरज, नक्षत्र, शुक्तिमणि, स्वच्छ, हिमवल, सुधांशुभ, सुधांशुरत्न, लक्ष, शशिप्रिय, हैमवत और भूरुह) ये मोतीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—मोती । बं०—मुक्ता । म०—मोतीं । गु०—मोती । क०—मौक्तिक । तै०—मोत्यालु । फा०—मरवारीद । अ०—लेलू । इ०—पर्ल Pearl लै०—मार्गारिटा Margarita ॥

उत्पत्ति—मोती—शीप, शंख, हाथी, सुअर, सर्प, मत्स्य (मछली), मेडक और बॉस, इन आठोंमेंसे उत्पन्न होता है । परन्तु आजकल प्रायः सीपका ही मोती मिलता है ॥

गुण—मोती—शीतल, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोको हितकारी बल तथा पुष्टिदायक है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

अथ प्रवालस्य [मूँगाके] नामानि ।

पुंसि क्लीबे प्रवालः स्यात्पुमानेव तु विद्रुमः ॥ १७८ ॥

प्रवाल, (पुँल्लिग तथा नपुंसकलिंग), विद्रुम (पुँल्लिग), (अगारकमणि, अम्भोधिपल्लव, भौमरत्न, रत्नाग, रक्ताग, लतामणि, रक्तकन्द, रक्तकन्दल और रक्ताकार) ये मूँगेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—मूँगा । ब०—पला, मुँगा । म०—पोवळे । गु० परवाली । क०—अवलेहवत । तै०—प्रवालक, पागडालु, । फा०—मिरजान।अ०—बसद।इ०—रेडकोरल Redcoral ॥ लै०—कोरेलियं रुबरम Coralum Rubrum १७८॥

अथ रत्नानां गुणाः ।

रत्नानि भक्षितानि स्युर्मधुराणि सराणि च ॥ चक्षुष्याणि च शीतानि विषघ्नानि धृतानि च ॥ मङ्गल्यानि मनोज्ञानि ग्रहदोषहराणि च ॥ १७९ ॥

किं रत्नं कस्य ग्रहस्य प्रीतिकारित्वेन दोषहरं भवतीति प्रश्ने तदुत्तरमाह, रत्नमालायाम्—

माणिक्यं तरणेः सुजातममलं मुक्ताफलं शीतगोर्माहेयस्य तु विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम् ॥ देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शनेर्नीलं निर्मलमन्ययोर्निगदिते गोमेदवैदूर्यके ॥ १८० ॥

रत्न भक्षण करनेसे मधुर, दस्तावर, नेत्रोको हितकारी और शीतल है । धारण करनेसे विषनाशक मंगलकारक मनोज्ञ और ग्रहदोष दूर करनेवाले हैं ॥

कौन कौनसा रत्न किस किस ग्रहका दोष हरनेवाला है; ऐसा प्रश्न होनेपर रत्नमाला ग्रंथसे उत्तर लिखतेहैं कि, "सूर्यके लिये माणिक, चन्द्रमाके लिये निर्मल मोती, मंगलके लिये मूँगा, बुधके लिये पन्ना, बृहस्पतिके लिये पुखराज, शुक्रके लिये हीरा, शनिके लिये नीलम, राहुके लिये गोमेद और केतुके लिये लहसुनिया धारण करना चाहिये ॥ १७९ ॥ १८० ॥

अथ उपरत्नानां निरूपणम् ।

उपरत्नानि काचश्च कर्पूराश्मा तथैव च ॥ मुक्ताशुक्तिस्तथा शङ्ख इत्यादीनि बहून्यपि ॥ १८१ ॥

उपरत्नानि गौणरत्नानि । कर्पूराश्मा कपनीया, कर्पूरनिया ॥ मुक्ताशुक्तिः 'सीप' इति लोके प्रसिद्धा ॥

गुणा यथैव रत्नानामुपरत्नेषु ते तथा ॥ किन्तु किञ्चित्ततो हीना विशेषोऽयमुदाहृतः ॥ १८२ ॥

कॉच, कर्पूराश्मा (कपूर्निया), मोतीकी सीप तथा शख इत्यादि उपरत्न बहुत हैं ॥

जो गुण रत्नोमें कहेहैं, वेही गुण उपरत्नोमें हैं, परन्तु कुछ कुछ न्यून गुण है,इतना ही अन्तर है ॥१८१॥८२

अथ विषस्य नामलक्षणगुणाः ।

विषं तु गरलः क्ष्वेडस्तस्य भेदानुदाहरेत्॥ वत्सनाभः सहारिद्रः सक्तुकश्च प्रदीपनः ॥ ॥ १८३ ॥ सौराष्ट्रिकः शृंगिकश्च कालकूटस्तथैव च॥हालाहलो ब्रह्मपुत्रो विषभेदा अमी नव ॥ १८४ ॥

तत्र वत्सनाभस्य स्वरूपनिरूपणम् ।

सिन्दुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा॥ यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः १८५

अथ हारिद्रस्य स्वरूपनिरूपणम् ।

हरिद्रातुल्यमूलो यो हारिद्रः स उदाहृतः १८६॥

अथ सक्तुकस्य स्वरूपम् ।

यद्ग्रन्थिःसक्तुकनैव पूर्णमध्यःस सक्तुकः १८७॥

अथ प्रदीपनस्य स्वरूपम् ।

वर्णतो लोहितो यः स्याद्दीप्तिमान्दहनप्रभः ॥ महादाहकरः पूर्वैः कथितः स प्रदीपनः ॥ १८८ ॥

अथ सौराष्ट्रिकस्य स्वरूपम् ।

सुराष्ट्रविषये यः स्यात्स सौराष्ट्रिक उच्यते ॥ १८९ ॥

---

(१) कई कर्पूराश्म बिल्लोरको कहते हैं।

अथ शृंगिकस्य स्वरूपम् ।

यस्मिन्गोशृंगके बद्धे दुग्धं भवति लोहितम् ॥ स शृंगिक इति प्रोक्तो द्रव्यतत्त्वविशारदैः ॥ १९० ॥

अथ कालकूटस्य स्वरूपम् ।

देवासुररणे देवैर्हतस्य पृथुमालिनः ॥ दैत्यस्य रुधिराज्जातस्तरुरश्वत्थसन्निभः ॥ १९१ ॥ निर्यासः कालकूटोऽस्य मुनिभिः परिकीर्तितः ॥ सोऽहिक्षेत्रे शृंगवेरे कोङ्कणे मलये भवेत् ॥ १९२ ॥

अथ हालाहलस्य स्वरूपम् ।

गोस्तनाभफलो गुच्छस्तालपत्रच्छदस्तथा ॥ तेजसा यस्य दह्यन्ते समीपस्था द्रुमादयः ॥ १९३ ॥ असौ हालाहलो ज्ञेयः किष्किन्धायां हिमालये ॥ दक्षिणाब्धितटे देशे कोङ्कणेऽपि च जायते ॥ १९४ ॥

अथ ब्रह्मपुत्रस्य स्वरूपम् ।

वर्णतः कपिलो यः स्यात्तथा भवति सारतः ॥ ब्रह्मपुत्रः स विज्ञेयो जायते मलयाचले ॥ १९५ ॥ ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेषु क्षत्त्रियो लोहितप्रभः ॥ वैश्यः पीतोऽसितः शूद्रो विष उक्तश्चतुर्विधः ॥ १९६ ॥ रसायने विषं विप्रं क्षत्त्रियं देहपुष्टये ॥ वैश्यं कुष्ठविनाशाय शूद्रं दद्याद्वधाय हि ॥ १९७ ॥ विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदावहम् १९८

व्यवायि सकलकायगुणव्यापनपूर्वकं पाकगमनशीलम् । विकाशि ओजःशोषणपूर्वकं सन्धिबन्धशिथिलीकरणशीलम् । आग्नेयम् अधिकाग्न्यम् । संयोगवाहि सङ्गिगुणग्राहकम् । मदावहं तमोगुणाधिक्येन बुद्धिविध्वंसकम् ॥

तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदायि रसायनम् ॥ योगवाहि त्रिदोषघ्नं बृंहणं वीर्यवर्धनम् ॥ १९९ ॥ ये दुर्गुणा विषेऽशुद्धे ते स्युर्हीना विशोधनात् ॥ तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ २०० ॥

नाम–विष, गरल, क्ष्वेड, (काकोल, दारद, सौराष्ट्रिक, शौक्लिकेय, ब्रह्मपुत्र, प्रदीपन, आहेय, अमृत, गरठ, कालकूट, कसाकुल, हारिद्र, रक्तशृंगिक, नील, गरघोर, हालाहल, हलाहल, शृंगी, भुगर, जांगल, तीक्ष्णरस, रसायन, जागुल, वत्सनाभ, जीवनाघात, किपल और प्राणहर ।) ये विषके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–वचनाग, विष–बं०–कर्कट विष । म०–बचनाग । गु०–विष । क०–वगनवी । तै०–नाभी । फा०–जहर । अ०–विष । इं०–पॉइझन Poisn ॥

भेद–वत्सनाभ, हारिद्र, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, शृंगिक, कालकूट, हालाहल और ब्रह्मपुत्र, ये नौ विषके भेद हैं ॥ १८३–१८४ ॥

वत्सनाभविषका स्वरूप–जिसके पत्ते सम्हालूके सदृश हों, आकृति वछडेकी नाभिके सदृश हो, जिसके समीप दूसरे वृक्षकी वृद्धि न होय, वह वत्सनाभ विष जानना १८५॥

हारिद्र विषका स्वरूप–जिसकी जड हल्दीके वृक्षकी सदृश हो, वह हारिद्र विष कहाहै ॥ १८६ ॥

सक्तुकविषका स्वरूप–जिसके गाठमे सत्तूके सदृश चूर्ण भराहुआ हो वह सक्तुक विष जानना ॥ १८७ ॥

प्रदीपनविषका स्वरूप–जो लाल वर्णवाला, दीप्त, अग्निके सदृश कांतिवाला और अत्यंत दाहकारक हो वह प्रदीपन विष कहाहै ॥ १८८ ॥

सौराष्ट्रिक विषका स्वरूप–जो सोरठ देशमे उत्पन्न होताहै वह सौराष्ट्रिक विष कहाहै ॥ १८९ ॥

शृंगिकविषका स्वरूप–जिसको गायके सींगमे बॉधनेसे दूध लाल होजाय उसको द्रव्यतत्त्व जाननेवालोंने शृंगिक (सींगिया) विष कहा है ॥ १९० ॥

कालकूट विषका स्वरूप–देवता और असुरोंके संग्राममे देवताओंने पृथुमालिन नामक एक दैत्यको मारा, उस दैत्यके रुधिरसे पीपलके सदृश एक वृक्ष उत्पन्न हुआ, उस वृक्षके गोंदको मुनियोने कालकूट विष कहा है । यह कालकूट अहिक्षेत्रमे, शृंगवेरमे कोंकणदेशमे और मलयाचलमे होताहै ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

हालाहलविषका स्वरूप–जिसके फल दाखोके गुच्छेके सदृश हों, तथा पत्ते तालवृक्षकी सदृश हो, और जिसके

तेजसे समीपके वृक्षादिक भस्म होजायँ, वह हालाहल विष जानना—यह हालाहल विष हिमालयमें, किष्किन्धामें, दक्षिण समुद्रके तटपर और कोकणदेशमें होताहै ॥१९३॥१९४

ब्रह्मपुत्रविषका स्वरूप—जिसका वर्ण पीला हो, वह ब्रह्मपुत्र विष जानना, यह मलयाचलमें होताहै ॥ १९५ ॥

लक्षण—जो विष, श्वेत वर्णवाला हो, वह ब्राह्मण जातिका, जो विष लाल कांतिवाला हो वह क्षत्रिय जातिका, जो विष पीले रंगवाला हो वह वैश्य जातिका और जो श्याम वर्णवाला हो वह शूद्र जातिका जानना। इस भाँति विष चार प्रकारका कहाहै ॥ १९६ ॥

प्रयोग—रसायनके काममें ब्राह्मण जातिके विषका, देहकी पुष्टिके कार्यमें क्षत्रिय जातिके विषका, कुष्ठरोग नष्ट करनेमें वैश्य जातिके विषका और वध करनेके कार्यमें शूद्र जातिके विषका, प्रयोग करना चाहिये ॥ १९७ ॥

गुण—विष—प्राणनाशक, व्यवायि (सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर पचनेवाला), विकाशि (ओजको सुखाकर सन्धिबधनोंको शिथिल करनेवाला), आग्नेय (अग्निके अधिक अंशयुक्त), योगवाही (साथीके गुणोंको करनेवाला), वात तथा कफनाशक और मदकारक है। जो इस विषको युक्तिके साथ उपयोग करै तौ प्राणदायक, रसायन, योगवाही, त्रिदोषनाशक, पुष्टिकारक और वीर्यवर्द्धक है ॥

अशुद्ध विषमें जो दुर्गुण रहते हैं वे शुद्ध करनेसे हीन होजातेहैं इसकारण औषधियोंके प्रयोगोमे विषको शुद्ध करके प्रयोग करै ॥ १९८—२०० ॥

अथ उपविषाणां निरूपणम्।

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लांगली करवीरकः॥ गुञ्जाऽहिफेनो धत्तूरःसप्तोपविषजातयः२०१ उपविषाणि गौणविषाणि। एषां गुणास्तत्रतत्र द्रष्टव्याः ॥

इति श्रीभावप्रकाशे धातूपधातुरसोपरस— रत्नोपरत्नविषोपविषवर्गः।

आकका दूध, थूहरका दूध, लागली (कलिहारी), कनेर, घुँघुची, अफीम और धतूरा, ये सात उपविष अर्थात् गौणविषकी जातिया हैं (इनके गुण वहाँ वहाँ देखने चाहिये) ॥ २०१ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीविनीटीकाया धातूपधातुरसोपरसरत्नोपरत्न- विषोपविषवर्ग. समाप्त.।

अथ धान्यवर्गः।

तत्र धान्यानां भेदाः।

शालिधान्यं व्रीहिधान्यं शूकधान्यं तृतीयकम् ॥ शिम्बीधान्यं क्षुद्रधान्यमित्युक्तं धान्यपञ्चकम् ॥ १ ॥ शालयो रक्तशाल्याद्या व्रीहयः षष्ठिकादयः ॥ यवादिकं शूकधान्यं मुद्गाद्यं शिम्बिधान्यकम् ॥ कंग्वादिकं क्षुद्रधान्यं तृणधान्यश्च तत्स्मृतम् ॥ २ ॥

शालिधान्य, व्रीहिधान्य, शूकधान्य, शिम्बीधान्य और क्षुद्रधान्य, इसभाँति धान्योके पाँच भेद है ॥ १ ॥

तहाँ लाल चावल आदि शालिधान्य, साठी आदि व्रीहिधान्य, यव आदि शूकधान्य, मूग आदि शिम्बीधान्य और कगुनी आदि क्षुद्रधान्य कहेहैं। क्षुद्रधान्यको तृणधान्य भी कहतेहै ॥ २ ॥

अथ शालिधान्यस्य लक्षणम्।

कण्डनेन विना शुक्ला हैमन्ताःशालयःस्मृताः३

जो चावल हेमन्तऋतुमे होतेहैं और भूसी रहित सफेद होतेहैं वे शालिधान्य जानने ॥ ३ ॥

अथ शालीनां [चावलोंके] नामानि।

रक्तशालिः सकलमः पाण्डुकः शकुनाहृतः॥ सुगन्धकः कर्दमको महाशालिश्च दूषकः ॥ ४ ॥ पुष्पाण्डकः पुण्डरीकस्तथा महिषमस्तकः ॥ दीर्घशूकः काञ्चनको हायनो लोध्रपुष्पकः ॥ ५ ॥ इत्याद्याः शालयः सन्ति बहवो बहुदेशजाः ॥ ग्रन्थविस्तरभीतेस्ताः समस्ता नात्र भाषिताः ॥ ६ ॥

रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कर्दमक, महाशालि, दूपक पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, काचनक, हायन और लोध्रपुष्पक, इत्यादि अनेक प्रकारके बहुत देशोंमे उत्पन्न होनेवाले शालिधान्य होतेहै. यहां ग्रन्थ बढजानेके भयसे सम्पूर्ण नहीं कहेहैं ॥

हिन्दी—धान, शालिधान, चावल, । ब—शालिधान्य चाउल। म०—साळी, भात, तांदूळ। गु०—शालि चोखा। क०—नेलु। तै०—धान्यमु। फा०—विरज। अं०—उरन।

इं०-राइस् Rice लै०-ओरिझा सेटाई वा Oryza Sativa ॥ ४-६ ॥

अथ शालीनां गुणाः ।

शालयो मधुराः स्निग्धा बल्या बद्धाल्पवर्चसः ॥ कषाया लघवो रुच्याः स्वर्या वृष्याश्च बृंहणाः ॥ ७ ॥ अल्पानिलकफाः शीताः पित्तघ्ना मूत्रलास्तथा ॥ शालयो दग्धमृज्जाताः कषाया लघुपाकिनः ॥ ८ ॥ सृष्टमूत्रपुरीषाश्च रूक्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥ कैदारा वातपित्तघ्ना गुरवः कफशुक्रलाः ॥ कषायाश्चाल्पवर्चस्का मेध्याश्चैव बलावहाः ॥ ९ ॥

कैदाराः कृष्टक्षेत्रजाः उप्ताः ॥

स्थलजाः स्वादवः पित्तकफघ्ना वातपित्तदाः ॥ किञ्चित्तिक्ताः कषायाश्च विपाके कटुका अपि ॥ १० ॥

स्थलजाः अकृष्टभूमिजाताः स्वयं जाताः ॥

वापिता मधुरा वृष्या बल्याः पित्तप्रणाशनाः ॥ श्लेष्मलाश्चाल्पवर्चस्काः कषाया गुरवो हिमाः ॥ ११ ॥

वापिताः कृष्टक्षेत्रे अकृष्टक्षेत्रे च ॥

वापितेभ्यो गुणैः किञ्चिद्धीनाः प्रोक्ता अवापिताः ॥ १२ ॥

कृष्टक्षेत्रे अकृष्टक्षेत्रे वा ॥

रोपितास्तु नवा वृष्याः पुराणा लघवः स्मृताः ॥ तेभ्यस्तु रोपिता भूयः शीघ्रपाका गुणाधिकाः ॥ १३ ॥ छिन्नरूढा हिमा रूक्षा बल्याः पित्तकफापहाः ॥ बद्धविट्काः कषायाश्च लघवश्चाल्पतिक्तकाः ॥ १४ ॥

शालिधान्य-मधुर, स्निग्ध, बलदायक, अल्पपरिमाण-बद्धमलको निकालनेवाले, कसैले, हलके, रुचिकारक, स्वरको उत्तम करनेवाले, वीर्यवर्द्धक, शरीरको पुष्ट करनेवाले, किञ्चित् वात तथा कफकारक, शीतल, पित्तकारक तथा मूत्रवर्द्धक हैं। जो चावल-जलीहुई मिट्टीसे उत्पन्न हुए हैं वे कसैले, पाकमें हलके, मलमूत्रको निकालनेवाले रूक्ष और कफशोधक हैं। जो चावल खेतमें बोनेसे उत्पन्न हों वे वातपित्तनाशक, भारी, कफ तथा वीर्यको बढानेवाले, कसैले, मेधाको हितकारी, बलदायक और अल्पमल लानेवाले हैं ॥ ७-९ ॥

जो चावल-विना जोती भोई पृथ्वीमें स्वयं उत्पन्न हुए हैं वे मधुर, पित्त तथा कफनाशक, वात तथा पित्तदायक, किञ्चित् चरपरे, कसैले और पाकमें चरपरे हैं ॥ १० ॥

कृष्टभूमिमें अथवा अकृष्ट भूमिमें बोनेसे उत्पन्न हुए चावल-मधुर, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, पित्तनाशक, कफवर्द्धक, अल्पमल निकालनेवाले, कसैले, भारी और शीतल हैं ॥ ११ ॥

बोनेसे उत्पन्न हुए चावलोंकी अपेक्षा विना बोये हुए चावलोंमें अल्प गुण कहे हैं, बोये हुए चावल नवीन होंय तो वीर्यवर्द्धक और जीर्ण होंय तो हलके हैं। उन्होंसे फिर बोये हुए शालिचावल शीघ्र पकनेवाले और गुणोंमें अधिक हैं। जो चावल काटने पश्चात् ऊगेहुए होंय वे शीतल रूखे, बलकारक, पित्त तथा कफनाशक, मलरोधक, कसैले, हलके और किञ्चित् मात्र रूखे हैं १२-१४

अथ रक्तशालेर्गुणाः ।

रक्तशालिर्वरस्तेषु बल्यो वर्ण्यस्त्रिदोषजित् ॥ चक्षुष्यो मूत्रलः स्वर्यः शुक्रलस्तृड्ज्वरापहः ॥ १५ ॥ विषव्रणश्वासकासदाहनुद्वह्निपुष्टिदः ॥ तस्मादल्पान्तरगुणाः शालयो महदादयः ॥ १६ ॥

रक्तशालिः 'दादखानी' इति लोके मगधदेशे प्रसिद्धः ॥

सम्पूर्ण धान्योंमे रक्तशालि-श्रेष्ठ, बलदायक, वर्णको उत्तम करनेवाले, त्रिदोषनाशक, नेत्रोंको हितकारी, मूत्रकारक, स्वरको उत्तम करनेवाले, वीर्यको बढानेवाले, अग्निप्रदीपक, पुष्टिकारक और तृषा, ज्वर, विष, व्रण, श्वास, खासी तथा दाहको नष्ट करनेवाले हैं। दूसरे महाशालि आदि चावल इन रक्तशालियोंकी अपेक्षा अल्प गुणवाले हैं (दादखानीचावल मगधदेशमें प्रसिद्ध हैं) ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ व्रीहिधान्यस्य लक्षणं गुणाश्च ।

वार्षिकाः कण्डिताः शुक्ला व्रीहयश्चिरपाकिनः॥कृष्णव्रीहिः पाटलश्च कुक्कुटाण्डक इत्यपि ॥ १७ ॥ शालामुखो जतुमुख इत्याद्या व्रीहयः स्मृताः॥ कृष्णव्रीहिः स विज्ञेयो यत्कृष्णतुषतण्डुलः ॥ १८ ॥ पाटलः पाटलापुष्पवर्णको व्रीहिरुच्यते ॥ कुक्कुटाण्डाकृतिर्व्रीहिः कुक्कुटाण्डक उच्यते ॥१९॥ शालामुखः कृष्णशूकः कृष्णतण्डुल उच्यते॥लाक्षावर्णं मुखं यस्य ज्ञेयो जतुमुखस्तु सः ॥२०॥ व्रीहयः कथिताः पाके मधुरा वीर्यतो हिमाः॥अल्पाभिष्यन्दिनो बद्धवर्चस्काः षष्टिकैः समाः॥कृष्णव्रीहिर्वरस्तेषां तस्मादल्पगुणाः परे ॥२१॥

जो चावल वर्षाऋतुमे पकतेहैं और छडनेसे सफेद होते हैं तथा देरमें पकते हैं वे व्रीहिधान्य कहातेहैं । कृष्णव्रीहि, पाटल, कुक्कुटाण्डक, शालामुख और जतुमुख इत्यादि व्रीहिधान्यके भेद हैं ॥

जिसकी भूसी और चावल कृष्णवर्ण होयँ वह कृष्णव्रीहि जानना, जिसका वर्ण पाटलपुष्पके सदृश हो उसको पाटल जानना, जिसकी आकृति मुरगेके अण्डेके सदृश हो उसको कुक्कुटाण्डक जानना, जिसका शूक (कांटा) और चावल काला हो उसको शालामुख जानना, जिसका मुख लाखके सदृश वर्णवाला हो उसको जतुमुख जानना ॥

गुण-सपूर्ण व्रीहिधान्य--पाकमे मधुर,वीर्यवाले, शीतल, अल्प अभिष्यन्दी, मलरोधक और साठीके समान हैं, इनमें कृष्णव्रीहि उत्तम है और सब इससे अल्प गुणवाले है ॥ १७-२१ ॥

अथ षष्टिकानां [सांठीके] लक्षणं गुणाश्च ।

गर्भस्था एव ये पाकं यान्ति ते षष्टिका मताः ॥ २२ ॥

षष्टिकानां नामानि ।

षष्टिकः शतपुष्पश्च प्रमोदकमुकुन्दकौ ॥ महाषष्टिक इत्याद्याः षष्टिकाः समुदाहृताः ॥ एतेऽपि व्रीहयः प्रोक्ता व्रीहिलक्षणदर्शनात् ॥ २३ ॥

जो गर्भमेही. अर्थात् बालमे ही पकजातेहै, उनका सांठी धान्य कहतेहैं ॥ २२ ॥

षष्टिक, शतपुष्प, प्रमोदक, मुकुन्दक और महाषष्टिक, इत्यादि साठीधान्यके भेद हैं. इनमे व्रीहिके लक्षण दीखते हैं इससे येभी व्रीहि कहेहैं ॥ २३ ॥

अथ षष्टिकाया गुणाः ।

षष्टिका मधुराः शीता लघवो बद्धवर्चसः॥ वातपित्तप्रशमनाः शालिभिः सदृशा गुणैः ॥ २४ ॥ षष्टिका प्रवरा तेषां लघ्वी स्निग्धा त्रिदोषजित ॥ स्वाद्वी मृद्वी ग्राहिणी च बलदा ज्वरहारिणी ॥ रक्तशालिगुणैस्तुल्या ततः स्वल्पगुणा परा॥२५॥

सॉठी चावल—शीतल, हलके, मलको बाधनेवाले, वात तथा पित्तको शात करनेवाले और शालिधान्यके सदृश गुणदायक हैं इन सबमें सांठीचावल उत्तम, हलके, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, मधुर, कोमल, ग्राही, बलदायक, ज्वरको नष्ट करनेवाले और रक्तशालिके सदृश गुणवाले हैं, इससे औरोंमें अल्प गुण है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ शूकधान्यानि ।

तत्र यवभेदः ।

यवस्तु सितशूकः स्यान्निःशूकोऽतियवः स्मृतः ॥ तोक्मस्तद्वत्स हरितस्ततःस्वल्पश्च कीर्त्तितः ॥ २६ ॥ यवः कषायो मधुरः शीतलो लेखनो मृदुः ॥ व्रणेषु तिलवत्पथ्यो रूक्षो मेधाग्निवर्द्धनः ॥२७॥ कटुपाकोऽनभिष्यन्दी स्वर्यो बलकरो गुरुः ॥ बहुवातमलो वर्णस्थैर्यकारी च पिच्छिलः ॥ २८ ॥ कण्ठत्वगामयश्लेष्मपित्तमेदःप्रणाशनः ॥ पीनसश्वासकासोरुस्तम्भलोहिततृट्प्रणुत् ॥ अस्मादतियवो न्यूनस्तोक्मो न्यूनतरस्ततः ॥ २९ ॥

जौ और गेहूँ ये शूक धान्योमें गिनेजाते हैं, यव, अतियव और तोक्म ये तीन जौकी जातिया है ॥

सफेद सुईवालेको जौ कहतेहैं. जो जौ शूक (सुई) रहित हो वे अतियव कहातेहै और जो हरे वर्णवाले तथा शूकरहित छोटे हो वे तोक्म कहातेहैं ॥

गुण—जौ—कसैले, मधुर, शीतल, लेखन, कोमल, व्रणरोगमें तिलके सदृश पथ्य, रूक्ष, बुद्धि तथा अग्निको वढानेवाले, पाकमें चरपरे, अभिष्यन्दी, स्वरको उत्तम करनेवाले, बलकारक, भारी, वात तथा मलको बहुत करनेवाले, वर्णको स्थिर करनेवाले पिच्छिल और कण्ठरोग, त्वचाके रोग, कफ, पित्त, मेद, पीनस, श्वास, खाँसी, ऊरुस्तम्भ, रुधिरविकार तथा तृषाको नष्ट करते हैं। जैसे अतियवमें अल्प गुण हैं और अतियवसे तोक्मम अल्प गुण हैं ॥ २६–२९ ॥

अथ गोधूमस्य [गेहूंके] नामानि लक्षणं गुणाश्च ।

गोधूमः सुमनोऽपि स्यात्त्रिविधः स च कीर्त्तितः ॥ महागोधूम इत्याख्यः पश्चादेशात्समागतः ॥ ३० ॥ मधूली तु ततः किञ्चिदल्पा सा मध्यदेशजा ॥ निश्शूको दीर्घगोधूमःक्वचिन्नन्दीमुखाभिधः ॥३१॥ गोधूमो मधुरःशीतो वातपित्तहरो गुरुः॥ कफशुक्रप्रदो बल्यः स्निग्धः सन्धानकृत्सरः॥ जीवनो बृंहणो वर्ण्यो व्रण्यो रुच्यः स्थिरत्वकृत् ॥ ३२ ॥

कफप्रदो नवीनः न तु पुराणः ॥

पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूलभाक् ॥ ३३ वाग्भटेन वसन्ते गृहीतत्वात् ॥

मधूली शीतला स्निग्धा पित्तघ्नी मधुरा लघुः ॥ शुक्रला बृंहणी पथ्या तद्वन्नन्दीमुखः स्मृतः ॥ ३४ ॥

गोधूम, सुमन, (बहुदुग्ध, अपूप, म्लेच्छभोजन, निस्तुष, क्षीरी, रसाल, गोधूम और सुमना) ये गेहूँके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—गेहू । बं०—गम । म०—गहू । गु०—घेऊं । क०—गोदी । तै०—गोदुमु । फा०—गदुम । अ०—हिता । इं०—हीट Wheat ल०—ट्रिटिक वल्गेरी Triticum Valgari ॥

लक्षण—गेहूँके तीन भेद है, जो गेहूँ पश्चिम मारवाड आदि देशमें आतेहैं, वे महागोधूम (बडे गेहूँ) कहातेहैं । इन गेहूँसे कुछ छोटे होतेहैं, वे मधूली कहातेहैं और वे मध्यप्रदेश मथुरा, दिल्ली, आगरा, आदिमें होतेहैं । जो गेहूँ शूकरहित होतेहैं, वे दीर्घगोधूम कहातेहैं और कहीं कहीं इनको नन्दीमुख भी कहते हैं ॥

गुण—गेहूँ—मधुर, शीतल, वात तथा पित्तनाशक, भारी, कफ तथा वीर्यवर्द्धक, बलदायक, स्निग्ध, सन्धानकारक, दस्तावर, जीवनरूप, पुष्टिकारक, वर्णको उत्तम करनेवाले व्रणको हितकारी, रुचिकारक और स्थिरता करनेवाले है ॥ ३०–३२ ॥

नये गेहूँ—कफकारक है, परन्तु पुराने गेहूँ कफकारक नहीं है, क्योंकि—वाग्भट कहतेहैं कि (वसन्तमें) "पुराने जौ, पुराने गेहूँ, मधु, जंगली जीवोंका मांस और शूलसे पकाया हुआ मांस खाना चाहिये" ॥ ३३ ॥

मधूली गेहूँ—शीतल, स्निग्ध, पित्तनाशक, मधुर, हलके, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिदायक और पथ्य हैं । नन्दीमुख गेहूँओंमें भी येही गुण है ॥ ३४ ॥

अथ शिम्बीधान्यम् ।

तत्रादौ तन्नामानि ।

शमीजाः शिम्बिजाः शिम्बीभवाः सूर्य्याश्च वैदलाः ॥ ३५ ॥

शमीज, शिम्बिज, शिम्बिभव, सूर्प और वैदल ये शिम्बीधान्यके संस्कृत नाम है ॥ ३५ ॥

शिम्बीधान्यस्य च गुणाः ।

वैदला मधुरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः ॥ वातलाः कफपित्तघ्नबद्धमूत्रमला हिमाः॥ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारिणः ॥ ३६ ॥

मुद्गमसूरयोरनाध्मानकारित्वमन्यवैदलापेक्षया, न तु सर्वथा, एतयोरपि किञ्चिदाध्मानकारित्वात् ॥

शिम्बीधान्य—मधुर, रूक्ष, कसैले, पाकमें चरपरे वातकारक, कफ तथा पित्तनाशक, मूत्र तथा मलके बाधनेवाले, शीतल, और मूँग तथा मसूरको छोडकर आध्मानकारक हैं मूँग और मसूर ये अन्यशिम्बीधान्योंकी अपेक्षा अफारा नहीं करनेवाले हैं परन्तु सर्वथा अफारा नहीं करते, यह भी नहीं है किंचित् अफारा तो करैंही है ३६

अथ मुद्गस्य [मूँगके] गुणाः ।

मुद्गो रूक्षो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः॥ स्वादुरल्पानिलो नेत्र्यो ज्वरघ्नो वनज-

स्तथा ॥ ३७ ॥ मुद्गो बहुविधः श्यामो हरितः पीतकस्तथा ॥ श्वेतो रक्तश्च तेषान्तु पूर्वपूर्वो लघुः स्मृतः ॥ ३८ ॥ सुश्रुतेन पुनः प्रोक्तो हरितः प्रवरो गुणैः ॥ चरकादिभिरप्युक्त एष एव गुणाधिकः ३९॥

स०-मुद्ग। हिन्दी-मूँग। न०-मुग। म०-हिरवे काळे मूग। गु०-मग। क०-हेसरु। तै०-पेसलु। फा०-जुनुमाष। अ०-मज। इ०-ग्रीनग्रेन Green Grain लै०-फेसीओलस् मुगो Faseolus Mueog ॥

गुण-मूँग-रूखी, ग्राही, कफ तथा पित्तनाशक, शीतल, स्वादु, अल्प वातकारक, नेत्रोंको हितकारी, तथा ज्वरनाशक है ॥

मूँग-काली, हरी, पीली सफेद और लाल, इस भाँति अनेक प्रकारकी है. इनमे पीछेकी अपेक्षा पहिली २ में अधिक हल्कापन है। सुश्रुत तो हरी मूँगमे ही सर्वोत्तम गुण कहते हैं और चरकादिक भी हरी मूँगमे ही अधिक गुण कहते है ॥ ३७-३९ ॥

अथ माषः [उरद] ।

माषो गुरुः स्वादुपाकः स्निग्धो रुच्योऽनिलापहः ॥ स्रंसनस्तर्पणो बल्यः शुक्रलो बृंहणः परः ॥ ४० ॥ भिन्नमूत्रमलः स्तन्यो मेदःपित्तकफप्रदः ॥ गुदकीलार्दितश्वासपंक्तिशूलानि नाशयेत्॥४१॥कफपित्तकरा माषाः कफपित्तकरं दधि ॥ कफपित्तकरा मत्स्या वृन्ताकं कफपित्तकृत् ॥ ४२ ॥

स०-माष। हिन्दी-उडद, उरद। ब०-माष, कलाय म०-उडिद। गु०-अडद। क०-उड्डु। तै०-मिनुडलु। फा०-माष। अ०-मापा। इ०-किडनीवीन Kidney-bean लै०-फेसी ओलस् रेडीरेटस् Phaseolus Rediatus ॥

गुण-उडद-भारी, पाकमें मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक, वातनाशक, स्रसन, तृप्तिकारक, बलदायक, वीर्यवर्द्धक, अत्यंत पुष्टिकारक, मल तथा मूत्रकी अधिक प्रवृत्ति करनेवाले, दुग्धवर्द्धक, मेद, कफ तथा पित्तकारक और गुदकील (बवासीर), अर्दितवात, श्वास और पक्तिशूलनाशक हैं ॥ उडद, दही, मछली और बैगन, ये चारो कफ पित्तको बढानेवाले हैं ॥ ४०-४२ ॥

अथ राजमाषाः ।

[बेरातरा लोबिया आदिभेद] ।

राजमाषो महामाषश्चपलश्चबलः स्मृतः ॥ राजमाषो गुरुः स्वादुस्तुवरस्तर्पणः सरः ॥ ४३ ॥ रूक्षो वातकरो रुच्यः स्तन्यो भूरिबलप्रदः ॥ श्वेतो रक्तस्तथा कृष्णस्त्रिविधः स प्रकीर्तितः ॥ यो महांस्तेषु भवति स एवोक्तो गुणाधिकः ॥ ४४ ॥

राजमाष, महामाष, चपल, चबल, (बर्बट, मरुत्कर, द्विजसप्त, नीलमाष, नृपमाष, नृपोचित, सितमाष, दीर्घबीज, निष्पाव, राजमाषक, सुकुमार, दीर्घशिम्बी और क्षुधाभिजनक) ये लोबियेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-लोबिया। ब०-बरबटी कलाय। म०-चवलया। गु०चोला। क०-बरबटा। फा०-लोबिया। अ०-फरीका। इ०-चाइनिज डोलिकोस् Chinese Dolicas लै०-डोलिकोस् सिनेन्सिस् Dolichos Sinensis. ॥

गुण-लोबिया-भारी, मधुर, कसैला, तृप्तिदायक, दस्तावर, रूक्ष, वातकारक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, दुग्धवर्द्धक और अत्यन्त बलदायक हैं ॥

लोबिया-श्वेत, लाल तथा काला, इस भाँति तीन प्रकारका हैं. इनमे जो बडा होताहै, उसमें अधिक गुण होते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अथ निष्पावः [भटवाँसु] ।

निष्पावो राजशिम्बिः स्याद्वल्लकः श्वेतशिम्बिकः ॥ निष्पावो मधुरो रूक्षो विपाकेऽम्लो गुरुः सरः ॥ ४५॥ कपायः स्तन्यपित्तास्रमूत्रवातविबन्धकृत् ॥ विदाह्युष्णो विषश्लेष्मशोथहृच्छुक्रनाशनः ॥ ४६ ॥

निष्पाव, राजशिंबि, वल्लक और श्वेतशिंबिक, ये निष्पावके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-निष्पाव, भटवाँसु। राजशिम्बीके बीज। ब०-राजशिम्बीबीज, भेटरासु। म०-पावटे। गु०-ओलिया वाल। क०-आवरे। तै०-अनपचेट्टु। लै०-लेबलेब वलगेरीस् Lablab valgris ॥

गुण-निष्पाव-मधुर, रूक्ष, पाकमे अम्ल, भारी, दस्तावर, कसैला, दुग्धवर्द्धक, और पित्त, रुधिर, मूत्र, वात

तथा अफाराकारक है, विदाही, गरम, विष, कफ, शोथ, और वीर्यनाशक है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ वनमुद्गः [मोठ] ।

मकुष्ठो वनमुद्गः स्यान्मकुष्ठकमुकुष्ठकौ॥मकुष्ठो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः ॥ वह्निजिन्मधुरः पाके क्रिमिकृज्ज्वरनाशनः ॥

मकुष्ठ,वनमुद्ग, मकुष्ठक, मुकुष्ठक, (कृमीलक, अमृत, अरण्यमुद्ग, वल्लीमुद्ग, मुकुष्ठ, मयष्ठ, राजमुद्ग, वरक, निगूढक, कुलीनक, खण्डी, मुद्गष्ठक, मुद्गष्ट, मयष्टक, मयूष्ट, मयक, मयुष्टक और मयुष्ट) ये मोठके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मोठ, । व०-वनमूग । म० -मटक्या । गु०-मठ । क०-मुगहेसरुभेद । तै०-ककपे सालु । फा०-माष हिंदी । इ०-एकोनीटेलिव्ड किडनीविन Aconite Leaved Kidneybean लै०-फ्रेसी ओलस् Phrseolus ॥

गुण-मोठ-वातकारक, ग्राही, कफ तथा पित्तनाशक, हलकी, अग्निको जीतनेवाली, पाकमें मधुर, कृमिकारक, और ज्वरको नष्ट करै है ॥ ४७ ॥

अथ मसूरः ।

मंगल्यको मसूरः स्यान्मङ्गल्या च मसूरिका ॥ मसूरो मधुरः पाके संग्राही शीतलो लघुः ॥ कफपित्तास्रजिद्रूक्षो वातलो ज्वरनाशनः ॥ ४८ ॥

मगल्यक, मसूर, मगल्या, मसूरिका, (रागदालि, मंगल्य, पृथुबीजक, सूर, कल्याणबीज, गुरुबीज, मसूरक, ब्रीहिकाचन, गमोलिक, ताम्बूलराग, हालासक, मसुरा, मसूरा, और मागल्या) ये मसूरके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मसूर । व०-मुसूरि कलाय । म०-मसूरा । गु०-मसुर । क०-चन्नगी । तै०-मसूरपप्पु । ता०-मिसुर । फा०-बुनोसुर्ख । अ०-अदस् । इ०-लेंटिल Lentil लै०-ईरवेलेन्स Ervaylens ॥

गुण-मसूर-पाकमें मधुर, ग्राही, शीतल, हलकी, रूक्ष, वातकारक, कफ, पित्त, रक्तविकार तथा ज्वरनाशक है ॥ ४८ ॥

अथ आढकी [अरहर] ।

आढकी तुवरी चापि सा प्रोक्ता शणपुष्पिका ॥ आढकी तुवरा रूक्षा मधुरा शीतला लघुः॥ग्राहिणी वातजननी वर्ण्या पित्तकफास्रजित् ॥ ४९ ॥

आढकी, तुवरी, शणपुष्पिका, (वर्या, मृत्ताल, मृत्तालक, काक्षी, करवीरभुजा, वृत्तबीजा, सुराष्ट्रजा, पीतपुष्पा, मृत्स्ना, तुवरिका,) ये अरहरके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-अरहर, अडहर । व०-अडहर, आढ़रि । म० तुरी । क०तोगरी । तै०-कादुलु । गु०-तुवर । फा०-शाखुल । इ०-पीजीअन्पी Pigeon Pea लै०-केजेनस् इंडिकस् Cajanus Indicus ॥

गुण-अरहर-कसैली, रूखी, मधुर, शीतल, हलकी, ग्राही, वातको उत्पन्न करनेवाली, वर्णको उत्तम करनेवाली, और पित्त तथा रक्तविकार नाशक है ॥ ४९ ॥

अथ चणकः [चना] ।

चणको हरिमन्थः स्यात्सकलप्रिय इत्यपि॥ चणकः शीतलो रूक्षः पित्तरक्तकफापहः॥ ॥ ५० ॥ लघुः कषायो विष्टम्भी वातलो ज्वरनाशनः ॥ स चांगारेण सम्भृष्टस्तैलभृष्टश्च तद्गुणः ॥ ५१ ॥ आर्द्रभृष्टो बलकरो रोचनश्च प्रकीर्त्तितः॥ शुष्कभृष्टोऽतिरूक्षश्च वातकुष्ठप्रकोपणः ॥ ५२ ॥ स्विन्नः पित्तकफौ हन्यात्सूपः क्षोभकरो मतः ॥ आर्द्रोऽतिकोमलो रुच्यः पित्तशुक्रहरो हिमः ॥ कषायो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः ॥ ५३ ॥

चणक, हरिमन्थ, सकलप्रिय, (वाजिमन्थ जीवन, हरिमन्थक, हरिमन्थज, चण, सुगन्ध, कृष्णचञ्चुक, बालभोज्य, वाजिभक्ष्य, कञ्चुकी और बालभैषज्य) ये चनेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-चने, चना, छोला । व०-छोलारगाछ । म०-हरभरे, चणे । गु०-चणा, क०-कडुले । तै०-शनिगालु फा०-नरवूद । अ०-हुमस् । इ०-ग्रॉम Gram लै०-सीसर एरिएटिन Cicer Arietinum ॥

गुण, चने-शीतल, रूखे, हलके, कसैले, विष्टम्भी, वातकारक, और पित्त, रुधिर, कफ तथा ज्वर नाशक हैं ॥ अग्निसे अथवा तेलमें भुने हुए चने भी येही गुणकारक हैं । गीले भुनेहुए चने-बलदायक और रुचिकारक है। सूके भुनेहुए चने-अत्यत रूक्ष और वात तथा कुष्ठको कुपित

करनेवाले हैं। उसीजे हुए चने पित्त तथा कफको नष्ट करै हैं। चनेकी रॉधीहुई दाल क्षोभकारक है। गीले चने-कोमल, रुचिकारक, पित्त तथा वीर्यनाशक, शीतल, कसैले, वातकारक, ग्राही, हलके और कफपित्तविनाशक हैं॥ ५०-५३॥

अथ कलायः [मटर]।

कलायो वर्त्तुलः प्रोक्तः सतीनश्च हरेणुकः॥ कलायो मधुरः स्वादुः पाके रूक्षश्च शीतलः॥ ५४॥

कलाय, वर्त्तुल, सतीन, हरेणुक, (मुण्डचणक, हरेणुक, रेणुक, सतीनक, खण्डिक, त्रिपुट, अतिवर्तुल, शमन, नीलक, कटी, सतील, सतीन और सतीनक) ये मटरके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-मटर, केराव। व०-वॉटुला मटर। म०-चाटाणे। गु०-वटाणा। क०वट्टकडले। तै०-पेद्दुर्व। इं०-फील्डपी Fieldpea लै०-पाईसम् सेटाइवम् Pisum Sativum॥

गुण-मटर-मधुर, पाकमें भी मधुर और शीतल हैं॥ ५४॥

अथ त्रिपुटः [खेसारी]।

त्रिपुटः खण्डिकोऽपि स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ त्रिपुटो मधुरस्तिक्तस्तुवरो रूक्षणो भृशम्॥ ५५॥ कफपित्तहरो रुच्यो ग्राहकः शीतलस्तथा॥ किन्तु खञ्जत्वपंगुत्वकारी वातातिकोपनः॥ ५६॥

त्रिपुट और खण्डिक, ये खेसारीके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-खेसारी, कस्सा। व०-खेसारि कलाय। म०-लांग। गु०-मकाई। तै०-लाक। फा०-मासग। अ०-हबुलवकर। इ०-चिकिलिगवेच Chickling Vetch लै०-लेथिरस सेलिवस् Lathyrus Salivus॥

गुण-खेसारी-मधुर, कडवी, कसैली, रूक्ष, कफ तथा पित्तनाशक, रुचिकारी, ग्राही, शीतल और खजा तथा लगडा करती है, तथा वातको अत्यत कुपित करनेवाली है॥ ५५॥ ५६॥

अथ कुलत्थः [कुलथी]।

कुलत्थिका कुलत्थश्च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ कुलत्थः कटुकः पाके कषायः पित्तरक्तकृत्॥ ५७॥ लघुर्विदाही वीर्योष्णः श्वासकासकफानिलान्॥ हन्ति हिक्काश्मरीशुक्रदाहानाहान्सपीनसान्॥ स्वेदसंग्राहको मेदोज्वरक्रिमिहरः परः॥ ५८॥

कुलत्थिका, कुलत्थ, (कुलित्थ, ताम्रबीज, श्वेतबीज, सितेतर, कालवृन्त, ताम्रवृक्ष, ताम्रवृन्त और ताम्रबीज) ये कुलथीके सस्कृत नाम हैं।

हिन्दी-कुलथी। व०-कुलथी, कलाय। म०-कुलीत्त। गु०-कलथी। क०-हुलुवलेतीसी। तै०-बुलवुल। फा०-किल्लत। अ०-हबुलकिलत। इ०-टुफ्लावर्ड डोलीकोस् Twoflowered Dolicos लै०-डोलीकोस् वाईफ्लोरस् Dolicus Biflosos॥

गुण-कुलथी-पाकमें चरपरी, कसैली, पित्त तथा रुधिरविकारकारक, हलकी, दाहकारक, उष्णवीर्य, पसीना रोकनेवाली और श्वास, खॉसी, कफ, वात, हिचकी, पथरी, वीर्य, दाह, अफारा, पीनस, मेद, ज्वर तथा कृमिको नष्ट करैहै॥ ५७॥ ५८॥

अथ तिलः।

तिलः कृष्णः सितो रक्तः स वन्योऽल्पतिलः स्मृतः॥ तिलो रसे कटुस्तिक्तो मधुरस्तुवरो गुरुः॥ ५९॥ विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफपित्तनुत्[1]। बल्यः केश्यो हिमस्पर्शस्त्वच्यः स्तन्यो व्रणे हितः॥ ६०॥ दन्त्योऽल्पमूत्रकृद्ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः॥ कृष्णः श्रेष्ठतमस्तेषु शुक्लो मध्यमः सितः॥ अन्ये हीनतराः प्रोक्तास्तज्ज्ञै रक्तादयस्तिलाः॥ ६१॥

तिल, (होमधान्य, पवित्र, पितृतर्पण, पापघ्न, पूतधान्य, जटिल, वनोद्भव, स्नेहफल, पूरफल और तैलफल) ये तिलके सस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-तिल, काले तिल। व०-तिलगाछ। म०-तीळ, काळेतीळ। गु०-तल। क०-एळु। तै०-नोवुलु ता०-वाल्लेनेय। फा०-कुजद। अ०-सिमसिम। इ०-

---

१ 'कफपित्तनुत्' इत्यत्र 'कफपित्तकृत्' इति वा पाठान्तरम्।

सिसेमस नाइजर सीड्स Sisamum Niger Seed-लै०-सिसेमस् इंडीकम् Sisamus Indicum ॥

लक्षण-सफेद, काले और लाल, इस भाँति तीन प्रकारके तिल होतेहैं। जो तिल वनमें होतेहैं, वे अरण्य-तिल कहातेहैं ॥

गुण-तिल-रसमें चरपरे, कडवे, मधुर, कसैले, भारी, पाकमें, चरपरे, स्वादिष्ट, स्निग्ध, कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाले, बलदायक, केशोंको उत्तम करनेवाले, स्पर्शमें शीतल, त्वचा (चमडीको) हितकारी, दुग्धवर्द्धक, व्रणरोगमें हितकारी, दाँतोंको उत्तम करनेवाले, मूत्रको अल्प करनेवाले, ग्राही, वातनाशक, अग्निको दीपन करनेवाले और बुद्धिवर्द्धक हैं ॥

काले तिल-सर्वोत्तम और वीर्यवर्द्धक हैं, सफेद तिल मध्यम हैं और लाल आदि तिल हीनगुणवाले हैं, ऐसा विद्वान् कहतेहैं ॥ ५९-६१ ॥

अथ अतसी [अलसी]।

अतसी नीलपुष्पी च पार्वती स्यादुमा क्षुमा ॥ अतसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटुर्गुरुः ॥ उष्णा दृक्छुक्रवातघ्नी कफपित्तविनाशिनी ॥ ६२ ॥

अतसी, नीलपुष्पी, पार्वती, उमा, क्षुमा, (पिच्छिला, दर्वी, मदगन्धा, मदोत्कटा, हैमवती, सुनीला, नीलपुष्पिका, चणका, क्षौमी, रुद्रपत्नी, सुवर्चला और मसृणा) ये अलसीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-गु०-अलसी। म०-अळशी, जवशी। बं०-मसिना, तिसी। क०-असगे। फा०-तुख्मेकतान। अ०-बजरुल कतान। तै०-मह्लपगसिचेट्टु। इं०-लीनसीड Linseed ल०-लीनीसेमीना Lini Semina ॥

गुण-अलसी-मधुर, कडवी, चिकनी, पाकमें चरपरी, भारी, गरम, दृष्टि-वीर्य-तथा वातनाशक और कफ तथा पित्तनाशक है ॥ ६२ ॥

अथ तुवरी [तौरी तोडिस]।

तुवरी ग्राहिणी प्रोक्ता लघ्वी कफविपास्रजित् ॥ तीक्ष्णोष्णा वह्निदा कण्डूकुष्ठकोष्ठक्रिमिप्रणुत् ॥ ६३ ॥

तुवरी-ग्राही, हलकी, तीक्ष्ण, गरम, अग्निकारक और कफ, विष, रुधिरविकार, खुजली, कोढ तथा कोठेकी कृमिको नष्ट करनेवाली हैं ॥ ६३ ॥

अथ सर्षपः।

[लाल सरसों और पीली सरसों]।

सर्षपः कटुकः स्नेहस्तुन्तुभश्च कदम्बकः ॥ गौरस्तु सर्षपः प्राज्ञैः सिद्धार्थ इति कथ्यते ॥६४॥ सर्षपस्तु रसे पाके कटुः स्निग्धः सतिक्तकः ॥ तीक्ष्णोष्णः कफवातघ्नो रक्तपित्ताग्निवर्धनः ॥६५॥ रक्षोहरो जयेत्कण्डूं कुष्ठकोष्ठक्रिमिग्रहान् ॥ यथा रक्तस्तथा गौरः किन्तु गौरो वरो मतः ॥ ६६ ॥

सर्षप,कटुक, स्नेह, तुन्तुभ, कदम्ब (भूतघ्न, रक्तिनाफल, उग्रगंध, अदम्भ, सरिषप, कदम्बक, विघट, कदम्ब, तन्तुक और राजक्षवक) ये सरसोंके संस्कृत नाम हैं ॥ सफेद सरसोंको विद्वान् सिद्धार्थ कहते हैं ॥

हिन्दी-सरसो। बं०-सरिषा, सर्ष। म० शिरस। गु०-सरसव। क०-बिलीयसासिव। तै०-पाच्चा अव्वालु। फा०-सर्षफ। अ०-उर्फ जवीयद। इं०-सिनापिस आल्बा Sinapsalba लै०-ब्रेसिका कैम्पेस्ट्रिस Brassica Cempestris ॥

गुण-सरसों-रसमें और पाकमें चरपरी, स्निग्ध,कडवी, तीक्ष्ण, गरम, कफ तथा वातनाशक, रुधिरपित्त तथा अग्निवर्द्धक, राक्षसबाधाको हरनेवाली और खुजली, कोढ, कोठेकी कृमि तथा ग्रहको नष्ट करै है। जो लाल सरसोंमें गुण हैं वह ही सफेद सरसोंमें है, परन्तु सफेद सरसों उत्तम होतीहै ॥ ६४-६६ ॥

अथ राजिका [राई कृष्णराई]।

राजी तु राजिका तीक्ष्णगन्धा क्षुज्जनिकासुरी ॥ क्षवः क्षुताभिजननः कृमिकः कृष्णसर्षपः ॥ ६७ ॥ राजिका कफपित्तघ्नी तीक्ष्णोष्णा रक्तपित्तकृत् ॥ किञ्चिद्रूक्षाग्निदा कण्डूकुष्ठकोष्ठक्रिमीन्हरेत्॥ अतितीक्ष्णा विशेषेण तद्वत्कृष्णापि राजिका ॥ ६८ ॥

राजी, राजिका, तीक्ष्णगंधा, क्षुज्जनिका, आसुरी, (कट्ठ, असुरी, काकोदुम्बरिका, रक्तिका, रक्तसर्षप, अतितीक्ष्णा, मधुरिक, वृक्षक, क्षुतक ज्वलन्ती और ज्वलत्प्रभा) ये राईके संस्कृत नाम हैं ॥

क्षव, क्षुताभिजनक, कृमिक, कृष्णसर्षप, (राजक्षवक, कृष्णा, तीक्ष्णफला, राजिका, राजी, राजसर्षप, कृष्णिका,

सूरी, मुष्टक, व्यष्टक, कटुक, और क्षुधाभिजनन) ये कृष्णराईके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–राई, कृष्णाराई । ब०–राइसर्षे, । कालसर्षे । म०–मोहरी, रायी । गु०–राई तथा कालीराई । क०–सासिराई । तै०–वर्णालु । अ०–खरदल । इं०–मस्टर्ड सीड्स Mustard Seed लै०–सिनापिस नाईग्रा Sinapis Nigia ॥

गुण–राई–कफ तथा पित्तनाशक, तीक्ष्ण, गरम, रक्तपित्तकारक, किञ्चित् रूक्ष, अग्निको दीपन करनेवाली और खुजली, कोढ तथा कोठेकी कृमि नाशक है. विशेष करके अत्यत तीक्ष्ण है. लाहीमे भी येही गुण है। (कृष्णराईको लाई कहते हैं) ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अथ क्षुद्रधान्यम् ।

क्षुद्रधान्यं कुधान्यं च तृणधान्यमिति स्मृतम् ॥ क्षुद्रधान्यमनुष्णं स्यात्कषायं लघु लेखनम् ॥ ६९ ॥ मधुरं कटुकं पाके रूक्षं च क्लेदशोषकम् ॥ वातकृद्बद्धविट्कं च पित्तरक्तकफापहम् ॥ ७० ॥

क्षुद्रधान्य, कुधान्य और तृणधान्य, ये क्षुद्रधान्यके संस्कृत नाम हैं ॥

गुण–क्षुद्रधान्य–गरम नहीं, कसैला, हलका लेखन, मधुर, पाकमे चरपरा, रूक्ष, क्लेद शोषक (गीलेपनको सुखानेवाला), वातकारक, मलको बाधनेवाला और पित्त, कफ तथा रक्तविकार नाशक है ॥ ६९–७० ॥

अथ कंगुः [कंगनी] ।

स्त्रियां कंगुप्रियंगू द्वे कृष्णा रक्ता सिता तथा ॥ पीता चतुर्विधा कंगुस्ताम्रा पीता वरा स्मृता ॥ ७१ ॥ कंगुस्तु भग्नसन्धानवातकृद् बृंहणी गुरुः ॥ रूक्षा श्लेष्महरा ऽतीव वाजिनां गुणकृद् भृशम् ॥ ७२ ॥

कंगु, प्रियगु, (प्रियगू, कगू, कगुका, कगुनिका, कगुनी, चीनक और पीततण्डुल ये कगनीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–कगनी, काकुनि । ब०–कांगुनी। म०–कांग। गु०–कांग । क०–नवणे । तै०–प्रेकणपुचेट्टु । फा०–गल । लै०–पेनिक मिलियेस्य Ponicum Miliaceum

कगनी–काली, लाल, सफेद और पीली इस भाति चार प्रकारकी हैं, इनमे पीली श्रेष्ठ है ॥

गुण–कगनी–भग्नसंधानकारक (टूटे हुये स्थानको जोडनेवाली), वातकर्त्ता, पुष्टिदायक, भारी, रूक्ष, अत्यंत कफनाशक और घोडोके लिये अत्यत हितकारी है ७१ ॥ ७२

अथ चीनाकः [चैना] ।

चीनाकः कंगुभेदोऽस्ति स ज्ञेयः कंगुवद्गुणैः ॥ ७३ ॥

चीनाक, (काककगु, सुश्लक्ष्ण और श्लक्ष्णक) ये चैनाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–चैना चीना । ब०–चिने । म०–राळे । गु०–चीणा । क०–चीनक । फा०–उरजन । अ०–वारेगा । इं०–मीलेट Millet ल०–पेनिकं मिलियेरी Panicum Miliari ॥

चैना भी कगनीका ही भेद है, इसमे कगनीके सदृश गुण हैं ॥ ७३ ॥

अथ श्यामाकः [समा] ।

श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः कफपित्तहृत् ॥ ७४ ॥

श्यामाक, (श्यामक, श्याम, त्रिवीज, अविप्रिय, सुकुमार, राजधान्य और तृणवीजोत्तम) ये समेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–समा, सावा । ब०–शामाधान । म०–सावे । गु०–सामो । क०–सवे । तै०–श्यामालु । फा०–शामाख लै०–पेनिकं फ्रुमेन्टेश्य Panicum Frumentaceum॥

गुण–समा–शोषणकर्त्ता, रूखा, वातकारक और कफ तथा पित्तनाशक है ॥ ७४ ॥

अथ कोद्रवः [कोदौ] ।

कोद्रवः कोरदूषः स्यादुद्दालो वनकोद्रवः॥ कोद्रवो वातलो ग्राही हिमः पित्तकफापहः ॥ उद्दालस्तु भवेदुष्णो ग्राही वातकरो भृशम् ॥ ७५ ॥

कोद्रव, कोरदूप, उद्दाल, वनकोद्रव (कुद्रव, कोरदूपक, कोरदुष्क, कोदार, कोद्दाल, कुद्दाल, मदनाग्रक, कोद्रव,) ये कोदोंके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कोदो । ब०–कोदोधान्य । म०–हरीक। गु०–कोदरो । क०–हारक । तै०–आलुवालु । अ०–कोद्र । इं०–पंकचर्डपासपेलं Punctured paspalum ॥

लै०-पासपेल स्कोबिक्युटेल्यम Paspalum Scrobiculatum ॥

गुण-कोदो-वातकारक, ग्राही, शीतल और पित्त तथा कफनाशक है । उद्दाल अर्थात् वनकोदो गरम, ग्राही और अत्यंत वातकारक है ॥ ७५ ॥

अथ चारुकः [सरबीज] ।

चारुकः सरबीजः स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ चारुको मधुरा रूक्षा रक्तपित्तकफापहः ॥ शीतलो लघुवृष्यश्च कषायो वातकोपनः ॥ ७६ ॥

सरपतेके बीजको चारुक कहते हैं ॥

चारुक-मधुर, रूखा, रुधिर, कफ, तथा पित्तनाशक, शीतल, हलका, वीर्यवर्द्धक, कसैला और वातको कुपित करनेवाला है ॥ ७६ ॥

अथ वंशयवा [बांसके बीज] ।

यवा वंशभवा रूक्षाः कषाया कटुपाकिनः ॥ बद्धमूत्राः कफघ्नाश्च वातपित्तकराः सराः ॥ ७७ ॥

बाससे उत्पन्न हुए यव, रूखे, कसले, पाकमें चरपरे, मूत्रको रोकनेवाले, कफनाशक, वात तथा पित्तको करनेवाले और दस्तावर है ॥ ७७ ॥

अथ कुसुम्भबीजम्[कसूमके बीज,कर्र] ।

कुसुम्भबीजं वरटा सैव प्रोक्ता वरट्टिका॥ वरटा मधुरा स्निग्धा रक्तपित्तकफापहा ॥ कषाया शीतला गुर्वी स्यादवृष्याऽनिलोपहा ॥ ७८ ॥

कसूमके बीजोंको वरटा और वरट्टिका कहते है ॥

हिन्दी-कर्र,करा।व०-कुसुमफल। म०-करडई । गु०-कसुम्बाना बीज।फा०-तुख्मकापगा । अ०-हबुल् अस्फरा ।

गुण-कर्र-मधुर, चिकनी, कसैली, शीतल, भारी, वीर्यवर्द्धक नही, और रक्तपित्त, कफ तथा वातविनाशक है ॥ ७८ ॥

अथ गवेधुका [गरहेडुआ] ।

गवेधुका तु विद्वद्भिर्गवेधुः कथिता स्त्रियाम् ॥ गवेधुः कटुका स्वाद्वी कार्श्यकृत्कफनाशिनी ॥ ७९ ॥

गवेधुका, गवेधु, (गवेडु, गवेडुका, कुन्त, क्षुद्रा, गोजिह्वा और गुन्द्रगुन्य) ये गरहेडुएके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-गरहेडुआ । म०-कसरू । गु०-घेगा ॥

गुण-गरहेडुआ-चरपरा, मधुर, कृशताकारक, और कफको नष्ट करनेवाला है ॥ ७९ ॥

अथ नीवारः [तीनी] ।

प्रसाधिका तु नीवारस्तृणान्नमिति च स्मृतम् ॥ नीवारः शीतलो ग्राही पित्तघ्नः कफवातकृत् ॥ ८० ॥

प्रसाधिका, नीवार, तृणान्न, (अरण्यधान्य, मुनिधान्य, तृणोद्भव, तृणधान्य, वनव्रीहि और अरण्यशालि) ये तीनोंके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-तीनी, नीवार । व०-उड़ीधान्य । म०-देवभात । गु०-नानची । क०-जग्हुमेरे । तै०-निवरिचेट्टु ।

लै०-पेनिक इटालिक Panicum Italicum ॥

गुण-तीनी-शीतल, ग्राही, पित्तनाशक और कफ तथा वातको करनेवाली है ॥ ८० ॥

अथ यावनालः [पनेरा, जुआर] ।

यावनालो हिमः स्वादुर्लोहितः श्लेष्मपित्तजित् ॥ अवृष्यस्तुवरो रूक्षः क्लेदकृत्कथितो लघुः ॥ ८१ ॥

हिन्दी-पनेरा, जुआर । म०-जोंधळे, ज्वारी ।

यावनाल (पनेरा)-शीतल और रक्तविकार, कफ पित्तको नष्ट करे है, पुष्टिवर्द्धक नही, कसेला, रूक्ष, ग्लानिकारक और हलका है ॥ ८१ ॥

परिभाषा ।

धान्यं सर्व नवं स्वादु गुरु श्लेष्मकरं स्मृतम्॥ तत्तु वर्षोषितं पथ्यं यतो लघुतरं हितम् ॥ ८२ ॥ वर्षोषितं सर्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति॥ न तु त्यजति वीर्यं स्वं क्रमान्मुञ्चत्यतः परम् ॥ ८३ ॥ एतेषु यवगोधूमतिलमाषा नवा हिताः ॥ पुराणा विरसा रूक्षा न तथा गुणकारिणः ॥ ८४ ॥

पुराणा वर्षद्वयादुपरि स्थिताः । यवादयो नवाः स्वस्थानं प्रति हिताः । पथ्याशिनां तु पुराणा हिताः ॥

"पुराणयवगोधूमक्षौद्रजांगलशूल्यभुक् ।" इति वसन्ते वाग्भटेन उक्तत्वात् ॥

इति श्रीभावप्रकाशे धान्यवर्गः ।

सम्पूर्ण नवीन धान्य-मधुर, भारी और कफकारक होतेहैं। एक वर्षके प्राचीन होयँ तौ-अत्यन्त हलके, पथ्य और हितकारी है। एक वर्षके पश्चात् सम्पूर्ण धान्य-भारीपन छोडदेते हैं, परन्तु अपने वीर्यको नही छोडते और पश्चात् अनुक्रमसे शक्तिको भी छोडते जातेहैं। धान्योमें-जौ, गेहूँ, तिल और उडद, ये नवीन उत्तम और हितकारी हैं। पुराने होनेसे रसरहित, और रूक्ष होजानेसे गुणकारक नही होतेहैं (इस स्थानमें 'प्राचीन' दो वर्षसे अधिक रहे हुओंको जानना) नवीन जौआदि धान्य स्वस्थ शरीरवालोंको हितकारी हैं, परन्तु पथ्य-भोजन करनेवालोंको प्राचीन ही हितकारी हैं, क्योंकि वाग्भटमे कहाहै कि-"वसन्तऋतुमे प्राचीन जौ, प्राचीन गेहूँ, जगली पशुओंका मास, और लोहसे पका हुआ मांस खाना चाहिये ॥ ८२-८४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पचमप्रकरणे शालिग्राम-
वैद्यकृतवैद्यसजीविनीटीकाया
धान्यवर्गः समाप्तः।

अथ शाकवर्गः।

तत्र शाकनिरूपणम्।

पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा॥ शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरु विद्याद्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

पत्ते, फूल, फल, नाल (डडी), कद और सस्वेदज, इस भाँति छः प्रकारके शाक कहेहैं। इनमें पहिले पहिलेकी अपेक्षा दूसरा भारी है ॥ १ ॥

अथ शाकानां गुणाः।

प्रायः शाकानि सर्वाणि विष्टम्भीनि गुरूणि च ॥ रूक्षाणि बहुवर्चांसि सृष्टविण्मारुतानि च ॥ २ ॥ शाकं भिनत्ति वपुरस्थि निहन्ति नेत्रं वर्णं विनाशयति रक्तमथापि शुक्रम् ॥ प्रज्ञाक्षयं च कुरुते पलितं च नूनं हन्ति स्मृतिं गतिमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३ ॥ शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगास्ते हेतवो देहविनाशनाय ॥ तस्माद्बुधः शाकविवर्जनं तु कुर्यात्तथाम्लेषु स एव दोषः ॥ ४ ॥

एतानि शाकनिन्दकानि वचनानि सामान्यानि। अथ शाकेषु विशिष्टानि वचनानि।

प्रायः सम्पूर्ण शाक-विष्टम्भी, भारी, रूक्ष, मलको अधिक करनेवाले, मल तथा वातनिःसारक हैं ॥

शाक-शरीरकी हड्डियोंको भेदनेवाला, नेत्रोंको नष्ट करनेवाला, वर्ण-रुधिर-तथा वीर्यनाशक, बुद्धिका क्षयकर्त्ता, केशोंको सफेद करनेवाला और स्मृति (स्मरणशक्ति) तथा गतिको नष्ट करैहै ऐसा विद्वान् कहतेहैं। सम्पूर्ण शाकोंमें रोग रहतेहैं और वे रोग देहको नष्ट करनेमे हेतु हैं इस कारण बुधजन सर्वदा शाकोंको छोडदेतेहै, जो शाकमें दोष है, वही दोष अम्ल (खट्टे) पदार्थोंमे हैं। (यह शाककी निन्दा करनेवाले सामान्य वचन हैं, इनमें जो विशेष वचन हैं वे नीचे जानने)॥ २-४॥

अथ पत्रशाकानि।

वास्तूकद्वयस्य [दोनो बथुओंके] नामानि गुणाश्च।

वास्तूकं वास्तुकं च स्यात्क्षारपत्रं च शाकराट्॥ तदेव तु बृहत्पत्रं रक्तं स्याद्गौडवास्तुकम् ॥ ५ ॥ प्रायशो यवमध्ये स्याद्यवशाकमतः स्मृतम् ॥ वास्तूकद्वितयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम् ॥६॥ दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलप्रदम्॥सरं प्लीहास्रपित्तार्शःकृमिदोषत्रयापहम् ॥ ७ ॥

वास्तूक, वास्तुक, क्षारपत्र, शाकराट्, (पांशुपत्र, शाकश्रेष्ठ, शाकवीर, ककोल्ल, घनाघन, वास्तु, वसुक, हिलमोचिका, शाकराज, राजशाक और चक्रवर्ती) ये बथुएके सस्कृत नाम हैं ॥

बडे पत्तोवाला जो बथुआ होता है उसको गौडवास्तुक कहते है, इसके सस्कृत नाम-गौडवास्तुक, (चिल्ली, चिल्लिका, तुनी, अग्रलोहिता, क्षारदला, मृदुपत्री, क्षारपत्रा, वास्तकी, महद्दला, और गौडवास्तु) ॥

हिन्दी-बथुआ, चिल्ली, बडाबथुआ। ब०-वेतुया, वेतोशाक। म०-चाकवत, चिखिल। गु०-बथवो और

बायरी, चीली । क०–चक्रवती, विलीपचिल्लींके । फा०–मुसलेमा, सरमक । अ०–कतफ । इ०–व्हाइट गुजफुट white goose foot परपल गुजफुट Purple goose foot लै०–केनापाड्य आल्व Chenapadum Album केना पाड्य एट्रिप्लीसीस् Chenapadum Atripolisis ॥

बथुआ–अधिक करके जौंके खेतमें होताहै इस कारण यवशाक भी कहते हैं ॥

गुण–दोनो प्रकारका बथुआ–मधुर, खारी, पाकमें चरपरा, अग्निको दीपन करनेवाला पाचक, रुचिकारक, हलका. दस्तावर और प्लीहा, रक्तपित्त, बवासीर, कृमि और त्रिदोपनाशक है ॥ ५–७ ॥

अथ पोतकी [पोई] ।

पोतक्युपोदिका सा तु मालवाऽमृतवल्लरी॥पोतकी शीतला स्निग्धा श्लेष्मला वातपित्तनुत् ॥८॥ अकण्ठ्या पिच्छिला निद्राशुक्रदा रक्तपित्तजित्॥बलदा रुचिकृत्पथ्या बृंहणी तृप्तिकारिणी ॥ ९ ॥

पोतकी, उपोदिका, मालवा, अमृतवल्लरी, (कलम्बी, पिच्छिला, पिच्छिलच्छदा, मोहिनी, मदशाक, विशाला, बल्पिोदकी, उनोदीका, उपोती, वृश्चिकप्रिया, अपोदिका, पूतिका और पृतिका ये पोईके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–पोईका साग । ब०–पुईशाक । म०–मयाल। गु०–पोथी।इ०–रेडमलबार नाइट शोड्स Redmalabar Night Shods लै०–बसेलारुब्रा Bassella Rubra बसेला आल्वा Bassella Alba ॥

गुण–पोई–शीतल, स्निग्ध कफकारक, वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाली कण्ठको अहितकारी, पिच्छिल, निद्रादायक, वीर्यवर्द्धक, रक्तपित्तनाशक, बलदायक, रुचिकारी, पथ्य, पुष्टिदायक और तृप्तिदायक है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ मारिषः [सफेद व लाल मरसा] ।

मारिषो बाष्पको मार्षः श्वेतो रक्तश्च स स्मृतः॥ मारिषो मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुद् गुरुः ॥ १० ॥ वातश्लेष्मकरो रक्तपित्तनुद्विषमाग्निजित्॥रक्तमार्षो गुरुर्नाति सक्षारो मधुरः सरः ॥ श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः ॥११॥

मारिष, बाष्पक और मार्ष, ये सफेद और लाल मरसेके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–सफेद मरसा, लालमरसा, नवडा । ब०–काटा नटेशाक । म०–गोकळ्याची भाजी, माठाची भाजी । गु०–डांभो । तै०–डुगलकुरा । लै०–एमेरेंथस ट्रिकलर Amaranthus Tricalar ॥

सफेद मरसा–मधुर, शीतल, विष्टम्भी, पित्तनाशक. भारी, वात तथा कफकारक, रक्तपित्तनाशक और अग्निकी विषमताको भी नष्ट करैहै ॥

लाल मरसा–बहुत भारी नहीं, खारयुक्त, दस्तावर, कफकारक, पाकमें चरपरा और अल्प दोषवाला है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ तण्डुलीयः [चौलाई] ।

तण्डुलीयो मेघनादः काण्डेरस्तण्डुलेरकः ॥ भण्डीरस्तण्डुलीबीजो विषघ्नश्चाल्पमारिषः ॥ १२ ॥ तण्डुलीयो लघुः शीतो रूक्षः पित्तकफास्रजित् ॥ सृष्टमूत्रमलो रुच्यो दीपनो विषहारकः ॥ १३ ॥

तण्डुलीय, मेघनाद, काण्डेर, तण्डुलेरक, भण्डीर, तण्डुलीबीज, विषघ्न, अल्पमारिष, (तण्डूलीयक, तण्डुल, तण्डुलीक तण्डुलीयक, ग्रंथिल, बहुवीर्य, घनस्वन, सुशाक, पथ्यशाक, स्फूर्जथु, स्तनिताहय, वीर और तण्डुलनामा) ये चौलाईके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–चौलाईका शाक । ब०–कुडेनटे । म०–तांदुळजा । गु०–तांदलजानी भाजी । क०किरुकुशाले । तै०–मोलाकुरा । ता०–मुल्लुक्किरई । फा०–सफेदमर्ज । अ०–बुकलेय मानीया । इ०–हरमेफ्रोडाइट एमेरेंथ Hermaphrodite Amaranth लै०–एमेरेंथस टेन्युईफोनियस Amaranthus Tenipolius ॥

गुण–चौलाई–हलकी, शीतल, रूक्ष, मल तथा मूत्रको प्रवर्त्तानेवाली, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, विषनाशक और पित्त, कफ तथा रक्तविकारनाशक है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ जलतण्डुलीय-[चौलाई] भेदः ।

पानीयतण्डुलीयं तु कच्चटं समुदाहृतम् ॥ कच्चटं तिक्तकं रक्तपित्तानिलहरं लघु॥ १४॥

पानीयतण्डुल और कच्चट ये जल चौलाईके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—जलचौलाई । बं०—चांपानटे । गु०—पाणीनो तांदलजो । तै०—कुईकोरा ।

गुण—जलचौलाई—कडवी, हलकी और रक्तविकार पित्त तथा वातनाशक है ॥ १४ ॥

अथ पालक्या [पालक] ।

पालक्या वास्तुकाकारा छुरिका चीरितच्छदा ॥ पालक्या वातला शीता श्लेष्मला भेदिनी गुरुः ॥ विष्टम्भिनी मदश्वासपित्तरक्तकफापहा ॥ १५ ॥

पालक्या, वास्तुकाकारा, छुरिका, चीरितच्छदा, (पालक्य, पलक्या, क्षुरपत्रिका, सुपत्रा, स्निग्धपत्रा, ग्रामिणी, ग्राम्यवल्लभा, क्षुरिका, पालक्या और पालकी) ये पालकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—पालकका शाक । बं०—पालङ्शाक । म०—पालक । गु०—टाको । क०—पालक्य । फा०—इस्पनाख, अस्पनाख । इं०—स्पाईनेज Spinage लै०—स्पाईनेश्या ओलिरेश्या Spinasia Oleracea ॥

गुण—पालक—वातकारक, शीतल, कफकारक, दस्तावर, भारी, विष्टम्भी और मद, श्वास, पित्त, रक्तविकार तथा कफनाशक है ॥ १५ ॥

अथ कालशाकम् [नाडीका शाक] ।

नाडिकं कालशाकं च श्राद्धशाकं च कालकम् ॥ कालशाकं सरं रुच्यं वातकृत्कफशोथहृत् ॥ बल्यं रुचिकरं मेध्यं रक्तपित्तहरं हिमम् ॥ १६ ॥

नाडिक, कालशाक, श्राद्धशाक और कालक, ये नाडीशाकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—नाडीका शाक । म०— कुळीची भाजी । गु०—करली । लै०फेलंज्युम ट्यूबेरोसम Phaluginm Tuberosum ॥

गुण०नाडीका शाक—दस्तावर, रुचिकारी, वातकारक, कफ तथा सूजननाशक, बलदायक, मेधाको हितकारी, शीतल और रक्तपित्तनाशक है ॥ १६ ॥

अथ पट्टशाकः [पटुआ शाक]

पट्टशाकस्तु नाडीको नाडीशाकश्च स स्मृतः ॥ नाडीको रक्तपित्तघ्नो विष्टम्भी वातकोपनः ॥ १७ ॥

पट्टशाक, नाडीक, नाडीशाक, (नाडीच, केचुक, पेचुली, पेचु और विश्वरोचन) ये पटुएशाकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—पटुआ शाक । बं०—पाट्शाक । म०—अलव्या गु०—अलवी । लै०—आईपोमियारिप्टेन्स Ipomoc areptama ॥

गुण—पटुआशाक—रक्तपित्तनाशक, विष्टम्भि और वातको कुपित करनेवाला है ॥ १७ ॥

अथ कलम्बी ।

कलम्बी शतपर्वी च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ कलम्बी स्तन्यदा प्रोक्ता मधुरा शुक्रकारिणी ॥ १८ ॥

कलबी, शतपर्वी, (कडम्बी, कलम्बू और कलम्बिका) ये कलमी शाकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—कलमी शाक, । बं०—कलमी । म०—केलुटपेपा । गु० कोबी । फा०—कलाम । अ०—कदक लब । इं०—काबेज Cabbage ल० कोस्टसस्पेसियोसस Costus Speciasus ॥

गुण—कलमीशाक—दुग्धवर्धक, मधुर और कारक है ॥ १८ ॥

अथ लोणीं बृहल्लोणी च [नोंनिया बडा नोंनिया] ।

लोणा लोणी च कथिता बृहल्लोणी तु घोटिका ॥ लोणी रूक्षा स्मृता गुर्वी वातश्लेष्महरी पटुः ॥ १९ ॥ अर्शोघ्नी दीपनी चाम्ला मन्दाग्निविषनाशिनी ॥ घोटिकाम्ला सरा चोष्णा वातकृत्कफपित्तहृत् ॥ ॥ २० ॥ वाग्दोषव्रणगुल्मघ्नी श्वासकासप्रमेहनुत् ॥ शोथलोचनरोगे च हिता तज्ज्ञैरुदाहृता ॥ २१ ॥

पत्रैश्चतुर्दल इतीरितः ॥ शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते ॥ २८॥ सुनिषण्णो हिमो ग्राही मोहदोषत्रयापहः ॥ अविदाही लघुः स्वादुः कषायो रूक्षदीपनः ॥ वृष्यो रुच्यो ज्वरश्वासमेहकुष्ठभ्रमप्रणुत् ॥ २९ ॥

शितिवार, शितिवर, स्वस्तिक, सुनिषण्णक, श्रीवारक, सूचिपत्र, पर्णक कुक्कुट, शिखी, (वितुन्न, सुनिषण्ण, चुंचु, सुतपत्र, शितिचार, सूच्याह्वय, सूच्याह्व, सूचिपत्रक, कुरण्ट, सूचिदल, श्वेतावर और बभ्रु) ये सिरियारीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सिरियारी, चौपतिया । ब०–सुषुणीशाक, शुशुनीशाक । म०–करडू । गु०–सुनिसरणक । तै०–सुनिषण्णमने शाकमु । फा०–अजरा । लैं०–ब्लेफेरिस इडयुलीस Blepharis Edulis ॥

शिरियारी–चांगेरीके सदृश और चार पत्तोंवाली होतीहै। यह शाक–जलयुक्त देशोंमें होताहै और चतुःपत्री कहतेहैं॥

गुण–शिरियारी–शीतल, ग्राही, अविदाही, हलकी, स्वादिष्ठ, कसैली, रूखी, अग्निप्रदीपक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, और मोह, तीनों दोष, ज्वर, श्वास, प्रमेह, कोढ, तथा भ्रमनाशक है ॥ २७–२९ ॥

अथ मूलकपत्रम् ।

पाचनं लघु रुच्योष्णं पत्रं मूलकजं नवम् ॥ स्नेहस्निग्धं त्रिदोषघ्नमसिद्धं कफपित्तकृत् ॥ ३० ॥

मूलीके ताजे पत्तोंका शाक–पाचक, हलका, रुचिकारक, और गरम है । तैलमें भुना हुआ शाक–त्रिदोषनाशक और विना भुना हुआ कफ तथा पित्तकारक है॥३०

अथ द्रोणपुष्पी [गूमा] ।

द्रोणपुष्पीदलं स्वादु रूक्षं गुरु च पित्तकृत् ॥ भेदनं कामलाशोथमेहज्वरहरं कटु॥३१॥

गूमाका शाक–स्वादु, रूक्ष, भारी, पित्तकारक, मलभेदक, (दस्तावर,) चरपरा और कामला, शोथ, प्रमेह तथा ज्वरनाशक है ॥ ३१ ॥

अथ यवानीशाकम् [अजमायन] ।

यवानीशाकमाग्नेयं रुच्यं वातकफप्रणुत् ॥ उष्णं कटु च तिक्तं च पित्तलं गुल्मशूलनुत् ॥ ३२ ॥

अजवायनका शाक–अग्निकारी, रुचिकर्त्ता, वात तथा कफनाशक, गरम, चरपरा, कडवा, पित्तकारक, गुल्म और शूलनाशक है ॥ ३२ ॥

अथ दद्रुघ्नपत्रम् [पमार चकवड शाक] ।

दद्रुघ्नपत्रं दोषघ्नमस्रवातकफापहम्॥कण्डूकासक्रिमिश्वासदद्रुकुष्ठप्रणुल्लघु ॥ ३३ ॥

पमार (चकवड) के पत्ते–दोषनाशक, हलके, और रुधिर, वात, कफ, खुजली, श्वास, खासी, कृमि, दाद तथा तथा कोढनाशक हैं ॥ ३३ ॥

अथ सेहुण्डः [थूहर] ।

सेहुण्डस्य दलं तीक्ष्णं दीपनं रोचनं हरेत् ॥ आध्मानाष्ठीलिकागुल्मशूलशोथोदराणि च ॥ ३४ ॥

थूहरके पत्ते–तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, रोचक और अफारा, अष्ठीलिका, गुल्म, सूजन तथा उदररोगनाशक है ॥ ३४ ॥

अथ पर्पटः [पित्तपापडा] ।

पर्पटो हन्ति पित्तास्रज्वरतृष्णाकफभ्रमान्॥ संग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः ॥ ३५ ॥

पित्तपापडेके पत्ते–ग्राही, शीतल, कडवे, हलके, वातकारक और पित्त, रक्तविकार, ज्वर, तृष्णा, कफ तथा दाह, भ्रम नाशक हैं ॥ ३५ ॥

अथ गोजिह्वा [गोभीके पत्ते] ।

गोजिह्वा कुष्ठमेहास्रकृच्छ्रज्वरहरी लघुः॥३६।

गोभीके पत्ते–कोढ, प्रमेह, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र और ज्वर नाशक तथा हलके है ॥ ३६ ॥

अथ पटोलपत्रम् [पटोलपात] ।

पटोलपत्रं पित्तघ्नं दीपनं पाचनं लघु॥स्निग्धं वृष्यं तथोष्णं च ज्वरकासक्रिमिप्रणुत् ॥ ३७ ॥

पटोलपत्र (पटोलपात)–अग्निप्रदीपक, पाचन, हलके, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, गरम और पित्त, ज्वर, खाँसी तथा क्रमिनाशक हैं ॥ ३७ ॥

अथ गुडूचीपत्रम् [गिलोयशाक] ।

गुडूचीपत्रमाग्नेयं सर्वज्वरहरं लघु॥कषायं कटुतिक्तं च स्वादुपाकं रसायनम् ॥३८॥ बल्यमुष्णंच संग्राहि हन्याद्दोषत्रयं तृषाम् ॥ दाहप्रमेहवातासृक्कामलाकुष्ठपाण्डुताः ३९

गिलोयके पत्ते—अग्निको बढानेवाले सर्व ज्वरनाशक, हलके, कसैले, चरपरे, कडवे, पाकमें मीठे, रसायनरूप, बलदायक, गरम, ग्राही और त्रिदोष, तृषा, दाह, प्रमेह, वात रक्तविकार, कामला, कुष्ठ तथा पाण्डुरोगनाशक हैं॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ कासमर्दः [कसौंदी शाक] ।

कासमर्दोऽरिमर्दश्च कासारिः कर्कशस्तथा ॥ कासमर्ददलं रुच्यं वृष्यं कासविषास्रनुत् ॥ ॥ ४० ॥ मधुरं कफवातघ्नं पाचनं कण्ठशोधनम् ॥ विशेषतः कासहरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु ॥ ४१ ॥

कासमर्द, अरिमर्द, कासारि, कर्कश, (कालकत, विमर्द, कासमर्दक, कनक, काल, और जरण) ये कसौंदीके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी—कसौंदी, चकौंडी। बं०—कालाकासुन्दा । म०—रानकासविंद । गु०—कासुन्दरानापादडां । ०—कासवदी । तै०—गुर्रं पुताह्व । इं०—राउण्ड पाडेड केश्या Round Podded Cassia लै०—केश्या सोफेरा Cassia Sophera ॥

गुण—कसोंदीके पत्ते—रुचिकारी, वीर्यवर्द्धक, विष, खांसी तथा रक्तविकारनाशक, मधुर, कफ तथा वातनाशक, पाचक, कण्ठको शुद्ध करनेवाले, हलके पित्तनाशक, तथा विशेष करके खासीको नष्ट करैहैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ चणकशाकम् [चनेका शाक] ।

रुच्यं चणकशाकं स्याद् दुर्जरं कफवातकृत् ॥ अम्लं विष्टम्भजनकं पित्तनुदन्तशोथहृत् ॥ ४२ ॥

चनेका शाक,—रुचिकारक, दुर्जर, कफ तथा वातकारक, खट्टा, विष्टम्भकारक और पित्त तथा दांतोंकी सूजनको नष्ट करैहैं ॥ ४२ ॥

अथ कलायशाकम् [मटरका शाक] ।

कलायशाकं भेदि स्याल्लघु तिक्तं त्रिदोषजित् ॥ ४३ ॥

मटरका शाक—मलभेदक, हलका, कडवा और त्रिदोषनाशक है ॥ ४३ ॥

अथ सार्षपशाकम् [सरसोंकाशाक] ।

कटुकं सार्षपं शाकं बहुमूत्रमलं गुरु ॥ अम्लपाकं विदाहि स्यादुष्णं रूक्षं त्रिदोषजित् ॥ सक्षारलवणं तीक्ष्णं स्वादु शाकेषु निन्दितम् ॥ ४४ ॥

सरसोंका शाक—चरपरा, मूत्र तथा मलको बहुत करनेवाला, भारी, पाकमें खट्टा, विदाही, गरम, रूखा, त्रिदोषनाशक, क्षारयुक्त, नमकीन, तीक्ष्ण, स्वादु और सब शाकोंमें निन्दित है ॥ ४४ ॥

अथ पुष्पशाकानि ।

तत्र अगस्तिपुष्पस्य गुणाः ।

अगस्तिकुसुमं शीतं चातुर्थिकनिवारणम्॥ नक्तान्ध्यनाशनं तिक्तं कषायं कटुपाकि च ॥ पीनसश्लेष्मपित्तघ्नं वातघ्नं मुनिभिर्मतम् ॥ ४५ ॥

अगथियेका फूल—शीतल, चातुर्थिक (चौथिया) ज्वरनाशक, रतौंधेको दूर करनेवाला, कडवा कसैला, पाकमें चरपरा और पीनस, कफ, पित्त तथा वातनाशक है ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ ४५ ॥

अथ कदलीपुष्पम् [केलेका फूल] ।

कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तुवरं गुरु ॥ वातपित्तहरं शीतं रक्तपित्तक्षयप्रणुत्॥४६॥

केलेका फूल—स्निग्ध, मधुर, कसैला, भारी, शीतल, और वात, पित्त, रक्तपित्त तथा क्षयको नष्ट करैहै॥४६॥

शोभाञ्जन [सहँजना] पुष्पम् ।

शिग्रोः पुष्पं तु कटुकं तीक्ष्णोष्णं स्नायुशोथकृत् ॥ कृमिहृत्कफवातघ्नं विद्रधिप्लीहा-

हृद्गुल्मजित् ॥ मधु शिग्रोस्त्वक्षिहितं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ ४७ ॥

सहँजनेके फूलका शाक—चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, नसोंमे स्रजन करनेवाला, और कृमि, वात, विद्रधि (नासूर) प्लीहा तथा गुल्मनाशक है। सहँजनेका मधु (शहद) नेत्रोंको हितकारी और रक्तपित्तको दूर करैहै ॥ ४७ ॥

अथ शाल्मल्याः—[सेमलके] पुष्पम्।

शाल्मलीपुष्पशाकं तु घृतसैन्धवसाधितम् ॥ प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यं च न संशयः ॥ ४८ ॥ रसे पाके च मधुरं कषायं शीतलं गुरु ॥ कफपित्तास्रजिद्ग्राहि वातलं च प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥

सेमलके फूलका शाक—जो घी और सेंधानोन डालकर बनाया हो तो दुःसाध्य प्रदरको नष्ट करताहै। रसमे और पाकमे—मधुर, कसैला, शीतल, भारी, ग्राही, वातकारक और कफ तथा पित्तको नष्ट करैहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथ फलशाकानि।

तत्र कूष्माण्डस्य[पेठेके] नामानिगुणाश्च।

कूष्माण्डं स्यात्पुष्पफलं पीतपुष्पं बृहत्फलम् ॥ कूष्माण्डं बृंहणं वृष्यं गुरु पित्तास्रवातनुत ॥ ५० ॥ बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम् ॥ वृद्धं नातिहिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु ॥ वस्तिशुद्धिकरं चेतोरोगहृत्सर्वदोषजित् ॥ ५१ ॥

कूष्माण्ड, पुष्पफल, पीतपुष्प, बृहत्फल, (तृणावास, तिमिष, ग्राम्यकर्कटि, कूष्माण्डक, कर्कारू, शिखिवर्धक, कुम्भाण्ड, कुष्माण्डी, कर्कोटिका, कुम्भाण्डी, सुफला, कुम्रफला और नागपुष्पफला) ये पेठेके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—पेठा, कुम्हडा। म०—कोहळा। व०—कुमडागाछ। क०—दारकोहोला, । गु०—पढकोलु। तैं०—पुल्लाहा फा०—कूमाकुदु। अ०—महदेवा। इ०—पपकीन Pumpkin लै०—बेनीनकासा सेरिफेरा Benincassa Cerifera ॥

गुण—पेठा—पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, भारी और पित्त, रक्तविकार तथा वातविनाशक है। कच्चापेठा—पित्तनाशक शीतल तथा मध्यमावस्थाका पेठा कफकारक है पक्का पेठा अत्यंत शीतल नही, स्वादु, खारी, अग्निप्रदीपक, हलका, वस्तिको शुद्ध करनेवाला तथा मानसिक रोग (अपस्मार, उन्मत्तता आदि) और सर्व दोषोंको जीतनेवाला है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ कूष्माण्डी [कुम्हडी]।

कुष्माण्डी तु भृशं लघ्वी कर्कारुरपि कीर्त्तिता ॥ कर्कारुर्ग्राहिणी शीता रक्तपित्तहरा गुरुः ॥ पक्का तिक्ताऽग्निजननी सक्षारा कफवातनुत् ॥ ५२ ॥

बहुत छोटे पेठेको कुष्माण्डी और कर्कारु कहतेहैं ॥

गुण—कुष्माण्डी—ग्राही, शीतल, रक्तपित्तनाशक और भारी है। पक्का—कडवा, अग्निकारक, खारी और कफ तथा वातनाशक है ॥ ५२ ॥

अथ अलाबूः [तूम्बी]।

अलाबूः कथितास्तुम्बी द्विधा दीर्घा च वर्तुला ॥ मिष्टतुम्बीदलं हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं गुरु ॥ वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टिविवर्धनम् ॥ ५३ ॥

अलाबू, तुम्बी, (अलाबु, तुम्ब, तुम्बक, तुम्बा, पिण्डफला, महाफला, आलाबू, एलाबु, लाबु, लाबुका, तुम्बिका, तुम्बि, अलीबु और तुम्बुक) ये लंबे कद्दूके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—लंबाकद्दू, रामतोरई, लौकी, मीठीतोंबी। ब०—लाबु, कदु। म०—दुध्याभोंपळा,। गु०—आलडी। क०—कडंडवलकायि। तै०—नीहातुरुडीकाया। फा०—कुदुशिरिन्। अ०—किरा। इ०—हाइटगुर्ड White Gourd लै०—कुकुर्बिटा लाजिनेरिया Cucurbita Lagenaria ॥

तोंबी—लंबी और गोल, इस भाँति दो प्रकारकी होतीहै ॥

गुण—तोंबी—हृदयको प्रिय, पित्त तथा कफनाशक, भारी, वीर्यवर्द्धक रुचिकारक और धातुको पुष्ट करैहै ५३॥

अथ कटुतुम्बी [कडवी तोंबी]।

इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्यात्सा तुम्बी च महाफला ॥ कटुतुम्बी हिमा हृद्या पित्त-

कासविषापहा ॥ तिक्ता कटुर्विपाके च वातपित्तज्वरान्तकृत् ॥ ५४ ॥

इक्ष्वाकु, कटुतुम्बी, तुम्बी, महाफला, (पिण्डफला, राजपुत्री, नृपात्मजा, फलिनी, तिक्ततुम्बी, तिक्तका, कटुतिक्तका, लम्बा, कटुकालाबु, कटुफला, तुम्बिनी, बृहत्फला, दतबीजा, तिक्तबीजा, तुम्बिका, तुम्बीका, अत्रियवरा और कटुतुम्बिनी) ये कडवी तोंबीके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—कटुलौकी, कडवीतोंबी । व०—तितलाउ । म०—कडूभोपळा। गु०—कडवी तुवडी । क०—कडीगेरे । तै०—चेतिआनव । फा०—कदूतल्ख । अ०—करउलमर । इं०—बोटलगुर्ड Bottle Gourd लै०—लेजीनेरिया वल्गेरिस Lagenaria Valgaris ॥

गुण—कडवी तोंबीका फल—शीतल, अहृद्य (हृदयको अप्रिय) कडवी, पाकमें चरपरी और पित्त, खाँसी, विष, वात, पित्त तथा ज्वरको नष्ट करैहै (यह वमन विरेचन कारक है) ॥ ५४ ॥

अथ कर्कटी [ककडी] ।

एर्वारुः कर्कटी प्रोक्ता कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरुः ॥ रुच्या पित्तहरा सामा पक्का तृष्णाग्निपित्तकृत् ॥ ५५ ॥

एर्वारु, कर्कटी, (लोमशी, व्यालपत्रा, बृहत्फला, व्यालपत्री, लोमशा, स्थूला, तोयफला, हस्तिदन्तफला, छर्दापनिका, पीनसा, मूत्रला, मूत्रफला, त्रपुषा, हस्तिपर्णी, लोमशकाण्डा, बहुकन्दा, चिर्भटी, कर्कटाक्ष, शान्तनु, वालुङ्गी, त्रपुषी, इर्वारु,उर्वारु, और ईर्वारु) ये ककडी, के सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—ककडी । व०—काँकुड । म०—काकडी । गु०—काकडी । क०—क्येयसौत । तै०—दोसकाया । फा०—खयार दराज । अ०—किस्साकदस् । इं०—ककवर Cucumber लै०—क्युक्युमिस् सेटिवस् Cucumis Sativus ॥

गुण—कची ककडी—शीतल, रूखी, ग्राही, मधुर, भारी, रुचिकारी और पित्तनाशक है ॥

पक्की ककडी—तृषा, अग्नि और पित्तकारक है ॥५५॥

अथ चिचिण्डः [चचेंडा] ।

चिचिण्डः श्वेतराजिः स्यात्सुदीर्घो गृहकूलकः ॥ चिचिण्डो वातपित्तघ्नो बल्यः पथ्यो रुचिप्रदः ॥ शोषणोऽतिहितः किञ्चिद्गुणैर्न्यूनः पटोलतः ॥ ५६ ॥

चिचिण्डा, श्वेतराजि, सुदीर्घ, गृहकूलक, (चिचुण्ड, वेश्मकूल, बृहत्फला, अहिफला, दीर्घफला और चीनकर्कटिका) ये चचटेके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—चचेंडा । व०—चिचिण्टा । म०—टरकाकडी । गु०—पटोलु । तै०—पोटलकाया । इं०—स्नेकगोर्ड Snake gourd लै०—ट्रीकोसेंथिस ऐंग्विना Trichosanthis Anguina ॥

गुण—चचेंडा—वात तथा पित्तनाशक, बलदायक, पथ्य, रुचिकारक, शोषी (क्षयरोगी) को अत्यन्त हितकर्ता बहुत हितकारी और परवलसे कुछ हीन गुणवाला है ॥ ५६ ॥

अथ कारवेल्लम् [करेला, करेली] ।

कारवेल्लं कठिल्लं स्यात्कारवेल्ली ततो लघुः॥ कारवेल्लं हिमं भेदि लघु तिक्तमवातलम्॥ ॥५७॥ ज्वरपित्तकफास्रघ्नं पाण्डुमेहकृमी-न्हरेत्॥ तद्गुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषाद्दीपनी लघुः ॥ ५८ ॥

कारवेल्ल, कठिल्ल, (उपकाण्ट, सुकाण्डक, कठिल्ल और कारवेल्लक) ये करेलेके सस्कृत नाम हैं ॥ इसमें छोटे करलेको कारवेल्ली (करेली) कहते हैं ॥

हिन्दी—करेला, करेली । व०—बडकरेला उच्छे, छोट-करलाउच्छे । म०—कारलें, क्षुद्रकारली । गु०—कारेलु । क०—हागेल । तै०-करिला, काकरकाया । फा०—कारेलाह। अ०—किस्सउलहिमार । इं०—हेरी मोर्डिका Hairy Mordica लै०—मेमोर्टिका करेंटिया Memordica Choratia ॥

गुण—करेला—शीतल, मलभेदक, दस्तावर, हलका, कडवा, वातकारक नहीं और ज्वर, पित्त, कफ, रक्त-विकार, पाण्डुरोग, प्रमेह, और कृमिनाशक है ॥ करेलीमे भी करलेके सदृश गुण हैं, विशेष करके अग्निप्रदीपक और हलकी है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ महाकोशातकी [नेनुआ] ।

महाकोशातकी प्रोक्ता हस्तिघोषा महाफला ॥ धामार्गवो घोषकश्च हस्तिपर्णश्च

स स्मृतः ॥ महाकोशातकी स्निग्धा रक्तपित्तानिलापहा ॥ ५९ ॥

महाकोशातकी, हस्तिघोषा, महाफला, धामार्गव, घोषक, हस्तिपर्ण, (बृहत्कोशातकी, हस्तिकोशातकी, ग्राम्यकोशातकी, महत्पुष्पा, सपीतिका और हस्तिघोषातकी) ये घिया तोरईके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-घियातोरई, नेनुआ। ब०-हस्तिघोषा, धुन्दुल। म०-घोसाळी, पारोशी, गिलके। गु०-गलकां। क०-अरहिरे। तै०-पुछावीरकाया। फा०-खियार। लै०-ल्युफापेंटेड्रा Luffapentandra ॥

गुण-घियातोरई चिकनी और रक्तपित्त तथा वायुको नष्ट करैहै ॥ ५९ ॥

अथ राजकोशातकी [तोरई]।

धामार्गवः पीतपुष्पो जालिनी कृतवेधना ॥ राजकोशातकी चेति तथोक्ता राजिमत्फला ॥ ६० ॥ राजकोशातकी शीता मधुरा कफवातकृत ॥ पित्तघ्नी दीपनी श्वासज्वरकासकृमिप्रणुत् ॥ ६१ ॥

धामार्गव, पीतपुष्प, जालिनी, कृतवेधना, राजकोशातकी, राजिमत्फला (कोशातकी स्वादुफला, सुपुष्पा, कर्कोटकी, धाराफला, दीर्घफला और सुकोषा) ये तोरईके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-तोरई। ब०-घोषालता। म०-शिराळी, दोडकीं। गु०-झुमखडा। क०-धारवितरोई। तै०-वीरकाया, इ०-एक्युटेंगलेड ककम्बर Acuteangled Cucumber ल०-ल्युफाएक्युटेंग्युला Luffaaeutengula ॥

गुण-तोरई-शीतल, मधुर, कफ तथा वातकारक, पित्तनाशक, अग्निप्रदीपक और श्वास, खासी, ज्वर, कृमिको नष्ट करैहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अथ पटोलः [परवल]।

पटोलः कूलकस्तिक्तः पाण्डुकः कर्कशच्छदः ॥ राजीफलः पाण्डुफलो राजेयश्चामृताफलः ॥ ६२ ॥ बीजगर्भः प्रतीकश्च कुष्ठहा कासभञ्जनः ॥ पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लघ्वग्निदीपनम् ॥ ६३ ॥ स्निग्धोष्णं हन्ति कासास्रज्वरदोषत्रयक्रिमीन् ॥ पटोलस्य भवेन्मूलं विरेचनकरं सुखात् ॥ ६४ ॥ नालं श्लेष्महरं पत्रं पित्तहारि फलं पुनः ॥ दोषत्रयहरं प्रोक्तं तद्वत्तिक्ता पटोलिका ॥ ६५ ॥

पटोल, कूलक, तिक्त, पाण्डुक, कर्कशच्छद, राजीफल, पाण्डुफल, राजेय, अमृताफल, बीजगर्भ, प्रतीक, कुष्ठहा, कासभजन, (राजीमान्, तिक्तोत्तम, कुष्ठारि, कासमर्दन, पचराजीफल, ज्योत्स्ना, कच्छुर, ज्वरनाशन, तिक्तक, पटु, पटुक, कर्कशदल, कुजल, वाजिमान्, लताफल, राजफल, राजपटोल, वरतिक्त, तिक्तभद्रक, कटुफल, कटु, कटुक, नागफल, पंजर, कच्छुघ्नी और प्रतीक) ये परवलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-परवल, कडवे परवल। बं०-पलतालता। म०-कटु पडवळ। गु०-परवल। क०-कहिपडवल। लै०-सेसपदूला। Sespadula लै०-ट्रीकोसेंथिस् कुकुमेरिना Trichosanthis Cucumerina ॥

गुण-परवल-पाचक, हृदयको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, हलका, अग्निप्रदीपक, स्निग्ध, गरम और खाँसी, रक्तविकार, ज्वर, त्रिदोष तथा कृमिविनाशक है ॥ परवलकी जड-सुखपूर्वक विरेचन करनेवाली है। परवलकी नाल (डंडी)-कफनाशक है। परवलके पत्ते-पित्तनाशक हैं और फल-त्रिदोषनाशक हैं ॥ कडवे परवलमें भी यही गुण हैं ॥ ६२-६५ ॥

अथ बिंबी-तुंडिकेरी [कन्दूरी]।

बिम्बी रक्तफला तुण्डी तुण्डिकेरी च बिम्बिका ॥ ओष्ठोपमफला प्रोक्ता पीलुपर्णी च कथ्यते ॥ ६६ ॥ बिम्बीफलं स्वादु शीतं गुरु पित्तास्रवातजित् ॥ स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबन्धाध्मानकारकम् ॥ ६७ ॥

बिम्बी, रक्तफला, तुंडी, तुण्डिकेरी, बिंबिका, ओष्ठोपमफला, पीलुपर्णी, (ओष्ठी, कर्मकरी, तुण्डिकेरिका, तुण्डिकेरि, झुण्डिकेशि, बिम्बक, बिम्बजा, दन्तच्छदोपमा, रुचिरफला और छर्दिनी) ये कन्दूरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कन्दूरी, कुन्दुरू। ब०-तेलाकुच। म०-गोडी तोंडली। गु०-टिंडोरॉ। लै०-कोकसिया इण्डिक Cocaia Indic ॥

गुण–कन्दूरीका फल–स्वादु, शीतल, भारी, पित्त, रक्तविकार तथा वातविनाशक, स्तम्भन, लेखन, रुचिकारक और विबन्ध तथा अफरेको करैहै ॥६६॥६७॥

अथ शिंबिः [सेम] ।

शिम्बिः शिम्बी पुस्तशिम्बी तथा पुस्तकशिम्बिका ॥ शिम्बीद्वयं च मधुरं रसे पाके हिमं गुरु ॥ बल्यं दाहकरं प्रोक्तं श्लेष्मलं वातपित्तजित् ॥ ६८ ॥

शिम्बि, शिंबी, पुस्तशिम्बी और पुस्तकशिम्बिका, ये सेमके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सेम सेमि । व०–बोरा, वरवटी । म०–वालपापडी । गु०–वालोर । तै०–चिकुडु । ता०–मोरचे कोटे । अ०–वीन्सा । ई०–ब्लाकसीडेड डोलिकोस Blackseeded Dolichos लै०–डोलिकोस लबलब Dolicos Lablab ॥ सेम दोप्रकारका होतीहै ॥

गुण–दोनों प्रकारकी सेम–रसमें तथा पाकमें मीठी, शीतल, भारी, बलदायक, दाहकारक, कफकारक और वात तथा पित्तको नष्ट करैहैं ॥ ६८ ॥

अथ कोलशिम्बिः [सुअरा सेम] ।

कोलशिम्बिः कृष्णफला तथा पर्यकपट्टिका ॥ कोलशिम्बिः समीरघ्नी गुर्व्युष्णा कफपित्तकृत् ॥ शुक्राग्निसादकृद्वृष्या रुचिकृद्बद्धविड् गुरुः ॥ ६९ ॥

कोलशिम्बी, कृष्णफला, पर्यकपट्टिका, (खङ्गा, सूकरपादिका, कुशिम्बी, कुत्सालशिम्बी और पुस्तकशिम्बिका) ये सुअरासेमके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सुअरासेम, कालीसेमि । व०–शेमगाछ । म०–आवईची शेंग । गु०–काली वालोर । तै०–कारुचिकटु ॥

गुण–सुअरासेम–वातनाशक, भारी, गरम, कफ तथा पित्तकारक, शुक्र और जठराग्निको मंद करनेवाली, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारी, मलको बाँधनेवाली और भारी है ॥ ६९ ॥

अथ सौभाञ्जनफलम् ।
[सहँजनेकी फली] ।

फलं सौभाञ्जनं स्वादु कषायं कफपित्तनुत् ॥ शूलकुष्ठक्षयश्वासगुल्महृद्दीपनं परम् ॥ ७० ॥

सहँजनेकी फली–स्वादु, कसैली, कफ तथा पित्तको दूरकरनेवाली है. और शूल, कोढ, क्षय, श्वास तथा गुल्म (गोलेकारोग) इनको हरनेवाली और अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाली है ॥ ७० ॥

अथ वृन्ताकम् [बैंगन, भण्टा] ।

वृन्ताकं स्त्री तु वार्ताकुर्भण्टाकी भाण्टिकापि च ॥ वृन्ताकं स्वादु तीक्ष्णोष्णं कटुपाकमपित्तलम् ॥ ७१ ॥ ज्वरवातबलासघ्नं दीपनं शुक्रलं लघु ॥ तद्बालं कफपित्तघ्नं वृद्धं पित्तकरं लघु ॥ ७२ ॥ वृन्ताकं पित्तलं किञ्चिदङ्गारपरिपाचितम् ॥ कफमेदोऽनिलामघ्नमत्यर्थं लघु दीपनम् ॥ ७३ ॥ तदेव हि गुरु स्निग्धं सतैलं लवणान्वितम् ॥ अपरं श्वेतवृन्ताकं कुक्कुटाण्डसमं भवेत् ॥ तदर्शःसु विशेषेण हितं हीनं च पूर्ववत् ॥७४॥

वृन्ताक, वार्ताकु, भण्टाकी, भाण्टिका, (वार्ताकी, कण्टवृन्ताकी, कण्टालु, कण्टपत्रिका, निद्रालु, मांसलफला, वृन्ताकी, महोटिका, चित्रफला, कण्टकिनी, महती, कटुफला, मिश्रवर्णफला, नीलफला, रक्तफला, शाकश्रेष्ठा, वृत्तफला, नृपप्रियफला, हिंगुली, सिंही, दुष्प्रधर्षिणी, वार्ता, वातिकुण, वार्ताक, शाकबिल्व, राजकूष्माण्ड, महावृहती, शाकबिल्वक, वार्तिक, वातिगम, वङ्गण, अङ्गण, नीलवृन्ता, भाण्टिका और नीलकण्टका) ये बैंगनके सस्कृत नाम है ॥

हिन्दी–बैंगन, भटा भाटा । वं०–वेगुनगाछ । म०–वांगें । गु०–रींगणी । क०–वदने । तै०–वंकायि । ता०–कत्तरिक्या । फा०–बादगान् । अ०–बादजान । इं०–ब्रिजल Bringle लै०–सोलेन मेलजीना Solanum Melangena ॥

गुण–बैंगन–मधुर, तीक्ष्ण, गरम, पाकमें चरपरा, पित्तकारक नहीं, अग्निप्रदीपक, वीर्यवर्द्धक, हलका और ज्वर, वात तथा कफनाशक है, छोटे बैंगन कफ तथा पित्तनाशक और बडे बैंगन पित्तकारक तथा हलके है, अग्निमें पकायेहुए बैंगन अर्थात् बैंगनका भर्त्ता किञ्चित् पित्तकारक, हलके, अग्निको दीपन करनेवाले और कफ, मेद, वात तथा आमनाशक हैं । जो

इन बैंगनोंमें तेल और नमक डाला होय तौ वे बैंगन भारी और स्निग्ध हैं और एक प्रकारका बैंगन मुरगेके अण्डेके सदृश होता है वह बैंगन अर्शरोगमें विशेष हितकारी है और काले बैंगनोंसे गुणोंमें हीन है ॥ ७१-७४ ॥

अथ डिण्डिशः [ढेंढस] ।

डिण्डिशो रोमशफलो मुनिनिर्मित इत्यपि ॥ डिण्डिशो रुचिकृद्भेदी पित्तश्लेष्मापहः स्मृतः ॥ शीतलो वातकृद्रूक्षो मूत्रलश्चाश्मरीहरः ॥ ७५ ॥

डिडिश, रोमशफल और मुनिनिर्मित, ये ढेंढसके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-ढेंढस, टिंडे । म०-कटोली, फागली । गु०-कटोला । तै०-अगोरकर ॥

गुण-ढेंढस-रुचिकारक, मलभेदक, (दस्तावर) शीतल, वातकारक, रूक्ष, मूत्रवर्द्धक और पित्त, कफ तथा पथरीरोगनाशक है ॥ ७५ ॥

अथ पिण्डारम् [पिण्डालु] ।

पिण्डारं शीतलं बल्यं पित्तघ्नं रुचिकारकम् ॥ पाके लघु विशेषेण विषशान्तिकरं स्मृतम् ॥ ७६ ॥

पिण्डार (पिण्डालु)-शीतल, बलकारक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, पाकमें हलका, विशेषकरके विषको शान्त करने वाला और पित्तनाशक है ॥ ७६ ॥

अथ कर्कोटी [ककोडा] ।

कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजालीति चोच्यते ॥ कर्कोटी मलहृत्कुष्ठहृल्लासारुचिनाशनी ॥ श्वासकासज्वरान्हन्ति कटुपाका च दीपनी ॥ ७७ ॥

कर्कोटकी, पीतपुष्पा, महाजाली, (महाजालिनिका, अवन्ध्या, बोधनाजालि, मनोज्ञा और मनस्विनी) ये ककोडेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-ककोडा, खेखसा । ब०-काकरोल । म०-काटली । गु०-कडवीघीसोडी । तै०-अगोरकर ॥

गुण-ककोडा-मलनाशक, पाकमें चरपरा, अग्निप्रदीपक और कोढ, जी मिचलाना, अरुचि, खासी, श्वास तथा ज्वरनाशक है ॥ ७७ ॥

अथ डोडिका [करेरुआ] ।

डोडिका विषमुष्टिश्च डोडीत्यपि सुमुष्टिका ॥ डोडिका पुष्टिदा वृष्या रुच्या वह्निप्रदा लघुः ॥ हन्ति पित्तकफार्शांसि कृमिगुल्मविषामयान् ॥ ७८ ॥

डोडिका, विषमुष्टिका, डोडी और सुमुष्टिका, ये करेरुआके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-करेरुआ । गु०-मीठी खरखोली ॥

गुण-करेरुआ-पुष्टिदायक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, हलका और पित्त, कफ, बवासीर, कृमि, गुल्म तथा विषरोगनाशक है ॥ ७८ ॥

अथ कण्टकारी-[कटेरी] फलम् ।

कण्टकारीफलं तिक्तं कटुकं दीपनं लघु ॥ रूक्षोष्णं श्वासकासघ्नं ज्वरानिलकफापहम् ॥ ७९ ॥

कटेरीके फल-कडवे, चरपरे, अग्निप्रदीपक, हलके, रूखे, गरम और श्वास, खांसी, ज्वर, वात तथा कफ विनाशक हैं ॥ ७९ ॥

अथ नालशाकम् ।

तत्र सर्षपनालम् ।

तीक्ष्णोष्णं सार्षपं नालं वातश्लेष्मव्रणापहम् ॥ कण्डूवमिहरं दद्रुकुष्ठघ्नं रुचिकारकम् ॥ ८० ॥

सरसोंकी नाल (डंडी)-तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक और वात, कफ, व्रण, खुजली, वमन, दाद तथा कोढ नाशक है ८०

अथ कन्दशाकानि ।

तत्र सूरणस्य [जिमीकंदके] नामानि गुणाश्च ।

सूरणः कन्द ओलश्च कन्दलोऽर्शोघ्न इत्यपि ॥ सूरणो दीपनो रूक्षः कषायः कण्डुकृत्कटुः ॥ ८१ ॥ विष्टम्भी विशदो रुच्यः कफार्शःकृन्तनो लघुः ॥ विशेषादर्शसे पथ्यः प्लीहगुल्मविनाशनः ॥ ८२ ॥ सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते ॥ दद्रूणां कुष्ठि-

नां रक्तपित्तिनां न हितो हि सः ॥ सन्धानयोगं सम्प्राप्तः सूरणो गुणवत्तरः ॥ ८३ ॥

सूरण, कन्द, ओल, कन्दल, अर्शोघ्न, (कण्डाल, गुल, कन्दी, सुकन्दी, स्थूलकन्दक, दुर्नामारि, सुवृत्त, ...दशूरण, तीव्रकण्ट, वन्दार्ह, वन्दवर्द्धन, बहुकन्द, रुच्यकन्द और शूरणकन्द) ये जिमीकन्दके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी—सूरनकन्द, जिमीकन्द । बं०—ओल । म०—गोटा सुरण । गु०—क०—ता०—सूरण । फा० ओल्य । तै०—मचा कन्दा । ई०—एमोर्फोफेल्मपेनिक्युलेटस Amorphopalluspaniculatus. ॥

गुण—जिमीकन्द—अग्निको दीपन करनेवाला, रूखा, कसैला, खुजली करनेवाला, चरपरा, विष्टम्भी, विशद, रुचिकारी, हलका और कफ तथा अर्शरोग नाशक है । विशेष करके अर्शरोगमें पथ्य है। और प्लीहा तथा गुल्मको नष्ट करेहै । सम्पूर्ण कन्दशाकोंमें सूरण श्रेष्ठ कहाहै । दाद, रक्तपित्त और कोढ रोग वालोंको सूरण हितकारी नहीं है । एक प्रकारकी काजी डालनेसे सूरण बहुत गुणकारक होजाता है ॥ ८१-८३ ॥

अथ आरुकम् [आलू] ।

आरुकमप्यालुकं तत्कथितं वीरसेनकम् ॥ काष्ठालुकशंखालुकहस्त्यालूकानि कथ्यन्ते ॥ पिण्डालुकसप्तालुकरक्तालूकानि चोक्तानि ॥ ८४ ॥

काष्ठालुकं काठिन्ययुक्तम् [कठालू] । शंखालुकं श्वेततायुक्तम् [शंखालू] । हस्त्यालुकं दीर्घतायुक्तं महाशरीरम् । पिण्डालुकं वर्त्तुलम् [पिडालू] । सप्तालुकं मधुरतायुक्तं रोमान्वितम् । रक्तालुकम् [रक्तालू, रतालू] । आलुकं शीतलं सर्वं विष्टम्भि मधुरं गुरु ॥ सृष्टमूत्रमलं रूक्षं दुर्जरं रक्तपित्तनुत् ॥ कफानिलकरं बल्यं वृष्यं स्वल्पाग्निवर्द्धनम् ॥ ८५ ॥

आरुक, आलुक और वीरसेन ये आलूके संस्कृत नाम हैं ॥

लक्षण—जो आलू कठिन होताहै उसको काष्ठालुक कहते हैं । जो श्वेततायुक्त होताहै उसको शंखालुक कहते हैं । जो लम्बा और बड़ा होताहै उसको हस्त्यालुक कहतेहैं । जो गोल होताहै उसको पिण्डालुक कहते हैं । जो मधुरता-युक्त और रोमवाला होताहै उसको सप्तालुक कहतेहैं । जो लालवर्ण होताहै उसको रक्तालुक कहते हैं । हिन्दी में रतालू ॥

गुण-सब जातिके आलू-शीतल, विष्टम्भी, मधुर, भारी, मल तथा मूत्रकारक, रूक्ष, दुर्जर, रक्तपित्तनाशक, कफ तथा वातकारक, बलकारक, वीर्यवर्धक और किंचित् अग्निवर्द्धक हैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अथ रक्तालुभेदः [अरुई] ।

रक्तालुभेदे या दीर्घा तन्वी च पृथुतालुकी । आलुकी वल्कलस्निग्धा गुर्वी हृत्कफनाशिनी ॥ विष्टम्भकारिणी तैले तलिताऽतिरुचिप्रदा ॥ ८६ ॥

रतालूके भेदोंमेंसे लम्बी तथा पतली होतीहै उसको आलुकी कहते हैं ॥

हिन्दी—घुइयां, अरुई । म०—अळवाचा कांदा । गु०—... । अं०—ग्रेटलीव्ड कैलेडियम् Great Leaved Caledium लै०—एरमइंडिकम् Erum Indicum ॥

गुण- घुइयां—बलदायक, स्निग्ध, भारी, हृदयरोग तथा कफनाशक और विष्टम्भकारक है । तेलमें भुनीहुई घुइयां अत्यन्त रुचिकारी है ॥ ८६ ॥

अथ मूलकद्वयम् [मूली. बडी मूली] ।

मूलकं द्विविधं प्रोक्तं तत्रैकं लघुमूलकम् ॥ शालमर्कटकं विस्रं शालेयं मरुसम्भवम् ॥ ८७ ॥ चाणक्यमूलकं तीक्ष्णं तथा मूलकपोतिका ॥ नेपालमूलकं चान्यत्तद्भवेद्गजदन्तवत् ॥ ८८ ॥ लघुमूलं कटूष्णं स्याद्रुच्यं लघु च पाचनम् ॥ दोषत्रयहरं स्वर्यं ज्वरश्वासविनाशनम् ॥ ८९ ॥ नासिकाकण्ठरोगघ्नं नयनामयनाशनम् ॥ महत्तदेव रूक्षोष्णं गुरु दोषत्रयप्रदम् ॥ स्नेहसिद्धं तदेव स्याद्दोषत्रयविनाशनम् ॥ ९० ॥

मूली दो प्रकारकी होतीहैं, इसमें जो छोटी मूली हैं, उसके-लघुमूलक, शालमर्कटक, विस्र, शालेय, मरुसम्भव, चाणक्यमूलक, तीक्ष्ण और मूलकपोतिका ये संस्कृत नाम है ॥

जो हाथीके दाँतके सदृश बडी मूली होतीहै उसको नेपालमूलक कहतेहैं ॥

हिन्दी-मूली, बडी मूली। बं०-मूली, चणकमूली। म०-मुळा। गु०-मुला, नाहाना मुला। क०-मुलङ्गी। तै०-श्रतिदपा। फा०-तुख्म। अ०-फजला। इं०-रेडीश, Redish लै०-रफेनस् सेटिवस् Raphanus Sativus ॥

गुण-छोटीमूली-चरपरी, गरम, रुचिकारक, हलकी, पाचक, त्रिदोषनाशक, स्वरको उत्तम करनेवाली और ज्वर, श्वास, नासिकारोग, कण्ठरोग तथा नेत्ररोग नाशक है ॥

बडी मूली-रूखी, गरम, भारी और त्रिदोषको उत्पन्न करनेवाली है। यह ही मूली जो तेलमें पकाई हो तो त्रिदोषनाशक है ॥ ८७-९० ॥

अथ गृञ्जनम् [गाजर]।

गृञ्जनं गाजरं प्रोक्तं तथा नारङ्गवर्णकम्॥ गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु ॥ संग्राहि रक्तपित्तार्शोग्रहणीकफवातजित् ॥ ९१ ॥

गृंजन, गाजर, नारंगवर्णक, (पिण्डमूल, पीतकन्द, सुमूलक, स्वादुमूल, सुपीत, नारंग और पीतमूलक) ये गाजरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-गाजर। बं०-म०-गु०-गाजर। क०-सेठी मूल। तै०गृञ्जन। फा०-जर्जक। अ०-जजर। इं०-क्यारटरुट Carrotroot लै०-डाक्सकेरोटा Daucus carota॥

गुण-गाजर-मधुर, तीक्ष्ण, कडवी, गरम, अग्निको दीपन करनेवाली, हलकी, ग्राही और रक्तपित्त, बवासीर, संग्रहणी, कफ तथा वातनाशक है ॥ ९१ ॥

अथ कदलीकन्दः।

शीतलः कदलीकन्दो बल्यः केश्योऽम्लपित्तजित् ॥ वह्निकृद्दाहहारी च मधुरो रुचिकारकः ॥ ९२ ॥

केलेका कंद-शीतल, बलदायक, केशोंको उत्तम करनेवाला, अम्लपित्तको नष्टकर्त्ता, अग्निकारक, दाह नाशक, मधुर और रुचिकारक है ॥ ९२ ॥

अथ मानकन्दः।

मानकः स्यान्महापत्रः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ मानकः शोथहृच्छीतो रक्तपित्तहरो लघुः ॥ ९३ ॥

मानक, महापत्र, (स्थलपद्म, विस्तीर्णपर्ण, माण, बृहच्छद, छत्रपत्र और माणक) ये मानकदके संस्कृत नाम हैं। हिन्दी-मानकंद। गु०-मानकद ॥

गुण-मानकद-शीतल, हलका और सूजन तथा रक्तपित्तनाशक है ॥ ९३ ॥

अथ वाराहीकन्दः [गेठि]।

वाराही पित्तला बल्या कटुी तिक्ता रसायनी ॥ आयुःशुक्राग्निकृन्मेहकफकुष्ठानिलापहा ॥ ९४ ॥

वाराही, (चर्मकारालुक, विष्वक्सेनप्रिया, वृष्टि, बदरा, कच्छा, वनमालिनी, विल्वमूला, शूकरी, क्रोडकन्या, विष्वक्सेनकान्ता, वराही, कौमारी, त्रिनेत्रा, ब्रह्मपुत्री, क्रोडी, कन्या, गृष्टिका, माधवेष्टा, शूकरकन्द, क्रोड, वनवासी, कुष्ठनाशन, वल्य, अमृत, महावीर्य, शम्बरकन्द, वराहकन्द, वीर, ब्राह्मीकन्द, महौषध, सुकन्दक, वृद्धिद, व्याधिहन्ता और मागधी) ये वाराहीकन्दके संस्कृत नाम है ॥

गुण-वाराही कद-पित्तकारक, बलदायक, चरपरा, कडवा, रसायन, आयु, वीर्य तथा अग्निवर्द्धक और प्रमेह, कफ, कुष्ठ तथा वातविनाशक है ॥ ९४ ॥

अथ हस्तिकर्णा।

गजकर्णा तु तिक्तोष्णा तथा वातकफाञ्जयेत्॥ शीतज्वरहरी स्वादुः पाके तस्यास्तु कन्दकः ॥ ९५॥ पाण्डुशोथकृमिप्लीहगुल्मानाहोदरापहः ॥ ग्रहण्यर्शोविकारघ्नो वनसूरणकन्दवत् ॥ ९६ ॥

गजकर्णा, (हस्तिकन्द, हस्तिपत्र, स्थूलकन्द, अतिकन्दक, बृहत्पत्र, अतिपत्र, हस्तिकर्ण, त्वग्दोषारि, कुष्ठहन्ता, गिरिवासी, नागाश्रय, गजकन्द और नागकन्द) ये हस्तिकर्णकन्दके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-हस्तिकर्णकन्द। गु०-मानकन्दनी एकजात ॥

गुण-हस्तिकर्ण-कडवा, गरम, पाकमें मधुर है ॥

हस्तिकर्णका कद—वनसूरणकदके सदृश, शीतज्वर, वात, कफ, पाण्डु, सूजन, कृमि, प्लीहा, गुल्म, अफारा, उदरके रोग, सग्रहणी तथा ववासीरको नष्ट करैहै ॥९५॥९६॥

अथ केमुकम् [केमुआँ] ।

कमुकं कटुकं पाके तिक्तं ग्राहि हिमं लघु ॥ दीपनं पाचनं हृद्यं कफपित्तज्वरापहम् ॥ कुष्ठकासप्रमेहास्रनाशनं वातलं कटु ॥ ९७ ॥

केमुक (केमुआँ)—पाकमें चरपरा, कडवा, ग्राही, शीतल, हलका, अग्निप्रदीपक, पाचक, हृदयको प्रिय, वातकारक, चरपरा और कफ, पित्त, ज्वर, कोढ, स्वास, प्रमेह तथा रक्तविकारनाशक है ॥ ९७ ॥

अथ कसेरु, चिचोढम् ।

कसेरु द्विविधं तत्तु महद्राजकसेरुकम् ॥ मुस्ताकृति लघु स्याद्यत्तच्चिचोढमिति स्मृतम् ॥ ९८ ॥ कसेरुकद्वयं शीतं मधुरं तुवरं गुरु॥ पित्तशोणितदाहघ्नं नयनामयनाशनम् ॥ ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मारुचिस्तन्यकरं स्मृतम् ॥ ९९ ॥

कसेरु दोप्रकारके होतेहैं, जो बडे कसेरु होतेहैं, उनको राजकसेरू कहतेहैं और जो मोथेकी आकृतिवाला छोटा होताहै उसको चिन्चोढ कहतेहैं ॥

हिन्दी—कसेरू । व०—केशुर । म०—कचरा । क०—सेकिनगडे । गु०—कसेला । तै०—इट्टिकोति । लै०—स्क्रिपस् कैसुर Scripus Kesoor ॥

गुण—दोनों जातिके कसेरू—शीतल, मधुर, कसैले, भारी, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, वात, कफ तथा अरुचिकारक, दुग्धवर्द्धक और पित्त, रक्तविकार, दाह तथा नेत्ररोगनाशक हैं ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अथ शालूकम् [भसींडा] ।

पद्मादिकन्दः शालूक करहाटश्च कथ्यते ॥ मृणालमूलं भिस्साण्डं लजालूकश्च कथ्यते ॥ १०० ॥ शालूकं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्रहृद् गुरु ॥ दुर्जरं स्वादुपाकश्च स्तन्यानिलकफप्रदम् ॥ संग्राहि मधुरं रूक्षं भिस्साण्डमपि तद्गुणम् ॥ १०१ ॥

कमल आदिके कदको संस्कृतमे शालूक और करहाट कहतेहैं । कमलकी जडको भिस्साड और लजालूक कहतेहैं ॥

कमलकंद—शीतल, वीर्यवर्द्धक, भारी, दुर्जर, पाकमें मधुर, दुग्धवर्द्धक, वात तथा कफकारक, ग्राही, मधुर, रूक्ष और पित्त, दाह तथा रक्तविकारनाशक है । भसींडेमेंभी येही गुण हैं ॥ १०० ॥ १०१ ॥

अथ निषिद्ध—[तजने योग्य] शाकानि ।

बालं ह्यनार्त्तवं जीर्णं व्याधितं कृमिभक्षितम ॥ १०२ ॥ कन्दं विवर्जयेत्सर्वं यद्वाऽग्न्यादिविदूषितम् ॥ अतिजीर्णमकालोत्थं रूक्षं सिद्धमदेशजम् ॥ १०३ ॥ कर्कशं कोमलं चातिशीतव्यालादिदूषितम् ॥ संशुष्कं सकलं शाकं नाश्नीयान्मूलकं विना ॥ १०४ ॥

अतैलादिसिद्धं रूक्षम् । अदेशजम् अशुभस्थानजम् ॥

जो कद—कच्चा, विना ऋतुमे उत्पन्न हुआ, पुराना, व्याधित, दीमकआदि कीडोका खायाहुआ, अग्नि आदिसे दूषित हुआ, अत्यन्त जीर्ण, रूखा, विना समय उत्पन्न हुआ,तैल आदिमें न पकाया हुआ, निकृष्ट भूमिमें उत्पन्न हुआ, कठिन, अत्यन्त कोमल, अत्यन्त शीतल, सर्पादिकसे दूषित, ऐसा कन्द नहीं खाना चाहिये । मूलीके अतिरिक्त और सब शाक सूखे हुए नहीं खाने चाहिये ॥ १०२—१०४ ॥

अथ संस्वेदजशाकानि[पसीमसे उत्पन्नशाक]। तेषां नामानि गुणाश्च ।

उक्तं संस्वेदजं शाकं भूमिच्छत्रं शिलींध्रकम् ॥ क्षितिगोमयकाष्ठेषु वृक्षादिषु तद्भवेत् ॥ १०५ ॥ सर्वे संस्वेदजाः शीता दोषलाः पिच्छिलाश्च ते ॥ गुरवश्छर्द्यतीसारज्वरश्लेष्मामयप्रदाः ॥ १०६ ॥ श्वेतशुभ्रस्थलीकाष्ठवंशगोव्रणसम्भवाः ॥

नाति दोषकरास्ते स्युः शेषास्तेभ्यो विगर्हिताः ॥ १०७ ॥

इति पञ्चमप्रकरणे शाकवर्गः।

सस्वेदज, भूमिच्छत्र, शिलीन्ध्रक, (भूच्छत्र, पृथिवीकन्द, शिलीध्र, कवच, भूच्छत्र, भूमिस्फोट, धरांकुर, भूसुता, छत्र, छत्राक, उच्छिलीन्ध्र और स्वेदज) ये संस्वेदजशाकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सांपकी छत्री, छतोना। बं०–छातकुड, छातोना। म०–भुइफोड। गु०–सस्वेदज शाको। इ०–मश्रुम Mushroem लै०–फगाई Fungi ॥

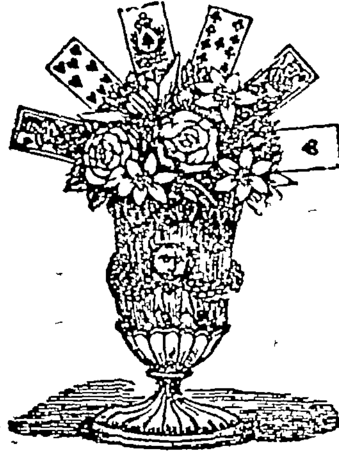
यह शाक–पृथ्वी, गोवर, लकडी और वृक्षादिकोमे उत्पन्न होताहै ॥

गुण–सम्पूर्ण सस्वेदज शाक–शीतल, दोपयुक्त, पिच्छिल, भारी और वमन, अतीसार, ज्वर तथा कफसबधी रोगोंको उत्पन्न करै है ॥

जो सस्वेदज शाक–श्वेतवर्णवाले, पवित्रस्थानमे उत्पन्न हुए, काष्ठ, बॉस तथा गोवरमे उत्पन्न हुए हों वे अत्यत दोपकारक नही हैं, शेपके सम्पूर्ण सस्वेदज शाक निंदित हैं ॥ १०५–१०७ ॥

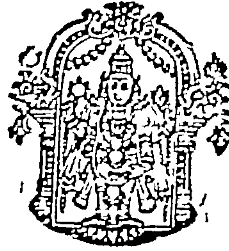
इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृत-भाषाटीकायां शाकवर्गः समाप्तः।

इति श्रीभावप्रकाशे पूर्वखण्डस्य प्रथमो भागः समाप्तः १.



KHEMRAJ SHRIKRISHNADAS,
SHRI VENKTESHWAR STEAM PRESS,
BOMBAY.

॥ श्रीवेंकटेशाय नमः ॥


अथ भावप्रकाश-पूर्वखण्डे

द्वितीयो भागः

अथ मांसवर्गः

अथ मांसस्य नामानि ।

मांसं तु पिशितं क्रव्यमामिषं पललं पलम् ॥ मांसं वातहरं सर्वं बृंहणं बलपुष्टिकृत् ॥ प्रीणनं गुरु हृद्यञ्च मधुरं रसपाकयोः ॥ १ ॥

मांस, पिशित, क्रव्य, आमिष, पलल और पल, ये मांसके संस्कृत नाम हैं ॥

गुण–सर्व प्रकारके मांस–वातनाशक, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, तृप्तिदायक, भारी, हृदयको प्रिय और रसमे तथा पाकमें मधुर हैं ॥ १ ॥

अथ मांसभेदाः ।

मांसवर्गो द्विधा ज्ञेयो जांगलाऽऽनूपभेदतः २

सम्पूर्ण मांस दो प्रकारके हैं, एक जांगलमांस और दूसरे आनूपमांस ॥ २ ॥

जांगलमांसस्य लक्षणं गुणाश्च ।

मांसवर्गेऽत्र जंघाला बिलस्थाश्च गुहाशयाः ॥ तथा पर्णमृगा ज्ञेया विष्किराः प्रतुदास्तथा ॥ ३ ॥ प्रसहा अथ च ग्राम्या अष्टौ जांगलजातयः ॥ जांगला मधुरा रूक्षास्तुवरा लघवस्तथा ॥ बल्यास्ते बृंहणा वृष्या दीपना दोषहारिणः ॥ ४ ॥ मूकतां मिन्मिनत्वं च गद्गदत्वार्दिते तथा ॥ बाधिर्य्यमरुचिच्छर्दिप्रमेहमुखजान्गदान् ॥ श्लीपदं गलगण्डञ्च नाशयत्यनिलामयान् ॥ ५ ॥

यहाँ मांसवर्गमें जांघल, बिलस्थ (बिलेशय), गुहाशय, पर्णमृग, विष्किर, प्रतुद, प्रसह और ग्राम्य, ये आठ जांगल जातिमें हैं ॥

गुण–जांगलजातिके मांस–मधुर, रूक्ष, कसैले, हलके, बलदायक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, अग्निको दीपन करनेवाले, दोषनाशक और गूंगापन, मिन्मिनापन, तोतलापन, अर्दितवात (लकवा), बहरापन, अरुचि, वमन, प्रमेह, मुखरोग, श्लीपद, गलगण्ड तथा वातसंबंधी रोगोको नष्ट करैहै ॥ ३–५ ॥

अथ आनूपमांसस्य लक्षणं गुणाश्च ।

कूलेचराः प्लवाश्चापि कोशस्थाः पादिनस्तथा ॥ मत्स्या एते समाख्याताः पञ्चधानूपजातयः ॥ ६ ॥ आनूपा मधुराः स्निग्धा गुरवो वह्निसादनाः ॥ श्लेष्मलाः पिच्छिलाश्चापि मांसपुष्टिप्रदा भृशम् ॥

तथाऽभिष्यन्दिनस्ते हि प्रायः पथ्यतमाः स्मृताः ॥ ७ ॥

कूलेचर, प्लव, कोशस्थ, पादी और मत्स्य, ये पाँच अनूपजातिमे हैं ॥

गुण—अनूपजातिके मांस—मधुर, स्निग्ध, भारी, अग्निको मन्द करनेवाले, कफकारक, पिच्छिल, मासको बहुत पुष्टिदायक, अभिष्यन्दी और विशेषप्रकरके बहुत पथ्य हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ जांगलाः ।

तत्र जंघाल गणनाविशिष्टगुणाः ।

हरिणैणकुरंगर्ष्यपृषतन्यंकुशम्बराः ॥ राजीवोऽपि च मुण्डी चेत्याद्या जांगलसंज्ञकाः ॥८॥ हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णः प्रकीर्तितः ॥ कुरंग ईषत्ताम्रः स्यादेणतुल्याकृतिर्महान् ॥ ९ ॥ ऋष्यो नीलांगको लोके स रोझ इति कीर्तितः ॥ पृषतश्चन्द्रबिन्दुः स्याद्धरिणात्किञ्चिदल्पकः ॥ १० ॥ न्यंकुर्बहुविषाणोऽथ शम्बरो गवयो महान् ॥ राजीवस्तु मृगो ज्ञेयो राजिभिः परितो वृतः ॥ ११ ॥ यो मृगः शृङ्गहीनः स्यात्स मुण्डीति निगद्यते ॥ जंघालाः प्रायशः सर्वे पित्तश्लेष्महराः स्मृताः ॥ किञ्चिद्वातकराश्चापि लघवो बलवर्द्धनाः ॥ १२ ॥

हरिण, एण, कुरङ्ग, ऋश्य, पृषत, न्यंकु, शम्बर, राजीव और मुण्डी, इत्यादि पशु जघालसज्ञक हैं । जो मृग लालवर्णका होय उसको हरिण, जो काला हो उसको एण, जो किंचित् लालवर्णका बडा और एणके सदृश आकृतिवाला हो उसको कुरग, जो नीले वर्णका हो उसको ऋष्य और लोकमें रोझ, जो चन्द्रके सदृश छींटोवाला और हरिणसे कुछ छोटा हो उसको पृषत, जिसके बहुतसे सींग हो उसको न्यकु (बारहसिगा) बडे रोझको शम्बर, जिसके शरीरमे अधिक रेखा पडी हो उसको राजीव आर जो मृग सीगरहित होताहै उसको मुण्डी कहतेहैं । प्रायः सर्व जघाल—पित्त तथा कफनाशक, कुछ वातकारक, हलके और बलवर्द्धक है ॥ ८–१२ ॥

अथ बिलेशयानां [बिलनिवासी प्राणियोंकी] गणना गुणाश्च ।

गोधाशशभुजंगाखुशल्लक्याद्या बिलेशयाः ॥ बिलेशया वातहरा मधुरा रसपाकयोः ॥ बृंहणा बद्धविण्मूत्रा वीर्योष्णाश्च प्रकीर्त्तिताः ॥ १३ ॥

गोह, खरगोश, साप, मूसा और शल्लकी (सेई) इत्यादिक बिलस्थ (मिट्टीमे रहनेवाले) कहातेहै ।

बिलस्थोंके मांस—वातनाशक, रसमे तथा पाकमे मधुर, पुष्टिकारक, मल तथा मूत्रको बाधनेवाले और उष्णवीर्य है ॥ १३ ॥

अथ गुहाशयानां [गुफानिवासी प्राणियोंकी] गणना गुणाश्च ।

सिंहव्याघ्रवृका ऋक्षतरक्षुद्वीपिनस्तथा ॥ बभ्रुजम्बूकमार्जारा इत्याद्याः स्युर्गुहाशयाः ॥ १४ ॥ स्थूलपुच्छो रक्तनेत्रो बभ्रुदेहः स नाकुलः ॥ गुहाशया वातहरा गुरूष्णा मधुराश्च ते ॥ स्निग्धा बल्या हिता नित्यं नेत्रगुह्यविकारिणाम् ॥१५॥

सिह, बाघ, भेडिया, रीछ, तरक्षु (चीतल), चीता, बभ्रु (नौला), गीदड और बिलाव, इत्यादि जीव गुहाशय (गुफामें रहनेवाले) कहातेहैं । जो मोटी पूँछवाला और लाल नेत्रोयुक्त तथा बभ्रुके सदृश देहवाला होताहै उसको नाकुल (न्यौला) कहतेहैं ॥

सम्पूर्ण गुहाशयोका मास—वातनाशक, भारी, गरम, मधुर, स्निग्ध, बलदायक और नेत्र तथा गुदाके रोगवालोंको सर्वदा हितकारी है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ पर्णमृगाणां [पत्ते खानेवाले प्राणियोंकी] गणना गुणाश्च

वनौका वृक्षमार्जारो वृक्षमर्कटिकादयः ॥ एते पर्णमृगाः प्रोक्ताः सुश्रुताद्यैर्महर्षिभिः ॥ १६ ॥

वनौका वानरः । वृक्षमार्जारो वृक्षविडालः । वृक्षमर्कटिका 'रूपी वानर' इति लोके ॥

स्मृताः पर्णमृगा वृष्याश्चक्षुष्याः शोषिणे हिताः ॥ श्वासार्शःकासशमनाः सृष्टमूत्रपुरीषकाः ॥ १७ ॥

वानर, वृक्षपर रहनेवाले बिलाव (वनबिलाव) और वृक्षमर्कटी (रूपी) ये सुश्रुतआदि महर्षियोंने पर्णमृग कहे हैं ॥

पर्णमृगोंका मास–वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, शोष (क्षय) रोगवालोंको हितकारी, मल तथा मूत्रको निकालनेवाला और श्वास, बवासीर तथा खासीको नष्ट करैहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ विष्किराणां [विष्किरपक्षियोंकी] गणना गुणाश्च ।

वर्त्तकालाववर्त्तीरकपिञ्जलकतित्तिराः ॥ कुलिंगकुक्कुटाद्याश्च विष्किराः समुदाहृताः ॥ १८ ॥ विकीर्य भक्षयन्त्येते यस्मात्तस्माद्धि विष्किराः ॥ कपिञ्जल इति प्राज्ञैः कथितो गौरतित्तिरिः ॥ १९ ॥ विष्किरा मधुराः शीताः कषायाः कटुपाकिनः ॥ बल्या वृष्यास्त्रिदोषघ्नाः पथ्यास्ते लघवः स्मृताः ॥ २० ॥

वर्त्तक (चित्रविचित्र रंगके परोंकी चिडिया), लाव (लवा), बटेर, गौरतीतर, तीतर, घरकी चिडिया और मुरगा आदिक विष्किर कहातेहैं । ये जीव कुरेद कुरेदकर खातेहैं इससे इनकी विष्किर सज्ञा है । कपिञ्जल अर्थात् गौरतीतर (कबूतर) जानना । विष्किर जीवोंका मास-मधुर, शीतल, कसैला, पाकमें चरपरा, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, त्रिदोषनाशक, पथ्य और हलका है ॥ १८–२० ॥

अथ प्रतुदानां [चूंचसे खानेवाले पक्षियोंकी] गणना गुणाश्च ।

हारीतो धवलः पाण्डुश्चित्रपक्षो बृहच्छुकः ॥ पारावतः खञ्जरीटः पिकाद्याः प्रतुदाः स्मृताः ॥ प्रतुद्य भक्षयन्त्येते तुण्डेन प्रतुदास्ततः ॥ २१ ॥

हारीतः हरियल इति लोके ॥

कपोतो धवलः पाण्डुः शतपत्रो बृहच्छुकः ॥ २२ ॥

दार्वाघाटः इत्यमरः । 'कटफोरा' इतिलोके ॥

प्रतुदा मधुराः पित्तकफघ्नास्तुवरा हिमाः ॥ लघवो बद्धवर्च्चस्काः किञ्चिद्वातकराः स्मृताः ॥ २३ ॥

हरियल, पिंडुकिया, चित्रपक्ष (एक प्रकारका तोता), बडा तोता, कबूतर, खजन और कोयल आदिक प्रतुद कहेहैं । ये चोंचसे पदार्थको निखोलकर खातेहैं इससे इनको प्रतुद कहाहै । कबूतर–सफेद और पाण्डुवर्ण ऐसे दो प्रकारका होताहै, शतपत्र यह बडे तोतेहीका नाम है और अमरकोशमें तौ कठफोरेको लिखा है ॥

प्रतुदजीवोंका मास–मधुर, पित्त तथा कफनाशक, कसैला, शीतल, हलका, मलको बाधनेवाला और किंचित् वातकारक है ॥ २१–२३ ॥

अथ प्रसहानां [दूसरेसे छीनकर खानेवाले पक्षियोंकी] गणना गुणाश्च ।

काको गृध्र उलूकश्च चिल्लश्च शशघातकः ॥ चाषो भासश्च कुरर इत्याद्याः प्रसहाः स्मृताः ॥ २४ ॥

शशघातकः, बाज इति लोके । चाषो नीलकण्ठ इति लोके । "भासो गृध्रविशेषः स्यात्" । कुररः 'कुरांकुर' इति लोके । " प्रसहाः कीर्त्तिता एते प्रसह्याच्छिद्य भक्षणात् " ॥

प्रसहाः खलु वीर्योष्णास्तन्मांसं भक्षयन्ति ये ॥ ते शोषभस्मकोन्मादशुक्रक्षीणा भवन्ति हि ॥ २५ ॥

कौआ, गिद्ध, उल्लू, चील, बाज, बशिकरा, बकुई, नीलकठ, भास (एक प्रकारका गिद्ध) और कुरर (कुञ्ज) इत्यादि प्रसह कहातेहैं । ये बलात्कारसे छीनकर खातेहैं इससे इनका नाम प्रसह है ॥

प्रसह जीवोंका मास–उष्णवीर्य है, इससे जो इनको खातेहैं उनको–शोष, भस्मक और उन्माद रोग होताहै तथा वीर्य क्षीण होताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ ग्राम्याणां [ग्राम्यपशुओंकी] गणना गुणाश्च ।

छागमेषवृषाश्वाश्च ग्राम्याः प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ ग्राम्या वातहराः सर्वे दीपनाः कफपित्तलाः ॥ मधुरा रसपाकाभ्यां बृंहणा बलवर्द्धनाः ॥ २६ ॥

बकरी, मेढा, बैल और घोडा इत्यादि जीव ग्राम्य है। ग्राम्य जीवोका मास–वातनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला, कफ तथा पित्तकारक, पाकमे तथा रसमे मधुर, पुष्टिदायक और बलवर्द्धक हैं ॥ २६ ॥

अथाऽऽनूपाः।

तत्र कूलेचराणां गणना गुणाश्च।

लुलायगण्डवाराहचमरीवारणादयः॥ एते कूलेचराः प्रोक्ता यतः कूले चरन्त्यपाम् ॥ २७ ॥

लुलायो महिषः। गण्डः खड्गः। चमरी चमरपुच्छि गौ ॥

कूलेचरा मरुत्पित्तहरा वृष्या बलावहाः॥ मधुराः शीतलाः स्निग्धा मूत्रलाः श्लेष्मवर्धनाः ॥ २८ ॥

भैंसा, गेडा, सुअर, चमरगाय (सुरैगाय) और हाथी आदि कूलेचर (जलके किनारे रहनेवाले) हैं ॥

कूलेचरजीवोका मांस–वात तथा पित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, मधुर, शीतल, स्निग्ध, मूत्रको बढानेवाला और कफवर्द्धक है ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ प्लवानां [पंक्तियोंसे आकाशमें उडनेवाले पक्षियोंकी] गणना गुणाश्च।

हंससारसकारण्डबककौञ्चशरारिकाः॥ नन्दीमुखी सकादम्बा बलाकाद्याः प्लवाः स्मृताः॥प्लवन्ति सलिले यस्मादेते तस्मात्प्लवाः स्मृताः ॥ २९ ॥

कारण्डः कपर्दिकाख्यो बृहद्धंसभेदः ॥

स्थूला कठोरा वृत्ता च यस्याश्चञ्चूपरि स्थिता॥गुटिका जम्बुसदृशी प्रोक्ता नन्दीमुखीति सा ॥ ३० ॥

बलाका बगुली इति लोक ॥

प्लवाः पित्तहराः स्निग्धा मधुरा गुरवो हिमाः॥वातश्लेष्मप्रदाश्चापि बलशुक्रकराः सराः ॥ ३१ ॥

हस, सारस, चकवा, वगला, कौंच (ढेक), शरारी (वगलेका भेद), नन्दीमुखी, बत्तक और बलाका, आदि जीवोंको प्लव कहाहै। ये जलमे तैरतेहैं, इसकारण इनका नाम प्लव है। जिसकी चोंचके ऊपर मोटी, कठोर, गोल और जम्बूके सदृश गोलाई हो उसको नदीमुखी कहतेहै ॥

प्लवजीवोका मास–पित्तनाशक, चिकना, मीठा, भारी, शीतल, वात तथा कफको उत्पन्न करनेवाला, बलदायक, वीर्यवर्द्धक और दस्तावर है ॥ २९–३१ ॥

अथ कोशस्थानां [ढकनेके मध्यमें रहनेवाले प्राणियोंकी] गणना गुणाश्च।

शङ्खःशङ्खनखश्चापि शुक्तिशम्बूककर्कटाः॥ जीवाः एवंविधाश्चान्ये कोशस्थाः परिकीर्तिताः ॥ ३२ ॥

शङ्खनखः क्षुद्रशङ्खः ॥

कोशस्था मधुराः स्निग्धा वातपित्तहरा हिमाः ॥ बृंहणा बहुवर्चस्का वृष्याश्च बलवर्द्धनाः ॥ ३३ ॥

शख, छोटाशख, सीप, शम्बूक (जलकी छोटी सीप) और कर्कट ककेडा आदिक तथा इसीप्रकारके और भी जीव कोशस्थ कहातेहैं ॥

कोशस्थजीवोंका मांस मधुर, चिकना, वात तथा पित्त नाशक, शीतल, पुष्टिकारक, बहुतमलकर्त्ता, वीर्यवर्द्धक और बलदायक है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ पादिनां [पांवोंके प्राणियोंकी] गणना गुणाश्च।

कुम्भीरकूर्मनक्राश्च गोधामकरशङ्कवः ॥ घण्टिकःशिशुमारश्चेत्यादयःपादिनःस्मृताः॥

कुम्भीरो मारको जलजन्तुः। कूर्मः कच्छपः। नक्रः नाका इति लोके। गोधा गोहिजलजन्तुः। मकरःमगर इति लोके। शंकुः शाकुच इति लोके। घण्डिकः घडियाल इति लोके ॥

पादिनोऽपि च ये ते तु कोशस्थानां गुणैः समाः ॥ ३५ ॥

कुम्भीर (मार डालनेवाला जलका जीव) कछुआ, नाका, गोह, मगरमच्छ, शकु (शाकुच) घडियाल और शिशुमार (सूँस) इत्यादि जलमे रहनेवाले जिनके पॉव होते हैं उनको पादी कहतेहैं। पादी जीवोंका मास भी कोशस्थके सदृश गुणकारक है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथ मत्स्यानां [मत्स्योंके] नामानि गुणाश्च ।

मत्स्यो मीनो विकारश्च झषो वैसारिणोऽण्डजः ॥ शकुली पृथुरोमा च स सुदर्शन इत्यपि ॥३६॥ रोहिताद्यास्तु ये जीवास्ते मत्स्याः परिकीर्त्तिताः॥मत्स्याः स्निग्धोष्णमधुरा गुरवः कफपित्तलाः ॥ ३७ ॥ वातघ्ना बृंहणा वृष्या रोचका बलवर्द्धनाः ॥ मद्यव्यवायसक्तानां दीप्ताग्नीनाञ्च पूजिताः ॥ ३८ ॥

मत्स्य, मीन, विकार, झष, वैसारिण, अडज, शकुली, पृथुरोमा और सुदर्शन, ये मच्छियोंके नाम हैं । रोहिडा आदिक जो जीव जलमें होतेहैं, उनको मछली कहतेहैं ॥

मछली–चिकनी, गरम, भारी, कफ तथा पित्तकारक, वातनाशक, पुष्टिदायक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, बलवर्द्धक और मद्य (दारू) तथा मैथुनमें आसक्तोंको तथा प्रदीप जठराग्निवालोंको हितकारी है ॥ ३६–३८ ॥

अथ जंघालादीनां [जांघवालोंके] नामानि गुणाश्च ।

तत्र जंघालेषु हरिणस्य गुणाः ।

हरिणः शीतलो बद्धविण्मूत्रो दीपनो लघुः॥ रसे पाके च मधुरः सुगन्धिः सन्निपातहा॥३९

हिरनका मास–शीतल, मल तथा मूत्रको बॉधनेवाला अग्निप्रदीपक, हलका, रसमें तथा पाकमे मीठा, सुगंधि और सन्निपातनाशक है ॥ ३९ ॥

अथ एणहरिणः [कालाहरिण] ।

एणः कषायो मधुरः पित्तासृक्कफवातहृत् ॥ संग्राही रोचनो बल्यो ज्वरप्रशमनः स्मृतः ॥ ४० ॥

एण नामक मृगका मास–कसैला, मीठा, ग्राही, रुचिकारक, बलदायक और पित्त, रक्तविकार, कफ, वात तथा ज्वर नाशक है ॥ ४० ॥

अथ कुरङ्गः ।

कुरंगो बृंहणो बल्यः शीतलः पित्तहृद्गुरुः ॥ मधुरो वातहृद्ग्राही किञ्चित्कफकरः स्मृतः ॥ ४१ ॥

कुरग नामक मृगका मास–पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, शीतल, पित्तनाशक, भारी, मधुर, वातनाशक, ग्राही और किंचित् कफकारक है ॥ ४१ ॥

अथ रोझः ।

ऋष्यो नीलाण्डकश्चापि गवयो रोझ इत्यपि॥गवयो मधुरो बल्यः स्निग्धोष्णः कफपित्तलः ॥ ४२ ॥

ऋष्य, नीलाडक, गवय और रोझ, ये रोझके नामहैं ॥ रोझका मास–मधुर, बलदायक, स्निग्ध, गरम और कफ तथा पित्तकारक है ॥ ४२ ॥

अथ पृषतः [चित्तालमृग] ।

पृषतस्तु भवेत्स्वादुर्ग्राहकः शीतलो लघुः ॥ दीपनो रोचनःश्वासज्वरदोषत्रयास्रजित् ४३॥

पृषत (चित्तल) नामक मृगका मास–मधुर, ग्राही, शीतल, हलका, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक और श्वास, ज्वर त्रिदोष तथा रक्तविकारनाशक है ॥ ४३ ॥

अथ न्यंकुः [बारहसिगा] ।

न्यंकुः स्वादुर्लघुर्बल्यो वृष्यो दोषत्रयापहः॥४४

न्यकु नामक मृग(बारह सिगा)का मास–मधुर, हलका, बलदायक, वीर्यवर्द्धक और त्रिदोषनाशक है ॥ ४४ ॥

अथ साबरम् ।

साबरं पललं स्निग्धं शीतलं गुरु च स्मृतम्॥ रसे पाके च मधुरं कफदं रक्तपित्तहृत् ॥ ४५ ॥

राजीवस्तु गुणैर्ज्ञेयः पृषतेन समो जनैः ॥

साबर मृगका मास–स्निग्ध, शीतल, भारी, रसमें तथा पाकमें मीठा, कफकारक और रक्तपित्त नाशक है ॥४५॥

राजीवनामक मृगके मांसके गुण पृषत (चित्तल) के मासके सदृश ही हैं ॥

अथ मुण्डी ।

मुण्डी तु ज्वरकासास्रक्षयश्वासापहो हिमः ४६

मुण्डी (सीगरहित) मृगका मास–शीतल और ज्वर, खॉसी, रक्तविकार, क्षय तथा श्वासनाशक है ॥ ४६ ॥

अथ बिलेशयाः।

तत्र शश [खरगोश] स्य नामगुणाः। लम्बकर्णः शशः शूली लोमकर्णो बिलेशयः ॥ शशः शीतो लघुर्ग्राही रूक्षः स्वादुः सदा हितः ॥ ४७ ॥ वह्निकृत्कफपित्तघ्नो वातसाधारणः स्मृतः ॥ ज्वरातीसारशोषास्रश्वासामयहरश्च सः ॥ ४८ ॥

लंबकर्ण, शश, शूली, लोमकर्ण और बिलेशय, ये खरगोश चौगडाके सस्कृत नाम हैं ॥

खरगोशका मास–शीतल, हलका, ग्राही, रूखा, स्वादु सदा हितकारी, अग्निकारक, कफ तथा पित्तनाशक, साधारण वातकारक और ज्वर, अतिसार, शोष, रक्तविकार तथा श्वासको नष्ट करैहै ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥

अथ सेधा [सेह, साही]।

सेधा तु शल्यकः श्वावित्कथ्यन्त तद्गुणा अथ ॥ शल्यकः श्वासकासास्रशोषदोषत्रयापहः ॥ ४९ ॥

सेधा, शल्यक और श्वावित्, ये सेहके संस्कृत नाम हैं॥ सेहका मास–श्वास, खाँसी, रक्तविकार शोष तथा त्रिदोषनाशक है ॥ ४९ ॥

अथ पक्षिणां [पक्षियोंके] नामानि गुणाश्च।

पक्षी खगो विहङ्गश्च विहगश्च विहङ्गमः॥ शकुनिर्विः पतत्री च विष्किरो विकिरोऽण्डजः॥५०॥ धान्यांकुरचरा येऽत्र तेषां मांसं लघूत्तमम् ॥ आनूपं बलकृन्मांसं स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम् ॥ ५१ ॥

पक्षी, खग, विहग, विहग, विहगम, शकुनि, वि, पतत्री, विष्किर, विकिर और अडज ये पक्षीके सस्कृत नाम हैं॥ जो पक्षी धान्य तथा अकुर खानेवाले हैं इससे उनका मांस हलका और उत्तम है। जो पक्षी जलमे रहनेवाले है उनका मांस स्निग्ध, बलदायक और बहुत भारी है ॥५०॥ ५१ ॥

अथ तेष विष्किरषु वर्तकः [बटर]।

वर्तीको वर्त्तकश्चित्रस्ततोऽन्यो वर्त्तका स्मृता ॥ वर्त्तकोऽग्निकरः शीतो ज्वरदोषत्रयापहः ॥ सुरुच्यः शुक्रदो बल्यो वर्त्तकाल्पगुणा ततः ॥ ५२ ॥

वर्त्तीक, वर्तक और चित्र, ये बटेरके नाम है। इसकी जातिके दूसरे पक्षियोको वर्त्तका कहते हैं ॥

बटेरका मांस–अग्निकारक, शीतल, रुचिकारी, वीर्यवर्द्धक, बलदायक और ज्वर तथा त्रिदोपनाशक है। वर्तकामे इससे हीन गुण ह ॥ ५२ ॥

अथ लावः [लवा]।

लावा विष्किरवर्गेषु ते चतुर्धा मता बुधैः॥ पांशुलो गौरकोऽन्यस्तु पौण्ड्रको दर्भरस्तथा॥ ५३ ॥ लावा वह्निकराः स्निग्धा गरघ्ना ग्राहिका हिताः ॥ पांशुलः श्लेष्मलस्तेषु वीर्योष्णोऽनिलनाशनः ॥ ५४ ॥ गौरो लघुतरो रूक्षो वह्निकारी त्रिदोषजित् ॥ पौण्ड्रकः पित्तकृत्किञ्चिल्लघुर्वातकफापहः ॥ दर्भरो रक्तपित्तघ्नो हृदामयहरो हिमः ॥ ५५ ॥

विष्किरवर्गमे लवा भी है, वह पाशुल, गौरक, पौण्ड्रक और दर्भर, इस भाँति चार प्रकारका होताहैं ॥

लवेका मास–अग्निकारक, स्निग्ध, विषविनाशक, ग्राही और हितकारी है ॥

पाशुलजातिका लवा–कफकारक, उष्णवीर्य और वात नाशक है ॥

गौरकजातिका लवा–अत्यत हलका, रूक्ष, अग्निकारक और त्रिदोषनाशक है। पौण्ड्रकजातिका लवा पित्तकर्ता, किंचित् हलका और वात तथा कफनाशक है। और दर्भरजातिका लवा–रक्तपित्तनाशक, हृदयरोगहारक औ शीतलहै ॥ ५३–५५ ॥

अथ वार्तीकः [वगेरा बटेरा]।

वालीको वर्तिचटको वार्तीकश्चैव स स्मृतः॥ वालीको मधुरः शीतो रूक्षश्च कफपित्तनुत् ॥ ५६ ॥

वालीक, वर्तिचटक और वार्तीक, ये वगेरेके सस्कृत नाम हैं ॥

वगेरेका मास–शीतल, रूक्ष और कफ तथा पित्तनाशक है ॥ ५६ ॥

अथ कृष्णतित्तिरिगौरतित्तिरी [तीतर]।

तित्तिरिः कृष्णवर्णः स्याच्चित्रोऽन्यो गौरतित्तिरिः॥ तित्तिरिर्बलदो ग्राही हिक्कादोषत्रयापहः ॥ श्वासकासज्वरहरस्तस्माद्गौरोऽधिको गुणैः ॥ ५७ ॥

जो तीतर काले रंगका हो वह काला तीतर और जो चित्र विचित्र वर्णका हो वह गौर तीतर कहाताहै ॥

तीतरका मांस–बलदायक, ग्राही और हिचकी, त्रिदोष, श्वास, खाँसी तथा ज्वरनाशक है । काले तीतरकी अपेक्षा गौरतीतरके मांसमें अधिक गुण है ॥ ५७ ॥

अथ चटकः [गवरैया चिडा]।

चटकः कलविङ्कः स्यात्कुलिङ्गः कालकण्ठकः ॥ कुलिङ्गः शीतलः स्निग्धः स्वादु शुक्रकफप्रदः ॥ सन्निपातहरो वेश्मचटकश्चातिशुक्रलः ॥ ५८ ॥

चटक, कलविंक, कुलिंग और कालकंठक, ये चिडेके नाम है ॥

चिडेका मांस–शीतल, स्निग्ध, मधुर, वीर्य तथा कफवर्द्धक और सन्निपातनाशक है । घरोंमें रहनेवाले चिडेका मांस अत्यंत वीर्यवर्द्धक है ॥ ५८ ॥

अथ कुक्कुटः, वनकुक्कुटश्च [मुरगा]।

कुक्कुटः कृकवाकुः स्यात्कालज्ञश्चरणायुधः॥ ताम्रचूडस्तथा दक्षो प्रातर्नादो शिखण्डिकः ॥ ५९॥ कुक्कुटा बृंहणः स्निग्धो वीर्योष्णोऽनिलहृद्गुरु ॥ चक्षुष्यः शुक्रकफकृद्बल्यो वृष्यः कषायकः ॥ ६० ॥ आरण्यकुक्कुटः स्निग्धो बृंहणः श्लेष्मलो गुरुः ॥ वातपित्तक्षयवमिविषमज्वरनाशनः ॥ ६१ ॥

कुक्कुट, कृकवाकु, कालज्ञ, चरणायुध, ताम्रचूड, दक्ष, प्रातर्नादी और शिखंडिक, ये मुरगेके संस्कृत नाम हैं ॥

मुरगेका मांस–पुष्टिदायक, स्निग्ध, उष्णवीर्य, वातनाशक, भारी, नेत्रोंको हितकारी, वीर्य तथा कफ वर्धक, बलदायक, वृष्य और कसैला है । वनमुरगेका मांस–स्निग्ध, पुष्टिकारक, कफकर्ता, भारी और वात, पित्त, क्षय, वमन तथा विषमज्वरनाशक है ॥ ५९–६१ ॥

अथ प्रतुदाः।

हारीतः [हरियल]।

हारीतो रक्तपीतः स्याद्धरितोऽपि स कथ्यते ॥ ६२ ॥ हारीतो रूक्ष उष्णश्च रक्तपित्तकफापहः ॥ स्वेदस्वरकरः प्रोक्त ईषद्वातकरश्च सः ॥ ६३ ॥

हारीत, रक्तपीत और हरित, ये हरियलके नाम हैं ॥

हरियलका मांस, रूखा, गरम, रक्तपित्त तथा कफनाशक, स्वेदकारक, स्वरको, उत्तम करनेवाला और किंचित् वातकारक है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ पाण्डुधवलपाण्डू [पण्डाकुता]।

पाण्डुस्तु द्विविधो ज्ञेयश्चित्रपक्षः कलध्वनिः ॥ द्वितीयो धवलः प्रोक्तः स कपोतः स्फुटस्वनः ॥ ६४ ॥ चित्रपक्षः कफहरो वातघ्नो ग्रहणीप्रणुत् ॥ धवलः पाण्डुरुद्दिष्टो रक्तपित्तहरो हिमः ॥ ६५ ॥

पडाकुता दो प्रकारकी होतीहै। एक चित्रित पखोंयुक्त मीठे स्वरवाली होतीहै और दूसरी सफेदवर्णयुक्त स्फुटशब्दोंवाली होतीहै, पहिलीको पाण्डु और दूसरीको धवल और कपोत कहतेहै ॥ ६४ ॥

चित्रपक्षका मांस-कफनाशक और वात तथा संग्रहणीनाशक है ॥

धवलका मांस–रक्तपित्तनाशक और शीतल हैं ॥६५॥

अथ मयूरः [मोर]।

मयूरश्चन्द्रकी केकी मेघरावो भुजङ्गभुक्। शिखी शिखावलो बर्ही शिखण्डी नीलकण्ठकः ॥ ६६ ॥ शुक्लापाङ्गः कलापी च मेघनादानुलास्यपि॥ रसे पाके च मधुरः संग्राही वातशान्तिकृत् ॥ ६७ ॥

मयूर, चन्द्रकी, केकी, मेघराव, भुजगभुक्, शिखी, शिखावल, बर्ही, शिखंडी, नीलकंठ, शुक्लापांग, कलापी और मेघनादानुलासी, ये मोरके संस्कृत नाम हैं ॥

मोरका मांस—रसमें तथा पाकमे मधुर, ग्राही और वातनाशक है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

अथ पारावतः [कबूतर, परेवा] ।

पारावतः कलरवः कपोतो रक्तवर्द्धनः ॥ पारावतो गुरुः स्निग्धो रक्तपित्तानिलापहः॥ संग्राही शीतलस्तज्ज्ञैः कथितो वीयवर्द्धनः ॥ ६८ ॥

पारावत, कलरव, कपोत और रक्तवर्द्धन, ये परेवा और कबूतरके नाम हैं। इन दोनोका मास भारी, स्निग्ध, ग्राही, शीतल, वीर्यवर्द्धक और रक्तपित्त तथा वातनाशक है ॥ ६८ ॥

अथ पक्ष्यण्डस्य [पक्षियोंके अंडोंके] गुणाः ।

नातिस्निग्धानि वृष्याणि स्वादुपाकरसानि च ॥ वातघ्नान्यतिशुक्राणि गुरूण्यण्डानि पक्षिणाम् ॥ ६९ ॥

पक्षियोंके अण्डेको हिन्दीमे अंडा । ब०—डिम्ब । गु० इंडा कहते हैं । पक्षियोका अडा—बहुत स्निग्ध नही, वृष्य, भारी, पाकमे तथा रसमें मधुर, वातनाशक और अत्यत वीर्यवर्द्धक है ॥ ६९ ॥

अथ ग्राम्यच्छागः [बकरा] ।

छागलो बर्करश्छागो बस्तोऽजश्छेलकः स्तुभः ॥ अजा छागी स्तुभा चापि छेलिका च गलस्तनी ॥ ७० ॥ छागमं लघु स्निग्धं स्वादुपाकं त्रिदोषनुत्॥नातिशीतमदाहि स्यात्स्वादु पीनसनाशनम् ॥७१॥ परं बलकरं रुच्यं बृंहणं वीर्यवर्द्धनम् ॥अजायास्त्वप्रसूताया मांसं पीनसनाशनम् ॥ ॥ ७२ ॥ शुष्ककासेऽरुचौ शोषे हितमग्नेश्च दीपनम् ॥ अजासुतस्य बालस्य मांसं लघुतरं स्मृतम् ॥७३॥ हृद्यं ज्वरहरं श्रेष्ठं सुखदं बलदं भृशम् ॥ मांसं निष्कासिताण्डस्य छागस्य कफकृद् गुरु॥७४॥स्रोतः-शुद्धिकरं बल्यं मांसदं वातपित्तनुत्॥वृद्धस्य वातलं रूक्षं तथा व्याधिमृतस्य च ॥ ऊर्द्ध्वजत्रुविकारघ्नं छागमुण्डं रुचिप्रदम् ॥७५॥

छागल, वर्कर, छाग, बस्त, अज, छेलक और स्तुभ, ये बकरेके सस्कृत नाम हैं ॥

बकरेका मास—हलका, स्निग्ध, पाकमे मीठा, त्रिदोषनाशक, बहुत, शीतल नहीं, दाहकारक नहीं, स्वादु. पीनसनाशक, अत्यंत बलकर्त्ता, रुचिकारी, पुष्टिदायक और वीर्यवर्द्धक है ॥

अप्रसूता (विनाब्याई) बकरीका मांस—पीनसको नष्टकरनेवाला, अग्निप्रदीपक और सूखी खासी, अरुचि तथा शोषरोगमें हितकारी है । बकरीके बच्चेका मास—बहुत हलका हृदयको प्रिय ज्वरनाशक, श्रेष्ठ, सुखदायक और बहुत बलदायक है । जिसके अंडे निकाल डालेहो ऐसे बकरेका मास—कफकारक, भारी, नाडियोको शुद्धकरनेवाला, बलदायक, मासवर्द्धक और वात तथा पित्तनाशक है । वृद्ध, रोगयुक्त और मृतक बकरेका मास—वातकारक और रूखा है । बकरेके मस्तकका मांस—हँसलीसे ऊपरके विकारोको नष्ट करनेवाला और रुचिकारी है ॥ ७०–७५ ॥

अथ मेषः [मेंढा] ।

मेढ्रो मेंढो हुडो मेष उरणोऽप्येडकोऽपि च ॥ अविर्वृष्णिस्तथोर्णायुः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥७६॥ मेषस्य मांसं पुष्टौ स्यात्पित्तश्लेष्मकरं गुरु ॥ तस्यैवाण्डविहीनस्य मांसं किञ्चिल्लघु स्मृतम् ॥ ७७ ॥

मेढ्र, मेढ, हुड, मेष, उरण, एडक, अवि, वृष्णि और ऊर्णायु, ये मेढेके सस्कृत नाम है ॥

मेढेका मास—पुष्टिदायक, पित्त तथा कफकारक और भारी है । जिसके अड निकाल लियेहो ऐसे मेढेका मास कुछ हलका है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

अथ एडकः [दुम्बा] ।

एडकः पृथुशृंगः स्यान्मेदःपुच्छस्तु दुम्बकः ॥ एडकस्य पलं ज्ञेयं मेषामिषसमं गुणैः ॥ ७८ ॥ मेदःपुच्छोद्भवं मांसं हृद्यं वृष्यं श्रमापहम् ॥ पित्तश्लेष्मकरं किञ्चिद्वातव्याधिविनाशनम् ॥ ७९ ॥

एडक, पृथुशृंग, मेदःपुच्छ और दुम्बक, ये दुम्बाके संस्कृत नाम हैं ॥

एडकका मांस—मेढेके मांसके सदृश गुणवाला है और दुम्बाका मांस—हृदयको प्रिय, वृष्य, श्रमनाशक, पित्त तथा कफ कारक और वातसंबन्धी रोगोंको नष्ट करैहै ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ वृषभः [बैल] ।

बलीवर्दस्तु वृषभ ऋषभश्च तथा वृषः ॥ अनड्वान्सौरभेयोऽपि गौरुक्षा भद्र इत्यपि ॥ ८० ॥ सुरभिः सौरभेयी च माहेयी गौरुदाहृता ॥ गोमांसं तु गुरु स्निग्धं पित्तश्लेष्मविवर्द्धनम् ॥ बृंहणं वातहृद्बल्यमपथ्यं पीनसप्रणुत् ॥ ८१ ॥

बलीवर्द, वृषभ, ऋषभ, वृष, अनड्वान्, सौरभेय, गौ, उक्षा और भद्र, ये बैलके संस्कृत नाम हैं ॥

और सुरभि, सौरभेयी, माहेयी और गौ ये गायके संस्कृत नाम हैं ॥

बैलका मांस—भारी, स्निग्ध, पित्त तथा कफवर्द्धक, पुष्टिकारक, वातनाशक, बलदायक, अपथ्य और पीनस रोगनाशक है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

अथ अश्वः [घोडा] ।

घोटकोऽप्यश्वतुरगास्तुरङ्गाश्च तुरङ्गमाः ॥ वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः ॥ ८२ ॥ अश्वमांसन्तु तुवरं वह्निकृत्कफपित्तलम् ॥ वातहृद्बृंहणं बल्यं चक्षुष्यं मधुरं लघु ॥ ८३ ॥

घोटक, अश्व, तुरग, तुरंगम, वाजि, वाह, अर्व, गन्धर्व, हय, सैन्धव और सप्ति, ये घोडेके संस्कृत नाम हैं ॥

घोडेका मांस—कसैला, अग्निकारक, कफ तथा पित्तको करनेवाला, वातनाशक, पुष्टिदायक, बलकारक, नेत्रोंको हितकारी, मधुर और हलका है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अथ कूलेचराः ।

तत्र महिषः [भैंसा] ।

महिषो घोटकारिः स्यात्कासरश्च रजस्वलः ॥ पीनस्कन्धः कृष्णकायो लुलायो यमवाहनः ॥ ८४ ॥ महिषस्यामिषं स्वादु स्निग्धोष्णं वातनाशनम् ॥ निद्राशुक्रप्रदं बल्यं तनुदार्ढ्यकरं गुरु ॥ वृष्यश्च सृष्टविण्मूत्रं वातपित्तास्रनाशनम् ॥ ८५ ॥

महिष, घोटकारि, कासर, रजस्वल, पीनस्कन्ध, कृष्णकाय, लुलाय और यमवाहन, ये भैंसेके संस्कृत नाम हैं।

भैंसेका मांस—मधुर, स्निग्ध, गरम, वातनाशक, निद्रा शुक्र बलदायक, शरीरको दृढ करनेवाला, वृष्य, मल तथा मूत्रको अधिक करनेवाला और वात, पित्त तथा रक्तविकार नाशक है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अथ मण्डूकः [मेंडक, मेंढा] ।

मण्डूकः प्लवगो भेको वर्षाभूर्दर्दुरो हरिः ॥ मण्डूकः श्लेष्मलो नातिपित्तलो बलकारकः ॥ ८६ ॥

मण्डूक, प्लवग, भेक, वर्षाभू, दर्दुर और हरि ये मेंडकके संस्कृत नाम हैं ॥ मेण्डकका मांस—कफकारक, अत्यंत पित्तकारी नहीं और बलदायक है ॥ ८६ ॥

अथ पादिनः ।

तत्र कच्छपः [कछुआ] ।

कच्छपो गूढपात्कूर्मः कमठो दृढपृष्ठकः ॥ कच्छपो बलदो वातपित्तनुत्पुंस्त्वकारकः ॥ ८७ ॥

कच्छप, गूढपाद्, कूर्म, कमठ और दृढपृष्ठक, ये कछुएके संस्कृत नाम हैं ॥ कछुएका मांस—बलदायक, वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाला और वीर्यकारक है ॥ ८७ ॥

अथ सद्योहतस्य मांसस्य गुणाः ।

सद्योहतस्य मांसं स्याद्व्याधिघाति यथाऽमृतम् ॥ वयस्यं बृंहणं सात्म्यमन्यथा तद्धि वर्जयेत ॥ ८८ ॥

तत्कालके, मारेहुए जीवोंका मांस—अमृतके सदृश रोगनाशक, आयुस्थापक, पुष्टिदायक और शरीरके स्वभावसे मिलता हुआ है इससे इसको ग्रहण करे और बाकी मांस त्याग देवे ॥ ८८ ॥

स्वयं मृतस्य मांसम् ।

स्वयं मृतस्य चाबल्यमतीसारकरं गुरु ॥ ८९ ॥

स्वयं मरेहुए जीवका मांस—बलकी हानिकारक, अतिसारको करनेवाला और भारी है ॥ ८९ ॥

वृद्धबालमांसम्।

वृद्धानां दोषलं मांसं बालानां बलदं लघु॥ सर्पदष्टस्य मांसञ्च शुष्कमांसं त्रिदोषकृत्॥ व्यालदष्टञ्च दुष्टञ्च शुष्कं शूलकरं परम्॥ ९०॥

वृद्ध (बुड्ढे) जीवोका मांस–दोषकारक और बालक जीवोका मास बलदायक और हलका है॥

सर्पके काटनेसे मरेहुए जीवोंका मास और सूखा मास त्रिदोषकारक है। हिंसकजीवोके काटनेसे मरेहुए जीवोका मांस, सूखामांस और दूषितमांस अत्यत शूलकारक है॥ ९०॥

अथ विषादिमृतस्य [विषमृतका] मांसम्।

विषाम्बुरुङ्मृतस्यैतन्मृत्युदोषरुजाकरम्॥ क्लिन्नमुत्क्लेशजनकं कृशं वातप्रकोपणम्॥ तोयपूर्णं शिराजालं मृतमप्सु त्रिदोषकृत्॥ ९१॥

विष, रोग, अथवा जलसे मरेहुए जीवोका मास दोषोको उत्पन्न करनेवाला, रोगकारक और मृत्युदायक है। गीलामास–ग्लानिकारक, कृशकरनेवाला और वातप्रकोपक है। जिसकी नसोमें जल भरगया हो उसका मास और जलसे मरेहुएका मास त्रिदोषकारी है॥ ९१॥

जात्यादिपरत्वेन गुणाः।

विहङ्गेषु पुमाञ्छ्रेष्ठः स्त्री चतुष्पदजातिषु॥ ९२॥ परार्द्धो लघु पुंसां स्यात्स्त्रीणां पूर्वार्द्धमादिशेत्॥ देहमध्यं गुरुप्रायं सर्वेषां प्राणिनां स्मृतम्॥ ९३॥ पक्षक्षेपाद्विहंगानां तदेव लघु कथ्यते॥ गुरूण्यण्डानि सर्वेषां गुर्वी ग्रीवा च पक्षिणाम्॥ ९४॥ उरःस्कन्धोदरं कुक्षी पादौ पाणी कटी तथा॥ पृष्ठत्वग्यकृदन्त्राणि गुरूणीह यथोत्तरम्॥ ९५॥ लघु वातकरं मांसं खगानां धान्यचारिणाम्॥ मत्स्याशिनां पित्तकरं वातघ्नं गुरु कीर्त्तितम्॥ ९६॥ पलाशिनां श्लेष्मकरं लघु रूक्षमुदीरितम्॥ बृंहणं गुरु वातघ्नं तेषामेवं पलाशिनाम्॥ ९७॥ तुल्यजातिष्वल्पदेहा महादेहेषु पूजिताः॥ अल्पदेहेषु शस्यन्ते तथैव स्थूलदेहिनः॥ ९८॥

पक्षियोंमें पुरुषजातिके पक्षियोका मांस और पशुओंमे स्त्रीजातिके पशुओंका मास उत्तमहै। पुरुषोके ऊपर भागका मास हलका है और स्त्रियोका नीचेके भागका मास उत्तम है। सम्पूर्ण प्राणियोंके मध्यभागका मास अधिकभारी होताहै और पक्षियोंके पख गिरजानेसे देहका मध्यभाग हलका होताहै। सम्पूर्ण जातिके पक्षियोका अडा और गरदन भारी होताहै, तथा छाती, कधा, उदर, कोख, पॉव, हाथ, कमर, पीठ, त्वचा (चमडी), कलेजा और ऑत, ये पूर्वपूर्वसे पीछे पीछेके भारी होतेहैं। धान्य (गेहू, ज्वार, वाजरा, आदि) खानेवाले पक्षियोंका मास हलका और वातकारक है। मछली खानेवाले पक्षियोंका मास–पित्तकारक, वातनाशक और भारी है। फल खानेवाले पक्षियोका मास–कफकारक, हलका और रूक्ष है। मास खानेवाले पक्षियोका मास पुष्टिकारक, भारी और वातनाशक है। जिनका देह बडा और मोटा होताहै उनके सदृश जातिके प्राणियोमे जो छोटे देहवाले होतेहै उनका मास–उत्तम और जिनका देह छोटा होताहै उनके सदृश जातिके प्राणियोमे जिनका देह बडा होता है उनका मास उत्तम है॥ ९२–९८॥

अथ मत्स्याः।

रोहितः [रोहू]।

रक्तोदरो रक्तमुखो रक्ताक्षो रक्तपक्षतिः॥ कृष्णपुच्छो झषः श्रेष्ठो रोहितः कथितो बुधैः॥ ९९॥ रोहितः सर्वमत्स्यानां वरो वृष्योऽर्दितार्त्तिजित्॥ कषायानुरसः स्वादुर्वातघ्नो नातिपित्तकृत्॥ ऊर्ध्वजत्रुगतान्रोगान्हन्याद्रोहितमुण्डकम्॥ १००

जिन मछलियोके पेट, मुख, नेत्र और पंख, ये लाल होतेहैं तथा पूँछ काली होतीहै उनको विद्वानोंने उत्तम रोहू मछली कहा है। रोहित (रोहू) मछली–सर्व

सछलियोमे श्रेष्ठ, वृष्य, अर्दितवात (लकवा) नाशक, कसैली, स्वादु, वातनाशक और अत्यन्त पित्तकारक नहीं है। रोहूका मस्तक-हँसलीसे ऊपरके रोगोंको नष्ट करै-है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अथ शिलींध्रः [सिलन्ध]।

शिलीन्ध्रः श्लेष्मलो बल्यो विपाक मधुरो गुरुः ॥ वातपित्तहरो हृद्य आमवातकरश्च सः ॥ १०१ ॥

सिलन्ध मछली-कफकारी, बलदायक, पाकमें मधुर, भारी, वात तथा पित्तनाशक, हृदयको प्रिय और आमवातकारक है ॥ १०१ ॥

अथ भंकुरः [भाकुर]।

भंकुरो मधुरः शीतो वृष्यः श्लेष्मकरो गुरुः ॥ विष्टम्भजनकश्चापि रक्तपित्तहरः स्मृतः ॥ १०२ ॥

भाकुरमछली-मधुर, शीतल, वृष्य, कफकारक, भारी, विष्टम्भजनक और रक्तपित्तनाशक है ॥ १०२ ॥

अथ मोचिका [मोई]।

मोचिका वातहृद्बल्या बृंहणी मधुरा गुरुः॥ पित्तहृत्कफकृद्रुच्या वृष्या दीप्ताग्नये हिता ॥ १०३ ॥

मोचिका (मोई) मछली-वातनाशक, बलदायक, पुष्टिकारक, मधुर, भारी, पित्तनाशक, कफकारक, रुचि उत्पन्न करनेवाली, वृष्य और जिनकी अग्नि दीपन हैं उनके लिये हितकारी है ॥ १०३ ॥

अथ पाठीनः [बुआरी, वोयाल]

पाठीनः श्लेष्मलो बल्यो निद्रालुः पिशिताशनः ॥दूषयेद्रुधिरं पित्तकुष्ठरोगं करोति च ॥ १०४ ॥

पाठीन (पठिना) मच्छी-कफकारक, बलदायक, निद्राजनक, मासको तोडनेवाली, रुधिरको दूषित करनेवाली और पित्त तथा कोढरोगकारक ॥ १०४ ॥

अथ शृंगी [सागी]।

शृंगी तु वातशमनी स्निग्धा श्लेष्मप्रकोपणी ॥ रसे तिक्ता कषाया च लघ्वी रुच्या स्मृता बुधैः ॥ १०५ ॥

शृंगी (सींगी) मछली-वातनाशक, स्निग्ध, पित्तको कुपित करनेवाली, रसमें कडवी, कसैली, हल्की और रुचिकारक है ॥ १०५ ॥

अथ इल्लीसः [इल्सा]।

इल्लीसो मधुरः स्निग्धो रोचनो वह्निवर्द्धनः ॥ पित्तहृत्कफकृत्किञ्चिल्लघुर्वृष्योऽनिलापहः ॥ १०६ ॥

इल्सा मछली-मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक, अग्निवर्द्धक, पित्तनाशक, कफकारक, किंचित् हल्की, वृष्य और वातनाशक है ॥ १०६ ॥

अथ शष्कुली [सौरी]।

शष्कुली ग्राहिणी हृद्या मधुरा तुवरा स्मृता ॥ १०७ ॥

सौरी मछली-ग्राही, हृदयको प्रिय, मधुर और कसैली है ॥ १०७ ॥

अथ गर्गरः [गर्गरा]।

गर्गरः पित्तलः किञ्चिद्वातजित्कफकोपनः ॥ १०८ ॥

गर्गरामछली-पित्तकारक, किंचित् वातनाशक और कफको कुपित करनेवाली है ॥ १०८ ॥

अथ कविकः [कवई]।

कविका मधुरा स्निग्धा कफघ्ना रुचिकारिणी ॥ किञ्चित्पित्तकरी वातनाशिनी वह्निवर्द्धिनी ॥ १०९ ॥

कविका (कवई) मछली-मधुर, स्निग्ध, कफनाशक, रुचिकारक, किंचित् पित्तकर्त्ती, वायुको नष्ट करनेवाली और अग्निवर्द्धक है ॥ १०९ ॥

अथ वर्मिमत्स्यः [वर्मी]।

वर्मिमत्स्यो हरेद्वातं पित्तं रुचिकरो लघुः ॥ ११० ॥

वर्मीमछली-वातनाशक, पित्तहारक, रुचिकारक, और हल्की है ॥ ११० ॥

अथ दण्डमत्स्यः [दण्डारी]।

दण्डमत्स्यो रस तिक्तः पित्तरक्तं कफं हरेत् ॥ वातसाधारणः प्रोक्तः शुक्रलो बलवर्द्धनः ॥ १११ ॥

दडारीमछली–रसमें कडवी, रक्तपित्त तथा कफनाशक, वातके लिये साधारण और वीर्यको तथा बलको बढानेवाली है ॥ १११ ॥

अथ एरङ्गी [अरंगी]।

एरङ्गी मधुरः स्निग्धो विष्टम्भी शीतलो लघुः ॥ ११२ ॥

एरंगी मछली–मधुर, स्निग्ध, विष्टम्भी, शीतल और हलकी है ॥ ११२ ॥

अथ महाशफरी [पपता]।

महाशफरसंज्ञस्तु तिक्तः पित्तकफापहः ॥ शिशिरो मधुरो रुच्यो वातसाधारणः स्मृतः ॥ ११३ ॥

महाशफर (पपता) मछली–कडवी, पित्त तथा कफनाशक, शीतल, मधुर, रुचिकारक और वायुके लिये साधारण है ॥ ११३ ॥

अथ गरघ्नी [गरई]।

गरघ्नी मधुरा तिक्ता तुवरा वातपित्तहृत्॥ कफघ्नी रुचिकृल्लघ्वी दीपनी बलवीर्यकृत् ॥ ११४ ॥

गरघ्नी (गरई) मछली–मधुर, कडवी, कसैली, वात तथा पित्तनाशक, कफहारक, रुचिकारक, हलकी, अग्निप्रदीपक और बल तथा वीर्यवर्द्धक है ॥ ११४ ॥

अथ मद्गुरः [मँगुरी]।

मद्गुरो वातहृद्बल्यो वृष्यः कफकरो लघुः ॥ ११५ ॥

मद्गुर (मँगुरी) मछली–वातनाशक, बलदायक, वृष्य, कफकारक और हलकी है ॥ ११५ ॥

अथ सपादमत्स्यः [टेंगरा]।

सपादमत्स्यो मेधाकृन्मेदःक्षयकरश्च सः॥ वातपित्तकरश्चापि रुचिकृत्परमो मतः ॥ ११६ ॥

सपाद (टेंगरा) मछली–बुद्धिवर्द्धक, मेदका क्षय करनेवाली, वातपित्त तथा रुचिकारक है ॥ ११६ ॥

अथ प्रोष्ठी शफरी [पुंठी]।

प्रोष्ठी तिक्ता कटुः स्वादुः शुक्रघ्नी कफवातजित् ॥ स्निग्धास्यकण्ठरोगघ्नी रोचनी च लघुः स्मृता ॥ ११७ ॥

प्रोष्ठी (शफरी) मछली–कडवी, चरपरी, स्वादु, वीर्यनाशक, कफ तथा वातको जीतनेवाली, स्निग्ध, मुखकी विरसता तथा कंठरोगनाशक, रुचिकारी और हलकी है ॥ ११७ ॥

अथ क्षुद्रमत्स्याः।

क्षुद्रा मत्स्याः स्वादुरसा दोषत्रयविनाशनाः ॥ लघुपाका रुचिकरा बलदास्ते हिता मताः ॥ ११८ ॥

छोटी मछली–स्वादु, त्रिदोषनाशक, पाकमें हलकी, रुचिकारी, बलदायक और हितकारी है ॥ ११८ ॥

अथ अतिक्षुद्रमत्स्याः।

अतिसूक्ष्माः पुंस्त्वहरा रुच्याः कासानिलापहाः ॥ ११९ ॥

बहुतछोटी मछली–पुरुषतानाशक, रुचिकारी, खाँसी और वातनाशक है ॥ ११९ ॥

अथ मत्स्याण्डः।

मत्स्यगर्भो भृशं वृष्यः स्निग्धः पुष्टिकरो लघुः ॥ कफमेदःप्रदो बल्यो ग्लानिकृन्मेहनाशनः ॥ १२० ॥

मछलीका अंडा–अत्यंत वृष्य, स्निग्ध, पुष्टिकारक, हलका, कफ तथा मेदवर्द्धक, बलदायक, ग्लानिकारक और प्रमेहनाशक है ॥ १२० ॥

अथ शुष्कमत्स्याः [सूखी मछली]।

शुष्कमत्स्या नवा बल्या दुर्जरा विड्विबन्धिनः ॥ १२१ ॥

सूखी हुई मछली–बलवर्द्धक, दुर्जर और मलरोधक है ॥ १२१ ॥

अथ दग्ध–[भूंजेहुए] मत्स्याः।

दग्धमत्स्यो गुणैः श्रेष्ठः पुष्टिकृद्बलवर्द्धनः ॥ १२२ ॥

भुनीहुई मछली–उत्तम, पुष्टिकारक और बलवर्द्धक है ॥ १२२ ॥

अथ कूपजादिमत्स्यगुणाः।

कौपमत्स्याः शुक्रमूत्रकुष्ठश्लेष्मविवर्द्धनाः॥

सरोजा मधुराः स्निग्धा बल्या वातविनाशनाः ॥ १२३ ॥ नादेया बृंहणा मत्स्या गुरवोऽनिलनाशनाः॥ रक्तपित्तकरा वृष्याः स्निग्धोष्णाः स्वल्पवर्चसः ॥ १२४ ॥ चौञ्जाः पित्तकराः स्निग्धा मधुरा लघवो हिमाः ॥ ताडागा गुरवो वृष्याः शीतला मलमूत्रदाः ॥ ताडागवक्षिप्तजाता बलायुर्मतिदृक्कराः ॥ १२५ ॥

कूप (कुए) की मछली—वीर्य, मूत्र, कोढ और कफ वर्द्धक है। सरोज (छोटे तालाव) की मछली—मधुर, स्निग्ध, बलदायक और वातविनाशक है। नदीकी मच्छी-पुष्टिकारक, भारी, वातनाशक, रक्तपित्तकारक, मैथुनशक्तिवर्द्धक, गरम और अल्पविष्ठा लानेवाली है । चौञ्ज (हौज) की मछली—पित्तकारक, स्निग्ध, मधुर, हलकी और शीतल है। तडागकी मछली—भारी, वृष्य, शीतल और मल तथा मूत्रजनक है। झरनेकी मछली—तडागके सदृश, बल, आयु, बुद्धि और दृष्टिकारक है॥१२३—१२५

अथ ऋतुविशेषे मत्स्यविशेषाः ।

हेमन्ते कूपजा मत्स्याः शिशिरे सारसा हिताः ॥ वसन्ते ते तु नादेया ग्रीष्मे चौञ्जसमुद्भवाः ॥१२६॥ तडागजाता वर्षासु तास्वपथ्या नदीभवाः ॥ नैर्झराः शरदि श्रेष्ठा विशेषोऽयमुदाहृतः ॥ १२७ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे मांसवर्गः ।

हेमन्तऋतुमे कुएकी मछली, शिशिरऋतुमे तालावकी मछली, वसन्तऋतुमे नदीकी मछली, ग्रीष्मऋतुमे हौज (चोए) की मछली, वर्षाऋतुमे तडागकी मछली और शरदृतुमे झरनेकी मछली श्रेष्ठ है । वर्षाऋतुमे नदीकी मछली अपथ्य है ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृत-
वैद्यसञ्जीवनीभाषाटीकायां मांसवर्गः
समाप्तः ।

अथ कृतान्नवर्गः ।

तत्र अन्नानां साधनप्रकाराः सिद्धानां गुणाश्च ।

तत्र परिभाषा ।

समवायिनि हेतौ ये मुनिभिर्गणिता गुणाः॥ कार्य्येऽपि तेऽखिला ज्ञेयाः परिभाषेति भाषिताः ॥ १॥ क्वचित्संस्कारभेदेन गुणभेदो भवेद्यतः ॥ भक्तं लघु पुराणस्य शालेस्तच्चिपिटो गुरुः ॥ २ ॥ क्वचिद्योगप्रभावेण गुणान्तरमपेक्ष्यते ॥ कदन्नं गुरु सर्पिश्च लघूक्तं सुहितं भवेत् ॥ ३ ॥

मुनीश्वरोने जिन पदार्थोंमे जो गुण कहेहैं उन पदार्थोके बनाये हुए अन्नमे भी वे सम्पूर्ण गुण होतेहै. ये सामान्यतासे कहाहै । किसी अन्नमे संस्कारभेदसे अन्यगुण होजातेहैं जैसे कि—पुराने चावलोका भात हलका होताहै परन्तु वही शालिचावलोका बनाहुआ भात और चिउरा भारी होताहै । कहीं संयोगके प्रभावसे भी गुणोमे अन्तर होजाताहै, जैसे कि—दुष्ट अन्न भारी है और घी भी भारी है. परन्तु वह दुष्ट अन्न यदि घीमे बना होय तौ हलका और हितकारी होताहै ॥ १—३ ॥

अथ भक्तस्य [भातके] नामानि साधनं गुणाश्च ।

भक्तमन्नं तथान्धश्च क्वचित्कूरं च कीर्त्तितम्॥ओदनोऽस्त्री स्त्रियां भिस्सा दीदिविः पुंसि भाषितः ॥ ४ ॥ सुधौतांस्तण्डुलान् स्फीतांस्तोये पञ्चगुणे पचेत् ॥ तद्भक्तं प्रस्रुतं चोष्णं विशदं गुणवन्मतम् ॥ ५ ॥ भक्तं वह्निकरं पथ्यं तर्पणं रोचनं लघु ॥ अधौतमस्रुतं शीतं गुर्वरुच्यं कफप्रदम्॥६॥

भक्त, अन्न, अंध, ओदन, भिस्सा और दीदिवि ये भातके संस्कृत नाम हैं । कही कूरभी भातका नाम है॥

भलेप्रकार उत्तमरीतिसे धोयेहुए चावलोंको पॉचगुने जलमें पकावै, जब पकजायँ तब वह जल (माड)

निकाल देवै तौ यह उष्णभात निर्मल और गुणकारी होताहै ।

भात—अग्निकारक, पथ्य, तृप्तिदायक, रुचिकारक और हलका है। विना धोये हुए चावलोंका, विना मांड निकाला हुआ भात और शीतल हुआ भात—भारी, अरुचिकारक और कफवर्द्धक है ॥ ४–६ ॥

अथ दाली [दाल] ।

दलितन्तु शमीधान्यं दालिर्दाली स्त्रियामुभे ॥ दाली तु सलिले सिद्धा लवणार्द्रकहिङ्गुभिः ॥ ७ ॥ संयुक्ता सूपनाम्नी स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ सूपो विष्टम्भको रूक्षः शीतस्तु स विशेषतः ॥ निस्तुषो भृष्टसंसिद्धो लाघवं सुतरां व्रजेत् ॥ ८ ॥

फलीके (मूग, चना, अरहर, उरदआदि) धान्योंको दलनेसे दाल होजाती है । दालि और दाली ये दालके नाम है । जलमें डालकर दालको पकावै, जब उसीज जाय तब उसमें नमक, अदरख और हींग यथायोग्य डालै तब वह सूप (दाल) तयार होती है । सूप (दाल)—विष्टम्भकारी, रूक्ष और विशेषकर शीतल है । भुनीहुई छिलके रहित दाल—अत्यन्त हलकी है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ कृशरा [खिचरी] ।

तण्डुला दालिसंमिश्रा लवणार्द्रकहिंगुभिः ॥ संयुक्ताः सलिले सिद्धाः कृशरा कथिता बुधैः ॥ ९ ॥ कृशरा शुक्रला बल्या गुरुः पित्तकफप्रदा ॥ दुर्जरा बुद्धिविष्टम्भमलमूत्रकरी स्मृता ॥ १० ॥

दाल और चावल मिलाकर उसमें नमक, अदरक और हींग डालकर जलमें सिद्ध करै उसको विद्वानोने कृशरा (खिचरी) कहा है । खिचरी—वीर्यवर्द्धक, बलदायक, भारी, कफ तथा पित्तको उत्पन्न करनेवाली, दुर्जर, बुद्धि, विष्टम्भ, मल तथा मूत्रकारक है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ तापहारी [ताहरी] ।

घृते हरिद्रासंयुक्ते माषजां भर्जयेद्वटीम् ॥ तण्डुलांश्चापि निर्धौतान्सहैव परिभर्जयेत् ॥ ११ ॥ सिद्धयोग्यं जलं तत्र प्रक्षिप्य कुशलः पचेत् ॥ लवणार्द्रकहिंगूनि मात्रया तत्र निक्षिपेत् ॥ १२ ॥ एषा सिद्धिसुमानज्ञैः प्रोक्ता तापहरी बुधैः ॥ भवेत्तापहरी बल्या वृष्या श्लेष्माणमाचरेत् ॥ बृंहणी तर्पणी रुच्या गुर्वी पित्तहरा स्मृता ॥ १३ ॥

घीमे हलदी डालकर उसमें उडदकी वडी और धुलेहुए स्वच्छ चावलोको भूनलेवै, पश्चात् जितने जलमे पक जाय उतना जल चढाकर कुशल पुरुष पकावै और यथायोग्य नमक, अदरक और हींग डाले, जब भलीभाति पक जाय तब तापहारी (ताहरी) कहाती है । ताहरी तृप्तिदायक, रुचिकारक, बलदायक, वृष्य, कफकारक, पुष्टिदायक, भारी और पित्तनाशक है ॥ ११–१३ ॥

अथ परमान्नम् [खीर] ।

पायस परमान्नं स्यात्क्षीरिकापि तदुच्यते॥ शुद्धेऽर्द्धपक्वे दुग्धे तु घृताक्तांस्तण्डुलान्पचेत् ॥ १ ॥ ते सिद्धाः क्षीरिका ख्याता ससिताज्ययुतोत्तमा । क्षीरिका दुर्जरा प्रोक्ता बृंहणी बलवर्द्धिनी ॥ १५ ॥

पायस, परमान्न और क्षीरिका, ये खीरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—खीर । गु०—दूधपाक ।

अधऔटे स्वच्छ दूधमें घीके भुने हुए चावल डाले जब चावल पकजाय तब उसमे स्वच्छ बूरा और घी डाले यह उत्तम खीर बनजाती है । खीर दुर्जर, पुष्टिकारक और बलवर्द्धक है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ नालिकेरक्षीरी [नारियलकी खीर] ।

नालिकेरं तनूकृत्य छिन्नं पयसि गोः क्षिपेत् ॥ सितागव्याज्यसंयुक्ते तत्पचेन्मृदुनाऽग्निना ॥ १६ ॥ नालिकेरोद्भवा क्षीरी स्निग्धा शीतातिपुष्टिदा ॥ गुर्वी सुमधुरा वृष्या रक्तपित्तानिलापहा ॥ १७ ॥

नारियल (गोले) के छोटे २ टुकडे करके गायके दूधमे डाले और उसमे स्वच्छ खाड और गायका

घी डाले, इस प्रकारकर घी भी अग्निमें पकावे तो नारियलकी खीर बनजाती है ॥

यह खीर—स्निग्ध, शीतल, बहुत पुष्टिकारक, भारी, मधुर, वीर्यवर्द्धक और रक्तपित्त तथा वातनाशक है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ सेविता [सिमई]।

समितां वर्त्तिकां कृत्वा सूक्ष्मां तु यवसन्निभाम् ॥ शुष्का क्षीरेण संसाध्या भोज्या घृतसितान्विता ॥ १८ ॥ सेविका तर्पणी बल्या गुर्वी पित्तानिलापहा ॥ ग्राहिणी सन्धिकृद्रुच्या तां खादेन्नातिमात्रया ॥ १९ ॥

मैदाकी बहुत बारीक जौंके सदृश बत्ती बँटकर सुखावै, फिर दूधमें पकावै और घी तथा खाड डालकर सेवन करै

यह सिमई—तृप्तिकारक, बलवर्द्धक, भारी, पित्त तथा वातनाशक, ग्राही, (मलको रोकनेवाली) सन्धानकारक और रुचिको उत्पन्न करनेवाली है, इसको बहुत नहीं खावै ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ मण्डकः [मण्डा]।

गोधूमा धवला धौताः कुट्टिताः शोपितास्ततः ॥ प्रोक्षिता यन्त्रनिष्पिष्टाश्चालिताः समिता स्मृता ॥ २० ॥ वारिणा कोमलां कृत्वा समितां साधु मर्दयेत् ॥ हस्ततालनया तस्या लोप्त्री सम्यक्प्रसारयेत् ॥ २१ ॥ अधोमुखघटस्यैतद्विस्तृतं प्रक्षिपेद्वहिः ॥ मृदुना वह्निना साध्यः सिद्धो मण्डक उच्यते ॥ २२ ॥

लोप्त्री (लोई) इति लोके ॥

दुग्धेन साज्यखण्डेन मण्डकं भक्षयेन्नरः ॥ अथवा सिद्धमांसेन सतक्रवटकेन वा ॥ २३ ॥ मण्डको बृंहणो वृष्यो बल्यो रुचिकरो भृशम ॥ पाकेऽपि मधुरो ग्राही लघुर्दोषत्रयापहः ॥ २४ ॥

सफेद गेहूँ धोकर ओखलीमें कूटले फिर सुखाकर पिसवावे और हलके (कपडेकी चलनी) मे छानले उसको मैदा कहते हैं। मैदाको पानीमे माडकर भलीभांति कुचलै, पश्चात् हाथोंसे लोई बनाकर रोटीके सदृश करले, फिर चूल्हेपर उल्टे घडेकी तलीपर डालकर मन्दाग्निसे पकावै उसको मण्डक कहते हैं। खाड और घृतयुक्त दूधके साथ अथवा पकाये हुए मांसके साथ तथा दहीपकौडीके साथ भक्षण करै। मण्डक—पुष्टिकारक, वृष्य, बलवर्द्धक, अत्यन्त रुचिकारक, पाकमे मधुर, ग्राही, हलका और तीनों दोषोंको नष्ट करै है ॥ २०–२४ ॥

अथ पूरी [दूर्नोरी]।

कुर्यात्समितयाऽतीव तन्वीं पर्पटिकां ततः ॥ स्वेदयेत्तप्तके तां तु पोलिकां जगदुर्बुधाः ॥ तां खादेल्लप्सिकायुक्तां तस्या मण्डकवद्गुणाः ॥ २५ ॥

मैदाकी अथवा चूनकी पतली रोटीके सदृश पूरी बेल ले, पश्चात् घीमें सेकले उसको पोलिका (पूरी) कहते है। इसको लप्सी (हलुए) के साथ भक्षण करै, इसके गुण मण्डकके सदृश हैं ॥ २५ ॥

अथ लप्सिका [लप्सी]।

समितां सर्पिषा भृष्टां शर्करां पयसि क्षिपेत् ॥ तस्मिन्घनीकृते न्यस्येल्लवंगं मरिचादिकम् ॥ २६ ॥ सिद्धैषा लप्सिका ख्याता गुणांस्तस्या वदाम्यहम् ॥ लप्सिका बृंहणी वृष्या बल्या पित्तानिलापहा ॥ स्निग्धा श्लेष्मकरी गुर्वी रोचनी तर्पणी परम् ॥ २७ ॥

मैदाको घीमें भूनकर शर्करा (बूरा) युक्त पानीम डालै, जब पकते पकते गाढा हो जाय तब उसमें लोंग मिरच आदि डाले, सिद्ध होनेपर लप्सिका कहाती है। लप्सिका (हलुआ) पुष्टिदायक, वृष्य, बलकारक, वात तथा पित्तनाशक, स्निग्ध, कफकारक, भारी, रुचिकारी और अत्यन्त तृप्तिकारक है ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ रोटिका [रोटी]।

शुष्कगोधूमचूर्णेन किञ्चित्पुष्टाश्च पोलिकाम् ॥ तप्तके स्वेदयेत्कृत्वा सूर्यङ्गारैश्च तां पचेत् ॥ २८ ॥ सिद्धैषा रोटिका प्रोक्ता गुणं तस्याः प्रचक्ष्महे ॥ रोटिका बलकृद्रु-

च्या बृंहणी धातुवर्द्धनी ॥ वातघ्नी कफकृद् गुर्वी दीप्ताग्नीनां प्रपूजिता ॥ २९ ॥

सूखे गेहूँके चूनमे पानी डालकर मांडले और बेलकर तवेपर सेककर फिर नीचे अगारोंपर सेकै, जब भलीभाति सिक जाय तब रोटिका (रोटी) कहातीहै ॥

रोटिका (रोटी)—बलकारक, रुचिकारी, पुष्टिकारक, धातुवर्द्धक, वातनाशक, कफकारी, भारी और जिनकी अग्नि प्रदीप्त है उनको हितकारी है ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ अंगारकर्कटी [बाटी] ।

शुष्कगोधूमचूर्णन्तु साम्बु गाढं विमर्दयेत्॥ विधाय वटकाकारं निर्धूमेऽग्नौ शनैःपचेत्॥ ॥ ३० ॥ अङ्गारकर्कटी ह्येषा बृंहणी शुक्रला लघुः ॥ दीपनी कफकृद्बल्या पीनसश्वासकासजित् ॥ ३१ ॥

सूखेहुए उत्तम गेहूँके चूनको कर्रा मांडकर हाथोंसे गोल २ लोई बनाले और धूमरहित मन्द २ अग्निसे पकावै, जब भलीभाँति सिद्ध होजाय उसको अंगारकर्कटी (बाटी) कहते हैं । बाटी—पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक और पीनस, श्वास तथा खाँसीको नष्ट करैहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथ यवरोटिका ।

यवजा रोटिका रुच्या मधुरा विशदा लघुः ॥ मलशुक्रानिलकरी बल्या हन्ति कफामयान् ॥ ३२ ॥

जौकी रोटी—रुचिकारी, मधुर, विशद, हलकी, मल, वीर्य तथा वातकारक, बलकारी और कफसबन्धी रोगोको नष्ट करैहै ॥ ३२ ॥

अथ माष—[उरदकी] रोटिका ।

माषाणां दालयस्तोये स्थापितास्त्यक्तकञ्चुकाः॥ आतपे शोषिता यन्त्रे पिष्टास्ता धूमसी स्मृता ॥ ३३ ॥ धूमसीरचिता चैव प्रोक्ता झर्झरिका बुधैः ॥ झर्झरी कफपित्तघ्नी किञ्चिद्वातकरी स्मृता ॥ ३४ ॥

उड़दकी दालको पानीमे भिजोकर छिलके निकाल देवै पश्चात् धूपमें सुखाकर चक्कीमें पिसवावै, उस चूनको धमसी कहतेहैं, धूमसीकी बनाईहुई रोटीको संस्कृतमें झर्झरी कहतेहैं. यह रोटी—कफ पित्तनाशक और किंचित् वातकारक है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ चणक—[चनेकी] रोटिका ।

चणक्या रोटिका रूक्षा श्लेष्मपित्तास्रनुद्गुरुः ॥ विष्टम्भिनी न चक्षुष्या तद्गुणा चापि शष्कुली ॥ ३५ ॥

चनेकी रोटी—रूखी, विष्टम्भकारक, भारी, नेत्रोंको हितकारी नहीं और कफ,पित्त तथा रक्तविकारनाशक है । इसकी पूरीमेभी येही गुण हैं ॥ ३५ ॥

अथ पिष्टिका ।

दालिः संस्थापिता तोये ततोऽपहृतकञ्चुका ॥ शिलायां साधु सम्पिष्टा पिष्टिका कथिता बुधैः ॥ ३६ ॥

दालको पानीमें भिगोदे, भीजनेपर छुकले निकाल डालै, पश्चात् शिलपै खूब पीसले इसको पिष्टिका (पिट्ठी) कहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ वेढमिका [वेढई] ।

माषपिष्टिकया पूर्णगर्भा गोधूमचूर्णतः ॥ रचिता रोटिका सैव प्रोक्ता वेढमिका बुधैः ॥ ३७ ॥ भवेद्वेढमिका बल्या वृष्या रुच्याऽनिलापहा ॥ उष्णा सन्तर्पणी गुर्वी बृंहणी शुक्रला परम् ॥ ३८ ॥ भिन्नमूत्रमला स्तन्यमेदःपित्तकफप्रदा ॥ गुदकीलार्दितश्वासपंक्तिशूलानि नाशयेत् ॥ ३९ ॥

गेहूँके मडेहुए आटेमें उडदकी पिट्ठी भरके रोटी बनावे, उसको पिट्ठीकी रोटी (वेढई) कहतेहैं ॥

यह रोटी—बलदायक, वृष्य, रुचिकारक, वातनाशक, गरम, तृप्तिदायक, भारी, पुष्टिकारक, अत्यत वीर्यवर्द्धक, मलभेदक, मूत्रलानेवाली, दूध तथा मेदवर्द्धक, पित्त तथा कफकारक और गुदकील (गुदाकेमस्से), अर्दितवात, श्वास और पक्तिशूलनाशक है ॥ ३७–३९ ॥

अथ पर्पटाः [पापड] ।

धूमसारचिता हिंगुहरिद्रालवणैर्युताः ॥ जीरकस्वर्जिकाभ्याञ्च तनूकृत्य च वेल्लिताः ॥ ४० ॥ पर्पटास्ते सदाङ्गारभृष्टाः परमरोचकाः ॥ दीपनाः पाचना रूक्षा

गुरवः किञ्चिदीरिताः ॥ ४१ ॥ मौद्गाश्च तद्गुणाः प्रोक्ता विशेषाल्लघवो हिताः ॥ चणकस्य गुणैर्युक्ताः पर्पटाश्चणकोद्भवाः ॥ स्नेहभृष्टास्तु ते सर्वे भवेयुर्मध्यमा गुणैः ॥ ४२ ॥

उडदकी दालको पानीमें भिजोकर छुकले निकालकर धूपमें सुखा लेवै, उसको पिसवाकर बारीक आटा करले, उस आटेमें हींग, हलदी, नमक, जीरा और सज्जी डाल कर पानीसे मांडले और बहुत पतला पतला बेलले उसको पर्पट (पापड) कहतेहैं। पापड अगारेपर भूनकर खावे तौ अत्यत रुचिकारी, अग्निप्रदीपक, पाचक रूक्ष और किंचित् भारी हैं। इसी प्रकार मूगकी दालके पापडोंमें भी गुण है परन्तु विशेष हलके और हितकारक हैं चनेके पापडोंमे चनेके सदृश गुण हैं। जो पापड स्नेहमें भूने जॉय तौ मध्यम गुणदायक हैं ॥ ४०–४२ ॥

अथ पूरिका [कचौरी]।

माषाणां पिष्टिकां पूर्याल्लवणार्द्रकहिंगुभिः ॥ तया पिष्टिकया पूर्णा समिताकृतपोलिका ॥ ४३ ॥ ततस्तैलेन पक्वा सा पूरिका कथिता बुधैः ॥ रुच्या स्वाद्वी गुरुः स्निग्धा बल्या पित्तास्रदूषिका ॥ ॥ ४४ ॥ चक्षुस्तेजोहरी चोष्णा पाके वातविनाशिनी॥तथैव घृतपक्वापि चक्षुष्या रक्तपित्तहृत् ॥ ४५ ॥

उडदोकी पिट्ठीमे नमक, अदरक तथा हींग डालकर मैदाकी लोईमें भर लेवै, पश्चात् बेलकर उसको तेलमें सेक लेवै, उसको पूरिका (कचौरी) कहते हैं। कचौरी–स्वादिष्ठ, भारी, स्निग्ध, बलकारी, पित्त तथा रक्तविकारको दूषित करनेवाली नेत्रोंका तेज हरनेवाली, पाकमें गरम और वातविनाशक है। यदि यह घीमें बनाई हुई होयँ तौ नेत्रोको हितकारी और रक्तपित्तनाशक है ॥ ४३–४५ ॥

अथ वटकाः [बरा]।

माषाणां पिष्टिकां युक्तां लवणार्द्रकहिंगुभिः ॥ कृत्वा विदध्याद्वटकांस्तांस्तैलेषु पचेच्छनैः ॥ ४६ ॥ विशुष्का वटका बल्या बृंहणा वीर्यवर्द्धनाः ॥ वातामयहरा रुच्या विशेषादर्दितापहाः ॥ ४७ ॥ विबन्धभेदिनः श्लेष्मकारिणोऽग्न्यग्निपूजिताः ॥ संचूर्ण्य निक्षिपेत्तक्रे भृष्टजीरककहिंगुभिः ॥ ४८ ॥ लवणं तत्र वटकान्सकलानपि मज्जयेत् ॥ शुक्लस्तत्र वटको बलकृद्रोचनो गुरुः ॥ ४९ ॥ विबन्धहृद्विदाही च श्लेष्मलः पवनापहः ॥ राज्यक्तपातिनो वान्यान्पाचनांस्तांस्तु भक्षयेत् ॥ ५० ॥

राज्यक्ता (राइता) इति लोके ॥

उडदोंकी पिट्ठीमें नोंन, अदरक और हींग मिलाकर धीरे धीरे तेलमे बडे पकावे अथवा पिट्ठीकी बरी बनाकर तेलमें पकावे ॥

बडे–बलदायक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, वायुरोगनाशक, रुचिकारक और विशेषकरके अर्दितवात (लकवा) को दूरकरता, मलबन्धभेदक (दस्तावर), कफकारी और प्रदीप्तअग्निवालेके लिये उत्तम हैं। तथा हींगजीरेका चूर्ण, भूनकर मट्ठे (छाछ) मे डाले, पश्चात् नमक डालकर उसमें बरी छोड देवे ॥

यह बडी–वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, भारी, मलभेदक, विदाही, कफकारक और वातनाशक हैं। अथवा रायतेमें मिलाकर वा और अन्य पाचन वस्तुओंके साथ खावै ॥ ४६–५० ॥

अथ काञ्जिकवटकः [काञ्जीबरा]।

मन्थनी नूतना धार्या कटुतैलेन लेपिता ॥ निर्मलेनाम्बुनापूर्य तस्यां चूर्णं विनिक्षिपेत् ॥ ५१ ॥ राजिकाजीरलवणहिंगुशुण्ठीनिशाकृतम् ॥ निक्षिपेद्वटकांस्तत्र भाण्डस्यास्यश्च मुद्रयेत् ॥ ५२ ॥ ततो दिनत्रयादूर्ध्वमम्लाः स्युर्वटका ध्रुवम् ॥ काञ्जिकवटको रुच्यो वातघ्नः श्लेष्मकारकः शीतः ॥ दाहं शूलमजीर्णं क्षिप्रं हरते दृगामयेष्वहितः ॥ ५३ ॥

एक नवीन मट्टीका पात्र लेकर उसमें सरसोंका तेल चुपडे, पश्चात् कडवे तेलको चुपडकर निर्मल जलभरके उसमे राई, जीरा, नमक हींग, सोंठ और हलदी इनका

चूर्ण डालकर बडे डालदे और पात्रको मुख बंद करके तीन दिनतक रक्खे रहने देवै तौ वे बडे खट्टे होजायँगे; उनको कांजिकवटक (कांजीके बडे) कहतेहैं ॥

ये बडे-रुचिकारी, वातविनाशक, कफकारक, शीतल और दाह शूल तथा अजीर्णनाशक हैं नेत्ररोगियोको अहितकारी हैं ॥ ५१-५३ ॥

अथ अम्लिकावटकाः [इमलीके बडे]।

अम्लिकां स्वेदयित्वा तु जलेन सह मर्दयेत् ॥ तन्नीरे कृतसंस्कारे वटकान्मज्जयेत्पुनः ॥ ५४ ॥ अम्लिकावटकास्ते तु रुच्या वह्निप्रदीपनाः ॥ वटकस्य गुणैः पूर्वैरेषोऽपि च समन्वितः ॥ ५५ ॥

पक्की इमलीको कतरकर जलमें औटावे और जलके साथही मलले, पश्चात् उस बनाये हुए पानीमें बडे छोडदे और नमक मसाला आदि डालदे तौ इमलीके बडे बनजाते है ॥

यह बडे-रुचिकारी, अग्निप्रदीपक हैं इनमे पूर्वोक्त बडोके भी सब गुण है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ मुद्गवटकाः [मूँगबरा]।

मुद्गानां वटकास्तक्रे मज्जिता लघवो हिमाः ॥ संस्कारजप्रभावेण त्रिदोषशमना हिताः ॥ ५६ ॥

मूगके बड छाछमें भिगोदे, उनको सेवन करै तौ हलके और शीतल हैं। और सस्कारके प्रभावसे त्रिदोषनाशक तथा हितकारी होतेहैं ॥ ५६ ॥

अथ माषवटिकाः [उरदकी बरी]।

माषाणां पिष्टिका हिंगुलवणार्द्रकसंस्कृता॥ तया विरचिता वस्त्रे वटिकाः साधुशोषिताः ॥ ५७ ॥ भर्जितास्तप्ततैलैस्ता अथवाम्बुप्रयोगतः ॥ वटकस्य गुणैर्युक्ता ज्ञातव्या रुचिदा भृशम् ॥ ५८ ॥

उडदकी पिठीमे हीग, लोन तथा अदरक मिलाकर कपडेपर बडी तोडकर सुखालेवै. यह बडी तेलमे डालकर अथवा पानीमें डालकर पकावै। यह बडी बडोंके सदृश गुणवाली हैं और अत्यन्त रुचिकारक है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ कूष्मांडकवटी [पेठेकी बरी]।

कूष्मांडकवटी ज्ञेया पूर्वोक्तवटिकागुणा ॥ विशेषात्पित्तरक्तघ्नी लघ्वी च कथिता बुधैः ॥ ५९ ॥

पेठेकी बडी भी पूर्वोक्त बडीके सदृश गुणवाली है विशेष करके रक्तपित्तनाशक और हलकी है ॥ ५९ ॥

अथ मुद्गवटी [मूंगकी बरी]।

मुद्गानां वटिका तद्वद्रचिता साधिता तथा ॥ पथ्या रुच्या तथा लघ्वी मुद्गसूपगुणा स्मृता ॥ ६० ॥

उपरोक्त प्रकारही मूँगकी बडी बनावै । यह बडी, रुचिकारी, हलकी और मूँगकी दालके समान गुणवाली है ॥ ६० ॥

अलीकमत्स्यः।

माषपिष्टिकया लिप्तं नागवल्लीदलं महत्॥ तत्तु संस्वेदयेद्युक्त्या स्थाल्यामास्तारकोपरि ॥ ततो निष्कास्य तत्खण्ड्यं ततस्तैलेन भर्जयेत् ॥ ६१ ॥
खण्ड्यं खण्डेन योज्यमिति यावत् ॥
अलीकमत्स्य उक्तोऽयं प्रकारः पाकपण्डितैः ॥ तं वृन्ताकभटित्रेण वास्तूकेन च भक्षयेत् ॥ ६२ ॥

बडे नागरवेलके पान उडदकी पिठीमे लपेटकर युक्तिसे कढाईमे पकावै, फिर छोटे छोटे कतरके तेलमें भून लेवै तौ अलीकमत्स्य तयार होतेहै. इनको बैगनके भरतेके साथ अथवा बथुएके सागसे या रायतेसे भक्षण करै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अथ कथिता [कढी]।

स्थाल्यां घृते वा तैले वा हरिद्राहिंगु भर्जयेत् ॥ अवलेहनसंयुक्तं तक्रं तत्रैव निक्षिपेत् ॥ एषा सिद्धा समरिचा कथिता कथिता बुधैः ॥ ६३ ॥ कथिता पाचनी रुच्या लघ्वी वह्निप्रदीपिनी ॥ कफानिलविबन्धघ्नी किंचित्पित्तप्रकोपिणी ॥ ६४ ॥

करके धोवै. पश्चात् तेलमे अथवा घीमे धीरे धीरे पकावै, इसमे नोन और जलभी डालै, जब पकजाय तब उसमे गरममसाला डाल देवै। नागरवेलके पान, चावल, लौंग और मिरच, ये मसालेके पदार्थ सक्षेपसे जानने। इसप्रकारसे पकाये हुए मासको शुद्ध मांस कहतेहैं। शुद्धमांस अत्यन्त वृष्य, बलदायक, रुचिकारक, पुष्टिकारी, त्रिदोषनाशक, श्रेष्ठ, अग्निको दीपन करनेवाला और धातुवर्द्धक है ॥ ७४–७८ ॥

अथ सहद्रकम् [सहवासु]।

छागादेर्मांसमूर्वादेः कुट्टितं खण्डितं पुनः॥ शुद्धमांसविधानेन पचेदेतत्सहद्रकम् ॥ सहद्रकं गुणैर्ग्रन्थे शुद्धमांसगुणं स्मृतम् ॥ ७९ ॥

बकरेका मास और मूर्वा आदिकके टुकडेकर कूटले और उपरोक्त शुद्ध मासकी रीतिसे पकावै पकनेपर इसको सहद्रक कहते हैं, सहद्रक मासमें शुद्धमासके सदृश गुण हैं, ये गुण ग्रथोमे केहैं ॥ ७९ ॥

अथ तक्रमांसम् [अखनी]।

पाकपात्रे घृतं दत्त्वा हरिद्रां हिंगु भर्जयेत् ॥ छागादेः सकलस्यापि खण्डान्यपि च भर्जयेत् ॥ ८० ॥ सिद्धयोग्यं जलं दत्त्वा पचेन्मृदुतरं तथा ॥ जीरकादियुते तक्रे मांसखण्डानि तारयेत्॥८१॥ तक्रमांसन्तु वातघ्नं लघु रुच्यं बलप्रदम् ॥ कफघ्नं पित्तलं किञ्चित्सर्वाहारस्य पाचनम् ॥ ८२ ॥

पाकपात्र (कढाई, डेगची)-मे घी डालकर उसमे हल्दी तथा हीग भून ले और बकरीआदिके मॉसके टुकडे भी उसमे भूने, फिर यथायोग्य जल डालकर मन्द २ अग्निसे पकावै, पश्चात् जीरा आदि मसाला पडे हुए मट्ठेमें उन मासके टुकडोंको डालै, तयार होनेपर इसको तक्रमास (अखनी) कहतेहैं, तक्रमास (अखनी) वात तथा कफनाशक, हलका, रुचिकारी, बलदायक, किञ्चित् पित्तकारक और सम्पूर्ण प्रकारके आहार पचानेवाला है ॥ ८०–८२ ॥

अथ हरीसा [आस]।

पाकपात्रे तु बृहंति मांसखण्डानि निक्षिपेत् ॥ पानीयं प्रचुरं सर्पिः प्रभूतं हिंगु जीरकम् ॥ ८३ ॥ हरिद्रामार्द्रकं शुण्ठीं लवणं मरिचानि च ॥ तण्डुलांश्चापि गोधूमाञ्जम्बीराणां रसान्बहून् ॥ ८४ ॥ यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्वानि भवन्ति हि ॥ तथा पचेत्तु निपुणो बहुमांसं क्षितिर्यथा ॥८५॥ एषा हरीसा बलकृद्वातपित्तापहा गुरुः ॥ शीतोष्णा शुक्रदा स्निग्धा सरा सन्धानकारिणी ॥ ८६ ॥

पाकपात्रमे बडे २ मांसके टुकडे डालकर उसमें पानी, घी, हींग, जीरा, हलदी, अदरक, सोठ, नमक, मिरच, चावल, गेहूँ तथा जम्भीरीनींबूका रस बहुत डालके पकावै जब सब वस्तुये भलीभाति पकजायँ तब उतार लेवै इसको हरीसा कहतेहैं ॥

हरीसा (आस) बलदायक, वात तथा पित्तनाशक, भारी, शीतल, गरम, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध, दस्तावर और टूटी हड्डी आदिको जोडनेवाला है ॥ ८३–८६ ॥

अथ तलितमांसम् [तलाहुआ मांस]।

शुद्धमांसविधानेन मांसं सम्यक्प्रसाधितम्॥पुनस्तदाज्ये सम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥ ८७ ॥ तलितं बलमेधाग्निमांसौजःशुक्रवृद्धिकृत् ॥ तर्पणं लघु सुस्निग्धं रोचनं दृढताकरम् ॥ ८८ ॥

शुद्ध मासकी रीतिके अनुसार मासको पकाकर पीछे उसको घीमे तललेवै. उसको तलित मास कहतेहैं ॥

तलित मास–तृप्तिकारक, हलका, बहुत स्निग्ध, रुचिकारी, शरीरको दृढ करनेवाला और बल, बुद्धि, अग्नि, मास, ओज तथा वीर्यवर्द्धक है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथ शूल्यपलम् [कबाब]।

कालखण्डादिमांसानि ग्रथितानि शलाकया॥घृतं सलवणं दत्त्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥८९॥ तत्तु शूल्यमिदं प्रोक्तं पा-

ककर्मविचक्षणैः॥शूल्यं पलं सुधातुल्यं रुच्यं वह्निकरं लघु ॥ कफवातहरं बल्यं किञ्चित्पित्तकरं हि तत् ॥ ९० ॥

कलेजेके मासको कुचलकर घी और नोन मिलाकर लोहेकी सलाईमें लपेटकर धुएँरहित अग्निपर पकावै. पाककर्ममें कुशल पुरुष इसको शूल्यमास (कबाब) कहते हैं। यह मास—अमृततुल्य रुचिकारी, अग्निको दीपन करनेवाला, हलका, कफ तथा वातनाशक, बलदायक और किंचित् पित्तकारक है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अथ मांसशृङ्गाटकम् [मांसका सिंगाडा]।

शुद्धमांसं तनूकृत्य कर्तितं स्वेदितं जले॥ लवंगहिंगुलवणमरिचार्द्रकसंयुतम् ॥९१॥ एलाजीरकधान्याकनिम्बूरससमन्वितम्॥ घृते सुगन्धे तद्भृष्टं मांसशृंगाटकं स्मृतम् ॥९२ ॥ मांसशृंगाटकं रुच्यं बृंहणं बलकृद्गुरु ॥ वातपित्तहरं वृष्यं कफघ्नं वीर्यवर्धनम् ॥ ९३ ॥

शुद्ध मासके छोटे छोटे टुकडे करके पानीमें पकावे, पश्चात् उसमें लोंग, हींग, नोन, मिरच, अदरक, इलायची, जीरा, धनियाँ तथा नीबूका रस डालकर घीमें भूनले, उसको मासशृगाटक कहतेहैं। मासशृगाटक—रुचिकारी, पुष्टिकारक, बलदायक, भारी, वात तथा पित्तनाशक, वृष्य, कफनाशक और वीर्यवर्द्धक है ॥९१–९३॥

अथ मांसरसः [सुरुवा]।

सिद्धमांसरसो रुच्यः श्रमश्वासक्षयापहः॥ प्रीणनो वातपित्तघ्नः क्षीणानामल्परेतसाम् ॥ ९४ ॥ विश्लिष्टभग्नसन्धीनां शुद्धानां शुद्धिकांक्षिणाम् ॥ स्मृत्योजोबलहीनानां ज्वरक्षीणक्षतोरसाम् ॥ ९५ ॥ शस्यते स्वरहीनानां दृष्ट्यायुःश्रवणार्थिनाम्॥प्रकाराः कथिताः सन्ति बहवो मांससम्भवाः॥ ग्रन्थविस्तारभीतेस्ते मया नात्र प्रकीर्तिताः ॥ ९६ ॥

पकाये हुए मासका रस—रुचिकारी, तृप्तिदायक, वात तथा पित्तनाशक और परिश्रम, श्वास तथा क्षयनाशक है। क्षीण (लटेहुए) तथा अल्पवीर्यवालेको पुष्टिकर्त्ता, बिखरी हुई और टूटीहुई सन्धियोंका जोडनेवाला, शरीरकी शुद्धि चाहनेवालेको, स्मृति, ओज तथा बलहीनोंको, ज्वरसे क्षीण हुए और क्षतरोगवालेको, स्वरहीनोंको, दृष्टि, आयु और श्रवण शक्ति बढानेवालोंको तथा स्वस्थ शरीरवालेको भी मासका रस परम हितकारी है। मास बनानेके भेद अनेक प्रकारके है, परन्तु यहाँ ग्रन्थका विस्तार होनेके भयसे नहीं कहेहैं ॥ ९४–९६ ॥

अथ शाकपाकविधिः।

हिंगुजीरयुते तैले क्षिपेच्छाकं सुखण्डितम् ॥ लवणं चाम्लचूर्णादि सिद्धे हिंगूदकं क्षिपेत्॥इत्येवं सर्वशाकानां साधनोऽभिहितो विधिः ॥ ९७ ॥

तेलमें हींग तथा जीरा भूने पश्चात् सम्हालाहुआ शाक कतरकर उसमें छोकदेवै, जब गलजाय तब नोन, खट्टाचूर्ण आदि तथा हींगका पानी डाले, यही सम्पूर्ण शाक बनानेकी रीति है ॥ ९७ ॥

अथ मठकम् [मठरी]।

समितां मर्दयेदन्यजलेनापि च सन्नयेत् ॥ तस्यास्तु वटिकां कृत्वा पचेत्सर्पिषि नीरसम् ॥ ९८ ॥ एलालवंगकर्पूरमरिचाद्यैरलंकृते ॥ मज्जयित्वा सितापाके ततस्तश्च समुद्धरेत् ॥ अयं प्रकारः संसिद्धौ मठ इत्यभिधीयते ॥ ९९ ॥
सन्नयेत् मर्दयेत् ॥

मठस्तु बृंहणो वृष्यो बल्यः सुमधुरो गुरुः॥ पित्तानिलहरो रुच्यो दीप्ताग्नीनां सुपूजितः ॥ १०० ॥ समिता शर्करासर्पिर्निर्मिता अपरेऽपि ये ॥ प्रकारा अमुना तुल्यास्तेऽपि चेत्तद्गुणाः स्मृताः ॥१०१॥

मैदाको घी तथा जलसे खूब मलकर उसमें इलायची लोंग, कपूर और मिरच आदिक, डाले और चपटी

बडी बनालेवे, फिर घीमे सेककर खॉडकी चासनीमें पागलेवै, फिर चासनीसे निकाल लेवै। इस प्रकारसे बनाई हुई वस्तूको मंठ (मठरी) कहतेहैं॥

मंठ—पुष्टिकारक, वृष्य, बलदायक, मधुर, भारी, वात तथा पित्तनाशक, रुचिकारी और प्रदीप्त अग्निवालोके लिये उत्तम है। इसी प्रकार और भी मैदा खाड तथा घीके बने पदार्थ (बालूसाइ आदि) जानने; उनमे भी येही गुण हैं॥ ९८–१०१॥

अथ सम्पावः [गुजिया]।

पर्पट्यः साज्यसमितानिर्मिता घृतभर्जिताः॥ कुट्टिताश्चालिताः शुद्धशर्कराभिर्विमर्दिताः॥ १०२॥ तत्र चूर्णं क्षिपेदेलालवङ्गमरिचानि च॥ नालिकेरं सकर्पूरं चारबीजान्यनेकधा॥ १०३। घृताक्तसमिता पुष्टरोटिका रचिता ततः॥ तस्यान्तःपूरणं तस्य कुर्य्यान्मद्रां दृढां सुधीः॥ १०४॥ सर्पिषि प्रचुरे तान्तु सुपचेन्निपुणो जनः॥ प्रकारज्ञैः प्रकारोऽयं सम्पाव इति कीर्तितः॥ १०५॥

मैदा और घी मिलाय रोटी बनाकर घीमे सेकलेवै, सिकनेपर कूटले और छानले, पश्चात् स्वच्छ बूरा मिलावे फिर इलायची, लौंग, काली मिरच, नारियलकी मींग और कपूर चिरोंजी डाले। फिर मोवन पडीहुई मैदाकी रोटीसी बेललेवे, पश्चात् उस चूर्णको उसके भीतर भरे और मजबूत मुख बंद करदेवे, चतुर पुरुष इसको घीमे भली भॉति सेकलेवे, सिकनेपर इसको सपाव (गुजिया) कहतेहैं इस सपावके गुण मठके सदृशही जानने॥ १०२--१०५॥

अथ कर्पूरनालिका।

घृताढ्यया समितया लम्बं कृत्वा पुटं ततः॥ लवंगोल्वणकर्पूरयुतया सितयाऽन्वितम्॥ १०६॥ पचेदाज्येन सिद्धैषा ज्ञेया कर्पूरनालिका॥ सम्पावसदृशी ज्ञेया गुणैः कर्पूरनालिका॥ १०७॥

मोवन पडी हुई मैदाकी लोईको बेलकर, लंबा सपुट बनावे, फिर लोंग, मिरच, कपूर और खॉड मिलाकर उसके भीतर भरे और मुख बंद करके घृतमे सेकलेवे. इसको कर्पूरनालिका कहते हैं. इसमे संपावके सदृश गुण है॥ १०६॥ १०७॥

अथ फेनिका [फेनी]।

समितायां घृताढ्यायां वर्त्तिं दीर्घां समाचरेत्॥ तास्तु सन्निहिता दीर्घाः पाटस्योपरि धारयेत्॥ १०८॥ वेल्लयेद्वेल्लनेनैता यथैका पर्पटी भवेत्॥ ततश्छुरिकया तान्तु संलग्नामेव कर्त्तयेत्॥ १०९॥ ततस्तु वेल्लयेद्भूयः सट्टकेन च लेपयेत्॥ शालिचूर्णं घृतं तोयं मिश्रितं सट्टकं वदेत्॥ ॥ ११०॥ ततः संवृत्य तल्लोप्त्रीं विदधीत पृथक्पृथक्॥ पुनस्तां वेल्लयेल्लोप्त्री यथा स्यान्मण्डलाकृतिः॥ १११॥ ततस्तां सुपचेदाज्ये भवेयुश्च स्फुटाः स्फुटाः॥ सुगन्धया शर्करया तदुद्धूलनमाचरेत्॥ ॥ ११२॥ सिद्धैषा फेनिका नाम्नी मण्डकेन समा गुणैः॥ ततः किञ्चिल्लघुरियं विशेषोऽयमुदाहृतः॥ ११३॥

वेल्लयेत् प्रसारयेत्। वेल्लनः 'वेलुन' इति लोके। पर्पटी [रोटी]। लोप्त्री 'लोई' इति लोके॥

मोवनयुक्त मैदाको मलकर उसमे घी डालकर लंबी-लबी बत्ती बनावे, फिर सबको लपेटकर लबीलबी बत्तीकरे, पश्चात् बेलनसे बेलकर रोटी बनावे. तदनतर चाकूसे कतरकर सबको मिलाले फिर कतरकर बेलै और सट्टकका लेपकरे. चावलका चूर्ण, घृत और जल इन सबको मिलालेवे. इसको सट्टक कहते है, इस सट्टकको लपेटकर बेललेवे, फिर मिलाकर गोल गोल बना ले, तत्पश्चात् घीमे सेकलेवे जब सिक जायगी तब तारतार अलग होजायँगे, फिर सुगधित खॉडकी चासनीमें पागलेवे, तयार होनेपर फेनिका (फेनी) कहाती है, फेनीमे मठकके सदृश गुण है, विशेष करके किंचित् हलकी है॥ १०८–११३॥

अथ शष्कुली [खस्तापूरी] ।

समिताया घृताक्ताया लोप्त्रीं कृत्वा च वेल्लयेत् ॥ आज्ये तां भर्जयेत्सिद्धां शष्कुलीं फेनिकागुणाम् ॥ ११४ ॥

मोवनयुक्त मैदाको मलकर लोई करे, फिर पतली वेलकर घीमें छोडदेवे,जब सिकजाय तब निकाल ले इसको शष्कुली (खस्तापूरी) कहतेहैं. इसमें फेनीके सदृश गुण हैं ॥ ११४ ॥

अथ सेविकामोदकः [सेवकेलड्डू]

घृताढ्यया समितया कृत्वा सूत्राणि तानि तु ॥ निपुणो भर्जयेदाज्ये खण्डपाकेन योजयेत् ॥ युक्तेन मोदकान्कुर्य्यात्ते गुणैर्मण्डका यथा ॥ ११५ ॥

घृतयुक्त मैदाके सेव बनाकर घीमें सेकलेवे और खाँडकी चासनीमें डालके लड्डू बनायले इन लड्डुओंमें भी मंडकके सदृश गुण हैं ॥ ११५ ॥

अथ मुक्तामोदकाः [बूँदीके ड्डू]

मुद्गानां धूमसीं सम्यग्घोलयेन्निर्मलाऽम्बुना ॥ कटाहस्थघृतैरूर्ध्वं झर्झरं स्थापयेत्ततः ॥ ११६॥ धूमसीन्तु द्रवीभूतां प्रक्षिपेज्झर्झरोपरि ॥ पतन्ति बिन्दवस्तस्मात्तान्सुपक्वान्समुद्धरेत् ॥ सितापाकेन संयोज्य कुर्याद्धस्तेन मोदकान् ॥ ११७ ॥ लघुर्ग्राही त्रिदोषघ्नः स्वादुः शीतो रुचिप्रदः ॥ चक्षुष्यो ज्वरहृद्बल्यस्तर्पणो मुद्गमोदकः ॥ ११८ ॥

मूँगकी धुमसीको जलमें घोलकर घीकी भरीहुई कढाईमें बडे बडे छेदवाली पोनियामें उस सनीहुई मूँगकी धूमसीको झाडदेवै तौ उसकी छोटी छोटी बूँद कढाईमें पडेंगी उनको सिकनेपर निकालले और चासनीमें डालकर हाथसे लड्डू बनावै । बूँदीके लड्डू—हलके, ग्राही, त्रिदोषनाशक, स्वादिष्ट, शीतल, रुचिकारक, नेत्रोंको हितकारी, ज्वरनाशक, बलदायक और तृप्तिकारक हैं ॥ ११६–११८ ॥

अथ वेसनमोदकाः [मोतीचूरके लड्डू] ।

एवमेव प्रकारेण कार्य्या वेसनमोदकाः ॥ ते बल्या लघवः शीताः किञ्चिद्वातकरास्तथा ॥ विष्टम्भिनो ज्वरघ्नाश्च पित्तरक्तकफापहाः ॥ ११९ ॥

उपरोक्त लड्डूके सदृशही वेसनके लड्डू बनावे उनको मोतीचूरके लड्डू कहतेहैं । मोतीचूरके लड्डू—बल्कारक हलके, शीतल, किंचित् वातकारक, विष्टम्भी, ज्वरनाशक, और पित्तरक्त तथा कफनाशक हैं ॥ ११९ ॥

दुग्धकूपिका ।

तण्डुलचूर्णविमिश्रितघृष्टक्षीरेण सान्द्रपिष्टेन ॥ दृढकूपिकां विदध्यात्ताञ्च पचेत्सर्पिषासम्यक् ॥ १२० ॥ अथ तां कोरितमध्यां घनपयसा पूर्णगर्भाञ्च ॥ सट्टकमुद्रितवदनां सर्पिषि सुपक्ववदनाञ्च ॥ १२१ ॥ अथ पाण्डुखण्डपाके स्नपयेत्कर्पूरवासिते कुशलः ॥ अथ दुग्धकूपिका सा बल्या पित्तानिलापहा चैव ॥ वृष्या शीता गुर्वी शुक्रकरी बृंहणी रुच्या ॥ १२२ ॥ विदधाति कायपुष्टिं दृष्टिं दूरप्रसारिणी सुचिरम् ॥

चावलोंके चूर्णमें मावा (खोहा) मिलाकर मजबूत कुप्पी बनावै, उसको घीमें छोडकर सेकलेवे, पकनेपर निकालकर बीचमें छेदकर गाढा मिश्रीयुक्त दूध भरदेवै और सट्टकसे मुख खूब बंद करके फिर घीमें सेकै जब उसका मुख सिकजाय तब चतुर मनुष्य कपूरसे सुवासित खाँडकी चासनीमें पागलेवै, उसको दुग्धकूपिका कहतेहैं ॥

यह दुग्धकूपिका—बलकारक, पित्त तथा कफनाशक, वृष्य, शीतल, भारी, वीर्यवर्द्धक, पुष्टकारी, रुचिकारक, शरीरकी पुष्टि करनेवाली. और दृष्टिको दूरदर्शक करनेवाली है ॥ १२०–१२२ ॥

अथ कुण्डलिनी [जलेबी] ।

नूतनं घटमानीय तस्यान्तः कुशलो जनः ॥

प्रस्थार्द्धपरिमाणेन दध्नाऽम्लेन प्रलेपयेत् ॥ ॥ १२३ ॥ द्विप्रस्थां समितां तत्र दध्यम्लं प्रस्थसम्मितम् ॥ घृतमर्द्धशरावश्च घोलयित्वा घृते क्षिपेत् ॥ १२४ ॥ आतपे स्थापयेत्तावद्यावद्याति तदम्लताम् ॥ ततस्तत्प्रक्षिपेत्पात्रे सच्छिद्रे भाजने तु तत् ॥ १२५ ॥ परिभ्राम्यपरिभ्राम्य तत्सन्तप्ते घृते क्षिपेत् ॥ पुनःपुनस्तदावृत्त्या विदध्यान्मण्डलाकृतिम् ॥ १२६ ॥ तां सुपक्कां घृतान्नीत्वा सितापाके तनुद्रवे ॥ कर्पूरादिसुगन्धश्च स्नापयित्वोद्धरेत्ततः ॥ ॥ १२७ ॥ एषा कुण्डलिनी नाम्ना पुष्टिकान्तिबलप्रदा ॥ धातुवृद्धिकरी वृष्या रूच्या च क्षिप्रतर्पणी ॥ १२८ ॥

नवीन मृत्तिकाके घडेमें आधसेर खट्टे दहीका लेपकर देवै. पश्चात् दो सेर मैदा उसमें डाले और एकसेर दही तथा आधसेर घृत घोलकर जबतक खट्टा न हो तबतक धूपमें रक्खा रहने दे. पश्चात् जिस वासनमें नीचे छेद हो उस पात्रमें करके नीचे घृतभरी हुई कढाईमें गोल गोल करके छोडता जाय, जब वह सिकजाय तब घीमसे निकालकर-कर्पूर आदिसे सुगंधित हुई खांडकी चासनीमें डालदेवै और पश्चात् निचोडकर निकाललें, उसको कुण्डलिनी (जलेबी) कहतेहैं । यह जलेबी—पुष्टिकारक, कांतिकारक, पुष्टिदायक, धातुवर्द्धक, वृष्य, रुचिकारी और तुरन्त तृप्तिकारक है ॥ १२३—१२८॥

अथ पश्चात् परिवेष्याणि ।

रसाला [सिखरन] ।

आदौ माहिषमम्लमम्बुरहितं दध्याढकं शर्करां शुभ्रां प्रस्थयुगोन्मितां शुचिपटे किञ्चिच्च किञ्चित्क्षिपेत् ॥ दुग्धेनार्द्धघटेन मृन्मयनवस्थाल्यां दृढं स्रावयेदेलाबीजलवंगचन्द्रमरिचैर्योग्यैश्च तद्योजयेत् ॥ ॥ १२९ ॥ भीमेन प्रियभोजनेन रचिता नाम्ना रसाला स्वयं श्रीकृष्णेन पुरा पुनःपुनरियं प्रीत्या समास्वादिता ॥ एषा येन वसन्तवर्जितदिने संसेव्यते नित्यशस्तस्य स्यादतिवीर्य्यवृद्धिरनिशं सर्वेन्द्रियाणां बलम् ॥ १३० ॥ ग्रीष्मे तथा शरदि ये रविशोषितांगा ये च प्रमत्तवनितासुरतातिखिन्नाः ॥ ये चापि मार्गपरिसर्पणशीर्णगात्रास्तेषामियं वपुषि पोषणमाशु कुर्य्यात् ॥ १३१ ॥ रसाला शुक्ला बल्या रोचनी वातपित्तजित् ॥ दीपनी बृंहणी स्निग्धा मधुरा शिशिरा सरा ॥ रक्तपित्तं तृषां दाहं प्रतिश्यायं विनाशयेत् ॥ १३२ ॥

प्रथम खट्टा तथा जलरहित दोसौ छप्पन २५६ तोलेभर भैंसका दही लेवे और उसको स्वच्छ कपडेमें रखकर एकसौ अट्ठाईस १२८ तोलाभर सफेद बूरा डालकर नीचेको स्वच्छ नवीन मिट्टीके पात्रमें दही छानता जाय, पश्चात् इसमें पांचसौ बारह ५१२ तोलाभर दूध डाले और इलायची, लोंग, कपूर, मिरच यथायोग्य डाले । प्रिय भोजनके बनानेवाले भीमसेनने स्वयं यह रसाला बनाई थी, और श्रीकृष्णने परम प्रीतिसे वारवार स्वाद लेकर खाई थी । जो मनुष्य वसन्तऋतुको त्यागकर नित्य रसाला भोजन करतेहैं, उनके निरंतर वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि होतीहै और सर्व इन्द्रियोंमें बल बढता है । जिनका शरीर ग्रीष्म तथा शरदऋतुमें सूर्यके तापसे सूख गया है, जो मदोन्मत्त स्त्रियोंके संभोगसे अतिखिन्न होगया है और जिनका शरीर मार्ग चलनेमें शिथिल होगया है, उन पुरुषोंके शरीरोंको तत्काल पुष्टि करती है । यह रसाला—(श्रीखंड) वीर्यवर्द्धक, बलदायक, रुचिकारक, वात तथा पित्तनाशक, अग्निको दीपन करनेवाली, पुष्टिकारक, स्निग्ध, मधुर, शीतल, दस्तावर और रक्तपित्त, तृषा, दाह तथा प्रतिश्याय (जुखाम) नाशक है ॥१२९—१३२ ॥

अथ शर्करोदकम् [सरबत]।

जलेन शीतलेनैव घोलिता शुभ्रशर्करा ॥ एलालवङ्गकर्पूरमरिचैश्च समन्विता १३३

शालि चावलोंके सत्तू-अग्निप्रदीपक, हलके, शीतल, मधुर, ग्राही, रुचिकारी, पथ्य और बल तथा वीर्य वर्द्धक हैं ॥ १५४ ॥

अथ सामान्यपरिभाषा।

न भुक्त्वा न रदैश्छित्त्वा न निशायां न वा बहून् ॥ न जलान्तरितानद्भिः सक्तूनद्यान्न केवलान् ॥ १५५ ॥ पृथक्पानं पुनर्दानमामिषं पयसा निशि ॥ दन्तच्छेदनमुष्णञ्च सप्त सक्तुषु वर्जयेत् ॥ १५६ ॥

सत्तू भोजन करनेके अनन्तर न पिये, दांतोंसे कुचलकर न खावै, रात्रिमें न खाय, अधिक न खाय, दो वार पानी डालकर न खाय और केवल सत्तू न खाय । अलग पीना, एकवार जिसने खाये होयँ उसको दूसरी वार न देना, मासके साथ और दूधके साथ, रात्रिमे, दांतोंसे कुचलकर और गरम करके इस प्रकार सत्तू नही खाना चाहिये, ऐसे वर्जित हैं ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

अथ धानाः [बहुरी]।

यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः स्मृता धाना इति स्त्रियाम् ॥ धानाः स्युर्दुर्जरा रूक्षास्तृट्प्रदा गुरवश्च ताः ॥ तथा मेहकफच्छर्दिनाशिन्यः सम्प्रकीर्त्तिताः ॥१५७॥

भूसीरहित जौओंको भुनवा लेवै, उसको धाना (बहुरी) कहते हैं । बहुरी-दुर्जर, (कठिनतासे पचे) भारी, रूक्ष, तृषा लगानेवाली और प्रमेह, कफ तथा वमननाशक है ॥ १५७ ॥

अथ लाजाः [खील] ।

येषां स्युस्तण्डुलास्तानि धान्यानि सतुषाणि च ॥ भृष्टानि स्फुटितान्याहुर्लाजा इति मनीषिणः ॥ १५८ ॥ लाजाः स्युर्मधुराः शीता लघवो दीपनाश्च ते ॥ स्वल्पमूत्रमला रूक्षा बल्याः पित्तकफच्छिदः ॥ छर्द्यतीसारदाहास्रमेहमेदस्तृषापहाः ॥ १५९ ॥

जिसमे चावल निकलते हैं उन छुलके सहित धान्योंको भाडमे भुनालेवै, उसको लाजा (खील) कहतेहैं । खीलैं-मधुर, शीतल, हलकी, अग्निप्रदीपक, मल तथा मूत्रको अल्प करनेवाली, रूक्ष, बलदायक और पित्त, कफ, वमन, अतीसार, दाह, रक्तविकार, प्रमेह, मेद तथा तृषानाशक हैं ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

अथ चिपिटाः [चौले] ।

शालयः सतुषा आर्द्रा भृष्टा अस्फुटिताश्च तत् ॥ कुट्टिताश्चिपिटाः प्रोक्तास्ते स्मृताः पृथुका अपि ॥ १६० ॥ पृथुका गुरवो वातनाशनाः श्लेष्मला अपि ॥ सक्षीरा बृंहणा वृष्या बल्या भिन्नमलाश्च ते ॥ १६१ ॥

भूसी सहित गीले शालिधान्योको भूनकर विना खिलेही तत्काल कूट लेवे, वे कूटकर चिपटे होजातेहैं उनको चिपिट और पृथुक कहतेहैं । पृथुक (चौले)-भारी, वातनाशक, कफकारक, खारी, पुष्टिकारक, वृष्य, बलदायक और मलभेदक (दस्तलानेवाले) हैं ॥ १६० ॥ १६१ ॥

अथ होला ।

अर्द्धपक्वैः शमीधान्यैस्तृणभृष्टैश्च होलकः ॥ होलकोऽल्पानिलो मेदःकफदोषत्रयापहः ॥ भवेद्यो होलको यस्य स च तत्तद्गुणो भवेत् ॥ १६२ ॥

अधपके शमी धान्योंको तोडकर भूनले उसको होला कहतेहैं । होला अल्प वातकारक और मेद, कफ तथा त्रिदोषनाशक है । जिस धान्यके होले होय उसके गुण भी उन होलोंमें रहतेहैं ॥ १६२ ॥

अथ ऊची [ऊंबी] ।

मञ्जरी त्वर्द्धपक्वा या यवगोधूमयोर्भवेत् ॥ तृणानलेन संभृष्टा बुधैरूचीति सा स्मृता ॥ १६३ ॥ ऊची कफप्रदा बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा ॥ १६४ ॥

जौ अथवा गेहूंकी अधपकी मजरी (वाल) लेकर तृणोकी आगमे भून लेवै, उसको ऊची कहतेहैं । ऊची (ऊवी) कफकारक, बलदायक, हलकी और पित्त तथा वातनाशक है ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

अथ कुल्माषाः [घुघुरी] ।

अर्धस्विन्नास्तु गोधूमा अन्येऽपि चणकादयः ॥ कुल्माषा इति कथ्यन्ते शब्द-

शास्त्रेषु पण्डितैः॥ कुल्माषा गुरवो रूक्षा वातला भिन्नवर्चसः॥ १६५॥

गेहूँ अथवा चने आदिको अध सीजा कर लेवै उसको शब्दशास्त्रविशारद कुल्माष (घुघुरी) कहतेहैं। कुल्माष (घुघुरी)—भारी, रूखी, वातकारक और मलभेदक है॥ १६५॥

अथ तिलकुट्टम् [तिलकुट]।

पललन्तु समाख्यातं सैक्षवं तिलपिष्टकम्॥ पललं मलकृद्वृष्यं वातघ्नं कफपित्तकृत्॥ बृंहणं च गुरु स्निग्धं मूत्राधिक्यनिवर्त्तकम्॥ १६६॥

तिलोंको कूटकर उसमें गुड आदि मिलावे उसको पलल (तिलकुट) कहतेहैं। तिलकुट—मलकारक, वृष्य, वातनाशक, कफ तथा पित्तकर्ता, पुष्टिदायक, भारी, चिकनी और मूत्रकी अधिकताको नष्ट करै है॥ १६६॥

अथ तिलखलिः [खल, पीना]।

तिलकुट्टन्तु पिण्याकं तथा तिलखलिः स्मृता॥ पिण्याको लेखनो रूक्षो विष्टम्भी दृष्टिदूषणः॥ १६७॥

तिलकुट्ट, पिण्याक और तिलखलि ये खलके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी—खल। गु०—खोल।

तिलकी खल—ग्लानिकारक, रूक्ष, विष्टम्भी और दृष्टिको दूषित करै है॥ १६७॥

अथ तंदुलः [चावल]।

तण्डुलो मेहजन्तुघ्नः स नवस्त्वतिदुर्जरः॥ १६८॥

इति श्रीभावप्रकाशे कृतान्नवर्गः।

चावल—प्रमेह तथा कृमिरोगको नष्ट करैहैं। जो चावल नवीन होंय वे अत्यन्त दुर्जर हैं॥ १६८॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्राम वैश्यकृत-भाषाटीकायां कृतान्नवर्गः समाप्तः।

अथ वारिवर्गः।

जलस्य नामानि गुणाश्च।

पानीयं सलिलं नीरं कीलालं जलमम्बु च॥ आपो वार्वारि कं तोयं पयः पाथस्तथोदकम्॥ जीवनं वनमम्भोऽर्णोऽमृतं घनरसोऽपि च॥ १॥ पानीयं श्रमनाशनं क्लमहरं मूर्च्छापिपासापहं तन्द्राच्छर्दिविबन्धहृद्बलकरं निद्राहरं तर्पणम्॥ हृद्यं गुप्तरसं ह्यजीर्णशमकं नित्यं हितं शीतलं लघ्वच्छं रसकारणं निगदितं पीयूषवज्जीवनम्॥ २॥

पानीय, सलिल, नीर, कीलाल, जल, अम्बु, आप, वार, वारि, क, तोय, पय, पाथ, उदक, जीवन, वन, अम्भ, अर्ण, अमृत, घनरस, (मेघप्रसव, कमल, भुवन, कवन्ध, पुष्कर, सर्वतोमुख, सलिल, सल, पय, अन्ध, कबन्ध, उद, दक, नार, शम्बर, अभ्रपुष्प, घृत, कृत्स्न, यादोनिवास, जीवनीय, कुलीनस, कुलीन, पिप्पल, कुश, विष, काण्ड, सवर, सर, कृपीट, चन्द्रोरस, सदन, कर्बुर, व्योम, सम्ब इरा, वाज, तामर, कम्बल, स्यन्दन, सम्बल, जलपीय, क्षर, ऋत, ऊर्ज, कोमल, सोम, नारा, छन्न, क्षोद, नभ, मधु, पुरीष, रेत, कश, जन्म, वृबूक, बुस, तुग्या, कर्बुर, कर्बूर, सुक्षेम, धरुण, सुरा, अरविन्द, धनुर्धनु, जामि, आयुधानि, क्षय, अहि, अक्षर, स्रोत, तृप्ति, रहस, रस, भेषज, मह, शव, ऊह, ओज, सुख, क्षत्र, आरया, शुभ, यादु, भूत, भविन्न, महत्, यश, मह, सर्वीक, सतीन, गहन, गभीर, गम्भ-लक्ष, अन्न, हवि, सद्म, योनि, सत्स्ययोनि, सत्य नदि, सत्, पूर्ण, सर्व, अक्षित, बर्हिनाम, सर्पि, अप, पवित्र, इन्दु, हेम स्व, सर्ग, सम्बर, अम्ब, वपु, अम्बु, तूप, शुक्र, तेज, दर्भ, जलाष, वज्र और नीलकण्ठप्रिय) ये पानीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—जल, पानी। ब०—जल। म०—गु०—पाणी। क०—मुनीक। तै०—नीरु। फा०—आब। अ०—माय। इं०—वाटर Water लै०—एक्वा Aqua॥

गुण—जल—परिश्रमनाशक, ग्लानिहारक, बलकारक, तृप्तिदायक, हृदयको प्रिय, गुप्तरसयुक्त, नित्यहितकारी, शीतल, हलका, स्वच्छ, रसका कारणरूप, अमृतके सदृश जीवनदायक और मूर्च्छा, पिपासा, तन्द्रा, वमन, विबन्ध, निद्रा और अजीर्णको नष्ट करनेवाला है॥ १॥ २॥

पानीयस्य भेदाः ।

पानीयं मुनिभिः प्रोक्तं दिव्यं भौममिति द्विधा ॥ दिव्यं चतुर्विधं प्रोक्तं धाराजं करकाभवम् ॥ तौषारश्च तथा हैमं तेषु धारं गुणाधिकम् ॥ ३ ॥

मुनियोंने दिव्य (आकाशका) और भौम (पृथ्वीका) इसप्रकार जल दोप्रकारका कहाहै ॥

धाराज, करकाभव, तौषार और हैम इस भाति दिव्य जल चार प्रकारका है । इन चारोंमे भी धाराजल अधिक गुणवाला है ॥ ३ ॥

धाराजलस्य लक्षणानि गुणाश्च ॥

धाराभिः पतितं तोयं गृहीतं स्थूलवाससा ॥ शिलायां वा सुधायां वा धौतायां पतितश्च तत् ॥ ४ ॥ सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके काचनिर्मिते ॥ भाजने मृन्मये वापि स्थापितं धारमुच्यते ॥ ५ ॥ धारं नीरं त्रिदोषघ्नमनिर्देश्यरसं लघु ॥ सौम्यं रसायनं बल्यं तर्पणं ह्लादि जीवनम् ॥ ६ ॥ पाचनं मतिकृन्मूर्च्छातन्द्रादाहश्रमक्लमान् ॥ तृष्णां हरति चात्यर्थं विशेषात्प्रावृषि स्थितम् ॥ ७ ॥

धारारूपसे गिरा हुआ जल स्वच्छ पत्थरपर गिरा हुआ हो अथवा धुली हुई पृथ्वीपर गिरा हो उसको वस्त्रसे छान लेवै और सुवर्णके, चाँदीके, ताँबेके, स्फटिकके, काँचके अथवा मट्टीके पात्रमे भर रक्खै, उसको धाराजल कहतेहैं ॥

गुण—धाराजल—त्रिदोषनाशक, अपूर्वरसवाला, हल्का, सौम्य, रसायन, बलदायक, तृप्तिकारक, आनददायक, जीवनरूप, पाचन, बुद्धिवर्द्धक और मूर्च्छा, आलस्य, दाह, परिश्रम, ग्लानि तथा तृषानाशक है । यह धाराजल, वर्षाऋतुमे लिया हो तो अधिक पथ्य है ॥ ४–७ ॥

धाराजलस्य भेदाः ।

धाराजलं च द्विविधं गाङ्गसामुद्रभेदतः ॥ ८ ॥

धाराजल दोप्रकारका है, एक गाङ्ग और दूसरा सामुद्र ॥ ८ ॥

गांगसामुद्रयोर्जलयोर्लक्षणं गुणाश्च ।

आकाशगङ्गासम्बन्धि जलमादाय दिग्गजाः ॥ मेघैरन्तरिता वृष्टिं कुर्वन्तीति वचः सताम् ॥ ९ ॥ गाङ्गमाश्वयुजे मासि प्रायो वर्षति वारिदः ॥ सर्वथा तज्जलं ज्ञेयं तथैव चरके वचः ॥ १० ॥ स्थापितं हेमजे पात्रे राजते मृन्मयेऽपि वा ॥ शाल्यन्नं येन संसिक्तं भवेदक्लेदि वर्णवत् ॥ ११ ॥ तद्गाङ्गं सर्वदोषघ्नं ज्ञेयं सामुद्रमन्यथा ॥ तच्च सक्षारलवणं शुक्रदृष्टिबलापहम् ॥ १२ ॥ विस्रश्च दोषलं तीक्ष्णं सर्वमर्मसु नो हितम् ॥ सामुद्रं त्वाश्विने मासि गुणैर्गाङ्गवदादिशेत् ॥ १३ ॥ यतोऽगस्त्यस्य दिव्यर्षेरुदयात्सकलं जलम् ॥ निर्मलं निर्विषं स्वादु शुक्रलं स्याददोषलम् ॥ १४ ॥ फूत्कारविषवातेन नागानां व्योमचारिणाम् ॥ वर्षासु सविषं तोयं दिव्यमप्याश्विनं विना ॥ १५ ॥

सत्पुरुषोंका वचन है कि, दिग्गज आकाशगगाका जल लेकर बादलोंसे छिपेहुए वर्षातेहैं । विशेष करके आश्विन मासमे जो जल वर्षताहै, वह आकाशगगाका होताहै, उसको गाग समझना । सुवर्णके, चाँदीके अथवा मट्टीके पात्रमे रक्खाहुआ गागजल सर्वथा रोगियोको देवै । चरकमें भी इसीप्रकार कहा है कि, जिस जलमें भिगोयेहुए चावल जैसेके वैसेही वर्णवाले रहजायँ वह गाङ्ग जल जानना. यह जल—सम्पूर्णदोषनाशक है । जिसमें ये गुण न होयँ वह सामुद्र जल जानना । सामुद्र जल—क्षारयुक्त, खारी, दुर्गन्धवाला, दोषवर्द्धक, तीक्ष्ण, सम्पूर्ण कार्योंमे निन्दित और वीर्य, दृष्टि तथा बलनाशक है । आश्विन मासमें वर्षेहुए समुद्रजलमे भी गागजलके सदृश गुण रहतेहैं; क्योकि—अगस्त्य मुनिके तारेके उदय होनेपर सर्व जल—निर्मल, विषरहित, स्वादिष्ठ, वीर्यवर्द्धक और दोषरहित होते हैं । इस कारण कहा है कि "वर्षा

ऋतुमें दिव्य जल भी आकाशमे विचरनेवाले विषैले जीवोंकी पवनसे विषयुक्त होजाताहै, परन्तु आश्विनमासमे गिराहुआ दिव्यजल विषैला नहीं होता ॥ ९-१५ ॥

अनार्त्तवजलस्य गुणाः ।

अनार्त्तवं प्रमुश्चन्ति वारि वारिधरास्तु यत् ॥ तत्त्रिदोषाय सर्वेषां देहिनां परिकीर्तितम् ॥ १६ ॥

अनार्त्तवं पौषादिमासचतुष्टयविषयम् ॥

जो जल विना ऋतु बादलोसे वर्षताहै, वह सम्पूर्ण प्राणियोको त्रिदोषकारक है । (यह जो विना ऋतुके जलकी निंदा करी है वह पौष आदि चार महीनोकी जाननी) १६॥

करकाजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

दिव्यवाय्वग्निसंयोगात्संहताः खात्पतन्ति याः ॥ पाषाणखण्डवच्चापस्ताः करक्योऽमृतोपमाः ॥ १७ ॥ करकाजं जलं रूक्षं विशदं गुरु च स्थिरम् ॥ दारुणं शीतलं सान्द्रं पित्तहृत्कफवातकृत् ॥ १८ ॥

दिव्य वायु और अग्निके संयोगसे पत्थरके टुकडोंके सदृश जो जल गिरताहै उसको करकाभव जल (ओला) कहते हैं । ओलेका जल-अमृततुल्य, रूक्ष, विशद, भारी, स्थिर (बँधाहुवा), दारुण, शीतल, पित्तनाशक और कफ तथा वातकारक है ॥ १७ ॥ १८ ॥

तौषारजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निरापस्तदुद्भवाः ॥ धूमावयवनिर्मुक्तास्तुषाराख्यास्तु ताः स्मृताः ॥ १९ ॥

अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निः नदीमारभ्य समुद्रपर्य्यन्ते वह्निरास्ते, तदुद्भवाः वह्निभवा धूमावयवनिर्मुक्ताः धूमांशरहिताः आपस्तुषाराख्याः । तुष् तुषार इति च लोके ॥

अपथ्याः प्राणिनां प्रायो भूरुहाणान्तु नाहिताः ॥ तुषाराम्बु हिमं रूक्षं स्याद्वातलमपित्तलम् ॥ कफोरुस्तम्भकण्ठाग्निमेहगण्डादिरोगनुत् ॥ २० ॥

नदीसे समुद्रपर्यन्त जो अग्नि रहती है उस अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ और जिनमे धुएँका लेशमात्र न हो उस जलको तौषार कहते हैं । अर्थात् जिसको ओस कहते हैं । तौषारजल-प्रायः प्राणियोंको अहितकारी और वृक्षोंको हितकारी है । तुषारका जल-शीतल, रूक्ष, वातकारक, पित्तकारक नहीं और कफ, ऊरुस्तम्भ, कण्ठरोग, अग्नि, प्रमेह और गलगण्डादि रोग नष्ट करनेवाला है॥१९॥२०॥

हैमजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

हिमवच्छिखरादिभ्यो द्रवीभूयाभिवर्षति ॥ यत्तदेव हिमं हैमं जलमाहुर्मनीषिणः ॥ हिमाम्बु शीतं पित्तघ्नं गुरु वातविवर्द्धनम् ॥ २१ ॥

हैमं जलम्-कुआशाजलम् ॥

अन्येतु-और्वानलधूमेरितमम्बु समुद्रस्य यद्घनीभूतम् । पवनानीतमुदीच्यां तद्धिममिति कथ्यते सद्भिः॥ हिमं कुआशा इति लोके॥

हिमन्तु शीतलं रूक्षं दारुणं सूक्ष्ममित्यपि ॥ न तद् दूषयते वातं न च पित्तं न वा कफम् ॥ २२ ॥

हिमालयके शिखरआदिमेंसे हिम (बरफ) पिघलकर वर्षताहै, उसको विद्वान हैमजल कहते हैं ॥

हिम (बरफ) का जल-शीतल, पित्तनाशक, भारी और वातवर्द्धक है । अन्य विद्वान् कहते हैं कि-"वडवानलके धुएँकी प्रेरणासे इकठा हुआ और पवनसे उत्तर दिशामें आया हुआ जो समुद्रका जल है वह हिम कहाता है । हिम-शीतल, रूक्ष, दारुण और सूक्ष्म है । तथा वात, पित्त और कफको दूषित करनेवाला नहीं है" ॥ २१ ॥ २२ ॥

भौमजलस्य भेदाः ।

भौममम्भो निगदितं प्रथमं त्रिविधं बुधैः ॥ जाङ्गलं परमानूपं ततः साधारणं क्रमात् ॥ २३ ॥

भौम (पृथ्वीसंबधी) जल तीन प्रकारका है । एक जांगल, दूसरा आनूप और तीसरा साधारण, इसभाँति क्रमसे जानने ॥ २३ ॥

भौमादिजलत्रयाणां लक्षणं गुणाश्च ।

अल्पोदकोऽल्पवृक्षश्च पित्तवातामयान्वितः॥

ज्ञातव्या जाङ्गलो देशस्तत्रत्यं जाङ्गलं जलम् ॥ २४ ॥ बह्वम्बुर्बहुवृक्षश्च वातश्लेष्मामयान्वितः ॥ देशोऽनूप इति ख्यात आनूपं तद्भवं जलम् ॥ २५ ॥ मिश्रचिह्नस्तु यो देशः स हि साधारणः स्मृतः ॥ तस्मिन्देशे यदुदकं तत्तु साधारणं स्मृतम् ॥ २६ ॥ जांगलं सलिलं रूक्षं लवणं लघु पित्तनुत् ॥ वह्निकृत्कफहृत्पथ्यं विकारान्हरते बहून् ॥ २७ ॥ आनूपं वार्यभिष्यन्दि स्वादु स्निग्धं घनं गुरु ॥ वह्निहृत्कफकृद्धृद्यं विकारान्कुरुते बहून् ॥ २८ ॥ साधारणं तु मधुरं दीपनं शीतलं लघु ॥ तर्पणं रोचनं तृष्णादाहदोषत्रयप्रणुत् ॥ २९ ॥

जो देश थोडे जलवाला, अल्प वृक्षोंवाला और पित्त तथा वातसंबंधी रोगयुक्त हो उस देशको जांगल देश जानना और उस देशमें होनेवाले जलको जांगल जल कहते हैं ॥

जो देश अधिक जलवाला, अधिक वृक्षोंवाला और वात तथा कफके रोगयुक्त हो उस देशको अनूपदेश कहते हैं, उस देशमें होनेवाले जलको आनूप जल कहते हैं ॥

जिस देशमें—जांगल और अनूप देशोंके मिश्रित लक्षण होवें उस देशको साधारण कहते हैं उसमें होनेवाले जलको साधारण जल कहते हैं ॥

गुण—जांगलजल—रूखा, खारी, हलका, पित्तनाशक, अग्निकारक, कफनाशक, पथ्य और अनेक विकारोंको नष्ट करै है। आनूपजल—अभिष्यन्दि, मधुर, स्निग्ध, घन (गाढा), भारी, मदाग्निकर्त्ता कफकारक, हृदयको प्रिय और अनेक विकारोंको करनेवाला है। साधारणजल—मधुर, अग्निप्रदीपक, शीतल, हलका, तृप्तिकर्त्ता, रुचिकारक और तृषा, दाह तथा त्रिदोष नाशक है ॥ २४–२९ ॥

नादेयजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

नद्या नदस्य वा नीरं नादेयमिति कीर्तितम् ॥ नादेयमुदकं रूक्षं वातलं लघु दीपनम् ॥ ३० ॥ अनभिष्यन्दि विशदं कटुकं कफपित्तनुत् ॥ नद्यः शीघ्रवहा लघ्व्यः सर्वा याश्चामलोदकाः ॥ ३१ ॥ गुर्व्यः शैवलसंछन्ना मन्दगाः कलुषाश्च याः ॥ हिमवत्प्रभवाः पथ्या नद्योऽश्माहतपाथसः ॥ ३२ ॥ गङ्गाशतद्रुसरयूयमुनाद्या गुणोत्तमाः ॥ सह्यशैलभवा नद्यो वेणागोदावरीमुखाः ॥ ३३ ॥ कुर्वन्ति प्रायशः कुष्ठमीषद्वातकफावहाः ॥ नदीसरस्तडागस्थे कूपप्रस्रवणादिजे ॥ उदके देशभेदेन गुणान्दोषांश्च लक्षयेत् ॥ ३४ ॥

नदी और नदके जलको नादेय कहते हैं। नादेय जल—रूखा, वातकारक, हलका, अग्निप्रदीपक, अभिष्यन्दि नहीं, विशद, चरपरा और कफ तथा पित्तनाशक है। जो नदियें शीघ्र चलनेवाली और निर्मल जलयुक्त हों वे हलके जलवाली हैं। जो नदियें सिवारसे आच्छादित, मंद वेगवाली और मलिन जलयुक्त हैं; उनका जल भारी जानना ॥ गंगा, सतलज, सरयू और यमुना आदि नदियें कि—जो हिमालयसे उत्पन्न हुई हैं, वे उत्तमगुणवाली जाननीं ॥ वेणा और गोदावरी आदि नदियें कि—जो सह्याद्रिमेंसे उत्पन्न हुई हैं, वे विशेष करके कोढ, किंचित् वात तथा कफको करती हैं। नदी, सरोवर, तालाव, कुआँ, अथवा झरने आदिके जलके गुण दोष उस उस देशके अनुसारही जानने ॥ ३०–३४ ॥

औद्भिदजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

विदार्य्य भूमिं निम्नां यन्महत्या धारया स्रवेत् ॥ तत्तोयमौद्भिदं नाम वदन्तीति महर्षयः ॥ ३५ ॥ औद्भिदं वारि पित्तघ्नमविदाह्यतिशीतलम् ॥ प्रीणनं मधुरं बल्यमीषद्वातकरं लघु ॥ ३६ ॥

जो जल नीचेकी पृथ्वीको फाडकर बडी धारसे बहता है, उसको महर्षियोंने औद्भिद जल कहा है ॥

गुण—औद्भिद जल—पित्तनाशक, दाहकारक नहीं, अत्यन्त शीतल, तृप्तिकारक, मधुर, बलदायक, किंचित् वातकारक और हलका है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

नैर्झरजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

शैलसानुस्रवद्वारिप्रवाहो निर्झरो झरः ॥ स तु प्रस्रवणश्चापि तत्रत्यं नैर्झरं जलम् ॥ ॥ ३७ ॥ नैर्झरं रुचिकृन्नीरं कफघ्नं दीपनं लघु ॥ मधुरं कटुपाकं च वातलं स्याच्च पित्तलम् ॥ ३८ ॥

जो जल–पर्वतके झरने.मेसे झरताहै वह जलप्रवाह–निर्झर, झर और प्रस्रवण कहाताहै । यह जल स्रवता है इस कारण इसको नैर्झर कहतेहैं ॥

गुण–नैर्झर जल–रुचिकारक, कफनाशक, अग्निप्रदीपक, हलका मधुर, पाकमे चरपरा, वातकारक और पित्तल है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सारसजलस्य लक्षणं, गुणाः ।

नद्याः शैलादिरुद्धाया यच्च संश्रित्य तिष्ठति ॥ तत्सरो जलसंज्ञं च तदम्भः सारसं स्मृतम् ॥ ३९ ॥ सारसं सलिलं बल्यं तृष्णाघ्नं मधुरं लघु ॥ रोचनं तुवरं रूक्षं बद्धमूत्रमलं स्मृतम् ॥ ४० ॥

पर्वत आदिसे रुका हुआ नदीका जल स्रवस्रवके जहाँ एकत्र होताहो. और वह जल कमलोसे आच्छादित हो, उस जलको सारस जल कहतेहैं ॥

गुण–वह सारस (सरोवर का) जल–बलदायक, तृषानाशक, मधुर, हलका, रुचिकारक, रूक्ष, कसैला और मलमूत्रको बाँधनेवाला है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

ताडागजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

प्रशस्तभूमिभागस्थो बहुसंवत्सरोषितः ॥ जलाशयस्तडागः स्यात्ताडागं तज्जलं स्मृतम् ॥ ४१ ॥ ताडागमुदकं स्वादु कषायं कटुपाकि च ॥ वातलं बद्धविण्मूत्रमसृक्पित्तकफापहम् ॥ ४२ ॥

अधिक वर्षोसे संचित उत्तम स्थानपर रहनेवाला जो जलाशय है उसको तडाग (तालाब) कहतेहैं और उसमें रहनेवाले जलको ताडाग जल कहतेहै ॥

गुण–ताडागजल–मधुर, कसैला, पाकमें चरपरा, वातकारक, मूत्र तथा मलको बाँधनेवाला और रुधिरविकार, पित्त तथा कफको नष्ट करनेवाला है॥४१॥४२॥

वाप्यजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

पाषाणैरिष्टकाभिर्वा बद्धः कूपो बृहत्तरः ॥ ससोपाना भवेद्वापी तज्जलं वाप्यमुच्यते ॥ ४३ ॥ वाप्यं वारि यदि क्षारं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥ तदेव मिष्टं कफकृद्वातपित्तहरं भवेत् ॥ ४४ ॥

पत्थरोंसे अथवा ईटोसे वहुत बडा कुआँ बनवाकर उसमे आनेजानेकी पैरी बना लेवै उसको वापी अर्थात बावडी कहते है और उस बावडीके जलको वाप्यजल कहते हैं ॥

गुण–यदि बावडीका जल खारा होय तौ पित्तकारक और कफको तथा वातको नष्ट करै है । जो मीठा होय तौ कफकारक और बात तथा पित्तको नष्ट करै है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

कौपजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

भूमौ खातोऽल्पविस्तारो गम्भीरो मण्डलाकृतिः ॥ बद्धोऽबद्धः स कूपः स्यात्तदम्भः कौपमुच्यते ॥ ४५ ॥ कौपं पयो यदि स्वादु त्रिदोषघ्नं हितं लघु ॥ तत्क्षारं कफवातघ्नं दीपनं पित्तकृत्परम् ॥ ४६ ॥

पृथ्वीमें अल्प विस्तारवाला, गहरा और गोल आकारवाला गड्ढा खुदवाकर जो जल निकल आवे उसको कूप (कुआँ) कहतेहै और कुएँके जलको कौपजल कहतेहैं । यदि कुएँका जल मीठा होय तौ त्रिदोष नाशक, हितकारक और हलका है । जो खारा होय तौ–कफवातनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला और अत्यत पित्तकारक है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

चौञ्ज्यजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

शिलाकीर्णं स्वयं श्वभ्रं नीलाञ्जनसमोदकम् ॥ लतावितानसंछन्नं चौञ्ज्यमित्यभिधीयते ॥ ४७ ॥ अश्मादिभिरबद्धं यत्तचौण्ड्यमिति वा परे ॥ तत्रत्यमुदकं चौञ्ज्यं मुनिभिस्तदुदाहृतम् ॥ ४८ ॥ चौञ्ज्यं वह्निकरं नीरं रूक्षं कफहरं लघु ॥ मधुरं पित्तनुद्रुच्यं पाचनं विशदं स्मृतम् ॥ ४९ ॥

जो गड्ढा शिलाओंसे व्याप्त अजनके सदृश नील जलवाला और अनेक लताओंसे ढकाहुआ हो उसको चौञ्ज्य कहतेहैं । कोई आचार्य कहतेहैं कि–"जो यह शिला आदिसे नही बँधा हो उसको चौण्डय कहतेहैं ।" चौण्डयके जलको चौञ्ज्य कहतेहैं । चौञ्ज्यजल–अग्निकारक, रूक्ष, कफनाशक, हलका, मधुर, पित्तनाशक, रुचिकारक, पाचन और स्वच्छ है ॥ ४७–४९ ॥

पाल्वलजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

अल्पं सरः पल्वलं स्याद्यत्र चन्द्रर्क्षगे रवौ ॥ ५० ॥

रवौ सूर्ये चन्द्रर्क्षजे कर्कराशिस्थे श्रावणे मासि इति यावत् । चन्द्रर्क्षं मृगशिरस्तत्रगे इति मुख्यपाठः ॥

न तिष्ठति जलं किञ्चित्तत्रत्यं वारि पाल्वलम् ॥ पाल्वलं वार्यभिष्यन्दि गुरु स्वादु त्रिदोषकृत् ॥ ५१ ॥

सूर्य जब मृगशिर नक्षत्रमे आवे तब जिसमें पानी नही रहताहै ऐसी छोटी तलैयाको पल्वल कहतेहैं और उसका जल पाल्वल कहाताहै ॥

गुण–पाल्वल जल–अभिष्यन्दि, भारी, स्वादिष्ठ और त्रिदोष करनेवाला है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

विकिरजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

नद्यादिनिकटे भूमिर्या भवेद्वालुकामयी ॥ उद्धाव्यते ततो यत्तु तज्जलं विकिरं विदुः ॥ ५२ ॥ विकिरं शीतलं स्वच्छं निर्दोषं लघु च स्मृतम् ॥ तुवरं स्वादु पित्तघ्नं क्षारं तत्पित्तलं मनाक् ॥ ५३ ॥

नदी आदिके समीपमें जो रेतेकी पृथ्वी होतीहै उसके खुदवानेसे जो जल निकल आताहै, उसको विकिर कहतेहैं । विकिर जल–शीतल, स्वच्छ, निर्दोष, हलका, कसैला, मधुर और पित्तनाशक है यह जल जो खारी होय तौ किञ्चित् पित्तकारक है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

केदारजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

केदारः क्षेत्रमुद्दिष्टं कैदारं तज्जलं स्मृतम् ॥ कैदारं वार्यभिष्यन्दि मधुरं गुरु दोषकृत् ॥ ५४ ॥

केदार नाम खेतका है और केदारके जलको कैदार कहतेहैं । कैदार जल–अभिष्यन्दि, मधुर, भारी और दोषोंको उत्पन्न करनेवाला है ॥ ५४ ॥

वृष्टिजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

वार्षिकं तदहर्वृष्टं भूमिस्थमहितं जलम् ॥ त्रिरात्रमुषितं तत्तु प्रसन्नममृतोपमम् ॥ ५५ ॥

पृथ्वीपर पडा हुआ बर्सातका जल प्रथम दिन अपथ्यरूप है, परन्तु तीनदिनके पश्चात् स्वच्छ हुआ जल अमृतके समान है ॥ ५५ ॥

प्रत्येकर्तुषु जलगुणानां भेदाः ।

हेमन्ते सारसं तोयं ताडागं वा हितं स्मृतम् ॥ हेमन्ते विहितं तोयं शिशिरेऽपि प्रशस्यते ॥ ५६ ॥ वसन्तग्रीष्मयोः कौपं वाप्यं वा नैर्झरं जलम् ॥ नादेयं वारि नादेयं वसन्तग्रीष्मयोर्बुधैः ॥ ५७ ॥ विषवद्धनवृक्षाणां पत्राद्यैर्दूषितं यतः ॥ औद्भिदं वान्तरीक्षं वा कौपं वा प्रावृषि स्मृतम् ॥ ५८ ॥ शस्तं शरदि नादेयं नीरमंशूदकं परम् ॥ दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः ॥ ५९ ॥ ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् ॥ अनभिष्यन्दि निर्दोषमान्तरीक्षजलोपमम् ॥ बल्यं रसायनं मेध्यं शीतं लघु सुधासमम् ॥ ६० ॥

रविकरैर्जुष्टमित्युक्ते दिवापदं समस्तदिवसप्राप्त्यर्थं, शीतकरांशुभिर्जुष्टमित्युक्ते निशीतिपदं समस्तरात्रिप्राप्त्यर्थम् ॥ अन्यत्र–

शरदि स्वच्छमुदयादगस्त्यस्याखिलं हितम् ॥

वृद्धसुश्रुतस्तु–

पौषे वारि सरोजातं माघे तत्तु तडागजम् ॥ फाल्गुने कूपसम्भूतं चैत्रे चौञ्ज्यं हितं मतम् ॥ ६१ ॥ वैशाखे नैर्झरं नीरं ज्येष्ठे शस्तं तथौद्भिदम् ॥ आषाढे शस्यते कौपं श्रावणे दिव्यमेव च ॥ ६२ ॥ भाद्रे कौप्यं पयः शस्तमाश्विने चौञ्ज्यमेव च ॥

कार्तिके मार्गशीर्षे च जलमात्रं प्रशस्यते॥ ६३॥

हेमन्तऋतुमे तथा शिशिरऋतुमे सरोवरका, तथा तडागका जल हितकारी है। वसन्तऋतुमें और ग्रीष्मऋतुमे कुऍका, बावडीका तथा पर्वतके झरनेका जल हितकारी है। वसन्तमे तथा ग्रीष्ममे विद्वानोको नदीका जल नही पीना चाहिये, क्योकि–उस समय वनके विषैले वृक्षोके पत्तो आदिसे दूषित हुआ होताहै। वर्षाऋतुमें औद्भिद, आन्तरिक्ष (आकाशका) अथवा कूपका जल पीना चाहिये। शरदृतुमे नदीका जल तथा जिस जलाशयके ऊपर सम्पूर्ण दिन सूर्यकी किरणें पडती हौंय और रात्रिमे चन्द्रमाकी किरणें पडती होय उस जलाशयका पानी हितकारी है, ऐसे जलाशयके जलको अंशूदक कहते हैं। अंशूदक जल–स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, अभिष्यन्दी नहीं, निर्दोष, अन्तरिक्ष जलके सदृश, बलकारक, रसायनरूप, मेधाको हितकारी, शीतल, हलका और अमृतके सदृश है। कोई ऐसा भी कहते हैं कि–"शरदृतुमें अगस्त्यका उदय होनेपर सर्वजल हितकारी हैं" वृद्धसुश्रुत कहतेहैं कि–"पौषमासमे सरोवर (झीलका) जल, माघमें तडागका, फाल्गुनमे कुऍका, चैत्रमे चौंजका, वैशाखमे झरनेका, ज्येष्ठमें औद्भिदका, आषाढमें कुऍका, श्रावणमें अन्तरिक्षका, भाद्रपदमें कुऍका, आश्विनमें चौण्ड्यका और कार्तिकमे तथा मार्गशिरमें सर्व जलाशयोका जल हितकारी है॥ ५६–६३॥

जलग्रहणस्य समयः।

भौमानामम्भसां प्रायो ग्रहणं प्रातरिष्यते॥ शीतत्वं निर्मलत्वञ्च यतस्तेषां मतो गुणः॥ ६४

पृथ्वीपरका जल–नदी, तालाब, सरोवर आदिका जल अधिक करके प्रातःकालमे भर लेना चाहिये, क्योकि उस समय उसमे शीतलता और निर्मलता ये दो गुण होते हैं॥ ६४॥

जलपानस्य विधिः।

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्च स एव दोषः॥ तस्मान्नरो वह्निविवर्द्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि॥ ६५॥

अधिक जल पिये तौ भलीभाति अन्न नही पचताहै, और जल नहीं पिये तौ भी अन्न नही पचताहै, इस कारण मनुष्यको अग्नि बढनेके लिये जल थोडा २ बारबार पीना चाहिये॥ ६५॥

शीतलजलपानविषयः।

मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये॥ श्रमे भ्रमे विदग्धेऽन्ने तमके वमथौ तथा॥ ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमम्बु प्रशस्यते॥ ६६॥

मूर्च्छा, पित्त, गरमी, दाह, विष, रक्तविकार, मदात्यय, परिश्रम, भ्रम, तमकश्वास, वमन और ऊर्ध्वगतरक्तपित्त, इन रोगोंमे तथा जिनका अन्न जलगया हो उनको शीतल जल पीना चाहिये॥ ६६॥

शीतलजलस्य निषेधः।

पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे॥ आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नवज्वरे॥ ६७॥ अरुचिग्रहणीगुल्मश्वासकासेषु विद्रधौ॥ हिक्कायां स्नेहपाने च शीताम्बु परिवर्जयेत्॥ ६८॥

पसलीके दर्दमे, प्रतिश्याय (जुखाम) में, वायुसवंधी रोगोमे, गलग्रह रोगमे, अफारेमे, कोष्ठवद्धमे, विरेचन (जुलाव) लेनेपर, नव ज्वरमें, अरुचिमे, सग्रहणीमें, गुल्मरोगमे, श्वास तथा खांसीमे, विद्रधिमे, हिचकी और स्नेह-(तेल आदि) के पीनेमें शीतलजल वर्जित है ६७॥ ६८॥

अल्पजलपानविषयः।

अरोचके प्रतिश्याये मन्देऽग्नौ श्वयथौ क्षये॥ मुखप्रसेके जठरे कुष्ठे नेत्रामये ज्वरे॥ व्रणे च मधुमेहे च पिबेत्पानीयमल्पकम्॥ ६९॥

अरुचि, प्रतिश्याय, मन्दाग्नि, शोथ, क्षय, मुखप्रसेक (मुखसे जल वहना), उदररोग, कोढ. नेत्ररोग, ज्वर, व्रण और मधुमेह, इनमे थोडा जल पीना चाहिये॥ ६९॥

जलपानस्यावश्यकता।

जीवनं जीविनां जीवो जगत्सर्वन्तु तन्मयम्॥ नातोऽत्यन्तनिषेधेन कदाचिद्वारि वार्य्यते॥ ७०॥

हारीतश्च ।

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यःप्राणविनाशिनी ॥ तस्माद्देयं तृषार्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥ ७१ ॥ तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति॥अतः सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वर्जयेत् ॥ ७२ ॥

जल प्राणियोंका जीवनरूप है और सम्पूर्ण जगत् जलसे भराहुआ है, इस कारण किसी समयमें भी जल पीनेका अत्यन्त अवरोध नहीं करना चाहिये। हारीत मुनिने कहा है कि "तृषा अत्यन्त भयकर है, क्योंकि तत्काल प्राणोंको नष्ट करदेतीहै, इस कारण तृषित मनुष्यको जल देना चाहिये जिससे प्राण स्थिर रहैं" तृषित (प्यासे) मनुष्यको मोह उत्पन्न होताहै और मोहसे प्राण जाते हैं, इसकारण किसी समयमें भी जलका त्याग नहीं करे ॥ ७०-७२ ॥

गुणकारि जलम् ।

अगन्धमव्यक्तरसं सुशीतं तर्षनाशनम् ॥ स्वच्छं लघु च हृद्यञ्च तोयं गुणवदुच्यते७३

जो जल-दुर्गन्धरहित, कोई रसयुक्त न हो, बहुत शीतल, तृषानाशक, निर्मल, हलका और हृदयको प्रिय हो वह जल गुणकारी जानना ॥ ७३ ॥

पिच्छिलं कृमिलं क्लिन्नं पर्णशैवालकर्दमैः ॥ विवर्णं विरसं सान्द्रं दुर्गन्धं निहतं जलम् ॥ ७४ ॥ कलुषं छन्नमम्भोजपर्णनीलीतृणादिभिः ॥ दुःस्पर्शनमसंस्पृष्टं सौरचान्द्रमरीचिभिः ॥ ७५ ॥ अनार्त्तवं वार्षिकं तु प्रथमं तच्च भूमिगम् ॥ व्यापन्नं परिहर्त्तव्यं सर्वदोषप्रकोपनम् ॥ ॥ ७६ ॥ तत्कुर्य्यात्स्नानपानाभ्यां तृष्णाध्मानचिरज्वरान् ॥कासाग्निमान्द्याभिष्यन्दकण्डूगण्डादिकं तथा ॥ ७७ ॥

जो जल-पिच्छिल, कृमियुक्त, पत्ते सिवार तथा कीचसे खराब हुआ, वर्णरहित, रसरहित, गाढा अथवा दुर्गन्धयुक्त हो वह अहितकारी है। तैसेही कलुषित (गदला), कमलके पत्ते, सिवार तथा तृणआदिसे आच्छादित, बुरे स्थानका, सूर्य तथा चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे रहित, विनाऋतु (पौष आदि महीनोंके) वर्षनेपर जो तीन दिनतक न रक्खा रहा हो और विगडाहुआ जल छोडदेना चाहिये, क्योंकि उस जलसे सम्पूर्ण दोष कुपित होतेहै। ऐसे जलमें स्नान करनेसे तथा पीनेसे तृषा, अफारा, जीर्णज्वर, खासी, अग्निकी मन्दता, अभिष्यन्दी, कण्डू, गलगण्ड आदि रोग उत्पन्न होजातेहैं ॥ ७४-७७ ॥

दूषितजलस्य निर्दोषकारको विधिः ।

निन्दितं चापि पानीयं क्वथितं सूर्य्यतापितम् ॥ सुवर्णं रजतं लोहं पाषाणं सिकतामपि ॥७८॥ भृशं सन्ताप्य निर्वाप्य सप्तधा साधितं तथा ॥ कर्पूरजातिपुन्नागपाटलादिसुवासितम् ॥ ७९ ॥ शुचिसान्द्रपटस्रावि क्षुद्रजन्तुविवर्जितम् ॥ स्वच्छं कनकमुक्ताद्यैः शुद्धं स्याद्दोषवर्जितम् ॥ ८० ॥ पर्णमूलविषग्रन्थिमुक्ताकनकशैवलैः ॥ गोमेदेन च वस्त्रेण कुर्य्यादम्बुप्रसादनम् ॥ ८१ ॥

दूषितजलको उष्ण कर लेनेसे, अथवा सूर्यकी किरणोंसे तपानेसे, अथवा सुवर्ण, चादी, लोहा, पत्थर तथा रेत (बालू) को बहुत तपाकर सातवार बुझानेसे, कपूर, चमेली, केसर, पाढर आदि द्वारा सुवासित करनेसे, पवित्र वस्त्रमें छानकर,जिससे छोटे२ जीव निकल जायँ इस प्रकार स्वच्छ करनेसे,वा सुवर्ण-मोती आदि द्वारा स्वच्छ करनेसे शुद्ध और दोषरहित होजाताहै। पत्ते, जड तथा कमलकी नालसे, मोती-सुवर्ण-शैवाल-गोमेद और वस्त्रसे जलको स्वच्छ करना चाहिये ॥ ७८-८१ ॥

पीतजलस्य पाककालाः ।

शीतं जलं जीर्य्यति यामयुग्माद्यामैकमात्राच्छृतशीतलञ्च॥तदर्द्धमात्रेण शृतं कदुष्णं पयःप्रपाके त्रय एव कालाः ॥ ८२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे वारिवर्गः ।

शीतल जल पियाहुआ दो प्रहरमें पचताहै, गरम करके शीतल किया हुआ जल पीनेसे एक प्रहरमें पचताहै

और किंचित् उष्ण पियाहुआ पानी चार घडीमें पचता है इस प्रकार जल पचनेके तीनही समय है ॥ ८२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृत-वैद्यसञ्जीवनीभाषाटीकायां वारिवर्गः समाप्तः।

अथ दुग्धवर्गः।

दुग्धनामानि गुणाश्च।

दुग्धं क्षीरं पयः स्तन्यं बालजीवनमित्यपि ॥ दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वातपित्तहरं सरम् ॥ १ ॥ सद्यःशुक्रकरं शीतं सात्म्यं सर्वशरीरिणाम् ॥ जीवनं बृंहणं बल्यं मेध्यं वाजीकरं परम् ॥ २ ॥ वयःस्थापनमायुष्यं सन्धिकारि रसायनम् ॥ विरेकवान्तिवस्तीनां सेव्यमोजोविवर्द्धनम् ॥ ३ ॥ जीर्णज्वरे मनोरोगे शोषमूर्च्छाभ्रमेषु च ॥ ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दाहे तृषि हृदामये ॥ ४ ॥ शूलोदावर्तगुल्मेषु वस्तिरोगे गुदाङ्कुरे ॥ रक्तपित्तेऽतिसारे च योनिरोगे श्रमे क्लमे ॥ ५ ॥ गर्भस्रावे च सततं हितं मुनिवरैः स्मृतम्॥बालवृद्धक्षतक्षीणाः क्षुद्व्यवायकृशाश्च ये ॥ तेभ्यः सदातिशयितं हितमेतदुदाहृतम् ॥ ६ ॥

दुग्ध, क्षीर, पय, स्तन्य, बालजीवन, (पीयूष, ऊधस्य, अमृत, दोहज, अवदोह और दोहापनय) ये दूधके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-म०-दूध। गु०-व०-दुध। क०-हालु। तै०-पालु। फा०-शीरे। अ०-जुबन। इ०-मिल्क Milk लै०-लक्टस् Lactus ॥

गुण-दूध-मधुर, स्निग्ध, वात तथा पित्तनाशक, दस्तावर, वीर्यको शीघ्र उत्पन्न करनेवाला, शीतल, सर्वप्राणियोंके अनुकूल, जीवनरूप, पुष्टिकारक, बलदायक, बुद्धिको उत्तम करनेवाला, अत्यन्तवाजीकरण, आयुको स्थापन करनेवाला, आयुष्य, सन्धान कारक रसायन और विरेचन, वमनक्रिया तथा वस्तिक्रियावालोंके सेवनयोग्य और ओजवर्द्धक है। जीर्णज्वर, मानसिकरोग, उन्मादादिक शोष, मूर्च्छा, भ्रम, सग्रहणी, पाण्डुरोग, दाह, तृषा, हृदयरोग, शूल, उदावर्तरोग, गुल्म, वस्तिरोग, अर्श (बवासीर), रक्तपित्त, अतीसार, योनिरोग, परिश्रम, ग्लानि और गर्भस्राव, इनमें मुनियोंने दूध सर्वदा हितकारी कहा है। जो बालक, वृद्ध, क्षतवाला, क्षीण हुआ, भूँखमे दुर्बल हुआ, अथवा मैथुनसे दुर्बल हुआ है, उनको दूध सर्वदा अत्यन्त हितकारी है ॥ १-६ ॥

गोदुग्धगुणाः।

गव्यं दुग्धं विशेषेण मधुरं रसपाकयोः॥ शीतलं स्तन्यकृत्स्निग्धं वातपित्तास्रनाशनम् ॥ ७ ॥ दोषधातुमलस्रोतःकिंचित्क्लेदकरं गुरु ॥ जरासमस्तरोगाणां शान्तिकृत्सेविनां सदा ॥ ८ ॥ कृष्णाया गोर्भवेद्दुग्धं वातहारि गुणाधिकम् ॥ पीताया हरते पित्तं तथा वातहरं भवेत् ॥ श्लेष्मलं गुरु शुक्लाया रक्तचित्रा च वातहृत् ॥ ९ ॥

गायका दूध-विशेष करके रसमें तथा पाकमें मधुर, शीतल, दूधवर्द्धक, स्निग्ध, वात, पित्त तथा रक्तविकार नाशक है। दोषधातु, मल तथा नाडियोको किंचित् आर्द्र करनेवाला भारी और सर्वदा सेवन करनेवालेके सम्पूर्ण रोग तथा वृद्धताको नष्ट करै है ॥

कालीगायका दूध-वातनाशक और अधिक गुणवाला है। पीली गायका दूध-पित्त तथा वातनाशक है। सफेद गायका दूध-कफकारक तथा भारी है। लाल तथा चितकबरी गायका दूध वातविनाशक है ॥ ७-९ ॥

सद्यःप्रसूताया विवत्सायाश्च गोर्दुग्धगुणाः।

बालवत्सविवत्सानां गवां दुग्धं त्रिदोषकृत् ॥ १० ॥

छोटे बछडेवाली तथा बिनाबच्चेवाली गायका दूध त्रिदोषकारक है ॥ १० ॥

बष्कयिण्या गोः [बाखरीगायके] दुग्धगुणाः।

बष्कयिण्यास्त्रिदोषघ्नं तर्पणं बलकृत्पयः ॥ ११ ॥

स्त्रीदुग्धगुणाः।

नार्या लघु पयः शीतं दीपनं वातपित्तजित् ॥ चक्षुःशूलाभिघातघ्नं नस्याश्च्योतनयोर्वरम् ॥ २२ ॥

स्त्रीका दूध—हलका, शीतल, अग्निको दीपन करनेवाला और वात, पित्त, नेत्रोका शूल तथा अभिघातनाशक है और नस्य देनेमे तथा आश्च्योतनकार्यमे उत्तम है ॥ २२ ॥

धारोष्णादिदुग्धगुणाः।

धारोष्णं गोपयो बल्यं लघु शीतं सुधासमम् ॥ दीपनञ्च त्रिदोषघ्नं तद्धाराशिशिरं त्यजेत् ॥ २३ ॥ धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतन्तु माहिषम् ॥ शृतोष्णमाविकं पथ्यं शृतशीतमजापयः ॥ २४ ॥ आमं क्षीरमभिष्यन्दि गुरु श्लेष्मामवर्द्धनम् ॥ ज्ञेयं सर्वमपथ्यं तु गव्यमाहिषवर्जितम् २५॥ नारीक्षीरं त्वाममेव हितं न तु शृतं हितम्॥ शृतोष्णं कफवातघ्नं शृतशीतन्तु पित्तनुत् ॥ २६ ॥ अर्द्धोदकं क्षीरशिष्टमामाल्लघुतरं पयः ॥ जलेन रहितं दुग्धमातिपक्कं यथा यथा ॥ तथा तथा गुरु स्निग्धं वृष्यं बलविवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

गायका धारोष्ण दूध—बलदायक, हलका, शीतल, अमृतके सदृश, अग्निको दीपन करनेवाला और त्रिदोषनाशक है। गायका दूध दुहकर शीतल होगया हो तो अग्निसे गरम करके उसका उपयोग करै। गायका दूध धारोष्ण और भैसका दूध दुहकर पीछे शीतल होगया हो वह प्रशंसित है। भेडका दूध गरम और बकरीका दूध औटाकर शीतल हुआ पथ्य है। कच्चा दूध—अभिष्यन्दि, भारी, कफ तथा आमवर्द्धक है, इसकारण गाय तथा भैंसके अतिरिक्त सब कच्चे दूध अपथ्य जानने। स्त्रीका दूध तौ कच्चाही हितकारी है, परन्तु गरम किया हुआ अहितकारी है। गरम किया हुआ दूध—कफ तथा वातनाशक और गरम करके शीतल किया हुआ दूध पित्तनाशक है। दूधमे आधा जल डालकर उसको औटावे, जब केवल दूधही शेष रहै तब वह दूध—कच्चेसे भी अधिक हलका है। जलरहित दूध—जितना जितना अधिक पकावै उतना उतनाही भारी, स्निग्ध, वृष्य और बलवर्द्ध होता है ॥ २३–२७ ॥

पीयूषकिलाटक्षीरशाकतक्रपिण्डमोरटानां लक्षणं गुणाश्च।

क्षीरं तत्कालसूताया घनं पीयूषमुच्यते ॥ २८ ॥ नष्टदुग्धस्य पक्कस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाटकः ॥ २९ ॥

किलाटकः 'खरेटा' इति लोके ॥

अपक्कमेव यन्नष्टं क्षीरशाकं हि तत्पयः॥३०॥

क्षीरशाकं 'तुषिंभरा' इति लोके ॥

दध्ना तक्रेण वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवाससा ॥ द्रवभावेन सहितं तक्रपिण्डः स उच्यते ॥ ३१ ॥ नष्टदुग्धं भवेन्नीरं मोरटं जेज्जटोऽब्रवीत् ॥ पीयूषश्च किलाटश्च क्षीरशाकं तथैव च ॥ ३२ ॥ तक्रपिण्ड इमे वृष्या बृंहणा बलवर्द्धनाः॥ गुरवः श्लेष्मला हृद्या वातपित्तविनाशनाः ॥ ३३ ॥ दीप्ताग्नीनां विनिद्राणां विद्रधौ चाभिपूजिताः ॥ मुखशोषतृषादाहरक्तपित्तज्वरप्रणुत् ॥ लघुर्बलकरो रुच्यो मोरटः स्यात्सितायुतः ॥ ३४ ॥

तत्काल व्याईहुई गाय भैसके दूधको पीयूष अर्थात् खीश कहते हैं। जो दूध जलकर नष्ट होगया हो या पिंड बन गयाहो उसको किलाट अर्थात् मावा (खोवा) कहते है। जो दूध कच्चाही जमकर मावेके सदृश होगया हो उसको क्षीरशाक कहते हैं। दूधको दही अथवा छाछसे जमाकर स्वच्छ वस्त्रमे बाँध उसके जलको निकालनेसे जो पिण्ड बँध जाताहै उसमे यदि जलका अंश होय तौ तक्रपिंड कहाताहै। फट जानेपर दूधमेसे जो जल निकलताहै उसको मोरट कहते हैं ऐसा जेज्जट आचार्य कहतेहै ॥

गुण—पीयूष, किलाट, क्षीरशाक और तक्रपिण्ड, ये सब वृष्य, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, भारी, कफकारक, हृदयको प्रिय, वात तथा पित्तनाशक और जिनकी अग्नि प्रदीप्त है, जिनको निद्रा नही आती, उनको तथा विद्र-

धिगेगवालेको बहुत उत्तम हैं । बूरा सहित मोरट—हलका, बलदायक, रुचिरकारक और मुखशोष, तृषा, दाह, रक्तपित्त तथा ज्वरनाशक है ॥ २८–३४ ॥

संतानिकागुणाः ।

सन्तानिका गुरुः शीता वृष्या पित्तास्रवातनुत् ॥ तर्पणी बृंहणी स्निग्धा बलासबलशुक्रला ॥ ३५ ॥

सन्तानिका (मलाई)—भारी, शीतल, वृष्य, पित्तरक्तविकार तथा वातनाशक, तृप्तिकारक, पुष्टिदायक, स्निग्ध और कफ,बल तथा वीर्य वर्द्धकहै ॥ ३५ ॥

खण्डादियुक्तस्य दुग्धस्य गुणाः ।

खण्डेन सहितं दुग्धं कफकृत्पवनापहम् ॥ सितासितोपलायुक्तं शुक्रलं त्रिमलापहम् ॥ सगुडं मुत्रकृच्छ्रघ्नं पित्तश्लेष्मकरं परम् ॥ ३६ ॥

खाँड पडाहुआ दूध—कफकारक और वातनाशक है । बूरा अथवा मिश्री पडाहुआ दूध—वीर्यवर्द्धक और त्रिदोषनाशक है । गुड पडाहुआ दूध—मूत्रकृच्छ्रनाशक और पित्त तथा कफको अत्यन्त करनेवाला है ॥ ३६ ॥

प्रभातादिसमये दुग्धपानगुणाः ।

रात्रौ चन्द्रगुणाधिक्याद्व्यायामाकरणात्तथा ॥ प्राभातिकं तदा प्रायः प्रादोषाद् गुरु शीतलम् ॥ ३७ ॥ दिवाकरकराघाताद्व्यायामानलसेवनात् ॥ प्राभातिकात्तु प्रादोषं लघु वातकफापहम् ॥ ३८ ॥

रात्रिमें चन्द्रमाके गुण अधिक होनेसे और चलने फिरनेका परिश्रम नहीं होनेसे प्रभातकालका दूध—अधिक करके सन्ध्याकालके दूधसे भारी और शीतल है । दिनमें सूर्यकी किरणोंका ताप होनेसे और परिश्रमकी गरमीका सेवन होनेसे सन्ध्याका दूध प्रभातके दूधसे हलका और वात तथा कफको नष्ट करेंहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

दुग्धसेवनस्य समयविशेषेण गुणाः ।

वृष्यं बृंहणमग्निदीपनकरं पूर्वाह्णकाले पयो मध्याह्ने तु बलावहं कफहरं पित्तापहं दीपनम् ॥ बाले वृद्धिकरं क्षयक्षयकरं वृद्धेषु रेतोवहं रात्रौ पथ्यमनेकदोषशमनं क्षीरं सदा सेव्यते ॥ ३९ ॥ वदन्ति पेयं निशि केवलं पयो भोज्यं न तेनेह सहौदनादिकम् ॥ भवत्यजीर्णं न शयीत शर्वरीं क्षीरस्य पानस्य न शेषमुत्सृजेत् ॥ ४० ॥ विदाहीन्यन्नपानानि दिवा भुङ्क्ते हि यन्नरः ॥ तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं रात्रौ क्षीरं सदा पिबेत् ॥ ४१ ॥ दीप्तानले कृशे पुंसि वातवृद्धे पयःप्रिये ॥ मतं हिततमं पथ्यं सद्यः शुक्रकरं यतः ॥ ४२ ॥

पूर्वाह्ण कालमे दूधका पीना—वृष्य, पुष्टिकारक और अग्निप्रदीपक है । मध्याह्नकालमें दूधका सेवन—बलवर्द्धक कफ तथा पित्तनाशक और अग्निको दीपन करैहै । रात्रिके समय दूधका सेवन—बालकोको वृद्धिकारक, क्षयका नाश करनेवाला, वृद्ध लोगोंको वीर्यवर्द्धक, अत्यत पथ्य, अनेक-दोषोंको शान्त करनेवाला और नेत्रोंको हितकारी है । रात्रिमें केवल दूधही पीना चाहिये, उसके साथ भोजन आदि न करै, ऐसा भी, कोई २ कहते हैं । रात्रिमे दूधके साथ भोजन करनेसे अजीर्ण होताहै और निद्रा नहीं आती है । पीनेके लिये पात्रमे लियाहुआ दूध सब पीजावै, परन्तु उसमेंसे छोडै नहीं । दिनमे जो दाहकारक अन्नआदि सेवन किया हो उसकी दाहकी शाति करनेके लिये नित्य रात्रिमे दूध पीना चाहिये. जिनकी अग्नि दीपन है उनको, दुर्बल शरीरवालोको, बालकको, युवा तथा वृद्धको दूध अत्यत हितकारी, पथ्य और तत्काल वीर्यवर्द्धक है ॥ ३९–४२ ॥

मथितदुग्धस्य गुणाः ।

क्षीरं गव्यमथाजं वा कोष्णं दण्डाहतं पिबेत् ॥ लघु वृष्यं ज्वरहरं वातपित्तकफापहम् ॥ ४३ ॥

गाय अथवा बकरीका दूध रईसे मथकर किञ्चित् उष्ण करके पिये तौ हलका, वृष्य, ज्वरनाशक और वात, पित्त तथा कफनाशक है ॥ ४३ ॥

दुग्धफेन–(झाग) गुणाः ।

गोदुग्धप्रभवं किंवा छागीदुग्धसमुद्भवम् ॥

भवेत्कोष्णं त्रिदोषघ्नं रोचनं बलवर्द्धनम् ॥ ४४ ॥ वह्निवृद्धिकरं वृष्यं सद्यस्तृप्तिकरं लघु ॥ अतीसारेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ॥ ४५ ॥

गाय अथवा बकरीके दूधका झाग-त्रिदोषनाशक, रुचिकारक, बलवर्द्धक, अग्निप्रदीपक, वृष्य, शीघ्र तृप्तिकारक और हलका है। यह फेन-अतीसारमे, अग्निकी मंदतामे तथा जीर्णज्वरमे बहुत उत्तम है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

निन्दितं दुग्धम् ।

विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गंधं ग्रथितं पयः ॥ वर्जयेदम्ललवणयुक्तं बुद्ध्यादिहृयतः ॥ ४६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे दुग्धवर्गः ।

जो दूध-विवर्ण, विरस, (बुरे स्वादका) खट्टा, दुर्गन्धित, फटाहुआ, अम्ल पदार्थ अथवा खारी पदार्थयुक्त हो उसको त्याग दे. क्योंकि-इससे बुद्धि आदि नष्ट होतीहैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां दुग्धवर्गः समाप्तः ।

अथ दधिवर्गः ।

दध्नो नामानि गुणाश्च ।

दध्युष्णं दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु॥ पाकेऽम्लं श्वासपित्तास्रशोथमेदःकफप्रदम् ॥ १ ॥ मूत्रकृच्छ्रे प्रतिश्याये शीतगे विषमज्वरे ॥ अतीसारेऽरुचौ कार्श्ये शस्यते बलशुक्रकृत् ॥ २ ॥

नाम-सं०-दधि । हिन्दी-म०-गु०-दही । क०-मोसर । तै०-हयगु । फा०-दोग । अ०-जुगरात । इं०-करडूलेडमिल्क Curdled milk ॥

गुण-दही-गरम, अग्निप्रदीपक, स्निग्ध, किंचित् कसैला, भारी, पाकमे खट्टा और श्वास, पित्त, रक्तविकार, सूजन, मेद तथा कफकारक है । यह दही-मूत्रकृच्छ्र, प्रतिश्याय (जुखाम), शीतविषमज्वर, अतीसार, अरुचि और दुर्बलता, इन सबमे अत्यन्त हितकारी, बल तथा वीर्यवर्द्धक है ॥ १ ॥ २ ॥

दधिभेदाः ।

आदौ मन्दं ततः स्वादु स्वाद्वम्लश्च ततः परम् ॥ अम्लं चतुर्थमत्यम्लं पञ्चमं दधि पञ्चधा ॥ ३ ॥

मन्द, स्वादु, स्वाद्वम्ल, अम्ल और अत्यम्ल, इस प्रकार दहीके पाँच भेद हैं ॥ ३ ॥

मन्दादिदध्नो लक्षणं गुणाश्च ।

मन्दं दुग्धं यदव्यक्तरसं किञ्चिद्घनं भवेत्॥ मन्दं स्यात्सृष्टविण्मूत्रं दोषत्रयविदाहकृत् ॥ ४ ॥ यत्सम्यग्घनतां यातं व्यक्तस्वादुरसं भवेत् ॥ अव्यक्ताम्लरसं तत्तु स्वादु विज्ञैरुदाहृतम् ॥ ५ ॥ स्वादु स्यादत्यभिष्यन्दि वृष्यं मेदःकफावहम् ॥ वातघ्नं मधुरं पाके रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ ६ ॥ स्वाद्वम्लं मधुरं सान्द्रं कषायानुरसं भवेत् ॥ स्वाद्वम्लस्य गुणा ज्ञेयाः सामान्यदधिवज्जनैः ॥ ७ ॥ यत्तिरोहितमाधुर्यं व्यक्ताम्लत्वं तदम्लकम् ॥ अम्लं तु दीपनं पित्तरक्तश्लेष्मविवर्द्धनम् ॥ ८ ॥ तदत्यम्लं दन्तरोमहर्षकण्ठादिदाहकृत् ॥ अत्यम्लं दीपनं रक्तवातपित्तकरं परम् ॥ ९ ॥

जो दही-दूधके सदृश, अव्यक्तरसवाला और किंचित् घन (गाढा) हो उसको मंद जानना । मंद दही-मल तथा मूत्रको प्रवर्त्तनेवाला, त्रिदोष और दाहको उत्पन्न कर्ताहै ॥ ४ ॥

जो दही-भली भांति गाढा हुआ, स्फुटा हुआ, स्वादिष्ठ, अव्यक्त अम्लरसयुक्त हो उसको विद्वान् लोग स्वादु कहतेहैं । स्वादु दही-अत्यन्त अभिष्यन्दि, मैथुनशक्तिवर्द्धक, मेद तथा कफवर्द्धक, वातनाशक, पाकमें मधुर और रक्तपित्तको स्वच्छ करनेवाला है ॥ ५ ॥ ६ ॥

जो दही-खट्टा मीठा और गाढा कषायरसयुक्त है उसको स्वाद्वम्ल कहतेहैं । इस दहीके गुण सामान्य दहीके सदृश जानने ॥ ७ ॥

जिस दहीमेसे मिठास जाता रहा हो और खट्टापन प्रगट हो उस दहीको अम्ल जानना। अम्ल दही-अग्निप्रदीपक और पित्तरक्त तथा कफवर्द्धक है ॥ ८ ॥

जिस दहीसे दात हर्षित होजायँ, रोम खडे होजायँ और कण्ठ आदिमे दाह होजाय उसको अत्यम्ल कहतेहैं। अत्यम्ल (अत्यन्त खट्टा) दही–अग्निप्रदीपक और रक्तविकार, वात तथा पित्तको अत्यन्त उत्पन्न करैहै ॥ ९ ॥

गोदधिगुणाः ।

गव्यं दधि विशेषेण स्वाद्वम्लं च रुचिप्रदम् ॥ पवित्रं दीपनं हृद्यं पुष्टिकृत्पवनापहम् ॥ उक्तं दध्नामशेषाणां मध्ये गव्यं गुणाधिकम् ॥ १० ॥

गायका दही विशेष करके मीठा, खट्टा, रुचिकारक, पवित्र अग्निप्रदीपक, हृदयको प्रिय, पुष्टिकारक और वातनाशक है। सम्पूर्ण दहियोमे गायका दही अधिक गुणवाला जानना ॥ १० ॥

माहिषदधिगुणाः ।

माहिषं दधि सुस्निग्धं श्लेष्मलं वातपित्तनुत् ॥ स्वादुपाकमभिष्यन्दि वृष्यं गुर्वस्रदूषकम् ॥ ११ ॥

भैंसका दही–बहुत, स्निग्ध, कफकारक, वात तथा पित्तनाशक, पाकमें मीठा, अभिष्यन्दि, वृष्य, भारी और रक्तविकारनाशक है ॥ ११ ॥

अजादधिगुणाः ।

आजं दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोषत्रयापहम् ॥ शस्यते श्वासकासार्शःक्षयकार्श्येषु दीपनम् ॥ १२ ॥

बकरीका दही–उत्तम, ग्राही, हलका, त्रिदोषनाशक, अग्निप्रदीपक और श्वास खासी, बवासीर, क्षय तथा दुर्बलतामे हितकारी है ॥ १२ ॥

पक्कदुग्धजातस्य दध्नो गुणाः ।

पक्कं दुग्धभवं रुच्यं दधि स्निग्धं गुणोत्तमम ॥ पित्तानिलापहं सर्वधात्वग्निबलवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

पके दूधका दही–रुचिकारक, स्निग्ध, उत्तम गुणवाला पित्त तथा वातनाशक और सम्पूर्ण धातुओंके तथा अग्निके बलको बढानेवाला है ॥ १३ ॥

निःसारदुग्धजनितदध्नो गुणाः ।

असारं दधि सङ्ग्राहि शीतलं वातलं लघु ॥ विष्टम्भि दीपनं रुच्यं ग्रहणीरोगनाशनम् ॥ १४ ॥

निःसार दूधका दही–ग्राही, शीतल, वातकारक, हलका विष्टम्भि, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक और सग्रहणीरोगनाशक है ॥ १४ ॥

गालितदध्नो गुणाः ।

गालितं दधि सुस्निग्धं वातघ्नं कफकृद्गुरु ॥ बलपुष्टिकरं रुच्यं मधुरं नातिपित्तकृत् ॥ १५ ॥

गालित (वस्त्रमे छनाहुआ) दही–स्निग्ध, वातनाशक, कफकारक, भारी, बलवर्द्धक, पुष्टिकारक, रुचिकारी, मधुर और अत्यत पित्तकारक नही है ॥ १५ ॥

शर्करासहितस्य दध्नो गुणाः ।

सशर्करं दधि श्रेष्ठं तृष्णापित्तास्रदाहजित् ॥ सगुडं वातनुद्वृष्यं बृंहणं तर्पणं गुरु ॥ १६ ॥

बूरा पडा हुआ दही–श्रेष्ठ और तृषा, पित्त, रक्तविकार, तथा दाहनाशक है। गुड पडा हुआ दही–वातनाशक, वृष्य, पुष्टिकारक, तृप्तिदायक और भारी है ॥ १६ ॥

रात्रौ दधिभक्षणनिषेधः ।

न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम् ॥ नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना ॥ १७ ॥

अयमर्थः–रात्रौ दधि न भुञ्जीत, भुञ्जीत चेत्तदा अघृतशर्करममुद्गसूपमक्षौद्रमनुष्णं विनामलकैश्च दधि न भुञ्जीत।तेन घृतशर्करादियुक्तं दधि रात्रावपि भुञ्जीतेत्यर्थः ॥ तथा च–शस्यते दधि नो रात्रौ शस्तं चाम्बुघृतान्वितम् ॥ रक्तपित्तकफोत्थेषु विकारेषु तु नैव तत् ॥ १८ ॥

रात्रिमे दही नहीं खावै यदि खावै तौ विना घृत और बूराके, विना मूँगकी दालके, विना शहदके, विना गरम किये हुए और विना आवलोंके नहीं खावै । घी, बूरा (खाड) आदियुक्त दही रात्रिमे भी खा लेना चाहिये. कहा है कि–"रातमे दही. खाना उत्तम नही. यदि खानेकी आवश्यकता होय तो घी तथा पानी डाल

कर खावे, रक्तपित्त तथा कफसबन्धी विकारोमे घी तथा पानीसहित भी दही नही खावे ॥ १७ ॥ १८ ॥

ऋतुविशेषे दध्नो विधिनिषेधौ ।

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते ॥ शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशस्तद्विगर्हितम् ॥ १९ ॥

हेमन्त, शिशिर और वर्षा, इन तीन ऋतुओमें दही खाना उत्तम है, शरद्, ग्रीष्म और वसन्त ऋतुमें दही खाना अधिक करके उत्तम नहीं हैं ॥ १९ ॥

विधिमन्तरा दधिसेवने दुर्गुणाः ।

ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठपाण्डुामयभ्रमान्॥ प्राप्नुयात्कामलां चोग्रां विधिं हित्वा दधिप्रियः ॥ २० ॥

ज्वर, रक्तविकार, पित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाण्डुरोग, भ्रम और भयकर कामला रोगको प्राप्त होताहै–जो विधिको छोडकर दहीपर प्रेम करताहै ॥ २० ॥

दधिसरमस्तुनोर्लक्षणं गुणाश्च ।

दध्नस्तूपरि यो भागो घनः स्नेहसमन्वितः॥ स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति ॥ २१ ॥ सरः स्वादुर्गुरुर्वृष्यो वातवह्निप्रणाशनः ॥ साम्लो वस्तिप्रशमनः पित्तश्लेष्मविवर्द्धनः ॥ २२ ॥ मस्तु क्लमहरं बल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत् ॥ स्रोतोविशोधनं ह्लादि कफतृष्णानिलापहम् ॥ अवृष्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मलसञ्चयम् ॥ २३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे दधिवर्गः ।

दहीके ऊपर जो चिकना और घन पदार्थ होताहै वह सर कहाताहै और दहीके मण्ड (पानी) को मस्तु (दहीका तोर) कहतेहैं ॥

गुण–सर–मधुर, भारी, वृष्य, वायु तथा अग्निको नष्ट करनेवाला, अम्लरहित–वस्तिरोगको शातकर्ता और पित्त तथा कफवर्द्धक है ॥

मस्तु–क्लमनाशक, बलकारक, हलका, अन्नकी इच्छा करनेवाला, नाडियोको शुद्ध करनेवाला, आनन्ददायक, कफ, तृषा तथा वातनाशक, वृष्य नहीं, शीघ्र तृप्तिकारक और मलके सचयको तोडनेवाला है ॥ २१–२३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्राम-वैश्यकृतभाषाटीकाया दधिवर्गः समाप्तः ।

अथ तक्रवर्गः ।

तक्रस्य पृथक्पृथङ्नामानि लक्षणं गुणाश्च ।

घोलं तु मथितं तक्रमुदश्विच्छच्छिकापि च ॥ ससरं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम् ॥ १ ॥ तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्वित्त्वर्द्धवारिकम् ॥ छच्छिका सारहीना स्यात्स्वच्छा प्रचुरवारिका ॥ घोलं तु शर्करायुक्तं गुणैर्ज्ञेयं रसालवत् ॥ २ ॥

मथितम् 'महुवा' इति लोके । छच्छिका छाछ इति लोके ॥

वातपित्तहरं ह्लादि मथितं कफपित्तनुत् ॥ तक्रं ग्राहि कषायाम्लं स्वादुपाकरसं लघु ॥ ३ ॥ वीर्योष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् ॥ ग्रहण्यादिमतां पथ्यं भवेत्संग्राहि लाघवात् ॥ ४ ॥ किञ्च स्वादुविपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपणम् ॥ अम्लोष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् ॥ कषायोष्णविकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चापि कफापहम् ॥ ५ ॥ न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ॥ यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ ६ ॥ उदश्वित्कफकृद्बल्यमामघ्नं परमं मतम् ॥ छच्छिका शीतला लघ्वी पित्तश्रमतृषाहरी ॥ वातनुत्कफकृत्सा तु दीपनी लवणान्विता ॥ ७ ॥

तक्र, छच्छिका, (दण्डाहत, घोल, गोरस, द्रव, अम्ल, ककर, मथित, मलिन, भग्नसन्धिक, गोरसज, कालशेय, विलोडित, अरिष्ट, उदश्वित्, प्रमथित, अम्बर, घल और केवल) ये तक्रके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-छाछ, मट्ठा, तक्र । बं०-घोल । म०-ताक, तक्र, गु०-छाश । क०-अलिमजिगे । तै०-मजिगे । फा०-मस्त, मठा । अ०-हमीज । इं०-बटरमिल्क, हैं Buttermilk Whey ॥

भेद-घोल, मथित, तक्र, उदश्वित् और छच्छिका इस भांति छाछके पांच भेद हैं ॥

लक्षण-दहीको विना पानी डाले मलाई सहित बिलोनेपर जो मट्ठा होताहै उसको घोल कहतेहैं । ऊपरकी मलाई निकालकर विना पानीका जो दही बिलोया जाय उसको मथित कहतेहैं । जो दही चौथा भाग पानी डालकर विलोयाजाय वह तक्र (मट्ठा) कहाताहै । आधा पानी डालकर विलोयाहुआ दही उदश्वित् कहाताहै और विलोकर जिसमेंसे मक्खन निकाललिया हो तथा अधिक पानी डालकर विलोया हो उसको छच्छिका (छाछ) कहतेहैं । गुण-बूरा डालकर सेवन कियाहुआ घोल आमके सदृश गुणवाला है । मथित-वात तथा पित्तनाशक, हृदयको प्रिय और कफ तथा पित्तनाशक है । तक्र- ग्राही, कसैला, खट्टा, पाकमें तथा रसमें मीठा, हलका, उष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक, वृष्य, प्रीणन, वातनाशक और ग्रहणी आदि रोगवालोंको पथ्य हैं । तक्र-हलका होनेसे ग्राही (मलको रोकनेवाला), किंचित् पाकमें स्वादु होनेसे पित्तप्रकोपी नहीं, अम्ल, उष्णवीर्य, दीपन, वृष्य, प्रीणन, वातनाशक, कसैला, गरम और विकाशी तथा रूक्ष होनेसे कफनाशक है । तक्रके सेवन करनेवाले मनुष्य कदापि पीडित नहीं होते और तक्र सेवनसे नष्टहुए रोग उत्पन्न नहीं होते । जैसे देवताओंके सुखके लिये अमृत होताहै तैसेही तक्र पृथ्वीमें मनुष्योंको सुखदायक है । उदश्वित्-कफकारक, बलवर्द्धक और अत्यन्त आमनाशक है । छच्छिका-शीतल, हलकी, पित्त, तृषा तथा वातनाशक और कफकारक है । लवण डालकर सेवन करनेसे अग्निको दीपन करैहै १-७ ॥

भिन्नजातिमतां तक्राणां गुणाः ।

समुद्धृतघृतं तक्रं पथ्यं लघु विशेषतः ॥ स्तोकोद्धृतघृतं तस्माद्गुरु वृष्यं कफावहम् ॥ अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु पुष्टिकफप्रदम् ॥ ८ ॥

जिसमेंसे घी सम्पूर्ण निकाल लिया हो ऐसा तक्र पथ्य है और अत्यन्त हलका है । जिसमेंसे थोडा घृत निकाल लिया हो ऐसा तक्र-उपरोक्त तक्रसे भारी, वृष्य और कफकारक है । जिसमेंसे बिलकुल घी नहीं निकालाहो ऐसा तक्र-गाढा, भारी, पुष्टिकारक और कफकर्त्ता है ॥ ८ ॥

दोषव्याधिविशेषे तक्रगुणाः ।

वातेऽम्लं शस्यते तक्रं शुण्ठीसैन्धवसंयुतम् ॥ पित्ते स्वादु सितायुक्तं सव्योषमधिके कफे ॥ ९ ॥ हिंगुजीरयुतं घोलं सैन्धवेन च संयुतम् ॥ भवेदतीव वातघ्नमर्शोऽतीसारहृत्परम् ॥ १० ॥ रुचिदं पुष्टिदं बल्यं वस्तिशूलविनाशनम् ॥ मूत्रकृच्छ्रे तु सगुडं पाण्डुरोगे सचित्रकम् ॥ ११ ॥

वातमें-खट्टा और सोंठ तथा सैंधा पडाहुआ तक्र उत्तम है । पित्तमें-बूरा मिलाहुआ तथा मीठा तक्र उत्तम है । कफकी वृद्धिमें-सोंठ, मिरच और पीपलयुक्त तक्र उत्तम है । हींग, जीरा तथा सैंधा मिलाहुआ घोल-अत्यन्त वातनाशक, बवासीर तथा अतीसारनाशक, रुचिकारक, पुष्टिदायक, बलवर्द्धक और वस्तिशूलनाशक है । गुड डालाहुआ घोल-मूत्रकृच्छ्रपर उत्तम है । और चीतेयुक्त घोल पाण्डुरोगमें उत्तम है ॥ ९-११ ॥

पक्वापक्वतक्रगुणाः ।

तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च ॥ पीनसश्वासकासादौ पक्वमेव प्रयुज्यते ॥ १२ ॥

कच्चा तक्र-कोठेके कफको नष्ट करनेवाला और कठमें कफ करताहै । पीनस, श्वास, और खाँसी आदिमें पक्के तक्रका सेवन करै ॥ १२ ॥

तक्रसेवनविषयाः ।

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च तथा वातामयेषु च ॥ अरुचौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्यादमृतोपमम् ॥ १३ ॥ तत्तु हन्ति गरच्छर्दिप्रसेकविषमज्वरान् ॥ पाण्डुमेदोग्रहण्यर्शोमूत्रग्रहभगन्दरान् ॥ १४ ॥ मेहं गुल्ममतीसारं शूलप्लीहोदरारुचीः ॥

श्वित्रकोष्ठगतव्याधीन्कुष्ठशोथतृषाकृमीन् ॥ १५ ॥

(शीतकाल, अग्निकी मदता, वातरोग, अरुचि और नाडियोंका अवरोध, इनमें तक्र अमृतके सदृश काम करताहै। तक्र–विष, वमन, प्रसेक (जीमिचलाना), विषमज्वर, पाण्डुरोग, मेद, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, भगदर, प्रमेह, गुल्म, अतीसार, शूल, प्लीहा, उदररोग, अरुचि, सफेदकोढ, सूजन, तृषा और कृमिको नष्ट करैहै)॥ १३–१५ ॥

तक्रनिषेधः।

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले ॥ न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपित्तजे ॥ १६ ॥

(उष्णकालमे, क्षत (घाव), मे दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्तपित्तज रोगमें तक्र कदापि नहीं देवे)॥१६॥

तक्रस्य विशेषाः गुणाः।

यान्युक्तानि दधीन्यष्टौ तद्गुणं तक्रमादिशेत् ॥ १७ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे तक्रवर्गः॥

पहिले जो आठ प्रकारके दही कहेहै, उनमेंसे जिस दहीका जो तक्र हो उस तक्रमें उसही दहीके सदृश गुण जानने ॥ १७ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां तक्रवर्गः समाप्तः।

अथ नवनीतवर्गः।

नवनीतनामगुणाः।

म्रक्षणं सरजं हैयङ्गवीनं नवनीतकम् ॥ नवनीतं हितं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत् ॥ १ ॥ संग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शोऽर्दितकासहृत् ॥ तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः ॥ २ ॥

म्रक्षण, सरज, हैयगवीन, नवनीत, (नवोद्धृत, मन्थज, दधिसार, नवनीत, कलम्बुट और दधिज) ये मक्खनके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–मक्खन, नौनी। बं०–नुनी, माखन। म०–लोणी। गु०–मांखण। क०–बेणो। तै०–पेन्ना। फा०–मसका। अ०–जुब्द। इं०–बटर Butter लै०–बुटिरम Batyrum॥

गुण–गायका मक्खन हितकारी, वृष्य, वर्णको उत्तम करनेवाला, बलदायक, अग्निप्रदीपक, ग्राही और वात, पित्त, रक्तविकार, क्षय, बवासीर, अर्दितवात (लकवा), तथा खांसीको नष्ट करैहै। यह मक्खन बालकोंके लिये तथा वृद्धके लिये हितकारी है, परन्तु बालकोंको तो अमृतसदृशही है॥ १ ॥ २ ॥

माहिषनवनीतगुणाः।

नवनीतं माहिष्यास्तु वातश्लेष्मकरं गुरु ॥ दाहपित्तश्रमहरं मेदःशुक्रविवर्द्धनम् ॥ ३ ॥

भैंसका मक्खन–वात तथा कफकारक, भारी, दाह, पित्त तथा परिश्रमको नष्ट करैहै और मेद तथा वीर्यवर्द्धक है॥ ३ ॥

दुग्धोत्थनवनीतगुणाः।

दुग्धोत्थं नवनीतं तु चक्षुष्यं रक्तपित्तनुत् ॥ वृष्यं बल्यमतिस्निग्धं मधुरं ग्राहि शीतलम् ॥ ४ ॥

दूधसे निकाला हुआ मक्खन–नेत्रोंको हितकारी, रक्तपित्तनाशक, वृष्य, बलदायक, अत्यतस्निग्ध, मधुर, ग्राही, और शीतल है॥ ४ ॥

सद्योनिःसारितनवनीतगुणाः।

नवनीतं तु सद्यस्कं स्वादु ग्राहि हिमं लघु ॥ मेध्यं किञ्चित्कषायाम्लमीषत्तक्रांशसंक्रमात् ॥ ५ ॥

तत्कालका निकाला हुआ मक्खन–मधुर, ग्राही, शीतल, हलका, बुद्धिको हितकारी और किंचित् छाछका अंश रहनेसे कुछ कसैला तथा खट्टा है॥ ५ ॥

पर्युषितनवनीतगुणाः।

सक्षारकटुकाम्लत्वाच्छर्द्यर्शःकुष्ठकारकम् ॥ श्लेष्मलं गुरु मेदस्यं नवनीतं चिरन्तनम् ॥ ६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे नवनीतवर्गः।

बासी मक्खन–खारी, चरपरा और खट्टा होजानेसे वमन, बवासीर तथा कोढको करैहै और कफकारी, भारी

तथा मेदकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैद्यकृत-भाषाटीकायां नवनीतवर्गः समाप्तः ।

अथ घृतवर्गः ।

घृतनामगुणाः ।

घृतमाज्यं हविः सर्पिः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ घृतं रसायनं स्वादु चक्षुष्यं वह्निदीपनम् ॥ १ ॥ शीतवीर्यं विषालक्ष्मीपापपित्तानिलापहम् ॥ अल्पाभिष्यन्दि कान्त्योजस्तेजोलावण्यबुद्धिकृत् ॥ ॥ २ ॥ स्वरस्मृतिकरं मेध्यमायुष्यं बलकृद्गुरु ॥ उदावर्तज्वरोन्मादशूलानाहव्रणान्हरेत् ॥ स्निग्धं कफकरं रक्षोरक्तक्षयविसर्पनुत् ॥ ३ ॥

घृत, आज्य, हवि, सर्पि, (पुरोडाश, नवनीतक, पवित्र, वह्निभोग्य, तैजस, अभिघारक, ओज, तोयद, पीथ, अमृत होम्य, नवनीतज, भोजनार्ह और जीवन) ये घीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—गु०—घी । ब०—घि, घृत । म०—तूप । तै०—नेई । फा०—रोगनेजर्द । अ०—समन् । इं०—क्लेरीफाइड बटर Clerified Butter लै०—बुटीरम डेप्युरेटम् Butyrum Depuratum ॥

गुण०—घी—रसायन, मधुर, नेत्रोंको हितकारी, अग्निप्रदीपक, शीतवीर्य, विष,—अलक्ष्मी (अशोभा), पाप, पित्त और वातनाशक, किंचित् अभिष्यन्दि, कान्ति, बल, तेज, लावण्य, बुद्धि, स्वरकी निर्मलता तथा स्मरणशक्तिके लिये उत्तम, मेधाको हितकारी, आयुर्वर्द्धक, बलकारी, भारी, स्निग्ध, कफकारक और उदावर्त, ज्वर, उन्माद, शूल, अफारा, व्रण, क्षय, विसर्प तथा रक्तविकारको नष्ट करै है ॥ १–३ ॥

गोघृतगुणाः ।

गव्यं घृतं विशेषेण चक्षुष्यं वृष्यमग्निकृत् ॥ स्वादुपाककरं शीतं वातपित्तकफापहम् ॥ ४ ॥ मेधालावण्यकान्त्योजस्तेजोवृद्धिकरं परम् ॥ अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं वयसः स्थापकं गुरु ॥ ५ ॥ बल्यं पवित्रमायुष्यं सुमङ्गल्यं रसायनम् ॥ सुगन्धं रोचनं चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम् ॥ ६ ॥

गायका घी—विशेषकरके नेत्रोंको हितकारी, वृष्य, अग्निप्रदीपक, पाकमें मधुर, शीतल, वात, पित्त तथा कफनाशक, बुद्धि, लावण्य, कान्ति, ओज तथा तेजकी वृद्धि करनेवाला, अलक्ष्मी, पाप तथा राक्षसनाशक, आयुस्थापक, भारी, बलवर्धक, पवित्र, आयुर्वर्द्धक, मङ्गलरूप, रसायन, सुगन्धयुक्त, रुचिका उत्पन्न करनेवाला, सुन्दर और सम्पूर्ण घीमें उत्तम है ॥ ४–६ ॥

माहिषघृतगुणाः ।

माहिषं तु घृतं स्वादु पित्तरक्तानिलापहम् ॥ शीतलं श्लेष्मलं वृष्यं गुरु स्वादु विपच्यते ॥ ७ ॥

भैंसका घी—मधुर, शीतल, कफकारक, वृष्य, भारी, पाकमें मधुर और पित्त, रक्तविकार तथा वातनाशक है ॥ ७ ॥

अजाघृतगुणाः ।

आजमाज्यं करोत्यग्निं चक्षुष्यं बलवर्द्धनम् ॥ कासे श्वासे क्षये चापि हितं पाके भवेत्कटु ॥ ८ ॥

बकरीका घी—अग्निकारक, नेत्रोंको हितकारी, बलवर्द्धक, पाकमें चरपरा और खाँसी, श्वास तथा क्षयमें हितकारी है ॥ ८ ॥

औष्ट्रघृतगुणाः ।

औष्ट्रं कटु घृतं पाके शोषक्रिमिविषापहम् ॥ दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मोदरापहम् ॥ ९ ॥

ऊटनीका घी—पाकमें चरपरा, अग्निप्रदीपक और शोष, कृमि, विष, कफ, वात, कोढ, गुल्म तथा उदररोगनाशक है ॥ ९ ॥

आविकघृतगुणाः ।

पाके लघ्वाविकं सर्पिः सर्वरोगविनाशनम् ॥ वृद्धिं करोति चास्थीनामश्मरीशर्करापहम् ॥ चक्षुष्यमग्निधुक्षणं वातदोषनिवारणम् ॥ १० ॥

भेडका घी—पाकमे हलका, सर्वरोगनाशक, अस्थि (हड्डियो) की वृद्धि करनेवाला, पथरी तथा शर्करानाशक, नेत्रोको हितकारी, अग्निप्रदीपक और वायुके दोषोंको निवारण करै है ॥ १० ॥

नारीघृतगुणाः।

कफेऽनिले योनिदोषे पित्ते रक्ते च तद्धितम् ॥ चक्षुष्यमाज्यं स्त्रीणां वा सर्पिः स्यादमृतोपमम् ॥ ११ ॥

स्त्रीका घी—कफ, वात, योनिदोष, पित्त और रक्तविकारमे हितकारी, नेत्रोको उत्तम करनेवाला और अमृतके समान है ॥ ११ ॥

वडवाघृतगुणाः।

वृद्धिं करोति देहाग्नेर्लघु पाके विषापहम् ॥ तर्पणं नेत्ररोगघ्नं दाहनुद्वडवाघृतम् ॥ १२ ॥

घोडीका घी—शरीरकी अग्निको वढानेवाला, पाकमे हलका, विषविनाशक, तृप्तिकारक, नेत्रके रोग और दाहनाशक है ॥ १२ ॥

दुग्धनिःसृतघृतगुणाः।

घृतं दुग्धभवं ग्राहि शीतलं नेत्ररोगहृत् ॥ निहन्ति पित्तदाहास्रमदमूर्च्छाभ्रमानिलान् ॥ १३ ॥

दूधसे निकालाहुआ घी—ग्राही, शीतल और नेत्ररोग, पित्त, दाह, रक्तविकार, मद, मूर्च्छा, भ्रम तथा वातनाशक है ॥ १३ ॥

ह्यस्तनदुग्धोत्थनवनीतगुणाः।

हविर्ह्यस्तनदुग्धोत्थं तत्स्याद्धैयङ्गवीनकम् ॥ हैयंगवीनं चक्षुष्यं दीपनं रुचिकृत्परम् ॥ बलकृद्बृंहणं वृष्यं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ १४ ॥

पहिले दिनके दूधसे निकाला हुआ घी—हैयंगवीन कहाताहै। यह घी—नेत्रोको हितकारी, अग्निप्रदीपक, अत्यत रुचिकारी, बलवर्द्धक, पुष्टिकारक, वृष्य और विशेष करके ज्वरनाशक है ॥ १४ ॥

पुराणघृतस्य गुणाः।

वर्षादूर्ध्वं भवेदाज्यं पुराणं तत्त्रिदोषनुत् ॥ मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादापस्मारातिमिरापहम् ॥ १५ ॥ यथायथाऽखिलं सर्पिः पुराणमधिकं भवेत् ॥ तथातथा गुणैः स्वैःस्वैरधिकं तदुदाहृतम् ॥ १६ ॥

एक वर्षका रक्खा हुआ घी पुराना कहाताहै। यह घी—त्रिदोषनाशक और मूर्च्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, मृगी तथा तिमिरनाशक है। सर्व प्रकारका घी—जितना जितना अधिक पुराना होताहै उतना उतनाही अपने अपने गुणोको अधिक करताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

नवीनघृतविषयाः।

योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे ॥ बलक्षये पाण्डुरोगे कामलानेत्ररोगयोः ॥ १७ ॥

नवीन घी—भोजन, तर्पण, परिश्रम, बलका क्षय, पाण्डुरोग, कामला तथा नेत्ररोग, इन सबमे उपयोग करना चाहिये ॥ १७ ॥

घृतादानविषयाः।

राजयक्ष्मणि बाले च वृद्धे श्लेष्मकृते गदे॥ रोगे सामे विषूच्याश्च विबन्धे च मदात्यये ॥ ज्वरे च दहने मन्दे न सर्पिर्बहु मन्यते ॥ १८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे घृतवर्गः।

(बालक तथा वृद्धको, राजयक्ष्मा, कफरोग, आम, विषूचिका (हैजा), मलबन्ध, मदात्यय, ज्वर और मदाग्नि, इन सबमें विशेष घृत नहीं देना चाहिये) ॥ १८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां घृतवर्गः समाप्तः।

अथ मूत्रवर्गः।

गोमूत्रगुणाः।

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तकषायकम् ॥ लघ्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥ १ ॥ शूलगुल्मोदरानाहकण्ड्वक्षिमुखरोगजित् ॥ किलासगदवातामवस्तिरुक्कुष्ठनाशनम् ॥ कासश्वासापहं शोथकामलापाण्डुरोगहृत् ॥ २॥ कण्डूकिला-

द्यदा ॥ रसोऽसम्यग्वहङ्काश्यं कुर्याद्रक्ताद्यवर्द्धयन् ॥ ८ ॥ तेषु प्रवेष्टुं सरत्वसौक्ष्म्यस्निग्धत्वमार्दवैः ॥ तैलं शमं रसं नेतुं कृशानां तेन बृंहणम् ॥ ९ ॥ व्यवायि सूक्ष्मतीक्ष्णोष्णसरत्वैर्मेदसः क्षयम् ॥ शनैः प्रकुरुते तैलं तेन लेखनमीरितम् ॥ १० ॥ द्रुतं पुरीषं बध्नाति स्खलितं तत्प्रवर्त्तयेत् ॥ ग्राहकं सारकश्चापि तेन तैलमुदीरितम् ॥ ११ ॥ घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्यं प्रजायते ॥ तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥ १२ ॥

स०–तैल । हिन्दी–ब०–म०–गु०–क०–तैल । तै०–नुने । फा०–रोगन । इ०–आइल Oil लै०–ओल्युम् Oleum ॥

गुण–तिलका तेल–भारी, स्थिरताकारक, बलदायक, वर्णको उत्तम करनेवाला, दस्तावर, वृष्य, विकाशि, विशद, रसमे तथा पाकमे मधुर, सूक्ष्म, कसैला, कडवा, वात तथा कफनाशक, उष्णवीर्य, शीतल स्पर्शवाला, पुष्टिकारक, रक्तपित्तकर्त्ता, लेखन, मलमूत्रको बॉधनेवाला, गर्भाशयको शुद्ध करनेवाला, अग्निप्रदीपक, बुद्धिदायक, मेधाको हितकारी, व्यवायि, व्रण, प्रमेह, कर्णरोग, योनिशूल और मस्तकशूलनाशक, शरीरमें लघुता करनेवाला, मलनेसे त्वचा (चमडी), केश, (बाल) तथा नेत्रोको हितकारी और खानेसे त्वचा, केश, तथा नेत्रोको हानिकारक है । और छिदा, भिदा, गिरा, पिसा, मसला, घाव, पिचा, टूटा, फटा, विधा, अग्निसे जला, स्थानसे हटा, चिरा, चोट लगा, तिरछा, मृग, वाघ आदिसे घायल हुआ, ये सब होनेपर, वस्तिकर्ममें, पीनेमे, अन्नके बनानेमें, छॅवकनेमें, नस्य कर्ममे, कर्ण और नेत्रोंके डालनेमे, सेकनेमे, मर्दनमें और अवगाहनमे तिलका तेल उत्तम है ॥ २–७ ॥

कोई शंका करै कि–तिलका तेल–बृंहण होनेपर लेखन किस प्रकार हो सक्ताहै ?

तहॉ कहते हैं कि–"रूक्ष आदि पदार्थोंसे दूषित हुई वात–नाडियोंका सकोच करतीहै, तब रस भली भॉति नही बहनेसे रुधिर आदिको नही बढाकर दुर्बलता करताहै । उस समयमे तेल अपना प्रवेश करके अपने कोमलता आदि गुणो करके नाडियोंमे रसका प्रवेश करानेको तथा उनमें भलीभॉति गति करानेको समर्थ होता है, इससे तेल दुर्बलोंको पुष्टिदायक कहाहै. तिसी प्रकार तेल–सम्पूर्ण शरीरमें तत्काल व्याप्त होनेवाला, पतला, तीक्ष्ण, उष्ण और प्रवेशकारक होनेसे धीरे धीरे मेदका क्षय करैहै, इसी कारण तेल लेखन (कृशकारि) कहाहै । तेल–पतले मलको बॉध देताहै और छूटेहुए मलको निकाल देताहै इसकारण तेल ग्राही और सारक दोनो गुणयुक्त है । पक्का घी एक वर्ष पीछे हीनवीर्य होजाताहै और तेल पक्का हो अथवा कच्चा हो जितना पुराना होगा उतनाही अधिक गुणवाला होताहै ॥ ८–१२ ॥

सर्षपराजिकातैलयोर्गुणाः ।

दीपनं सार्षपं तैलं कटुपाकरसं लघु ॥ लेखनं स्पर्शवीर्य्योष्णं तीक्ष्णं पित्तास्रदूषकम् ॥ १३ ॥ कफमेदोऽनिलार्शोघ्नं शिरःकर्णामयापहम् ॥ कण्डूकुष्ठकृमिश्वित्रकोठदुष्टक्रिमिप्रणुत् ॥ १४ ॥ तद्वद्राजिकयोस्तैलं विशेषान्मूत्रकृच्छ्रकृत् ॥ १५ ॥ राजिकयोः, कृष्णराजिकारक्तराजिकयोः ॥

सरसोका तेल–अग्निप्रदीपक, रसमे तथा पाकमे चरपरा, हलका, लेखन, स्पर्श तथा वीर्यमे उष्ण, तीक्ष्ण, पित्त तथा रुधिरको दूषित करनेवाला और कफ, मेद, वात, बवासीर, मस्तकके रोग, कर्णरोग, खुजली, कोढ, कृमि, चित्रितकोढ, कोठ तथा दुष्टकृमिनाशक है । काली राई तथा लाल राईके तेलमे भी येही गुण है. विशेष करके राईका तेल मूत्रकृच्छ्को करैहै ॥ १३–१५ ॥

तुवरीतैलगुणाः ।

तीक्ष्णोष्णं तुवरीतैलं लघु ग्राहि कफास्रजित् ॥ वह्निकृद्विषहृत्कण्डूकुष्ठकोठकृमिप्रणुत् ॥ मेदोदोषापहं चापि व्रणशोथहरं परम् ॥ १६ ॥

तुवरी (तोरी) का तेल–तीक्ष्ण, गरम, हलका ग्राही अग्निकारक और विष, कफ, रक्तविकार, खुजली, कोढ, कोठरोग, कृमि, मेददोष, व्रण, तथा सूजनको नष्ट करनेवाला है ॥ १६ ॥

अतसीतैलगुणाः ।

अतसीतैलमाग्नेयं स्निग्धोष्णं कफपित्तकृत् ॥ कटुपाकमचक्षुष्यं बल्यं वातहरं गुरु ॥ १७ ॥ मलकृद्रसतः स्वादु ग्राहि त्वग्दोषहृद्धनम् ॥ वस्तौ पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णस्य पूरणे ॥ अनुपानविधौ चापि प्रयोज्यं वातशान्तये ॥ १८ ॥

अलसीका तेल—अग्निके अधिक अशयुक्त, स्निग्ध, गरम, कफ तथा पित्तको करनेवाला, पाकमें चरपरा, नेत्रोंको हितकारी नहीं, बलवर्द्धक, वातनाशक, भारी, मलकर्त्ता, मधुररसयुक्त, ग्राही, चर्मदोषनाशक और घन है। वस्तिकर्ममें, पीनेमें, अभ्यगमें, नस्यकर्ममें, कानके डालनेमें, वातकी शांतिके लिये अनुपानविधिमे भी तेलका उपयोग करे ॥ १७ ॥ १८ ॥

कुसुम्भतैलगुणाः ।

कुसुम्भतैलमम्लं स्यादुष्णं गुरु विदाहि च ॥ चक्षुर्भ्यामहितं बल्यं रक्तपित्तकफप्रदम् ॥ १९ ॥

कुसुमका तेल—खट्टा, गरम, भारी, विदाही, नेत्रोंको अहितकारी, बलवर्द्धक और रक्तपित्त तथा कफकारक है ॥ १९ ॥

खसबीज (पोस्त) तैलगुणाः ।

तैलं तु खसबीजानां बल्यं वृष्यं गुरु स्मृतम् ॥ वातहृत्कफहृच्छीतं स्वादुपाकरसं च तत् ॥ २० ॥

खसखसका अर्थात् पोस्तके बीजोंका तेल—बलवर्द्धक, वृष्य, भारी, वात तथा कफनाशक, शीतल और पाकमें तथा रसमें मधुर है ॥ २० ॥

एरण्डतैलगुणाः ।

एरण्डतैलं तीक्ष्णोष्णं दीपनं पिच्छिलं गुरु ॥ वृष्यं त्वच्यं वयःस्थापि मेधाकान्तिबलप्रदम् ॥ २१ ॥ कषायानुरसं सूक्ष्मं योनिशुक्रविशोधनम् ॥ विस्रं स्वादु रसे पाके सतिक्तं कटुकं रसम् ॥ २२ ॥ विषमज्वरहृद्रोगपृष्ठगुह्यादिशूलनुत् ॥ हन्ति वातोदरानाहगुल्माष्ठीलाकटिग्रहान् ॥ २३ ॥ वातशोणितविड्बन्धब्रध्नशोथामविद्रधीन् ॥ आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः ॥ एक एव निहन्तायमेरण्डस्नेहकेसरी ॥ २४ ॥

अंडीका तेल—तीक्ष्ण, गरम, अग्निप्रदीपक, पिच्छिल, भारी, वृष्य, त्वचाको हितकारी, आयुःस्थापक, बुद्धि, कांति तथा बलवर्द्धक, कषैले रसवाला, सूक्ष्म, योनि तथा वीर्यको शुद्ध करनेवाला, दुर्गन्धित, चरपरा, रसमें मधुर, पाकमें चरपरा, कडुवा, दस्तावर और विषमज्वर, हृदयरोग, पीठ तथा गुह्यादिका शूल, वातगत्मी उदररोग, अफारा, गुल्म, अष्ठीला नामक रोग, कटिग्रह (कमरका जकडजाना), वात, रक्तविकार, मलबन्ध, ब्रध्न, सूजन, आम और विद्रधि इनका नाशक है। अंडीका तेलरूपी सिंह—शरीररूपी वनमें फिरतेहुए आमवातरूपी बडे हाथीको नष्ट करताहै ॥ २१–२४ ॥

सर्जरसतैलगुणाः ।

तैलं सर्जरसोद्भूतं विस्फोटव्रणनाशनम् ॥ कुष्ठपामाकृमिहरं वातश्लेष्मामयापहम् ॥ २५ ॥

रालका तेल—विस्फोटक (फोडा), व्रण, कोढ, खुजली, कृमि, वात तथा कफके रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ २५ ॥

सर्वतैलानां गुणाः ।

तैलं स्वयोनिगुणकृद्वाग्भटेनाखिलं मतम् ॥ अतः शेषस्य तैलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिवत् ॥ २६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे तैलवर्गः ।

तेल जिस पदार्थमेंसे निकाला हो उसही पदार्थके गुणोंको करताहै, ऐसा वाग्भटने कहाहै, इसी कारण शेष सम्पूर्ण जातिके तेलोंके गुण जिस पदार्थमेंसे निकाले हो उसी पदार्थके सदृश जानने ॥ २६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां तैलवर्गः समाप्तः ।

अथ सन्धानवर्गः ।

काञ्जिकस्य लक्षणं गुणाश्च ।

सन्धितं धान्यमण्डादि काञ्जिकं कथ्यते जनैः ॥ काञ्जिकं भेदि तीक्ष्णोष्णं रोचनं

पाचनं लघु ॥ १ ॥ दाहज्वरहरं स्पर्शात्पानाद्वातकफापहम् ॥ माषादिवटकैर्यत्तु क्रियते तद्गुणाधिकम् ॥ २ ॥ लघु वातहरं तत्तु रोचनं पाचनं परम्॥ शूलाजीर्णविबन्धामनाशनं वस्तिशोधनम् ॥ ३ ॥ शोषमूर्च्छाभ्रमार्त्तानां मदकण्डूविशोषिणाम्॥प्रशस्यते न काञ्जीकं कुष्ठिनां रक्तपित्तिनाम् ॥ ४ ॥ पाण्डुरोगे यक्ष्मणि च तथा शोषातुरेषु च ॥ क्षतक्षीणे तथा श्रान्ते मन्दज्वरनिपीडिते ॥ एतेषां न हितं प्रोक्तं काञ्जीकं दोषकारकम् ॥ ५ ॥

धान्य, मण्डक आदि जो मुख बंदकर रक्खे हुए हो उनको लोग काजी कहतेहैं ॥

गुण—कांजी—मलभेदक, दस्तावर, तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, पाचन, हलकी, स्पर्श (लगाने)से दाहज्वरनाशक और पीनेसे वात तथा कफनाशक है, उडद आदिके वडोंसे जो काजी बनाई जावे वह कांजी अधिक गुणवाली, हलकी, वातनाशक, रुचिको उत्पन्न करनेवाली, बहुत पाचक और शूल, अजीर्ण, मलबन्ध तथा आमको नष्ट करनेवाली और वस्तिशोधक है । शोष, मूर्च्छा, भ्रम, मद, खुजली, जिनका देह सूखगया, कोढ और रक्तपित्त रोगवालोंको हितकारी नहीं है । पांडुरोग, क्षय, शोथसे हुई आतुरता, क्षतसे हुई दुर्बलता, परिश्रम और मन्दज्वरकी पीडामें कांजी अहितकारी तथा दोषोंको कुपित करनेवाली है ॥ १—५ ॥

तुषोदकस्य लक्षणं गुणाश्च ।

तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः ॥६॥ यवैः उदके संहितैः सन्धानवर्गोक्तत्वात् ॥ तुषाम्बु दीपनं हृद्यं पाण्डुक्रिमिगदापहम् ॥ तीक्ष्णोष्णं पाचनं पित्तरक्तकृद्वस्तिशूलनुत् ॥ ७ ॥

तुषसहित कच्चे जौओंके टुकडे टुकडे करके संधानकी रीतिसे पानीमें भिगो देवे, वह पानी तुषोदक कहाताहै । तुषोदक—अग्निप्रदीपक, हृदयको प्रिय, तीक्ष्ण, गरम, पाचन, पित्त तथा रक्तकारक और पाण्डु, कृमि, तथा वस्तिशूलनाशक है ॥ ६ ॥ ७ ॥

सौवीरस्य लक्षणं गुणाश्च ।

सौवीरं तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषैः कृतम् ॥ गोधूमैरपि सौवीरमाचार्य्याः केचिदूचिरे ॥ ८ ॥ सौवीरं तु ग्रहण्यर्शःकफघ्नं भेदि दीपनम् ॥ उदावर्त्ताङ्गमर्दास्थिशूलानाहेषु शस्यते ॥ ९ ॥

तुष (छिलका) रहित कच्चे अथवा पक्के जौओंके टुकडे टुकडे करके पानीमें भिजो देवे, वह पानी सौवीर कहाताहै । कोई आचार्य कहतेहैं कि—"इसीप्रकार गेहूंके टुकडे भिजोनेसे भी सौवीर होताहै" सौवीर—संग्रहणी, बवासीर, तथा कफनाशक, मलभेदक, अग्निप्रदीपक और उदावर्त्त, अंगमर्द, हड्डियोका दर्द तथा अफारा इनमें बहुत उत्तम है ॥ ८ ॥ ९ ॥

आरनालस्य लक्षणं गुणाश्च ।

आरनालं तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ॥ पक्वैर्वा सन्धितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥ १० ॥

तुषरहित कच्चे अथवा पक्के गेहूंको भिजोनेसे आरनाल काजी होतीहै । आरनालकांजीके गुण उपरोक्त सौवीरकाजीके सदृशही जानने ॥ १० ॥

धान्याम्लस्य लक्षणं गुणाश्च ।

धान्याम्लं शालिचूर्णं च कोद्रवादिकृतं भवेत् ॥ धान्याम्लं धान्ययोनित्वात्प्रीणनं लघु दीपनम् ॥ अरुचौ वातरोगेषु सर्वेष्वास्थापने हितम् ॥ ११ ॥

चावलोका चूर्ण अथवा कोदोका चूर्ण भिजोनेसे जो तयार हो उसको धान्याम्ल काजी कहतेहैं । धान्याम्ल धान्योंसे उत्पन्न हुई है, इस कारण तृप्तिकारक, हलकी, अग्निप्रदीपक और अरुचिमें, वातसम्बन्धी रोगोमें, तथा पिचकारी मारनेमें हितकारी है ॥ ११ ॥

शिण्डाकी राजिकायुक्तैः स्यान्मूलकदलद्रवैः ॥ सर्षपस्वरसैर्वापि शालिपिष्टकसंयुतैः ॥

सन्धितैरिति शेषः ॥

शिण्डाकी रोचनी गुर्वी पित्तश्लेष्मकरी स्मृता ॥ १२ ॥

राई और मूलीके पत्तोंको भिजोनेसे, अथवा सरसोंका स्वरस और चावलोंका चून भिजोनेसे जो काजी बनाई जाती है, उसको षिण्डाकी कहते हैं। षिण्डाकी काजी-रुचिकारक, भारी और पित्त तथा कफकारक है ॥ १२॥

शुक्तस्य लक्षणं गुणाश्च ।

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ॥ यत्र द्रवेऽभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते ॥ १३ ॥ शुक्तं कफघ्नं तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु ॥ पाण्डुक्रिमिहरं रूक्षं भेदनं रक्तपित्तकृत् ॥ १४ ॥

तेल और नमक डालकर जिस द्रवमें कन्द, मूल और फल आदि भिजोकर जो काजी बनाई जाय उस द्रवको शुक्त कहतेहैं । शुक्त (सिरका)-कफनाशक, तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, पाचन, हलका, रूखा, मलभेदक, रक्तपित्तको करनेवाला, पाण्डु और कृमिनाशक है ॥ १३ ॥ १४ ॥

आसुतस्य [संधानके] लक्षणं गुणाश्च ।

कन्दमूलफलाढ्यं यत्तत्तु विज्ञेयमासुतम् । तद्रुच्यं पाचनं वातहरं लघु विशेषतः ॥ १५ ॥

कन्द, मूल और फल आदिके रसकी जो काजी बनाई जाय, उसको आसुत कहतेहैं । आसुत (आचार) रुचिकारक, पाचन, वातनाशक और विशेष करके हलका है ॥ १५ ॥

मद्यस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च ।

मद्यन्तु सीधुमैरेयमिरा च मदिरा सुरा ॥ कादम्बरी वारुणी च हालापि बलवल्लभा ॥ १६ ॥ पेयं यन्मादकं लोकैस्तन्मद्यमभिधीयते ॥ यथाऽरिष्टं सुरा सीधुरासवाद्यमनेकधा ॥ १७ ॥ मद्यं सर्वं भवेदुष्णं पित्तकृद्वातनाशनम् ॥ भेदनं शीघ्रपाकं च रूक्षं कफहरं परम् ॥ १८ ॥ अम्लं च दीपनं रुच्यं पाचनं चाशुकारि च ॥ तीक्ष्णं सूक्ष्मं च विशदं व्यवायि च विकाशि च ॥ १९ ॥

मद्य, सीधु, मैरेय, इरा, मदिरा, सुरा, कादम्बरी, वारुणी, हाला, बलवल्लभा, (प्रसन्ना, चपला, हलिप्रिया, अमृता, वीरा, मेधावी, माधवी, कापिशायन, परिश्रुता, वरुणात्मजा, गन्धोत्तमा, परिप्लुता, कश्य, प्रसन्नेरा, माणिका, कपिशी, गन्धमादनी, कत्तोय, मद, कपिशिका, मत्ता, शीता, कामिनीप्रिया, मदगन्धा, माध्वीक, मधु, सन्धान, आसव, मदनी, सुप्रतिमा, मनोज्ञा, विधाना, मादनी, हली, गुणारिष्ट, सरक, मधुलिका, मदोत्कटा, महानन्दा, कारण, तत्त्व, मदिष्ठा, परिप्लुता, कल्य, माधुरसा, शुण्डा, मार्द्वीक मदना, कापिश, अब्धिजा, कल्या और मधूल) ये मदिराके संस्कृत नाम हैं ॥

लक्षण—जो पीनेका पदार्थ मादक (नशा करनेवाला) हो उसको लोक मद्य कहतेहैं । जैसे कि—अरिष्ट, सुरा, सीधु और आसव आदि मद्यके अनेक भेद हैं ॥

गुण—सम्पूर्ण जातिकी मदिरा—गरम, पित्तकारक, वातको नष्ट करनेवाली, मलभेदक, शीघ्र पचनेवाली, रूखी, अत्यन्त कफनाशक, खट्टी, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक, पाचन, शीघ्रता करनेवाली, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, विशद, व्यवायि (प्रथम शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पचनेवाली) तथा विकाशी है ॥ १६-१९ ॥

अरिष्टस्य लक्षणं गुणाश्च ।

पक्वौषधाम्बुसिद्धं यन्मद्यं तत्स्यादरिष्टकम् ॥ २० ॥

अरिष्टं मद्यमिति लोके । यथा द्राक्षारिष्टम् । दशमूलारिष्टम् । बब्बूलारिष्टमिति॥ अरिष्टं लघु पाकेन सर्वतश्च गुणाधिकम्॥ अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः ॥ २१ ॥

पकाई हुई औषधि और जलसे अर्थात् क्वाथ आदिसे जो मद्य बनाई जातीहै, उसे अरिष्ट कहतेहैं (लोकमें अरिष्टको मद्य ही कहतेहैं, जैसे कि—दाखोंका अरिष्ट, दशमूलका अरिष्ट और बबूलका अरिष्ट) अरिष्ट—पाकमें हलका और सबसे अधिक गुणवाला है । जिस पदार्थका अरिष्ट बनाया जाय उस अरिष्टमें उसही पदार्थके सदृश गुण होतेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥

सुरालक्षणं गुणाश्च ।

शालिषष्टिकपिष्टादिकृतं मद्यं सुरा स्मृता॥
सुरा गुर्वी बलस्तन्यपुष्टिमेदःकफप्रदा ॥
ग्राहिणी शोथगुल्मार्शोग्रहणीमूत्रकृच्छ्र-
नुत् ॥ २२ ॥

चावल अथवा साठी चावलोके चूर्ण आदिसे बनाई हुई मदिरा सुरा कहातीहै । सुरा–भारी, ग्राही, बल, दुग्ध, पुष्टि, मेद तथा कफ वर्द्धक है। और सूजन, गुल्म, बवासीर, सग्रहणी तथा मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करैहै ॥ २२ ॥

वारुणीलक्षणगुणाः ।

पुनर्नवाशिलापिष्टैर्वारुणी विहिता स्मृता॥
संहितैस्तालखर्जूररसैर्या सापि वारुणी ।
सुरावद्वारुणी लघ्वी पीनसाध्मानशूल-
नुत् ॥ २३ ॥

सुरातो भेदार्थं लघ्वीति

पुनर्नवा (साठी) शिलपर पीसकर उसकी मदिरा बनावे, उसको वारुणी कहतेहै. और ताडी या खजूरीके रसकी जो मदिरा हो उसको भी वारुणी कहतेहै. वारुणी सुराके सदृशही है, परन्तु सुरासे हलकी है और पीनस, अफारा तथा शूलको नष्ट करैहै ॥ २३ ॥

द्विविधसीधुलक्षणगुणाः ।

इक्षोः पक्कै रसैः सिद्धः सीधुः पक्करसश्च
सः ॥ आमैस्तैरेव यः सीधुः स च शीत-
रसः स्मृतः ॥ २४ ॥ सीधुः पक्करसः
श्रेष्ठः स्वराग्निबलवर्णकृत् ॥ वातपित्त-
करः सद्यः स्नेहनो रोचनो हरेत् ॥ २५ ॥
विबन्धमेदःशोफार्शःशोफोदरकफामयान्॥
तस्मादल्पगुणः शीतरसः संलेखनः
स्मृतः ॥ २६ ॥

ईखके पके हुए रससे जो मदिरा बनाई जाय उसको पक्करस सीधु कहतेहै और ईखके कच्चे ही रससे जो मदिरा बनाई जाय उसको शीतरस सीधु कहतेहैं । पक्करस सीधु-श्रेष्ठ, स्वरको उत्तम करनेवाली, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक, वर्णको उत्तम करनेवाली, वात तथा पित्तकारक, तत्काल स्निग्धता करनेवाली, रुचिकारक और मलबध, मेद, सूजन, बवासीर, उदरकी सूजन तथा कफसबधी रोगोको नष्ट करैहै । इस मदिराकी अपेक्षा शीतरस सीधु हीन गुणवाली और लेखन है ॥ २४–२६ ॥

आसवलक्षणगुणाः ।

यदपक्कौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स
आसवः ॥ २७ ॥

यथा लोहासवादिः ॥

आसवस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः
समाः ॥ २८ ॥

कच्ची औषधिसे और कच्चे पानीसे जो मदिरा बनाई जाय उसको आसव कहतेहैं, जैसे कि लोहासव आदि जिस पदार्थका आसव बनाया जाय उस आसवमे उस पदार्थके सदृश ही गुण होतेहैं ॥ २७ ॥२८॥

नवपुराणमदिरागुणाः ।

मद्यं नवमभिष्यन्दि त्रिदोषजनकं सरम्॥
अहृद्यं बृंहणं दाहि दुर्गन्धं विशदं गुरु ॥
॥ २९ ॥ जीर्णं तदेव रोचिष्णु क्रिमि-
श्लेष्मानिलापहम् ॥ हृद्यं सुगन्धि गुण-
वल्लघु स्रोतोविशोधनम् ॥ ३० ॥

नवीन मद्य–अभिष्यन्दी, तीनो दोषोको उत्पन्न करनेवाली, दस्तावर, हृदयको अप्रिय, पुष्टिकारक, दाह करनेवाली, दुर्गन्धित, विशद और भारी है । पुरानी मदिरा रुचिको उत्पन्न करनेवाली, कृमि, कफ, तथा वातविनाशक, हृदयको प्रिय, सुगधित, गुणकारी, हलकी और स्रोतो अर्थात् छिद्रोको शुद्ध करनेवाली है ॥२९॥३०॥

सात्त्विकादिमनुष्याणां मद्येन जाताश्चेष्टाः ।

सात्त्विके गीतहास्यादि राजसे साहसा-
दिकम् ॥ तामसे निन्द्यकर्माणि निद्राश्च
मदिराऽऽचरेत् ॥ ३१ ॥

आचरेत्कुर्यात् ॥

जो सत्त्वगुणी मनुष्यने मद्य पी हो तौ गीत और हास्यादिक करताहै, रजोगुणी मनुष्यने पी हो तौ साहसादि (पुरुषार्थके वीर कर्मोको) करताहै । और तमोगुणी मनुष्यने पी हो तौ उससे निन्द्य कार्य करताहै तथा इसको निद्रा अधिक होतीहै ॥ ३१ ॥

मद्यपानप्रकारः ।

विधिना मात्रया काले हितरन्नैर्यथाबलम् ॥ प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥ ३२ ॥ किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् ॥ अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम् ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य प्रसन्नतासे विधिपूर्वक तथा अपनी शक्तिके अनुसार मात्रा करके नियमित समयमें मद्य पीताहै और हितकारी अन्न भक्षण करताहै उस मनुष्यको मद्य अमृतके सदृश होतीहै, जैसा अन्नका स्वभाव है, वैसाही मद्यका स्वभाव है। जो विधिको छोडकर सेवन करताहै उसके। रोगकारक होतीहै और जो युक्तिपूर्वक सेवन करताहै उसको अमृततुल्य गुणकारी होतीहै ॥ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

मद्यगंधस्य दूरीकरणोपायः ।

मुस्तैलवालगदजीरकधान्यकैला यश्चर्वयन्सदसि वाचमभिव्यनक्ति ॥ स्वाभाविकं मुखजमुज्झति पूतिगन्धं गन्धश्च मद्यलशुनादिभवश्च नूनम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे सन्धानवर्गः ।

नागरमोथा, कबावचीनी, कूठ, जीरा, धनियाँ और इलायची, इनको चावकर जो मनुष्य सभामें बात चीत करे उसके मुखकी स्वाभाविक दुर्गन्ध दूर होजातीहै और मदिरा तथा लहसुन आदिसे उत्पन्न हुई दुर्गन्ध भी अवश्य नष्ट होजातीहै ॥ ३४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकाया सन्धानवर्गः समाप्तः।

अथ मधुवर्गः ।

मधुनामगुणाः ।

मधुमाक्षिकमाध्वीकक्षौद्रसारघ्यमीरितम् ॥ मक्षिकावरटीभृङ्गवान्तपुष्परसोद्भवम् ॥ १ ॥ मधु शीतं लघु स्वादु रूक्षं ग्राहि विलेखनम् ॥ चक्षुष्यं दीपनं स्वर्यं व्रणशोधनरोपणम् ॥ २ ॥ सौकुमार्यकरं सूक्ष्मं परं स्रोतोविशोधनम् ॥ कषायानुरसं ह्लादि प्रसादजनकं परम् ॥ ३ ॥ वर्ण्यं मेधाकरं वृष्यं विशदं रोचनं हरेत् ॥ कुष्ठार्शःकासपित्तास्रकफमेहक्लमक्रिमीन् ॥ ॥ ४ ॥ मेदस्तृष्णावमिश्वासहिक्कातीसारविड्ग्रहान् ॥ दाहक्षतक्षयांस्तत्त योगवाह्यल्पवातलम् ॥ ५ ॥

मधु, माक्षिक, माध्वीक, क्षौद्र, सारघ्य, मक्षिकावान्त, वरटीवान्त, भृगवान्त, पुष्परसोद्भव (पवित्र, कुसुमासव, माध्वीक, पुष्पासव, पुष्परसाह्वय और मकरन्दरस) ये मधुके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी-मधु, शहत । बं०-मधु । म०-गु०-मध । क०-जेनतुप्प । तै०-तेनी । फा०-शहद, अगवीन । अ०-असल । इं०-हनी Honey लै०-मेल Mel.

गुण-शहत-शीतल, हलका, मधुर, रूक्ष, ग्राही, विलेखन, नेत्रोंको हितकारी, अग्निप्रदीपक, स्वरको उत्तम करनेवाला, व्रणशोधक, रोपण, सुकुमारता करनेवाला, सूक्ष्म, स्रोतोंको शुद्ध करनेवाला, कसैले रससहित, आह्लादकारक, प्रसादजनक, वर्णको उज्ज्वल करनेवाला, बुद्धिकारक, वृष्य, विशद, रुचिकारक और मेद, तृषा, वमन, श्वास, हिचकी, अतिसार, मलबंध, कोढ, बवासीर, खाँसी, पित्त, रक्तविकार, कफ, प्रमेह, ग्लानि, कृमि, दाह, क्षत और क्षय, इन सबको नष्ट करैहै । योगवाही (जैसे पदार्थके साथ मिलै उसके ही सदृश गुण करनेवाला) और किंचित् वातकारक है ॥ १-५ ॥

मधुभेदाः ।

माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पौतिकं छात्रमित्यपि ॥ आर्घ्यमौद्दालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः ॥ ६ ॥

माक्षिक, भ्रामर, क्षौद्र, पौतिक, छात्र, आर्घ्य, औद्दालक और दाल, ये आठ शहतके भेद हैं ॥ ६ ॥

माक्षिकलक्षणगुणाः ।

मक्षिकाः पिङ्गवर्णास्तु महत्यो मधुमक्षिकाः ॥ ताभिः कृतं तैलवर्णं माक्षिकं परिकीर्त्तितम् ॥ ७ ॥ माक्षिकं मधुषु श्रेष्ठं नेत्रामयहरं लघु ॥ कामलार्शःक्षतश्वासकासक्षयविनाशनम् ॥ ८ ॥

पिगल वर्णवाली जो वडी मक्खी होतीहैं उनको मधुमक्खी कहतेहैं, इनका कियाहुआ जो तेलके सदृश वर्णवाला मधु होताहै, वह माक्षिक मधु कहाताहै। माक्षिक मधु–सब मधुओंमे श्रेष्ठ, नेत्ररोगनाशक, हलका और कामला, बवासीर, क्षत, श्वास, खाँसी तथा क्षयको नष्ट करैहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

भ्रमरलक्षणगुणाः ।

किञ्चित्सूक्ष्मैः प्रसिद्धेभ्यः षट्पदेभ्योऽलिभिश्चितम् ॥ निर्मलं स्फटिकाभं यत्तन्मधु भ्रामरं स्मृतम् ॥ ९ ॥ भ्रामरं रक्तपित्तघ्नं मूत्रजाड्यकरं गुरु ॥ स्वादुपाकमभिष्यन्दि विशेषात्पिच्छिलं हिमम् ॥१०॥

प्रसिद्ध भौंरोसे किञ्चित् छोटे भौरोंका बनायाहुआ और स्फटिक मणिके सदृश निर्मल जो मधु हो उसको भ्रामर कहतेहैं। भ्रामर मधु–रक्तपित्तनाशक, मूत्रमें जाड्यता करनेवाला, भारी, पाकमे मधुर, अभिष्यन्दि, विशेष करके पिच्छिल (गिलगिला) और शीतल है ॥९॥१०॥

क्षौद्रलक्षणगुणाः ।

मक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्राख्यास्तत्कृतं मधु ॥ मुनिभिः क्षौद्रमित्युक्तं तद्वर्णात्कपिलं भवेत् ॥ गुणैर्माक्षिकवत्क्षौद्रं विशेषान्मेहनाशनम् ॥ ११ ॥

कपिल रगवाली सूक्ष्म मक्खियें क्षुद्रा कहाती हैं, और इन मक्खियोंके करेहुए मधुको मुनियोंने क्षौद्र कहा है। क्षौद्र मधु–कपिल (भूरे) वर्णवाला होता है और माक्षिकके सदृश गुणवाला, तथा विशेष करके प्रमेहनाशक है ॥ ११ ॥

पौतिकमधुलक्षणगुणाः ।

कृष्णा या मशकोपमा लघुतराः प्रायो महापीडिका वृक्षाणां पृथुकोटरान्तरगताः पुष्पासवं कुर्वते ॥ तास्तज्ज्ञैरिह पूतिका निगदितास्ताभिः कृतं सर्पिषा तुल्यं यन्मधु तद्वनेचरजनैः संकीर्तितं पौतिकम् ॥ १२ ॥ पौतिकं मधु रूक्षोष्णं पित्तदाहास्रवातकृत्॥ विदाहि मेहकृच्छ्रघ्नं ग्रन्थ्यादिक्षतशोषि च ॥ १३ ॥

अधिक करके मच्छरके सदृश अत्यन्त सूक्ष्म, काली, लोगोंको बहुत पीडा करनेवाली और वृक्षोंकी खखोडलमे रहनेवाली जो मक्खीं मधु बनावे, उनको विद्वान् पूतिका कहते है। उनका बनाया हुआ घीके सदृश जो मधु होताहै, उसको वनमे फिरनेवाले लोग पौतिक कहते हैं। पौतिक मधु–रूक्ष, गरम, विदाही, पित्त, दाह, रक्तविकार तथा वातकारक, प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्रनाशक और गाठ आदि तथा क्षतको शोषण करैहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

छात्रमधुनो लक्षणं गुणाश्च ।

वरटाः कपिलाः पीताः प्रायो हिमवतो वने ॥ कुर्वन्ति छत्रकाकारं तज्जं छात्रं मधु स्मृतम् ॥ छात्रं कपिलपीतं स्यात्पिच्छिलं शीतलं गुरु ॥ १४ ॥ स्वादुपाकं कृमिश्वित्ररक्तपित्तप्रमेहजित् ॥ भ्रमतृण्मोहविषहृत्तर्पणश्च गुणाधिकम् ॥१५॥

अधिक करके हिमालयके वनमे पिगल और पीली मक्खियें छत्रके सदृश आकारवाली जो मधु बनातीहैं उस मधुको छात्र कहते हैं। छात्र मधु–भूरे वर्णका, पीला, पिच्छिल, शीतल, भारी, पाकमे मधुर, तृप्तिदायक, अधिक गुणवाला और कृमि, सफेतकोढ, रक्तपित्त, प्रमेह, भ्रम, तृषा, मोह तथा विषको नष्ट करै है ॥ १४ ॥ १५ ॥

आर्घ्यकलक्षणगुणाश्च ।

मधूकवृक्षनिर्यासं जरत्कार्वाश्रमोद्भवम् ॥ स्रवन्त्यार्घ्यं तदाख्यातं श्वेतकं मालवे पुनः ॥ १६ ॥ तीक्ष्णं तुण्डासु याः पीता मक्षिकाः षट्पदोपमाः ॥ अर्घ्यास्तास्तत्कृतं यत्तदार्घ्यमित्यपरे जगुः ॥ १७ ॥ आर्घ्यं मध्वतिचक्षुष्यं कफपित्तहरं परम् ॥ कषायं कटुकं पाके तिक्तश्च बलपुष्टिकृत् ॥ १८ ॥

जरत्कारु मुनिके आश्रममे उत्पन्न हुए महुएके वृक्षोंमें जो गोंद स्रवताहै, वह अर्घ्य कहाताहै। इसको मालवेमे श्वेतक कहते हैं। दूसरे मुनि कहते हैं कि “ भौंरेके सदृश और तीक्ष्ण मुखवाली जो पीली मक्खियें होती

हैं उनका नाम अर्घ्य है, उनके बनाये हुए मधुको भी आर्घ्य कहतेहैं" । आर्घ्य मधु-नेत्रोंको अत्यत हितकारी, कफ तथा पित्तनाशक, उत्तम, कसैला, पाकमें चरपरा, कडवा और बल तथा पुष्टिदायक है ॥ १६-१८ ॥

औद्दालकमधुलक्षणगुणाः ।

प्रायो वल्मीकमध्यस्थाः कपिलाः स्वल्पकीटकाः ॥ कुर्वन्ति कपिलं स्वल्पं तत्स्यादौद्दालकं मधु ॥ १९ ॥ औद्दालकं रुचिकरं स्वर्यं कुष्ठविषापहम् ॥ कषायमुष्णमम्लश्च कटुपाकश्च पित्तकृत् ॥ २० ॥

प्रायः बँमईमें रहनेवाले कपिल वर्णयुक्त जो छोटे छोटे कीडे होतेहैं वे कपिल वर्णवाला थोडा मधु बनातेहैं, उस मधुको औद्दालक कहतेहैं ! औद्दालक मधु-रुचिकारक, स्वरके लिये उत्तम, कोढ तथा विषनाशक, कसैला, गरम, खट्टा, पाकमें चरपरा और पित्तकारक है ॥ १९ ॥ २० ॥

दालमधुलक्षणगुणाः ।

संश्रुत्य पतितं पुष्पाद्यत्तु पत्रोपरि स्थितम् ॥ मधुराम्लकषायश्च तद्दालं मधु कीर्त्तितम् ॥ २१ ॥ दालं मधु लघु प्रोक्तं दीपनीयं कफापहम् ॥ कषायानुरसं रूक्षं रुच्यं छर्दिप्रमेहजित् ॥ २२ ॥ अधिकं मधुरं स्निग्धं बृंहणं गुरु भारिकम् ॥ २३ ॥

लघु पाके, गुरु भारिकं, तुलितम् ॥

पुष्पोंमेंसे झरकर पत्तोंके ऊपर पडाहुआ जो मधुर, खट्टा और कसैला मकरद (रस) होताहै, वह दालमधु कहाताहै । दालमधु-पाकमें हलका, अग्निप्रदीपक, कफनाशक, कसैले रसवाला, रूक्ष, रुचिकारी, वमन तथा प्रमेहनाशक, अधिकमधुर, स्निग्ध, पुष्टिकारक और तौलमें भारी है ॥ २१-२३ ॥

नवपुराणमधुगुणाः ।

नवं मधु भवेत्पुष्टयै नातिश्लेष्महरं सरम्॥ पुराणं ग्राहकं रूक्षं मेदोघ्नमतिलेखनम् ॥ २४ ॥ मधुनः शर्करायाश्च गुडस्यापि विशेषतः ॥ एकसंवत्सरे वृत्ते पुराणत्वं स्मृतं बुधैः ॥ २५ ॥

नवीन मधु-पुष्टिकारक, अत्यत कफनाशक नहीं और दस्तावर है । पुराना मधु-ग्राही, रूक्ष, मेदनाशक और अत्यत लेखन है । मधुको खाँडको तथा गुडको जब एक वर्ष बीत जाय तब ये पुराने होतेहैं, ऐसा विद्वानोंने कहाहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

शीतलोष्णमधुनो गुणदोषाः ।

विषपुष्पादपि रसं सविषा भ्रमरादयः ॥ गृहीत्वा मधु कुर्वन्ति तच्छीतं गुणवन्मधु ॥ २६ ॥ विषान्वयात्तदुष्णन्तु उष्णं चोष्णेन वा सह ॥ उष्णार्त्तस्योष्णकाले च स्मृतं विषसमं मधु ॥ २७ ॥

विषैले भौंरे आदि विषैले फूलोंमेंसे रस लेकर मधु बनाते हैं, वह मधु शीतलही गुणकारी है । परन्तु उसमें किसी विषैले पदार्थका संयोग रहनेसे अथवा गरम पदार्थका सयोग रहनेसे, अथवा गरम रोगोंसे पीडितको उष्णकालमे देनेसे वह मधु गरम होकर विषकी सदृश काम करताहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

मधूच्छिष्टनामगुणाः ।

मयनं तु मधूच्छिष्टं मधुशेषं च सिक्थकम् ॥ मध्वाधारो मदनकं मधूपितमपि स्मृतम् ॥२८॥ मदनं मृदु सुस्निग्धं भूतघ्नं व्रणरोपणम् ॥ भग्नसन्धानकृद्वातकुष्ठवीसर्परक्तजित् ॥ २९ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे मधुवर्गः ।

मयन, मधूच्छिष्ट, मधुशेष, सिक्थक, मध्वाधार, मदनक, मधूपित, (शिक्थ, सिक्थ, शिक्थक, मधुज, मधुसभव, मादन, काच, विघस, उच्छिष्ट, मोदन, मक्षिकामल, क्षौद्रेय, पीतराग, स्निग्ध, माक्षिकज, क्षौद्रज और मधूत्थित) ये मोमके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-ब०-मोम । म०-मेण । गु०-मीण । फा०-मोम । अ०-शमा । इ०-वॅाक्स ॥

गुण-मोम-कोमल, स्निग्ध, भूतनाशक, व्रणरोपक,

भग्नसंधानकारक (घावको भरनेवाला), और वात, कोढ विसर्प, तथा रक्तविकारनाशक है ॥ २८ ॥ २९ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्राम-
वैश्यकृतभाषाटीकायां मधुवर्गः समाप्तः ।

अथेक्षुवर्गः ।

इक्षुनामगुणाः ।

इक्षुर्दीर्घच्छदः प्रोक्तस्तथा भूमिरसोऽपि च ॥ गुडमूलोऽसिपत्रश्च तथा मधुतृणः स्मृतः ॥१॥ इक्षवो रक्तपित्तघ्ना बल्या वृष्याः कफप्रदाः॥स्वादुपाकरसाः स्निग्धा गुरवो मूत्रला हिमाः ॥ २ ॥

इक्षु, दीर्घच्छद, भूमिरस, गुडमूल, असिपत्र, मधुतृण, (मधुयष्टि, विपुलरस, गुडदारु, रसाल, कोशकार, इक्षुर, असिपत्रक, पयोधर, कर्कोटक, वंश, कान्तार, सुकुमारक, अधिपत्र, गुडतृण और मृत्युपुष्प ये ईखके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—ईख, गन्ने । बं०—इक्षु, कुशिर । म०—ऊस। गु०—शेरडी । क०—कबु। तै०—चिरकु । फा०—नेशकर । अ०—कसबुस्सकर । इं०—स्युगरकेन Sugarcane लै०—सेकर आलवम् Saccharum Aldum ॥

गुण—ईख—रक्तपित्तनाशक, बलदायक, मैथुनशक्ति-वर्द्धक, कफकारक, पाकमें तथा रसमें मधुर, स्निग्ध, भारी, मूत्रवर्द्धक और शीतल है ॥ १ ॥ २ ॥

इक्षुभेदाः ।

पौण्ड्रको भीरुकश्चापि वंशकः शतपोरकः ॥ कान्तारस्तापसेक्षुश्च काण्डेक्षुः सूचिपत्रकः ॥३॥ नैपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोथ कोशकृत् ॥ मनोगुप्ता च इत्येता जातयस्तत्र कीर्त्तिताः ॥ ४ ॥

पौण्ड्रक, भीरुक, वंशक, शतपोरक, कांतार, तापसेक्षु, काण्डेक्षु, सूचिपत्रक, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर, कोशक और मनोगुप्ता, ये ईखकी जाति हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

पौण्ड्रकभीरुकेक्षुगुणाः ।

वातपित्तप्रशमनो मधुरो रसपाकयोः ॥ सुशीतो बृंहणो बल्यः पौण्ड्रको भीरुकस्तथा ॥ ५ ॥

पौण्ड्रक (सफेदपौंडा) और भीरुक ईख—वात तथा पित्तनाशक, रसमें तथा पाकमें मधुर, अत्यंत शीतल, पुष्टिकारक और बलवर्द्धक है ॥ ५ ॥

कोशकारेक्षुगुणाः ।

कोशकारो गुरुः शीतो रक्तपित्तक्षयापहः ॥ ६ ॥

कोशक नामक ईख—भारी, शीतल और रक्तपित्त तथा क्षयनाशक है ॥ ६ ॥

कान्तारेक्षुगुणाः ।

कान्तारेक्षुर्गुरुर्वृष्यः श्लेष्मलो बृंहणः सरः ॥ ७ ॥

कान्तार ईख (कालागन्ना)—भारी, वृष्य, कफकारक, पुष्टिदायक और दस्तावर है ॥ ७ ॥

वंशकेक्षुगुणाः ।

दीर्घपोरः सुकठिनः सक्षारो वंशकः स्मृतः ॥ ८ ॥

वंशकइक्षुक, दीर्घपोर (बडी पोईवाला) । बहुत कठिन और क्षारयुक्त है ॥ ८ ॥

शतपोरकेक्षुगुणाः ।

शतपर्वा भवेत्किञ्चित्कोशकारगुणान्वितः॥ विशेषात्किञ्चिदुष्णश्च सक्षारः पवनापहः ॥ ९ ॥

शतपोरक (जिसमें बहुत पोई हों) गन्ना—किंचित् कोशकके सदृश गुणयुक्त, विशेष करके किंचित् गरम, खारयुक्त और वातविनाशक है ॥ ९ ॥

तापसेक्षुगुणाः ।

तापसेक्षुर्भवेन्मृद्वी मधुरा श्लेष्मकोपनी तर्पणी रुचिकृच्चापि वृष्या च बलकारिणी ॥ १० ॥

तापस (चीनिया) ईख—मृदु, मधुर, कफको कुपित करनेवाली, तृप्तिकारक, रुचिकर्त्ता, वृष्य और बलदायक है ॥ १० ॥

काण्डेक्षुगुणाः ।

एवं गुणैस्तु काण्डेक्षुः स तु वातप्रकोपणः ॥ ११ ॥

काण्डेक्षुमें भी तापसेक्षुके सदृश गुण हैं, परन्तु वातको कुपित करनेवाली है ॥ ११ ॥

सूचीपत्रनेपालदीर्घपत्रनीलपोराणां गुणाः ।

सूचीपत्रा नीलपोरा नैपाला दीर्घपत्रकाः ॥ वातलाः कफपित्तघ्नाः सकषाया विदाहिनः ॥ १२ ॥

सूचीपत्र जिसमें बहुत बारीक पत्ते होतेहैं नीलपोर, दीर्घपत्रक और नैपाल ईख-वातकारक, कफ तथा पित्तनाशक कसैली और रक्तपित्तनाशक हैं ॥ १२ ॥

मनोगुप्तेक्षुगुणाः ।

मनोगुप्ता वातहरी तृष्णामयविनाशिनी ॥ सुशीता मधुराऽतीव रक्तपित्तप्रणाशिनी १३

मनोगुप्तानामक ईख-वात तथा तृषा संबधी रोगनाशक, बहुत शीतल, अत्यत मीठी और रक्तपित्तनाशक है ॥ १३ ॥

बालतरुणवृद्धेक्षुगुणाः ।

बाल इक्षुः कफं कुर्य्यान्मेदोमेहकरश्च सः ॥ वातहारी युवा स्वादुरीषत्तीक्ष्णश्च पित्तनुत् ॥ रक्तपित्तहरो वृद्धः क्षतहृद्बलवीर्यकृत् ॥ १४ ॥

बाल (थोडे दिनोंकी, वा कच्ची) ईख-कफकारक और मेद तथा प्रमेहको उत्पन्न करनेवाली है। युवा (अधपकी) ईख-वातनाशक, मधुर, किंचित् तीक्ष्ण और पित्तनाशक है। वृद्ध (पक्की) ईख-रक्तपित्त तथा क्षतनाशक और बल तथा वीर्यकारक है ॥ १४ ॥

इक्षोरंगभेदेन गुणभेदाः ।

मूले तु मधुरोऽत्यर्थं मध्येऽपि मधुरः स्मृतः ॥ अग्रे ग्रन्थिषु विज्ञेय इक्षुः पटुरसो जनैः ॥ १५ ॥

गन्ना-जडमें अत्यन्त मधुर, मध्यमें मधुर और अग्रभागमें व गांठोंमें खारी है ॥ १५ ॥

चूषितेक्षुगुणाः ।

दन्तनिष्पीडितस्येक्षो रसः पित्तास्रनाशनः ॥ शर्करासमवीर्य्यः स्यादविदाही कफप्रदः ॥ १६ ॥

चूँसा हुआ गन्नेका रस-पित्त तथा रक्तविकारनाशक, शर्कराके समान वीर्यवाला, दाहकारक नहीं और कफकारक है ॥ १६ ॥

यान्त्रिकेक्षुरसगुणाः ।

मूलाग्रजन्तुयन्त्रादिपीडनान्मलसङ्करात् ॥ किञ्चित्कालविधृत्या च विकृतिं याति यान्त्रिकः ॥ तस्माद्विदाही विष्टम्भी गुरुः स्याद्यान्त्रिको रसः ॥ १७ ॥

गन्नेकी जड, अग्रभाग, जीव, तथा गांठ आदि सब यंत्र (कोल्हू) में पिलनेसे, मैल आदि मिलनेसे और किंचित् अधिक समयतक रक्खे रहनेसे पिलाहुआ रस विकारयुक्त होजाताहै, इस कारण कोल्हूका पिलाहुआ रस दाहको उत्पन्न करनेवाला, विष्टम्भी और भारी है ॥ १७ ॥

पर्युषितेक्षुरसगुणाः ।

रसः पर्युषितो नेष्टो ह्यम्लो वातापहो गुरुः ॥ कफपित्तकरः शोषी भेदनश्चातिमूत्रलः ॥ १८ ॥

ईखका बासी रस-अप्रिय, खट्टा, वातनाशक, भारी, कफ तथा पित्तको बढानेवाला, शोषकारक, मलभेदक और अत्यन्त मूत्रवर्द्धक है ॥ १८ ॥

पक्केक्षुरसगुणाः ।

पक्को रसो गुरुः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफवातनुत् ॥ गुल्मानाहप्रशमनः किञ्चित्पित्तकरः स्मृतः ॥ १९ ॥

ईखका पक्का रस-भारी, स्निग्ध, बहुत तीक्ष्ण, कफ तथा वातनाशक, गुल्म तथा अफारेको शांत करनेवाला और किंचित् पित्तकारक है ॥ १९ ॥

इक्षुरसनिर्मितपदार्थगुणाः ।

इक्षोर्विकारास्तृड्दाहमूर्च्छापित्तास्रनाशनाः ॥ गुरवो मधुरा बल्याः स्निग्धा वातहराः सराः ॥ वृष्या मोहहराः शीता बृंहणा विषहारिणः ॥ २० ॥

ईखके रससे बने हुए, गुडादिक पदार्थ—तृषा, दाह, मूर्च्छा, पित्त, तथा रक्तविकारोंके नाशक, भारी, मधुर, बलदायक, स्निग्ध, वातनाशक, दस्तावर, वृष्य, मोहको नष्ट करनेवाले, शीतल, पुष्टिदायक और विषविनाशक हैं ॥ २० ॥

फाणितलक्षणगुणाः।

इक्षो रसस्तु यः पक्कः किञ्चिद्गाढो बहुद्रवः॥ स एवेक्षुविकारेषु ख्यातः फाणितसंज्ञया॥ ॥ २१ ॥ फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं कफशुक्रकृत् ॥ वातपित्तश्रमान्हन्ति मूत्रवस्तिविशोधनम् ॥ २२ ॥

किंचित् गाढा, बहुत पतला और पकाहुआ ईखका रस फाणित (राब) कहाताहै। फाणित (राब)—भारी, अभिष्यन्दी, पुष्टिकारक, कफ तथा वीर्यको करनेवाला, वात, पित्त तथा परिश्रमनाशक और मूत्र तथा वस्तिको शुद्ध करनेवाला है ॥ २१ ॥ २२ ॥

मत्स्यण्डीलक्षणगुणाः।

इक्षो रसो यः सम्पक्को घनः किञ्चिद्द्रवान्वितः॥ मन्दं यत्स्यन्दते तस्मात्तन्मत्स्यण्डी निगद्यते ॥ २३ ॥ मत्स्यण्डी भेदिनी बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा ॥ मधुरा बृंहणी वृष्या रक्तदोषापहा स्मृता॥२४॥

भली भाति पकायाहुआ गाढा और थोडा द्रवयुक्त ईखका रस मत्स्यण्डी (मीजा) कहाताहै। मत्स्यण्डी—मलभेदक, बलकारक, हलकी, पित्त तथा वातनाशक, मधुर, पुष्टिकारक, वृष्य तथा रुधिरसबधी रोगोंको नष्ट करै है ॥ २३ ॥ २४ ॥

गुडस्य लक्षणं गुणाश्च।

इक्षो रसो यः सम्पक्को जायते लोष्टवद्दृढः॥ स गुडो गौडदेशे तु मत्स्यण्डयेव गुडो मतः ॥ २५ ॥ गुडो वृष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः॥ नातिपित्तहरो मेदःकफक्रिमिबलप्रदः ॥ २६ ॥

ईखका रस भली भाति पकाकर जो लोष्ट समान दृढ (गाढा) होजाताहै उसको गुड कहतेहैं। परन्तु गौडदेशमे मत्स्यडीको ही गुड कहते हैं ॥

२५

स०—हिन्दी—ब०—गुड। म०—गूळ। गु०—गोड। क०—हेसरू। तै०—वेल्लामु। फा०—कदेसिया। अ०—कन्दे अस्वद। इं०—ट्रेकल Treacle ॥

गुड—वीर्यवर्द्धक, भारी, स्निग्ध, वातनाशक, मूत्रको शुद्ध करनेवाला, अत्यंत पित्तनाशक नहीं और मेद, कफ, कृमि तथा बलवर्द्धक है ॥ २५ ॥ २६ ॥

पुराणगुडस्य गुणाः।

गुडो जीर्णो लघुः पथ्योऽनभिष्यन्द्यग्निपुष्टिकृत्॥ पित्तघ्नो मधुरो वृष्यो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः ॥ २७ ॥

पुराना गुड—हलका, पथ्य, अभिष्यन्दी नहीं, अग्निवर्द्धक, पित्तनाशक, मधुर, वृष्य, वातको हरनेवाला और रुधिरको स्वच्छ करनेवाला है ॥ २७ ॥

नवीनगुडस्य गुणाः।

गुडो नवः कफश्वासकासक्रिमिकरोऽग्निकृत् ॥ २८ ॥

नवीन गुड—कफ, श्वास, खाँसी, कृमि और अग्निवर्द्धक है ॥ २८ ॥

अनुपानभेदेन गुडस्य गुणाः।

श्लेष्माणमाशु विनिहन्ति सदार्द्रकेण पित्तं निहन्ति च तदेव हरीतकीभिः ॥ शुंठ्या समं हरति वातमशेषमित्थं दोषत्रयक्षयकराय नमो गुडाय ॥ २९ ॥

अदरखके साथ खायाहुआ गुड तत्काल कफनाशक, हरडके साथ खायाहुआ गुड पित्तनाशक और सोंठके साथ खाया हुआ गुड सम्पूर्ण वातविनाशक है, इसप्रकार गुड तीनों दोषोंको नष्ट करैहै, इसकारण गुडके अर्थ नमस्कार है ॥ २९ ॥

खण्डस्य गुणाः।

खण्डन्तु मधुरं वृष्यं चक्षुष्यं बृंहणं हितम्॥ वातपित्तहरं स्निग्धं बल्यं वान्तिहरं परम् ३०

खाँड—मधुर, वृष्य, नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारक, शीतल, वात तथा पित्तनाशक, स्निग्ध, बलदायक और अत्यत वमननाशक है ॥ ३० ॥

शर्करालक्षणगुणाः।

खण्डन्तु सिकतारूपं सुश्वेतं शर्करा सिता॥

सिता सुमधुरा रुच्या वातपित्तास्रदाहहृत् ॥ मूर्च्छाछर्दिज्वरान्हन्ति सुशीता शुक्रकारिणी ॥ ३१ ॥

जो खाड रेतेके सदृश और सफेद होतीहै उसको शर्करा और सिता कहतेहैं । हिन्दीमें चीनी, बूरा । गु०—साकरियाखाड ॥

यह खाड (बूरा)—अत्यन्त मधुर, रुचिकारक, वात, पित्त, रक्तविकार, दाह, मूर्च्छा, वमन तथा ज्वरको नष्ट करनेवाली, बहुत शीतल और वीर्यवर्द्धक है ॥ ३१ ॥

सितोपलानामगुणाः ।

भवेत्पुष्पसिता शीता रक्तपित्तहरी लघुः॥ सितोपला सरा लघ्वी वातपित्तहरी हिमा ॥ ३२ ॥

स०—सिता। हि०—मिश्री। ब०—मिचरी । म०—खडी साखर । गु०—खडीसाकर। क०—कलुसकरी । तै०—फाटिकेपा । फा०—नवात । अ०—मक्रे अबीयद । इ०—प्युरिफाइड स्युगरकेंडी Purified Sugar Candy लें०सक्करम प्युरिफिकिटम् Saccharum Purificitum ॥

सफेद बूरा—शीतल, रक्तपित्तविनाशक और हलकी है मिश्री—दस्तावर, हलकी, वात तथा पित्तनाशक और हलकी है ॥ ३२ ॥

मधुखण्डगुणाः ।

मधुजा शर्करा रूक्षा कफपित्तहरी गुरुः॥ छर्द्यतीसारतृड्दाहरक्तहृत्तुवरा हिमा॥३३॥

शहदसे बनाईहुई खाड—रूखी, कफ तथा पित्तनाशक, भारी, कसैली, शीतल और वमन, अतीसार, तृषा, दाह, तथा रक्तविकारनाशक है ॥ ३३ ॥

परिभाषा ।

यथायथैषां नैर्मल्यं मधुरत्वं यथायथा ॥ स्नेहलाघवशैत्यादि सरत्वञ्च तथातथा ॥ ३४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे इक्षुवर्गः ।
समाप्तोऽयं द्रववर्गः ।

खॉड और बूरा—जितनी २ अधिक स्वच्छ करे उतना २ ही अधिक मधुर, स्निग्ध, हलकी, शीतल और दस्तावर होतीहै ॥ ३४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायामिक्षुवर्गः समाप्तः ।

अथ अनेकार्थनामवर्गः ।

तत्र द्व्यर्थानि नामानि ।

यथा । अश्मन्तकः—अम्ललोणिका, कोविदारश्च । कठिल्लकः—कारवेल्लः, रक्तपुनर्नवा च । कुलकः—पटोलं, कुपीलुश्च । (कुपीलु कुचला इति लोके प्रसिद्धः) । कोशातकी—महाकोशातकी, राजकोशातकी च । दीप्यकः—यवानी, अजमोदा च । मरुवकः—फणिज्जकः, पिण्डीतकश्च, । (मरुवकः-मरुआ इति लोके) । (पिण्डीतकः—मैनफल इति लोके) । मधूलिका—मूर्वा, जलयष्टी च । रुचकम्—सौवर्चलं, बीजपूरकश्च । लोणिका—लोणीशाकं, चाङ्गेरीशाकश्च । वसुकः—रक्तार्कः, क्षारलवणश्च । वाह्लीकम्—कुंकुमं, हिंगु च । वितुन्नकम्—धान्यकं, तुत्थश्च । स्वादुकण्टकः—गोक्षुरः, विकंकतश्च। अग्निमुखी-भल्लातकी, लांगली च । अग्निशिखम्—कुंकुमं, कुसुम्भश्च। अजशृंगी—मेषशृंगी, कर्कटशृंगी च । प्रियंगुः—फलिनी, कंगुश्च । भृंगः—भृंगराजः, त्वक् च । समंगा-मञ्जिष्ठा, लज्जालुश्च । अमोघा—विडंगं, पाटला च । मोचा—कदली, शाल्मलिश्च । कुटन्नटः—श्योनाकः, कैवर्तीमुस्तश्च । कुनटी—धनिका, मनःशिला च । घोण्टा—पूगः, बदरी च । त्रिपुटा-त्रिवृत्, सूक्ष्मैला च। शठी-कर्चूरः, गन्धपलाशी च । दन्तशठः—जम्बीरः, कपित्थश्च । दन्तशठा—अम्लिका, चांगेरी च । अरुणम्—मञ्जिष्ठा, अतिविषा च । कणा-पिप्पली, जीरकश्च । तालपर्णी—मुशली, मुरा च । पीलुपर्णी—मूर्वा, बिम्बी-

च। ब्राह्मणी-भार्ङ्गी, स्पृक्का च। अपराजिता-विष्णुक्रान्ता, शालिपर्णी च। आस्फोता-अपराजिता, सारिवा च। पारावतपदी-ज्योतिष्मती, काकजङ्घा च। शारदी-सारिवा, जलपिप्पली च। उग्रगन्धा-वचा, यवानी च। परिव्याधः-कर्णिकारः, जलवेतसश्च। अञ्जनम्-स्रोतोऽञ्जनं, सौवीरश्च। अग्निः-चित्रकः, भल्लातश्च। कृमिघ्नः-विडङ्गः, हरिद्रा च। तेजनः शरः, वेणुश्च। तेजनी-तेजस्वती, मूर्वा च। रोचनः-कम्पिल्लः, रोचना च। (रोचना-गोरोचना)। राजादनम्-क्षीरिका, प्रियालश्च। शकुलादनी-कटुका, जलपिप्पली च। गोलोमी-श्वेतदूर्वा, वचा च। पद्मा-पद्मचारिणी, भार्ङ्गी च। श्यामा-सारिवा, प्रियङ्गुश्च। धान्यम्-धान्याकं, शाल्यादि च। सहस्रवीर्या-नीलदूर्वा, महाशतावरी च। सेव्यम्-उशीरं, लामज्जकश्च। उदुम्बरः-जन्तुफलं, ताम्रश्च। ऐन्द्री-इन्द्रवारुणी, इन्द्राणी च। कटम्भरा-कटुका, श्योनाकश्च। क्षारः-यवक्षारः, स्वर्जिका च। गण्डीरः-गण्डारी, मञ्जिष्ठा च। (गण्डारी-शाकविशेषः)। गन्धारी-दुरालभा, गन्धपलाशी च। चित्रा-इन्द्रवारुणी, बृहद्दन्ती च। तुण्डिकेरी-कार्पासी, बिम्बी च। धारा-गुडूची, क्षीरकाकोली च। बालपत्रः-खदिरः, यवासश्च। वारि-वालकम्, उदकश्च। अंगारवल्ली-भार्ङ्गी, गुञ्जा च। अमृणालम्-लामज्जकम्, उशीरश्च। कुण्डली-गुडूची, कोविदारश्च। गन्धफली-प्रियङ्गुः, चम्पककलिका च। दीर्घमूलः-यवासः, शालिपर्णी च। पिच्छिला-शाल्मली, शिंशपा च। पुष्पफलः-कपित्थः, कूष्माण्डश्च। पोटगलः-नलः, काशश्च। यवफलः-कुटजः, वंशश्च। देवी-मूर्वा, स्पृक्का च। विश्वा-शुण्ठी, अतिविषा च। शीतशिवम्-सैन्धवं, मिश्रेया च। कर्कशः-काम्पिल्यः, कासमर्दश्च। चर्मकषा-शातला, मांसरोहिणी च। नन्दिवृक्षः-अश्वत्थभेदः, गोमुखपत्रशाखश्च। (वेलिया पीपर इति लोके तुणिश्च)। पयः-क्षीरम्, उदकश्च। रुहा-दूर्वा, मांसरोहिणी च। सिंही-बृहती, वासा च॥

दो अर्थवाले शब्द।

अश्मन्तक-खट्टी नोनिया और कचनार।
कठिल्लक-करेला और लाल पुनर्नवा।
कुलक-परवल और कुचला।
कोशातकी-तुरई और गलका तोरई।
दीप्यक-अजवाइन और अजमोद।
मरुवक-मरुआ और मैनफल।
मधूलिका-मूर्वा और जलमुलेठी।
रुचक-कालानिमक और विजौरानींबू।
लोणिका-नोनियाशाक और चूका।
वसुक-लालआक और खारीनोंन।
वाह्लीक-केशर और हींग।
वितुन्नक-धनियाँ और नीलाथोथा।
स्वादुकण्टक-गोखरू और कटाई।
अग्निमुखी-भिलावा और कलिहारी।
अग्निशिख-केशर और कुसुम।
अजशृंगी-मेढाशिंगी और काकडाशिंगी।
प्रियंगु-गोंदी और कंगनी।
भृंग-भाँगरा और तज।
समंगा-मँजीठ और लज्जालु।
अमोघा-वायविडंग और पाढर।
मोचा-केला और सेंमल।
कुटन्नट-टेटू और केवटीमोथा।
कुनटी-धनियाँ और मैनशिला।
घोंटा-सुपारी और बेर।
त्रिपुटा-निसोत और छोटी इलायची।
शठी-कचूर और गंधपलाशी।
दन्तशठ-जम्भीरीनींबू और कैथा।
दन्तशठा-इमली और चूका।
अरुण-मँजीठ और अतीस।
कणा-पीपल और जीरा।
तालपर्णी-मुसली और मुरा (गंधद्रव्यविशेष)।

पीलुपर्णी–मूर्वा और कदूरी ।
ब्राह्मणी–भारगी और स्पृक्का (गन्धद्रव्यविशेष)
अपराजिता–कोयल और शालिपर्णी ।
आस्फोता–कोयल और सरिवन ।
पारावतपदी–मालकांगनी और काकजंघा ।
शारदी–सारिवन और जलपीपल ।
उग्रगंधा–वच और अजवायन ।
परिव्याध–कनेर और जलवेत ।
अञ्जन–कालासुरमा और सफेदसुरमा ।
अग्नि–चीता और भिलावा ।
कृमिघ्न–वायविडंग और हलदी ।
तेजन–सरपता और बाँस ।
तेजनी–मालकांगनी और मुर्वा ।
रोचन–कबीला और गोलोचन ।
राजादन–खिरनी और चिरौंजी ।
शकुलादनी–कुटकी और गजपीपल ।
गोलोमी–सफेद दूब और वच ।
पद्मा–सरोजनी और भारगी ।
श्यामा–सारिवन और प्रियंगु ।
धान्य–धनियाँ और बडीशतावर ।
सहस्रवीर्या–नीली दूब और बडीशतावर ।
सेव्य–खस और लामज्जक ।
उदुम्बर–गूलर और ताँबा ।
ऐन्द्री–इन्द्रायन और इन्द्रवारुणी ।
कटम्भरा–कुटकी और अरलू ।
क्षार–जवाखार और सज्जीखार ।
गण्डीर–गडारीशाक और मँजीठ ।
गन्धारी–धमासा और गंधपलाशी ।
चित्रा–इन्द्रायन और बडी दन्ती ।
तुण्डिकेरी–कपास और कुदुरू ।
धारा–गिलोय और क्षीरकाकोली ।
बालपत्र–खैर और जवासा ।
वारि–नेत्रवाला और पानी ।
अंगारवल्ली–भारगी और घुँघुची ।
अमृणाल–लामज्जक और खस ।
कुण्डली–गिलोय और कचनार ।
गन्धफली–प्रियंगु और चम्पेकी कली ।
दीर्घमूल–सेमल और शालिपर्णी ।
पिच्छिल–जवासा और सीसम ।
पुष्पफल–कैथा और पेठा ।
पोटगल–नरसल और कास ।
यवफल–इन्द्रजौ और बाँस ।
देवी–मूर्वा और स्पृक्का ।
विश्वा–सोंठ और अतीस ।
शीतशिव–सेंधा और सौंफ ।
कर्कश–कबीला और कसौंदी ।
चर्मकषा–सातला और मांसरोहिणी ।
नन्दीवृक्ष–बेलिया पीपल और तुन ।
पय–दूध और पानी ।
रुहा–दूब और मांसरोहिणी ।
गिरी–कटेरी और पटुआ ।

अथ त्र्यर्थानि नामानि ।

क्रमुकः–पूगः, तूदः, पट्टिकालोध्रश्च । क्षुरकः–कोकिलाक्षः, गोक्षुरः, तिलकनामपुष्पविशेषश्च । प्रियकः–प्रियङ्गुः, कदम्बः, असनश्च । पृथ्वीका–कालाजाजी, बृहदेला, हिङ्गुपत्री च । भूतीकम्–भूनिम्बं, कत्तृणं, भूस्तृणञ्च । सोमवल्कः–कट्फलः, श्वेतखादिरः, घृतपूर्णकरञ्जश्च । सौगन्धिकम्–कह्लारं, कत्तृणं, गन्धकञ्च । भृङ्गः–भृङ्गराजः, त्वग्, भ्रमरश्च । अरिष्टः–निम्बः, रसोनं, मद्यञ्च । मर्कटी–कपिकच्छुः, अपामार्गः, करञ्जी च । अम्बष्ठा–पाठा, चांगेरी, मोचिका च । कृष्णा–पिप्पली, कालाजाजी, नीली च । क्षीरिणी–दुग्धिका, क्षीरकाकोली, श्वेतसारिवा च । मधुपर्णी–गुडूची, गम्भारी, नीला च । मण्डूकपर्णः–श्योनाकः, मंजिष्ठा, ब्रह्ममाण्डूकी च । श्रीपर्णी–गम्भारी, गणिकारिका, कट्फलं च । अमृता–गुडूची, हरीतकी, धात्री च । अनन्ता–दुरालभा, नीलदूर्वा, लांगली च । ऋष्यप्रोक्ता–अतिबला, महाशतावरी, कपिकच्छुश्च । कृष्णवृन्ता–पाटली, गम्भारी, माषपर्णी च । जीवन्ती–गुडूची, शाकविशेषः, वन्दा च । लता–सारिवाः, प्रियंगुः, ज्योतिष्मती च । समु-

द्रान्ता-दुरालभा, कार्पासी, पृस्का च। हैमवती-हरीतकी, श्वेतवचा, पीतदुग्धसेहुण्डश्च, (यस्य मूलं चोक इति प्रसिद्धम्)। अव्यथा-हरीतकी, महाश्रावणी, पद्मचारिणी च। षड्ग्रन्था-वचा, गन्धपलाशी, करञ्जी च। वरदा-सुवर्चला, (हुर हुर इति लोके) अश्वगन्धा, वाराही (गेठीति लोके)। इक्षुगन्धा-काशः, कोकिलाक्षः, गोक्षुरः, क्षीरविदारी च। कालस्कन्धः-तमालः, तिन्दुकं, कालखदिरश्च। महौषधम्-शुण्ठी, रसोनः, विषश्च। मधु-क्षौद्रं, पुष्परसः मद्यश्च। कपीतनः-आम्रातकः, शिरीषः, गर्दभाण्डश्च। मदनः-पिण्डीतकः, धत्तूरः, सिक्थकश्च। शतपर्वा-वंशः, दूर्वा, वचा च। सहस्रवेधी-अम्लवेतसः, मृगमदः, हिंगु च। ताम्रपुष्पी-धातकी, पाटला, श्यामात्रिवृच्च। सदापुष्पा-श्वेतार्कः, रक्तार्कः, कुन्दश्च। सुरभी-सल्लकी, मुरा, एलवालुकं च। लक्ष्मीः-ऋद्धिः, वृद्धिः, शमी च। कालानुसार्यम्-कालीयकं, तगरं, शैलेयश्च। चाम्पेयः-चम्पकः, नागकेसरः, पद्मकेसरश्च। नादेयी-गणिकारिका, जलजम्बुः, जलवेतसी च। पाक्यम्-विडम्, सौवर्चलम्, यवक्षारश्च। विशल्या-लांगली, गुडूची, लघुदन्ती च। इन्द्रद्रुः-ककुभः, देवदारुः, कुटजश्च। काश्मीरम्-कुंकुमम्, पुष्करमूलम्, गम्भारी च। काश्मीरी-गुन्द्रः, पटेरकः, शरश्च। गुन्द्रः-प्रियंगुः, भद्रम्, मुस्तकश्च। चुक्रम्, पत्राम्ला, अम्लवेतसम्, वृक्षाम्लश्च। पारिभद्रः-निम्बः, पारिजातः, देवदारु च। पीतदारु-हरिद्रा, देवदारु, सरलश्च। वीरः-ककुभः, वीरणं काकोली च। वीरतरुः-ककुभः, वीरणम्, शरश्च। मयूरः-अपामार्गः अजमोदा, तुत्थश्च। रक्तसारः-रक्तचन्दनं, पतंगं, खदिरश्च। वदरा-सुवर्चला, अश्वगन्धा, वाराही च। वसिरः-रक्तापामार्गः, गजपिप्पली, समुद्रलवणश्च। सौवीरम्-अञ्जनभेदः, बदरम्, सन्धानभेदश्च। वञ्जुलः-अशोकः, वेतसः, तिनिशश्च। शिला-मनःशिला, शिलाजतु, गैरिकश्च। सोमवल्ली-बाकुची, गुडूची, ब्राह्मी च। अक्षीवः-शोभाञ्जनः, महानिम्बः, समुद्रलवणश्च। कारवी-कालाजाजी, शताह्वा, अजमोदा च। धामार्गवः-रक्तापामार्गः, राजकोशातकी, महाकोशातकी च। दुःस्पर्शः-यवासः, कपिकच्छूः, कण्टकारी च। पलाशः-किंशुकः, गन्धपलाशी, पत्रश्च। कालमेषी-मञ्जिष्ठा, बाकुची, श्यामात्रिवृच्च। पलङ्कषा-गुग्गुलुः, गोक्षुरः, लाक्षा च। मधुरसा-द्राक्षा, मूर्वा, गम्भारी च। रसा-रास्ना, शल्लकी, पाठा च। श्रेयसी-हरीतकी, रास्ना, गजपिप्पली च। लोहम्-अयः, कांस्यम्, अगुरु च। सहा--मुद्गपर्णी, बलाभेदः, (ककही इति लोके) शतपत्री (सेवती गुलाब इति लोके)। रास्ना-नाकुली, नीलपुष्पः, सिन्दुवारश्च।

तीन अर्थवाले शब्द।

क्रमुक-सुपारी, सहतूत और पठानीलोध।
क्षुरक-तालमखाना, गोखरू और तिलकपुष्प।
प्रियक-प्रियगु, कदम और विजेसार।
पृथ्वीका-कलौंजी, वडीइलायची और हिंगुपत्री।
भूतीक-चिरायता, कत्तृण और मूतिक।
क्षीमवल्क-कायफल, सफेद खैर और घियाकरज।
सौगन्धिक-लाल कमल, कत्तृण और गन्धक।
भृग-भाँगरा, तज और भौंरा।
अरिष्ट-नीम, लहसुन और मद्य।
मर्कटी-कौंछ, चिरचिटा और करज।
अम्बष्ठा-पाढ, चूका और मोइया।
कृष्णा-पीपल, कलौंजी और नील।
क्षीरिणी-दुद्धी, क्षीरकाकोली और सफेद सरिवन।
मधुपर्णी-गिलोय, कम्भारी और नील।
मण्डूकपर्णी-अरलू, मँजीठ और ब्रह्ममण्डूकी।

श्रीपर्णी–कभारी, गनियारी और कट्फल।
अमृता–गिलोय, हरड और आँवले।
अनन्ता–धमासा, नीलीदूब, और कलियारी।
ऋष्यप्रोक्ता–अतिबला, बडी शतावर और कौंछ।
कृष्णवृन्ता–पाढल, कभारी और मसिवन।
जीवन्ती–गिलोय, जीवन्तीशाक और बांदा।
लता–सरिवन, प्रियगु और मालकागनी।
समुद्रान्ता–धमासा, कपास और स्पृक्का।
हैमवती–हरड, सफेद वच और पीले दूधकी कटेरी।
अव्यथा–हरड, मुडी और सरोजनी।
षड्ग्रन्था–वच, गधपलासी और करजी।
वरदा–हुलहुल, असगध और बाराहीकद।
इक्षुगन्धा–कॉस, तालमखाने और गोखरु।
कालस्कन्ध–श्यामतमाल, तेंदू और कालखैर।
महौषध–सोंठ, लहसुन और विष।
मधु–सहत, फूलका रस और मदिरा।
कपीतन–अम्बाडा, सिरसवृक्ष और गर्दभाड।
मदन–मैनफल, धत्तूरा और मोम।
शतपर्वा–बॉस, दूब और वच।
सहस्रवेधी–अमलवेत, कस्तूरी और हींग।
ताम्रपुष्पी–धायके फूल, पाढल और निशोत।
सदापुष्प–सफेद आक, लाल आक और कुद।
सुरभी–सालई, मुरा और एलुआ।
लक्ष्मी–ऋद्धि, वृद्धि और छोंकरा।
कालानुसार्य–पीला चन्दन, तगर और छडीला।
चाम्पेय–चपा, नागकेशर और कमलकेशर।
नादेयी–गनियारी, जलजामुन और जलवेत।
पाक्य–विडनोंन, कालानोन और जवाखार।
विशल्या–कलियारी, गिलोय और छोटी दती।
इन्द्रद्रु–कोह, देवदारु और कुडा।
काश्मीर–केशर, पोहकरमूल और कभारी।
काश्मीर–काश्मीरी गुन्द्र, पटेरा और सरपता।
गुन्द्रा–प्रियगु, भद्रमोथा और मोथा।
चुक्र–चूका, अमलवेत और वृक्षाम्ल।
पारिभद्र–नीम, फरहद और देवदारु।
पीतदारु–हलदी, देवदारु और सरल।
वीर–कोह, वीरणतृण और काकोली।
वीरतरु–कोह, वीरणतृण और शरपता।
मयूर–चिरचिटा, अजमोदा और लीलाथोथा।

रक्तसार–लालचदन, पतग और खैर।
वरदा–हुलहुल, असगध और वाराहीकंद।
खदिर–लालचिरचिटा, गजपीपल और समुद्रलवण।
सौवीर–सफेद सुरमा, बेर और काँजीका भेद।
वजुल–अशोक, अमलवेत और तिनिश।
शिला–मैनसिल, सिलाजीत और गेरू।
सोमवल्ली–बावची, गिलोय और ब्राह्मी।
अक्षीव–सहिजना, बकायन और समुद्रलवण।
कारवी–कलौंजी, शतावर और अजमोद।
अपामार्ग–लालऔंगा, गलकातोरई और तोरई।
दुःस्पर्श–जवासा, कौंछ और कटेरी।
पलाश–ढाक, गधपलाशी और पत्रज।
कालमेषी–मंजीठ बावची और कालीनिशोत।
पलकषा–गूगल गोखरू और लाख।
मधुरसा–दाख, मूर्वा और कभारी।
रसा–रास्ना, सालई और पाढा।
श्रेयसी–हरड, रास्ना और गजपीपल।
लोह–लोहा, काँसी और अगर।
सहा–मुगवन, ककही और सेवती।
रास्ना–नाकुली, नील और सँभालू।

अथानेकार्थवाचिशब्दाः।

अक्षशब्दः स्मृतोऽष्टासु सौवर्चलविभीतके॥ कर्षपद्माक्षरुद्राक्षसकटेन्द्रियपाशके॥ ॥ १ ॥ काकाख्यः काकमाची च काकोली काकणन्तिका॥ काकजङ्घा काकनासा काकोदुम्बरिकापि च॥ सप्तस्वर्थेषु कथितः काकशब्दो विचक्षणैः ॥ २ ॥ सर्पद्विरदमेषेषु सीसके नागकेसरे॥ नागवल्ल्यां नागदन्त्यां नागशब्दः प्रयुज्यते॥ ॥ ३ ॥ मांसे द्रवे चेक्षुरसे पारदे मधुरादिषु ॥ बालरोगे विषे नीरे रसो नवसु वर्त्तते ॥ ४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे अनेकार्थवर्गः समाप्तः।

अनेक अर्थवाले शब्द।

अक्ष–सचरनोन, बहेडा, एककर्ष, पद्माक्ष, रुद्राक्ष, गाडी, इन्द्रिय और फांसे, इसप्रकार अक्षशब्द आठ अर्थवाला कहाहै ॥ १ ॥

काक–मकोय, काकोली, लाल घुँघुची, काकजघा,

काकनासा, कठूमर और कौआपक्षी ये सात अर्थ काकशब्दके कहेहैं ॥ २ ॥

नाग—सर्प, हाथी, मेढा, शीशा, नागकेसर, नागरवेल पान और नागदन्ती ये नागशब्दके अर्थ हैं ॥ ३ ॥

रस—मासद्रव, ईखका रस, पारा, मधुर, आदि छैरस, बालकका एक रोग, विष और जल ये नौ अर्थ रस शब्दके है ॥ ४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पचमप्रकरणे शालिग्राम-वैश्यकृतभाषाटीकायामनेकार्थवर्गः समाप्तः।

अथ मानपरिभाषा।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ॥ अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ १ ॥ चरकस्य मतं वैद्यैराद्यैर्यस्मान्मतं ततः ॥ विहाय सर्वमानानि मागधं मानमुच्यते ॥ २ ॥ त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः ॥ त्रसरेणुस्तु पर्य्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ ॥ ३ ॥ जालान्तरगतैः सूर्य्यकरैर्वंशी विलोक्यते ॥ षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिश्च राजिका ॥ ४ ॥ तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ॥ यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ ५ ॥ षड्भिस्तु रत्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधानकौ ॥ माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ ६ ॥ टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते॥ क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते ॥ ॥ ७ ॥ कोलद्वयन्तु कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका ॥ अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम् ॥ ८ ॥ बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता ॥ करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः ॥ ॥ ९ ॥ उदुम्बरश्च पर्य्यायैः कर्षमेव निगद्यते ॥ स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ १० ॥ शुक्तिभ्याञ्च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ॥ प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ॥ ११ ॥ पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ॥ प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्द्धशरावकः ॥ १२ ॥ अष्टमानश्च स ज्ञेयः कुडवाभ्याञ्च मानिका ॥ शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ ॥ १३ ॥ शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकः ॥ भाजनं कांस्यपात्रं च चतुःषष्टिपलश्च सः ॥ १४ ॥ चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोर्मणः ॥ उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्य्यायसंज्ञितः ॥ १५ ॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः ॥ शूर्पाभ्याञ्च भवेद् द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥ १६ ॥ द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ १७ ॥ पलानां द्विसहस्रश्च भार एकः प्रकीर्त्तितः ॥ तुला पलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १८ ॥ माषटङ्काक्षबिल्वानि कुडवप्रस्थमाढकम् ॥ राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणम् ॥ १९ ॥

मागधपरिभाषायां षड्रत्तिको माषश्चतुर्विंशतिरत्तिकः टंकः षण्णवतिरत्तिकः कर्षः, अयं चरकसम्मतः। सुश्रुतमते तु पञ्चरत्तिको माषः, विंशतिरत्तिकः टंकः, अशीतिरत्तिकः कर्षः। अयमेव कालिङ्गपरिभाषायामपि। यतः तत्राष्टरत्तिको माषो, द्वात्रिंशद्रत्तिकः टंकः, सार्द्धटंकद्वयमितः कर्षः ॥

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः॥ द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ ॥ २० ॥ प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः ॥ मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं

न क्वचित्स्मृतम् ॥ २१ ॥ मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरंगुलम् ॥ विस्तीर्णञ्च तथाच्चञ्च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥ २२ ॥

इति मागधमानम् ॥

तोलके विना कदापि पदार्थोंकी युक्ति नहीं होती, इसकारण प्रयोगोंमें कामोंके लिये यहाँ मान (तोल) कहताहूँ । प्राचीन वैद्योंने चरकके मतको स्वीकार किया है, इसकारण सम्पूर्ण तोलोंको छोडकर चरकके मतानुसार मगधदेशके मागध मानको कहताहूँ ॥ १ ॥ २ ॥

तीस परमाणुका एक त्रसरेणु होताहै और त्रसरेणुका ही पर्याय वंशी है । जाली तथा झरोखोंमें होकर जो सूर्यकी किरणें आतीहैं, उनका नाम वंशी है । छै त्रसरेणु (वंशी) की एक मरीचि होतीहै । छः मरीचिकी एक राई होतीहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

तीन राईकी एक सरसों होतीहै । आठ सरसोंका एक जौ होताहै । चार जौकी एक गुंजा होतीहै । छः गुंजोंका एक मासा होताहै, मासेको हेम और धान्यक कहतेहैं । चार मासेका एक शाण होताहै इस शाणको धरण तथा टङ्क भी कहतेहैं, दो शाणका एक कोल होताहै, क्षुद्रक, वटक और द्रक्षण, ये कोलकेही नाम हैं । दो कोलका एक कर्ष होताहै । पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिंदुक, बिडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुंबर, ये सब कर्षके नाम हैं । दो कर्षका अर्द्धपल होता है, शुक्ति और अष्टमिका, यह अर्द्धपलकेही नाम हैं । दो अर्द्धपलका एक पल होताहै. मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी और बिल्व, ये पलके ही नाम हैं, अन्य भाषाओंमें इसीको पक्का टकाभर कहतेहैं । दो पलकी एक प्रसृति होतीहै, प्रसृत भी प्रसृतिकाही नाम है । दो प्रसृतिकी एक अंजली होतीहै, कुडव, अर्द्ध शराव और अष्टमान, ये अंजलीकेही नाम हैं । दो अंजलीकी एक मानिका होतीहै, शराव और अष्टपल ये मानिकाके ही नाम हैं । दो शरावका एक प्रस्थ होताहै । चार प्रस्थका एक आढक होताहै. भाजन, कांस्यपात्र और चतुःषष्टिपल ये आढककेही नाम हैं । चार आढकका एक द्रोण होताहै कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट और राशि ये द्रोणके ही नाम हैं । दो द्रोणका एक शूर्प होताहै, कुम्भ और चतुःषष्टिशरावक ये शूर्पके ही नाम हैं. दो शूर्पकी एक द्रोणी होतीहै, वाह और गोणी ये द्रोणीके नाम हैं । चार द्रोणीकी खारी होतीहै, ये खारी (४०९६) चार हजार छियानवे पलकी होतीहै । दो हजार (२०००) पलका एक भार होताहै । और सौ (१००) पलकी एक तुला होतीहै, ये सब ग्रन्थोंका निश्चय है ॥ ५-१८ ॥

माष, टङ्क, अक्ष, बिल्व, कुडव, प्रस्थ, आढक, राशि, गोणी और खारि, ये उत्तरोत्तर चौगुनी हैं ॥ १९ ॥

इस मगधदेशकी परिभाषाके अनुसार छः रत्तीका माषा, चौबीस रत्तीका टङ्क और छियानवे रत्तीका कर्ष होताहै, ये चरककी सम्मति है । सुश्रुतके मतसे पांच रत्तीका मासा, बीस रत्तीका टङ्क और अस्सी रत्तीका कर्ष होताहै । कलिङ्ग देशकी परिभाषामें भी अस्सी रत्तीकाही कर्ष होताहै । जिस परिमाषामें आठ रत्तीका मासा होताहै, उसमें बत्तीस रत्तीका टङ्क होताहै और ढाई टकका एक कर्ष होताहै ॥

गुंजासे लेकर कुडवतक द्रवरूप पदार्थोंको, गीले पदार्थोंको और सूखे पदार्थोंको प्रमाणानुसार लेवें । द्रवपदार्थ और गीले पदार्थ प्रस्थपर्यन्त दूने भाग लेवें, क्योंकि सूखे पदार्थोंमें गीले पदार्थोंमें बोझ अधिक होताहै और प्रस्थसे लेकर तुला पर्यन्त दूनी लेनी कहीं नहीं लिखी है । मिट्टीका, लकडीका अथवा लोहेआदिका चार अंगुल चौडा और चार अंगुल ऊँचा जो पात्र (बरतन) हो उनसे कुडवकी माप होतीहै ॥ २०-२२ ॥

इति मागधमान समाप्तम् ।

अथ कालिंगमानम् ।

यतो मन्दाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ ॥ अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते सुज्ञसम्मता ॥ २३ ॥ यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः ॥ यवद्वयेन गुञ्जा स्यात्त्रिगुंञ्जो वल्ल उच्यते ॥ २४ ॥ माषो गुञ्जाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्क्वचित् ॥ चतुर्भिर्माषकैः शाणः स निष्कष्टंक एव च ॥ २५ ॥ गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः ॥ चतुष्कर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ॥ २६ ॥

चतुष्पलैश्च कुडवः प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः॥ स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम् ॥ २७ ॥ प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत् ॥ नाल्पं हन्त्यौषधं व्याधिं यथाम्भोऽल्पं महानलम् ॥ अतिमात्रं च दोषाय शस्योपस्थे बहूदकम् ॥ २८ ॥

इति कालिंगमानपरिभाषा ॥

कलियुगमे मनुष्य मन्द अग्निवाले छोटे शरीरके और हीन शक्तिवाले होतेहै, इसकारण उनके योग्य जो मात्र विद्वानोंने स्वीकृत करीहैं वे अब कहतेहै ॥ २३ ॥

बारह सफेद सरसोंका एक जौ होताहै, दो जौ की एक गुजा (रत्ती) होतीहै, तीन गुजाका एक वल्ल होता है। आठ गुंजाका मासा होताह, कहीं सात गुजाका भी मासा माना है ! चार मासेका शाण होताहै, शाणको टंक और निष्क भी कहतेहैं। छह मासेका गद्याणक होताहै, दश मासेका कर्ष होताहै, चार कर्षका पल होताहै, पलका ही नाम दशशाण है। चार पलका कुडव होताहै। और प्रस्थआदिकी तोल तौ मागध परिभाषाके अनुसारही जानना। मात्राकी मर्यादा नहीं है, इसकारण काल,अग्नि, अवस्था, बल, प्रकृति, दोप और देशविचार कर मात्रा देवै। जिस प्रकार किंचित् जल अधिक अग्निको शांत नहीं करसक्ता, तिसीप्रकार थोडी औषधि बडी व्याधिको नष्ट नहीं करसक्ती। और जैसे खेतमे उत्पन्न हुए धान्योंपर अधिक पानी पडै तौ हानि करताहै, तिसीप्रकार अल्प रोगमे अधिक औषधि देवै तौ भी हानि करती है ॥२४-२८॥

इति मानपरिभाषा समाप्ता।

अथौषधसंज्ञाविधानम्।

स्वरसश्च तथा कल्कः क्वाथश्च हिमफाण्टकौ ॥ ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ २९ ॥

स्वरस, कल्क, क्काथ, हिम और फांट, इसभांति औषधियोके पाच प्रकारके कषाय (क्काथ) होतेहैं। इनमे स्वरससे कल्क,कल्कसे क्काथ, क्काथसे हिम और हिमसे फांट हलका है ॥ २९ ॥

स्वरसविधिः।

अहतात्तत्क्षणाकृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवेत् ॥ वस्त्रनिष्पीडितो यश्च स्वरसो रस उच्यते ॥ ३० ॥

अहताच्छीताग्निकीटादिभिरनुपहतात्क्षुण्णात्संपिष्टात् ॥

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तश्च द्विगुणे जले ॥ अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः ॥ ३१ ॥

चूर्णितं चूर्णीकृतम् ॥

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसंभवे॥ जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशिष्टं च गृह्यते ॥ ३२ ॥ स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्द्धं प्रयोजयेत् ॥ निशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत् ॥ ३३ ॥

निशोषितं निशायामुषितम् ॥

सितामधुगुडक्षाराञ्जीरकं लवणं तथा ॥ घृतं तैलश्च चूर्णादीन्कोलमात्रान्रसे क्षिपेत् ॥ ३४ ॥

कोलः टंकद्वयम् ॥

शीतसे, अग्निसे, अथवा कीडे आदिसे खराब नहीं हुई गीली औषधि कूट पीसकर उसको कपडेसे छान कर रस निकाल लेवै उसको स्वरस कहतेहैं। अथवा सोलह तोले गीली औषधिका चूर्ण कर उसको द्विगुने जलमे डालकर एक दिन राततक पडा रहने देवै, उसमेसे जो रस निकलै वह भी उत्तम स्वरस कहाताहै। गीली औषधि नहीं मिलै तौ रूखी औषधि लेकर उसका चूर्ण करै और उसमें अठगुना जल डाल कर औटावै, जब चौथा भाग शेष रहै तब उतारले इसको भी स्वरस कहते हैं। पहिला स्वरस भारी है इससे उसकी मात्रा अर्द्धपल (दो तोले) की है। और दूसरे तथा तीसरे प्रकारका अर्थात् रात्रिमे भिजोकर बनायेहुए और अग्निसे औटाकर बनायेहुए स्वरसकी मात्रा एकपल (चार तोले) की है। इस स्वरसमे मिश्री, सहत, गुड, खार, जीरा, लवण, घी, तेल और चूण आदि डालै तौ एक कोल डालैं ॥ ३०-३४ ॥

तण्डुल-स्वरसविधिः ।

कण्डितं तंडुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत् ॥ भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु ॥ ३५ ॥

एक पल (४ तोले) छुकलेरहित चावलोको अठगुने पानीमें भिजोकर कोमल करलेवे, पश्चात् वह स्वरसरूप पानी सर्व कर्मोंमें उपयोग करे ॥ ३५ ॥

हिमनिर्माणविधिः ।

क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक्षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम् ॥ निशोषितं हिमः स स्यात्तथा शीतकषायकः ॥ तस्य मानं मतं पाने पलद्वयमितं बुधैः ॥ ३६ ॥

क्षुण्णं चूर्णीकृतम् ॥

एक पल औषधिको भलेप्रकार कूट पीसकर छहगुने गरम जलमें डालै और रात्रिभर धरा रहनेदे पश्चात् प्रातःकाल होनेपर छानलेवै उसको हिम अथवा शीतकषाय कहते हैं। विद्वानोने इसकी मात्रा दो पलकी कहीहै ॥ ३६ ॥

मन्थनिर्माणविधिः ।

जले चतुष्पले शीते क्षुण्णं द्रव्यपलं क्षिपेत् ॥ मृत्पात्रे मन्थयेत्सम्यक्तस्माच्च द्विपलं पिबेत् ॥ ३७ ॥

क्षुण्णं चूर्णीकृतम् । मन्थयेन्मथ्नीयात् ॥

शीतल जलमें एकपल औषधिका चूर्ण भिगो देवे जब भीग जावे, तब इसको मट्टीके पात्रमें रईसे मथलेवै इसको मथ कहते हैं. इसकी मात्रा दोपलकी जाननी ॥ ३७ ॥

फाण्टनिर्माणविधिः ।

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् ॥ मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥३८॥ स स्याच्चूर्णद्रवः फांटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् ॥ क्षौद्रं सितागुडादीस्तु कर्षमात्रान्विनिक्षिपेत् ॥ ३९ ॥

क्षुण्णे चूर्णीकृते स चूर्णद्रवः फाण्टः स्यात् इति अन्वयः ॥

भलीभाँति कियाहुआ औषधिका चूर्ण एकपल मट्टीके पात्रमें रख उसमें चौगुना गरम जल डालकर भिजोदेवे और फिर कपडेमें छानलेवे इसको फाण्ट कहतेहैं। फाटकी मात्रा दो पलकी है । इसमें शहत, मिश्री, गुड आदि डाले तो एक कर्ष डालना चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

कल्कविधिः ।

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् ॥ प्रक्षिप्य गालयेद्वस्त्रे तन्मानं कर्षसम्मितम् ॥ ४० ॥ कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया ॥ सितां गुडं समं दद्याद् द्रवो देयश्चतुर्गुणः ॥ ४१ ॥

गीली औषधिको सिलपर पीसकर और सूखी औषधि होय तौ उसमें पानी डालके पीसकर छान लेवे, उसको कल्क कहतेहैं। प्रक्षेप और आवाप ये कल्कके नाम हैं ॥ इसकी मात्रा एक कर्षकी है । कल्कमें मधु, घी अथवा तेल डालना होय तो दूना डाले । मिश्री अथवा गुड डालना होय तो कल्कके सदृश ही डाले और कोई द्रव डालना होय तौ चौगुना डाले ॥ ४० ॥ ४१ ॥

चूर्णविधिः ।

अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ॥ तत्स्याच्चूर्णरजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसम्मिता ॥ ४२ ॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा मता ॥ चूर्णेषु भर्जितं हिंगु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत् ॥ ४३ ॥ लिहच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः ॥ पिबेच्चतुर्गुणैरेव चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ ॥ ४४ ॥ चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम् ॥ पित्तवातकफातङ्के त्रिद्व्येकपलमाहरेत् ॥ ४५ ॥ यथा तैलं जले प्राप्तं क्षणेनैव विसर्पति ॥ अनुपानबलादंगे तथा सर्पति भेषजम् ॥ ४६ ॥

उत्तम सूखीहुई औषधिको भलीभाति पीसकर वस्त्रसे छानलेवै, उसको चूर्ण कहतेहैं, रज और क्षोद भी चूर्णके ही नाम हैं। चूर्णकी मात्रा एक कर्ष (एक तोले) की है । चूर्णमें गुड डालना होय तो चूर्णके

बराबर ही डाले और बूरा डालना हो तो दूनी डाले चूर्णमें हीग डालना होय तौ भूनकर डालै कि, जिसमें उत्क्लेद (जी मिचलना) न हो। घी आदि पतली वस्तुओंमें चूर्ण चाटना होय तौ वह वस्तु दूनी डाल। और घोलकर पिये तौ द्रवपदार्थ चूर्णसे चौगुना लेवे। चूर्ण, अवलेह, गोली और कल्क, इनके ऊपर जो गरम जलआदि पिये तौ पित्तरोगमे एक पल, वायुरोगमें दो पल और कफ रोगमे तीन पल पिये। जिस प्रकार पानीमे पडाहुआ तेल क्षणमात्रमे फैल जाताहै, तैसेही अनुपानके बलसे औषधि सम्पूर्ण अंगोमे फैल जातीहै॥ ४२–४६॥

भावनाविधिः।

द्रवेण यावता सम्यक्चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत्॥ भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः॥ ४७॥

जितने द्रवपदार्थमें भलीभाँति चूर्ण डूबजाय, उतने द्रवसे चूर्णकी भावना देवै, उत्तम वैद्योंने भावनाका यही प्रमाण कहाहै॥ ४७॥

पुटपाकविधिः।

पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः॥ अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया॥ ॥४८॥ पुटपाकस्य पाकोऽयं लेपस्याङ्गारवर्णता॥लेपश्च द्व्यंगुलं स्थूलं कुर्य्याद् द्व्यंगुलमात्रकम्॥४९॥ काश्मरीवटजम्ब्वादिपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम्॥ पलमात्रो रसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत्॥ कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाः कोलमिता बुधैः॥५०॥

पुटपाकके कल्कका स्वरस लिया जाताहै, इस कारण पुटपाककी विधि कहताहूँ। औषधियोंका कल्क करके उसके ऊपर काश्मरी (कभारी) वड अथवा जामुन आदिके पत्तोको भले प्रकार लपेट देवै और उसके ऊपर दो अंगुल मट्टीका लेपकर अग्निमे छोड देवै, जब दहकते अंगारेकी सदृश वर्णवाला होजाय तब निकाल लेवै ये पुटपाककी रीति है। पश्चात् मट्टी और पत्तोको दूर करके कल्कके रसको निचोड लेवै। इस रसकी मात्रा एक पलकी है और उसमें शहत डालना होय तो एक कर्ष (तोला) डाले इस रसमें अन्य कोई कल्क, चूर्ण अथवा द्रवपदार्थ आदि डालना होय तो एक कोल (आठ मासे) डाले॥ ४८–५०॥

उष्णोदकविधिः।

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्द्धकेन वा॥ अथ वा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं भवेत्॥ ॥ ५१॥ श्लेष्मामवातमेदोघ्नं वस्तिशोधनदीपनम्॥कासश्वासज्वरान्हन्ति पीतमुष्णोदकं निशि॥ ५२॥

गरम करनेपर पानीका अष्टमांश, चतुर्थांश अथवा अर्द्धभाग शेष रहै तब पानीको गरम हुआ जाने, अथवा भले प्रकार गरम होनेको ही गरम हुआ जाने। रात्रिमें गरम पानी पिये तौ कफ, आमवात, मेद, खासी, श्वास तथा ज्वर नष्ट होताहै, वस्तिशोधक और अग्निप्रदीपक है॥ ५१॥ ५२॥

क्षीरपाकविधिः।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम्॥ क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत्॥ ५३॥

द्रव्यसे दूध आठगुना लेवे और उसमे जल दूधसे चौगुना डाले पश्चात् ये सब औटावे जब केवल दूध ही शेप रहै तब उतार ले, इसको पिये तो आमसे उत्पन्न हुआ शूल नष्ट होताहै॥ ५३॥

क्काथविधिः।

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णद्रव्यपले क्षिपेत्॥ मृत्पात्रे क्काथयेद्ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम्॥ ॥ ५४॥ कर्षादौ तु पलं यावद्दद्यात्षोडशिकं जलम्॥ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत्॥ चतुर्गुणमतश्चोर्द्ध्वं यावत्प्रस्थादिकं जलम्॥ ५५॥ षोडशिकं षोडशगुणम्॥

तज्जलं पाययेद्धीमान्कोष्णं मृद्वग्निसाधितम्॥ शृतः क्काथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते॥ ५६॥

भली भाँति कुटीहुई एकपल औषधिमें सोलहगुना जल डालकर मट्टीके पात्रमे पकावे, जब आठवां भाग

---

१ कफके रोगोमे अष्टमांश, वातरोगोंमें चतुर्थांश और पित्तके रोगोंमें अर्द्धावशेष जल ग्रहण करे

शेष रहे तब उतार लेवे, उसको क्वाथ कहते हैं । क्वाथ करना हो तो एक तोलेसे चार तोलेतक औषधिमें सोलह-गुना पानी डाले, इससे ऊपर सोलह तोलेतक औषधिमें आठगुना पानी डाले और इसके पीछे सेरभर तोलेतक औषधिमें चौगुना जल डालकर धीमी २ आंचसे पकावे और अष्टमांश शेष रहनेपर किञ्चित् गरम हो उस समय उसको पीवे । शृत, क्वाथ और निर्यूह ये क्वाथके नाम हैं ॥ ५८–५६ ॥

क्वाथपानमात्रा ।

मात्रोत्तमा पलेन स्यात्त्रिभिरक्षैस्तु मध्यमा ॥ जघन्या च पलार्द्धेन स्नेहक्वाथौषधेषु च ॥ ५७ ॥

तन्त्रान्तरे ।

क्वाथ्यद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते ॥ चतुर्भागावशिष्टन्तु पेयं पलचतुष्टयम् ॥ ॥ ५८ ॥ दीप्तानलं महाकायं पाययेदञ्जलि जलम् ॥ अन्ये त्वर्द्धं परित्यज्य प्रसृतिं तु चिकित्सकाः ॥ ५९ ॥ क्वाथत्यागमनिच्छातस्त्वष्टभागावशेषितम् ॥ पारम्पर्य्योपदेशेन वृद्धवैद्यः पलद्वयम् ॥ ६० ॥ अष्टभागावशेषितस्य चतुर्भागावशिष्टापेक्षया गुरुत्वाद्दीप्तानलं महाकायं पलद्वयं पाययेत् । मध्यमाग्निमल्पकायं पलमात्रं पाययेत् । "मात्रोत्तमा पलेन स्यात्" इत्यादिवचनात् ॥

क्वाथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ॥ वातपित्तकफातङ्के विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ६१ ॥ जीरकं गुग्गुलं क्षारं लवणं च शिलाजतु ॥ हिङ्गु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत् ॥ ६२ ॥ क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यद्द्रवं तथा ॥ कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत्कर्षसम्मितम् ॥ ॥ ६३ ॥ तत्रोपविश्य विश्रान्तः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ औषधं हेमरजतमृद्भाजनपरिस्थितम् ॥ ६४ ॥ पिबेत्प्रसन्नहृदयः पीत्वा पात्रमधोमुखम् ॥ निधायाचम्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ ६५ ॥

क्वाथ (५७) [illegible] (चार तोले) [illegible] (आठ तोले) [illegible] तथा मध्य अग्निवाले मनुष्यको भी एक पलकी ही मात्रा उत्तम है, इस वचनके अनुसार चार तोले ही पीवे । क्वाथमें चूर्ण डालना हो तो वातरोगमें चौथा भाग, पित्तरोगमें आठवां भाग और कफरोगमें सोलहवां भाग डाले । शहत डालना हो तो कफके रोगमें चौथा भाग, पित्तरोगमें आठवां भाग और वातरोगमें सोलहवां भाग डाले । जीरा, गूगल, खार, नोन, शिलाजीत हींग, अथवा सोंठ, मिर्च, पीपल डालनी हो तो चार चार मासे डाले । दूध, घी, गुड़, तेल, मूत्र और कोई द्रवपदार्थ, कल्क अथवा चूर्ण आदिमें डालना हो तो एक तोला डाले । भली भाँति बैठ विश्राम लेकर मुख, हृदय तथा नेत्रोंको प्रसन्न करके सुवर्णके, चाँदीके, अथवा मट्टीके पात्रमें भरा हुआ क्वाथ पिये, पश्चात् उस पात्रको उलटा करके रखदेवे, फिर जलसे कुल्ले करके ताम्बूल आदि मुखशोधक पदार्थ खाय ॥ ५७–६५ ॥

अवलेहविधिः ।

क्वाथादेर्यत्पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया ॥

सोऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ॥ ६६ ॥ सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः ॥ द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ ६७ ॥ सुपक्के तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहेऽप्सु मज्जनम् ॥ स्थिरत्वं पीडिते मुद्रा गन्धवर्णरसोद्भवः॥ ॥ ६८ ॥ दुग्धमिक्षुरसं यूषं पञ्चमूलकषायजम् ॥ वासाक्वाथं यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥ ६९ ॥

क्वाथ आदिको फिर पकाकर जो गाढा होजाय उसको रसक्रिया, अवलेह और लेह कहते हैं। अवलेहकी मात्रा एक पलकी करे। अवलेहमे चीनी (बूरा) डालना हो तो चूर्णसे चौगुना, गुड डालना हो तो चूर्णसे दूना और द्रवपदार्थ मिलाना होय तो चूर्णसे चौगुना डालै, यही सर्वत्र निश्चय है। अवलेहमे जब चासनीके सदृश तार निकलने लगे, पानीमे डालनेसे डूबजाय, कठिन होजाय, अगुलीके दबानेसे अगुलीकी रेखा उठआवे और गध, वर्ण तथा रस अपूर्व होजाय, उस अवलेहको भलीभाँति पका हुआ जाने। अवलेहके ऊपर दूध, ईखका रस, पंचमूलके कषायका यूष और अडूसेका क्वाथ इनमेसे यथायोग्य अनुपान देवे ॥ ६६–६९ ॥

गुटिकानिर्माणविधिः।

वटका अथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी॥ मोदको वटिका पिण्डी गुडो वर्तिस्तथोच्यते ॥ ७० ॥ लेहवत्साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्कराऽथ वा ॥ गुग्गुलुर्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी ॥ ७१ ॥

तत्र वह्निसिद्धे गुडादौ ॥

कुर्यादवह्निसिद्धेन क्वचिद्गुग्गुलुना वटीः॥ द्रवेण मधुना वापि गुटिकां कारयेद्बुधः॥ ॥ ७२ ॥ सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः ॥ चूर्णे चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ॥ ७३ ॥

तत्समं चूर्णसमम् ॥

द्रवं तु द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः ७४

द्रवं द्रवरूपं द्रव्यम्।

कर्षप्रमाणं तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यते।

बलमिति कालादेरपि उपलक्षणम् ॥

अब गुटिका बनानेकी विधि कहते हैं। गुटिका (गोली) वटी (वडी) मोदक (लड्डू) वटिका (बडे) पिंडी (मुठिया) गुड (गोला) और वर्ति (बत्ती) ये गोलियोंके ही प्रकार है। ये अग्निपर अवलेहके सदृश बनाई जाती हैं। इसमे गुड अथवा शर्करा (बूरा) का पाक करके औषधिका चूर्ण डालकर उसकी गोली बनावे। किसी समय विद्वान् विना पाकके ही गूगलसे, मधुसे, अथवा अन्य द्रव पदार्थसे भी गोली बनाते है। बूराकी गोली बनानी होय तो चूर्णसे चौगुना बूरा लेवे गुडकी बनानी होय तो गुड चूर्णसे दूना भाग लेवे और गूगलसे अथवा मधसे गोली बनानी होय तो चूर्णके सदृश ही गूगल और मधु लेवे। अन्य किसी द्रवपदार्थसे गोलिये बनानी हो तो उत्तम वैद्य चूर्णसे दुगुना द्रवपदार्थ लेवे। इन गोलियोकी मात्रा एक तोलेकी है, परन्तु इसमे बल और समय आदिको देखना चाहिये ॥ ७०–७४ ॥

घृततैलविधिः।

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव च॥ चतुर्गुणद्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ ७५ ॥

मात्रा पलोन्मिता भक्षणाय ॥

निक्षिप्य क्वाथयेत्तोयं क्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ॥ पादशिष्टं गृहीत्वा तु स्नेहं तेनैव साधयेत् ॥ ७६ ॥ चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम्॥ मृद्वादिक्वाथ्यसंघाते दद्यादष्टगुणं पयः ॥ अत्यन्तकठिने द्रव्ये नीरं षोडशिकं मतम् ॥ ७७ ॥

मृदुद्रव्ये आर्द्रद्रव्ये गुडूच्यादौ। कठिने शुष्कद्रव्ये शुण्ठ्यादौ। अत्यन्तकठिने चिरशुष्के देवदार्वादौ ॥

कर्षादितः पलं यावत्क्षिपेत्षोडशिकं जलम्॥ तदूर्ध्वं कुडवं यावद्भवेदष्टगुणं पयः ॥ प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारीं यावच्चतुर्गुणम् ॥ ७८ ॥

पूर्वं चतुर्गुणं मृदुद्रव्य इत्यादिना क्वाथ्यद्रव्यगतमृदुत्वादिगुणभेदेन जलगतपरिमाणमुक्तम् । इदानीं केचिदाचार्याः कर्षादितः पलं यावदित्यादिवचनेन क्वाथ्यद्रव्यगतपरिमाणभेदेन जलगतपरिमाणं मन्यन्ते॥

अम्बुक्वाथरसैर्यत्र पृथक्स्नेहस्य साधनम् ॥ कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ ७९ ॥

अस्यायमर्थः । अम्बुना स्नेहसाधने कल्कं स्नेहस्य चतुर्थांशं दद्यात । क्वाथेन स्नेहसाधने स्नेहस्य षष्ठभागं कल्कं दद्यात् । स्वरसैः स्नेहसाधने स्नेहस्य अष्टमभागं कल्कं दद्यात्॥

पुनर्विशेषमाह ।

दुग्धे दधिरसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः ॥ कल्काच्च सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥ ८० ॥

कल्कात्, कल्कद्रव्यात् । चतुर्गुणं तोयं पेषणार्थम् ।

द्रवाणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि ॥ तत्र स्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ८१ ॥

अस्यायमर्थः । यत्र स्नेहेषु आदीनि पञ्चद्रवाणि दुग्धदधिस्वरसतक्रकल्कोपयुक्तजलानि प्रत्येकं स्नेहसमानि बोद्धव्यानि। यथापूर्वं दुग्धदधिस्वरसतक्रं समुदितं स्नेहाच्चतुर्गुणं भवति ॥

द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि ॥ तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम् ॥ ८२ ॥

क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रोदितः क्वचित् ॥ क्वाथ्यद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते ॥ ८३ ॥ कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे ॥ ८४ ॥ केवले द्रवे क्वाथतरस्मिन्स्वरसादिरूपे ॥ पुष्पकल्कस्तु य स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम्॥ स्नेहात्स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते ॥ ॥ ८५ ॥ वर्त्तिवत्स्नेहकल्कः स्याद्यदाङ्गुल्या विवर्त्तितः ॥ शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ ८६ ॥ यदा फेनोद्गमस्तैले फेनशान्तिश्च सर्पिषि ॥ वर्णगन्धरसोत्पत्तिः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा॥८७॥ स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ॥ ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् ॥८८॥ मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले ॥ ईषत्कठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत्खरः ॥ ८९ ॥ तदूर्द्ध्वं दग्धपाकः स्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः ॥ आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमान्द्यकरो गुरुः॥९०॥ नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु ॥ अभ्यङ्गार्थः खरः प्रोक्तो युञ्ज्यादेवं यथोचितम् ॥ ९१ ॥ घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नैकवासरे ॥ प्रकुर्वन्त्युषितास्त्वेते विशेषाद्गुणसञ्चयम् ॥ ९२ ॥

जो कल्क कियाहो उससे चौगुना घी अथवा तेल उसमें मिलाकर घृत अथवा तेलसे चौगुने द्रवपदार्थमे पकावे, द्रवपदार्थके जलजानेपर घी अथवा तेलही शेष रहै; तब निचोड लेवे । खानेके लिये इस तेल अथवा घीकी मात्रा एक पल (चारतोले) की है ।। अथवा क्वाथ करनेके चूर्णमें उससे चौगुना पानी डालकर पकावै, जब चौथा भाग जल शेष रहै तब उसमे घी अथवा तेल डालकर सम्पूर्ण पानी जल जानेतक उसको पकावे और फिर उतार लेवे । यहाँ जो चौगुना पानी डालना कहाहै वह गिलोय आदि कोमल पदार्थोमे जानना । सोंठ आदि सूखे पदार्थ होय तो अठगुना पानी डाले, सूखे और गीले मिले हों तो भी अठगुना पानी डालै और देवदारु आदि बहुत दिनोके सूखे पदार्थ हों तो सोलह गुना डाले एक तोलेसे लेकर ४ तोले पर्यंत सोले गुना पानी डालना, पाच तोलेसे सोलह तोलेतक अठगुना पानी डालना, चौसठ तोलेसे लेकर चार हजार छानवे तोले तक चौगुनापानी डालै । पानीका यह चतुर्गुण प्रमाण क्वाथ करनेके पदार्थोके कोमलपने आदि

गुणोसे कहा हैं, परन्तु बहुतसे आचार्य तो यह जलका प्रमाण पदार्थोंकी तोलसे कहते हैं ॥ जैसे कि, एक तोलेसे चार तोले तक पदार्थोंमे आठगुना जल डाले और चौंसठ तोलेसे खारी तक पदार्थोंमे चौगुना पानी डालै॥ घी अथवा तेलको पानीसे पकाना हो तो घी अथवा तेलका चौथा-भाग कल्क डाले, काथसे पकाना हो तो छठा भाग कल्क डाले और स्वरससे पकाना हो तो आठवॉ भाग डाले ॥ फिर कहतेहैं कि,—दूधमें, दहीमें, स्वरसमे अथवा चौथा भाग पानी सहित छाँछमें पकाना हो तो आठवॉ भाग कल्क डाले। कल्कके पदार्थोंसे चौगुने पानीमें यह कल्क पिसा हुआ होना चाहिये कि जिससे उत्तम पाक होजाय॥ जिस स्नेहको दूध, दही, स्वरस छॉछ और कल्क पीसतेमें पडा हुआ पानी, इन पांच पदार्थोंका योग देना हो उस स्नेहमें दही, दूध, स्वरस और छाछ इन सबकी तोल पकाते समय स्नेहके बराबर होती है (क्योंकि स्नेह पदार्थको चौगुने द्रवमे पकावे ऐसा प्रथम कहा है, तो ये दही आदि पदार्थ सब मिलकर स्नेहसे चौगुने होजायँगे)॥७९–८१॥

केवल द्रवसे ही जो स्नेहका पाक करना हो तौ औषधियोको चौगुने पानीमे पीसकर उसमे कल्क डालै॥ कहीं केवल काथसे ही स्नेहको पकाना कहा होय वहा औषधिके चूर्णको काथमें डालनेके पीछे उस औषधिका कल्क भी स्नेहमे डालना चाहिये। विना कल्क डाले ही स्नेहको पकाना हो तो वहा उस स्नेहको काथके अतिरिक्त अन्य स्वरस आदि द्रव्यमे ही पकावे॥ फूलका कल्क डालकर स्नेहको पकाना होय तो वहा स्नेहसे चौगुना पानी और आठवा भाग फूलका कल्क चाहिये। पाक करते २ जब कल्क अगुलीके मलनेसे बत्ती सा होजाय और अग्निमे डालनेसे कुछ शब्द न करै तब स्नेहका पाक हुआ जाने। तेलका पाक करै तौ तेलमे झाग आनेसे और घीका पाक करै तो घीके झाग बैठ जानेसे पाक सिद्ध हुआ जाने। स्नेहमें अपूर्व वर्ण (स्वरूप), गध और रसकी उत्पत्ति होय ये भी पूर्णपाक होजानेकी परीक्षा है। स्नेहका पाक मृदु, मध्य और खर, इस भॉति तीन प्रकारका है। जिसमे कल्क किञ्चित् रस भराहुआ रहै वह पाक मृदु जानना जिसमे कल्क रसरहित होजाय परन्तु मृदु रहै उसका पाक मध्य जानना और कल्क जिसमे किंचित् कठिन होजाय उसका पाक खर जानना जिसमे कल्क जलजाय उस पाकको दाहकारक और निष्प्रयोजन जानना। जो पाक कच्चा रहगया होय वह जठराग्निकी मंदता करताहै, भारी तथा शक्तिहीन होता है। नाकमें डालनेके काममे मृदुपाक उपयोगी है, सब कामोमे मध्यपाक उपयोगी है और अभ्यग कार्यमे खरपाक उपयोगी है इस कारण इसको समझकर उसका उपयोग करै। घी, तैल और गुड आदि पदार्थ उसही एक दिनमे नही सिद्ध करै कुछ दिनोतक रख छोडै क्योंकि ये पदार्थ जितने पुराने होयँ उतनेही अधिक गुणकारी होतेहैं॥ ८२–९२॥

सन्धानविधिः।

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत्॥ आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम्॥ ९३॥

भेषजेषु यदुचितं तद्भेषजोचितम्॥

जो पदार्थ द्रवरूप पदार्थोंसे अधिक कालतक रख छोडै वह संधित होजाताहै, ये संधित (खट्टाहुआ) पदार्थ आसव और अरिष्ट नामक भेदोसे दो प्रकारका है, जिस प्रकार औषधियोग काम आताहै, वह प्रकार अब कहते हैं॥९३॥

आसवारिष्टलक्षणम्।

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः॥ अरिष्टः क्वाथसाध्यः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम्॥ ९४॥

कच्ची औषधिसे और कच्चे पानीसे जो मद्य बनाई जाय उसको आसव कहतेहैं (जैसे कुमार्यासव) और क्वाथ करके जो मदिरा बनाई जाय उसको अरिष्ट कहते हैं। इनकी मात्रा एक पलकी है॥ ९४॥

सामान्यारिष्टविधिः।

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवाद्द्रोणं गुडात्तुलाम्॥ क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्द्धं प्रक्षेपं दशमांशकम्॥९५॥

दशमांशकम् गुडस्यैव दशमांशकम्॥

जहाँ अरिष्टमे डालनेके पदार्थोंकी तोल नहीं कही हो वहाँ १०२४ तोले द्रव और ४००तोले गुड डालै २०० तोले मधु और ४० रुपयेभर औषधि डालै॥ ९५॥

द्विविधसीधुः।

ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः॥ सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्पक्वमधुरद्रवैः॥९६॥

मधुरद्रवैः इक्षुरसादिभिः ॥

विनापकी ईख आदिके मधुर रससे जो बनी हो वह शीतरस सीधु कहातीहै, और पकाई हुई ईख आदिके रसोंसे जो मदिरा बनाई जाय वह पक्वरस सीधु कहातीहै ॥ ९६ ॥

सुरा सुराजातिश्च ।

परिपक्वान्नसंधानात्समुत्पन्नां सुरां जगुः ॥ सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात्ततः कादम्बरी घना ॥ ९७ ॥ तदधो जगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद्धनः ॥ पक्वोऽसौ हृतसारः स्यात्सुराबीजं किरावकम् ॥ ९८ ॥
सुराबीजम्, यवगोधूमतण्डुलादि ॥
यत्तालखर्जूररसैः सन्धिता सा हि वारुणी ॥ ९९ ॥

पकेहुए अन्नका सन्धान करके जो मद्य उत्पन्न की जातीहै, उसको सुरा कहतेहैं । पतली सुरा प्रसन्ना कहातीहै और गाढी सुरा कादंबरी कहातीहै, मदिराके नीचेकी रहीहुई जगल कहातीहै और बहुत गाढी नीचेकी जो गाद होतीहै, उसको मेदक कहतेहैं । इस कीचडको पकाकर सारभाग निकाल लेनेपर जो गेहू, जौ अथवा चावल आदिका फोकस शेष रहताहै, उसको सुराबीज और किरावक कहतेहैं । ताडी अथवा खजूरीके रसका सन्धान करके जो मदिरा बनाई जातीहै, वह वारुणी कहातीहै ॥ ९७–९९ ॥

शुक्तलक्षणम् ।

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ॥ विनष्टमभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते १००
अभिषूयन्ते द्रवेण आप्लाव्य सन्धीयन्ते ॥

तेल और नमक डालकर जिस द्रवमें कन्द, मूल और फल आदिका सन्धान करें तौ वह द्रव शुक्त (सिरका) कहाता है ॥ १०० ॥

चुक्रलक्षणम् ।

विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवः ॥ विनष्टं सन्धितो यस्तु तच्चुक्रमभिधीयते ॥ १०१ ॥ गुडाम्बुना सतैलेन कन्दशाकफलैस्तथा ॥ सन्धितं चाम्लतां यातं गुडचुक्रं प्रचक्ष्यते ॥ एवमेव हि शुक्तं स्यान्मृद्वीकासम्भवं तथा ॥ १०२ ॥

बिगडकर खट्टे हुए अथवा बिगडे हुए मधुर द्रवका जो सधान किया जाताहै, वह चुक कहाताहै । गुडपानी, तेल, कंद, मूल और फल, इनके सधानमें जब खट्टापन आवे तब उसको गुडचुक कहतेहैं । दाखका चूक भी इसी प्रकार होताहै ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

तुषोदकसौवीरारनालकांजिकशिंडाकीलक्षणानि ।

तुषाम्बु सन्धितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः ॥ यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सौवीरं साधितं भवेत् ॥ १०३ ॥ आरनालन्तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः॥ पक्वैर्वा संहितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥ १०४ ॥ कुल्माषधान्यं मण्डादि संहितं काञ्जिकं विदुः ॥ शिण्डाकी संहिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥ १०५ ॥

इति भेषजविधय ।

कच्चे तुषसहित जौओंका पानीमें जो सधान किया जाय वह तुषोदक कहाताहै । तुषरहित पके जौओंका जो सन्धान किया जाय वह सौवीर कहाताहै । भूसीरहित कच्चे अथवा पक्के गेहुओंका जो सन्धान किया जाय उसको आरनाल कहतेहैं । आरनालमें सौवीरके सदृश गुण हैं । उडदके बडे और मड आदिका जो सन्धान किया जाय वह कांजिक (कांजी) कहाती है । मूली और सरसों आदिके पत्तोंका जो आचार करतेहैं, उसको शिंडाकी कहतेहैं ॥ १०३–१०५ ॥

इति औषधिविधान समाप्तम् ।

अथ धातूनां शोधनमारणविधिः ।

मारणयोग्यसुवर्णलक्षणम् ।

दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुंकुमप्रभम् ॥

तारशुल्बोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत् ॥ १ ॥

सत्, उत्तमम् ॥

तच्छेदे कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम्॥ दाहे छेदे सितं श्वेतं कषे स्फुटलघु त्यजेत् ॥ २ ॥

जो सुवर्ण तपानेमें लाल, काटनेमें सफेद, कसौटीपर कसनेसे केशरके सदृश दीखै, चाँदी तथा ताँबे करके रहित स्निग्ध, कोमल और भारी हो वह सुवर्ण उत्तम जानना। जो सुवर्ण सफेद, कठिन, रूखा, बुरे वर्णवाला, मलसहित पतरोंवाला, तपाने तथा काटनेमें सफेद, कसनेमे भी सफेद हलका और चोट मारनेसे फटजाय ऐसा सुवर्ण त्याज्य है ॥ १ ॥ २ ॥

सुवर्णशोधनविधिः।

पत्तलीकृतपत्राणि हेम्नो वह्नौ प्रतापयेत॥ निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ ॥ ३ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये तु त्रिधा त्रिधा॥ एवं हेम्नः परेषाञ्च धातूनां शोधनं भवेत् ॥ ४ ॥

सुवर्णके पतले पतले पत्तर करके अग्निमें तपावै, जब लाल होजायँ तब तेलमें, छाँछमे, काँजीमें, गोमूत्रमे और कुलथीके क्काथमें डालकर तीन तीन बार बुझावै तब सुवर्ण शुद्ध होताहै। अन्य धातुओंको भी इसी भाँति शुद्ध करै ॥ ३ ॥ ४ ॥

अशुद्धसुवर्णदोषाः।

बलं सवीर्य्यं हरते नराणां रोगव्रजं पोषयतीह काये ॥ असौख्यकार्येव सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणञ्च कुर्यात् ॥ ५ ॥

अशुद्ध सुवर्ण-मनुष्योंके बल तथा वीर्यको हरण करनेवाला, शरीरमे अनेक रोगवर्द्धक, सर्वदा असुख (दुःख) का कर्त्ता और मृत्युको भी करनेवाला है ॥ ५ ॥

सुवर्णमारणविधिः।

स्वर्णस्य द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत्॥ तद्गोलकसमं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम्६॥

स्वर्णस्य, अतितनूकृतपत्रस्य। गन्धम्, गन्धकचूर्णम् ॥

गोलकञ्च ततो रुद्ध्वा शरावदृढसम्पुटे ॥ त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटान्येव चतुर्दश ॥ निरुत्थं जायते भस्म गन्धो देयः पुनः-पुनः ॥ ७ ॥

रुद्ध्वा सवस्त्रकुट्टितचिक्कणमृत्तिकया। वनोपलः-अरने उपले इति लोके। निरुत्थं यत्पुनर्न जीवति[1] ॥

जिसके बहुत पतले पतले पत्तर करलिये हो ऐसे सुवर्णसे दूना पारा ले दोनोको नीबूके रसमें खरल करके गोला बनालेवै उस गोलेकी बराबर गधक ले उसका चूर्ण करके गोलेके चारो ओर लगा देवै और गोला रखनेकी घडियामें भी छिडक दे। गोलेको शराव संपुटमे रख सपुटको दृढतासे कपरमट्टी करके सुखाकर तीस अरने उपलोकी अग्निमें रख देवै, सम्पूर्ण उपले बलकर जब राख शीतल होजाय तब उसमेसे निकालकर फिर तीस अरने उपलोकी अग्निमें रख देवै। इसी प्रकार वारंवार अग्नि देकर चौदह पुट देवै तौ सुवर्णकी निरुत्थ भस्म होजायगी। प्रत्येक पुटमें ऊपर कहे अनुसार वारवार गधक देता जावे ॥ ६ ॥ ७ ॥

सुवर्णमारणस्य द्वितीयो विधिः।

काञ्चने गलिते नागं षोडशांशेन निक्षिपेत् ॥ चूर्णयित्वा तथाम्लेन घृष्ट्वा कृत्वा तु गोलकम् ॥ ८ ॥ गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवाधरोत्तरम् ॥ शरावसम्पुटे धृत्वा पुटेद्विंशद्वनोपलैः ॥एवं सप्तपुटैर्हेम निरुत्थं भस्म जायते ॥ ९ ॥

अत्रापि पूर्ववद्गन्धः प्रदातव्यः ॥

सुवर्णको गलाकर उसमे सोलहवाँ भाग सीसा डालै, पश्चात् इस रसका बारीक चूर्ण करके नींबूके रसमे खरल कर गोला बनाले, गोलेकी बराबरही गधक लेकर उसका चूर्ण कर गोलेके चारो ओर लगा देवै और गोलेके रखनेके पात्रमें भी छिडक देवै। गोलेके ऊपर तथा नीचे दो घडियोंके सपुटमें रख सपुटको दृढतासे कपरमट्टी करके सुखालेवे, पश्चात् वीस अरने उपलोकी अग्निमे रक्खे इसप्रकार वारंवार अग्निकी सात पुट देनेसे सुवर्णकी भस्म होजाती है इसमे भी पहिलेके सदृश वारंवार गधक देता जाय८॥९॥

---

१ जो घी सुहागा आदि मित्रपचक डालनेसे भी नहीं जीवै॥

अन्यच्च ।

काञ्चनाररसैर्घृष्टा समसूतकगन्धयोः ॥ कज्जलीं हेमपत्राणि लेपयेत्समया तया ॥ ॥ १० ॥ कांचनारत्वचः कल्कैर्मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ धृत्वा तत्संपुटे गोलं मृन्मूषासम्पुटे च तत् ॥ ११ ॥ विधाय सन्धिरोधं च कृत्वा संशोष्य गोलकम् ॥ वह्निं खरतरं कुर्यादेवं दत्त्वा पुटत्रयम् ॥ १२ ॥ निरुत्थं जायते भस्म सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ काञ्चनारप्रकारेण लांगली हन्ति काञ्चनम् ॥ १३ ज्वालामुखी तथा हन्याद्यथा हन्ति मनःशिला ॥ १४ ॥

पारा और गंधक दोनों समान भाग लेकर उसको कचनारके रसमें मलकर कजली करले, फिर सुवर्णकी बराबर कजलीको सुवर्णके पतरोंपर लेप कर देवै, पश्चात् कचनारकी छालको बारीक पीसकर उसकी दो मूषा बनावे उनके बीचमें सोनेके पत्तर रखके मट्टीसे बंद कर देवै, फिर मट्टीकी मूषामें रख दोनोंके मुखको कपरमट्टीसे भली भाँति बंद करदेवें और सुखाकर अत्यन्त तेज अग्नि देवै, इसप्रकार तीन संपुट देनेसे सुवर्णकी निरुत्थ भस्म हो-जातीहै, इस भस्मको सर्व रोगोंपर देवै । जिस प्रकार कचनार सुवर्णको मार देताहै, तैसेही कलियारी, हुलहुल तथा मैनसिल भी सुवर्णको मार देताहै ॥ १०-१४ ॥

सुवर्णमारणस्य चतुर्थो विधिः ।

शिलासिन्दूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धकैः ॥ सप्तधा भावनां दद्याच्छोषयेच्च पुनःपुनः ॥ ॥ १५ ॥ ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोऽयं दीयते समः ॥ पुनर्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते ॥ एवं वेलात्रयं दद्यात्कल्कं हेममृतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

मैनसिल और सिन्दूर दोनों समान लेकर इनका चूर्ण करके आकके दूधमें भावना देकर सुखा लेवै, इस प्रकार सुखा सुखाकर सात भावना देनेके पीछे गलाये हुए सुवर्णमें सोनेकी बराबर ही कल्क डालै । कल्क डालनेके पीछे अग्निमें रखके धमावै कि; जिससे कल्क जल जाय इसप्रकार तीन बार मैनशिल और सिन्दूरका कल्क डालनेसे सुवर्ण मर जाताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

मारितसुवर्णगुणाः ।

सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम् ॥ स्वादु तिक्तं च तुवरं पाके च स्वादु पिच्छिलम् ॥ १७ ॥ पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृतिमतिप्रदम् ॥ हृद्यमायुष्करं कान्तिवाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत् ॥ विषद्वयक्षयोन्मादत्रिदोषज्वरशोषजित् ॥ १८ ॥ वृष्यं वृषाय कामुकाय हितम् ॥

मारा हुआ सोना-शीतल, वृष्य (कामी पुरुषोंको हितकारी), बलदायक, भारी, वृद्धता तथा रोगनाशक, मधुर, कडवा, कसैला, पाकमें मधुर, पिच्छिल (गिलगिला), पवित्र, पुष्टिकारक, नेत्रोंको हितकारी, मेधा तथा स्मरणशक्तिवर्द्धक, बुद्धि तथा बलको बढानेवाला, हृदयको प्रिय, आयुर्वर्द्धक, कान्तिकारक, वाणीको शुद्ध करनेवाला, (अर्थात् हकलाना मिनमिनाना आदि दूर करे) स्थिरताकारक और स्थावर तथा जंगम इन दोनों प्रकारके विष, क्षय, उन्माद तीनों दोष, ज्वर तथा शोषको नष्ट करै है ॥ १७ ॥ १८ ॥

अशुद्धसुवर्णदोषाः ।

असम्यङ्मारितं स्वर्णं बलं वीर्यं च नाशयेत् ॥ करोति रोगान्मृत्युं च तद्धन्याद्यत्नतस्ततः ॥ १९ ॥

भलेप्रकार नहीं माराहुआ सोना-बल तथा वीर्यनाशक, रोगोंको उत्पन्न करनेवाला और मृत्युदायक है, इसकारण सुवर्णको बडे यत्नसे मारै ॥ १९ ॥

अथ धात्वादिमारणोपयुक्तान्पुटप्रकारानाह ।

लोहादेरपुनर्भावस्तद्गुणत्वं गुणाढ्यता ॥ सलिले तरणं चापि तत्सिद्धिः पुटनाद्भवेत् ॥ २० ॥ गम्भीरे विस्तृते कुण्डे द्विहस्ते चतुरस्रके ॥ वनोपलसहस्रेण पूरिते पुनरौषधम् ॥ २१ ॥ कोष्ठे रुद्ध्वा

प्रयत्नेन गोविष्ठोपरि धारयेत् ॥ वनोपलसहस्रार्द्धं कोष्ठिकोपरि निक्षिपेत् ॥ २२ ॥ वह्निं विनिक्षिपेत्तत्र महापुटमिति स्मृतम् ॥ २३ ॥

कोष्ठं मृन्मूषा। गोविष्ठा गोबर इति लोके॥

सपादहस्तमानेन कुण्डे निम्ने तथायते ॥ वनोपलसहस्रेण पूर्ण मध्ये विधारयेत् ॥ ॥ २४ ॥ पुटनद्रव्यसंयुक्तां कोष्ठिकां मुद्रितां मुखे॥अथार्धानि करंडानि अर्धान्युपरि निक्षिपेत् ॥ एतद्गजपुटं प्रोक्तं ख्यातं सर्वपुटोत्तमम् ॥ २५ ॥

हस्तश्चतुर्विंशत्यङ्गुलप्रमाणः स सपादः तेन त्रिंशदङ्गुलप्रमाणे नेत्यर्थः। अत एवोक्तम्—

साधारणनरांगुल्या त्रिंशदंगुलको गजः २६ इति गजपुटम् ॥

अरत्निमात्रके कुण्डे पुटं वाराहमुच्यते ॥ वितस्तिमात्रके खाते कथितं कौक्कुटं पुटम् ॥ २७ ॥

अरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिनेत्यमरः। निःसृतकनिष्ठया मुष्ट्योपलक्षितो हस्तोऽरत्निरित्यर्थः ॥

षोडशांगुलके खाते कस्यचित्कौक्कुटं पुटम्॥ यत्पुटं दीयते खाते ह्यष्टसंख्यैर्वनोपलैः ॥ २८ ॥ कपोतपुटमेतत्तु कथितं पुटपंडितैः॥गोष्ठान्तर्गोखुरक्षुण्णं शुष्कं चूर्णितगोमयम् ॥ २९ ॥ गोवरं तत्समाख्यातं वरिष्ठं रससाधने ॥बृहद्भाण्डस्थितैर्यत्र गोवरैर्दीयते पुटम् ॥ ३० ॥ तद्गोवरपुटं प्रोक्तं भिषग्भिः सूतभस्मनि ॥ बृहद्भाण्डे तुषैः पूर्णे मध्ये मूषां विधारयेत् ॥ क्षिप्त्वाग्निं मुद्रयेद्भाण्डं तद्भाण्डपुटमुच्यते ॥ ३१ ॥

लोहादि धातुपर अग्निके पुट देनेसे फिर वह धातु जीवित नहीं होती, रखे रहनेपर उसमे अधिक गुण आतेहैं और वह धातु पानीमे तैरतीहै, ये सिद्धि पुटदेनेसे होतीहैं, दो हाथ ऊँचा और दो हाथ चौडा चौकोर गड्ढा खोदकर उसमे एक हजार अरने उपले भरै, पश्चात् औषधिको मट्टीकी मूपामे रख यत्नपूर्वक कपरमट्टीसे बद करके उस गड्ढेमे रखदेवे पश्चात् ऊपरमे पाँचसौ उपले उसके ऊपर चिनकर अग्नि लगादेवै इसप्रकार करनेको महापुट कहतेहैं। सवाहाथ गहरा और इतनाही लवा चौकोर गड्ढा खोदकर उसमे पाँचसौ अरने उपले भरदेवै पीछे जिसमें औषधि रक्खी हो उस मूपाका मुख वदकरके कपरमट्टीकर उस गड्ढेमें रखकर ऊपरसे और पाँचसौ उपले रखकर अग्नि लगा देवै, इसप्रकार करनेको गजपुट कहतेहैं, यह गजपुट सम्पूर्ण पुटोंमें उत्तम है। छोटी अगुलिको छोडकर वाकी सब अंगुलियोंको मींचकर मुट्ठी बाँधलेवै, ऐसे एक हाथके गड्ढेमे उपले भरकर उसके वीचमें मूपा रखके अग्नि देदेवै इसको वाराह पुट कहतेहैं। एक विलस्तके लवे चौडे गड्ढेमे उपले भरकर मध्यमे मूपा रख अग्नि देवै, उसको कौक्कुट पुट कहतेहैं। किसीका मत ऐसा है कि—सोलह अगुलके गड्डेमे उपले भरकर उपरोक्त विधि करै उसको कौक्कुट पुट कहतेहैं गड्ढेमें आठ उपले भरकर वीचमे मूपा रख अग्नि देवै इसको विद्वान् पडित लोग कपोत पुट कहतेहैं। गोशालाके भीतर गायोंके खुरोंसे कतरेहुए गोवरको सुखाकर जो चूर्ण होताहै उसको गोवर कहतेहैं, यह गोवर पारेके सिद्ध करनेमें उत्तम है। वडे पात्रमे गोवर भरकर उसके वीचमें मूपा रखकर अग्निदेवै, इसको गोवरपुट कहते हैं, पारेकी भस्म करनेमे यह गोवर पुट उपयोगी है, ऐसा विद्वान् वैद्योंने कहाहै। वडे पात्रमें भूसा भर उसके वीचमे मूपा रखकर अग्नि लगादेवै और पात्रका मुख वद करदेवै उसको भाड पुट कहतेहैं ॥ २०–३१ ॥

अथ यंत्रविधिः।

भाण्डे वितस्तिगम्भीरे मध्ये निहितकूपिका। कूपिकाकण्ठपर्यन्तं वालुकाभि-

(१) चौवीस अगुल प्रमाणको एक हाथ कहते हैं, तो सवा हाथ ३० अगुल हुवा इसपर अन्यग्रथका प्रमाण है कि, साधारण मनुष्यके ३० अगुलको गज कहते हैं, इससे तीस अगुल लवा चौडा ऊचा गजपुट होता है।

श्च पूरिते ॥ ३२ ॥ भेषजं कूपिकासंस्थं वह्निना यत्र पच्यते ॥ वालुकायन्त्रमेतद्धि यन्त्रतन्त्रबुधैः स्मृतम् ॥ ३३ ॥

वालुकायंत्र—एक विलस्त चौंडे पात्रमे सीसी रखकर और सीसीसे बाहरकी खाली जगहमे गलेतक रेता भरदेवे, फिर पात्रके नीचे अग्नि लगाकर उस शीशीकी औषधिको पकावे, इस यंत्रको विद्वान् 'वालुकायंत्र' कहते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

निबद्धमौषधं सूतैर्भूर्जे तत्त्रिगुणाम्बरे॥रसपोटलिकां काष्ठे दृढं बद्धा गुणेन हि ॥ ॥ ३४ ॥ सन्धानपूर्णकुम्भान्तःखावलंबनसन्धितम् ॥ अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं तत्तदुक्तक्रमेण हि ॥ दोलायंत्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनाख्यं तदेव हि ॥ ३५ ॥

दोलायन्त्र—औषधिको भोजपत्रमे बाँधकर और भोजपत्रके ऊपर तिहेरा वस्त्र बाँधके पोटली करलेवे, इस पोटलीको एक लकडीके बीचमें डोरेसे लटकती हुई बाँधे पश्चात् कॉजी आदि सधित पदार्थोंसे भरी हुई हॉडीमें उस पोटलीको लटकादेवे और ऊपर वह लकडी अटका देवे । हॉडीके भीतर वह पोटली बीचमे लटकती हुई रक्खै और हॉडीके नीचे उसी प्रकरणमे कहे हुए अनुक्रमसे अग्नि बाले, ये दोलायंत्र कहाताहै, दोलायंत्रको कोई स्वेदनयंत्र भी कहतेहैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

साम्बुस्थालीमुखे बद्धे वस्त्रे स्वेद्यं निधाय च ॥ पिधाय पच्यते यन्त्रं तद्यन्त्रं स्वेदनं स्मृतम् ॥ ३६ ॥

स्वेदनयंत्र—हॉडीमें पानी भरके और ऊपर मुखपर वस्त्र बाँधकर उस वस्त्रपै वाफ देनेकी औषधिको रख उसके ऊपर ढकनी ढकदेवें और नीचे अग्नि जलादेवे, ये स्वेदनयंत्र कहाताहै ॥ ३६ ॥

अथ स्थाल्यां रसं क्षिप्त्वा निदध्यात्तन्मुखोपरि ॥ स्थालीमूर्ध्वमुखीं सम्यङ्निरुध्य मृद्मृत्स्नया ॥ ३७ ॥ ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा चूल्यामारोप्य यत्नतः॥अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यावत्प्रहरपंचकम् ॥ ३८ ॥ स्वांगशीतं ततो यन्त्राद् गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् ॥ विद्याधराभिधं यन्त्रमेतत्तज्ज्ञैरुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

विद्याधरयंत्र—एक हॉटीमें पारा भरकर उस हॉटीके मुखपर बडे मुखकी दूसरी हॉटी लेकर ढकदेवे, पहिली हॉटीके मुखकी तथा दूसरी हॉडीके पेटकी सधिको कोमलमट्टीसे बद करदेवे और ऊपरकी हॉटीमें पानी भरदेवे, फिर चूल्हेपर चढाकर पॉच प्रहरतक सावधानतासे अग्नि बाले, पश्चात् अग्नि शीतल होनेपर ऊपरकी हॉटीकी तलीमेंसे पारा छुटा लेवे, इस उत्तम पारेको ग्रहण करे. इसको विद्याधर यंत्र कहतेहैं ॥ ३७–३९ ॥

वालुकाभिः समस्तांगं गर्ते मूषां रसान्विताम् ॥ दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यन्त्रं भूधरनामकम् ॥

भूधरयंत्र—जिसमें एक छोटा गड्ढा कराहो ऐसा एक वडा गड्ढा करके उस छोटे गड्ढेमे रेत वालू भरे उसमें जिसके भीतर पारा भराहुआ हो ऐसी मूषा अथवा हॉडी रखकर वडे गड्ढेमें जलतेहुए उपले भरदेवे इसको भूधरयंत्र कहतेहैं ॥

यन्त्रं डमरुसंज्ञं स्यात्तत्स्थाल्योर्मुद्रिते मुखे ४०

डमरुयंत्र—एक हॉडीके ऊपर दूसरी हॉडीको उलटी करके रक्खे, पश्चात् दोनोंके मुखकी संधिये वद करदेवे, इसको डमरुयंत्र कहतेहैं ॥ ४० ॥

मारणयोग्यरजतलक्षणम् ।

गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहच्छेदघनक्षमम्॥ स्वर्णादिरहितं स्वच्छं तारं नवगुणं शुभम् ॥ ४१ ॥

भारी, स्निग्ध (चिकन), कोमल, सफेद, दाह, छेद तथा घनकी चोटको सहन करनेवाली, सुवर्णादि करके रहित और स्वच्छ, इन नौगुणों युक्त जो चॉदी हो वह उत्तम और मारने योग्य है ॥ ४१ ॥

अयोग्यरजतलक्षणम् ।

कठिनं कृत्रिमं रूक्षं रक्तं पीतदलं लघु ॥

दाहच्छेदघनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ ४२ ॥

जो चाँदी—कठोर, बनाईहुई, रूक्ष, लाल—पीले पत्तखाली, हलकी, तपानेसे अथवा काटनेसे फट जाय, वह चाँदी दुष्ट कहीहै ॥ ४२ ॥

रजतशोधनविधिः।

पत्तलीकृतपत्राणि तारस्याग्नौ प्रतापयेत्॥ निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च कांजिके ॥ ॥ ४३ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधात्रिधा ॥ एवं रजतपत्राणां विशुद्धिः संप्रजायते ॥ ४४ ॥

चाँदीके पतले पतले पत्तर करके अग्निमें तपावे और तपा तपाकर तेलमे, छाँछमें, काँजीमें, गोमूत्रमे और कुलथीके काढेमे बुझावे, इसप्रकार तीन तीन वार बुझानेसे सम्पूर्ण प्रकारकी चाँदी शुद्ध होजाती है ॥४३॥४४॥

अशुद्धरजतदोषः।

रूप्यं त्वशुद्धं प्रकरोति तापं विबन्धकं वीर्यबलक्षयं च ॥ देहस्य पुष्टिं हरते तनोति रोगांस्ततः शोधनमस्य कुर्यात्॥४५॥

विना शुद्धकरी हुई चाँदी—शरीरमे ताप करनेवाली, मलबन्धकारक, वीर्य तथा बलनाशक, शरीरकी पुष्टताको नष्ट करनेवाली और रोगोंको उत्पन्न करनेवाली है, इस कारण चाँदीको शुद्ध करना चाहिये ॥ ४५ ॥

रजतमारणविधिः।

भागैकं तालकं मर्द्य याममम्लेन केनचित् ॥ तेन भागत्रयं तारपत्राणि परिलेपयेत् ॥ ४६ ॥ धृत्वा मूषापुटे रुद्ध्वा पुटे त्रिंशद्वनोपलैः ॥ समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ एवं चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते ॥ ४७ ॥

एक भाग तबकिया हरतालको एक प्रहरतक किसी खट्टे (नींबूआदिके) रसमें खरल करे, पश्चात् उस हरतालको तीनभाग चाँदीके पतरोंपर प्रलेप करे, फिर इन पतरोंको मूषामें रख कपरमट्टीकर तीस उपलोकी अग्निमे रक्खे, अग्नि शीतल होनेपर निकालले और फिर नींबूके रसका घोटा हुआ हरताल लेपकर कपरमट्टीकर अग्निकी पुट देवे इसप्रकार चौदह पुट देनेसे चाँदीकी भस्म होती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

रजतमारणस्यापरो विधिः।

स्नुहीक्षीरेण संपिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत्॥ तालकस्य प्रकारेण तारपत्रस्य बुद्धिमान् ॥ पुटेच्चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते ॥ ४८ ॥

उपरोक्त हरतालके सदृश सोनामाखीको थूहरके दूधसे खरल करै, पश्चात् सोनामाखीसे तिगुनी चादीके पतरोंपर इसका प्रलेप करै, फिर इन पतरोंको मूषामे रक्ख कपरमट्टीकर तीस उपलोकी अग्निसे पुट देवै, अग्नि शीतल होनेपर निकालले, फिर सोनामाखीका प्रलेप करके कपरमट्टीकर अग्निके पुट देवै, इस प्रकार चौदह पुट देनेसे चादीकी भस्म होजाती है ॥ ४८ ॥

मारितरजतगुणाः।

रौप्यं शीतं कषायं च स्वादुपाकरसं सरम् ॥ वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित् ॥ प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यचिराद् ध्रुवम् ॥ ४९ ॥

चादी—शीतल, कसैली, पाकमें तथा रसमे मधुर, दस्तावर, यौवनको स्थिर करनेवाली, स्निग्ध, लेखन, वात तथा पित्तनाशक और प्रमेहआदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करनेवाली है ॥ ४९ ॥

मारणयोग्यताम्रलक्षणम्।

जपाकुसुमसंकाशं स्निग्धं गुरु घनक्षमम् ॥ लोहनागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ॥ ५० ॥

जो तांबा जपा (गुडहर) के फूलके सदृश कातिवाला, स्निग्ध, भारी, घनकी चोट सहन करलेवे और लोहा तथा सीसा आदि रहित हो वह ताँबा मारणकार्यमें उत्तम कहा है ॥ ५० ॥

अयोग्यताम्रलक्षणम्।

कृष्णं रूक्षमतिस्वच्छं श्वेतं चापि घनासहम् ॥ लोहनागयुतं चेति शुल्बं दुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ ५१ ॥

जो ताँबा-काला, रूखा, अत्यन्त स्वच्छ, सफेद, घनकी चोटको न सहनेवाला और लोहा तथा सीसे सहित हो वह ताँबा अयोग्य जानना ॥ ५१ ॥

ताम्रशोधनविधिः ।

पत्तलीकृतपत्राणि ताम्रस्याग्नौ प्रतापयेत् ॥ निषिञ्चेत्तत्तप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ ५२ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधात्रिधा ॥ एवं ताम्रस्य पत्राणां विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ ५३ ॥ एको दोषो विषे ताम्रे त्वशुद्धेऽष्टौ भ्रमो वमिः ॥ विरेकः स्वेद उत्क्लेदो मूर्च्छा दाहोऽरुचिस्तथा ॥ ५४ ॥ न विषं विषमित्याहुस्ताम्रन्तु विषमुच्यते ॥ एको दोषो विषे ताम्रे त्वष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः ॥ ५५ ॥

तांबेके पतले करेहुए कटकवेधी पत्तरोंको अग्निमें तपावे तपा तपाके तेलमें, छाँछमें, काजीमें, गोमूत्रमें और कुलथीके काढेमें बुझावे, इसप्रकार तीन तीन वार करनेसे तांबेके पत्तर शुद्ध होजाते हैं । विषमें तो केवल एक ही दोष है, परन्तु अशुद्ध तांबेमें भ्रम, वमन, विरेचन, पसीना, उत्क्लेद (उकलाहट), मूर्च्छा, दाह और अरुचि, ये आठ दोष हैं । जिसको विष कहतेहैं, वह विष नहीं है, वास्तवमें तांबाही विष है, क्योंकि विषमें तो एकही दोष है और तांबेमें आठ दोष हैं ॥ ५२-५५ ॥

ताम्रमारणविधिः ।

सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद्बुधः ॥ वासरत्रयमम्लेन ततः खल्वे विनिक्षिपेत् ॥ ५६ ॥ पदांशं सूतकं दत्त्वा याममम्लेन मर्दयेत् ॥ तत उद्धृत्य पत्राणि लेपयेद् द्विगुणेन च ॥ ५७ ॥ गन्धकेनाम्लघृष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम् ॥ ततः पिष्ट्वा च मीनाक्षी चांगेरी वा पुनर्नवाम् ॥ ५८ ॥

१ चतुष्पत्राम्ला लोनिकाभेदः ॥

वहिर्गोलं लेपयेद्द्व्यङ्गुलोन्मितम् ॥ धृत्वा तद्गोलकं भाण्डे शरावेण च रोधयेत् ॥ ५९ ॥ वालुकाभिः प्रपूर्याथ विभूतिलवणाम्बुभिः ॥ दत्त्वा भाण्डमुखे मुद्रां ततश्चुल्ल्यां विपाचयेत् ॥ ६० ॥ क्रमवृद्ध्याऽग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम् ॥ स्वांगशीतं समुद्धृत्य मर्दयेच्छूरणद्रवैः ॥ ६१ ॥ यामैकं गोलकं तच्च निक्षिपेच्छूरणोदरे ॥ मृदा लेपस्तु कर्त्तव्यः सर्वतोऽङ्गुष्ठमात्रकः ॥ ६२ ॥ पाच्यं गजपुटे क्षिप्तं मृतं भवति निश्चितम् ॥ वमनं च विरेकं च भ्रमं क्लममथारुचिम् ॥ विदाहं स्वेदमुत्क्लेदं न करोति कदाचन ॥ ६३ ॥

ताँबेके सूक्ष्म पत्र करके तीन दिन पर्यन्त नींबूके रसमें स्वेद देवें पश्चात् खरलमें डालकर इससे चौथा भाग पारा डालकर एक प्रहरतक खरल करे फिर पत्रोंको निकालकर एक प्रहरतक नींबूके रसमें खरल करै और दूने गन्धकसे लेपन करके गोला करलेवे, पश्चात् मछेछी अथवा चौपतिया नोनिया, वा पुनर्नवाको पीसकर उसके कल्कको गोलेपर दो अंगुल मोटा लेप देवै, फिर इस गोलेको पात्रमें रख शेष भागको वालूसे भरकर ऊपरसे शराव ढक देवै, पश्चात् मुखको राख और लवणसे वन्द करके चूल्हेपर चढावे और अनुक्रमसे बढाते २ चार प्रहर तक आँच देवै, अग्नि शीतल होनेपर उसमेंसे तांबा निकालले, पश्चात् एक पहरतक सूरन कन्दके रसमें खरल करै, खरल किये हुए तांबेका गोला करके उसको सूरन कन्दके पेटमें रक्खै, उसके ऊपर एक अँगूठा प्रमाण मट्टीका प्रलेप करके तुरन्त गजपुटमें पकावे तो अवश्य तांबा मरजायगा । इस प्रकार मराहुआ ताँबा कदापि वमन, विरेचन, भ्रम, ग्लानि, अरुचि, दाह, पसीना, अथवा उत्क्लेद नहीं करताहै ॥ ५६-६३ ॥

मारितताम्रगुणाः ।

ताम्रं कषायं मधुरं सतिक्तमम्लञ्च पाके कटु सारकं च ॥ पित्तापहं श्लेष्महरं च शीतं तद्रोपणं स्याल्लघु लेखनं च ॥ ६४ ॥ पाण्डूदराशोंज्वरकुष्ठकासश्वासक्षयान्पीन-

समम्लपित्तम् ॥ शोथं कृमीञ्शूलमपाकरोति प्राहुर्बुधा बृंहणमल्पमेतत् ॥६५॥ एको दोषो विषे ताम्रे त्वसम्यङ्मारिते पुनः ॥ दाहः स्वेदोऽरुचिर्मूर्च्छा क्लेदो रेको वमिर्भ्रमः ॥ ६६ ॥

रेकः विरेकः ॥

माराहुआ ताँबा—कसैला, मधुर, कडवा, खट्टा, पाकमे चरपरा, दस्तावर, पित्त तथा कफनाशक, शीतल, रोपण, हलका, लेखन और पाण्डु, उदररोग, बवासीर, ज्वर, कोढ, खाँसी, श्वास, क्षय, पीनस, अम्लपित्त, सूजन, कृमि तथा शूल, इनको नष्ट करैहै । पण्डित कहतेहैं कि—ताँवा अल्प पुष्टिकारक है । विषमे तो एकही दोष है, परन्तु भलीभाँति नही मारे हुए ताँवेमें दाह, पसीना, अरुचि, मूर्च्छा, ग्लानि, विरेचन, वमन और भ्रम ये आठ दोष रहतेहैं ॥ ६४–६६ ॥

वंगस्वरूपम् ।

वङ्गं च गिरिजं तच्च खुरकं मिश्रकं द्विधा ॥ तयोस्तु खुरकं श्रेष्ठं मिश्रकं त्वहितं मतम् ॥ ६७ ॥

वंग (राँग) पर्वतमे होतीहै और उसके खुरक तथा मिश्रक ये दो भेद हैं । इनमे खुरक उत्तम है और मिश्रक अहितकारी है ॥ ६७ ॥

अशुद्धवंगदोषाः ।

वङ्गं विधत्ते खलु शुद्धिहीनमाक्षेपकम्पौ च किलासगुल्मौ ॥ कुष्ठानि शूलं किल वातशोथं पाण्डुं प्रमेहञ्च भगंदरञ्च ॥ ॥ ६८ ॥ विषोपमं रक्तविकारवृन्दं क्षयञ्च कृच्छ्राणि कफज्वरञ्च । मेहाश्मरीविद्रधिमुष्करोगान्नागोऽपि कुर्यात्कथितान्विकारान् ॥ ६९ ॥

विना शोधाहुआ राग—आक्षेपकवात, कम्पवात, गुल्म, किलासकोढ, कोढ, शूल, वातसबंधी सूजन, पाण्डु, प्रमेह, भगंदर, विषके सदृश भयकर अनेक रुधिरसम्बन्धी विकार, क्षय, मूत्रकृच्छ्र, कफज्वर, पथरी, विद्रधि और अडकोषोके रोगोंको उत्पन्न करैहै । सीसाभी जो भलीभाँति शोधाहुआ न हो तो वह भी इन सब विकारोंको उत्पन्न करताहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

वंगशोधनविधिः ।

वङ्गनागौ प्रतप्तौ च गलितौ तौ निषेचयेत् ॥ त्रिधात्रिधा विशुद्धिः स्याद्रविदुग्धेऽपि च त्रिधा ॥ ७० ॥

निषेचयेत्तैलतक्रकाञ्जिकगोमूत्रकुलत्थक्वाथेषु प्रत्येकं त्रिधा त्रिधा ततोऽर्कदुग्धेऽपि त्रिधा ॥

राँग, सीसेको तपावै और गला गलाकर तेलमे, छाँछमे, काँजीमे, गोमूत्रमे और कुलथीके क्वाथमे तीन २ बार बुझावै, पीछे आकके दूधमें भी तीनवार बुझावै, इस प्रकार करनेसे दोनोकी शुद्धि होजाती है ॥ ७० ॥

वंगमारणविधिः ।

मृत्पात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चाश्वत्थत्वचोरजः ॥ क्षिप्त्वा वङ्गचतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत् ॥ ७१ ॥

चिञ्चा तिन्तिडी । रजः चूर्णम्, अयोदर्वी [लौहहाता] ॥

ततो द्वियाममात्रेण वङ्गभस्म प्रजायते ॥ अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन विमर्दयेत् ॥ ७२ ॥ ततो गजपुटे पक्का पुनरम्लेन मर्दयेत् ॥ तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् ॥ एवं दशपुटैः पक्कं वङ्गं भवति मारितम् ॥ ७३ ॥

मट्टीके पात्रमे ग[ला]एहुए राँगमे राँगसे चौथा भाग इमली तथा पीपलकी छालका चूर्ण डालकर लोहेकी करछीसे दो पहरतक घोटै, इस प्रकार करनेसे राँगकी भस्म होजातीहै पश्चात् उस भस्ममें उसकी बराबर ही हरताल डालकर फिर नीबूके रसमें खरल करै, पश्चात् उसको अग्निके गजपुटमें पकावै, फिर दशवाँ भाग हरताल डालकर नीबूके रसमे खरलकर एक पहरतक मर्दन करै और गजपुटमे पकावे, इसप्रकार दशपुट देनेसे राँग भली भाँति मरजाताहै ॥ ७१–७३ ॥

मारितवंगगुणाः ।

वङ्गं लघु सरं रूक्षं कुष्ठं मेहकफक्रिमीन् ॥

निहन्ति पाण्डुं सश्वासं नेत्र्यमीषत्तु पित्तलम् ॥ ७४ ॥ सिंहो गजौघं तु यथा निहन्ति तथैव वङ्गोऽखिलमेहवर्गम् ॥ देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥ ७५ ॥

वंग–हलकी, दस्तावर, रूक्ष, नेत्रोंको हितकारी, किंचित् पित्तकारक और कोढ, प्रमेह, कफ, कृमि, पाण्डु, तथा श्वासको नष्ट करैहै । जिसप्रकार सिंह हाथियोंके झुण्डको नष्ट करदेताहै, तिसी प्रकार वंगकी भस्म सम्पूर्ण प्रमेहोंको नष्ट करतीहै, देहमें सुख उत्पन्न करती है, इन्द्रियोंको बलवान् करतीहै और मनुष्यके शरीरमें निश्चय पुष्टि देतीहै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

जशदस्वरूपं गुणाश्च ।

जशदं गिरिजं तस्य दोषाः शोधनमारणे॥ वङ्गस्येव हि बोद्धव्या गुणांस्तु गणयाम्यथ ॥ ७६ ॥ जशदं च सरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत् ॥ चक्षुष्यं परमं मेहान्पाण्डुं श्वासञ्च नाशयेत् ॥ ७७ ॥

जस्ता पर्वतमें होताहै । जस्ताके दोष, शोधन और मारण, रॉगके सदृशही जानने । अब जस्तेके गुण कहताहूँ जस्ता–दस्तावर, कडवा, शीतल, कफ तथा पित्तनाशक, नेत्रोंको अत्यंत हितकारी और प्रमेह, पाण्डु तथा श्वासको नष्ट करैहै ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

नागशोधनविधिः ।

तस्य साहजिका दोषा रङ्गस्येव निदर्शिताः ॥ शोधनञ्चापि तस्यैव भिषग्भिर्गदितं पुरा ॥ ७८ ॥

रॉगमें जो दोष हैं वही शीशेमें स्वाभाविक हैं और शीशेका शोधन भी रॉगके सदृशही करै ऐसा प्राचीन वैद्योंने कहाहै ॥ ७८ ॥

नागमारणविधिः ।

ताम्बूलरससम्पिष्टशिलालेपात्पुनः पुनः ॥ द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थं भस्म जायते ॥ ७९ ॥

शिला, मनःशिला ॥

पानके रसमें मनशिलको खरलमें बारीक पीसकर शीशेपर प्रलेप करके गजपुट देवै, इसप्रकार वारवार प्रलेप करके अग्निकी बत्तीस पुट देनेसे शीशेकी निरुत्थ भस्म होजाती है ॥ ७९ ॥

अपरो नागमारणविधिः ।

अश्वत्थचिञ्चात्वक्चूर्णं चतुर्थांशेन निक्षिपेत् ॥ मृत्पात्रे विद्रुतो नागो लोहदर्व्या प्रचालितः ॥ ८० ॥ यामैकेन भवेद्भस्म तत्तुल्या स्यान्मनःशिला ॥ काञ्जिकेन द्वयं पिष्ट्वा पचेद्गजपुटेन च ॥ ८१ ॥ स्वाङ्गशीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया काञ्जिकेन च ॥ पुनः पचेच्छरावाभ्यामेवं षष्टिपुटैर्मृतिः ॥ ८२ ॥

मट्टीके पात्रमें शीशेको गलाकर उसमें शीशेसे चौथा भाग पीपलकी तथा इमलीकी छालका चूर्ण डालकर लोहेकी करछीसे एक प्रहरतक चलावे तो शीशेकी भस्म होजाती है । उस भस्मको बराबर मैनशिलको कॉजीमें पीसकर गजपुटमें पकावे, जब अग्नि शीतल होजाय तब फिर उस भस्मको तथा मनशिलको कॉजीमें पीसकर गजपुटमें पकावे, इसप्रकार अग्निकी साठपुट देनेसे शीशा भलीभाँति मरजाताहै ॥ ८०–८२ ॥

मारितशीशकगुणाः ।

सीसं रङ्गगुणं ज्ञेयं विशेषान्मेहनाशनम् ॥ ॥ ८३ ॥ नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति व्याधिं च नाशयति जीवनमातनोति ॥ वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति मृत्युञ्च नाशयति सन्ततसेवितः सः ॥ ८४ ॥

शीशेमें रॉगके सदृश गुण हैं और विशेष करके प्रमेहको नष्ट करैहै । जो शीशेको निरंतर सेवन करै तौ सौ हाथियोंके सदृश बलवाला होताहै । रोग नष्ट होतेहैं, जीवनका विस्तार होताहै । अग्नि प्रदीप्त होतीहै, कामदेवकी शक्ति बढतीहै और मृत्यु दूर होती है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अशुद्धलौहदोषाः ।

खञ्जत्वकुष्ठामयमृत्युकारी हृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीञ्च ॥ नानारुजानां च

तथा प्रकोपं कुर्याच्च हृल्लासमशुद्धलौहम् ॥ ८५ ॥

अशुद्ध लोहा खंजता (लूलापन), कुष्ठ, मृत्यु, हृदयरोग, शूल, पथरी, हृल्लास (सूखीरद, अर्थात् उवाकी) और अन्य अनेक रोगोको उत्पन्न करैहै ॥ ८५ ॥

लौहशोधनविधिः ।

पत्तलीकृतपत्राणि लौहस्याग्नौ प्रतापयेत्॥ निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च कांजिके ॥ ८६ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा ॥ एवं लौहस्य पत्राणां विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ ८७ ॥

लोहेके पतले करे हुए पत्रोको अग्निमें तपाकर तेलमे, छांछमे, काजीमे, गोमूत्रमे और कुलथीके काढेमे तीन तीन वार बुझावै, इस प्रकार करनेसे लोहकी शुद्धि होती है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

लौहमारणविधिः ।

शुद्धं लौहभवं चूर्ण पातालगरुडीरसैः ॥ मर्दयित्वा पुटेद्वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम् ॥ ॥ ८८ ॥ पुटत्रयं कुमार्याश्च ठारच्छिन्नकारसैः ॥ पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥ ८९ ॥

शुद्ध लोहेके चूर्णको पातालगरुडी (छिलहिटा) के रससे खरल करके शराव सपुटमें रख गजपुटमें फूंक देवै, इस प्रकार तीन वार गजपुटमें फूंके, पीछे घीकुवारके रसमे-पीस पीसकर तीन गजपुट देवै और फिर हड्सघारीके रसमे पीसकर छै गजपुट देवै इसप्रकार करनेसे लोहा मरजाताहै ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अन्यच्च–

क्षिपेच्च द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णतः ॥ मर्दयेत्कन्यकाद्रावैर्यामयुग्मं ततः पुटेत्॥ ॥ ९० ॥ एवं सप्तपुटैर्मृत्युं लौहचूर्णमवाप्नुयात् ।

लोहेके चूर्णमे दशवां भाग शिगरफ डालकर घीकुवारके रससे दोप्रहरतक खरलमे पीस अग्निकी पुट देवै, इस प्रकार अग्निकी सात पुट देनेसे लोहेका चूर्ण मरजाताहै ॥ ९० ॥

लौहमारणस्य तृतीयो विधिः ।

सत्योऽनुभूतो योगेन्द्रैः क्रमोऽन्यो लौहमारणे ॥ ९१ ॥ कथ्यते रामराजेन कौतूहलधियाऽधुना ॥ सूतकाद्विगुणं गन्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ॥ ९२ ॥ द्वयोः समं लौहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ यामयुग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पात्रके ॥ ९३ ॥ घर्मे धृत्वा रुवूकस्य पत्रैराच्छादयेद्बुधः॥ यामद्वयाद्भवेदुष्णं धान्यराशौ न्यसेत्ततः ॥ ९४ ॥ दत्त्वोपरि शरावं तु त्रिदिनान्ते समुद्धरेत् ॥ पिष्ट्वा च गालयेद्वस्त्रादेवं वारितरं भवेत् ॥ ९५ ॥ दाडिमस्य दलं पिष्ट्वा तच्चतुर्गुणवारिणा ॥ तद्रसेनायसं चूर्ण सन्नीय प्लावयेदिति ॥९६॥ आतपे शोषयेत्तच्च पुटेदेवं पुनःपुनः ॥ एकविंशतिवारैस्तन्म्रियते नात्र संशयः ॥ एवं सर्वाणि लोहानि स्वर्णादीन्यपि मारयेत् ॥ ९७ ॥

लोहेके मारनेमें बडे बडे योगियोंने जो सत्य अनुभव कियाहै, उसको कौतुक बुद्धिमे रामराज नामक वैद्य कहतेहैं सो यह है कि, पारेमें दूना गन्धक डालकर कजली करै, पश्चात् उस कजलीके समान लोहेका चूर्ण उसमे-डालकर घीकुवारके रससे दो प्रहरतक खरलमें मर्दन करै, पश्चात् इस चूर्णका गोला बना तांबेके पात्रमें रख धूपमें धर देवै और चारों ओरसे अण्डके पत्ते ढकदेवै इस प्रकार करनेसे दोपहरमें गरम होजाताहै, पश्चात् उसको शरावमें रख धान्योंके समूहमें तीन दिनतक गाडदेवै, फिर बाहर निकाल पीसकर कपडेमे छान लेवै, इस प्रकार करनेसे यह चूर्ण पानीमें तैरने लगताहै, फिर इस चूर्णको चौगुने पानीसे पीसे हुए अनारके पत्तोंमें भिजोकर धूपमें सुखावै पश्चात् अग्निकी पुट देवै, इस प्रकार वारवार सुखाकर इकतीस पुट देवै तौ लोहेका चूर्ण निःसन्देह मरजाताहै । सुवर्ण आदि अन्य धातुएँभी इस रीतिसे मरसक्तीहैं ॥ ९१–९७ ॥

मारितलोहगुणाः ।

लोहं तिक्तं सरं शीतं कषायं मधुरं गुरु ॥ रूक्षं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् ॥ ९८ ॥ कफं पित्तं गरं शूलं शोफार्शःप्लीहपाण्डुताः ॥ मेदोमेहकृमीन्कुष्ठं तत्किट्टं तद्वदेव हि ॥ ९९ ॥ गुञ्जामेकां समारभ्य यावत्स्युर्नवरक्तिकाः ॥तावल्लोहं समश्नीयाद्यथादोषानलं नरः ॥ १०० ॥ कूष्मांडं तिलतैलं च माषान्नं राजिकां तथा ॥ मद्यमम्लरसश्चैव वजयल्लोहसेवकः ॥ १०१ ॥

लोहा, कडवा, दस्तावर, शीतल, कसैला, मधुर, भारी, रूखा, आयुःस्थापक, नेत्रोको हितकारी, लेखन, वातकारक और कफ, पित्त, विष, शूल, सूजन, बवासीर, प्लीहा, पाण्डुता, मेद, प्रमेह, कृमि तथा कोढको नष्ट करैहै । लोहेकी कीटम भी लोहेके सदृश ही गुण हैं । अब कफादिक दोषोंपर जठराग्निका बलाबल विचारकर एक रत्तीसे नौरत्ती तक खावै । लोहका सेवन करनेवालेको पेठा (कुम्हडा), तिलका तेल, उडद, राई, मद्य और अम्लरस (खटाई) का त्याग करना चाहिये ॥९८–१०१॥

सर्वधातूनां मारणे साधारणो विधिः ।

शिलागन्धार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सर्वधातवः ॥ म्रियन्ते द्वादशपुटैः सत्यं गुरुवचो यथा ॥ १०२ ॥

श्रीगुरुके वचनोंपर विश्वास रखकर कहताहूँ कि, मनशिल और गन्धकको आकके दूधमें महीन पीस उससे वर्कवार लेप कर अग्निकी बारह पुट देवै, इसप्रकार करनेसे सुवर्णआदिक सर्व धातु मरजातीहैं ॥ १०२ ॥

अथोपधातूनां मारणप्रकारः ।

अशुद्धस्वर्णमाक्षिकदोषाः ।

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान् ॥ मालां तथैव व्रणपूर्विकाश्च कुर्यादशुद्धं खलु माक्षिकञ्च॥१॥

अशुद्ध सोनामाखी–अग्निकी मन्दता, बलकी हानि, उग्रविष्टम्भिता, नेत्ररोग, कोढ, (गण्डमाला) और व्रणसमूहको उत्पन्न करैहै ॥ १ ॥

स्वर्णमाक्षिकशोधनविधिः ।

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैंधवस्य च ॥ २ ॥ मातुलुङ्गद्रवैर्वाथ जम्बीरस्य द्रवैः पचेत् ॥ चालयेल्लोहजे पात्रे यावत्पात्रं सुलोहितम् ॥ भवेत्ततस्तु संशुद्धिः स्वर्णमाक्षिकमृच्छति ॥ ३ ॥

तीन भाग सोनामाखी और एक भाग सेंधानोन लेकर बिजौरे नींबूके रससे लोहेके पात्रमें पकावै, जबतक वह पात्र लाल न होजाय तबतक करछीसे चलाता रहे, इसप्रकार करनेसे सोनामाखी शुद्ध होजाती है ॥ २ ॥ ३ ॥

स्वर्णमाक्षिकमारणविधिः ।

कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत्॥ तक्रेण वाजमूत्रेण म्रियते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ ४ ॥

सोनामाखीको कुलथीके काढेमे, अथवा तेलमें, वा छाछमें, अथवा बकरेके मूत्रमें खरल करके अग्निकी पुट देवै तो सोनामाखी मरजातीहै ॥ ४ ॥

रूप्यमाक्षिकशोधनविधिः ।

स्वर्णमाक्षिकवद्दोषा विज्ञेयास्तारमाक्षिके॥ अतस्तद्दोषशान्त्यर्थं शोधनं तस्य कथ्यते ॥ ५ ॥ कर्कोटीमेषशृङ्ग्युत्थैर्द्रवैर्जम्बीरजैर्दिनम् ॥ भावयेदातपे तीव्रे विमला शुद्ध्यति ध्रुवम् ॥ ६ ॥

मेषशृङ्गी [मेढाशृङ्गी] विमला तारमाक्षिकम् ॥

रूपामाखीमें भी सोनामाखीके सदृशही दोष रहतेहैं ॥ इसकारण उन दोषोंकी शान्तिके लिये रूपामाखीकी शोधनविधि कहतेहैं । रूपामाखीको एक दिनतक ककोडा (खेखसा), मेढासिंगी और नींबूके रसमें पीसकर धूपमें सुखावै, इसप्रकार करनेसे रूपामाखी शुद्ध होतीहै॥५॥६॥

रूप्यमाक्षिकमारणविधिः।

कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत्॥ मरणं वाजमूत्रेण तारमाक्षिकमृच्छति॥७॥

रूपामाखीको कुलथीके काढेमे, तेलमें, छॉछमे, अथवा बकरेके मूत्रमे भली भाँति खरल कर अग्निकी पुट देवै तौ रूपामाखी मरजातीहै ॥ ७ ॥

स्वर्णमाक्षिकरूप्यमाक्षिकयोर्विशेषगुणाः।

न केवलं स्वर्णरूप्यगुणास्तापीजयोर्मताः॥ द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणास्तयोः ॥ ८ ॥ माक्षिकं मधुरं तिक्तं स्वर्यं वृष्यं रसायनम् ॥ चक्षुष्यं वस्तिरुक्कुष्ठं पाण्डुमेहविषोदरम् ॥ अर्शः शोफं क्षयं कण्डूं त्रिदोषञ्च नियच्छति॥९॥

सोनामाखीमे सोनेकेसदृश गुण रहतेहैं और रूपामाखीमे चाँदीके सदृश गुण रहतेहैं यही नही किन्तु इनमे अन्यपदार्थोंके संसर्ग होनेसे अन्यगुण भी रहतेहैं। सोना माखी तथा रूपामाखी–मधुर, कडवी, स्वरको उत्तम करनेवाली, वृष्य, रसायन, नेत्रोको हितकारी और वस्ति रोग, कोढ, पाण्डु, प्रमेह, विष, उदररोग, बवासीर, सूजन, क्षय, खुजली तथा वातादि तीनों दोषोको नष्ट करनेवाली है ॥ ८ ॥ ९ ॥

तुत्थशोधनविधिः।

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थं मार्जारककपोतयोः ॥ दशांशं टंकणं दत्त्वा पचेल्लघुपुटे ततः ॥ पुटं दध्ना पुटं क्षौद्रैर्देयं तुत्थविशुद्धये ॥ १० ॥

तूतिया (नीलाथोथा) मे दशवाँ भाग सुहागा डालकर खरलमे बिलावे तथा कबूतरकी विष्ठाके साथ मर्दन कर अग्निकी हलकी पुट देवै, पश्चात् दहीमे मर्दन कर पुट देवै फिर सहतमें मर्दन कर पुट देवै तौ नीलाथोथा शुद्ध होकर मरजाता है ॥ १० ॥

शुद्धतुत्थस्य गुणाः।

तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु ॥ लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥ ॥ ११ ॥ विषाश्मकुष्ठकण्डूघ्नं तद्गुणं खर्परं मतम् ॥ १२ ॥

तूतिया–चरपरा, खारा, कसैला, वमन करानेवाला, हलका, लेखन, दस्तावर, शीतल, नेत्रोंको हितकारी और कफ, पित्त, विष, पथरी, कोढ तथा खुजलीको नष्ट करै–है। खपरियामे भी येही गुण हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

कांस्यपित्तलशोधनविधिः।

अथ कांस्यस्य रीतेश्च शोधनं त्वभिधीयते ॥ पत्तलीकृतपत्राणि कांस्यस्याग्नौ प्रतापयेत्॥ निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ १३ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषायेऽत्र त्रिधात्रिधा ॥ एवं कांस्यस्य रीतेश्च विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ १४ ॥

काँसीके सूक्ष्म किये हुए पत्रोको अग्निमे तपाकर तेलमे, छाँछमे, काजीमे, गोमूत्रमे और कुलथीके काढेमे अनुक्रमसे तीन तीन बार बुझावै इसप्रकार करनेसे काँसी शुद्ध होजाताहै। पीतल भी इसीप्रकारसे शुद्ध होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

मारणविधिः।

अर्कक्षीरेण सम्पिष्टो गन्धकस्तेन लेपयेत्॥ समेन कांस्यपत्राणि शुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः ॥ १५ ॥ ततो मूषापुटे धृत्वा पचेद्गजपुटेन च ॥ एवं पुटद्वयात्कांस्यं रीतिश्च म्रियते ध्रुवम् ॥ १६ ॥

काँसीके पत्रोकी बराबर गन्धक लेकर आकके दूधमे पीसे पश्चात् नीबूके रससे वारवार स्वच्छ किये हुए पत्रोको लेपकर मूषा सम्पुटमें रख गजपुटकी अग्नि देवै, इस भाँति दो पुट देनेसे काँसी मरजातीहै। पीतल भी इसही विधिके करनेसे मरजाताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

मृतकांस्यरीत्योर्गुणाः।

कांस्यं कषायं तीक्ष्णोष्णं लेखनं विशदं सरम् ॥ गुरु नेत्रहितं रूक्षं कफपित्तहरं परम् ॥ १७ ॥ रीतिका तु भवेद्रूक्षा सतिक्ता लवणा रसे ॥ शोधिनी पाण्डुरोगघ्नी कृमिहृन्नातिलेखनी ॥ १८ ॥

काँसी–कसैली, तीक्ष्ण, गरम, लेखन, विशद, दस्तावर, भारी, नेत्रोको हितकारी, रूखी और कफ तथा पित्तको अत्यन्त नाशक है। पीतल–रूखा, कडवा, रसमे खारा (निमकीन) करनेवाला, देहको शोधन, पाण्डुरोगनाशक, कृमिहारक और अत्यन्त लेखनी नहीं है॥ १७ ॥ १८

सिन्दूरशोधनविधिः ।

दुग्धाम्लयोगतस्तस्य विशुद्धिर्गदिता बुधैः ॥ १९ ॥

सिन्दूरको दूधमे, तथा नींबूके रसमें दो दो पहर खरल करनेसे सिन्दूरकी शुद्धि होतीहै ॥ १९ ॥

सिन्दूरस्यगुणाः ।

सिन्दूर उष्णो वीसर्पकुष्ठकण्डूविषापहः ॥ भग्नसन्धानजननो व्रणशोधनरोपणः॥२०॥

सिन्दूर—गरम, विसर्प, कोढ, खुजली, तथा विषविनाशक, टूटी हड्डीको जोडनेवाला, व्रणको स्वच्छ करनेवाला, तथा व्रणरोपण है ॥ २० ॥

अथ शिलाजतुलक्षणं शोधनविधिश्च ।

गोमूत्रगन्धवत्कृष्णं स्निग्धं मृदु तथा गुरु॥ तिक्तं कषायं शीतञ्च सर्वश्रेष्ठं तदायसम् ॥ २१ ॥

आयसम् अयउपधातुसम्बन्धि ॥

विन्ध्यादौ बहुलं तत्तु तत्र लोहं यतोऽधिकम्॥तच्छोधनमृते व्यर्थमनेकमलमेलनात् ॥ २२ ॥ शिलाजतु समानीय सूक्ष्मं खंडं विधाय च ॥ निक्षिप्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत्सुधीः ॥ २३ ॥ मर्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम्॥ स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ॥ २४ ॥ उपरिस्थं घनं यत्स्यात्तत्क्षिपेदन्यपात्रके ॥ एवं पुनःपुनर्नीतं द्विमासाभ्यां शिलाजतु ॥ २५ ॥ भवेत्कार्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिंगोपमं भवेत् ॥ निर्धूमश्च ततः शुद्धं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २६ ॥

जो शिलाजीत—गोमूत्रके सदृश गन्धवाला, काला, चिकना, कोमल, भारी, कडवा, कसैला और शीतल हो वह शिलाजीत सर्वोत्तम जानना। शिलाजीत लोहेकी उपधातु है, विन्ध्याचल आदि पर्वतोंमे अधिक होताहै क्योंकि इन पर्वतोंमे ही लोहा अधिक होताहै। शिलाजीतमें अनेक प्रकारके मलादिक मिले होतेहैं इसकारण विना शोधाहुआ व्यर्थ है। शिलाजीतके सूक्ष्म टुकडे करके अत्यन्त गरम जलमें डालें और तक पडे रहने देवें पश्चात् पानीको सफेद वस्त्रसे छानकर लेवें, इस पानीको मट्टीके पात्रमें डालकर धूपमे रक्खें, धूपमें रहनेसे पानीके ऊपर जमीहुई मलाईको लेकर बडे दूसरे बासनमे रक्खें, उस मलाईको फिर गरम जलका सस्कार देवे, पश्चात् घोलकर पानीको वस्त्रमे छान लेवे, फिर मट्टीके बासनमे भरके धूपमें रक्खें, धूपमें रहनेसे पानीके ऊपर आईहुई मलाईको लेकर फिर तीसरे पात्रमे डाले, इसभाँति दो महीनेतक वारवार करनेसे जब पानीके ऊपर मलाई नहीं आवे और सब काला भाग नीचे ही रहजाय तौ शिलाजीतके काले भागको शुद्ध हुआ जाने। जो शिलाजीत—अग्निके ऊपर डालनेसे लिंगके सदृश हो जाय और धुआँ न निकले तौ शिलाजीतको शुद्ध और कार्यमे उपयोगी जानकर सम्पूर्ण कार्योंमे लावै॥ २१ ॥ २६ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

तत्र प्रथमतस्तस्य बहिर्मलमपाकर्त्तु केवलजलेन प्रक्षालनं कर्त्तव्यम् । ततस्तदन्तर्गतमृत्तिकासिकतादिदोषदूरीकरणाय वक्ष्यमाणक्काथेन तत्र भावना देया । तदाह वाग्भटः—

व्याधिव्याधितसात्म्यं समनुसरन्भावयेदयःपात्रे॥प्राक्केवलजलधौतं शुष्कं क्वाथैस्ततो भाव्यम् ॥ २७ ॥ तुल्यं गिरिजेन जले वसुगुणिते भावनौषधं क्वाथ्यम् ॥ तत्क्वाथे पादांशे पूतोष्णे प्रक्षिपेद्गिरिजम्॥ ॥२८॥तत्समरसतां यातं संशुष्कं प्रक्षिपेद्रसे भूयः॥स्वैःस्वैरेवं क्वाथैर्भाव्यं वाराञ्भवेत्सप्त ॥ २९ ॥ अथ स्निग्धस्य शुद्धस्य घृतं तिक्तकसाधितम् ॥ त्र्यहं युञ्जीत गिरिजमेकैकेन तथा त्र्यहम् ॥ ३० ॥ फलत्रयस्य यूषेण पटोल्या मधुकस्य च ॥

शिलाजमेवं देहस्य भवत्यत्युपकारकम् ॥ ३१ ॥

प्रथम तौ बाहरके मैलको दूर करनेके लिये केवल जलसे शिलाजीतको धोवै और पीछे उसके भीतर रहनेवाली मट्टी और रेती आदि दोषको दूर करनेके लिये जो क्काथ नीचे लिखा है उस क्काथसे भावना देवैं। वाग्भट कहतेहैं कि–"रोग और रोगीको जो क्काथ अनुकूल हो उसका विचार करके शिलाजीतके टुकडोको उस क्काथसे लोहेके पात्रमे भावना देवै। वह इसप्रकार है कि, प्रथम केवल जलसे धोकर सुखावे, पश्चात् शिलाजीतकी बराबर भावना देनेकी औषधि लेकर उसका आठगुने जलमे क्काथ करै, जलकर चौथा भाग जल जब शेष रहै तब उस गरम जलको छानकर उसमे शिलाजीत डालै, जब शिलाजीत पानीमे एक रस होजाय तब उसको सुखाकर फिर नये क्काथमे डालै, इसप्रकार रोगके और रोगीके हितके लिये उस क्काथकी सातवार भावना देवै, पश्चात् स्निग्ध किये हुए और शुद्ध किये हुए मनुष्यको तीन दिनतक तिक्तक घी खिलावै, पश्चात् तीन दिनतक हरड, बहेडा और आमलोके क्काथके साथ शिलाजीत खिलावै, पश्चात् तीन दिनतक परवलके क्काथ और उसके पीछे मुलहटीके क्काथके साथ शिलाजीत सेवन करावै। इसप्रकार सेवन कराया हुआ शिलाजीत शरीरको उपकारी है" ॥ २७–३१ ॥

क्काथद्रव्याणां भावनाफलञ्चाह हारीतः।
लोहस्थितं निम्बगुडूचिसर्पिर्यवैर्यथावत्परिभावयेत्तत् ॥ सन्तानिकाकीटपतंगदंशदुष्टौषधीदोषनिवारणाय ॥ ३२ ॥

सन्तानिका तद्वहिःसंलग्नमृत्तिकादिमयी। एवं भावनां दत्त्वा संशोष्य केवलेन जलेन शोधनं कर्त्तव्यम् ॥

तत्प्रकारमाह अग्निवेशः–
उष्णे च काले रवितापयुक्ते व्यभ्रे निवाते समभूमिभागे ॥ चत्वारि पात्राण्यसितायसानि न्यस्यातपे तत्र कृतावधानः ॥ ३३॥

१ अडूसा, नीम, गिलोय कटेरी और परवल, इन सबका कल्क डालकर जो घी बनाया जाय उसको तिक्तक घी कहतेहैं।

शिलाजतु श्रेष्ठमवाप्य पात्रे प्रक्षिप्य तस्माद्द्विगुणश्च तोयम् ॥ उष्णं तदर्द्धं क्वथितञ्च दत्त्वा विशोधयेत्तन्मृदितं यथावत् ॥ ३४॥
ततस्तु यत्कृष्णमुपैति चोर्द्धं सन्तानिकावद्रविरश्मितप्तम् ॥ पात्रे वदन्यत्र ततो निदध्यात्तत्रापरं कोष्णजलं क्षिपेच्च ॥ ३५ ॥ पुनश्च तस्मादपरत्र पात्रे पश्चाच्च पात्रादपरत्र भूयः ॥ यदा विशुद्धं जलमेवमूर्ध्वं कृष्णं समस्तं मलमेत्यधस्तात् ॥ ३६ ॥ तदा त्यजेत्तत्सलिलं मलञ्च शिलाजतु स्याज्जलशुद्धमेवम् ॥ ३७ ॥

क्काथके पदार्थोंकी भावना देनेके फलके विषयमे हारीत कहते हैं कि–"शिलाजीतको पात्रमें रख नीम, गिलोय, घी और जौके क्काथकी सम्पूर्ण रीतिसे भावना देवै कि–जिससे शिलाजीतके भीतर लगीहुई मट्टी कीडा, पतग आदिके दंशका दोष और दुष्ट औषधिके संसर्गसे हुआ दोष नष्ट होजाता है" इसभाँति भावना देकर सुखानेके पीछे केवल जलसे स्वच्छ करै उसकी रीतिके विषे अग्निवेश मुनि कहते हैं कि–" बादलोंके संसर्ग विना उष्णकालमें जब सूर्यका तेज होय और वायुका वेग न होय ऐसे समभूमिके भागमे लोहेके चार पात्र रख सावधानतासे उत्तम शिलाजीत डालै, प्रथम उसको एक पात्रमें डालै फिर शिलाजीतसे दूना जो जल जलते जलते आधा शेष रहाहो ऐसा जल डालै, इस जलमे भलीभाँति उसको मलकर धूपमे रक्खै, सूर्यकी किरणोके तेजसे पानीके ऊपर जो काली मलाई आवै उसको लेकर दूसरे पात्रमे डालै और उसमें भी कुछ गरम जल डालै, धूपमे सुखाते सुखाते जब इसके ऊपर काली मलाई आवै उसको लेकर तीसरे पात्रमें डालै और उसमे भी किंचित् गरम जल डालकर धूपमें सुखावैं, इस पानीके ऊपर जो काली मलाई आवै उसको लेकर चौथे पात्रमे डालै और उसमे भी किंचित् उष्ण जल डालकर धूपमे रक्खै, इसप्रकार करनेसे ऊपर उत्तम जल आजाताहै और काला मैल नीचे रहता है जब ऐसा होजाय तब पानीको निकाल डालै और काला मैल जो नीचे रहा है उसको जलसे शुद्ध हुआ शिलाजीत जानै ॥ ३२–३७ ॥

शोधितशिलाजतुगुणाः ।

शिलाजतु स्मृतं तिक्तं कटूष्णं कटुपाकि च ॥ रसायनं योगवाहि श्लेष्ममेहाश्मशर्कराः ॥ ३८ ॥ मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं शोथमर्शांसि पाण्डुताम् ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठमपस्मारोदरं हरेत् ॥ ३९ ॥

शिलाजीत—कडवा, चरपरा, गरम, पाकमें भी चरपरा, रसायन, योगवाही और कफ, प्रमेह, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ, क्षय, श्वास, सूजन, बवासीर, पाण्डु, वातरक्त, कोढ, अपस्मार (मृगी) तथा उदररोगको नष्ट करै है ३८॥ ३९॥

अथ रसस्य शोधनविधिः ।

तत्रादौ स्वेदनम् ।

नानाधान्यैर्यथाप्राप्तैस्तुषवर्जैर्जलान्वितैः॥ मृद्भाण्डं पूरितं रक्षेद्यावदम्लत्वमाप्नुयात् ॥ १ ॥ तन्मध्ये भृंगरा मुण्डी विष्णुक्रान्ता पुनर्नवा ॥ मीनाक्षी चैव सर्पाक्षी सहदेवी शतावरी ॥ २ ॥ त्रिफला गिरिकर्णी च हंसपादी च चित्रकम् ॥ समूलं कुट्टयित्वा तु यथालाभं विनिक्षिपेत् ॥ ३ ॥

विष्णुक्रान्ता गिरिकर्णी च अपराजितैव श्वेतनीलपुष्पभेदात् ॥

पूर्वाम्लभाण्डमध्ये तु धान्याम्लकमिदं स्मृतम् ॥ स्वेदनादिषु सर्वत्र रसराजस्य योजयेत् ॥ अत्यम्लमारनालं वा तदभावे प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

तदभावे धान्याम्लाभावे ॥

त्र्यूषणं लवणं राजी रजनी त्रिफलार्द्रकम् ॥ महाबला नागबला मेघनादः पुनर्नवा ॥ ५ ॥ मेषशृंगी चित्रकश्च नवसारं समं समम् ॥ एतत्समस्तं व्यस्तं वा पूर्वाम्लेनैव पेषयेत् ॥ ६ ॥ प्रलिम्पेत्तेन कल्केन वस्त्रमंगुलमात्रकम् ॥ तन्मध्ये निक्षिपेत्सूतं बद्ध्वा तत्रिदिनं पचेत् ॥ दोलायन्त्रेऽम्लसंयुक्ते जायते स्वेदितो रसः ॥ ७ ॥

मेघनादः 'चौलाई' इति शाकविशेषः । मेषशृंगी [मेढाशृंगी] तदलाभे कर्कटशृंगी ग्राह्या । नवसारं नवसादरम् ॥

मट्टीके पात्रमें जल भरकर तुषरहित जो धान्य प्राप्त हो वह धान्य डालकर जबतक खट्टापन आवे तबतक ऐसाही रक्खा रहनेदेवे, पश्चात् उस कॉजीवाले पात्रमें भँगरा, गोरखमुडी, कोयल, पुनर्नवा, मछेछी, सरफोंका, सहदेई, सनावर, हरड, बहेडा, आमला, सफेद फूलकी कोयल, हसपदी (लज्जालू) और चित्रक, इन औषधियोंमेंसे जितनी मिले उनकोही जडसहित कूटकर डाले, इसको धान्याम्लक कहतेहैं । पारेके स्वेदनआदि संस्कारोंमें सर्वस्थानोके विषे इनकाही उपयोग करे । जहाँ यह धान्याम्लक न होय वहाँ आरनाल (तुषरहित कच्चे अथवा पक्के गेहुओंकी कॉजी)का उपयोग करे, फिर सोंठ, मिरच, पीपल, लवण, राई, हलदी, हरड, बहेडा, आमला, अदरख, कघी, खिरैटी, चौलाई, पुनर्नवा, मेढासिंगी, चीता और नवसादर, इन सबको समान भाग लेकर सबको अथवा एक एकको उपरोक्त धान्याम्लकसे पीसकर कल्क करे, उस कल्कसे वस्त्रको एक अंगुल मोटा लेपकरे, लेप किये हुए वस्त्रमें पारा बाँधकर काँजी भरेहुए दोलायत्रमें तीनदिनतक स्वेदनदेवे, इस प्रकार करनेसे पारा स्वेदित होताहै । उपरोक्त औषधियोंमें मेढासिंगी न मिले तो काकडासिंगी लेवै ॥ १–७ ॥

अन्यच्च ।

मूलकानलसिन्धूत्थत्र्यूषणार्द्रकराजिकाः ॥ रसस्य षोडशांशेन द्रव्यं युञ्ज्यात्पृथक्पृथक् ॥ ८ ॥ द्रव्येष्वनुक्तमानेषु मतं मानमितं बुधैः ॥ पट्टावृतेषु चैतेषु सूतं प्रक्षिप्य काञ्जिके ॥ ९ ॥ स्वेदयेदिनमेकञ्च दोलायन्त्रेण बुद्धिमान् ॥ स्वेदात्तीव्रो भवेत्सूतो मर्दनाच्च सुनिर्मलः ॥ १० ॥

मूलकम् मुरई मूली वा इति लोके ॥ अनलश्चित्रकम् । त्र्यूषणं त्रिकटु। राजिका [राई] ॥

इष्टिकाचूर्णचूर्णाभ्यामादौ मर्द्यो रसस्ततः ॥ दध्ना गुडेन सिन्धूत्थराजिकागृहधूमकैः ११

अन्यच्च।

कुमारिकाचित्रकरक्तसर्षपैः कृतैः कषायैर्बृहतीविमिश्रितैः॥ फलत्रिकेणापि विमर्दितो रसो दिनत्रयं सर्वमलैर्विमुच्यते ॥१२॥

मूली, चीतेकी छाल, सेधानोन, सोठ, मिर्च, पीपल, अदरख और राई, इनमेसे प्रत्येक पदार्थ पारेसे सोलहवॉ भाग लेकर कल्ककरे, "जहॉ पदार्थोका प्रमाण न कहा होय वहॉ सोलहवॉभाग प्रमाणलेवे" ऐसा विद्वानोने कहा है। पश्चात् उस कल्कको वस्त्रपै लेपकर उसमे पारा बॉधै, फिर कॉंजीसे भरेहुए दोला यत्रमे एक दिनतक स्वेददेवे। इस प्रकार स्वेद देनेसे पारा तीव्र होजाताहै और नीचेके अनुसार पीसनेसे बहुत निर्मल होताहै। स्वेद देनेके पीछे ईटोंके चूर्णसे और चूनेसे पारेको पीसकर पश्चात् दही, गुड, सेधानोन, राई और घरके धुएँ खरल करके अथवा घीकुवार, चीता, लालसरसों, कटेरी, हरड, वहेडा और आमला, इनका क्वाथ करके तीनदिन इस क्वाथमें पारेको खरल करे तो पारा सर्वमलरहित (स्वच्छ) होजाता है ॥ ८-१२ ॥

मूर्च्छनविधिः।

त्र्यूषणं त्रिफलावन्ध्याकन्दैः क्षुद्राद्वयान्वितैः ॥ चित्रकोर्णानिशाक्षारकन्यार्ककनकद्रवैः ॥ १३ ॥ सूतं कृतेन यूषेण वारान्सप्त विमर्दयेत् ॥ इत्थं सम्मूर्च्छितः सूतस्त्यजेत्सप्तापि कंचुकान् ॥ १४ ॥

वन्ध्याकन्दः [वॉझ कांकुड] । क्षुद्राद्वयम् [छोटी कटाई बडी कटाई] ऊर्णा, [मेषकी उर्णा] निशा हरिद्रा। क्षारः यवक्षारः । कन्या कुमारिका। अर्कः अर्कपत्ररसः। कनकः धत्तूरपत्ररसः ॥

हरड, बहेडा, आमला, सोठ, मिर्च, पीपल, बॉझककोडेका कन्द, कटेरी, बडीकटेरी, चीता, ऊन, हलदी, जवाखार, घीकुमारका रस, आकके पत्तोंका रस और धतूरेके पत्तोका रस, इनका क्वाथ करके इस क्वाथसे पारेको सातवार मर्दन करै, इसप्रकार करनेसे पारा मूर्च्छित होजाताहै, इसप्रकार मूर्च्छित किया हुआ पारा सातो कॉचलियोसे रहित होजाताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

ऊर्ध्वपातनविधिः।

मयूरग्रीवताप्याभ्यां नष्टपिष्टीकृतस्य च॥ यन्त्रे विद्याधरे कुर्याद्रसेन्द्रस्योर्ध्वपातनम् ॥ १५ ॥

ताप्यम् सुवर्णमाक्षिकम् । नष्टपिष्टीकृतस्य, कुमारिकाद्रवयोगेन तावत् मर्दनं कर्त्तव्यं यावत् पारदः पृथक् न दृश्यते इत्यर्थः । विद्याधरयन्त्रे, डमरुयन्त्रे ॥

घीकुआरके रसमे नीलाथोथा तथा सोनामाखीके साथ इस पारेको इस भॉति खरलकरे कि-जिससे पारा अलग न दीखे, पश्चात् उसको डमरूयत्रमे डालकर उडालेवे इसको ऊर्द्धपातन कहतेहैं ॥ १५ ॥

अधःपातनविधिः।

त्रिफलाशिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः ॥ नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्ध्वभाजनम् ॥ ॥ १६ ॥ ततो दीप्तैरधःपातमुपलैस्तस्य कारयेत्। यन्त्रे भूधरसंज्ञे तु ततः सूतो विशुध्यति ॥ १७ ॥ स्वेदनादिक्रियाभिस्तु शोधितोऽसौ यदा भवेत् ॥ तदैव धीमता नित्यं प्रयोज्यः सर्वकर्मसु ॥१८॥

हरड, बहेडा, आमला, सहिजना, चीता, लवण और राई, इनके साथ घीकुवारके रससे पारेको इस प्रकार खरलकरे कि, जिससे पारा अलग न दीखे, पश्चात् उस पारेकी ऊपरकी हॉडीमे चुपडकर भूधर यन्त्रमे रख ऊपर उपलोको सुलगाकर नीचेकी हॉडीमे पातनकरे । स्वेदन, मूर्च्छन, ऊर्द्धपातन और अधःपातनरूप क्रियाओसे जब पारेकी शुद्धि होजाय तब पारा सम्पूर्ण काम करता है और सपूर्ण प्रयोगमे उपयोग करने योग्य होताहै ॥ १६-१८॥

मुख्यदोषहरणार्थ शोधनविधिः।

गृहकन्या हरति मलं त्रिफलाऽग्निं चित्रको विषं हन्ति ॥ तस्मादेभिर्मिश्रैर्वारान्संमूर्च्छयेत्सप्त ॥ १९ ॥

घीकुवार पारेके मैलको नष्ट करताहै, हरड, बहेडा तथा आमले पारेकी अग्निको नष्ट करतेहैं और चीता पारेके विषको दूर करताहै, इस कारण इन सबको एकत्रकर इनमे सातवार पारेको खरलमें मर्दन करे (एक वारका रस जब सूखजाय तब दूसरीवार डाले इसप्रकार सातवार करे) ॥ १९ ॥

सर्वदोषहरसंक्षिप्तशोधनविधिः।

कुमारिकाचित्रकरक्तसर्षपैः कृतैः कषायैर्बृहतीविमिश्रितैः ॥ फलत्रिकेणापि विमर्दितो रसो दिनत्रयं सर्वमलैर्विमुच्यते ॥२०॥ कुमार्या च निशाचूर्णैर्दिनं सूतं विमर्दयेत् ॥ एवं कदर्थितः सूतो षण्डो भवति निश्चितम् ॥ २१ ॥ बह्वौषधिकषायेण स्वेदितः स बली भवेत् ॥ सर्पाक्षीचिञ्चिकावन्ध्याभृंगाब्दैः स्वेदितो बली॥ ततः स पावकद्रावैः स्विन्नः स्यादतिदीप्तिमान् ॥ २२ ॥

सर्पाक्षी [नागफणी],चिञ्चिका [इमली],वन्ध्याः [वांझककोडा], भृङ्गः, भृंगराजः। अब्दः, मुस्ता । पावकः, चित्रकम् ॥

घीकुवार, चीता, लाल सरसों, कटेरी, हरड, बहेडा और आँवलेका काथ करके इससे तीन दिनतक खरलमे पारेको मर्दन करे इसप्रकार करनेसे पारा सम्पूर्ण मलोंसे रहित होजाताहै पश्चात् घीकुवारके रससे और हलदीसे एक दिनतक पारेको मर्दन करे इसप्रकार करनेसे पारा निःसन्देह नपुंसक होजाता है। फिर नागफनी, इमली, वांझककोडा, भांगरा और नागरमोथा, इनके काथमे दोलायन्त्रसे पारेको स्वेदन करे तो पारा बलवान् होजाताहै । पश्चात् चीतेके काथमे इसही प्रकार स्वेदन करे तो पारा अत्यन्त दीप्तिमान् होजाताहै ॥ २०–२२ ॥

पारदमारणविधिः।

धूमसारं रसं तोरीं गन्धकं नवसादरम् ॥ यामैकं मर्दयेदम्लैर्भागं कृत्वा समं समम् ॥ २३ ॥ काचकूप्यां विनिक्षिप्य ताञ्च मृद्वस्त्रमुद्रया ॥ विलिप्य परितो वक्त्रे मुद्रां दत्त्वा विशोषयेत् ॥ २४ ॥ अधः सच्छिद्रपिठरीमध्ये कूपीं निवेशयेत् ॥ पिठरीं वालुकापूरैर्भृत्वा चाकूपिकागलम् ॥ २५ ॥ निवेश्य चुल्ल्यां तदधो वह्निं कुर्याच्छनैःशनैः ॥ तस्मादप्यधिकं किञ्चित्पावकं ज्वालयेत्क्रमात् ॥ २६ ॥ एवं द्वादशभिर्यामैर्म्रियते रस उत्तमः ॥ स्फोटयेत्स्वांगशीतं तमूर्ध्वगं गन्धकं त्यजेत् ॥ २७ ॥ अधस्थञ्च मृतं सूतं गृह्णीयात्तं तु मात्रया ॥ यथोचितानुपानेन सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २८ ॥

घरका धुआँ, पारा फटकरी, गंधक और नौसादर इन पाचोको समान भाग लेकर एक प्रहरतक नींबूके रससे खरल करे, फिर कांचकी शीशीमें भरकर शीशीके चारो ओर कपरौटी करे, फिर मुखपर डाट लगाकर धूपमें सुखावे, पश्चात् जिसके नीचे छोटासा छेद होय ऐसी हाडीमें शीशी रखके हाडीमें शीशीके गलेतक रेतभर देवे, फिर चूल्हेपै चढाकर उसके नीचे मन्द मन्द अग्नि देवे और फिर अनुक्रमसे उस अग्निको बढाता जावे, इस प्रकार करनेपर बारह पहरमे पारा मरजाताहै; वह उत्तम होताहै । पश्चात् जब शीशी शीतल होजाय तब उसको फोड डाले और ऊपर लगाहुआ गन्धक छोडकर नीचेका मराहुआ पारा ले लेवे, इस पारेकी योग्य मात्रासे और योग्य अनुपानसे सर्व कामोंमे उपयोग करे ॥ २३–२८ ॥

पारदमारणेऽपरो विधिः।

अपामार्गस्य बीजानां मूषायुग्मं प्रकल्प-

येत् । तत्सम्पुटे क्षिपेत्सूतं मलयूदुग्धमिश्रितम् ॥ २९ ॥

मलयूः काकोदुम्बरिका ।

द्रोणपुष्पीप्रसूनानि विडङ्गमरिमेदकः ॥ एतच्चूर्णमधश्चोर्द्ध्वं दत्त्वा मुद्रा प्रदीयते ३० ॥ तद्गोलं स्थापयेत्सम्यङ् मृन्मूषासम्पुटे पचेत् ॥ एवमेकपुटेनैव सूतकं भस्म जायते ॥ तत्प्रयोज्यं यथास्थाने यथामात्रं यथाविधि ॥ ३१ ॥

चिरचिटेके बीजोंको पीसकर दो मूषा बनालेवै, पश्चात् उसमें कठूमरके रससे घुटाहुआ पारा रक्खै, फिर गूमाके फूल, वायविडग और काला खैर इनका चूर्ण लेकर पारेके ऊपर तथा नीचे रखदेवे, फिर सपुटकी सन्धि बन्द करदेवे तदनन्तर इस मूषाको मट्टीकी मूषामें रख कपरमट्टी कर अग्निकी पुट देवै, इस प्रकार एक पुट देनेसे ही पारेकी भस्म होजायगी, इस भस्मको योग्य स्थानमें, योग्य मात्रासे और योग्यरीतिसे कार्यमें लावे ॥ २९-३१ ॥

पारदमारणस्य तृतीयो विधिः ।

काकोदुम्बरिकादुग्धे रसं किञ्चिद्विमर्दयेत् ॥ तद्दुग्धघृष्टहिंगोश्च मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ ३२ ॥ क्षिप्त्वा तत्संपुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रदापयेत् ॥ धृत्वा तद्गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषासम्पुटेऽधिके ॥ पचेद्गजपुटेनैव सूतकं याति भस्मताम् ॥ ३३ ॥

प्रथम कठूमरके दूधसे पारेको किञ्चित् मर्दन करै, फिर इसी दूधसे हींगको पीसकर दो मूषा बनावे; फिर पारेको संपुटमें रख सन्धि बन्दकरके उस संपुटके गोलेको मोटी मट्टीकी मूषामें रक्खे और फिर कपरमट्टी करके गजपुटमे फूक देवै, इस प्रकार करनेसे पारेकी भस्म होजाती है ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥

अन्यप्रकारः ।

नागवल्लीरसैर्घृष्टः कर्कोटीकन्दगर्भितः ॥ मृन्मूषासम्पुटे पक्कः सूतो यात्येव भस्मताम् ॥ ३४ ॥

पारेको पानोंके रसमें मर्दन करके बाँझककोडे (बाँझखेखसा) के कन्दमे रख बन्दकर फिर मिट्टीकी मूषामे रख कपरमट्टी करके गजपुटमे फूँक देवै, इसप्रकार करनेसे पारेकी भस्म होजातीहै ॥ ३४ ॥

रसकर्पूरनिर्माणविधिः ।

तत्र पारदस्य संक्षिप्तं शोधनं कर्त्तव्यम् ।

शुद्धसूतसमं कुर्यात्प्रत्येकं गैरिकं सुधीः ॥ इष्टिकां खटिकां तद्वत्स्फटिकां सिन्धुजन्म च ॥ ३५ ॥ वल्मीकं क्षारलवणं भाण्डरञ्जकमृत्तिकाम् ॥ सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य वाससा चापि शोधयेत् ॥ ३६ ॥

खटिका [खडी] स्फटिका [फटकिरी] सिन्धुजन्म सैन्धवम् । वल्मीकम् बमई इति लोके । क्षारलवणम् [खारीनोंन] । भाण्डरञ्जकमृत्तिका [काविसा] ॥

एभिश्चूर्णैर्युतं सूतं यावद्यामं विमर्दयेत् ॥ तच्चूर्णसहितं सूतं स्थालीमध्ये परिक्षिपेत् ॥ ३७ ॥ तस्याः स्थाल्या मुखे स्थालीमपरां धारयेत्समाम् ॥ सवस्त्रकुट्टितमृदा मुद्रयेदनयोर्मुखम् ॥ ३८ ॥ संशोष्यमुद्रयेद्भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत् ॥ सम्यग्विशोष्य मुद्रां तां स्थालीं चुल्ल्यां विधारयेत् ॥ ३९ ॥ अग्निं निरन्तरं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् ॥ अङ्गारोपरि तद्यन्त्रं रक्षेद्यत्नादहर्निशम् ॥ ४० ॥ शनैरुद्घाटयेद्यन्त्रमूर्द्ध्वस्थालीगतं रसम् ॥ कर्पूरवत्सुविमलं गृह्णीयाद् गुणवत्तरम् ॥ ४१ ॥ तद्देवकुसुमचन्दनकस्तूरीकुंकुमैर्युक्तम् ॥ खादन्हरति फिरंगं व्याधिं सोपद्रवं सपदि ४२ विन्दति वह्नेर्दीप्तिं पुष्टिं वीर्यं बलं विपुलम् ॥ रमयति रमणीशतकं रसकर्पूरस्य सेवकः सततम् ॥ ४३

प्रथम पारेको ऊपर कहे अनुसार सक्षेपसे शुद्ध करै, पश्चात् गेरू, चूना, ईट, खडिया, फटकरी, सेंधानोन, बमईकी मट्टी, खारीनोंन और पात्ररँगनेकी मट्टी (काविस) इन

सबमेंसे प्रत्येकको पारेकी बराबर लेकर सबको पीसे और वस्त्रसे छानकर इस चूर्णसहित पारेको एक पहरतक मर्दन कर हॉडीमे रक्खे, पश्चात् उस हॉडीके ऊपर उलटी दूसरी हॉडी रखकर दोनो हॉडियोंके मुखकी सन्धिको वस्त्रसहित मट्टीसे बन्द करै और सुखाकर फिर उसके ऊपर कपरमट्टी करके फिर सुखावै और फिर कपरोटी करके भलीभॉति सुखावै, पश्चात् हॉडीको चूल्हेपर चढाके चार दिन तक अखड अग्नि देवे। अगारोंके ऊपर रखेहुए यंत्रकी यत्नपूर्वक रक्षा करै पश्चात् धीरेसे उस यन्त्रको उघाडकर ऊपरकी हॉडीमें आयाहुआ अत्यन्त गुणवान और कपूरके सदृश निर्मल पारेको ले लेवै, यह पारा रसकपूर कहाताहै। लौग, चन्दन, कस्तूरी और केसरके साथ यह रसकपूर खाया जाय तौ उपद्रवसहित फिरग नामक (गरमीका) रोग तत्काल शात होजाताहै, अग्निप्रदीपक, शरीरमें पुष्टिदाता, वीर्य तथा बलको अत्यत बढानेवाला है और रसकपूर सेवन करनेवाला पुरुष सौ स्त्रियोको भोग सक्ताहै ॥ ३५-४३ ॥

सिन्दूररसविधिः ।

शुद्धसूतस्य गृह्णीयाद्भिषग्भागचतुष्टयम् ॥ शुद्धगन्धस्य भागैकं तावत्कृत्रिमगन्धकम् ॥ ४४॥ अथ वा पारदस्यार्द्धं शुद्धगन्धकमेव हि ॥ तयोः कज्जलिकां कुर्याद्दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ ४५ ॥ मृत्तिकां वाससा सार्द्धं कुट्टयेदतियत्नतः ॥ तया वारत्रयं सम्यक्काचकूपीं प्रलेपयेत् ॥४६॥ मृत्तिकां शोषयित्वा तु कूप्यां कज्जलिकां क्षिपेत् ॥ तां कूपीं वालुकायन्त्रे स्थापयित्वा रसं पचेत् ॥ ४७ ॥ अग्निं निरन्तरं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् ॥ गृह्णीयादूर्द्ध्वसंलग्नं सिन्दूरसदृशं रसम् ॥ ४८ ॥

इति सिन्दूररसः ॥

वैद्य-शुद्ध किया हुआ पारा चारभाग, शुद्ध किया हुआ गंधक एक भाग और बनाहुआ गधक एक भाग लेवै अथवा शुद्ध किया हुआ पारा दो भाग लेवै और शुद्ध किया हुआ गधक आधा भाग लेवै पश्चात् पारेकी और गधककी कजली करके एक दिनतक घोटे, वस्त्रके साथ कूटी हुई मट्टीसे अत्यन्त यत्नपूर्वक कॉचकी शीशीपै तीनवार प्रलेप करके उसमे वह कजली रक्खे, इस शीशीको वालुकायन्त्रमे रख चार रात्रि दिनतक अखडित अग्नि देवै, पश्चात शीशीके ऊपरके भागमे लगा हुआ सिंदूरके सदृश पारा ले लेवै, इस पारेको रससिंदूर कहतेहैं ४४-४८॥

मारितमूर्च्छितपारदगुणाः ।

पारदः कृमिकुष्ठघ्नो जयदो दृष्टिकृत्सरः ॥ मृत्युहृच्च महावीर्यो योगवाही ज्वरापहः ॥ ॥ ४९ ॥ स्मृत्योजोरूपदो वृष्यो वृद्धिकृद्धातुवर्द्धनः ॥ षण्डत्वनाशनःशूरः खेचरः सिद्धिदः परः ॥ ५० ॥ पारदः सकलरोगहा स्मृतः षड्रसो निखिलयोगवाहकः॥ पञ्चभूतमय एष कीर्तितस्तेन तद्गुणगणैर्विराजते ॥ ५१ ॥

उक्तञ्च रसामृते ।

यस्य रोगस्य यो योगस्तेनैव सहयोजितः॥ रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जरवाजिनाम्५२

पारा-कृमि तथा कोढनाशक, जयकारक, नेत्रोंको उत्तम करनेवाला, दस्तावर, मृत्युनाशक, अत्यतवीर्यवान, योगवाही, जिस अनुपानसे देवे उसीके समान गुण करने वाला,ज्वरनाशक,स्मृति,ओज तथा रूपको देनेवाला, कामी पुरुषोंको हितकारी, वृद्धिकारक, धातुवर्द्धक, नपुसकतानाशक, आकाशमें विचरनेकी शक्तिको देनेवाला, वीरता और अनेक सिद्धिदायक है। रसामृत नामक ग्रन्थमें कहा है कि-"पारा सम्पूर्ण रोगनाशक, छः रसवाला और सब ससर्गी पदार्थोंके गुणोंको ग्रहण करनेवाला है। पारा पचभूतमय कहाताहै, इससे पॉचो भूतोंके गुणोंके समूह इसमे रहतेहैं" जिस रोगका जो उपाय है उसके साथ पारेका उपयोग करै तौ पारा मनुष्योके, हाथियोंके और घोडोंके उस रोगको नष्ट करै ॥ ४९-५२ ॥

अथोपरसानां शोधनविधिः।

तत्र हिंगुलशोधनविधिः ।

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम् ॥

सप्तवारान्प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ १ ॥

भेडके दूधमें तथा अम्लवर्ग (खटाई नीवू आदिके रस) मे हिंगुलकी यत्नपूर्वक सात भावना देवे तो सिंगरफ शुद्ध होजाताहै ॥ १ ॥

शोधितहिंगुलगुणाः।

तिक्तं कषायं कटु हिंगुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्तहारि ॥ हृल्लासकण्डूज्वरकामलाश्च प्लीहामवातौ च गरं निहन्ति ॥२॥

हिंगुल–कडवा, कसैला, चरपरा, नेत्ररोगनाशक और कफ, पित्त, हृल्लास, खुजली, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात, तथा विष (जहर) विनाशक है ॥ २ ॥

हिंगुलात्पारदनिष्कर्षणविधिः।

निम्बूरसैर्निम्बपत्ररसैर्वा याममात्रकम् ॥ घृष्ट्वा दरदमूर्द्धन्तु पातयेत्सूतयुक्तिवत् ॥ ३ ॥ तत्रोर्द्ध्वपिठरीलग्नं गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् ॥ शुद्धमेव हि तं सूतं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ ४ ॥

नींबूके रससे अथवा नींमके पत्तोके रससे एक प्रहरतक हिंगुलको मर्दनकर पारेके विषयमें कही हुई युक्तिके अनुसार पारेको ऊपर चढावे, हिंगुलका पारा शुद्ध होताहै; इसकारण इसको सम्पूर्ण कार्योमे उपयोग करै॥३॥४॥

अशुद्धगंधकदोषाः।

अशुद्धो गन्धकः कुर्य्यात्कुष्ठं पित्तरुजां भ्रमम् ॥ हन्ति वीर्य्यं बलं रूपं तस्माच्छुद्धः प्रयुज्यते ॥ ५ ॥

विना शुद्ध कियाहुआ गधक–कोढ, पित्तसबंधी रोग और भ्रमको उत्पन्न करैहै तथा वीर्य बल और रूपको नष्ट करैहै, इसकारण शुद्ध किया हुआ गंधकही उपयोग करै ॥ ५ ॥

गंधकशोधनविधिः।

लौहपात्रे विनिक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत् ॥ तप्ते घृते तत्समानं क्षिपेद्गन्धकजं रजः ॥ ६ ॥ विद्रुतं गन्धकं दृष्ट्वा तनुवस्त्रे विनिक्षिपेत् ॥ यथा वस्त्राद्विनिःसृत्य दुग्धमध्येऽखिलं पतेत् ॥ एवं स गन्धकः शुद्धः सर्वकर्मोचितो भवेत् ॥ ७ ॥

लोहेके पात्रमे घी डालकर अग्निमें गरम करै, गरम हुए घीमें उसके बराबरही गधकका चूर्ण डाले, जब गंधक पिघल जाय तब उसको इतने बारिक कपडेमें छोडै कि–जिससे वस्त्रसें स्रवकर दूधमे सब गंधक गिर जावै, इसप्रकार करनेसे गधक शुद्ध होजाता है और वह सम्पूर्ण कामोंमे उपयोगी होताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

शुद्धगंधकगुणाः ।

गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्य्योष्णस्तुवरः सरः ॥ पित्तलः कटुकः पाके कण्डूवीसर्पजन्तुजित् ॥ हन्ति कुष्ठक्षयप्लीहकफवातान्रसायनम् ॥ ८ ॥

गंधक–चरपरा, कडवा, उष्णवीर्य, दस्तावर, पित्तकारक, पाकमे चरपरा, जरा (वृद्धता) तथा मृत्युनाशक और खुजली, विसर्प, कृमि, कोढ, क्षय, प्लीहा, कफ तथा वातनाशक है ॥ ८ ॥

अशुद्धाभ्रकदोषाः।

पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदञ्च कुर्यात् ॥ हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यसह्यामशुद्धमभ्रं गुरु वह्निहृत्स्यात् ॥ ९ ॥

अशोधित अभ्रक–मनुष्योंको अनेक प्रकारकी पीडादायक, हृदयमें तथा पसलीमे असह्य पीडा उत्पन्न करनेवाला, भारी, जठराग्निको नष्ट करनेवाला और कोढ, क्षय तथा पाण्डुरोगकारक है ॥ ९ ॥

अभ्रकशोधनविधिः ।

कृष्णाभ्रकं धमेद्वह्नौ ततः क्षीरे विनिक्षिपेत् ॥ भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा तण्डुलीयाम्लयोर्द्रवैः ॥ भावयेदष्टयामं तदेवमभ्रं विशुद्ध्यति ॥ १० ॥

काले अभ्रकको कोयलोमे डालकर अग्निसे धमावै, जब अभ्रक लाल होजाय तब दूधमें डाले, पश्चात् उसके परत अलग अलग करके चौलाई और नींबूके रससे आठ पहरतक भावना देवै, इस प्रकार करनेसे अभ्रक शुद्ध होजाताहै ॥ १० ॥

अभ्रकमारणविधिः ।

कृत्वा धान्याभ्रकं तच्च शोषयित्वाऽथ मर्दयेत् ॥ अर्कक्षीरैर्दिनं खल्ले चक्राकारं च कारयेत् ॥ ११ ॥ वेष्टयेदर्कपत्रैश्च सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ पुनर्मर्द्य पुनः पाच्यं सप्तवारान्पुनःपुनः ॥ १२ ॥ ततो वटजटाक्वाथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ॥ म्रियते नात्र सन्देहः प्रयोज्यं सर्वकर्मसु ॥ १३ ॥ तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लोहपात्रे विपाचयेत् ॥ घृते जीर्णे तदभ्रन्तु सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ १४ ॥

नीचे लिखे अनुसार धान्याभ्रक करके सुखावे, पश्चात् खरलमें एक दिनतक आकके दूधसे मर्दनकरै, फिर उसकी टिकिया बनाकर आकके पत्तोंमें लपेट कर भली भाँति गजपुटमें रखके फूक देवै, इसप्रकार वारवार करके सात सात वार होनेपर बडकी जटाओंके क्वाथमें खरलमें मर्दन करके तीनवार गजपुटमें फूँके इसप्रकार करनेसे अभ्रक अवश्य मरजाताहै, फिर लोहेके पात्रमें भरे हुए अभ्रककी वरावर घी डालकर उसमें उस अभ्रकको पकावै, जब सब घी जल जावै तब उसको सम्पूर्ण प्रयोगोंके कार्यमें लावै ॥ ११–१४ ॥

धान्याभ्रकविधिः ।

पादांशशालिसंयुक्तमभ्रं बद्ध्वाथ कम्वले ॥ त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे तत्क्लिन्नं मर्दयेत्करैः ॥ १५ ॥ कम्बलाद्गालितं सूक्ष्मं वालुकारहितञ्च यत् ॥ तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तमभ्रमारणसिद्धये ॥ १६ ॥

अभ्रकसे चौथा भाग चावल लेकर उसके साथ अभ्रकको कम्बलमें बाँधकर तीन रात्रिपर्यन्त पानीमें पडा रहने देवै, पश्चात् भीगे हुए अभ्रकको हाथसे मलकर खोल लेवै कम्बलमेंसे जो निकले हुए रेतीके सदृश सूक्ष्म अभ्रकके कण हो उनको धान्याभ्रक जानना, इस धान्याभ्रकको ऊपर कही हुई रीतिसे मारै ॥ १५ ॥ १६ ॥

मारिताभ्रकगुणाः ।

अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुष्करं धातुविवर्द्धनञ्च ॥ हन्यात्त्रिदोषं व्रणमेहकुष्ठं प्लीहोदरं ग्रन्थिविषक्रिमींश्च ॥ १७ ॥ रोगान्हन्ति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ॥ दीर्घायुष्काञ्जनयति सुतान्सिंहतुल्यप्रभावान्मृत्योर्भीतिं हरति सुतरां सेव्यमानं मृताभ्रम ॥ १८ ॥

अभ्रक—कसैला, मधुर, बहुत शीतल, आयुकारक, धातुवर्द्धक और त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कोढ, प्लीहा, उदरकी गाँठ, विष तथा कृमिनाशक है जो मारा हुआ अभ्रक निरंतर सेवन किया जाय तो रोगोंको हरताहै, शरीरको दृढ करताहै, वीर्यकी वृद्धि करताहै, नित्य तारुण्यतामें पूर्ण होकर सौ स्त्रियोंके साथ रमण कराताहै, दीर्घायुवाले तथा सिंहके सदृश पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करताहै और मृत्युका भय नष्ट होताहै ॥ १७ ॥ १८ ॥

अशुद्धहरितालदोषाः ।

अशुद्धं तालमायुर्हृत्कफमारुतमेहकृत् ॥ तापस्फोटाङ्गसंकोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ १९ ॥

अशोधित हरताल—आयुनाशक, ताप, स्फोट, अंगकी सकोचता और कफ, वात तथा प्रमेहको उत्पन्न करैहै, इसकारण हरतालको शुद्ध करना चाहिये ॥ १९ ॥

हरितालशोधनविधिः ।

तालकं कणशः कृत्वा तच्चूर्णं काञ्जिके पचेत् ॥ दोलायन्त्रेण यामैकं ततः कूष्माण्डजद्रवैः ॥ २० ॥ तिलतैले पचेद्यामं यामञ्च त्रिफलाजले ॥ एवं यन्त्रे चतुर्यामं पक्वं शुद्ध्यति तालकम् ॥ २१ ॥

तबकिया हरतालका चूर्ण करके एक प्रहरतक दोलायंत्रसे काँजीमें पचावै, पश्चात् एक प्रहरतक पेठेके रसमें, एक प्रहरतक तिलके तेलमें और एक प्रहरतक हरड, बहेडा और आमलेके पानीमें पचावै, इसप्रकार दोलायंत्रमें चार प्रहरतक पकावै तब हरताल शुद्ध होताहै ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ हरितालमारणविधिः।

सदलं तालकं शुद्धं पौनर्नवरसेन तु ॥ खल्वे विमर्दयेदेकं दिनं पश्चाद्विशोषयेत् ॥२२॥ ततः पुनर्नवाक्षारैः स्थाल्यामर्द्धं प्रपूरयेत्॥ तत्र तद्गोलकं धृत्वा पुनस्तेनैव पूरयेत् ॥ ॥२३॥आकण्ठपिठरं तस्य पिधानं धारयेन्मुखे ॥ स्थालीं चुल्ल्यां समारोप्य क्रमाद्वह्निं विवर्धयेत् ॥ २४ ॥ दिनान्यन्तरशून्यानि पञ्च वह्निं प्रदापयेत् ॥ एवं तन्म्रियते तालं मात्रा तस्यैकरक्तिका ॥ अनुपानान्यनेकानि यथायोग्यं प्रयोजयेत् ॥२५॥

शुद्धकरी पत्रोवाली तवकिया हरतालको एक दिन तक खरलमे पुनर्नवा (सांठीके) रसमें पीसकर सुखा लेवै फिर एक हॉडी लेकर उसके आधे भागमे पुनर्नवाका खार भरकर उसके ऊपर हरतालका गोला रख पीछे पुनर्नवाके खारसे हाँडीको भरदेवै और मुखपर पाला ढककर उस हॉडीको चूल्हेपर चढावै, अनुक्रमसे अग्निको वढाता जावै, अखड पॉच दिन रात्रितक इस प्रकार अग्नि देनेसे हरताल मरजाताहै, हरतालकी मात्रा एक रत्तीकी करै और उसमे योग्यता विचारकर अनेक अनुपानोंसे प्रयोग करै ॥ २२–२५ ॥

शोधितमारितहरितालगुणाः।

हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम्॥ कण्डूकुष्ठास्यरोगास्रकफपित्तकचव्रणान् ॥ ॥ २६ ॥ अन्यच्च–तालकं हरते रोगान्कुष्ठमृत्युज्वरापहम् ॥ शोधितं कुरुते कान्तिं वीर्यवृद्धिं तथायुषम् ॥ २७ ॥

हरताल–चरपरा, स्निग्ध, कसैला, गरम और विष, खुजली, कोढ, मुखरोग, रक्तविकार, कफ, पित्त, केश और व्रणनाशक है। और भी कहाहै कि, "शोधाहुआ हरताल–रोगनाशक, कोढ, मृत्यु तथा ज्वरको हरनेवाला, कॉतिको उत्तम करनेवाला, वीर्यवर्द्धक और आयुको बढानेवाला है" ॥ २६ ॥ २७ ॥

अशुद्धमनःशिलादोषाः।

तालकस्यैव भेदोऽस्ति मनोगुप्तैव चान्यका॥ तालकं त्वतिपीतं स्याद्रवेद्रक्ता मनःशिला ॥ २८ ॥ मनःशिला मन्दबलं करोति जन्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण ॥ मलस्य बन्धं किल मूत्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदश्च कुर्य्यात्२९॥

मैनशिल भी हरतालकाही भेद है, परन्तु अंतर इतनाही है कि, हरताल वहुत पीला होताहै और मैनशिल लाल होती है। अशोधित मैनशिल-प्राणियोंके बलकी मदता, मलबद्धता, मूत्ररोग और शर्करायुक्त मूत्रकृच्छ्रको करैहैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

मनःशिलाशोधनविधिः।

पचेत्त्र्यहमजामूत्रे दोलायन्त्रे मनःशिलाम् ॥ भावयेत्सप्तधा पित्तैरजायाः सा विशुद्ध्यति ॥ ३० ॥

मनशिलको तीन दिनतक दोलायत्रमे बकरीके मूत्रके साथ पकावै और पश्चात् उसको बकरीके पित्तसे सात भावना देवै, इसप्रकार करनेसे मनशिल शुद्ध होजातीहै ॥ ३० ॥

शोधितमनःशिलागुणाः।

गुर्वी मनःशिला वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः ॥ तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकासभूतकफास्रनुत् ॥ ३१ ॥

मैनशिल–भारी, वर्णको उत्तम करनेवाली, दस्तावर, गरम, लेखन, चरपरी, कडवी, स्निग्ध और विष, श्वास, खॉसी, भूत, कफ और रक्तविकारनाशक है ॥ ३१ ॥

खर्परशोधनविधिः।

नरमूत्रे च गोमूत्रे सप्ताहं रसकं पचेत् ॥ दोलायन्त्रेण शुद्धः स्यात्ततः कार्येषु योजयेत् ॥ ३२ ॥

खपरियाको दोलायंत्रसे सात दिनतक मनुष्यके मूत्रमें और सात दिनतक गायके मूत्रमे स्वेद देवै, इस प्रकार करनेसे खपरिया शुद्ध होतीहै, शुद्ध करनेके पश्चात् उसको काममें लावै ॥ ३२ ॥

शुद्धखर्परगुणाः।

खर्परं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु ॥ लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥ विषाश्मकुष्ठकण्डूनां नाशनं परमं मतम्३३॥

खपरिया—चरपरी, खारी, वमनकारक, हलकी, लेखन, मलभेदक, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, कफ तथा पित्त-नाशक और विष, पथरी, कोढ तथा खुजलीको अत्यत नष्ट करनेवाली है ॥ ३३ ॥

सर्वोपरसानां साधारणशोधनविधिः ।

सूर्यावर्ती वज्रकन्दः कदली देवदालिका ॥ शिग्रुः कोशातकी वन्ध्या काकमाची च वालकम् ॥ ३४ ॥ एषामेकरसेनैव त्रिक्षारैर्लवणैः सह ॥ भावयेदम्लवर्गैश्च दिनमेकं प्रयत्नतः ॥ ३५ ॥ ततः पचेच्च तद्द्रावैर्दोलायन्त्रे दिनं सुधीः ॥ एवं शुद्ध्यन्ति ते सर्वे प्रोक्ता उपरसा हि ये ॥ ३६ ॥

हुलहुल, कडवा जमीकन्द, केला, देवदाली (वंदाल सोनैया), सहँजना, तोरई, वाँझककोडा, मकोय और सुगधवाला, इनमेंसे एकका रस, जवाखार, सुहागा, सज्जी, पांचोंनोन और अम्लवर्ग, इनमें एक दिनतक प्रयत्नसे उपरसोंकी भावना देवै और पीछे दोलायत्रमे एक दिनतक उपरोक्त पदार्थोंके रसमे पचावै इसप्रकार करनेसे सब उपरस शुद्ध होजाते हैं ॥ ३४–३६ ॥

विशेषशुद्धिः ।

कंकुष्ठं गैरिकं शङ्खः कासीसं टङ्कणं तथा ॥ नीलाञ्जनं शुक्तिभेदाः क्षुल्लकाः सवराटकाः ॥ ३७ ॥ जम्बीरवारिणा स्विन्नाः क्षालिताः कोष्णवारिणा ॥ शुद्धिमायान्त्यमी योज्या भिषग्भिर्योगसिद्धये ॥ ३८ ॥

एवंशोधितानाम् उपरसानां पृथग्गुणा गुणग्रन्थे द्रष्टव्याः ॥

कंकुष्ठ (मुरदाशंख), गेरू, शंख, कसीस, सुहागा, कालासुरमा, सीपकी जाति, छोटे शख और कौडी इन सबको नीबूके रसमे स्वेद देवै, फिर गरम जलसे धो डाले, इसप्रकार करनेमे सब शुद्ध होजाते हैं, चंद्रकरके शुद्ध किये हुए ही पदार्थोंको कार्यमे लावै। शुद्ध किये हुए उपरसोंमे जो पृथक् पृथक् गुण हैं वे अन्यत्र कहे हुए गुणप्रकरणमेंसे देख लेना ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

रत्नानां शोधनमारणविधिः ।

तत्राशुद्धवज्रदोषाः ।

अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा ॥ पाण्डुत्वं पंगुलत्वञ्च तस्मात्संशोध्य मारयेत् ॥ १ ॥

अशोधित हीरा—कोढ, पसलियोंमे दर्द, पाण्डुरोग और पगुलत्व (लगडेपन) को करताहै, इसकारण हीरेको शुद्ध करके मारना चाहिये ॥ १ ॥

हीरकशोधनविधिः ।

कुलत्थकोद्रवक्वाथे दोलायन्त्रे विपाचयेत् ॥ व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं त्रिदिनात्तद्विशुद्ध्यति २

हीरेको कटेरीके कदमे डालकर दोलायत्रद्वारा कुलथीके और कोदोके क्वाथमे तीन दिनतक पचावै इसप्रकार करनेसे हीरा शुद्ध होजाता है ॥ २ ॥

अथान्यः शोधनविधिः ।

गृहीत्वाऽह्नि शुभे वज्रं व्याघ्रीकन्दोदरे क्षिपेत् ॥ महिषीविष्ठया लिप्त्वा करीषाग्नौ विपाचयेत् ॥ ३ ॥ त्रियामायां चतुर्यामं यामिन्यन्तेऽश्वमूत्रके ॥ सेचयेत्पाचयेदेवं सप्तरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

शुभदिनमे हीरेको कटेरीके कदमे डालकर भैंसकी विष्ठाका प्रलेपकर रात्रिके चार प्रहरतक अरने उपलोकी अग्निमें पकावै और प्रातःकाल घोडेके मूत्रमें बुझावै, इसप्रकार सात रात्रिपर्यन्त करनेसे हीरा शुद्ध होजाताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

वज्रमारणविधिः ।

हिंगुसैन्धवसंयुक्ते क्षिपेत्क्वाथे कुलत्थजे ॥ तप्तंतप्तं पुनर्वज्रं भवेद्भस्म त्रिसप्तधा ॥ ५ ॥

हीरेको तपा तपाके हींग और सैंधेनोन करके युक्त किये हुए कुलथीके क्वाथमे डालै, इसप्रकार इक्कीस वार करनेसे हीरा भस्मरूप होजाताहै ॥ ५ ॥

अथान्यविधिः।

मेषशृंगभुजंगास्थिकूर्मपृष्ठाम्लवेतसम् ॥ शशदन्तं समं पिष्ट्वा वज्रीक्षीरेण गोलकम् ॥ कृत्वा तन्मध्यगं वज्रं म्रियते ध्मातमेव हि ॥ ६ ॥

मेढेका सीग, सर्पकी हड्डी, कछुएकी पीठ, अमलवेत और खरगोशके दाँत, इन सबको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें पीसकर उसका गोला बनावै, उसके भीतर हीरेको रखकर अग्निकी पुट देवै, इस प्रकार करनेसें हीरा तुरंत मरजाताहै ॥ ६ ॥

मारितहीरकगुणाः।

आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च ॥ सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न संशयः ॥ ७ ॥

मारा हुआ हीरा सेवन करनेसे—पुष्टि, बल तथा वीर्यकी वृद्धि होती है, शरीरका वर्ण उत्तम होताहै, सुखकी प्राप्ति और निःसंदेह सर्व रोगोंका नाश होता है ॥ ७ ॥

शेषरत्नानां शोधनमारणविधिः।

वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा ॥ शुद्धानां मारितानाञ्च तेषां शृणु गुणानपि ॥ ८ ॥ मणयो वीर्यतः शीता मधुरास्तुवरा रसात् ॥ चक्षुष्या लेखनाश्चापि सारका विषहारकाः ॥ धारणात्ते तु मङ्गल्या ग्रहदृष्टिहरा अपि ॥ ९ ॥

उपरत्नानां शोधनमारणविधिश्चिन्त्यः ॥

सम्पूर्ण रत्नोंको हीरेके सदृशही शुद्ध करके मारण करे। अब शुद्ध और मारित रत्नोके गुण कहताहूँ सुन, रत्न-शीतवीर्य, मधुर, रसमे कसैला, नेत्रोको हितकारी, लेखन, दस्तावर और विषविनाशक हैं। रत्नोंके पहरनेसे मंगल होताहै, ग्रहकी पीडा नष्ट होतीहै और ग्रहकी दृष्टि दूर होतीहै। उपरत्नोके शोधन और मारणकी विधि वैद्यको इसी प्रकार समझ लेनी चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

विषोपविषाणां शोधनविधिः।

वत्सनाभस्वरूपम्।

सिन्धुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा ॥ यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः ॥ १ ॥

सम्हालूके सदृश पत्तोंवाला, बछडेकी नाभिके सदृश आकारवाला और जिसके समीपमें दूसरे वृक्षकी वृद्धि नही होतीहो वह वत्सनाभ विष कहाताहै ॥ १ ॥

विषशोधनविधिः।

गोमूत्रे त्रिदिनं स्थाप्यं विषं तेन विशुद्ध्यति ॥ रक्तसर्षपतैलाक्ते तथा धार्यश्च वाससि ॥ २ ॥ ये गुणा गरले प्रोक्तास्ते स्युर्हीना विशोधनात् ॥ तस्माद्विषं प्रयोगे तु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

विषको तीन दिनतक गोमूत्रमे रक्खे और पश्चात् लाल राईके तेलसे भीजेहुए कपडेमे रक्खे, इसप्रकार करनेसे विष शुद्ध होजाताहै. विषमे जो गुण हैं वे शुद्ध करनेसे न्यून होजाते है, इस कारण विषको शुद्ध करनेके पश्चात् औषधियोमे उपयोग करे ॥ २ ॥ ३ ॥

विषगुणाः।

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च ॥ आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदावहम् ॥ ४ ॥

व्यवायि, सकलकायगुणव्यापनपूर्वकं पाकगमनशीलम्। विकाशि, ओजःशोषणपूर्वकं सन्धिबन्धशिथिलीकरणशीलम्। आग्नेयम्, अधिकाग्न्यंशम्। योगवाहि, संगिगुणग्राहकम्। मदावहम्, तमोगुणप्राधान्येन बुद्धिविध्वंसकम् ॥

तदेव युक्तियुक्तन्तु प्राणदायि रसायनम् ॥ योगवाहि परं वातश्लेष्मजित्सन्निपातहृत् ५ ॥

विष—प्राणनाशक, व्यवायी (प्रथम सम्पूर्ण शरीरमे व्याप्त होकर पीछे पचनेवाला), विकाशि (ओजको सुखाकर संधियोंके बधनोंको शिथिल करनेवाला), आग्नेय

([illegible]), [illegible], [illegible] ([illegible] गुणोंके [illegible]) [illegible] गुणोंके प्रधानता होनेसे [illegible]) है ॥

[illegible] जीवन- [illegible], [illegible] है ॥ ४ ॥ ५ ॥

उपविषनिरूपणम् ।

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लांगली करवीरकः ॥ गुञ्जाहिफेनौ धत्तूरः सप्तोपविषजातयः ॥ ६ ॥

एतेषां शोधनं चिन्त्यम् । गुणास्तत्रतत्र द्रष्टव्याः ॥

[illegible] थूहरका दूध, कलिहारी, कनेर, धुंघची और अफीम, [illegible] । इनको शुद्ध [illegible] और इनके गुण उनके प्रकरण- [illegible] ॥ ६ ॥

अथ द्रव्याणां गुणवतामवधिः ।

[पदार्थोंमें गुण रहनेकी अवधि]

गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ॥ मासद्वयात्तथा चूर्णं लभते हीनवीर्यताम् ॥ १ ॥ हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरं [illegible] ॥ हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासा- [illegible] ॥ २ ॥

घृततैलाद्या [illegible] । चतुर्मा- [illegible] नाशो [illegible] ॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible]

तदपि षोडशमासाभ्यन्तरीणं पक्वं तैलं गुणाधिकं बोद्धव्यम् ॥

ओषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात्परम् ॥ ४ ॥

ओषध्यो धान्यादयः । लघुपाकाः शीघ्रपाकाः निर्वीर्याः स्युः ॥

पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥ ५ ॥

पक्का घी एक वर्षके पीछे शक्तिरहित होजाताहै और तेल पक्का हो अथवा कच्चा हो तो भी बहुत कालतक अवि- कल अधिक गुणवाला रहताहै । इसका प्रयोजन ऐसा जानना कि—पक्का तेल भी सोलह महीनेतक अधिक गुण- वाला रहता है । तत्काल पकनेवाली धान्य आदि औषधियें एक वर्षके पीछे शक्तिरहित होजातीहैं । आसव (द्राक्षा- सवादि), धातु स्वर्णादि और रस चन्द्रोदयादि तो जितने बहुत अधिक पुराने हों उतने ही अधिक गुणवाले होतेहैं ॥ ३–५ ॥

अथ स्नेहपानविधिः ।

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा ॥ मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किंचिदभ्युदिते रवौ ॥ १ ॥ स्थावरो जंगमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ॥ तिलतैलं स्थावरेषु जंगमेषु घृतं वरम् ॥ द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा यमकस्त्रिवृतो महान् ॥ २ ॥

अस्य अयमर्थः । द्वाभ्यां स्नेहाभ्यां घृत- तैलाभ्यां यमकाख्यः स्नेहः स्यात् । त्रिभिः स्नेहैः घृततैलवसाभिस्त्रिवृताख्यः स्यात् । चतुर्भिर्घृततैलवसामज्जाभिर्महान्महास्नेहः स्यादित्यर्थः ॥

पिबेत्पलं चतुष्कं पलार्धं पलमानि वा ॥ ३ ॥

मृदुमध्यदृढकोष्ठापेक्षया त्र्यहं चतुष्कं पलार्धं पलमानि नेति ॥

मृदुकोष्ठ—मृदुकोष्ठस्त्रिरात्रेण स्निह्यत्स्ने- हसेवया । मध्यकोष्ठश्चतुर्भिश्च द्विव-

सैः स्निह्यति ध्रुवम् ॥ ४ ॥ पञ्चभिर्वाथ षड्भिर्वा दिनैः क्रूरो विशुद्ध्यति॥सप्तरात्रात्परं स्नेहः सात्मीभवति सेवितः ॥ ५॥

मृदुमध्यक्रूरकोष्ठानां सर्वेषां सप्तरात्रात्परं सात्मीभवति। वातानुलोम्यवह्निदीप्तिकोष्ठशुद्धिमृदुस्निग्धाङ्गतास्वरवचनाङ्गलाघवधातुपुष्टिद्विजदार्ढ्यनिर्जरताबलवर्णकारी भवति। न तु भक्तद्वये वातानुलोम्यादीन् करोति ॥

घी, तेल, चरबी और मज्जा (हड्डीके भीतर की मींग) यह चार प्रकारका स्नेह (चिकनाई) कहाताहै । जब सूर्यका कुछ उदय हो उस समय मनुष्यको स्नेह पीना चाहिये । स्थावर और जंगम इन दोनोंमेंसे स्नेह उत्पन्न होताहै, स्थावर (वृक्षादिक) से उत्पन्न हुए स्नेहोंमे तिलका तेल उत्तम है और जगम (पशु आदि) से उत्पन्न हुए स्नेहोंमें घी उत्तम है। घी और तेल, इन दोनोंको एकत्र करनेसे यमक नामक स्नेह होताहै । घी, तेल और चरबी इन तीनोंके इकट्ठे होनेसे त्रिवृत् नामक स्नेह होता है। घी, तेल, चरबी और मींग, इन चारोंके इकट्ठे होनेसे महास्नेह होताहै । कोठा कोमल है, मध्यम है, अथवा क्रूर है, इसका विचार करके तीन दिनतक, चार दिनतक, पाच दिनतक, स्नेह पीना चाहिये । कहा है कि–"कोमल कोष्ठी तीन दिनतक स्नेहका सेवन करे तो स्निग्ध होता है, मध्यम कोष्ठी चार दिनतक स्नेहका सेवन करे तो स्निग्ध होता है, और क्रूर कोष्ठी पाच अथवा छह दिनतक स्नेहका सेवन करनेसे शुद्ध होताहै" सेवन किया हुआ स्नेह (तैल घृतादिक) सात रात्रिके पश्चात् शरीरके अनुसार होजाताहै, इसीसे वायुको उत्तम चलनेवाला, अग्निप्रदीपक, कोठेको शुद्ध कर्त्ता, अंगोंको मृदु तथा स्निग्ध करनेवाला, स्वर तथा वाणीको सुन्दर करनेवाला, शरीरमें लघुताकारक, धातुका पुष्टिकर्त्ता, दांतोंको दृढ करनेवाला, वृद्धतानाशक, बलवर्द्धक और शरीरका वर्ण सुधारनेवाला है, परन्तु दोबारका उपयोग किया स्नेह वातादिका अनुलोमन नही करताहै ॥ १–५ ॥

दोषकालवयोवह्निबलान्यालोक्य योजयेत् ॥ हीनाञ्च मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान् ॥ ६ ॥ अमात्रया तथाऽकाले मिथ्याहारविहारतः । स्नेहः करोति शोथार्शस्तन्द्रानिद्राविसंज्ञिताः॥७॥

दोष, काल, अवस्था, अग्नि और बलको देखकर बुद्धिमान् वैद्य हीन, मध्यम अथवा अधिक मात्राका उपयोग करावै । स्नेहकी अयोग्य मात्रासे और अयोग्य आहार विहारसे शरीरमे सूजन, बवासीर, आलस्य, निद्रा और बेहोशपनाको उत्पन्न करैहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्यैकपलोन्मिता ॥ मध्यमाय त्रिकर्षा स्याज्जघन्याय द्विकार्षिकी ॥ ८ ॥

मध्यमाय मध्यमाग्नये । जघन्याय हीनाग्नये ॥

अथ वा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोऽन्याः सर्वसम्मताः ॥ अहोरात्रेण महती जीर्यत्यह्नि तु मध्यमा ॥ जीर्यत्यल्पा दिनार्द्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥ ९ ॥

अयमर्थः। या अहोरात्रेण जीर्यति सा मात्रा महती। एवं मध्यमा कनिष्ठा च ज्ञेया॥

प्रदीप्त अग्निवाले मनुष्यको स्नेहकी चार तोलेकी मात्रा देवै, मध्यम अग्निवालेको तीन तोलेकी मात्रा देवै और मन्दाग्निवालेको दो तोलेकी मात्रा देवै । अथवा सम्पूर्ण वैद्योंकी स्वीकार करीहुई स्नेहकी दूसरी तीन मात्रा भी हैं; वे ये हैं कि, जो मात्रा एक दिन रातमे पचै उसको बडी मात्रा जाननी, सम्पूर्ण दिनमे पचै उसको मध्यम मात्रा जाननी और आधे दिनमें पचै उसको अल्पमात्रा जाननी ये अल्पमात्रा सुखदाई है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अल्पा स्याद्दीपनी वृष्या स्वल्पदोषे प्रपूजिता ॥ मध्यमा स्नेहनी ज्ञेया बृंहणी भ्रमहारिणी ॥ ज्येष्ठा कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ॥ १० ॥

सुश्रुतः पुनरेवाह।

या मात्रा प्रथमे यामे गते जीर्यति वासरे ॥ सा मात्रा दीपयत्यग्निमल्पदोषे च पूजिता ॥ ११ ॥ या मात्रा वासरस्यार्द्धे व्यतीते परिजीर्यति ॥ सा वृष्या बृंहणी च स्यान्मध्यदोषे प्रपूजिता ॥ १२ ॥ या मात्रा चरमे यामे स्थितेऽह्नः परिजीर्यति॥ सा मात्रा स्नेहनी ज्ञेया बहुदोषेषु पूजिता ॥ १३ ॥ केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् ॥ देयं बहुकफे वह्निव्योषक्षारसमन्वितम् ॥ १४ ॥

अल्प दोषवाले मनुष्योको अल्पमात्रा बहुत उत्तम, अग्निको दीपन करनेवाली और मैथुनशक्तिको बढानेवाली है। मध्यम मात्रा—पुष्टिकारक और श्रमनाशक है। उत्तम (बडी) मात्रा—कोढ़, उन्माद, ग्रह और अपस्मारनाशक है। इस विषयमें फिर सुश्रुत कहता है कि, जो मात्रा प्रथम प्रहरके पश्चात् पचजाती है वह मात्रा अग्निको दीपन करती है और अल्प दोषीको बहुत उत्तम है। जो मात्रा दो प्रहरमें पचतीहै वह मात्रा वृष्य, पुष्टिकारक और मध्यम दोषवालेको बहुत उत्तम है। और जो मात्रा दिनके तीन पहर व्यतीत होनेपर पचतीहै वह मात्रा बहुत स्निग्धता करनेवाली और अत्यन्त दोषवालेके लिये उत्तम है। पित्त अधिक होय तो केवल घी देवै, वात अधिक हो तो लवणसहित घी देवै और कफ अधिक हो तो चीता, सोंठ, मिर्च, पीपल; तथा खार इन पदार्थोंसहित घी देवै ॥ १०–१४ ॥

रूक्षक्षतविषार्त्तानां वातपित्तविकारिणाम् ॥ हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिःपानं प्रशस्यते ॥ १५ ॥ कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः ॥ पिबेयुस्तैलसात्म्याश्च तैलं दार्ढ्यार्थिनस्तु ये ॥ व्यायामकर्षिताः शुष्करेतोरक्ता महारुजः ॥ १६ ॥ महाग्निमारुतप्राणा वसायोग्या नराः स्मृताः॥ क्रूराशयाः क्लेशसहा वातार्त्ता दीप्तवह्नयः ॥ मज्जानश्च पिबेयुस्ते सर्पिर्वा सर्वतो हितम् ॥ १७ ॥

क्रूराशयाः क्रूरकोष्ठाः । सर्वतः सर्वस्मात्स्नेहात् ॥

रूक्ष, क्षत (घाववाले) तथा विषसे पीडित, वात तथा पित्तके विकारसहित और जिनकी बुद्धि तथा स्मरणशक्ति हीन होगई हो ऐसे मनुष्योंको घी पीना बहुत उत्तम है। जिसके कोठेमें कृमि बढगये हों, वायुका उपद्रव हो, कफ अथवा मेद बढगये हों तथा जिनको तेल पीनेका अभ्यास हो और शरीरकी दृढताकी इच्छा हो उनको तेल पीना चाहिये। जो कसरत करनेसे दु:खित हैं, जिनका वीर्य तथा रुधिर सूख गया है, जो महान् रोगोंसे व्याकुल हैं तथा जिनकी अग्नि प्रबल है, वात प्रबल है, उन मनुष्योंको वसा (चरबी) पीनी चाहिये । जिनके कोठे क्रूर हैं, जो क्लेशको सहनेवाले हैं, वातसे पीडित हैं, दीप्ताग्नियुक्त हैं उनको मज्जा अथवा घी पीना चाहिये, घी सबसे हितकारी है ॥ १५–१७ ॥

शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि ॥ वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥ १८ ॥ नस्याभ्यञ्जनगण्डूषमूर्ध्वकर्णाक्षितर्पणे॥ तैलं घृतं वा युञ्जीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥ १९ ॥ घृते कोष्णं जलं पेयं तैले यूषः प्रशस्यते ॥ वसामज्ज्ञोः पिबेन्मण्डमनुपानं सुखावहम् ॥ २० ॥

शीतकालमें, दिनमें और उष्णकालमें रातको स्नेहपान करै, वायु तथा पित्तकी अधिकतामें रात्रिके समय और कफ तथा वातकी अधिकता होय तो दिनमें स्नेहपान करै। नस्यकर्ममें, मालिश करनेमें, कुल्ले करनेमें, मस्तक, कान अथवा नेत्रमें डालना होय तो दोषोंका बलाबल विचारकर तेलका अथवा घीका उपयोग करै। घृत पिये तो ऊपरसे उष्णजल पिये, तेलके ऊपर मूँगका क्वाथ पिये और चरबी तथा मज्जाके ऊपर भातका गाढा २ माड पीना चाहिये, स्नेहके ऊपर ये अनुपान हितकारी हैं ॥ १८–२० ॥

स्नेहद्विषः शिशून्वृद्धान्सुकुमारान्कृशानपि ॥ तृष्णालुकानुष्णकाले सहभक्तेन पाययेत् ॥ २१ ॥ सर्पिष्मती बहुतिला यवागूः स्वल्पतण्डुला ॥ सुखोष्णा सेव्य-

मात्रा तु सद्यः स्नेहनकारिणी ॥ २२ ॥ शर्कराचूर्णसंयुक्ते दोहनस्थे घृते तु गाम् ॥ दुग्ध्वा क्षीरं पिबेद्रूक्षः सद्यःस्नेहनमुत्तमम् ॥ २३ ॥

जिनकी स्नेहपानसे अरुचि है उनको, बालकोंको, वृद्धोंको, सुकुमार शरीर वालोंको, कृश शरीरवालोंको तथा उष्णकालमें जिनको अधिक तृषा लगती है उनको भातके साथ स्नेहपान करावै। अधिक घी, तिल तथा थोडे चावलयुक्त और किंचित् गरम ऐसी यवागूका सेवन करनेसे शरीर तुरन्त स्निग्ध होजाताहै। रूक्षहुआ मनुष्य दुहनेके बासनमें खांड (बूरा) और घी डालकर उसमें गायको दुहै और वह दूध पिये तो तुरन्त उत्तम रीतिसे शरीरमे स्निग्धता (चिकनता) होतीहै ॥ २१-२३ ॥

मिथ्याचाराद्बहुत्वाच्च यस्य स्नेहो न जीर्यति ॥ विष्टभ्य वापि जीर्येत वारिणोष्णेन वामयेत् ॥ २४ ॥ स्नेहस्याजीर्णशंकायां पिबेदुष्णोदकं नरः ॥ तदोद्गारो भवेच्छुद्धो भक्तं प्रति रुचिस्तथा ॥ २५ ॥ स्नेहेन पैत्तिकस्याग्निर्यदा तीक्ष्णतरीकृतः ॥ तदास्योदीर्यते तृष्णा विषमा तस्य पाययेत् ॥ २६ ॥ शीतलं पायसं तेन तृष्णा तस्य प्रशाम्यति ॥ अजीर्णी वर्जयेत्स्नेहमुदरी तरुणज्वरी ॥ २७ ॥ दुर्बलोऽरोचकी स्थूलो मूर्च्छालो मेहपीडितः ॥ दत्तवस्तिर्विरिक्तश्च वान्तस्तृष्णाश्रमान्वितः ॥ अकालप्रसवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत् २८ ॥

जिस मनुष्यको अयोग्य आहार विहारसे, अथवा अधिक होनेसे स्नेह नहीं पचै, अथवा अजीर्णतासे पचै तो वह मनुष्य उष्णजलसे वमन करै। स्नेहका अजीर्ण होनेकी शंका होय तो मनुष्य उष्णजल पिये इससे शुद्ध डकार आती है और अन्नमें रुचि उत्पन्न होतीहै। पित्तप्रकृतिवाले मनुष्यकी अग्नि स्नेहपानसे बहुत तीक्ष्ण होकर अधिक तृषा लगावे तो उसको शीतल दूधपाक (खीर) पिलावै, इस प्रकार पीनेसे तृषा शांत होजायगी। जिसको अजीर्ण, उदररोग तथा नवीन ज्वर हो, जिनका शरीर दुर्बल हो, अन्नमे अरुचि हो, जिनका शरीर मोटा हो, मूर्च्छा तथा प्रमेहसे पीडित हो, जिसका वस्तिकर्म किया हो, जिन्होंने जुलाब लिया हो तथा वमन करनेवालेको, तृषितको, परिश्रमीको और जो स्त्री अकालमे प्रसव वाली हो उसको स्नेहपान नहीं करावै, जिस दिन मेघसे आकाश घिर रहा हो उस दिन भी स्नेहपान न करै ॥ २४-२८ ॥

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामाशक्तचित्तकाः ॥ ॥ २९ ॥ वृद्धबालकृशा रूक्षाः क्षीणास्राः क्षीणरेतसः ॥ वातार्तास्तिमिरार्ता ये तेषां स्नेहनमुत्तमम् ॥ ३० ॥ वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ॥ मृदुस्निग्धांगताऽम्लानिः स्नेहद्वेषोऽथ लाघवम् ॥ ॥ ३१ ॥ विमलेन्द्रियता सम्यक्स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः ॥ भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका ॥ ३२ ॥ तन्द्रातीसारखण्डत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम् ॥ रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम् ॥ ३३ ॥ श्यामाकचणकाद्यैश्च तक्रपिण्याकशक्तुभिः ॥ दीप्ताग्निः शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्दृढेन्द्रियः ॥ ॥ ३४ ॥ निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेहसेवी भवेन्नरः ॥ स्नेहे व्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान् ॥ दिवास्वप्नमभिष्यन्दि रूक्षान्नश्च विवर्जयेत् ॥ ३५ ॥

जिनको स्वेद देना हो, जिनको रेचक (जुल्लाव) देकर शुद्ध करना हो, मद्य, स्त्री, अथवा व्यायाममें जिनका चित्त आसक्त हो, वातसे पीडित, तिमिर (रातोंधा) रोगी, वृद्ध, बालक जो दुर्बल होता जाता हो इन सबको, तथा रूक्षशरीरवालेको, क्षीण होगया है रुधिर जिनका और क्षीणवीर्यवालोंको स्नेहक्रिया करनी उत्तम है। भलेप्रकार स्निग्धहुएकी परीक्षा यह है कि—वायुका यथायोग्य वहना, अग्निका प्रदीप्त होना, मल चिकना और अलग अलग निकलै, शरीर कोमल और स्निग्ध दीखै, ग्लानि न हो, स्नेहसे द्वेष हो, शरीरमे लघुता और इंद्रियोंमे निर्मलता होती है। रूक्ष मनुष्यमे इनसे उलटे लक्षण होतेहैं। जो मनुष्य बहुत स्निग्ध हुआहो उसके लक्षण ये हैं कि—अन्नमे अरुचि, लारका गिरना, गुदामे दाह, मल पतला पतला आवे, शरीरमे आलस्य और

शरीर फीका पडजाता है । रूक्ष मनुष्यको स्नेहपानसे स्निग्ध करना चाहिये और जो अत्यन्त स्निग्ध मनुष्य हैं उनको श्यामाक (समखिया, कोदव) और चने आदि खिलाकर, तथा छॉछ, खली और सत्तू आदि खवाकर रूक्ष करना चाहिये । स्नेहका सेवन करनेवाला मनुष्य जराराहित, बल तथा वर्ण करके युक्त होताहै, अग्नि दीपन होतीहै, कोठा शुद्ध होताहै, धातु पुष्ट होतीहैं और इन्द्रिये दृढ होतीहैं । स्नेह सेवन करनेवालेको—कसरत, शीतमें रहना, वेगोंका रोकना, जागरण करना, दिनमें सोना और रूक्ष तथा शरीरमें गुरुता करनेवाला भोजन ये सब त्यागने चाहियें ॥ २९–३५ ॥

पञ्चकर्मनामानि ।

प्रथमं वमनं पश्चाद्विरेकश्चानुवासनम् ॥ एतानि पञ्च कर्माणि निरूहो नावनं तथा ॥ १ ॥

वमन, विरेचन, अनुवासन, निरूह और नावन (नस्य) ये पॉच कर्म कहातेहैं ॥ १ ॥

अथ वमनविधिः ।

शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ॥ वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलो भिषक् ॥२॥ बलवन्तं कफव्याप्तं हृल्लासादिनिपीडितम् ॥ तथा वमनसात्म्यञ्च धीरचित्तञ्च वामयेत् ॥ ३ ॥ विषदोषे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे ॥ हृद्रोगे कुष्ठवीसर्पे मेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥ ४ ॥ विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु ॥ अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ ५ ॥ नासाताल्वोष्ठपाकेषु कर्णस्रावेऽधिजिह्वके ॥ गलशुण्डयामतीसारे पित्तश्लेष्मगदे तथा ॥ मेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक् ॥ ६ ॥

प्रवीण वैद्य शरदृऋतुमें, वसंत ऋतुमें और वर्षा ऋतुमें प्राणियोंको वमन करावे और विरेचन देवे । जो मनुष्य बलवान्, कफसे व्याप्त, हृल्लासादिसे पीडित, धीरचित्तवाला और जिसकी प्रकृति वमनके अनुकूल हो उनको वमन करावे । विषदोष, स्तन्यरोग, मन्दाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृदयरोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रम, विदारिका, अपची, खॉसी, श्वास, पीनस, अण्डवृद्धि, अपस्मार(मृगी), ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नाक, तालु तथा ओष्ठके पकनेमें, कर्णस्राव (कानके बहनेमें), अधिजिह्वक, गलशुण्डी, अतिसार, पित्त अथवा कफके रोग, मेद और अरुचि इन सब रोगोंमें वैद्य रोगीको वमन करावे ॥ २–६ ॥

न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः ॥ नातिवृद्धा गर्भिणी च न स्थूलो न क्षतातुरः ॥ ७ ॥ मदार्तो बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः ॥ उदावर्त्यूर्ध्वरक्ती च दुश्छर्द्यः केवलानिली ॥ ८ ॥ पाण्डुरोगी कृमिव्याप्तः पठनात्स्वरघातवान् ॥ एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः ॥ कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुककाथपानतः ॥ ९ ॥

ऊर्द्धरक्ती, यस्य नासाक्षिकर्णास्यमार्गे रक्तं प्रवर्त्तते सः । भुक्तरूक्षकर्कशद्रव्यो दुश्छर्द्यः । मधुकस्थाने मधूकेति द्वितीयः पाठः ॥

तिमिर, गुल्म (गोला), तथा उदररोगी, कृश, अतिवृद्ध, गर्भवती स्त्री, अत्यन्त स्थूल, क्षत(घाव) से व्याकुल, मदरोगी, बालक, रूक्ष, भूखा तथा निरूहण वस्तिकरे हुएके, उदावर्त्त तथा ऊर्ध्वरक्ती (जिसकी नाक, कान, नेत्र और मुखमेंसे रक्त निकले) कि, जिसे कठिनतासे वमन होती हो अर्थात् वमनकी औषधसे भी मुशकिलसे वमन होतीहो जिसके कोठेमें केवल वायुका दोष हो, पाण्डुरोगी, कृमिसे व्याप्त और पढनेसे स्वर जिसका नष्ट होगया हो, उनको वमन नही करावे, यदि ये अजीर्णसे पीडितहों अथवा विषसे पीडित हो अथवा कफसे व्याप्तहुए हो और वमन करानेकी आवश्यकता हो तो इनको मुलहटीका क्वाथ पिला कर वमन करावे ॥ ७–९ ॥

सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुश्च वामयेत्॥ पाययित्वा यवागूं वा क्षीरतक्रदधीनि च ॥ १० ॥ असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लेश्य देहिनाम् ॥ स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक्प्रवर्त्तते ॥ ११ ॥ वमनेषु च सर्वेषु सैन्धवं मधु वा हितम् ॥ बीभत्सं वमनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥ १२ ॥

बीभत्सम् अरुच्यम् । विपरीतं रुच्यम् ॥

क्काथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके ॥ अर्द्धभागावशिष्टश्च वमनेष्ववचारयेत् ॥ ॥ १३ ॥ क्काथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता ॥ मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥ १४ ॥ वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ॥ अर्द्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥ १५ ॥

अर्द्धत्रयोदशपलं सार्द्धषट्कम् ॥

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपलं मात्रयोत्तमम् ॥ मध्यमं द्विपलं विद्यात्कनीयं तु पलं भवेत् ॥ १६ ॥ वमने चाष्ट वेगाः स्युः पित्तान्ता उत्तमास्तु ते ॥ षड् वेगा मध्यमा वेगाश्चत्वारस्त्वपरे मताः ॥ १७ ॥

जो मनुष्य सुकुमार (नाजुक), कृश, बालक, वृद्ध अथवा भयभीत हो, इनमेसे किसीको वमन करानी हो तो प्रथम उसकी प्रकृतिसे न मिलै ऐसे कफकारी भोजनोसे दोषोको कुपित करके यवागू, दुध, छाँछ और दही आदि पदार्थ पिलाकर वमन करावै । स्निग्ध कियेहुए और अग्निसे स्वेदन कियेहुए मनुष्यको वमन करावै तौ भली भाँति वमन (उलटी वा रद्द) होतीहै । सर्व प्रकारकी वमनोमे सेधानोन अथवा मधु देनेसे अनुकूल होताहै । वमनकी औषधि बीभत्स (जो रुचै नहीं) देवै और रेचनमें औषधि विपरीत (जो रुचै) देवै । क्काथ करनेका पदार्थ सोलह तोले लेकर दोसौ छप्पन तोले पानीमें पकावै, जब आधा शेषरहै तब रोगीको वमनके लिये देवै । क्काथ पीनेमें नौप्रस्थकी मात्रा बडी, छः प्रस्थकी मध्यम और तीन प्रस्थकी अल्प मात्रा कहाती है । वमनमे, विरेचनमे और रुधिर निकालमे प्रस्थ जहाँ आवै तहाँ छब्बीस तोलेका जानना यह विद्वानोने कहा है। कल्क, चूर्ण और अवलेह, इनकी बारह तोलेकी मात्रा उत्तम है, आठ तोलेकी मध्यम है और चार तोलेकी मात्रा अल्प है, वमनमे आठ वग हो और अन्तमे पित्त आवै तौ उत्तम जानना, छः वेग मध्यम और चार वेग आवैं तो कनिष्ठ जानना ॥ १०–१७ ॥

कफं कटुकतीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत् ॥ सुस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ १८ ॥ कृष्णां कट्फलसिन्धुं च कफे कोष्णजलैः पिबेत् ॥ पटोलवासानिम्बांश्च पित्ते शीतजलैः पिबेत्॥ १९॥

कट्फलं मयनफलम् ॥

सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत्॥ अजीर्णे कोष्णपानीयं सिन्धुं पीत्वा वमेत्सुधीः ॥ २० ॥

मदनं मयनफलम् ॥

वमनं पाययित्वा तु जानुमात्रासने स्थितम् ॥ कण्ठमेरण्डनालेन स्पृशन्तं वामयेद्भिषक् ॥ २१ ॥ प्रसेको हृद्ग्रहः कोठः कण्डूर्दुश्छर्दिते भवेत् ॥ अतिवान्ते भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गारो विसंज्ञता ॥ २२ ॥ जिह्वानिःसरणं चाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंहतिः॥ रक्तच्छर्दिः ष्ठीवनश्च कण्ठपीडा च जायते ॥ २३ ॥

हनुसंहतिः हन्वोरमिलनम् ॥

वमनस्यातियोगे तु मृदु कुर्याद्विरेचनम् ॥ वमनेन प्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहाः ॥ स्निग्धाम्ललवणैर्युक्तैर्घृतक्षीररसैर्हिताः २४॥

रसैर्मांसरसैः ॥

फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो

नराः ॥ निःसृतान्तु तिलद्राक्षाकल्कलिप्तां प्रवेशयेत् ॥ २५ ॥

निःसृतां जिह्वाम् ॥

व्यावृत्तेऽक्षिण घृताभ्यक्ते पीडनञ्च शनैः शनैः ॥ हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यश्च श्लेष्मवातहृत् ॥ २६ ॥ रक्तपित्तविधानेन रक्तष्ठीवमुपाचरेत् ॥ धात्रीरसाञ्जनोशीरलाजचन्दनवारिभिः ॥२७॥ मन्थं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ शाम्यन्त्यनेन तृष्णाद्या रोगाश्छर्दिसमुद्भवाः॥२८॥ हृत्कण्ठशिरसां शुद्धिर्दीप्ताग्नित्वञ्च लाघवम् ॥ कफपित्तविनाशश्च सम्यग्वान्तस्य लक्षणम् ॥ २९ ॥ ततोऽपराह्ले दीप्ताग्निं मुद्गषष्टिकशालिभिः ॥ हृद्यैश्च जाङ्गलरसैः कृत्वा यूषञ्च भोजयेत् ॥ ३० ॥ तन्द्रानिद्रास्यदौर्गन्ध्यं कण्डूश्च ग्रहणी विषम् । सुवान्तस्य न पीडायै भवन्त्येते कदाचन ॥ ३१ ॥ अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ॥ स्नेहाभ्यंगञ्च रोषश्च दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ३२ ॥

इति वमनाधिकारः ।

चरपरे, तीरग और गरम पदार्थोंसे कफको जीतै । मीठे और शीतल पदार्थोंसे पित्तको जीतै । मीठे, खारी, खट्टे और गरम पदार्थोंसे वातसहित कफको जीतै । कफके ऊपर पीपल, मैनफल, तथा सैंधानोन किंचित् गरम पानीके साथ पिये । पित्तकी अधिकतामें पटोलपत्र, अडूसा और नीम शीतल जलसे पिये । कफसहित वातमें मैनफलके चूर्णके साथ दूध पिये । अजीर्ण हो तो किंचित् गरम पानी और सैंधानोंन पीकर वमनकरे । वैद्य रोगीको वमनकी औषध पिलाकर उकरू बिठलाकर उसके गलेमें उसके हाथसे ही अण्डीके पत्तेकी नाल डालकर वमन करावे । जैसी चाहिये तैसी वमन न हो तो उसके ये लक्षण होतेहैं कि—मुखमें पानी आना, हृदयका रुकना-देहमें चकत्ते होना और खुजलीका होना होताहै बहुत वमन हो तो इसके लक्षण ये होतेहैं कि तृषाका लगना, हिचकी तथा डकारका आना, देहोंदीपन और जीभका बाहर निकलना, आँखोंका फटना, मुखका फैलना, वमनके साथ अथवा थूकनेमें रुधिरका आना और गलेमें पीडाका होना, ये लक्षण होतेहैं । वमनका अत्यन्त योग होय तो मृदु विरेचन (दस्त) करावे, वमन करनेमें जीभ भीतर बैठगई हो तो स्निग्ध, खारी और खट्टे रसोंसे युक्तकर घीके दूधके और मासरसके हितकारी कुल्ले करावै और उस मनुष्यके आगे दूसरा मनुष्य बैठकर अम्लफल (नींबू आदि) खावे । जीभ निकली पडी हो तो जीभपर तिलका और दाखका कल्क चुपडकर उसको भीतरको प्रवेश करे । आँखकी पुतली फटगई हो तो घी चुपडकर धीरे धीरे भीतरको दबावे । मुख फटगया हो तो सेक करे और नाकमें कफ तथा वातनाशक बूँदें डाले । थूकनेमें रुधिर आताहो तो रक्तपित्तके अनुसार उपचार करे । आमला, रसोत, खस, खील, इनको चन्दनके जलमें विलोकर घी, मधु तथा खाँड डालके पिलावे तो वमनसे उत्पन्न हुए तृषाआदि रोग शांत होते हैं । हृदय, गला तथा मस्तक शुद्ध होजाय, अग्नि प्रदीप्त होजाय, शरीरमें लघुता आजाय और कफ तथा पित्तका नाश होजाय तो भली भाँति वमन हुई जानै । जिसको भलेप्रकार वमन होगई हो, ऐसे प्रदीप्त अग्निवाले मनुष्यको दो पहर पीछे मूँग, साँठी चावल तथा रुचिकारी जंगली जीवोंका मास इनका पाक करके बनाहुआ यूष खवावे, जिसको भली भाँति वमन हुई हो उसको निद्रा, आलस्य, मुखकी दुर्गन्धता, खुजली, संग्रहणी और विष ये कदापि पीडा नहीं करते । विद्वान् मनुष्यको वमन करनेके पश्चात् एक दिनतक अजीर्णकारक पदार्थ, शीतल जल, कसरत, मैथुन, तेलका अभ्यंग (मालिश) और क्रोध, इनको छोड देना चाहिये ॥ १८–३२ ॥

अथ विरेचनविधिः ।

स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय दद्यात्सम्यग्विरेचनम् ॥ अवान्तस्य त्वधःस्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥ ३३ ॥ मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ॥

अथ वा पाचनैरामं बलास्रं परिपाचयेत्॥ ॥ ३४ ॥ ऋतौ वसन्ते शरदि देहशुद्धौ विरेचयेत् ॥ अन्यदात्ययिके कार्ये शोधनं शीलयेद्बुधः ॥ ३५ ॥

आत्ययिके प्राणसंकटे ॥

पित्ते विरेचनं युञ्ज्यादामोद्भूते गदे तथा। उदरे च तथाध्माने कोष्ठशुद्धौ विशेषतः ॥ ३६ ॥ दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः ॥ शोधनैः शोधिता ये तु न तेषां पुनरुद्भवः ॥ ३७ ॥ बालो वृद्धो भृशं स्निग्धः क्षतक्षीणो भयान्वितः ॥ श्रान्तस्तृषार्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥ ३८ ॥ नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी ॥ शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता ॥ ३९ ॥ जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरोगी भगन्दरी ॥ अर्शःपाण्डूदरग्रन्थिहृद्रोगारुचिपीडिताः ॥४०॥ योनिरोगप्रमेहार्त्तो गुल्मप्लीहव्रणार्दितः॥ विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविषूचीकुष्ठसंयुताः ॥ ४१॥ कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेढ्रामयान्विताः ॥ प्लीहशोथाक्षिरोगार्त्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः ॥ ४२ ॥ शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः। बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः ॥४३॥ बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते॥ मृद्वी मात्रा मृदौ कोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमा ॥ ४४ ॥ क्रूरे तीक्ष्णा मता द्रव्यैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥ मृदुर्द्राक्षापयश्चञ्चूतैलैरपि विरिच्यते ॥ ४५ ॥ मध्यमस्त्रिवृतातिक्ताराजवृक्षैर्विरिच्यते ॥ क्रूरः स्नुक्पयसा हेमक्षीरीदन्तीफलादिभिः ४६॥

चञ्चुतैलम्, एरण्डतैलम्। हेमक्षीरी [चोक]। दन्तीफलम्,बृहद्दन्तीफलम्–जयपालेति प्रसिद्धम्.॥

प्रथम मनुष्यको स्नेहपान कराकर स्वेद देवै और पश्चात् वमन करावै, वमन करानेके पीछे योग्य रीतिसे रेचन (जुल्लाव) देवै, वमन कराये विना रेचन देवै तो कफ नीचेके भागमे आकर ग्रहणीनामक शरीरके भीतरके स्थानको ढक देताहै कि–जिससे अग्नि मंद होजातीहै, शरीरमे गुरुता होजातीहै, अथवा प्रवाहिका आदिक रोग होजातेहैं।वमन विना कराये रेचन दिया हो तो कच्चे कफको उपायसे पकाना चाहिये वसन्तऋतु और शरदृतुमें शरीरको शुद्ध करनेके लिये रेचन देवै, पीडा प्राणसंकटके सदृश हो तो विद्वान् वैद्य अन्य ऋतुओंमे भी रेचन देवै। पित्त, आमसे हुए रोग, उदररोग, अफारा और बद्धकोष्ठ (कोठेकी अशुद्धि) इन रोगोंपर विशेष करके विरेचन देवै। लघनसे और पाचनके उपायसे जीतेहुए दोष किसी समयमें फिर पीछे कुपित होतेहैं, परन्तु रेचन देनेसे जिनको शुद्धकर दिया हो ऐसे दोष पीछे उत्पन्नही नहीं होते बालक, वृद्ध, अत्यत स्निग्ध, क्षतसे क्षीण हुए, भयभीत थकाहुआ, तृषासे पीडित, अत्यत स्थूल, गर्भवाली स्त्री, नवीन ज्वररोगी, तत्काल प्रसूता स्त्री, मंदाग्निवाला,मदात्ययरोगी, जिसके बाण आदि शल्य लगरहा हो और रूक्ष शरीरवाला, अर्थात् जिसने प्रथम स्नेह (घृतादिपान वा मुंजिस न लीनीहो) इनको विद्वान् वैद्य रेचन नही देवै.जीर्णज्वरवाले विषव्याप्त, वातरोगी, भगदरवाले तथा बवासीर, पाण्डु, उदर, गांठ, हृदयरोग, अरुचि, योनिरोग, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, व्रण, कर्णरोग, मस्तकरोग, मुखरोग, गुदरोग, शिश्नरोग, प्लीहा, सूजन, नेत्ररोग, कृमिरोग, क्षारसे हुए विकार, वातविकार, शूल तथा मूत्राघात, इनसे पीडितोको तथा विषव्याप्त हुओंको रेचन देना चाहिये। जिस मनुष्यके कोठेमें पित्त अधिक हो उसको मृदु कोठेवाला जानना, जिसके कोठेमे अधिक कफ हो उसको मध्यम कोठेवाला जानना और जिसके कोठेमें वात अधिक हो उसको कठोर कोठेवाला जानना। कठिन कोठेवाले मनुष्यको रेचन धीरे धीरे लगताहै, मृदु कोठेवालेको रेचनकी मृदु मात्रा देवै, मध्यम कोठेवालेको मध्यम मात्रा देवै और कठिन कोठेवालेको तीव्र मात्रा देवै। मृदु पदार्थोंकी मात्रा मृदु कहातीहै, मध्यम पदार्थोंकी मात्रा मध्यम कहातीहै और तीव्र पदार्थोंकी मात्रा तीव्र कहातीहै। मृदु (नरम) कोठेवाले मनुष्यको दाख, दूध और अडीके तेल आदिसे भी रेचन लगताहै, मध्यम कोठेवाले मनुष्यको निसोत, कुटकी और अमलतासके रेचन लगताहै और कठिन कोठेवाले

मनुष्यको थुहरका दूध, चोक, दन्ती (जमालगोटेकी जड) और जमालगोटे आदिसे रेचन लगताहै ॥ ३३-४६ ॥

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफान्तिका ॥ वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥ ४७ ॥ द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमं च पलं भवेत् ॥ पलार्द्धं च कषायाणां कनीयं तु विरेचनम् ॥४८॥ कल्कमोदकचूर्णानां कर्षो मध्वाज्यलेहतः ॥ कर्षद्वयं पलं वापि वयोरोगाद्यपेक्षया ॥ ॥ ४९ ॥ पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाकाथादिभिः पिबेत् ॥ त्रिफलाकाथगोमूत्रैः पिबेद्व्योषं कफार्दितः ॥ ५० ॥ त्रिवृत्सैन्धवशुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः ॥ वातार्दितो विरेकाय जांगलानां रसेन वा ॥ ५१ ॥

जिसके तीसवार वेग होकर दस्त आवें और अन्तमें कफ आम निकले वह रेचनकी मात्रा उत्तम जाननी, जिससे वीसवार वेग होकर दस्त आवें और अन्तमें कफ आवे वह मात्रा रेचनकी मध्यम जाननी और जिससे दशवार वेग होकर दस्त आवें और अन्तमें कफ आवे उसको रेचनकी कनिष्ठ मात्रा जाननी । रेचन होनेके लिये दो पल कषाय (काढा) की मात्रा उत्तम है, एक पल कषायकी मात्रा मध्यम है और अर्द्धपल कषायकी मात्रा कनिष्ठ होती है (एक पल चार तोलेका होता है), कल्क, लड्डू और चूर्ण ये प्रत्येक एक तोले शहदमें अथवा एक तोले घीमें मिलाकर दो तोलेकी मात्रा देवै, अथवा अवस्था और रोगपर ध्यान देकर योग्य मालूम हो तो चार तोलेकी भी मात्रा देवै । पित्तसे पीडित मनुष्योंको दाख आदिकाथके साथ निसोथका चूर्ण खाना चाहिये । कफसे पीडित मनुष्योंको हरड' वहेडा, तथा आमलेके क्वाथ और गोमूत्रके साथ सोंठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण खाना चाहिये।वायुसे पीडित मनुष्योंको रेचनकेलिये खट्टे पदार्थोंके साथ अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ निसोथ, सैंधानोन तथा सोंठ इनका चूर्ण खाना चाहिये ॥

एरण्डतैलं त्रिफलाक्काथेन द्विगुणेन वा ॥ युक्तं पीतं पयोभिर्वा न चिरेण विरिच्यते ॥ ५२ ॥

शीघ्रमेव विरिच्यते इत्यर्थः ॥

त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ समृद्वीकारसं क्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥ ५३ ॥ त्रिवृद्दुरालभामुस्तशर्करोदीच्यचन्दनम् ॥ द्राक्षाम्बुना सयष्ट्याह्वशीतलञ्च घनात्यये ॥ ५४ ॥

उदीच्यं वाला । घनात्यये शरदि ॥

पिप्पलीं नागरं सिन्धुं श्यामां त्रिवृतया सह ॥ लिह्यात्क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम् ॥ ५५ ॥

श्यामा [सारिवा] ।

त्रिवृता शर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥ अभया मरिचं शुण्ठी विडंगामलकानि च ॥५६॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च॥एतानि समभागानि दन्ती तु त्रिगुणा भवेत् ॥ ५७ ॥ त्रिवृताष्टगुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा ॥ मधुना मोदकान्कृत्वा कर्षमात्रान्प्रमाणतः ॥ ५८ ॥ एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतञ्चानु पिबेज्जलम्॥ तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते५९॥ पानाहारविहारेषु भवेन्निर्यन्त्रणः सदा ॥ विषमज्वरमन्दाग्निपाण्डुकासभगन्दरान्॥ ॥ ६० ॥ पृष्ठपार्श्वोरुजघनजङ्घोदररुर्जं जयेत्॥ स्नेहाभ्यंगश्च रोषश्च दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ६१॥ सततं शीलनादेव पलितानि प्रणाशयेत् ॥ अभयामोदका ह्येते रसायनवराः स्मृताः ॥ ६२ ॥

इति अभयादिमोदकः ॥

हरड, वहेडा तथा आमलेके दूने क्वाथके साथ

अथवा दूधके साथ अंडीका तेल पिये तो भी तुरत रेच (दस्त) लगता है। वर्षाऋतुमें रेचके लिये दाखके रसके और मधुके साथ निसोत, इन्द्रजौ, पीपल और सोंठ इनका उपयोग करे। शरदृतुमें रेचके लिये दाखके रसके साथ निसोत, धमासा, नागरमोथा, खाँड,नेत्रवाला, सफेद चंदन और मुलहटीके चूर्णका उपयोग करे, यह रेच शीतल है। शिशिर और वसत ऋतुमें रेचके लिये शहतके साथ पीपल, सोठ, सेंधानोन, सारिवा और निसोत इनका चूर्ण खाना चाहिये। ग्रीष्म ऋतुमे रेचके लिये समान भाग निसोतका और मिश्रीका चूर्ण उपयोग करे। हरड, मिरच, सोठ, वायविडंग, आमला, पीपलामूल, दालचीनी, पत्रज और नागरमोथा, इन सबको समान भाग लेकर उसमे तिगुनी दन्ती (जमाल गोटेकी जड), आठगुना निसोत और छैगुनी मिश्री डालकर शहतके साथ एक एक तोलेके लड्डू बनावे इन लड्डुओंमेसे प्रातःकाल एक एक लड्डू खावे और उसके ऊपर शीतल जल पिये, इसके खानेके पीछे जबतक उष्णजल न पिये अथवा उष्णअन्न न खावे, तबतक दस्त होते रहतेहैं। इन मोदकोंके खानेवालेको सर्वदा खाने पीने और विहार करनेमें अधिक परहेज करनेकी आवश्यकता नही है। ये लड्डू खानेसे विषमज्वर, अग्निकी मंदता, पाण्डुरोग, खाँसी, भगदर, पीठका दर्द, पसलीका दर्द, ऊरुका दर्द, जंघा तथा उदररोग नष्ट होताहै। जिस दिन ये लड्डू खावे उसदिन शरीरमे तेल नही मले, और क्रोध भी नही करे। इनको नित्य सेवन करनेसे वलीपलित नष्ट होताहै, ये अभयादिमोदक (लड्डू) रसायनमे उत्तम हैं ॥ ५२–६२ ॥

पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी॥ सुगन्धि किंचिदाघ्राय ताम्बूलं शीलयेद्बुधः॥ निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न शयीत च ॥ ६३ ॥ शीताम्बु न स्पृशेत्क्वापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः॥ बलासौषधपित्तानि वायुर्वान्ते यथा व्रजेत् ॥ रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजश्च कफो व्रजेत् ॥ ६४ ॥ दुर्विरिक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धता कुक्षिशूलरुक् ॥ पुरीषवातसंगश्च कण्डूमण्डलगौरवम् ॥ ६५ ॥ विदाहोऽरुचिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते ॥ तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्त्वा स्निग्धं तु रेचयेत्॥ तेनास्योपद्रवा यान्ति दीप्ताग्निर्लघुता भवेत् ॥ ६६ ॥

रेचकी औषधि पीनेके पश्चात् शीतल जलसे नेत्रोंको सींचकर किंचित् सुगन्धित पदार्थ (अतर आदि) सूँघ पान चाबै, वायुरहित स्थानपै बैठे, दस्तके वेगको नही रोकै, सोवै नहीं, शीतलजलका स्पर्श न करै और किंचित् उष्णजल पीता रहै। जिस प्रकार वमन करनेसे कफ, औषधि, पित्त और वात, यह सब मुखद्वारसे निकलतेहै तैसेही रेच लेनेसे मल (विष्ठा), पित्त, औषधि और कफ यह सब गुदद्वारसे निकलतेहैं। ठीक विरेचन न लगे तौ नाभिमें तथा कोखमें दर्द होताहै, मल तथा अधोवायु रुकजातीहै, देहमें खुजली होने लगतीहै,चकत्ते पडजातेहैं, देह भारी होजातीहै, दाह, अरुचि, अफारा, भ्रम और वमन होतीहै। जिसको भलीभाति रेचन लगा हो उस मनुष्यको पाचन पदार्थ देकर उसके आमको पचाकर पीछे स्नेहपान कराकर स्निग्ध करै और पश्चात् रेचन देवै इस प्रकार करनेसे ये सब उपद्रव नष्ट होतेहैं, अग्नि दीपन होतीहै और शरीर हलका होताहै ॥ ६३–६६ ॥

विरेकस्यातियोगेन मूर्च्छा भ्रंशो गुदस्य च ॥ शूलं कफातियोगः स्यान्मांसधावनसन्निभम् ॥ ६७ ॥ मेदोनिभं जलाभासं रक्तश्चापि विरिच्यते ॥ तस्य शीताम्बुभिः सिक्त्वा शरीरं तण्डुलाम्बुभिः ॥ ६८ ॥ मधुमिश्रैस्तथा शीतैः कारयेद्वमनं मृदु ॥ सहकारत्वचः कल्को दध्ना सौवीरकेण वा ॥ ६९ ॥ पिष्ट्वा नाभिप्रलेपेन हन्त्यतीसारमुल्वणम् ॥ सौवीरं तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषीकृतैः ॥ ७० ॥

सौवीरं सन्धानम् ॥

अजाक्षीरं रसश्चापि वैष्किरं हरिणं तथा॥ शालिभिः षष्टिकैस्तुल्यैर्मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥ ७१ ॥ वर्त्तिकालावविकिरकपिञ्जलकतित्तिराः॥ चकोरक्रकराद्याश्च विष्किराः

समुदाहृताः ॥ कपिञ्जल इति ख्याता लोके कपिशतित्तिरः ॥ ७२ ॥

क्रकरः, कराट इति लोके । हरिणस्ताम्रवर्णो मृगः ॥

शीतैःसंग्राहिभिर्द्रव्यैःकुर्यात्संग्रहणं भिषक्॥ लाघवे मनसस्तुष्टावनुलोमं गतेऽनिले॥ ७३॥

रेच अधिक लगजाय तो मूर्च्छा होतीहै, [illegible] है, पेटमें दर्द होने लगताहै, [illegible] और मांसके धोवनके सदृश, मेदके [illegible] सदृश रक्त गिरने लगताहै । इसप्रकार [illegible] होनेलगे तो इसके शरीरपर शीतल [illegible] और चावलोंके शीतल धोवनमें सहत मिलाकर [illegible] थोडी वमन होजाय । आमकी छालके [illegible] अथवा जौकी काँजीमें पीसकर नाभिपर लेपकरे, इसप्रकार करनेसे भयंकर दस्त भी बंद होतेहैं । [illegible] तुषरहित जौकी काँजी सौवीर कहातीहै । [illegible] अथवा साठीचावलोंके साथ अथवा [illegible] साथ दहीका, दूध और विष्किर पक्षीका तथा लाल हिरनका मांसरस देवे, इससे भी दस्त बंद होजातेहैं । बटेर, [illegible], तीतर, कपिशतीतर, चकोर और कराट आदि पक्षी विष्किर कहातेहैं । बहुत रेच लगा हो तो रेच शीतल और दस्तको रोकनेवाली (अतीसार रोगपर कही) औषधियोंसे दस्त रोके । जैसा चाहिये ऐसा रेच लगा हो तो शरीरमें हलुका होती है, मन प्रसन्न होताहै और वायुकी गति ठीक होतीहै ॥ ६७–७३ ॥

सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि॥ इन्द्रियाणां बलं बुद्धेः प्रसादो वह्निदामता ॥ ७४॥ धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् ॥ प्रतापसेवां शीताम्बु स्नेहाभ्यङ्गमजीर्णताम् ॥ ७५ ॥ व्यायामं मैथुनञ्चैव न सेवेत विरेचितः ॥ शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् ॥ ७६ ॥ जंघालविष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥ हरिणैणकुरंगर्ष्यवातायुमृगमातृकाः ॥ राजीवः पृषतश्चैव जंघालाः शरभादयः ॥ ७७ ॥

इन लक्षणोंसे भली भाँति रेच (जुलाब) होनेकी [illegible] ॥ ६८–७७ ॥

अथ स्नेहबस्तिविधिः ।

बस्तिर्द्विधानुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् ॥ यः स्नेहो दीयते स स्यादनुवासननामकः ॥ ७८ ॥ कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते ॥ बस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्बस्तिरिति स्मृतः ॥ ७९ ॥

बस्तिभिः मृगादीनां मूत्राशयैः ॥

तत्रानुवासनाख्यो हि बस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते ॥ अनुवासनभेदश्च मात्राबस्तिरुदीरितः ॥ ८० ॥ पलद्वयं तस्य मात्रा तस्मादर्द्धापि वा भवेत् ॥ अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥८१॥ नानुवास्यस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ॥ नास्थाप्या नानुवास्याश्च जीर्णोन्मादतृडर्दिताः ॥ ८२ ॥ शोथमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षयातुराः । नेत्रं कार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः ॥ नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते ॥ ८३ ॥

नेत्रं नाडी । तथा चोक्तं विश्वप्रकाशे–

नेत्रं मन्थगुणे वस्त्रे तरुमूले विलोचने ॥ नेत्रबन्धे च नाड्याश्च नेत्रो नेतरि भेद्यवत् ॥ ८४ ॥ इति ॥

अनुवासन और निरूहण इसप्रकार बस्ति (पिचकारी)

के दो भेद हैं। घी अथवा तेल आदिकी पिचकारी अनुवासन वस्ति कहातीहै और क्वाथ, दूध तथा तेलको एकत्र करके उससे जो पिचकारी लगाई जाय उसको निरूहणवस्ति कहतेहैं। मृग आदिके मूत्राशयकी कोथलीरूप साधनसे पिचकारी दी जातीहै, इस कारण पिचकारीको वस्ति कहतेहैं, वस्ति मूत्राशयका नाम है। दोनो प्रकारकी वस्तियोंमें यहां प्रथम अनुवासन वस्तिकी रीति कहते हैं, मात्रा वस्ति यह अनुवासन वस्तिका ही भेद है। मात्रा वस्तिमे घी आदिकी मात्रा आठ तोले भरकी अथवा चार तोलेकी करै, जो मनुष्य रूक्ष शरीरवाला, तीक्ष्ण अग्निकरके युक्त और केवल वातवाला जो मनुष्य हो उसको अनुवासनवस्ति देवै। कुष्ठरोगी, प्रमेहवाला, स्थूलशरीरी और उदररोगवाला जो मनुष्य हो उसको अनुवासनवस्ति नही देवै। अजीर्ण, उन्माद, तृषा, सूजन, मूर्च्छा, अरुचि, भय, श्वास, खाँसी और क्षय (राजयक्ष्मा), इनसे पीडितोको निरूहवस्ति नहीं देवै, और अनुवासनवस्ति भी नहीं देवै। वस्ति देनेकी नली—सुवर्ण आदि धातुओंकी, वृक्षकी, बाँसकी, नरसलकी, हाथीदाँतकी, सीगके अग्रभागकी और मणिकी बनावै। विश्वप्रकाशकोषमे कहाहै कि, नपुसकलिगवाला नेत्रशब्द—वस्त्रमे, वृक्षकी जडमे, नेत्रमे, नेत्रके बंधमे और नलीमे प्रवर्त्तता है ॥ ७८–८४ ॥

एकवर्षात्तु षड्वर्षाद्यावन्मानं षडंगुलम् ॥ ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसम्मितम् ॥८५॥ ततः परं द्वादशभिरंगुलैर्नेत्रदीर्घता। मुद्गच्छिद्रं कलायाभं छिद्रं कौलास्थिसन्निभम् ॥ यथासङ्ख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसन्निभम्॥गोपुच्छसन्निभं मूले स्थूलं तस्मात्क्रमात्कृशम् ॥ ८६ ॥

मुद्गच्छिद्रादिप्रमाणं नेत्रं क्रमेण षड्वर्षाय द्वादशवर्षाय तदूर्द्ध्ववर्षाय ज्ञेयम् ॥

आतुरांगुष्ठमानेन मूले स्थूलं विधीयते ॥ कनिष्ठिकापरिणाहमग्रे च गुटिकामुखम् ॥ ८७ ॥

परिणाहोऽत्र स्थौल्यम् ॥

तन्मूले कर्णिके द्वे च कार्य्ये भागाच्चतुर्थकात् ॥ ८८ ॥

कर्णिका गवादिकर्णवत् ॥

योजयेत्तत्र वस्तिश्च बन्धद्वयविधानतः ॥ मृगाजशूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत् ॥ ८९ ॥

वस्तिरिति शेषः ॥

मूत्रकोषस्य वस्तेस्तु तदलाभे तु चर्मणः॥ कषायरक्तः स मृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ॥ ९० ॥

एक वर्षसे लेकर छै वर्षतकके बालकको वस्तिदेवै तौ छै अगुलकी नलीका उपयोग करै. छै वर्षसे पीछे बारह वर्षतकके मनुष्यको वस्ति देवै तौ आठ अगुलकी नलीका उपयोग करै. और बारह वर्षसे ऊपरके मनुष्यको वस्ति देवै तौ बारह अगुलकी नलीका उपयोग करै। छै अंगुलकी नलीमे मूँगके दानेके सदृश, आठ अगुलकी नलीमे मटरके सदृश और बारह अगुलकी नलीमे बेरकी गुठलीकी बराबर छेद रक्खै। नली चिकनी तथा गायकी पूँछके सदृश जडमे मोटी और उसके पीछे ऊपरसे क्रमवार सूक्ष्म होनी चाहिये। नली जडमे रोगीके अगुठेकी बराबर मोटी होनी चाहिये, ऊपरके भागमे बिचली अंगुलीकी बराबर मोटी होनी चाहिये और गोल मुखवाली होवै। नलीके तीन भाग छोडकर चौथे भागरूप जडमे गाय आदिके कानके सदृश दो कर्णिका बनावै और उन कर्णिकाओमे हिरणके, बकरेके, सुअरके, बैल अथवा भैंसेके मूत्राशयकी कोथलीको दो बधनोसे बाँधकर मिलादेवै, यदि मूत्राशयकी कोथली न मिले तो चमडेकी [या रबरकी] कोथली बनाकर बाँध देवै। ये कोथली कसेले रगसे लाल रंगी, बहुत नरम, चिकनी और दृढ होय तौ हितकारि होतीहै ॥ ८५–९० ॥

व्रणवस्तेस्तु नेत्रं स्याच्छ्लक्ष्णमष्टांगुलोन्मितम् ॥ मुद्गच्छिद्रं गृध्रपक्षनालिकापरिणाहि च ॥ ९१ ॥ शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः ॥ कुरुते परिवृद्धिश्च वस्तिः सम्यगुपासितः ॥ ९२ ॥ दिवा शीते वसन्ते च स्नेहवस्तिः प्रदीयते ॥ ग्रीष्मवर्षाशरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् ॥ ९३ ॥

न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वानुवासयेत्॥ मदं मूर्च्छाञ्च जनयेद्द्विधा स्नेहः प्रयोजितः ॥ ९४ ॥

द्विधा भोजने वस्तौ च ॥

रूक्षं भुक्तवतोऽत्यन्तं बलं वर्णञ्च हापयेत्॥ युक्तस्नेहमतो जन्तुं भोजयित्वाऽनुवासयेत् ॥ ९५ ॥

युक्तस्नेहं यथोचितस्नेहं भोज्यं भोजयित्वेत्यर्थः ॥

व्रण (घाव) मे पिचकारी लगानी हो तौ नली आठ अंगुलकी और मूँगके समान छिद्रवाली तथा गीधके पत्रके सदृश मोटी होनी चाहिये । भलीभाँति वस्तिका सेवन करनेमे शरीर पुष्ट तथा वर्ण उत्तम होताहै, बल बढता है, आरोग्यताकी प्राप्ति और आयुकी वृद्धि होतीहै । शीतकालमे और वसन्तऋतुमें स्नेहकी वस्ति दिनमें देनी उत्तम है और ग्रीष्मऋतुमे, वर्षाऋतुमे तथा शरदृऋतुमें स्नेहकी वस्ति रात्रिमे देनी उत्तम है । रोगीको अधिक घी अथवा तेलका भोजन कराकर अनुवासनवस्ति नहीं देवै, कारण कि–भोजनमे और पिचकारीमें ऐसे दोवार स्नेहका उपयोग होनेसे मद और मूर्च्छा उत्पन्न होतीहैं । जिसने अत्यन्त रुक्ष अन्न खायाहो उसको वस्ति देवै तौ बल और वर्णका नाश होताहै, इस कारण रोगीको यथायोग्य घीवाला अन्न खिलाकर पश्चात् वस्ति देवै ॥ ९१–९५ ॥

हीनमात्रावुभौ वस्ती नातिकार्यकरौ स्मृतौ ॥ अतिमात्रौ तथानाहक्लमातीसारकारकौ ॥ ९६ ॥

उभौ वस्ती अनुवासननिरूहाख्यौ ॥

उत्तमा स्यात्पलैः षड्भिर्मध्यमा स्यात्पलैस्त्रिभिः॥पलाध्यर्द्धेन हीना स्यादुक्तमात्रानुवासने ॥ ९७ ॥ शताह्वासैन्धवाभ्याश्च देयं स्नेहे च चूर्णकम्॥तन्मात्रोत्तममध्यान्त्या षट्चतुर्द्वयमाषकैः ॥ ९८ ॥ विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातबलाय च ॥ भुक्तान्नायानुवास्याय वस्तिर्देयोऽनुवासनः॥९९॥

अथानुवास्यं स्वभ्यक्तमुष्णाम्बुस्वेदितं शनैः ॥ भोजयित्वा यथाशास्त्रं कृतचंक्रमणं ततः ॥ उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं योजयेत्स्नेहवस्तिना ॥ १०० ॥

उष्णाम्बुस्वेदितम्, उष्णाम्बुना स्नपितम ॥

सुप्तस्य वामपार्श्वेन वामजंघाप्रसारिणः ॥ कुञ्चितापरजंघस्य नेत्रं स्निग्धे गुदे न्यसेत् ॥ १०१ ॥ बद्ध्वं वस्तिमुखं सूत्रैर्वामहस्तेन धारयेत् ॥ पीडयेद्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः ॥ १०२ ॥ जृम्भाकासक्षयादींश्च वस्तिकाले न कारयेत्॥त्रिंशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो वस्तेस्तु पीडने ॥ १०३ ॥ ततः प्रणिहिते स्नेह उत्तानो वाक्छतं भवेत् ॥ स्वजानुनः करावर्त्त कुर्याच्छोटिकया पुनः ॥ १०४ ॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवेष निश्चयः ॥ निमिषोन्मेषणं पुंसामंगुल्या छोटिकाथ वा॥१०५॥ गुर्व्वक्षरोच्चारणं वा स्यान्मात्रेयं स्मृता बुधः ॥ प्रसारितैः सर्वगात्रैर्यथा वीयं प्रसर्पति १०६

यथावीर्य स्नेहादि ॥

ताडयेत्तलयोरेनं त्रींस्त्रीन्वाराञ्छनैः शनैः॥ स्फिजोश्चैव तथा श्रोणी शय्याञ्चैवोत्क्षिपेत्ततः ॥ १०७ ॥ स्फिजोश्चैनं स्वपाणिभ्यां पूर्ववत्ताडयेद् बुधः॥शय्याञ्च पादतस्तस्य त्रीन्वारानुत्क्षिपेत्ततः ॥जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम् ॥ १०८॥

अनुवासन और निरुह नामक दोनो वस्ति जो अल्पमात्रासे दीजावैं तो योग्य कार्य नहीं करतीं. और अधिकमात्रासे दीजावैं तौ अफारा, ग्लानि और अतीसारको उत्पन्न करैहैं । अनुवासन वस्तिमें स्नेह पलकी मात्रा उत्तम जाननी, तीन पलकी मात्रा

मध्यम और डेढपलकी कनिष्ठ मात्रा जाननी । स्नेहमे सोफका और सैंधेनिमकका चूर्ण डालै, इस चूर्णकी मात्रा छै मासेकी उत्तम, चार मासेकी मध्यम और दो मासेकी कनिष्ठ (हीन) मात्रा जाननी । रेच (जुलाब) लेनेसे सात दिन व्यतीत होनेपर जिसके शरीरमे बल आगया हो ऐसे रोगीको भोजनके पश्चात् अनुवासन वस्ति देवै । रोगीके भली भाँति तेल मलकर धीरे धीरे उष्णजलसे धीरे धीरे स्वेदित करके भोजन करावै और पश्चात् शास्त्रकी रीतिके अनुसार चारो ओर फिराकर मल, मूत्र तथा वायुका त्याग कराकर अनुवासनवस्ति देवै । रोगीको बाँई करवटसे सुलाकर बाँई जाघको फैला देवै और दहनी जाँघको सकोड लेवै, फिर गुदाको चिकनी करके पश्चात् उसमे नली रक्खै, फिर धीर बुद्धिवाला वैद्य डोरेसे बँधीहुई पिचकारीके मुखको वाम हाथसे पकडकर दाये हाथसे मध्यवेगसे दाब देवै, पिचकारी देनेके समयमे रोगीको जँभाई, खाँसना और छींकना आदि त्याग देना चाहिये । पिचकारीके दबानेका काल तीस मात्रातकका जाने । अपने घटुए पर हाथ फेरके एक चुटकी बजावे, अथवा नेत्र मीचकर खोले, अथवा एक गुरु अक्षर जैसे (ए) का उच्चारण करै तौ उतने समयकी एक मात्रा होती है । शरीरमें स्नेह भलीभाँति पहुँचनेके पीछे सौ मात्रातक अर्थात् जबतक सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण होय उस समयतक सपूर्ण शरीर चित्तकरके सोवै कि जिससे सम्पूर्ण शरीरमे स्नेह फैल जाय । पश्चात् धीरे धीरे रोगीके पाँवोंके दोनों तलुओंमे वैद्य तीन तीन वार अपने हाथके तलुएसे ठोकै ऐसेही दोनो कूले ठोकै । पश्चात् उसकी शय्या उचकाकर अपने हाथसे पूर्ववत् तीन बार ठोकै, फिर पाँवोकी ओरकी शय्या उचकावै, इस प्रकार विधान होनेके पीछे रोगीको सुखसे निद्रा करावै ॥ ९६–१०८ ॥

सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ॥ उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ॥ १०९ ॥

उपद्रवस्थाने तुषचोषाविति सुश्रुते पाठः॥

जीर्णान्नमथ सायाह्ने स्नेहे प्रत्यागते पुनः॥ लघ्वन्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि ॥ ११० ॥ अनुवासिताय दातव्यमितरेऽह्नि सुखोदकम्॥ धान्यशुण्ठीकषायं वा स्नेहव्यापत्तिनाशनम् ॥ १११ ॥

सुखोदकमुष्णोदकम् । व्यापत्तिर्व्याधिः ॥

अनेन विधिना षड्वा सप्त चाष्टौ नवापि वा ॥ विधेया वस्तयस्तेषामन्ते चैव निरूहणम् ॥ ११२ ॥ दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद्वस्तिवङ्क्षणौ ॥ सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्द्धस्थमनिलं जयेत् ॥ ११३ ॥ बलं वर्णश्च जनयेत्तृतीयस्तु प्रयोजितः ॥ चतुर्थपञ्चमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजी ११४॥ षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एव च ॥ अष्टमो नवमश्चापि मज्जानश्च यथाक्रमम् ॥ ११५ ॥

यथाक्रममिति वचनात् अष्टमोऽस्थि स्नेहयेत् ॥

एवं शुक्रगतान्दोषान्द्विगुणः साधु साधयेत् ॥ ११६ ॥

अष्टादशदिवसावधिकः वस्तिः ॥

अष्टादशाष्टादशकाह्निनाद्यो ना निषेवते ॥ स कुञ्जरबलोऽश्वस्य जवतुल्योऽमरप्रभः ॥ ११७ ॥

जिस रोगीके विनाउपद्रव पवनसहित और विष्ठासहित स्नेह (तेल) गुदामेंसे तुरन्त निकल जाय उसको भलीभाँति अनुवासित हुआ जानै (मूलमें 'उपद्रव विना' इसके बदले सुश्रुतमे 'उपचोषौ विना' यह पाठ है) । स्नेह गुदामेसे निकलनेके पश्चात् और खायेहुए अन्नके पच जानेपर रोगी जो प्रदीप्त अग्निवाला होय तौ उसको सायकालमे हलका अन्न खानेको देवै । फिर दूसरे दिन जिसको अनुवासनवस्ति दीहो उसके स्नेहके विकारोको नष्ट करनेके लिये उष्णजल पिलावै, अथवा धनियाका और सोठका काढा पिलावै । इसप्रकार छै, सात, आठ अथवा नौ अनुवासनवस्ति देवै. और सम्पूर्ण वस्ति देनेके पश्चात् अन्तमे निरूहणवस्ति देवै । पहिली वस्तिसे मूत्राशय और वक्षण (पेडू) स्निग्ध (चिकना) होता है, दूसरी वस्तिसे मस्तककी वायु शांत होती है, तीसरी वस्तिसे बल ठीक होताहै तथा वर्ण उत्तम होताहै ।

वह मनुष्य रूक्ष होनेसे उसके शरीरमें सम्पूर्ण स्नेह काममें आगया, ये समझ चतुर वैद्य उसकी उपेक्षा करै; अर्थात् उस स्नेहको बाहर निकालनेका यत्न नही करै। स्नेह एक रात्रि दिनतक बाहर न निकले तौ उसको शोधनके उपायसे बाहर निकालै, परन्तु उसको निकालनेके लिये दूसरी बार स्नेहकी वस्ति नही देवै। गिलोय, अण्ड, करञ्ज, भारङ्गी, अडूसा, रोहिषतृण (सौंधियातृण), सतावर, कटसरैया और कौआठोडी इन सबको चार चार तोले लेकर और जौ, उरद, अलसी, बेरकी गुठली, तथा कुलथी, इन औषधियोंको आठ आठ तोले लेवै, फिर सबको चार द्रोण जलमें पकावै, जब एक द्रोण शेष रहै तब उसमें चार चार तोले सब जीवनीय गणकी औषधियोंके साथ एक आढक तेल पकावै इसप्रकार पकाये हुए तेलका उपयोग करै तौ वातसम्बन्धी सर्वविकार नष्ट होते हैं, यह अनुवासन तेल कहाताहै। वस्तिक्रियामें कुछ विपरीतता होजाय तौ बयालीस प्रकारके रोग उत्पन्न होतेहैं। जो ये रोग उत्पन्न होय तौ सुश्रुतके कहे अनुसार नलीआदि सामग्रियोंसे उसकी चिकित्सा करै इस क्रियामें पान, आहार, विहार और सम्पूर्ण निषेध स्नेहपानकी रीतिके अनुसार पालै, इस कार्यमें सशय न करै॥११८–१२९॥

अथ निरूहवस्तिविधिः।

निरूहवस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणान्तरैः॥ तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुङ्गवैः१३०

कारणान्तरैः समवायिकारणभेदैः॥

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः॥ स्वस्थाने स्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम् ॥ १३१ ॥ निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थं पादोत्तरं परम् ॥ मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनश्च कुडवास्त्रयः ॥ १३२ ॥

परं श्रेष्ठम् ॥

अतिस्निग्धोऽक्लिष्टदोषः क्षतक्षीणः कृशस्तथा ॥ १३३ ॥

अक्लिष्टदोषः अदत्तोत्क्लेशन इति यावत्। क्षतक्षीणः उरःक्षतवान् ॥

आध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥ गुदशोफातिसारार्तो विषूचीकुष्ठसंयुतः ॥ १३४ ॥ गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी ॥ वातव्याधावुदावर्ते वातासृग्विषमज्वरे ॥ १३५ ॥ मूर्च्छातृष्णोदरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च॥ वृद्ध्यसृग्दरमन्दाग्निप्रमेहेषु निरूहणम् ॥ ॥ १३६ ॥ शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद् बुधः॥ उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजनम् ॥ १३७ ॥ मध्याह्ने गृहमध्ये च यथा योग्यं निरूहयेत् ॥

स्निग्धम्, स्वभ्यक्तम् । स्विन्नम्, उष्णाम्बुस्तापितम् ॥

स्नेहवस्तिविधानेन बुधः कुर्यान्निरूहणम् ॥ जाते निरूहे च ततो भवेदुत्कटकासनः॥ ॥ १३८ ॥ तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रन्तु निरूहागमनेच्छया ॥

अत्र मुहूर्त्तमात्रशब्देनैतदपि बाधितम्। निरूहप्रत्यागमनकालको मुहूर्तमात्रः॥

अनायातं मुहूर्तं तु निरूहं शोधनैर्हरेत् ॥ निरूहैरेव मतिमान्क्षारमूत्राम्लसैन्धवैः ॥ ॥ १३९ ॥ यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट्पित्तकफवायवः ॥ लाघवं चोपजायेत सुनिरूढं तमादिशेत् ॥ १४० ॥ यस्य स्याद्वस्तिरल्पाल्पवेगो हीनमलानिलः ॥ मूर्च्छार्तिजाड्यारुचिमान्दुर्निरूढं तमादिशेत् ॥ १४१ ॥

अलग अलग औषधियोंके दिलानेसे निरूहवस्तिके अनेक भेद होतेहैं और ये भेद होनेसेही महात्मा मुनियोंने उन वस्तियोंके पृथक् पृथक् नाम कहेहैं। पडितोंने निरूहवस्तिका दूसरा नाम आस्थापन कहाहै, कारण कि इससे दोषोंकी और धातुओंकी अपने अपने स्थानमें स्थिति होतीहै। निरूहवस्तिकी सवा प्रस्थकी मात्रा उत्तम जाननी, एक प्रस्थकी मात्रा मध्यम जाननी और तीन कुडव (तीन पाव) की मात्रा निकृष्ट जाननी। अत्यन्त स्निग्ध शरीर-

वाला जिसके दोषोंको पकाकर उन्हें स्थानोंसे न निकाले हो उसको, उरःक्षतरोगी, कृश, अफारायुक्त, वमन, हिचकी, बवासीर, खासी, श्वास, गुदाके रोग, गृध्रसी, अतीसार, विसूचिका (हैजा) और कोढ, इन रोगोंसे पीडित तथा गर्भवती स्त्री, मधुमेहवाला और जलोदर-रोगी, इन सबको निरूहवस्ति नहीं देवे, वातसम्बन्धी रोग, उदावर्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, तृषा, उदर-रोग, अफारा, मूत्रकृच्छ, पथरी, अण्डवृद्धि, रक्तप्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त और हृदयरोग इनसे पीडितोंको विद्वान् वैद्य विधिपूर्वक निरूहणवस्ति देवे । मल, मूत्र तथा अधोवायुके वेगोंका जो त्यागन करचुका हो, भूँखा, उष्णजलसे स्वेदित और तैलादिकका जिसके मालिस कियाहो, ऐसे रोगीको विद्वान् वैद्य मध्याह्नके समयमें घरके भीतर पहिलेकी अनुसार यथायोग्य निरूह-वस्ति देवे । निरूहवस्ति देनेके पीछे उस पिचकारीको गुदद्वारसे बाहर निकाले और दो घटीतक रोगी उकरू बैठा रहे दो घडीके भीतर निरूहवस्ति बाहर निकलतीहै । जो दो घडीमें निरूहवस्तिका द्रव्य बाहर नहीं निकले तो जवाखार, गोमूत्र, नींबूका रस और सैंधानिमक इनकी पिचकारी मारनेरूप शोधनके उपायसे उस निरूहवस्तिके तैलको बाहर निकाले । जिस मनुष्यके क्रमानुसार मल, पित्त, कफ और वात निकले और शरीरमें लघुता हो तो उस मनुष्यके निरूहवस्ति उत्तम लगीहुई जाने । जिस मनुष्यके अल्पवेगसे पिचकारी बाहर निकले, मल तथा पवन अल्प अल्प निकले, मूर्च्छा, पीडा, जडता और अरुचि हो उसको निरूहवस्ति भली भाति नहीं लगी हुई जानना ॥ १३०–१४१ ॥

विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधि-निग्रहः ॥ आस्थापने स्नेहवस्त्योः सम्य-ग्दाने तु लक्षणम् ॥ १४२ ॥

विविक्तता दत्तापधानिःसरणम् ॥

अनेन विधिना युंज्यान्निरूहं वस्तिदान-वित् ॥ द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् ॥ १४३ ॥ सस्नेह एकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह ॥ कषायकटुमूत्रा-द्याः कफे तृष्णास्त्रयो हिताः ॥ १४४ ॥ पित्तश्लेष्मानिलाविष्टं क्षीरयूषरसैः क्रमात् । निरूढं भोजयित्वा च ततस्तमनुवासयेत् ॥ १४५ ॥ सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः ॥ वस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बलायुषी ॥ १४६ ॥ दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः ॥ पश्चात्संशमनी-यश्च दद्याद्वस्ति विचक्षणः ॥ १४७ ॥

दीहुई औषधि निकलजाय, मनमें प्रसन्नता हो, स्निग्ध-ता हो और व्याधिनिग्रह (रोगोंका घटना हो) यह स्नेह-वस्ति तथा निरूहवस्ति भलीभांति देनेके लक्षण हैं । वस्ति देनेमें यथार्थ चतुर वैद्य इस प्रकारसे निरूहवस्ति देवे । योग्य लगे तो यह वस्ति दूसरी बार तीसरीबार और चौथी बारभी देवे । वायुरोग होय तो स्नेहवाली एक निरूहवस्ति देवे, पित्तका रोग होय तो दूधवाली दो निरूहवस्ति देवे और कफरोग होय तो कसैले, चरपरे और गोमूत्र आदि पदार्थोंको गरम करके इनकी तीन निरूहवस्ति देवे । जो मनुष्य पित्त, कफ और वायुसे घिराहुआ हो उसको क्रमानु-क्रमसे दूधकी, मूँगके रसकी और मांसके रसकी वस्ति देवे । जिसको निरूहवस्ति दी हो उस मनुष्यको भोजनके पश्चात् अनुवासनवस्ति देवे । सुकुमार शरीरवालेको, वृद्धको और बालकको कोमलवस्ति हितकारक है, जो इनको तीक्ष्ण वस्ति दी जाय तो इनके बलका और आयुका नाश होताहै । विद्वान् वैद्य प्रथम उत्क्लेशनवस्ति देवे, पश्चात् दोषहरवस्ति देवे और तदनन्तर संशमनीय वस्ति देवे ॥ १४२–१४७ ॥

अथोत्क्लेशनवस्तिः ।

एरण्डबीजं मधुकं पिप्पली सैन्धवं वचा ॥ हपुषाफलकल्कश्च वस्तिरुत्क्ले-शनः स्मृतः ॥ १४८ ॥

अण्डीके बीज, महुएकी छाल, पीपल, सैंधानोन, वच और पलाशीके फलका कल्क, इनकी वस्ति देनेको उत्क्ले-शन वस्ति कहतेहैं कि, जिससे दोष पककर अपने अपने स्थानोंसे छूटकर अलग होजातेहैं ॥ १४८ ॥

अथ दोषहरवस्तिः ।

शताह्वा मधुकं बिल्वं कौटजं फलमेव च ॥

सकाञ्जिकः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ १४९ ॥

शतावर, महुआ, बेलगिरी, इन्द्रजौ और कांजी इनको गोमूत्रमे पीसकर उससे वस्ति देवै, उसको दोषहरवस्ति कहतेहैं, कि जिससे वात आदिक दोषोका नाश होताहै ॥ १४९ ॥

अथ शमनवस्तिः।

प्रियंगुर्मधुकं मुस्ता तथैव च रसाञ्जनम्॥ सक्षीरः शस्यते वस्तिर्दोषाणां शमनः स्मृतः ॥ १५० ॥

फूलप्रियंगु (ककूँदनिके बीज), महुआ, नागरमोथा और रसौत इनको दूधमे पीसकर उससे वस्ति देवै, यह संशमनीयवस्ति कहातीहै कि, जिससे दोषोका शमन होताहै ॥ १५० ॥

अथ लेखनवस्तिः।

त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः ॥ ऊषकादिप्रतीवापैर्वस्तयो लेखनाः स्मृताः ॥ १५१ ॥

हरड, बहेडा और आमलेका क्वाथ, गोमूत्र, शहत और जवाखार इनसे जो वस्ति देवै उसको लेखन वस्ति कहते हैं, ये वस्ति लेखन हैं ॥ १५१ ॥

अथ बृंहणवस्तिः।

बृंहणद्रव्यनिष्क्वाथैः कल्कैर्मधुरकैर्युताः॥ सर्पिर्मांसरसोपेता वस्तयो बृंहणाः स्मृताः ॥ १५२ ॥

धातुओंको बढानेवाले पदार्थोंका क्वाथ, मधुर पदार्थोंका कल्क, घी और मासके रससे जो वस्ति दी जाय वह बृहणवस्ति कहातीहै, इस वस्तिसे धातुओंकी वृद्धि होतीहै ॥ १५२ ॥

अथ पिच्छिलवस्तिः।

बदर्यैरावतीशेलुशाल्मलीपुष्पजांकुराः१५३ ऐरावती [नारङ्गी] शेलुः [बहुआर]. ॥ क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिलसंज्ञिताः ॥ अजोरभ्रैणरुधिरैर्युक्ता देया विचक्षणैः ॥ १५४ ॥ अजश्छागः। उरभ्रो मेषः। एणः कृष्णमृगः॥ मात्रा पिच्छिलवस्तीनां पलैर्द्वादशभिर्मता ॥ १५५ ॥

बेर, नारगी, शेलु (निसोरे) शेमलके फूलोके अकुर, इनको दूधमें पकाकर मधु डालकर बकरेके, मेंढेके तथा काले हिरणके रुधिरके साथ जो वस्ति दीजाय वह पिच्छिलवस्ति कहातीहै, इस वस्तिसे शरीरमे पिच्छिलता होतीहै। पिच्छिलवस्तिकी मात्रा बारहपलकी जाननी ॥ १५३–१५५ ॥

अथ निरूहमात्राविधिः।

दत्त्वादौ सैन्धवस्याक्षं मधुनः प्रसृतिद्वयम् ॥ विनिर्मथ्य ततो दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतित्रयम् ॥ १५६ ॥ एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत् ॥ सम्मूर्च्छिते कषायन्तु चतुः प्रसृतिसम्मितम्॥१५७॥ गृह्णीयाच्च तदा वाल्पमन्ते द्विप्रसृतोन्मितम् ॥ क्षिप्त्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं कुशलो भिषक् ॥ १५८ ॥ एवं प्रकल्पितो वस्तिर्द्वादशप्रसृतिर्भवेत् ॥ वाते चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहस्य षट्पलम् ॥ १५९ ॥ पित्ते चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहं पलत्रयम् ॥ कफे तु षट्पलं क्षौद्रं क्षिपेत्स्नेहं चतुष्पलम् ॥ १६० ॥

प्रथम एक तोला सेधानोन लेकर सोलह तोले शहत डालकर खूब पीसे, पश्चात् उसमें चौबीस तोले स्नेह डालकर सबको मर्दन करके खूब मिलालेवै, पश्चात् उसमें आठ तोले कल्क डालकर घोटलेवै, फिर बत्तीस (३२) तोले क्वाथ और तत्पश्चात् सोलह तोले योग्य चूर्ण डालकर सबको खूब मर्दन करै, फिर विद्वान् वैद्य उससे निरूहवस्ति देवै, इस प्रकार करी हुई वस्ति तोलमें बारह प्रसृति होतीहै। विशेष यह है कि वातकी अधिकता हो तो चारपल शहते और छे पल स्नेह डाले, पित्तकी अधिकता हो तो चार पल शहत और तीन पल स्नेह डाले, और कफकी अधिकता हो तो छे पल शहत और चार पल स्नेह डाले ॥ १५६–१६० ॥

अथ मधुतैलकवस्तिः।

एरण्डक्वाथतुल्यांशं मधुतैलं पलाष्टकम्॥

शतपुष्पापलार्द्धेन सैन्धवार्द्धेन संयुतम् ॥ मधुतैलकसंज्ञोऽयं वस्तिर्दारुविलोडितः ॥ ॥ १६१ ॥ मेदोगुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्त्तनाशनः ॥ बलवर्णकरश्चैव वृष्यो दीपनबृंहणः ॥ १६२ ॥

आठपल एरंडकी जडका क्वाथ करके उसमें चारपल शहत, चारपल तेल, आधीपल (दो तोले) सौंफ और आधापल सैंधानिमक डालकर सबको रईसे विलोवे (मथे) यह मधुतैलक वस्ति कहातीहै । इस पिचकारीमें बलकी वृद्धि होतीहै, वर्ण उत्तम होताहै, मैथुनकी शक्ति बढतीहै, अग्नि प्रदीप्त होतीहै, धातुकी पुष्टि होतीहै, और मेद, गुल्म, प्लीहा, मल तथा उदावर्त्त इन सबका नाश होताहै ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

अथ यापनवस्तिः ।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतं प्रसृतं भवेत् ॥ हपुषासैन्धवाक्षांशो वस्तिः स्याद्यापनः परः ॥ १६३ ॥

शहत, घी, दूध और तेल इनको आठ आठ तोले लेकर उसमें एक तोला हाऊबेर और एक तोला सैंधानोन डालकर घोटे, इसकी जो पिचकारी करे उसको यापनवस्ति कहतेहैं, यह वस्ति पाचन और दस्तावर है ॥ १६३ ॥

अथ युक्तरथवस्तिः ।

एरण्डमूलनिष्काथो मधुतैलं ससैन्धवम् ॥ एष युक्तरथो वस्तिः सवचापिप्पलीफलः ॥ १६४ ॥

एरंडकी जडका क्वाथ करके उसमें शहत, तेल, सैंधा, नोंन वच और पीपल डाले तो वह पिचकारी युक्तिरथ वस्ति कहातीहै ॥ १६४ ॥

अथ सिद्धवस्तिः ।

पञ्चमूलस्य निष्काथैस्तैलं मागधिका मधु ॥ ससैन्धवः सयष्ट्याह्वः सिद्धवस्तिरिति स्मृतः ॥ १६५ ॥ स्नानमुष्णोदकैः कुर्याद्दिवास्वप्नमजीर्णताम् ॥ वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत्स्नेहवस्तिवत् ॥ १६६ ॥

पञ्चमूलके काथमें तेल, पीपल, सैंधानिमक, तथा मुलहटी डालकर जो पिचकारी दीजाय वह सिद्धवस्ति कहातीहै । वस्ति लेनेवाले मनुष्यको गरमजलसे स्नान करना, दिनमें सोना और अजीर्णकारक पदार्थ खाना, इन सबोंको छोडदेना चाहिये और सब स्नेहवस्तिकी रीतिके अनुसार आचरण करे ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

अथोत्तरवस्तिविधिः ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञितम् ॥ निरूहादुत्तरो यस्मात्तस्मादुत्तरसंज्ञकः ॥ ॥ १६७ ॥ द्वादशांगुलकं नेत्रं मध्ये च कृतकर्णिकम् ॥ मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ॥ १६८ ॥ पञ्चविंशतिवर्षाणामधो मात्रा द्विकार्षिकी ॥ तदूर्ध्वं पलमात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरैः ॥ १६९ ॥ अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः ॥ स्थितस्य जानुमात्रे च पिष्टे स्निग्धशलाकया ॥ १७० ॥ स्निग्धया मेढ्रमार्गे तु ततो नेत्रं नियोजयेत् ॥ शनैःशनैर्घृताभ्यक्तं मेढ्ररन्ध्रांगुलानि षट् ॥ १७१ ॥ ततोऽवपीडयेद्वस्ति शनैर्नेत्रं विनिर्हरेत् ॥ ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहवस्तिक्रमो हितः ॥ १७२ ॥

अब इसके उपरात उत्तरवस्ति—लिंगमें अथवा योनिमें पिचकारी मारनेकी विधि कहताहूं, यह वस्ति निरूहणवस्ति देनेके पश्चात् देनी चाहिये, इसीकारण इसको उत्तरवस्ति कहतेहैं । मध्यमें गौके कानके समान कार्णिकावाली, मालतीके फूलकी डंडीके समान और सरसों जिस छिद्रमें निकल जाय इतने बडे छेदवाली, ऐसी बारह अंगुलकी नली बनावे । पचीस वर्षसे हीन अवस्थावालेको इस वस्तिमें स्नेहकी दो तोलेकी मात्रा, पचीस वर्षसे अधिक अवस्थावालोंको चारतोलेकी मात्रा देवे ऐसा उत्तम वैद्य कहतेहैं । निरूहवस्तिसे शुद्ध हुए और स्नानसे तथा भोजनसे तृप्त हुए पुरुषको आसनपर उकरू बैठाकर उसके लिंगमें प्रथम जैसी चाहिये ऐसी चिकनी सलाई लेकर उसके मार्गको साफ करके पश्चात् घीसे भरी छै अंगुलकी नली धीरे धीरे लिंगके छिद्रमें डाले, पश्चात् वस्तिको दवाकर धीरसे नली बाहर निकाल लेवे, बाहर निकालकर पश्चात् लिंगमेंसे स्नेह बाहर निकाले तब पूर्वोक्त कही हुई स्नेहवस्तिकी रीतिके अनुसार करे, इस प्रकार करना हितकारी है ॥ १६७-१७२ ॥

स्त्रीणां कनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशांगुलम्॥मुद्गप्रवेशयोग्यश्च योन्यन्तश्चतुरंगुलम् ॥१७३॥ द्व्यंगुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं वियोजयेत्॥मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ॥ १७४ ॥ शनैर्निष्कम्पमाधेयं सूक्ष्मं नेत्रं विचक्षणैः॥ मालतीपुष्पवृन्ताभं नेत्रमित्युदितं पुनः ॥ १७५ ॥ सूक्ष्मशब्दाभिधानं बालानां ततोऽपि नेत्रस्य सूक्ष्मताबोधनार्थम् ॥

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी॥मूत्रमार्गे पलोन्मानं बालानां च द्विकार्षिकी ॥१७६॥ उत्तानायै स्त्रियै दद्यादूर्द्ध्वजान्वै विचक्षणः ॥ अप्रत्यागच्छति भिषग्वस्तावुत्तरसंज्ञिते ॥ १७७ ॥ भूयो वस्तिं विदध्याच्च संयुक्तं शोधनैर्गुणैः॥ फलवर्त्तिं विदध्याद्यो योनिमार्गे दृढां भिषक् ॥१७८॥ सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धां शोधनद्रव्यसंयुताम् ॥दह्यमाने तथा वस्तौ दद्याद्वस्तिं विशारदः॥क्षीरवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन वा ॥ १७९ ॥

दह्यमाने वस्तौ, यस्मिन् स्थाने वस्तिर्दत्तस्तस्मिन् दह्यमाने ॥

वस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्त्तवजा रुजः॥ हन्याद्‌त्तरवस्तिस्तु नोचितो मेहिने क्वचित् ॥१८०॥ सम्यग्दत्तस्य लिंगानि व्यापदः क्रम एव च॥ वस्तेरुत्तरसंज्ञस्य समानाः स्नेहवस्तिना ॥ १८१ ॥

स्त्रियोंके अंगमें उत्तरवस्तिकी क्रिया करनी हो तो कनिष्ठ अगुलीके सदृश मोटी और जिसमे मूँग निकलजाय इतने छेदवाली दश अंगुलकी सूक्ष्म नली बनवावै, यह नली गर्भाशयमे चार अगुल डाले और मूत्रके मार्गमे डालनी होय तो दो अगुल डालै । बालकोको मूत्रकृच्छ्रका विकार हुआहो तो इससे भी अधिक सूक्ष्म नली बनवाकर हाथको कांपनेसे रोककर धीरे धीरे लिगके भीतर एक अगुल डाले,ये नली मालतीके फूलकी डडीके सदृश चाहिये ऐसा ऊपर कहआये हैं । स्त्रियोंके गर्भाशयमे स्नेहकी आठ तोलेकी मात्राकरे और मूत्रके मार्गमे चार तोलेकी मात्रा करे, बालकोंके लिगमे दोतोलेकी मात्रा करे । विद्वान् वैद्य स्त्रीको सीधी (चित्त) सुलाकर घुटने ऊपरको करके पिचकारी मारे । ये उत्तरवस्ति बाहर न निकले तो वैद्य शोधनगुणवाली दूसरी पिचकारी मारे, अथवा योनिके मार्गमें सूतसे बनी चिकनी और शोधनपदार्थोंको सयुक्त करके दृढ फलवर्त्ती प्रवेश करे । जिस स्थानमे पिचकारी मारी हो उसी स्थानमे दाह होय तो चतुर वैद्य दूधवाले वृक्षोंके क्काथसे अथवा शीतल जलसे दूसरी पिचकारी मारे। यह उत्तरवस्ति पुरुषोंके वीर्यके दोषो (रोगो)को और स्त्रियोके ऋतुसबधी दोषोंको नष्ट करतीहै । प्रमेह रोगवालोको कदापि उत्तरवस्तिकी क्रिया नही करे, उत्तरवस्ति भलीभाँति होनेके लक्षण, भलीभाँति न देनेसे हुई पीडा और अन्य समस्त अनुक्रम स्नेहकी वस्तिके सदृशही जानने ॥१७३–१८१॥

फलवर्त्तिविधिः ।

घृताभ्यक्ते गुदे क्षिप्ता श्लक्ष्णा स्वांगुष्ठसन्निभा ॥ मलप्रवर्तिनी वर्तिः फलवर्त्तिश्च सा स्मृता ॥ १८२ ॥

मल निकलनेके लिये गुदामे घी चुपडकर रोगीके अँगूठेके सदृश मोटी और चिकनी वत्ती प्रवेशकरे, इसको वैद्य लोग फलवर्त्ति कहतेहैं ॥ १८२ ॥

नस्यग्रहणविधिः ।

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम् नावनं नस्यकर्मेति तस्य नाम द्वयं मतम् ॥ १८३ ॥

नस्यकर्म नासिकायां कर्म चिकित्सा येन तत् नस्यकर्म ॥

नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ॥ रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ॥१८४॥ कफपित्तानिलध्वंसि पूर्वमध्यापराह्णके ॥ दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे ॥ १८५ ॥

दिनस्य त्रिधा विभक्तस्य पूर्वभागादौ ॥ नस्यं त्यजेद्भोजनान्ते दुर्दिने चापतर्पितः॥ तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी ज्वरदूषितः ॥ १८६ ॥ अजीर्णी दत्तवस्तिश्च पीतस्नेहोदकासवः॥ क्रुद्धः शोकाभिभूतश्च तृषार्त्तो वृद्धबालकौ ॥ वेगावरोधी श्रान्तश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत् ॥ १८७ ॥

नस्यमिति शेषः ॥

अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत् ॥ अशीतिवर्षादूर्ध्वश्च नावनं नैव दीयते १८८

नाकसे ग्रहण करनेकी जो औषधि हो उसको विद्वान् नस्य कहतेहैं, इसके नावन और नस्यकर्म ये दो नाम हैं। जिससे नाककी चिकित्सा होतीहै, इस कारण उसको नस्यकर्म कहतेहैं। रेचन और स्नेहन ये नस्यके दो भेद हैं। जिस नस्यसे भीतरके पदार्थोंकी हीनता हो वह रेचन कहाताहै और जिस नस्यसे भीतरके पदार्थोंकी वृद्धि करीजाय वह स्नेहन कहाताहै। कफ नष्ट करना हो तो पूर्वाह्न (प्रातःकालके) समयमें नस्य देवे, पित्तका नाश करना होय तो मध्याह्न समयमें नस्य देवे और वातको नष्ट करना हो तो अपराह्न समयमे नस्य देवै, जो रोग भयकर होय तो रात्रिमें भी नस्य देवे। भोजनके पश्चात्, तत्काल मेघोंसे छाये हुए दिनमें (अर्थात् जिसदिन बद्दल होय), लंघन करके, नवीन प्रतिश्याय (जुकाम) रोगमें, गर्भिणी स्त्रीको, ज्वरसे दूषित हुएको, अजीर्णमे जिसको वस्ति दी हो उसको, जिसने स्नेह जल अथवा आसव तुरत पिया हो उसको, क्रोध हो तव, शोकाकुलको, प्यासा, वृद्ध, बालक, मलमूत्रका वेग रोकनेवाला, परिश्रमी और जिसको स्नान करनेकी इच्छा हो, इन सबको नस्य देना वर्जित है। बालक जबतक आठ वर्षका न हो तबतक उसको नस्य नहीं देवै और अस्सी वर्षसे ऊपरके वृद्धको भी नस्य नहीं देवै ॥ १८३–१८८ ॥

रेचननस्यविधानम् ।

अथ वै रेचनं नस्यं ग्राह्यं तैले सुतीक्ष्णके ॥ तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः क्वाथै रसैस्तथा ॥ १८९ ॥

तीक्ष्ण तेलोंसे अथवा तीक्ष्ण औषधियोंमे पकाये हुए स्नेहोंसे अर्थात् तैलोंसे क्वाथोंसे वा रसोंसे रेचन नस्य देवै ॥ १८९ ॥

रेचननस्यविधिः ।

नासिकारन्ध्रयोरष्टौ षट् चत्वारश्च बिन्दवः॥ प्रत्येकं रेचनं योग्यं मुख्यमध्याल्पमात्रया ॥ १९० ॥

नासिकाके दोनों छिद्रोंमें रेचन नस्य देवै, प्रत्येक छिद्रमें आठ आठ बूँदें डाले यह उत्तम मात्रा है. छैः छैः बूँदें डाले यह मध्यम मात्रा है. और चार चार बूँदें डाले यह कनिष्ठ मात्रा है ॥ १९० ॥

नस्यौषधप्रमाणम् ।

नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् ॥ हिंगु स्याद्यवमात्रन्तु माषैकं सैन्धवं मतम् ॥ १९१ ॥ क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात्पानीयञ्च त्रिकार्षिकम् ॥ कार्षिकं मधुरद्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत् १९२॥

नस्यकर्ममें तीक्ष्ण औषधि आधा तोला लेवै, हींग एक जौभर लेवै, सेंधा निमक एक मासा लेवै, दूध आठ शाण लेवै, पानी तीन तोले लेवै और मधुर द्रव्य एक तोलेभर लेवै ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

रेचननस्यस्य द्वौ भेदौ ।

अवपीडः प्रधमनो द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ॥ शिरोविरेचनस्यार्थे तौ तु देयौ यथायथम् ॥ १९३ ॥

रेचन नस्यके अवपीड और प्रधमन इन नामवाले और दो भेद हैं। नस्य देकर मस्तकको खाली करना हो तो योग्यरीतिसे इन दोनों भेदोंका उपयोग करै ॥ १९३ ॥

नस्यभेदद्वयलक्षणम् ।

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः॥ सोऽवपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः॥ १९४ ॥ षडंगुला द्विवक्त्रा या नाडी चूर्णं तया धमेत् ॥ तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हितम् ॥ १९५ ॥

जिसके साथ तीक्ष्ण पदार्थ मिले हों ऐसी औषधिका कल्क करके उसको निचोडकर जो रस निकले

वह अवपीड कहाताहै । छैः अगुलकी दो मुखवाली नलीमे आधा तोला तीक्ष्णचूर्ण भरकर मुखसे फूंककर उस चूर्णको नाकमे चढा देवै उसको प्रधमन कहतेहैं ॥१९४॥१९५॥

रेचनस्नेहननस्यस्योपयोगः ।

ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसंक्षये ॥ अरोचके प्रतिश्याये शिरःशूले च पीनसे ॥ १९६ ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषु नस्यं वै रेचनं हितम् ॥ भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहेन शस्यते ॥ १९७ ॥ गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे ॥ मनोविकारे कृमिषु पूज्यते चावपीडनम् ॥ १९८ ॥ अत्यन्तोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते ॥ चूर्णं प्रधमनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः १९९

ऊर्ध्वजत्रुगत अर्थात् हसलीके ऊपरके रोगोंमे, कफसे उत्पन्न हुए रोगोमे, स्वरके क्षयमे, अरुचिमे, जुकाममे, शिरके दर्दमें, पीनसमें, सूजन, मृगी तथा कोढमें, रेचन नस्य देना हितकारी है । डरेहुएको, स्त्रियोको, कृशमनुष्योको और बालकोंको स्नेहन नस्य देना उत्तम है । गलेके रोगमे, सन्निपातमे, निद्रामें, विषमज्वरमें, मनके विकारोंमे (अपस्मारादिकोंमे) और कृमिरोगमें अवपीडन नस्य देना योग्य है । अत्यन्त कुपित हुए दोषोंमें और जिनमें ज्ञान नष्ट होजाय ऐसे रोगोमें धीर वैद्योको चूर्णका प्रधमन नस्य देना योग्य है, कारण वह अत्यत तीक्ष्णहै ॥ १९६–१९९ ॥

रेचननस्यौषधिगुणौ ।

नस्यं स्याद्गुडशुण्ठीभ्यां पिप्पलीसैन्धवेन वा ॥ जलपिष्टेन कर्णाक्षिनासामूर्द्धभवा गदाः ॥ २०० ॥ मन्याहनुगलोद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठजाः ॥ मधूकसारकृष्णाभ्यां वचामरिचसैन्धवैः ॥ २०१ ॥ नस्यं कोष्णाम्भसा पिष्टं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ अपस्मारे तथोन्मादे सन्निपातेऽपतन्त्रके ॥ २०२ ॥

सोठके चूर्णको तथा गुडको एकत्र करके अथवा पीपल तथा सेंधेको पानीमें पीसकर उससे नस्य देवै तौ कानके, नेत्रोंके, नाकके, मस्तकके, गरदनके, ठोडीके, बाहुओंके और पीठके रोग नष्ट होते है । महुएका सत, पीपल, वच, मिरच और सैंधा, इनको थोडे थोडे उष्ण जलमे पीसकर उससे नस्य देवै तौ मृगी, उन्माद, सन्निपात और अपतंत्रक वात इनकी असज्ञाका नाश होताहै ॥२००–२०२॥

रेचननस्यापरविधिः ।

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च ॥ बस्तमूत्रेण संपिष्टं नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ २०३ ॥

श्वेतमरिचम् [सहिंजनेका बीज] ॥

सैंधानोन, सहिजनेके बीज, सरसो और कूठ, इनको बकरेके मूत्रमे पीसकर इससे नस्य देवै तौ तन्द्रा नष्ट होती है ॥ २०३ ॥

प्रधमननस्यौषधिः ।

रोहितस्य च पित्तेन भावितं मरिचं वचा ॥ कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः२०४

मिरच, वच और कायफल इनका चूर्ण करके रोहेडा (रोहू) मछलीके पित्तकी भावना देकर नलीसे प्रधमन नस्य देवै ॥ २०४ ॥

बृंहणस्नेहननस्यकल्पना ।

अथ बृंहणनस्यस्य कल्पना कथ्यतेऽधुना ॥ मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ॥ ॥ २०५ ॥ मर्शस्य तर्पणी मात्रा मुख्या शाणैः स्मृताऽष्टभिः ॥ मध्यमा तु चतुःशाणैर्हीना शाणमिता मता ॥ २०६ ॥ एकैकस्मिंस्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः॥ मर्शस्य द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ एकान्तरं द्व्यन्तरं वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ २०७ ॥

एकान्तरम् एकं दिनमन्तरं नस्यशून्यम् यत्र तत्र एकान्तरम् ॥

त्र्यहं पञ्चाहमथ वा सप्ताहं वा सुयन्त्रितः२०८

अथ वा त्र्यहम् त्रीण्यहानि यावत् प्रतिदिनम् । एवं पञ्चाहं सप्ताहम् । सुयन्त्रितः सावधानः । यथा छिक्का न भवति ॥

[illegible] [illegible] च स्यातां विविधाः [illegible] ॥ [illegible] विशेषा- [illegible] ॥ [illegible] नामित्यादु [illegible] ॥ २०७ ॥

[illegible] ॥

[illegible] [illegible] ॥ [illegible] ॥ २१० ॥ [illegible] [illegible] ॥ [illegible] ॥ २११ ॥ [illegible] चैव [illegible] ॥ [illegible] नस्यं [illegible] ॥ २१२ ॥

[illegible] ([illegible]) [illegible] ॥ २०५ ॥ २१२ ॥

बृंहणस्नेहननस्ययोर्विधिः ।

शर्करां पयसा पिष्टं भृङ्गमाज्येन कुङ्कुमम् ॥ नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवा रुजः ॥ २१३ ॥ भ्रूशङ्खाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्तार्द्धभेदकान् ॥ नस्यं स्यादणुतैलेन तथा नारायणेन वा ॥ माषादिना वा सर्पिर्भिस्तदर्हपदमाधितैः ॥ २१४ ॥

अणुतैलमुक्तं सुश्रुतेन । तद्यथा—"तिलपरिपीडनोपकरणकाष्ठानि आदाय यैस्तन्त्रात्तैः तिलाः परिपीडितास्तानि अणूनि खण्डशः कल्पयित्वा उदूखले संकुट्य कटाहे पानीयेन आप्लाव्य क्वाथयेत् ततस्तैलं निःसरति तत्तैलं हस्तेन जलान्निःसार्य वातघ्नौषधकल्केन पचेत । तत् अणुतैलमिति तन्त्रान्तरम्" ॥

नस्यस्यान्यो विधिः।

तैलं कफे स्याद्वाते च केवले पवने तथा॥ दद्यान्नस्यं सदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च ॥ २१५ ॥ माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुवुकरोहिषैः॥कृतोऽश्वगन्धया क्वाथो हिंगुसैन्धवसंयुतः ॥ २१६ ॥ कोष्णो नस्यप्रयोगेण पक्षाघातं सकम्पनम् ॥ जयेदर्दितवातश्च मन्यास्तम्भापबाहुकौ ॥ ॥ २१७ ॥ प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्वित्रबिन्दुमिता मता ॥ प्रत्येकशो नासिकया स्नेहनेति विनिश्चितम् ॥ २१८ ॥ स्नेहे ग्रन्थिद्वयं यावन्निमग्ना चाद्धृता ततः ॥ तर्जनी यं स्रवेद्बिन्दुं सा मात्रा बिन्दुसंज्ञिता ॥ २१९ ॥ एवंविधैर्बिन्दुसंज्ञैरष्टाभिः शाण उच्यते ॥ स देयो मर्शनस्येषु प्रतिमर्शो द्विबिन्दुकः ॥ २२० ॥ समयाः प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश ॥ प्रभाते दन्तकाष्ठान्ते गृहान्निर्गमने तथा ॥२२१॥ व्यायामाध्वव्यवायान्ते विण्मूत्रान्तेऽञ्जने कृते॥ कवलान्ते भोजनान्ते दिवास्वप्नोत्थिते तथा ॥ २२२ ॥ वमनान्ते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते ॥ ईषदुच्छिंक्नात्स्नेहो यथा वक्त्रं प्रपद्यते ॥ नस्ये निषिक्तं तं विद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः ॥२२३॥

मात्रायुक्तम् ॥

उच्छिष्टं न पिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम् ॥ २२४ ॥

उच्छिष्टम् नस्यावशिष्टम् ॥

कफवातरोगमें और केवल वातमे तैलका नस्य देवै, पित्तरोग हो तौ सर्वदा घीका और मज्जा नाम चरबीका नस्य देवै। उडद, कौंचके बीज, रायसन, एरंडकी जड, बला, रोहिषतृण और असगध इनका क्वाथ करके उसमे हींग तथा सैंधानोन डालकर किंचित् उष्ण करके क्वाथका नस्य देवै तौ कंपसहित पक्षाघात (अर्द्धांग), अर्दितवात (लकवा), गरदनका रहजाना और भुजाओका रहजाना इन सब रोगोंको नष्ट करैहै । नाकके प्रत्येक नथनेमें स्नेहकी दो तीन बूँदे डालै तौ इसको प्रतिमर्श नस्य कहते-हैं। तर्जनी अगुलीको स्नेहमें दो पोरुएतक डुबोकर निकाल लेवै उस अगुलीमेसे जो बूँदे टपके वह बिन्दुरूप मात्रा कहातीहै । इसी कारण आठ बिन्दुओसे शाण नामक मात्रा होतीहै कि, जो मर्शनामक नस्यंम उपयोगी है । प्रतिमर्श नामक नस्यमे ऐसी दो बूँदोंका उपयोग करनेसे आताहै । शाणरूप मात्रासे जो नस्य दियाजाय वह मर्श कहाताहै और दो दो बूँद जिस नस्यमे दीजायँ वह प्रतिमर्श कहाताहै । विद्वानोको प्रतिमर्श नस्य देनेके चौदह समय जानने । प्रभातसमय १ दतौनके पश्चात् २ घरसे बाहर निकलते समय ३ व्यायाम (कसरत) करनेके पीछे ४ मार्ग चलकर आनेके पश्चात् ५ मैथुनके पीछे ६ मलत्यागनेके पश्चात् ७ मूत्रके पीछे ८ अजन लगानेके पीछे ९ कवल खानेके पश्चात् १० भोजनके पश्चात् ११ दिनमे सोनेके पीछे १२ वमन करनेके पश्चात् १३ और सायकालमे प्रतिमर्श नस्य दिया जाता है १४ किञ्चित् छींक आनेपर नाकमें डालाहुआ पदार्थ यदि मुखमे आजाय तब जानना कि प्रतिमर्शकी जैसी मात्रा चाहिये वैसी होचुकी है, नाकमेसे मुखमे आयहुए पदार्थको पिये नहीं वरन् तुरन्त थूकदेवै ॥ २१५–२२४ ॥

प्रतिमर्शनस्यविषयः।

क्षीणे तृष्णास्यशोषार्त्ते बाले वृद्धे च पूज्यते ॥ प्रतिमर्शान्न जायन्ते रोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥ २२५ ॥ वलीपलितनाशश्च बलमिन्द्रियजं भवेत् ॥ विभीतं निंबगम्भारी शिवा शेलुश्च काकिनी ॥२२६॥ एकैकतैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥ २२७ ॥

क्षीण, तृषासे व्याकुल, मुख तथा शोष रोगी और वृद्धको प्रतिमर्श नस्य हितकारी है । प्रतिमर्शका उपयोग करनेसे हँसलीके ऊपर भागमे रोग उत्पन्न नहीं होते, वली (देहमें सिकुरे पडजाना) तथा पलितका नाश होताहै और इन्द्रियोंकी शक्ति उत्तम होतीहै ! बहेडा, नीम, कंभारी, हरड, निसोरे और मालकांगनी, इनमेसे एक

पदार्थके तेलका नस्य लेनेका अभ्यास करे तो अवश्य पलित (विना समय बालोंका श्वेत होजाना) नष्ट होता-है ॥ २२५–२२७ ॥

नस्यसामान्यविधिः ।

अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे ॥ देशे वातरजोमुक्ते कृतदन्तनिघर्षणम् ॥ विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नभालगलं तथा ॥ ॥ २२८ ॥ उत्तानशायिनं किञ्चित्प्रलम्बशिरसं नरम् ॥ आस्तीर्णहस्तपादञ्च वस्त्राच्छादितलोचनम् ॥ २२९ ॥ समुन्नामितनासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत् ॥ कोष्णेनाच्छिन्नधारेण हेमतारादिशुक्तिभिः ॥ शुक्त्या वा यंत्रयुक्त्या वा प्लोतैर्वा नस्यमाचरेत् २३० प्लोतैर्वस्त्रैस्तदुपलक्षितैस्तूलैरपि ॥

नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकम्पयेत् ॥ न कुप्येन्न प्रभाषेत नोच्छिक्केन्न हसेत्तथा ॥ २३१ ॥ एतैर्हि विहितः स्नेहो नैवान्तः सम्प्रपद्यते ॥ ततः कासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसम्भवः ॥ २३२ ॥ शृंगाटकमभिव्याप्य स्थापयेन्न गिलेद् द्रवम् ॥ पञ्चसप्त दशैव स्युर्मात्राः स्नेहस्य धारणे २३३ ॥ उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासावक्त्रागतं द्रवम् ॥ वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत्संमुखं न हि ॥ २३४ ॥

अब नस्य लेनेकी विधि कहताहूँ। दतौन करनेके पश्चात्, शुद्धि करनेके पीछे और धूमपान कराकर कपालमें तथा गलेमे स्वेदित करनेके पीछे रोगीको वायु तथा रज (धूल) से रहित स्थानमें चित्त सुलावै, मस्तकको किंचित् लटकता रहने देवै, हाथ पाव लंबे करावे, नेत्रोंको वस्त्रसे ढककर और नाककी नोक (टिमुआ) ऊँची करके नस्य देवे। सोने अथवा चादीआदिकी चमचीमे वा सीपमे या किसी यन्त्रकी युक्तिसे वा कपडे अथवा रुईके फोहासे, बीचमें धार न टूटे इसप्रकार किंचित् उष्ण नस्य नाकमे डालै। नाकमे नस्य जिस समय डाला जाता हो उस समय रोगी मस्तकको नही हिलावे, क्रोध नही करे, किसीसे बोले नहीं, छीक नही लेवै और हँसै भी नही, कारण कि-मस्तक हिलाने आदिसे स्नेह भीतर नही पहुँचता और खाँसी, जुकाम, मस्तकपीडा और नेत्रपीडा उत्पन्न होती-है। नस्यको कपालकी हड्डीतक पहुँच जानेपर स्थिर रक्खे, जिससे निकल न जाय, पाच सात अथवा दश गुरु अक्षरोंका जब तक उच्चारण हो तबतक नस्यको धारणकर रक्खे, पश्चात् बैठकर नाकमेसे मुखमे आयेहुए द्रवको थूकदेवै, जब थूके तब दाहिनी अथवा बाई ओर थूके, किन्तु सामने नही थूके ॥ २२८–२३४ ॥

नस्यदानानन्तरमकर्तव्यं कर्म ।

नीते नस्ये मनस्तापं रजः क्रोधश्च सन्त्यजेत् ॥ शयीत निद्रां त्यक्त्वा च प्रोत्तानो वाक्छतं नरः ॥ २३५ ॥ तथा शिरोविरेकान्ते धूमो वा कवलो हितः ॥ नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि प्रयोगतः ॥ ॥ २३६ ॥ शुद्धिहीनातियोगा हि विज्ञेयाः शास्त्रचिन्तकैः ॥ लाघवं मलसंशुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः ॥ २३७ ॥ चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥ कण्डूः प्रदेहो गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः ॥ मूर्ध्नि हीनविशुद्धेस्तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥ २३८ ॥

हीनविशुद्धेर्हीननस्येन विशुद्धेः ॥

मस्तुलुंगागमो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः ॥ शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढं विरेचिते ॥ २३९ ॥

मस्तुलुंगम् मस्तकान्तः स्नेहः । इन्द्रियविभ्रमः इन्द्रियाणाम् अयथाविषयग्रहः ॥

नस्य देनेके पीछे मनमे सन्तापको नही आनेदेवे, धूलसे दूर रहे, क्रोधका त्याग करे और जबतक सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण हो तबतक निद्रा नहीं लेवे, चित्त सोता रहे, मस्तकको रेचननस्यसे खाली करनेपर धूमपान करे और कवल खावे यह हितकारी है । नस्यका प्रयोग करनेके पश्चात्

शास्त्र जाननेवाले लक्षणोसे शुद्धिके हीनयोगकी और अतियोगकी परीक्षा करैं। मस्तककी भलीभाँति शुद्धि होजाय तौ शरीरमे लघुता होतीहै, मल साफ उतरताहै, स्रोतोंके रोग नष्ट होतेहैं और चित्तमें तथा इन्द्रियोंमे प्रसन्नता होतीहै। हीनयोग अर्थात् नस्य अल्प देनेसे मस्तक भलीभाँति शुद्ध नही हुआ हो तब खुजली, शरीरमें चिकनापन तथा भारीपन होताहै और नाडियोमें कफ वढताहै, मस्तक वहुत खाली होगया हो तौ नाकमेंसे माथेकी चरबी गिरने लगतीहै, वायुकी वृद्धि होतीहै इन्द्रिये अपने अपने विषयको भली भाँति ग्रहण नहीं करसक्ती और मस्तक जड होजाताहै ॥ २३५–२३९ ॥

नस्यहीनयोगातियोग-चिकित्सा।

हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत् ॥ तत्र हीनेन नस्येन शुद्धे वातघ्नमाचरेत् ॥ ॥२४०॥ सम्यग्विशुद्धे शिरसि सर्पिर्नस्येन दीयते ॥ कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः ॥ २४१ ॥ लक्षणं तदतिस्निग्धे तत्र रूक्षं प्रदापयेत् ॥ भोजयेच्चानभिष्यन्दि नस्ये वातिकमादिशेत् ॥२४२॥

नस्यका हीनयोग और अतियोग होगया हो तौ जिससे कफ वात नष्ट हो ऐसा उपाय करै,नस्यका अल्पयोग हुआ है तौ जिससे वातका नाश हो ऐसा उपाय करै और रेचन नस्यसे मस्तक बहुत खाली होगया हो तौ फिर घीका नस्य देवै। स्नेहन नस्यसे मस्तक बहुत स्निग्ध होगया हो तौ कफका स्राव होताहै, मस्तकमे गुरुता होतीहै और इन्द्रियोमे भ्रम होताहै। इस प्रकार हुआ हो तौ वैद्य रोगीको रूक्ष पदार्थोंका नस्य देवै, जिससे सरदी न हो ऐसे पदार्थ खावै और जिससे वातकी वृद्धि हो ऐसी क्रियाका उपयोग करै ॥ २४०–२४२ ॥

इति पञ्चकर्माणि।

धूमपानविधिः।

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा॥

रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ॥ ॥ १ ॥ शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा ॥ बृंहणस्य च पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ॥ २ ॥ रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च॥अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रान्तो भीतश्च दुःखितः ॥ ३ ॥ दत्तवस्तिर्विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा॥पिपासितश्च दाहार्तस्तालुशोषी तथोदरी ॥४॥ शिरोऽभितापी तिमिरी छर्द्याध्मानप्रपीडितः ॥ क्षतोरस्कः प्रमेहार्त्तः पाण्डुरोगी च गर्भिणी ॥ ५ ॥ रूक्षः क्षीणोऽभ्यवहृतक्षीरक्षौद्रघृतासवः॥ भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा ॥ ६ ॥ अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् ॥ तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनाञ्जनतर्पणम् ॥ ७ ॥ सर्पिरिक्षुरसं द्राक्षां पयो वा शर्कराम्बु वा ॥ मधुराम्लौ रसौ वापि वमनाय प्रदापयेत् ॥ ८ ॥ धूमस्तु द्वादशाद्वर्षाद्गृह्यतेऽशीतिकान्न च ॥ कासश्वासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः ॥ ९ ॥ वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद्धूमः सुयोजितः ॥ धूमोपयोगात्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनः॥ दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगन्धिवदनो भवेत् १०

शमन (कुपित हुए दोषोंको शात करनेवाला), बृहण (धातुओको पुष्ट करनेवाला), रेचन (शरीरको दोषोंसे खाली करनेवाला), कासहा (खाँसीको नष्ट करनेवाला), वामन (वमनकारक) और व्रणधूपन (व्रणको धुआँ देनेवाला) इस प्रकार धूमपानके छः भेद हैं। मध्य तथा प्रायोगिक, ये दो शमनके पर्याय है। स्नेहन और मृदु, ये दो बृहणके पर्याय हैं। और शोधन तथा तीक्ष्ण, ये दो रेचनके पर्याय हैं। थकाहुआ, भयभीत, दुःखित, जिसके पिचकारी लगाई हो, जिसको रेच (जुल्लाब) दिया हो, जो रात्रिमे जागा हो, तृषित, दाहसे पीडित, जिसका तालू सूख गयाहो, उदररोगी, जिसका मस्तक तप्त हो, तिमि-

रुरोगी, वमन करे हुए, अफारे वाला, उरःक्षतरोगयुक्त, प्रमेहसे पीडित, पाण्डुरोगी, गर्भवाली स्त्री, रूक्षशरीरी, क्षीण हुआ, जिसने दूध, शहद, घी अथवा आसवका उपयोग कियाहो, जिसने अन्न, दही, अथवा मछली खाई हो, बालक, वृद्ध और दुर्बलशरीरयुक्त, इनको धूमपानका ग्रहण योग्य नही है । जो धूम अयोग्य समयमे पिये अथवा बहुत पिये तौभी उपद्रवोंको उत्पन्न करैहै । धूमपानमे कोई उपद्रव हो तौ उसको शांत करनेके लिये घी पिये, नस्य देवै, अञ्जन आँजै, तृप्त करै, घी लगावै, ईखका रस पिये, दाख खावे, दूध पिये, बूराका सरबत पिये, अथवा मधुर और खट्टे रसका उपयोग करावे, बारह वर्षके प्रथम और अस्सी वर्षके पीछे धूमपान वर्जित है । जो धुऐंका योग्य रीतिसे पान कराजाय तौ खाँसी, श्वास, जुखाम, गरदनका स्तंभ, जाबडेका स्तंभ, मस्तककी पीडा, वातके विकार और कफके विकार नष्ट होतेहैं । धुऐंका उपयोग करनेसे इन्द्रिय, वाणी, तथा मन स्वच्छ होताहै, केश, दाँत और दाढी, मूँछ दृढ होतेहैं और मुख सुगन्धित होताहै ॥ १–१० ॥

धूमपाननलिकामानम् ।

धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखण्डा च त्रिपर्विका॥ कनिष्ठिकापरिणाहा राजमाषागमान्तरा ११

राजमाषागमा समस्ता नाडी ॥

धूमनाडी भवेद्दीर्घा शमने रोगिणोंगुलैः ॥ चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद् द्वात्रिंशद्भिर्मृदौ मता॥

मृदौ बृंहणे ॥

तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्ने षोडशोन्मितैः ॥ १३ ॥

तीक्ष्णे रेचने ॥

दशांगुलैर्वामनीये तथा स्याद्व्रणनाडिका १४ तथा दशांगुलमिता ॥

कलायमण्डलस्थूला कुलत्थागमरन्ध्रिका॥

शमन धूम देना होय तो रोगीके चालीस अंगुलकी लंबी, बृहण धूम देना हो तो रोगीके बत्तीस अंगुलकी लंबी, रेचन धूम देना हो तो रोगीके चौबीस अंगुलकी लंबी, कासनाशक धूम देना हो तो रोगीके सोलह अंगुलकी लंबी वामक धूम देना हो तो रोगीके दश अंगुलकी लंबी और व्रणको धूम देना हो तो भी रोगीके दश अंगुलकी लंबी, नली बनवावे, यह नली तीन खण्डवाली, तीन पेंचोंकी, छोटी अंगुलीके सदृश मोटी और जिसमे चौंराईका दाना चलाजाय ऐसे छिद्रवाली बनवावे, परन्तु वमन और व्रणको धूम देनेकी नली मटरके समान गोल और जिसमे कुलथीका दाना चला जाय ऐसे छिद्रवाली बनवावे ॥ ११–१४ ॥

धूमपानविधिः ।

अथेषिकां प्रलिम्पेच्च सुश्लक्ष्णां द्वादशांगुलाम् ॥ १५ ॥

इषिकाम् शरकाण्डम् ॥

धूमद्रव्यस्य कल्केन लेपश्चाष्टांगुलः स्मृतः॥ कल्कं कर्षमितं लिप्त्वा छायाशुष्कञ्च कारयेत् ॥ १६॥ इषिकामपनीयाथ स्नेहाक्तां वर्तिमादरात् ॥ अंगारैर्दीपितां कृत्वा धृत्वा नेत्रस्य रन्ध्रके ॥ १७ ॥ वदनेन पिबेद्धूमं वदनेनैव संत्यजेत् ॥ नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव धूमं त्सुधीः ॥ १८ ॥ शरावसम्पुटे क्षिप्त्वा कल्कमंगारदीपितम् ॥ छिद्रे नेत्रं निवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ॥ १९ ॥

नली तैयार करनेके पीछे सरकडेकी बारह अंगुलकी लंबी सलाई लेकर जो औषधि धूमपान करनेकी हो उसका कल्क उस सलाई पर आठ अंगुलतक लगावै । एक तोलाभर कल्क लगावै, उसको छायामे सुखाकर उसमेंसे सरकडेकी सलाई निकाल लेवै फिर उस छिद्रमे घृतमे भिगोकर बत्ती बहुत सँभालकर रक्खे । इस बत्तीको अंगारोंसे सुलगाकर औषधिकी नलीको नालके छिद्रमें रखकर मुखमे धुऐंको पिये और धुआँ मुखसे निकाल देवै और नाकसे पीकर धुआँ मुखसे निकाल देवै । जो व्रणको धुआँ देना हो तौ अंगारेसे सुलगाये

हुए कल्कको शराव सपुटमे रख ऊपरके शराव (शिकोरे) छिद्रयुक्तमे नली लगाकर उससे व्रणको धुआँ देवै१५-१९

धूमपानौषधिकल्कः।

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसं मृदौ॥ रेचने तीक्ष्णकल्कश्च श्वासघ्ने क्षुद्रकोषणम् ॥ २० ॥ वामने स्नायुचर्माढ्यं दद्याद्धूमस्य पानकम् ॥ व्रणे निम्बवचाद्यश्च धूपनं संप्रशस्यते ॥ अन्येऽपि धूमा गेहेषु कर्तव्या रोगशान्तये ॥ २१ ॥

शमन धूममे इलायची आदिका, बृंहण धूममे घृतादियुक्त रालका, रेचन धूपमे राई आदि तीक्ष्ण पदार्थका, कासघ्न धूममें कटेरी और काली मिरचका, वामन धूममें स्नायु (जीवोंकी नस) और चमडे आदिका, व्रणको धूम देनेमें नीम और वच आदिका कल्क उपयोगमे लेवै. इसी प्रकार शातिके लिये घरमें और भी धूनी देवै२०।२१

अथ गृहदेयधूमः।

यथा—मयूरपिच्छं निम्बस्य पत्राणि बृहतीफलम् ॥ २२ ॥ मरिचं हिंगु मांसी च बीजं कार्पाससम्भवम् ॥ छागरोमाहिनिर्मोको विष्ठा बैडालिकी तथा ॥२३॥ अहिनिर्मोकः सर्पकंचुकः ॥

गजदन्तश्च तच्चूर्णं किञ्चिद्घृतविमिश्रितम् ॥ गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान्बालग्रहान्हरेत् ॥ पिशाचात्राक्षसान्हत्वा सर्वज्वरहरं भवेत् ॥ २४ ॥

इत्यपराजितो धूमः।

मोरपख, नीमके पत्ते, कटेरीके फल, कालीमिरच, हींग, जटामासी, विनौले, बकरीके बाल, साँपकी केंचली, बिलावकी विष्ठा और हाथीदाँत इनका चूर्ण करके उसमे थोडा घी डालकर उस चूर्णका घरमें धुआँ देवै तौ सम्पूर्ण बालग्रह, पिशाच और राक्षस दूर होते हैं और सर्व प्रकारके ज्वर भी नष्ट होतेहैं। यह धूम 'अपराजित धूम' इस नामसे कहा जाता है। ॥ २२–२४ ॥

धूमपाने त्याज्यकार्यम्।

मनस्तापं रजःक्रोधौ धूमपाने निवारयेत् ॥ नेत्राणि धातुजान्याहुर्नलवंशादिजान्यपि ॥ २५ ॥

धूमपान करनेवाले मनमे सताप नही आने देवें, धूलसे दूर रहैं और क्रोध नहीं करैं। धुएँकी नाल किसी ताम्र आदि धातुकी बनवाना चाहिये, अथवा बाँस नरसल आदिकी बनवावे ॥ २५ ॥

गण्डूषकवलप्रतिसारणविधिः।

तत्र गण्डूषविधिः।

स्नेहक्षीरकषायादिद्रवैः सम्पूर्णमाननम्॥ आपूर्य स्थीयते तावद्विधिर्गण्डूषधारणे ॥ ॥ १॥ कफपूर्णास्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ॥ नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत्तावद्गण्डूषधारणम्॥२॥ गण्डूषान्सुस्थितः कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः॥ मनुष्यः स्त्रींस्तथा पंच सप्त वाऽदोषनाशनात् ॥ ३ ॥

गलादिक इति आदिशब्देन गण्डकपोलौ गृह्येते सुश्रुतोक्तत्वात् ॥

(स्नेह, दूध और क्वाथ आदि द्रवपदार्थोंसे मुखको पूर्ण भरके जबतक रहसकै तबतक रक्खे, यह कुल्हे करनेके समयकी अवधि है, अथवा कफसे मुख जबतक भरजावै तबतक, अथवा जो दोप हो उसका छेदन होनेपर अथवा नेत्रोंमेसे और नाकमेंसे जब पानी झरने लगै तबतक मुखमें क्वाथको धारण करै। मनुष्य स्वस्थतापूर्वक कपालमें, गलेमे तथा गालोंपर जबतक पसीना आवै तबतक अथवा जो दोप हो उसका नाश होनेतक तीन, पाँच तथा सात कुल्हे करै)॥ १–३ ॥

गण्डूषभेदाः।

चतुर्विधः स्याद्गण्डूषः स्नेहनः शमनस्तथा॥

स्वेदौ तापोष्मजौ प्रायः श्लेष्मघ्नौ समुदीरितौ ॥ उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसङ्गे द्रवो हितः ॥ २ ॥

द्रवः स्वेदः ॥

महाबले महाव्याधौ शीते स्वेदो महान्स्मृतः ॥ दुर्बले दुर्बलः स्वेदो मध्यमे मध्यमो मतः ॥ ३ ॥ बलासे रूक्षणः स्वेदो रूक्षस्निग्धः कफानिले ॥

रूक्षणः रूक्षयतीति रूक्षणः नन्द्यादित्वाल्ल्युट् प्रत्ययः ॥

कफमेदोवृते वाते कोष्णं गेहं रवेः करान्॥ नियुद्धं मार्गगमनं गुरु प्रावरणं ध्रुवम् ॥ ॥ ४ ॥ चिन्ताव्यायामभारांश्च सेवेतामयमुक्तये ॥ येषां नस्यं प्रदातव्यं वस्तिश्चापि हि देहिनाम् ॥ शोधनीयाश्च ये केचित्पूर्वं स्वेद्याश्च ते मताः ॥ ५ ॥ स्वेद्या ऊर्द्ध्वं त्रयोऽपीह भगन्दर्यर्शसस्तथा ॥ अश्मर्या चातुरो जन्तुः शमयेच्छस्त्रकर्मणः ॥ ६ ॥

शस्त्रकर्मणः ऊर्ध्वं पश्चाच्च इति सुश्रुते ॥

पश्चात्स्वेद्या हृते शल्ये मूढगर्भगदे तथा ॥ काले प्रजाताऽकाले वा पश्चात्स्वेद्या नितम्बिनी ॥ ७ ॥ सर्वान्स्वेदान्निवाते च जीर्णान्ते वावचारयेत् ॥ स्वेदाद्धातुस्थिता दोषाः स्नेहक्लिन्नस्य देहिनः ॥ ८ ॥ द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठान्तर्गत्वा यान्ति विरेकताम् ॥ स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी ॥ स्वेद्यमानशरीरस्य हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ॥ ९ ॥

शीतलैः आर्द्रवस्त्रादिभिः ॥

अजीर्णी दुर्बली मेही क्षतक्षीणः पिपासितः ॥ अतिसारी रक्तपित्ती पाण्डुरोगी तथोदरी ॥ मेदस्वी गर्भिणी चैव न हि स्वेद्या विजानता ॥ १० ॥

"स्वेदादेषां याति देहो विनाशं नो साध्यत्वं यान्ति चैषां विकाराः ॥"

एतान्यपि मृदुस्वेदैः स्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥ मृदुस्वेदं प्रयुञ्जीत तथा हृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ ११ ॥ अतिस्वेदात्सन्धिपीडा दाहस्तृष्णा क्लमो भ्रमः ॥ पित्तासृक्पिडिकाकोपस्तत्र शीतैरुपाचरेत् ॥ १२ ॥

तापस्वेद, उष्मस्वेद, उपनाहस्वेद और द्रवस्वेद, इस भाँति स्वेद (पसीने) निकालनेके चार भेद हैं. ये सम्पूर्ण स्वेद वायुरोगोंको नष्ट करे हैं। तापस्वेद और ऊष्मस्वेद, ये विशेष करके कफनाशक हैं, उपनाहस्वेद, वायुको नष्ट करै है और पित्तका विशेष सम्बन्ध होय तो द्रवस्वेद हितकारी होताहै। अत्यन्त बलवान् वातसम्बन्धी महारोग होय तो प्रबलस्वेद करावै, मध्यम प्रकारकी व्याधि हो तो मध्यम प्रकारका स्वेद देवै और अल्प व्याधि हो तो अल्प साधारण स्वेद देवै। कफका रोग होय तो रूक्षकरनेवाला स्वेद देवै और कफसहित वायुका रोग होय तो रूक्षता तथा स्निग्धता इन दोनोको करनेवाला स्वेद देवै। कफ तथा मेदसहित वायुरोग हो तो इस रोगसे छूटनेके लिये किंचित् गरमीयुक्त गृहमे रहै, सूर्यकी किरणोका सेवन करे, युद्ध करै, मार्गमे अधिक चले और मोटे तथा भारी वस्त्र पहरै, चिन्ता किया करे, व्यायाम (कसरत) और बोझ उठानेका अभ्यास करे। जिसको नस्य देना हो, वस्ति देनी हो अथवा रेचन देना हो उसके शरीरमें प्रथम स्वेदकी क्रिया करनी चाहिये ॥ १-५ ॥

भगन्दर, बवासीर, अथवा पथरी इसे व्याकुल हुएके शस्त्रक्रिया करानेसे पहिले अथवा शस्त्रक्रिया करानेके पीछे स्वेद देवै, ऐसा सुश्रुतमे कहा है। स्त्रीके उदरमे शल्य हो तौ उसको निकालनेके पश्चात् स्वेद देवै, स्त्रीके उदरमे अधिककालसे गर्भ जैसेका तैसा ही स्थिर रहनेसे दर्द रहता हो तौ उसको दूर करके पश्चात् स्वेद देवै, तैसेही समय पर प्रसव हुआ हो अथवा विनासमय प्रसव हुआ होय तौ भी स्त्रीको प्रसव होनेके पश्चात् स्वेद देवै। सम्पूर्ण प्रकारके स्वेद वायुरहित स्थानमे और खाये हुए अन्नके पचजानेपर देवै। घी अथवा तेल आदि स्नेहपदार्थसे अभ्यंग करनेके पश्चात् स्वेद देनेसे धातुओंमें रहनेवाले दोष द्रवताको प्राप्त हो कोठेके भीतर जाकर रेचके सदृश मलके साथ निकल जाते हैं। रोगीके शरीरको प्रथम स्नेहपदार्थका अभ्यंग मालिस करनेके पश्चात् स्वेद देवै और स्वेद देनेमें उसके

[illegible]

तापस्वेदविधिः ।

तेषु तापाभिधः स्वेदो वालुकावस्त्रपाणिभिः ॥ कपालकन्दुकाङ्गारैर्यथायोग्यं हि [illegible] ॥ १३ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

ङ्गुलास्यामिति मूले षडंगुलं विशालमुखं गोपुच्छमिव क्रमकृशम् । तेन अग्रे गोपुच्छाग्रपरिमाणेन कृशां नाडीम् अन्तःसरन्ध्राम् द्विहस्तकां हस्तद्वयपरिमाणाम् । हस्तिशुण्डिकयेति हस्तिशुण्डेव क्रमकृशत्वान्नाड्या इयं संज्ञा ॥

पुरुषायाममात्रां वा भूमिं सम्मार्ज्य खादिरैः ॥ काष्ठैर्दग्ध्वा तथाऽभ्युक्ष्य क्षीरधान्याम्लवारिभिः ॥ १७ ॥ वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम्॥एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानं स्वेदमाचरेत्॥ १८॥

प्रदिह्य देहं वातार्त्तं क्षीरमांसरसादिभिः ॥ १९ ॥ अम्लपिष्टैः सलवणैः सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः ॥ अथ ग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेन च ॥ २० ॥ दधिसौवीरकक्षीरैर्वीरतर्वादिना तथा ॥ कुलित्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः ॥ २१ ॥ शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः ॥ एरण्डमूलजीरैश्च रास्नामूलकशिग्रुभिः ॥ ॥ २२ ॥ मिसिकृष्णाकुठेरैश्च लवणैरम्लसंयुतैः ॥ प्रसारण्यश्वगन्धाभ्यां वलाभिर्दशमूलकैः ॥ २३ ॥ गुडूच्या वानरीबीजैर्यथालाभसमाहृतैः ॥ क्षुण्णैः स्विन्नैश्च वस्त्रेण बद्धैः संस्वेदयेन्नरम् ॥ महाशाल्वणसंज्ञोऽयं योगः सर्वानिलार्तिहृत् ॥ २४ ॥

अस्य अयमर्थः—उपनाहस्वेदश्च कुर्यात्। केन प्रकारेण इत्याकांक्षायां तत्प्रकारमाह। वातहरौषधैः। कथम्भूतैः? अम्लपिष्टैः अम्लेन काञ्जिकतक्रादिना पिष्टैः। सलवणैः स्नेहसंयुतैः। क्षीरमांसरसान्वितैः। सुखोष्णैः। वातार्तं देहं प्रदिह्य प्रलिप्य स्वेदयेदित्यर्थः ॥

अथ वाम्लेन सम्पिष्टैः कोष्णैः सूक्ष्मपुटस्थितैः ॥ भेषजैः स्वेदयेत्किं वा स्विन्नैः कोष्णैः पटस्थितैः ॥ २५ ॥

वातनाशक औषधियोंको काँजी अथवा छाछ आदि खट्टे रसोंसे पीसकर उसमें नोन, घी, दूध, मासका रस, ग्राम अथवा जलके समीप रहनेवाले जीवोंका मास, काकोलीआदि जीवनीय गणकी औषधि, दही, काँजी और वरितरु आदि गणकी ओषधि डालकर गरम करके उससे रोगीको सहता सहता उसके शरीरपर लेप करे, पश्चात् कुलथी, उडद, गेहूँ, अलसी, तिल, सरसों, सोफ, देवदार, निर्गुंडी, कलौंजी, अण्डकी जड, जीरा, रायसन, मूली, सहँजना, वरियारी, पीपल, वनतुलसी, पाँचो निमक, अम्लपदार्थ, गन्धप्रसारिणी, असगन्ध, वला, दशमूल, गिलोय और कोंचके वीज, इनमेंसे जितने पदार्थ मिले उतने लेकर पीसे फिर औटाकर रोगीके शरीरपर वस्त्रके सदृश बांधकर जो स्वेद दियाजाय वह एक प्रकारका उपनाहस्वेद कहाताहै। उपरोक्त पदार्थोंसे कियाहुआ स्वेदका प्रयोग 'महाशाल्वण' इस नामसे प्रसिद्ध है, और वह प्रयोग सम्पूर्ण प्रकारकी वातसंबधी पीडाको नष्ट करैहै, औषधियोंको अम्लरससे पीस किंचित् उष्णकर मृदुवस्त्रसे शरीरपर बाँधकर जो स्वेद दियाजाय वह भी उपनाह स्वेद कहाताहै। औषधियोको औटाकर किंचित् उष्ण होय तब वस्त्रपै लेपकर शरीरपर बाँधकर जो स्वेद दियाजाय वह भी उपनाहस्वेद कहाताहै ॥ १९-२५ ॥

द्रवस्वेदविधिः।

द्रवस्वेदस्तु वातघ्नो द्रव्यक्वाथेन पूरिते ॥ कटाहे कोष्ठके वापि सूपविष्टोऽवगाहयेत् ॥ २६ ॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं लौहञ्च दारुजम् ॥ कोष्ठकं तत्र कुर्वीतोच्छ्राये षड्विंशदंगुलम् ॥ आयामे वा तदेव स्याच्चतुष्कोणन्तु चिक्कणम् ॥२७॥

पक्षान्तरमाह।

नाभेः षडंगुलं यावन्मग्नं क्वाथस्य धारया॥ कोष्णया स्कन्धयोः सिक्तस्तिष्ठेत्स्निग्धतनुर्नरः ॥ २८ ॥

अयमर्थः—प्रथमतो वातघ्नद्रव्यक्वाथेन कंठपूरित कोष्ठके कटाहे वा सूपविष्टस्तिष्ठेत्। अथवा नाभेः षडंगुलमूर्द्ध्वं यावत् क्वाथे मग्न उपविष्टः। पश्चात् क्वाथस्य धारया स्कन्धयोः सिच्यमानस्तिष्ठेत्। यावत् कोष्ठकं परिपूर्णं भवति इत्यर्थः। क्वाथपक्षे प्रथमतः स्नेहाभ्यक्ततनुरुपविशेत् ॥

मुहूर्त्तैकं समारभ्य यावत्स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ तावत्तदवगाहेत यावदारोग्यनिश्चयः ॥ ॥ २९ ॥ एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिषा स्वेद-

येन्नरम् ॥ एकान्तरो द्व्यन्तरो वा युक्तः स्नेहोऽवगाहने ॥ ३० ॥

एतावता क्वाथो दुग्धश्च नित्यमेव युज्यते। स्नेहस्तु दिनमेकं द्वे वा दिने गमयित्वा युक्तः, अग्निमांद्यशंकया इति भावः ॥

शिरामुखैर्लोमकूपैर्धमनीभिश्च तर्पयेत् ॥ शरीरे बलमाधत्ते युक्तः स्नेहोऽवगाहने ॥ ३१ ॥ जलसिक्तस्य वर्द्धते यथा मूलेऽङ्कुरादयः ॥ तथैव धातुवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते ॥ ३२ ॥ नातः परतरः कश्चिदुपायो वातनाशनः ॥ शीतशूलव्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे ॥ दीप्तेऽग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ३३ ॥

कढाव अथवा कोठीमे गलेतक वातनाशक औषधियोंका क्वाथ भरकर रोगीको उसमें भली भाँति बैठाकर गोता लगवावे; यह द्रवस्वेद कहाताहै । यह कोठी सुवर्णकी, चाँदीकी, ताँबेकी, लोहेकी, अथवा लकडीकी, छब्बीस अगुल चौडी लबी और चौकोर तथा चिकनी होनी चाहिये, रोगीके शरीरको घी तेल आदिकी मालिशकर नाभिसे ऊपर छः अगुलतक क्वाथमे बैठावे, इस भाँति क्वाथसे भरीहुई कोठीमे बैठकर उसके दोनो कधोंपर किंचित् उष्ण क्वाथकी धारा डाले, जबतक कोठी पूरी न होजाय तबतक डालता रहे, यह भी द्रवस्वेद कहाताहै । दोघडीसे आठघडीतकके समयतक आरोग्य निश्चय होनेपर्यन्त रोगीको इसीप्रकार स्नान करावे, ऊपर कहे अनुसार तेलसे, दूधसे अथवा घीसे भरेहुए पात्रमें रोगीको स्नान करावे वह भी द्रवस्वेद कहाताहै । द्रवस्वेद देनेमें क्वाथका और दूधका प्रतिदिन उपयोग करना चाहिये, परन्तु स्नेहपदार्थोंका उपयोग करना होय तो बीचमे एकदिनका अथवा दो दिनका अन्तर डालकर करे, कारण कि स्नेहका नित्य उपयोग करनेसे अग्नि मन्द होजानेका भय रहताहै । द्रवस्वेदके प्रयोगमे लिया हुआ घी आदि स्नेह पदार्थ नसोंके मुखोंमे, रोमोंके छिद्रोंमे और बडी नाडियोंमें भीतर जाकर शरीरको तृप्त करतेहैं और बल देते हैं । जिसप्रकार वृक्षकी जडमे पानी सींचनेसे वृक्षके अंकुर आदि वृद्धिको प्राप्त होतेहैं, तैसेही स्नेहका सेचन होनेसे धातुओंकी वृद्धि होतीहै । वातका नाश करनेके लिये इस द्रवस्वेदसे अधिक दूसरा कोई भी उपाय नहीं । शीत, शूल, अंगोंका जकडजाना, तथा भारीपन नष्ट होजाय, अग्नि दीपन होजाय और शरीरमे मृदुता (कोमलता) आजाय तब स्वेदकी क्रियाको छोडदेना चाहिये ॥ २८–३३ ॥

मूर्द्धतैलविधिः ।

अभ्यङ्गः परिषेकश्च पिचुर्बस्तिरिति क्रमात् ॥ मूर्द्धतैलं चतुर्द्धा स्याद्बलवत्तद्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अभ्यङ्गः तैलेन शिरसो मर्दनम् । परिषेकः शिरसि धारापातनम् । पिचुः तैलाक्तं तूलं 'फाहा' इति लोके । वस्तिः वक्ष्यमाणः ॥

त्रयोऽभ्यङ्गादयः पूर्वं प्रसिद्धाः सर्वतः स्मृताः ॥ शिरोवस्तिविधिश्चात्र प्रोच्यते सुज्ञसम्मतः ॥ २ ॥ शिरोवस्तिश्चर्मणः स्याद् द्विमुखो द्वादशांगुलः॥ शिरःप्रमाणस्तं बद्धा मस्तके माषपिष्टकैः ॥ ३ ॥ सन्धिरोध विधायाशु स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत् ॥ तावद्धार्यस्तु यावत्स्यान्नासाकर्णमुखस्रुतिः ॥ ४ ॥ वेदनोपशमो वापि मात्राणां वा सहस्रकम् ॥ स्वजानुनः करावर्तं कुर्याच्छोटिकया युतम् ॥ ५ ॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ विना भोजनमेवात्र शिरोवस्तिः प्रशस्यते ॥ ६ ॥ प्रयोज्यस्तु शिरोवस्तिः पञ्च सप्त दिनानि वा ॥ विमोच्य शिरसो वस्तिं गृह्णीयाच्च समन्ततः ॥ ७ ॥ ऊर्द्ध्वं कायं ततः कोष्णे नीरे स्नानं समाचरेत् ॥ अनेन दुर्जया रोगा वातजा यान्ति सङ्क्षयम् ॥ शिरःकम्पादयस्तेन सर्वकालेषु युज्यते ॥ ८ ॥

पञ्च सप्तदिनानि वा इति उक्त्वा सर्वकालेषु इति शिरःकम्पादिरोगानुवृत्तौ ज्ञेयम् ॥

मस्तकमें तेलका मर्दन करना, ऊँचेसे तेलकी धार डालना, तेलसे भीगेहुए रूईके फोहे रखना और तेलसे वस्ति देना, इसप्रकार शिरमे तेल डालनेके चार भेद है। इनमे पहिलेके तीन भेद सर्व स्थानोमे प्रसिद्ध है; इस कारण इनका व्याख्यान नही करते; अत्र मस्तकमें तेलसे वस्ति देनेकी विधि कि, जिसको विद्वानोने स्वीकृत किया है, उसका व्याख्यान करतेहैं। दो मुखकी बारह अंगुले ऊँची और मस्तकमें आजाय ऐसी चमडेकी टोपी बनवावे, इस टोपीको मस्तकमे पहरकर उडदके आटेसे उसकी संधियोको बदकर तथा उसके मुखके नीचे उडदके आटेकी वाड लगाकर ऊपरके मुखमे किञ्चित् उष्ण तेल खूब भरदेवे. यह मस्तकमें तेलकी वस्ति दीजाती है। नाक, कान और मुखमेंसे पानी झरे तबतक, वा वेदना मिटनेपर्यन्त, अथवा हजार मात्रा होनेतक इस वस्तिको धारण करे। अपने घुटुओंपर हाथको फेरके घुमाकर एक चुटकी बजावे, जितनी देरमे चुटकी बजै इतने समयकी एक मात्रा होतीहै ऐसा सर्वग्रथोंका निश्चय है। जबतक रोगीने भोजन नही कियाहो उस समय तक यह वस्ति देना उत्तम है. पांच अथवा सात दिनतक यह प्रयोग नित्य करै। वस्तिके धारणका समय पूर्ण होजाय तब टोपीको उतारकर चारों ओरसे तेल लेलेवे, उसके पश्चात् रोगीको किञ्चित् उष्ण जलमे खडा करके स्नान करावे, यह वस्ति देनेसे मस्तकका कंप आदि वातसम्बन्धी भारी कठिन होयँ तो भी क्षय होतेहै. पाच अथवा सात दिनतक वस्तिकी क्रिया करनेपर भी रोग नष्ट नहीं होय तो अधिक दिनतक यह वस्ति देवे॥ १-८॥

अथ कर्णविधिः।

स्वेदयेत्कर्णदेशन्तु किञ्चिन्नुः पार्श्वशायिनः॥ मूत्रैः स्नेहै रसैरुष्णैः श्रोत्ररन्ध्रं प्रपूरयेत्॥ १॥ कर्णश्च पूरितं रक्षेच्छतं पंच शतानि वा॥सहस्रं वापि मात्राणां श्रोत्रकंठशिरोगदे॥ २॥ मूत्राद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते॥ तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते॥ ३॥ तद्यथा-कर्णे शूलाकले कोष्णं बस्तमूत्रंससैंधवम्॥ निक्षिपेत्तेन शाम्यन्ति शूलपाकादिका रुजः॥ ४॥ शृङ्गवेरञ्च मधुकं सैंधवं तैलमव च॥ कटूष्णं कर्णयोर्देयमेतत्स्याद्वेदनापहम्॥ ५॥ पीतार्कपत्रमाज्येन लिप्तं वह्नौ प्रतापयेत्॥ तद्रसः श्रवणे क्षिप्तः कर्णशूलहरः परः॥ ६॥

रोगीको एक करवट सुवाकर उसके कानके प्रदेशको किञ्चित् सेककर कानके छिद्रको उष्णमूत्रसे, स्नेहसे, अथवा रससे भरदेवे। कर्णरोग हो तो सौ मात्रातक, गलरोग होय तो पांचसौ मात्रातक और मस्तकरोग होय तो हजार मात्रा तक कानको तेल आदिसे पूरित रहनेदेवे। कर्णको मूत्र आदिसे भरना होय तो भोजनसे पहिले भरे और तेल आदिसे भरना होय तो सूर्यके अस्त होजानेके पश्चात् भरे, यह उत्तम है। कर्णमे शूल होता हो तो सैंधेनमक सहित किञ्चित् उष्ण बकरेका मूत्र कानमें डाले, इसप्रकार करनेसे कर्णका शूल तथा कानका पकना आदि सब पीडा शात होजाती है। अदरकका रस, शहद, सैंधानिमक और तेल, इतने पदार्थ कानमें किञ्चित् गरम गरम डाले तो कानकी पीडा नष्ट होतीहै। आकके पीले पत्तोको घी चुपडकर अग्निमे सेककर उनका रस कानमें डाले तो कानका शूल नष्ट होताहै, कानका दर्द दूर होनेका यह उत्तम उपाय है॥ १-६॥

अथ लेपविधिः।

आलेपस्य तु नामानि लेपो लेपनलिप्तकौ॥ दोषघ्नो विषहा वर्ण्यः स च लेपस्त्रिधा मतः॥ १॥ त्रिप्रमाणश्चतुर्भागस्त्रिभागार्द्धांगुलोन्नतः॥ आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दूषयति च्छविम्॥ २॥

चतुर्भागत्रिभागार्द्धांगुलोन्नतः एवं त्रिप्रमाणः।

दोषघ्नो लेपो यथा।

शोथघ्नीदारुसिद्धार्थशुण्ठीशोभाञ्जनत्वचाम्॥ आरनालेन पिष्टानां प्रलेपः सर्वशोथहा॥ ३॥

शोथघ्नी पुनर्नवा॥

शिरीषं मधुयष्टी च तगरं रक्तचन्दनम् ॥ एला मांसी निशायुग्मं कुष्ठं वालकमेव च ॥४॥ इति सञ्चूर्ण्य लेपोऽयं पंचमांशघृतप्लुतः ॥ जलेन क्रियते सुज्ञैर्दशाङ्ग इति संज्ञितः ॥ विसर्पश्चैव विस्फोटाञ्छोथदुष्टव्रणाञ्जयेत् ॥ ५ ॥

विषहा लेपो यथा ।

अजादुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः ॥ शोथमारुष्करं हन्ति लेपो वा कृष्णमार्तिकः ॥ ६ ॥

नवनीतेनार्द्रिकेन । कृष्णमार्तिकः कृष्णमृत्तिकाकृतः ॥

कृमिविषापहलेपो यथा ।

लांगल्यतिविषालाबूजालिनीबीजमूलकैः ॥ लेपो धान्याम्बुसम्पिष्टः कीटविस्फोटनाशनः ॥ ७ ॥

मुखकान्तिदो लेपो यथा ।

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियंगवः ॥ वटांकुरा मसूराश्च व्यंगघ्ना मुखकान्तिदाः ॥ ८ ॥ अथ लेपविधिश्चैव प्रोच्यते सुज्ञसम्मतः ॥ आलेपश्च प्रदेहश्च द्वौ भेदौ तस्य भाषितौ ॥ ९ ॥ चर्मार्द्रं माहिषं यद्वत्प्रोच्यते सम्मितस्तयोः ॥ शीतस्तनुर्विशोषी च प्रलेपः पित्तहृन्मतः॥ १०॥ आर्द्रो घनस्तथोष्णः स्यात्प्रदेहः श्लेष्मवातहा ॥ न रात्रौ लेपनं कुर्याच्छुष्यमाणं न धारयेत् ॥ ११ ॥ शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति ॥ तमसा पिहितो ह्यूष्मा लोमकूपमुखे स्थितः ॥ विना लेपन निर्याति रात्रौ नो लेपयेदतः ॥ १२ ॥

तमसा रात्र्यन्धकारेण ॥

रात्रावपि प्रलेपादिर्व्रणे देयो विचक्षणैः ॥ अपाकिन्यतिगंभीरे रक्तश्लेष्मसमुद्भवे॥ १३॥ प्रलेपो यथा—मधुकं चन्दनं मूर्वा नलमूलश्च पर्पटम् । उशीरं वालकं पद्मं प्रलेपः पित्तशोथहृत् ॥ १४ ॥

प्रदेहो यथा—बीजपूरजटा हिस्रा देवदारु महौषधम ॥ रास्नाऽरणिः प्रदेहोऽयं वातशोथविनाशनः ॥ १५ ॥

अरणिः अग्निमन्थः ॥

कृष्णा पुराणपिण्याकशिग्रुत्वक्सिकताशिवाः ॥ गोमूत्रपिष्टः कोष्णोऽयं प्रदेहः श्लेष्मशोथहा ॥ १६ ॥

(नाम—आलेप, लेप, लेपन और लिप्तक, ये लेपके पर्याय हैं । भेद—दोषघ्न (दोषोंको नष्ट करनेवाला), विषहा (विषविनाशक) और वर्ण्य (वर्णको उत्तम करनेवाला) इस भांति लेपके तीन भेद हैं । एक अंगुलका ऊँचा थर, पौन अंगुलका ऊँचा थर और आधी अंगुल ऊँचा थर, इस भांति लेपके थरके तीन भेद हैं। गीला लेप रोगनाशक है और सूखा हुआ लेप कांतिको नष्ट करे है (पुनर्नवा, साठी, देवदार, सरसों, सोंठ और सहँजनेकी छाल, इन पांचोंको कांजीमें पीस इनका लेप करे तो सम्पूर्ण प्रकारकी सूजन नष्ट होतीहै, यह लेप दोषघ्न कहाताहै) । (शिरस, मुलहटी, तगर, लालचन्दन, इलायची, जटामांसी, हलदी, दारुहलदी, कूठ और नेत्रवाला, इन पदार्थोंका चूर्णकर उसमें पांचवां भाग घी डालकर पानीसे लेप करै, इससे विसर्प, विस्फोटक, सूजन और दुष्टव्रणोंका क्षय होताहै, इस लेपको विद्वान् लोग दशांगलेप कहतेहैं)॥ १–५ ॥

बकरीके दूधमें तिल पीस उसमें भैंसका मक्खन मिलाकर लेप करै अथवा काली मिट्टीका लेप करे तौ भिलावे आदिसे हुई सूजन नष्ट होतीहै, इस लेपको विद्वान् विषहा कहतेहैं । कलिहारी, तीस, कडुई तोंबी, बियातोरईके बीज और मूली इन औषधियोंको कांजीमें पीस लेप करे तो विषैले कीडेसे उत्पन्न हुआ विस्फोट नष्ट होताहै। रक्तचन्दन, मजीठ, लोध, कूठ, प्रियगु, वडके अंकुर और मसूर, इनका लेप करे तौ मुखके ऊपरकी झाँई नष्ट होतीहै और मुखकी कांति उत्तम होतीहै, इस लेपको विद्वान् वर्ण्य कहतेहैं । प्रलेप और प्रदेह इस भांति लेपके दो भेद हैं । इन दोनों लेपोंको जितना भैंसका गीला चमडा होताहै, उतनाही मोटा और वैसाही चमकता हुआ रखना चाहिये । जो लेप शीतल, पतला और सूखजाय ऐसा होय वह प्रलेप कहाताहै, प्रलेपसे पित्त नष्ट होताहै । जो लेप

तुरन्त नहीं सूखै गाढा और गरम हो वह प्रदेह कहाता है, प्रदेहसे वात और कफ नष्ट होताहै ॥ ६–१० ॥

रात्रिमें लेप नहीं करे, सूखेहुए लेपको शरीरपर नहीं रक्खे, परन्तु गाठ (फोडा) आदिपर उसके वैठनेको गाढा लेप किया होय तौ उसको रहने देवै। रोमोंके छिद्रोके मुखमे रहनेवाली गरमी रात्रिके अन्धकारसे ढकजाती है, इसकारण रात्रिमे प्रलेप नहीं करै, यदि लेप किया होय तौ रात्रिको वह गरमी रोमोंमे रुकजाती है। जो व्रण पकता न होय, अत्यन्त गम्भीर हो और रुधिरसे तथा कफसे उत्पन्न हुआ हो उसपर विद्वानोंको रात्रिमेंभी लेप करना चाहिये। मुलहटी, चन्दन, मूर्वा, लाल कमलकी जड, पद्मकाष्ठ, सुगन्धवाला, खस और कमल, इनका प्रलेप पित्तकी सूजनको नष्ट करै है। बिजौरेकी जड, जटामांसी, देवदार, रायसन, सोठ और अरनी (अगेथ), इनका प्रदेह वातसम्बन्धी सूजनको नष्ट करै है। पीपल, पुरानी खल, सहजनेकी छाल, सॉंठ और हरड, इनको गोमूत्रमे पीसकर किंचित् उष्ण प्रदेह करै तो कफसम्बन्धी सूजन नष्ट होतीहै ॥ ११–१६॥

अथ शोणितस्रावण [फस्त] विधिः।

शोणितं स्रावयेज्जन्तोरामयं प्रसमीक्ष्य च ॥ प्रस्थं प्रस्थार्द्धमथ वा प्रस्थार्द्धार्द्धमथापि वा ॥ १ ॥ शरत्काले स्वभावेन शोणितं स्रावयेन्नरः ॥ त्वग्दोषग्रन्थिशोथाद्या नश्यन्ति रुधिरोद्भवाः ॥ २ ॥ व्यभ्रे वर्षासु विद्युत्सु शीते ग्रीष्मे शरद्यपि ॥ मध्याह्ने शीतकाले च रुधिरं स्रावयेद्बुधः ॥ ३ ॥ मधुरं वर्णतो रक्तमशीतोष्णं तथा गुरु॥ शोणितं स्निग्धविस्रश्च विदग्धं पित्तकृद्भवेत् ॥ ४ ॥ विस्रता द्रवता रागश्चलनं विलयस्तथा ॥ भूम्यादिपंचभूतानामेते रक्ते गुणाः स्मृताः ॥ ५ ॥ रक्ते दुष्टे भवेच्छोथो रक्तमण्डलमेव च॥ व्यथा दाहश्च पाकश्च कंडूश्च पिडकोद्गमः ॥ ६ ॥ वृद्धे रक्ताङ्गनेत्रत्वं शिराणां पूर्णता तथा ॥ गात्राणां गौरवं निद्रा मेहो दाहश्च जायते ॥ ७ ॥ क्षीणेऽस्रे मधुराकांक्षा मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता॥ शैथिल्यं च शिराणां स्याद्वातादुन्मार्गगामिता ॥ ८ ॥

वाताद्रक्षक्षैण्यजानितात् ॥

प्राणीके रोगपर ध्यान देकर एकप्रस्थ, आधाप्रस्थ अथवा सोलह तोले रुधिर निकाले, शरदृतुमे स्वाभाविक रीतिसे मनुष्य रुधिर निकलवावे। रुधिरसे उत्पन्न हुए चर्मदोष, गॉंठ और सूजन आदि विकार रुधिर निकलवानेसे नष्ट होतें है। जिस समय बद्दल न होयँ, वर्षाऋतुमे विजली चमकती हो, ग्रीष्मऋतुमे, शरदृतुमे, मध्याह्न समयमे और शीतकालमे विद्वान् वैद्य रोगीपर ध्यान देकर रुधिर निकाल। रुधिर, मधुर, वर्णमे लाल, शीतलतासे तथा उष्णतासे रहित, भारी, चिकना, कच्चे पदार्थके सदृश गंधवाला और पित्तके सदृश दाहशक्तिवाला होताहै। रुधिरमे जो गध है वह पृथ्वीका गुण है, द्रवता जलका गुण है, रक्तता तेजका गुण है, चलन वायुका गुण है और शब्द आकाशका गुण है, अर्थात् इसप्रकार रुधिरमे पाचो भूतोके गुण है। रुधिर बिगड गया हो तौ सूजन, लाल चकत्ते, शरीरमे पीडा, दाह, शरीरका पकजाना, खुजली और फुन्सी होतीहैं। शरीरमें रक्त बढगया हो तौ अंग तथा नेत्र लाल होजातेहैं, नसैं सूजजातीहैं, गात्रमे भारीपन होताहै, निद्रा अधिक आतीहै, और प्रमेह तथा दाह होताहै। शरीरमे रुधिरकी क्षीणता हो तौ मधुर पदार्थ खानेकी इच्छा, मूर्च्छा, त्वचा(चमडी)मे रूक्षता तथा रुधिरकी क्षीणतासे उत्पन्न हुई वात और शरीरकी नसैं शिथिल होजातीहैं और अयोग्य क्रमसे चलने लगतीहैं ॥१–८॥

अरुणं फेनिलं रूक्षं परुषं तनु शीघ्रगम् ॥ आस्कन्दि सचीनिस्तोदि रक्तं स्याद्वातदूषितम् ॥ ९ ॥ पित्तेन पीतं हरितं नीलं श्यावं च विस्रकम् ॥ अस्वादूर्ण्णं मक्षिकाणां पिपीलीनामनिष्टकम् ॥१०॥ शीतलं बहुल स्निग्धं गैरिकोदकसन्निभम् ॥ मांसपेशीप्रभं स्कन्दि मन्दगं कफदूषितम् ॥ ११ ॥ त्रिदोषदुष्टं संसृष्टं त्रिदुष्टं पूतिगन्धकम् ॥ सर्वलक्षण-

संयुक्तं काञ्जिकाभं च जायते ॥ १२ ॥ विषदुष्टं भवेच्छ्यावं नासिकोन्मार्गगं तथा ॥ विस्रं काञ्जिकसंकाशं सर्वकुष्ठकरं तथा ॥ १३ ॥ इन्द्रगोपप्रभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थमसंहतम् ॥ शोथे दाहेऽङ्गपाके च रक्तवर्णेऽसृजः स्रुतौ ॥ १४ ॥ वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले ॥ पाण्डुरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते ॥ १५ ॥ ग्रन्थ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगाधिमन्थकाभिधे ॥ विदारीस्तनरोगेषु गात्राणां सादगौरवे ॥ १६ ॥ रक्ताभिष्यन्दतन्द्रायां पूतिघ्राणस्य दैहिके ॥ यकृत्प्लीहविसर्पेषु विद्रधौ पिडकोद्गमे ॥ ॥ १७ ॥ कर्णौष्ठघ्राणवक्राणां पाके दाहे शिरोरुजि ॥ उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावं प्रशस्यते ॥ १८ ॥ दोषेष्वेषु प्रोक्षणैर्वा जलौकालाबुकादिभिः ॥ अथ वापि शिरामोक्षैः कारयेद्रक्तपातनम् ॥ १९ ॥

रुधिर यदि वायुसे विगडा हुआ हो तौ लाल, झागोंवाला, रूक्ष, कठोर, पतला, शीघ्र चलनेवाला और सुइयोंके सदृश पीडा करनेवाला होताहै । रुधिर यदि, पित्तसे विगडा होय तौ मधुरतारहित, गरम, मक्खियों तथा चैंटी (कीडियो) को अप्रिय, पीला हरे रंगवाला, नीला, काला और कच्चे पदार्थके सदृश गंधवाला होताहै । यदि रुधिर कफसे विगडा होय तौ शीतल बहुल, स्निग्ध, गेरूके पानीके सदृश कांतिवाला, मासकी पेशीके सदृश फैलनेवाला और मंदगतियुक्त होताहै । जो रुधिर दो दोषोंसे विगडा होय तौ उसमें दो दोषोंके लक्षण देखनेमे आते हैं और जो तीन दोषोंसे विगडा होय तौ दुर्गन्धतायुक्त, सम्पूर्ण लक्षणोंवाला, तथा काँजीके सदृश होताहै । जो रुधिर विषमे विगडा होय तौ काला, नाकमेंसे निकलनेवाला, कच्चे पदार्थके सदृश गंधवाला, काजीके समान और सर्वप्रकारके कोढोंको उत्पन्न करनेवाला होताहै। शुद्ध रुधिरपतला और चौमासेमे होनेवाले इन्द्रगोप (वीरबहुटी) कीडेके सदृश रंगवाला होताहै । वातरक्त, सूजन, दाह, अंगोंका पकना, शरीरका लालरंग होना, नाक आदिममे रक्त निकलना कोढ, पीडासहित, वायुके दुर्जय होनेपर विषमे दूषित होजाना, पाण्डुरोग, श्लीपद, रुधिरका विषमे दूषित होजाना, गांठ, अर्बुद, अपचीनामक गलेकी गांठ, क्षुद्ररोग, अधिमंथ, विदारी, स्तनरोग, गात्रका पीडित होजाना, भारीपन, रक्ताभिष्यन्द, तन्द्रा, नाक अथवा मुखमेसे दुर्गन्धका निकलना दाह, यकृत् (कलेजा), प्लीहा, विसर्प, विद्रधि, पिडका, कर्ण, होठ, नाक और मुखका पकना, मस्तकरोग, उपदंश और रक्तपित्त, इतने रोगोंमें रुधिर निकालना बहुत उत्तम है । इन रोगोमे सिंगिये लगवाकर, अथवा जोंक लगवाकर, वा तूँबी आदि लगवाकर अथवा नस खोलकर रुधिर निकालै ॥ ९–१९ ॥

न कुर्वीत शिरामोक्षं कृशस्याऽतिव्यवायिनः ॥ क्लीबस्य भीरोर्गर्भिण्याः सूतायाः पाण्डुरोगिणः ॥ २० ॥ पंचकर्मविशुद्धस्य पीतस्नेहस्य चार्शसाम् ॥ सर्वाङ्गशोथयुक्तानामुदरिश्वासकासिनाम् ॥ २१ ॥ छर्द्यतीसारयुक्तानामतिस्विन्नतनोरपि ॥ ऊनषोडशवर्षस्य गतसप्ततिकस्य च ॥ आघातात्स्रुतरक्तस्य शिरामोक्षो न शस्यते ॥ २२ ॥

तथा च स्रुतरक्तस्य रक्तपित्तादिना गतरक्तस्य ॥

एषां चात्ययिके योगे जलौकाभिर्विनिर्हरेत् ॥ तथा च विषजुष्टानां शिरामोक्षो न शस्यते ॥ २३ ॥ गोशृंगेण जलौकाभिरलाबूभिरपि त्रिधा ॥ वातपित्तकफैर्दुष्टं शोणितं स्रावयेद्बुधः ॥ २४ ॥ द्विदोषाभ्यान्तु दुष्टं यत्त्रिदोषैरपि दूषितम् ॥ दूषितं स्रावयेद्युक्त्या शिरामोक्षैः पदैस्तथा ॥ २५ ॥ गृह्णाति शोणितं शृंगं दशांगुलमितं बलात् ॥ जलौका

हस्तमात्रं तु तुम्बी तु द्वादशांगुलम् ॥ ॥ २६ ॥ पदमंगुलमात्रस्य शिरा सर्वांगशोधिनी ॥ शीते निरन्ने मूर्च्छार्तिनिद्राभीतिमदश्रमैः ॥ २७ ॥ युक्ते नास्रावयेद्रक्तं तथा विण्मूत्रसंगिनाम् ॥ शोणिते चाप्रवृत्ते तु कुष्ठत्रिकटुसैन्धवैः ॥ २८ ॥ मर्दयेद्व्रणवक्त्रञ्च तेन रक्तं प्रवर्त्तते ॥ तस्मान्न शीते नात्युष्णे नास्विन्ने नातितापिते ॥ ॥ २९ ॥ पीत्वा यवागूं तृप्तस्य स्रावयेच्छोणितं बुधः ॥ अतिस्विन्नस्योष्णकाले तथैवातिशिराव्यधात् ॥ ३० ॥ अतिप्रवर्तते रक्तं तत्र कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ अतिप्रवृत्ते रक्ते तु लोध्रसर्जरसाञ्जनैः ॥ ३१ ॥ यवगोधूमचूर्णैश्च धवधन्वनगैरिकैः ॥ सर्पनिर्मोकचूर्णैर्वा भस्मना क्षौमवस्त्रयोः ॥ ३२ ॥ मुखं व्रणस्य बद्ध्वा च शीतैश्चोपचरेद्व्रणम् ॥ विध्येदूर्द्ध्वशिरां तावद्दहेत्क्षारेण वह्निना ॥ ३३ ॥ व्रणं कषायः सन्धत्ते रक्तं स्कन्दयते हिमम् ॥ व्रणास्यं पाचयेत्क्षारो दाहः सङ्कोचयेच्छिराः ॥ ३४ ॥ रक्ते दुष्टेऽवशिष्टेऽपि व्याधिर्नैव प्रकुप्यति ॥ अतो रक्षेत्सावशेषं रक्ते नातिस्रुतिर्हिता ॥ ॥ ३५ ॥ आन्ध्यमाक्षेपकं तृष्णां तिमिरं शिरसो रुजः ॥ पक्षाघातं श्वासकासौ हिक्कादाहौ च पाण्डुताम् ॥ ३६ ॥ कुरुतेऽतिस्रुतं रक्तं मरणं वा करोति च ॥ देहस्योत्पत्तिरसृजा देहस्तेनैव धार्यते ॥ ३७ ॥ रक्तं जीवस्य चाधारस्तस्माद्रक्षेदसृग्बुधः ॥ शीतोपचारैः कुपिते स्रुतरक्तस्य मारुते ॥ ॥ ३८ ॥ कोष्णेन सर्पिषा शोथं सव्यथं परिषेचयेत् ॥ क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः ॥ ३९ ॥ रसः समुचितः पाने क्षीरं षष्टिकया हितम् ॥ पीडाशान्तिर्लघुत्वं च व्याध्युपद्रवसंक्षयः ॥ ४० ॥ मनःस्वास्थ्यं भवेच्चिह्नं सम्यङ्निःसारितेऽसृजि ॥ व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानप्रवातकान् ॥ ४१ ॥ एकाशनं दिवा निद्रां क्षाराम्लकटुभोजनम् ॥ शोकं वादमजीर्णञ्च त्यजेदाबलदर्शनात् ॥ ४२ ॥

दुर्बल, बहुत मैथुन करनेवाला, नपुसक, भयभीत, गर्भवती स्त्री, प्रसूता स्त्री, पाण्डुरोगी, वमन आदि पचकर्मोंसे शुद्ध हुआ, जिसने स्नेहपान किया हो, अर्शरोगी, सर्व अगोंमे सूजनयुक्त, उदररोगी, श्वास, खाँसी, वमन, अतीसार, इन रोगोंकरके युक्त, जिसके शरीरमें स्वेदन क्रिया अधिक करी हो, सोलह वर्षकी अवस्थासे छोटा, सत्तरवर्षसे अधिक आयुवाला और जिसका रक्तपित्त आदिसे रुधिर निकलगया हो, इन सबकी नस खोलकर रुधिर नही निकाले। इन रोगियोके यदि रुधिर निकालनेकी अत्यन्त आवश्यकता हो तौ जोंक लगाकर निकाले। परन्तु इन रोगियोके विष (जहर) चढाहुआ हो तो उनकी फस्त खोलकरही रुधिर निकालना उत्तम है। विद्वान् वैद्य वायुसे, पित्तसे, अथवा कफसे विगडे रोगीका रुधिर सिंगी, जोक अथवा तूँबी लगाकर निकाले, परन्तु दो दोषसे अथवा तीन दोषसे विगडा हो तो युक्तिसे फस्त खोलकर और पछने लगाकर रुधिरको निकाले। सींगी—आसपासके दश अगुलतकके रुधिरको बलात्कारसे खींचती है, जोक एकहाथ तक रुधिरको खीचती है, तूँबी बारहअगुलतकके रुधिरको खीचती हैं, पछना एक अगुलतकके रुधिरको निकालैहै और फस्त खोलनेसे सम्पूर्ण शरीरका रुधिर निकलर शुद्ध होजाताहै। शीतकालमें, भूँखा, मूर्च्छित, निद्रायुक्त, भयभीत, मदयुक्त, थकाहुआ और जिसका मल अथवा मूत्र रुकगया हो, इन सबका रुधिर नहीं निकाले। रुधिर निकालनेकी क्रिया करनेपर भी रुधिर नहीं निकलै तौ कूठ, सोंठ, मिरच, पीपल और सेंधा निमकको वारीक पीस उस व्रणके मुखपर लगाकै रगडै तौ रुधिर निकलने लगता है। जिस समय अत्यन्त शीत तथा उष्णता न हो, रोगीकी स्वेदनक्रिया न करी हो और उसका शरीर अत्यन्त गरम न किया हो उस समय रोगीको यवागू पिलाकर तृप्त करके पश्चात् रुधिर निकालना चाहिये। जिसको अत्यन्त पसीना आरहा हो,

उष्णकालही अथवा जिसके शस्त्र अत्यन्त गहरा लगगया हो उसके रुधिर अधिक निकलताहै । इस प्रकार रुधिर बहुत निकलने लगे तो लोध, राल, रसौत जौ तथा गेहूँका चून, धायका चूर्ण धतूरेका चूर्ण, गेरू, साँपकी काचलीका चूर्ण, रेशमी कपडेकी भस्मसे, अथवा सादे कपडेकी भस्मसे उस घावके मुखको बन्द करके उसके ऊपर शीतल उपचार करै अथवा उस विधीहुई नसके ऊपर भागको फिर वेधै, वीधे हुएके ऊपर खारी डाले, वा वांधेहुएको अग्निसे जलावै औषधि डालनेसे वींधेहुएका जोड मिलजाता है, शीतल उपचार करनेसे रुधिरकी रुकावट होतीहै, क्षार डालनेसे व्रणका मुख जुडजाताहै और दाग देनेसे नस सुकड जाती है । विगडाहुआ रक्त शरीरमे किञ्चित् शेष (बाकी) रहजाय तो भी व्याधिका प्रकोप नहीं होता, इस कारण रुधिरको शेष रख देवै, कारण कि–रुधिर अधिक निकलना उत्तम नहीं है ॥ २०–३५ ॥

रुधिर बहुत निकलै तौ अन्धापन, आक्षेपक वात, तृषा, तिमिर, मस्तकरोग पक्षाघात, श्वास, खासी, हिचकी, दाह, तथा पाण्डुरोग, इनकी उत्पत्ति होती है और किसीसमय मृत्यु भी होजाती है । शरीरकी उत्पत्ति रुधिरसे हुई है, रुधिरही शरीरको धारण करता है और रुधिरही जीवका आधाररूप है, इस कारण विद्वानोंको रुधिरकी रक्षा करनी चाहिये । रुधिर निकालनेके पश्चात् शीतल उपचार करनेसे वायुका प्रकोप होय तौ पीडायुक्त सूजनपर किञ्चित् उष्णतायुक्त घी लगावै । रुधिर निकलनेमे अधिक निर्बलता होजाय तो रोगीको हिरण, खरगोश, मेढा, कालाहिरन और बकरेके मासका रस पिलाना चाहिये और दूधके साथ सांठी चावलोंको खिलावे तौ इससे अच्छा होताहै । रुधिर बराबर ठीक निकलगया होय तौ पीडाकी शांति, शरीरमे लघुता, रोग तथा उपद्रवका क्षय और मनको स्वस्थता, इतने चिह्न होतेहैं । रुधिर निकालनेके पश्चात् शरीरमें जबतक बल न आवै तबतक अत्यन्त परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शीतल जलमे स्नान, अधिक पवनमे रहना, एक समय भोजनका अभ्यास, दिनमे सोना, खारी, अम्ल तथा तीक्ष्ण पदार्थ खाना, शोक करना और विवाद करना, इन सबको छोडदेवै तथा अजीर्ण नहीं होने देवै ॥ ३६–४२ ॥

नेत्रस्वच्छकारिणी क्रिया ।

सेक आश्च्योतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा ॥ पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १ ॥

सेक (पानी आदिकी धार डालनी), आश्च्योतन (बूँदे डालना), पिंडी (छुपडी बाधना), बिडाल (लेपकरना), तर्पण (तृप्ति करनेके लिये नेत्रोंमे दूध आदि भरना), पुटपाक (पकायाहुआ रस नेत्रोंमे डालना) और अजन (आजना) इतनी क्रियाओंसे नेत्रोंका उपचार करै ॥ १ ॥

सेकविधिः ।

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः ॥ मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरंगुलः ॥ २ ॥ स सस्नेहो भवेद्वाते पित्ते रक्ते च रोपणः ॥ लेखनस्तु कफे कार्यस्तस्य मात्राऽभिधीयते ॥ ३ ॥ षड्भिर्वाचां शतैः स्नेहे चतुर्भिश्चैव रोपणे ॥ तैस्त्रिभिर्लेखने कार्यः सेको नेत्रप्रसादने ॥ ४ ॥ निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्याच्छोटिकाऽथ वा ॥ गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ ५ ॥ सेकस्तु दिवसे कार्यो रात्रौ चात्यन्तिके गदे ॥ एरण्डस्य दलैः पिष्टैः पक्वमाजं पयो हितम् ॥ सुखोष्णं नेत्रयोरन्तः सिक्तं वातार्तिनाशनम् ॥ ६ ॥

रोगीके नेत्रोंको मिचवाकर उसके ऊपर चार अगुल ऊंचेसे सूक्ष्म (पतली) धारा डाले, यह धारा नेत्रसम्बन्धी सम्पूर्ण रोगोंमे उत्तम है । वातकी पीडा हो तौ घी आदि स्नेह पदार्थोंकी धार देवै, यह स्नेहन सेक कहाताहै । पित्तकी अथवा रुधिरकी पीडा होय तो हरड आदिके रसकी धार देवै, यह रोपणसेक कहताहैं । कफकी पीडा होय तो मलको उखाडनेवाले सोंठ आदिके रसकी धारा देवै, यह लेखन सेक कहाताहै । स्नेहन सेक करना हो तौ छःसौ मात्रातक करै, रोपण सेक करना हो तौ चारसौ मात्रातक करै और लेखन सेक करना हो तौ तीनसौ मात्रातक करै, इसमे नेत्र स्वच्छ हो जातेहैं । मनुष्य नेत्र मींचकर खोलै इतने

समयकी, वा एक चुटकी बजानेमें जितना समय लगै इतने समयकी अथवा एक गुरु अक्षर जितने समयमें बोला जाय इतने समयकी एक मात्रा होतीहै. धारा डालनेका सेक दिनमे ही करै, परन्तु महादु:खदायी रोग होय तौ रात्रिमें भी करै। पिसे हुए अण्डीके पत्तोंके साथ बकरीका दूध पकाकर किञ्चित् गरम गरम उस दूधको नेत्रोंपै डाले तौ वह सेचन उत्तम है और वातसम्बन्धी पीडाको नष्ट करैहै ॥ २-६ ॥

आश्च्योतनविधिः।

क्वाथक्षौद्रासवस्नेहबिन्दुना यत्तु पातनम्॥ द्व्यंगुलोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्च्योतनं हितम् ॥ ७ ॥ बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु रोपणे दश बिन्दवः ॥ स्नेहे ते द्वादश प्रोक्ताः शीतले कोष्णरूपिणः ॥ ८ ॥ उष्णे तु शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ॥ ९ ॥ कफे तिक्तोष्णरूक्षं च क्रमादाश्च्योतनं हितम् ॥ आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्छतोन्मिता ॥ १० ॥ ततः परं लोचनाभ्यां भेषजानामयोगतः ॥ आश्च्योतनं न कर्त्तव्यं निशायां केनचित्क्वचित् ॥ ११ ॥ तद्यथा- बिल्वादिपंचमूलेन बृहत्येरण्डशिग्रुभिः ॥ क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः ॥ १२ ॥

रोगीके नेत्रोंको दो अंगुल खोलकर उसमें क्वाथ, शहद, आसव, अथवा स्नेहकी बूंदें डाले, इसको आश्च्योतन कहतेहैं, यह हितकारी है। लेखन क्रिया करनी होय तौ आठ बूंदें डाले, रोपण क्रिया करनी हो तौ दश बूंदें डालें और स्नेहन क्रिया करनी हो तौ बारह बूंदे डालें। शीतकाल होय तौ किञ्चित् गरम करके बूंदे डालें और उष्णकाल होय तौ शीतल बूंदें डालें, यह सम्पूर्ण क्रियाओंका सिद्धान्त है। वातकी पीडा होय तौ कडवी तथा स्नेहयुक्त बूंदे हितकारी है, पित्तकी पीडा हो तौ मधुर और शीतलतायुक्त बूंदें डालना हितकारी है और कफकी पीडा होय तौ कडुवे गरम तथा रूक्ष औषधियोंकी बूंदे डालना हितकारी है। सम्पूर्ण आश्च्योतनकी मात्रा सौ गुरु अक्षरोंका जितने समयमे उच्चारण हो इतने समयकी जाननी, कोई वैद्य किसी रोगपर नेत्रोंमे रात्रिके समय बूंदें नहीं डाले. बेल आदि पंचमूल, कटेरी, अरण्ड और सहँजना क्वाथ करके उसकी सहती सहती गरम बूंदे नेत्रमें डाले, इससे वाताभिष्यन्द (वातसे आँखोका दुखना) नामक रोगका नाश होता है ॥ ७-१२ ॥

पिण्डिकाविधिः।

युक्तभेषजकल्कस्य पिण्डी कवलमात्रया॥ वस्त्रखण्डेन संबध्या नेत्रेऽभिष्यन्दनाशिनी ॥ १३ ॥ स्निग्धोष्णा पिण्डिका वाते पित्ते सा शीतला मता ॥ रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयम् ॥ ॥ १४ ॥ सा यथा-धात्रीविरचिता पित्ते शिग्रुपत्रकृता कफे ॥ १५ ॥

योग्य औषधियोंका कल्क करके उसकी कवलके सदृश टिकिया नेत्रोंपर रखकर उसपर ऊपरसे वस्त्रकी बाँधै यह पिंडीकी क्रिया है। इस टिकियाको रखकर बाँधनेसे नेत्र दुखनेकी पीडा नष्ट होतीहै। नेत्र वातसे दुखने लगे होयँ तौ स्नेहयुक्त गरम टिकिया रक्खैं; पित्तसे दुखने लगे होयँ तौ शीतलता युक्त टिकिया रक्खे, गरम और रूखे पदार्थोंकी टिकिया कफरोगमे रक्खे, यह विद्वानोंने कहाहै। अण्डके पत्ते, जड और छाल, इनकी टिकियासे वातकी पीडा नष्ट होतीहै, आमलोंकी टिकियासे पित्तकी पीडा नष्ट होतीहै और सहँजनेकी टिकियासे कफकी पीडा नष्ट होतीहै ॥ १३-१५ ॥

बिडालकविधिः।

बिडालको बहिर्लेपो नेत्रपक्ष्मविवर्जितः॥ तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखालेपविधानवत् ॥ १६ ॥ यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीतार्क्ष्यैः समांशकैः ॥ जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः ॥ १७ ॥

नेत्रके पलकोंको छोडकर बाहरके भागपर लेप करै इसको बिडालकविधि कहतेहैं। मुखके ऊपर लेप करनेकी जो मात्रा कहीहै वही मात्रा बिडालककी जाननी ॥ मुलहठी सुवर्णगेरू, सैंधानिमक, दारुहलदी और रसप-

रिया, इसको समान भाग लेकर पानीमें पीसकर नेत्रके बाहरके भागपर लेप करे तो नेत्रके सम्पूर्ण रोगोंका नाश होताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

तर्पणविधिः ।

वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः ॥ अभितो माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिपिण्डितौ ॥ १८ ॥ समौ दृढौ च सम्बाधौ कर्त्तव्यौ नेत्रकोशयोः ॥ पूरयेद् घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ १९ ॥ सर्पिषा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेन वा ॥ निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ २० ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ॥ भिषग्भिरेष विख्यातस्तर्पणस्योदितो विधिः ॥ २१ ॥ यद्रूक्षश्च परिष्यन्दि नेत्रं कुटिलमाविलम् ॥ शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम् ॥ २२ ॥ तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः ॥ शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युतं वातविपर्ययैः ॥ २३ ॥ दत्तेन तर्पयेत्सम्यङ् नेत्ररोगविशारदः॥ तर्पणं धारयेद्वर्त्मरोगे वाचां शतं बुधः ॥ २४ ॥ स्वस्थे कफे सन्धिरोगे वाचां पंच शतानि च ॥ षट्शतानि कफे कृष्णरोगे सप्त शतानि हि ॥ २५ ॥ दृष्टिरोगे शतान्यष्टावधिमन्थे सहस्रकम् ॥ सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेव हि तर्पणम् ॥ २६ ॥ पूर्णे चापांगमार्गेण स्रावयित्वाऽक्षि शोधयेत् ॥ स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः ॥ ॥ २७ ॥ यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विरेचयेत् ॥ एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं तर्पणं चरेत् ॥ २८ ॥

जिसमें वायु, धूप अथवा धूल न हो ऐसे घरमें रोगीको चित्त सुलाकर सनेहुए उडदके चूनका, एकसा, दृढ, गांठरहित ऐसा दोनों नत्रोंपर घेरा बनावै, पश्चात् रोगीकी आँखोंको मिचवाकर उष्ण जलसे पिघलायाहुआ घी अथवा सौवार जलमें धोया हुआ घी, अथवा दूधमें निकालाहुआ घी जबतक पल्क डूबें तबतक उस घेरेमें भरे, इसके भरने पर धीरेसे रोगीकी आँखें खुलवावै, यह तर्पणकी प्रसिद्ध विधि वैद्योने कहीहै । नेत्र रूक्ष होगये हो, पानी झरता हो मैले तथा पल्कों रहित होगये हों नेत्रोकी नसें लाल होकर बहुत पीडा करती हों, तिमिर, अर्जुन, फूला, अभिष्यन्द, अधिमथ, शुष्कनेत्र, नेत्रपाक, नेत्रोकी सूजन, अथवा वात विपर्यय रोग होय तो इन सब रोगोंमें विद्वान् वैद्य तर्पण विधि करे । वर्त्मरोग होय तो जबतक सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण हो तब तक नेत्रोंपर तर्पणको रहने देवै । स्वस्थतामें, कफमें, तथा सन्धिरोगमें पाँचसौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण होय तबतक तर्पणको रहने देवै । पित्तकी पीडा होय तो छःसौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक तर्पणको रहने देवै । काली पुतलीके रोगोंमें सातसौ और दृष्टिरोगोंमें आठसौ गुरुअक्षरोंके उच्चारण तक तर्पण धारण करे । अधिमथरोग (पुतलीमें मानो कोई वस्तु चुबती हो ऐसी पीडा उठकर आवे मस्तकमें वेदना) होय तो सहस्र गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक तर्पणको रहने देवै और वात सबधी रोग होय तौ भी सहस्र गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक तर्पणको रहने देवै । तर्पण विधि पूर्ण होनेपर नेत्रके कोयेसे घीको बहाकर निकाल डाले, फिर गरमकिये जौके आटेसे नेत्रोंको साफ कर डाले और तत्पश्चात् घीके जोरसे बढेहुए कफको यथायोग्य धूमपान करके दूर करे । एकदिन, पाँचदिन अथवा सात दिनतक तर्पणक्रिया करे ॥ १८–२८ ॥

यथार्थतर्पणचिह्नम् ।

तर्पणे तृप्तिलिंगानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत्॥ सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं नेत्रपाटवम् ॥ निर्वृतिर्व्याधिशान्तिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ २९ ॥

निर्वृतिः सुखम् । क्रियालाघवम् नेत्रस्य । क्रियायां निमेषोन्मेषादौ लघुता ॥

गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकण्डूपदेहवत् ॥ घर्षतोदयुतं नेत्रमतितर्पितमादिशेत्॥ ३०॥ आस्रावशोफपीडाढ्यमुपदेहसमाकुलम् ॥

रूक्षमस्रावमरुणं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥ ॥ ३१ ॥ अनयोर्दोषबाहुल्यात्प्रयतेत चिकित्सिते ॥ रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥ ३२ ॥

अनयोः अतितर्पितहीनतर्पितयोः-॥

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायां संभ्रमेषु च ॥ अशान्तोपद्रवे चाक्ष्णि तर्पणं न प्रशस्यते ॥ ३३ ॥

तर्पण यथार्थ हुआ होय तो निद्रा सुखपूर्वक आवै और सुखपूर्वक ही जागजाय, स्वच्छता, नेत्रोकी शक्ति तथा सुख वढताहै, व्याधिकी शांति होतीहै, और खोलना मीचना आदि क्रिया करनेमे लघुता होतीहै इस प्रकारके चिह्न होनेसे नेत्रोका तर्पण भली भाँति हुआ जानना । जो तर्पण का अधिक योग हुआ होय तो नेत्र भारी होतेहैं, मैले होजातेहैं, अत्यन्त स्निग्धता होतीहै, आँसू बहतेहैं, खुजली होतीहै, जिस प्रकार थर चढा हो नेत्र इस भाँति हो जातेहैं और घिसनेकी समान पीडा होतीहै, इन चिह्नोसे वैद्यको नेत्रोका अत्यन्त तर्पण हुआ जानना । जो नेत्रका हीन तर्पण हुआ होय तो नेत्रोमेसे पानी झरता है, सूजन तथा पीडा होतीहै, नेत्र लिप्तता करके आकुल रहते हैं, रूक्षता होतीहै, गीलापन नही रहता और लाली होतीहै । जो तर्पण अधिक अथवा हीन हुआ होय तो दोषोकी वक्रता होती है इस कारण उनकी चिकित्सा करनेका प्रयत्न करै, जो अत्यत तर्पण हुआ होय तो रूक्ष उपचार करै और हीनतर्पण हुआ होय तो स्निग्ध उपचार करै । वद्लके दिनमे अत्यत उष्ण तथा शीतल समयमें जब चिंता तथा सम्भ्रम होय तब और उपद्रव शात होनेसे पहिले नेत्रोका तर्पण करना योग्य नहीं है ॥ २९-३३ ॥

पुटपाकविधिः ।

द्वे बिल्वे स्निग्धमांसस्य परद्रव्यपलं मतम् ॥ द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ ३४ ॥ तदेकत्र समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ॥ पुटपाकविधानेन तत्पश्चात्तद्रसं बुधः ॥ ३५ ॥ तर्पणोक्तेन विधिना यथावदवधारयेत् ॥ दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ॥ ३६ ॥

स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा ॥ हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्य स तु लेखनः ॥ दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥ ३७ ॥

इतरो रोपणः ॥

स्नेहमांसवसामज्जमेदःस्वाद्वौषधैः कृतः॥ स्नेहनः पुटपाकः स्याद्धार्योऽयं वाक्छतं नरैः ॥ ३८ ॥ जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ॥ कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिन्धुजैः ॥ ३९ ॥ समुद्रफेनकासीसस्रोतोऽञ्जनदधिमस्तुभिः ॥ लेखनो वाक्छतं तस्य परं धारणमिष्यते ॥ ४० ॥ स्तन्यजाङ्गलमज्जाज्यतिक्तद्रव्यविपाचितः ॥ लेखनात्त्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ॥ ४१ ॥ निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकाभिः स्यात्पञ्चतिक्तक इति प्रथितो गणोऽयम् ॥ आचरेत्तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्तिदर्शने ॥

व्यापत्तिदर्शने मिथ्याकृतपुटपाकजनितव्याधिदर्शने ॥

तेजांस्यनिलमाकाशमादर्शं भास्वराणि च ॥ नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुटपाकवान् ॥ ४२ ॥

स्नेहयुक्त आठ तोला मास लेकर उसमे अन्य औषधि चार तोले द्रवपदार्थ सोलह तोले डालकर सबको एकत्र पीसै, पश्चात् उसका एक गोलाकर बना पत्तोसे ढककर पूर्वोक्त पुटपाककी रीतिसे अग्निमे पकावै, पश्चात् उसमेसे रस निचोड लेवै उस रसको तर्पणकी रीतिके अनुसार सम्पूर्ण प्रकारसे नेत्रोमें उपयोग करै । रोगीको चित्त सुलाकर उसके नेत्रोमें यह रस डालै। स्नेहन (स्निग्धता करनेवाला), लेखन (मलको उखाडनेवाला) और रोपण (भरती करनेवाला) इस भाँतिसे इस रसके तीन भेद हैं। अत्यत रूक्ष हुए मनुष्योंको स्नेहन रस उत्तम है, स्निग्ध मनुष्योको लेखन रस उत्तम है, और दृष्टिको वल देनेके लिये रोपण रस उत्तम है कि, जिससे पित्तरुधिरका विकार,

व्रण और वात नष्ट होतेहैं। स्नेह, मांस, चरवी, मज्जा, मेद तथा मधुर औषधियोंसे बनाये हुए पुटपाकका रस स्नेहन होताहै, स्नेहन रसको दोसौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण होय तब तक धारण करे, जगली जीवोंका कलेजा और मास, लेखन औषधि, काले लोहे (पोलादलोहे) का चूर्ण, ताँबेका चूर्ण, शख, मूँगा सेधानोंन, समुद्रफेन, कसीस तथा सुरमेका चूर्ण और दहीका पानी, इनमे किये हुए पुटपाकका रस लेखन होताहै, लेखन रसको सौ गुरु अक्षरोका जबतक उच्चारण होय तबतक धारण कर रक्खे। स्त्रीका दूध, जगली पशुओंका मास, मधु, घी, नीम, गिलोय, अडूसा, परवल और कटेरी, इनसे बनाया हुआ पुटपाकका रस रोपण होताहै, रोपण रसको तीनसौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण होय तबतक धारण कर रक्खे। नीमको आदि लेकर कटेरीतक जो पदार्थ कहे वह तिक्तकगण कहाताहै। पुटपाकके रसका अधिक अथवा न्यून उपयोग होनेसे रोगोंकी उत्पत्ति देखनेमें आवे तो तर्पणके विषयमें कहीहुई क्रिया करे। नेत्रका तर्पण किया हो अथवा पुटपाकके रसका उपयोग किया हो वह रोगी तेजके सन्मुख नहीं देखै, वायुके सामने दृष्टि नहीं करे, आकाशको नहीं देखै, शीशा और प्रकाशित बिजली आदि पदार्थोंको भी नहीं देखै ॥ ३४–४२ ॥

अंजनविधिः।

अथ सम्पक्कदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् ॥ अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनं मतम् ॥ ४३ ॥ तद्यथा–रसो वटी तथा चूर्णमिति त्रिविधमञ्जनम् ॥ यथापूर्वं बलं तेषु श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥ ४४ ॥ तत्प्रत्यक त्रिधा प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा ॥ स्नेहनं चेति लिङ्गानि तेषां विस्तरतः शृणु ॥ ४५ ॥ लेखनं क्षारतीक्ष्णाम्लरसैरञ्जनमुच्यते॥ नेत्रवर्त्मशिराजालश्रोत्रशृङ्गाटकस्थितम् ॥ ४६ ॥ मुखनासाक्षिभिर्दोषमक्लिश्य स्रावयेच्च तत् ॥ कषायं तिक्तकं चापि सस्नेहं रोपणं मतम्॥४७॥ तत्स्नेहशैत्याद्वर्ण्यं स्याद् दृष्टेश्च बलवर्द्धनम् ॥ मधुरं स्नेहसंपन्नमञ्जनं स्यात्प्रसादनम् ॥ ४८ ॥ दृष्टिदोषप्रसादार्थं स्नेहनार्थश्च तद्धितम् ॥ हरेणुमात्रा वर्त्तिस्तु लेखनी स्यात्प्रमाणतः ॥४९॥ सार्द्धहरेणुकमिता रोपणी वर्त्तिरिष्यते ॥ क्रियते स्नेहनी वर्त्तिर्द्विहरेणुकमात्रया ॥ रसाञ्जनस्य मात्रा तु पिष्टवर्त्तिमिता मता ॥५०॥

सम्पूर्ण दोषोंके पकजानेके पश्चात् नेत्रोंमे योग्य अजन आँजे, जो नेत्रोंमें लगायाजावे वह पदार्थ अंजन कहाताहै। रसरूप, वत्तीरूप और चूर्णरूप, ये अजनके तीन भेद हैं, इनमें चूर्णसे वत्ती बलवान् है और वत्तीसे रस बलवान् है। इस प्रत्येक अजनके लेखन, रोपण और स्नेहन, इस भाँति तीन तीन भेद हैं, इनका लक्षण विस्तारसे कहतेहैं सो सुनो। जो खारी, तीक्ष्ण और खट्टेरसवाला अजन होय वह लेखन अजन कहाताहै। ये अजन नेत्रोंमें, पलकोंमे, नसोंके समूहमे कानमे और कपालकी हड्डीमें रहनेवाले दोषोंको स्थानसे गिराकर मुखसे, नाकसे तथा नेत्रोंसे निकाल देताहै। कसैले तथा कडवे रसवाला औरस्नेहयुक्त जो अजन होय वह रोपण कहाताहै। वह स्नेह तथा शीतल होनेसे रोपण अजन, वर्णको उत्तम करैहै और दृष्टिके बलको भी बढावैहै। मधुररसवाला और स्नेहयुक्त जो अजन होय वह प्रदसान कहाताहै, स्नेहन अंजन दृष्टिके दोषको शुद्ध करनेके लिये और दृष्टिको स्निग्धकरनेके लिये उपयोगी है। लेखन वत्ती बनावे तो एक मटरके बराबर बनावे। दृष्टिका बल बढानेके लिये जो वत्ती बनाई जाय वह डेढ मटरकी बराबर बनावे और दृष्टिको स्निग्ध करनेके लिये जो वत्ती बनाई जाय वह दो मटरकी बराबर बनावे। रसरूप अजनकी मात्रा एक पिष्टवर्तिकी बराबर बनावे ॥ ४३–५० ॥

चूर्णं तु लेखनं वैद्यैर्द्विशलाकं प्रदीयते ॥ रोपणं त्रिशलाकं स्याच्चतस्रः स्नेहनाञ्जने ॥ ५१ ॥

चतस्रः शलाकाः स्नेहनाञ्जने चूर्णे ॥

मुखे या मुकुलाकारा कलायपरिमण्डला॥ अष्टांगुला शलाका स्यादश्मजा धातुजाथ वा ॥ ५२ ॥
कलायपरिमण्डला अग्रे कलायवद्वर्तुला ॥
ताम्रलोहाश्मसञ्जाता शलाका लेखने मता ॥ सुवर्णरजतोद्भूता स्नेहने समुदाहृता ॥ ५३ ॥ अंगुली च मृदुत्वेन रोपणे सम्प्रयुज्यते ॥ कृष्णभागावधिं लिम्प्यादपांगं यावदञ्जनम् ॥ ५४ ॥ हेमन्ते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ पूर्वाह्ने वापराह्ने वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ ५५ ॥ वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते तु सदैव हि ॥ अथ वा सर्वदा प्रातः सायं वाञ्जनमाचरेत् ॥ ५६ ॥ नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां तत्प्रयुज्यते ॥ श्रान्तेऽथ रुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे ॥ ५७ ॥ अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रयुज्यते ॥ रागोपदेहौ तिमिरं शूलं संरम्भमेव च ॥ निद्राक्षयश्च कुरुते निषिद्धे युक्तमञ्जनम् ॥ ५८ ॥

लेखन चूर्ण आँजना होय तो उसकी दो सलाई आँजे, रोपण चूर्ण आँजना होय तो उसकी तीन सलाई आँजै और स्नेहन चूर्ण आँजना होय तौ उसकी चार सलाई आँजे, आँजनेकी सलाई कलीके सदृश मुखवाली, मटरकी सदृश गोल आठ अंगुलकी और पत्थरकी अथवा धातुकी होनी चाहिये। लेखन चूर्ण आँजना होय तो ताँवेकी, लोहेकी अथवा पत्थरकी सलाई होनी चाहिये। स्नेहन चूर्ण आँजना होय तौ सोनेकी अथवा चाँदीकी सलाई होनी चाहिये। रोपण चूर्ण आँजना होय तो अंगुलीसे आँजे, कारण, कि अंगुली कोमल होतीहै। जो अंजन आँजना होय वह कालीपुतलीके नीचेसे नेत्रके कोनेतक आँजै। हेमन्तऋतुमे और शिशिर ऋतुमे मध्याह्न समयमें अंजन आँजना चाहिये, ग्रीष्म ऋतुमें और शरद् ऋतुमें पूर्वाह्न समय अथवा अपराह्न समयमें अंजन आँजै, वर्षाऋतुमें जिससमय बादल न होय और बहुत गरमी न होय उस समय आँजै, बसंत ऋतुमें जब रुचै तबही अंजन लगावै, अथवा अधिक करके सर्वदा प्रातःकाल वा सध्या समय आँजै, जिस समयमे बहुत शीतलता, उष्णता, वायु और बादल न होयँ उस समयमें अंजन लगावै। थकाहुआ, रुदन कियेहुआ, भयभीतहुआ, जिसने मदिरा (दारू) पी होय, नवीन ज्वरवाला, अजीर्णयुक्त और जिसने मल मूत्रके वेगको रोका होय, इन सबको अंजन नहीं लगाना चाहिये। जिनको अंजन आँजनेका निषेध किया है उनके अंजन आँजे तो नेत्रोंमें लाली होतीहै, नेत्र सूजेसे होजातेहैं, तिमिर, शूल, तथा दोषोंका कोप होताहै और निद्राका नाश होताहै ॥ ५१–५८ ॥

लेखनकारिणी वर्तिः।

शङ्खनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला ॥ पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ ५९ ॥ छागक्षीरेण सम्पिष्य वर्त्तिं कुर्याद्यवोन्मिताम् ॥ एरण्डमात्रां सम्पिष्य जलैः कुर्याद्यथाञ्जनम् ॥ ६० ॥ तिमिरं मांसवृद्धिश्च काचं पटलमर्बुदम् ॥ रात्र्यान्ध्यं वार्षिकं पुष्पं वर्त्तिश्चन्द्रोदया हरेत् ॥ ६१ ॥
इति चन्द्रोदया वर्त्तिर्लेखनी ॥

शखकी नाभि, बहेडेकी मींग, हरड, मैनशिल, पीपल, मिर्च, कूठ और वच, इनको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर एक अंडीकी बराबर जौके आकारवाली बत्ती बनावे, इस बत्तीको पानीमे पीसकर योग्य रीतिसे आँजै, इसके लगानेसे तिमिर, मांसकी वृद्धि, काच, पटल, अर्बुद रतौंधा और एक वर्षका फूला नष्ट होताहै, इस बत्तीका नाम चन्द्रोदया वर्त्ति है ॥ ५९–६१ ॥

रोपणकारिणी वर्तिः।

अशीतिस्तिलपुष्पाणि षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः ॥ जातिपुष्पाणि पञ्चाशन्मरिचानि तु षोडश ॥ ६२ ॥ सूक्ष्मं पिष्ट्वाम्बुनावर्त्तिः कृता कुसुमिकाभिधा ॥ तिमिरार्जुनशुक्राणां नाशिनी मांसवृद्धिनुत् ॥ एतस्या अञ्जने प्रोक्ता मात्रा सार्धहरेणुका ॥ ६३ ॥
इति कुसुमिका रोपणी वर्टी ॥

अस्सी तिलके फूल, साठ पीपलके बीज, पचास चमेलीके फूल और सोलह दाने मिर्च, इनको पानीमें बारीक पीसकर जो वत्ती बनाई जाय उसको कुसुमिकावर्त्ती कहते हैं। यह वर्त्ती–तिमिर, अर्जुन (सफेद भागमें लालबूँद) तथा फूलेको नष्ट करैहैं और मांसकी वृद्धिको भी दूर करैहैं इस वर्त्तीकी आँजनेमें डेढ मटरकी बराबर मात्रा जाननी ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

स्नेहनकारिणी वर्तिः ।

धात्र्यक्षपथ्याबीजानि एकद्वित्रिगुणानि च ॥ पिष्ट्वा वर्ति जलैः कुर्यादञ्जनं द्विहरेणुकम् ॥ नेत्रस्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजं तथा ॥ ६४ ॥

आमलेकी गुठलीकी मीग एक भाग, बहेडेकी गुठलीकी मीग दो भाग और हरडोकी गुठलीकी मीग तीन भाग इनको पानीमें पीसकर वत्ती बनावै और वह दो मटरकी बराबर नेत्रोंमें लगावै । ये लगानेसे नेत्रोंका पानी गिरना, तथा वातरक्तका विकार नष्ट होताहै ॥ ६४ ॥

लेखनकारिणी रसक्रिया ।

तुत्थमाक्षिकसिन्धूत्थाः सिताशंखमनःशिलाः ॥ गैरिकं सिन्धुफेनश्च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ ६५ ॥ संयोज्य मधुना कुर्यादञ्जनार्थं रसक्रियाम् ॥ वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरीं पराम् ॥ ६६ ॥

नीलाथोथा, सोनामाखी, सेंधानोन, खाँड, शंखका चूर्ण, मैनशिल, गेरु, समुद्रफेन और कालीमिर्च, इनको खूब पीसकर मधुमें मिलाकर आँजे, इसके लगानेसे पलकोंके रोग, अर्म, तिमिर, काच और शुक्ररोग इन सबका अत्यन्त शीघ्र नाश होताहै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

रोपणी रसक्रिया ।

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला ॥ समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचं तथा ॥ ॥ ६७ ॥ एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मने ॥ अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणाञ्च प्ररोहणम् ॥ ६८ ॥

रसोत, राल, चमेलीके फूल, मैनशिल, समुद्रफेन, सेंधानोन, गेरु और मिर्च, इनको समान भाग लेकर सहतमें खूब बारीक पीसै, पश्चात् पलकोंपर लगावैं तो पलकोंका गीलापन तथा खुजली नष्ट होतीहै और पलकोंके बाल गिरगये हों तो फिर उगने लगते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

स्नेहनकारिणी रसक्रिया ।

कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत् ॥ ईषत्कर्पूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम् ॥ ६९ ॥

निर्मलीके फल और थोडे कपूरको सहतमें घिसकर आँजे तो नेत्र स्निग्धतापूर्वक स्वच्छ होतेहैं ॥ ६९ ॥

लेखनचूर्णम् ।

दक्षाण्डत्वक्छिलाकाचशंखचन्दनसैन्धवैः ॥ अञ्जनं हरते नित्यं सर्वानक्षिगदान्बलात् ॥ ७० ॥

दक्षः कुक्कुटः ॥

तथा च निघण्टुः—

कृकवाकुस्तथा दक्षः कालज्ञोऽथ शिखण्डिक इति ॥

मुरगेके अंडेका छिलका, मैनशिल, काँच, शंख, चदन और सेंधानोन इनका चूर्ण करके नित्य आँजे तो बलात्कारसे हुए नेत्रोंके सम्पूर्ण रोग नष्ट होतेहैं । निघंटुमें कृकवाकु, दक्ष, कालज्ञ और शिखंडिक, ये मुरगेके संस्कृत नाम कहेहैं. इसीसे हमने इस श्लोकमें दक्षका अंडा अर्थ किया है ॥ ७० ॥

रोपणचूर्णम् ।

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा ॥ गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ ७१ ॥ शुष्कं तच्च जलं सर्वं पर्पटीसन्निभं भवेत् ॥ विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक्त्रिवेलं त्रिफलारसैः ॥ ७२ ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत् ॥ अञ्जयेन्नयनं तेन सर्वदोषप्रशान्तये ॥ ॥ ७३ ॥ समस्तनेत्ररोगघ्नं चूर्णमेतन्न संशयः ॥

पत्थरके खरलमें खपरियाको पीस पानीमें भली भाँति भिजो देवै, फिर उसके ऊपरके जलको निता-

रले और नीचेके कूडेको फेकदेवे, इन सबको सुखाकर पपडीकी सदृश जब होजाय तब उसका चूर्णकरै फिर हरड बहेडा और आमलेके रसकी तीन भावना देवै और फिर दशवाँभाग कर्पूरका चूर्ण मिलावे यह चूर्ण आँजे तौ सम्पूर्ण दोषोंकी शांति होती है और नेत्रोके सर्व रोग निःसन्देह नष्ट होतेहैं ॥ ७१-७३ ॥

स्नेहनचूर्णम्।

अग्नितप्तं हि सौवीरं निषिञ्चेत्त्रिफलारसैः॥ सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् ॥ ७४ ॥
सौवीरं श्वेतमञ्जनम् ॥
अञ्जयेत्तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम् ॥ सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः७५

सफेद सुरमेको अग्निमें तपा तपाकर सातवार हरड, बहेडे तथा आमलेके रसमें डालकर बुझावे, फिर तपाकर सातवार स्त्रीके दूधमे बुझावे, फिर इस सुरमेका चूर्ण करके नित्य नेत्रोमे आँजे तो नेत्रोंको हितकारी होताहै नेत्रसबधी सम्पूर्ण विकारोका निःसदेह नाश होता है ॥ ७४ ॥७५॥

प्रत्यंजनविधिः।

गतदोषमपेताश्रु प्रपश्यत्सम्यगम्भसि ॥ प्रक्षाल्याऽक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यञ्जनं ततः ॥ ७६ ॥ न वा निर्वातदोषेऽक्षिधावनं सम्प्रयोजयेत् ॥ प्रत्यञ्जने कृते दद्याच्चूर्णं तीक्ष्णप्रसादनम् ॥ ७७ ॥

नेत्रोके दोष दूर होनेके पश्चात् आँसू निकल जानेपर तथा नेत्रोंमे देखनेकी जब शक्ति आगई हो तब नेत्रोंको जलसे धोडाले, पश्चात् दोषोंको निःशेष करनेके लिये उसी दोषके अनुसार प्रत्यजन (दूसरी वार) आँजै। नेत्रोंके जबतक दोष दूर न होजायें तबतक नेत्रोको नही धोवै, नेत्रोंको धोनेके पीछे प्रत्यजन आँजै कि जिससे तीक्ष्ण औषधिके लगानेसे हुआ नेत्रोका ताप नष्ट होजाय ७६॥७७॥

नयनामृतचूर्णम्।

तद्यथा-शुद्धनागेन्द्रतुल्यन्तु शुद्धं सूतं विनिक्षिपेत्॥कृष्णाञ्जनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ७८ ॥ दशमांशेन कर्पूरं तस्मिंश्चूर्णे विनिक्षिपेत् ॥ एतत्प्रत्यञ्जनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ ७९ ॥

कृष्णाञ्जनं स्रोतोऽञ्जनम्।
तथा च मदनपालः-
स्रोतोऽञ्जनन्तु तद्विद्यादञ्जनाभं यदञ्जनम्८०
इति नयनामृतं प्रत्यञ्जनम् ॥

शुद्ध किये हुए सीसेको पिघलाकर उसमे उसके बराबरही शुद्ध पारा डालै और दोनोके बराबर काला सुरमा डाले, पश्चात् इन सबका एकत्र चूर्ण करके उसमें उसका दशवाँ भाग कर्पूर डाले। इसका नेत्रोमें प्रत्यजन करै तो नेत्रके रोग निःशेष होजाते हैं, इसका नाम 'नयनामृत' है. मदनपालनामक कोषमें कहाहै कि "जो सुरमा अंजनके सदृश काला होय वह स्रोतोजन कहाताहै" ७८-८०॥

दृष्टिस्वच्छकारिणी शलाका।

त्रिफलाभृंगशुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा ॥ गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः॥ तच्छलाका हरत्येव सर्वान्नेत्रभवान्गदान्८१

इति भेषजाना विधानानि।

शुद्ध सीसेको वारवार तपातपाकर हरड, बहेडा, तथा आमलेके रसमे, घीमें, गोमूत्रमें, शहदमें और बकरीके दूधमे बुझावै, पश्चात् इस सीसेकी सलाई बनाकर नेत्रमे फेरे तो इससे नेत्रसंबंधी सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं ॥ ८१ ॥

अथ भेषजभक्षणसमयः।

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः ॥ कषायांस्तु विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥ ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥ किञ्चित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ॥ सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥ २ ॥

विद्वान् पुरुष अधिक करके औषधि प्रातःकालमे खावै और क्वाथ पीना होय तौ प्रातःकालमे ही पिये परन्तु उसमे नीचे लिखे भेदोपर ध्यान रक्खै। किंचित् सूर्योदय होनेके पश्चात्, दिनको भोजन करनेके समयमे, सध्याको भोजन करनेके समयमें, वारवार और रात्रिमे इस भाँति मनुष्योंके औषधि खानेके पाँच समय हैं ॥ १ ॥ २ ॥

प्रथमकालः ।

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ॥ लेखनार्थे च भैषज्यं प्रभातेऽनन्नमाहरेत्॥ ३॥

पित्त अथवा कफकी अत्यत अधिकतामे, रेच (जुलाब) लेना होय, वमन (उलटी) करानी होय, वा लेखनके अर्थ, प्रातःकालमे विना खाये औषधिका उपयोग करै ॥ ३ ॥

द्वितीयकालः ।

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते ॥ अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥ ४ ॥ समानवाते विगुणे मन्देऽग्रावतिदीपनम ॥ दद्याद्भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक् ॥ ५ ॥ व्यानकोपे तु भैषज्यं भोजनान्ते समाहरेत् ॥ हिक्काक्षेपककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात् ॥ ६ ॥

अपान वायुके विगुण होनेपर दिनके भोजनसे किंचित् पहिले औषधलेना उत्तम है, अरुचि हो तौ खानेके विचित्र पदार्थोके साथ खावै कि–जिससे रुचि होती है । रोगीके नाभिस्थानमे रहनेवाली समानवायु विगडी होय और अग्नि मन्द होगई होय तौ कुशल वैद्य अग्निको प्रदीप्त करनेवाली औषधि भोजनके मध्यमे खवावै । सर्व शरीरमे रहनेवाली व्यान वायुका कोप हुआ होय तौ भोजनके अंतमे औषधि खिलावै । हिचकी, आक्षेपक वायुकी अथवा कंपकी अधिकता होय तौ पहिले और भोजनके पीछे भी औषधि खिलावै ॥ ४–६ ॥

तृतीयकालः ।

उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादिकारिणि ॥ ग्रासग्रासान्तरे देयं भैषज्यं सान्ध्यभोजने ॥ ७ ॥ प्राणे प्रदुष्टे सान्ध्यस्य भुक्तस्यान्ते प्रदीयते ॥ औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥ ८ ॥

स्वरभंगादिकारिणी गलेमे रहनेवाली जो उदानवायु है उसका प्रकोप हुआ होतौ सायकालके भोजनमे ग्रासग्रासके साथ औषधि देवै, हृदयमे रहनेवाली प्राणवायुका प्रकोप होय तौ अधिक करके सायकालके भोजन करनेके पश्चात् धीर वैद्य औषधि सेवन करावै, यह तीसरा समय है ॥ ७ ॥ ८ ॥

चतुर्थकालः ।

मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च ॥ सान्नश्च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ९॥

तृषा, वमन, हिचकी, श्वास अथवा विषकी पीडा होय तौ अन्नके साथ या वारवार औषधि सेवन करावै यह चौथा समय है ॥ ९ ॥

पंचमकालः ।

ऊर्द्धजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा ॥ पाचने शमने देयमनन्नं भेषजं निशि ॥ १० ॥

हँसलीके ऊपरके भागमें विकार हो और लेखन क्रिया, बृहणक्रिया, पाचनक्रिया, अथवा शमनक्रिया करनी हो तो रात्रिमे विना भोजन करे औषधि सेवन करावै ॥ १० ॥

निरन्नकोष्ठ औषधिसेवनगुणाः ।

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव ॥ तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं ग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयश्च ॥ ११ ॥

जो मनुष्य निरन्न कोठेमे औषधिका सेवन करै तौ औषधिकी शक्ति अधिक होती है और वह औषधि अवश्य तथा तुरन्त रोगको नष्ट करती है । परन्तु बालक, वृद्ध, युवा स्त्रियें अथवा मृदु प्रकृतिवाले मनुष्य निरन्नकोठेमे औषधि सेवन करैं तौ तुरन्त उनको ग्लानि होतीहै और शरीरके बलका नाश होताहै ॥ ११ ॥

अन्नेन सहौषधसेवनगुणाः ।

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्यादन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ॥ एतद्धितं स्थविरबालकृशाङ्गनाभ्यः प्राग्भो-

जनाद्यदर्शितं किल तच्च तद्वत् ॥ १२ ॥
तद्वदन्नावृतवद्भेषजमिति शेषः ॥
औषधशेषे भुक्तं भोजनशेषे यदौषधं पीतम् ॥ न करोति गदोपशमम्प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ १३ ॥
पीतमित्युपलक्षणं लीढादिकं च ॥

अन्नमे मिलाकर जो औपधिका सेवन कियाजाय वह तुरन्त पकजाती है, बलका क्षय नही करतीहै, तथा मुखमेसे वारवार निकलती भी नही। वृद्ध, बालक, दुर्वल शरीरवाले और स्त्रियोंको इसप्रकार औपधिका सेवन करना हितकारी है। भोजन करनेके पहिले औषधिका उपयोग करनेसे जो गुण होताहै उसके सदृशही अन्नके साथ खाई हुई औपधि भी गुण करतीहै। औषधि किंचित् शेष (बाकी) रहनेपर भोजन करै अथवा भोजन किंचित् शेष रहनेपर औषधिका पान करै तो वह औपधि रोगोको शान्त नही करती और अन्य रोगोको कुपित करती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

औषधपाकापाकचिह्नम्।

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णासुमनस्कताः ॥ लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥ १४ ॥ क्लमो दाहोऽङ्गसदन भ्रममूर्च्छाशिरोरुजः ॥ अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥ १५ ॥

रोगीकी औपधि पचगई होय तो पवन अपने अनुकूल चलतीहै, स्वस्थता होतीहै, भूँख तथा तृपा लगतीहै, मनमे प्रसन्नता होतीहै, शरीरमे लघुता होतीहै और डकार ठीक आती है और जो रोगीकी औपधि न पची होय ग्लानि, दाह, अंगमें पीडा, भ्रम, मूर्च्छा, मस्तकमे दर्द, अरुचि तथा बलकी हानि होतीहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

चरकोक्तौषधसेवनविधिः।

देवान्गुरूंस्तथा विप्रान्पूजयित्वा प्रणम्य च ॥ आशिषश्च समादाय श्रद्धया भेषजं भजेत् ॥ १६ ॥ रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा ॥ सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥ १७ ॥ ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः ॥ देवाश्च सौषधिग्रामा भूमिदेवाश्च पान्तु वः ॥ १८ ॥
औषधं हेमरजतमृद्भाजनपरिस्थितम् ॥ पिबेदाप्तजनस्याग्रे प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ १९ ॥ विश्रान्तस्तूपविश्याथ पीत्वा पात्रमधोमुखम् ॥ निक्षिप्याचम्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ २० ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचित-
भावप्रकाशे पञ्चमप्रकरण चिकित्सायां
सप्ताङ्गानि च सम्पूर्णानि।

देवता, गुरु तथा ब्राह्मणको पूजा, प्रणाम करकें उनका आशीर्वाद लेकर श्रद्धासे औपधिका सेवन करै. गुरु तथा ब्राह्मण रोगीको आशीर्वाद देवै कि—"जैसे रसायन ऋषियोको और अमृत देवताओको तथा नागोको रोगरहित तथा बलवान् करैहै, तिसीप्रकार यह औपधि तुमको रोगरहित तथा बलवान् करै। ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि, अन्यदेवता, औपधियोका समूह और ब्राह्मण तुम्हारी रक्षा करें"। रोगी अपने मुख और नेत्रोको प्रसन्न रख अपने स्नेही और भले मनुष्योके आगे सुवर्णके, चाँदीके, अथवा मट्टीके पात्रमें रक्खीहुई औपधि सेवन करै। विश्रामसे बैठकर औषधिको पियै, पीनेके पश्चात् औपधिके पात्रको पृथ्वीपर औंधा डाल देवै पश्चात् जलसे आचमन करके पान आदिको सेवन करै ॥ १६–२० ॥

इति श्रीभावप्रकाशे वैद्यसजीविनीभाषाटीकाया
मुरादाबादनिवासिमाथुरवैश्यवंशोद्भवकवि-
वरलालाशालिग्रामवैद्यकृताया पञ्चम-
प्रकरण सम्पूर्णम्।

अथ षष्ठं प्रकरणम्।

चिकित्सार्थं रोगिणो वाग्भटोक्तपरीक्षा।

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैस्तं परीक्षेत रोगिणम् ॥ आयुरादि दृशा स्पर्शाच्छीतादि प्रश्नतः परम् ॥ १ ॥
आयुरादि, आदिशब्दात्साध्यत्वासाध्य-

त्वादि दृशा दर्शनेन । स्पर्शेन शीतादि शीतोष्णमृदुकठिनत्वादि, नाडीपरीक्षणं वा । प्रश्नतः,उदरलाघवगौरवतृषाऽतृषा-बुभुक्षाबलाबलादि । तत्र दर्शनं नेत्रजिह्वा-मूत्रादीनां कर्त्तव्यम् ॥ मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्यातास्तथैव च ॥ तथा दुष्परिपृष्टाश्च मोहयेयुश्चिकि-त्सकान् ॥ २ ॥

दर्शनसे, स्पर्शसे और पूछनेसे रोगीकी परीक्षा करनी चाहिये । दर्शनसे अर्थात् रोगीके नेत्र, जीभ तथा मूत्र आदिको देखकर आयुकी और रोगके साध्य असाध्यत्व आदिकी परीक्षा करै । स्पर्शसे अर्थात् रोगीके शरीरको स्पर्श करके शीतताकी,उष्णताकी, कोमलताकी और कठो-रता आदिकी परीक्षा करै अथवा नाडीकी परीक्षा करै । पूँछनेसे अर्थात् रोगीको पूँछकर उसके पेटकी, लघुता, गुरुता, तृषा, तृषाका अभाव, भूख, भूखका अभाव, बल और बलका अभाव आदिकी परीक्षा करै । जो रोग भली भाँति नहीं देखे, भली भाँति नहीं कहे और भली भाँति नहीं पूँछे वे रोग वैद्यको मोहित करदेतेहैं, इस कारण वैद्य विकारोंको यथार्थ रीतिसे देखे, पूँछे और कहै ॥ १ ॥ २ ॥

नेत्रपरीक्षा ।

नेत्रं स्यात्पवनाद्रूक्षं धूम्रवर्णं तथारुणम् ॥ कोणं गतं प्रविष्टं च तथा स्तब्धविलो-कनम् ॥ ३ ॥ हरिद्राखण्डवर्णं वा रक्तं वा हरितं तथा ॥ दीपद्वेषि सदाहश्च नेत्रं स्यात्पित्तकोपतः ॥ ४ ॥ चक्षुर्ब-लासबाहुल्यात्स्निग्धं स्यात्सलिलप्लुतम् ॥ तथा धवलवर्णश्च ज्योतिर्हीनं बला-न्वितम् ॥ ५ ॥ नेत्रं द्विदोषबाहु-ल्यात्स्याद्दोषद्वयलक्षणम् ॥ त्रिदोषलिङ्ग-संघेन तं मारयति रोगिणम् ॥ ६ ॥ त्रिदोषदूषितं नेत्रमन्तर्मग्नं भृशं भवेत् ॥ त्रिलिंगं सलिलस्रावि प्रान्तेनोन्मीलय-त्यपि ॥ ७ ॥

वायुके प्रकोपसे नेत्र रूक्ष, धुएँके सदृश रंगवाले, लाल, तिरछे देखनेवाले और भीतरको घुसे हुए होतेहैं. पित्तके प्रकोपसे नेत्र हलदीके टुकडेके सदृश पीले, लाल, हरे वर्णके, दीपकके ऊपर अरुचिवाले और दाहयुक्त होतेहैं । कफके प्रकोपसे नेत्र स्निग्ध, पानीसे व्याप्तहुए, सफेद, तेजरहित और दृढतायुक्त होतेहैं । दो दोषोंके प्रकोपसे नेत्र दो दोषोंके लक्षणयुक्त होतेहैं, तीन दोषोंके प्रकोपसे नेत्र तीन दोषयुक्त होतेहैं और रोगीकी मृत्यु करदेतेहैं । जो नेत्र तीनों दोषोंसे दूषितहुए हों वे बहुत भीतरको बैठ जातेहैं, पानी निकलताहै तथा अन्तिम भागसे खुल सक्ते हैं ॥ ३–७ ॥

जिह्वापरीक्षा ।

शाकपत्रप्रभा रूक्षा स्फुटना रसनाऽनि-लात् ॥ रक्ता श्यावा भवेत्पित्ताल्लिप्तार्द्रा धवला कफात् ॥ ८ ॥ परिदग्धा खर-स्पर्शा कृष्णा दोषत्रयेऽधिके ॥ सेव दोष-द्वयाधिक्ये दोषद्वितयलक्षणा ॥ ९ ॥

वायुके प्रकोपसे जीभ शाकपत्र (सागोनके पत्ते) के सदृश, रूखी और फटीहुई होतीहै । पित्तके प्रकोपसे जीभ लाल और काली होतीहै । कफके प्रकोपसे जीभ गीली और धौली होतीहै । दो दोषोंके प्रकोपसे जीभ दो दोषोंके लक्षणयुक्त होतीहै और तीन दोषोंके प्रकोपसे जीभ जली हुईके सदृश और कठोर स्पर्शवाली होतीहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

मूत्रपरीक्षा ।

वातेन पाण्डुरं मूत्रं रक्तं नीलञ्च पि-त्ततः ॥ रक्तमेव भवेद्रक्ताद्धवलं फेनिलं कफात् ॥ १० ॥

वातके प्रकोपसे मूत्र पीले रंगका होताहै, पित्तके प्रको-पसे मूत्र लाल तथा नीला होताहै, रुधिरके कुपित होनेसे मूत्र लाल होताहै, और कफके कुपित होनेसे मूत्र सफेद तथा झागोंयुक्त होताहै ॥ १० ॥

नाडीपरीक्षा ।

पुंसो दक्षिणहस्तस्य स्त्रियो वामकरस्य तु ॥ अंगुष्ठमूलगां नाडीं परीक्षेत भिष-ग्वरः ॥ ११ ॥ अंगुलीभिस्तु तिसृभि-र्नाडीमवहितः स्पृशेत् ॥ तच्चेष्टया सुखं

दुःखं जानीयात्कुशलोऽखिलम् ॥ १२ ॥ सद्यःस्नातस्य सुप्तस्य क्षुत्तृष्णातपशीलिनः ॥ व्यायामश्रान्तदेहस्य सम्यङ् नाडी न बुध्यते ॥ १३ ॥ वातेऽधिके भवेन्नाडी प्रव्यक्ता तर्जनीतले ॥ पित्ते व्यक्ता मध्यमायां तृतीयांगुलिगा कफे ॥ १४ ॥ तर्जनीमध्यमामध्ये वातपित्ताधिके स्फुटा॥ अनामिकायां तर्जन्यां व्यक्ता वातकफे भवेत् ॥ १५ ॥ मध्यमानामिकामध्ये स्फुटा पित्तकफेऽधिके ॥ अंगुलित्रितयेऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सन्निपाततः ॥ १६ ॥ वाताद्वक्रगतिं धत्ते पित्तादुत्प्लुत्य गामिनी ॥ कफान्मन्दगतिर्ज्ञेया सन्निपातादतिद्रुता ॥ १७ ॥ वक्रमुत्प्लुत्य चलति धमनी वातपित्ततः ॥ वहेद्वक्रश्च मन्दश्च वातश्लेष्माधिकत्वतः ॥ १८ ॥ उत्प्लुत्य मन्दं चलति नाडी पित्तकफेऽधिके ॥ कामात्क्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिन्तामयप्लुता ॥ १९ ॥ स्थित्वास्थित्वा चलेद्या सा हन्ति स्थानच्युता तथा ॥ अतिक्षीणा च शीता च प्राणान्हन्ति न संशयः ॥ २० ॥ ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥ मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च सैव मन्दतरा मता ॥ २१ ॥ चपला क्षुधितस्य स्यात्तृप्तस्य भवति स्थिरा ॥ सुखिनोऽपि स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥ २२ ॥

श्रेष्ठ वैद्य पुरुषके दहने हाथक और स्त्रीके वाम हाथके अँगूठेकी जडमे जो नाडी है उसकी परीक्षा करै. सावधान रहकर तीनों अगुलियोंसे नाडी स्पर्श करै और उस नाडीकी चेष्टासे सुखदुःखादि सब जान लेवै। तत्काल स्नान कियाहुआ,सोयाहुआ, भूखा, प्यासा, धूपसे तपाहुआ और व्यायाम (दड कसरत) करनेसे थकाहुआ इनकी नाडी भली भाति समझमें नही आतीहै । वातकी अधिकता होय तो नाडी तर्जनी अगुलीके नीचे चलतीहै, पित्तकी अधिकता होय तौ नाडी बीचकी अगुलीके नीचे चलतीहै, कफकी अधिकता होय तौ नाडी तीसरी अनामिकाके नीचे चलतीहै । वात तथा पित्तकी अधिकता होय तौ नाडी तर्जनीके तथा मध्यमाके मध्यमे चलतीहै, वात तथा कफकी अधिकता होय तौ नाडी अनामिका और तर्जनीके मध्यमें चलतीहै और जो पित्तकफकी प्रधानता हो तौ नाडी मध्यमा और अनामिकाके मध्यमें चलतीहै और त्रिदोषका कोप होय तौ तीनों अगुलियोंमे चलतीहै, वातकी अधिकता होय तौ नाडी टेढी बाकी चलतीहै, पित्तकी अधिकता होय तौ नाडी उछल उछल कर चलतीहै, कफकी अधिकतासे नाडी धीरे धीरे चलती है, त्रिदोषका प्रकोप होय तौ नाडी अत्यन्त शीघ्र चलती है, वायु तथा पित्तकी अधिकता होय तौ नाडी आडी और उछल उछलकर चलतीहै, वात तथा कफकी अधिकता होय तौ नाडी टेढी और धीरे धीरे चलतीहै और पित्त तथा कफकी अधिकता होय तौ उछल उछलकर धीरे धीरे चलतीहै, काम तथा क्रोधसे नाडी वेगयुक्त चलतीहै और चिन्ता अथवा भयसे नाडी क्षीण हुई चलतीहै । जो नाडी ठहर ठहरकर चलती हो, अपने स्थानको छोडकर अन्यत्र चलती हो, अत्यन्त क्षीण हो, अथवा अत्यन्त शीतल होगई हो वह नाडी निःसदेह प्राणोंका नाश करतीहै । ज्वरका कोप होय तौ नाडी गरम होतीहै और वेगसे चलतीहै, जिसकी अग्नि मन्द होगई हो और जिसकी धातुएँ क्षीण होगई हो उसकी नाडी बहुत धीरे २ चलतीहै । भूखे मनुष्यकी नाडी चपल होतीहै, तृप्तहुएकी नाडी स्थिर होतीहै, सुखी मनुष्यकी नाडीभी स्थिर और बलवती होतीहै ॥ ११–२२ ॥

अथ येनयेन रोगज्ञानं स्यात्तत्तदाह ।

हेतुस्तदनु सम्प्राप्तिं पूर्वरूपञ्च लक्षणम् ॥ तथैवोपशयः पंच रोगविज्ञानहेतवः ॥ २३ ॥

हेतु, सम्प्राप्ति, पूर्वरूप, लक्षण और उपशय, ये पाच वैद्यको रोगोंका यथार्थ ज्ञान होनेमें कारण हैं ॥ २३ ॥

हेतुलक्षणम् ।

यत्तु न स्याद्विना येन तस्य तद्धेतुरुच्यते॥ शास्त्रे संव्यवहाराय तत्पर्यायान्प्रचक्ष्महे ॥ २४ ॥ निदानं कारणं हेतुर्निमित्तं च निबन्धनम् ॥ मूलमायतनं तत्र प्रत्ययोऽपि निगद्यते ॥ २५ ॥

तत्र हेतुर्व्याधीनां ज्ञानाय । हेतुर्यथा, वर्षारूक्षश्रमहिमानशनानि मैथुनशोकचिन्ताभयादयो वातप्रकोपहेतवो वातजान् व्याधीन् बोधयन्ति । शरत्कटुम्लोष्णतीक्ष्णक्रोधतृषाक्षुधाभिघातातपादयः पित्तप्रकोपहेतवः पित्तजान् व्याधीन्बोधयन्ति । वसन्तमधुरस्निग्धशीतादयः कफप्रकोपहेतवः कफजान् व्याधीन् बोधयन्ति ॥

जो रोग जिसके विना न होय उस रोगका वह हेतु कहाताहै । निदान, कारण, हेतु, निमित्त, निबन्धन, मूल, आयतन और प्रत्यय ये शब्द एक अर्थवाले हैं । वैद्यक शास्त्रकी छन्दोबद्ध कवितामें हेतु शब्दके ये आधिक पर्याय कहेहैं ॥

वर्षाऋतु, रूक्षपदार्थ, श्रम, हिम, भोजनका अभाव, मैथुन, शोक, चिन्ता और भय आदिक जो वातके कुपित होनेमें कारण हैं उन्हींसे वातसम्बन्धी रोग जानेजातेहैं । शरद्ऋतु, कडवे पदार्थ, अम्लपदार्थ, गरम पदार्थ, तीक्ष्ण पदार्थ, क्रोध, तृषा, भूख, चोट और धूपआदिक जो पित्तके कुपित होनेमें कारण हैं उनहीसे पित्तसम्बन्धी रोग जानेजातेहैं । वसन्तऋतु, मधुरपदार्थ, स्निग्धपदार्थ और शीत आदिक जो कफके कुपित होनेमें कारण हैं उन्हींसे कफसम्बन्धी रोग जानेजातेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

सम्प्राप्तिलक्षणम् ।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ॥ उत्पत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ २६ ॥

यथा दुष्टेन दोषेण यथा कारणभेदेन दोषेण यथा च अनुविसर्पता अनेकधा दोषाणां विसर्पता ऊर्ध्वाधस्तिर्यगादिगतिभेदेन तथा च विसर्पता आमयस्य या उत्पत्तिः, असौ सम्प्राप्तिः । शास्त्रे व्यवहाराय सम्प्राप्तेः पर्यायानाह जातिरागतिरिति ॥

दोष-कि, जो ऊँची, नीची और तिरछी आदि पृथक् पृथक् गतिसे शरीरमे फैलते हैं वेही दोष जिस कारणसे दुष्ट होकर और जिस गतिसे शरीरमे फैलकर रोगकी उत्पत्ति होय उसी कारणसहित वह गति संप्राप्ति कहाती है। वैद्यकशास्त्रमें व्यवहारके लिये जाति और आगति ये दो संप्राप्तिके पर्याय मानें ॥ २६ ॥

सम्प्राप्त्यौपाधिकभेदाः ।

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः॥ सा भिद्यते यथाऽत्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ २७ ॥

सम्प्राप्तिर्व्याधीनां ज्ञानाय हेतुः । यथा मिथ्याहारविहारकुपितवाताद्यामाशयगमनरसदूषणकोष्ठाग्निबहिर्निरसनरूपं ज्वरोत्पत्तिप्रकारं बोधयति । तथा व्याधीनां संख्यादोषांशकल्पनाप्राधान्यबलकालांश्च बोधयति । तेषु ज्ञातेषु चिकित्साविशेषश्च स्यात् । सांख्यादिरूपविशेषस्तेभ्यः सा संप्राप्तिर्भिद्यते भेदवती क्रियते इत्यर्थः । तत्र संख्यां विवृणोति । तथा ज्वरोऽष्टधा अतीसारः षड्विध इत्यादि ॥

संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और काल ये विशेषतासे संप्राप्तिके अलग अलग भेद माने हैं । इस ग्रन्थमे ज्वर आठप्रकारके ह और अतिसार छः प्रकारके हैं इत्यादि रोगोंके भेदोंकी संख्या कही जायगी, उन्ही भेदोंसे संप्राप्तिका जो निश्चय किया जाय वह संख्यासंप्राप्ति कहातीहै ॥ २७ ॥

विकल्पव्याख्यानम् ।

दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना ॥ २८ ॥

समवेतानां समुदितानां दोषाणाम् अंशांशकल्पना हीनमध्याधिकभेदैर्भागकल्पना विकल्पः ॥

एकत्र हुए दोषोमे कौनसा अधिक है, कौनसा मध्यम है और कौनसा दोष हीन है, इस प्रकार दोषोंके भागोकी जो कल्पना करीजाय वह विकल्प कहाताहै। इस विकल्पमे संप्राप्तिका जो निश्चय किया जाय वह विकल्पसप्राप्ति कहातीहै ॥ २८ ॥

प्राधान्यव्याख्यानम्।

स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ २९ ॥

व्याधेः स्वातन्त्र्येण प्राधान्यं पारतन्त्र्येण अप्राधान्यञ्च वदेदित्यर्थः। यथा स्वतन्त्रस्य ज्वरस्य प्राधान्यं ज्वराधीनानां श्वासादीनामप्राधान्यम् ॥

जो रोग स्वतत्र हो वह प्रधान व्याधि कहातीहै, और जो रोग इस स्वतत्र व्याधिके आधीन हो वह अप्रधान व्याधि कहातीहै। जैसे कि–ज्वरको लेकर श्वास आदि व्याधि हुई हों तो ज्वर प्रधान है और, श्वासआदि व्याधिये अप्रधान है। इसी प्रकार प्रधानतासे तथा अप्रधानतासे सप्राप्तिका जो निश्चय किया जाय वह प्रधानसप्राप्ति कहातीहै ॥ २९ ॥

बलव्याख्यानम्।

हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणम् ३०

अत्रापि व्याधेरित्यनुवर्त्तते। हेत्वादेः हेतुपूर्वरूपरूपाणाम् कात्स्न्येंन साकल्येन अवयवैः एकदेशेन व्याधेर्बलाबलयोर्विशेषणम् विशेषबोधः ॥

हेतु, पूर्वरूप और लक्षण ये सम्पूर्ण अशासे हैं अथवा थोडे थोडे अशोसे ह ? इस परीक्षासे व्याधिकी सबलता और निर्बलताका जो निश्चय कियाजाय वह बलसप्राप्ति कहातीहै ॥ ३० ॥

कालव्याख्यानम्

नक्तंदिनर्त्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ ३१ ॥

नक्तमत्राव्ययं रात्रिवाचकम्। एतेन एतदुक्तं यस्मिन्नक्तादिरंशो यस्य दोषस्य प्रकोप उक्तोऽस्ति सोंऽशस्तस्य दोषजस्य व्याधेः काल इत्यर्थः ॥

रात, दिन, ऋतु और भोजन किये अन्नादिक, इनके जिस जिस अवयवमे जिस जिस दोषका प्रकोप होना कहाहै उस उस अवयवके उस उस दोषसे हुई व्याधिका काल जानना, इसप्रकार कालसे सप्राप्तिका जो निश्चय कियाजाय वह कालसप्राप्ति कहाती है ॥ ३१ ॥

नक्ताद्यंशैर्वाग्भटोक्तवातादिप्रकोपः।

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्द्धसंश्रयाः ॥ वयोऽहोरात्रमुक्तानामन्तमध्यादिगाः क्रमात् ॥ ३२ ॥ इति। ते वातपित्तकफाः ॥

ऋतुषु वातादिकोपो यथा।

वर्षासु शिशिरे वायुः पित्तं शरदि उष्णके ॥ वसन्ते तु कफः कुप्येदेषा प्रकृतिरार्त्तवी ॥ ३३ ॥

रात्रिआदिके किस किस अवयवमे किस किस दोषका प्रकोप होताहै इस विषयमे वाग्भट कहतेहैं कि–"वातादि दोष सम्पूर्ण शरीरमे रहनेवाले हैं तो भी विशेष करके वायु नाभिके नीचे रहतीहै, पित्त हृदयके मध्यमे रहताहै और कफ हृदयके ऊपरके भागमे रहताहै। पुरुषकी अवस्थाका अन्त (वृद्धापना) वायुके प्रकोप होनेका समय है, अवस्थाका मध्यभाग पित्तके प्रकोपका समय है और अवस्थाका आदिभाग (बालकपन) कफके प्रकोप होनेका समय है। दिन तथा रात्रिका अतभाग वायुके कुपित होनेका समय है, मध्यभाग पित्तके प्रकोप होनेका समय है और आद्य भाग कफके प्रकोप होनेका समय है। भोजन किये अन्नादिका अन्त वायुके प्रकोपका समय है, मध्यभाग पित्तके प्रकोप होनेका समय है, और आदिभाग कफके प्रकोपका समय है। किस ऋतुमे किस दोषका प्रकोप होताहै यह भी कहाहै कि–"वर्षाऋतुमे और शिशिरऋतुमें वातका प्रकोप होताहै, शरद्‌ऋतु और ग्रीष्मऋतुमे पित्तका प्रकोप होताहै और वसन्त ऋतुमे कफका प्रकोप होताहै, यह ऋतुओंका स्वभाव है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

पूर्वरूपलक्षणम् ।

पूर्वरूपन्तु तद्येन विद्याद्भाविनमामयम् ॥ सामान्यं च विशिष्टश्च द्विविधं तदुदाहृतम् ॥३४॥ सामान्यं तत्र दोषाणां विशेषैरनधिष्ठितम् ॥ विशिष्टमीपद्व्यक्तं स्याद्विशेषैश्च समन्वितम् ॥ ३५ ॥

दोषाणां विशेषाः जृम्भातिशयनेत्रदाहाग्निमान्द्यादयः । तत्र पूर्वरूपं व्याधीनां ज्ञानाय हेतुः । यथा श्रमादयो भाविनं ज्वरं बोधयन्ति । अथ च अत एव श्रमादयोऽतिशयितजृम्भायुक्ता भाविनं वातज्वरं नेत्रदाहयुक्ताः पित्तज्वरं वह्निमान्द्ययुक्ता भाविनं कफज्वरं बोधयन्ति ॥

जिससे भविष्य कालमें रोगकी उत्पत्ति होना मालूम हो वह रोगका पूर्वरूप कहाताहै । सामान्य पूर्वरूप और विशेष पूर्वरूप इस भाँति पूर्वरूपके दो भेद हैं । जो पूर्वरूप दोषोंकी विशेषतारहित हो वह सामान्य पूर्वरूप कहाताहै और जो पूर्वरूप दोषोंकी विशेषता करके युक्त हो वह विशेष पूर्वरूप कहाताहै । जैसे कि अत्यन्त जम्भाई आवे, नेत्रोंमें दाह हो और अग्निकी मंदता होना आदि जो दोषोंका विशेष है उस करके रहित केवल श्रमादि, ज्वरका सामान्य पूर्वरूप है अर्थात् वह भविष्यकालमें सामान्य रीतिसे ज्वर आना जनाताहै और यह विशेषतासे युक्त हुए श्रमादिक, ज्वरका विशेष पूर्वरूप है अर्थात् श्रमादिक जो अत्यन्त जम्भाईसे युक्त हों वह भविष्यकालमें वात, ज्वरका आना जनाताहै, नेत्रोंका दाहसे युक्त होना भविष्यकालमें पित्तज्वर आना जनाता है, और अग्निकी मंदतासे युक्त हो वह भविष्यकालमें कफज्वर आना जनाता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

लक्षणलक्षणम् ।

पूर्वरूपं विशिष्टं यद्व्यक्तं तल्लक्षणं स्मृतम् ॥ संस्थानं लिङ्गं चिह्नश्च व्यञ्जनं रूपमाकृतिः ॥ ३६ ॥

विशिष्टं पूर्वरूपम् ईषद्व्यक्तरूपम् तदेव सम्यग्व्यक्ते लक्षणं स्मृतम् । तस्य शास्त्रे व्यवहाराय पर्यायानाह-संस्थानमित्यादि ॥

अमुक प्रकारके रोगकी किंचित् सूचना देनेवाला, विशेष पूर्वरूपकी अपेक्षा अधिक प्रकाशवाला, अर्थात् अधिक स्पष्टतासे रोगको बतानेवाला रोगका जो रूप होताहै वह लक्षण कहाताहै । वैद्यकशास्त्रोंमें व्यवहारके लिये संस्थान, लिंग चिह्न, रूप और आकृति, ये लक्षणके पर्यायी शब्द माने हैं ॥ ३६ ॥

ज्वरसामान्यलक्षणम् ।

स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा॥ युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरः परिकीर्त्तितः ॥ ३७ ॥

युगपदेतल्लक्षणं ज्वरं बोधयति ॥

जिस रोगमें पसीना रुकजाय, संताप हो और सब अंग जकडजावें ये सब एकही समयमें हो तौ वह रोग ज्वर कहताहै । एक समयमें होना ये लक्षण ज्वरको सूचित करतेहैं ॥ ३७ ॥

उपशयलक्षणम् ।

औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम्॥ नृणामुपशयं विद्यात्स हि सात्म्यमिति स्मृतः ॥ ३८ ॥

जिससे मनुष्योंको सुख हो ऐसी औषधिका, अन्नका और विहारका जो सेवन हो वह उपशय कहाताहै और सात्म्य भी इसका पर्याय है ॥ ३८ ॥

वायोरुपशयः ।

मधुरलवणसाम्लस्निग्धनस्योष्णनिद्रा गुरुरविकरवस्तिस्वेदसंमर्दनानि ॥ दधिघृततिलतैलाभ्यंगसन्तर्पणानि प्रकुपितपवमानं शान्तमेतानि कुर्युः ॥ ३९ ॥

मधुर, खारी, अम्ल तथा स्निग्धपदार्थ, नस्य, गरम पदार्थ, निद्रा, भारी पदार्थ, सूर्यकी किरणे, वस्तिक्रिया, स्वेदन, शरीरका मर्दन, दही, घृत, तिल, तेलकी मालिश और तृप्ति ये कुपित हुए पवनको शांत करें हैं (इन पदार्थोंके तथा क्रियाओंके सेवन करनेसे जिस रोगकी शांति हो तौ जानना कि यह रोग वायुका है) ॥ ३९ ॥

पित्तोपशयः।

तिक्तस्वादुकषायशीतपवनच्छायानिशावीजनज्योत्स्नाभूगृहयन्त्रवारिजलजं स्त्रीगात्रसंस्पर्शनम्॥ सर्पिःक्षीरविरेकसेकरुधिरस्रावप्रदेहादिकं पानाहारविहारभेषजमिदं पित्तप्रशान्तिं नयेत्॥ ४०॥

कडवे, मधुर, कसैले तथा शीतल (ठंढे) पदार्थ, वायु, छाया, रात्रि, पखेकी पवन, चॉदनी, पृथ्वीके भीतर बनवाया हुआ शीतलतायुक्त घर, फुवारोका जल, कमल, स्त्रीके शरीरका स्पर्श, दूध, घी, विरेचन, पानीका छिडकना, रुधिर निकलवाना और शीतल पदार्थोका प्रलेप आदिक, पान, आहार, विहार और औषधि पित्तको शांत करै हैं (इन पदार्थोंके तथा क्रियाओके सेवन करनेसे जिस रोगकी शांति हो तो जानना कि यह रोग पित्तका है) ॥ ४०॥

कफोपशयः।

रूक्षक्षारकषायतिक्तकटुकव्यायामनिष्ठीवनं धूमात्युष्णशिरोविरेकवमनस्वेदोपवासादिकम्॥ तृड्वाताध्वनियुद्धजागरजलक्रीडांगनासेवनं पानाहारविहारभेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं हरेत्॥ ४१॥

जलक्रीडा कफं कथं हरति तदाह। जलक्रीडाजनितशैत्येनावरुद्धोष्मा पंकलिप्तोभितः पाकाग्निरिवोग्रो भूत्वा कफं शोषयतीति समाधिः॥

रूखे, खारी, कसैले, कडवे, तथा चरपरे पदार्थ, व्यायाम, थूकना, धूमपान, अत्यन्त उष्ण, मस्तकका खाली करना, वमन, स्वेद, उपवास आदि, तृषा, वात, मार्ग (रस्ता) का चलना, युद्ध, जागना, जलक्रीडा, और स्त्रियोका सेवन इत्यादि, पान, आहार, विहार, और औषधि, ये उग्र कफकोभी शान्त करै हैं (इन पदार्थोंका तथा क्रियाओंका उपयोग करनेसे जो रोग शान्त हो तौ जानना कि यह रोग कफसंबधी है)। यहां प्रश्न होताहै, कि—जलक्रीडा कफको शात कैसे करे? इसका समाधान यह है कि, जलमें क्रीडा करनेसे उत्पन्न हुई शीतलतासे बाहरको निकलनेवाली शरीरकी उष्णता चारो ओरसे कीचसे ढकी चूल्हेकी अग्निके सदृश उग्र होकर कफका शोषण करती है॥ ४१॥

रोगनिदानविवेचनम्।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः॥ तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम्॥ ४२॥

सर्वेषां रोगाणां निदानं सन्निकृष्टं कारणम् कुपिताः स्वहेतुदुष्टा मलाः वातपित्तकफा एव इत्यन्वयः॥

तथा च वाग्भटः—"दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम्" इति। ननु आगन्तुजव्याधिषु व्यभिचारः स्यात्। तन्न, तत्रापि उत्पत्त्यनन्तरं दोषप्रकोपस्य अवश्यम्भावित्वात्। उत्पन्नद्रव्येषु गुणयोगस्येव। उक्तश्च चरके—आगन्तुर्हि व्यथापूर्वो जायते पश्चान्निजैर्दोषैरनुबध्यत इति। तत्प्रकोपस्य तु दोषप्रकोपस्य तु निदानम्। विविधानि नानाविधानि यानि अहितानि असात्म्यानि आहारादीनि तेषां सेवनम्॥

अपने हेतुओंसे दुष्ट हुए वात, पित्त और कफही सम्पूर्ण रोगोंका निदान है अर्थात् समीपका कारण है और उनके प्रकोपका कारण अनेक प्रकारके असात्म्य आहार, विहार आदिका सेवन है। वाग्भटमे भी कहा है कि—"वात आदि दोषही सम्पूर्ण रोगोके मुख्य कारण हैं"। यहॉ शका होतीहै कि "प्रहारआदिसे उत्पन्न हुए आगतुक व्याधियोंके कारण भी वात पित्त आदिमे सभव नही होसक्ते इसकी क्या रीति है?" तहॉ कहते हैं कि जिस प्रकार द्रव्योकी उत्पत्ति होनेके पश्चात् उतने गुणोका योग होताहै, तैसेही आगतुक व्याधियोंकी उत्पत्ति होनेके पश्चात् उनमे भी दोषोका प्रकोप अवश्य होता है, इस कारण इन व्याधियोके भी वात पित्तादिक कारण हैं। चरकने भी कहा है कि "प्रथम आगतुक व्याधि व्यथाके लिये अकेली होकर पश्चात् अपने दोषोमे सबध पाती हैं" ॥ ४२॥

वायुकोपकारणम् ।

नीवारस्त्रिपुटः सतीनचणकः श्यामाकमुद्गाढकी निष्पावश्च मकुष्ठकश्च वरटा मङ्गल्यकः कोदवः॥ यद्द्रव्यं कटुकं सतिक्ततुवरं शीतश्च रूक्षं लघु स्वल्पाशो विषमाशनं निरशनं भुक्ते ह्यजीर्णेऽशनम् ॥ ४३ ॥ भुक्तं जीर्णतरं परिश्रमभरो गर्त्तादिकोष्णं घनं बाहुभ्यां तरणं तरोः प्रपतनं मार्गे गतियानं पदा ॥ दण्डादिप्रहतिस्तथोच्चपतनं धातुक्षयो जागरो मार्गस्यावरणं व्यवायभृशता वातादिवेगाहतिः ॥ ४४॥ अत्यर्थं वमनं विरेचनमतिस्रावोऽधिकश्चासृजो रोगान्मांसविहीनतातिमदनश्चिन्ता च शोको भयम् ॥ वर्षा वै शिशिरो दिनस्य रजनेर्भागौ तृतीयौ घनाः प्राग्वातस्तुहिनं शरीरमरुतो दुष्टेरमी हेतवः ॥ ४५ ॥

नीवारः प्रसाधिकाः तीनी इति लोके । त्रिपुटः खेसरी इति लोके । सतीनः वर्त्तुलकलायः । निष्पावः कोलशिम्बिसदृशफला राजशिम्बिस्तस्या बीजमन्नं भवति । वरटी वराटिका, कुसुम्भबीजम्, वररे इति लोके । मङ्गल्यको मसूरः । विषमाशनम्–

बहुस्तोकमकाले वा भुक्तं तद्विषमाशनम् ॥ ४६ ॥

अतियानं, पादाभ्यामतिचलनम्, तरोः प्रपतनम्, तरोरित्युपलक्षणम् । जागरो रात्रौ । वातादिवेगाहतिः, आदिशब्देन विण्मूत्राश्रुच्छिक्कोद्गारच्छर्दिशुक्रक्षुत्तृषोच्छ्वासनिद्राः संगृह्यन्ते । दिनस्य त्रिधा विभक्तस्य । एवं रजनेश्च । यस्य पुनरुक्तिस्तेन तेन वातस्य अतिदुष्टिर्बोद्धव्या ॥

नीवार (पसाई), मटर, चना, समा, मूँग अरहर, चौरा, मोठ (मोथी) कुसुमके बीज, मसूर, कोदो, चरपरे, कड़वे, कसैले, शीतल, रूक्ष और हलके पदार्थ अल्पभोजन, विषमभोजन (कुसमयमें थोडा वा बहुत भोजन करना), उपवास, भोजनके ऊपर भोजन, पहिला भोजन जीर्ण न होनेपर भोजन, अधिक परिश्रम, गढ्ढे आदिका उल्घना, हाथोंसे पानीमें तैरना, वृक्ष आदिके ऊपरसे गिरना, पैरोंसे अधिक मार्गमें फिरना, लकड़ीका चोट लगना, ऊँचे स्थानसे गिरना, धातुओंका क्षय, रात्रिमें जागना, शोक आदिसे घिरना, अत्यन्त मैथुन, वात, विष्ठा, मूत्र, आँसू, छींक, डकार, वमन, वीर्य, भूख, तृषा, श्वास तथा निद्रा इनके वेगोंका रोकना, अत्यन्त वमन, अत्यन्त विरेचन, रुधिरका अत्यन्त गिरना अथवा अधिक निकालना, रोग होनेसे मांसरहित हो-जाना, अत्यन्त कामदेव, चिन्ता, शोक, भय, वर्षाऋतु, शिशिरऋतु, दिनका तीसरा भाग, रात्रिका तीसरा भाग, बादल, पूर्वदिशाकी वायु और हिम ये सब शरीरकी वायुके कुपित होनेमें कारण हैं। उपरोक्त कारणोंमें जिस जिस कारणकी पुनरुक्ति है उस उस कारणसे वायुका अत्यन्त कोप होताहै ऐसा जानना ॥ ४३–४६ ॥

पित्तकुपितकारणम् ।

कट्वम्लोष्णविदाहितीक्ष्णलवणक्रोधोपवासातपस्त्रीसम्भोगतृपाक्षुधाभिहननव्यायाममद्यादिभिः ॥ भुक्ते जीर्यति भोजने च शरदि ग्रीष्मे तथा प्राणिनां मध्याह्ने च तथार्द्धरात्रिसमये पित्तप्रकोपो भवेत् ॥ ४७ ॥

चरपरे, अम्ल (खट्टे), गरम, विदाही, तीक्ष्ण, और खारी पदार्थ, क्रोध, उपवास, धूप, स्त्रीका सम्भोग, तृषा और भूखका रोकना, व्यायाम, मद्य आदि, अजीर्णमें भोजन, शरदृतु, ग्रीष्मऋतु, मध्याह्न और अर्द्धरात्रिका समय ये सब शरीरमें पित्त कुपित होनेके कारण हैं ॥ ४७ ॥

विदाहिलक्षणम्।

विदाहि द्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात्तथा तृषाम् ॥ हृदि दाहञ्च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥ ४८ ॥

अन्यच्च ।

माषैस्तिलैः कुलत्थैश्च मत्स्यैर्मेषामिषेण

च ॥ गव्येन दधितक्रेण नृणां पित्तं प्रकुप्यति ॥ ४९ ॥

जो पदार्थ खानेके पश्चात् अधिक देरसे पकै, खट्टी डकार आवै, तृषा लगावै और हृदयमे दाह करै, वह विदाही पदार्थ कहाताहै. उडद, तिल, कुलथी, मछली, मेढेका मास, गायका दही और गायकी छाछ, इनसे भी मनुष्योंके पित्तका कोप होताहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

कफकुपितकारणम् ।

गुरुपटुमधुराम्लस्निग्धमाषैस्तिलैश्च द्रवदधिदिननिद्राशीतसर्पिःप्रपूरैः॥ प्रथमदिवसभागे रात्रिभागेऽपि चाद्ये भवति हि कफकोपो भुक्तमात्रे वसन्ते ॥ ५० ॥

प्रथमदिवसभागे त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य प्रथमभागे। एवं रात्रश्चाद्यभागे ।

भारी, खारी, मधुर तथा अम्ल पदार्थ, उडद, तिल, द्रवपदार्थ, दही, दिनमें सोना, शीत, एक स्थानपर बैठे रहना, दिनके तीन भागोमे पहिला भाग, रात्रिका भी पहिला भाग, भोजन करनेके पश्चात् तुरतका समय और वसत ऋतु, ये सब शरीरमे कफके कुपित होनेके कारण है ॥ ५० ॥

एको रोगोऽन्यरोगनिमित्तम् ।

ननु सर्वेषां रागाणां दुष्टा दोषा एव किमन्यदप्यस्तीति संशये चरक आह—
निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपलक्ष्यते ५१
इति रोगस्य निदानार्थकरः रोगोऽपि उपलक्ष्यते दृश्यते । अत्र दृष्टान्तमाह—

तद्यथा ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीयत ॥ रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते ॥ प्लीहाभिवृद्धया जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ ५२ ॥ अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ॥ प्रतिश्यायादथो कासः कासात्सञ्जायते क्षयः ॥ ५३ ॥

अन्ये तु आहुर्मधुकोशे रोगस्य रोगश्चेन्निदानं तथा निदानमित्येव उच्येत, तद्विहाय निदानार्थकर इति वचनमेतद्बोधयति। रोगस्य रोगो निदानार्थकरः निदानकार्यकरणे सहायः । निदानन्तु रक्तपित्तादीन्कतिचिद्रोगान्प्राति ज्वरादिरेव हेतुरिति सिद्धान्तः। अत एव अग्रे स्पष्टमेव आह चरकः। कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वेति । प्रथमस्य रोगस्य ज्वरादेर्यो दुष्टो दोषो हेतुः स एव पश्चाद्भाविनो रक्तपित्तादेरपि रोगस्य हेतुः ॥ सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥ ५४ ॥ इति नियमात् ॥

तत्र यदा रक्तपित्तादेरुपद्रवलक्षण एव योगेन रोगत्वविघातः स्यात्ततः सर्वेषामिति वचनं सामान्यम्। निदानार्थकर इति विशेषवचनात् ॥

"दुष्ट हुए दोषही सम्पूर्ण रोगोके निदान हैं। अथवा अन्य भी कोई निदान हैं ?" ऐसी शका होनेपर उसका उत्तर चरकसे कहतेहैं कि—"एक रोग भी अन्य रोगके निदानका काम करनेवाला होताहै, जैसे कि ज्वरसे रक्तपित्त होताहै और ज्वरसे तथा रक्तपित्तसे श्वास होताहै, दाह बढनेसे जठररोग होताहै और जठरके रोगसे सूजन होतीहै । अर्शसे पेटमे पीडा तथा गुल्म होताहै और जुखामसे खासी तथा खांसीसे क्षय होताहै" मधुकोश नामक ग्रन्थमे कहाहै कि—"जो एक रोग दूसरे रोगको उत्पन्न करताहै वह दूसरे रोगका निदान होताहै" यही कहना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं कहकर निदानका काम करनेवाला होताहै, ऐसा कहा है, इसको बताते हैं कि—'निदानको अपना काम करनेमें रोग सहायक होताहै, परन्तु आप निदानरूप नहीं होता ज्वरमे रक्तपित्त आदि रोग उत्पन्न होतेह वहा ज्वरका निदान होताहै, ऐसा सिद्धान्त है । दुष्ट हुआ जो दोप वह प्रथम उत्पन्न हुए ज्वरआदिका निदान होताहै कारण कि कुपित हुए दोप ही सम्पूर्ण रोगोके निदान हैं, ऐसा नियम है ॥

परन्तु इसका कहना अयोग्य है कारण कि, जिस ज्वरका निदान है वही जो रक्तपित्त आदिका निदान होता होय तो रक्तपित्त आदिके उपद्रवोंके लक्षण ही एकसे होनेमें उनकी रोगता खंडित हुई जाती है, इस कारण कुपित हुए दोष ही सर्व रोगोंके निदान हैं, इस वचनको सामान्य गिनकर 'एक रोग भी अन्य रोगके निदानका काम करनेवाला अर्थात् निदान ही होताहै ' ऐसा अर्थ मानना योग्य है ॥ ५१-५४ ॥

रोगहेतुना रोगविचित्रता ।

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ॥ ५५ ॥

यथा ज्वरो रक्तपित्तमुत्पाद्य स्वयं प्रशाम्यति । ननु यो दोषोद्रेकेण ज्वरो रक्तपित्तमुत्पादितवांस्तस्मिन् सति स तु ज्वरः कथं शाम्यति तत्र व्याधिस्वभाव एव कारणमिति न दोषः ॥

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ॥ ५६ ॥

अन्यो हेत्वर्थमपि कुरुते स्वयञ्च न प्रशाम्यति । यथा प्रतिश्यायः कासं करोति स्वयञ्च न प्रशाम्यति । तथार्शो जठरगुल्मौ करोति स्वयञ्च न निवर्त्तते इति ॥

चरक कहते हैं कि-"कोई रोग दूसरे रोगका निदान रूप होकर आप शान्त होजाताहै" जैसे कि ज्वर रक्तपित्तको उत्पन्न करके आप शान्त होजाता है । यहाँ शका होतीहै कि दोषकी अधिक वृद्धिसे जो ज्वरने रक्तपित्तको उत्पन्न किया, वह रक्तपित्त होनेपर ज्वरकी शांति कैसे होनी चाहिये ? तहाँ कहतेहैं कि, इस विषयमें रोगोंका ऐसा स्वभावही है, ऐसा मानना अर्थात् ऐसा माननेमें कोई दोष नहीं आवेगा । फिर चरक कहते हैं कि "कोई रोग अन्य रोगको उत्पन्न करताहै और उत्पन्न करके आप शांत भी नहीं होता" जैसे कि जुखाम खाँसीको उत्पन्न करताहै और उत्पन्न करके आप शांत नहीं होता, तैसे ही अर्श जठरके रोगको तथा गुल्म रोगको उत्पन्न करें है और आप शांत नहीं होता ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अधिकक्षीणदोषधातुमलानां सुश्रुतोक्तचिकित्सा ।

अत्यन्तकुत्सितावेतौ सदा स्थूलकृशौ नरौ ॥ श्रेष्ठो मध्यशरीरस्तु स्थूलः क्षीणो न पूजितः ॥ ५७ ॥ कर्षयेद् बृंहयेच्चापि सदा स्थूलकृशौ नरौ ॥ रक्षणञ्चापि मध्यस्य कुर्वीत कुशलो भिषक् ॥ ५८ ॥

अन्यच्च ।

क्षपयेद् बृंहयेच्चापि दोषधातुमलान्भिषक् ॥ नरो रोगान्वितो यावद्रोगेण रहितो भवेत् ॥ ५९ ॥

क्षपयेदतिप्रवृद्धान्दोषधातुमलांस्तत्र क्षण्यहेतुभिरौषधान्नविहारैर्ह्रासयित्वा शर्मी कुर्यात् । बृंहयेत्क्षीणान्दोषादींस्तद्वृद्धिहेतुभिरौषधान्नविहारैर्वर्द्धयित्वा शमीकुर्यात् ॥

अस्वस्थो येन विधिना स्वस्थो भवति मानवः ॥ तमेव कारयेद्वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम् ॥ ६० ॥

सुश्रुत कहतेहैं कि-"सर्वदा स्थूल (मोटा) और कृश (पतला) शरीरवाला मनुष्य उत्तम नहीं है, मध्यम शरीरवाला मनुष्य श्रेष्ठ है, मोटा मनुष्य और कृश मनुष्य दोनों उत्तम नहीं है, सदा विद्वान् वैद्य स्थूल मनुष्यके शरीरमें कर्षण क्रिया करै, कृश मनुष्यके शरीरमें बृंहण क्रिया (चिकित्सा) करै और मध्यम शरीरवाले मनुष्यको जैसाका तैसाही रहने देवै" फिर कहा है कि "रोगी मनुष्य जबतक रोग मुक्त हो तबतक वैद्य दोषोंका, धातुओंका और मलोंका कर्षण करै और बृंहण करै" कर्षण करै अर्थात् अत्यत वृद्धिको प्राप्त हुए दोषोंको, धातुओंको और मलोंको जो क्षीण करै ऐसी औषधियोंसे, अन्नोंसे तथा विहारोंसे क्षीण करके सम करै । बृंहण करै अर्थात् क्षीण हुए दोष आदिको जो वृद्धि दे, ऐसी औषधियोंसे, अन्नोंसे तथा विहारोंसे बढाकर सम करै । अस्वस्थ मनुष्य जिस विधिसे स्वस्थ होय वही विधि वैद्य करै कारण कि-सर्वदा सबको स्वस्थताकी ही इच्छा होती है ॥ ५७-६० ॥

अथ स्वस्थलक्षणम्।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः॥ प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥ ६१॥

समक्रियः शरीरानुरूपकर्मा। आत्मा शरीरम्। तन्त्रान्तरेऽपि-

विण्मूत्राखिलदोषधातुसमताकांक्षान्नपाने रुचिर्भुक्तं जीर्यति पुष्टये परिणतिः स्वप्नावबोधैः सुखम्॥ गृह्णीतो विषयान्यथास्वमुचितान्वृत्तिं मनोवृत्तितः स्वस्थस्याभिहितं चतुर्दशविधं जन्तोरिदं लक्षणम्॥ ६२॥

रुचिः शरीरकान्तिः। ननु अहर्निशर्तुभुक्तवस्तु दोषाणां वृद्धेः कथं समदोषता? उच्यते। अहोरात्रप्रथमभागादिषु तत्तद्दोषवृद्धेः स्वस्थवृत्तोक्तविधिभिरुपशमात्समदोषतेति न दोषः। किञ्च-

यत्समत्वं हि दोषाणां भिषग्भिरवधार्यते॥ न तत्स्वास्थ्यं विना वक्तुं शक्यमन्येन हेतुना॥ ६३॥

तेन समदोषस्वस्थयोर्लक्षणमन्योन्यापेक्षया स्वस्थः समदोषः स्वस्थेभ्यो हितं च तद्दोषधातुमलानां स्वप्रमाणस्थितानां साम्यानुवृत्तिहेतुर्यदव्यापन्नं स्वस्थानुवृत्तिं करोति। ऋतुचर्याध्याये सेव्यत्वेनोक्तम्। तथा मात्राशितीयेऽध्याये रक्तशालिषष्टिकयवगोधूमजाङ्गलमांसजीवन्तीशाकादिमोदकक्षीरादि। तथा यदोजस्करं रसायनं वाजीकरणं सर्वदा शीलनीयत्वेन निर्दिष्टम्॥

जिस मनुष्यके दोष, अग्नि, मल और धातु, ये समान हों, शरीरसे जैसा चाहिये तैसा काम होताहो. और शरीर, इन्द्रिये तथा मन प्रसन्न रहतेहो वह मनुष्य स्वस्थ (आरोग्य) कहाताहै। अन्य ग्रथोंमे भी कहा है कि "विष्ठा, मूत्र, सम्पूर्ण दोष, सम्पूर्ण धातुओंकी समता, अन्नकी इच्छा, जलकी इच्छा, शरीरकी काति, खाये हुए अन्नका पचना, अन्नपुष्टि करै ऐसा परिणाम होना, सुखपूर्वक शयन, सुखपूर्वक जागना, योग्य विषयोका यथार्थ रीतिसे ग्रहण होना, हर्ष (खुशी) और मनकी निर्मलता, ये चौदह लक्षण जिसमे हो उसको स्वस्थ जानना।" यहाँ शंका होतीहै कि—सर्वदा मनुष्योंको दिनका, रात्रिका, ऋतुओका और भोजनका सबध होनेसे दोष बढे ही करते हैं, इसकारण दोषोंकी समता कैसेहो? तहाँ कहतेहैं कि—दिन, रात्रि, ऋतु तथा भोजन, इनके प्रथम भाग आदिमें उन्ही उन्ही दोषोकी जो वृद्धि होतीहै उनकी स्वस्थता रहनेके आचरणमें कहे प्रकारसे उपशम कियाजाय तौ दोषोंकी समता होतीहै इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं। फिर भी कहाहै कि "जिसको वैद्य दोषोकी समता विचारते हैं वह समता स्वस्थताके विना दूसरे हेतुसे नही कही जासक्ती" इससे सिद्ध होताहै कि "समदोषके लक्षणको लेकर स्वस्थता प्राप्त होतीहै और स्वस्थके लक्षणको लेकर समदोषता प्राप्त होतीहै इसकारण जो स्वस्थ हो वह समदोष कहाताहै और जो समदोष हो वह स्वस्थ कहाताहै॥ ६१-६३॥

अथ दोषधातुमलवृद्धिनिदानम्।

तत्तद्वृद्धिकराहारविहारातिनिषेवणात्॥ दोषधातुमलानां हि वृद्धिरुक्ता भिषग्वरैः॥ ६४॥

अतिवृद्धानां तेषां लक्षणान्याह।

वाते वृद्धे भवेत्कार्श्यं पारुष्यं चोष्णकामिता॥ गाढं मलं बलश्चाल्पं गात्रस्फूर्तिविनिद्रता॥ ६५॥ विण्मूत्रनेत्रगात्राणां पीतत्वं क्षीणमिन्द्रियम्॥ शीतेच्छातापमूर्च्छाः स्युः पित्ते वृद्धेऽल्पमूत्रता॥ ६६॥ विडादिशौक्ल्यं शीतत्वं गौरवश्चातिनिद्रता। सन्धिशैथिल्यमुत्क्लेदो मुखसेकः कफेऽधिके॥ ६७॥ रसे वृद्धेऽन्नविद्वेषो जायते गात्रगौरवम्॥ लालाप्रसेकश्छर्दिश्च मूर्च्छासादो भ्रमः कफः॥ ६८॥ प्रवृद्धं रुधिरं कुर्याद्गात्रमारक्तवर्णकम्॥ लोचनञ्च तथा रक्तं शिराः पूरयतेऽपि च॥ ६९॥

अन्यच्च ।

रक्तन्तु कुरुते वृद्धं विसर्पप्लीहविद्रधीन् ॥ कुष्ठं वातास्रकं गुल्मं शिरापूर्णत्वकामले ॥ ७० ॥ गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते ॥ व्यङ्गाग्निसादसंमोहो रक्तत्वङ्नेत्रमूत्रता: ॥७१॥ गुदमेढ्रास्यपाकार्शःपिडकामशकास्तथा ॥ इन्द्रलुप्ताङ्गमर्दासृग्दरास्तापं करांघ्रिषु ॥ ७२ ॥ शमयेद्रक्तवृद्धद्युत्थान्रक्तस्रुतिविरेचनैः ॥ मांसं वृद्धन्तु गण्डोष्ठस्फिगुपस्थोरुबाहुषु ॥ ७३ ॥ जंघयोः कुरुते वृद्धिं तथा गात्रस्य गौरवम् ॥ उदरे पार्श्वयोर्वृद्धिः कासश्वासादयस्तथा ॥ दौर्गन्ध्यं स्निग्धता गात्रे मेदोवृद्धौ भवेदिति ॥ ७४ ॥

अन्यच्च–

प्रवृद्धं कुरुते मेदः श्रममल्पेऽपि चेष्टिते ॥ तृट्स्वेदगलगण्डोष्ठरोगमेहादिजन्म च ॥ ॥ ७५ ॥ श्वासं स्फिग्जठरग्रीवास्तनानां लम्बनं तथा ॥ वृद्धान्यस्थीनि कुर्वन्ति अस्थीन्यन्यानि चास्थिषु ॥ ७६ ॥ आचरन्ति तथा दन्तान्विकटान्महतरतथा ॥ मज्जा वृद्धः समस्ताङ्गनेत्रगौरवमाचरेत् ॥ ७७ ॥ शुक्राश्मरी शुक्रवृद्धौ शुक्रस्यातिप्रवर्त्तनम ॥ मलप्रवृद्धावाटोपो जायते जठरे व्यथा ॥ ७८ ॥ मूत्रे वृद्धे मुहुर्मूत्रमाध्मानं बस्तिवेदना ॥ स्वेदे वृद्धे तु दौर्गन्ध्यं त्वचि कण्डूश्च जायते ॥७९॥ आर्तवातिप्रवृत्तिः स्याद्दौर्गन्ध्यं चार्तवे भवेत् ॥ अङ्गमर्दश्च जायेत लिंगं स्यादार्तवेऽधिके ॥ ८० ॥ स्तनयोरतिपीनत्वं क्षीरस्रावो मुहुर्मुहुः ॥ तोदश्च तत्र भवति स्तन्याधिक्यस्य लक्षणम् ॥ ८१ ॥ उदरादिप्रवृद्धिस्तु वृद्धे गर्भेऽभिजायते ॥ स्वेदश्च गर्भवत्याः स्यात्प्रसवे व्यसनं महत् ॥ ८२ ॥

"वातकी अत्यन्त वृद्धि" हुई हो तो दुर्बलता, कठोरता, गरमीकी इच्छा, मलकी गाढता (करड़ापन), अल्पबल, शरीरका फड़कना और निद्राका नहीं आना ये होतेहैं. "पित्तकी अत्यन्त वृद्धि" हुई हो तो मल, मूत्र, नेत्र तथा शरीरमे पीलापन होताहै, इन्द्रियें क्षीण होतीहैं, शीतकी इच्छा होतीहै, ताप तथा मूर्च्छा होतीहै और मूत्र अल्प होजाताहै। "कफकी अत्यन्त वृद्धि" हो तो मलादिकमे श्वेतपन, शीत तथा शरीरमें भारीपन होताहै, निद्रा अधिक आतीहै, सन्धियोमे शिथिलता तथा ग्लानि होतीहै और मुखसे पानी बहताहै ॥ ६४–६७ ॥

"रसकी अत्यन्त वृद्धि" होय तो अन्नमें द्वेष तथा शरीरमें गुरुता होतीहै, लार झरतीहै, वमन, मूर्च्छा, शरीरमे पीडा, भ्रम और कफकी वृद्धि होतीहै। "रुधिरकी अत्यन्त वृद्धि" होय तो शरीर तथा नेत्र लाल होजातेहैं और नसें पूर्ण होजातीहैं । और भी कहाहै कि, रुधिर अत्यन्त बढा हो तो विसर्प, प्लीहा, विद्रधि, कुष्ठ, वातरक्त, गुल्म, नसोंकी परिपूर्णता, कामला, शरीरकी गुरुता, निद्रा, मद, दाह, व्यङ्ग (झाईं), अग्निकी मन्दता, मोह, त्वचा तथा मूत्रमें लाली होना, गुदाका पकना, लिंगका पकना, मुखका पकना, बवासीर, फुन्सी, मस्से, इन्द्रलुप्त रोग, अगोंका टूटना, प्रदर, हाथमें ताप तथा पावोंमे ताप होताहे। रुधिर बढनेसे जो रोग उत्पन्न हुए हो उनको रुधिर निकालने और रेच देनेसे शान्त करे। "मांस अत्यन्त बढा होय" तो कपोल, ओष्ठ, कूले, लिंग, जंघा, भुजा और पीडरी बढती हैं तथा शरीरमे गुरुता होतीहै । "मेदा अत्यन्त बढी" हो तो उदर तथा पसवाडोंकी वृद्धि होतीहै, खाँसी, श्वास, दुर्गन्धता और शरीरमे स्निग्धता होतीहै, फिर भी कहा है कि, मेदा अत्यन्त बढी होय तो किंचित् परिश्रम करनेसे अधिक परिश्रम होताहै, तृषा अत्यन्त लगतीहै, पसीना बहुत आताहै, गलगण्ड तथा होंठके रोग होते है, प्रमेह आदि भी उत्पन्न होतेहैं, श्वास होताहै और कूले, पेट, गरदन तथा स्तन लंबे होजातेहैं। "हड्डी अत्यन्त बढी" हो तो हड्डियोंमे दूसरी हड्डियें उत्पन्न होजातीहैं और दाँत विकट तथा मोटे होजातेहैं।

"मज्जा अत्यत बढी हो तौ" सर्व अग और नेत्रोमे गुरुता होजातीहै। "वीर्य अत्यत बढा हो तो" शुक्राश्मरी नामक पथरी रोग होताहै और वीर्यकी अधिक प्रवृत्ति होती-है॥ ६८-७७॥

"मल अत्यत बढरहा हो तौ" अफारा और पेटमे पीडा होतीहै। "मूत्र अत्यत बढरहा हो तौ" वारवार मूत्र आताहै, मूत्राशयमे अफारा और पीडा होतीहै। "पसीना अत्यत बढरहा हो तौ" दुर्गन्धता और त्वचा (चमडी) मे खुजली होतीहै। "स्त्रियोंके रजकी अत्यत वृद्धि हो तौ" रजकी अत्यत प्रवृत्ति होतीहै, रजमें दुर्गन्ध आती-है और अग टूटतेहैं। "स्त्रियोंका दूध अत्यंत बढरहा हो तौ" स्तन अत्यत पुष्ट होतेहै, दुग्ध वारवार झरताहै, और स्तनोंमे पीडा होतीहै। "गर्भवती स्त्रियोका गर्भ अधिक बढगया हो तौ" उदर आदि अग बढजाते हैं, पसीना बहुत आताहै और प्रसवके समयमे अधिक कष्ट होते हैं॥ ७८-८२॥

अथातिवृद्धदोषधातुमलक्षयविधिः।

तत्तद्ध्रासकराहारविहारपरिषेवणात्॥ दोषधातुमलानां हि ह्रासो निगदितो नृणाम्॥ ८३॥ पूर्वः पूर्वोऽतिवृद्धत्वाद्वर्द्धयेद्धि परस्परम्॥ तस्मादतिप्रवृद्धानां धातूनां ह्रसनं हितम्॥ ८४॥

दोष, धातु और मलोको हीन करनेवाले आहार विहारोको भली भाँति सेवन करनेसे मनुष्योंके दोष, धातु और मल बलहीन होतेहैं, इनमे दोष अत्यत बढकर धातुओंको बढाते हैं और धातुएँ बढकर मलोंको बढावे हैं, इस कारण अत्यत बढी हुई धातुओंको अल्प करना हितकारी है॥ ८३॥ ८४॥

अथ दोषधातुमलक्षयनिदानम्।

असात्म्यान्नसदाक्रोधशोकचिन्ताभयश्रमैः॥ अतिव्यवायानशनात्यर्थसंशोधनैरपि॥ ८५॥ वेगानां धारणाच्चापि साहसादभिघाततः॥ दोषाणामथ धातूनां मलानाञ्च-भवेत्क्षयः॥ ८६॥

विरुद्ध प्रकृतिवाला, अन्न, सर्वदा क्रोध, शोक, चिंता, भय, श्रम, अत्यन्त मैथुन, उपवास, अत्यन्त रेचन (दस्तावर) आदि, दस्त आदिके वेगोंका रोकना, साहस और प्रहार आदि अभिघात, इनसे दोषोका धातुओंका और मलोका क्षय होताहै॥ ८५॥ ८६॥

अथ क्षीणदोषादिलक्षणम्।

वातक्षयेऽल्पचेष्टत्वं मन्दवाक्यं विसंज्ञता॥ पित्तक्षयेऽधिकः श्लेष्मा वह्निमान्द्यं प्रभाक्षयः॥ ८७॥ सन्धयः शिथिला मूर्च्छा रौक्ष्यं दाहः कफक्षये॥ हृत्पीडा कण्ठशोषौ त्वक् शून्या तृट् च रसक्षये॥ ॥ ८८॥ शिराः श्लथा हिमा मूर्च्छा त्वक्पारुष्यं क्षयेऽसृजः॥ गण्डौष्ठकन्धरास्कन्धवक्षोजठरसन्धिषु॥ ८९॥ उपस्थशोथपिण्डीषु शुष्कता गात्ररूक्षता॥ तोदो धमन्यः शिथिला भवेयुर्मांससंक्षये॥ ९०॥ प्लीहाभिवृद्धिः सन्धीनां शून्यता तनुरूक्षता॥ प्रार्थना स्निग्धमांसस्य लिंगं स्यान्मेदसः क्षये॥ ९१॥ अस्थिशूलं तनौ रौक्ष्यं नखदन्तत्रुटिस्तथा॥ अस्थिक्षये लिंगमेतद्वैद्यैः सर्वैरुदाहृतम्॥ ९२॥ शुक्राल्पत्वं पर्वभेदस्तोदः-शून्यत्वमस्थिनि॥ लिंगान्येतानि जायन्ते नराणां मज्जसंक्षये॥ ९३॥ शुक्रक्षये रतेऽशक्तिर्व्यथा शेफसि मुष्कयोः॥ चिरेण शुक्रसेकः स्यात्सेके रक्ताल्पशुक्रता॥ ९४॥

"वायु क्षीण होनेसे" शरीरकी चेष्टा अल्प होतीहै, अल्प बोल सक्ताहै और विसज्ञता (सज्ञारहितता) होतीहै। "पित्तके क्षय होनेसे" कफ अधिक होताहै, अग्निमद होजातीहै और कातिका क्षय होताहै। "कफ क्षीण होय तौ" संधियोंमे शिथिलता होतीहै, गला सूख-जाताहै, त्वचा रूख जातीहै और तृषा लगती है। "रुधिर क्षीण होय तौ" नसे शिथिल तथा शीतल होतीहै, मूर्च्छा आतीहै और त्वचा कठोर होजातीहै। "मास क्षीण होनेसे" कपोल, होठ, गरदन, खभे, उदर, संधियें, लिग और पाँवकी पींडरी रूखजातीहैं, शरीर रूक्ष होजाताहै, पीडा होतीहै और नाडिये शिथिल होजाती हैं। "मेदा

क्षीण होनेसे" प्लीहा बढजातीहै, सन्धियें शून्य होजातीहैं, शरीरमे रूक्षता और स्नेहयुक्त मास भक्षणकी इच्छा होती है । "अस्थि क्षीण होनेसे" अस्थियोंमे शूल होताहै, शरीर रूक्ष होताहै और नख तथा दाँत टूटने लगतेहैं, अस्थि क्षीण होनेके ये चिह्न सब वैद्योने कहेहैं, "मज्जा क्षीण होनेसे' वीर्यकी अल्पता, संधियोंका टूटना, पीडा और अस्थियोमें शून्यता, ये चिह्न होते हैं । "वीर्यका क्षय होनेसे' मैथुनमें अशक्ति होतीहै, लिंगमे तथा अण्डकोषोमें पीडा होतीहै, वीर्य देरसे स्खलित होता है और अल्प तथा लाल होजाता है ॥ ८७–९४ ॥

अथोजःक्षयनिदानम् ।

ओजः संक्षीयते कोपाच्चिन्ताशोकश्रमादिभिः ॥ रूक्षतीक्ष्णोष्णकटुकैः कर्षणैरपरैरपि ॥ ९५ ॥

कोप, चिन्ता, शोक, श्रम आदि, रूक्ष, तीक्ष्ण, गरम तथा चरपरे पदार्थ और कर्षण क्रियासे भी ओजका क्षय होताहै ॥ ९५ ॥

अथोजःक्षीणलक्षणम् ।

बिभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं चिन्तयेद्व्यथितेन्द्रियः ॥ अभ्युत्थायोन्मना रूक्षः क्षामः स्यादोजसः क्षये ॥ ९६ ॥

ओज क्षीण होनेसे मनुष्य वलहीन होजाताहै, वारवार भयभीत होताहै, चिंता तथा इन्द्रियोंमे पीडा होती है, कांतिरहित होजाताहै, मनमें भयपावे, रूक्ष तथा दुर्वल होजाताहै ॥ ९६ ॥

अथ मल [विष्ठा] क्षीणलक्षणम् ।

पुरीषस्य क्षये पार्श्वे हृदये च व्यथा भवेत् ॥ सशब्दस्यानिलस्योर्द्धगमनं कुक्षिसंवृतिः ॥ ९७ ॥

विष्ठा क्षीण होनेसे पसली तथा हृदयमे पीडा होतीहै, वायु शब्द करता २ ऊपरको चलताहै और कोखै सुकड जाती है ॥ ९७ ॥

अथ मूत्रादिक्षयलक्षणम् ।

मूत्रक्षयेऽल्पमूत्रत्वं वस्तौ तोदश्च जायते॥ स्वेदनाशे त्वचो रौक्ष्यं चक्षुषोरपि रूक्षता ॥ ९८ ॥ स्तब्धाश्च रोमकूपाः स्युर्लिङ्गं स्वेदक्षये भवेत् ॥ आर्तवस्य स्वकाले चाभावस्तस्याल्पताऽथ वा ॥ ९९ ॥ जायते वेदना योनौ लिङ्गं स्यादार्तवक्षये ॥ अभावः स्वल्पता वा स्यात्स्वमस्य भवतस्तथा ॥ १०० ॥ म्लानौ पयोधरावेतल्लक्षणं स्तन्यसंक्षये ॥ अनुन्नतो भवेत्कुक्षिर्गर्भस्यास्पन्दनं तथा ॥ इति गर्भक्षये प्राज्ञैर्लक्षणं समुदाहृतम् ॥ १०१ ॥

मूत्र क्षीण होनेसे मूत्र अल्प होजाताहै और मूत्राशयमें पीडा होतीहै । "स्वेद (पसीना) क्षीण होनेसे" त्वचा रूखी होजातीहै, नेत्र भी रूक्ष होजातेहै और रोमोंके छिद्र स्तब्ध होजातेहैं । "स्त्रियोंके रज क्षीण होनेसे" समयानुसार नहीं आता, अल्प होजाताहै और योनिमें पीडा होतीहै । "स्त्रियोंके दूध क्षीण होनेसे" दूधका अभाव होजाताहै, यदि आवे तौ अल्प आताहै और स्तन मुरझा जाताहै । "स्त्रियोंका गर्भ क्षीण होनेसे" पेट नीचा होजाताहै और गर्भ पेटमे फरकता नही है, ये लक्षण विद्वानोंने कहे हैं ॥ ९८–१०१ ॥

अथ क्षीणधातुवर्द्धनविधिः ।

तत्तत्संवर्द्धनाहारविहारातिनिषेवणात् ॥ तत्तत्प्राप्य नरः शीघ्रं तत्तत्क्षयमपोहति ॥ ओजस्तु वर्द्धते नृणां सुस्निग्धैः स्वादुभिस्तथा ॥ वृष्यैरन्यैर्विशेषात्तु क्षीरमांसरसादिभिः ॥ १०३ ॥

अन्यच्च ।

दोषधातुमलक्षीणो बलक्षीणोऽपि मानवः ॥ तत्तत्संवर्धनं यत्तदन्नपानं प्रकांक्षति ॥ १०४ ॥ यद्यदाहारजातन्तु क्षीणः प्रार्थयते नरः ॥ तस्यतस्य स लाभेन तत्तत्क्षयमपोहति ॥ १०५ ॥

धातु, दोष, तथा मलोंको बढानेवाले आहार विहारोंका अत्यंत सेवन करनेसे उनकी प्राप्ति होनेपर तुरन्त क्षीणता नष्ट होजातीहै । भली भाँति स्नेह

करके युक्त, मधुर और मैथुनकी शक्तिको बढानेवाले, तथा स्वादिष्ठ आहारोंसे मनुष्योंका ओज बढताहै और उसमें भी दूध तथा मांसरस आदिके उपयोगसे अत्यत बढताहै। और भी कहा है कि–जिसके दोष, धातु, मल तथा बल क्षीण होगये हो वह मनुष्य उन्ही उन्ही पदार्थोंको बढानेवाले अन्न पानोंकी इच्छा करता है। धातु आदिकी क्षीणता पायेहुए मनुष्यको जिस जिस आहारकी इच्छा होय वह वह आहार मिलनेसे धातु आदिका क्षय नष्ट होजाताहै ॥ १०२–१०५ ॥

अथ वातादिक्षीणतायां वस्त्वभिलाषा।
कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च ॥ यवमुद्गप्रियंगूश्च वातक्षीणोऽभिकांक्षति १०६ तिलमाषकुलत्थादिपिष्टान्नविकृतिं तथा ॥ मस्तुशुक्ताम्लतक्राणि काञ्जिकञ्च तथा दधि ॥ १०७ ॥ कट्वम्ललवणोष्णानि तीक्ष्णं क्रोधं विदाहि च ॥ समयं देशमुष्णञ्च पित्तक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १०८ ॥ मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च ॥ दधि क्षीरं दिवास्वप्नं कफक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १०९ ॥

जिसकी वात क्षीण हुई हो वह मनुष्य कसैले, चरपरे, कडवे, रूक्ष, शीतल तथा हलके पदार्थ, जौ, मूँग और कंगनी, इनकी इच्छा करताहै ॥ १०६ ॥ जिसका पित्त क्षीण हुआ हो वह मनुष्य–तिल, उडद, कुलथी आदि पिसेहुए अन्नका विकार, दहीकी मलाई, सिरका, अम्ल-छाछ, कॉजी, दही, चरपरे, अम्ल, खारी, गरम तथा तीक्ष्ण पदार्थ, क्रोध, विदाही पदार्थ, उष्णकाल और गरम प्रदेश, इनकी इच्छा करता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

जिसका कफ क्षीण हुआ हो वह मनुष्य–मधुर, स्निग्ध, शीतल, खारी, अम्ल तथा भारी पदार्थ, दही दूध, और दिनमें शयन, इनकी इच्छा करताहै ॥ १०९ ॥

रसक्षीणो नरः कांक्षत्यन्धोऽतिशिशिरं मुहुः॥ रात्रिनिद्रां हिमं चन्द्रं भोक्तुञ्च मधुरं रसम् ॥ ११० ॥ इक्षुं मांसरसं मन्थं मधुसर्पिर्गुडोदकम् ॥ द्राक्षादाडिमशुक्तानि सस्नेहलवणानि च ॥ रक्तसिद्धानि मांसानि रक्तक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १११ ॥

जिसका रस क्षीण हुआ हो वह मनुष्य वारवार अत्यत शीतल जल, रात्रिमें निद्रा, हिम, चन्द्रमा, मधुर रस, ईख, मांसका रस, मन्थ, शहद, घी और गुडयुक्त जलकी इच्छा करताहै। जिसका रुधिर क्षीण होगया हो वह मनुष्य दाख अथवा दाडिमका सिरका, स्नेहयुक्त तथा लवणयुक्त पदार्थ और रुधिरमें पकायेहुए मासकी इच्छा करताहै ॥ ११० ॥ १११ ॥

अन्नानि दधिसिद्धानि खांडवांश्च बहूनपि॥ स्थूलक्रव्यादमांसानि मांसक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११२ ॥

खांडवा मधुराम्लादिरससंयोगपाचिताः गुडावप्रभृतयः ॥

मेदःसिद्धानि मांसानि ग्राम्यानूपौदकानि च॥ सक्षाराणि विशेषेण मेदःक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११३ ॥ अस्थिक्षीणस्तथा मांसं मज्जास्थिस्नेहसंयुतम् ॥ स्वाद्वम्लसंयुतं द्रव्यं मज्जाक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११४ ॥

जिसका मास क्षीण होगया हो वह मनुष्य दहीमें पकाया हुआ अन्न, मधुर तथा खारी आदि रसोंके सयोगसे पकाये हुए पदार्थ और मासका भक्षण करनेवाले मोटे प्राणियोंके मासकी इच्छा करताहै ॥ ११२ ॥

जिसकी मेदा क्षीण होगई वह मनुष्य मेदामें पकाये हुए ग्राम्य, आनूप तथा जलचर प्राणियोंके मासकी और विशेष करके खारी पदार्थोंकी इच्छा करताहै ॥ ११३ ॥

जिसकी अस्थियें क्षीण होगई हो वह मनुष्य मज्जासे तथा अस्थियोंके स्नेहसे सयुक्त मासकी और जिसकी मज्जा क्षीण होगई हो वह मधुर तथा अम्ल रसवाले पदार्थोंकी इच्छा करताहै ॥ ११४ ॥

शिखिनः कुक्कुटस्याण्डं हंससारसयोस्तथा ॥ ग्राम्यानूपौदकानाञ्च शुक्रक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११५ ॥

जिसका वीर्य क्षीण होगया हो वह मनुष्य मोर, मुरगा, हस, सारस, ग्रामके पक्षी, आनूप और जलमें रहनेवाले पक्षी, इनके अंडोंकी इच्छा करताहै ॥ ११५ ॥

यवान्नं यवकान्नञ्च शाकानि विविधानि च ॥ मसूरमाषयूषञ्च मलक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११६ ॥

जिसकी विष्ठा क्षीण होगई हो वह मनुष्य जौं, सूक्ष्म गेहूं अनेक प्रकारके शाक और मसूर तथा उडदका यूप इनकी इच्छा करताहै ॥ ११६ ॥

पेयमिक्षुरसं क्षीरं सगुडं बदरोदकम् ॥ मूत्रक्षीणोऽभिलषति त्रपुसैर्वारुकाणि च ॥ ११७ ॥

जिसका मूत्र क्षीण होगया हो वह मनुष्य पीनेके पदार्थ ईखका रस, दूध, गुडयुक्त बेरका जल, खीरा और ककडी, इनकी इच्छा करताहै ॥ ११७ ॥

अभ्यङ्गोद्वर्त्तने मद्यं निवातशयनासने ॥ गुरु प्रावरणं चैव स्वेदक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ॥ ११८ ॥

जिसका स्वेद क्षीण होगया हो वह मनुष्य तैलादिकका अभ्यंग (मालिस), उबटन, मद्य, पवन रहितस्थानमें शयन, तथा बैठना और भारी वस्त्रोंकी इच्छा करताहै ॥ ११८ ॥

कट्वम्ललवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ फलशाकानि पानानि स्त्री कांक्षत्यार्त्तवक्षये ॥ ११९ ॥

जिसका रज क्षीण होगया हो वह स्त्री–चरपरे, खट्टे, खारी, गरम, विदाही और गुरुतायुक्त पदार्थ, फलोंका शाक तथा अन्न, पानोंकी इच्छा करती है ॥ ११९ ॥

सुराशाल्यन्नमांसानि गोक्षीरं शर्करां तथा ॥ आसवं दधि हृद्यानि स्तन्यक्षीणाऽभिवांछति ॥ १२० ॥

जिसका दूध क्षीण होगया हो वह स्त्री–मदिरा, चावल, मांस, गायका दूध, खाँड, आसव, दही और हृदयको प्रिय मालूम हो ऐसे अन्नादिककी इच्छा करती है ॥ १२० ॥

मृगाजाविवराहाणां गर्भान्वाञ्छति संस्कृतान् ॥ वसाशूल्यप्रकारादीन्भोक्तुं गर्भपरिक्षये ॥ १२१ ॥

जिसका गर्भ क्षीण होगया हो वह स्त्री–मृग, बकरा, मेंढा, सुअर इनके पके हुए गर्भकी, चरबीकी, तथा लोहके कांटेसे पकाये हुए मांस आदि खानेकी इच्छा करती है ॥ १२१ ॥

अथ सुश्रुतोक्तबललक्षणम् ।

रसादिशुक्रपर्य्यन्तं धातुपुष्टिनिमित्तकम् ॥ चेष्टासु पाटवं यत्तु बलं तदभिधीयते १२२॥

सुश्रुत कहतेहैं कि–रससे लेकर वीर्यपर्यन्त सम्पूर्ण धातुएँ पुष्ट होनेके लिये चेष्टा करनेमें शरीरकी जो समर्थता है वह बल कहाताहै ॥ १२२ ॥

अथ बलक्षयनिदानम् ।

अभिघाताद्भयात्क्रोधाच्चिन्तया च परिश्रमात् ॥ धातूनां संक्षयाच्छोकाद्बलं संक्षीयते नृणाम् ॥ १२३ ॥

अभिघात (चोट) से, भयसे, क्रोधसे, चिंतासे, परिश्रमसे, धातुओंके क्षयसे और शोकसे मनुष्योंका बल क्षीण होताहै ॥ १२३ ॥

अथ बलक्षयलक्षणम् ।

गौरवं स्तब्धता गात्रे मुखम्लानिर्विवर्णता ॥ तन्द्रा निद्रा वातशोथो बलव्यापत्तिलक्षणम् ॥ १२४ ॥

शरीरमें गुरुता, स्तब्धता, मुखका मुरझाना, वर्णका विगडना, तन्द्रा, निद्रा और वातसम्बन्धी सूजन, ये बलके क्षयके लक्षण हैं ॥ १२४ ॥

अथ बलवृद्धिनिदानम् ।

दोषसाम्यकरं यत्तु वह्निसाम्यकरं च यत् ॥ धातुपुष्टिकरं द्रव्यं बलं तदभिवर्द्धयेत् १२५

जो पदार्थ दोषोंकी तथा अग्निकी समता करनेवाला है और धातुओंको पुष्ट करताहै वह पदार्थ बलको बढाते है ॥ १२५ ॥

अथ बलाबललक्षणम् ।

कृशोऽपि बलवान्कश्चित्स्थूलोऽप्यल्पबलो यतः ॥ तस्माच्चेष्टापटुत्वेन बलवंतं विदुर्बुधाः ॥ १२६ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचिते श्रीभावप्रकाशे पूर्वखण्डे षष्ठ प्रकरणम् ।

कोई मनुष्य शरीरमें दुर्बल होनेपर भी बलवान् होता है और कोई मनुष्य शरीरमें मोटा होनेपर भी अल्प बलवाला होताहै, इसकारण विद्वान् वैद्योंने निश्चय किया है कि, शरीरकी हाल चाल आदि चेष्टा करनेमें जो मनुष्य समर्थ हो वही बलवान् होताहै ॥ १२६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे मुरादाबादनिवासिमाथुरवैश्यवंशोद्भवकविवरलालाशालिग्रामवैश्यकृताया वैद्यसजीविनीभाषाटीकाया षष्ठप्रकरण सम्पूर्णम् ।

इति पूर्वखण्डं समाप्तम् ।

॥ श्रीवेंकटेशाय नमः ॥







अथ भावप्रकाशः ।

भाषाटीकासमेतः

मध्यखण्डम् २.

अथ ज्वराधिकारः ।

यतः समस्तरोगाणां ज्वरो राजेति विश्रुतः ॥ अतो ज्वराधिकारोऽत्र प्रथमं लिख्यते मया ॥ १ ॥

ज्वर सम्पूर्ण रोगोका राजा है ऐसा कहाहै इस कारण मैं सबसे पहिले यहाँ ज्वराधिकार लिखताहूँ ॥ १ ॥

अथ ज्वरोत्पत्तिः ।

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः ॥ ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसंघातागन्तुजः स्मृतः ॥ २ ॥

अस्यायमर्थः—दक्षकर्तृको योऽपमानः तेन संक्रुद्धो यो रुद्रः, तस्य यो निःश्वासः, तस्मात्सम्भव उत्पत्तिर्यस्य स ज्वरः । क्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भूतत्वेन ज्वरः स्वभावात्पैत्तिक इति बोध्यते । यत उक्तं चरकेण-क्रोधात्पित्तमित्यादि । तेन सर्वज्वरेषु पित्तोपशमकारिणी चिकित्सा कर्त्तव्या । अत एव आह वाग्भटः—

उष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्युष्मणा विना ॥ तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् ॥ ३ ॥

रुद्रसम्भूतत्वेन ज्वरस्य दैवतात्मकत्वात्पूजार्हत्वं च उपदर्शितम् । अत एव वैदेहः—

ज्वरः सम्पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यतीति ॥

सुश्रुतमे लिखा है कि—"दक्ष प्रजापतिके अपमान करनेसे क्रोधित हुए महादेवजीका जो श्वास निकला उसीसे ज्वर उत्पन्न हुआ है । ज्वर, कुपितहुए महादेवजीके श्वाससे उत्पन्न होनेके कारण स्वाभाविक रीतिसे पित्त प्रकृतिवाला है ऐसा जानना, क्योंकि "क्रोधसे पित्त उत्पन्न होताहै" इत्यादि प्रमाण चरकमें कहेहैं । तात्पर्य्य यह है कि—सम्पूर्ण ज्वरोमे जिससे पित्त शमन हो ऐसी चिकित्सा करनी चाहिये । वाग्भट भी कहतेहैं कि—"पित्तके विना गरमी नहीं होती और गरमीके विना ज्वर नहीं होता, इसकारण पित्तज्वरमें पित्त विरुद्ध अर्थात् पित्तको कुपित

करनेवाली चिकित्सा कदापि न करै" । श्रीमहादेवजीसे उत्पन्न होनेके कारण ज्वर देवतारूप है, इसकारण पूजन करनेके योग्य भी है. यह वैदेह आचार्यका मत है कि-उत्तम रीतिसे ज्वरका पूजन करै तो ज्वर तत्काल शान्त होजाताहै ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ ज्वरमूर्तिः ।

रुद्रकोपाग्निसम्भूतः सर्वभूतप्रतापनः ॥ त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिराः सुमहोदरः ॥ ॥ ४ ॥ वैयाघ्रचर्मवसनः कपिलो माल्यविग्रहः ॥ पिङ्गेक्षणो ह्रस्वजंघो बीभत्सो बलवान्महान् ॥ ५ ॥ पुरुषो लोकनाशार्थमसौ ज्वर इति स्थितः ॥ तैस्तैर्नामभिरन्येषां सत्त्वानां परिकीर्त्यते ॥ ६ ॥ जन्मादौ निधने चैव प्रायो विशति देहिनाम् ॥ ऋते देवमनुष्याभ्यां नान्यो विषहते हि तम् ॥ ७ ॥

रुद्रकी कोपरूप अग्निसे-उत्पन्न हुआ और सर्व जीवोंको सतापित करनेवाला ऐसा ज्वरनामवाला पुरुष प्राणियोंको नाश करनेके लिये प्रगट हुआ. वह पुरुष तीन पाँववाला, भस्मरूपी, आयुधको धारण किये, तीन शिरयुक्त, दीर्घ उदरवाला, बाघम्बरको पहिरे, कपिल रंगका, मुडोंकी मालाको धारण किये हुए है, पीली आँखोंवाला, छोटी छोटी जाँघे, भयंकररूप, महाबलवान् और बहुत लम्बा ऐसा ज्वररूपी पुरुष मनुष्योंके नाश करनेकेलिये स्थित है, यह ज्वर मनुष्योंके अतिरिक्त और जीवोंमें अन्य अन्यनामोंसे कहाजाता है । यह बहुधा करके प्राणियोंके जन्म और मरणके समय शरीरमें प्रविष्ट होताहै इसको देवता और मनुष्योंके विना कोई भी नहीं सहसक्ता, यह सुश्रुतमें कहाहै ॥ ४-७ ॥

तस्य ज्वरस्य संख्यारूपां सम्प्राप्तिमाह-ज्वरोऽष्टधेति । अष्टधात्वं विवृणोति-पृथगिति । वातिकः पैत्तिकः श्लैष्मिकश्चेति त्रयः, द्वन्द्वजाश्च त्रयः-वातपैत्तिकः, वातश्लैष्मिकः, पित्तश्लैष्मिकश्चेति । सङ्घातजः सान्निपातिक एकः । आगन्तुजोऽभिघातजः ॥

"द्व्युल्वणैकोल्वणैः षट् स्युर्हीनमध्याधिकैश्च षट् ॥ समश्चैको विकारास्ते सन्निपातास्त्रयोदश" इति चरके ।

त्रयोदश सन्निपाता उक्तास्ते यथा । वातोल्वणः । पित्तोल्वणः । कफोल्वणः । वातपित्तोल्वणः । वातश्लेष्मोल्वणः । पित्तश्लेष्मोल्वणः । एवं षट् । अधिकवातो मध्यपित्तो हीनकफः । अधिकवातो मध्यकफो हीनपित्तः । अधिकपित्तः मध्यवातः हीनकफः । अधिकपित्तः मध्यकफः हीनवातः । अधिककफः मध्यवातः हीनपित्तः । अधिककफो मध्यपित्तो हीनवातश्चेति षट् । उल्वण एकः । त्रयोदश । अत्र तु त्रिदोषजत्वेन साम्यात्सान्निपातिक एक एव गणितः । आगन्तुज इति अत्रागन्तुशब्देन अभिघातादयो हेतव उच्यन्ते । कुत्रचिद्व्याधयः कार्यकारणयोरभेदोपचारात् । आगन्तुजा अभिघाताद्यनेककारणयोगादनेके भवन्ति, तथाप्यागन्तुजत्वेन साम्यादागन्तुकोऽप्यत्र एक एव गणितः । ननु आगन्तुजेऽपि ज्वरे वातादिलक्षणदर्शनादागन्तुजः कथं दोषजाद्भिन्नः ? । उच्यते । उत्तरकालं दोषोत्पत्तेः । तथा च चरके-"आगन्तुर्हि व्यथापूर्वं जायते पश्चाद्भिन्नैर्दोषैरनुबध्यते" इति ॥

अब ज्वरकी संख्यारूप सम्प्राप्ति कहतेहैं । वातिक (वातसे उत्पन्न होनेवाला), पैत्तिक (पित्तसे उत्पन्न होनेवाला), श्लैष्मिक (कफसे उत्पन्न होनेवाला), वातपित्तज (वायु और पित्त दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला), वातकफज (वायु और कफ दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला), पित्तकफज (पित्त और कफ दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला), सान्निपातिक (वातादि तीनों दोषोंसे उत्पन्न होनेवाला), और आगन्तुज (चोट आदिके लगनेसे उत्पन्न होनेवाला) ऐसा ज्वर आठ प्रकारका है । तीनों दोषोंसे उत्पन्न होनेवाला जो सान्निपातिक ज्वर है उसके भेद कहताहूँ, द्व्युल्वण अर्थात् दो दोष जिसमें अधिक हो और एकोल्वण अर्थात् जिसमें एक दोष अधिक हो, इस प्रकार द्व्युल्वण और एकोल्वण इनके भेदोंसे छः प्रकारका और हीन,

मध्य तथा अधिक दोष इनके भेदोंसे छः प्रकारका और जिसमें तीनो दोष उल्वण हों एक वह, इसप्रकार सब तेरह सन्निपात कहे. जैसे कि–चरकमें कहेहैं, वातोल्वण १ पित्तोल्वण २ कफोल्वण ३ वातपित्तोल्वण ४ वातकफोल्वण ५ पित्तकफोल्वण ६ ये छः हुए, अधिकवात मध्यपित्त हीनकफ, अधिकवात मध्यकफ हीनपित्त, अधिकपित्त मध्यवात हीनकफ, अधिकपित्त, मध्यकफ हीनवात, अधिककफ मध्यवात हीनपित्त, अधिककफ मध्यपित्त हीनवात, ६ ये हुवे और एक त्र्युल्वण अर्थात् जिसमें तीनो दोष उल्वण हों, इसप्रकार सन्निपातके तेरह भेद कहेहैं, किन्तु यहाँ तो तीनों दोषोंके समान होनसे एकही सन्निपात कहाहै। "आगतुज इति" अर्थात् प्रहार (चोट) आदि नवीन कारणोंसे जो ज्वर उत्पन्न होय उसको आगतुज ऐसा कहतेहैं। कहीं कही कारण और कार्यके अभेदोपचारसे आगन्तुज रोग (आगन्तुक) एकही मानाहै जैसे कि–आगन्तुजज्वर प्रहार आदि अनेक कारणोंके योगसे अनेक प्रकारका होताहै तथापि आगन्तुजत्वकी समानतासे यहा आगन्तुज ज्वर एकही गिनाहै॥

शंका–आगन्तुज ज्वरमें वातादिके ही लक्षण देखनेमें आते हैं, फिर किसकारण आगन्तुज ज्वरको दोषोंसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरोंसे अलग गिनाहै?

समाधान–आगन्तुज रोगमें दोषोंकी उत्पत्ति पीछे होती है इसकारण उसको दोषोंसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरोंसे अलग कहाहै। चरकमें लिखाहैं कि–आगन्तुज ज्वर प्रथम किसी प्रकारकी पीडा उत्पन्न होकर उत्पन्न होताहै, पश्चात् उन्ही उन्ही दोषोंसे सन्वित होजाताहै॥ ४–७॥

अथ दूरसमीपकारणकथनपूर्वकज्वरसंप्राप्तिः।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः॥ बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः॥ ८॥

मिथ्याहारविहाराभ्यामनुचिताहारचेष्टाभ्यां हेतुभूताभ्यां दोषाः वातपित्तकफाः आमाशयाश्रयाः आमाशयं गताः रसानुगा रसदूषका बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं कोष्ठगताग्नेरुष्माणम्, न तु समस्तमग्निं, तदा तु दोषपाकासम्भवः स्यात्। बहिः प्रक्षिप्य ज्वरदाः स्युर्ज्वरकारिणो भवेयुरित्यर्थः॥

अयोग्य आहार और अयोग्य विहारके करनेसे वात पित्त कफ ये तीनो दोष आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोष्ठकी अग्निकी उष्णताको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करनेवाले होतेहैं। यहाँ कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकाले हैं समस्त अग्निको ही निकाले ऐसा नहीं समझना चाहिये, कारण यह है कि जो अग्नि बाहर निकल जावेगी तो पश्चात् दोषोंका पाचन कैसे होगा?॥ ८॥

अथ ज्वरसामान्यविशेषपूर्वरूपम्।

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः॥ इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु॥ ९॥ जृम्भाऽङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः॥ अप्रहर्षश्च शीतं च भवन्त्युत्पत्स्यति ज्वरे॥ १०॥ सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थं समीरणात्॥ पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिनन्दनम्॥ ११॥

श्रमो व्यापारं विनैव। अरतिः अस्वस्थचित्तत्वम्। विवर्णत्वं म्लानगात्रता। वैरस्यं मुखस्य अप्रकृतरसता। नयनप्लवः नयनयोः अश्रुपूर्णत्वम्। शीतवातातपादिषु मुहुरिच्छाद्वेषौ। आदिशब्दाज्ज्वलने जले च। यत उक्तं चरकेण–

"ज्वलनातपवातेषु भक्तिद्वेषावनिश्चितौ" इति।

शयनादिषु इति अन्ये। अंगमर्दोऽगस्फोटनम्। गुरुता गात्रस्य। रोमहर्षः रोमाञ्चता। अरुचिर्भोज्ये, तमः तमोमग्नस्येव ज्ञानम्। अप्रहर्षः हर्षाभावः। शीतं लगति। चकाराद्बलहानिः। उपदेशबलद्वेषादयोऽपि भवन्ति। एकादशश्लोकस्थं सामान्यत इति पदं पूर्वश्लोकाभ्यां सम्बन्धनीयम्। तेन सामान्यतो ज्वरे उत्पत्स्यति भविष्यति श्रमादयः पूर्वमेव भवन्ति इत्यर्थः। उत्पत्स्यति इति आत्मनेपदिनोऽपि शतृभावः आर्षत्वात्। विशेषात् उच्यते। समीरणात् ज्वर उत्प-

त्स्यति अतिशयेन जृम्भा भवति । पित्तज्वर उत्पत्स्यति अत्यर्थं नयनयोर्दाहो भवति । कफज्वर उत्पत्स्यति अत्यर्थेन न अन्नाभिनन्दनम् अन्नाकांक्षा न भवति । जृम्भादयो भवन्ति यतः सामान्यधर्माक्रान्तो विशिष्टो धर्मो भवति ॥

ज्वर उत्पन्न होनेसे पहिले जो लक्षण होतेहैं उनको कहतेहैं । विनाही परिश्रम किये श्रम (थकावट) मालूम हो, चित्तका कहीं नहीं लगना, शरीरका रंग बदल जावे, मुखमें विरसता, नेत्र जलसे डबडबसे होजायँ, शीत, पवन और गरमी, धूप इनकी वारवार इच्छा हो और वारवार द्वेष हो, जम्भाई आने लगें, शरीर टूटे और भारी होजाय, रोमांच हो आवैं, भोजनमें अरुचि होजाय, चारों ओर अन्धकार दीखे, आनन्दका नाश हो और सरदी लगे, ये लक्षण ज्वर आनेसे किंचित् पहिले होतेहैं । चरक कहतेहैं कि–आग, धूप, पवन और जलमें वारवार इच्छा होय और वारवार द्वेष हो, ऐसा निश्चय नहीं है. अन्यवैद्य कहतेहैं कि सरदी, पवन, धूप और शयन इनसे वारवार प्रीति और वारवार द्वेष करै । मूलके "उत्पत्स्यति" इस शब्दमें 'पद' धातु व्याकरणके अनुसार आत्मनेपदी होनेपर भी 'शानच्'प्रत्यय नहीं किया, किन्तु 'शतृ' प्रत्यय कियाहै, यह ऋषियोंके वैदिक सम्प्रदायके अनुसार कियाहै, ऐसा समझना । ये सामान्य पूर्वलक्षण कहे अब कुछ विशेष कहतेहैं–वातज्वरके पहिले जम्भाई अधिक आतीहैं, पित्तज्वरके आनेसे पहिले नेत्रोंमें जलन होतीहै और कफज्वरके आनेसे पहिले अन्नसे रुचि जाती रहती है ॥ ९–११ ॥

अथ द्वन्द्वजपूर्वरूपम् ।

रूपैरन्यतराभ्यां तु संसृष्टैर्द्वन्द्वजं विदुः॥१२॥

अन्यतराभ्यां जृम्भानेत्रदाहाभ्यां जृम्भान्नारुचिभ्यां नेत्रदाहान्नारुचिभ्यां वा संसृष्टैः रूपैः श्रमादिभिः द्वन्द्वजं द्विदोषजं पूर्वरूपं विदुः ॥

उपरोक्त प्रकारके मिले हुए लक्षणोंसे द्वन्द्वज पूर्वरूप कहना, अर्थात् वातपित्तज्वरके उत्पन्न होनेसे पूर्व जम्भाईयोंका आना और नेत्रोंमें जलन होतीहै । वातकफज्वरके आनेसे पूर्व जृम्भा और भोजनमें अरुचि होतीहै । और कफपित्तज्वर आनेसे पहले नेत्रोंमें दाह और भोजनमें अरुचि होतीहै ॥ १२ ॥

अथ सान्निपातिकपूर्वरूपम् ।

सर्वलिंगसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे॥१३॥

सर्वदोषप्रकोपजे पूर्वरूपे सर्वलिंगसमवायः । अतिशयितजृम्भानेत्रदाहान्नारुचिसहितानां श्रमादीनां समवायो भवति ॥

जब त्रिदोषज ज्वर आनेवाला होताहै उससे कुछ पहिले सब लक्षण होतेहैं अर्थात् जम्भाई,नेत्रोंमें जलन और अन्नमें अरुचि ये सब लक्षण अधिकतर होतेहैं ॥ १३ ॥

अथ ज्वरसामान्यलक्षणम् ।

स्वेदावरोधः संतापः सर्वांगग्रहणं तथा ॥
युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ १४ ॥

ताप इति वक्तव्ये सन्तापाभिधानं देहेन्द्रियमनसां सन्तापबोधनार्थम् । यत उक्तं चरकेण—ज्वरविशेषणम् देहेन्द्रियमनस्तापीति । तत्र देहसन्तापो देहेन्द्रियोष्णता । इन्द्रियसन्तापः इन्द्रियतापवैकृत्यम । यत उक्तम्–

इंद्रियाणां तु वैकृत्यं यत्र संतापलक्षणम्॥
वैचित्त्यमरतिर्ग्लानिमनःसंतापलक्षणम्॥
॥ १५ ॥ इति ॥

सर्वांगग्रहणम्, सर्वेषामंगानां वेदनया ग्रहणं सर्वाणि अंगानि स्तम्भनगृहीतानि इव वा भवन्ति । युगपदिति, मिलितमेतल्लक्षणम्, । प्रत्येकस्य व्यभिचारात् । यथा स्वेदावरोधः कुष्ठपूर्वरूपे । तथा सन्तापो दाहव्याधौ । तथा सर्वांगग्रहणं सर्वांगरोगाख्यवातव्याधौ ॥

जिस रोगमें स्वेदावरोध (पसीनेका न आना), संताप और सम्पूर्ण शरीरमें पीडाका होना ये सब लक्षण एक साथ होयँ उसको ज्वर कहतेहैं ।

शंका होतीहै कि–पित्तज्वरमें तो पसीने आतेहैं और यहां स्वेदावरोध अर्थात् पसीनोंका न आना ऐसा कहा इनमें विरुद्धता आतीहै ?

उत्तर–स्वेदावरोध यह तो सामान्य लक्षण है और पित्तज्वर विशेष है ऐसा जज्जट, कार्त्तिक और कुण्ड आदि

वैद्योंका-मत है। अन्य वैद्य इसप्रकार कहते हैं कि-"स्वेदका अवरोध" अर्थात् स्वेद जो अग्नि है उसका अवरोध कहिये दोषोंसे आच्छादित होजाना, इसप्रकार व्याकरणसे अर्थ जानना॥ १४॥ १५॥

अथ स्वेदावरोधकारणम्।

रुणद्धि चाप्यपां धातुं यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः॥ भवत्यत्युष्णगात्रश्च स्विद्यते न च सर्वशः॥ १६॥

यस्माज्ज्वरोऽत्र भवति सर्वशः स्विद्यते न च॥

ज्वर रसरूप धातुओंको रोक देताहै इसकारण ज्वर-रोगीका शरीर बहुत गरम होजाताहै परन्तु पसीना नहीं आता॥ १६॥

अथ ज्वरसामान्यचिकित्सा।

अंशांशं यत्र दोषाणां विवेक्तुं नैव शक्नुयात्॥ साधारणीं क्रियां तत्र विदध्यात्तु चिकित्सकः॥ १७॥ सामान्यतो ज्वरी पूर्वं निर्वाते निलये वसेत्॥ निर्वातमायुषो वृद्धिमारोग्यं कुरुते यतः॥ १८॥ व्यजनस्यानिलस्तृष्णास्वेदमूर्च्छाश्रमापहः॥ तालवेत्रभवो वातस्त्रिदोषशमनो मतः॥ १९॥ वंशव्यजनजः सोष्णो रक्तपित्तप्रकोपणः॥ चामरो वस्त्रसम्भूतो मायूरो वेत्रजस्तथा॥ २०॥ एते दोषजितो वाताः स्निग्धा हृद्याः सुपूजिताः॥ नवज्वरी भवेद्यत्नाद्गुरूष्णवसनावृतः॥ २१॥ यथर्तुपक्वपानीयं पिबेत्किञ्चिन्निवारयन्॥ विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते॥ न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि॥ २२॥

जिस ज्वरमें वैद्य दोषोंके अंशांशको न जानसकै उसमें वैद्यको उचितहै कि, साधारण चिकित्सा करै। ज्वररोगीकी यही सामान्य चिकित्सा है कि, जिस रोजसे ज्वर आवै उसी दिनसे उसको वायु रहित घरमें रक्खै। निर्वातस्थान-आयुको बढानेवाला और आरोग्यता करनेवाला है। पखेकी वायु (हवा) तृषा, पसीना, मूर्च्छा और श्रमको नष्ट करैहै। ताडके पखेकी पवन-त्रिदोषनाशक है। बाँसके पखेकी पवन-उष्ण और रक्तपित्तको कुपित करैहै। चमर, वस्त्रके पखेकी मोरछलकी और बेतके पखेकी पवन वात आदि दोषनाशक, स्निग्ध, हृदयको हितकारी और उत्तम है। नवीन ज्वरवाले रोगीको भारी और गरम ऐसे वस्त्र उढावै और पहरावै, तथा ऋतुके अनुसार औटाये हुए जलको थोडा २ पीनेको देवै। विनाही औषधिके रोग केवल पथ्य करनेसे शान्त होजातेहैं किन्तु पथ्यहीन मनुष्यके सैकडों औषधियोंके करनेसेभी शान्त नहीं होते॥ १७-२२॥

अथ तरुणज्वरत्याज्यानि।

परिषेकान्प्रदेहांश्च स्नेहान्संशोधनानि च॥ दिवा स्वप्नं व्यवायश्च व्यायामं शिशिरं जलम्॥ २३॥ क्रोधप्रवातभोज्यांश्च वर्जयेत्तरुणज्वरी॥ २४॥

परिषेकः स्नानादिः। प्रदेहोऽनुलेपनाभ्यङ्गादिः॥

तरुण (नवीन) ज्वरवाला रोगी स्नानादिक, चन्दनादिकका शरीरपर लेप करना, अथवा तैलादिक मर्दन, स्नेहपानादि, वमन, विरेचनादि, दिनमें सोना, मैथुन, दंड-कसरत, शीतजलका पीना, क्रोध करना, पवनका सेवन और भोजन इन सबको त्यागदेवै॥ २३-२४॥

अथ त्याज्यसेवनावगुणाः।

शोषं छर्दिं मदं मूर्च्छां भ्रमं तृष्णामरोचकम्॥ प्राप्नोत्युपद्रवानेतान्परिषेकादिसेवनात्॥ २५॥

आदिशब्देन प्रदेहादयो गृह्यन्ते॥

व्यायामाज्ज्वरसंवृद्धिर्व्यवायात्स्तम्भमूर्च्छनम्। मृतिश्च स्नेहपानाद्यैर्मूर्च्छा च्छर्दिर्मदोऽरुचिः॥ गुर्वन्नभोजनात्स्वप्नाद्विष्टम्भो दोषकोपनम्॥ अग्निसादः खरत्वश्च स्रोतसां चाप्रवर्तनम्॥ २६॥

मृतिरिति व्यवायादित्यत्र सम्बध्यते। स्वप्नादिवास्वापात्॥

उपरोक्त स्नानादिक सेवन करनेसे शोष, वमन, मद, मूर्च्छा, भ्रम, तृषा और अरुचि इत्यादि उपद्रव उत्पन्न होतेहैं। हारीतने प्रत्येकके अलग अलग दूषण कहेहैं

उनको कहतेहैं कि, व्यायाम अर्थात् दण्ड कसरत करनेसे ज्वरकी वृद्धि होतीहै, मैथुन करनेसे शरीर जकडासा होजाताहै तथा मूर्च्छा और मृत्यु होतीहै। स्नेह पान करनेसे मूर्च्छा, वमन, मद और अरुचि होती, है। भारी अन्न खानेसे और दिनमें शयन करनेसे मल-विष्टम्भ होजाताहै, दोषोंका कोप होताहै, जठराग्नि मन्द होजातीहै, तीव्रता और शरीरके स्रोत, छिद्र, बन्द होजातेहैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

तथा चोक्तम्।

अन्यच्च वर्जयेत्-

सज्वरो ज्वरमुक्तो वा विदाहीनि गुरूणि च ॥ असात्म्यान्नानि पानानि विरुद्धाध्यशनानि च ॥ २७ ॥ व्यायाममतिचेष्टां वाऽभ्यंगं स्नानं च वर्जयेत् ॥ तेन ज्वरः शमं याति शान्तश्च न पुनर्भवेत् ॥ २८ ॥

रोगी ज्वरयुक्त हो अथवा ज्वरसे रहित होगया हो तब भी दाहकारक और भारी, तथा अपनी प्रकृतिके प्रतिकूल अन्न,पान,विरुद्ध (सयोग विरुद्धादि) और अधिक भोजन अथवा भोजनपर भोजन, दण्डकसरत, चलना, फिरना इत्यादि अधिक चेष्टा करना, तैलादिकको शरीरसे मलना और स्नान इन सबको त्याग देवै। इस प्रकार करनेसे ज्वर शान्त होजाताहै और शान्त होकर फिर उत्पन्न नहीं होता ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ ज्वरलंघनम्।

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधाय यत् ॥ विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ॥ २९ ॥ ज्वरादौ लंघनं प्रोक्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम् ॥ ज्वरान्ते भेषजं दद्याज्ज्वरमुक्ते विरेचनम ॥ ३० ॥ त्रिविधं त्रिविधे दोषे तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत् ॥ दोषेऽल्पे लंघनं पथ्यं मध्ये लंघनपाचनम् ॥ प्रभूते शोधनं तच्च मूलादुन्मूलयेन्मलान् ॥ ३१ ॥

चरक और वाग्भटमें कहाहै कि दूषित हुए वातादि-दोष आमाशयमें स्थित होकर जठराग्निको ढककर, आमके साथ मिलकर शरीरके छिद्रोंको आच्छादित करके ज्वरको उत्पन्न करतेहैं इस कारण आमदोषादिकोंके पचानेके लिये, जठराग्निको दीपन करनेके लिये और शरीरके स्रोतों (छिद्रों) को शुद्ध करनेके लिये ज्वरमें लंघन कराने चाहिये। ज्वरके आदिमें लंघन करावै, ज्वरके मध्यमें पाचन देवै, ज्वरके अन्तमें औषधि देनी और ज्वरके जानेपर विरेचन (जुलाब) देवे। वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी अल्प, मध्य और अधिकता देखकर लंघन, पाचन और शोधन देवै, तहां दोष अल्प होवें तो लंघन करानेही श्रेष्ठ है, दोष मध्यम होवें तो लंघन करावै और पाचन भी देवे और जो दोष अत्यन्त बढे होवें तो शोधन कराना चाहिये, क्योंकि शोधन (विरेचनादि) करानेसे मल जडसे उखड जाते-हैं ॥ २९-३१ ॥

चक्रदत्तश्च।

तरुणं तु ज्वरं पूर्वं लंघनेन क्षयं नयेत् ॥ आमदोषमलिंगाद्वा लंघयेत्तं यथाविधि ॥ ३२ ॥

चक्रदत्त कहताहै कि, नवीन ज्वरको प्रथम लंघन (उपवास) कराकर क्षय करै और जो अपक्व दोषोंके लक्षण दीखें तो अथवा उनके लक्षण स्पष्ट न दीखें तो यथा-विधि करावै ॥ ३२ ॥

अथ दोषपाकसमयः।

वातः पचति सप्ताहात्पित्तं तु दशभिर्दिनैः ॥ श्लेष्मा द्वादशभिर्घस्रैः पच्यते वदतांवर ॥ ३३ ॥

वायु सात दिनमें लंघन करनेसे पचतीहै, पित्त दश दिनतक लंघन करनेसे पचताहै और कफ बारह दिन लंघन करनेसे पचजाताहै ॥ ३३ ॥

लंघनं लंघनीयस्तु कुर्याद्दोषानुरूपतः ॥ त्रिरात्रमेकरात्रं वाऽहोरात्रमथ वा ज्वरे ॥ ३४ ॥ निर्वातसेवनात्स्वेदाल्लंघनादुष्णवारिणः ॥ पानादामज्वरे क्षीणे पश्चादौषधमाचरेत् ॥ ३५ ॥

लंघन कराने योग्य ज्वररोगीको दोषानुसार तीन रात, एकरात और एक दिनरात लंघन करावै। वायु-रहित स्थानमें रहनेसे, पसीने निकलवानेसे, अथवा बफारा देनेसे, लंघन करनेसे और उष्ण जलको

पीनेसे आमज्वरको क्षीण करके पश्चात् औषधि सेवन करै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

आत्रेयेणोक्तम् ।

ज्वरादौ लंघनं प्रोक्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम् ॥ ज्वरान्ते भेषजं दद्याज्ज्वरमुक्ते विरेचनम् ॥ ३६ ॥ दोषशेषस्य पाकार्थमग्नेः सन्धुक्षणाय च ॥ लंघितश्चाप्यदोषश्चेद्यवागूपानमाचरेत् ॥ ३७ ॥ शालिषष्टिकमुद्गानां यूषं वा शस्तमाचरेत् ॥ पञ्चकोलेन संसिद्धां यवागूं मध्यलंघने ॥ ॥ ३८ ॥ अत्यर्थं लंघितं दृष्ट्वा तस्य संतर्पणं हितम् ॥ द्राक्षादाडिमखर्जूरप्रियालैः सपरूषकैः ॥ तर्पणार्हस्य कर्तव्यं तर्पणं ज्वरशान्तये ॥ ३९ ॥

अत्र लंघनशब्देन अनशनमुच्यते ॥

यत आह सुश्रुतः—

आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्यावन्तं कालमातुरः॥ तावत्त्वनशनं कुर्यात्ततः संसर्गमाचरेत् ॥ ४० ॥

आनद्धस्तिमितैर्दोषैः सम्बद्धः । संसर्गमौषधान्नादिप्रसंगम् । यत आह चरकः—

चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ ॥ पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लंघनम् ॥ चतुष्प्रकारा संशुद्धिर्वमनश्च विरेचनम् ॥ ४१ ॥

निरूहवस्तिशिरोविरेचनानि । न तु अनुवासनं तस्य बृंहणत्वात् । अत्र लंघनं कर्षणमित्यर्थः । तथा च सुश्रुतः—

शरीरलाघवकरं यद्द्रव्यं कर्म वा पुनः ॥ तल्लंघनमिति ज्ञेयं बृंहणं तु पृथग्विधम् ॥ ४२ ॥

लंघनात्कर्षणादन्यत् शरीरपोषकमित्यर्थः ॥

ननु आनद्धस्तिमितैर्दोषैरित्यादि पूर्वोक्तसुश्रुतवचनात्सामान्यतो ज्वरिणा यथा अनशनरूपं लंघनं क्रियते, तथा चतुष्प्रकारा संशुद्धिः इत्यादिचरकवचनाद्वमनादिरूपं लंघनं सर्वैर्ज्वरिभिः कथं न क्रियते ? तत्र उच्यते, वमनादिकम् अवस्थाविशेषे तु क्रियते न तु सर्वज्वरेषु । तथा च सुश्रुतः—

सोत्क्लेशे बलिने देयं वमनं श्लैष्मिकज्वरे ॥ पित्तप्राये विरेकस्तु कार्यः प्रशिथिलाशये ॥ ४३ ॥ सरुजेऽतिरुजे कार्यं सोदावर्ते निरूहणम् ॥ कफाभिपन्ने शिरसि कार्यं मूर्द्धविरेचनम् ॥ ४४ ॥

अपि च सर्वज्वरिभिः पिपासानिग्रहश्च न कार्यः । यत आह हारीतः—

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यःप्राणविनाशिनी तस्माद्देयं तृषार्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥ ४५ ॥

अतोऽवस्थाविशेष एव पिपासासहनं ज्वरिभिर्मारुतसेवनं च कार्यम्, सुश्रुतेन प्रवातसेवनस्य सर्वथा निषिद्धत्वात् । अतो मारुतसेवनम् अपि अवस्थाविशेष एव युक्तम् । आतपसेवनं च अवस्थाविशेष एव युक्तम् ॥

लङ्घनाम्बुयवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते॥ तदा तु मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः ॥ ॥ ४६ ॥ ज्वरघ्नैः पाचनैर्हृद्यैः कषायैः समुपाचरेत् ॥ ४७ ॥

इत्यत्र लङ्घनपाचनयोः स्फुट एव भेदः । व्यायामोऽपि न कार्यस्तस्य अतिनिषिद्धत्वात् । अवस्थाविशेषे पुनः पार्श्वपरिवर्तनादिरूपः सोऽपि कर्तव्यः । तस्माच्चतुष्प्रकारा संशुद्धिरित्यादिश्लोके लङ्घनपदं कर्षणपर्यायमिति निर्णीतम् ॥

आत्रेयऋषि कहते है कि-ज्वरके प्रारम्भमे लघन करावै, ज्वरके मध्यमे पाचन देवै और ज्वरके अन्तमे बलानुसार कोठेको शुद्ध करनेके लिये रेचन देवै, लघन करनेसे जिसके दोष नष्ट होगये हैं उन शेष दोषोंको पचानेके लिये और अग्निको दीपन करनेके लिये यवागू पान करै।

अथवा शालि धानोंके चावल, साठी धानके चावल और मूँगका यूष बनाकर पिलावे । और जो मध्यम लंघन किये होवें तो पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ) की यवागू बनाकर पिलावे । और जिसने अत्यंत लंघन किये होवें उनको दाख अनार, खजूर, चिरोंजी और फालसे इनमें सन्तर्पण (तृप्ति) करे, यह अत्यन्त हितकारक हैं । जो रोगी तर्पण करने योग्य हैं उनके ज्वरकी शांतिके लिये अवश्य तर्पण करावे, सुश्रुत कहतेहैं कि, जबतक दोष निश्चल रहें (स्रवित या पकरहें) तबतक लंघन कराने चाहियें पीछे औषध देवे (आनद्धस्तिमितता दोषोंकी निश्चलता और संसर्ग औषधान्नादिका संसर्ग ऐसा तात्पर्य है) चरकमें चार प्रकारकी सशुद्धि, तृषा, वायुसेवन, आतप, पाचन, उपवास और व्यायाम इन सबको लंघन कहाहै, यहाँ लंघनशब्दका अर्थ कर्षण समझना । जैसा कि, सुश्रुतमें कहाहै कि, जो द्रव्य अथवा जो क्रिया, शरीरको हलका करनेवाली है उनको लंघन कहतेहैं, और जो द्रव्य अथवा जो क्रिया शरीरको पुष्ट करेहै उसको बृंहण कहतेहैं । ऐसा कहने परभी यहाँ लंघनशब्दका अर्थ उपवासही समझना चाहिये जैसे कि सुश्रुतमें कहाहै कि, जबतक रोगी दोषोंके सम्बन्धसे आतुर रहै तबतक लंघन करावे, जब दोष क्षय होने लगे तब अन्न आदिके साथ संसर्ग औषधि देवे ।

वमन, विरेचन, निरूहवस्ति और शिरोविरेचनादिसे चार प्रकारकी सशुद्धि जाननी, यहाँ अनुवासनवस्ति ग्रहण करनी नहीं चाहिये, कारण यह है कि यह विधि तो शरीर कर्षणकरनेवाली है और अनुवासन वस्ति शरीरको पुष्ट करनेवाली है ॥

शंका-ऐसे सुश्रुतके कहे अनुसार ज्वररोगीको सामान्य रीतिसे उपवास रूप लंघन कराते हैं परन्तु चरकमें जो चार प्रकारकी वमन विरेचनादि शुद्धिरूप लंघन कहे हैं उनको क्यों नहीं कराते ?

उत्तर-वमन विरेचनादि क्रिया ज्वरकी विशेष अवस्थाओंमें कराते हैं किन्तु सर्व ज्वरोंमें नहीं कराते । क्योंकि सुश्रुतमें कहाहै कि, यदि रोगी बलवान् होय और ज्वर कफसे उत्पन्न हुआ हो और कफकी अधिकतासे जिसको उबकाई आती होवें तो वमन करावे । जिस रोगीका कोठा कठिन होवे और ज्वरमें पित्तकी अधिकता होवे तो विरेचन करावे । जो वायुसे ज्वर उत्पन्न हुआ हो, और उदावर्त भी हो तो निरूह वस्ति प्रयोग करे । और जो शिर कफसे भरगया होय तो शिरोविरेचनादि करे । सर्वज्वरोंमें तृषा प्यासको नहीं रोकना चाहिये, कारण यह है कि, तृषा अत्यन्त भयंकर घोर है और तत्काल प्राणोंका नाश करनेवाली है, इस कारण तृषित (प्यासे) मनुष्यको प्राणधारक पानी पीनेको देवे । ज्वरवाले मनुष्यको ज्वरकी अवस्था विशेषमें तृषाका सहना उचित है, परन्तु सर्व अवस्थाओंमें तृषाका सहना उचित नहीं है, ज्वरवाले मनुष्यको अधिक वायुका सेवन नहीं करना चाहिये, ऐसा सुश्रुतमें कहाहै । इस कारण वायुका सेवन ज्वरकी अवस्था विशेषमें उचित है किन्तु सर्व अवस्थाओंमें उचित नहीं है । इसी प्रकार धूपका सेवन भी अवस्था विशेषमें उचित है परन्तु सर्व अवस्थाओंमें सेवन करना उचित नहीं है । जो लंघनके करनेसे, उष्ण जलके पीनेसे तथा यवागूके पीनेसे दोष नहीं पचे तो मुखकी विरसता, तृषा, अरुचि और ज्वरनाशक तथा हृदयको हितकारी ऐसे जो पाचन रूप क्वाथ हैं उनको पिलावे । इस वचनमें लंघनको और पाचनको स्पष्ट रीतिसे पृथक् दिखाया है, ज्वरमें व्यायाम (दण्ड कसरत आदि परिश्रम) करना भी अत्यन्त निषिद्ध है इस कारण नहीं करना चाहिये परन्तु अवस्थाविशेषमें करवट-लेना इत्यादि व्यायाम करना चाहिये ॥ ३६-४७ ॥

अथोपवासरूपलंघनफलम् ।

लंघनेन क्षयं नीते दोषे सन्धुक्षितेऽनले ॥
विज्वरत्वं लघुत्वं च क्षुच्चैवास्योपजायते ॥ ४८ ॥

लङ्घनेन अनशनेन दोषे प्रवृद्धे क्षयं नीते यत आह "आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जितः ।"

पचतीति सन्धुक्षिते अनले आच्छादकदोषे क्षीणेऽग्नौ प्रदीप्ते यथोक्तसम्प्राप्तिसामग्रीविघटनाद्विज्वरत्वम् । शरीरस्य गौरवाभावेन लघुत्वम् । क्षुद् बुभुक्षा च जायते इत्यर्थः अन्यच्चाह सुश्रुतः-

अनवस्थितदोषाग्नेर्लंघनं दोषपाचनम् ॥
ज्वरघ्नं ज्वरिणः कांक्षारुचिलाघवकारकम् ॥ ४९ ॥

अनवस्थितदोषाग्नेः स्वस्थानादितस्ततो

गतो दोषोऽग्निश्च यस्य तस्य ज्वरिणः कांक्षा अन्नाभिलाषः रुचिः लंघनेन आमपाकान्मुखशोषादिनाशे मुखस्य यत्प्रकृतत्वं सैव रुचिः शोभा ; "रुचिः स्त्री दीप्तिशोभायामभीष्टार्थाभिलाषयोः" इति मेदिनीकारः ॥

लघन करनेसे बढे हुए दोष क्षीण होतेहैं और जठराग्नि दीपन होतीहै इससे ज्वर नष्ट होजाताहै, शरीरमे लघुता होतीहै और भूँख लगती है । अग्नि आहारको पचातीहै और जब आहार नहीं रहता तब दोषोको पकातीहै, ऐसा शास्त्रमे कहाहै । इस कारण वृद्धिको प्राप्त हुए अग्निको ढकनेवाले दोषोंका लंघनोके द्वारा क्षय होनेसे अग्नि दीपन होतीहै तब आगे कहीहुई ज्वरकी सम्प्राप्तिके कारणोका नाश होनेसे ज्वर उतर जाताहै, शरीर हलका होताहै और भूँख लगने लगतीहै । सुश्रुतमे भी कहाहै कि, जिसके दोष और अग्नि अपने स्थानसे इधर उधरको चले गये होयँ ऐसे ज्वररोगीको लघन करानेसे दोष पचजातेहैं, ज्वर जाता रहताहै, अग्नि दीपन होजातीहै, अन्नमे इच्छा उत्पन्न होतीहै, आमके पचनेसे और मुखशोषादिके नाश होनेसे पहिलेकी सदृश मुखकी शोभा उत्पन्न होतीहै और शरीरका हलकापन प्रगट होताहै । "रुचिशब्द स्त्रीलिंग इस कारण वह दीप्ति, शोभा, आसक्ति और अभिलाष इन अर्थोंमे आताहै" ऐसा मेदिनी कोषमे कहाहै इसकारण हमने मूलके रुचि शब्दका शोभा अर्थ किया है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथ सम्यक्कृतलंघनलक्षणम् ।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे ॥ हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥५०॥ स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासासहोदये ॥ कृतं लंघनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ ५१ ॥

हृदयस्य शुद्धिः अनवरोधः । उद्गारशुद्धिः सधूमाम्लोद्गाराभावः । कण्ठस्य शुद्धिः कफानवलिप्तत्वम् । आस्यशुद्धिः मुखस्य प्रकृतरसत्वम् । तन्द्राक्लमे तन्द्रा च क्लमश्च तस्मिन् । तन्द्रा निद्रा, क्लमोऽत्र ग्लानिः । क्षुत्पिपासासहोदये क्षुत्पिपासयोः सह युगपदुदये । अन्तरात्मनि मनसि । एतानि लक्षणानि मिलितानि एव सम्यक्कृतं लंघनं बोधयन्ति, न तु प्रत्येकम् ॥

अधोवायु, मल और मूत्रका शुद्ध रीतिसे निकलना, शरीरमे हलकापना, हृदय, डकार, कंठ और मुख इनका शुद्ध होना, तन्द्रा और ग्लानिका नाश, पसीनेका आना, रुचिका होना, क्षुधा (भूँख) और तृषा (प्यास) इनका एकसाथ एकसमयमें उत्पन्न होना और अन्तःकरण व्यथारहित होना, यह सब लक्षण होयँ तो उनको भले प्रकारसे लंघन हुए जानना । इन लक्षणोंमेसे जो एक दो लक्षण होयँ तो नहीं और सम्पूर्ण लक्षण एक साथ होयँ तो अच्छे लंघन हुए जानना ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ हीनलंघनलक्षणम् ।

कफोत्क्लेशः सहृल्लासः ष्ठीवनं च मुहुर्मुहुः ॥ कण्ठस्य हृदयाशुद्धिस्तन्द्रा स्याद्धीनलंघने ॥ ५२ ॥

कफोत्क्लेशः कफस्य वमनाय उपस्थितिः । हृल्लासः उपस्थितवमनत्वमिव । ष्ठीवनं हृद्यात्कफनिर्गमः ॥

कफ वमनकी समान निकलनेको तत्पर हो, वारवार उवकाई आवै तथा वारवार कफका थूकना, कफसे कंठ जकडा होवै, हृदय भारी हो और तन्द्रा हो ये सब लक्षण हीन लघनके जानने ॥ ५२ ॥

अथातिलंघनलक्षणम् ।

पर्वभेदोंगमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च ॥ क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥ ५३ ॥ मनसः संभ्रमोऽभीक्ष्णमूर्द्ध्ववातस्तमो हृदि ॥ देहाग्निबलहानिश्च लंघनेऽतिकृते भवेत् ॥ ५४ ॥

कर्णनेत्रयोः स्वविषयग्रहणासामर्थ्यम् । मनसः संभ्रमः भ्रांतिः । ऊर्द्ध्ववातः उद्गारबाहुल्यम् । हृदि तमः अन्धकारप्रविष्टस्येव ज्ञानम् ॥

शरीरकी समस्त सन्धियोंमे पीडा होती हो, देह टूटै, खांसी, मुखशोष, क्षुधाका नाश, अरुचि, तृषा, कान और नेत्रोंमे निर्बलता, मनमे भ्रमका होना, वारवार बहुत डकारोंका

आना हृदयमें अवकाग्वा होना, देह, अग्नि और बलकी हानि होना, ये सब लक्षण अत्यंत लंघन (उपवास) किये हुए मनुष्यके होतेहैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अथ बलानुकूललंघनकथनम् ।

बलाविरोधिना चैनं लंघनेनोपपादयेत् ॥
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रिया-
क्रमः ॥ ५५ ॥

अयमर्थः—एनं रोगिणं बलाविरोधिना अनतिबलक्षयकारिणा लंघनेन उपपादयेत् उपचरेत् कुत इति चेत्तत्राह-यदर्थमस्मै आरोग्याय अयं क्रियाक्रमः चिकित्सोपक्रमः । तत् आरोग्यं बलाधिष्ठानं बलाश्रयमित्यर्थः ॥

वैद्यको चाहिये कि, जिससे बलका नाश होवे ऐसे लंघन न करावे क्योंकि आरोग्य बलके आधीन है और उस आरोग्यके लिये ही यह सब कियाक्रम कहा है ५५॥

अथ लंघननिषेधः ।

तद्धि मारुततृष्णाक्षुन्मुखशोषभ्रमान्वितैः॥
न कार्यं गुर्विणीबालवृद्धदुर्बलभीरुभिः ॥
न क्षयाध्वश्रमक्रोधकामशोषचिरज्वरी ५६॥

तत्र अनशनम् । उल्बणमारुतयुक्तेन ज्वरिणा न कार्यं, मारुतोऽत्र निरामो बोद्धव्यः । सामे मारुते लंघनं कार्यमेव। यत आह तन्त्रान्तरे—

अवश्यमेव कुर्वीत ज्वरी सामे समीरणे॥
लंघनं त्वामपाकार्थं न तदूर्द्ध्वं यथा
कफे ॥ तद्धि मारुततृष्णायां लंघनं
कार्यमेव च ॥ ५७ ॥

न तथा मुखशोषभ्रमावपि निरामावेव विवक्षितौ । सामयोस्तु तल्लंघनं कार्यमेव । गुर्विणीबालवृद्धादिभिरपि निराममेव नैव लंघनं कार्यम् । सामैः पुनस्तैरपि लंघनं कार्यमेव । क्षयो धातुक्षयो राजयक्ष्मा च । वातजे ज्वरे लंघनं न कार्यम् ॥

तदूर्द्ध्वम् आमपाकादूर्द्ध्वम् । अत एवोक्तम्—

कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लंघनं बहु ॥
आमक्षयादूर्द्ध्वमपि वायुर्न सहते
क्षणम् ॥ ५८ ॥

सुश्रुत कहताहै कि—यह लंघन वातज्वरवाले, तृषावाले, क्षुधामें पीडित, मुखशोषरोगी, भ्रमरोगी, गर्भिणी स्त्री, बालक, वृद्ध, दुर्बल (बलहीन), भीरु (भयभीत), धातुक्षयवाले, क्षयरोगी, अत्यंत मार्ग (रास्ता) चलनेसे थकेहुए, परिश्रमकरनेसे थकेहुए, क्रोधी, कामसे पीडित, शोषरोगी और बहुतकालके ज्वररोगी, इनको कदापि लंघन नहीं कराने चाहिये, यहाँ ऐसा जानना कि—यदि वातज्वर वाले मनुष्यके जो वायु आमसे रहित होय तो लंघन नहीं करावे और जो वायु आमसहित होय तो अवश्य लंघन करावे, कारण यह है कि, वातज्वरमें आमको पचानेके लिये लंघन कराये जातेहैं । जिस प्रकार कफमें आमके पकजानेपर भी लंघन कराये जातेहैं । उस प्रकार वातमें आमके पच जानेपर लंघन नहीं कराये जाते । कारण यह है कि—कफ और पित्त ये दोनो द्रवरूप होनेसे बहुत लंघनोंको सहसक्ते हैं, परन्तु वायु तो आमके पचजानेपर क्षणभर भी लंघन सहन नहीं करसक्ती है ऐसा अन्य ग्रंथोंमें कहाहै । भ्रम और मुखशोष भी जो आमसे रहित होयँ तो लंघन नहीं करावे और जो आमसहित होयँ तो अवश्य लंघन करावे । उसी प्रकार गर्भवती स्त्री, बालक और वृद्ध आदि जो आमसे रहित होयँ तो लंघन नहीं करावे, और जो आमसहित होयँ तो अवश्य लंघन करावे ॥ ५६–५८ ॥

अथामलक्षणम् ।

आहारस्य रसः सारो यो न पक्वोऽग्नि-
लाघवात् ॥ आमसंज्ञाश्च लभते बहुव्या-
धिसमाश्रयः ॥ ५९ ॥

आहारका सारूप जो रस है वह अग्निकी लघुता अर्थात् मंदतासे नहीं पचता, उसको आम कहतेहैं, वह अनेक व्याधि उत्पन्न होनेका आश्रय अर्थात् कारण है ५९॥

तन्त्रान्तरे तु ।

आममन्नरसं केचित्केचित्तु मलसञ्चयम्॥ प्रथमं दोषदुष्टिं वा केचिदामं प्रचक्षते ॥ ६० ॥ अविपक्कमसंसक्तं दुर्गन्धं बहुपिच्छिलम्॥ सादनं सर्वगात्राणामाम इत्यामशब्दितः ॥ ६१ ॥ तेनामेन समायुक्ता दोषा दूष्याश्च तादृशाः ॥ तदुद्भवा आमयाश्च सामा इति बुधैः स्मृताः॥ ६२॥

कोई वैद्य अन्नके अपक्क रसको आम कहतेहैं, कोई मलके समूहको आम कहतेहैं और कोई वैद्य दोषोकी प्रथम दुष्टताको आम कहतेहैं। अपक्क, मलसे अलग रहनेवाला, दुर्गन्धवाला, अधिकतर चिकना और सर्व शरीरको पीडित करनेवाला ऐसा जो पदार्थ है उसको आम कहतेहैं। उस आममे सयुक्त हुए दोष और दूष्य एवं उन दोष और दूष्योंसे उत्पन्न हुए रोगोको साम कहतेहैं ॥ ६०–६२ ॥

अथ सामवायुलक्षणम् ।

वायुः सामो विबन्धाग्निसादतन्द्रान्त्रकूजनैः॥ वेदनाशोथनिस्तोदैः क्रमशोऽङ्गानि पीडयेत् ॥ ६३ ॥ विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो भृशम् ॥ स्नेहाद्यैर्वृद्धिमायाति मेघे सूर्योदये निशि ॥ ६४ ॥

विचरेद्युगपद्वायुरामश्चैककालं विचरेत् । कुपितः सामो वायुः भृशमतिशयेन गृह्णाति अंगानि इत्यर्थः ॥

साम वायु मलरोधक है, अग्निको मन्द करती है,तन्द्रा और आलस्यको करैहै, आँतोमे शब्द करैहै अनुक्रमसे वेदना, सूजन और तोडने सरीखी पीडा, इनको उत्पन्न करैहै। कुपित हुई सामवायु एकही समय आमसहित सम्पूर्ण अगोमें विचरती है और सब अगोको ग्रहण करके पीडित करैहै। तथा तैल घृतादि स्नेह पदार्थोंसे वर्षा ऋतुमे सूर्योदयमें और रात्रिमे वृद्धिको प्राप्त होती है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अथ निरामवायुलक्षणम् ।

निरामो विशदो रूक्षो निर्गन्धोऽल्पवेदनः ॥ विपरीतगुणैः शान्तिं स्निग्धैर्याति विशेषतः ॥ ६५ ॥

निरामवायु–विशद (साफ), रूखी, दुर्गंधरहित, बहुत थोडी पीडा करनेवाली और अपनेसे विपरीत गुणवाले पदार्थोंसे शान्त होतीहै और विशेष करके तैल घृतादि स्निग्ध (चिकने) पदार्थोंसे शांत होतीहै ॥ ६५॥

अथ सामपित्तलक्षणम् ।

पित्तं सामं भवेदम्लं दुर्गन्धं हरितं गुरु ॥ अम्लिकाकण्ठहृद्दाहकरं श्यावं तथा स्थिरम् ॥ ६६ ॥

सामपित्त–अम्ल (खट्टा), दुर्गन्धित, हरा, भारी, खटाईकी समान कण्ठमें और हृदयमे दाह करनेवाला, श्यामतायुक्त और स्थिर होताहै ॥ ६६ ॥

अथ निरामपित्तलक्षणम् ।

निरामं पित्तमाताम्रमत्युष्णं कटुकं सरम् ॥ दुर्गन्धि रुचिकृद्वह्निबलवर्द्धनमीरितम् ॥ ६७ ॥

निरामपित्त–लाल, बहुतगरम, चरपरा, सारक (दस्तावर), दुर्गन्धित, रुचिकारक तथा जठराग्नि और बलको बढानेवाला है ॥ ६७ ॥

अथ सामकफलक्षणम् ।

आविलस्तंतुलः स्त्यानः कंठदेशे च तिष्ठति ॥ सामो बलासो दुगन्धस्तृट्क्षुधोरुपघातकृत् ॥ ६८ ॥

सामकफ–आविल (मैला), ततुयुक्त, स्त्यान(गाटा), कठको पकडनेवाला, दुर्गन्धित तथा क्षुधा और तृषाका नाश करनेवाला होताहै ॥ ६८ ॥

अथ निरामकफलक्षणम् ।

श्लेष्मा निरामो निर्गन्धः फेनवांश्छेदवानपि ॥ भवेत्सपिंडितः पांडुरास्यवैरस्यनाशकृत् ॥ ६९ ॥

निरामकफ–दुर्गन्धरहित,झागोदार, खण्डित, गॉटदार, पांडुरगका और मुखकी विरसताको नष्ट करनेवाला होताहै ॥ ६९ ॥

अथ सामव्याधिलक्षणम् ।

आलस्यतन्द्राहृदयाविशुद्धिर्दोषाप्रवृत्त्या-विलमूत्रताभिः ॥ गुरूदरत्वारुचिसुप्तता-भिरामान्वितं व्याधिमुदाहरन्ति ॥७०॥ आमं जयेल्लंघनकोष्णपेयालघ्वन्नसूपौदन-तिक्तयूषैः ॥ विरूक्षणस्वेदनपाचनैश्च संशोधनैरूर्द्धमधस्तथैव ॥ ७१ ॥

आलस्य, तन्द्रा, हृदयमें अशुद्धता, मलादिकका नहीं उतरना, मूत्रका गदला होना, उदरमें भारीपन, अरुचि और अधिकतर निद्राका आना, यह लक्षण होंय तो साम-व्याधि जाननी । लंघन, उष्णपेया, हलका अन्न, दाल, भात, कडवे पदार्थोंका यूप, रूखाकरना, स्वेदन, पाचन और ऊर्ध्व (वमनादिक) तथा अधःशोधन (विरेचना-दिक) इनसे आमको जीते ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथ जलपानावश्यकता ।

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्वि-मुञ्चति ॥ अतः सर्वास्ववस्थासु न क्वचि-द्वारि वर्जयेत् ॥ ७२ ॥

सुश्रुतमे कहाहै कि—तृषित मनुष्यको मोह उत्पन्न होताहै और मोहसे प्राण नष्ट होतेहैं, इसकारण किसी अवस्थामें भी जलका पीना निषेध नहीं करै ॥ ७२ ॥

हारीतेनोक्तम् ।

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राणविना-शिनी ॥ तस्माद्देयं तृषार्त्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥ ७३ ॥

अवश्यं पेयमपि जलं ज्वरी किञ्चिद्वारय-न्पिबेत् ॥

जीविनां जीवनं जीवो जगत्सर्वं तन्म-यम् ॥ अतोऽत्यन्तनिषेधेन न क्वचिद्वारि वारयेत् ॥ ७४ ॥

जीवनं जलं, किञ्चित्तु वारयेदेव उक्तं च-ज्वरे नेत्रामये कुष्ठे मन्देऽग्नावुदरे तथा ॥ अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ क्षये ॥ व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मन्दमाच-रेत् ॥ ७५ ॥

मुखप्रसेके मन्दमाचरेत् अल्पं पिबेत् ॥ अतियोगेन सलिलं तृष्यतोऽपि प्रयोजि-तम् ॥ प्रयाति श्लेष्मपित्तत्वं ज्वरितस्य विशेषतः ॥ ७६ ॥

तृषा वडी भयकर है और तत्काल प्राणोंका नाश करनेवाली है इसकारण तृषित (प्यासे) मनुष्यको प्राण-धारक जल पिलाना चाहिये ॥ जल तो ज्वररोगी अवश्य पिये परन्तु थोडा थोडा ठहर ठहर कर पिये ॥ जल प्राणियोंका जीवन है और सब जगत् जलरूप है इस कारण किसी अवस्थामें भी जलका अत्यन्त निषेध नहीं किया है (अत्यन्त निषेध नहीं कियाहै इस कहनेमे थोडा थोडा पीना चाहिये), सुश्रुतमे भी कहा है—ज्वर, नेत्ररोग, कुष्ठरोग, मन्दाग्नि, उदररोग, अरुचि, प्रति-श्याय, प्रसेक (मुखमें पानीका भरभर आना), सूजन, क्षय, व्रण और मधुमेह इन रोगोंमें जल थोडा पीना चाहिये ॥ और बहुत भी जल नहीं पीना चाहिये, जैसे कहाहै कि—यदि तृषासे पीडित मनुष्य अधिक जल पिये तो उसके वह जल कफपित्त होजाता है और ज्वररोगी जो अधिक जल पिये तो उसको विशेष करके कफ पित्त होजाताहै ॥ ७३–७६ ॥

नवज्वरे शीतलजलपाननिषेधः ।

नवज्वरे प्रतिश्याये पार्श्वशूले नवग्रहे ॥ सद्यःशुद्धौ तथाध्माने व्याधौ वातकफो-द्भवे ॥ ७७ ॥ अरुचिग्रहणीगुल्मश्वास-कासेषु विद्रधौ ॥ हिक्कायां स्नेहपाने च शीतं वारि विवर्जयेत् ॥ ७८ ॥ सेव्य-मानेन शीतेन ज्वरस्तोयेन वर्द्धते ॥

अत्र शीतं जलम् अक्वथितं निषिद्धम् । तथा सति क्वथितमायातम् ॥

नवीनज्वर, प्रतिश्याय (जुखाम), पसलियोंकी पीडा, गलेका पडजाना, जिसने तत्काल वमन अथवा विरेचन कियाहो, आध्मान (अफरा), वात और

कफके रोग, अरुचि, सग्रहणी, गुल्म (वायगोला); श्वास, खांसी, विद्रधि, हिचकी और जिसने स्नेहपान कियाहो इनको शीतल जल नही पीना चाहिये । यहाँ अपक्व शीतल जलका निषेध है किन्तु औटाकर जो शीतल कियागया है उसका निषेध नही है, कारण यह है कि, शीतल जलको पीनेसे ज्वर वृद्धिको प्राप्त होता-है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ क्वथितजललक्षणंगुणाः ।

क्वाथ्यमानं तु निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं च यत् ॥ तत्तोयं क्वथितं ज्ञेयं दोषघ्नं पाचनं लघु ॥ ७९ ॥

निर्वेगं शनैः क्वथितम् ॥

जो जल औटाते औटाते धीरे धीरे झागरहित और निर्मल (मलरहित) होजावे उसको क्वथित (औटा हुआ) जल जानना । यह क्वथितजल–त्रिदोषनाशक, पाचक और हलका है ॥ ७९ ॥

अथ क्वथितजलपानविधिः ।

वातश्लेष्मज्वरार्ताय हितमुष्णाम्बु तृष्यते ॥ दीपनं स्याच्च कफजे वातपित्तानुलोमनम् ॥ तद्धि मार्दवकृद्दोषस्रोतसां शीतमन्यथा ॥ ८० ॥

वाग्भटश्च–तृष्णायां पथ्यमुष्णाम्बु पिबेद्वातकफज्वरे ॥ तत्कफं विलयं नीत्वा तृष्णामाशु निवर्तयेत् ॥ ८१ ॥ उदीर्य चाग्निं स्रोतांसि मृदूकृत्य विशोधयेत् ॥ वातपित्तकफस्वेदशकृन्मूत्राणि सारयेत् ॥ ८२ ॥

सुश्रुत कहता है कि–वात कफ ज्वरवाले मनुष्योंको तृषाके समय उष्ण (औटायाहुआ) जल अत्यत हितकारी है । यह जल–अग्निको दीपन करनेवाला, कफको छेदन करनेवाला, वातपित्तको अनुकूल करनेवाला, तथा दोष और शरीरके स्रोतोको नरम करैहै और शीतल जल इससे विपरीत गुणोवाला है । वाग्भट भी कहताहै कि–वातकफज्वरमे तृषाके समय उष्ण जल पीना चाहिये । उष्णजल–कफको दूरकरके तत्काल तृषाको शांतकरैहै, अग्निको दीपन करके स्रोतो (छिद्रों) को नरमकर शुद्ध करैहै, तथा वात, पित्त, कफ, स्वेद, विष्ठा और मूत्रको प्रवर्तावे है ॥ ८०–८२ ॥

अथोष्णोदकलक्षणगुणाः ।

क्वाथ्यमानं तु निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं तथा ॥ अर्द्धावशिष्टं यत्तोयं तदुष्णोदकमुच्यते ॥ ८३ ॥ ज्वरकासकफश्वासपित्तवाताममेदसाम् ॥ नाशनं पाचनं चैव पथ्यमुष्णोदकं सदा ॥ ८४ ॥

जो जल औटाते औटाते धीरे धीरे झागरहित, निर्मल और आधा बाकी रहजाय उसको उष्णोदक कहतेहैं । वह उष्णजल–ज्वर, खाँसी, कफ, श्वास, पित्त, वात, आम और मेदको नष्ट करताहै, पाचक और सर्वदा पथ्य है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथर्तुभेदेन जलपाकभेदाः ।

त्रिपादशेषं सलिलं ग्रीष्मे शरदि शस्यते ॥ ८५ ॥ निदाघे त्वर्द्धपादोनं पादहीनन्तु शारदम् ॥ हिमेऽर्द्धशेषं शिशिरे तथा वर्षावसन्तयोः ॥ ८६ ॥ शिशिरे च वसन्ते च हिमे चार्द्धावशेषितम् ॥अष्टमांशावशेषन्तु वारि वर्षासु शस्यते ॥ ८७ ॥ इति केचिद् बुधाः प्रावृड्वर्जेष्वागमदर्शनात् ॥ पक्षयोस्त्रिषु वेदेषु बाणेष्वङ्गेषु वस्तुषु ॥ एषु भागावशेषं स्यादम्बु वर्षादिषु क्रमात् ॥ ८८ ॥

अत्र दोषाणां यथा उल्वणता हीनता वा तथा व्यवस्था कल्पनीया ॥

तत्पादहीनं पित्तघ्नमर्द्धहीनन्तु वातनुत् ॥ त्रिपादहीनं श्लेष्मघ्नं संग्राह्यग्निदीपनम् ॥ ८९ ॥

ग्रीष्म और शरद् ऋतुमे एक पादहीन अर्थात् सेरभरको औटाय तीनपावकर जल सेवन करना चाहिये । अन्य वैद्य कहतेहैं कि–ग्रीष्मऋतुमे अर्द्धावशेष अर्थात् सेरभरका आधसेर और शरद् ऋतुमे सेरका तीनपाव पीना चाहिये । हेमन्त, शिशिर, वर्षा और वसन्त ऋतुमे सेरभरका आधसेर शेष रहा जल पीना चाहिये । परन्तु

कितनेक विद्वान् कहतेहैं कि, शिशिर, वसन्त और हेमन्त ऋतुमें तो अर्द्धावशिष्ट ही जल पीना चाहिये, परन्तु वर्षा ऋतुमें अष्टावशेष अर्थात् सेरभरका आधपाव शेष (बाकी) रक्खै । और कितनेक वैद्य कहते हैं कि-वर्षा ऋतुमें आठवा भाग शेष रहा, शरद् ऋतुमे छठाभाग शेषरहा, हेमन्त ऋतुमें चौथा भाग शेषरहा, शिशिर ऋतुमे पांचवां भाग शेषरहा, वसन्त ऋतुमें तीसरा भाग शेषरहा और ग्रीष्म ऋतुमे आधा भाग शेषरहा हुआ जल पीना चाहिये। इस प्रकार उष्णजलके विषे अनेक मत दिखाई देतेहैं इस कारण दोषोंकी उग्रता और हीनताके अनुसार उसकी कल्पना करे । वह गरमजल-चार भागका तीनभाग शेषरहा, अर्थात् सेरभरका तीनपाव पित्तनाशक है । चार भागका दोभाग अर्थात् सेरभरका आधसेर शेषरहा वात-विनाशक है । चार भागका एकभाग अर्थात् सेरभरका एक पाव शेषरहा जल कफनाशक है, तथा मलरोधक और अग्निको दीपन करने वाला है ॥ ८५-८९ ॥

अथ ग्रन्थान्तरेष्वारोग्यांबुनाम्नोक्तस्यास्य लक्षणगुणानाह ।

पादशेषं तु यत्तोयमारोग्याम्बु तदुच्यते ॥ आरोग्याम्बु सदा पथ्यं कासश्वासकफापहम् ॥ ९० ॥ सद्यो ज्वरहरं ग्राहि दीपनं पाचनं लघु ॥ आनाहपाण्डुशूलार्शोगुल्मशोथोदरापहम् ॥ ९१ ॥

जो जल औटाते औटाते चारभागका एकभाग अर्थात् सेरभरका पावभर शेषरहा होय उसको आरोग्याम्बु कहा है । आरोग्याम्बु-सदैव पथ्य (हित) है, तथा खाँसी श्वास और कफको नष्ट करनेवाला है, विशेष करके ज्वरको तत्काल हरनेवाला है, मलरोधक, अग्निप्रदीपक, पाचन, हलका एव अनाह (अफारा), पांडुरोग, शूल, बवासीर, गुल्म, सूजन और उदररोगको नष्ट करै है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अथर्तुभेदेन जलग्रहणम् ।

हेमन्ते शिशिरे चाम्बु सारसं वा तडागजम् ॥ वसन्तग्रीष्मयोः कौप्यं वाप्यं वा नैर्झरं हितम् ॥ ९२ ॥ नादेयं वारि नादेयं वसन्तग्रीष्मयोर्बुधैः ॥ विषवत्पत्रपुष्पादिदुष्टनिर्झरयोगतः ॥ ९३ ॥ औद्भिदं चान्तरिक्षं वा कौप्यं वा प्रावृषि स्मृतम् ॥ शस्तं शरदि नादेयं नीरमंशूदकं परम् ॥ ९४ ॥ दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः ॥ ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् ॥ ९५ ॥ अनभिष्यन्दि निर्दोषश्चान्तरिक्षजलोपमम् ॥ बल्यं रसायनं मेध्यं शीतं लघु सुधासमम् ॥ ९६ ॥ शरद्यगस्त्यस्योदयादखिलं सलिलं हितम् ॥ ९७ ॥

वृद्धसुश्रुतः-कार्तिके मार्गशीर्षे च जलमात्रं प्रशस्यते ॥ ९८ ॥

हेमन्त और शिशिर ऋतुमे सरोवरका अथवा तालाबका जल लेना चाहिये । वसन्त ऋतु और ग्रीष्म ऋतुमें कुएँका, बावडीका अथवा झरनेका जल हितकारी है । वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें नदीका जल नहीं लेना चाहिये, क्योंकि विषैले पत्ते, फूल तथा दुष्ट झरनोंका उसमे योग होता है । वर्षा ऋतुमे औद्भिद (जो पृथिवीको फोडकर बहताहै), आकाश सम्बन्धीय (मेघका) जल, अथवा कुएँका जल लेना चाहिये । शरद् ऋतुमे नदीका जल और विशेषकरके अंशूदक जल हितकारी है । जिस जलके ऊपर दिनमे सूर्यकी किरणे पडती होंय और रात्रिमे चन्द्रमाकी किरणें पडती होंय उसको अंशूदक कहतेहैं । अंशूदक जल-स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, अनभिष्यन्दि (शरदीको नहीं करनेवाला), निर्दोष, आकाशके जलकी समान, बलकारक, रसायन, मेधाजनक, शीतल, हलका और अमृतकी समान है । अन्य ग्रंथोमे लिखा है कि-शरद् ऋतुमें अगस्त्य ऋषिका उदय होनेपर सर्व जल हितकारी हैं । इसीप्रकार वृद्ध सुश्रुत भी कहता है कि-कार्त्तिक और अगहनके महीनेमे सम्पूर्ण जल हितकारी होतेहैं ॥ ९२-९८ ॥

अथ श्रृतशीतजलविषयः ।

दाहातिसारपित्तास्रमूर्च्छामद्यविषार्तिषु ॥ मूत्रकृच्छ्रे पाण्डुरोगे तृष्णाच्छर्दिश्रमेषु

च ॥ ९९ ॥ मद्यपानसमुद्भूते रोगे पित्तोत्थिते तथा ॥ सन्निपातसमुत्थेषु शृतशीतं प्रशस्यते ॥ १०० ॥

सुश्रुत कहताहै कि–दाह, अतिसार, पित्त, रुधिरविकार, मूर्च्छा, मद्यजनित पीडा, विषजन्य रोग, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, तृष्णा, वमन, श्रम, मद्य (दारू) पान करनेसे उत्पन्न हुए रोग, पित्तजन्य रोग और सन्निपातजन्य रोग, इनमें औटाये हुए जलको शीतल करके पिये ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अथ क्वथितजलशीतीकरणविधिगुणौ।

शृताम्बु तत्त्रिदोषघ्नं यदन्तर्बाष्पशीतलम्॥ अरूक्षमनभिष्यन्दि कृमितृड्ज्वरहृल्लघु ॥ ॥ १०१ ॥ धारापातेन विष्टम्भि दुर्जरं पवनाहतम् ॥ भिनत्ति श्लेष्मसंघातं मारुतं चापकर्षति ॥ १०२ ॥ अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ॥ १०३ ॥ अन्तर्बाष्पशीतलम्, पिहितमेव शीतलम् ॥

जो जल औटाकर ढका हुआही अपने आप शीतल हुआहै वह शृत शीतजल–त्रिदोषनाशक, रूखा नही, अनभिष्यन्दि (शरदीको नही करनेवाला), हलका तथा कृमि, तृषा और ज्वरको हरनेवाला है। जो जल धारारूपसे पतित करके शीतल कियाहै वह विष्टम्भकारक है। और जो उष्णजल वायु करके ताडित किया गयाहै अर्थात् जिसको खूब पवन लगगई है वह दुर्जर (बहुत देरमे कठिनतासे पचनेवाला) है। रात्रिमे कियाहुआ गरम जल कफके समूहको तोडताहै, वायुको अपकर्षण करताहै और अजीर्णको शीघ्रही पचा देताहै ॥ १०१–१०३ ॥

अथात्रविशेषः।

दिवा शृतं पयो रात्रौ गुरुतामधिगच्छति॥ रात्रौ शृतं दिवा पीतं गुरुत्वमधिगच्छति ॥ १०४ ॥ तत्तु पर्य्युषितं वह्निगुणोत्सृष्टं त्रिदोषकृत् ॥ गुर्वम्लपाकं विष्टम्भि सर्वरोगेषु निन्दितम् ॥ १०५ ॥ शृतशीतं पुनस्तप्तं तोयं विषसमं भवेत् ॥ निर्य्यूहोऽपि तथा शीतः पुनस्तप्तो विषोपमः१०६॥

दिनमे औटाया हुआ जल रातमे भारी होजाताहै और रातका औटाया हुआ जल दिनमे पिये तो भारी होताहै। यह औटाकर बासीहुआ जल–त्रिदोषकारक, भारी, अम्लपाकी, विष्टम्भकारक और सर्वरोगोमे निन्दनीय है। जो जल औटाकर शीतल हुआहै उसको यदि फिर गरम करै तो वह विषकी समान होजाताहै। इसी प्रकार क्वाथ भी शीतल होनेपर दुबारा गरम कियाजाय तो विषकी समान होजाताहै ॥ १०४–१०६ ॥

अथोष्णजललक्षणरात्रिपानगुणौ।

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेन द्विकेन वा ॥ अथ वा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ॥ १०७ ॥ श्लेष्मानिलाममेदोघ्नं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥ श्वासकासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि ॥ १०८ ॥

रात्रिमे अष्टावशेष रहे जलको, चतुर्थांश शेषरहे जलको अर्द्धावशेषको, अथवा केवल औटाये हुएही जलको उष्णोदक कहते हैं। रात्रिमे उष्णजलको पीनेसे–कफ, वात, आम और मेदा नष्ट होती है, अग्निदीपन होती है, वस्तिशोधक तथा श्वास, खाँसी और ज्वर नष्ट होता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथोष्णजलविशेषगुणाः।

उष्णं तदग्निजननं लघ्वच्छं वस्तिशोधनम् ॥१०९॥ पार्श्वरुक्पीनसाध्मानं हिक्कानिलकफापहम् ॥ शस्तं तृट्श्वासशूलेषु सद्यःशुद्धौ नवज्वरे ॥ ११० ॥

उष्णजल–अग्निको प्रगट करनेवाला, हलका, स्वच्छ, वस्तिशोधक तथा पसलियोकी पीडा, पीनस, आध्मान (अफरा), हिचकी, वात और कफके रोगोंको नष्ट करताहै एवं तृषा, श्वास, शूल, जिसने तत्काल वमन विरेचन करी हो और नवीनज्वर इनमें अत्यत हितकारक है ॥ १०९ ॥ ११० ॥

अथ शीतलजलविषयः ।

मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये॥ भ्रमश्रमपरीतेषु तमके श्वयथौ तथा॥ १११॥ धूमोद्गारे विदग्धेऽन्ने शोषे च मुखकण्ठयोः॥ ऊर्द्धगे रक्तपित्ते च शीतलाम्बु प्रशस्यते ॥ ११२ ॥

शीतलं जलम् आममेव न तु क्वथितम्, क्वथितन्तु शीतं दाहादिषु यदुक्तम्, तत् सज्वरेषु, विज्वरेषु तु दाहादिषु आमं शीतं प्रशस्यते इति भेदः ॥

सुश्रुत कहताहै कि—मूर्च्छा, पित्त, गरमी, दाह, विष, रुधिरके रोग, मदात्ययरोग, भ्रम, श्रम, तमक, श्वास, सूजन, धुएँकी डकार, भोजनकी विदग्ध अवस्थामें, मुखशोप, कंठशोप और ऊर्ध्वगत रक्तपित्त रोग इन रोगोंमें शीतल जलही हितकारक है। औटाकर शीतल किया हुआ जल-जो दाहादिक रोगोंमे कहाहै वह ज्वरसहित दाहादिकमें जानना । और ज्वररहित केवल दाहादिक रोगोंमे तो विना औटाया हुआही शीतल जल उत्तम है ॥ १११ ॥ ११२ ॥

अथ जलपाकावधिः ।

आमं जलं पाकमुपैति यामात्पक्वं पुनः शीतलमर्द्धयामात्॥ पक्वं कदुष्णञ्च ततोऽर्द्धकालादेवं तु पीतस्य जलस्य पाके ११३

कच्चाजल एक प्रहरमें पचताहै औटाकर शीतल किया हुआ जल चार घडीमे पचताहै और औटाया हुआ कुछ कुछ गरमजल दो घडीमें पचताहै, ये पिये हुए जलके पकनेके तीन समय कहे हैं ॥ ११३ ॥

अथ रोगविशेषे जलसंस्कारः ।

पित्तमद्यविषार्त्तेषु तिक्तकैः शृतशीतलम् ॥

जलं हितमिति शेषः । तिक्तानि बहुलानि तेभ्यो निश्चित्य योगमाह सुश्रुतः—

मुस्तपर्पटकोदीच्यच्छत्राख्योशीरचन्दनैः। शृतं शीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वरशान्तये ॥ ११४ ॥

छत्राऽत्र धान्याकः । यत आह निघण्टौ धन्वन्तरिः—

कुस्तुम्बरुः स्वर्णिका च च्छत्रा धान्यं वितुन्नकम् ॥ ११५ ॥ धान्यकं दीपनं रुच्यं पाचनं स्वादुपाकि च ॥ दोषत्रयतृषादाहश्वासकासज्वरप्रणुत् ॥ ११६ ॥ इत्यादि ।

चक्रदत्तवङ्गसेनवृन्दादयः छत्रास्थाने नागरं पठन्ति । तद्यथा—“मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ।” नागरम् कटुकमपि न अत्र पित्तजनकं मधुरपाकित्वादिति तेषामभिप्रायः, नागरं मुस्तकमिति केचित् । क्वचिदेकदेशेन समुदायोऽवगम्यते । यथा भीमो भीमसेन इति । चन्दनैरित्यत्र सहार्थे तृतीया । तेन मुस्तादिभिः षड्भिरामैरेव क्षुण्णैः सहितं जलं शृतं जलमेव केवलं यथर्तुपक्वं पश्चात्तच्छीतलीकृतं दद्यात्, तथा च वङ्गसेनः-

यदप्सु शृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते ॥ कर्षमात्रं ततो द्रव्यं ग्राहयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ ११७ ॥

अस्यायमर्थः, यद्यस्माद्धेतोः अप्सु जले शृतशीतासु शृतासु केवलासु एव यथर्त्तुपक्वासु शीतासु तासु शीतलीकृतासु षडंगादि द्रव्यं प्रयुज्यते आममेव संक्षुद्य जले स्थाप्यते ततः प्रक्षेप्यत्वात् कर्षमात्रं द्रव्यं समुचितं षडंगादि, प्रास्थिकेंऽभसि प्रस्थमात्रे क्वथितशीतले जले क्षिप्त्वा ग्राहयेत्।अत एव षडंगमभिधाय षडंगपानीयमिति वंगसेनादिभिरुक्तम् । अस्मिन् पक्षे चन्दनं श्वेतमेव ग्राह्यं न तु रक्तं, तत्कषायलेपयोरेव प्रयोक्तुं युक्तम् । यत आह—

कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचंदनम्॥ ॥ ११८ ॥ इति ।

षडंगपानीयमिदम्, षडंगादेः पाने अनुविधातव्ये प्रक्रिया विहिता वंगसेनेन—

कर्षमात्रं यथा द्रव्यं ग्राहयेत्प्रास्थिके-

ऽम्भसि ॥ अर्द्धशृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ॥ ११९ ॥

आदिशब्देन यूषयवागूविलेपीभक्तानि गृह्यन्ते । पानप्रक्रियां शार्ङ्गधरोऽप्येतामेवाह । क्षुण्णं द्रव्यं पलं साध्यं चतुःषष्टिपले जले ॥

अर्द्धशिष्टन्तु तद्देयं पाने पेयादिसंविधौ १२०

पानप्रयोगश्च षडंगमुक्तवान् । अस्मिन् पक्षे चन्दनं रक्तं ग्राह्यम् ॥

कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥ १२१ ॥ इति वचनात् ॥

तथा च रक्तचन्दनगुणाः ।

रक्तं हिमं स्वादुपाकं छर्दितृष्णास्रपित्तजित् ॥ तिक्तं नेत्रहितं वृष्यं ज्वरव्रणविषापहम् ॥ १२२ ॥

षडंगादि प्रयुज्यते इति आदिशब्देन वक्ष्यमाणादयो योगा उच्यंते । यथा—

श्रीपर्णीचन्दनोशीरसमधूकपरूषकम् ॥

श्रीपर्णीपरूषकयोः फलं ग्राह्यं मधूकस्य तु पुष्पम् ॥

पानं पित्तज्वरं हन्यात्सारिवाद्यं सशर्करम् ॥ १२३ ॥

हन्यात्सयष्टिमधुकं तथैवोत्पलपूर्वकम् ॥ पाने शृतं जलं किं वा सोत्पलं शर्करायुतम् ॥ १२४ ॥

हन्यात्पित्तज्वरमिति शेषः । उत्पलमत्र कमलमित्यादि ॥

पित्तदोष, मद्यविकार और विषसे पीडित मनुष्योंको कडवे द्रव्योंके द्वारा जलको औटाकर शीतल करके पीनेको देवै, यह अत्यन्त हितकारक है ॥

कडवे द्रव्य तो अनेक है, इसकारण उनमेंसे उन उन पदार्थोंका सुश्रुत निश्चय करके योग कहता है । नागरमोथा, पित्तपापडा, सुगधवाला, धनिया, खस और चन्दन इनको जलमें डालकर औटावै, पश्चात् उस जलको शीतल करके तृषा, दाह और ज्वरको शमन करनेके लिये पिये । यहाँ छत्राशब्दका अर्थ धनियेका लिया है, क्योंकि कुस्तुम्बुरु, स्वर्णिका, छत्रा, धान्य और वितुन्नक यह धनियेके नाम हैं, ऐसा धन्वन्तरिन निघण्टुमे कहाहै । धनिया अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिको उत्पन्नकर्ता, पाचन तथा पचनेमें मधुर है और वातादि तीनों दोष, तृषा, दाह, श्वास, खाँसी और ज्वरको नष्ट करताहै, इत्यादि इसके गुण भी कहेहैं । चक्रदत्त, वगसेन और वृन्द आदि वैद्य तो 'छत्रा' शब्दके स्थान मे 'नागर'को स्थापन करके "मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः" ऐसा पाठ कहतेहै । नागर अर्थात् सोंठ यद्यपि चरपरी है तथापि मधुरपाकी होनेसे पित्तको उत्पन्न करनेवाली नही है, ऐसा समझकर छत्राशब्दके स्थानमें नागरको स्थापन करतेहैं । और कितनेक वैद्य उक्त नागरशब्दका अर्थ 'नागरमोथा' करतेहैं जैसे कि, किसी स्थलमें, 'भीम, शब्दसे भीमसेनका ज्ञान होताहै इसीप्रकार और भी स्थानोंमें एक देशके कहनेसे समस्तका ज्ञान होताहै ॥ नागरमोथा आदि छः औषधियोंको कच्चा ही एकत्र कूटकर जलमे डालै, उस जलको ऋतुके अनुसार पकाकर पश्चात् शीतल करके पित्त आदि रोगियोंको देवै ॥

किन्तु वगसेन कहताहै कि, जलको ऋतुके अनुसार औटावै, पश्चात् शीतलकर उस ६४ तोले जलमे नागरमोथा आदि छः ओषधियोंको कच्चीही कूटकर सब एकत्र करके एक तोलाभर डालदेवै, ऐसे कहनेसे यह ज्ञान होताहै कि—वगसेन क्वाथ करनेका पक्ष नही लेता, केवल जल बनानेका ही पक्ष लेताहै । वगसेन आदि वैद्य नागरमोथा आदि छः औषधिरूप अगसे सस्कृत कियेहुए जलको 'षडगपानीय' कहतेहैं । यह पूर्वोक्त विषयको पुष्ट करताहै । यहाँ चन्दन कहनेसे सफेद चन्दन समझना, किन्तु लाल चन्दन नही समझना, क्योंकि क्वाथमे और प्रलेपमे लाल चन्दन लेना श्रेष्ठ है । कहा भी है "विशेष करके लाल चन्दन क्वाथमे और लेपमे लेना चाहिये", यह षडगपानीय बनानेकी विधि कही । और षडंग आदि पान बनाना होय तो वगसेन आदि बडे ग्रन्थोंके अनुसार बनाना जैसे कि, वह अपने ग्रन्थमे लिखते हैं । ६४ तोले जलमें कुटी हुई औषधि एक तोले डालकर पकावे, जब वह जल आधा शेष रहै तब उसका प्रयोग करै ।

पेया, यवागू, विलेपी और भात बनानेकी भी यहही विधि जाननी ॥

शार्ङ्गधर भी पान बनानेकी प्रक्रिया इस प्रकार कहता है कि, ६४ पल जलमें कुटी हुई औषधि एक पल (४ तोले) प्रमाण डालकर पकावै और जब वह जल आधा रहजाय तब उसको प्रयोग करें, पेया आदि बनानेकी विधि भी इसी प्रकार समझनी ॥

यहां जलका क्वाथ कहा है इसकारण यहां सफेद चन्दन नहीं किन्तु लाल चन्दन लेना चाहिये । क्योंकि–'विशेष करके क्वाथ और लेपमें लाल चन्दन लेना चाहिये' ऐसा कहा है ॥

"लाल चन्दन–शीतल, स्वादुपाकी, कडवा, नेत्रोंको हितकारी, वीर्यको बढानेवाला तथा वमन, तृषा, रक्त-पित्त, ज्वर, व्रण और विष इनको नष्ट करै है" यह लाल चन्दनके गुण कहे हैं ॥

पान बनानेके और भी अनेक प्रयोग हैं । कुम्भेरके फल, चन्दन, खस, महुएके फूल, फालसे, सारिवा और मिश्री इनसे बनाया हुआ पान पित्तज्वरको नष्ट करताहै । मुलैटी और कमल डालकर अथवा कमल और सफेद खाँड जलमें डालकर पकावै, फिर उसका पान बनाकर सेवनकरै, यह पित्तज्वरादि रोगोंको नष्ट करताहै । इत्यादि और भी अनेक प्रयोग जानने ॥११४–१२४ ॥

अथ दिननिद्रानिषेधः ।

दिवा स्वापं न कुर्वीत यतोऽसौ स्यात्कफावहः ॥ ग्रीष्मवर्ज्येषु कालेषु दिवास्वापो निषिध्यते ॥ १२५ ॥ उचितो हि दिवास्वापो नित्यं येषां शरीरिणाम्॥ वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा ॥ १२६ ॥

रोगी दिनमें शयन नहीं करै, क्योंकि दिनमें सोनेसे कफकी वृद्धि होतीहै, इसकारण ग्रीष्म ऋतुके विना शेष सर्व ऋतुओंमें दिनमें सोना नहीं चाहिये । परन्तु जिन मनुष्योंको सदैव दिनमें सोनेका अभ्यास है जो वह दिनमें नहीं सोवै तो उनके वायु आदि दोष कुपित होते हैं इसकारण उनके लिये दिनमें सोनेका निषेध नहीं है ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

अथ दिवाशयनार्हमनुष्याः ।

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतक्लान्तानतीसारिणः शूलश्वासवमीतृषापरिगतान्हिक्कामरुत्पीडितान् ॥ क्षीणान्क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान्वृद्धांस्तथाऽजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान्कामं दिवा स्वापयेत् ॥ १२७ ॥

व्यायाम (कसरत) अथवा अधिकतर परिश्रम करनेसे, स्त्रीप्रसंग करनेसे, अधिक मार्ग चलनेसे और अधिकतर हाथी घोडे आदिपर चढनेसे जो थक गये हैं उनको तथा श्रमयुक्त, अतिसाररोगी, शूलरोगी, श्वासरोगवाला, वमनयुक्त, तृषारोगी, हिक्कारोगी, वातसे पीडित, क्षीण, जिनका कफ क्षीण होगयाहो, बालक, मदिरा, अथवा अन्यान्य मादक नशाकी द्रव्योंको भक्षण करनेवाले, वृद्ध, अजीर्णरोगी, रात्रिमें जागनेवाले और उपवास करनेवाले अर्थात् जिन्होंने लंघन किया है ऐसे मनुष्योंको इच्छाके अनुसार दिनमें सुलावै ॥ १२७ ॥

अथ वातादिज्वरपाकावधिः ।

वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः ॥ श्लैष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः पाकमुपैति हि ॥ १२८ ॥

रसस्य आमत्वे अवधिमतिक्रम्यापि ज्वरस्तिष्ठति । यत आह सुश्रुतः–

बहुदोषस्य मन्दाग्नेः सप्तरात्रात्परं ज्वरे ॥ लंघनाम्बुयवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते ॥ १२९ ॥ तदा तं मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः ॥ कषायैः पाचनैर्हृद्यैर्ज्वरघ्नैः समुपाचरेत् ॥ १३० ॥ इति ॥

वातज्वर सात दिनमें पचताहै, पित्तज्वर दश दिनमें पचताहै और कफज्वर बारह दिनमें पचताहै । जो रस आम अर्थात् कच्चा होय तो इस अवधिके उपरान्त भी ज्वर रहताहै जैसाकि सुश्रुत कहताहै–"बहुत दोषयुक्त और मन्दाग्निवाले मनुष्यके सात दिनके पश्चात् ज्वर रहै और उसके दोष लंघन, उष्ण जल और यवागूसे भी न पचैं तो मुखकी विरसतानाशक, तृषानिवारक, अरुचिको दूर करनेवाले, पाचन करनेवाले, हृदयको हितकारी और ज्वरको

नष्ट करनेवाले ऐसे क्वाथोंके द्वारा चिकित्सा करै १२८-१३०

अथ ज्वरतरुणाद्यवस्था।

आसप्तरात्रात्तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ॥ द्वादशाहमभिव्याप्य मध्यं जीर्णं ततः परम् ॥ १३१ ॥

आसप्तरात्रादिति, अत्र रात्रिपदादयं रात्रिशब्दो दिवसस्य उपलक्षकः। तेन सप्तमदिवसादर्वाग् ज्वरः तरुण इत्यर्थः। तथाचोक्तं तन्त्रान्तरे-

ज्वरे व्यतीते षडहे जीर्ण इत्युच्यते बुधैः ॥ द्वादशाहात्परं जीर्णमाहुरन्ये मनीषिणः ॥ १३२ ॥

अतएव, जातूकर्णः-जीर्णः त्रयोदशदिवसे इति ॥

ज्वर सात दिनतक तौ तरुण कहाजाताहै, बारह दिनतक मध्यम कहाजाताहै और इसके पश्चात् जीर्ण कहाजाताहै ऐसा विद्वान् वैद्य कहतेहैं। 'आसप्तरात्रात्' इस पदमें जो रात्रि शब्द है वह दिनवाचक जानना। ऐसाही अन्य ग्रंथोमे भी कहा है कि-"छः दिनके पश्चात् ज्वर जीर्ण होजाताहै, ऐसा विद्वान् कहतेहैं"। कोई विद्वान् बारह दिनके पश्चात् ज्वरको जीर्ण कहतेहैं और इसीप्रकार जातूकर्ण ऋषि भी कहताहै कि-"ज्वर तेरहवे दिनमे जीर्ण होजाताहै" ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

अथ ज्वरौषधदानसमयः।

वातिके सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिके ॥ श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युञ्जीत भेषजम् ॥ १३३ ॥

पाययेदातुरं साममौषधं सप्तमे दिने ॥ शमनेनाथ वा दृष्ट्वा निरामं तमुपाचरेत् ॥ १३४ ॥

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं शृतम् ॥ वातज्वरे तथा पेयं कालिंगं सप्तमेऽहनि ॥ १३५ ॥

एतां क्रियां प्रयुञ्जीत षड्रात्रं सप्तमेऽहनि ॥ पिबेत्कषायसंयोगात्पेयां ज्वरविनाशिनीम् ॥ १३६ ॥

एतां क्रियां लंघनादिरूपां कषायसंयोगात् कषायेण साधितां पेयामित्यर्थः। खरनादेनाप्युक्तम्-

इति षड्रात्रिकः प्रोक्तो नवज्वरहरो विधिः ॥ ततः परं पाचनीयं शमनीयं ज्वरे हितम् ॥ १३७ ॥

सप्ताहादौषधं केचिदाहुरन्ये दशाहतः ॥ लंघने भोजिते केचिद्देयमामोल्वणे न तु ॥ १३८ ॥

सप्ताहात्सप्ताहमारभ्येत्यर्थः, अत्र ल्यब्लोपे कर्मणि पंचमी ॥

दशरात्रात्परं सर्वैर्दातव्यमिति निश्चितम् ॥ १३९ ॥ इति ॥

अत एव दशरात्रेण द्वादशाहेन वेति लंघनवता आतुरेणेत्यर्थः ॥

ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम् ॥ पाचनं पाययेद्वैद्यो निरामं सप्तमेऽहनि ॥ १४० ॥

सप्तमेऽहनि लघ्वन्नं दत्त्वा अष्टमे दिने कषायं पाययेदित्यर्थः ॥

सप्तरात्रात्परं केचिन्मन्यन्ते देयमौषधम् ॥ १४१ ॥

सप्तरात्रात् परम् अष्टमेऽहनि इत्यर्थः। केचिच्चरकादयः। चक्रदत्तोऽपि-

सप्तरात्रेण पच्यंते सप्तधातुगता मलाः ॥ निरामस्तु ततः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमे दिने ॥ १४२ ॥

एवं सति कषायदाने सप्तमाष्टमयोर्दिवसयोर्विकल्पः। तत्रापि वयोबलाग्निदोषदेशकालोचितं कुर्यात्। भेषजमन्नश्च दोषपाकं दृष्ट्वा दद्यादित्याह सुश्रुतः-

पैत्तिके च ज्वरे देयमल्पकालसमुत्थिते ॥

कफ इनके ज्वरको तथा ज्वरके उपद्रवोको उत्पन्न करनेका जो स्वभाव है वह स्वभाव बदल गया होय तो दोषोका पाक हुआ जानना, यह कितनेक वैद्योंका मत है। भूख,शरीरका हलकापन, ज्वरकी सूक्ष्मता,दोषों-का अपने अपने मार्गमे सचारण और उत्साह, इन लक्ष-णोसे जानना कि,ज्वर आमसे रहित होगया १४४-१४५॥

ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम्॥तत्राऽनुक्ते प्रभातं स्यात्कषायेषु विशेषतः॥ १४६ ॥ मुख्यभैषज्यसम्बन्धो निषिद्धस्तरुणज्वरे ॥ तोयपेयादिसंस्कारे त्वदोषं तत्र भेषजम् ॥ १४७ ॥ न कषायं प्रशंसन्ति नराणां तरुणे ज्वरे॥ कषायेणाकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुस्तराः ॥ १४८ ॥

आकुलीभूताः प्रवृद्धाः स्वमार्गं परित्यज्य इतस्ततो गताः। अत्र कषायशब्देन क्काथो गृह्यते। उक्ताश्च क्काथस्य पर्यायाः-

शृतं क्काथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते॥ तोयपेयादिसंस्कारे निर्दोषं तत्र भेषजम् ॥ १४९ ॥

तत्र तरुणज्वरे भेषजं मुख्यभेषजं क्काथरूपं, न तु कल्पनमुद्दिश्य कषायः प्रतिषिध्यते इति कल्पनं तोयपेययवाग्वादिकम्। ननु-स्वरसश्च तथा कल्कः क्काथश्च हिमफाण्टकौ ॥ ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १५० ॥

इति वचनात्स्वरसादयोऽपि कथं न निषिध्यन्ते, तत्राह-

तत्र यस्तु कषायः स्यात्स वर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥ १५१ ॥

चतुर्थभागावशेषकरणेन अष्टमभागशेषकरणेन च कषायवर्णः कषायरसश्च स्यात्। यः कषायः क्काथः, स तरुणज्वरे निषिद्धः। "पादशिष्टः कषायः स्यात्" ॥

अतः षडंगादिः तरुणज्वरे न निषिद्धः। पाकादूर्द्ध्वं पाके चोक्तलक्षणाभावेन कषायत्वाभावात् ॥

दोषा वृद्धा कषायेण स्तम्भितास्तरुणज्वरे ॥ स्तभ्यन्ते न विपच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम् ॥ १५२ ॥

कषायेण स्तम्भिताः प्रवृत्तये निवारिताः। यत आह कषायरसगुणान् 'कषायः स्तम्भनः शीतो रूक्षः पित्तकफापहः ॥' इत्यादि। स्तभ्यन्ते आध्मानं कुर्वन्ति, न विपच्यन्ते सुखेन न विपच्यन्ते दुःखं दत्त्वा विलंबेन विपच्यन्ते इति यावत्। अन्यच्च-

न च्यवन्ते न पच्यन्ते कषायैः स्तम्भिता मलाः ॥ तिर्यग्विमार्गगा वा ते घोरं कुर्युर्नवज्वरम् ॥ १५३ ॥

मनुष्योको औषधि सेवन करनेके पॉच काल कहेहैं, और जिस औषधिके पीनेका समय नही कहा है उसको प्रातःकाल सेवन करना चाहिये। कषाय अर्थात् काढेको विशेष करके प्रातःकाल ही पीना चाहिये। तरुणज्वरमें कषाय पीनेका निषेध है, परन्तु वह कषाय यदि जल और पेयादिके सस्कारके लिये उपयोगमें लाया गया होय तौ निषेध नहीं है। कहाभी है कि "मनुष्योको तरुण ज्वरमे कषाय देना नही चाहिये कारण यह है, कि-कषायसे वृद्धिको प्राप्त हुए दोष अपने मार्गको छोडकर आममे मिल जातेहैं, फिर उनको जीतना अत्यन्त कठिन होजाताहै"। शृत, क्काथ, कषाय और निर्यूह ये क्काथके नाम हैं। तरुण ज्वरमे जल, पेया और यवागूको सिद्ध करनेके लिये कषायका उपयोग करनेमे किसी प्रकार निषेध नहीं है॥

शंका-स्वरस, कल्क, क्काथ, हिम और फांट ये पॉचो काथ कहे जातेहैं और इनमें उत्तरोत्तर अधिक हलकापन है। इस वचनसे स्वरस आदि पॉचो पदार्थोको कषाय कहनेपर 'तरुण ज्वरमें कषाय पीना निषेध है' इस कहनेसे केवल एक क्काथकाही निषेध कैसे समझे, पॉचों कषायोका निषेध क्यों नही मानते ?

समाधान-जलका चौथा अथवा आठवॉ भाग शेषरहे

ऐसी रीतिसे जो पकाया हुआ क्वाथ कसैले रसका और कसैले रसयुक्त होजाय उसीको कषाय अर्थात् क्वाथ कहते हैं और वही तरुण ज्वरमें निषिद्ध है । यह शास्त्रका वचन है ॥

सोलह भाग जलका जो चारभाग जल शेषरहा होय ऐसी विधिसे जो पकाया गया हो उस क्वाथको कषाय कहतेह इसकारण तरुण ज्वरमें षडङ्ग आदि पानीका निषेध नहीं जानना. कारण यह है कि, अपाकके होनेसे अथवा अर्द्धपाकके होनेसे षडङ्ग आदिमें कषायके लक्षण नहीं मिलते । तरुण ज्वरमें बढेहुए दोष कषायासे स्तम्भन करनेसे स्तंभित होजातेहैं, परिपक्व नहीं होते परन्तु ऐसे बलात्कारसे स्तभित किये हुए दोष विषम ज्वरको पैदा करतेहे ॥ कषाय, स्तम्भन (दोषोंको रोकनेवाला), शीतल, रूखा तथा पित्त और कफको नष्ट करनेवाला है । इस वचनके कहे अनुसार कषायमें दोषोंको स्तम्भन करनेका गुण रहताहै, इसकारण तरुणज्वरमें कषायके देनेसे दोष वृद्धिको प्राप्त होकर स्तम्भन अर्थात् अफारेको उत्पन्न करतेहैं और सुखसे नहीं पकते, किन्तु दुःख देकर विलम्बसे पचतेहै । अन्य ग्रंथोमे भी कहा है कि—"कषायसे स्तम्भित हुए दोष स्थानसे नहीं टलतेहैं और न पकतेहैं, किन्तु वह टेढे मार्गमें जाकर तरुण ज्वरको अत्यन्त भयकर करदेतेहैं" ॥ १४६–१५३ ॥

अथ तरुणज्वरवमननिषेधः ।

अनवस्थितदोषाणां वमनं तरुणज्वरे ॥ हृद्रोग श्वासमानाहं मोहं च कुरुते भृशम् ॥ १५४ ॥

अयमर्थः । कफादिदोषोपस्थितौ स्वयमेव चेद्भवति वमनं न तद्दोषाय । अनवस्थितदोषाणां तरुणज्वरे वमनं यत्नकृतं हृद्रोगादीन्करोति इत्यर्थः । एतेन वचनेन तरुणज्वरे यत्नाद्वमनं निषिद्धम् । अवस्थाविशेषे तदपि कर्तव्यमित्याह—

सद्योभुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते ॥ वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः ॥ १५५ ॥

वमनं वेति विकल्पो लंघनापेक्षया । वमनार्हस्य इत्यनेन गर्भिण्यतिकृशातिवृद्धादिनिषेधः ॥

वमितं लंघयेत्प्राज्ञो लंघितं न तु वामयेत् ॥ वमनं क्लेशबाहुल्याद्धन्याल्लंघनकर्षितम् ॥ न कार्यं गुर्विणीबालवृद्धदुर्बलभीरुभिः ॥ १५६ ॥

अनशनमिति शेषः । अनेन अनशनवचनेन गुर्विण्यादीनाम अनशननिषेधः । ज्वरे सामे पाचनं निरामे शमनं पथ्यान्नं मण्डादिकञ्च दद्यात् । पाचनलक्षणं पश्चाद्गुणप्रस्तावे बोद्धव्यम् ॥

कफ आदि दोषोंको अधिकतर ऊपरको आनेसे जो अपने आपही वमन रद्द होजाय तब तो कोई हानि नहीं, किन्तु तरुण ज्वरमे जो कफादि ऊपरको नहीं आतेहो ऐसे रोगियोंको यत्नपूर्वक वमन नहीं करानी चाहिये । यत्नपूर्वक वमन करानेसे—हृदयरोग, श्वास, अफरा और मोह उत्पन्न होताहै इसकारण तरुण ज्वरमें यत्नसे वमन नहीं करानी चाहिये, तथापि अवस्थाविशेषमें वमन करानी निषेध नहीं है । जैसे कहाहै कि—"तत्काल भोजन किये हुए मनुष्यके तृप्तिसे जो ज्वर उत्पन्न हुआ होय और वह मनुष्य वमन कराने योग्य होय तथा- गर्भिणी, अत्यन्त कृश और अत्यन्त वृद्ध न होय तौ उसको लघनके बदले वमन करानी चाहिये ' ऐसा वाग्भटका मत है। इस विषयमें वृद्ध वाग्भट कहताहै कि—"जिसने वमन करी होय उसको लघन करानेचाहियें और जिसने लघन किये होय उसको वमन नही करानी चाहिये कारण यह है कि—वमन अत्यत क्लेशयुक्त होनेके कारण लघनसे कृश हुए मनुष्यको मारडालतीहै । गर्भवती स्त्री, बालक, वृद्ध, दुर्बल और भयभीत इनको वमन नही करावे, गर्भवती आदिका जो ज्वर आमसहित होय तौ पाचन औषधि देवै और जो आम रहित होय तौ शमन औषधि तथा पथ्य अन्नका रस इत्यादिक देवै, पाचनके लक्षण द्रव्यखडमे कहचुके हैं सो देख लेना ॥ १५४–१५६ ॥

अथ पाचनशमनौषधदानसमयः ।

पाययेदातुरं सामं पाचनं सप्तमे दिने ॥

शमनेनाथ वा दृष्ट्वा निरामं तमुपाचरेत्॥ ॥ १५७ ॥ कृशं चैवाल्पदोषञ्च शमनीयैरुपाचरेत् ॥ लालाप्रसेको हृल्लासो हृदयाशुद्ध्यरोचकौ ॥ १५८ ॥ तन्द्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता ॥ क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवाञ्ज्वरः ॥ १५९॥ आमज्वरस्य लिंगानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो जनयति ज्वरम् ॥ १६० ॥

भूयो बाहुल्येन ॥

पाययेद्दोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः ॥ स सुप्तं कृष्णसर्पन्तु कराग्रेण परामृशेत् ॥ १६१ ॥

इति वचनात् आमज्वरे भेषजनिषेधात्कथं सामे ज्वरे वा पाचनं देयम् ? उच्यते— निरुपद्रवे सामज्वरे पाचनं देयम् । सोपद्रवे तु सामे भेषजं निषिद्धम् ॥

सप्ताहात्परतोऽदुष्टे सामे स्यात्पाचनं ज्वरे ॥ निरामे शमनं स्तब्धे सामे नौषधमाचरेत् ॥ १६२ ॥

अदुष्टे निरुपद्रवे । स्तब्धे सोपद्रवे ॥

जो रोगी आमसहित होय तौ सातवे दिन पाचन देना चाहिये और जो आमरहित होय तौ शमनसे उपचार करै, तथा जो दुर्वल और अल्पदोप युक्त होय तौ भी शमनकीही औपधि देवै ।

शका—लारका गिरना, अथवा मुखसे पानीका गिरना, उवकाईका आना, हृदयका भारीपन, अरुचिका होना, तन्द्रा और आलस्य हो, भोजनका पाक न होय, मुखमे विरसता होय, शरीरमे भारीपन, क्षुधाका नाश, मूत्रका अधिक आना, शरीर बधासा हो और ज्वरका अधिक वेग होना ये आमज्वरके लक्षण हैं, आमज्वरमे औपधि नहीं देनी चाहिये । जो आमदोषोंमें औपधि दीजावै तौ वह ज्वरकी वृद्धि करतीहै । अन्यत्र भी कहा है कि "जो वैद्य आमज्वरमें भूलसे दोपोंको हरनेवाली औपधि देताहै वह सोते हुए काले सापको हाथके अग्रभागसे छूकर जगाताहै" इन वचनोसे सिद्ध होता है कि, आमज्वरमे औपधि नही देनी चाहिये, फिर तुम पाचन देना कैसे कहते हो ?

समाधान—जो आमज्वर उपद्रवोसे रहित होय तौ पाचन देना चाहिये और जो उपद्रवोंमे सहित होय तो कदापि औपधि नही देनी, क्योकि वाग्भट कहताहै कि "जो सात दिनके पश्चात् ज्वर आमसहित भी हो परन्तु उपद्रवोसे रहित होय तो पाचन देवै और आमसे रहित होय तो शमन देवै, किन्तु जो ज्वर आम और उपद्रव दोनोसे सयुक्त होय तौ कदापि औपधि नही देनी चाहिये" ॥ १५७–१६२ ॥

सामान्यज्वरपाचनकषायः ।

नागरं देवकाष्ठञ्च ध्यामकं बृहतीद्वयम ॥ दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितेभ्यो ज्वरापहम् ॥ १६३ ॥

ध्यामकं रोहिषं तदलाभे उशीरं दद्यात् । बृहतीद्वयं बृहत्फला सूक्ष्मफला च । बृहती क्षुद्रा बृहती चेति कण्टकारीद्वयं वा दद्यात् । "कण्टकारीद्वयं शुण्ठी ध्यामकं सुरदारु च" इति शार्ङ्गधरेण उक्तत्वात् । इति नागरादिक्वाथः ॥

सोंठ, देवदारु, रोहिपतृण, कटेरी और बडीकटेरी इनको समानभाग लेकर क्वाथ बनावे, पश्चात् ज्वररोगीको ज्वरके पचानेके लिये देवै यह सुश्रुत कहताहै इसी प्रकार शार्ङ्गधर भी कहताहै कि "दोनोप्रकारकी छोटी बडी कटेरी, रोहिपतृण, सोठ और देवदारु इन पाच औपधियोंका क्वाथ देना चाहिये" इसमे यदि रोहिपतृण न मिलै तौ उसके अभावमे खस लेनी चाहिये । इसको नागरादिक्वाथ कहते है ॥ १६३ ॥

सर्वज्वरेषु सामान्यसंशमनौषधिः ।

अथ संशमनीयानि कषायाणि निबोध मे ॥ सर्वज्वरेषु देयानि यानि वैद्येन जानता ॥ ॥ १६४ ॥ वृश्चीवो बिल्ववर्षाभूः पयः सोदकमेव च ॥ पचेत्क्षीरावशेषं तत्पेयं सर्वज्वरापहम् ॥ १६५ ॥

वृश्चीवः श्वेतपुनर्नवा। वर्षाभूः रक्तपुनर्नवा तथा च मदनपालः–

पुनर्नवः श्वेतमूलो वृश्चीवो दीर्घपत्रकः॥ पुनर्नवाऽपरा रक्ता वर्षाभूरक्तपुष्पकः१६६॥

सुश्रुत कहता है कि "अब मैं सगमनीय औषधियोंको कहताहूँ कि, जिनको वैद्य जानकर सर्व ज्वरोंमे प्रयोग करै। सफेद पुनर्नवा (साठ), वेलका गूदा, लाल पुनर्नवा (गदह पुनेरा), दूध और जल इन सबको मिलाकर पकावै, जब जलकर केवल दूध शेष रहै तब उतारकर छान लेवै, फिर शीतल करके पान करै तौ सर्व प्रकारके ज्वर दूर होतेहैं"। "सफेद जडवाले और लम्बे पत्तेवाले पुनर्नवेको वृश्चीव कहतेहैं और लाल फूलके तथा लाल जडवाले पुनर्नवेको रक्त पुनर्नवा कहतेहैं" ऐसा मदनपालनिघटुमें कहाहै॥ १६४–१६६॥

दुग्धपाकविधिः।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम्॥ क्षीरावशेषं पातव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः॥ १६७॥

उदकाद्विगुणं क्षीरं शिंशपोशीरमेव च॥ तत्क्षीरशेषं क्वथितं पेयं सर्वज्वरापहम्॥ १६८॥

चार तोले औषधि, बत्तीस तोले दूध और दूधसे चौगुना जल डाले, फिर सबको मिलाकर पकावे, जब जल जलकर केवल दूधही शेष रहे तब पिये, यह दूधपाककी विधि कही। दूसरे प्रकारसे भी कही है कि "जलसे दुगुना दूध लेकर उसमें सीसमका बुरादा और खस डालकर पकावै, जब दूध शेष रहे और जल जलजाय तब पिये, इसको पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होतेहैं"॥ १६७॥ १६८॥

अथ गुडूच्यादिक्वाथः।

गुडूचीधान्यकारिष्टं पद्मकं रक्तचन्दनम्॥ एषां क्वाथः सुप्रसिद्धः सर्वज्वरहरः स्मृतः॥ १६९॥ दीपनो दाहहृल्लासतृष्णाछर्द्यरुचि हरेत्॥ १७०॥

गिलोय, धनिया, नीमकी छाल, पद्माख और लालचन्दन इनका जगत्प्रसिद्ध क्वाथ सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला, अग्निप्रदीपक तथा दाह, उबकाई, तृषा, वमन और अरुचिको दूरकरनेवाला है॥ १६९॥ १७०॥

अथ संशोधननिषेधः।

छर्दिमूर्च्छामदश्वासभ्रमतृड्विषमज्वरान्॥ संशोधनस्य पानेन प्राप्नोति तरुणज्वरी॥ १७१॥

निषिद्धमपि संशोधनमवस्थाविशेषे देयम्॥

रोगे शोधनसाध्ये तु यं विद्याद्दोषदुर्बलम्॥ तं समीक्ष्य भिषक्कुर्याद्दोषप्रच्यावनं मृदु॥ १७२॥

दोषदुर्बलम् दोषैरुपचितैर्दुर्बलं न तु उपवासादिकृशम्॥

सद्योज्वरे विषेऽजीर्णे मन्देमावुदरे तथा॥ स्तन्यरोगे च हृद्रोगे कासश्वासेषु वामयेत्॥ १७३॥ जीर्णज्वरगरच्छर्दिगुल्मप्लीहोदरेषु च॥ शूले शोथे मूत्रघाते कृमिरोगे विरेचयेत्॥ १७४॥ चले दोषे मृदौ कोष्ठे नेक्षेत्तत्र बलं नृणाम्॥ अव्यापद् दुर्बलस्यापि शोधनं हि तदा भवेत्॥ १७५॥

कुतो बलं न अपेक्षणीयम् इत्याशंकायामाह, तदा तस्यामवस्थायां शोधनं दुर्बलस्यापि दोषदुर्बलस्यापि अव्यापद्भवेत्। छर्द्यादिव्याधिकृन्न भवतीत्यर्थः। बलवतः पुरुषस्य पक्वदोषस्य॥

पक्वोऽप्यनिर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन्महात्ययम्॥ विषमं वा ज्वरं कुर्याद्बलव्यापदमेव वा॥ १७६॥

पक्वः लंघनाम्बुपानपेयादिभिः। अनिर्हृतः अधोमार्गेण असंसृष्टः। महात्ययं विषमं ज्वरं चातुर्थिकं, तस्यैव महात्ययत्वादिति गदाधरः। गम्भीरमिति कार्तिकः। महात्ययं महाकष्टं वा। बलव्यापदं बलक्षयम्॥

सुश्रुत कहताहै कि "तरुण नवीन ज्वरवाला रोगी शोधन औषधि पियै तो वमन, मूर्च्छा, मद, नसा, श्वास, भ्रम, तृषा और विषमज्वर उत्पन्न होताहै"। यद्यपि तरुणज्वरमें संशोधनका निषेध है, तथापि अवस्थाविशेषमें संशोधन कराना चाहिये। कहा है, कि "रोगी दोषोंकी वृद्धिसे बहुत दुःखित होगया हो और रोग शोधनसे ही शांत होय, विना शोधनके शांत न होय तो वैद्यको उचित है कि, मृदुरीतिसे संशोधन देकर दोषोंको उखाडै तत्कालका उत्पन्न हुआ ज्वर, विषविकार, अजीर्णदोष, अग्निकी मन्दता, अरुचि, स्तन्यरोग, हृदयरोग, खाँसी और श्वास, इन रोगोंमे वमन (रद्द) करावै। जीर्णज्वर, विषविकार, वमन, गुल्म (बायगोला), प्लीहा, उदररोग, , सूजन, मूत्राघात और कृमिरोग इन रोगोंमें विरेचन (जुल्लाब) करानी चाहिये। जो दोष चचल होय और कोठा नरम होय तो वैद्य उसके बलाबलको विना विचारे ही शोधन औषधि देवै, कारण यह है कि, ऐसी अवस्थामें दोषोंसे दुर्बल हुए मनुष्यके शोधनसे वमनादि विकार उत्पन्न नही होतेहैं। बलवान् पुरुषके पकेहुए दोष जो अपने स्थानमे स्थित होयँ तौ उनका शोधन नहीं करनेसे अन्यान्यरोग उत्पन्न होतेहैं। सुश्रुत कहताहै कि—"लघनसे, जलपानसे, और पेयादिसे जो दोष पकगया है उसको यदि अधोमार्ग दस्त द्वारा न निकालाजाय तौ वह देहमें स्थित होकर मदात्यय, विषमज्वर अथवा बलक्षयको उत्पन्न करताहै"। महात्यय यह अत्यत हानिकारक चातुर्थिक है, ऐसा गदाधर आचार्य कहता है। महात्ययको गभीरज्वर ऐसा कार्तिक वैद्य कहताहै, अथवा महात्यय शब्दका अर्थ अत्यत कष्टका है॥ १७१–१७६॥

अथ संशोधनम्।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ताहरीतकीभिः कथितः कषायः॥ सामे सशूले कफवातपित्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च॥१७७॥

इति आरग्वधादिः क्राथः। अन्यच्च—

पथ्यारग्वधतिक्तात्रिवृदामलकैः शृतं तोयम्॥ पाचनसारकमुक्तं मुनिभिर्जीर्णज्वरे सामे॥ १७८॥

इति आरोग्यपञ्चकद्वयम्।

अमलतास, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड, इनका क्राथ आम और शूलयुक्त कफ, वात और पित्तज्वरमें अत्यंत हितकारी है, दीपन और पाचन है। हरड, अमलतास, कुटकी, निसोत और आमले इनका क्वाथ आमसहितजीर्णज्वरमे पाचन है और दस्तको लानेवाला है। इन दोनों क्वाथोंको आरोग्यपञ्चक कहते—हैं॥ १७७॥ १७८॥

अथ सारिवादिकल्कः।

अनन्ता वालकं मुस्तं नागरं कटुरोहिणी॥ पिष्ट्वा सुखाम्बुना कल्कं पाययेदक्षसम्मितम्॥ १७९॥ कल्कः स्वल्पेन कालेन हन्यात्सर्वज्वरामयान्॥ विदध्यात्कोष्ठसंशुद्धिं दीपयेच्च हुताशनम्॥ १८०॥

अनन्ता सारिवा॥

अनन्तमूल गोरीसॉव, सुगधवाला, नागरमोथा, सोंठ और कुटकी इनको मन्दोष्ण जलमें पीसकर एक तोलेभर पियै तो थोडेही दिनोंमें सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होतेहैं कोठा शुद्ध होताहै और जठराग्नि दीपन होती—है॥ १७९॥ १८०॥

अथ संशोधनशमनौषधनिषेधः।

पीताम्बुलंघनक्षीणो जीर्णो भुक्तः पिपासितः॥ न पिबेदौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरत्॥ १८१॥

पीताम्बुः पीततिक्ताम्बुः, भुक्तो भुक्तवानित्यर्थः। अत्र अध्यवसितादित्वात् कर्तरि क्तप्रत्ययः। इतरत् संशमनम्॥

जिस मनुष्यने कडवा जल पिया हो, जो लघन उपवास करनेसे क्षीण होगया हो, वृद्ध, जिसने तत्काल भोजन किया है और तृषासे पीडित इनको कदापि संशोधन और शमन औषधि नहीं पीनी चाहिये॥ १८१॥

अथ सुदर्शनचूर्णम्।

त्रिफला रजनीयुग्मं कण्टकारीयुगं शठी॥ त्रिकटु ग्रन्थिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः॥ १८२॥ कटुका पर्पटो मुस्तं त्रायमाणा च वालकम्॥ निम्बः पुष्करमूलश्च मधुयष्टी च वत्सकः॥ १८३॥

यवानीन्द्रयवो भार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रजा॥ वचात्वक्पद्मकोशीरचन्दनातिविषाबलाः ॥ १८४ ॥ शालिपर्णी पृश्निपर्णी विडंगं तगरं तथा ॥ चित्रकं देवकाष्ठञ्च चव्यं पत्रं पटोलजम् ॥ १८५ ॥ जीवकर्षभकौ चैव लवंगं वंशलोचनम् ॥ पुण्डरीकञ्च काकोली पत्रकं जातिपत्रकम् ॥ १८६ ॥ तालीसपत्रमेतानि समभागानि चूर्णयेत् ॥ अर्द्धांशं सर्वचूर्णस्य किरातं प्रक्षिपेत्सुधीः ॥ १८७ ॥ एतत्सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम् ॥ ज्वरांश्च निखिलान्हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ १८८ ॥ दोषजागन्तुकांश्चापि धातुस्थान्विषमज्वरान् ॥ सन्निपातोद्भवांश्चापि मानसानपि नाशयेत् ॥ १८९ ॥ शीतादीनपि दाहादीन्मेहं तन्द्रां भ्रमं तृषाम् ॥ कासं श्वासञ्च पाण्डुञ्च हृद्रोगं कामलामपि ॥ १९० ॥ त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलं निवारयेत् ॥ शीताम्बुना पिबेदेतत्सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ ॥ १९१ ॥ सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् ॥ तथा ज्वराणां सर्वेषां चूर्णमेतत्प्रणाशनम् ॥ १९२ ॥

पुष्करमूलाभावे तु कुष्ठमपि दद्यात् । भार्ङ्ग्यभावे कण्टकारीमूलम् । सौराष्ट्र्यभावे स्फटिकां दद्यात् । तगरालाभे कुष्ठं देयम् । जीवकर्षभयोरलाभे विदारीकन्दस्य भागद्वयं दद्यात् । पुण्डरीकं श्वेतकमलम्, काकोल्यभावे अश्वगन्धामूलम्, तालीसपत्रकाभावे स्वर्णताली प्रदीयते इति, अथ वा कण्टकारीजटा देया ॥

त्रिफला (हरड, बहेडा आमला), हलदी, दारुहल्दी, कटेरी, बडीकटाई, कचूर, त्रिकुटी (सोंठ, मिरच, पीपल), पीपरामूल, मूर्वा, गिलोय धमासा, कुटकी, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाण, सुगंधवाला, नीमकीछाल, पोहकरमूल, मुलैठी, कुडेकी छाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, सहिजनेके बीज, सोरठकी मट्टी, वच, दालचीनी, पद्माख, खस, चन्दन, अतीस, खिरैटी, शालिपर्णी (सरिवन), पृश्निपर्णी (पिटिवन), वायविडग, तगर, चीता, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, लोंग, वंशलोचन, पुण्डेरिया, सुगंधद्रव्य, काकोली, तेजपात, जावित्री और तालीसपत्र यह सब समान भाग लेवै और सबकी बराबर चिरायता लेवै, पश्चात् सबका एकत्र चूर्ण करै । इसको सुदर्शनचूर्ण कहतेहैं। यह सुदर्शन चूर्ण—तीनो दोषोंको हरनेवाला है और सर्वप्रकारके ज्वरोंको निःसन्देह नष्ट करनेवाला है। तथा दोषोंसे उत्पन्न हुए आगन्तुज (चोट आदिके लगनेसे उत्पन्न हुए) ज्वर, धातुगतज्वर, विषमज्वर, सन्निपातोत्पन्नज्वर और मानसिक पीडासे उत्पन्न हुए ज्वर, इन सबको अवश्य दूर करताहै । एव शीतादिविकार, दाहादिदोष, प्रमेह, तन्द्रा, भ्रम, तृषा, खाँसी, श्वास, पाण्डुरोग, हृदयरोग, कामलारोग, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, कटिशूल, जंघाशूल और पार्श्वशूल (पसलियोंमें पीडा) को निवारण करताहै । सम्पूर्ण ज्वरोंको नष्ट करनेके लिये इसको शीतल जलके साथ भक्षण करै जिसप्रकार विष्णुका सुदर्शन चक्र दैत्योंको नष्ट करताहै, उसीप्रकार यह सुदर्शन चूर्ण सम्पूर्ण ज्वरोंको नष्ट करताहै । इस चूर्णमे यदि पोहकरमूल न मिले तो उसके बदले कूठ लेना चाहिये, भारंगी न मिले तो कटेरीकी जड लेनी चाहिये, सोरठकी मट्टी न मिले तो फटकिरी, तगर न मिले तो कूठ और तालीशपत्र न मिले तो स्वर्णतालीश अथवा कटेरीकी जड लेनी चाहिये । जीवक और ऋषभक इन दोनोंके अभावमे विदारीकद दोभाग लेना चाहिये तथा काकोलीके न मिलनेपर असगन्धकी जड डालनी चाहिये ॥ १८२–१९२ ॥

इति सुदर्शनचूर्णम् ।

अथ निम्बादिचूर्णम् ।

निम्बपत्रवराव्योषयवानीलवणत्रयम् ॥ क्षारो दिग्वह्निरामेषुत्रिनेत्रान् क्रमशोंऽशकान् ॥ १९३ ॥ सर्वमेकीकृतं चूर्णं प्रत्यूषे भक्षयेन्नरः ॥ एकाहिकं द्व्याहिकञ्च तथा त्रिदिवसज्वरम् ॥ १९४ ॥ चातु-

र्थिकं महाघोरं सततं सन्ततं दिवा ॥ धातुस्थं च त्रिदोषोत्थं ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ १९५ ॥

नीमके पत्ते दश भाग, हरड एक भाग, आमले एक भाग, बहेडा एक भाग, सोंठ एक भाग, मिर्च एक भाग, पीपल एक भाग, अजवाइन पॉच भाग, सैंधानिमक एक भाग, विरियासचरनिमक एक भाग, कालानिमक एक भाग और जवाखार दोभाग लेवै, इन सबको एकत्र पीस कूट चूर्ण बनाकर प्रातःकाल भक्षण करै। इसको खानेसे ऐकाहिक ज्वर (एकन्तरा), द्व्याहिक (एकतरा), त्र्याहिक (तिजारी), चातुर्थिक (चौथिया), सतत (दिनरातमें दोवार आनेवाला), संतत (सात, दश और बारह दिनतक एकसा रहनेवाला) ज्वर, धातुगत ज्वर और तीनों दोषोसे उत्पन्न हुआ ज्वर अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ १९३–११५ ॥

इति निम्बादिचूर्णम्।

अथ शट्यादिक्काथः।

शटी निशाद्वयं दारु शुण्टी पुष्करमूलकम् ॥ एला गुडूची कटुका पर्पटश्च यवासकः ॥ १९६ ॥ शृंगी किराततिक्तश्च दशमूली तथैव च॥ क्काथमेषां पिबेत्कोष्णं सिन्धुचूर्णयुतं नरः ॥ ज्वरान्सर्वान्द्रुतं हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ १९७ ॥ इति शट्यादिक्काथः। अनुभूतोऽयम्।

कचूर, हलदी, दारुहलदी, देवदारु, सोंठ, पोहकरमूल, इलायची, गिलोय, कुटकी, पित्तपापडा, जवाखार, काकडाशिगी, चिरायता और दशमूलकी समस्त औषधि, इनका क्काथ बनाकर उसमें सैंधे निमकका चूर्ण डालकर सुहातासुहाता पीवै। यह सर्व प्रकारके ज्वरोंको निःसंदेह नष्ट करताहै। यह हमारा कईवार आजमाया हुआ है ॥ १९६ ॥ १९७ ॥

अथ हरीतक्यादिगुटी।

हरीतकीत्रिवृद्वृद्धदारकाणां पृथग्भवेत् ॥ पलद्वयं कणा शुण्ठी गुडूची गोक्षुरो वरी ॥ १९८ ॥ सहदेवी विडंगश्च प्रत्येकं पलसम्मितम् ॥ मधुना वटिकां कृत्वा खादञ्ज्वरमपोहति ॥ कासं श्वासं मलस्तम्भं वह्निमान्द्यं नियच्छति ॥ १९९ ॥ अनुभूतेयम् ॥

हरड, निसोत, त्रिधारा और विधारा, यह प्रत्येक आठ आठ तोले लेवै, पीपल, सोंठ, गिलोय, गोखरू, सतावर, सहदेई और वायविडग, यह प्रत्येक चार चार तोले लेवै, सबको एकत्र पीसकर सहतमे गोली बनालेवै, इन गोलियोंको भक्षण करनेसे ज्वर, खॉसी, श्वास, मलरोध और अग्निकी मंदता नष्ट होतीहै। यह भी हमारी अनुभव करीहुई है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

अथ लाक्षादितैलम्।

लाक्षा दशाक्षा त्वरुणा षडक्षा सचन्दनं लोहितचन्दनश्च ॥ त्वक्पत्रकं वारि सुरा समुस्ता प्रत्येकमेतानि पलोन्मितानि ॥ ॥ २०० ॥ किराततिक्तस्त्रिवृता सतिक्ताऽमृताकणापर्पटकण्टकार्यः ॥ विडंगविश्वामलकानि वासारसानिशावीरणसिन्दुवाराः ॥ २०१ ॥ एतानि देयानि पृथक्पलार्द्धमानानि सर्वाणि च भेषजानि ॥ कल्कानमीषां विदधीत गव्यदुग्धेन वै सार्द्धतुलामितेन ॥ २०२ ॥ तैलं तिलानां तु तुलानुमानं तेनैव कल्केन शनैः पचेच्च ॥ हन्याज्ज्वरांस्तैलमिदं समस्तान्कुर्याद् बलं वीर्यमतीव पुष्टिम् ॥ २०३ ॥ विमर्दनादाशु परिश्रमं भ्रमं शमं नयेत्सञ्जनयेद् द्युति तनोः ॥ तथा व्यथामस्थिसमुद्भवामपि प्रहृत्य निद्रां समुपार्जयेत्सुखम् ॥ २०४ ॥

अरुणा मञ्जिष्ठा, वारि बालम्, रसा रास्ना। इति लाक्षादितैलम् ॥

उत्तम पीपलकी लाख दश तोले, मजीठ ६ तोले, चन्दन चार तोले, लाल चन्दन ४ तोले, दालचीनी

४ तोले, तेजपात ४ तोले, सुगन्धवाला ४ तोले, कपूर-कचरी ४ तोले और नागरमोथा ४ तोले, चिरायता २ तोले, निसोत दो तोले, कुटकी दो तोले, गिलोय २ तोले, पीपल दो तोले, कटेरी २ तोले, वायविडंग २ तोले, सोंठ दो तोले, आमले दो तोले, अडूसा २ तोले, रास्ना दो तोले, हलदी २ तोले, खस २ तोले और निर्गुण्डी (सम्हालू) २ तोले, इन सबको ६०० तोले गायके दूधमें पीस लेवै, फिर इस कल्कको ४०० तोले तिलके तेलमें मिलाकर उत्तम विधिसे तेलको सिद्धकरे । इसको धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निसे पकावै यह तेल सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरनेवालाहै, तथा बल, वीर्य और अत्यन्त पुष्टिको उत्पन्न करताहै । इस तेलको शरीरादिकमें मर्दन करनेसे परिश्रम और श्रम तत्काल दूर होजाताहै, शरीरमें कान्ति उत्पन्न होतीहै, हड्डियोंकी पीडा दूर होतीहै तथा सुखपूर्वक निद्रा आतीहै ॥ २००-२०४ ॥

अथ द्वितीयलाक्षादितैलम् ।

लाक्षारससमं तैलं तैलान्मस्तु चतुर्गुणम्॥ अश्वगन्धानिशादारुकौन्तीकुष्ठाब्दचन्दनैः ॥ २०५॥ समूर्वा रोहिणी रास्नाशताह्वा-मधुकैः समैः ॥ सिद्धं लाक्षादिकं नाम तैलमभ्यञ्जनादिना ॥ २०६ ॥ सर्वज्वर-क्षयोन्मादश्वासापस्मारवातनुत् ॥ यक्ष-राक्षसभूतघ्नं गर्भिणीनां च शस्यते ॥२०७॥

मस्तु दधिजलम् । कौन्ती रेणुका । चन्दनमत्र श्वेतमेव न तु रक्तम् । रोहिणी कटुका । इति लाक्षादितैलम् ॥

लाखका रस एक भाग, तिलका तेल एक भाग, दहीका तोड ४ भाग, असगन्ध, हलदी, देवदारु, रेणुका, कूठ, नागरमोथा, चन्दनमूर्वा, कुटकी, रास्ना, सतावर और मुलैठी, इन प्रत्येकका कल्क दोदो तोले लेवै, सबको मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्धकरै । इस तेलको मर्दन करनेसे सर्व प्रकारके ज्वर, क्षय, उन्माद, श्वास, अपस्मार (मृगी), वातरोग, यक्ष, राक्षस और भूत-बाधा दूर होतीहै । यह तेल गर्भिणी स्त्रियोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ २०५-२०७ ॥

अथ महालाक्षादितैलम् ।

लाक्षा हरिद्रा मञ्जिष्ठा फेनिलं मधुकं बला ॥ लामज्जकं चन्दनं च चम्पकं नीलमुत्पलम् ॥ २०८ ॥ प्रत्येकमेषां षण्मुष्टीः पक्का तोये चतुर्गुणे ॥ चतुर्भा-गावशेषे तु गर्भे चैतत्समावपेत् ॥२०९॥ रेणुका पद्मकश्चैव वाजिगन्धा तथैव च ॥ वेतसं चोरकं कुष्ठं देवदारु नखं त्वचम् ॥ ॥ २१० ॥ शतपुष्पा पुण्डरीकं मांसी मधुकमेव च ॥ एभिरक्षमितैः कल्कैः कषायेणव पेषितैः ॥ २११ ॥ मस्तुशु-क्तारनालानामाढकांशं समावपेत्॥ क्षीरा-ढकसमायुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥२१२॥ अभ्यङ्गात्तैलमेतद्धि शीघ्रं दाहानपोहति॥ व्यपोहति तथा वातपित्तश्लेष्मभवज्वरम्॥ ॥ २१३ ॥ सप्रलापं सतृष्णञ्च तालुशो-षभ्रमान्वितम् ॥ ग्रहोपसृष्टा ये बाला रक्षसा दूषिताश्च ये ॥ तेषां कष्टं प्रशम-येत्तैलं लाक्षादिकं महत् ॥ २१४ ॥

फेनिलं बदरी । लामज्जकम् उशीरवत् पीतच्छवि तृणविशेषः । "लामज्जकं यदा न स्यादुशीरं दीयते तदा" । चम्पकमित्यस्य स्थाने कुत्रापि गैरिकमिति पाठः । नीलो-त्पलस्यालाभे तु कुमुदं देयमिष्यते। समावपे-त्प्रक्षिपेदित्यर्थः। चोरकं ग्रन्थिपर्णस्य भेदः 'भटिउर' इति नैपालदेशे भवति, तदलाभे ग्रन्थिपर्णं देयम् । पुण्डरीकं श्वेतकमलम् । मस्तु दधिजलम् । शुक्तं सन्धानभेदः । आरनालः सोऽपि सन्धानभेदः । इति महालाक्षादितैलम् ॥

लाख, हलदी, मजीठ, बेर (केचिन्मते रीठा), मुलैठी, खिरैंटी, लामज्जकतृण, चन्दन, चम्पा (केचिन्मते गेरू) और नीलेकमल, ये प्रत्येक चौबीस चौबीस तोले लेकर चौगुने जलमें पकावै, जब

चौथाभाग जल शेषरहे तब उतारकर छानलेवै, फिर उसमें रेणुका, पद्माख, असगन्ध, वेत, भटेउर, कूठ, देवदारु, नख (सुगध द्रव्य), दालचीनी, सौंफ, पुण्डेरिया (किसीके मतसे सफेद कमल), जटामासी- और मुलेठी ये प्रत्येक एक एक तोले लेकर उसी क्वाथसे पीसकर मिलादेवै, पश्चात् दहीका तोड, शुक्त और आरनाल प्रत्येक एक एक आढक, दूध एक आढक और तिलका तेल १६ पल, सबको मिलाकर यथाविधिसे तेलको पकावै। इस तेलको शरीरादिकसे मर्दन करै तो शीघ्रही दाह जलन नष्ट होतीहै। तथा प्रलाप, तृष्णा, तालुशोष और भ्रम सहित वात, पित्त और कफज्वरको नष्ट करैहै। जो बालक ग्रहसे ग्रसित हैं और जो मनुष्य राक्षस बाधासे पीडित हैं उनके कष्टको यह महालाक्षादि तैल अवश्य दूर करताहै। शुक्त और आरनालके लक्षण प्रथम कह आये हैं सो देखलेना। यदि लामज्जकतृण न मिलै तो उसके बदले खस लेनी, नील कमलके न मिलने पर कुमुद (कमोदिनीका फूल या बबूला) लेना चाहिये। भटेउरके अभावमें गठिवन लेना चाहिये, इसको महालाक्षादि तैल कहतेहैं॥ २०८–२१४॥

अथ नवज्वरे रसप्रयोगः।

सूतो गन्धष्टंकणः शोषणश्च सर्वैस्तुल्या शर्करा मत्स्यपित्तैः॥ भूयोभूयो मर्दयेत्तत्रिरात्रं वल्लो देयः शृङ्गवेरद्रवेण॥ २१५॥ तापे शीतं व्यञ्जनैस्तक्रभक्तं वृन्ताकाढ्यं पथ्यमेतत्प्रदिष्टम्॥ अह्नैवोग्रं हन्ति सद्योज्वरन्तु पित्ताधिक्ये मूर्ध्नि तोयं च दद्यात्॥ २१६॥

अस्य प्रक्रिया। पारा शुद्ध भाग १, गंधकभाग १, सोहागाभृष्ट भाग १, मरिचभाग १, शर्कराभाग ४, रोहितमत्स्यपित्तभाग ४, प्रतिदिनं सर्वं दिनत्रयं मर्दयेत्। रसामिमं रक्तिकात्रयमितम् आर्द्रकरसेन दद्यात्। ओदनं तक्रं वृन्ताकफलं भोक्तुं दद्यात्। व्यञ्जनाद्यैः शीतलमुपचारं कुर्यात् अयमुदकमञ्जरीरसो नवज्वरेषु रसरत्नप्रदीपे उक्तः॥

शुद्धपारा एकभाग, शुद्धगन्धक एकभाग, कालीमिर्च एकभाग, भुनाहुआ सुहागा एकभाग, सफेद खांड चारभाग और मछलीका पित्त चारभाग, इन सबको एकत्र खरलमें डालकर तीनदिनतक बारबार घोटे, फिर इसमेंसे दो रत्ती प्रमाण लेकर अदरखके रसके साथ सेवन करै, पश्चात् जो गरमी मालूम होय तो शीतल जल पियै, पखे आदिसे हवाकरै, इत्यादि शीतल प्रयोगकरै। तक्र (मट्ठा, छांछ) और भात तथा बैंगन इनका भोजन, यह सब इसपै पथ्य है अर्थात् इनको भक्षणकरै। इसको सेवन करनेसे अत्यन्त उग्र तरुण ज्वर एकही दिनमें दूर होजाताहै, इस रसको खानेमें यदि अधिक गरमी मालूम होय अथवा पित्तकी तेजी होय तो रोगीके मस्तकपर शीतल जलकी धारा देवै यह सर्वप्रकारके नवीन ज्वरोंमें हितकारी है, यह 'उदकमजरीरस' रसरत्नप्रदीपमें कहा है॥ २१५–२१६॥

अथ ज्वरधूमकेतुरसः।

अब्धात्समं सूतसमुद्रफेनं हिंगुं सुगन्धं परिमृद्य यामम्॥ नवज्वरे वल्लयुगं त्रिघस्रमार्द्राम्भसाऽयं ज्वरधूमकेतुः॥ २१७॥

अस्य प्रक्रिया यथा—पाराशुद्ध, गन्धकशुद्ध, हिंगुलशुद्ध, समुद्रफेन, समभागं सर्वं याममेकम् आर्द्रकरसेन संमर्द्य रक्तिकाषट्कमितम् आर्द्रकरसेन दिनत्रयं नवज्वरी भक्षयेद्दिनत्रयान्नवज्वरो नश्येत्। इति ज्वरधूमकेतुः, रसेन्द्रचिन्तामणौ॥

शुद्धपारा, शुद्धसमुद्रफेन, शुद्धसिगरफ और शुद्धगन्धक, इन सबको समानभाग लेकर एकत्र करै फिर एक पहर तक अदरखके रसमें खरल करके छः रत्तीकी गोलियां बनालेवै, प्रति दिन एक गोली अदरखके साथ सेवनकरै, इस प्रकार तीन दिनतक सेवन करनेसेही तरुण (नवीन) ज्वर नष्ट होताहै यह 'ज्वरधूमकेतु रस' रसेन्द्रचिन्तामणिग्रन्थमें कहा है॥ २१७॥

इति ज्वरधूमकेतुः।

अथ महाज्वरांकुशो रसः ।

शुद्धसूतो विषं गन्धः प्रत्येकं शाणसम्मितः ॥ धूर्तबीजं त्रिशाणं स्यात्सर्वेभ्यो द्विगुणा भवेत् ॥ २१८ ॥ हेमाह्वा कारयेदेषां सूक्ष्मं चूर्णं प्रयत्नतः ॥ जम्बीरबीजकैर्देयं चूर्णं गुञ्जाद्वयोन्मितम् ॥ ॥ २१९ ॥ आर्द्रकस्य रसेनापि ज्वरं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ एकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ॥ २२० ॥ विषमञ्च ज्वरं हन्यान्नवं जीर्णञ्च सर्वथा ॥ महाज्वरांकुशो नाम्ना रसोऽयं सर्वसम्मतः ॥ २२१ ॥

प्रक्रिया–शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्धविष. प्रत्येक टंक १, धत्तूरबीज टंक ३, चोक टंक १२, सर्वेषां चूर्णमतिसूक्ष्मं कर्तव्यम् । इति महाज्वरांकुशः सर्वज्वरेषु शार्ङ्गधरे ॥

शुद्धपारा १ टक, शुद्ध वत्सनाभविष १ टक, शुद्धगंधक १ टक, धतूरके बीज ३ टक और चोख (पीले फूलवाली कटेरीकी जड) १२ टक, इन सबको एकत्र बारीक पीसकर चूर्ण करलेवै, इसमेंसे दो रत्ती प्रमाण जम्भीरीनींबूके रसमें, अदरखके रसमें अथवा जीरेके साथ सेवन करै । इसको सेवन करनेसे त्रिदोषज्वर, एकाहिकज्वर द्व्याहिकज्वर, त्र्याहिकज्वर, चातुर्थिकज्वर, विषमज्वर, नवीनज्वर और जीर्णज्वर इत्यादि सब प्रकारके ज्वर नष्ट होतेहैं । यह महाज्वरांकुश रस सर्व वैद्योंकी सम्मतिसे बनाया गयाहै और शार्ङ्गधरमें कहा है ॥ २१८–२२१ ॥

अथज्वरघ्नी वटिका ।

एको भागो रसाच्छुद्धाच्छैलेयः पिप्पली शिवा ॥ आकारकरभो गन्धः कटुतैलेन शोधितः ॥ २२२ ॥ फलानि चेन्द्रवारुण्याश्चतुर्भागमिता अमी ॥ एकत्र मर्दयेच्चूर्णमिन्द्रवारुणिकारसैः ॥ २२३ ॥ माषोन्मितां वटीं कृत्वा दद्यात्सद्योज्वरे बुधः ॥ छिन्नारसानुपानेन ज्वरघ्नी वटिका मता ॥ २२४ ॥

शैलेयः छर इति लोके । शिवा हरीतकी । आकारकरभः 'अकरकरा' इति लोके । चतुर्भागमिता अमी शैलेयादयः षट् समुदिता भागचतुष्टयमिताः । इति ज्वरघ्नी वटिका शार्ङ्गधरे ॥

शुद्धपारा एक भाग, तथा भूरिछरीला, पीपल, हरड, अकरकरा, कडवे तेलसे शुद्ध कियाहुआ गन्धक और इन्द्रायनके फल, ये सब चार चार भाग लेवै, इन सबको एकत्र करके इन्द्रायनके रसमें खरल करै और उरदकी बराबर गोलियें बनालेवै, इसको गिलोयके रसके अनुपानसे नवीन ज्वरमें देवै । इसको ज्वरघ्नी वटिका कहतेहैं शार्ङ्गधरमें कहा है ॥ २२२–२२४ ॥

अथ द्वितीयज्वरघ्नी वटिका ।

रसं गन्धश्च दरदं जैपालं क्रमवर्द्धितम् ॥ दन्तीरसेन सम्पिष्य वटी गुञ्जामिता भवेत् ॥ २२५ ॥ प्रभाते सितया सार्द्धमशिताशीतवारिणा ॥ एकेन दिवसेनैव नवज्वरहरी भवेत् ॥ २२६ ॥

शुद्धपारा एकभाग, शुद्धगन्धक दोभाग, शुद्ध सिंगरफ तीनभाग और शुद्धजमालगोटेके बीज चारभाग लेवै, सबको एकत्र पीसकर दन्ती (जमालगोटेकी जड), के रसमें खरलकर और गुंजाकी समान गोलियें बनालेवै एक गोली प्रातःकाल सफेद चीनी और शीतल जलके साथ सेवन करै तो एकही दिनमें नवीन ज्वर नष्ट होजाताहै यह ज्वरघ्नीवटिका रसरत्नप्रदीपमें लिखी है २२५–२२६

अथ नवज्वरहरी वटी ।

रसो गन्धो विषं शुण्ठीपिप्पली मरिचानि च ॥ पथ्या विभीतकं धात्री दन्तीबीजं च शोधितम् ॥ चूर्णमेषां समांशानां द्रोणपुष्पीरसैः पुटेत् ॥ २२७ ॥ वटीं माषनिभां कुर्याद्भक्षयेन्नूतने ज्वरे ॥ इति नवज्वरहरी वटी ॥

शुद्धपारा, शुद्धगधक, शुद्धवत्सनाभ विष, सोंठ, पीपल, कालीमिरच, हरड, बहेडा, आमला और शुद्ध कियेहुए जमालगोटेके बीज यह सब समान भाग लेकर चूर्ण करै, पश्चात् द्रोणपुष्पी (गूमा) के रसमें भावना देकर खरल करै फिर उरदके समान गोलिये बनालेवै, इनको नवीन ज्वरमें सेवन करै ॥ २२७ ॥

अथ सर्वज्वरहरवटी ।

एकभागो रसो भागद्वयं शुद्धश्च गन्धकम्॥ गरलस्य त्रयोभागाश्चतुर्भागा हिमावती॥ ॥ २२८॥ जैपालकः पञ्चभागो निम्बुद्रवविमर्दितः कृमिघ्नप्रमिता ॥ वट्यः कार्याः सर्वज्वरच्छिदः ॥ २२९ ॥ शृङ्गवेरेण दातव्या वटिकैका दिने दिने ॥ जीर्णज्वरे तथाऽजीर्णे सामे वा विषमे तथा ॥ ज्वरं सर्वं निहन्तीयं दावो वनमिवानलः ॥ २३० ॥

शुद्धपारा एकभाग, शुद्धगधक दोभाग, शुद्धवत्सनाभ विष तीनभाग, सत्यानासी कटेरी (जिसमें पीलादूध निकलताहै, पीलेफूल होते हैं और काले दाने निकलते हैं) की जड चारभाग और शुद्धजमालगोटे पाँचभाग लेवै, सबको एकत्र पीसकर नीबूके रसमें खरल करै और बायविडगकी समान गोलियें बनालेवै,प्रतिदिन एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करै, यह सर्वज्वर हरवटी सर्वप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करै है, तथा जीर्णज्वर, अजीर्णज्वर, सामज्वर अथवा विषमज्वरको दूर करदेती हैं. जिसप्रकार दावाग्नि वनको भस्म करदेती है ॥ २२८–२३० ॥

अथ सामान्यज्वरे महाज्वरांकुशरसः ।

शुद्धं सूतं विषं गन्धं धूर्तबीजं त्रिभिः समम् ॥ चतुर्णां द्विगुणं व्योषं चूर्णं गुञ्जाद्वयोन्मितम् ॥ २३१ ॥ आर्द्रकस्य रसैः किं वा जम्बीरस्य रसैर्यतम्॥ महाज्वरांकुशो नाम्ना सर्वज्वरविनाशनः ॥२३२ ॥ एकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकञ्च चतुर्थकम् ॥ विषमं वा त्रिदोषं वा ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ २३३ ॥

प्रक्रिया–शुद्धपारदटंकः १, शुद्धविषटंकः १, शुद्धगन्धकटंकः १, धत्तूरबीजटंकः ३, त्रिकटु प्रत्येकटंकः ४, सर्वेषां चूर्णमति सूक्ष्मं कर्तव्यम् ॥

इति महाज्वरांकुशः सर्वज्वरेषु ।

शुद्धपारा एकभाग, शुद्धविष एकभाग, शुद्ध गंधक एकभाग, धतूरेके बीज तीन भाग,सौंठ चार भाग, कालीमिर्च चार भाग और पीपल चार भाग लवैं, सबको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण करै, इसमेसे प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण अदरखके रसके साथ अथवा जम्भीरी नींबूके रसके साथ सेवन करै । यह महाज्वरांकुश रस सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है, तथा एकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक, विषमज्वर और त्रिदोषज्वरको नष्ट करनेवाला है ॥ २३१–२३३ ॥

अथ श्वासकुठाररसः ।

सूतं गन्धं विषं चैव टंकणं च मनःशिला॥ एतानि टंकमात्राणि मरिचं त्वष्टटंककम्॥ ॥ २३४ ॥ कटुत्रयं टंकषट्कं खल्ले क्षिप्त्वा विचूर्णयेत् ॥ रसः श्वासकुठारोऽयं सर्वज्वरहरः परः ॥ २३५ ॥

इति श्वासकुठारो रसः, श्वासे सर्वज्वरे, रसरत्नाकरे ॥

शुद्धपारा एकटक, शुद्धगधक एकटक, शुद्ध वत्सनाभ विष एकटक, सुहागा एकटक, शुद्धमैनशिल एकटक, कालीमिर्च ८ टक और त्रिकुटेकी तीनो औषधि ६ टक लेवै, सबको एकत्र करके खरल करै, यह श्वासकुठाररस सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवालाहै, यह रसरत्नाकर ग्रथमें लिखाहै ॥ २३४ ॥ २३५ ॥

अथ ज्वरांकुशः ।

दारुमूषां शिखिग्रीवां रसकञ्च पृथक् पृथक् ॥ टंकत्रयानुमानेन गृहीत्वा कनकद्रवैः ॥२३६॥ मर्दयेत्त्रिदिनं कार्या वटी चणकमात्रया॥ मरिचैरेकविंशत्या सप्तभिस्तुलसीदलैः ॥ २३७ ॥ खादेद्वटीद्वयं पथ्यं दुग्धभक्तं सशर्करम् ॥ तरुणं विषमं जीर्णं हन्यात्सर्वज्वरं ध्रुवम् ॥ २३८ ॥

दारुमूषा दारुमूषी। शिखिग्रीवा तुत्थम् । रसकं 'खपरिआ' इति लोके । प्रत्येकं स्यात् टंकत्रयम् ३ धत्तूरपत्रस्य रसेन मर्दयेत् । ज्वरांकुशः सर्वज्वरेषु ॥

दारुमूषा (विषविशेष), शुद्धतूतिया और शुद्धखपरिया प्रत्येक तीन तीन टंक लेकर धतूरेके रसमें तीन दिनतक

खरल करै और चनेकी बराबर गोलियें बनालेवै, प्रतिदिन दो गोली २१ कालीमिर्च और सात तुलसीके पत्तोंके साथ सेवन करै । इसपै मिश्री मिलाकर दूध और भातका भोजन करै, यह ज्वरांकुश रस–तरुणज्वर, विषमज्वर, जीर्णज्वर और सर्वप्रकारके ज्वरोको नष्ट करै है ॥ २३६–२३८ ॥

अथ हुताशनरसः ।

नागरं कर्षमात्रञ्च टंकणं कर्षकद्वयम् ॥ मरिचं सार्द्धकर्षं स्यात्तावद्दग्धवराटकम् ॥ ॥ २३९ ॥ विषं कर्षचतुर्थांशं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ रसो हुताशनो नाम्ना खाद्यो गुञ्जामितो ज्वरे ॥ २४० ॥

सोंठ एक तोला, सुहागा दो तोले, कालीमिर्च १॥ तोला, कौडीकी भस्म १॥ तोला और शुद्धविष तीन मासे लेवै, सबको एकत्रकर पीस लेवै तो यह हुताशन रस बन ताहै इसमेंसे प्रतिदिन एक रत्ती प्रमाण, ज्वरमें खाय, इससे सर्वप्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २३९ ॥ २४० ॥

अथ ज्वरघ्नी वटिका ।

शुद्धजैपालटंकं तु कट्वी टंकद्वयोन्मिता ॥ गैरिकं टंकमेकञ्च कन्यानीरेण मर्दयेत् ॥ ॥ २४१ ॥ कलायसदृशी कार्या वटिका ताञ्च भक्षयेत् ॥ शीतलेन जलेनैव वटी जीर्णज्वरापहा ॥ २४२ ॥

शुद्ध जमालगोटा ४ मासे, कुटकी ८ मासे और गेरू ४ मासे, इन सबको खरलमें डालकर घीकुवारके रससे खरल करै और मटरकी बराबर गोली बनालेवै, इसमेंसे एक गोली प्रतिदिन भक्षण करै, ये जीर्णज्वरको नष्ट करै है ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

अथ रविसुन्दररसः ।

द्विभागतालेन हतं च ताम्रं रसं च गन्धं च समानमायुः ॥ विषं समं च द्विगुणञ्च ताम्रं त्रिःसप्तवारेण दिवाकरांशौ॥२४३॥ विमर्द्य चारिष्टरसेन चूर्णं गुञ्जैकदत्तं सितया समेतम् ॥ ज्वरांकुशोऽयं रविसुन्दराख्यो ज्वरान्निहन्त्यष्टविधान्समस्तान् ॥ २४४ ॥

अस्य प्रक्रिया। पारदटंकः १, गन्धटंकः १, विषटंकः १, द्विगुणतालकहतताम्रटंकः २, रोहितमत्स्यकपित्तटंकः १, सर्वमेकत्र चूर्णयित्वा निम्बपत्ररसैर्भावयित्वा २१वारानष्णे संशोष्य रत्तिकामात्रं १ श्वेतशर्करया भक्षणीयम् इति सर्वज्वरे रविसुन्दरो रसः ॥

शुद्धपारा १ टक, शुद्धगधक १ टक, शुद्धविप १ टक, दुगुनी हरतालसे माराहुआ ताँवा २ टक और रोहूमछलीका पित्त १ टक लेवै, सबको एकत्र नीमके पत्तोके रसमें खरल करके २१ भावना देवै और २१ वार सूर्यकी धूपमें सुखावै, फिर इसमेसे एक रत्ती प्रमाण लेकर मिश्रीके साथ सेवन करै तो यह ज्वरोके लिये अकुशरूप रविसुन्दररस आठप्रकारके अथवा सब प्रकारके ज्वरोको नष्ट करताहै २४३।२४४

अथ कज्जली ।

शुद्धं सूतं तथा गन्धं खल्वे तावद्विमर्दयेत् ॥ सूतं न दृश्यते यावत्किन्तु तत्कज्जलं भवेत् ॥ २४५ ॥ एषा कज्जलिका ख्याता बृंहणी वीर्यवर्द्धिनी ॥ नानानुपानयोगेन सर्वव्याधिविनाशिनी ॥ २४६ ॥

शुद्धपारा और शुद्ध गधक दोनोको समान भाग लेकर खरलमें तबतक मर्दन करै कि जबतक पारा दीखै, जब मर्दन करते करते पारा दीखना बद होजावै और कज्जलकी समान होजाय तो यह कज्जली बनती है, यह कज्जली–पुष्टिकारक और वीर्यको बढानेवाली है, तथा अनेक अनुपान विशेषोंसे सर्व रोगोंको हरनेवाली है । कज्जली बनानेकी विधि और गुण रसरत्नप्रदीपमें कहे हैं ॥ २४५ ॥ २४६॥

अथ रसपर्पटी ।

जपापत्ररसेनाथ वर्द्धमानरसेन च ॥ भृंगराजरसेनापि काकमाच्या रसेन च ॥ रसं संशोधयेत्तेन तत्समं शोधयेद्बलिम् ॥ ॥ २४७ ॥ भृंगराजरसैः पिष्ट्वा शोषयेदर्करश्मिभिः ॥ सप्तधा वा त्रिधा वापि पश्चाच्चूर्णन्तु कारयेत् ॥ २४८ ॥ चूर्णयित्वा समं तेन रसेन सह मर्दयेत् ॥

नष्टसूतं यदा चूर्णं भवेत्कज्जलसन्निभम् ॥ ॥२४९॥ निर्धूमबदरांगारे द्रवींकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ तत्र तं महिषीविष्ठास्थापिते कदलीदले ॥ २५० ॥ निक्षिपेत्तदुपर्य्यन्यत्पत्रं दत्त्वा प्रपीडयेत् ॥ शीतलश्च ततः पत्रात्समुद्धृत्य विचूर्णयेत्॥एवं सिद्धा भवेद्व्याधिघातिनी रसपर्पटी ॥ २५१ ॥ ज्वरादिव्याधिभिर्व्याप्तं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः ॥ चकार कृपया युक्तः सुधावद्रसपर्पटीम् ॥ २५२ ॥ रत्तिकासम्मितां तावद्भृष्टजीरकसंयुताम् ॥ गुञ्जार्धभृष्टहिङ्ग्वाढ्यां भक्षयेद्रसपर्पटीम् ॥ रोगानुरूपभैषज्यैरपि तां भक्षयेद्बुधः॥२५३॥ पिबेत्तदनु पानीयं शीतलं चुलुकत्रयम् ॥ प्रत्यहं तस्य चैकैकां रत्तिकां वर्द्धयेद्भिषक् ॥ २५४ ॥ नाधिकां दशगुञ्जातो भक्षयेत्तां कदाचन ॥ एकादशदिनारम्भात्तां ततो वापकर्षयेत् ॥ २५५ ॥ एवमेतां समश्नीयान्नरो विंशतिवासरान्॥ शिवं गुरूंस्तथा विप्रान्पूजयित्वा प्रणम्य च ॥ २५६॥ श्रद्धया भक्षयेदेतां क्षीरमांसरसाशनः ॥ ज्वरश्च ग्रहणीं वापि तथातीसारमेव च ॥ २५७ ॥ कामलां पाण्डुरोगश्च शूलं प्लीहं जलोदरम् ॥ एवमादीन्गदान्हत्वा हृष्टः पुष्टश्च वीर्यवान् ॥ जीवेद्वर्षशतं साग्रं वलीपलितवर्जितः २५८

प्रथम पारेको लेकर जवा (गुडहल अर्थात् ओडहुल) के पत्तोंके रसमें, सफेद अरण्डके रसमें, भॉगरेके रसमे और मकोयके रसमें यत्नपूर्वक शोधन करै, फिर उसीकी समान गन्धक लेकर भॉगरेके रसमें पीसकर सूर्यकी धूपमें सुखावै, इस प्रकार सातवार या तीनवार गन्धकको शुद्ध करलेवै, पश्चात् उस गन्धकके चूर्णको शुद्ध कियेहुए पारेके साथ खरलमें डालकर मर्दन करै, जब मर्दन करते करते पारा दीखना बन्द होजाय तथा कज्जलकी समान काला होजाय तब उसको लोहेकी करछीमे करके बेरकी लकडियोंके धुएँ रहित अंगारोंपै उस करछीको रख देवै, जब वह गरम होकर पानीकी समान पतली होजाय तब भैंसके गोबरके ऊपर एक केलेका पत्ता रख देवै और शीघ्रताके साथ उसके ऊपर करछीमेंसे कज्जलीको डालदेवै और ऊपरसे दूसरा पत्ता दबाकर ढकदेवै जब शीतल होजाय तब उस पत्तेसे उठाकर चूर्ण करलेवे इसप्रकार व्याधिनाशक रसपर्पटी सिद्ध होतीहैं। पूर्वकालमें श्रीशिवने जब इस जगत्को ज्वरादि रोगोंसे व्याप्त देखा तब कृपा करके अमृतकी समान इस रसपर्पटीको बनाया था, इसमेंसे एक रत्ती प्रमाण लेकर एक रत्ती भुने जीरेके साथ और आधीरत्ती भुनी हींगके साथ भक्षण करै और यथा रोगोंमें यथा यथा अनुपानोंके साथ भक्षण करै, उसके ऊपर तीन चुल्लू शीतल जल पियै, प्रतिदिन एक २ रत्ती बढाकर भक्षण करै और दश गुंजासे अधिक न बढावे, जब ग्यारहवॉं दिन होजाय तब एक २ क्रमसे घटातेजाय घटाते २ फिर एक रत्तीतक करलेवै। इस प्रकार बीसदिनतक सेवन करै, महादेव, गुरु और ब्राह्मणोंकी पूजा करके तथा उनको प्रणाम करके श्रद्धासे इसको भक्षण करै। इसपै दूध और मांसरस (सोरुआ) भोजन करै। इसको सेवन करनेसे ज्वर, अतीसार, संग्रहणी, कामला, पाण्डुरोग, शूल, प्लीहा-तिल्ली और जलोदररोग नष्ट होताहै, तथा रोगी हृष्ट, पुष्ट और वीर्यवान् होजाताहै। और वह मनुष्य १०० वर्षसे अधिक, वलिपलितसे रहित होकर जीता है ॥ २४७–२५८ ॥

इति रसपर्पटी।

अथ ज्वरिणोऽन्नकालनिर्णयः।

क्षुत्सम्भवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च ॥ काले वा यदिवाऽकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ २५९ ॥

आमे पाकं गते नृणां यदा भोजनलालसा ॥ भवेत्काले ह्यकाले वा सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ २६० ॥

अथ ज्वरपाककालान्नदानकालौ ।

वातिकः सप्तरात्रेषु दशरात्रेण पैत्तिकः ॥ श्लैष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः पाकमुपैति हि ॥ २६१ ॥

ज्वरस्य पाक उपशमः ज्वरपाकेनैव रसपाको दोषपाकोऽपि कथितः । यथा दोषपाकं विना ज्वरपाको न भवति रसपाकं विना दोषपाकश्च न भवति । ननु यथा पैत्तिकज्वरो दशाहोरात्रेण पाकं याति । एकादशदिनेऽन्नं दीयते । तथा श्लैष्मिको ज्वरो द्वादशाहोरात्रेण पाकं याति । त्रयोदशे दिवसेऽन्नं दीयते । तथा वातिको ज्वरः सप्ताहोरात्रेण पाकं याति । अष्टमे दिवसेऽन्नं कथं न दीयते । कथं सप्तम एव दिवसेऽन्नं दीयते इति । उच्यते—

कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लंघनं बहु ॥ आमक्षयादूर्द्धमपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ २६२ ॥

इति वचनादामरसपाके जाते आहारलाभं विना वायुः क्षणमात्रमपि सोढुं न शक्नोति स आशुकारित्वात्क्षणादाक्षेपकादीन्विकारान्सञ्जनयति । अतो वातिके ज्वरे पाकदिनानामन्तिमे सप्तम एव दिनेऽन्नं दीयते ॥

ज्वराभिभूतः षडहे व्यतीते विपक्वदोषः कृतलंघनादिः ॥ यो भेषजं खादति वैद्यवश्यो निःसंशयं हन्त्यचिरात्स रोगान् ॥ २६३ ॥

ज्वराभिभूतः वातज्वराभिभूतः विपक्वदोषः पक्ववातः । कृतलंघनादिः आदिशब्दात् कृतपक्वजलपाननिवातगृहवासगुरूष्णवसनधारणादिः भेषजमिति अन्नस्यापि उपलक्षणम् ॥

ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नं प्रतिभोजितम् ॥ पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययत्तु तम् ॥ २६४ ॥ इति ॥

ज्वरितं वातज्वरिणम् । षडहेऽतीते इति उपलक्षणम् । पित्तज्वरिणं दशाहेऽतीते । श्लेष्मज्वरिणं द्वादशाहेऽतीते । लघ्वन्नं भोजितं ज्वरिणम् ॥

पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेत्पुनः ॥ स एव सर्वज्वरिणं दिनान्ते भोजयेल्लघु ॥ २६५ ॥

दिनान्ते, अन्तशब्दोऽत्र मध्यवाची तेन त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य मध्यभागे पित्तस्य प्राधान्यसमये ॥

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्द्धसंश्रयाः ॥ वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात् ॥ २६६ ॥

ते वातपित्तश्लेष्माणः । पित्तकालोऽपि मध्याह्नादर्वाक् ॥

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत् ॥ याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः ॥ २६७ ॥ श्लेष्मक्षये प्रवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ वेगापायेऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ॥ २६८ ॥

तदा पित्तप्राधान्यसमये, अन्यथा उक्तसमयादन्यथा वेगापाये जठराग्निवेगनाशे तद्भोजनं ज्वरवेगाभिवर्द्धनं भवतीत्यर्थः ॥

रस दोष और मलोंके पकनेपर रोगीको भूँख लगतीहै, वह भूँखका समय हो या न हो उसीको अन्नकाल कहतेहैं. अर्थात् रोगीको अन्न भोजनकेलिये देनेका वही समय है और भी कहाहै "जब मनुष्योंके आम पच जातीहै तब भोजनकी इच्छा उत्पन्न होतीहै चाहे वह समय हो अथवा न हो, उसीको अन्नकाल कहतेहैं अर्थात् वही भोजन देनेका समय कहाहै" इससे यह सिद्ध होताहै कि, जब ज्वर पकजाय तब अन्न देना चाहिये । वातज्वर सातरात्रिमें, पित्तज्वर दश रात्रिमें और कफज्वर बारह-

दिनमें पक (च) ता है, जब ज्वरका पाक होताहै तब रस और दोषोंका पाक भी होताहै, क्योंकि विना दोषोंका पाक हुए ज्वरका पाक नहीं होताहै और विना रसका पाक हुए दोषोंका पाक नही होता ॥

शंका—पित्तज्वर दश दिनरातमें पचताहै और ग्यारहवे दिन उसमें अन्न दिया जाताहै, तथा कफज्वर बारह दिनरातमें पचताहै और तेरहवे दिन उसमें अन्न दिया जाताहै उसीप्रकार वातज्वर सात दिनमें पचताहै, उसमे भी आठवें दिन अन्न देना चाहिये सो आठवें दिन अन्न क्यों नही देते, सातवेही दिन क्यों अन्न देतेहैं ?

समाधान—"कफ और पित्त ये दोनो धातु द्रवरूप अर्थात् पतले होनेक कारण बहुतसे लंघनोंको सहतेहैं, परन्तु वायु तौ आम पकजानेके पश्चात् क्षणभर भी लंघनको नही सहसक्ती," इससे सिद्ध होताहै कि—आमरसके पकनेके पश्चात् आहार न मिले तौ क्षणभर भी लंघनको नहीं सहसक्ती। ये शीघ्रकारी होनेके कारण विकलता आदि विकारोंको उत्पन्न करदेतीहै, इस कारण वातज्वरमें पचनेके अन्तदिन अर्थात् सातवेंही दिन अन्न दिया जाताहै। धन्वन्तरि भी कहतेहैं कि—"वातज्वरवाला मनुष्य वैद्यके कहे अनुसार लंघन, उष्णजलपान, वातरहित स्थानमें निवास, भारी और गरम वस्त्रोंका धारण इत्यादि नियमोंको पालता हुआ वातदोषके पचजानेपर छः दिनके पश्चात् सातवे दिन अन्न और औषधिको जो भक्षण करताहै वह मनुष्य थोडेही कालमें रोगोंको नष्ट करदेता है" इसीप्रकार चरक भी कहताहै कि-"वातज्वरवाले मनुष्यको छः दिनके पश्चात् पित्तज्वरवालेको दशदिनके पश्चात् और कफज्वरवालेको बारहदिनके पश्चात् हलका अन्न भोजन कराकर पाचन अथवा शमन क्काथ पिलाना चाहिये" और भी कहाहै कि "वैद्य सर्व ज्वरवाले रोगियोको पाचन अथवा शमन क्काथ पिलावै। और दिनके तीनभाग करै, उसके मध्यभागमे अर्थात् पित्तकी प्रधानताके समयमें हलका अन्न देवै।" पित्तका प्राधान्यसमय दिनका मध्यभाग है ऐसा वाग्भटके कथनसे सिद्ध होताहै, वाग्भट कहताहै कि—"यद्यपि वात, पित्त और कफ सम्पूर्ण शरीरमे व्याप्त हैं तथापि अनुक्रमसे हृदयके और नाभिके नीचेके भागमे मध्य भागमे और ऊपरके भागमे विशेष करके रहते है और उसी प्रकार अनुक्रमसे अवस्थाके, दिनके, रात्रिके, तथा भोजनके अन्तमें, मध्यमें और आदिमें प्रधानता पाई जातीहै। यद्यपि पित्तकी प्रधानताका दिनका सम्पूर्ण मध्यभाग है, तथापि रोगीको दुपहरसे पहिले ही अन्न देना चाहिये, क्योंकि एक प्रहरके मध्यमे भोजन नहीं करना चाहिये। और दोपहरतक भोजनविना (भूखा) नहीं रहना चाहिये कारण यह है कि—पहिले प्रहरमे रसकी उत्पत्ति होतीहै और दूसरे प्रहरमें भोजन नही करनेसे बलका नाश होताहै ॥

शंका—उपरोक्त वचनसे जो यह कहा कि एक प्रहरके भीतर भोजन नही करना चाहिये और दुपहरका समये भोजन किये विना नही छोडना चाहिये. इसमे क्या कारण है जो एक प्रहरके भीतर तथा दो प्रहरके बाद भोजन निषेध किया ?

समाधान—"दिनके मध्यभागमें कफके क्षय होनेसे अग्नि अधिकतर बढकर बलवान होजातीहै, इस कारण जठराग्निके वेगके समयमे ही भोजन देना चाहिये। अग्निका वेग शांत होनेके पश्चात् जो भोजन दिया जावे तो वह भोजन ज्वरके वेगको बढाताहै" ऐसा शास्त्रमे कहा है, इसकारण दो पहरसे पहिले ही भोजन देना चाहिये, यह हमारा मत है ॥ २५९–२६८ ॥

अथ विषमज्वरेऽन्नदानसमयः ।

सर्वज्वरेषु सप्ताहं मात्रावल्लघु भोजयेत् ॥ वेगापायेऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ॥ २६९ ॥

सर्वज्वरेषु सर्वविषमज्वरेषु वेगापाये ज्वरवेगापाये भोजयेत् । अन्यथा ज्वरवेगापायं विना तद्भोजनं ज्वरवेगाभिवर्द्धनं भवति ॥

चरक कहताहै कि—"सर्व प्रकारके विषम ज्वरोंमे जब ज्वरका वेग शांत होजाय तौ सात दिन पर्यन्त मात्राके अनुमानसे हलका अन्न भोजन करावै और जो ज्वरके वेगके विना शांत हुएही भोजन दिया जाय तौ वह भोजन ज्वरके वेगको बढानेवाला होताहै" ॥ २६९ ॥

अथ भोजनादिस्थाननिर्णयः ।

आहारनिर्हारविहारयोगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः ॥ २७० ॥

श्रेष्ठ पुरुषोंको उचित है कि—आहार (भोजन), मलमूत्रादिका त्याग, स्त्रीसंग निर्जन (एकांत) स्थानमें करें ॥ २७० ॥

अथ ज्वरोपवेशनगुणः ।

ज्वरे प्रमेहो भवति स्वल्पैरपि विचेष्टितैः ॥ निषण्णं भोजयेत्तस्मान्मूत्रोच्चारौ च कारयेत् ॥ २७१ ॥

निषण्णं यथास्थानस्थितमेव न तु स्थानान्तरं नीतम् ॥

सुश्रुत कहताहै कि "ज्वरमें अल्प चेष्टा करनेसे अर्थात् अधिकतर उठने बैठनेसे अथवा चलने फिरनेसे प्रमेह रोग उत्पन्न होजाताहै, इसकारण ज्वररोगी जहां बैठा होय वहां ही उसे भोजन करादेवै और उसी स्थानके निकट मल-मूत्र त्याग करावे किन्तु भोजनादि करानेके लिये दूसरी जगह न लिया जावे" ॥ २७१ ॥

अथ कवलविधिगुणौ ।

यथादोषोचितैर्द्रव्यैः कर्तव्यः कवलग्रहः ॥ अरोचकास्यवैरस्यमलपूतिप्रसेकहृत् ॥ ॥ २७२ ॥ भृष्टजीरकचूर्णेन सिन्धुजन्मयुतेन च ॥ जिह्वादन्तान्मुखस्यान्तर्घृष्ट्वा कवलमाचरेत् ॥ २७३ ॥ मुखे मलं विगन्धत्वं विरसत्वं च नश्यति ॥ मनः प्रसन्नं भवति भोजनेऽतिरुचिर्भवेत् ॥ २७४ ॥

ज्वररोगी भोजन करनेके समय यथा दोषानुसार द्रव्योंका कवलग्रह (कुल्ले) करै कि—जिससे अरुचि, मुखकी विरसता, मुखका मैल, मुखमें दुर्गन्धका आना और मुखमें वारवार पानीका भरभर आना ये सब दूर होतेहैं भुनेहुए जीरेके चूर्णमें सैंधेनिमकका चूर्ण मिलाकर उससे मुखके भीतर जीभ और दांतोंको घिसकर कवल (कुल्ले) करै। कवलविधिके करनेसे मुखका मैल, दुर्गन्धता और विरसता नष्ट होतीहैं, चित्त प्रसन्न होताहै और भोजनमें अधिक रुचि उत्पन्न होतीहै ॥ २७२–२७४ ॥

अथ ज्वरिणे हितवस्तुदातव्यता ।

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ॥ अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽपि च ॥ २७५ ॥

अयमर्थः । यद्यपि ज्वरितस्य हिते भक्ष्येऽरुचिर्भवेत्, तथापि ज्वरितो हितमेवाश्नीयादिति नियमः ॥

गुर्वभिष्यन्द्यकाले च ज्वरी नाद्यात्कथञ्चन ॥ न तु तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय च ॥ २७६ ॥ आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्यावन्तं कालमातुरः ॥ तावत्कालं स लघ्वन्नमश्नीयात्सुविरिक्तवत् ॥ २७७ ॥

आनद्धः स्तिमितैर्दोषैः अपक्वैर्दोषैर्व्याप्त इत्यर्थः ॥

सातत्यात्स्वादभावाच्च पथ्यं द्वेषत्वमागतम् ॥ २७८ ॥

सातत्यादेकस्यैव भक्ष्यस्य सर्वदा उपयोगात्स्वाद्वभावात् भक्ष्यान्तरादपि विस्वादुतः पथ्यमप्रियं स्यात्तथापि तदेव पथ्यम् ॥

कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत्पुनः ॥ २७९ ॥

अथ ज्वरितोऽन्नकाले अश्नीयादेवेति द्वितीयो नियमः कुतः इति चेत् हि यतो हेतोः अभुञ्जानः क्षीयते । पक्वदोषधातुर्भवति ततः म्रियतेऽपि च ॥

ज्वररोगीको हितकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे अरुचि होय तौ भी उसको हितकारक ही पदार्थ भोजन करावे । क्योंकि—सुश्रुत कहताहै कि—"भारी और अभिष्यन्दकारक पदार्थ ज्वररोगीको कभी भी किसी रीतिसे भी नहीं भक्षण करने चाहिये. और उसी प्रकार विना समयमें भी भोजन नहीं करना चाहिये । कारण यह है कि, अहित पदार्थोंका कियाहुआ भोजन ज्वरवालेकी आयुको और सुखको नष्ट करताहै । जबतक ज्वरवाला मनुष्य आमदोषोंसे व्याप्त रहै, तबतक वह अत्यन्त विरक्तकी समान थोडा और हलका अन्न भोजन करता रहै । ज्वररोगीको हितवस्तुमें जो अरुचि होतीहै उसका कारण यह है कि, सदैव एकही

भोजनके करनेसे अथवा उसके स्वादिष्ठ न होनेसे उसमें अरुचि होतीहै। ज्वरमे जो पथ्य (हितकारक पदार्थ) अप्रिय भी लगै तोभी पथ्य ही वस्तु देना उत्तम है। ज्वररोगीको पथ्यभोजन अप्रिय लगै तौ उसकी अन्य कल्पना करके दूसरे प्रकारसे वही बनाकर देवै अथवा उसीके गुणोवाली अन्य पथ्य वस्तु भोजन करावै। ज्वरवालेको भोजनके समय अवश्य भोजन करना चाहिये कारण यह है कि, भोजनके समय भोजन नहीं करनेसे क्षीण होजाताहै तथा जठराग्निके दोषोंसे और धातुओंके पाकसे मर-जाता है॥ २७५-२७९॥

अथ ज्वरहितकार्य्यन्नादिकम्।

रक्तशाल्यादयः शस्ता पुराणाः षष्टिकैः सह॥ यवाग्वोदनलाजाथ ज्वरितानां ज्वरापहाः॥ २८०॥ मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्समकुष्ठकान्॥ यूषार्थे यूषसात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत्॥ २८१॥ पटोलपत्रं वार्ताकं कुलकं कारवेल्लकम्॥ कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वां बालमूलकम्॥ २८२॥ पत्रं गुडूच्याः शाकार्थे ज्वरितानां ज्वरापहम्॥ लावान्कपिञ्जलानेणान्हरिणान्पृषतान्छशान्॥ २८३॥ कुरङ्गान्कालपुच्छांश्च तथैव मृगमातृकान्॥ मांसार्थे मांससात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत्॥॥ २८४॥ सारसक्रौञ्चशिखिनस्तथा तित्तिरकुक्कुटान्॥ गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति केचिदेवं व्यवस्थिताः॥ २८५॥

तित्तिर इत्यत्र कृष्णतित्तिरः॥

ज्वरितानां प्रकोपं तु यदा याति समीरणः॥ तदैतेऽपि हि शस्यन्ते मात्राकालोपपादिताः॥ २८६॥ निम्बुकं दाडिमं धात्रीफलमम्लं प्रकांक्षते॥ प्रदद्यादम्लसात्म्याय काञ्जिकं वा पुरातनम्॥ २८७॥

एतेषां गुणनामानि पूर्वोक्तानि॥

ज्वरवाले मनुष्योंको यवागू, भात और खीलोंके लिये लाल शालि चावल और पुराने सांठी चावल अत्यन्त हितकारक हैं और ज्वरको नष्ट करनेवाले हैं। जिन ज्वररोगियोंको यूप सात्म्य (माफिक) है उनको यूपके लिये मूँग, मसूर, चने, कुलथी और मोठ देना चाहिये। ज्वररोगीको पटोलपत्र, बैंगन, परवल, करेला, ककोडा, पित्तपापडा, गोजिया, कच्ची मूली और गिलोयके पत्ते, इनका शाक देना चाहिये, ये ज्वरनाशक हैं, जिन ज्वरवाले मनुष्योंको मासका भक्षण सात्म्य अर्थात् माफिक है। उनको लवा, तीतर, कालाहिरन, लालहिरन, चितकबराहिरन, खरगोश, किंचित् लालहिरन, कालपुच्छहिरन, और लम्पूर्ण जातिके हिरनोंका मांस देना चाहिये। कितनेक वैद्य कहतेहै कि "सारस, क्रौञ्च, मोर, कालातीतर और मुरगा, इनका मास भारी और गरम होनेके कारण ज्वररोगियोंके लिये हितकारक नहीं है, परन्तु जिस ज्वररोगीको वायुका कोप होय उसको मात्रा और कालका विचारकर, इनका मास देना हितकारक है। जिन रोगियोको खटाई खाना सात्म्य है उनको यदि खटाईकी इच्छा होय तौ नींबू, अनारदाना, आमले अथवा पुरानी कॉजी देवै, इन सब पदार्थोंके नाम और गुण पहिले द्रव्यखडमें कह चुके है॥ २८०-२८७॥

अथान्नसाधनविधिमण्डलक्षणे॥

तण्डुलानां सुसिद्धानां चतुर्दशगुणे जले॥ रसः सिक्थैर्विरहितो मण्ड इत्यभिधीयते॥ २८८॥ शुण्ठीसैन्धवसंयुक्तो दीपनः पाचनश्च सः॥ अन्नस्य सम्यक्सिद्धौ च ज्ञेया मण्डस्य सिद्धता॥ २८९॥ पेयायूषयवागूनां विलेपीभक्तयोरपि॥ मण्डो ग्राही लघुः शीतो दीपनो धातुसाम्यकृत्॥ ज्वरघ्नस्तर्पणो बल्यः पित्तश्लेष्मश्रमापहः॥ २९०॥

उत्तम शालिधानके चावलोंको लेकर चौदहगुने जलमे पकावै, जब चावल भले प्रकारसे गलजायँ तब उन चावलोंको अलग करदेवै और उसको ग्रहण करै उसकी मड (माड) सज्ञा है। उसमे सोंठका चूर्ण और सैंधानिमक

मिलाकर सेवनकरै तौ अग्नि दीपन होतीहै और पाचन-भी होताहै । यहाँ चावलोंके भलेप्रकार पकजानेसे ही मंडका सिद्ध होना जानना। इसीप्रकार पेया, यूष, यवागू, विलेपी और भातका भी अन्नके पकजानेसे सिद्ध हुआ जानना। मंड—ग्राही, हलका, शीतल, अग्निको दीपन करनेवाला, धातुओंको समकरनेवाला, ज्वरनाशक, तृप्तिकारक बलकर्ता, तथा पित्त कफ और श्रमको नष्टकरनेवाला है ॥ २८८–२९० ॥

अथ पेयाविधिगुणा ।

चतुर्दशगुणे नीरे रक्तशाल्यादिभिःकृता॥ द्रवाधिका स्वल्पसिक्था पेया प्रोक्ता भिषग्वरैः ॥२९१॥ सातिलघ्वी ग्राहिणी च धातुपुष्टिविधायिनी ॥तृड्ज्वरानिलदौर्बल्यकुक्षिरोगविनाशिनी ॥ २९२ ॥ स्वेदाग्निजननी ज्ञेया वातवर्चोऽनुलोमनी॥ शुण्ठीसैन्धवसंयुक्ता दीपनी पाचनी च सा॥ आमशूलहरी रुच्या स्याद्विबन्धविनाशिनी ॥ २९३ ॥

लाल शालि आदि चावलोंको चौदहगुने जलमें पकाकर जो अधिक पतली और थोडे चावलोंके कणोंवाली होय उसको उत्तम वैद्य पेया कहतेहैं । पेया—अत्यन्त हलकी, मलको रोकनेवाली, धातुको पुष्ट करनेवाली, तथा तृषा, ज्वर, वात, दुर्बलता और कोखके रोगोंको हरनेवाली है। पसीनोंको लानेवाली, अग्निको दीपनकरनेवाली, वायु और मलको अनुलोमनकारी और जो इसमें सोंठ और सैंधेनिमकका चूर्ण मिला दियाजाय तौ यह दीपन, पाचन, रुचिकारक, आमशूल और विबन्धको नष्ट करनेवाली होजातीहै ॥ २९१–२९३ ॥

अथ प्रमथ्याविधिगुणौ ।

प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यपलात्कल्कीकृताच्छृतात्॥तोयेऽष्टगुणिते तस्याः पानमाहुः पलद्वयम् ॥ २९४ ॥
द्रव्यं पाच्यद्रव्यम्।तस्याः पलद्वयशेषायाः॥ गुणैः प्रमथ्या पेयावत्ततो लघ्वी विशेषतः ॥ २९५ ॥

चार तोले द्रव्यको लेकर उसको जलमें पीसकर अठगुने जलमें पकावे जब दो पल (आठ तोले) शेषरहै तब उतार लेवे, उसको प्रमथ्या, कहतेहैं प्रमथ्याके गुण पेयाकी समान हैं और विशेष करके हलकी है॥२९४–२९५॥

अथ यूषविधिगुणौ ।

अष्टादशगुणे नीरे शिम्बीधान्यशृतो रसः ॥ विरलान्नो घनः किञ्चित्पेयातो यूष उच्यते ॥ उक्तः स एव निर्यूहो रुचिकृन्न विशेषतः ॥ २९६ ॥

शिम्बीधान्य (दो दालवाले अन्न) को अठारह गुने जलमें पकावे, जब अन्न अच्छे प्रकारसे गलजाय और पेयासे कुछ अधिक गाढा होजाय तब उसको यूष कहतेहैं। और इसीको निर्यूह भी कहतेहैं यह विशेष करके रुचिकारक है ॥ २९६ ॥

अथ यूषापरविधिः ।

कल्कद्रव्यपलं शुण्ठी पिप्पली चार्द्धकार्षिकी ॥ वारिप्रस्थेन विपचेत्तद्रवो यूष उच्यते ॥ २९७ ॥

अयमर्थः ।यूषधान्यं पलमितं तत्कल्कीकृतम् । शुण्ठी पिप्पली च समुदिता अर्द्धकर्षमिता कल्कीकृता । उभयमपि प्रस्थमितेन वारिणा पचेत् । तद्रवो यूषः ॥ यूषो बल्यो लघुः पाके रुच्यः कण्ठ्यः कफापहः ॥ २९८ ॥

शिम्बीधान चार तोले लेकर जलमें पीसलेवै, फिर सोंठ और पीपल दोनों आधाकर्ष लेकर जलमें पीसलेवै, पश्चात् सबको ६४ तोले जलमें पकावै उससे जो रस प्रगट होय उसको यूष कहतेहैं। यूष—बलकारक, पाकमें हलका, रुचिकारक, कंठको हितकारी और कफनाशक है ॥ २९७ ॥ २९८ ॥

अथ वृन्ददीकातो मुद्गयूषविधिः ।

मुद्गानां द्विपलं तोये शृतमर्द्धाढकोन्मिते ॥ पादस्थं मर्दितं पूतं दाडिमस्य पलेन तत् ॥ २९९ ॥ युक्तं सैन्धवविश्वाह्वधा-

न्यकैः पादिकाशिकैः ॥ कणाजीरकयोश्चूर्णं शनैः केनावचूर्णितम् ॥ ३०० ॥ संस्कृतो मुद्गयुषोऽयं पित्तश्लेष्महरो मतः ॥

आठ तोले मूँगको लेकर एकसौ अट्ठाईस तोले जलमें पकावे, जब जल जलकर चौथा भाग शेषरहै तब उतारकर मूँगको हाथोंसे खूब मसलकर कपडेमें छानलेवे। उसमें चारतोले अनारका रस और सैंधा निमक, सोंठ तथा धनियाँ, प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिलादेवै पश्चात् किंचित् पीपल और जीरेके चूर्णसे बघारलेवै तो यह संस्कृत मूँगका यूष पित्तकफ नाशक है ॥२९९॥३००॥

अथ मुद्गयूषगुणाः।

मुद्गानामुत्तमो यूषो दीपनः शीतलो लघुः ॥ व्रणोर्द्धजत्रुतृड्दाहकफपित्तज्वरास्रजित् ३०१

मूँगका यूष–दीपन (जठराग्निको बढानेवाला), शीतल, हलका, तथा व्रण (घाव), ऊर्ध्वजत्रुरोग, तृषा, दाह, कफ, पित्त, ज्वर और रुधिरके विकारोंको नष्ट करता एवं सब यूषोंमें उत्तम है ॥ ३०१ ॥

अथ मुद्गामलकयूषगुणाः।

मुद्गामलकयूषस्तु भेदी पित्तानिलापहः ॥ तृड्दाहशमनः शीतो मूर्च्छाश्रममदापहः ॥ ३०२ ॥

मूँग और आमलेका यूष–भेदक (दस्तावर), पित्त और वातनाशक, तृषा और दाहको शमन करनेवाला, शीतल तथा मूर्च्छा श्रम और मदको दूर करैहै॥३०२॥

अथ मसूरयूषगुणाः।

मसूरयूषः संग्राही बृंही स्वादुः प्रमेहनुत् ॥ ३०३ ॥

मसूरका यूष–मलरोधक, पुष्टिकारक, स्वादिष्ट और प्रमेहको हरनेवाला है ॥ ३०३ ॥

अथ यवागूविधिगुणौ।

यवागूः षड्गुणे तोये संसिद्धा घनसिक्थका ॥ पृथग्द्रवैस्तु विरलैः संयुक्ता ज्वरिणे हिता ॥ ३०४ ॥ यवागूर्दीपनी लघ्वी तृष्णाघ्नी वस्तिशोधिनी ॥ श्रमग्लानिहरी पथ्या ज्वरे चैवातिसारके ॥ ३०५ ॥

धानोंको छःगुने जलमें पकावै, जब अन्न गलजाय और खूब गाढी होजाय, परतु अलग अलग रहै और जल थोडा रहै उसको यवागू कहते हैं। यवागू–ज्वररोगीको अत्यत हितकारी है, अग्निको दीपन करनेवाली, हलकी, तृषानाशक वस्तिशोधक, श्रम और ग्लानिको हरनेवाली, ज्वर और अतीसारमें पथ्य है ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥

अथ विलेपीविधिगुणौ।

चतुर्गुणाम्बुसंसिद्धा विलेपी घनसिक्थका ॥ पृथग्द्रवेण रहिता ख्याता शिथिलभक्तिका ॥ ३०६ ॥

संसिद्धा अतीव सिद्धा। विलेपी 'गिलहथी' इति लोके ॥

विलेपी दीपनी बल्या हृद्या संग्राहिणी लघुः ॥ व्रणाक्षिरोगिणां पथ्या तर्पणी तृड्ज्वरापहा ॥ ३०७ ॥

शालि चावलोंको चौगुने जलमें पकावै, जब चावल गल जायँ परन्तु अलग अगल होयँ और जलसे रहित होयँ तब उसको विलेपी कहते है। विलेपी अग्निको दीपन करनेवाली, बलकारक, हृदयको हितकारी, मलरोधक, हलकी, व्रण और नेत्ररोगियोंको पथ्य (हित), तृप्तिकारक, तृषा और ज्वरको दूरकरै है ॥ ३०६ ॥ ३०७ ॥

अथ भक्तविधिगुणौ।

जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुष्पलम् ॥ विपचेत्स्रावयेन्मण्डं तद्भक्तं मधुरं लघु ॥ ३०८ ॥

चक्रदत्तस्तु–अन्नं पञ्चगुणे तोये यवागूं षड्गुणे पचेत्॥ तत्र अन्नं भक्तम्। तथा च–"भिस्सास्त्री भक्तमन्धोऽन्नमोदनोऽस्त्री सदीदिविः" इत्यमरः ॥

भक्तं वह्निकरं पथ्यं तर्पणं मूत्रलं लघु ॥ सुधौतं प्रश्रुतं चोष्णं विशदं गुणवत्तरम् ॥ ॥ ३०९ ॥ अधौतमश्रुतं शीतं वृष्यं गुरु

कफप्रदम् ॥ अत्युष्णं बलहृद्भक्तं शीतं शुष्कञ्च दुर्जरम् ॥ अतिक्लिन्नं ग्लानिकरं दुर्जरं तण्डुलान्वितम् ॥ ३१० ॥
अतिक्लिन्नं सजलं यत्पर्युषितम् ॥
भृष्टतण्डुलजं रुच्यं सुगन्धि कफहल्लघु ॥ वातास्थापितमन्दाग्निविरिक्तानां प्रशस्यते ॥ ३११ ॥

सोलह तोले चावलोंको चौदह गुने जलमें पकावे, जब चावल अच्छे प्रकारसे गलजॉय तब माडको पसाकर अलग कर देवे, उसको भक्त (भात) कहतेहैं। भात मधुर और हलका है। चक्रदत्त तो यह कहताहै कि "जो पॉच गुने जलमें पकाया जावे उसको अन्न (भात) कहतेहैं और जो छः गुने जलमें सिद्ध कियाजाय उसको यवागू कहते हैं अन्न शब्दका अर्थ यहा भात है क्योंकि "भिस्सा, भक्त, अन्धस्, अन्न, ओदन और दीदिवि" ये भातके नाम अमरकोशमे कहेहैं। भात—अग्निको दीपन करनेवाला, पथ्य, तृप्तिकारक, मूत्रको लानेवाला और हलका है। उत्तम रीतिसे धुला हुआ, पसाया हुआ और गरम भात विशद (स्वच्छ) तथा अधिक गुणोंवाला है. नहीं धोया हुआ, नहीं पसाया हुआ और शीतल भात—वीर्यजनक, भारी और कफकारी है। अत्यन्त गरम भात—बलको हरनेवाला है । शीतल और सुखाया हुआ भात—अत्यत कठिनतासे पचनेवाला है। बहुत जलवाला बासी भात—ग्लानिकारक है । जिसमें चावल अच्छे प्रकारसे न गले होयँ ऐसा भात दुर्जर अर्थात् बहुत कालमे कठिनतासे जीर्ण (पाचन) होताहै । भुने हुए चावलका भात—रुचिकारक, सुगन्धियुक्त, कफनाशक, हलका, तथा वातरोगी निरूहवस्तियुक्त, मन्दाग्निवाले और जिन्होंने विरेचन (जुल्लाव) लियाहै उन मनुष्योंको अत्यंत हितकारी है ॥ ३०८–३११ ॥

अथ रसौदनविधिः ।

मांसलं सक्थिजं मांसं तथाऽनस्थि च तैत्तिरम् ॥ चतुष्पलोन्मितं सूक्ष्मं कल्पितं क्षालितं जले॥ ३१२॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलं शुण्ठीजीरकधान्यकैः ॥ द्विशाणैः संयुते तोये क्वाथ्यमर्द्धाढकोन्मिते ॥ ३१३ ॥ पादस्थितं जलं तत्र दर्व्याः संकुट्टिताद्धरेत ॥ तं रस मर्दितं हिंगुभृष्टसैन्धवजीरकैः ॥ युक्तं मधूपितं पथ्यं शुद्धानां शुद्धिकांक्षिणाम् ॥ ३१४ ॥

पुष्ट जीवकी जाघका मास तथा हड्डीरहित तीतरका मांस १६ सोलह तोले लेकर उसके महीन महीन टुकडे करके जलसे धोलेवे, पश्चात् पीपल, पीपलामूल, सोंठ, जीरा और धनियां, ये प्रत्येक आठ मासे लेवे, फिर सबको मिलाकर एकसौ अट्ठाईस तोले जलमें पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रहै तब मासको खूब करछीसे कूटकर हाथोंसे मलकर रस निकाल लेवै । पश्चात् हीग, सैंधा-निमक और भुनेजीरेसे वघारकर भातमें मिला देवे, इसको रसौदन कहतेहैं ।, यह रसौदन वमन विरेचनादि शुद्ध हुए मनुष्योंके लिये और जो शुद्ध होनेकी इच्छा करतेहैं उनके लिये पथ्यहै ॥ ३१२–३१४ ॥

अथ रसौदनगुणाः ।

रसौदनो गुरुर्वृष्यो बल्यो वातज्वरापहः ॥ ३१५ ॥

रसौदन—भारी, मैथुनशक्तिको वढानेवाला, बलकारक और वातज्वरको हरनेवाला है ॥ ३१५ ॥

अथ मण्डादिपदार्थप्रक्रिया ।

साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुःषष्टिपलेऽम्बुनि ॥ तत्क्वाथेनार्द्धशिष्टेन मण्डपेयादि साधयेत् ॥ ३१६ ॥ वृद्धवैद्याः पलं द्रव्यं ग्राहयन्त्याढकेऽम्भासि ॥ भेषजस्यातिबाहुल्यात्कदाचिदरुचिर्भवेत् ॥ ३१७ ॥ यैरन्नैरौषधैर्यैश्च कृता मण्डादयो बुधैः ॥ विचार्य यद्गुणानेतांस्तद्गुणानेव निर्दिशेत् ॥ ३१८ ॥

ये केवल जलसे मण्ड आदि पदार्थोंको सिद्ध करनेकी विधि कही । अब औषधियोंसे सिद्ध करनेकी विधि कहतेहैं, १६ तोले औषधि लेकर दोसौ छप्पन तोले जलमें पकावै, जब आधाजल शेष रहै तब उस क्राथसे मण्ड और पेयादिकको सिद्ध करै । परन्तु वृद्ध वैद्य तो दोसौ छप्पन तोले जलमे केवल चार तोले औषधि डालते हैं, कारण यह है कि—औषधिके अधिक होनेसे रोगीके अरुचि होनेकी सम्भावना है । जिन अन्न और औषधियोसे मण्डादिक

चनाये जावैं, उन्ही अन्न और औषधिके अनुसार विचार-कर गुण कहै ॥ ३१६-३१८ ॥

औषधसिद्धपेयागुणाः ।

अन्नकाले हिता पेया यथास्वं पाचनैः कृता ॥ दीपनी पाचनी लघ्वी ज्वरार्तानां ज्वरापहा ॥ ३१९ ॥

उन्ही उन्ही यथादोषानुसार पाचन औषधियोंसे सिद्ध-की हुई पेया भोजनके समयमे देनेसे हितकारी होतीहै, अग्निको दीपन करतीहै, पाचन है, हलकी और ज्वरकी पीडाको हरनेवाली है ॥ ३१९ ॥

अथ वातज्वरादिपेयासाधनौषधविधानम् ।

पञ्चमूल्याः कषायन्तु पाचनं वातिकज्वरे ॥ सक्षौद्रं पैत्तिके मुस्तकटुकेन्द्रयवैः कृतम् ॥ ३२० ॥ पिप्पल्यादिकषायं तु पाचनं कफजे ज्वरे ॥ लघुना पञ्चमूलेन पिप्पल्या सह धान्यया ॥ ३२१ ॥ महत्या पञ्चमूल्याथ व्याघ्रीदुःस्पर्शगोक्षुरैः ॥ सिद्धानि भिषगन्नानि प्रयुञ्जीत यथाक्रमम् ॥ वातपित्ते श्लेष्मपित्ते कफवाते त्रिदोषजे ॥ ३२२ ॥

अयमर्थः, वातपित्ते लघुना पञ्चमूलेन सिद्धानि अन्नानि भिषक् प्रयुञ्जीत ॥

शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी कण्टकारीद्वयं तथा ॥ गोक्षुरः पञ्चमः प्रोक्तः पञ्चमूलमिदं लघु ॥ ३२३ ॥

श्लेष्मपित्ते पिप्पल्या सह धान्यया । कफवाते महत्या पञ्चमूल्या ॥

श्रीफलः सर्वतोभद्रा पाटला गणिकारिका ॥ श्योनाकः पञ्चमः प्रोक्तं पञ्चमूलमिदं महत् ॥ ३२४ ॥

त्रिदोषजे व्याघ्रीदुःस्पर्शगोक्षुरैः । व्याघ्री कण्टकारिका । दुःस्पर्शः यवासः ॥

जैसे वातज्वरमे पचमूलका क्वाथ पाचन है, पित्तज्वरमें नागरमोथा, कुटकी और इन्द्रजौंका क्वाथ पाचन है और कफज्वरमें पिप्पल्यादि क्वाथ पाचन है इस प्रकार जैसा दोष होय उसी दोषको पचानेवाली औषधियोंके क्वाथसे पेया करनी चाहिये । वातपित्तज्वरमे लघुपञ्चमूल-के क्वाथसे कफपित्तज्वरमे पीपल और धनियेंके क्वाथसे, कफवातज्वरमे बृहत्पञ्चमूलके क्वाथसे और त्रिदोषज्वरमे कटेरी, जवासा और गोखुरू, इनके क्वाथसे सिद्ध किया हुआ अन्न (विशेषकरके पेया) देना चाहिये । शालि-पर्णी (सलवन), पृश्निपर्णी (पिठवन), कटेरी, बडी कटेरी और गोखरू इनको पचमूली अथवा लघुपचमूल कहतेहैं । बेल, कुम्भेर (खँभारी), पाढल, अरनी (अ-गेथ) और श्योनाक (सवन), इनको बृहत्पचमूल कहते हैं ॥ ३२०-३२४ ॥

पेयां वा रक्तशालीनां वस्तिपार्श्वशिरोरुजि ॥ श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् ॥ ३२५ ॥ विबद्धवर्चाः सयवां पिप्पल्यामलकैः शृताम् ॥ सर्पिष्मतीं पिबेत्पेयां ज्वरी दोषानुलोमनीम् ॥ ३२६ ॥

कासी श्वासी च हिक्की च पञ्चमूलीशृतां पिबेत् ॥ ३२७ ॥

यवोऽत्र अन्नम् । अत्र पञ्चमूली बृहती लघ्वी च हिता, तया शृतां पेयां पिबेदित्यर्थः ॥

पेया भेषजसंयोगाल्लघुत्वाच्चाग्निदीपनी ॥ वातमूत्रपुरीषाणां दोषाणां चानुलोमिका ॥ ३२८ ॥ स्वेदनाय च सोष्णत्वाद् द्रवत्वात्तृट्क्षयाय च ॥ आहारभावात्प्राणाय सरत्वाल्लाघवाय च ॥ ज्वरघ्नी हेतुसाम्यत्वात्तस्मात्तां पूर्वमाचरेत् ॥ ३२९ ॥

हेतुसाम्यत्वाद्धेतवः वातपित्तकफास्तेषां साम्यत्वात् ॥

ज्वरमे यदि मूत्राशय, पसली और शिरमे पीडा होय तौ गोखरू और कटेरीके क्वाथसे सिद्ध की हुई ज्वरको हरनेवाली लालशालिचावलोंकी पेया पीनी चाहिये । ज्वरमे मलका अवरोध होगया होय तौ पीपल और आमलोंके क्वाथसे पकाई हुई पेयामे घृत डालकर पीवै इससे दोष योग्य मार्गसे प्रवर्तने लगतेहैं । ज्वरमे खाँसी, श्वास और हिचकी होय तौ लघुपचमूल अथवा बृहत्पचमूलके

क्वाथसे सिद्ध की हुई लाल शालि चावलोंकी पेया पिये। पेया—औषधियोंके संयोग होनेसे और हलकी होनेसे अग्निको दीपन करतीहै, तथा वायु, मूत्र, विष्ठा और दोषोंको यथा मार्गमें प्रवर्ताती है। पेया उष्ण होनेके कारण पसीनेको लाती है, पतली होनेसे तृषाको दूर करैहै. आहाररूप होनेके कारण तृप्तिकारक है, सारक (दस्तावर) होनेके कारण हलकी है और वात, पित्त, एवं कफको साम्य करनेके हेतु पेया ज्वरनाशक है। इसकारण ज्वरमे प्रथम पेयाका उपयोग करना चाहिये ॥ ३२५–३२९ ॥

अथ पंचमुष्टिकयूषः ।

यवकोलकुलत्थानां मुद्गमूलकशुण्ठयोः । एकैकमुष्टिमादाय पचेदष्टगुणे जले ॥ ॥ ३३० ॥ पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः ॥ शूलं प्रशस्यते गुल्मं कासे श्वासे क्षये ज्वरे ॥ ३३१ ॥

जौ, बेर, कुलथी, मूंग मूलीकी टटी प्रत्येक चार चार तोले लेकर अठगुने जलमें पकावै तौ पंचमुष्टिक यूष सिद्ध होता है। यह पंचमुष्टिक यूष वात, पित्त और कफनाशक है, तथा शूल, गुल्म (वायगोला), खासी, श्वास क्षय और ज्वरमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ३३०॥३३१ ॥

अथ वर्तिप्रयोगः ।

रुद्धमूत्रपुरीषस्य गुदे वर्तिं निधापयेत् ॥ पिप्पलीपिप्पलामूलयवानीचव्यसाधिताम् ॥ पाययेत्तु यवागूं वा मारुताद्यनुलोमिनीम् ॥ ३३२ ॥

ज्वरमें यदि विष्ठा और मूत्र रुकगया होय तो पीपल, पीपरामूल, अजवायन और चव्य इनसे सिद्ध की हुई वर्ति (बत्ती) गुदामें चढावै, अथवा वातादिदोषोंको यथामार्गमें स्थित करनेवाली यवागू पिलावै ॥ ३३२ ॥

अथ पेयायवाग्वपवादः ।

मदात्यये मद्यनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफोत्थिते ॥ ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च यवागूर्न हिता ज्वरे ॥ ३३३ ॥ दाहच्छर्द्यर्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयान्वितम् ॥ वमार्तं मद्यपं चापि तोयालोडितसक्तुकम् ॥ ॥ ३३४ ॥ शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् ॥ ज्वरापहैः फलरसैर्युक्तमन्नं हितं क्वचित् ॥ ३३५ ॥

लाजतर्पणं लाजसक्तुरूपं तर्पणम् ॥

पित्त कफसे उत्पन्नहुए ज्वरमे यदि मदात्यय रोग होय अथवा रोगी नित्य मद्य पीता हो, वा ऊर्ध्वगत रक्तपित्त सहित हो तौ उसको यवागू नही देनी चाहिये, इसी प्रकार ग्रीष्मऋतुमें भी यवागू पीना हितकारक नहीं है। दाह (जलन) और वमन (रद्द) से पीडित, दुर्बल, निराहार, तृषासे व्याकुल, गरमीसे पीडित और निरंतर मदिराको पीनेवाला ऐसे ज्वररोगीको पेया अथवा यवागू नहीं देनी चाहिये, किन्तु खीलोंके सत्तूको जलमें घोलकर उसमें मिश्री और सहत मिलाकर तर्पणरूप पीनेको देवै और किसी समय ज्वरनाशक फलोंके रससे संयुक्त अन्न भी देना चाहिये ॥ ३३३–३३५ ॥

अथ सन्तर्पणस्वरूपम् ।

द्राक्षादाडिमखर्ज्जूरमृदिताम्बु सशर्करम् ॥ लाजचूर्णं समध्वाज्यं सन्तर्पणमुदाहृतम् ॥ ३३६ ॥

लाजचूर्णं द्राक्षादिजलशर्करामध्वाज्यसहितं तर्पणम् उक्तमित्यर्थः ॥

खीलोंके सत्तू, दाख, अनार और खजूर इनको जलमें घोलकर उसमें मिश्री, सहत और घी डालकर ज्वरवाला मनुष्य पिये इसको सन्तर्पण कहतेहैं ॥ ३३६ ॥

अथ लाजसक्तुगुणाः ।

लाजानां सक्तवः क्षौद्रसितायुक्ता विशेषतः ॥ छर्द्यतीसारतृड्दाहविषमूर्च्छाज्वरापहाः ॥ ३३७ ॥

खीलोंके सत्तुओंमें सहत और मिश्री मिलाकर पियै तो विशेष करके वमन, अतीसार, तृषा, दाह, विष, मूर्च्छा और ज्वरका नाश हो ॥ ३३७ ॥

अथ चरकोक्ततर्पणप्रकारः ।

तत्र तर्पणमेवादौ प्रदेयं लाजसक्तुभिः ॥

ज्वरापहैः फलरसैर्युक्तं समधुशर्करम् ॥ ३३८ ॥

अथ ज्वरघ्नफलान्याह चरकः ।

द्राक्षादाडिमखर्जूरप्रियालैः सपरूषकैः । तर्पणार्हस्य दातव्यं तर्पणं ज्वरनाशनम् ॥ ३३९ ॥

प्रियालमत्र पक्वफलं न तन्मज्जा गुरुत्वात् । तर्पणार्हस्य दाहच्छर्दितृषार्तस्य । लंघितस्य क्षीणस्येत्यर्थः ॥

ज्वरनाशक फलोके रसयुक्त, सहत और चीनीमिश्रित सत्तुओका प्रथम तर्पण देवै । वह ज्वरनाशकफल कौन कौनसे हैं, उनको चरकने इस प्रकार कहा है । दाहसे, वमनसे तथा तृषासे पीडित और लवनोंसे क्षीण हुए ज्वरवाले मनुष्यको दाख, अनार, खजूर, चिरौंजीका पक्का फल और फालसे, इनके रसोसे सयुक्त तर्पण देनेसे ज्वरका नाश होताहै ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः ॥ ३४० ॥

रसोऽत्र मांसस्य रसः तेन सिक्त ओदनो रसौदनः । " अन्नेन व्यञ्जनम् " इत्यनेन समासः ॥

मुद्गयूषोदनश्चैव हितः कफसमुत्थिते ॥ स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः ॥ ३४१ ॥

स एव मुद्गयूषौदन एव ॥

कृशोऽल्पदोषो यः क्षीणकफो जीर्णज्वरान्वितः ॥ विबन्धासृष्टदोषश्च रूक्षपित्तानिलज्वरी ॥ पिपासार्तः सदाहश्च पयसा स सुखी भवेत् ॥ ३४२ ॥ अजादुग्धं गुडोपेतं पातव्यं ज्वरशान्तये ॥ तदेव तु पयः पीतं तरुणे हन्ति मानवम् ॥ ३४३ ॥

तरुणे, ज्वरे इति शेषः ॥

जीर्णे ज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम् ॥ तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥ ३४४ ॥

श्रम, उपवास और वायुसे उत्पन्न हुए ज्वरमे सदैव रसौदन हितकारी है । रस अर्थात् मांसके रससे भीजाहुआ जो ओदन अर्थात् भात है उसको रसौदन कहते हैं । कफसे उत्पन्नहुए ज्वरमे मूँगके यूपसे भीजाहुआ भात हितकारी है और पित्तज्वरमे मूँगके यूपके साथ मिश्री मिलाहुआ भात शीतल होनेके कारण हितकारी है । जो मनुष्य दुर्वल, अल्पदोपवाले, क्षीणकफवाले, जीर्णज्वरयुक्त, जिसके मलबन्ध होनेके कारण दोप अनुलोमन नहीं होते, रूक्ष, पित्त और वातज्वरवाले, तृषा और दाहसे पीडित हैं उनको दूध पीनेसे सुख होताहै अर्थात् उपरोक्त मनुष्योंके लिये दूधका सेवन अत्यन्त हितकारी है । बकरीके दूधमें गुड मिलाकर सेवन करनेसे ज्वर शांत होताहै और जो तरुणज्वरमें दूध पिया जावे तो मनुष्यको मारदेताहै, अन्यत्र भी लिखा है कि, जीर्णज्वर और कफके क्षीण होनेपर अमृतकी समान गुण करताहै और जो वही दूध तरुण (नवीन) ज्वरमे पिया जावे तो विपकी समान मनुष्यको मार देताहै ॥ ३४०–३४४ ॥

अथ ज्वररोगिनियमाः ।

न द्विरद्यान्न पूर्वाह्णे नाभिष्यन्दि कदाचन॥ न तीक्ष्णं न गुरुप्रायं भुञ्जीत तरुणज्वरी ॥ ३४५ ॥ न जातु तर्पयेत्प्राज्ञः सहसा ज्वरकर्शितम् ॥ तेन संशमितोऽप्यस्य पुनरेव भवेज्ज्वरः ॥ ३४६ ॥

ज्वरवाले रोगीको दोवार भोजन नही करना चाहिये । पूर्वाह्णके समय भी नही भोजन करना चाहिये । अभिष्यन्दि, तीक्ष्ण और अधिकभारी अन्न भी ज्वरवालेको नही खाने चाहियें । ज्वरसे कर्षितहुए मनुष्यको कदापि एक साथ तर्पण नही देना चाहिये, कारण यह है कि, तर्पणसे शांत हुआ भी ज्वर फिर आजाताहै ३४५॥३४६

ज्वरमुक्तिपूर्वलक्षणम् ।

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कम्पो विड्भिद्संज्ञता ॥ कूजनं चातिवैगन्ध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥ ३४७ ॥

विड्भिद् मलप्रवृत्तिः अत्र सम्पदादित्वात् भावे क्विप् । कूजनं कुन्थनम् अतिवैगन्ध्यं गात्रस्य ॥

ज्वरमुक्तौ भविष्यंत्यामेतल्लक्षणं भवति ।

ननु दोषक्षयं विना न व्याधिनिवृत्तिः क्षीणाश्च दोषाः कथमेवंविधं रूपं करिष्यन्ति? उच्यते—कश्चित्क्षीणोऽपि विनाशकाले स्वशक्तिं दर्शयति । यथा निर्वाणावस्थायां दीपो विशेषात्प्रज्वलति ॥ वाग्भटोऽप्याह—

धातून्प्रक्षोभयन्दोषो मोक्षकाले विलीयते ॥ ततो नरः श्वसन्कूजन्वमन्स्विद्यन्न चेष्टते ॥ ३४८ ॥ त्रिदोषजे ज्वरे होतदन्तर्वेगे च धातुगे ॥ लक्षणं मोक्षकाले स्यादन्यस्मिन्स्वेददर्शनम् ॥ ३४९ ॥

पूर्वोक्तमेतद्दाहादिलक्षणं मोक्षकाले एतेषु एव ज्वरेषु स्यात् । केषु त्रिदोषजेषु अन्तर्वेगे धातुगे ज्वरे अन्यस्मिन्स्वेदमात्रदर्शनं भवति ॥

दाह, पसीना, भ्रम, तृषा, कम्प, दस्तोंका होना, सज्ञाहीनता, कूँजना और शरीरमें अत्यन्त दुर्गन्धता आना, ये ज्वरके मोक्षहोनेके पूर्वलक्षणहैं, अर्थात् जब, ज्वर छुटनेको होताहै तौ यह सब लक्षण होतेहैं ।

शंका—दोषोंके क्षयहुए विना रोगकी निवृत्ति नहीं होती, फिर किस कारण रोगकी निवृत्तिके समयमें क्षीणहुए दोष दाहादि दारुण विकारोंको करतेहैं ?

समाधान—कोई क्षीण हुआ भी अपने विनाशके समय अपनी विशेषशक्ति दिखाताहै, जैसे कि, दीपक निर्वाण (बुझने) के समय अत्यत प्रज्वलित होताहै । वाग्भट भी कहताहै कि "दोष मुक्तहोनेके समय धातुओंको क्षोभित करके नाशको प्राप्त होतेहैं, इसी कारण रोगी श्वासलेताहै, कूँजताहै, वमन करताहै, पसीनेयुक्त और चेष्टारहित होजाताहै ।" यह उपरोक्त दाहादि लक्षण त्रिदोषज्वर अन्तर्वेगीज्वर और धातुगतज्वरके मोक्षके समय होतेहैं और अन्य ज्वरोंमें तो मोक्षके समय केवल पसीनाही आताहै ॥ ३४७–३४९ ॥

अथ ज्वरमुक्तिलक्षणम् ।

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् ॥ स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगिमनोऽन्नलिप्सा कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ ३५० ॥

सुश्रुतोऽप्याह ।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च ॥ क्षवथुश्चान्नकांक्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ३५१ ॥

शरीरका हलका होना, ग्लानि, मोह (बेहोशी), और सतापका नष्टहोना, मुखका पकना, अर्थात् मुखमें छाले पडजाना, इन्द्रियें अपने २ कार्य करनेको समर्थ होयँ, व्यथा (पीडा) का नाश, पसीने और छींकका आना, मनका स्वाभाविक स्थितिमें स्थित होना, अन्नमें अभिलाषाका उत्पन्न होना और शिरमें खुजलीका होना ये ज्वरमुक्तिके लक्षण जानने । सुश्रुत भी कहताहै कि, "देहमें पसीनोंका आना, हलका होना, शिरमें खुजलीका चलना, मुखका पकना, छींकका आना और अन्नमें इच्छाका होना, ये ज्वरमुक्तिके लक्षण हैं" ॥ ३५० ॥ ३५१ ॥

अथ ज्वरमुक्तपालनीयनियमाः ।

व्यायामश्च व्यवायश्च स्नानं चंक्रमणानि च ॥ ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान्भवेत् ॥ ३५२ ॥ व्यायामश्च व्यवायश्च प्रवातं शिशिरं जलम् ॥ ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान्भवेत् ॥ ३५३ ॥ जन्तोर्ज्वरविमुक्तस्य स्नानं कुर्यात्पुनर्ज्वरम् ॥ तस्माज्ज्वरविमुक्तोऽपि स्नानं विषमिव त्यजेत् ॥ ३५४ ॥ बलवर्णाग्निवपुषां यावन्न प्रकृतिर्भवेत् ॥ तावज्ज्वरेण मुक्तोऽपि वर्जनीयानि वर्जयेत् ॥ ३५५ ॥

ज्वरके मुक्तहोनेपर भी जबतक शरीरमें बल न आवे तबतक परिश्रम, स्त्रीप्रसंग, स्नान, चलना फिरना इत्यादि न करने चाहिये और भी कहाहै कि, ज्वरके मुक्तहोनेपर भी जबतक बलवान् न होय तबतक परिश्रम, मथुनै, पवनका सेवन, और शीतल

जल, इनको नहीं सेवन करे। ज्वरसे मुक्तहुआ मनुष्य यदि स्नान करलेवै तो फिर ज्वर उत्पन्न होजाता है, इस कारण ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य स्नानको भी विषकी समान समझकर त्यागदेवै। जबतक बल, वर्ण, अग्नि और देह, ये पहिलेकी समान प्रकृतिके अनुसार न होयँ, तबतक ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य भी त्यागने योग्य वस्तु त्याग देवै॥ ३५२–३५५॥

अथ वातज्वराधिकारः ।

वातलाहारचेष्टाभ्यां वायुरामाशयाश्रयः॥ बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरकृत्स्याद्रसानुगः॥ ३५६॥

तस्य पूर्वरूपमुक्तम्॥

वातकारक आहार और विहारके करनेसे वायु आमाशयमें प्राप्त होकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करताहै ३५६॥

वातज्वरपूर्वरूपम् ।

जृम्भात्यर्थ समीरणादिति। समीरणज्वरे उत्पत्स्यति अत्यर्थ जृम्भा स्यात्। जृम्भा च श्रमादिपूर्विका भवति॥

जब वातज्वर उत्पन्न होनेको होताहै उससे कुछेक पहिले प्रथम श्रमादि उत्पन्न होकर फिर जम्भाई अधिक आतीहैं।

वातज्वरलक्षणम्–

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठौष्ठमुखशोषणम्॥ निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च॥ ३५७॥ शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं बद्धविट्कता॥ शूलाध्माने जृम्भणञ्च भवन्त्यनिलजे ज्वरे॥ ३५८॥

एतानि लक्षणानि प्रायोभावित्वेन सुश्रुते निर्दिष्टानि। चकारादन्यान्यपि चरकनिदानोक्तानि बोद्धव्यानि। तान्येव श्लोकेन प्रदर्शयति–

भवन्ति विविधा वातवेदनाः स्यादसुप्तता॥ पिण्डिकोद्वेष्टनं कर्णस्वनो वक्त्रकषायता॥ ३५९॥ गात्रसादो हनुस्तम्भो विश्लेषः सन्धिजानुनोः॥ शुष्ककासो वमिर्लोमदन्तहर्षः श्रमभ्रमौ॥ अरुणं मूत्रनेत्रादि तृट्प्रलापोष्णगात्रताः॥ ३६०॥

विषमो वेगः, शरीरोष्णतादिरूपो ज्वरवेगो विषमो भवतीत्यर्थः। क्षवस्तम्भः छिक्काया अभावः। तथा च वाग्भटः–

हर्षो रोमाङ्गदन्तेषु वेपथुः क्षवथोर्ग्रहः ३६१॥

चरकोऽपि–क्षवथूद्गारविनिग्रह इति। शिरोहृद्गात्ररुक्, अत्र गात्रपदे प्रयुक्ते शिरोहृच्छब्दप्रयोगः तत्रतत्र विशेषेण वेदनाबोधनार्थः॥

शरीर काँपे, ज्वरका विषम वेग हो, कंठ, होठ और मुख सूखै, निद्राका न आना, छींकका रुकना, देहमें रूखापन, शिर, हृदय और शरीरमें पीडा, मुखमें विरसता, मलका बँधजाना, शूल और अफारा होवे और जम्भाई अधिक आवें, वातज्वरमें ये लक्षण विशेष करके होतेहैं ऐसा सुश्रुत कहताहै। चरकके निदानमें इसके सिवाय अन्य लक्षण भी कहेहैं वे ये हैं कि–निद्रा न आवे, पिंडरियोंमें हडफूटन हो, कानोंमें शब्द हो, मुख कसैला होजाय, अंगोंमें पीडा होय, ठोडी जकड जाय, संधी और घुटनोंमें फटने सरीखी पीडा होय, सूखी खाँसी आवे, वमन हो, रोमांच हो आवे, दन्तहर्ष हो, श्रम और भ्रम हो, मूत्र और नेत्रादि लाल होजायँ, तृषा (प्यास) लगे, प्रलाप (वृथा बकवाद) हो और सब शरीर गरम होजाताहै। इसीप्रकार वाग्भटमें भी कहाहै कि–"वातज्वरमें रोमांच खडे होजातेहैं, दाँत खट्टे होजातेहैं, कंप होताहै और छींक नहीं आतीहै"। चरक भी कहताहै कि–वातज्वरमें छींक और डकार रुक जातीहै" ॥ ३५७–३६१॥

अथ वातज्वरचिकित्सा ।

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान्पिधापयन्॥ विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत्॥ ३६२॥

इति वचनात्सामान्यतो ज्वरितगात्रस्य

यावदारोग्यदर्शनं लंघनविधानम्। वातज्वरिणो लंघनविधाने विशेषमाह चरकः-

ज्वरितं षडहेऽतीते लध्वन्नं प्रतिभोजितम् ॥ पाचनं शमनीयञ्च कषायं पाययेद्भिषक् ॥ ३६३ ॥

सुश्रुतेऽप्याह।

वातिके सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिके ॥ श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युञ्जीत भेषजम् ॥ ३६४ ॥

ननु "अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः"इति श्रुतिः, तदन्नं विना प्राणिभिः कथं स्थातव्यमित्याह-

दोषाणामेव सा शक्तिर्लंघने या सहिष्णुता॥ न हि दोषक्षये कश्चित्सहते लंघनं महत् ॥ ॥ ३६५ ॥ कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लंघनं वहु ॥ आमक्षयादूर्द्धमपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ ३६६ ॥

वातादि दोष दुष्ट होकर आमाशयमें जायकर अग्निको आच्छादित (ढक) करके अन्न आदि अपक्वरसके साथ मिलकर शरीरके स्रोतों (छिद्रों) को ढककर ज्वरको उत्पन्न करतेहैं, इस कारण ज्वरमें लंघन कराने चाहिये। इस प्रकार ये सामान्य रीतिसे ज्वररोगीको लंघन कराने कहे किन्तु वातज्वरमें लंघन करानेके विषय चरक विशेष कहताहै कि "वातज्वरवाले मनुष्यको छः दिनतक लंघन करावे पश्चात् सातवे दिन हलका अन्नभोजन कराकर वैद्य पाचन अथवा शमन औषधि देवे" सुश्रुत भी कहताहै कि 'वातज्वरमें सातवेदिन, पित्तज्वरमें ग्यारहवेदिन और कफज्वरमें तेरहवेदिन औषधि देनी चाहिये" ॥

शंका-अन्नही प्राणियोंको प्राणरूप है, ऐसा श्रुतिमें कहाहै, फिर अन्नके विना मनुष्य किसप्रकार जीसक्तेहैं ?

समाधान-लंघनोंका सहनकरना, यह दोषोंकी शक्ति है, कुछ मनुष्यकी शक्ति नहीं है, क्योंकि दोषोंके क्षय होनेपर कोई मनुष्य भी लंघनोंको नहीं सहसक्ता। कफ और पित्त ये दोनों द्रव (पतले) धातुहैं इस कारण ये बहुत लंघनोंको सहसके हैं, परन्तु वायु तो आमके क्षय होनेपर क्षणभर भी लंघनको नहीं सहसक्ती ॥ ३६२-३६६ ॥

अथ दशमूलादिकाथः।

श्रीफलः सर्वतोभद्रा कामदूती च शोणकः ॥ तर्कारी गोक्षुरः क्षुद्रा बृहती कलशी स्थिरा ॥ ३६७ ॥ रास्ना कणा कणामूलं कुष्ठं शुण्ठी किरातकः ॥ मुस्तो बलाऽमृता बालं द्राक्षा यासः शताह्विका ॥ ३६८ ॥ एषां क्काथो निहन्त्येव प्रभञ्जनकृतं ज्वरम् ॥ सोपद्रवञ्च योगोऽयं सर्वयोगवरः स्मृतः ॥ ३६९ ॥

श्रीफलो बिल्वः, सर्वतोभद्रा गम्भारी, कामदूती पाटला, शोणकः शोनापाठा इति लोके, तर्कारी गणिकारी, कलशी पृष्टिपर्णी, स्थिरा शालिपर्णी, बालं सुगन्धवाला, यासो यवासः ॥

वेल, कुम्भेर, पाटल, शोनापाठा, अरणी, गोखरु, कटेरी, कटाई, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी, रायसन, पीपल, पीपलामूल, कूठ, सोंठ, चिरायता, नागरमोथा, खिरेंटी, गिलोय, सुगधवाला, दाख, जवासा और सतावर, इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पीनेसे-उपद्रवसहित वातज्वर नष्ट होताहै, यह योग सर्व योगोंमें उत्तम है ॥ ३६७-३६९ ॥

अथ बृहत्पंचमूलीक्काथः।

श्रीपर्णीतर्कारीश्रीफलटुण्टुकपाटलामूलैः॥ पाचनमुचितं मारुतजनितज्वरहारि वारिणा क्कथितैः ॥ ३७० ॥

सुश्रुतः-"पञ्चमूलीकषायन्तु पाचनं वातिके ज्वरे" इति ॥

अत्र पञ्चमूली बृहत्पञ्चमूली अत एव बृहती ॥

कुम्भेर, अरणी, वेल, स्योनाक और पाढल, इन पाच औषधियोंको जलमें औटाकर क्वाथ बनाकर वातज्वरमे पाचन देना चाहिये। इसीप्रकार सुश्रुत भी कहताहै कि- "वातज्वरमें पञ्चमूलीका कषाय पाचन है" ॥ ३७० ॥

अथ किराताद्दिकाथः।

किराताह्वाऽमृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥

त्रिपर्णीकलशीबिल्वैः क्वाथो वातज्वरापहः ॥ ३७१ ॥

उदीच्यं वालकम्, त्रिपर्णी शालिपर्णी, कलशी पृष्टिपर्णी ॥

चिरायता, गिलोय, सुगन्धबाला, कटाई, कटेरी, गोखरू, शालिपर्णी (सरवन) और पृष्टिपर्णी (पिठवन) इनका क्वाथ वातज्वरको नष्ट करता है ॥ ३७१ ॥

अथ कालिंगक्वाथः।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं शृतम् ॥ वातज्वरे तथा पेयं कालिङ्गं सप्तमेऽहनि ॥ ३७२ ॥

कालिङ्गं शृतमिन्द्रयवं तस्य शृतम्।

गिलोय, पीपलामूल और सोंठ, इनके साथ इन्द्रजौका काढा बनाकर वातज्वरमे सातवे दिन पिये ॥ ३७२ ॥

अथ शुंठ्यादिक्वाथः॥

विश्वामृताग्रन्थिकसिद्धतोयं मरुज्ज्वरः स्यात्पिबतः कुतोऽयम् ॥ क्वाथोऽथ कुस्तुम्बुरुदेवदारुक्षुद्रौषधैः पाचनमत्र चारु ३७३

क्वाथः पाचनमिति भेदाः प्रमाणमितिवत् ॥

सोंठ, गिलोय और पीपलामूल, इनका क्वाथ वातज्वरमे पिये तौ वातज्वर कहाँ रहा ? अथवा धनियाँ, देवदारु और कटेरी तथा सोंठ इनका क्वाथ वातज्वरमे उत्तम पाचन है ॥ ३७३ ॥

अथ बृहत्पंचमूलादिक्वाथः।

पञ्चमूलीबलारास्नाकुलत्थैः सह पौष्करैः॥ क्वाथो हन्याच्छिरःकम्पं पर्वभेदं मरुज्ज्वरम् ॥ ३७४ ॥

पञ्चमूली बिल्वादिः ॥

पञ्चमूल (वेलगिरी, स्योनाक, कुम्भेर, पाढल और अरणी), खिरैंटी, रायसन, कुलथी और पोहकरमूल इनका क्वाथ–शिर.कम्प, सन्धियोंकी पीडा और वातज्वरको नष्ट करै है ॥ ३७४ ॥

अथ कणादिक्वाथः।

कणारसोनामृतवह्निविश्वानिदिग्धिकासिन्धुकभूमिनिम्बैः ॥ समुस्तकैराचरितः कषायो हिताशिनां हन्ति गदानिमांस्तु ॥ ३७५ ॥ ज्वरं मरुद्दुष्टिसमुद्भवं तथा बलासजं चानलमन्दताञ्च ॥ कण्ठावरोधं हृदयावरोधं स्वेदञ्च रोमाञ्चहिमत्वमोहान् ॥ ३७६ ॥

पीपल, लहसुन, गिलोय, सोंठ, कटेरी, सैंधानिमक, चिरायता और नागरमोथा, इनका क्वाथ, पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्योंके, वातज्वर, कफज्वर, मदाग्नि, कण्ठरोध, हृदयका अवरोध, पसीना, रोमाचोंका खडे होना, शीतता और मोहको नष्ट करै है ॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥

अथ कल्पतरुरसः।

शुद्धं शंकरशुक्रमक्षतुलितं मारारिनारीरजस्तद्वत्तावदुमापतिस्फुटगलालंकारवस्तु स्मृतम् ॥ तावत्येव मनःशिला च विमला तावत्तथा टंकणं शुण्ठी द्व्यक्षमिता कणा च मरिचं दिक्पालसंख्याक्षकम् ॥३७७॥ विषादिवस्तूनि शिलोपरिष्टाद्विचूर्णयेद्वाससि शोधयेच्च ॥ ततस्तु खल्वे रसगन्धकौ च चूर्णञ्च तद्यामयुगं विमर्द्य ॥ ३७८ ॥ कल्पतरुनामधेयो यथार्थनामा रसः श्रेष्ठः ॥ समीरणश्लेष्मगदान्हरते मात्रास्य स्मृता गुञ्जैका ॥ ॥ ३७९ ॥ आर्द्रकेण सममेष भक्षितो हन्ति वातकफसम्भवं ज्वरम् ॥ श्वासकासमुखसेकशीततावह्निमान्द्यविषुचीश्च नाशयेत् ॥ ३८० ॥ नस्येन स्वेन हरति शिरोऽर्ति कफवातजाम् ॥ मोहं महान्तमपि च प्रलापं क्षवथुग्रहम् ॥ सामान्यज्वरचिकित्सोक्तो महाज्वरांकुशः प्रदेयोऽत्र ॥ ३८१ ॥

शुद्धपारा १ तोला, शुद्धगंधक १ तोला, वत्सनाभ १ तोला, मैनशिल १ तोला, सोनामाखी १ तोला, सुहागा १ तोला, सोंठ २ तोले, पीपल २ तोले और कालीमिरच १० तोले, लेवै, प्रथम वत्सनाभादि औषधियोंको सिलपर खूब वारीक पीसकर कपडेमें छानलेवै, पश्चात् इन चूर्ण को तथा पारेको और गंधकको खरलमे डालकर दो पहर

तक खरल करै तौ कल्पतरुनामक रस सिद्ध होताहै । यह कल्पकी समान गुणोंवाला है । यह कल्पतरुरस वात और कफके रोगोंको नष्ट करताहै । इसकी मात्रा एक रत्तीकी जाननी । अदरखके रसके साथ इसको भक्षण करनेसे वातज्वर, कफज्वर, श्वास, कास, मुखसे पानीका गिरना, शीतका लगना, मन्दाग्नि और विषूचिका रोग नष्ट होताहै इस रसका नास देनेसे कफसम्बन्धी और वातसम्बन्धी शिरकी पीडा, प्रलाप, मोह और छींकका रुकना, ये सब दूर होतेहैं सामान्यज्वरकी चिकित्सामें जो महाज्वराङ्कुश कह आये हैं उसको भी यहां देना चाहिये ॥ ३७७-३८१ ॥

अथ त्रिपुरभैरवरसः ।

विषमहौषधमागधिकोषणद्युमणिरक्तकमार्द्रकमर्दितम् ॥ क्रमविवर्द्धितमुद्दलते ज्वरं त्रिपुरभैरव एष रसो वरः ॥ ३८२ ॥

द्युमणिः मारितं ताम्रम् तस्य भागाः पञ्च। रक्तकं हिंगुलं तस्य भागाः षट् । मात्रास्य रत्तिकार्द्धम् । त्रिपुरभैरवो रसो ज्वरे प्रयोज्यः ॥

वत्सनाभ विष १ भाग, सोंठ, २ भाग, पीपल ३ भाग, मिरच ४ भाग, तांबेकी भस्म ५ भाग और सिंगरफ (हिंगुल) ६ भाग, इन सबको एकत्र करके अदरखके रसमें खरल करे तो त्रिपुरभैरव रस सिद्ध होताहै, यह ज्वरको नष्ट करताहै । इसकी मात्रा आधीरत्ती भरकी है ॥ ३८२ ॥

अथ स्वेदविधिगुणौ ।

वातश्लेष्मज्वरे स्वेदं जंघापार्श्वास्थिशूलिनि ॥ पीनसश्वासबाधिर्ये कारयेत्तद्विधानवित् ॥ ३८३ ॥ स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् ॥ हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति॥ ३८४॥

जंघामें पीडा होय, पसली और हड्डियोंमे शूल होय तौ तथा पीनस (जुकाम) श्वास और बधिरता होय तौ ऐसे वातज्वर अथवा कफज्वरमें विधिपूर्वक स्वेदकर्मको जाननेवाला वैद्य स्वेद देवै । स्वेद-शरीरकी रसबहनेवाली नाडियोंको नरम करके अग्निको अग्न्याशयमें पहुँचाकर कफ और वायुके बन्धनको तोडकर ज्वरको दूर करैहै ॥ ३८३ ॥ ३८४ ॥

अथ वालुकास्वेदः ।

खर्परभृष्टपटस्थितकाञ्जिकसंसिक्तवालुकास्वेदः ॥ शमयति वातकफामयशूलांगभंगकम्पादीन् ॥ ३८५ ॥ कम्पे शिरोहृदयगात्रव्यथायां जृम्भायां पादसुप्ततायाम् ॥ पिण्डिकोद्वेष्टनेऽङ्गसादे हनुस्तम्भे च लोमहर्षे ॥ ३८६ ॥

वालूको खीपडेमें गरम करके कपडेमें बांधकर उसकी पोटली बनाकर कांजीमें उसको बुझाकर बारबार स्वेद देव । यह वालुकास्वेद-वातकफके रोग, शिरःशूल और अंगभंगादिकोंको शमन करताहै । कम्प, शिरकी पीडा, हृदयकी पीडा, शरीरकी पीडा, जम्भाई, पावोंका सोजाना, पिंडरियोंकी हडफूटन अंगकी जडता, ठोडीका जकडजाना और रुओंका खडा होना इनको शमन करताहै ॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥

अथ कवलविधिगुणौ ।

मातुलुंगफलकेशरो धृतः सिन्धुजन्ममरिचान्वितो मुखे ॥ हन्ति वातकफरोगमास्यगं शोषमाशु जडतामरोचकम् ॥ ३८७ ॥

इति कवलः कण्ठौष्ठमुखशोषे प्रदेयः ॥

बिजौरेनीबूकी केशर, सैंधानिमक और कालीमिरच इनको एकत्र पीसकर इसका मुखमें कवल धारण करै तौ वातसम्बन्धी और कफसम्बन्धी मुखगतरोग, मुखशोष, जडता और अरुचि तत्काल नष्ट होजाती है ॥ ३८७ ॥

अन्यच्च ।

शर्करादाडिमाभ्याञ्च द्राक्षादाडिमयोस्तथा ॥ कल्कं विधारयेदास्ये शोषवैरस्यनाशनम् ॥ ३८८ ॥ द्राक्षामलकयोः कल्कं सघृतं वदने क्षिपेत् ॥ तेन घृष्टा मुखस्यान्तः कुर्वीत प्रतिसारणम् ॥ ॥ ३८९ ॥ तेन तालुगतान्तःस्थः संशोष-

श्वैव शाम्यति ॥ सुरसं जायते वक्त्रं रुचिर्भवति भोजने ॥ ३९० ॥

मिश्री और अनारका, अथवा दाख और दाडिम (अनार) का कल्क मुखमे धारण करनेसे मुखशोष और मुखकी विरसता दूर होतीहै। दाख और आमलोंका कल्क बनाकर उसमे घी मिलाकर मुखमे रक्खे और उससे मुखके भीतरका भाग घिसै तौ लार गिरकर तालु और गलेका शोष शात होताहै, मुखकी विरसता दूर होकर रसान्वित होजाताहै और भोजनमे रुचि उत्पन्न होती है ॥ ३८८–३९० ॥

अथ निद्रानाशनिदानम्।

नावनं लंघनं चिन्ता व्यायामः शोकभीरुषः ॥ एभिरेव भवेन्निद्रानाशः श्लेष्मातिसंक्षयात् ॥ ३९१ ॥

नस्य, लंघन, चिता, परिश्रम, शोक, भय और क्रोध, इन कारणोंसे कफका अत्यन्त क्षय होकर निद्रा नष्ट हो-जातीहै ॥ ३९१ ॥

अथ निद्रानाशचिकित्सा।

भृष्टन्तु विजयाचूर्णं मधुना निशि भक्षयेत्॥ निद्रानाशेऽतिसारे च ग्रहण्यां पावकक्षये ॥ ३९२ ॥ गुडं पिप्पलिमूलस्य चूर्णेनालोडितं लिहेत् ॥ चिरादपि च संनष्टान्निद्रामाप्नोति मानवः ॥ ३९३ ॥ वायसजंघामूलं बद्धं वा शिरसि काकमाच्याश्च ॥ विधृतं निद्राजनकं त्वङ्मूलं वा शृतं सगुडम् ॥ ३९४ ॥ मूलन्तु काकमाच्या बद्धं सूत्रेण मस्तके नियतम् ॥ विदधाति नष्टनिद्रो निद्रामाश्वेव सिद्धमिदम् ॥ शीलयेन्मन्दनिद्रस्तु क्षीरमद्यरसान्दधि ॥ अभ्यंगोद्वर्तनस्नानमूर्द्धकर्णाक्षितर्पणम् ॥ ३९५ ॥ कान्ताबाहुलताश्लेषो निर्वृतिः कृतकृत्यता ॥ मनोनुकूला विषयाः कामं निद्रासुखप्रदाः ॥ ३९६ ॥ रसे शाके च सूपे च सर्पिर्यूषपयःसु च ॥ निद्रां सञ्जनयत्याशु पलाण्डुरुपयोजितः ॥ ३९७ ॥ ऐक्षवं पोतकी माषः सुरा मांसरसः पयः ॥ गोदुग्धतिलमत्स्याश्च निद्रां कुर्वन्ति देहिनाम् ॥ ३९८ ॥

भुनीहुई भागका चूर्ण करके सहतमे मिलाकर रात्रिमें भक्षण करै तौ निद्राका नाश, अतीसार, संग्रहणीरोग और अग्निकी क्षीणता नष्ट होतीहै। पीपलामूलका चूर्ण गुडमे मिलाकर खानेसे बहुत दिनोंकी नष्टहुई निद्रा आजातीहै। काकजंघा (मसी) की जडको अथवा मकोयकी जडको शिरमे धारण करनेसे या बाधनेसे किंवा मकोयकी जड और छालका क्वाथ बनाकर उसमे गुड मिलाकर पियै तौ निद्रा उत्पन्न होतीहै। मकोयकी जडको सूतमे बाधकर निरन्तर मस्तकपर धारण करनेसे नष्ट हुई निद्रा तत्काल आजातीहै। जिनकी निद्रा मन्द होगई हो अर्थात् थोडी आतीहो, वह दूध, मदिरा, मासरस, दही, तैलकी मालिस, उवटन, स्नान, शिरमें तेल लगाना, कानोमें तेल डालना और नेत्रोमे तेल भरना, इनका अभ्यास करै। सुन्दर स्त्रीकी बाहुरूपी लताका आलिंगन, सन्तोष, कृतार्थता और मनका जो प्रिय लगै ऐसे विषय निद्राके सुखको देनेवाले हैं। मासके रसमे, शाकमे, दालमें, घीमें, यूषमें और दूधमे प्याज मिलाकर खाय तौ तत्काल निद्रा आजातीहै। ईखके रससे बनेहुए पदार्थ, पोईका शाक, उडद, मदिरा, मासरस, दूध, गेहू, तिल और मछली ये सब पदार्थ मनुष्योंके निद्राको लानेवाले हैं ॥ ३९२–३९८ ॥

अथ दारुषट्कलेपः।

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः ॥ लिम्पेत्कोष्णैरम्लपिष्टैः शूलाध्मानयुतोदरम् ॥ ३९९ ॥

देवदारु, सफेद वच, कूठ, सतावर, हींग और सैंधानिमक, इन सबको नीबूकेरसमें पीसकर कुछेक गरम करके लेपकरे तो उदरका शूल और अफारा दूर होजाताहै ॥ ३९९ ॥

अथ कर्णनादचिकित्सा।

कटुतैलं कणाहिङ्गुवचालशुनसाधितम्॥ उष्णं विनिहितं हन्ति कर्णयोर्निःस्वनव्यथाम् ॥ ४०० ॥

पीपल, हींग, वच और लहसुन, इनको कडवे तेलमें पकाकर उस तेलको कानमें डालनेसे कानमें शब्द होनेकी व्यथा नष्ट होजाती है ॥ ४०० ॥

अथ शुष्ककासचिकित्सा ।

कणा सुगन्धिवचया यवान्या च समन्विता ॥ ताम्बूलसहिता हन्ति शुष्ककासं मुखे धृता ॥ ४०१ ॥

पीपल, सुगंधित वच, अजवायन और पान, इनके साथ पीपलको मुखमें रखनेसे सूखी खाँसी नष्ट होती है ॥ ४०१ ॥

अथ वातज्वरहितवस्तूनि ।

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः ॥ मुद्गामलकयूषस्तु बद्धविट्काय दीयते ॥ ४०२ ॥ पेयां वा रक्तशालीनां वस्तिपार्श्वशिरोरुजि ॥ श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् ॥ कासी श्वासी च हिक्की च पञ्चमूलीशृतां पिबेत् ॥ ४०३॥ पेयामिति शेषः ॥

श्रम, उपवास और वायुसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मांसरस युक्त भात हितकारी है । जो वातज्वरमें मल बँधगया होय तो मूँग और आमलोंका यूष देवै । वातज्वरमें मूत्राशय, पसली और शिरमें पीडा होय तो गोखुरू और कटेरीके क्वाथसे सिद्ध की हुई लाल शालि चावलोंकी ज्वरनाशक पेया पिये वातज्वरमें खाँसी, श्वास, हिचकी, होयँ तो पंचमूलके क्वाथसे सिद्ध की हुई पेया पिये ॥४०२॥४०३॥

अथ पित्तज्वराधिकारः ।

पित्तलाहारचेष्टाभ्यां पित्तमामाशयाश्रयम् ॥ वहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरकृत्स्याद्रसानुगम् ॥ ४०४ ॥

तहाँ प्रथम पित्तज्वरकी विप्रकृष्ट (दूरके) और सन्निकृष्ट (समीपके) कारण कहकर सम्प्राप्ति कहतेहैं ।

पित्तकारक आहार और विहारके करनेसे दुष्ट हुआ पित्त आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करै है ॥ ४०४ ॥

पित्तस्य पंगुत्वात्तेन कोष्ठाग्निरुष्मा वहिर्नेतुं न शक्यते । तथाहि–

पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः ॥ वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥ ४०५ ॥

इति । ततोऽत्र पित्तं वातसहायं बोद्धव्यम् । यत आह–

द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येकदोषजः ॥ एकस्तु कुपितो दोष इतरानपि कोपयेत् ॥ ४०६ ॥

"पित्त पंगु (लूला) है, कफ पंगु है, मल और धातु भी पंगु हैं, इसकारण वायु जहाँ इनको लेजाती है, वहीं वे बादलोंकी समान चले जातेहैं" ऐसा कहाहै । पित्त पंगु होनेके कारण कोठेकी अग्निको कैसे बाहर लेजासक्ताहै अर्थात् नहीं लेजासक्ताहै, तथापि वायुकी सहायतासे बाहर लेजाताहै, ऐसा जानना । कहा भी है कि–"संसारमें कोई द्रव्य एक रसवाला नहीं और कोई भी रोग एक दोषसे नहीं होताहै, एक दोषके कुपित होनेसे दूसरे दोष भी कुपित होजाते हैं ॥४०५॥४०६॥

पित्तज्वरपूर्वरूपम्–

पित्तज्वरे उत्पत्स्यति नेत्रदाहः स्यात् । स च श्रमादिपूर्वको भवति ॥

पित्त ज्वरके उत्पन्न होनेसे कुछेक पहिले श्रम आदि होकर नेत्रोंमें दाह होताहै ।

अथ पित्तज्वरलक्षणम् ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः ॥ कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ ४०७ ॥ प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ॥ पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥४०८॥

अतीसारः पित्तस्य तस्य सरत्वात्सद्रवमलप्रवृत्तिः न तु अतिसारवत्तस्य ज्वरोपद्रवत्वात् । वमिः यदा पित्तं कफस्य स्थानं याति तदा बोद्धव्यम् । प्रलापोऽनर्थकं

वचः। मूर्च्छा रूपादेरज्ञानम्। मदः पूगकोद्रवधत्तूरभक्षणादिव मत्तता। भ्रमःचक्रारूढस्येव ज्ञानम्, चकारात् रक्तकण्ठादयो बोद्धव्याः॥

पित्तज्वरमे ज्वरका वेग तीक्ष्ण होताहै, अतिसार होता है, निद्रा अल्प आती है (पित्त कफके स्थानमें जाता है तब वमन होती है) कण्ठ, होठ, मुख और नासिका पक जातेहैं, पसीना आताहै, रोगी वृथा बकवाद करताहै, मुखमे कडवापन अथवा तीखापन होताहै। मूर्च्छा (बेहोशी) होतीहै, दाह मद तथा तृषा अधिक होतीहै, विष्ठा, मूत्र और नेत्र पीले होजातेहैं तथा भ्रम होताहै। पित्तज्वरमें जो अतीसार होताहै उसमे अतीसारकी समान पतला मल नही आताहै किन्तु पित्त द्रवरूप होनेसे द्रवरूप दस्त आताहै ऐसा जानना, कारण यह है कि–अतीसार ज्वरका उपद्रव है॥ ४०७॥ ४०८॥

अथ पित्तज्वरचिकित्सा।

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान्पिधापयन्॥ विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत्॥ ४०९॥

इति वचनात्सामान्यतो ज्वरितमात्रस्य यावदारोग्यदर्शनं लंघनविधानम्। पित्तज्वरिणो लंघनविधाने विशषमाह सुश्रुतः–

पैत्तिके दशरात्रेण ज्वरे युञ्जीत भेषजम्॥ ४१०॥

दशरात्रेण लंघनवता व्यतीतेनेत्यर्थः॥

दुष्ट हुए वातादि दोष आमाशयमें जाकर अग्निको आच्छादित करके अन्न आदि अपक्वरसके साथ मिलकर शरीरके स्रोतोंको ढककर ज्वरको उत्पन्न करतेहैं इसकारण ज्वरमे लघन (उपवास) कराने चाहिये। इसप्रकार सामान्य रीतिसे ज्वरके आरोग्य होने पर्यन्त लघन करावे। तहा पित्तज्वरमे लघन करानेके विषयमे सुश्रुत विशेष कहताहै कि–"पित्तज्वरमे दश रात्रितक लघन कराकर पश्चात् औषधि देनी चाहिये"॥ ४०९॥ ४१०॥

अथ तिक्तादिक्राथः।

तिक्तामुस्तयवैः पाठाकट्फलाभ्यां सहोदकम्॥ पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिकज्वरे॥ ४११॥

कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, पाढ और कायफल, इनका क्राथ बनाकर उसमे मिलाकर पीवै। यह पित्त ज्वरमे उत्तम पाचन है॥ ४११॥

अथ पर्पटादिक्राथः।

पर्पटो वासकस्तिक्ता कैरातो धन्वयासकः॥ प्रियंगुश्च कृतः क्राथ एषां शर्करया युतः॥ पिपासादाहपित्तास्रयुक्तं पित्तज्वरं हरेत्॥ ४१२॥

पित्तपापडा, अडूसा, कुटकी, चिरायता, धनिया और फूलप्रियगृ, इनके क्राथमे चीनी मिलाकर पीनेसे प्यास दाह और रक्तपित्तसहित पित्तज्वर नष्ट होनाहै॥ ४१२॥

अथ द्राक्षादिक्राथः।

द्राक्षा हरीतकी मुस्ता कटुका कृतमालकः॥ पर्पटश्च कृतः क्राथ एषां पित्तज्वरापहः॥ ४१३॥ मुखशोषप्रलापार्तिदाहमूर्च्छाभ्रमप्रणुत्॥ पिपासारक्तपित्तानां शमनो भेदनो मतः॥ ४१४॥

दाख, हरड, नागरमोथा, कुटकी, अमलतास और पित्तपापडा, इनका क्राथ बनाकर पिये तौ पित्तज्वर, मुखशोष, प्रलाप, पीडा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, प्यास और रक्तपित्तको शमन करताहै तथा भेदक (दस्तावर) है॥ ४१३॥ ४१४॥

अथ पटोलादिक्राथः।

पटोलयवधान्याकमधुकं मधुसंयुतम्॥ हन्ति पित्तज्वरं दाहं तृष्णाश्चातिप्रमाथिनीम्॥ ४१५॥

पटोलपात, इन्द्रजौ, धनिया और महुआ इनके क्राथमे सहत डालकर पीनेसे–पित्तज्वर, दाह और अत्यन्त तीव्र तृषा नष्ट होतीहै॥ ४१५॥

अथ गुडूच्यादिक्राथः।

गुडूच्यामलकैर्युक्तः केवलो वापि पर्पटः॥ पित्तज्वरं हरेच्चूर्णं दाहशोषभ्रमान्वितम्॥ ४१६॥ एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्व-

रविनाशनः ॥ किं पुनर्यदि युञ्जीत चन्दनोशीरवालकैः ॥ ४१७ ॥

गिलोय, आमले और पित्तपापडा इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे अथवा केवल एक पित्तपापडेकाही क्वाथ बनाकर पीनेसे दाह, शोष और भ्रमयुक्त पित्तज्वर नष्ट होताहै। केवल एक पित्तपापडाही पित्तज्वरको नष्ट करनेके लिये श्रेष्ठ है और जो उसमें चन्दन, खस और सुगन्धवाला मिलादियाजाय तौ कहनाही क्या है ॥ ४१६ ॥ ४१७ ॥

अथ ह्रीबेरादिक्वाथः ।

ह्रीबेरचन्दनोशीरघनपर्पटसाधितम् ॥ दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ॥ ४१८ ॥

सुगन्धवाला, चन्दन, खस, नागरमोथा और पित्तपापडा, इनसे पकायाहुआ जल अत्यन्त शीतल करके पिये तो तृषा, वमन, ज्वर और दाह नष्ट होताहै ॥ ४१८ ॥

अथ भूनिम्बादिक्वाथः ।

भूनिम्बातिविषालोध्रमुस्तकेन्द्रयवामृताः॥ वालकं धान्यकं बिल्वं कषायो माक्षिकान्वितः ॥ विड्भेदश्वासकासांश्च रक्तपित्तज्वरं हरेत् ॥ ४१९ ॥

चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इन्द्रजौ, गिलोय, सुगन्धवाला, धनिया और बेलगिरी, इनका क्वाथ सहत मिलाकर पिये तौ मलभेद, श्वास, खासी, रक्तपित्त और पित्तज्वरको नष्ट करताहै ॥ ४१९ ॥

अथ महाद्राक्षादिक्वाथः ।

द्राक्षाचन्दनपद्मानि मुस्ता तिक्ताऽमृतापि च ॥ धात्री बालमुशीरं च लोध्रेन्द्रयवपर्पटाः ॥ ४२० ॥ परूषकं प्रियंगुश्च यवासो वासकस्तथा ॥ मधुकं कुलकश्चापि किरातो धान्यकं तथा ॥ ४२१ ॥ एषां क्वाथो निहन्त्येव ज्वरं पित्तसमुत्थितम् ॥ तृष्णां दाहं प्रलापञ्च रक्तपित्तं भ्रमं क्लमम् ॥ ४२२ ॥ मूर्च्छां छर्दिं तथा शूलं मुखशोषमरोचकम् ॥ कासं श्वासञ्च हृल्लासं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४२३ ॥

दाख, लालचन्दन, कमल नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, आमले, सुगन्धवाला, खस, लोध, इन्द्रजौ, पित्तपापडा, फालसे, फूलप्रियगु, जवासा, अडूसा, मुलेठी, बेर, चिरायता और धनियाँ, इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रलाप, रक्तपित्त, भ्रम, क्लम (ग्लानि), मूर्च्छा, वमन, शूल, मुखशोष, अरुचि, खासी, श्वास और उबकाई, ये सब नष्ट होतेहैं ॥ ४२०-४२३ ॥

अथ धान्याकक्वाथः ।

ससितो निशि पर्युषितः प्रातर्धान्याकसम्भवः क्वाथः ॥ पीतः शमयत्यचिराद-न्तर्दाहं ज्वरं पैत्तम् ॥ ४२४ ॥

रात्रिके समय धनियेको भिजोदेवे, प्रातःकाल क्वाथ बनाकर उसमें मिश्री मिलाकर पिये तो थोडेही समयमें अन्तर्दाह युक्त पित्तज्वर नष्ट होताहै ॥ ४२४ ॥

अथामृताहिमवासाहिमौ ।

अमृताया हिमः प्रातः ससितः पैत्तिकं ज्वरम् ॥ वासायाश्च तथा कासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ॥ ४२५ ॥

गिलोयका हिम बनाकर उसमें मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पिये तौ पित्तज्वर नष्ट होताहै । अडूसेके हिममें मिश्री अथवा चिनी मिलाकर प्रातःकाल पिये तौ खासी, रक्तपित्त और पित्तज्वर नष्ट होताहै ॥ ४२५ ॥

अथ गुडूच्यादिक्वाथः ।

गुडूची भूमिनिम्बश्च वालं वीरणमूलकम् ॥ लघुमुस्तं त्रिवृद्धात्री द्राक्षा वासा च पर्पटः ॥ ४२६ ॥ एषां क्वाथो हरत्येव ज्वरं पित्तकृतं द्रुतम् ॥ सोपद्रवमपि प्रातर्निपीतो मधुना सह ॥ ४२७ ॥

गिलोय, चिरायता, सुगन्धवाला, खस, मोथा, निसोत, आमले, दाख, अडूसा, और पित्तपापडा, इनका क्वाथ बनाकर सहतके साथ प्रातःकाल पिये तौ उपद्रवसहित घोर पित्तज्वर नष्ट होताहै ॥ ४२६ ॥ ४२७ ॥

अथ प्रलेपः।

पलाशस्य वदर्या वा निम्बस्य मृदुपल्लवैः॥ अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं हन्याद्दाहयुतं ज्वरम्॥ ४२८॥

ढाकके, बेरीके, अथवा नीमके कोमल पत्ते लेकर नींबूके रसमे पीसकर शरीरपर लेप करनेसे दाह सहित पित्तज्वर नष्ट होताहै॥ ४२८॥

अथ शीतजलधारा।

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रे निहिते च नाभौ॥ शीताम्बुधारा बहुला पतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं ज्वरञ्च ४२९॥

पित्तज्वरवाले मनुष्यको चित्त सुलाकर उसकी नाभिके ऊपर ताँबे अथवा काँसीके पात्रको स्थापन करै उसमे अत्यन्त शीतल जलकी धारा छोडै तौ तत्काल दाह और ज्वर नष्ट होताहै॥ ४२९॥

अथ पथ्याद्यवलेहः।

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैर्लिहन्दाहज्वरापहाम्॥ कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासान्हंति वमीमपि॥ ४३०॥

तैलघृतक्षौद्रैरित्यत्र न समुच्चयस्तेन केवलेन क्षौद्रेणापि लिह्यात्॥

हरडको तेल, घी और सहतके साथ अथवा केवल सहतके साथही हरडको चाटनेसे दाहसहित पित्तज्वर, खासी, रक्तपित्त, विसर्प, श्वास और वमन दूर होतीहै॥ ४३०॥

अथार्द्रवस्त्रधारणम्।

काञ्जिकार्द्रपटेनावगुण्ठनं दाहनाशनम्॥ अथ गोतक्रसंस्विन्नशीतलीकृतवाससा ४३१

काजीमे वस्त्रको भिजोकर रोगीके शरीरपर उढावै अथवा गायके तक्र(छाछ)मे वस्त्रको उसेकर पश्चात् खूब शीतल करके शरीरपर धारण करै तौ दाह दूर होजाताहै॥ ४३१॥

अथ कवलः।

द्राक्षामलककल्केन कवलोऽत्र हितो मतः॥ पक्वदाडिमबीजैर्वा धान्यकल्केन च क्वचित्॥ ४३२॥

पित्तज्वरमे दाख और आमलेके कल्कका कवल हितकारी है। पके अनारके कल्कका वा धनियेके कल्कका कवल हितकारक है॥ ४३२॥

अथ तर्पणम्।

दाहकम्पार्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयान्वितम्॥ शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम्॥ ४३३॥

लाजतर्पणम् लाजसक्तुरूपं तर्पणम्। सन्तर्पणस्वरूपमुक्तं सामान्यज्वरचिकित्सायाम्॥

मुद्गयूषौदनो देयः सितया पैत्तिके ज्वरे॥

दाह और कम्पसे पीडित, दुर्बल, निराहार (विना भोजन किया) और तृषायुक्त ऐसे ज्वररोगीको खीलोंके सत्तुओंमे मिश्री और सहत डालकर पिलावै, यह तर्पण है। सन्तर्पणका स्वरूप सामान्यज्वरकी चिकित्सामे प्रथम कह आयेहै। पित्तज्वरमे मूँगके यूपसे भीजाहुआ भात चीनी मिलाकर खानेको देवै॥ ४३३॥

अथ पित्तज्वरोपचारः।

हर्म्ये शुभ्राभ्रसङ्काशे शशांककरशीतले॥ मलयोदकसंसिक्ते सुप्यात्पित्तज्वरी नरः ४३४

पित्तज्वर वाला श्वेतबादलके समान निर्मल, चन्द्रमाकी किरणोसे शीतलहुआ और जिसमे चन्दन खस आदिका जल छिडका हो ऐसे भवनमे शयन करै॥ ४३४॥

हारावलीचन्दनशीतलानां सुगन्धपुष्पाम्बरभूषितानाम्॥ नितम्बिनीनां सुपयोधराणामालिङ्गनान्याशु हरन्ति दाहम्॥ ४३५॥ आह्लादश्चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत्पुनः॥ हितश्च भोजयेदन्नं न प्रीतिसुरतं महत्॥ ४३६॥ वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः॥ नार्यश्चन्दनदिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्यहरा मताः॥ ४३७॥

जिनके कण्ठमे मोतियोंकी माला पडीहै जिनका शरीर चन्दनादिके प्रलेपसे शीतल होरहाहै, सुगन्धित पुष्प और सुन्दर वस्त्रोंसे जिनका शरीर अलंकृत होरहाहै

अथ यवान्यादिक्वाथः।

यवानी पिप्पली वासा तथा खाखसव-
ल्कलम् ॥ एषां क्वाथं पिबेत्कासे श्वासे
च कफजे ज्वरे ॥ ४५४ ॥

अजवायन, पीपल, अडूसा और पोस्तका डोडा इनका क्वाथ बनाकर खांसी, श्वास और कफज्वरमें पीवें ॥ ४५४ ॥

अथ वासादिक्वाथः।

वासाक्षुद्रामृताक्वाथः क्षौद्रेण ज्वरकास-
हृत् ॥ ४५५ ॥

अडूसा, कटेरी और गिलोयके क्वाथमें सहत डालकर पीनेसे ज्वर और खांसी दूर होतीहै ॥ ४५५ ॥

अथ मरिचादिक्वाथः।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं कारवी कणा॥
चित्रकं कट्फलं कुष्ठं ससुगन्धि वचा
शिवा ॥ ४५६ ॥ कण्टकारी जटाशृंगी
यवानी पिचुमन्दकः ॥ एषां क्वाथो हर-
त्येव ज्वरं सोपद्रवं कफात् ॥ ४५७ ॥

कालीमिरच, पीपरामूल, सोंठ, कलौंजी, पीपल, चीता, कायफल, कूठ, सुगन्धितवच, हरड, कटेरीकी जड, काकडाशिंगी, अजवायन और नीमकी छाल, इनका क्वाथ उपद्रवसहित कफज्वरको नष्ट करै है ॥ ४५६ ॥ ४५७ ॥

अथ कल्पतरुरसः।

कफवातव्याधिहरत्वाद्वाताधिकारोक्तक-
ल्पतरुरसो योज्यः ॥

सिन्धुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेण कफे हितः४५८
कवल इति शेषः ॥

मुद्गयूषोदनो देयो ज्वरे कफसमु-
त्थिते ॥ ४५९ ॥

वातज्वराधिकारमें कहा हुआ कल्पतरु रस कफ वातनाशक होनेसे इस कफज्वरमें प्रयोग करना चाहिये। कवल, सैंधानिमक, त्रिकुटा (सोंठि मिरच पीपल) और राई, इनको अदरखके रसमें पीसकर मुखमें कवल धारण करै। यह कफज्वरमें हितकारी है। कफज्वरमें मूंगके यूषके साथ भात खानेको देवै ॥ ४५८ ॥ ४५९ ॥

कफज्वराधिकारः समाप्तः।

अथ वातपित्तज्वराधिकारः।

वातपित्तकरैर्वातपित्ते ह्यामाशयाश्रये ॥
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगे ज्वरका-
रिणी ॥ ४६० ॥

स्यातामिति शेषः ॥

तहाँ सबसे प्रथम वातपित्त ज्वरके विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट कारण कहकर सम्प्राप्ति कहतेहैं ॥

वात और पित्तकारक आहार विहारके करनेसे वात और पित्त आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करतेहैं ॥ ४६० ॥

अथ वातपित्तज्वरपूर्वरूपम्।

प्राग्रूपे वातपित्तस्य भवतो वातपै-
त्तिके ॥ ४६१ ॥

ज्वर इति शेषः ॥

वातपित्तज्वरमें वातज्वर और पित्तज्वर दोनोंके पूर्वरूप होतेहैं ॥ ४६१ ॥

अथ वातपित्तज्वरलक्षणम्।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहो निद्रानाशः
शिरोरुजा ॥ कण्ठास्यशोषो वमथू रोम-
हर्षोऽरुचिस्तमः ॥ पर्वभेदश्च जृम्भा च
वातपित्तज्वराकृतिः ॥ ४६२ ॥

पर्वभेदः—पर्वाणि भिद्यन्ते इति, सन्धिषु
व्यथा ॥

तृष्णा, मूर्च्छा, भ्रान्ति, दाह, निद्राका नाश, शिरमें पीडा, कण्ठ और मुखका सूखना, वमन, रोमोंका खडा होना, अरुचिका होना, अन्धकारदर्शन, सन्धियोंमें पीडा और जम्भाइयोंका आना, ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥ ४६२ ॥

अथ वातपित्तज्वरचिकित्सा।

वातपित्तज्वरे देयमौषधं पञ्चमेऽहनि ॥

वातपित्त ज्वरमें पाचवें दिन औषधि देनी चाहिये ॥

अथ किरातादिक्वाथः।

किराततिक्तममृता द्राक्षा चामलकं शटी॥
निष्क्वाथ्य सगुडं क्वाथं वातपित्तज्वरे
पिबेत् ॥ ४६३ ॥

चिरायता, गिलोय, दाख, आमले और कचूर, इनके क्वाथमे गुड डालकर पीनेसे वातपित्तज्वर नष्ट होताहै ४६३॥

अथ पंचभद्रक्काथः ।

गुडूची पर्पटो मुस्तं किरातो विश्वभेषजम् ॥ वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ४६४

गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ इनका क्वाथ वातपित्तज्वरमे देना चाहिये । यह पञ्चभद्र क्वाथ उत्तम है ॥ ४६४ ॥

अथ त्रिफलादिक्काथः

त्रिफला शाल्मली रास्ना राजवृक्षाटरूषकैः ॥ शृतमम्बु हरत्याशु वातपित्तभवं ज्वरम् ॥ ४६५ ॥

हरड, बहेडा, आमले, सेमल, रायसन, अमलतास और अडूसा, इनका क्वाथ वातपित्तज्वरको नष्ट करताहै ॥ ४६५ ॥

अथ मधुकादिहिमः ।

मधुकं सारिवा द्राक्षा मधूकं चन्दनोत्पलम्। काश्मरीफलकं लोध्रं त्रिफला पद्मकेशरम् ॥ ४६६ ॥ परूषकं मृणालञ्च क्षिपेत्संचूर्ण्य वारिणि॥ निशोषितं सिताक्षौद्रलाजयुक्तन्तु तत्पिबेत् ॥ ४६७ ॥

वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णां मूर्च्छारुचिभ्रमान् ॥ शमयेद्रक्तपित्तञ्च जीमूतमिव मारुतः ॥ ४६८ ॥

अत्र मधुकादि मृणालान्तं समुदितम् । पलद्वयपरिमितं संचूर्ण्य क्षिपेत् । वारिणि षट्पलपरिमिते मधुकादिहिमो दाहे ॥

मुलैठी, सारिवा (गौरीसर), दाख, महुआ, चन्दन, कमल, कुम्भेरका फल, लोध, त्रिफला, कमल, केशर, फालसे और कमलकी नाल, ये सब आठ, तोले लेकर चूर्ण करै और छः पल (२४–तोले) जलमे रात्रिके समय डालकर रखदेवै, पश्चात् उस वासी जलमे मिश्री, सहत और खीलोंके सत्तू डालकर पियै जिस प्रकार पवन बादलोको दूरकर देतीहै तिसीप्रकार यह हिम वातपित्तज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम और रक्तपित्तको दूर करै है ॥ ४६६–४६८ ॥

अथान्नम् ।

मुद्गामलकयूषस्तु वातपित्तज्वरे हितः ॥ महादाहे प्रदातव्यो यूषश्चणकसम्भवः ४६९

अन्यच्च–"दाडिमामलकमुद्गसम्भवो यूष उक्त इति वातपैत्तिके" इति ॥

कफवातहरा मुद्गा कारवेल्ल्यादयस्तथा ॥ प्रायेण न च ते देया वातपित्तोत्तरे ज्वरे ॥ दत्तास्तु ज्वरविष्टम्भशूलोदावर्तकारिणः ॥ ४७० ॥

मूग और आमलेका यूप वातपित्तज्वरमे हितकारी है और जो वातपित्त ज्वरमे अत्यत दाह होय तौ चनेका यूप देना चाहिये । पूर्वोक्त कहाहुआ अनार, आमले और मूँगका यूष वातपित्तज्वरमे देना योग्य है । मूँग और करेला आदि कफवातनाशक पदार्थ वातपित्तज्वरमे नहीं देने चाहिये और जो यह दिये जायँ तौ ज्वर, विष्टम्भ, शूल और उदावर्त्त (अफारा) रोगको उत्पन्न करतेहैं ॥ ४६९ ॥ ४७० ॥

इति वातपित्तज्वराधिकारः समाप्तः ।

अथ वातकफज्वराधिकारः ।

वातश्लेष्मकरैर्वातकफावामाशयाश्रयौ ॥ बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगौ ज्वरकारिणौ ॥ ४७१ ॥

तहाँ प्रथम विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट कारण कहकर वातकफ ज्वरकी सम्प्राप्ति कहतेहैं ॥

वात और कफकारक आहार विहारके करनेसे वात और कफ आमाशयमे जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर वातकफज्वरको उत्पन्न करैहैं ॥ ४७१ ॥

अथ वातकफज्वरपूर्वरूपम् ।

प्राग्रूपे वातकफयोः स्यातां वातकफज्वरे ॥ ४७२ ॥

वातकफज्वरमे वातज्वर और कफज्वर दोनोंके पूर्वरूप होतेहैं ॥ ४७२ ॥

अथ वातकफज्वरलक्षणम् ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदा निद्रा गौरवमेव च ॥

शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम् ॥ ४७३ ॥ सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ४७४ ॥

स्वेदाप्रवर्तनं स्वेदस्य आसमंताद्धावेन प्रवृत्तिः ॥

तथा च हारीतः।

शरोग्रहः स्वेदभवश्च कासो ज्वरस्य लिङ्गं कफवातजस्य ॥ ४७५ ॥

स्वेदभवः स्वेदोत्पत्तिः। ननु स्वेदः पित्तस्य धर्मः, अतएव पित्तज्वरे "कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते" ॥ इत्युक्तम्। तस्मात्कथं वातश्लेष्मज्वरे स्वेदस्यातिप्रवृत्तिः? उच्यते। विकृतिविषमसमवायारब्धत्वान्न दोष इति कार्तिकः। प्रकृतिसमवायस्य विकृतिविषमसमवायस्य च अयमर्थः-प्रकृत्या हेतुभूतया समः कारणानुरूपः समवायः कार्यकारणभावः सम्बन्धः प्रकृतिसमवायः। कारणानुरूपं कार्यमिति यावत्। यथाप्रकृतैर्यथास्थितैः शुक्लैस्तन्तुभिः समवायकारणैरारब्धः पटः शुक्ल एव भवति। यथा च प्रकृतेन केवलेन वातेन पित्तेन कफेन वा तज्जनितो ज्वरो वाताद्युचितैर्धर्मैर्वेपथुवेगाधिक्यस्तैमित्यादिभिर्युक्तो भवति। विकृतिविषमसमवायस्तु विकृत्याहेतुभूतया विषमः कारणानुरूपः समवायः कार्यस्य कारणे सम्बन्धः। यथा संयोगाद्विकृताभ्यां हरिद्राचूर्णाभ्यां हेतुभूताभ्यां विषमः कारणानुरूपो लोहितो वर्णो जायते तथा योगेन विकृताभ्यां वातश्लेष्मभ्यां हेतुभूताभ्यां विषमा कारणानुरूपा स्वेदस्य अतिप्रवृत्तिरिति सिद्धान्तः ॥

शरीर गीले कपडेसे ढकासा मालूम हो, संधियोंमें पीडा हो, निद्रा आवे, देहमें भारीपन हो, शिरमे पीडा, प्रतिश्याय (जुकाम) हो, खाँसी, पसीनेका आना सन्ताप हो और ज्वरका मन्दवेग हो, यह वातकफज्वरके लक्षण जानने। यहां 'स्वेदाप्रवर्तनम्' इस पदमें पसीनोंका चारों ओरसे अधिक आना ऐसा अर्थ समझना चाहिये। जैसे कि, हारीतसंहितामें कहाहै कि "शिरमें पीडा हो, पसीने आवें और खाँसी हो तो वातकफ ज्वरके लक्षण जानने" ॥

शंका-पसीनोंका आना तो पित्तका धर्म है क्यों कि-पित्तज्वरमें कंठ, होंठ, मुख और नासिका ये पकजातेहैं और पसीने आतेहैं ऐसा कहाहै, फिर वातज्वरमें पसीनोंका आना कैसे सिद्ध होसक्ता है ?

समाधान-कार्तिक ग्रंथकार कहतेहैं कि-"विकृतिविषमसमवाय होनेसे वातकफज्वरमें पसीने अधिक आतेहैं। इसकारण कुछ विरोध नहीं आता" वैद्यक शास्त्रमें 'प्रकृतिसमवाय' और 'विकृतिविषमसमवाय' ऐसे दो प्रकारके समवाय हैं और इनमें कार्यकारणभाव सम्बन्ध माना है जिसप्रकार सफेद तंतुरूप समवायिकारणसे बनाहुआ वस्त्र उसकारणको मिलता हुआ अर्थात् सफेद ही होताहै तैसे ही कारणके स्वभावानुसार कारणके मिलनेसे कार्य उत्पन्न होताहै यह प्रकृतिसम समवाय मानाजाताहै। जैसे कि, केवल वातसे उत्पन्न हुआ वातज्वर वातसम्बन्धी कम्पादि धर्मसे युक्त होताहै। केवल पित्तसे उत्पन्न हुआ पित्तज्वर पित्तसम्बन्धी तीव्रतादि धर्म युक्त होता है और केवल कफसे उत्पन्न हुआ कफज्वर कफसंबन्धी स्तैमित्य आदि लक्षणयुक्त होताहै। जैसे सयोगसे विकारको प्राप्तहुए हलदी और चूना इनमें उनकारणोंके न मिलनेसे लाल रंग रूप कार्य उत्पन्न होताहै। उसीप्रकार विकृति होनेसे कारण नहीं मिलनेसे ऐसा कार्य उत्पन्न होताहै इसकारण "विकृतिविषम समवाय" मानाजाताहै, इस विकृतिविषम समवायके अनुसार सयोगके होनेसे विकारको प्राप्त हुए वात और कफ इन दोनोंमें उनके स्वभाव न मिलनेसे अधिक पसीना आताहै ऐसा सिद्धान्त है ॥४७३-४७५ ॥

अथ वातकफज्वरचिकित्सा।

वातश्लेष्मज्वरे देयमौषधं नवमेऽहनि ॥ ४७६ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ दीपनीयः स्मृतो वर्गो वातश्लेष्मज्वरापहः ॥ कोलमात्रोपयोगित्वात्पञ्चकोलमिदं स्मृतम् ॥ ४७७॥

तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं दीपनं कफदाहनुत्॥ गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम्॥ ४७८॥

वातकफज्वरमें नवमें दिन औषधि देनी चाहिये। पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनको पचकोल कहते है। यह पचकोल—अग्निको दीपन करनेवाला और वातकफज्वरनाशक है। इसमें पॉचो पदार्थ एक एक कोलपरिमाण लेनेसे यह पचकोल कहाजाताहै। पचकोल-तीक्ष्ण, उष्ण, उत्तमपाचन, दीपन, कफदाहनाशक, पित्तप्रकोपक तथा गुल्म, प्लीहा, उदररोग, अफारा और शूलको नष्टकरैहै॥ ४७६–४७८॥

अथ किरातादिक्काथः।

किरातविश्वामृतवल्लिसिंहिकाव्याघ्रीकणामूलरसोनसिन्दुकैः॥ कृतः कषायो विनिहन्ति सत्वरं ज्वरं समीरात्सकफात्समुत्थितम्॥ ४७९॥

चिरायता, सोंठ, गिलोय, कटेरी, कटाई, पीपलामूल, लहसुन और सम्हालू, इनका क्काथ कफवातज्वरको हरनेवाला है॥ ४७९॥

अथ पिप्पल्यादिक्काथः।

पिप्पल्यादिगणक्काथं पिबेद्वातकफज्वरी॥ नातः परं किञ्चिदस्ति ज्वरे भेषजमुत्तमम्॥ ४८०॥

वातकफज्वरवाला पिप्पल्यादिगणका क्काथ पियै, इसके समान वातकफज्वरमें दूसरी औषधि नहीं है॥ ४८०॥

अथ बृहत्पिप्पल्यादिक्काथः।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम्॥ वचा सातिविषाजाजी पाठावत्सरेणुकाः॥ ४८१॥ किराततिक्तको मूर्वा सर्षपा मरिचानि च॥ कट्फलं पुष्करं भार्ङ्गी विडङ्गं कर्कटाह्वयम्॥४८२॥ अर्कमूलं बृहत्सिंही श्रेयसी सदुरालभा॥ दीप्यकश्चाजमोदा च शुकनासा सहिंगुका॥ ४८३॥ एतानि समभागानि गण एकोऽष्टविंशतिः॥ एषां क्काथो निपीतः स्याद्वातश्लेष्मज्वरापहः॥४८४॥

हन्ति वातं तथा शीतं प्रस्वेदमतिवेपथुम्॥ प्रलापश्चातिनिद्राश्च रोमहर्षारुची तथा॥ ४८५॥ महावातेऽपतन्त्रे च शून्यत्वे सर्वगात्रजे॥ पिप्पल्यादिमहाक्काथो ज्वरे सर्वत्र पूजितः॥४८६॥ अत्र श्रेयसी रास्ना वातश्लेष्मज्वरहरत्वात्॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य (चाव), चीता, सोंठ, वच, अतीस, जीरा, पाढ, इन्द्रजौ, रेणुका, चिरायता, मूर्वा, सरसों, कालीमिरच, कायफल, पोहकरमूल, भारंगी, वायविडंग, काकडाशिंगी, आककीजड, बडीकटेरी, रायसन, धमासा, अजवायन, अजमोद, श्योनाक और हींग इन २८ औषधियोंके समूहको पिप्पल्यादिगण कहतेहैं। इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर क्काथ बनाकर पियै तौ—वातकफज्वर, वात, शीत, पसीना, अत्यंत कम्प, प्रलाप, अत्यंत निद्रा, रोमाचोंका खडा होना, अरुचि, अपतंत्र नामक महावायु और सब शरीरकी शून्यता नष्ट होजातेहैं। यह पिप्पल्यादि महाक्काथ सर्वप्रकारके ज्वरोंमे पूजाजाता है॥ ४८१–४८६॥

अथ दशमूलीक्काथः।

दशमूलीरसः पीतः कणाढ्यः कफवातजे॥ ज्वरे विपाके निद्रायां पार्श्वरुक्श्वासकासके॥ ४८७॥

दशमूलके क्काथमें पीपलका चूर्ण डालकर मुखपाक, निद्रा, पसलियोंकी पीडा, श्वास और खॉसीयुक्त कफवातज्वरमें पीना चाहिये॥ ४८७॥

अथ पिप्पलीक्काथः।

पिप्पलीभिः शृतं तोयमनभिष्यन्दि दीपनम्॥ वातश्लेष्मज्वरं हन्ति सेवितं प्लीहनाशनम्॥ ४८८॥

पीपलका क्काथ सेवन करनेसे वातकफज्वरको नष्ट करताहै, अनभिष्यन्दि, अग्निप्रदीपक और प्लीहाको दूर करताहै॥ ४८८॥

अथ सूर्यशेखररसः।

सूतकं टंकणं भृष्टं गन्धं शुद्धं समं समम्॥ द्विगुणं सूतकाद्देयं जैपालं तुषवर्जितम्॥

॥ ४८९ ॥ सैन्धवं मरिचं चिश्चात्वक्क्षारः शर्करापि च ॥ प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥ ४९० ॥ सूर्यशेखरनामाऽयं रसो गुञ्जाद्वयोन्मितः ॥ भक्षितस्तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहः ॥४९१॥

सूर्यशेखरो रसो वातश्लेष्मज्वरे शीतज्वरे च रसप्रदीपे ॥

शुद्धपारा, भुनाहुआ सुहागा और शुद्धगधक, ये सब समान भाग, शुद्ध तुषरहित जमालगोटेके बीज पारेसे दुगुने, सैंधानिमक, कालीमिरच, इमलीका खार और खाड, ये सब पारेकी बराबर लेवै, फिर सबको एकत्र जम्भीरी नींबूके रसमें एक दिन खरल करै तौ सूर्यशेखर नामक रस तय्यार होताहै । दो रत्ती परिमाण इसको गरमजलके साथ सेवन करै । इससे वातकफज्वर और शीतज्वर नष्ट होताहै, यह रसप्रदीपमे कहा है४८९–४९१

अथोद्धूलनम् ।

स्वेदोद्गमे भृष्टकुलत्थचूर्णनिपातनं शस्तमिति ब्रुवन्ति ॥ जीर्णं शकृद्धोर्लवणस्य भाजनं संचूर्णितं स्वेदहरं सुधूलनात् ॥ ४९२ ॥

अथ मरिचाद्युद्धूलनम् ।

मरिचं पिप्पली शुण्ठी पथ्या लोध्रश्च पौष्करम् ॥ भूनिम्बः कटुका कुष्ठं कर्चूरो लिङ्गिका शटी ॥ ४९३ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ एतदुद्धूलनं श्रेष्ठं स्रोतोवत्स्वेदनिर्गमे ॥४९४॥

लिंगिका पञ्चगुरिआ इति लोके । अत्र शटी गन्धपलाशी ॥

भूनिम्बः कारवी तिक्ता वचा कट्फलजं रजः ॥ एषामुद्धूलनं श्रेष्ठं सततं स्वेदसंश्रये ॥ ४९५ ॥

पूर्वोक्तो वालुकास्वेदोऽपि अत्र समुचितः ॥

जो वातकफज्वरमें पसीना अधिक आता हो तौ भुनीहुई कुलथीको पीसकर उसको मालिस करै । गायका पुराना गोवर और नमक रखनेका वासन इन दोनोंको एकत्र पीसकर शरीरमें मलनेसे पसीनेका आना बन्द होताहै । कालीमिरच, पीपल, सोंठ, हरड, लोध, पोहकरमूल, चिरायता, कुटकी, कूट, कचूर, शिवलिंगी और कपूरकचरी, इन सबको समानभाग लेकर वारीक पीसकर शरीरपै मलनेसे प्रवाहकी समानभी पसीनेका निकलना बन्द होजाताहै । चिरायता, कालाजीरा, कुटकी, वच और कायफल इनको एकत्र पीसकर शरीरमें मलनेसे निरन्तर पसीनेका निकलना बन्द होजाता है ॥ ४९२–४९५ ॥

अथ वालुकास्वेदः ।

पीनसश्वासबाधिर्ये जंघापार्श्वास्थिशूलिनि ॥ वातश्लेष्मज्वरे देयमौषधं तद्विधानवित् ॥ ४९६ ॥

पहिले कहाहुआ वालुकास्वेद भी वातकफज्वरमें श्रेष्ठ है, क्योंकि पीनस, श्वास, बधिरता, जघा, पार्श्व और अस्थिशूल इन उपद्रवोंसहित वातकफज्वरमे वालुकास्वेद करना चाहिये ऐसा पहिले कहचुके हैं ॥ ४९६ ॥

अथ कवलः ।

मातुलुंगफलकेशरो धृतः सिन्धुजन्ममरिचान्वितो मुखे ॥ हन्ति वातकफरोगमास्यगं शोपमाशु जडतामरोचकम् ॥ ४९७ ॥

सैंधानिमक और कालीमिरचके साथ बिजौरे नींबूकी केशरका कवल मुखमें धारण करनेसे वात और कफके रोग, मुखशोप, जडता और अरुचि नष्ट होतीहै ॥४९७॥

अथ वातकफज्वरान्नविधानम् ।

महत्या पञ्चमूल्यान्नं सम्यक्सिद्धं चिकित्सकः ॥ सप्तमे दिवसे दद्याज्ज्वरे वातबलासजे ॥ ४९८ ॥

वैद्य वातकफज्वरमें सातवें दिन बृहत्पचमूलके क्वाथमें अच्छे प्रकारसे पकायाहुआ अन्न रोगीको देवै ॥ ४९८ ॥

इति वातकफज्वराधिकारः समाप्तः ।

अथ पित्तकफज्वराधिकारः।

पित्तश्लेष्मकरैः पित्तकफावामाशयाश्रयौ॥ बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगौ ज्वरकारिणौ ॥ ४९९ ॥

तहां प्रथम पित्तकफज्वरके विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट कारण कहकर सम्प्राति कहतेहैं।

पित्तकारक और कफकारक आहार विहारोंके करनेसे पित्त और कफ आमाशयमे जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करतेहैं ॥ ४९९ ॥

अथ पित्तकफज्वरपूर्वरूपम्।

प्राग्रूपे पित्तकफयोः स्यातां पित्तकफज्वरे ॥ ५०० ॥

पित्तकफज्वरमे पित्तज्वर और कफज्वर दोनोंके पूर्वरूप होतेहैं ॥ ५०० ॥

अथ पित्तकफज्वरलक्षणम्।

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ॥ मुहुर्दाहो मुहुः शीतं पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ५०१ ॥

आस्यतिक्तत्वं पित्तेन, लिप्तत्वं कफेन, तन्द्रा अर्द्धोन्मीलितनेत्रत्वम्, मोहो मूर्च्छा॥

पित्तके कारण-मुखमें कडवापन और कफसे मुख लिहसासा हो, तन्द्रा, मोह, खासी, अरुचि, तृषा, वारंवार दाह हो और वारवार शीत लगे, ये पित्तकफज्वरके लक्षण हैं ॥ ५०१ ॥

अथ पित्तकफज्वरचिकित्सा।

पित्तश्लेष्मज्वरे देयमौषधं दशमेऽहनि॥५०२॥

पित्तकफज्वरमें दशवें दिन औषधि देनी चाहिये५०२॥

अथ गुडूच्यादिक्काथः।

गुडूची निम्बधान्याकं चन्दनं कटुरोहिणी॥ गुडूच्यादिरयं क्काथः पाचनो दीपनः स्मृतः ॥ तृष्णादाहारुचिच्छर्दिपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ५०३ ॥

गिलोय, नीमकी छाल, धानिया, लालचन्दन और कुटकी, इनका क्वाथ पाचन अग्निको दीपन करनेवाला तथा तृषा, दाह, अरुचि, वमन और पित्तकफज्वरको नष्ट करताहै ॥ ५०३ ॥

अथामृताष्टकक्काथः।

अमृताकटुकारिष्टपटोलघनचन्दनम् ॥ नागरेन्द्रयवं चैतदमृताष्टकमीरितम् ॥ ॥ ५०४ ॥ क्कथितं सकणाचूर्णं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ हृल्लासारोचकच्छर्दितृष्णादाहनिवारणम् ॥ ५०५ ॥

गिलोय, कुटकी, नीमकीछाल, पटोलपत्र, नागरमोथा, लालचन्दन, सोंठ और इन्द्रजौ, इन सब औषधियोंके समुदायको अमृताष्टक कहतेहै। इस अमृताष्टकका क्वाथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे पित्तकफज्वर नष्ट होताहै तथा हृल्लास (उबकाई), अरुचि, वमन तृषा और दाहको निवारण करताहै ॥ ५०४ ॥ ५०५ ॥

अथ कंटकार्यादिक्काथः।

कण्टकार्यमृता भार्ङ्गी विश्वेन्द्रयववासकम् ॥ भूनिम्बश्चन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ ५०६ ॥ विपाच्य पाययेत्क्वाथं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासशूलनिवारणम् ॥ ५०७ ॥

कटेरी, गिलोय, भारगी, सोंठ, इन्द्रजौ, अडूसा, चिरायता, लालचन्दन, नागरमोथा, पटोलपत्र और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे पित्तकफज्वर, दाह, तृषा, अरुचि, वमन,खाँसी और शूल नष्ट होताहै५०६॥५०७॥

अथ नागरादिक्काथः।

नागरोशीरबिल्वाब्दधान्यमोचरसाम्बुभिः ॥ कृतः क्काथो भवेद्ग्राही पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ५०८ ॥

सोंठ, खस, बेलगिरी, नागरमोथा, धनियाँ, मोचरस और सुगन्धबाला, इनका क्वाथ पित्तकफज्वरनाशक और मलरोधक है ॥ ५०८ ॥

अथ कटुकीकल्कः।

शर्करामक्षमात्राञ्च कटुकीं चोष्णवारिणा॥ पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः पित्तश्लेष्मसमुद्भवम् ॥ ५०९ ॥

अत्र कटुक्याः द्वादश माषाः शर्करायाश्चत्वारो माषा एवं कर्षः इति चरकः । वैद्यस्य व्यवहारे कटुकीशर्करयोः समभागयोरेव कर्षः ॥

एक तोलेभर कुटकी और खाँड लेकर उनका कल्क बनावै और गरमजलके साथ पियै तौ पित्तकफज्वर नष्ट होताहै । इसमे चरक भी कहताहै कि, बारहमासे कुटकी और ४ चार मासे खाड लेनी चाहिये, परन्तु वैद्यलोग तौ कुटकी और खाँड दोनों को समान भाग लेकर एक तोला करतेहैं ॥ ५०९ ॥

अथ वासारसः ।

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसितायुतः ॥ पित्तश्लेष्मज्वरं हन्ति साम्लपित्तं सकामलम् ॥ ५१० ॥

अत्र वासारसोऽर्द्धपलपरिमितो देयः, मधुसितयोः प्रत्येकं टंकः प्रक्षेप्यः ॥

पत्ते और फूलसहित अडूसेके रसमे, सहत और मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त और कामलासहित पित्तकफज्वर नष्ट होताहै । यहाँ अडूसेका रस दो तोले परिमाण लेना चाहिये, मिश्री २४ रत्ती परिमाण लेनी चाहिये और सहत भी चौवीस २४ रत्ती डालना चाहिये ॥ ५१० ॥

अथ शृंगवेरादिक्वाथः ।

कषायः परिपक्वस्तु शृङ्गवेरपटोलयोः ॥ पित्तश्लेष्मज्वरवमीदाहकण्डूहरो भवेत् ५११

अदरख और पटोलपत्रका क्वाथ बनाकर पीनेसे पित्तकफज्वर, वमन, दाह और खुजली नष्ट होतीहै ॥ ५११ ॥

अथान्नम् ।

पटोलधान्ययोर्यूषः पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ५१२ ॥

पटोलपत्र और धनियेके यूपसे सिद्ध कियेहुए अन्न पित्तकफज्वरनाशक हैं ॥ ५१२ ॥

इति पित्तकफज्वराधिकारः समाप्त. ।

अथ सन्निपातज्वराधिकारः ।

त्रिदोषजनकैर्वातपित्तश्लेष्मामगेहगाः ॥ बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगा ज्वरकारिणः ॥ ५१३ ॥

अब सन्निपातज्वरका विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट कारण कहकर सम्प्राप्ति कहतेहैं ॥

त्रिदोषकारक आहार और विहारके, करनेसे वात पित्त और कफ आमाशयमे जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकाल ज्वरको उत्पन्न करतेहैं ॥ ५१३ ॥

अथ सन्निपातज्वरपूर्वरूपम् ।

प्राग्रूपाणि त्रिदोषाणां स्युस्त्रिदोषज्वरे नृणाम् ॥ ५१४ ॥

सन्निपातज्वरमे मनुष्योंके वातज्वर, पित्तज्वर और कफज्वर, इन तीनोंके पूर्वरूप होतेहैं ॥ ५१४ ॥

अथ सन्निपातज्वरलक्षणम् ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा ॥ सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः ॥ ५१५ ॥ तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परा ॥ ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ ५१६ ॥ शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ॥ स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ ५१७ ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनम् ॥ कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥ ५१८ ॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ॥ चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ ५१९ ॥

लोचने सास्रावे साश्रुणी, कलुषे अस्वच्छे निर्भुग्ने निर्गते कुटिले च । कण्ठः शूकैरिवावृतः धान्याग्रैरिवावृतः । जिह्वा परिदग्धा परिदग्धा इव ज्ञायते । अथ वा परिदग्धा इव कृष्णा दृश्यते, स्रस्ताङ्गता शिथिलाङ्गता । ष्ठीवनमित्यादि कफसंयुक्तस्य रक्तस्य ष्ठीवनम् । शिरसो लोठनमितस्ततश्चालनम् । कृशत्वं नातिगात्राणामिति गात्राणामतिशयितं कार्श्यं न व्याधिप्रभावात् ।

सततं निरन्तरम्, कोठः 'वरटीदंष्ट्रसंस्थानं कोठ इत्यभिधीयते'। श्यावः कपिशो वर्णः। मूकत्वमवचनत्वमल्पवचनत्वं वा, स्रोतसा कर्णनासादीनाम् ॥

ननु वातादयः परस्परविरुद्धगुणास्तेषां सम्भूय एकत्र कार्यारम्भकत्वं नोपपद्यते परस्परोपघाताद्दहनसलिलयोरिव, तत्कथं वातपित्तकफाः मिलित्वा विकारोत्पादकाः ? अत्र समाधानमुक्तं दृढबलेन—

विरुद्धैरपि न त्वेते गुणैर्घ्नन्ति परस्परम् ॥
दोषाः सहजसाम्यत्वाद्विषं घोरमहीनिव ॥ ५२० ॥

गदाधरस्तु हेत्वन्तरमुक्तवान् ॥

दैवाद्दोषस्वभावाद्वा दोषाणां सान्निपातिके ॥ विरुद्धैश्च गुणैस्तैश्च नोपघातः परस्परम् ॥ ५२१ ॥

ननु भिन्नचयप्रकोपकालानां वातपित्तकफानां युगपदुत्पत्त्यभावात्कथं सम्भूय सन्निपातज्वरारम्भकत्वमुपपद्यते ? उच्यते—त्रिदोषजनकनिदानबलेन युगपदेषां प्रकोपादिति सिद्धान्तः ॥

क्षणभरमे दाह हो, क्षणभरमे शीत लगै, हड्डी, संधि (जोड) और शिरमें पीडा हो, नेत्र स्रावयुक्त, गदले, लाल और टेढे होय, कानोमे शब्द और पीडा हो, कंठमे धानके तूरकी समान कॉटे होजायॅ, तन्द्रा (आधे नेत्र खुले और आधे मिचेसे जायॅ) हो तथा मोह (बेहोशी) हो, प्रलाप (वृथा बकवाद) हो, खॉसी, श्वास, भोजनमें अरुचि हो, भ्रान्ति हो, जिह्वा अग्निसे जलेहुएकी समान और स्पर्शमें खरखरी हो, सम्पूर्ण अग शिथिल होजायॅ, कफ मिलेहुए रक्तपित्तको थूकै, शिरको इधर उधर लुटावै, तृषा हो, निद्रा नहीं आवै, हृदयमे पीडा हो, पसीना, मूत्र और विष्ठा ये बहुतकालमें थोडे उतरैं, शरीर बहुत कृश नहीं हो, निरतर कंठमे शब्द हो, पिंगलवर्ण और लालरगकी ततैयाके काटनेकी समान शरीरमे गोल गोल चकत्ते पडजायॅ, कम बोलै अथवा बिलकुल नहीं बोलै, कान नाक आदि शरीरके स्रोत (छिद्र) पकजायॅ, उदरमें भारीपन और दोष बहुत कालमें पचै, ये सन्निपातज्वरके लक्षण हैं। सन्निपात ज्वरमे शरीर अत्यतकृश (दुर्बल) नहीं होता, यह व्याधिहीका प्रभाव है ॥

शका—वात, पित्त और कफ ये परस्पर विरुद्ध गुणवाले हैं, ये सब मिलकर एक कार्यको कैसे करसक्ते हैं? कारण यह है कि अग्नि और जलकी समान यह परस्पर एक दूसरेको नष्ट करनेवाले हैं ऐसा होनेपर वात, पित्त और कफ ये सब मिलकर कैसे ज्वर (सन्निपात) को उत्पन्न करते हैं ?।

समाधान—इस विषयमें दृढबल आचार्य ऐसा समाधान करताहै कि—"दोष स्वाभाविक रीतिके अनुसार समान मिलनेसे, परस्पर विरुद्ध गुणवाले होनेपर भी, जिसप्रकार भयकर विष सर्पको नहीं मारता उसीप्रकार ये परस्पर एक दूसरेका नाश नहीं करते"। गदाधर वैद्य इस विषयमें अन्यकारण कहताहै कि "वातादि दोष विरुद्ध गुणवाले होनेपर भी सन्निपातज्वरमे दैवकी गतिसे अथवा वह अपने स्वभावसे परस्पर एक दूसरेका नाश नहीं करते" ॥

शका—वात, पित्त और कफ, इन तीनो दोषोंका चयकाल और प्रकोपकाल अलग अलग है, इस कारण इन सबकी एक समयमे उत्पत्ति नहीं होसक्ती, फिर ये सब मिलकर कैसे सन्निपातज्वरको उत्पन्न करते हैं? यह सदेह होताहै।

समाधान—जिससे तीनो दोष उत्पन्न होयॅ ऐसे मिथ्या आहारविहारादिके करनेसे ये तीनों दोष एकही समयमे कुपित होते हैं ऐसा सिद्धान्त है ॥ ५१५-५२१ ॥

अथ सामान्यसन्निपातत्रयोदशभेदाः।

एकोल्वणास्त्रयस्तेषु द्व्युल्वणाश्च तथेति षट् ॥ त्र्युल्वणश्च भवेदेको विज्ञेयः स तु सप्तमः ॥ ५२२ ॥ प्रवृद्धमध्यहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च षट् ॥ सन्निपातज्वरस्यैवं स्युर्विशेषास्त्रयोदश ॥ ५२३ ॥

अत्र प्रवृद्धवातः मध्यपित्तो हीनकफः १ मध्यवातः प्रवृद्धपित्तो हीनकफः २ हीनवातः प्रवृद्धपित्तो मध्यकफः ३ प्रवृद्धवातः हीन-

पित्तो मध्यकफः ४ मध्यवातः हीनपित्तः प्रवृद्धकफः ५ हीनवातो मध्यपित्तः प्रवृद्धकफः ६ इति षट् ॥

वातोल्वण, पित्तोल्वण, कफोल्वण, वातपित्तोल्वण, वातकफोल्वण, पित्तकफोल्वण, वातपित्तकफोल्वण, अधिकवात मध्यपित्त हीनकफ, मध्यवात अधिकपित्त हीनकफ, हीनवात अधिकपित्त मध्यकफ, अधिकवात हीनपित्त मध्यकफ, मध्यवात हीनपित्त अधिककफ और हीनवात मध्यपित्त अधिककफ, इस प्रकार सान्निपातज्वरके तेरह भेद हैं ॥ ५२२ ॥ ५२३ ॥

अथानुक्रमेणत्रयोदशसंनिपातनामानि । विस्फारकश्चाशुकारी कम्पनो बभ्रसंज्ञकः॥ शीघ्रकारी तथा भल्लुः सप्तमः कूटपाकलः ॥ ५२४ ॥ सम्मोहकः पालकश्च याम्यः क्रकच इत्यपि ॥ ततः कर्कटकः प्रोक्तस्ततो वैदारिकाभिधः ॥ ५२५ ॥

तन्त्रान्तरे विस्फारक इत्यत्र विस्फोरक इति पाठः। बभ्रस्थाने बभ्रुरिति पाठः। कुत्रापि बद्ध इति पाठः । भल्लुरित्यत्र फल्गुरिति वा पाठः।याम्य इत्यत्र संग्राम इति पाठः । कर्कटक इत्यत्र कर्कोटक इति वा पाठः ॥

विस्फारक, आशुकारी, कम्पन, बभ्र, शीघ्रकारी, भल्लू, कूटपाकल, सम्मोहक, पालक, याम्य, क्रकच, कर्कटक और वैदारिक, ये ऊपर कहेहुए तेरह सन्निपातोंके अनुक्रमसे तेरह नाम जानने । अन्य ग्रन्थोंमें विस्फारकको विस्फोरक, बभ्रको बभ्रु, अथवा बद्ध, भल्लुको फल्गु, याम्यको संग्राम और कर्कटकको कर्कोटक कहाहै ॥५२४॥५२५॥

अथ वातोल्वणविस्फारकलक्षणम् ।

श्वासः कासो भ्रमो मूर्च्छा प्रलापो मोहवेपथुः ॥ पार्श्वस्य वेदना जृम्भा कषायत्वं मुखस्य च ॥ ५२६ ॥ वातोल्वणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लक्षयेत् ॥ एष विस्फारको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ५२७ ॥

श्वास, खांसी, भ्रान्ति, मूर्च्छा, वृथा बकवाद, मोह (बेहोसी), कम्प, पसलियोंमें पीडा, जम्भाइयोंका आना और मुखमें कसैलापन ये वातोल्वण सन्निपातज्वरके लक्षण हैं । यह दारुण वातोल्वण सन्निपात विस्फारक नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ५२६ ॥ ५२७ ॥

अथ पित्तोल्वणाशुकारिलक्षणम् ।

अतिसारो भ्रमो मूर्च्छा मुखपाकस्तथैव च॥ गात्रे च बिन्दवो रक्ता दाहोऽतीव प्रजायते ॥५२८॥ पित्तोल्वणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लक्षयेत् ॥ भिषग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी प्रकीर्तितः ॥ ५२९ ॥

अतिसार (दस्त आंव), भ्रान्ति, मूर्च्छा, मुखका पकना, देहमें लाल लाल बिन्दुओंका पडजाना और अत्यंत दाहका होना, यह पित्तोल्वण सन्निपातज्वरके लक्षण हैं । यह पित्तोल्वण सन्निपात आशुकारी नामसे प्रसिद्ध है५२८-५२९

अथ कफोल्वणकंपनलक्षणम् ।

जडतागद्गदा वाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि ॥ प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधुर्यमेव च५३०॥ कफोल्वणस्य लिंगानि सन्निपातस्य लक्षयेत् ॥ मुनिभिः सन्निपातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ५३१ ॥

जडता, गद्गद बोले, रात्रिमें निद्रा भी आवे, नेत्रोंमें स्तब्धता और मुखमें मधुरता, ये कफोल्वण सन्निपातके लक्षण हैं । इस कफोल्वण सन्निपातको ऋषिलोग 'कम्पन' कहतेहैं ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥

अथ वातपित्तोल्वणबभ्रलक्षणम् ।

वातपित्ताधिको यस्तु सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ तस्य ज्वरो मदस्तृष्णा मुखशोषः प्रमीलकः ॥ ५३२॥ आध्मानारुचितन्द्राश्च कासश्वासभ्रमश्रमाः ॥ मुनिभिर्बभ्रनामायं सन्निपात उदाहृतः ॥ ५३३ ॥

जब वात और पित्ताधिकवाला सन्निपात कुपित होताहै तब ज्वर, मद, तृषा, मुखशोष, प्रमीलक (नेत्र मिचेसे जॉय), अफारा, अरुचि, तन्द्रा, खाँसी, श्वास, भ्रम और श्रम (थकावट) ये सब

लक्षण होतेहैं, इस वातपित्तोल्वण सन्निपातको मुनिजन 'बभ्र' या 'बभ्रु' कहतेहैं ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥

अथ वातकफोल्वणशीघ्रकारिसन्निपातलक्षणम् ।

वातश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ तस्य शीतज्वरो मूर्च्छा क्षुत्तृष्णा पार्श्वनिग्रहः ॥ ५३४ ॥ शूलमस्विद्यमानस्य तन्द्रा श्वासश्च जायते ॥ असाध्यः सन्निपातोऽयं शीघ्रकारीति कथ्यते ॥ न हि जीवत्यहोरात्रमनेनाविष्टविग्रहः ॥ ५३५ ॥

जब वातकफाधिक सन्निपात कुपित होताहै तो शीतज्वर, मूर्च्छा, क्षुधा (भूँख), तृषा, प्यास पसलियोंमें पीडा, शूल, पसीनेका न आना, तन्द्रा और श्वास, ये सब लक्षण होतेह, यह सन्निपात असाध्य है, इसको मुनिजन 'शीघ्रकारी' कहतेहैं, जिसके यह सन्निपात कुपित होताहै वह मनुष्य एक दिनरात भी नही जीताहै ॥ ५३४ ॥ ५३५ ॥

अथ पित्तकफोल्वणभल्लुलक्षणम् ।

पित्तश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ अन्तर्दाहो बहिःशीतं तस्य तृष्णा प्रवर्द्धते ॥ ५३६ ॥ तुद्यते दक्षिणे पार्श्वे उरःशीर्षगलग्रहः ॥ ष्ठीवति श्लेष्मपित्तञ्च कृच्छ्रात्कोष्ठश्च जायते ॥ ५३७ ॥ विड्भेदश्वासहिक्काश्च वर्द्धन्ते सप्रमीलकाः ॥ ऋषिभिर्भल्लुनामायं सन्निपात उदाहृतः ॥ ५३८ ॥

जब पित्तकफाधिक सन्निपात कुपित होताहै तब शरीरके भीतर दाह, ऊपरसे शरदी लगै, तृषा अधिक बढजाय, दहनी पसलीमें पीडा हो, हृदय, मस्तक और कंठमे वेदना हो,अत्यंत कठिनतासे कफपित्तको थूके,शरीरमे चकत्तेसे पडजायँ, दस्त आनेलगे, श्वास, हिचकी और ऑखें मिचीसी जावें, ये लक्षण होतेहैं । इस सन्निपातको ऋषिलोग भल्लु, कहतेहैं ॥ ५३६–५३८ ॥

अथ वातपित्तकफोल्वणकूटपालकलक्षणम् ।

सर्वदोषोल्वणो यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ त्रयाणामपि दोषाणां तस्य रूपाणि लक्षयेत् ॥ ५३९ ॥ व्याधिभ्यो दारुणश्चव वज्रशस्त्राग्निसन्निभः ॥ केवलोच्छ्वासपरमस्तब्धांगः स्तब्धलोचनः ॥ ॥ ५४० ॥ त्रिरात्रात्परमेतस्य जन्तोर्हराति जीवितम् ॥ तदवस्थन्तु तं दृष्ट्वा मूढो व्याहरते जनः ॥ ५४१ ॥ धर्षितो राक्षसैर्नूनमवेलायां चरन्ति ये ॥ अम्बया ब्रुवते केचिद्यक्षिण्या ब्रह्मराक्षसैः ॥ ॥ ५४२ ॥ पिशाचैर्गुह्यकैश्चैव तथान्यैर्मस्तके हतम् ॥ कुलदेवार्चनाहीनं धर्षितं कुलदैवतैः ॥ ५४३ ॥ नक्षत्रपीडामपरे गरकर्मेति चापरे ॥ सन्निपातमिमं प्राहुर्भिषजः कूटपालकम् ॥ ५४४ ॥

जब त्रिदोषोल्वण सन्निपात कुपित होताहै तब उसमे तीनों दोषोंके लक्षण दिखाई देतेहैं, यह सन्निपात सर्व व्याधियोंसे वज्र और शस्त्रकी समान भयकर है । इसमे रोगी केवल ऊँचाश्वासही लेतारहताहै, सम्पूर्णशरीर जकडजाताहै, नेत्र पत्थरकी समान होजातेहैं, यह सन्निपात तीनदिनके बाद मनुष्योंके प्राणोंको हरलेता है, इस सन्निपातवाले मनुष्यको देखकर कितनेक मूर्ख मनुष्य कहतेहैं कि इसको कुसमय (आधीरात, या दोप्रहरके वखत) में फिरनेवाले राक्षसोंने पकड लिया है । कोई कहतेहैं कि–देवीने दबालियाहै, कोई कहतेहैं कि–यक्षिणीने पकडाहै, कोई कहतेहैं कि–ब्रह्मराक्षस चिपटगयाहै, कोई पिशाच और कोई यक्षवाधा कहतेहैं, कोई कहतेहैं कि–इसके शिरमें किसीने चोट मारदी है, कोई कहतेहैं कि–इसने अपने कुलदेवताका पूजन नहीं किया, उन्होंने इसका यह करदिया है, कोई कहतेहैं कि–इसको ग्रह नक्षत्र आदिने पिडा करीहै और कितने मूर्ख मनुष्य कहतेहैं कि इसको किसीने विप देदिया है इस सन्निपातको वैद्यलोग कूटपालक कहतेहैं ॥ ५३९–५४४ ॥

अथाधिकवात-मध्यपित्त-हीनकफ-संमोहकसन्निपातलक्षणानि।

प्रवृद्धमध्यहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च यः॥ तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः॥ ५४५॥ प्रलापायाससम्मोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः॥ एकपक्षाभिघातश्च तत्राप्येते विशेषतः॥ एष सम्मोहको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः॥५४६॥

रोगास्त एवोक्ता, उक्ता एव ते रोगाः व्यथावेपथुनिद्रानाशविष्टम्भादयो वातजाः, दाहतृष्णोष्णतास्वेदादयः पित्तजाः, गौरवाग्निमान्द्योत्कासनासिकामुखप्रसेकादयः कफजाः। तत्रापि प्रलापादयः पक्षाघातान्ता विशेषाद्भवन्ति। ननु वातः प्रवृद्धः स ज्वरं करिष्यति पित्तन्तु मध्यसममिति यावत तत्कथं ज्वरं करिष्यति ? यत आह-

धातवस्तन्मला दोषाः स्युर्नाशायासमास्तनौ॥ समाः सुखाय विज्ञेया बलायोपचयाय च॥ ५४७॥

अत्र पित्तं मध्यमपि अप्रकृतमेव यतोऽप्रकृतयोर्वातश्लेष्मणोरपेक्षया मध्यं तेन मध्यकुपितमित्यर्थः। ननु कफः क्षीणः स कथं ज्वरं करिष्यति ? हीनशक्तित्वात्, उच्यते-दोषाः क्षीणा अपि व्याधीन् कुर्वन्त्येव, यत आह-

वातक्षयेऽल्पचेष्टत्वं मन्दवाक्त्वं विसंज्ञता॥ पित्तक्षयेऽधिकः श्लेष्मा वह्निर्मन्दः प्रभाक्षयः॥ शिथिलाः सन्धयो मूर्च्छा रौक्ष्यं दाहः कफक्षये॥ ५४८॥

इति शंका सिद्धान्तश्चात्र परत्रापि॥

अधिक वात मध्यपित्त हीनकफ सन्निपातमें पूर्वोक्त व्यथा, कप, निद्राका न आना और मलविष्टम्भ आदि वात सबधी रोग होतेहैं, दाह, तृषा, उष्णता और पसीना आदि पित्तसबधी रोग होतेहैं और भारीपन, अग्निकी मदता, खाँसी, तथा नाक और मुखसे पानीका गिरना आदि कफसबधी रोग होतेहैं, एव प्रलाप (वृथा बकवाद) परिश्रम, मोह, कप, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम और पक्षाघात, ये विशेष करके होतेहैं। इस भयकर सन्निपातको मुनिजन सम्मोहक कहतेहैं।

शका-वायु वृद्धिको प्राप्त होकर ज्वरको उत्पन्न करता है किन्तु पित्त मध्य अर्थात् सम होनेसे कैसे ज्वरको उत्पन्न करताहै ?। क्योंकि धातु, मल और दोष, ये असमान होनेसे शरीरको नष्ट करतेहैं, और सम होनेसे सुख, बल और पुष्टिको करतेहैं ऐसा कहाहै।

समाधान-सन्निपातमें पित्त मध्यम है परन्तु प्रकृतिमें स्थित नही है अर्थात् विकृत हुए जो वात कफ उनसे मध्य रहता है कुछ प्रकृतिमें मध्यम (सम) नही है।

शका-क्षीणहुआ कफ कैसे ज्वरको उत्पन्न करता है ? क्योंकि जिसकी शक्ति हीन होजातीहै वह कार्य करनेको समर्थ नही रहता।

समाधान-दोष क्षीण होनेपर भी व्याधियोंको उत्पन्न करतेहैं क्योंकि वायुके क्षय होनेसे चेष्टा अल्प होजातीहै, वाणी मद पडजाती है और सज्ञाका नाश होजाताहै। पित्तके क्षय होनेसे कफ अधिक बढजाता है, अग्नि मद होजातीहै और काति नष्ट होजातीहै। और कफके क्षय होनेसे सधि (जोड) शिथिल हो जातीहैं; मूर्च्छा, रूक्षता और दाह उत्पन्न होताहै यही शंका समाधान अन्य सन्निपातोंमे भी समझलेना॥ ५४५-५४८॥

अथ मध्यवाताऽधिकपित्त-हीनकफ-पाकलसन्निपातलक्षणानि।

मध्यप्रवृद्धहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च यः॥ तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः॥ ५४९॥ मोहप्रलापमूर्च्छाः स्युर्मन्यास्तम्भः शिरोग्रहः॥ कासः श्वासो भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशो हृदि व्यथा॥५५०॥ खेभ्यो रक्तं विसृजति संरक्तस्तब्धनेत्रता॥ तत्राप्यत विशेषाः स्युर्मृत्युरर्वाक् त्रिवासरात्॥ ५५१॥ भिषग्भिः सन्निपातोऽयं कथितः पाकलाभिधः॥ ५५२॥

मध्यवात, अधिकपित्त, हीनकफ सन्निपातमें तत्तत् दोषबलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि

लक्षण होतेहैं, तथा मोह, प्रलाप (बकवाद), मूर्च्छा, नाडका जकडजाना, शिरमें पीडा, खासी, श्वास, भ्रम, तन्द्रा, सज्ञाका नाश, हृदयमें व्यथा, इन्द्रियोंके छिद्रोंमेंसे रुधिरका गिरना, नेत्रोंमे लाली और नेत्रोंका जड होजाना, ये विशेष करके होते हैं। इस सन्निपातमे रोगी तीन दिनके भीतर मरजाता है, इस सन्निपातको वैद्यजन पाकल कहतेहैं ॥ ५४९-५५२ ॥

अथ हीनवाता-ऽधिकापित्त-मध्यकफ-याम्य-सन्निपातलक्षणम् ।

हीनप्रवृद्धमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः ॥ तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ हृदयं दह्यते चास्य यकृत्प्लीहान्त्रपुप्फुसाः ॥ ५५३ ॥ पच्यन्तेऽत्यर्थमूर्द्धाधः पूयशोणितनिर्गमः ॥ शीर्णदन्तश्च मृत्युश्च तत्राप्येतद्विशेषतः॥५५४॥ भिषग्भिः सन्निपातोऽयं याम्यो नाम्ना प्रकीर्तितः ॥ ५५५ ॥

हीनवात अधिकपित्त मध्यकफ सन्निपातमे उन्हीं २ दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि सकल लक्षण होतेहैं तौ भी हृदयमें दाह होताहै, यकृत् (कलेजा), प्लीहा (तिल्ली), आतैं और फेफडा ये पकजातेहैं, मुख और गुदासे रुधिर और रादका निकलना, दातोंका गिरना और मरण ये विशेष करके होतेहैं, इस सन्निपातको वैद्यजन याम्य कहतेहै ॥ ५५३-५५५ ॥

अथाधिकवात-हीनपित्त-मध्यकफ-क्रकच-सन्निपातलक्षणम् ।

प्रवृद्धहीनमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः ॥ तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ प्रलापायाससम्मोहाः कम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः ॥ ५५६ ॥ मन्यास्तम्भेन मृत्युः स्यात्तत्राप्येतद्विशेषतः ॥ भिषग्भिः सन्निपातोऽयं क्रकचः सम्प्रकीर्त्तितः ॥ ५५७ ॥

अधिकवात हीनपित्त मध्यकफ सन्निपातमे तत्तद्दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होतेहैं तौ भी बकवाद, परिश्रम, मोह, कम्प, मूर्च्छा, बेचैनी, भ्रम और मन्यानाडी (गरदन या नाड) के जकड जानेसे मृत्यु ये विशेष लक्षण होतेहैं, इसको वैद्यजन क्रकच सन्निपात कहते है ॥ ५५६ ॥ ५५७ ॥

अथ मध्यवात-हीनपित्ता-ऽधिककफ-कर्कटक-सन्निपातलक्षणम् ।

मध्यहीनप्रवृद्धैस्तु वातपित्तकफैश्च यः ॥ तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ५५८॥ अन्तर्दाहो विशेषोऽत्र न च वक्तुं स शक्यते॥ रक्तमालक्तकेनैव लक्ष्यते मुखमण्डलम् ॥ ५५९॥ पित्तेनाकर्षितः श्लेष्मा हृदयान्न प्रसिच्यते॥ इषुणेवाहतं पार्श्वं तुद्यते खन्यते हृदि ॥५६०॥ प्रमीलकश्वासहिक्का वर्द्धन्ते तु दिनेदिने ॥ जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूकैरिवावृतः ॥ ५६१ ॥ विसर्गं नाभिजानाति कूजेच्चापि कपोतवत् ॥ अतीव श्लेष्मणा पूर्णः शुष्कवक्त्रौष्ठतालुकः ॥ ५६२ ॥ तन्द्रानिद्रातियोगार्तो हतवाङ्निहतद्युतिः ॥ न रतिं लभते नित्यं विपरीतानि चेच्छति ॥ ५६३ ॥ आयम्यते च बहुशो रक्तं ष्ठीवति चाल्पशः ॥ एष कर्कटको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ५६४ ॥

मध्यवात हीनपित्त अधिककफ सन्निपातमे तत्तद्दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होतेहैं तथा विशेष करके अन्तर्दाह (शरीरके भीतर जलन) बोलनेमें असमर्थता होय, मुखमण्डल जैसे आलसे रग दिया हो ऐसा लाल दीखै, पित्तसे खीचाहुआ कफ हृदयसे बाहर नही निकलै, पसलियोंमें तीर छेदन सरीखी पीडा हो, हृदयमे खोदनेकी तरह पीडा हो, आखें मिचीसी होजायँ, श्वास और हिचकी प्रतिदिन बढती जायँ, जीभ जलीहुईकी समान काली और खरदरी होजाय, कण्ठमे धानके तूरकी समान काटे भरजायँ, मल मूत्रादि बेहोसीमे निकलजाय, कबूतरकी समान गलेमें कूजे, कण्ठ कफसे भरा रहै, मुख होठ और तालु सूखजाय, तन्द्रा और निद्रा अधिक आवे, वाणी और

काति नष्ट हो जाय, किसी प्रकार कहीं चैन नहीं हो, विपरीत पदार्थोंकी इच्छा करै और वारवार खांसनेसे थोडा थोडा रुधिर थूकै, ये लक्षण होतेहैं इस अत्यन्त घोर सन्निपातको कर्कटक कहतेहैं ॥ ५५८–५६४ ॥

अथ हीनवात–मध्यपित्ता–ऽधिककफ–वैदारिक–सन्निपातलक्षणम् ।

हीनमध्यप्रवृद्धैस्तु वातपित्तकफैश्च यः ॥ तेन रोगास्त एवोक्ता यथा दोषबलाश्रयाः ॥ ५६५ ॥ अल्पशूलं कटीतोदो मध्ये दाहो रुजा भ्रमः ॥ भृशं क्लमः शिरोवस्तिमन्याहृदयवाग्रुजः ॥ ५६६ ॥ प्रमीलकः श्वासकासहिक्काजाड्यविसंज्ञताः ॥ प्रथमोत्पन्नमेनन्तु साधयन्ति कदाचन ॥ ५६७ ॥ एतस्मिन्सन्निवृत्ते तु कर्णमूले सुदारुणा ॥ पिडिका जायते जन्तोर्यया कृच्छ्रेण जीवति ॥ ५६८ ॥ स वैदारिकसंज्ञोऽयं सन्निपातः सुदारुणः ॥ त्रिरात्रात्परमेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥ ५६९ ॥

जब हीनवात मध्यपित्त अधिककफ, सन्निपात कुपित हुआ होय तौ उसमें उन्हीं उन्हीं दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होतेहैं और विशेष करके नीचे लिखे लक्षण होतेहैं । अल्प शूल, कमरमें तोडनेसरीखी पीडा, छातीमें दाह और पीडा, भ्रान्ति, अत्यन्त ग्लानि, मस्तक, मूत्राशय, नाड, हृदय और वाणीमें पीडा हो, आखे मिचीजायँ, श्वास, खासी, हिचकी, जडता और अत्यन्त बेहोशी होतीहै । इस सन्निपातके उत्पन्न होतेही यदि चिकित्सा करी जावै तौ कदाचित् आराम होजाय नहीं तौ नहीं । इस सन्निपातके निवृत्त होनेपर रोगीके कानकी जडमे बहुत बडी फुडिया निकलतीहै इस फुडियाके निकलनेपर अत्यन्त कठिनतासे जीताहै । इस महाभयकर घोर सन्निपातको वैद्यजन वैदारिक कहतेहैं, इसके उत्पन्न होनेसे तीन रात्रि व्यतीत होजाय तौ औषधिकी कल्पना करना वृथा है ॥ ५६५–५६९ ॥

शीतांगस्त्रिमलोद्भवज्वरगणे तन्द्री प्रलापी ततो रक्तष्ठीवयिता च तत्र गणितः सम्भुग्ननेत्रस्तथा ॥ साभिन्यासकजिह्वकश्च कथितः प्राक्सन्धिगोऽथान्तको रुग्दाहः सहचित्तविभ्रम इह द्वौ कर्णकण्ठग्रहौ ॥ ५७० ॥

तन्द्री तन्द्रिकः, प्रलापी प्रलापकः, रक्तष्ठीवयिता रक्तष्ठीवी. सम्भुग्ननेत्रः भुग्ननेत्रः । अभिन्यासकः अभिन्यासः, कर्णकण्ठग्रहो कर्णग्रहः कर्णिकः, कण्ठग्रहः कण्ठकुब्जकः । अथ तेषां प्रत्येकं लक्षणानि ॥

अन्य ग्रन्थोंमे इन वातोल्बणादि तेरह सन्निपातोंके शीतागादि जो नाम कहेहैं उनको कहतेहैं ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए ज्वरोंमे शीताग, तन्द्रिक, प्रलापक, रक्तष्ठीवी भुग्ननेत्र, अभिन्यास, जिह्वक, संधिग, अन्तक, रुग्दाह, चित्तविभ्रम, कर्णक और कण्ठकुब्जक. ये तेरह सन्निपातज्वर गिने जातेहैं । अब इन तेरहके लक्षण कहतेहैं ॥ ५७० ॥

अथ शीतांगसन्निपातलक्षणम् ।

हिमशिशिरशरीरः सन्निपातज्वरी यः श्वसनकसनहिक्कामोहकम्पप्रलापैः ॥ क्लमबहुकफवातादाहवम्यंगपीडास्वरविकृतिभिरार्तः शीतगात्रः स उक्तः ॥ ५७१ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें रोगीका शरीर हिम (बर्फ) की समान शीतलहो, श्वास, खासी, हिचकी, मोह, कम्प, प्रलाप और ग्लानि हो, कफ बहुत निकलै, वायुका अधिक कोप हो, अधिक दाह तथा वमन (रद्द) हो सब अगोंमे पीडा और स्वर बैठजाय, उस सन्निपातको 'शीतगात्र' कहतेहैं ॥ ५७१ ॥

अथ तन्द्रिकसन्निपातलक्षणम् ।

तन्द्रातीव ततस्तृषाऽतिसरणं श्वासोऽधिकः कासरुक् सन्तप्ताऽतितनुर्गलः श्वयथुना सार्द्धश्च कण्डूः कफः ॥ सुश्यामा रसना क्लमः श्रवणयोर्मान्द्यश्च दाहस्तथा यत्र स्यात्स हि

तन्द्रिको निगदितो दोषत्रयोत्थो ज्वरः ॥ ५७२ ॥

जिस ज्वरमे अत्यन्त तन्द्रा हो, तृषा लगै, अतीसार हो, श्वास अधिक हो, खांसी हो, शरीर अधिक संतापित हो गलेमे सूजन और खुजली तथा कफ हो, जीभ काली होजाय, ग्लानि, कानोंमें बधिरता और दाह हो, उस सन्निपातको 'तन्द्रिक' कहतेहैं ॥ ५७२ ॥

अथ प्रलापकसन्निपातलक्षणम् ।

यत्र ज्वरे निखिलदोषनितान्तरोषजाते प्रलापबहुलाः सहसोत्थिताश्च ॥ कम्पव्यथापतनदाहविसंज्ञताः स्युर्नाम्ना प्रलापक इति प्रथितः पृथिव्याम् ॥ ५७३ ॥

जिस ज्वरमें सम्पूर्ण दोषोंके अत्यन्त कुपित होनेसे प्रलाप और कम्प, वारवार उठकर भागना, व्यथा, गिरना, दाह और अत्यन्त वेहोशी हो, उसको लोकमें 'प्रलापक' कहतेहैं ॥ ५७३ ॥

अथ रक्तष्ठीविसन्निपातलक्षणम् ।

निष्ठीवो रुधिरस्य रक्तसदृशं कृष्णं तनौ मण्डलं लौहित्यं नयने तृषारुचिवमिश्वासातिसारभ्रमाः ॥ आध्मानश्च विसंज्ञता च पतनं हिक्काङ्गपीडा भृशं रक्तष्ठीविनि सन्निपातजनिते लिंगं ज्वरे जायते ॥ ५७४ ॥

जिस ज्वरमें रुधिरको थूकै, शरीरमें रुधिरकी समान तथा काले चकत्ते पडजायँ, नेत्र लाल होजायँ, तृषा, अरुचि, वमन, श्वास, अतीसार, भ्रान्ति, और अफारा हो अथवा पेट फूलजाय, संज्ञा जातीरहै, अर्थात् अचेत होजायँ, वारंवार गिर२ पडै, हिचकी और शरीरमे अत्यन्त पीडा हो, उस सन्निपातज्वरको 'रक्तष्ठीवी' कहतेहैं ॥ ५७४ ॥

अथ भुग्ननेत्रसन्निपातज्वरलक्षणम् ।

भृशं नयनवक्रता श्वसनकासतन्द्रा भृशं प्रलापमदवेपथुश्रवणहानिमोहास्तथा ॥ पुरो निखिलदोषजे भवति यत्र लिंगं ज्वरे पुरातनचिकित्सकैः स इह भुग्ननेत्रो मतः ॥ ५७५ ॥

जिस सन्निपातज्वरमे नेत्रोंमे अत्यन्त टेढापन हो, श्वास, खाँसी, तन्द्रा, अत्यन्त प्रलाप, मद और कम्प हो, कानोंमे बहरापन होजाय और मोह होय, उसको प्राचीन वैद्य 'भुग्ननेत्र' कहतेहैं ॥ ५७५ ॥

अथाभिन्याससन्निपातलक्षणम् ।

दोषास्तीव्रतरा भवन्ति बलिनः सर्वेऽपि यत्र ज्वरे मोहोऽतीव विचेष्टता विकलता श्वासो भृशं मूकता ॥ दाहश्चिक्कणमाननञ्च दहनो मन्दो बलस्य क्षयः सोऽभिन्यास इति प्रकीर्तित इह प्राज्ञैर्भिषग्भिः पुरा ॥ ५७६ ॥

जिस सन्निपात ज्वरमे सब दोष अत्यन्त बलवान् और तीव्र हो, अत्यन्त वेहोशी हो, निचेष्टता हो, अत्यन्त बेकली तथा श्वास हो, अधिकतर मूकता (गूँगापन) हो, दाह हो, मुख चिकना हो, अग्नि मद और बलकी हानि हो, उसको वैद्योंने 'अभिन्यास' कहाहै ॥ ५७६ ॥

अथ जिह्वकसन्निपातज्वरलक्षणम् ।

त्रिदोषजनिते ज्वरे भवति यत्र जिह्वा भृशं वृता कठिनकण्टकैस्तदनु निर्भरं मूकता ॥ श्रुतिक्षतिबलक्षतिश्वसनकाससन्तापयः पुरातनभिषग्वरास्तमिह जिह्वकं चक्षते ॥ ५७७ ॥

जिस सन्निपातज्वरमे जीभ अत्यन्त कठिन काँटोसे आच्छादित हो, अत्यन्त मूकता हो, कानोमे बहरापन, बलकी हानि हो, श्वास खाँसी और अधिकतर सन्ताप हो, उसको प्राचीन वैद्य 'जिह्वक' कहतेहैं ॥ ५७७ ॥

अथ सन्धिगसन्निपातलक्षणम् ।

व्यथातिशयिता भवेच्छ्वयथुसंयुता सन्धिषु प्रभूतकफता मुखे विगतनिद्रता कासरुक् ॥ समस्तमिति कीर्तितं भवति लक्ष्म यत्र ज्वरे त्रिदोषजनिते बुधैः स हि निगद्यते सन्धिगः ॥ ५७८ ॥

जिस सन्निपातज्वरमे संधियोमे सूजन और अत्यन्त पीडा हो, मुखमे अत्यन्त कफ आवै, निद्राका नाश और खाँसीकी पीडा हो उसको विद्वान् वैद्य 'सधिग' कहते हैं ॥ ५७८ ॥

अथान्तकसन्निपातज्वरलक्षणम् ।

यस्मिँल्लक्षणमेतदस्ति सकलैर्दोषैरुदीर्ते ज्वरेऽजस्रं मूर्द्धविधूननं सकसनं सर्वांगपीडाधिका ॥ हिक्काश्वासकदाहमोहसहिता देहेऽतिसन्तप्तता वैकल्यश्च वृथा वचांसि मुनिभिः संकीर्तितः सोऽन्तकः ॥ ५७९ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें निरन्तर रोगी शिरको हिलाया करै, खाँसी, सर्व शरीरमें अत्यन्त पीडा हो, हिचकी, श्वास, दाह, मोह, देहमें अत्यन्त सन्ताप, विकलता और वृथा बकवाद करै, उसको मुनिजन 'अंतक' सन्निपात कहतेहैं ॥ ५७९ ॥

अथ रुग्दाहसन्निपातलक्षणम् ।

दाहोऽधिको भवति यत्र तृषा च तीव्रा श्वासप्रलापविरुचिभ्रममोहपीडाः ॥ मन्याहनुव्यथनकण्ठरुजः श्रमश्च रुग्दाहसंज्ञ उदितस्त्रिभवो ज्वरोऽयम् ॥ ५८० ॥

जिस सन्निपातज्वरमें दाह अधिक हो, तृषा (प्यास), अत्यन्त तेज हो, श्वास हो, बकवाद करै, अरुचि हो, भ्रम हो, बेहोशी हो, पीडा हो, नाड और ठोडीमें अत्यन्त वेदना हो, कंठमें पीडा और श्रम हो, उसको 'रुग्दाह' सन्निपात कहतेहैं ॥ ५८० ॥

अथ चित्तभ्रमसन्निपातलक्षणम् ।

गायति नृत्यति हसति प्रलपति विकृतं निरीक्षते मुह्यत् ॥ दाहव्यथाभयार्तो नरस्तु चित्तभ्रमे ज्वरे भवति ॥ ५८१ ॥

जिस सान्निपातज्वरमें रोगी गीतगावै, नाचे, हँसे, वृथा बके, बुरीतरहसे देखै, मोह, बेहोशीको प्राप्त होजाय, तथा दाह, व्यथा और भयसे पीडित हो उसको 'चित्तभ्रम' कहतेहैं ॥ ५८१ ॥

अथ कर्णिकसन्निपातलक्षणम् ।

दोषत्रयेण जनितः किल कर्णमूले तीव्रा ज्वरे भवति तु श्वयथुर्व्यथा च ॥ कण्ठग्रहो बधिरता श्वसनं प्रलापः प्रस्वेदमोहदहनानि च कर्णिकाख्ये ॥ ५८२ ॥

जिस ज्वरमें तीनों दोषोंके अत्यन्त कुपित होनेसे कानकी जडमें अत्यन्त सूजन और पीडा हो, कंठ रुक जाय, बहरापन, श्वास, वृथा बकवाद, पसीनोंका आना, बेहोशी और दाह हो, उसको 'कर्णिक' सन्निपात कहतेहैं ॥ ५८२ ॥

अथ कण्ठकुब्जसन्निपातलक्षणम् ।

कण्ठः शूकशतावरुद्धवदतिश्वासः प्रलापोऽरुचिर्दाहो देहरुजा तृषापि च हनुस्तम्भः शिरोऽर्तिस्तथा ॥ मोहो वेपथुना सहेति सकलं लिगं त्रिदोषज्वरे यत्र स्यात्स हि कण्ठकुब्ज उदितः प्राच्यैश्चिकित्साबुधैः ॥ ५८३ ॥

जिस सन्निपात ज्वरमें कंठ सैकडों धानके शूककी समान कांटोंसे घिरजाय, अत्यन्त श्वास हो, प्रलाप हो, अरुचि, दाह, शरीरमें पीडा हो, तृषा हो, ठोडी जकडजाय, शिरमें पीडा हो, मोह और कंप हो उसको प्राचीन वैद्य 'कंठकुब्ज' कहतेहैं ॥ ५८३ ॥

अथ सन्निपातज्वरसाध्यासाध्यत्वम् ।

सन्धिगस्तेषु साध्यः स्यात्तन्द्रिकश्चित्तविभ्रमः ॥ कर्णिको जिह्वकः कण्ठकुब्जः पश्चापि कष्टकाः ॥ रुग्दाहस्त्वतिकष्टेन संसाध्यस्तेषु भाषितः ॥ ५८४ ॥ रक्तष्ठीवी भग्ननेत्रः शीतगात्रः प्रलापकः ॥ अभिन्यासोऽन्तकश्चैते पडसाध्याः प्रकीर्तिताः ॥ ५८५ ॥

इनमें 'संधिक सन्निपात' साध्य है । तन्द्रिक, चित्तविभ्रम, कर्णिक, जिह्वक और कण्ठकुब्ज, ये पाँच कष्टसाध्य हैं । रुग्दाह, अत्यन्त कष्टसाध्य है । रक्तष्ठीवी, भुग्ननेत्र, शीतगात्र, प्रलापक, अभिन्यास और अंतक, ये छः असाध्य हैं ॥ ५८४ ॥ ५८५ ॥

अथान्यग्रंथोक्तवातोल्वणादित्रयोदशसंनिपातानां कुम्भीपाकादिनामान्याह ।

कुम्भीपाकः प्रोर्णनावः प्रलापी ह्यन्तर्दाहो दण्डपातोऽन्तकश्च ॥ एणीदाहश्चाथ हारि-

द्रसंज्ञो भेदा एते सन्निपातज्वरस्य ॥ ॥ ५८६ ॥ अजघोषभूतहासौ यन्त्रापीडश्च संन्यासः ॥ संशोषी च विशषास्तस्यैवोक्तास्त्रयोदशान्यत्र ॥ ५८७ ॥

कुम्भीपाक, प्रोर्णुनाव, प्रलापी, अन्तर्दाह, दडपात, अतक, एणीदाह, हारिद्र, अजघोष, भूतहास, यन्त्रापीड, सन्यास और सशोषी ये तेरह सन्निपातोके अनुक्रमसे नाम कहे हैं ॥ ५८६ ॥ ५८७ ॥

अथ कुम्भीपाकलक्षणम्।

घोणाविवरप्ररद्बहुशोणासितलोहितं सान्द्रम् ॥ विलुठन्मस्तकमभितः कुम्भीपाकेन पीडितं विद्यात् ॥ ५८८ ॥

जिस मनुष्यकी नाकमेसे लाल और काला बहुत गाढा रुधिर स्रवै (गिरै) और जो अपने शिरको बारबार इधर उधरको गेरै उसको कुम्भीपाक सन्निपातसे पीडित जानना ॥ ५८८ ॥

अथ प्रोर्णुनावसन्निपातलक्षणम्।

उत्क्षिप्य यः स्वमंगं क्षिपत्यधस्तान्नितान्तमुच्छ्वसिति ॥ तं प्रोर्णुनावजुष्टं विचित्रकष्टं विजानीयात् ॥ ५८९ ॥

जो मनुष्य बारंबार उठउठकर पृथिवीमें गिरागिरपडै अथवा हाथ पॉवोंको उठाकर पटकै, बहुत हॉपै, उस विचित्र दुःखवाले रोगीको 'प्रोर्णुनाव' सन्निपातसे पीडित जानना ॥ ५८९ ॥

अथ प्रलापिसन्निपातलक्षणम्।

स्वेदभ्रमांगभेदाः कम्पो दवथुर्वमिर्व्यथा कण्ठे ॥ गात्रञ्च गुर्वतीव प्रलापिजुष्टस्य जायते लिगम् ॥ ५९० ॥

जिस मनुष्यके प्रलापी सन्निपात कुपित होताहै, उसके पसीना, भ्रम, सधियोंमें तोडने सरीखी पीडा, कम्प, दाह, वमन, कठमे पीडा और शरीरमे भारीपन ये सब लक्षण होतेहैं ॥ ५९० ॥

अथान्तर्दाहसन्निपातलक्षणम्।

अन्तर्दाहः शैत्यं बहिःश्वयथुररतिरपि तथा श्वासः। अंगमपि दग्धकल्पं सोऽन्तर्दाहार्दितः कथितः ॥ ५९१ ॥

जिस मनुष्यके शरीरके भीतर दाह (जलन) हो,ऊपरसे शरदी लगै, सूजन, बेचैनी, श्वास और सम्पूर्ण शरीर जलासा होजाय, उसको 'अन्तर्दाह' सन्निपात ज्वरसे पीडित जानना ॥ ५९१ ॥

अथ दण्डपातसन्निपातज्वरलक्षणम्।

नक्तन्दिवा न निद्रामुपैति गृह्णाति मूढधीर्नभसः ॥ उत्थाय दण्डपाती भ्रमातुरः सर्वतो भ्रमति ॥ ५९२ ॥

नभसो गृह्णाति आकाशात्किञ्चिद्ग्रहीतुं करौ प्रसारयतीत्यर्थः ॥

जिस मनुष्यके दण्डपात सन्निपात कुपित होताहै वह मनुष्य रात और दिन किसी समय निद्राको प्राप्त नहीं होता, बुद्धिके भ्रमसे आकाशको पकडनेके लिये हाथ बढावे, और बेहोसीसे आतुर होकर चारों ओर दौडकर गिरपडै ॥ ५९२ ॥

अथान्तकसन्निपातलक्षणम्।

संपूर्यते शरीरं ग्रन्थिभिरभितस्तथोदरं मरुता ॥ श्वासातुरस्य सततं विचेतनस्यान्तकार्तस्य ॥ ५९३ ॥

जिस मनुष्यके अतक नामवाला सन्निपात कुपित होता है उसके शरीरमें बहुतसी गॉठें पडजाती है, उदर (पेट) वायुसे भरजाताहै, निरतर श्वाससे पीडित रहताहै और अचेत (बेहोस) रहताहै ॥ ५९३ ॥

अथैणीदाहसन्निपातलक्षणम्।

परिधावतीव गात्रे रुक्पात्रे भुजंगपतंगहरिणगणः ॥ वेपथुमतः सदाहस्यैणीदाहज्वरार्तस्य ॥ ५९४ ॥

रुक्पात्रे पीडाभाजने गात्रस्य विशेषणमेतत् ॥

जिस मनुष्यके एणीदाह सन्निपात कुपित होताहै. उसके कप और दाह होताहै, तथा उसका शरीर अत्यत कष्टसे पीडित होताहै और सॉप, पॉखी और हिरनोंके समूह दौडते प्रतीत होते हैं ॥ ५९४ ॥

अथ हारिद्रकसन्निपातलक्षणम्।

यस्यातिपीतमंगं नयने सुतरां मलस्ततोऽप्यधिकम् ॥ दाहोऽतिशीतता बहिरस्य स हारिद्रको ज्ञेयः ॥ ५९५ ॥

जिस मनुष्यका शरीर अत्यन्त पीला होजाय, नेत्र शरीरसे भी अधिक पीले होजायं, मल नेत्रोंसे भी अधिक पीला होजाय, भीतर दाह हो और बाहर सरदी लगे उसको 'हारिद्रक' सन्निपातसे पीडित जानना ॥ ५९५ ॥

अथाजघोषसन्निपातलक्षणम् ।

छगलकसमानगंधः स्कंधरुजावान्निरुद्धगलरन्ध्रः ॥ अजघोषसन्निपातादाताम्राक्षः पुमान्भवति ॥ ५९६ ॥

शरीरमे बकरेकी समान गन्ध आवे, कन्धेमें पीडा हो, गलेका छिद्र रुकजाय और नेत्र लाल होजायँ, ये सब लक्षण जिस ज्वरवालेके हो उसको 'अजघोष' सन्निपातसे पीडित जानना ॥ ५९६ ॥

अथ भूतहाससन्निपातलक्षणम् ।

शब्दादीनधिगच्छति न स्वान्विषयान्यदिन्द्रियग्रामैः ॥ हसति प्रलपति परुषं स ज्ञेयो भूतहासार्तः ॥ ५९७ ॥

जिस मनुष्यकी सम्पूर्ण इन्द्रियें अपने विषयको ग्रहण करनेमे असमर्थ होजायँ, तथा वह हँसे और वृथा बके उसको 'भूतहास' सन्निपात ज्वरसे पीडित जानना ॥ ५९७ ॥

अथ यन्त्रापीडसन्निपातज्वरलक्षणम् ।

येन मुहुर्ज्वरवेगाद्यन्त्रेणेवावपीड्यते गात्रम् ॥ रक्तं पित्तञ्च वमेद्यन्त्रापीडः स विज्ञेयः ॥ ५९८ ॥

जिस मनुष्यका शरीर ज्वरके वेगसे बारबार कोल्हूमें पेलनेकी तरह पेलासा प्रतीत हो और वह रुधिरसहित पित्तकी वमन करे उसको 'यन्त्रापीड' सन्निपात ज्वरसे पीडित जानना ॥ ५९८ ॥

अथ संन्याससन्निपातज्वरलक्षणम् ।

अतिसरति वमति कूजति गात्राण्यभितश्चिरं नरः क्षिपति ॥ संन्याससन्निपाते प्रलपत्युग्राक्षिमण्डलो भवति ॥ ५९९ ॥

जिस मनुष्यके सन्यास नामक सन्निपात ज्वर कुपित होताहै वह अतीसार (दस्त) और वमन (रद्द) से पीडित हो, गूँजे, बारबार अगोंको इधर उधर पटके, बकवाद करै और नेत्र मडल अत्यन्त उग्र होजातेहैं ॥ ५९९ ॥

अथ संशोषिसन्निपातलक्षणम् ।

मेचकवपुरतिमेचकलोचनयुगलो मलोत्सर्गात् ॥ संशोषिणि सितपिडिकामण्डलयुक्तो ज्वरे नरो भवति ॥ ६०० ॥

जिस मनुष्यके संशोषी नामक सन्निपात कुपित होताहै, उसका शरीर दस्तके आनेसे काला पडजाताहै और नेत्र अत्यन्तकाले होजातेहैं, तथा शरीरमें सफेद सफेद फुन्सी और चकत्ते पडजातेहैं ॥ ६०० ॥

अथ सन्निपातज्वरभयंकरता ।

नारायण एव भिषग्भेषजमेतेषु जाह्नवीनीरम् ॥ नैरुज्यहेतुरेको नित्यं मृत्युञ्जयो ध्येयः ॥ ६०१ ॥

सन्निपात ज्वरमे एक श्रीनारायणही तो वैद्य हैं, एक गंगाजलही औषधि है और मृत्युञ्जय (सदाशिव) काही ध्यान करना चाहिये ॥ ६०१ ॥

अथासाध्यसन्निपातज्वरलक्षणम् ।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ॥ शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ ६०२ ॥

सुदारुणः मारकत्वात् । यतस्तेन शोथेन कश्चिदेव प्रमुच्यते, कोऽपि जीवितं न त्यजतीत्यर्थः ॥

सन्निपात ज्वरके अतमें कानकी जडमें महाभयंकर सूजन उत्पन्न होती है, उस सूजनके होनेसे कोई ही मनुष्य बचते हैं, प्रायः मरही जाते हैं ॥ ६०२ ॥

अथ सन्निपातसाध्यासाध्यता ।

सन्निपातज्वरान्कष्टानसाध्यानपरे जगुः ॥ दोषे प्रवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसम्पूर्णलक्षणः ॥ सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कष्टसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ ६०३ ॥

सर्वाणि दाहशीतादीनि सम्पूर्णानि आतुरगतानि प्रोक्तानि यावल्लक्षणानि यस्य सः । ततोऽन्यथा दोषे पक्केऽग्नौ दीप्ते स्वल्पलक्षणकः कष्टसाध्य इत्यर्थः ॥

कितनेक वैद्य कष्टसाध्य सन्निपातको भी असाध्य कहतेहैं, परन्तु उनमें ऐसा समझना चाहिये कि–जो

वातादि दोषोकी वृद्धि हो, जठराग्नि नष्ट होगई हो और दाह शीतादि सम्पूर्ण लक्षण हो तो उस सन्निपात ज्वरको असाध्य जानना । और जो दोष पक्कहों, अग्निदीपन हो और थोडे थोडे लक्षण हो तो उस सन्निपाज्वरको कष्टसाध्य जानना ॥ ६०३ ॥

अथसामान्यसन्निपातज्वरचिकित्सा ।

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम्॥ कस्तेन न कृतो धर्मः काञ्च पूजां न सोऽर्हति, ॥ ६०४ ॥ मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातं चिकित्सता ॥ यश्च तत्र भवेज्जेता स जेतामयसंकुले ॥ ६०५ ॥ श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्याद्व्याधौ त्रिदोषजे॥संसर्गे यो गरीयान्स्यादुपक्रम्यः स वै भवेत्॥६०६॥ संसर्गे दोषद्वयसंसर्गे, गरीयान्बलवत्तरः ॥ अंशांशं यत्र दोषाणां विवेक्तुं नैव शक्नुयात्॥क्रियां साधारणीं तत्र विदधीत चिकित्सकः ॥ ६०७ ॥ लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ॥ अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक्प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ६०८ ॥

जो वैद्य सन्निपात रूपी सागरमे डूबे हुए मनुष्यको बाहर निकालताहै उसने कौनसा धर्म नहीं किया और वह कौनसी पूजाके योग्य नहीं? अर्थात् उसने सम्पूर्ण धर्म किये और वह सर्व पूजाओके योग्य है । सन्निपानकी चिकित्सा करनेमें मृत्युके साथ लडना होताहै, इसकारण जिसने सन्निपातको जीतलिया वह सर्वप्रकारके रोगोके समूहोंको जीतसक्ता है ॥ सन्निपातज्वरमे प्रथम कफको जीतना चाहिये । त्रिदोपज्वरमें जो दो दोषोंकी उल्वणता होय तो उसमें जो दोष बलवान् हो प्रथम उसको जीते । जहॉ दोषोके अशांशके विचारको वैद्य नहीं जानसके वहॉ साधारण चिकित्सा करनी चाहिये । सन्निपात ज्वरमें प्रथम लघन, वालुकास्वेद, नस्य, छीवन, अवलेह और अजन, ये प्रयोग करने चाहियें ॥ ६०४–६०८ ॥

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ॥ पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासङ्करो हितः ॥ ६०९ ॥

इति वचनेन क्रियासंकरस्य निषिद्धत्वात्कथमत्र नस्यनिष्ठीवनावलेहाञ्जनानि युगपद्विधीयन्ते इत्याशंक्याह–

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः क्रियासांकर्यमिष्यते ॥ भिन्नरूपतया तास्तु न हि कुर्वन्ति दूषणम् ॥ ६१० ॥

शका–"एक क्रियाके करनेसे जो गुण न होय तो उस क्रियाका वेग शात होनेपर दूसरी क्रिया करनी चाहिये । क्योंकि क्रियाओंका सकर (मेल) हितकारी नहीं है ।" इस वचनसे क्रियासकरका निषेध है, फिर इस सन्निपातज्वरमें नस्य,अजन,निष्ठीवन और अवलेह इन सबका एकही समय प्रयोग करना कैसे कहा ?

समाधान–"जो समान रूपवाली क्रिया एकही समयमे की जावें तो क्रियाओंका सकर होताहै ऐसा जानना चाहिये, किन्तु भिन्न भिन्न रूपवाली क्रिया जो एकही समम की जावैं तौ कोई हानि नहीं" यह सिद्धात है ॥ ६०९ ॥ ६१० ॥

अथ सन्निपातज्वर–लंघनावधिः ।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा ॥ लंघनं सन्निपातेषु कुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥ ३११ ॥

लंघने त्रिरात्रादिविकल्प उल्वणवाताद्यपेक्षया । दोषाणां शीघ्रमध्यमन्दशक्तित्वात् । व्याध्यभावाद्वा आरोग्यदर्शनादिति यावदारोग्यदर्शनं स्यात्तावद्वा लंघनं कुर्यात् । एतेन त्रिरात्राद्यवधेर्न नियतत्वं सूचितम् । अत एव सुश्रुतः प्राह–

सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा ॥ पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा ॥ ६१२ ॥

घोरतर इति स्वभावादेव तदा घोरतरो भूत्वा इति ॥

सन्निपातज्वरमे तीन रात्रिपर्यन्त, पाच रात्रि पर्यन्त, दश रात्रि पर्यन्त, अथवा जबतक आरोग्य न हो तबतक बराबर लघन उपवास करावै ।

वायु शीघ्रगतिवाली है, पित्त मध्यगतिवाला है और कफ मन्दगतिवाला है इससे इन दोषोंकी उल्वणता पर ध्यान रखकर तीन, पांच और दश रात्रि पर्यन्त लंघन करानेका विकल्प कहा है। आरोग्य होने पर्यन्त लंघन कराने जो कहे उससे यह सूचना दी है कि, कुछ तीन रात्रि आदिकी अवधि नहीं है इस कारण सुश्रुत कहताहै कि-"सातवें, दशवें अथवा बारहवें दिन पर्यन्त सन्निपातज्वर स्वाभाविक रीतिसे अत्यन्त घोर होकर शांत होजाताहै अथवा मारडालता है ॥ ६११ ॥ ६१२ ॥

अथ मारणशांतकारणम् ।

पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात्॥ हन्ति विमुञ्चत्यथ वा त्रिदोषजो धातुमलपाकात् ॥ ६१३ ॥

त्रिदोषजो ज्वर इति शेषः । धातुमलपाकात् धातुपाकाद्धन्ति मलपाकाद्विमुञ्चतीत्यर्थः ॥ धातुमलपाके प्राक्तनकर्मैव हेतुः । तत्र यदि जीवनसंवर्द्धकं कर्म अस्ति तदा मलपाकः, अन्यथा धातुपाकः स च रसादिशुक्रान्तधातूनां पाको बोद्धव्यः ॥

पित्तकी, कफकी और वायुकी वृद्धिसे क्रमपूर्वक दश-दिन, बारहदिन और सातदिनमें जो धातु पकजावैं तौ सन्निपातज्वर मारडालताहै और मल पकजाय तौ शांत होजाताहै। धातुओंके और मलोंके पकनेमें पूर्वजन्मके कर्मही कारणरूप हैं। तहां शुभकर्मका उदय होनेसे मलोंका पाक होताहै और अशुभकर्मके उदयसे धातुओंका पाक होताहै। धातुओंका जो पाक होताहै वह रससे वीर्य पर्यन्त होताहै ऐसा जानना ॥ ६१३ ॥

अथ धातुपाकलक्षणम् ।

निद्रानाशो हृदि स्तम्भो विष्टम्भो गौरवारुची ॥ अरतिर्बलहानिश्च धातूनां पाकलक्षणम् ॥ ६१४ ॥

विष्टम्भ उदरस्य, गौरवं गात्राणाम् ।

स बाध्यमानो हृदि नाभिदेशे गात्रेषु वा पाकरुजान्वितेषु ॥ पीडाज्वरार्तोऽङ्गुलिभिश्च गच्छेत्स धातुपाकी कथितो भिषग्भिः ॥ ६१५ ॥ नाभेरूर्द्ध्वं हृदोऽधस्तात्पीडिते चेद्व्यथा भवेत् ॥ धातोः पाकं विजानीयादन्यथा तु मलस्य च ॥ ६१६ ॥

निद्राका न आना, हृदयका बँधजाना, मलका अवरोध शरीरमें भारीपन, अरुचि, बेचैनी और बलका नाश. ये सब लक्षण होंय तौ जानना कि, धातुओंका पाक हुआ है अन्य वैद्यभी कहते हैं कि, ज्वरसे पीडित मनुष्यके हृदयमें नाभिके ऊपर पाकके कारण दुखतेहुए अंगोंमें अंगुलियोंके दबानेसे पीडा होय तो उसको धातुपाकी हुआ जानना। अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि, नाभिके ऊपर और हृदयके नीचे दबानेसे जो पीडा होय तौ धातुओंका पाक हुआ जानना और जो पीडा न होय तौ मलका पाक हुआ जानना ॥ ६१४-६१६ ॥

अथ मलपाकलक्षणम् ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः ॥ इन्द्रियाणाञ्च वैमल्यं मलानां पाकलक्षणम् ॥ ६१७ ॥

दोषा वातादयस्तेषां प्रकृतिर्दाहतन्द्रागौरवादिकरणं तस्य वैकृत्यं वैपरीत्यं वैमल्यं मलराहित्यम् । मलानां दोषाणां पाकलक्षणम् ॥

शश्वत्त्विन्द्रियपञ्चकस्य पटुता वह्नेश्च यत्र क्रमात्तृष्णादिप्रशमो ज्वरस्य मृदुता तं दोषपाकं वदेत् ॥ हृन्नाभ्योरतिवेदनाऽतिसरणं तीव्रो ज्वरस्तृण्मदौ श्वासाधिक्यमरोचकोऽरतिरिति स्याद्धातुपाकाकृतिः ॥ ६१८ ॥

वातादि दोषोंका जो स्वभाव दाह, तन्द्रा, भारीपन आदिके करनेका है वह न हो अर्थात् विपरीत होजाय, ज्वर और शरीरका हलका होजाना, तथा इंद्रियोंमे निर्मलता, ये लक्षण होयँ तौ मलपाक हुआ जानना। अन्यत्र भी लिखा-है कि, निरंतर पांचो इन्द्रियें अपने कार्य करनेमें समर्थ हों, जठराग्नि दीपन हो, अनुक्रमसे तृषादिका शान्त होना और ज्वरका हलका होना, ये लक्षण होयँ तौ दोषोंका पाकहुआ

जानना और हृदय तथा नाभिमें अत्यन्त पीडा हो, अधिकतर पतला दस्त आवै, ज्वरका तीव्र वेग हो, तृषा, मद, श्वासकी अधिकता, अरुचि और बेचैनी ये लक्षण होयँ तौ धातुओंका पाक हुआ जानना ॥६१७॥६१८॥

अथ ज्वरमुक्तिवधपरमावधिः ।

द्विगुणा यावन्नवम्येकादशी तथा ॥ एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ ६१९ ॥

नवम्येकादशी च आगमनदिवसं विहाय बोद्धव्या, तेन आगमनदिवसं नीत्वा दशमी द्वादशी तथा अत्र रात्रिरिति अध्याहियते ॥

सन्निपातज्वर अपने आनेके दिनसे चौदहवीं, वीसवीं, अथवा चौवीसवी रातमे शात होजाताहै या मारदेताहै । यह सन्निपातकी मर्यादा जाननी ॥ ६१९ ॥

अथ सन्निपातज्वरप्रथमकर्तव्यता ।

सन्निपातज्वरी पूर्वं सम्यङ्लंघनमाचरेत्॥ शृतं शीतं पिबेदम्भः समये भेषजं भजेत्॥ ॥ ६२० ॥ सन्निपातेन तृष्यन्तं पार्श्वरुक्तालुशोषिणम् ॥ यः पाययेज्जलं शीतं स मृत्युर्नरविग्रहः ॥ ६२१ ॥

शीतमक्वथितं शृतं तु शीतं विहितमेव ॥

सन्निपातज्वररोगीको प्रथम उत्तम विधिसे लघन कराने चाहियें । औटाकर शीतल कियाहुआ जल पिलावे और समयके प्राप्त होनेपर औषधि देवै । जो मूर्ख वैद्य सन्निपातसे पीडित मनुष्यको तृषायुक्त पसलियोंमें पीडा और तालूमे शोप होने पर विना औटाया हुआ कच्चा शीतल जल पिलाता है उसको साक्षात् मृत्युही समझना चाहिये ॥ ६२० ॥ ६२१ ॥

अथ वालुकास्वेदः ।

वातश्लेष्मकृते स्वेदान्कारयेद्रूक्षनिर्मितान्॥ स्निग्धः स्वेदो निषिद्धोऽत्र विना केवलवातजात् ॥ ६२२ ॥ खर्परभृष्टपटस्थितकाञ्जिकसंसिक्तवालुकास्वेदः ॥ शमयति कफामयमस्तकशूलाङ्गभङ्गादीन् ॥ ६२३ ॥ स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् ॥ हृत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति ॥ ६२४ ॥

वात और कफकी अधिकतावाले ज्वरमें रूखे पदार्थोंसे बनायाहुआ स्वेद देना चाहिये । केवल वातसे उत्पन्नहुए ज्वरको छोडकर बाकी सर्वप्रकारके ज्वरोंमे स्निग्ध पदार्थोंका स्वेद देना निषेध है । रेतको ठिकरेमे गरम करके कपडेमें बाँधकर उसके ऊपर काँजीके छींटे देकर स्वेद देवे तौ यह बालुकास्वेद वात और कफके रोगोंको मस्तकके शूलको और शरीरके टूटने आदिको दूर करै है । तथा शरीरके स्रोतों (छिद्रो) को नरम करता, जठराग्निको आमाशयमे स्थापन करनेवाला और वातकफके स्तम्भको तोडकर ज्वरको नष्ट करैहै ॥ ६२२–६२४ ॥

अथ सैन्धवादिनस्यम् ।

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च ॥ बस्तमूत्रेण सम्पिष्टं नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ ६२५ ॥

श्वेतमरिचं शिग्रुबीजम् ॥

सैंधानिमक, सैंजेनेके बीज, सरसों और कूट, इन सबको बकरेके मूत्रमें पीसकर नास देनेसे तन्द्रा नष्ट होती है ॥ ६२५ ॥

अथ मधूकसारादिनस्यम् ।

मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः॥ श्लक्ष्णं पिष्ट्वाऽम्भसा नस्यं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ ६२६ ॥ मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणान्वितम् ॥ अन्यद्वा सिद्धविहितं नस्यं तीक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥६२७॥ तेन प्रभिद्यते श्लेष्मा प्रभिन्नश्च प्रसिच्यते॥ शिरोहृदयकण्ठास्यपार्श्वरुक्चोपशाम्यति ॥ ६२८ ॥ मोहामयेन मुग्धं बोधयितुं यादृशः शक्तः ॥ कल्पतरुनामधेयो रसो न तादृक् परं किञ्चित् ॥ ६२९ ॥

महुएका सार, सेंधानिमक, वच, मिर्च और पीपल, इन सबको समान भाग लेकर जलमें पीसकर नास देनेसे तन्द्रा नष्ट होकर संज्ञा आजाती है । बिजौरानींबू तथा अदरखके रसको किंचित् गरम करके उसमें सेंधानिमक, विरियासोंचर निमक और कचिया निमक मिलाकर नास देवै अथवा सिद्ध लोगोंका कहा हुआ अन्यकोई तीक्ष्ण नस्य देवै, इससे कफ फटकर पतला होकर मुखनासिकादिके द्वारा बाहर निकल जाताहै और मस्तक, हृदय, कंठ, मुख और पसलियोंकी पीडा शांत होजातीहै मोहरूपी रोगसे मूढ हुए मनुष्यको जाग्रत करनेके लिये जैसा कल्पतरु रस उत्तम है ऐसी अन्य औषधि उत्तम नहीं है (कल्पतरु रस वातज्वरमें कह आये हैं) ॥ ६२६-६२९ ॥

अथ निष्ठीवनम् ।

जिह्वाताळुगलक्लोम मरुत्पित्तेन दूषितम्॥ तदा सञ्चारयेच्छोषं जिह्वाविरसतां तथा॥ ॥ ६३० ॥ स्फुटनञ्च तदा जिह्वां लेपयेन्मधुपिष्टया ॥द्राक्षया लाज्यपातेन जिह्वा स्यात्सरसा मृदुः ॥ ६३१ ॥ आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं कटुकत्रयम् ॥ आकण्ठाद्धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनःपुनः ॥६३२॥ तेनास्यताळुकोष्ठांसमन्यापार्श्वशिरोगलात् ॥ लीनोऽप्याकृष्यते श्लेष्मा लाघवं चास्य जायते ॥ ६३३ ॥ पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा निद्राश्वासगलामयाः ॥ मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ६३४॥ सकृद्विस्त्रिश्चतुष्कुर्याद् दृष्ट्वा दोषबलाबलम्॥ तद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ ६३५ ॥

जीभ, ताळु, गला और तृषालगनेका स्थान वात और पित्तसे दूषित होय तौ शोष, जीभमें विरसता और जीभ फटने लगतीहै, उस जीभकी विरसता और फटनेको दूर करनेके लिये दाखको सहतमें पीसकर घीमे मिलाकर जीभपर मले, इससे जीभ रसयुक्त और नरम होजातीहै । अदरखके रसमें सेंधानिमक, सोंठ, मिर्च और पीपलको मिलाकर मुखमें कंठतक भरलेवै और बारबार थूंके । इससे मुख, ताळु, कोठा, कंधे, नाड, पसली, मस्तक और गला, इनमें छिपा हुआ भी कफ खिंचकर आजाताहै, शरीरमें हलकापन प्रकट होताहै, तथा संधियोंका टूटना, ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, श्वास, गलेकी पीडा, मुख और नेत्रोंका भारीपन, जडता और कफका उत्क्लेश, ये सब दूर होजातेहैं । दोषोंका बलाबल विचारकर इसको एकबार, दोबार, तीनबार और चारबार भी करना चाहिये । सन्निपात रोगियोंके लिये यह अत्यन्त उत्तम औषधि है ऐसा विद्वान् कहतेहैं ॥ ६३०-६३५॥

अथाष्टांगावलेहः ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी व्योषं यासश्च कारवी ॥ श्लक्ष्णं चूर्णीकृतं चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ ६३६ ॥ एषाऽवलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ॥ हिक्कां श्वासं च कासञ्च कण्ठरोगञ्च नाशयेत् ॥ एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्णमार्द्रकजै रसैः ॥ ६३७ ॥

पौष्करं पुष्करमूलं,तदलाभे कुष्ठं देयम् । शृंगी कर्कटशृंगी । व्योषं शुण्ठीपिप्पलीमरिचानि । यासो यवासः केचिद्यासस्थाने यवानीं प्रक्षिपन्ति । कारवी मँगरैला इति लोके ॥

अष्टांगं मधुना लिह्यादार्द्रकस्य रसेन वा ॥ संमोहं दारुणं हन्यात्तन्द्राकाससमन्वितम् ॥ ६३८॥ सर्वेषु सन्निपातेषु न क्षौद्रमवचारयेत् ॥ शीतोपचारि क्षौद्रं स्याच्छीतं चात्र विरुध्यते ॥ ६३९ ॥

सन्निपातज्वरेषु श्लेष्मनिग्रहार्थं सर्वदा स्वेदो हितः । तत्राभिसम्बन्धेन देहस्य उष्णता तिष्ठति । उष्णेन मधुना विरोधः ॥

उष्णैर्विरुध्यते सर्वं विषान्वयतया मधु ॥ तृष्णार्तमुष्णैरुष्णञ्च तन्निहन्ति यथा विषम् ॥ शीतोपचारि क्षौद्रं स्याच्छीतं चात्र विरुध्यते ॥ ६४० ॥

शीतेनोपचारोऽस्यास्तीति शीतोप-

चारि शीतश्चात्र सन्निपातेन विरुध्यते। अवलेहः प्रायेणोर्द्ध्वजत्रुजरोगहरत्वात्साय-मपयुज्यते ॥ उक्तश्च–

ऊर्द्ध्वजत्रुगदघ्नी या सा सायमवलेहिका ॥ अधोरोगहरी या सा भोजनात्प्राक्प्रयु-ज्यते ॥ ६४१ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडाशिंगी, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल), जवासा और कलौंजी, इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसै और सहतमें मिलाकर चाटै तो यह अष्टाग अवलेह–महादारुण सन्निपातको, हिचकी, श्वास, खाँसी और कंठके रोगोंको नष्ट करैहै। जो कफकी उल्वणता होय तौ इन औषधियोंके चूर्णको अदरखके साथ चटाना चाहिये। अन्य ग्रंथोंमें कहा है कि–"अष्टाग चूर्णको सहतके साथ अथवा अदरखके रसके साथ चाटनेसे तन्द्रा और खाँसी सहित दारुण मोह नष्ट होजाताहै। सर्व प्रकारके सन्निपातोंमें सहतका उपयोग नहीं करना चाहिये, कारण यह है कि, मधुके ऊपर शीतल उपचार किये जाते हैं और सन्निपातज्वरमें शीतल उपचार विरुद्ध हैं"। सन्निपातज्वरमें कफको नष्ट करनेके लिये सदैव स्वेद हितकारी है, किन्तु उसमें अग्निके सम्बन्धसे शरीरमें उष्णता रहती है और उष्णतासे सहतका विरोध है। जैसा कि, सुश्रुत कहता है कि–"विषका सम्बन्ध होनेके कारण सर्व प्रकारके सहत उष्ण (गरम) पदार्थोंसे विरुद्ध हैं। उष्ण होनेके कारण तृषासे पीडित और रूक्षहुए मनुष्यको यह सहत विषकी समान मारदेताहै। सहत शीत उपचारवाला है. और सन्निपातमें शीत उपचारका निषेध है। अष्टाग अवलेह–विशेष करके गलेके ऊपरके रोगोंको हरनेवाला है इस कारण इसको सध्याके समय सेवन करना चाहिये। चरक कहताहै कि जो अवलेह कंठके ऊपरके रोगोंको हरने वाला है उसको सध्याके समय सेवन करना चाहिये। और जो अवलेह कंठसे नीचेके रोगोंको हरनेवाला है उसको भोजनसे पहिले सेवन करना चाहिये। कितनेक वैद्य इस अष्टाग अवलेहमें जवासेकी जगह अजवायन डालते हैं ॥ ६३६–६४१ ॥

अथ चतुरंगावलेहः।

स्विन्नमामलकं पिष्ट्वा द्राक्षया सह मेलयेत्॥ विश्वभेषजसंयुक्तं मधुना सह लेहयेत् ॥ तेनास्य शाम्यति श्वासः कासो मूर्च्छा-ऽरुचिस्तथा ॥ ६४२ ॥

उसीजे हुए आमलोंको पीसकर उसमें दाख और सोंठका चूर्ण मिलाकर सहतके साथ चाटनेसे श्वास, खाँसी, मूर्च्छा और अरुचि नष्ट होजातीहैं ॥ ६४२ ॥

अथाञ्जनम्।

शिरीषबीजं गोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ॥ अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिला-वचैः ॥ ६४३ ॥

सिरसके बीज, पीपल, मिरच, सैंधानिमक, लहसन, मैनशिल और वच, इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर अंजन बनाकर नेत्रोंमें आँजै तौ सज्ञा (चेतनता) उत्पन्न होतीहै ॥ ६४३ ॥

अथ लोहचूर्णाद्यञ्जनम्।

अयोरजः श्वेतलोध्रं मरिचं चाञ्जनं तथा॥ गोमूत्रेण समायुक्तं तन्द्रानाशनमुत्तमम् ६४४

लोहेका चूर्ण, सफेद लोध और काली मिरच, इनको गोमूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें आजनेसे तन्द्रा नष्ट होतीहै ॥ ६४४ ॥

अथ दंडपाण्युक्तांजनम्।

अञ्जनं सम्यगारब्धं मधुसिन्धुशिलोषणैः॥ प्रमोहद्रोहि भवति भाषितं दण्डपा-णिना ॥ ६४५ ॥

सहत, सैंधानिमक, मैनशिल और कालीमिरच, इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आजनेसे अत्यत बेहोशी नष्ट होजातीहै, इसको दडपाणिने कहाहै ॥ ६४५ ॥

अथ लेपः।

सूतं विषञ्च मरिचं तुत्थकं नवसादरम् ॥ चूर्णितं स्वरसैर्मर्द्य धूर्तपत्ररसोनयोः ॥ ॥ ६४६ ॥ सन्निपातकृते मोहे मूर्ध्नि लिम्पेत्पदोपरि ॥ अस्थित्यथास्वनेनैव लेपं कुर्यात्पदोपरि ॥ ६४७ ॥

सन्निपातज्वरमें बेहोशी होय तौ पारा, वत्सनाभ, काली मिरच, नीलाथोथा और नवसादर, इन सबको एकत्र धतू-

रेके रसमें और लहसुनके रसमें मर्दन करे । फिर शिरके मध्यभागकी हजामत बनवाकर उसमें इसका लेपकरे और जो कहीं हड्डीमें पीडा होती होय तो वहाँपर भी इसीप्रकारसे इसका लेप करना चाहिये ॥ ६४६ ॥ ६४७ ॥

अथ दशमूलक्काथः ।

बिल्वश्योनाकगम्भारीपाटलागणिकारिकाः ॥ पित्तघ्नं वातकफहृत्पञ्चमूलमिदं महत् ॥ ६४८ ॥ शालिपर्णी पृष्टिपर्णी बृहती कण्टकारिका ॥ गोक्षुरुर्वातपित्तघ्नं कनीयः पञ्चमूलकम् ॥ ६४९ ॥ उभयं दशमूलं तत्पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥ सन्निपातज्वरं हन्ति हृत्कण्ठग्रहनाशनम ॥ तन्द्रावातकफातंकश्वासपार्श्वार्तिकासनुत् ॥ ६५० ॥ महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च ॥ तेषान्तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि कृत्स्नशः ॥ ६५१ ॥

अत्र बिल्वादीनां पञ्चानां मूलस्य वल्कलं ग्राह्यम् ॥

बेल, श्योनाक, कुम्भेर (खँभारी), पाढल और अरणी (अगेथ). इनको बृहत्पञ्चमूल कहतेहैं । ये पञ्चमूल पित्तनाशक और वातकफको हरनेवाला है । शालिपर्णी, पृश्निपर्णी बृहती (बडी कटेरी), कटेरी और गोखरू इनको लघुपञ्चमूल कहतेहैं । ये लघुपञ्चमूल—वात और पित्तनाशक है । बृहत्पञ्चमूल और लघुपञ्चमूल दोनोंको मिलानेसे दशमूल होताहै, दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे सन्निपातज्वर नष्ट होताहै, तथा हृदय और कठका अवरोध, तन्द्रा, वात, कफके रोग, श्वास, पसलियोंकी पीडा और खाँसी दूर होतीहै । इस दशमूलकी औषधियोंमें जिनकी बडी जड है और जो काष्ठगर्भित अर्थात् छालसे लिपटी हुई हैं उनकी जडकी छाल लेनी चाहिये और जिनकी छोटी जड है वह समस्त लेनी चाहिये ॥ ६४८–६५१ ॥

अथ द्वादशांगक्काथः ।

दशमूलीकषायस्तु पिप्पलीपौष्करान्वितः ॥ सन्निपातज्वरे देयः श्वासकाससमन्विते ॥ ६५२ ॥

दशमूलके क्वाथमें पीपल और पोहकरमूल मिलाकर श्वास खाँसीयुक्त सन्निपातज्वरमें देना चाहिये ॥ ६५२ ॥

अथ चतुर्दशांगक्काथः ।

चिरज्वरे वातकफोल्वणे वा त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः ॥ किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः शुद्ध्यर्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः ॥ ६५३ ॥

पुराने ज्वरमें वातकफोल्वण ज्वरमें अथवा त्रिदोषज ज्वरमें किराततिक्तादिगणमें दशमूल मिलाकर क्वाथ बनाकर देवे और जो विरेचन (दस्त) करानेकी इच्छा होय तो उसमें निसोतका चूर्ण डाल देवे ॥ ६५३ ॥

अथ किराततिक्तादिगणः ।

किराततिक्तको मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम् ॥ किरातादिर्गणो ह्येष चातुर्भद्रकमित्यपि ॥ ६५४ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ, इनको किराततिक्तादिगण कहतेहैं और इसीको चातुर्भद्रक भी कहतेहैं ॥ ६५४ ॥

अथाष्टादशांगक्काथः ।

दशमूली शटी शृङ्गी पौष्करं सदुरालभम् ॥ भार्ङ्गी कुटजबीजञ्च पटोलं कटुरोहिणी ॥ ॥ ६५५ ॥ अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः ॥ कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥ ६५६ ॥

दशमूलकी समस्त औषधि, कचूर, काकडासिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारंगी, कुडेके बीज, पटोलपत्र और कुटकी, इन सब औषधियोंके समुदायको अष्टादशांग कहते हैं इस अष्टादशांग अर्थात् उपरोक्त अठारह औषधियोंका क्वाथ सन्निपातज्वरनाशक है, खाँसी, हृदयका रुकना, पसलियोंकी पीडा, श्वास, हिचकी और वमन दूर होजाती-है ॥ ६५५ ॥ ६५६ ॥

अथ द्वितीयाष्टादशांगक्काथः ।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्दतिक्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषायः ॥ तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासात्रिदोषजनितज्वरनाशनः स्यात् ॥ ६५७ ॥

उक्तं च वङ्गसेनेन–"अष्टादशांग इत्येष मृत्युकल्पं ज्वरं जयेत्" इति ॥

चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनियाँ और गजपीपल, इन अठारह औषधियोंके समुदायको भी अष्टादशांग कहते हैं । इन अष्टादशांगका क्वाथ–तन्द्रा, प्रलाप, खाँसी, अरुचि, दाह, मोह, श्वास और त्रिदोषज्वरको नष्ट करैहै । वंगसेनने भी कहाहै कि–"ये अष्टादशांग क्वाथ मृत्युरूप ज्वरको भी हरताहै" ॥ ६५७ ॥

अथ सन्निपातज्वरे रसः ।
मृतसंजीवनी वटिका ।

विषं त्रिकटुकं गन्धं टंकणं मृतशुल्बकम् ॥ धत्तूरस्य च बीजानि हिंगुलं नवमं स्मृतम् ॥ ६५८ ॥ एतानि समभागानि दिनैकं विजयाद्रवैः ॥ मर्दयेच्चणकाकारा कर्तव्या वटिकाथ वा ॥ ६५९ ॥ भक्षणीयाऽनुपातव्यो रविमूलकषायकः ॥ मृतसञ्जीवनी नाम्ना सन्निपातज्वरान्तकृत् ॥ ६६० ॥

वत्सनाभविष, सोंठ, मिरच, पीपल, गन्धक, सुहागा, ताँबेकी भस्म, धतूरेके बीज और सिंगरफ, इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकदिन पर्यन्त भागके रसमें खरल करके चनेकी बराबर गोली बनालेवै। इसको खाकर ऊपरसे आककी जडका क्वाथ बनाकर पीना चाहिये । यह मृतसंजीविनी वटिका सन्निपातज्वरको नष्ट करैहै । यह रसप्रदीप ग्रंथमें कहाहै ॥ ६५८–६६० ॥

अथ त्रिनेत्ररसः ।

शुद्धसूतं समं गन्धं सूतांशं मृतताम्रकम् ॥ त्रिभिस्तुल्यैर्गवां क्षीरैर्मर्दयेदातपे खरे ॥ मर्दयेद्दिनमेकन्तु निर्गुण्डीशिग्रुजद्रवैः ॥ ॥ ६६१ ॥ विधाय गोलं तं गोलमन्धमूषागतं पचेत् ॥ त्रियामं वालुकायन्त्रे ततः खल्वे विचूर्णयेत् ॥ ६६२ ॥ अष्टमांशं विषं तत्र क्षिपेत्तेनापि मर्दयेत् ॥ त्रिनेत्राख्यो रसो ह्येष देयो गुञ्जाद्वयोन्मितः ॥ ॥ ६६३ ॥ पञ्चकोलकषायेण छागीदुग्धेन वा सह ॥ रसेनानेन भुक्तेन सन्निपातज्वरो महान् ॥ संक्षयं व्रजति क्षिप्रं कर्तव्यो नात्र संशयः ॥ ६६४ ॥

शुद्धपारा एकभाग, शुद्धगंधक एकभाग और शुद्धताँबा एकभाग लेवै और तीनभाग आकका दूध लेवै, इन तीनों औषधियोंको इस आकके दूधमें डालकर प्रचंड धूपमें खरलकरै, फिर एकदिन निर्गुण्डी (सम्हालू) और *सैंजिनेके रसमें खरल करके गोला बनालेवै । उस गोलेको* अंधमूषामें रखकर मुख बंदकर तीन प्रहरतक वालुकायंत्रमें पचावे, जब स्वांगशीतल होजाय तब पीसकर बारीक चूर्ण करे, उसमें आठवाँ भाग विष डालकर खरलकरै । इसको त्रिनेत्र रस कहते हैं । इसकी मात्रा दो रत्तीकी है। अनुपान–पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ) का क्वाथ अथवा बकरीका दूध है । इस रसको सेवन करनेसे अत्यंत भयंकर सन्निपात भी शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६६१–६६४ ॥

अथ रसेन्द्रचिन्तामण्युक्तभस्मेश्वररसः ।

भस्म षोडशनिष्कं स्यादारण्योपलसम्भवम् ॥ मरिचं निष्कमात्रञ्च विषं निष्कं विचूर्णयेत् ॥ ६६५ ॥ रसो भस्मेश्वरो नाम सन्निपातज्वरान्तकृत् ॥ एकगुञ्जामितो भक्ष्य आर्द्रकस्य द्रवेण हि ॥ ६६६ ॥

अन्ने उपलोंकी भस्म १६ सोलह निष्क, काली मिर्च १ एक निष्क (चौबीस रत्ती) और विष १ निष्क, लेकर तीनोंको एकत्र खरल करै तौ भस्मेश्वर नामक रस तय्यार होताहै । यह भस्मेश्वर रस सन्निपातज्वरनाशक है । एक रत्ती प्रमाण इसको अदरकके रसके साथ भक्षण करना चाहिये ॥ ६६५ ॥ ६६६ ॥

अथाग्निकुमाररसः ।

द्वौ कर्षौ सूतकाद्ग्राह्यौ गन्धकाद्द्वौ तथैव च ॥ यत्नतस्तूभयं मर्द्य दिनं हंसपदीद्रवैः ॥ ॥ ६६७ ॥ कल्कस्य वटिकां कृत्वा निक्षिपेत्काचभाजने ॥ कर्षैकममृतं तत्र क्षिप्त्वा वक्त्रं निरोधयेत् ॥ ६६८ ॥ कूपिकायाः परौ भागौ वालुकाभिश्च पूरयेत् ॥ सार्द्ध

यावदहोरात्रं तावत्तत्र पचेद्रसम् ॥ ६६९ ॥ याममात्रोऽनलो देयः स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ तोलार्द्धममृतं तत्र क्षिपेत्तावत्तथोपणम् ॥ ६७० ॥ भक्षितो रत्तिकामात्रो रसस्त्वग्निकुमारकः ॥ सन्निपातज्वरं हन्याद्वातं मन्दाग्नितामपि ॥ ६७१ ॥ शूलञ्च ग्रहणीं गुल्मं क्षयं जत्रुगदं तथा ॥ श्वासकासादिकान्सर्वान्गदानेष विनाशयेत् ६७२

इति अग्निकुमारो रसः सन्निपातज्वरादिषु रसेन्द्रचिन्तामणौ ॥

पारा दो तोले, और गधक दो तोले लेवै, दोनोंको एकत्र हसपदी (लजालु) के रसमें एकदिन खरलकरके गोली बनाकर कॉचकी आतसीशीशीमें भरके रखदेवे, फिर उस में एकतोला मीठाविष डालकर शीशीका मुख बदकर एक दूसरे मट्टीके बासनमें शीशीको रखदेवै और उसके गलेतक बालू (रेता) भरदेवे, फिर उसको डेढ दिनरात पचावै, पश्चात् एक प्रहरतक अगारोंपै रक्खा रहने देवैं, जब अपने आप शीतल होजाय तब निकालकर चूर्ण करलेवै और इस चूर्णमें आधातोला विष और आधातोला काली मिर्च मिलावैं तो अग्निकुमार रस सिद्ध हो । इसको एक रत्ती परिमाण खाय तो सन्निपातज्वर, वात, मन्दाग्नि, शूल, सग्रहणी, गुल्म, क्षय, कटसे ऊपरके रोग और सर्व प्रकारके श्वास कासादि रोग नष्ट होते हैं । यह अग्निकुमार रस रसेन्द्रचिन्तामणिमें कहाहै ॥ ६६७–६७२ ॥

अथ पंचवक्ररसः ।

गन्धेशटंकमरिचं विषं धत्तूरजैर्द्रवैः ॥ दिनं संमर्दितं शुष्कं पञ्चवक्रो रसो भवेत् ॥ ॥ ६७३ ॥ आर्द्रकस्य द्रवेणैष दातव्यो रत्तिकामितः ॥ सन्निपातज्वरे देयो घोरे तद्दोषनाशनः ॥ ६७४ ॥

इति पञ्चवक्रो रसः सन्निपाते रसेन्द्रचिन्तामणौ ॥

गन्धक, पारा, सुहागा, कालीमिर्च और विष, ये सब समान भाग लेकर धतूरेके रसमें एकदिनतक खरल करके सुखालेवै तो पचवक्र रस तैयार होता है । इस पञ्चवक्र रसको एक रत्तीभर अदरखके रसमें घोर सन्निपातज्वरमें भी देवै तो इससे सन्निपात नष्ट होजाताहै ॥ ६७३ ॥ ६७४ ॥

अथामृतादिवटी ।

अमृतवराटकमरिचैर्द्विपञ्चनवभागयोजितै रचिता ॥ वटिका मुद्गसमाना कफत्रिदोषाग्निमान्द्यहरी ॥ ६७५ ॥

मीठा विष दोभाग, कौडीकी भस्म पाँचभाग और कालीमिर्च नौभाग लेवै, इन तीनोंको एकत्र खरल करके मूँगकी बराबर गोलियॉ बनालेवै । यह अमृतवटी–कफ, त्रिदोष और मदाग्निको हरै है ॥ ६७५ ॥

अथ शीतज्वरे रसः ।

शीतज्वराररसः ।

सूतकं गन्धकञ्चैव हरितालं मनःशिला ॥ एकनिष्कं द्विनिष्कञ्च चतुर्निष्कं तथैव च ॥ ६७६ ॥ पञ्चनिष्कं रसैः कारवेल्ल्याः सम्यक्प्रकल्पयेत् ॥ ताम्रपत्राणि तुल्यानि तेन कल्केन लेपयेत् ॥ ६७७ ॥ शरावसंपुटे तानि कृत्वा तेषामुपर्यपि ॥ दद्यात्तां पिष्टिकां पश्चात्पुटपाकेन पाचयेत् ६७८॥ ततः संचूर्णयेदेवं रसः क्षौद्रेण भक्षितः ॥ यवैकमात्रया हंति घोरं शीतज्वरं ध्रुवम् ॥ ६७९ ॥

पाराटंक १ गन्धकटंक २ हरितालटंक ३ मनःशिलाटंक ४ ताम्रपत्रटंक १२ । इति शीत ज्वरारिः रसप्रदीपे ॥

पारा १ टक, गधक २ टक, हरिताल ४ टंक और मैनशिल ५ टक लेवै, सबको एकत्र करके करेलेके रसमे खरल कर लेवै, फिर ताँबेके पत्र १२ टक लेकर इसी कल्कका इनपर लेप करदेवै, फिर इनको शरावसम्पुटमें रखकर ऊपरसे भी इसी कल्कका लेपकर पुटपाकके द्वारा पकावै, जब स्वांग शीतल होजाय तब पीसकर चूर्ण करलेवे इसमे एक

जौकी बराबर सहतके साथ सेवनकरै तो घोर शीतज्वर नष्ट होताहै ॥ ६७६–६७९ ॥

अथ शीतकेसरी रसः।

पारदं गन्धकश्चैव तुत्थश्च दरदं विषम् ॥ विषादष्टगुणं योज्यं मरिचं विश्वभेषजम् ॥ ॥ ६८० ॥ अश्वगन्धाथ विजया कासमर्दः कठिल्लकः ॥ चतुर्णाश्च रसैरेतैश्चूर्णान्येतानि मर्दयेत् ॥ ६८१ ॥ तुलस्यास्तु दलैः सार्द्धं भक्षितो रत्तिकामितः॥ हन्ति शीतज्वरं घोरं नाम्नायं शीतकेसरी ॥ ६८२ ॥

पारा १ भाग, गधक १ भाग, नीलाथोथा १ भाग, सिग्रफ १ भाग, विप १ भाग, कालीमिर्च और साठ आठभाग लेवै, सबका एकत्र चूर्ण करके, असगध, भॉग, कसोंदी और करेला, इन चारोंके रसमें खरलकरै तो शीतकेसरी रस सिद्ध होताहै। इसमेंसे एक रत्ती प्रमाण तुलसीदलके रसके साथ खाय तो इससे महादारुण शीतज्वर नष्ट होताहै ॥ ६८०–६८२ ॥

अथ शीतभञ्जी रसः।

तालकं शुक्तिकाचूर्णं तुल्यं तत्रोभयोरपि ॥ नवमांशश्च तुत्थं स्यान्मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ ६८३ ॥ तत्तु संशुष्कमुपलैर्वन्यैर्गजपुटे पचेत् ॥ शीतं तच्चूर्णयेदर्द्धगुञ्जामात्रं सितायुतम् ॥ ६८४ ॥ प्रभाते भक्षयेत्तेन याति शीतज्वरः क्षयम् ॥ वान्तिर्भवति कस्यापि कस्यचिन्न भवत्यपि ॥ ६८५ ॥

हरिताल और सीपका चूर्ण समान भाग और नीलाथोथा नवमाभाग लेवै, इन तीनो औषधियोंको एकत्र घीकुवारके रसमें खरल करके सुखालेवै फिर इसको सपुटमें रखकर गजपुटमें अरण्य (अन्ने) उपलोंकी आगसे पचावै, जब स्वांगशीतल होजाय तब निकालकर चूर्ण कर लेवै। यह शीतभजीरस आधी रत्ती मिश्रीके साथ प्रातःकाल भक्षण करै तो अवश्य शीतज्वर नष्ट होजाताहै। इससे किसी मनुष्यको वमन होता है और किसी मनुष्यको नहीं भी होता ॥ ६८३–६८५ ॥

अथ रसेन्द्रचिंतामण्युक्तशीतभञ्जी रसः।

तालकं तुत्थकं ताम्रं सूतगन्धकटंकणम्॥ सर्वमेतत्समं चूर्णं कारवेल्लीरसद्रवैः ॥ ॥ ६८६ ॥ दिनैकं मर्दयेत्तेन रसकर्दमकेन तु ॥ ताम्रस्य भाजनस्यान्तर्लिम्पेदर्द्धांगुलोन्मितम् ॥ ६८७ ॥ तत्पचेद्वालुकायन्त्रे यवा यावत्स्फुटन्ति हि ॥ शीतलं तद्धि गृह्णीयात्ताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥ शीतभञ्जीरसो माषमात्रो मरिचसंयुतः॥ भक्षितः पर्णखण्डेन नाशयेद्विषमज्वरान् ॥ ६८८ ॥

हरिताल, नीलाथोथा, तावा, पारा, गधक और सुहागा, इनको समान भाग लेकर चूर्ण करके एक दिनतक करेलेके रसमें खरलकरै, फिर इस कल्कका तॉबेके बासनके भीतर आधे अगुल ऊँचा लेपकर देवै, फिर उस बासनको वालुकायत्रमें पकावै और उस वालूमें कुछ जौके दाने डालदेवै, जब जौके दाने भुनकर फुटने लगे तब सिद्ध जानकर निकाल लेवै। जब स्वाग शीतल हो जाय तब उस तावेके वासनमेंसे औपधिको यत्नसे छुटालेवै। इसको शीतभजी रस कहतेहैं। यह रस एकमासे कालीमिर्चके साथ पानमें रखकर खाय तो विषमज्वर नष्ट हो जाताहै ॥ ६८६–६८८ ॥

अथ रसरत्नप्रदीपोक्तशीतभंजी रसः।

तालको दरदोद्भूतः पारदो गन्धकः शिला॥ क्रमाद्भागार्द्धरहितं कारवेल्ल्यम्बुमर्दितम् ॥ ६८९ ॥ अनेनास्य प्रमाणेन ताम्रपात्रं प्रलेपयेत् ॥ अधोमुखं दृढे भाण्डे तन्निरुध्याथ पूरयेत् ॥ ६९० ॥ चुल्ल्यां वालुकया घस्रमग्निं प्रज्वालयेदधः ॥ शीतं संचूर्ण्य माषोऽस्य नागवल्लीदले स्थितः ॥ ६९१ ॥ भक्षितो मरिचैः सार्द्धं समस्तविषमज्वरान् ॥ शीतदाहादिकान्हन्ति पथ्यं शाल्योदनं पयः ॥ ६९२ ॥

इति शीतभञ्जी रसः, शीतज्वरादिविषमज्वरेषु रसरत्नप्रदीपे ॥

हरिताल, सिंगरफ (हिंगुल) से निकाला हुआ पारा हरितालसे आधाभाग, पारेसे आधा गन्धक और गन्धकसे आधी मैनशिल लेवै, सबको एकत्र पीसकर करेलेके रसमें विधिपूर्वक घोटै। फिर इस कल्कका एक ताम्बेके वासनके भीतर लेप करदेवै। पश्चात् उस वासनको एक मजबूत वासनमें उलटा रखकर ऊपरसे रेता वालू भरकर चूल्हे पै रक्खे और एक दिनरात अग्नि देवै। शीतल होनेपर इसका चूर्ण करलेवै तौ शीतभजी रस सिद्ध होताहै। इसको एक मासे लेकर कालीमिर्चके साथ पानमें रखकर खाय तौ विषमज्वर नष्ट होताहै ॥६८९–६९२॥

अथ कट्फलादिपानम् ।

कट्फलं त्रिफला दारु चन्दनं सपरूषकम् ॥ कटुका पद्मकोशीरं विपचेत्कर्षकं जले ॥ ६९३ ॥ त्रिदोषदाहतृष्णाघ्नं पानमात्रे प्रपूजितम् ॥ दीर्घकालज्वरार्तानामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥ ६९४ ॥

कर्ष कट्फलाद्युशीरान्तानां समुदितानां जले प्रस्थमिते विपचेदर्द्धशेषं पिबेत् । कट्फलादिपानं तृष्णायां दाहे च ॥

कायफल, हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, चन्दन, फालसे, कुटकी, पद्माख और खस इन सबको एक तोला प्रमाण लेकर ६४ तोले जलमें पकावै, जब पकते पकते आधा जल रहजाय तब उतार लेवै। यह जल त्रिदोष, दाह और तृषाको हरनेवाला है, सर्व प्रकारके पानोंमें उत्तम है और बहुत कालसे जो ज्वरसे पीडित हैं उनके लिये अमृतकी समान है ॥ ६९३ ॥ ६९४ ॥

अथ शीतलजलनिषेधः ।

सन्निपाते तु दाहार्तं यः सिञ्चेच्छीतवारिणा ॥ आतुरः स कथं जीवेद्भिषग्वा स कथं भवेत् ॥ ६९५ ॥

एष सन्निपातिनो दाहे शीताम्बुसेकनिषेधो रुग्दाहादन्यत्र तत्र वाप्यवगाहनस्योक्तत्वात् ॥

सन्निपातज्वरमें दाहसे पीडित मनुष्यके शरीरको जो वैद्य शीतलजलसे सींचताहै वह कैसे वैद्य हो सक्ता है? और वह रोगी कैसे बच सक्ता है? सन्निपातज्वरमें दाहसे पीडित मनुष्यको जो शीतल जलका सेवन निषेध किया है, वह रुग्दाहको छोडकर अन्य सन्निपातोंमें जानना, क्योंकि रुग्दाह सन्निपातमें तो जलके भीतर घुसकर स्नान कराना चाहिये ॥ ६९५ ॥

अथान्नम् ।

दुःस्पर्शगोक्षुरक्षुद्रासिद्धमाहारमर्पयेत् ॥ दोषशान्तिबलाग्न्यर्थं त्रिदोषज्वरिणां भिषक् ॥ ६९६ ॥

दुःस्पर्शो यवासः । आहारम् उचितमन्नम् ॥

लाजसक्तून्समश्नीयात्सैन्धवेन समन्वितान् ॥ ते च जीर्यन्त्यविघ्नेन ज्वरी जीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ रक्तपित्ताहितत्वेन तृषादाहज्वरेषु च ॥ लाजानां सक्तवः शीता नैव तेऽत्र हिता मताः ॥ ६९७ ॥ पाचनो दीपनः स्वेद्यो लाजमण्डो यतः स्मृतः ॥ दशमूलादिसंसिद्धः सन्निपातज्वरे हितः ॥ ६९८ ॥ सन्निपातज्वरी यस्तु कम्पते प्रलपत्यपि ॥ किञ्चिदेव न जानाति चिकित्सा तस्य कथ्यते ॥ ॥ ६९९ ॥ अभ्यञ्जयेत्पुराणेन सर्पिषा पूर्वमेव तम् ॥ बलारास्नागुडूच्याद्यैस्तैलैश्च परिषेचयेत् ॥ ७०० ॥ वर्तको वर्तिका लावो वार्तीकस्तित्तिरिः शशः ॥ कुलिङ्गश्च रसैरेषां तर्पयेत यथानलम् ॥ ॥ ७०१ ॥ सन्निपाते क्षुधार्तो यो भोक्षयेत्पिशितौदनम् ॥ स कथं भिषगाख्यान्तु लभते मनुजाधमः ॥ ७०२ ॥

वैद्यको चाहिये कि, सन्निपात रोगके दोषोंको शान्त करनेके लिये बल और जठराग्निको बढानेवाला जवासा, गोखुरु और कटेरी, इनके क्वाथसे सिद्ध किया हुआ योग्य आहार देवै। कितने एक वैद्य कहतेहैं

कि, ज्वरवाले मनुष्यको सैंधानिमक डालकर खीलोंके सत्तू खानेको देवै, जो वह निर्विघ्न पचजावै तो ज्वररोगी अवश्य जीता है । परन्तु खीलोंके सत्तू रक्तपित्त, तृषा और दाहज्वरमे हितकारी होनेके कारण शीतल है और शीतल वस्तु सन्निपातमें अत्यन्त अहितकारी (कुपथ्य) हैं, इस कारण खीलोंके सत्तू सन्निपातज्वरमें सेवन नहीं करने चाहिये । सन्निपातज्वरमें तौ दशमूलादि औषधियोंके द्वारा सिद्धकिया हुआ खीलोंका माड—पाचन, दीपन, पसीनेको लानेवाला और हितकारी है । सन्निपातज्वरमें यदि रोगी कापै, बकवाद करै और अज्ञान होजाय, उसकी चिकित्सा अत्र कहीजातीहै । ऐसे रोगीके शरीरमे प्रथम पुराने घीका मालिस करै, तथा बलादि, रास्नादि और गुडूच्यादि औषधियोका तेलबनाकर सेवन करावै । इस रोगीकी अग्निके अनुसार वटेर, बत्तक, लवा, बगेरा, तीतर, खरगोश और कुलिंग (घरका चिडा) इनके मासके रससे तृप्तकरै। सन्निपातज्वरमें भूँखसे व्याकुल रोगीको जो वैद्य मासयुक्त भात भोजन करनेके लिये देताहै वह मनुष्योंमे अधम कैसे वैद्य होसक्ताहै ? ॥ ६९६–७०२ ॥

अथ वातोल्वणसन्निपातज्वर-चिकित्सा ।

पंचमूलीकषायन्तु दद्याद्वातोल्वणे ज्वरे ॥ भृशोष्णं वा सुखोष्णं वा दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥ ७०३ ॥

पंचमूली महती प्रथमप्राप्तायास्त्यागे पचनाभावात् ॥

वातोल्वण सन्निपातज्वरमें दोषोका बलाबल विचारकर बहुत गरम अथवा किंचित् गरम पचमूलका क्वाथ देवै । यहा बृहत्पचमूल लेना चाहिये ॥ ७०३ ॥

अथ पित्तोल्बणसन्निपातज्वर-चिकित्सा ।

परूषकादिक्वाथः ।

परूषकश्च त्रिफला देवदारु च कट्फलम्॥ चन्दनं पद्मकश्चैव तथा कटुकरोहिणी ॥ ॥ ७०४ ॥ पृष्टिपर्णी शृतं त्वेभिरुषितं शीतलं जलम् ॥ पित्तोत्तरे नृणामेतत्सन्निपातचिकित्सितम् ॥ ७०५ ॥

पित्तोल्वणसन्निपातमें फालसे, हरड, बहेडा, आमले, देवदारु, कायफल, लालचन्दन, पद्माख, कुटकी और पृष्टिपर्णी (पिथवन) इनका क्वाथ बनाकर बासीकरके शीतल होनेपर पिये तौ पित्तोल्वण सन्निपात नष्ट होता है ॥ ७०४ ॥ ७०५ ॥

अथ किरातादिसप्तकः ।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम् ॥ पाठोदीच्यं मृणालश्च शृतं पित्ताधिके पिबेत् ॥ ७०६ ॥

पित्तोल्वण सन्निपातमे चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाढ, सुगन्धवाला और कमलकी नाल इनका क्वाथ बनाकर पियै ॥ ७०६ ॥

कफोल्वणसन्निपातज्वरचिकित्सा ।

बृहत्यादिक्वाथः ।

बृहती पौष्करं भार्ङ्गी शटी शृंगी दुरालभा॥ वत्सकस्य तु बीजानि पटोलं कटुरोहिणी ॥ ७०७ ॥ बृहत्यादिगणः शस्तः सन्निपाते कफोत्तरे ॥ श्वासादिषु च सर्वेषु हितः सोपद्रवेष्वपि ॥ ७०८ ॥

कफोल्वण सन्निपातमें बृहती (बडी कटेरी), पोहकरमूल, भारगी, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी, इनका क्वाथ बनाकर पियै । यह कफोल्वण सन्निपातमें हितकारी है, तथा श्वासादि उपद्रवसहित सन्निपातको दूर करैहै । इसको बृहत्यादिक्वाथ कहते हैं ॥ ७०७ ॥ ७०८ ॥

वातपित्तोल्वणसन्निपातज्वर-चिकित्सा ।

चातुर्भद्रकक्वाथः ।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम् ॥ चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातपित्तोल्वणे ज्वरे ॥ ७०९ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ, इनको चातुर्भद्रक कहतेहैं । इनका क्वाथ वातपित्तोल्वण सन्निपातज्वरमे हितकारी है ॥ ७०९ ॥

पित्तकफोल्वणसन्निपातज्वर-चिकित्सा ।

पर्पटादिक्वाथः ।

पर्पटः कट्फलं कुष्ठमुशीरं चंदनं जलम् ॥ नागरं मुस्तकं शृंगी पिप्पल्येषां शृतं हितम् ॥ तृष्णादाहाग्निमान्द्येषु पित्तश्लेष्मोल्वणे ज्वरे ॥ ७१० ॥

पित्तकफोल्वण सन्निपातज्वरमें पित्तपापडा, कायफल, कूठ, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला, सोंठ, नागरमोथा, काकडाशिंगी और पीपल, इनका क्वाथ हितकारी है। तथा तृषा दाह और मन्दाग्निको नष्ट करैहै । इसको पर्पटादिक्वाथ कहतेहैं ॥ (यहां वातकफोल्वण सन्निपात ज्वरकी चिकित्सा लिखनी चाहिये थी सो नहीं लिखी, उसके न लिखनेका कारण यह है कि-वातकफोल्वण सन्निपात शीघ्र असाध्य होजाता है) ॥ ७१० ॥

वातपित्तकफोल्वणसन्निपातज्वर-चिकित्सा ।

योगराजक्वाथः ।

नागरं धान्यकं भार्ङ्गी पद्मकं रक्तचन्दनम् ॥ पटोलः पिचुमन्दश्च त्रिफला मधुकं बला ॥ ७११ ॥ शर्करा कटुका मुस्तं गजाह्वा व्याधिघातकः ॥ किराततिक्तममृता दशमूली निदिग्धिका ॥ ॥७१२॥ योगराजो निहन्त्येष सन्निपातं त्रिकोल्वणम् ॥ सन्निपातसमुत्थानं मृत्युमप्यागतं जयेत् ॥ ७१३ ॥

गजाह्वा गजपिप्पली । व्याधिघातकः कृतमालः किराततिक्तं द्वैगुण्यार्थं पृथक् पठितम् ॥

सोंठ, धनिया, भारंगी, पद्माख, लालचन्दन, पटोलपत्र, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलेठी, खिरेटी, मिश्री, कुटकी नागरमोथा, गजपीपल, अमलतास, चिरायता, गिलोय दशमूल और कटेरी, इनका क्वाथ त्रिदोषोल्वण सन्निपातको नष्ट करै है और सन्निपातसे उत्पन्न हुई मृत्युकोभी जीतेहै । इसको योगराज क्वाथ कहते है ॥ ७११-७१३ ॥

प्रवृद्धं कर्शयेद्दोषं क्षीणं संवर्द्धयेद्भिषक् ॥ चिकित्सेयं विधातव्या दोषयोर्वृद्धहीनयोः ॥ ७१४ ॥

अस्यायमर्थः । प्रवृद्धं दोषं कर्शयेत्, तत्क्षैण्यहेतुभिः औषधान्नविहारैः कृशीकृत्य समीकुर्यात् । क्षीणं दोषं संवर्द्धयेत्, तद्वृद्धिहेतुभिरौषधान्नविहारैः वर्द्धयित्वा समीकुर्यादित्यर्थः ॥

प्रवृद्धे शमिते दोषे मध्यमः स्वयमेव हि॥ शान्तिं याति शमं नीतेऽनुबन्ध्ये त्वनुबन्धवत् ॥ ७१५ ॥

अस्य अयमर्थः । वर्षासु वायुरनुबन्ध्यः सेव्यः प्रधानमिति यावत् । पित्तश्लेष्माणौ अनुबन्धौ वायोरनुचरौ । शरदि पित्तमनुबन्ध्यं कफोऽनुबन्धः । वसन्ते कफोऽनुबन्ध्यो वातपित्ते अनुबन्धे । तत्र यथा अनुबन्ध्ये प्रशमं नीतेऽनुबन्धः स्वयमेव शान्तिं याति, तथा प्रवृद्धे दोषे शमिते ह्रासयित्वा समीकृते मध्यमो दोषः हि निश्चयेन स्वयमेव शान्तिं याति प्रकृतो भवतीत्यर्थः ।

अब प्रवृद्ध मध्य और हीन वातादि दोषोंसे उत्पन्न हुए सन्निपातज्वरोंकी चिकित्सा कहतेहै ।

बढेहुए दोषको जिससे दोष क्षीण होय ऐसे आहार विहार और औषधियोंमे समान करै और क्षीणहुए दोषको जिसमे दोषकी वृद्धि हो ऐसे आहार विहार और औषधियोंसे समान करै । जब वृद्धिको प्राप्त हुआ दोष शमन होगया तब मध्यम दोष अपने आपही शमन होजाताहै, जैसे कि, वर्षाऋतुमे वायु प्रधान है और पित्त तथा कफ उसके अनुचर (अप्रधान) हैं, शरद् ऋतुमें पित्त प्रधान है और कफवात उसके अनुचर है, और वसन्त ऋतुमें कफ प्रधान है और वायु तथा पित्त उसके अनुचरहैं, इनमे प्रधानको शांत करनेसे जैसे उसके अनुचर अपनेआपही शांत होजातेहै, इसीप्रकार सन्निपातमे भी वृद्धिको प्राप्तहुए

दोषको क्षीणकरनेसे मध्यम दोष आपही अवश्य शांत होजातेहैं ॥ ७१४ ॥ ७१५ ॥

अथ शीतांगादित्रयोदशसन्निपातक्रमचिकित्सामाह।

तत्र शीतांगचिकित्सा।

भास्वन्मूलं जीरकव्योषभार्ङ्गी व्याघ्री शुण्ठी पुष्करं गोजलेन ॥ सिद्धं सद्यः शीतगात्रार्तिमोहश्वासश्लेष्मोद्रेककासान्निहन्ति ॥ ७१६ ॥

भास्वन्मूलमर्कमूलम् ॥

आककी जड, जीरा, मिर्च, पीपल, भारगी, कटेरी, दुगुनीसोंठ, (यहाँ दुगुनीसोंठ इसलिये कही कि, त्रिकुटेकी सोंठ एक भाग और एक भाग पृथक् जाननी) और पोहकरमूल इनको गोमूत्रमें पकाकर सेवन करनेसे तत्कालही शीतांग सन्निपातकी पीडा, मोह, श्वास, कफकी अधिकता और खाँसी नष्ट होजातीहै ॥ ७१६ ॥

कर्कोटिकाकन्दरजःकुलत्थः कृष्णो वचाकट्फलकृष्णजीरैः ॥ किराततिक्तानलकट्फलाम्बुपथ्याभिरुद्वर्तनमत्रशस्तम् ७१७ कर्कोटिकाकन्दरजः खेखसामूलरजः ॥

शीतांग सन्निपातमें ककोडे (खेखसा) की जडका चूर्ण, कुलथी, पीपल, वच, कायफल, कालाजीरा, चिरायता, चीता, कायफलका पानी और हरड, इनको एकत्र पीसकर शरीरमें मलै तौ शीतांग सन्निपात दूर होजाय ॥७१७॥

रसविषमरिचमहेशप्रियफलभस्मैकभूचतुर्वसुभिः ॥ भागैर्मितमुद्धूलनमिदमतिस्वेदशैत्यहरम् ॥ ७१८ ॥

पारा १ भाग, वत्सनाभविष १ भाग, कालीमिर्च ४ भाग और धत्तूरेके फलकी भस्म ८ भाग लेवै, सबको एकत्र करके देहमें मलै तौ इससे अत्यंत पसीनेका निकलना और शीतका वेग दूर होजाताहै ॥ ७१८ ॥

अथ तन्द्रिकचिकित्सा।

क्षुद्राऽमृतापौष्करनागराणि शृतानि पीतानि शिवायुतानि ॥ शुण्ठीकणागस्तिरसोषणानि नस्येन तन्द्राविजयोल्वणानि ॥ ७१९ ॥ मरिचकचपचम्पचावचारुक्क्रिमिहरनागरशर्वरीगवाक्ष्यः॥छगलकजलकल्किता नितान्तं नसि निहिता ननु तन्द्रिकं जयन्ति ॥ ७२० ॥

कचः बालकः। पचम्पचा दारुहरिद्रा। रुक्कुष्ठम्। कृमिहरः विडंगः। शर्वरी हरिद्रा। गवाक्षी इन्द्रवारुणी। नसि नासिकायाम् ॥

तुरंगलालालवणोत्तमेन्दुमनःशिलामागधिकामधूनि ॥ नियोजितान्यक्षिणि निश्चितं च तन्द्राश्च निद्राश्च निवारयन्ति ॥ ७२१ ॥

लवणोत्तमं सैन्धवम्। इन्दुः कर्पूरः। निद्राम् अतिनिद्राम् ॥

कटेरी, गिलोय, पोहकरमूल, सोंठ और हरड, इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे तन्द्रिक सन्निपात दूर होजाताहै। सोंठ, पीपल, अगस्तियाका रस और मिर्च, इनका नास देनेसे तन्द्राका नाश होजाताहै ॥ ७१९ ॥

मिर्च, सुगंधवाला, दारुहलदी, वच, कूट, वायविडंग, सोंठ, हलदी और इन्द्रायन, इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर नास देनेसे तन्द्रिकसन्निपात दूर होजाताहै। घोडेकी लार, सैंधानिमक, कपूर, मैनशिल, पीपल और सहत इनको एकत्र पीसकर आँखोंमें आँजनेसे तन्द्रा और अत्यंत निद्रा अवश्य नष्ट होजातीहैं ॥ ७२० ॥ ७२१ ॥

अथ प्रलापकचिकित्सा

सतगरवरतिक्तारेवताम्भोदतिक्ता नलदतुरगगन्धाभारतीहारहूराः ॥ मलयजदशमूलीशंखपुष्पीसुपक्वाः प्रलपनमपहन्युः पानतो नातिदूरात् ॥ ७२२ ॥

वरतिक्तोऽत्र पर्पटो न तु महानिम्बः, तन्त्रान्तरानुरोधात्। नलदं लामज्जकं तदलाभादुशीरं ग्राह्यम्। भारती ब्राह्मी बरम्भी इति लोके। हारहूरा द्राक्षा ॥

सान्त्वनैरञ्जनैस्तीक्ष्णैर्नस्यैस्तिमिरसेवनैः॥ सर्वतो विकृतं चित्तमस्य प्रकृतिमानयेत् ॥ ७२३ ॥

तगर, पित्तपापडा, अमलतास, नागरमोथा, कुटकी, लामजक (इसके न मिलनेपर खस लेवै), असगध, ब्राह्मी, दाख, लालचन्दन, दशमूल और शखाहुली (कौटिल्ला), इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे बहुत शीघ्रही प्रलापक सन्निपात नष्ट होजाताहै । प्रलापक सन्निपातवाले रोगीको धीरजसे अजन तथा तीक्ष्ण नाससे और अन्धकारका सेवन कराकर नीरोग करै ॥ ७२२ ॥ ७२३ ॥

रक्तष्ठीविसन्निपातचिकित्सा ।

रोहिषधन्वयवासकवासापर्पटगन्धलताकटुकाभिः॥ शर्करया सममेष कषायः क्षतजष्ठीविन उद्यदुपायः ॥ ७२४ ॥

रोहिषं सुगन्धतृणविशेषः । रोहिस इति लोके । गन्धलता प्रियंगुः ॥

पद्मकचन्दनपर्पटमुस्तं जातीजीवकचन्दनवारि ॥ क्लीतकनिम्बयुतं परिपक्वं वारि भवेदिह शोणितहारि ॥ ७२५ ॥

क्लीतकं यष्टीमधुकम् । इह रक्तष्ठीविनि ॥

मधुकमधूकपरूषकपाथश्चन्दनपल्लवदारुसनाथः॥ श्रीपर्णीफलशीतकषायः ससित इह स्यादस्रजयाय ॥ ७२६ ॥

पाथः वालः । पल्लवं पत्रकम् । सनाथः सप्रधानः । श्रीपर्णी गम्भारी ॥

रोहिषतृण, धमासा, अडूसा, पित्तपापडा, फूलप्रियगु और कुटकी, इनके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पियै तो रक्तष्ठीवी सन्निपात नष्ट होजाताहै ॥ ७२४ ॥

पद्माख, लालचदन, पित्तपापडा, नागरमोथा, चमेली, जीवक, लालचदन, सुगधवाला, मुलेठी और नीम, इनका क्वाथ पीनेसे रक्तष्ठीवी सन्निपातका रुधिर गिरना बद होजाताहै । मुलेठी, महुआ, फालसा, सुगधवाला, लालचदन, तेजपात और देवदारु तथा कुम्भेरके फल, इनका क्वाथ बनाकर अत्यत शीतल करके मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्तष्ठीवीका रुधिर गिरना बन्द होजाताहै ॥ ७२५ ॥ ७२६ ॥

अथ भुग्ननेत्रचिकित्सा ।

तुरंगगन्धालवणोग्रगन्धामधूकसारोपणमागधीभिः ॥ बस्ताम्बुशुण्ठीलशुनान्विताभिर्नस्यं कृशं भुग्नदृशं करोति ॥ ७२७ ॥

असगध, सैंधानिमक, वच, महुएका सार, मिर्च, पीपल, सोंठ और लहसुन इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर नास देनेसे भुग्ननेत्र सन्निपात शात होजाताहै ॥ ७२७ ॥

अथाभिन्यासचिकित्सा ।

शृङ्ग्यादिक्वाथः ।

शृंगीभार्ङ्ग्यभयाजाजीकणाभूनिम्बपपटः ॥ देवदारुवचाकुष्ठयासकट्फलनागरैः ॥ ७२८ ॥ मुस्तधान्याकतिक्तेन्द्रयवपाठाहरेणुभिः ॥ हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ ७२९ ॥ विशालारग्वधोरिष्टशटीवाकुचिकाफलैः ॥ विडंगरजनीदार्वीयवानीद्वयसंयुतैः॥७३०॥ समांशैर्विहितः क्वाथो हिङ्ग्वार्द्रकरसान्वितः ॥ अभिन्यासज्वरं घोरं हन्ति तन्द्राञ्च तत्क्षणात् ॥ ७३१ ॥ प्रमेहं कर्णशूलञ्च सन्निपातांस्त्रयोदश ॥ हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च तथा सर्वानुपद्रवान् ७३२॥

काकडासिंगी, भारगी, हरड, जीरा, पीपल, चिरायता, पित्तपापडा, देवदारु, वच, कूठ, जवासा, कायफल, सोंठ, नागरमोथा, धनिया, कुटकी, इन्द्रजौ, पाढ, रेणुका, गजपीपल, चिरचिटा, पीपलामूल, चीता, इन्द्रायन, अमलतास, नीम, कचूर, बापचीके बीज, वायविडग, हलदी, दारुहलदी, अजवायन और अजमोद, इनका क्वाथ बनाकर उसमें हींग और अदरकका रस मिलाकर पीनेसे तत्काल भयकर अभिन्यास ज्वर, तन्द्रा, प्रमेह, कानकी पीडा, तेरह प्रकारका सन्निपात, हिचकी, श्वास, खाँसी और सर्वप्रकारके उपद्रव दूर होजातेहैं ॥ ७२८–७३२ ॥

अथ जिह्वकचिकित्सा ।

किराततिक्ताकुलकृत्कुलिञ्जकचूरकृष्णाकटुतैलयुक्तः ॥ अम्लद्रवः संशमयेद्रसज्ञादोषान्स्तुतो दाशरथिर्यथात्र ॥ ७३३ ॥

आकुलकृत् अकरकरहा इति लोके । अम्लद्रवः बीजपूरादिरसः ॥

चिरायता, अकरकरा, कुलिजन, कचूर, पीपल और सरसोका तेल, इनको एकत्र पीसकर कवल बनावै और बिजौरे आदिका रस मिलाकर मुखमे धारण करनेसे जिसप्रकार स्तुति करनेसे जन्मजन्मान्तरके दोष दशरथनदन श्रीरामचन्द्रजी दूरकर देते हैं उसीप्रकार जिह्वक सन्निपातके दोषोंको यह किरातादि कवल दूरकर देताहै ॥ ७३३ ॥

अथ शालूरपर्ण्याद्यवलेहः ।

शालूरपर्णी मालूरमूलामयमधुप्लुता ॥ शंखकपुष्पीसहिता सेव्या वाचां विशुद्धये ॥ ७३४ ॥

शालूरपर्णी ब्राह्मी, मालूरमूलं बिल्वमूलम्, आमयः कुष्ठम् ॥

वाणीको शुद्ध करनेके लिये बेलकी जड, कूट, सहत और शंखाहूली, (कौडिल्ला) इनके साथ ब्राह्मीका सेवन करै ॥ ७३४ ॥

अथ क्षुद्रादिविश्वादिकाथौ ।

क्षुद्रानागरपुष्कराऽमृतलताब्राह्मीवचासुव्रताभार्गीवासकयासतोयसुरसाक्काथो जयेज्जिह्वकम् ॥ विश्वावर्मविभावरीयुगवरावत्सादनीवारिद्व्याघ्रीनिम्बपटोलपुष्करजटारुग्दारुभिर्वा कृतः ॥ ७३५ ॥

पुष्करं पुष्करमूलम्,तथा च अमरसिंहः—
"मूले पुष्करकाश्मीरपद्मपत्राणि पौष्करे" । सुव्रता गन्धपलाशी काश्मीरे प्रसिद्धा । सुरसा तुलसी । विश्वादिः योगान्तरम् । वर्म पर्पटः । विभावरीयुगं हरिद्रा दारुहरिद्रा च । वरा त्रिफला । वत्सादनी गुडूची । व्याघ्री कण्टकारिका ॥

कटेरी, सोंठ, पोहकरमूल, गिलोय, ब्राह्मी, वच, गधपलाशी, भारंगी, अडूसा, जवासा सुगधवाला और तुलसी इनका क्वाथ जिह्वक सन्निपातको नष्ट करैहै । अथवा सोंठ पित्तपापडा, हलदी दारुहलदी, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, नागरमोथा, कटेरी, नीम, पटोलपात, पोहकरमूल, वालछड, कूट और देवदारु, इनका क्काथ जिह्वक सन्निपातको नष्ट करैहै ॥ ७३५ ॥

अथ सन्धिकसंनिपातचिकित्सा ।

शटीसुरतरूत्तमास्थविरदारुरास्नाः समाः॥ सनागरसुधान्विताःपिव शतावरीसंयुताः॥ मृदुज्वलनपाचिताः सह पुरेण सन्धिग्रहव्यथापहृतये वृथा शिशिरसेवनं मा कृथाः ॥ ७३६ ॥

उत्तमा त्रिफला । स्थविरदारु विधारा इति लोके । सुधा गुडूची । पुरो गुग्गुलुः ॥

वचाकवचकच्छुरासहचराऽमृताभंगुरासुराह्वघननागराऽतरुणदारुरास्नापुराः ॥ वृषातरुणभीरुभिः सह भवन्ति सन्धिग्रहव्यथोरुजडिमक्कमभ्रमणपक्षघातद्रुहः ॥ ७३७ ॥

कवचः पर्पटकः, कच्छुरा यवासः, भंगुरा अतिविषा, सुराह्वो देवदारुः, अतरुणदारुः वृद्धदारुः, पुरो गुग्गुलुः । वृषा बृहद्दन्ती एरण्डवत्पत्रविटपा, तदलाभे दन्ती च ग्राह्या समानगुणत्वात् । तरुणः एरण्डः । भारुः शतावरी ॥

सुरदारुशटीसुधालतासुवहाशुण्ठ्यमृताः श्रृता जले ॥ सपुराः शमयन्ति सेविताः सततं सन्धिगतं सदागतिम् ॥ ७३८ ॥ मुस्तैरण्डप्राणदावाणदारुच्छिन्नारास्नाभीरुकर्चूरतिक्ताः॥ वासाविश्वापञ्चमूलाऽश्वगन्धा हन्युर्मन्यास्तम्भसन्धिग्रहार्तीः॥७३९

प्राणदा हरीतकी, वाणः नीलपुष्पसहचरः । तिक्ता कटुकी ॥

सन्धिक सन्निपातकी व्यथा (पीडा) दूर करनेके लिये कचूर, देवदारु, हरड, बहेडा, आमला, विधारा, रास्ना, सोंठ, गिलोय और सतावर, इनको समान भाग लेकर मद मद अग्निसे क्काथ बनाकर गूगल डालकर पिये और शीतल पदार्थोंका सेवन त्याग देवै ॥ ७३६–७३९ ॥

चव, पित्तपापडा, जवासा, कटसरैया' गिलोय, अतीस, देवदारु, नागरमोथा, सोंठ, विधारा, रास्ना, गूगल, बृहद्दन्ती, (जो बृहद्दन्ती न मिले तो दन्ती ही लेवे, क्योंकि गुणोमें दोनो समान हैं) और सतावर, इनका क्वाथ सधिक सन्निपातकी पीडा और जांघेकी जडता, ग्लानि, भ्रमण और पक्षाघातको नष्ट करैहै ॥ ७३७ ॥

देवदारु, कचूर, दुगुनी गिलोय, रासना और सोंठ, इनका क्वाथ बनाकर गूगल डालकर सेवन करै तो सधिगत वायु नष्ट होतीहै ॥ ७३८ ॥

नागरमोथा, अण्डकी जड, हरड. काले फूलका पियाबासा, देवदारु, गिलोय, रासना, सतावर, कचूर, कुटकी, अडूसा, सोंठ, पचमूल और असगन्ध, इनका क्वाथ-नाड (गले) की नसोंका जकडना और सधियोंकी पीडाको दूर करैहै ॥ ७३९ ॥

अथान्तकज्वरचिकित्सा ।

इहापहाय व्रतमुष्णवारि ज्वरारि यूषादि गदापहारि॥ज्वरच्छिदं जीवितदञ्च नित्यं मृत्युञ्जयं चेतसि चिन्तयस्व ॥ ७४० ॥

इह अन्तके व्रतं लंघनादिनियमम् ॥

कर्पूरप्रकरावदातवपुषं संयोगमुद्राजुषं शश्वद्भक्तजनेषु भावुकजुषं भालस्फुरच्चक्षुषम् ॥ सम्पूर्णामृतकुम्भसम्भृतकरं शुभ्राक्षमालाधरम्पिगोत्तुंगजटाकलापरुचिरं चन्द्रार्द्धमौलिं स्तुहि ॥ ७४१ ॥ भिषग्भिरिति निर्णीतं सन्निपातेऽन्तकाभिधे ॥ भेषजं जाह्नवीनीरं वैद्यो गोविन्द एव हि ॥ ७४२ ॥

अन्तक नामक सन्निपात ज्वरमे लघन आदि नियमोंको,ज्वरनाशक क्वाथोंको और रोगनाशक यूष आदिको छोडकर ज्वरको हरनेवाले और प्राणोंके रक्षक, मृत्युजय जो सदाशिव हैं उनका निरतर चित्तमें चितवन करना चाहिये।

अब सदाशिवका ध्यान कहतेहैं । मुकुटमे जो अर्द्धचन्द्रको धारण करनेवाले और कर्पूरकी समान उज्ज्वल शरीरवाले हैं, सुन्दर सयोगमुद्राको धारण किये और भक्त जनोपर निरन्तर प्रेम रखनेवाले, कपालमे त्रिनेत्र प्रकाशित, अमृतसे भरे हुए कुम्भको हाथमें लिये, दूसरे हाथमें सुन्दर रुद्राक्षकी मालाको धारण किये और पिंगल तथा ऊँची जटामण्डलसे सुशोभित, ऐसे सदाशिवकी रोगीको स्तुति करनी चाहिये ।

अतकः सन्निपातमे गंगाजल तो औषधि है और श्रीविष्णुभगवान ही वैद्य हैं ऐसा वैद्योंने निश्चय किया है ॥ ७४०-७४२ ॥

अथ रुग्दाहचिकित्सा ।

तत्र षडंगपानीयम् ।

उशीरचन्दनोदीच्यद्राक्षामलकपर्पटैः ॥ शृतं शीतं जलं दद्याद्दाहतृड्ज्वरशान्तये ॥ ७४३ ॥

ससितो निशि पर्युषितः प्रातर्धान्याकतण्डुलक्वाथः ॥ पीतः शमयत्यचिरादन्तर्दाहं ज्वरं पैत्तम् ॥ ७४४ ॥

धान्याकतण्डुलाः कण्डितधान्याकबीजानि ॥

खस, लाल चदन, सुगधवाला, दाख. आमले और पित्तपापडा, इनके द्वारा पकाया हुआ जल शीतल करके, दाह, तृषा और ज्वरकी शान्तिके लिये षडग पानीय देवे। कुटेहुए धनियेके चावलोंको रातको भिगोदेवै. फिर प्रात.-काल मिश्री मिलाकर पिये तो थोडे ही समयमें अन्तर्दाह (भीतरकी जलन) और पित्तज्वर शान्त हो जाता है । यह धान्याक क्वाथ है ॥ ७४३ ॥ ७४४ ॥

अथ पथ्यावलेहः ।

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैर्लिह्याद्दाहविनाशिनीम् ॥ ७४५ ॥

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैः इत्यत्र न समुच्चयः । तेन केवलेन मधुनापि लिह्यात् ॥

दाहको नष्ट करनेके लिये तेलके साथ, वा घीके साथ अथवा सहतके साथ हरडको चाटे यह पथ्यावलेह है ७४५

अथ लेपः ।

प्रशमयति दाहमचिराद्दधियुक्तकन्दुपल्लवैर्लेपः ॥ लेपो हिमकरमलयजनिम्बदलैस्तक्रपिष्टैर्वा ॥ ७४६ ॥

हिमकरः कर्पूरः। तथा च "घनसारश्चन्द्रसंज्ञः" इत्यमरः।

बेरीके पत्तोंको दहीमे पीसकर देहमे लेप करै अथवा कपूर, चन्दन और नीमके पत्ते इनको मट्ठेमें पीसकर शरीरपै लेपकरै तो तत्काल दाह शान्त होजाताहै ॥ ७४६॥

अथ जलधारा।

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रे निहिते च नाभौ ॥ शीताम्बुधारा बहुला पतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं ज्वरश्च ७४७॥

रुग्दाह सन्निपातवाले रोगीको सीधा चित्त सुलाकर उसकी नाभिपै ताँबे अथवा काँसी आदिका गहरा बासन स्थापन करै, फिर उसमें बहुतशीतल जलकी धारा छोडै तौ तत्काल दाह शात होजाताहै ॥ ७४७ ॥

अथावगाहनम्।

शीताम्भसा तु शतशश्च विलोडितेन गव्येन चन्दनयुतेन घृतेन दिग्ध्वा ॥ दाहज्वरी सकमलोत्पलमाल्यधारी क्षिप्रं विशेत्सलिलकोष्ठमनल्पकालम् ॥७४८॥

दाह ज्वरवाले मनुष्यके देहमें सौवार शीतलजलसे धुले हुए गायके घीमे घिसा हुआ चन्दन मिलाकर शरीरपर लेपकरै, फिर कमल और कमोदिनीकी माला पहनाकर बहुत शीघ्र शीतल जलके कुडमे जलाशयमे प्रवेश करावै ॥ ७४८ ॥

अथावगुंठनम्

काञ्जिकार्द्रपटेनावगुण्ठनं दाहनाशनम् ॥ अथ गोतक्रसंस्विन्नशीतलीकृतवाससा ७४९

कपडेको काँजीमें भिजोकर अथवा गायके तक्रमें औटाकर फिर शीतल करके शरीरपर धारण करनेसे दाह नष्ट होजाताहै ॥ ७४९ ॥

अथान्नम्।

दाहवम्यर्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयान्वितम्॥ शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् ७५०॥ लाजसक्तुरूपं तर्पणम ॥

दाह और वमनसे पीडित, दुबला, निराहार रहनेवाला और तृषायुक्त ऐसे मनुष्यको मिश्री और सहत मिलाकर खीलोंके सत्तू भक्षण करावै। यह तर्पण है ॥ ७५० ॥

अथ दाहनाशकान्योपायाः।

वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः ॥ नार्यश्चन्दनदिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्यहरा मताः॥ ७५१ ॥ मुक्तावलीचन्दनशीतलानां सुगन्धपुष्पाम्बरभूषितानाम् ॥ नितम्बिनीनां सुपयोधराणामालिंगनान्याशु हरन्ति दाहम् ॥७५२॥ प्रह्लादश्चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत्पुनः॥ हितश्च भोजयेदन्नं येनाप्नोति सुखं महत् ॥ ७५३ ॥ प्रह्लादं कामकृतहर्षम् ॥

खिलेहुए कमलोंसे सुशोभित वावडी, जिसमे शीतलजलके फुहारे छूटरहे हों ऐसा मनोहर घर और जिनके देहमे चदनादिका लेप होरहा हो ऐसी तरुण स्त्री दाह और दीनताको हरतीहैं ॥ ७५१ ॥

मोतियोंकी मालसे अलकृत और चन्दनादिकसे शीतल की हुई, सुगधित पुष्पोंसे और वस्त्रोंसे विभूषित और पुष्ट पयोधर (कुच) वाली तरुण स्त्रीके आलिगनसे तत्काल दाह नष्ट होजाताहै। स्त्रीको आलिगन करनेसे रोगीके कामदेव उत्पन्न होनेपर तत्काल उस स्त्रीको उससे अलग करलेवै और उस रोगीको हितकारक भोजन करावै जिससे कि—महासुख उत्पन्न हो ॥७५२॥७५३॥

अथ चित्तभ्रमचिकित्सा।

कणोषणोग्रालवणोत्तमानि करञ्जबीजं प्रमदामलानि ॥ पथ्याक्षसिद्धार्थकहिगुशुण्ठीयुतानि बस्ताम्बुविमिश्रितानि ॥ पिष्ट्वा गुटीयं नयने निधेया प्रचेतनेति प्रथितान्वितार्था ॥ चित्तभ्रमाय स्मृतिभूतदोषे शिरोऽक्षिरोगभ्रमनाशहेतुः॥७५४॥ बस्ताम्बु छागमूत्रम् ॥

कुम्भोद्भवतरोरम्भो गुडविश्वकणान्वितम् ॥ निहितं नसि नूनं स्याच्चित्तभ्रमविनाशनम् ॥ ७५५ ॥

कुम्भोद्भवतरोरम्भः अगस्तिवृक्षत्वक्कल्करसः ॥ मुरामूर्द्धजमेघाह्वमधूकमलयोद्भवैः ॥ मरुत्तरुमधूनिमिश्रैः पुरपाणिजपांशुभिः ॥ ७५६ ॥ लोहलामज्जकैलाभिर्धूपश्चित्तभ्रमापहः ॥ ग्रहदोषहरः श्रीदः सौभाग्यकर उत्तमः ॥ ७५७ ॥

मुरा एकांगी । मूर्द्धजा वालाः । मरुत्तरुः देवदारु । पुरः गुग्गुलुः । पाणिजः नखः । पांशु पर्पटकम् । लोहम् अगुरु । लामज्जकम् उशीरवत्पीततृणविशेषम्, तदलाभ उशीरं ग्राह्यम् ॥

मृद्वीकाऽमरदारुमत्स्यशकलामुस्तामलक्योऽमृतापथ्यारेवतरामसेनकरजोराजीफलैः संयुताः ॥ हन्युश्चित्तरुजोऽथ दर्दुरदलापाठापटोलीपयःपथ्यापर्पटराजवृक्षकटुकाशम्बूकपुष्प्यः शृताः ॥ ७५८ ॥

मृद्वीका द्राक्षा । मत्स्यशकला कटुकी । आरेवतः आरग्वधः । रामसेनकः किराततिक्तकः । रजः पर्पटकः । राजीफलः पटोलः । अथ योगान्तरमाह दर्दुरदला मण्डूकपर्णी सा च ब्राह्मी, मञ्जिष्ठा, शोणकश्च । तथापि अत्र ब्राह्मी ग्राह्या । यत उक्तं द्रव्यगुणग्रन्थे "ब्राह्मी मतिप्रदा मेध्या ज्वरहन्त्री रसायनी ।" ब्राह्मी वरम्भीति लोके । पयः वालकम् । राजवृक्षः आरग्वधः । शम्बूकपुष्पी शङ्खपुष्पी ॥

पीपल, मिर्च, वच, सैंधानिमक, करजके बीज, हलदी, आमले, हरड, बहेडा, सरसों, हींग और सोंठ इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर गोली बनाकर नेत्रोंमे ऑजनेसे–यह गोली चेतनाको उत्पन्न करती है, इसकारणे यह प्रचेतना कहीजातीहै । इस गोलीसे चित्तका भ्रम, स्मरणका अभाव, भूतबाधा, शिरकी पीडा, नेत्रकी पीडा और भ्रमका नाश होताहै । गुड, सोंट और पीपल, इनके चूर्णको अगस्तियाके कल्कके रसमे मिलाकर नास देनेसे चित्तभ्रम सन्निपात नष्ट होताहै ।

कपूरकचरी, सुगंधवाला, नागरमोथा, महुआ, चन्दन, देवदारु, मरुत, गूगल और नखद्रव्य इनका चूर्ण तथा अगर, लामज्जक, (न मिलनेपर खस) और इलायची, इन सब द्रव्योंकी धूप बनाकर देवें तो चित्तभ्रम नष्ट होता है, ग्रहदोष दूर होताहै, लक्ष्मीकी प्राप्ति होतीहै और सौभाग्यकी वृद्धि होतीहै, यह उत्तम धूप है ।

दाख, देवदारु, कुटकी, नागरमोथा, आमले, हरड, अमलतास चिरायता, पित्तपापडा और पटोलपात, इनका क्वाथ अथवा ब्राह्मी, पाट, पटोलपत्र, सुगंधवाला, हरड, पित्तपापडा, अमलतास, कुटकी और शंखाहूली, इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे चित्तभ्रम सन्निपात नष्ट होता है ॥ ७५८–७५८ ॥

अथ कर्णकसन्निपातचिकित्सा ।

प्रलेपस्तमस्तं नयत्यन्तमेकः समुद्रिक्तशोथश्च रक्तावशेषः ॥ पक्के च शस्त्रक्रिया पूयजित्सा व्रणत्वं गते चोचिता तच्चिकित्सा ॥ ७५९ ॥

अयमर्थः । अन्तं कर्णिकम्, एकः प्रलेपः, अस्तं नाशं नयति । तच्चिकित्सा व्रणचिकित्सा ॥

निशाविशालाभयमाणिमन्थदार्वीगुदीमूलकृतः प्रलेपः ॥ प्रभाकरक्षीरयुतः प्रभावाद्व्यस्तः समस्तोऽप्यथ कर्णिकाघ्नः ॥ ॥ ५६० ॥ कुलत्थः कट्फलं शुण्ठी कारवी च समांशकैः ॥ सुखोष्णैर्लेपनं कार्यं कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥ ७६१ ॥ गैरिकं कठिनी शुण्ठी कट्फलारग्वधैः समैः ॥ उष्णैः काञ्जिकसम्पिष्टैर्लेपः कर्णकमूलनुत् ७६२ ॥ शिग्रुराजिकयोः कल्कं कर्णमूले प्रलेपयेत् ॥ कर्णमूलभवः शोथस्तेन लेपेन शाम्यति ॥ ७६३ ॥ अशिशिरजलपरिमृदितं मरिचकणाजीरसिन्धुजं त्वरितम् ॥ नस्यविधिसेवितं ननु कर्णकरुमाशक्रुद्रदितम् ॥

भार्ङ्गीजयापौष्करकण्टकारीकटुत्रिकोग्रा-वनकुण्डलीभिः ॥ कुलीरशृंगीकटुकार-साभिः कृतः कषायः किल कर्ण-कघ्नः ॥ ७६४ ॥

भार्ङ्गी भारंगी तदलाभे कण्टकारीमूलं ग्राह्यम्। जया गनिआरी इति लोके। पौष्करं पुष्करमूलम्। उग्रा वचा। कुण्डली गुडूची। कुलीरशृंगी कर्कटशृंगी। रसा रास्ना ॥

दशमूलमत्स्यशकलाचपलात्रिफलामहौष-धकिरातयुतम् ॥ मरिचं परिकथितमाशु बलापहन्ति कर्णरुजः सकलाः ॥७६५॥

चपला पिप्पली ॥

जो कर्णक अल्प हो वा अत्यत सूजनयुक्त होगया हो, अथवा वह नही पका होय तो उसको नीचे लिखे प्रलेपोंसे नष्ट करै और कर्णक पक गया हो तो शस्त्र क्रियासे चिरवा-कर उसकी रादको दूर करै और जो व्रण होजाय तो व्रणकी चिकित्सा करनी चाहिये।

हलदी, इन्द्रायण, कूठ, सैंधानिमक, देवदारु और हिंगोटकी जड इनको आकके दूधमें पीसकर लेप करनेसे कर्णक (कनवर) नष्ट होजाताहै। इन सब औषधियोंका अथवा थोडी औषधियोंका प्रलेप करनेसे भी कर्णक सन्नि-पात नष्ट होजाताहै।

कुलथी, कायफल, सोंठ और कालीजीरी, इन सबको समान भाग लेकर जलमे पीसकर मंदोष्ण करके वारवार कानकी जडमे लेप करै तो कर्णक नष्ट होजाता है।

गेरु, खडिया, सोठ, कायफल और अमलतास,इनको कॉजीमें पीसकर गरम करके लेप करै तो कर्णकी मूलकी सूजन दूर होजाती है।

सैंजना और राई इनको जलमे पीसकर कानकी जडमे लेपकरै तो कानकी जडकी सूजन (कनवर) शान्त होजातीहै।

मिर्च, पीपल, जीरा और सैंधानमक, इनको गरम जलमे पीसकर तत्काल नस्य देवै तो कर्णककी पीडा शात होतीहै।

भारगी, अरणी, पोहकरमूल, कटेरी, सोंठ, मिर्च, पीपल, वच, नागरमोथा, गिलोय, काकडासिंगी, कुटकी और रास्ना, इनका क्काथ बनाकर पिये तो कर्णककी पीडा शमन होजातीहै।

दशमूल, कुटकी, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, चिरायता और मिर्च, इनका क्काथ बनाकर सेवन करै तो बलात्कारसे कर्णककी समस्त पीडा शमन होती है ॥ ७५९-७६५ ॥

अथ कण्ठकुब्जचिकित्सा।

फलत्रिकत्र्यूषणमुस्तकट्वीकलिंगसिंहानन-शर्वरीभिः ॥ क्काथः कृतः कृन्तति कण्ठ-कुब्जं कण्ठीरवः कुञ्जरमाशु तद्वत् ॥७६६॥

सिंहाननो वासकः। शर्वरी हरिद्रा ॥

किरातकटुकाकणाकुटजकण्टकारीशटीक-लिद्रुकिलिमाभयाकटुककट्फलाम्भोधरैः॥ विषामलकपुष्करानलकुलीरशृंगीवृषैर्महौ-षधसखैरयं जयति कण्ठकुब्जं गणः७६७

शटी कर्च्चूरः। कलिद्रुः बिभीतकः ॥ किलिमं देवदारुः। कटुकं मरिचम्। विषा अतिविषा। किरातादिभिः किंविशिष्टैर्महौ-षधसखैः। महौषधस्य सखिभिः। तेन एतैः सहितेन महौषधेनेत्यर्थः ॥ अथ वा उल्वण-वातादिप्रवृद्धमध्यक्षीणवातादिहेतुकानां कु-म्भीपाकादीनां त्रयोदशानामिव चिकित्सा विधातव्या ॥

जिसप्रकार सिंह तत्काल हाथीको मारदेताहै, उसी-प्रकार हरड; बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च पीपल, नागर-मोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, अडूसा और हलदीका क्काथ तत्काल कठकुब्जको नष्ट करताहै।

चिरायता, कुटकी, पीपल, इन्द्रजौ, कटेरी, कचूर, बहेडा, हरड, देवदारु, मिर्च, कायफल, नागरमोथा, अतीस, आमला, पोहकरमूल, चीता, काकडासिंगी, अडूसा और सोठ, इनका क्काथ कठकुब्जको नष्ट करैहै॥ कुम्भीपाक आदि नाम वाले जो तेरह सन्निपात हैं और उनके कारण उल्वणवातादि तथा प्रवृद्ध मध्य और

हीनवातादि ही हैं उनकी चिकित्सा भी इसीप्रकार करनी चाहिये ॥ ७६६ ॥ ७६७ ॥

इति सन्निपातज्वराधिकारः समाप्तः ।

अथागन्तुकज्वराधिकारः ।

तत्रागन्तुकज्वरनिदानम् ।

अभिघाताभिषंगाभ्यामभिचाराभिशा- ॥ पतः ॥ आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥ ७६८ ॥

अभिघातः शस्त्रमुष्टिलगुडादिभिः हननम् । अभिषंगः कामशोकभयक्रोधभूतादीनामावेशः । अभिचारः मृत्स्वाद्युत्पादनम् । अभिशापः ब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धादिकृतःशापः। तम् आगन्तुज्वरम् यथास्वं यथादोषलक्षणं दोषैर्विभावयेद्विजानीयात् ॥

शस्त्र, मुक्का (घूँसा) और लाठी आदिकी चोटका नाम अभिघात है । काम, शोक, भय, क्रोध और भूतादिकोंके आवेश होनेका नाम अभिषग है । किसी शत्रुकी करीहुई कृत्यादिका उत्पन्न करना किसीप्रकारकी अपघात जादूसे मूठ चलानेका नाम अभिचार है । और ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध और सिद्ध आदिके शापका नाम अभिशाप है । इनहीं सब कारणोंसे आगन्तुकज्वर उत्पन्न होताहै, इस ज्वरको उनहीं उन दोषोंके लक्षणोंके अनुसार कुपित हुए वातादिक दोषोंसे समझ लें ॥ ७६८ ॥

अथागन्तुकज्वरान्यनिदानम् ।

ये भूतविषवाय्वग्निक्षतभंगादिसम्भवाः ॥ रागद्वेषभयाद्यैश्च ते स्युरागन्तवो गदाः ७६९

भयाद्यैरिति आद्यशब्देन भूतविषवाय्वग्निक्षतभंगादयः संगृह्यन्ते । तेन रागादयो भंगाद्यन्ता हेतवोऽपि आगन्तुसंज्ञाः स्युः कार्यकारणयोरभेदोपचारादेतेनागन्तुजः स्मृत इत्यत्रापि आगन्तुशब्दो हेतुवाची आगन्तुर्जायते दोषैरित्यत्र व्याधिवाची अभिघाताभिषंगाभ्यामित्यादि श्लोके दोषैर्यथास्वं विभावयेदिति वचनेनैवं प्रतीयते अभिघातादीनां विप्रकृष्टकारणत्वं मिथ्याहारविहाराणामिव दोषाणां सन्निकृष्टकारणत्वं तथा सति दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रेत्यादिश्लोके आगन्तुज्वरस्याष्टमत्वविघातो दोषजेष्वेव प्रवेशात् । उच्यते । आगन्तुज्वरस्य दोषा आरम्भका न किन्तु पश्चादनुबन्धिनः । तथा च आगन्तुज्वरस्य संप्राप्तिमाह चरकः-"आगन्तुर्हि व्यथापूर्वो जायते पश्चान्निजैर्दोषैरनुबध्यते" इति ॥

जो रोग भूत, विष, वायु, अग्नि, क्षत (घाव) और भग (हड्डी आदिका टूटना) इत्यादिसे उत्पन्न होतेहैं, तथा रागद्वेष और भयसे उत्पन्न होतेहैं उनको आगंतु कहतेहैं ॥

कार्य और कारणको अभिन्न मानना तो शास्त्रकारोंकी पद्धति है । इस कारण राग आदि जो आगन्तु रोगोंके कारण हैं वह भी आगन्तुक होजातेहैं, इस प्रकार कहनेसे ज्वर "आगन्तुज" कहाजाताहै इस वचनमें 'आगन्तु' शब्द हेतुवाचक है और दोषोंसे आगन्तु होताहै, इस वचनमें आगन्तु शब्द व्याधिवाचक है ऐसा जानना ।

शंका-'अभिघाताभिषगाभ्याम्' इस श्लोकमें कहा है कि, आगन्तु ज्वरमें उन्हीं उन दोषोंके लक्षण ऊपरसे जानने, तो यह वचन ऊपरसे जानाजाताहै कि, अभिघातादि दूरके कारण हैं और दोष मिथ्या आहार विहारकी समान समीपके कारण हैं । ऐसा माननेपर 'दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्र' इस श्लोकमें आगन्तु ज्वर आठवा नहीं होसक्ता, कारण यह है कि, उस ज्वरका दोषजन्य ज्वरोंमें ही अन्तर्भाव होजाता है ।

समाधान-दोष आगन्तु ज्वरको उत्पन्न नहीं करते, किन्तु आगन्तु ज्वरके उत्पन्न होनेके पश्चात् उसके सहायक होजातेहैं, आगन्तु ज्वरकी सम्प्राप्तिके विषे चरक कहता है कि, आगन्तु ज्वर प्रथम व्यथासे उत्पन्न होताहै और पीछेसे अपने २ दोषोंसे सम्बन्ध पाता है ॥ ७६९ ॥

अथ कस्मादागन्तोः को दोषो भवतीत्याह

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः ॥

भूताभिषंगात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ७७० ॥

कामशोकभयात् कामशोकभयजात् आगन्तोः वायुः कुप्यति। क्रोधात्तु क्रोधजात आगन्तोः पित्तं प्रकुप्यति। भूताभिषंगाद्भूतावेशजात् आगन्तोः त्रयो मला दोषाः कुप्यन्तीत्यर्थः। भूतसामान्यलक्षणाः भूतस्य भूतलक्षणस्य सामान्यं समानता येषां तानि भूतसामान्यानि लक्षणानि येषां ते भूतसामान्यलक्षणाः मलाः ॥

काम, शोक और भयसे उत्पन्न हुए ज्वरमे वायु कुपित होताहै, क्रोधसे उत्पन्न हुए आगतुज्वरमे पित्त कुपित होताहै और भूतके आवेशसे उत्पन्न हुए आगन्तुज्वरमे तीनों दोष भूतकी समान लक्षणोंवाले कुपित होतेहैं ॥ ७७० ॥

अथागन्तुज्वरे हेतुविशेषेण लक्षणविशेषः।

श्यावास्यता विषकृते तथातीसार एव च॥ भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ ७७१ ॥

विषकृते स्थावरजंगमविषभक्षणकृते ज्वरे, मुखे श्यावः शुक्लानुविद्धः कृष्णो वर्णः शाकवर्णो वा। अतीसारः स्थावरविषेणैव तस्य अधोगामित्वात्। तोदः सूचीव्यधनेनेव व्यथा ॥

औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुस्तथा ॥ कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम् ॥ हृदये वेदना चास्य गात्रञ्च परिशुष्यति ॥ ७७२ ॥

कामजे समीहितकान्ताद्यप्राप्तिनिमित्तके ज्वरे। चकाराद्वाग्भटोक्तानि अपि लक्षणानि बोद्धव्यानि ॥

तानि यथा—"कामाद् भ्रमोऽरुचिर्दाहो हीनिद्राधीधृतिक्षयः" इति ॥

मूर्च्छाङ्गमर्दस्तृण्नेत्रचापल्यं कुचवक्त्रयोः॥ स्वेदः स्याद्धृदि दाहश्च स्त्रीणां कामज्वरे भवेत् ॥७७३॥ बालकं शतपत्राणि गन्धसारमुशीरकम् ॥ चोचधान्येयकं मांसीक्वाथः कामज्वरापहः ॥ ७७४ ॥ सन्ध्यायां संस्तरः कार्यः सुगन्धैः कुसुमैर्भृशम्॥ क्रीडनीयं स्वकान्तेन सह रात्रौ तथा स्त्रिया ॥ ७७५॥ भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥

भयात् भयजे ज्वरे प्रलापः शोकाच्च चकारेण प्रलाप एव अनुकृष्यते। कोपाच्च कोपादपि वेपथुर्भवति। ननु वेपथुः वातस्य धर्मः तत् कथं क्रोधजे ज्वरे वेपथुः। यत उक्तम्—क्रोधोत्थितं पित्तमिति। "एकः प्रकुपितो दोष इतरानपि कोपयेत्" इति वचनात्पित्तकोपितवातजन्य एव अत्र वेपथुः। क्रोधाद्वायुरपि भवति। यत उक्तं विदेहेन "क्रोधशोकौ स्मृतौ वातपित्तरक्तप्रकोपणौ"॥

भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् ॥ केचिद्भूताभिषंगोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम् ७७६

भूताभिषंगोत्थो विषमज्वरो भवति, कदाचिद्वेगवान् कदाचिच्छान्तवेग इत्यर्थः ॥

अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ ७७७ ॥

तृष्णाचेति चकारेण हारीतानुवादिवाग्भटोक्तश्च बोद्धव्यम। तद्यथा—

तत्राभिचारिकैर्मन्त्रैर्हूयमानस्य तप्यते ॥ पूर्वं मनस्ततो देहस्ततो विस्फोटतृड्भ्रमैः॥ सदाहमूर्च्छाग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्द्धते ज्वरः ७७८

स्थावर और जगम विषको भक्षण करनेसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मुख काला अथवा सुफेदीलिये काला होताहै, दस्त आतेहैं, भोजनमे अरुचि होतीहै, तृषा अधिक लगतीहै, सुई चुबोने सरीखी पीडा होतीहै और मूर्च्छा (बेहोंसी) होतीहै । इसमे जो दस्त होतेहैं वह केवल स्थावर विषसेही होतेहैं, क्योंकि वह अधोगामी है ऐसा जानना ॥

औषधिकी गधसे उत्पन्न हुए ज्वरमे मूर्च्छा, शिरमें पीडा और वमन होतीहै ॥

कामसे उत्पन्न हुए ज्वरमें चित्तविभ्रम अर्थात् मनमे व्याकुलता, तन्द्रा, आलस्य, भोजनका न करना छातीमे वेदना और गात्रमे शोष होताहै । अत्यन्त प्रिय इच्छित स्त्री आदि पदार्थोंके न मिलनेसे जो ज्वर उत्पन्न होताहै उसको कामज्वर कहतेहैं, चकारसे वाग्भटोक्त भी लक्षण जानने जैसे कि, कामसे भ्रम, अरुचि, दाह, लज्जाका नाश, निद्राका नाश, बुद्धिका नाश और वीरजका क्षय होताहै । स्त्रियोंके जो कामज्वर उत्पन्न होय तो मूर्च्छा, शरीरका टूटना, तृषा, नेत्रोंमें चपलता, स्तनोंमें चचलता, मुखमे चचलता, अधिक पसीनोका आना और हृदयमें दाह होताहै ॥

सुगन्धवाला, कमल, चन्दन, खस, दालचीनी, धनियाँ और वालछड इनका क्वाथ कामज्वरको नष्ट करैहै । जिस स्त्रीके कामज्वर हो वह स्त्री सन्ध्याके समय अत्यन्त सुगंधित पुष्पोंकी शय्यापर शयन करै और रात्रिको अपने प्राणप्यारेके साथ क्रीडा करै ऐसा किसी ग्रन्थमे कहाहै ।

भय अथवा शोकसे उत्पन्नहुए ज्वरमे प्रलाप होताहै और कोपसे उत्पन्न हुए ज्वरमें कम्प होताहै ।

शका—कम्प तो वायुका धर्म है फिर कोपसे उत्पन्न हुए ज्वरमे कम्प कैसे होताहै यह बडा सन्देह है ? ॥

समाधान—कोपको प्राप्त हुआ एक दोष अन्य दोषोंको भी कुपित करताहै इस वचनके अनुसार कोपज्वरमें पित्तसे प्रकोपको प्राप्त हुई वायुसे भी कप होताहै, कोपसे वायु भी होतीहै क्योंकि विदेह कहताहै कि "क्रोध और शोक यह वात पित्त और रुधिरको कुपित करनेवाले कहेजातेहैं"

भूतके आवेशसे उत्पन्न हुए ज्वरमें उद्वेग, हँसना, रोना और कम्प होताहै और कितनेक वैद्य कहतेहैं कि—भूतके आवेशसे विषमज्वर होताहै, अर्थात् कभी अत्यत वेगसे और कभी थोडेही वेगसे चढताहै ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुए ज्वरमे मोह और तृषा उत्पन्न होतीहै । चकारसे हारीतसहिता और वाग्भटोक्त लक्षणभी जानने, वाग्भट कहतेहैं कि—अभिचार सबधी मन्त्रोसे हवनादिक कियाजाय तो उससे प्रथम सन्तापित होताहै, पश्चात् विस्फोटक, तृषा और भ्रमसे देह सन्तापित होताहै तथा दाहयुक्त मूर्च्छासे व्याकुल हुए उस रोगीके दिन प्रति दिन ज्वर बढता है ॥ ७७१–७७८॥

अथागंतुज्वरचिकित्सा ।

आगन्तुजे ज्वरे नैव नरः कुर्वीत लंघनम् ॥ ७७९ ॥

तथा च वाग्भटः ।

शुद्धवातक्षयागन्तुजीर्णज्वरिषु लंघनम् ॥ नेष्यत इति शेषः ॥

लंघनं न हितं कामशोकचिन्ताप्रहारजे ॥ भयभूतश्रमक्रोधलंघनैश्च कृते ज्वरे ॥ ॥७८०॥ किन्त्वग्नौ दीपिते तत्र दद्यान्मांसरसौदनम् ॥ अभिघातज्वरे युंज्यात्क्रियामुष्णविवर्जिताम् ॥ ७८१ ॥ कषायं मधुरं स्निग्धं यथादोषमथापि च ॥ अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यंगेन सर्पिषः ॥ रक्तावसेकैर्मेध्यैश्च तथा मांसरसौदनैः ॥ ७८२ ॥ मेध्यैर्मेधायै हितैः ॥

व्यधबन्धश्रमात्यध्वभंगभ्रंशसमुद्भवान् ॥ ज्वरानुपाचरेत्पूर्वं क्षीरमांसरसौदनैः ७८३॥

व्यधः ताडनं कर्णादिवेधो वा । भंगः छेदभेदादिकः । भ्रंशो वृक्षादितः पतनम् । अध्वश्रान्तेषु वाऽभ्यंगं दिवा निद्राञ्च कारयेत् ॥ औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रबोधनैः ॥ जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ ७८४ ॥ चातुर्जातककर्पूरं कंकोलागुरुकुंकुमम् ॥ लवंगसहितञ्चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥

॥ ७८५ ॥ क्रोधजे पित्तजित्कार्यं धार्यं सद्वाक्यमेव च ॥ आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥ ७८६ ॥ हर्षणैश्च शमं यान्ति कामक्रोधभयज्वराः॥७८७॥ कामैरथ मनोज्ञैश्च पित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः ॥ सद्वाक्यैश्च शमं याति ज्वरः क्रोधसमुत्थितः ॥ ७८८ ॥

कामैः कामविषयैः मनोज्ञैः धिक्कारादिभिर्भयजनकवचनैर्वा ॥

कामात्क्रोधज्वरो नश्येत्क्रोधात्कामज्वरस्तथा ॥ घातिताभ्यामुभाभ्याञ्च कामक्रोधज्वरक्षयः ॥ ७८९ ॥

घातिताभ्यामुभाभ्यां मनसि निगृहीताभ्यां कामक्रोधाभ्याम् ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः ॥ जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःशान्त्यै च मानसम् ॥ ७९० ॥

ताडनैरित्यस्य स्थाने केचित्पूजनैरिति पठन्ति ॥

सहदेवाया मूलं विधिना कण्ठे निबद्धमपहरति ॥ एकद्वित्रिचतुर्भिर्दिवसैर्भूतज्वरं पुंसाम् ॥ ७९१ ॥ अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् ॥ दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहदुष्टिजौ ॥ ७९२ ॥

आगंतु ज्वरमे रोगीको लंघन नहीं कराने चाहिये। वाग्भट भी कहताहै कि शुद्ध वातज्वर, क्षयज्वर, आगन्तुज्वर और जीर्णज्वर, इनमें लघन नहीं कराने चाहिये। अन्य वैद्य भी कहते हैं कि–कामसे, शोकसे, चितासे, प्रहार (चोट) से, भयसे, भूतावेशसे, श्रमसे, क्रोधसे और लघन (उपवास) से उत्पन्न हुए ज्वरमें लंघन कराना उत्तम नहीं है। ऐसे ज्वरोंमें अग्निको दीपन करके मासरसयुक्त भात भोजन करनेके लिये देवै। अभिघातसे उत्पन्न हुए ज्वरमें उष्णतारहित क्रिया करै और कषाय, मधुर तथा स्निग्ध वस्तुओका प्रयोग करावे तथा दोषानुसार क्रिया करै। घृतको पीनेसे, घीकी मालिस करनेसे, रुधिरको निकलवानेसे और बुद्धिको हितकारी, ऐसे मासरसयुक्त भातको भक्षण करनेसे अभिघातज्वरका नाश होताहै। मारनेसे बॉधनेसे, अत्यत परिश्रम करनेसे, बहुत मार्गके चलनेसे, छेदन भेदनादिसे और वृक्षादिकसे गिरनेसे उत्पन्न हुए ज्वर मे प्रथम मासरस (सोरुआ) और दूध पीना चाहिये। अत्यत मार्गके चलनेसे जिसके ज्वर उत्पन्न हुआ हो उसके तेलकी मालिस करै और उसको दिनमे सुलावै।

औषधिकी गधसे और विषसे उत्पन्न हुए ज्वरमें बुद्धिमान् वैद्य विष और पित्तको नष्ट करनेवाले सर्वगधके क्वाथको पिलावै।

तज, तेजपात, बडी इलायची, नागकेशर, कपूर, शीतलचीनी, अगर, केसर और लौंग, इन सबके समुदायको सर्वगंध कहते हैं।

क्रोधसे उत्पन्न हुए ज्वरमे पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये और महात्माओंके वचनोंको अगीकार करै। कामसे क्रोधसे, अथवा भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर धीरज बँधानेसे, इष्ट वस्तुके मिलनेसे, वायुको शमन करनेसे और आनन्दको उत्पन्न करनेवाली वार्ताओंके करनेसे शात होताहै। क्रोधसे उत्पन्न हुआ ज्वर–इष्टविषयोंसे, धिक्कार आदिसे, भयको उत्पन्न करनेवाले वचनोंके कहनेसे और पित्तनाशक उपचारोंसे शात होताहै क्रोधसे उत्पन्न हुआ ज्वर उत्तम वचनोंसे भी शात होताहै।

कामसे क्रोधज्वरका नाश होताहै और क्रोधसे कामज्वरका नाश होताहै, काम और क्रोध दोनोंको मनमें रोकनेसे कामज्वर और क्रोधज्वर दोनोंका नाश होता है।

भूतबाधासे उत्पन्न हुए ज्वरको भूतविद्यामें कहे अनुसार बधन, आवेश और ताडनादिसे जीतै। 'ताडनैः' इस पदके बदले कोई 'पूजनैः' ऐसा पाठ कहते हैं, अर्थात् पूजनादिसे भूतज्वरको नष्ट करै। मानसिक ज्वरको मनके शान्त करनेसे जीतै।

विधिपूर्वक सहदेईकी जडको कंठमे बॉधनेसे एक, दो, तीन, अथवा चार दिनमे भूतज्वर नष्ट होजाताहै।

अभिचारसे और अभिशापसे उत्पन्न हुए ज्वरको होमआदि क्रियाओंसे जीतै और उत्पातसे तथा ग्रहोंके दोषसे उत्पन्न हुए ज्वरको दानसे, स्वस्तिवाचनसे और अतिथिपूजनसे जीतै॥ ७७९–७९२ ॥

इति आगंतुज्वराधिकारः।

अथ विषमज्वराधिकारः ।

तत्र विषमज्वरस्य निदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह ।

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ॥ धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ ७९३ ॥

अयमर्थः । ज्वरोत्सृष्टस्य ज्वरेण त्यक्तस्य । सन्निकृष्टहेतुमाह । दोषः अल्पः ज्वरमुक्तः स्वल्पोऽपि । विप्रकृष्टहेतुमाह । अहितम् आहारविहारादि तेन सम्भूतः सम्पूर्णो जातः अन्यतमं धातुं रसरक्तादिकम् प्राप्य दूषयित्वा पुनर्विषमज्वरं करोति। ज्वरोत्सृष्टस्य वेति वाशब्देन इति बोध्यते, प्रथमतो विषमज्वरो भवति । यत उक्तम्–"आरम्भाद्विषमो यस्तु" इति ॥

ज्वरमुक्त मनुष्यके अवशेष रहे अल्पदोष भी अहितकारक आहार विहारादिके सेवन करनेसे सम्पूर्ण होकर रस तथा रक्तादि किसी धातुको दूषित करके पश्चात् विषमज्वरको उत्पन्न करे हैं स्वल्प दोष विषमज्वरके समीपके कारण है और अहितकारक आहारविहारादि दूरके कारण हैं ऐसा समझना । मूल श्लोकमें 'वा' शब्द जो है उससे ऐसा जानना । कि–आरम्भसे ही विषमज्वर होताहै अर्थात् किसी अन्यज्वरके विना ही उत्पन्न हुए प्रथमहीसे विषमज्वर होता है । कहा भी है कि–"आरम्भसे ही जो विषमज्वर उत्पन्न होताहै वह मनुष्यको मारदेताहै" ॥ ७९३ ॥

अथ दोषः कं धातुं दूषयित्वा विषमज्वरं करोतीत्यपेक्षायामाह ।

सन्ततं रसधातुस्थः सततं रक्तधातुगः ॥ दोषः क्रुद्धो ज्वरं पुंसां सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः ॥ ७९४ ॥ मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि अस्थिमज्जागतः पुनः ॥ कुर्याच्चातुर्थिकं घोरमन्तकं रोगसंकरम् ॥ ७९५ ॥ अन्तकमिव मारकत्वात् ॥

जब कुपित हुए दोष मनुष्योंके रसधातुमें प्राप्त होते हैं तब सततज्वरको उत्पन्न करे हैं, जब रुधिरमें स्थित होते हैं तब सततज्वरको उत्पन्न करे हैं, जब मांसमें स्थित होते हैं तब अन्येद्युष्कज्वरको उत्पन्न करे हैं और जब मेदमें स्थित होते हैं तब तृतीयकज्वरको उत्पन्न करे है और जब अस्थि (हड्डी) तथा मज्जामें प्राप्त होते हैं तब घोर, कालकी समान प्राणनाशक, रोगोंके समूहरूप ऐसे चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ७९४ ॥ ७९५ ॥

अथ विषमज्वर सामान्यलक्षणम् ।

यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च ॥ वेगतश्चापि विषमो ज्वरः स विषमः स्मृतः ॥ ७९६ ॥

यस्त्वनियतात्कालात्स्यादित्यस्य अयमर्थः। यथा वातिको ज्वरः सप्तदिनानि पैत्तिको दशदिनानि श्लैष्मिको द्वादशदिनानि । दोषाणां प्राबल्यैर्वातिकश्चतुर्दशदिनानि पैत्तिको विंशति दिनानि श्लैष्मिकश्चतुर्विंशतिदिनानि स्यात् ।तथा विषमज्वरो नियतं कालं व्याप्य न स्यादित्यर्थः शीतोष्णाभ्यां गुणाभ्यां स्यात् । वेगतश्चापि विषमः कदाचिदतिवेगवान् । कदाचिच्छान्तवेगः ॥

जो ज्वर अनियमित काल (विनासमय) में उत्पन्न होताहो, जो शीत लगकर या उष्णतासे चढे और जिसका वेग भी विषम होय उसको विषमज्वर कहते हैं ।

जिसप्रकार वातज्वर सातदिनतक, पित्तज्वर दशदिनतक, कफज्वर बारह दिनतक और जो दोषोंकी प्रबलता होय तो वातज्वर चौदह दिनतक, पित्तज्वर वीसदिनतक और कफ ज्वर चौवीस दिनतक नियमित कालमे रहताहै उसप्रकार विषमज्वर नियमित कालसे नही रहताहै । और इस ज्वरमें सरदी और गरमी भी अनियमित होती है, इस ज्वरका वेग भी

विषम होताहै, अर्थात् किसी समय अत्यंत तेज और कभी शांत होताहै ॥ ७९६ ॥

अथ विषमज्वरभेदाः ।

सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ७९७

विषमज्वरके सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक, ये पाँच भेद हैं ॥ ७९७ ॥

अथ सन्ततज्वरलक्षणम् ।

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा॥ सन्तत्या योऽविसर्गी स्यात्सन्ततः स निगद्यते ॥ ७९८ ॥

विकल्पो वातिकादिभेदात् सन्तत्या नैरन्तर्येण अविसर्गी अपरित्यागी । ननु मुक्तानुबन्धित्वं विषमत्वमिति विषमलक्षणम्, तदत्र न घटत इति कथमयं विषमेषु पठ्यते। घटत एवेति न दोषः । यत उक्तं चरकेण— विसर्गं द्वादशे कृत्वा दिवसे व्यक्तलक्षणम् ॥ दुर्लभोपशमः कालं दीर्घमेवानुवर्तते ॥ ७९९ ॥

यत्तु खरनादेनोक्तम् ॥

ज्वराः पञ्च तु ये प्रोक्ताः पूर्वं सन्ततकादयः ॥ चत्वारः सन्ततं हित्वा ज्ञेयास्ते विषमज्वराः ॥ ८०० ॥

तच्चिरेण त्यागाभिप्रायेण ॥

जो ज्वर सातदिनतक, दशदिनतक, अथवा बारहदिनतक निरंतर एकसा चढा रहै, छूटै नहीं, उसको संततज्वर कहतेहैं ॥ यहाँ सात, दश और बारह दिनका जो विकल्प किया है वह वात पित्त और कफके भेदसे जानना ।

शंका—उतरकर फिर चढ आवै यह विषमज्वरका लक्षण है सो इस सन्ततज्वरमे नहीं घटसक्ता, अत एव फिर संततज्वरको विषमज्वरोंसे कैसे मानते हो ?

समाधान—विषमज्वरके लक्षण सततज्वरमें घटते ही है इसकारण कोई दोष नही, क्योंकि चरक कहतेहैं कि— बारहवे दिन उत्तमरीतिसे मुक्त होकर पश्चात् बहुत समयतक स्थित रहताहै और शात होना बहुत दुर्लभ होजाता है । "प्रथम संतत आदि जो पाँच ज्वर कहेहैं उनमेसे सततको छोडकर बाकीके चार विषमज्वर जानने" ऐसा खरनादका मत है । सततज्वर बहुत दिनोंमे मुक्त होताहै इसकारण इस अभिप्रायसे ये संततज्वर छोडदिया है ॥ ७९८–८०० ॥

अथ सततज्वरलक्षणम् ।

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते ॥ ८०१ ॥

द्वौ कालौ अहनि एककालं रात्रौ एककालम् । यतो दोषाणामहोरात्रे प्रत्येकं द्वौद्वौ प्रकोपकालौ । यत उक्तं वाग्भटेन वयोऽहोरात्रिभुक्तानामन्तमध्यादिगाः क्रमात् ॥

जो ज्वर एक अहोरात्र (दिनरात) मे दो वार आवे, उसको सततज्वर कहतेहैं, । यह ज्वर दोवार आताहै, अर्थात् एक वार दिनमें और एक वार रात्रिमे आताहै, कारण यह कि—एक अहोरात्रमें प्रत्येक दोपके कुपित होनेका समय होताहै । वाग्भट इस श्लोकमे कहतेहैं कि, दिनके अतमें वायु, मध्यमे पित्त और आदिमें कफ प्रबल होताहै, उसीप्रकार रात्रिके अतमे वायु, मध्यमें पित्त और आदिमें कफ प्रबल होताहै ॥ ८०१ ॥

अथान्येद्युष्कज्वरलक्षणम् ।

अन्येद्युर्यस्त्वहोरात्रादेककालं प्रवर्तते ८०२॥

एककालं दोषापेक्षया एककालमपि द्वितीयं, प्रथमकाले हृद्येव दोषस्थितेः ॥

जो ज्वर अहोरात्रमे एकवार आवे उसको अन्येद्युष्क (इकतरा) कहतेहैं । यह ज्वर दोषोंकी अपेक्षासे दिनरातमें एक वार आताहै, किन्तु वह अपने बढनेके पहिले समयको त्याग करके अन्यसमयमें आताहै ऐसा जानना कारण-यह है कि—पहिले समयमे दोपकी स्थिति हृदयमें रहतीहै ॥ ८०२ ॥

अथ तृतीयज्वरचातुर्थिकज्वरलक्षणम् ।

तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः ॥ ८०३ ॥

तृतीयेऽह्नि इत्यागमनादिनं गृहीत्वा । यत उक्तम्—

दिनमेकमतिक्रम्य यो भवेत्स तृतीयकः ॥ दिनद्वयं त्वतिक्रम्य यः स्यात्स हि चतुर्थकः ॥ ८०४ ॥

जो ज्वर तीसरे दिन आताहै उसको तृतीयक (तिजारी) और जो चौथे दिन आताहै उसको चातुर्थिक (चौथिया) कहतेहैं । तीसरे दिन और चौथे दिन आनेवाले ज्वरोंमें जिस दिन ज्वर आता हो उस दिनको भी लगालेना चाहिये, क्योंकि, बीचमें एक दिनको छोड कर जो ज्वर आताहै उसीको तृतीयक कहते हैं और बीचमे दो दिनको छोडकर जो ज्वर आताहै उसको चातुर्थिक कहते हैं ॥ ८०३ ॥ ८०४ ॥

अथ सुश्रुतप्रमाणम् ।

कफस्थानविभागेन यथासंख्यं करोति हि ॥ सततान्येद्युस्तृतीयचतुर्थकप्रलेपकान् ॥ ८०५ ॥ अहोरात्रादहोरात्रात्स्थानात्स्थानं प्रपद्यते ॥ दोष आमाशयं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ ८०६ ॥

अयमर्थः । आमाशयोरःकण्ठशिरःसन्धयः पञ्च कफस्थानानि एषु तिष्ठन्दोषो यथासंख्यं सततादीन्करोति तत्र आमाशये स्थितो दोषः सततं करोति द्वौ कालौ । अहोरात्रे कालद्वये दोषप्रकोपात् । हृदये स्थितो दोष आमाशयमागत्य अन्येद्युष्कं करोति एककालं नैकदा एकस्मिन्नेव अहोरात्रे दोष आमाशयमागत्य अन्येद्युष्कं करोति । तत्र द्वौ दोषप्रकोपकालौ एकस्मिन्काले हृदये तिष्ठति अपरस्मिन् आमाशय इति । कण्ठे स्थितो दोषोऽहोरात्राद्धृदयमायाति । तृतीये दिने आमाशयमागत्य स्वप्रकोपकाले तृतीयकं ज्वरं करोति एककालं न तु द्वौ कालौ स्वभावात् । एवमेव शिरःस्थितो दोषः अहोरात्रात्कण्ठमायाति । ततः पुनः अहोरात्राद्धृदयमायाति । चतुर्थे दिने आमाशयमागत्य स्वप्रकोपकाले चातुर्थिकं ज्वरं करोति एककालं न तु द्वौ कालौ स्वभावादेव। ननु दोषस्यागमनं क्रमेण निजस्थानगमनक्रमात्कथं तृतीयचतुर्थदिवसयोर्ज्वरागमनम् ? उच्यते, दोषो हि प्रकोपसमये वेगं परित्यज्य लाघवात्स्वस्थानन्तु वेगदिन एव याति। यत आह-दोषः प्रकोपकाले हि वेगवत्त्वेन लाघवात् । वेगवासर एवायं स्वस्थानमाविगच्छति । सन्धिषु स्थितः प्रलेपकं करोति । सन्धयश्चामाशयेऽपि सन्ति तेषु स्थितः प्रलेपकं सर्वदा करोति ॥

निवृत्तः पुनरायाति विषमो नियते दिने॥ स्वभावं कारणं तत्र मन्यन्ते मुनिपुंगवाः ॥ ८०७ ॥

इस विषयमें सुश्रुत कहतेहैं कि—कफके स्थान विभागके अनुसार दोष अनुक्रमसे सतत, अन्येद्युष्क, तृतीय, चातुर्थिक और प्रलेपक ज्वरको उत्पन्न करैहै । जैसे कि, दोष एकएक दिनरातमें एक स्थानसे दूसरे स्थानमें प्राप्त होताहै तो अपने अनुक्रमसे आमाशयमें जाकर विषमज्वरको उत्पन्न करैहै यह सुश्रुतका प्रमाण नीचेके अनुसार जानना । आमाशय, हृदय, कंठ, मस्तक और संधि (जोड) ये पाँच कफके स्थान हैं, इनमें स्थित दोष अनुक्रमसे सतत आदि पॉच ज्वरोंको उत्पन्न करैहै ।

इनमें आमाशयमे रहनेवाला दोष दो वार आनेवाले सततज्वरको उत्पन्न करैहै क्योंकि एक दिनरातमें दो वार उस दोषका कोप होताहै । हृदयमें रहनेवाला आमाशयमे प्राप्त होकर दिनरातमें एक वार आनेवाले अन्येद्युष्कज्वरको उत्पन्न करैहै । यद्यपि एक अहोरात्रमें दोषके प्रकोपका समय दो वार है तथापि एक समयमे दोष हृदयमें रहतेहैं उसमें ज्वरको उत्पन्न नहीं करसक्ते, क्योंकि दूसरे समयमे आमाशयमे ज्वरको उत्पन्न करैहै (दोषकी स्थिति आमाशयमे होनेसे ज्वर होताहै) ॥

कंठमें स्थित दोष एक दिनरातमें हृदयमें जातेहैं और हृदयमेसे दूसरे दिनरातमे आमाशयमें जातेहैं और वहाँ जाकर अपने कोपके समयमे एक समयमें ही तृतीय ज्वरको उत्पन्न करतेहैं, (यद्यपि यह दोष आमाशयमे एक दिनराततक रहतेहैं तो भी वे

दिनरातके दो समयोंमें ज्वरको उत्पन्न नहीं करसक्ते एकही समयमें ज्वरको उत्पन्न करतेहैं ऐसा उनका स्वभाव है) ॥

इसीप्रकार मस्तकमे रहनेवाले दोप एक दिन रातमे कण्ठमें आतेहैं और दूसरे अहोरात्रमें हृदयमे आतेहैं, तथा तीसरे अहोरात्रमें आमाशयमें आतेहैं और यहा आकर अपने प्रकोपके समय एकही कालमे चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करैहैं (यद्यपि दोष आमाशयमे एक अहोरात्र पर्यन्त रहतेहैं तथापि वह अहोरात्रके दो समयमे ज्वरको उत्पन्न नहीं करते एकही समयमे उत्पन्न करैहैं ऐसा उनका स्वभाव है) ।

शंका—दोपोको उन उन स्थानोमेंसे आमाशयमे आते समय जितना विलम्ब होताहै, उतना ही विलम्ब उन स्थानोंमे पीछे जानेमें होना चाहिये तो इस रीतिसे तीसरे और चौथे दिन ज्वरकी समाप्ति होनी कैसे सम्भव होसक्ती है ?

समाधान—दोषप्रकोपके समयमे अत्यन्त वेगवान् होनेसे पश्चात् उसी वेगके दिन झटपट अपने स्थानमे चले जाते हैं, कहाहै कि—"दोष अपने प्रकोपके समयमें वेगवान् होनेसे वेगके ही दिन वह बहुत शीघ्रतासे पीछे अपने स्थानमें पहुँच जातेहैं" ।

सधियोमें रहनेवाले दोप प्रलेपक नामवाले ज्वरको उत्पन्न करैहैं, सधिये आमाशयमें जो हैं इसकारण उनमे स्थित दोप प्रलेपक ज्वरको सर्वदा करतेहैं ॥

निवृत्तिको प्राप्त हुआ विषमज्वर पश्चात् नियमित दिनसे आताहै, उसमे उन दोषोका स्वभाव ही कारणरूप है ऐसा महात्मा मुनिजनोने माना है ॥ ८०५–८०७ ॥

अथ स्वभावस्य कारणत्वे कफस्थानविभागनिरपेक्षत्वाच्चतुर्थकविपर्ययादिज्वरा अपि स्वस्वकाले प्रभवन्तीत्याह।

अधिशेते यथा भूमिं बीजं काले प्ररोहति ॥ अधिशेते तथा धातून्दोषः काले प्रकुप्यति ॥ ८०८ ॥ स चापि विषमो देहं न कदाचित्प्रमुंचति ॥ ग्लानिगौरवकार्श्येभ्यः स यस्मान्न प्रमुच्यते ॥ ८०९ ॥ वेगे तु समतिक्रान्ते गतोऽयमिति लक्ष्यते ॥ धात्वन्तरेषु लीनत्वात्सौक्ष्म्यान्नैवोपलभ्यते ॥ ८१० ॥

दोपोका स्वभाव ही कारण रूप होनेसे ऊपर कहे हुए कफके स्थानोके विभागकी अपेक्षा रक्खे विना भी चातुर्थिक विपर्यय आदि अन्य विषमज्वर अपने अपने समयमे प्रकट होतेहैं। जिस प्रकार बीज पृथिवीमे पडे रहतेहैं और फिर अपने नियत समयके आनेपर उत्पन्न होतेहैं, उसी प्रकार दोष धातुओमें रहतेहैं और अपने ठीक समयके आनेपर कुपित होतेहै ॥ सुश्रुत भी कहतेहैं कि—यह विषम ज्वर कभी भी शरीरसे मुक्त नही होता, कारण यह है कि—विषम ज्वरवाला मनुष्य ग्लानिसे, भारीपनसे और दुर्बलतासे मुक्त नहीं होता, वेग शात होनेके पश्चात् ज्वर जाता रहा ऐसा जानपडताहै, परन्तु जाता नही है, अन्य धातुओंमें गुप्त रीतिसे स्थित होजाताहै और अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे प्रत्यक्ष नही दिखाई देता है ॥ ८०८–८१० ॥

अथ द्विदोषोल्बणतृतीयज्वरलक्षणम्।

कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः ॥ वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ८११ ॥

त्रिकग्राही वेदनया त्रिकं गृह्णातीत्यर्थः। वातकफात्मकः पृष्ठाद्व्यथया पृष्ठं व्याप्य भवति इत्यर्थः "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" इति सूत्रेण पंचमी ॥

कफ और पित्तकी उल्वणतावाला तृतीयक ज्वर प्रथम त्रिक स्थानसे उत्पन्न होकर सर्व शरीरमे व्याप्त होजाताहै वातकफोल्वणतावाला तृतीयकज्वर प्रथम पीठमे उत्पन्न होकर फिर सम्पूर्ण शरीरमे व्याप्त होजाताहै। और वात पित्तोल्वण तृतीयकज्वर प्रथम शिरसे उत्पन्न होकर पश्चात् सम्पूर्ण देहमे विस्तृत होजाताहै, इस प्रकार यह तृतीयकज्वर तीन प्रकारका है ॥ ८११ ॥

अथ कफोल्वणादिचातुर्थिकज्वरलक्षणम्।

चतुर्थको दर्शयति स्वभावं द्विविधं ज्वरः ॥

जंघाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरसोऽनिलसम्भवः ॥ ८१२ ॥ मध्यकायन्तु गृह्णाति पूर्वं यस्तु स पित्तजः ॥ विषमज्वर एवान्यश्चतुर्थकविपर्ययः ॥ ८१३ ॥

श्लैष्मिकः श्लेष्मोल्वणः । तथा अनिलसम्भवो वातोल्वणः । सन्ततादीनां त्रिदोषजत्वम् । यत उक्तं चरके–'प्रायशः सान्निपातेन पंच स्युर्विषमज्वराः' ।

प्रायशोग्रहणादेकदोषजा द्विदोषजा अपि भवन्तीति जैयटः । पूर्वं प्रथमं जंघाभ्याम् व्यथया जंघे व्याप्य पश्चात् सकलं शरीरं व्याप्नोति । एवमुल्वणवातजातः शिरसः पूर्वं व्यथया शिरो व्याप्य सकलं शरीरं व्याप्नोतीत्यर्थः ॥

चातुर्थिकज्वर तीन प्रकारका अपना स्वभाव दिखाता है। कफोल्वण चातुर्थिकज्वर प्रथम जंघाओंकी पिण्डलियोंमें पीडा करके पश्चात् सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होजाताहै ॥

वातोल्वण चातुर्थिकज्वर प्रथम मस्तकमें व्याप्त होकर पश्चात् सर्व शरीरमें फैल जाताहै और पित्तोल्वण चातुर्थिकज्वर प्रथम शरीरके मध्यभागमें पीडासे व्याप्त होकर सर्व देहमें फैलजाता है ॥

"चरकमें कहा है कि–"यह पाचों प्रकारके विषमज्वर विशेष करके सन्निपातसे उत्पन्न होतेहैं' यह उपरोक्त सन्तत आदि ज्वर त्रिदोषसे उत्पन्न होते हैं ऐसा जानना। इस विषयमें जैयट कहताहै कि, चरकमें 'विशेष करके' ऐसा जो कहा है उससे यह जानाजाताहै कि, सततादि एक दोषसे और दो दोषसे भी उत्पन्न होतेहैं॥८१२॥८१३॥

अथ चातुर्थिकविपर्ययाद्यन्य विषमज्वरलक्षणम् ।

अस्थिमज्जागतो दोषश्चातुर्थिकविपर्ययः॥ जायते भिषजा ज्ञेयो विषमज्वर एव सः ॥ ८१४ ॥

चातुर्थिकविपर्ययाख्यो ज्वरः सोऽपि विषमज्वर एव वैद्येन ज्ञातव्यः । स किं धातुस्थ इत्यपेक्षायामाह–अस्थीत्यादि ॥

स मध्ये ज्वरयत्यह्नी आद्यन्ते च विमुंचति ॥ ८१५ ॥

चातुर्थिकविपर्यय इत्युपलक्षणम् । सन्ततादिविपर्ययोऽपि बोद्धव्यः । यथा अहोरात्रे द्वौ कालौ मुंचति शेषं सर्वमहोरात्रं तिष्ठतीति सततविपर्ययः । अहोरात्रे एककालं मुंचति शेषं सर्वमहोरात्रं तिष्ठति । इति अन्येद्युष्कविपर्ययः । मध्ये एकं दिनं ज्वरयति आद्यन्ते च मुंचतीति तृतीयकविपर्ययः । एते विषमज्वरोपलक्षकाः अन्ये रात्रिज्वरोपलक्षकाः । अन्ये रात्रिज्वरादयोऽपि विषमज्वरा बोद्धव्याः । यथा–

समौ वातकफौ यस्य क्षीणपित्तस्य देहिनः ॥ रात्रौ प्रायो ज्वरस्तस्य दिवा हीनकफस्य तु ॥ ८१६ ॥

प्रायो बाहुल्येन ॥

सन्तत आदि पाच विषमज्वरोंसे भिन्न जो चातुर्थिक विपर्यय नामक ज्वर है उसको भी वैद्य विषमज्वरही समझते हैं, यह विषमज्वर अस्थि (हड्डी) तथा मज्जामें रहनेवाले दोषोंसे होताहै, जो ज्वर बीचके दो दिनोंमें आवे और आदि तथा अन्तके दिनमें न आवे अर्थात् चौथिये ज्वरसे विपरीत होय तो उसको चातुर्थिक विपर्यय कहते हैं। जिस प्रकार ऊपर कहे अनुसार चौथिये ज्वरसे विपरीत चातुर्थिकविपर्यय नामका ज्वर है उसी प्रकार सतत आदि ज्वरोंसे विपरीत भी अन्य ज्वर जानने। जैसे कि, एक दिनरातमें दो समय छोडकर और बाकी सब दिनरातमें रहे उसको सततविपर्यय और एक दिनरातमें एक समय छोडकर बाकी सब दिनरातमें रहै उसको अन्येद्युष्क विपर्यय कहतेहैं ।

यह कहना भी एक उपलक्षणमात्र है इस कारण ऊपरसे रात्रिज्वर आदि अन्य विषमज्वरोंको भी समझना चाहिये कहाहै कि–"जिस मनुष्यके वात और कफ समान होयँ और पित्त क्षीण होय उसके विशेष करके रात्रिमें ज्वर उत्पन्न होताहै और जिस मनुष्यके वात और पित्त समान हो और

कफ क्षीण होय उसके विशेष करके दिनमे ज्वर आता है" ॥ ८१४–८१६ ॥

अथ संततादिज्वरे प्रथमं कस्यचिच्छीतं कस्यचिद्दाह उत्पद्यत इत्यत्र हेतुमाह।

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरम् ॥ तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्तर्दाहं करोति च ॥ ८१७ ॥

शीतं शीतसहितम्। प्रशान्तयोः प्रशान्तवेगयोः। अन्तः अभ्यन्तरे ॥

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च ॥ तस्मिन्प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमन्ततः ॥ ८१८ ॥

अन्ततः हस्तपादादितः ॥

त्वचामे रहनेवाले कफ और वायु प्रथम शीतयुक्त ज्वरको उत्पन्न करतेहैं और पश्चात् उनका वेग शान्त होनेपर पित्त भीतर दाहको उत्पन्न करताहै। तैसेही त्वचामें रहनेवाला पित्त प्रथम अत्यन्त दाहको उत्पन्न करताहै और पश्चात् पित्तका वेग शान्त होनेपर कफ और वायु हाथ पॉव आदि भागोमे शीतको उत्पन्न करते है ॥ ८१७ ॥ ८१८ ॥

अथ शीतदाहादिज्वरत्रिदोषजता।

द्वावेतौ दाहशीतादी ज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ ॥ दाहपूर्वस्तयोः कष्टः सुखसाध्यतमोऽपरः ॥ ८१९ ॥

संसर्गजौ सान्निपातिकौ। कष्टः कष्टसाध्यः ॥

शीतपूर्वक और दाहपूर्वक ये दोनो ज्वर त्रिदोषसे अर्थात् सन्निपातसे उत्पन्न होतेहैं, इनमे दाहपूर्वक ज्वर कष्टसाध्य है और शीतपूर्वक ज्वर सुखसाध्य है ॥ ८१९ ॥

अथान्यप्रकारको विषमज्वरः।

विदग्धेऽन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते॥ तेनार्द्धं शीतलं देहमर्द्धमुष्णं प्रजायते ॥ ८२० ॥

अन्नरसे विदग्धे आहारजे रसे दुष्टे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते, दुष्टे स्थिते। तेन हेतुना शीतलं कफेन, उष्णं पित्तेन, अर्द्धत्वं चार्द्धनारीश्वराकारेण नरसिंहाकारेण वा ॥

काये दुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः॥ तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः ॥ ८२१ ॥

अन्ते हस्तपादादौ ॥

काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चान्ते व्यवस्थितम् ॥ शीतत्वं तेन गात्रे स्यादुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥ ८२२ ॥

आहारसे उत्पन्न हुआ रस दुष्ट होताहै तो शरीरमे कफ और पित्त दुष्ट होकर रहतेहै, इस कारण आधा-शरीर शीतल और आधाशरीर उष्ण होताहै। जिस प्रकार अर्द्धनारीश्वरके शरीरका एक भाग स्त्रीरूप है और दूसरा भाग पुरुषरूप है उसी प्रकार इस ज्वरवाले रोगीका आधा शरीर शीतल रहताहै और आधाशरीर गरम रहताहे। अथवा जिसप्रकार नृसिंहके स्वरूपके ऊपरके तथा नीचेके दो भागोमेसे एक भाग मनुष्याकार है और एक भाग सिंहस्वरूप है तैसे ही इस ज्वररोगीके ऊपरके तथा नीचेके दोभागोमेसे एक भाग शीतल होताहैं और एक भाग गरम होताहै ॥

जब दूषित पित्त देहमे स्थित होताहै और दूषित कफ जब हाथ पॉव आदिमे रहताहै तब शरीर गरम होताहै और हाथ पॉव शीतल होतेहैं। और जब दुष्ट हुआ कफ शरीरमे रहताहै और दुष्ट हुआ पित्त हाथ पॉव आदिमे स्थित होताहै तब शरीर शीतल होता है और हाथ पॉव गरम होतेहैं ॥ ८२०–८२२ ॥

अथ प्रलेपकविषमज्वरलक्षणम्।

प्रलिपन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च ॥

मन्दज्वरविलेपी च स शीतः स्यात्प्रलेपकः ॥ ८२३ ॥

गौरवेण उपलक्षितः । मन्दज्वरविलेपी मन्दवेगस्य सदासम्बन्धोऽस्यास्तीति मन्दज्वरविलेपी । अयं विषमज्वरः ।

तथा च सुश्रुतः ।

प्रलेपकाख्यो विषमः प्रायशः क्लेशशोषिणाम् ॥ ज्वराश्च विषमाः सर्वे प्रायः क्लेशाय शोषिणाम् ॥ ७२४ ॥

जो ज्वर सर्वदा मन्दवेगके सम्बन्धवाला हो, जिसमे पसीनोसे सर्व शरीर लेपितकिया सा मालूम हो, तथा भारीपन और शीतयुक्त होय उसको प्रलेपक ज्वर कहते हैं ॥

यद्यपि सम्पूर्ण विषमज्वर विशेष करके शोषयुक्त मनुष्यको अत्यंत दुःख देनेवाले हैं तथापि उनमे प्रलेप नामवाला विषमज्वर तो शोषरोगियोके प्राणोंका नाश ही करनेवाला है, ऐसा सुश्रुत कहता है, इस कारण प्रलेपक ज्वर विषमज्वरोमे माना जाता है ॥ ८२३ ॥ ८२४ ॥

अथ विषमज्वरसामान्यचिकित्सा ।

ज्वराश्च विषमाः सर्वे सन्निपातसमुद्भवाः॥ यथोल्वणस्य दोषस्य तेषु कार्यं चिकित्सितम् ॥ ८२५ ॥ विषमेष्वपि कर्तव्यमूर्द्ध्वाधश्च शोधनम् ॥ स्निग्धोष्णैरन्नपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम् ॥ ८२६ ॥ कालिंगकः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ॥ पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ॥ ८२७ ॥ निम्बः पटोलं त्रिफला मृद्वीका मुस्तवत्सकौ ॥ किराततिक्तममृता चंदनं विश्वभेषजम् ॥ ८२८ ॥ गुडूच्यामलकं मुस्तमर्द्धश्लोकसमापनाः । कषायाः शमयन्त्याशु पञ्च पञ्चविधं ज्वरम् ॥ ८२९ ॥

कालिंगकः इन्द्रयवः, वत्सकः कुटजः । चन्दनमत्र रक्तचन्दनम् । कषायाः पञ्च पञ्चविधं सन्ततसततान्येद्युष्कतृतीयकचतुर्थकरूपम् ॥

महाबलामूलमहौषधाभ्यां क्काथो निहन्याद्विषमज्वरं हि ॥ शीतं सकम्पं परिदाहयुक्तं विनाशयेद्वित्रिदिनप्रयोगात् ॥ ८३० ॥ मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारिकाक्काथः ॥ पीतः सकणाचूर्णः समधुर्विषमं ज्वरं हन्ति ॥ ८३१ ॥ तिलतैललवणयुक्तः कल्को लशुनस्य सेवितः प्रातः ॥ विषमज्वरमपहरेद्वातव्याधीनशेषांश्च ॥ ८३२ ॥ कालाजाजी तु सगुडा विषमज्वरनाशिनी ॥ मधुनाचाऽभया लीढा हन्त्याशु विषमज्वरान् ॥ ८३३ ॥

कालाजाजी तु मँगरैला इति लोके । सा च किंचिद्भृष्टा गुडतुल्या कर्षमिताभक्षणीया ॥

पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः ॥ द्रोणपुष्पीरसो वापि निहन्ति विषमज्वरान् ॥ ८३४ ॥ समगुडमसितं जीरकमौषध्मरिचं च भक्षितं सद्यः ॥ ऐकाहिकं प्रशमयेत्समरेष्विव दानवानिन्द्रः ॥ ८३५ ॥ शुण्ठ्यजाजी गुडं पिष्टं पीतमुष्णेन वारिणा ॥ जीर्णमद्येन तक्रेण तीव्रं शीतज्वरं जयेत् ॥ ८३६ ॥

सर्व प्रकारके विषमज्वर सन्निपातसे उत्पन्न होतेहैं जो दोष इनमे उल्वण होय प्रथम उसीकी चिकित्सा करनी चाहिये । विषमज्वरमें भी वमन और विरेचनसे शोधन करना चाहिये और स्निग्ध तथा उष्ण अन्न पानोसे ज्वरको शांत करै ॥

इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी (१), पटोलपात, सारिवा (गौरिया वासाऊ) नागरमोथा, पाढ और कुटकी (२), नीम, पटोलपत्र, त्रिफला, आमला, हरड, बहेडा, दाख, नागरमोथा और इन्द्रजौ (३), चिरायता गिलोय, लालचदन और सोठ (४), गिलोय, आमले और नागरमोथा (५), यह आधे आधे श्लोकोमे कहे हुए

पाँचो क्वाथ पाचो प्रकारके विषमज्वरों (सतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक) को तत्काल शमन करैहैं ॥ ८२५-८२९ ॥

कधीकी जड और सोठका क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे शीत, कम्प और दाहयुक्त विषमज्वरको दो तीन दिनमे नष्ट कर देताहै ॥ ८३० ॥

नागरमोथा, आमले, गिलोय, सोंठ, और कटेरी, इनके क्वाथमे पीपलका चूर्ण और सहत मिलाकर पीनेसे विषमज्वर नष्ट होताहै ॥ ८३१ ॥

लहसनके कल्कको तिलके तेल और निमकके साथ मिलाकर प्रातःकाल नित्य सेवन करै तो विषमज्वर और वातसबंधी सब रोग नष्ट होजातेहैं ॥ ८३२ ॥

एक तोलाभर मगरायल (कलौंजी) लेकर उसको अग्निमें भूनकर तोलाभर गुड मिलाकर भक्षण करै तो विषमज्वर नष्ट होजाता है ॥ ८३३ ॥

तुलसीके पत्तोके रसमें काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पीनेसे विषमज्वर नष्ट होजाता है।

अथवा द्रोणपुष्पी (गूमा) के रसमे काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पिये तो विषमज्वर दूर होता है ॥ ८३४ ॥

कालाजीरा और गुड समानभाग लेकर उसमे किंचित् काली मिरचोंका चूर्ण मिलाकर भक्षण करै तो तत्काल विषमज्वरको नष्ट करताहै, जिस प्रकार इन्द्र संग्राममे दैत्योंका तत्काल नाश करता है ॥ ८३५ ॥

सोठ, जीरा और गुड इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पीनेसे, अथवा जीर्ण मदिराके साथ किंवा तक्र (मट्ठा) के साथ पीनेसे तत्काल शीतज्वर नष्ट होताहै ॥ ३३६ ॥

अथ सन्ततादिज्वरचिकित्सा।

गुडूचीमोदकः।

अमृतायाः शतं चूर्णं वाससा परिशोधितम् ॥ पृथक् षोडश भागाः स्युर्गुडमाक्षिकसर्पिषाम् ॥ ८३७ ॥ यथाग्नि भक्षयेदेतन्नरो हितमिताशनः ॥ नास्य कश्चिद्भवेद्व्याधिर्न जरा पलितं न च ॥ ॥ ८३८ ॥ न ज्वरा विषमा नैव मोहो नानिलरक्तकम् ॥ न च नेत्रगता रोगाः परमेतद्रसायनम् ॥ ८३९ ॥ मेधाकरं त्रिदोषघ्नं प्रयोगादस्य बुद्धिमान् ॥ जीवेद्वर्षशतं साग्रं यथैवादितिजस्तथा ॥ ८४० ॥

सौ (१००) तोले उत्तम गिलोयका कपडेमे छना हुआ चूर्ण लेकर सोलह (१६) तोले गुड, सोलह तोले सहत और सोलह (१६) तोले घी मिलावै, सबको एकत्र करके मोदक बनालेवै। अपनी अग्निका बलाबल विचार कर इसको भक्षण करै इसपर हितकारी और परिमित भोजन करै, इसको सेवन करनेवाले मनुष्यके कोई रोग भी उत्पन्न नहीं होता, न बुढापा आताहै, न बाल सफेद होतेहैं। तथा विषमज्वर, मोह, वातरक्त और नेत्ररोग कभी नहीं होते। यह परमोत्तम रसायन है, मेधाजनक और त्रिदोषनाशक है, इसको सदैव प्रयोग करनेमे सौ वर्षसे अधिक देवकी समान जीवित रहताहै ८३७-८४० ॥

अथ विषमज्वरिभोजनम्।

तक्रमांसं पयोमांसं दधिमांसमथापि वा ॥ माषमांसञ्च भुञ्जानो मुच्यते विषमज्वरात् ॥ ८४१ ॥

अग्निवेशेनोक्तम् ॥

सुरा समण्डा पानार्थे भोजने चरणायुधाः ॥ तित्तिरा विष्किराः पथ्याः कुक्कुटा विषमज्वरे ॥ ८४२ ॥

चरणायुधा गृहकुक्कुटाः। कुक्कुटाः वनकुक्कुटाः। विष्किराः वर्तिकालावाविगिरचकोराद्याः ॥

जो मनुष्य तक्र (छाछ) के साथ मासको, दूधके साथ मासको, दहीके साथ मासको, अथवा उडदोंके साथ मासको भक्षण करताहै, वह विषमज्वरसे मुक्त होजाताहै।

अग्निवेश ऋषि कहतेहैं कि-विषमवाले मनुष्यको माडके साथ मद्य पीनेको देवै और मुरगा, तीतर और समस्त विष्किर जातिके जीवोंका मास भोजन करनेके लिये देवै, यह पथ्य हितहै ॥ ८४१ ॥ ८४२ ॥

अथसन्ततादिज्वराणांविशेषचिकित्सा।
त्रायन्तीकटुकाऽनन्तासारिवाभिः शृतं जलम् ॥ पटोलाब्दवृषातिक्तासारिवाभिः शृत जलम् ॥सन्तताख्ये ज्वरे देयं वातादीनां निवृत्तये ॥ ८४३ ॥

वृषा बृहद्दन्ती एरण्डवत्पत्रविटपा तदलाभे दन्ती च ग्राह्या समानगुणत्वात् ॥

पटोलेन्द्रयवानन्तापथ्यारिष्टाऽमृताजलम्॥ क्वथितं तज्जलं पीत ज्वरं सततकं जयेत् ८४४

अनन्ता सारिवा । अरिष्टः निम्बः । जलं बालकम् ॥

द्राक्षापटोलनिम्बाब्दशक्राह्वत्रिफलाशृतम्॥ जलं जन्तुः पिबेच्छीघ्रमन्येद्युज्वरशान्तये ॥ ८४५ ॥

शक्राह्वः इन्द्रयवः ॥

सततज्वरमें वायुआदिकी निवृत्तिके लिये त्रायमान, कुटकी, अनन्तमूल और गौरिया (वानाऊँ) इनका क्वाथ, अथवा पटोलपत्र, नागरमोथा, बृहद्दन्ती (न मिलनेपर इसके बदले दन्ती जमाल गोटेकी जड लेनी), कुटकी और सारिवा, इनका क्वाथ पीवै | पटोलपत्र, इन्द्रजौ अनन्तमूल, हरड, नीम, गिलेय और सुगधवाला इनका क्वाथ पीनेसे सततज्वर नष्ट होताहै ॥

दाख, पटोलपत्र, नीमकी छाल, नागरमोथा, इन्द्रजौ और त्रिफला, इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे अन्येद्युष्क (इकतरा) ज्वर नष्ट होताहै, अन्येद्युष्क ज्वरको शांत करनेके लिये यह क्वाथ अवश्य पीना चाहिये ॥ ॥ ८४३–८४५ ॥

कर्मसाधारणं त्यक्त्वा तृतीयकचतुर्थकौ ॥ भिषजा प्रतिकर्तव्यौ विशेषोक्तचिकित्सितैः ॥ ८४६ ॥ उशीरं चन्दनं मुस्तं गुडूचीधान्यनागरम् ॥ अम्भसा क्वथितं पयं शर्करामधुयोजितम् ॥ ८४७ ॥ ज्वरे तृतीयके पुंसां तृष्णादाहसमन्विते ॥

अपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः ॥ बद्धा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ ८४८ ॥ स्थिरातामलकीदारुशिवावृषमहौषधैः ॥ सितामध्वयुतः क्वाथश्चतुर्थकहरः परः ॥ ८४९ ॥

स्थिरा शालिपर्णी । तामलकी भूधात्री । शिवा हरीतकी ।वृषो वासा ॥

अगस्तिपत्रस्य रसेन नस्यं निहंति चातुर्थकमुग्रवीर्यम्॥शिरीषपुष्पस्य निशाद्वयस्य कल्केन वा तद्घृतसंयुतेन ॥ ८५० ॥ तत् नस्यम् ॥

तृतीय और चातुर्थिक ज्वरमें प्रथम वैद्यको वमन और विरेचनादि साधारण कर्मकरके पश्चात् विशेष चिकित्सा करनी चाहिये ॥ तृषा और दाहयुक्त तृतीयक ज्वरमे खस, लाल चन्दन, नागरमोथा, गिलोय, धनियां और सोंठके क्वाथमे मिश्री और सहत डालकर पिये ॥

रविवारके दिन चिरचिटेकी जडको सात लाल धागोंमे लपेटकर कमरमे बाधै तो तृतीयक ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ शालिपर्णी, भुंई आमला, देवदारु, हरड, अडूसा और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत और मिश्री मिलाकर पीनेसे चौथिया ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ अगस्तियेके पत्तेके स्वरसका नास देनेसे, अथवा सिरसके फूल, हलदी और दारुहलदी इनके कल्कमें घृत मिलाकर नास देनेसे घोर चातुर्थिक ज्वर दूर होजाताहै ॥ ८४६–८५० ॥

ज्वरस्य वेगकालश्च चिन्तयञ्ज्वर्यते तु यः ॥ तस्येष्टैरद्भुतैर्वापि विषमैर्नाशयेत्स्मृतिम् ॥ ८५१ ॥ सन्ततं विषमं चापि सततं सुचिरोत्थितम् ॥ ज्वरं सुभोजनैः पथ्यैरिष्टैश्च समुपाचरेत् ॥ ८५२ ॥

सन्ततादिविपर्ययाणां विषमज्वराणां चिकित्सा सन्ततादीनामिव कर्तव्या ॥

जो मनुष्य ज्वरके वेगको और ज्वरके आनेके समयको स्मरण करते ही ज्वरित होजाताहै, उस मनुष्यकी उस स्मृतिको प्रिय पदार्थोंसे, अद्भुत पदार्थोंसे अथवा विषम पदार्थोंसे भुला देवै ॥ बहुत दिनोंके संतत ज्वरमें सतत ज्वरमें और विषमज्वरमें हितकारक भोजन देवै । सततविपर्यय आदि अन्य ज्वरोंकी चिकित्सा भी सततआदि विषमज्वरोंकी समान करनी चाहिये ॥ ८५१ ॥ ८५२ ॥

शीताभिभूते पुरुषे कुर्याच्छीतहरीं क्रियाम् ॥ दाहाभिभूते तु विधिं विदध्याद्दाहनाशनम् ॥ ८५३ ॥ आच्छादनैर्बहुतरैर्गुरुभिः कम्बलादिभिः ॥ तूलवत्या महाशीतं शीतादिज्वारिणो हरेत् ॥ ८५४॥ तूलवती तु रजाई इति लोके ॥

तं स्तनाभ्यां सुपीनाभ्यां पीवरोरुनितम्बिनी ॥ युवती गाढमालिंगेत्तेन शीतं प्रशाम्यति ॥ ८५५ ॥ कान्तांगसंगसञ्जाते तद्वच्छीते निवारिते ॥ प्रह्लादं चास्य विज्ञाय पृथक्कां कारयेत्स्त्रियम् ॥ ८५६ ॥ ततो दाहे तु सञ्जाते पत्रैरेरण्डसम्भवैः ॥ शीतलैर्धारितैरंगे दाहं तस्यापनोदयेत् ॥ ८५७ ॥

यदि रोगीके शीतके कारण पीडा होतीहोय तो शीतनाशक चिकित्सा करनी चाहिये, और जो दाहसे पिडा होतीहोय तो दाहनाशक चिकित्सा करनी चाहिये, शीतादिसे पीडित ज्वरवाले रोगीको भारी कम्बल आदि आच्छादनोंसे ढकै, तथा तोषक लिहाफ, गरम ऊनी वस्त्र और रजाई ओढाकर शीतको दूर करै। पुष्ट जघाओंवाली और बडे नितम्बवाली, तथा कठोर कुचवाली ऐसी स्त्रीसे आलिंगन करावै तो शीत नष्ट होजाताहै। आलिंगनके पश्चात् शीतके निवारण होनेपर जब रोगीके कामदेव उत्पन्न होजाय तब उस स्त्रीको उसके शरीरसे अलग कर देवै। पश्चात् जब दाह उत्पन्न होय तो एरण्डके शीतलपत्ते धारण करनेसे दाह नष्ट होजाताहै ॥ ८५३–८५७ ॥

अथ शीतज्वरे भूतभैरवचूर्णम्।

तालकं शुक्तिकाचूर्णं दत्तं तत्रोभयोरपि ॥ नवमांशश्च तुत्थं स्यान्मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः॥ ॥ ८५८ ॥ तत्तु संशुष्कमुपलैर्वन्यैर्गजपुटे पचेत् ॥ शीतं तच्चूर्णयेच्चूर्णं गुञ्जामात्रं सितायुतम् ॥ ८५९ ॥ प्रभाते भक्षयेत्तेन याति शीतज्वरः क्षयम् ॥ वान्तिर्भवति कस्यापि कस्यचिन्न भवत्यपि ॥ ८६०॥ एकेन दिवसेनैव शीतज्वरहरं परम् ॥ मध्याह्नसमये पथ्यं शिखरिण्योदनं तथा ॥ ८६१ ॥

हरताल और सीपका चूर्ण नौ ९ भाग और नीलाथोथा १ एक भाग लेवै, सबको एकत्र मिलाकर घीक्वारके रसमें खरल करै, फिर जब यह सूखजाय तब अन्ने उपलोंके गजपुटमें रखकर पकावै, पकनेके पश्चात् जब स्वय शीतल होजाय तब चूर्ण करलेवै. प्रातःकाल सफेद खाँडके साथ एकरत्ती प्रमाण इस चूर्णको भक्षण करै तो शीतज्वर नष्ट होजाताहै। इस रसको भक्षण करनेसे किसी मनुष्यको वमन होतीहै और किसीको नहीं भी होतीहै। यह रस एक दिनमे ही शीतज्वरको अवश्य नष्ट करैहै। इसके ऊपर मध्याह्नके समय सिखरन भातका पथ्य देवै ॥ ८५८–८६१ ॥

अथ कायस्थादिधूपलेपतैलानि।

कायस्थानाकुलीतिक्तावयस्थापुरचोरकैः॥ सहदेवावचाकुष्ठैः शीतघ्नैर्धूपलेपनैः ॥ ॥ ८६२ ॥ एतैरेवौषधैः पिष्टैर्लवणक्षारसंयुतैः ॥ साम्लैर्विपाचितं तैलमभ्यंगाच्छीतनाशनम् ॥ ८६३ ॥

कायस्था हरीतकी। नाकुली रास्नाभेदः नाइ इति लोके। वयस्था गुडूची। पुरो गुग्गुलुः। चोरकः भण्डीउर तदलाभे गठिवन। सहदेवा बृहद्बला। क्षारो यवक्षारः। इति कायस्थादिधूपनलेपनतैलानि ॥

हरड, नाई, कुटकी, गिलोय, गूगल, भटेउर, यदि यह न मिले तौ गठिवन लेनी चाहिये, सहदेई, वच और कूट, इन सब औषधियोकी धूप बनाकर देनेसे अथवा इन सबको पीसकर शरीरपै लेप करनेसे शीतका नाश होताहै। इन सब औषधियोंको पीसकर लवण, जवाखार और नींबूका रस मिलाकर तेल डालकर पकावै, इस तेलको मालिस करनेसे शीत नष्ट होताहै ॥ ८६२ ॥ ८६३ ॥

अथ दाहचिकित्सा।

एरण्डस्य तु पत्राणि लिप्तभमौ निधापयेत्॥

दाहादिज्वरिणो देहे तानि पत्राणि धारयेत् ॥ ८६४ ॥ तेन नश्यति दाहोऽस्य ज्वरश्चैवोपशाम्यति ॥ दाहे शान्ते यदा शैत्यं तच्च युक्त्या निवारयेत् ॥ ८६५ ॥ जघनचक्रचलन्मणिमेखला सरसचन्दनचन्द्रविलेपना ॥ वनलतेव तनुं परिवेष्टयेत्प्रबलदाहनिपीडितमङ्गना ॥ ८६६ ॥ चन्द्रः कर्पूरः।

तदङ्गसङ्गसञ्जाते शैत्ये दाहे निवारिते ॥ प्रह्लादश्चास्य विज्ञाय तां स्त्रीमपनयेत्पुनः ॥ ८६७ ॥

लिपीहुई भूमिपर अडके पत्तोंको बिछादेवै, पश्चात् दाह ज्वरवाले मनुष्यके शरीरपै उन पत्तोंको धारण करै तो दाह शात होजाताहै और ज्वर नष्ट होजाताहै । दाह शात होनेके पश्चात् यत्नपूर्वक शीतका निवारण करै । जिसके नितम्बोपर चलायमान मणियोंकी मेखला अर्थात् रत्नजडित जजीर पडी हो, तथा जिसका शरीर सरस कपूर केशर चन्दनादिमे चर्चित होय ऐसी स्त्रीको दाहसे पीडित मनुष्यके अगस खब आलिंगन करावे । स्त्रीके आलिगनसे शीत और दाह नष्ट होजायगा, जब कामदेव चैतन्य होजाय तब उस स्त्रीको उसके समीपसे अलग कर लेवै ॥ ८६४–८६७ ॥

अथ षड्गुणतक्रतैलम्।

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः ॥ सिद्धं हरेत्षड्गुणतक्रपक्वं तैलं ज्वरं दाहसमन्वितं च ॥ ८६८ ॥

मजी, सोंठ, कूट, मूर्वा, लाख, हल्दी और मजीठ, इनसे छ गुनी छाँछमें पकायाहुआ तेल दाहसहित ज्वरको नष्ट करैहै ॥ ८६८ ॥

अथ महाषड्गुणतक्रतैलम्।

रास्नानागरकुष्ठचन्दननिशायष्ट्याह्वकृष्णाबलालाक्षासैन्धवसारिवामधुरसादेवाह्वरोहीतकैः ॥ सोशीराम्बुधिफेनरोहिषजलैस्तैलं पचेत्षड्गुणे तक्रे तच्च जयेज्ज्वरं दृढतरं दाहादिशीतादिकम् ॥ ८६९ ॥

चन्दनमत्र श्वेतम्। मधुरसा मूर्वा। रोहीतकः रोहिणीति लोके रोहिष इति तृणविशेषः। जलं वालम् ॥

रायसन, सोंठ, कूट, चन्दन, हल्दी, मुलेठी, पीपल, खिरेटी, लाख, सेंधानिमक, सारिवा, मूर्वा, देवदारु, बहेडा, खस, समुद्रफेन, सुगन्धितृण और सुगन्धवाला, इन सब औषधियोंके साथ छ गुने तक्रमें सिद्ध किया हुआ तेल दाहपूर्वक अथवा शीतपूर्वक घोर ज्वरको नष्ट करैहै ॥ ८६९ ॥

अथ पद्मकादितैलम्।

पद्मकोत्पलकह्लारमृणालबिसपौष्करैः ॥ कुमुदोशीरमञ्जिष्ठापद्मगैरिककट्फलैः ॥ ॥ ८७० ॥ सारिवाद्वयलोध्राह्वक्षीरीखर्जूरमस्तकैः ॥ धात्रीशतावरीयुक्तैः क्वाथं कल्कं प्रयोजितः ॥ ८७१ ॥ लाक्षारसपयःशुक्तमस्तुभिः सह काञ्जिकैः ॥ पक्वं तैलमिदं त्वच्यं दाहज्वरहरं परम् ८७२

पद्माख, उत्पल नामक कमल, कह्लार जातिका लाल कमल, कमलकी नाल, कमलकद, पोहकरमूल, कमोदिनी, खस, मजीठ, कमल, गेरू, कायफल, कालीसर, गोरीसर, लोध, दुद्धी, खजूरका मस्तक, आमले और सतावर, इनका क्वाथ और कल्क बनावै तथा लाखका रस, दूध, शुक्त (सधानविशेष), दहीका तोड और कॉजी एव तेल, ये सब समान लेवै, सबको मिलाकर यथाविधि तेलको पकावै, यह तेल त्वचा(चमडी) को अत्यत हितकारी है और दाहसहित ज्वरको हरनेवाला है ॥ ८७०–८७२ ॥

अथ प्रलेपकचिकित्सा।

प्रलेपके प्रयुञ्जीत श्लेष्मज्वरहरीं क्रियाम् ॥

माहेश्वरो धूपः।

रुद्रजटा गोशृङ्गं बिडालविष्ठोरगस्य निर्मोकः ॥ मदनफलभूतकेश्यौ वंशत्वग्रुद्रनिर्माल्यम् ॥ ८७३ ॥ घृतयवमयूरपुच्छच्छागलकलोमानि सर्षपाः सवचाः ॥

हिंगुगवास्थिमरीचाः समभागाश्छागमूत्रसंपिष्टाः ॥ ८७४ ॥ धूपनविधिना शमयन्त्येते सर्वाञ्ज्वरान्नियतम् ॥ ग्रहडाकिनीपिशाचप्रेतविकारानयं धूपः॥८७५॥

रुद्रजटा जटाधारी। भूतकेशी जटामांसी। रुद्रनिर्माल्यं पुष्पादि। मयूरपुच्छं चन्द्रकम् ॥

प्रलेपक ज्वरमें सकल क्रिया कफनाशक करनी चाहिये॥ माहेश्वरधूप–रुद्रजटा गायका सींग, बिलावकी विष्ठा, साँपकी कैंचली, मैनफल, भूतकेशी(बालछड, जटामासी, बाँसकी छाल और रुद्रका निर्माल्य (बेलपत्र), घी, जौ, मोरकी पूँछ, बकरेके रोम, सरसों, वच, हींग, गायकी हड्डी और कालीमिर्च, इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीसकर धूप देवै तो यह धूप–सर्व प्रकारके ज्वरोको अवश्य दूरकरै है तथा ग्रह, डाकिनी, पिशाच और प्रेतबाधाको नष्ट करैहै ॥ ८७३–८७५ ॥

अथ देवस्तुतिपूजने।

सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम् ॥ पूजयन्प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ ८७६ ॥

सोमम् उमया सहितम्। सानुचरं नन्द्यादिगणसहितम्। प्रयतः पवित्रः॥

विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपतिं विभुम् ॥ स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति ॥ ८७७ ॥

सहस्रमूर्द्धानमिति सहस्रशीर्षेत्यादि वेदाभिहितम्, नामसहस्रेण भारतोक्तेनेत्यर्थः। ज्वरस्यापि देवत्वात्पूजा कार्या। यत आह विदेहः–

तीर्थायतनदेवाग्निगुरुवृद्धोपसर्पणैः॥ श्रद्धया पूजनैश्चापि सहसा शाम्यति ज्वरः॥ ८७८ ॥

तीर्थमृषिजुष्टं जलम्। आयतनं देवाधिष्ठितं पुरुषोत्तमक्षेत्रं श्रीशैलादि ॥

पवित्र होकर पार्वती, नदी आदि गण और मातृगण सहित श्रीसदाशिवका पूजन करनेसे विषमज्वर, नष्ट होजाताहै ॥ स्थावर और जगमके स्वामी, सर्वव्यापक और 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि वेदमन्त्रोंमे कही हुई विष्णुभगवानकी स्तुति और महाभारतके आनुशासनिक नामक १३ तेरहवे पर्वमें कहे हुए विष्णुसहस्रनामस्तोत्रसे स्तुति करनेसे सर्वप्रकारके ज्वर नष्ट होतेहैं ॥ ज्वर भी देवरूप है, इस कारण ज्वरका पूजन भी करना चाहिये. विदेह कहताहै कि–ऋषियोसे सेवित किया हुआ तीर्थरूप जल, देवताओंके निवास स्थान, श्रीशैलपर्वतादिक्षेत्र, देवता, अग्नि, गुरु और वृद्धजन, इनकी शरण लेनेसे और श्रद्धापूर्वक पूजन करनेसे भी ज्वर शांत होताहै ॥८७६–८७८॥

इति विषमज्वराधिकार. समाप्त।

अथ रसादिधातुगतज्वरलक्षणचिकित्से।

रसगतज्वरलक्षणम्।

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ ॥ रसस्थे तु ज्वरे लिंगं दैन्यं चास्योपजायते ॥ ८७९ ॥

गुरुता गात्राणाम्, हृदयस्थस्य दोषस्य उपचितत्वाद्वमनमिव, दैन्यं क्लीबचित्तता। रसस्थे रसधातुगते ज्वरे। यद्यपि रसैकधातुं प्राप्य सन्ततश्चायं तथाप्यनुक्रमधातुगतकथनार्थ एवात्र निर्देशः॥

शरीरमे भारीपन, हृदयमे रहनेवाले दोषोंके बढनेसे वमन (रद्द), आनेकी होवै, ग्लानि, वमन, अरुचि और दीनता, ये लक्षण रसगत ज्वरमें होतेहैं।

यद्यपि रसनामक एक धातुमे रहनेवाला ज्वर प्रथम कहा हुआ सततज्वरही है और इसीप्रकार अन्य धातुओंमें रहनेवाले ज्वर भी विषमज्वरोंमे कहे गये है, तथापि उन धातुओंमें रहनेवाले ज्वरोंके लक्षण और चिकित्साको अनुक्रमसे कहनेके लिये इस प्रकरणमें निर्देश करने हैं ॥ ८७९ ॥

अथ रसगतज्वरचिकित्सा।

रसस्थे तु ज्वरे तस्मिन्कुर्याद्वमनलंघने ॥ ८८० ॥

जब मनुष्योंके ज्वर रसमें प्राप्त होजाय तब उनको मन और लघन करावै ॥ ८८० ॥

अथ रक्तगतज्वरलक्षणम् ।

रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ ॥ प्रलापः पिडिका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ ८८१ ॥

मोहो व्यग्रचित्तता ॥

रुधिरका थुकना, दाहका होना, बेहोसी, वमन, विभ्रम, प्रलाप (वृथा बकवाद), शरीरमें फुन्सी, आदि निकले और तृषा (प्यास) अधिक लगै, ये लक्षण रुधिरगतज्वरके जानने ॥ ८८१ ॥

अथ रुधिरगतज्वरचिकित्सा ।

सेकः संशमनो लेपो रक्तमोक्षमसृग्गते ॥ ८८२ ॥

जब ज्वर रुधिरमें पहुँच जाय तब जलादिसे सेचन, सशमन लेप करै और रक्तमोक्षण (फस्त) करावै ८८२॥

अथ मांसगतज्वरलक्षणम् ।

पिण्डकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता ॥ उष्मान्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ८८३ ॥

उष्णान्तर्मोहविक्षेपाविति कचित्पठन्ति तत्र उष्मा अन्तः । विक्षेपः हस्तपादादिचालनम् ॥

पिंडलियोंमें वेष्टनकी समान पीडाका होना, तृषा, मल और मूत्रका अधिक उतरना, शरीरके भीतर गर्मी, दाह, हाथ पॉवोंको इधर उधर फेकना और ग्लानि हो, यह मांसगत ज्वरके लक्षण जानने ॥ ८८३ ॥

अथ मांसगतज्वरचिकित्सा ।

तीक्ष्णं विरेकश्च तथा कुर्यान्मांसगते ज्वरे ॥ ८८४ ॥

मांसगतज्वरमे तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा विरेचन (दस्त) कराने चाहिये ॥ ८८४ ॥

अथ मेदोगतज्वरलक्षणम् ।

भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च॥ दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदस्थे चासहिष्णुता ॥ ८८५ ॥

भृशं स्वेदः मेदोमलत्वात् ।

अत्यन्त पसीनेका आना, अधिक तृषाका लगना, मूर्छा आजाना, प्रलाप करना, वमनका होना, शरीरमें दुर्गन्धका आना, अरुचिका होना, ग्लानिका होना और सहन करनेकी शक्तिका नहीं रहना, यह मेदगतज्वरके लक्षण हैं । मेदज्वरमें पसीना इसलिये अधिक आताहै कि-पसीना मेदका मल है ॥ ८८५ ॥

अथ मेदोगतज्वरचिकित्सा ।

मेदःस्थे मेदसो नाशं विदधीत चिकित्सकः ॥ ८८६ ॥

मेदगतज्वरमें मेदनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८८६ ॥

अथास्थिगतज्वरलक्षणम् ।

भेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च ॥ विक्षेपणञ्च गात्राणां विद्यादस्थिगते ज्वरे ॥ ८८७ ॥

अस्थिगतज्वरमें-हड्डियोंमें भेदनेकेसी पीडा, कण्ठमें गर्मी, पेटका बोलना, श्वास, दस्त, वमन और अंगोंको इधर उधर पटकना, यह लक्षण होतेहैं ॥ ८८७ ॥

अथास्थिगतज्वरचिकित्सा ।

अस्थिस्थे तु ज्वरे कुर्याद्वातनाशनकं विधिम् ॥ वस्तिकर्म प्रयोक्तव्यमभ्यङ्गोन्मर्दनं तथा ॥ ८८८ ॥

अस्थिगतज्वरमें वातनाशक विधिप्रयोग करने चाहिये तथा वस्तिकर्म, अभ्यंग (मालिस) और मर्दन, ये सब करने चाहिये ॥ ८८८ ॥

अथ मज्जागतज्वरलक्षणम् ।

तमःप्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा॥ अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे ॥ ८८९ ॥

असाध्यत्वान्नात्र चिकित्सा ।

मज्जागतज्वरमे अंधकारमें प्रवेश करनासा प्रतीत हो, हिचकी आवै, खाँसी हो, शीत लगै, वमन हो, भीतर दाह हो, महाश्वास हो और मर्मस्थानोंमे छेदने

सरीखी पीडा होतीहै। यह ज्वर असाध्य है इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ८८९ ॥

अथ शुक्रगतज्वरलक्षणम्।

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे ॥ शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ॥ ८९० ॥

ननु शुक्रगते मरणमित्युक्तं तच्च शुक्रं सर्वदेहगं, नैवं स्वाश्रयस्थशुक्रगे मरणम् ॥

शुक्रगतज्वरमे लिंग जड होजाय और वीर्य अधिकतर बहै, इस ज्वरमे मनुष्य मर जाताहै ॥ ८९० ॥

शंका—ज्वर वीर्यमे पहुँचनेसे मृत्यु होतीहै और वीर्य सब शरीरमें रहताहै इस बातमे हमको बडा भारी सन्देह है, यह क्यो कहा कि ज्वर वीर्यमे जानेपर मृत्यु होजातीहै ? ऐसा कैसे होसक्ता है ? ।

समाधान—वीर्य रहनेके जो मुख्यस्थान हैं उन स्थानोंके स्थितवीर्यमे जो ज्वर प्राप्त होय तो मरण होताहै ।

इति सप्तधातुज्वराधिकारः समाप्तः ।

अथ जीर्णज्वराधिकारः।

यो द्वादशेभ्यो दिवसेभ्य ऊर्द्ध्वं दोषत्रयेभ्यो द्विगुणेभ्य ऊर्द्ध्वम् ॥ नृणां तनौ तिष्ठति मन्दवेगो भिषग्भिरुक्तो ज्वर एव जीर्णः ॥ ८९१ ॥

जो ज्वर बारह दिनके पश्चात् और तीनों दोषोंकी अवधिके दुगुने दिनोंके उपरान्त मनुष्योंके शरीरमें मंद वेगसे रहता है उसको वैद्य जीर्णज्वर कहते हैं ॥ ८९१ ॥

अथ वातबलासकजीर्णज्वरलक्षणम्।

नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनः कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥ ८९२ ॥

वातबलासकी नर ईदृग् भवेत् । शूनः शोथी। श्लेष्मभूयिष्ठो बहुश्लेष्मकः ॥

जिस मनुष्यके वातबलासक नामवाला जीर्णज्वर होताहै वह नित्य मंदज्वरयुक्त, रूखापन, सूजन सहित जकडे अंगोवाला और अत्यत कफयुक्त होताहै, यह ज्वर कष्टसाध्य है ॥ ८९२ ॥

अथ जीर्णज्वरसामान्यचिकित्सा।

जीर्णज्वरी नरः कुर्यान्नोपवासं कदाचन॥ लंघनात्स भवेत्क्षीणो ज्वरस्तु स्याद्बली यतः ॥ ८९३ ॥ पुराणेऽपि ज्वरे दोषा यद्यपथ्यैः पुनस्तथा ॥लंघयेत्तत्र तत्पश्चात्पूर्वामेवाचरेत्क्रियाम् ॥ ८९४ ॥

तथा पूर्ववत्।

जीर्णज्वरवाले रोगीको कदापि लंघन नहीं कराने चाहिये कारण यह है कि—लंघन (उपवास) करनेसे रोगी क्षीण होजाताहै और ज्वर बलवान् होजाताहै और यदि जीर्णज्वरमें भी कुपथ्य अहित पदार्थ सेवन करनेसे दोष फिर कुपित होगये होयँ तो प्रथम लंघन कराकर पश्चात् पूर्वोक्त ज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८९३ ॥ ८९४ ॥

अथ त्रिकण्टकक्काथः।

निदिग्धिकानागरकामृतानां क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ॥ जीर्णज्वरारोचककासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ ॥ ८९५ ॥ हन्त्यूर्द्ध्वजामयं प्रायः सायन्तेनोपयुज्यते ॥ ८९६ ॥

कटेरी, सोठ और गिलोय, इनके क्वाथमे पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे—जीर्णज्वर, अरुचि, खाँसी, शूल, श्वास, मदाग्नि, अर्दित (लकवा) और पीनस रोग नष्ट होतेहैं। यह विशेष करके ऊर्द्धज अर्थात् कंठके ज्वरके रोगोको दूर करैहै, इस लिये इसको सन्ध्याके समय सेवन करना चाहिये ॥ ८९५ ॥ ८९६ ॥

अथ पिप्पल्यादिः।

पिप्पलीमधुसंयुक्तः क्वाथश्छिन्नोद्भवोद्भवः॥ जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलकृतोऽथ वा ॥ ॥ ८९७ ॥ अमृतायाः कषायन्तु शीतलीकृतमीरितम् ॥ मधुपादयुतं पीतं जीर्णज्वरहरं परम्॥८९८॥ पिप्पलीमधुसंमिश्रं गुडूचीस्वरसं पिबेत् ॥ जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम ॥ ८९९ ॥ जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली ॥ कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुकृमिरोगनु-

त् ॥ द्विगुणः पिप्पलीचूर्णाद्गुडोऽत्र भिषजां मतः ॥ ९०० ॥ पिप्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी ॥ श्वासकासज्वरहरी पाण्डुप्लीहोदरापहा॥९०१॥ आमलं चित्रकं पथ्या पिप्पली सैन्धवं तथा ॥ चूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्वज्वरहरः परः ॥ भेदी रुचिकरः श्लेष्महन्ता दीपनपाचनः ॥ ९०२ ॥

गिलोयके क्वाथमें अथवा पचमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण और सहत डालकर पीनेसे जीर्णज्वर और कफ नष्ट होताहै ॥ ८९७ ॥

गिलोयके क्वाथको शीतल करके उसमे चौथाई भाग सहत डालकर पीनेसे जीर्णज्वर नष्ट होताहै ॥ ८९८ ॥

गिलोयके स्वरसमें पीपलका चूर्ण और सहत डाल कर पीनेसे जीर्णज्वर, कफ, प्लीहा, खासी और अरुचि दूर होतीहै ॥ ८९९ ॥

जीर्णज्वर और मन्दाग्निमें गुडके साथ पीपलका चूर्ण सेवन करै, यह खाँसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृदयरोग पाण्डुरोग और कृमिरोगको नष्ट करैहै। यहाँ पीपलके, चूर्णसे गुड दुगुना लेना चाहिये ॥ ९०० ॥

पीपलको सहतमें मिलाकर चाटनेसे मेद, कफ, श्वास, खासी, ज्वर, पाण्डु, प्लीहा (तिल्ली) और उदररोग नष्ट होताहै ॥ ९०१ ॥

आमले, चीता, हरड, पीपल और सैंधानिमक, इन सबका चूर्ण करके सेवन करै तो सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं, भेदक (दस्तावर), रुचिकारक, कफनाशक, दीपन और पाचन है ॥ ९०२ ॥

अथाष्टादशांगक्वाथः।

द्राक्षाऽमृता शटी शृङ्गी मुस्तकं रक्तचन्दनम् ॥ नागरं कटुका पाठा भूनिम्बः सदुरालभः ॥९०३॥ उशीरं धान्यकं पद्मं वालकं कण्टकारिका ॥ पुष्करं पिचुमन्दश्च दशाष्टाङ्गमिदं स्मृतम् ॥ जीर्णज्वरारुचिश्वासकासश्वयथुनाशनम् ॥ ९०४ ॥

दाख, गिलोय, कचूर, काकडाशिगी, नागरमोथा। लालचन्दन, सोंठ, कुटकी, पाढ, चिरायता, धमासा, खस, धनिया, कमल सुगन्धवाला, कटेरी, पोहकरमूल और नीम इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर क्वाथ बनाकर सेवन करै तो जीर्णज्वर, अरुचि, श्वास, खांसी और सूजन नष्ट होतीहै ॥ ९०३ ॥ ९०४ ॥

अथ वर्द्धमानापिप्पली।

त्रिवृद्ध्या पञ्चवृद्ध्या वा सप्तवृद्ध्याथ वापि वा॥गव्यक्षीरेण संपिष्टाः पिबेद्दशदिनानि हि ॥ ९०५ ॥ तथैवापनयेदेता एवं विंशतिवासरान् ॥ पिबतां ज्वरशान्तिः स्यात्पाडुरोगश्च शाम्यति ॥ कासः श्वासोऽग्निमान्द्यश्च कफाधिक्यश्च नश्यति॥९०६॥ त्रयादिवृद्धिः यथा कफवृद्धिर्दुग्धवृद्धिर्यथाग्निवृद्धिः ॥

नित्य तीन तीन बढाकर अथवा पाच २ बढाकर किंवा सात २ बढाकर पीपलोंको गायके दूधमें पीसकर दश दिनतक पिये, फिर दश दिनतक इसीरीतिसे क्रमक्रमसे कमती करके पिये इस प्रकार वीस दिनतक पिये तो इसमे ज्वर और पाण्डुरोग शान्त होताहै। यह खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि और कफकी अधिकताको नष्ट करैहै। कफकी वृद्धि और अग्निकी वृद्धिके अनुसार तीन २ नित्य बढावे और जैसे जैसे पीपल बढावे, वैसेही दूधको बढावे। इसको वर्द्धमान पीपल कहतेहैं ॥ ९०५ ॥ ९०६ ॥

वातश्लेष्मज्वरोक्ता स्यात्क्रिया वातबलासके ॥ जीर्णज्वरे कफे क्षीणे दाहे तृष्णासमन्विते ॥ ९०७ ॥ पयः पीयूषसदृशं नवे तु विषोपमम् ॥ चन्दनाद्यं हितं तैलं शोषाधिकारकीर्तितम् ॥ तथा नारायणं तैलं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ९०८ ॥

वातबलासक नामवाले जीर्णज्वरमे, वातकफज्वरमें कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये। जीर्णज्वर, कफकी क्षीणता और तृषा दाह आदि ज्वरमें दूधका पीना अमृतकी समान है और जो नवीन ज्वरमे दूध पिया जाय तौ विषकी सदृश अपकार करताहै ॥

शोषरोगमे जो चन्दनादि तेल आगे कहा है और

वातरोगमे जो नारायण तेल कहाहै, यह दोनों जीर्णज्वरोको अवश्य नष्ट करैहे ॥ ९०७ ॥ ९०८ ॥

इति जीर्णज्वराधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ दुर्जलजनितज्वरचिकित्सा ।

हरीतक्यादिचूर्णम् ।

हरीतकी निम्बपत्रं नागरं सैन्धवोऽनलः ॥ एषां चूर्णं सदा खादेद्दुर्जलज्वरशान्तये ॥ ९०९ ॥

हरड, नीमके पत्ते, सोंठ, सैंधानिमक और चीता, इनका चूर्ण करके नित्य सेवन करै तो दूषित जलके पीनेसे उत्पन्न हुआ ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ ९०९ ॥

अथ शुंठीक्वाथः ।

अरुचिमनलमान्द्यं पीनसश्वासकासानुदरमुदकदोषानाशु हन्यादशेषान् ॥ जनयति तनुकान्तिं चित्तनेत्रप्रसादम्पलपरिमितशुण्ठीक्षौद्रसिद्धः कषायः ॥ ९१० ॥

सोंठके चार तोले क्वाथमें सहत मिलाकर पीनेसे अरुचि, मन्दाग्नि, पीनस, श्वास, बवासीर, उदरके रोग और जल सम्बन्धी सर्व विकार नष्ट होतेहैं, शरीरमें कांति उत्पन्न करैहै तथा चित्त और नेत्रोको प्रसन्न करै है ॥ ९१० ॥

अथ दुर्जलजेता रसः ।

विषं भागद्वयं दग्धं कपर्दं पञ्चभागकम् ॥ मरिचं नागरश्चैव चूर्णं वस्त्रेण शोधयेत् ॥ ॥९११॥ आर्द्रकस्य रसेनास्य कुर्यान्मुद्गनिभां वटीम् ॥ वारिणा वटिकायुग्मं प्रातः सायञ्च भक्षयेत् ॥ ९१२ ॥ अयं रसो ज्वरे योज्यः सामे दुर्जलजेऽपि च ॥ अजीर्णाध्मानविष्टम्भशूलेषु श्वासकासयोः॥९१३॥

वत्सनाभ विष दो भाग, कौडीकी भस्म पाच (५) भाग, कालीमिर्च पाच (५) भाग और सोंठ पाच (५) भाग लेवै, सबको एकत्र पीसकर अदरकके रसमे खरल करके मूँगकी बराबर गोली बनालेवै, इन गोलियोमेंसे प्रति दिन प्रातःकाल और सध्यासमय जलके साथ सेवन करै। यह रस—आमज्वर, दूषितजलजनितज्वर, अजीर्ण, अफारा, मलबध, शूल, श्वास और खांसामे अत्यन्त हितकारक है। इस लिये इन रोगोमें अवश्य सेवन कराना चाहिये ॥ ॥ ९११–९१३ ॥

अथ पटोलादिक्वाथः ।

पटोलमुस्ताऽमृतवल्लिवासकं सनागरं धान्यकिराततिक्तकम् ॥ कषायमेषां मधुना पिबेन्नरो निवारयेद्दुर्जलदोषमुल्वणम् ॥ ९१४ ॥

पटोलपत्र, नागरमोथा, गिलोय, अडूसा, सोंठ, धनियाँ और चिरायता, इनके क्वाथमें सहत डालकर पिये तो—दुष्ट जलके पीनेसे उत्पन्न हुए सब दोप नष्ट होजाते हैं ९१४

अथ किरातादिचूर्णम् ।

किराततिक्तात्रिवृदम्बुपिप्पलीविडंगविश्वाकटुरोहिणीरजः ॥ निहन्ति लीढं मधुनाऽतिसत्वरं सुदुस्तरं दुर्जलदोषजं ज्वरम् ९१५ ॥

चिरायता, निसोत, सुगंधवाला, पीपल, वायविडंग, सोंठ और कुटकी, इनका चूर्ण करके सहतमे मिलाकर चाटै तो बहुत शीघ्र दुष्ट जलसे उत्पन्न हुए दुस्तर ज्वरको नष्ट करैहै ॥ ९१५ ॥

अथ शुण्ठ्यादिकल्कः ।

भोजनाग्रे नरैर्भुक्तं शुण्ठ्यजाज्यभयोत्थितम् ॥ कल्कन्तु सेवितं नित्यं नानादेशोद्भवं जलम् ॥ ९१६ ॥

भोजन करनेसे पहिले नित्य सोंठ, जीरा और हरड, इनका कल्क सेवन करै तो अनेक देशोंमें जलके पीनेसे उत्पन्नहुए ज्वर शान्त होजाते हैं ॥ ९१६ ॥

अथार्द्रकादिकल्कः ।

सहार्द्रकयवक्षारौ पीत्वा कोष्णेन वारिणा ॥ नानादेशसमुद्भूतं वारिदोषमपोहति ॥ ९१७ ॥

अदरक और जवाखारका कल्क बनाकर कुछेक गरम जलके साथ पीनेसे अनेक देशोंके जलके पीनेसे उत्पन्न हुए रोग दूर होजाते हैं ॥ ९१७ ॥

अथ साध्यज्वरलक्षणम् ।

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ॥ ९१८ ॥

जो बलवान् रोगीको अल्प दोषोंसे उत्पन्न हुआ उपद्रव रहित ज्वर हो तो साध्य समझना ॥ ९१८ ॥

अथ ज्वरोपद्रवाः ।

श्वासो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिस्तृष्णातीसारविड्ग्रहाः ॥ हिक्काकासाङ्गदाहाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥ ९१९ ॥

श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, तृषा, अतीसार, मलबंध, हिचकी, खाँसी और शरीरमें दाह, ये दश, ज्वरके उपद्रव हैं ॥ ९१९ ॥

अथ ज्वरोपद्रवचिकित्सा ।

सञ्जातोपद्रवो व्याधिस्त्याज्यो न स्याच्चिकित्सकैः॥ व्याधौ शान्ते प्रणश्यन्ति सद्यः सर्वेऽप्युद्रवाः ॥ ९२० ॥ अतो व्याधिं जयेद्यत्नात्पूर्वं पश्चादुपद्रवान् ॥ भिषग्यः कुशलः सोऽत्र जयेत्पूर्वमुपद्रवम् ॥ ॥ ९२१ ॥ तेष्वपि प्रचुरेषु प्राङ् नाशयेदाशुकारिणम् ॥ मूलव्याधिं जयेत्पूर्वं यत्र यो वा भवेद्बली ॥ अविरोधेन कार्या तदुभयोरपि च क्रिया ॥ ९२२ ॥

जिन रोगोंमें उपद्रव हों उन रोगोंकी चिकित्सा करना वैद्य त्याग न देवै, क्योंकि रोगकी शांति होनेके पश्चात् सब उपद्रव नष्ट होजाते हैं, इसकारण प्रथम यत्नपूर्वक व्याधिको जीतै और उसके पश्चात् उपद्रवोंको जीतै, किन्तु चतुर वैद्य तो प्रथम उपद्रवोंको ही जीतते हैं और बहुतसे उपद्रवोमें जो उपद्रव अधिक दुःखदायक हो उसीको प्रथम यत्नसे जीतना चाहिये ॥ और जो मूलव्याधि बलवान् हो और उपद्रव बलहीन हों तो प्रथम मूल व्याधिहीको जीतना चाहिये । अथवा विरोधरहित अर्थात् जो रोग और उपद्रवोंके परस्पर विरुद्ध नहीं हो, इस प्रकार एक ही समय इन दोनोंकी चिकित्सा करनी उचित है ९२०-९२२॥

अथ ज्वरे श्वासचिकित्सा ।

सिंही व्याघ्री ताम्रमूली पटोली शृङ्गी पद्मा पुष्करं रोहिणी च ॥ शाकं शय्याः शैलमल्ल्याश्च बीजं श्वासं हन्यात्सन्निपातं दशांगः ॥ ९२३ ॥

सिंही [बडीकटैया] व्याघ्री लघुकण्टकारी । ताम्रमूली दुरालभा । रोहिणी [कुटकी] शैलमल्ली [कौरआ] ।

कटेरी, कटाई, जवासा, पटोलपत्र, काकडासिंगी, पद्माख, पोहकरमूल, कुटकी, कचूर और इन्द्रजौ, इन दश औषधियोंका प्रयोग सन्निपातो द्रव, श्वास रोगको नष्ट करै है ९२३॥

अथ द्वात्रिंशत्क्वाथः ।

भार्गीनिम्बघनाभयाऽमृतलताभूनिम्बवासाविषात्रायन्तीकटुकावचात्रिकटुकश्योनाकशक्रद्रुमैः ॥ रास्नायासपटोलपाटलशटीदार्वीविशालात्रिवृद्ब्राह्मीपुष्करसिंहिकाद्वयनिशाधात्र्यक्षदेवद्रुमैः ॥ ९२४ ॥ क्वाथोऽयं खलु सन्निपातनिवहान्द्वात्रिंशतां पानतो दुर्द्धर्षान्निजतेजसा विजयते सर्पान्गरुत्मानिव॥ किञ्च श्वासबलासकासगुदरुग्वृद्ध्रोगहिक्कामरुन्मन्यास्तम्भगलामयार्दितमलाविष्टम्भवर्ध्मानपि ॥ ९२५ ॥

विषा अतिविषा । शक्रद्रुमः बकुल इति लोके । देवद्रुमः देवदारुः ॥

भारंगी, नीम, नागरमोथा, हरड, गिलोय, चिरायता, अडूसा, अतीस, त्रायमान, कुटकी, वच, सोंठ, मिरच, पीपल, सोनापाठा, कुडेकी छाल, (किसी मतसे मौलसिरी) रासना, जवासा, पटोलपत्र पाढल, कचूर, दारुहलदी, इन्द्रायन, निसोत, ब्राह्मी, पोहकरमूल, कटेरी, कटाई, हलदी, आमले, बहेडा और देवदारु, इन बत्तीस औषधियोंको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पीनेसे जिसप्रकार गरुड अपने पराक्रमसे सर्पोंको परास्त करताहै उसीप्रकार यह क्वाथ अपने प्रभावसे घोर सन्निपातोको जीतताहै,

तथा श्वास, खाँसी, कफ, गुदाके रोग, बवासीर आदि छातीकी पीडा, हिचकी, वातविकार, नाडका जकडजाना, गलरोग, अर्दितरोग, मलविष्टम्भ और वर्ध्मरोग (वद) को दूर करैहै ॥ ९२४ ॥ ९२५ ॥

अथ पिप्पल्यादिचूर्णम्।

मधुना कृष्णाकट्फलकर्कटशृंगीभवं चूर्णम् ॥ श्वासामये महोग्रे लीढ्वा लोकः सुखी भवति ॥ ९२६ ॥ वन्योपलाग्नितापितदात्रस्याग्रेण पञ्जरे दाहः ॥ अपहरति श्वासामयमसंशयं भाषितं मुनिभिः ॥ ९२७ ॥

पीपल, कायफल और काकडाशिंगी, इनका चूर्ण करके सहतमे मिलाकर चाटै तो अत्यत उग्र श्वास वाले-रोगी सुखी होतेहैं ॥ ९२६ ॥

अरने उपलोंकी अग्निमें दरांतको तपाकर उसके अग्र भागका हड्डी पजरमें दाग देवै तो श्वास रोग अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ ९२७ ॥

अथ ज्वरे मूर्च्छाचिकित्सा।

आर्द्रकस्य रसैर्नस्यं मूर्च्छायामाचरेन्नरः॥ अञ्जनञ्च प्रयुञ्जीत मधुसिन्धुशिलोषणैः॥ ॥ ९२८ ॥ शीताम्भसाऽक्षिसेकः सुरभिधूपः सुगन्धिपुष्पञ्च॥ मृदुतालवृन्तवातः कोमलकदलीदलस्पर्शः ॥ ९२९ ॥

मूर्च्छाको दूर करनेके लिये रोगीको अदरकके रसका नास देवै अथवा सहत, सैंधानोन, मैनशिल और कालीमिरच, इनका अजन बनाकर नेत्रोंमें लगावै । शीतल जलसे नेत्रोको सींचै । सुगधित धूप देवै । सुगधित पुष्पोंका उपयोग करै । नरम ताडके पखेकी मन्द पवन करै और कोमल केलेके पत्तोका स्पर्श करावै॥९२८॥९२९॥

अथ ज्वरेऽरुचिचिकित्सा।

अरुचौ तु शृंगवेरजरसकैः सोष्णैः ससिन्धुजैः कवलः ॥ सिन्धूत्थमातुलुंगीफलकेशरधारणं वक्त्रे ॥ ९३० ॥

अरुचि होय तो अदरकके रसको गरम करके उसमे सैंधानिमक डालकर उसका कवल बनाकर मुखमें रक्खै, और विजौरे नींबूकी केसरको सैंधेनिमकके साथ मुखमें धारण करै ॥ ९३० ॥

अथ ज्वरे वमनचिकित्सा।

क्वाथो गुडूच्याः समधुः सुशीतः पीतः प्रशान्तिं वमनस्य कुर्यात् ॥ विण्मक्षिकाणां मधुनाऽवलीढा सचन्दना शर्करयाऽन्विता वा ॥ ९३१ ॥

गिलोयका क्वाथ बनाकर शीतल करके सहत मिलाकर पिये तो वमन (रद्द) शात होजातीहै । मक्खियोंकी विष्ठाको और चन्दनको सहतके साथ अथवा मिश्रीके साथ मिलाकर चाटनेसे वमन शात होतीहै ॥ ९३१ ॥

अथ ज्वरे तृषाचिकित्सा।

दन्तशठबीजपूरकदाडिमबदरैः सचुक्रकैर्वदने ॥ लेपो जयति पिपासामथ रजतगुटी मुखान्तःस्था ॥ ९३२ ॥ शीतं पयः क्षौद्रयुतं निपीतमाकण्ठमाश्वेव तदुद्वमेच्च ॥ तर्षं महान्तं शमयेद्धि वक्त्रे धृत्वाऽथ वा क्षौद्रवटाग्रलाजान् ॥ ९३३ ॥

विजौरा नींबू, जम्भीरीनीबू, अनार, बेर और चूका, इनको एकत्र पीसकर मुखमें लगावै तो तृषा शात होजातीहै । मुखके भीतर रूपेकी गोली रखनेसे तृषा शात होजातीहै । शीतलदूधमे सहत मिलाकर गले तक पीलेवै, और फिर वमन करदेवै, इसप्रकार कईबार करनेसे तृषा शात होतीहै । सहत, वडका अग्रभाग और खीलै इनको एकत्र पीसकर मुखमे धारण करनेसे तृषा (प्यास) शात होजातीहै ॥ ९३२ ॥ ९३३ ॥

अथ ज्वरेऽतीसारचिकित्सा।

लंघनमेकं मुक्त्वा नचान्यदस्तीह भेषजं बलिनः ॥ समुदीर्णदोषनिचयं शमयति तत्पाचयेदपि च ॥ ९३४ ॥ वत्सादनी वत्सकवारिवाहविश्वम्भरानिम्बविषाः सविश्वाः ॥ ज्वरेऽतिसारं त्वरितं जयन्ति विश्वामृतावत्सकवारिवाहाः ॥ ९३५ ॥ पाठामृतापर्पटमुस्तविश्वाकिराततिक्तेन्द्र-

यवान्विपाच्य॥ पिबन्हरत्येव हठेन सर्वा-ञ्ज्वरातिसारानपि दुर्निवारान् ॥९३६॥

बलवान् ज्वरमें अतीसारवाले मनुष्यको केवल लघनके सिवाय अन्य कोई औषधि नहीं है, क्योंकि, लघन-बढेहुए दोषोंको शमन और पाचन करै है ।

गिलोय, इन्द्रजौ, नागरमोथा, चिरायता, नीम, अतीस और सोंठ, इनका क्काथ बनाकर पीनेसे ज्वरातीसार शीघ्रही दूर होताहै ।

सोंठ, गिलोय, इन्द्रजौ, और नागरमोथा, इनका क्काथ भी ज्वरमें उत्पन्न हुए अतीसारको नष्ट करैहै ।

पाढ, गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, सोंठ, चिरायता और इन्द्रजौ, इनका क्काथ बनाकर पिया जाय तो यह क्काथ ज्वरमें उत्पन्न हुए दुस्तर अतीसारको भी बलात्कारसे नष्ट करदेताहै ॥ ९३४-९३६ ॥

अथ ज्वरे मलबंधचिकित्सा ।

विड्ग्रहे वातजित्कर्म कुर्याद्वातानुलोमनम् ॥ मलं प्रवर्त्तयेदाशु तीक्ष्णाभिः फलवर्तिभिः॥९३७॥पथ्यारग्वधतिक्तात्रिवृदामलकैः शृतं तोयम् ॥ जीर्णज्वरे विबन्धे दद्याद्वाश्वेव विड्ग्रहः शाम्येत् ॥ ९३८ ॥

ज्वरमें मल रुकगया हो तो वातको अनुलोमन करनेवाली और वातको हरनेवाली क्रिया करनी चाहिये ।

गुदामें तीक्ष्ण औषधियोंकी बनाई हुई फलवर्ती प्रयोग कराकर तत्काल मलको उतारे । और जो जीर्णज्वरमें मल बंध हुआ होय तो हरड, अमलतास, कुटकी, निसोत और आमला, इनका क्काथ बनाकर सेवनकरै इससे तत्काल मलबंध शात होजाताहै ॥ ९३७ ॥ ९३८ ॥

अथ ज्वरे हिक्काचिकित्सा ।

नीरेण सिन्धूत्थरजोऽतिसूक्ष्मं नस्येन नूनं विनिहन्ति हिक्काम्॥शुण्ठी हठाद्वा सितया समेता धूपोऽथ वा हिंगुसमुद्भवश्च॥९३९॥

सैंधेनिमकका अत्यत बारीक चूर्ण करके पानीके साथ नास देनेसे हिचकी दूर होजातीहै । वा खांडके साथ सोंठका नास देनेसे बलात्कारसे हिचकी दूर होतीहै । अथवा हींगकी धूनी देनेसे हिचकी नष्ट होजातीहै ॥९३९॥

अथ ज्वरे कासचिकित्सा ।

कासे कणा कणामूलं कलिङ्गफलं रजः॥ सविश्वभेषजं लिह्यान्मधुना वा वृषाद्रसम् ॥ ९४० ॥

रजः पर्पटकम् ॥

पुष्करमूलकटुत्रिकशृंगीकट्फलयासककारविकाभिः ॥ मधुललिताभिरयं खलु लेहः कासरिपुः कफरोगहरश्च ॥९४१॥

ज्वरमें खाँसी उत्पन्न हुई होय तो पीपल, पीपलामूल, इन्द्रजौ, पित्तपापडा और सोंठ, इनका चूर्ण करके सहतके साथ चाटै । अथवा अडूसेके रसको सहतके साथ सेवन करै तो खाँसी दूर होतीहै ॥ ९४० ॥

पोहकरमूल, त्रिकुटा-सोंठ, पीपल, मिरच, काकडासिंगी, कायफल, जवासा और कलौंजी, इनका चूर्णकरके सहतमें मिलाकर चाटनेसे खाँसी और कफसंबंधी रोग नष्ट होजातेहैं ॥ ९४१ ॥

अथ ज्वरे दाहचिकित्सा ।

दाहाधिकारे लिखितं दाहे कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ परं ज्वरे विरुद्धं यन्नोचितं तच्चिकित्सितम् ॥ ९४२ ॥

ज्वरमें जो दाह उत्पन्न हुई होय तो दाहाधिकारमें कही हुई सम्पूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये और उसमें जो चिकित्सा ज्वरके विरुद्ध बढानेवाली होय उसको छोड देवै ॥ ९४२ ॥

अथ सुखसाध्यज्वरलक्षणम् ।

सन्तापोऽभ्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनाञ्च मार्दवम् ॥ बहिर्वेगस्य लिंगानि सुखसाध्यत्वमेव च ॥ ९४३ ॥

तृष्णादीत्यादिशब्देनान्तर्दाहसन्ध्यस्थिव्यथाश्वासा गृह्यन्ते तेषां मार्दवमल्पता बहिर्वेगस्य ज्वरस्य इति शेषः ॥

वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात् ॥ प्राकृतः सुखसाध्यस्तु ज्वरः सुरभिसम्भवः ॥ ९४४ ॥

सुरभिर्वसन्तः ॥

ऊपर अधिक सताप हो और तृषा, अतर्दाह, सधि (जोड) और अस्थि (हड्डी) योमे पीडा, एव श्वास इनकी अल्पता हो, ये बहिर्वेग ज्वरके लक्षण हैं और वह सुखसाध्य है।

वर्षाऋतुमे वायुसे, शरद्ऋतुमे पित्तसे और वसन्त ऋतुमे जो कफसे ज्वर आताहै उसको प्राकृत (ऋतुके स्वभावके अनुसार उत्पन्न हुआ) जानना, इनमे वसन्त ऋतुमें उत्पन्न हुआ प्राकृत ज्वर सुखसाध्य है ९४३–९४४

अथ कष्टसाध्यज्वरलक्षणम्।

वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ ९४५ ॥

अन्यः प्राकृतादन्यः वैकृतः ॥

प्राकृतसे विपरीत वैकृत ज्वर कष्टसाध्य है और वायुसे उत्पन्न हुआ प्राकृतज्वर भी (अन्तर्दाह तृषाकी अधिकता, प्रलाप, श्वास, भ्रम, सधि और हड्डियोमें शूल, पसीनेका अभाव, दोष और मलका अवरोध, इन अन्तर्वेगी ज्वरके लक्षणोसे युक्त, कष्टसाध्य है) ॥ ९४५ ॥

अथ वर्षादौ दोषप्रधानता।

वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् ॥ कुर्यात्पित्तश्च शरदि तस्य चानुबलः कफः ॥ ९४६ ॥ तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् ॥ कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥ ९४७ ॥

तत्प्रकृत्या तस्य पित्तस्य प्रकृत्या स्वभावेन। यत उक्तम्–"कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लंघनं बहु"। विसर्गाच्च शरदो विसर्गकालत्वाच्च। यत उक्तम्–वर्षाशरद्धेमन्ता विसर्गकालास्तत्र उपचितबलाः प्राणिनो भवन्ति सोमस्य बलवत्त्वादिति। तत्र शरदि पित्तज्वरे अनशनाद्भयं न वसन्ते कफज्वरेऽपि कफप्रकृत्या लंघनाद्भयं न भवति। किन्तु वसन्तस्यादानकालत्वान्निःशंकं न कर्तव्यम्। यत उक्तम्–शिशिरवसन्तग्रीष्मास्त्वादानकालास्तत्रापचितबलाः प्राणिनो भवन्ति सूर्यस्य बलवत्त्वादिति। एतेनेदमुक्तम्। वर्षासु वायुः प्रधानम्। पित्तश्लेष्माणावप्रधानौ। शरदि पित्तं प्रधानम् कफोऽप्रधानः। वसन्ते श्लेष्मा प्रधानो वातपित्ते अप्रधाने ॥ तत्र प्रधानस्य प्राधान्येन चिकित्सा कर्त्तव्या। तथा च उक्तम्–

संसर्गे यो गरीयान्स्यादुपक्रम्यः स वै भवेत् ॥ शेषदोषाविरोधेन सन्निपाते तथैव च ॥ ९४८ ॥ इति ॥

संसर्गे दोषद्वयसंसर्गे। गरीयान्प्रधानः ॥ अन्तर्दाहोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ॥ सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः ॥ अन्तर्वेगस्य लिंगानि कष्टसाध्यत्वमेव च ॥ ९४९ ॥

वर्चोविनिग्रहः पुरीषाऽप्रवृत्तिः ॥

वर्षाऋतुमें वायु प्रधान है और पित्त तथा कफ अप्रधान हैं, इस कारण वर्षाऋतुमे दुष्ट हुआ पवन पित्त और कफकी सहायतासे ज्वरको उत्पन्न करता है।

शरद् ऋतुमें पित्त प्रधान है और कफ अप्रधान है. इसकारण शरद् ऋतुमे पित्त दुष्ट होकर कफकी सहायतासे पित्तज्वरको उत्पन्न करैहै।

वसन्त ऋतुमे कफ प्रधान है और वायु तथा पित्त अप्रधान हैं इसकारण वसन्त ऋतुमें कफ दुष्ट होकर वात और पित्तके साथ मिलकर कफज्वरको उत्पन्न करैहैं।

पित्तके स्वभाव होनेसे और शरद ऋतु विसर्ग कालके होनेसे शरद् ऋतुमे उत्पन्न हुए ज्वरम लघनसे कुछ भय नही है।

कफ और पित्त ये द्रवधातु हैं, इसकारण यह बहुत लघनोको सह सक्तेहैं ऐसा कहा है। शरद् ऋतु विसर्गकाल है इसके विषयमे प्राचीन ग्रन्थकार भी कहतेहैं कि–

वर्षा, शरद् और हेमन्त, ये तीन ऋतु विसर्गका काल हैं, इसकारण इनमें चन्द्रमाके बलवान् होनेसे सर्वप्राणी अधिक बलवान् होते हैं ।

यद्यपि वसन्त ऋतुमें उत्पन्न हुए कफज्वरमें भी कफका स्वभाव होनेसे लघनसे कुछ भय नहीं है, तथापि वसन्त ऋतु आदानकाल होनेसे उसमें निःशंकपनेसे लघन नहीं कराने चाहिये । कहा भी है कि "शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म, ये तीन ऋतु आदानका काल हैं इस लिये इनमें सूर्यके बलवान् होनेसे सर्व प्राणी हीनबलवाले होतेहैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि–वर्षाऋतुमें वायु प्रधान है, पित्त और कफ अप्रधान हैं, शरदऋतुमें पित्त प्रधान है और कफ अप्रधान है और वसन्त ऋतुमें कफ प्रधान है और वायु तथा पित्त अप्रधान हैं" प्राकृत प्रधान दोषकी चिकित्सा प्रधानतासे करै, क्योंकि ऐसा करना चाहिये कि जो अप्रधानके लिये निषिद्ध न होय, वैकृतज्वरमें भी प्रधान दोषकी चिकित्सा प्रधानतासे करनी चाहिये । कहा भी है कि "दोषोंके संसर्गमें और तीन दोषोंके संसर्गरूप सन्निपातमें जो दोष प्रधान होय उसकी चिकित्सा करै, और इस बातपर पूर्ण ध्यान रक्खै कि, अप्रधान दोषोंके विरुद्ध नहीं होवै ॥ ९४६–९४९ ॥

अथासाध्यज्वरलक्षणम् ।

ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गम्भीरो दीर्घरात्रिकः ॥ असाध्यो बलवान्यश्च केशसीमन्तकृज्ज्वरः ॥ ९५० ॥

दीर्घरात्रिकः बहुरात्रानुबन्धी, केशसीमन्तकृत् प्रभावात्केशेषु सीमन्तं यः करोति ।

क्षीण मनुष्य और सूजनवाले मनुष्यके, उत्पन्न हुआ ज्वर, गभीर ज्वर, बहुत कालसे आनेवाला ज्वर, बलवान् ज्वर और जो ज्वर अपने प्रभावसे बालोंमें मांगसी काढ देवै, ऐसा ज्वर असाध्य है ॥ ९५० ॥

गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया ॥ आनद्धत्वेन चात्यर्थं कासश्वासोद्गमेन च ॥ ९५१ ॥

आनद्धत्वेन विबद्धमलत्वेन ॥

अन्तर्दाह, तृषा, मलकी विबन्धता (न उतरना), खांसी और श्वासकी अधिकता, जिसमें ये लक्षण होयँ उसको गम्भीर ज्वर जानना ॥ ९५१ ॥

अथ सामान्यज्वरे क्रमेण कर्णमूलोत्पन्नशोथसाध्यासाध्यता ।

ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः ॥ क्रमादसाध्यः खलु कृच्छ्रसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ ९५२ ॥

ज्वर आनेसे पहिले जो कानकी जडमें सूजन उत्पन्न होय तो उसको असाध्य जानना । ज्वरके मध्यमें जो कानकी जडमें सूजन उत्पन्न होय तो उसको कष्टसाध्य जानना और जो ज्वरके अन्तमें कानकी जडमें सूजन उत्पन्न होय तो उसको सुखसाध्य जानना ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ ९५२ ॥

अथारिष्टम् ।

रोगिणो मरणं यस्मादवश्यम्भावि लक्ष्यते ॥ तल्लक्षणमरिष्टं स्याद्रिष्टमप्यभिधीयते ॥ ९५३ ॥ हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः ॥ ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः ॥ ९५४ ॥

शीघ्रमिन्द्रियनाशनः उत्पन्नमात्र एव चिकित्स्यमानोऽपि इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां शक्तिं यो नाशयति । अन्यच्च अरिष्टमाह–

विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा ॥ शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ ९५५ ॥

विसंज्ञः विगतज्ञानः । ताम्यते नष्टहर्षः । शेते निपतितो वा अत्रापि वाशब्द एवार्थः । निपतित एव तिष्ठति न च उत्थातुं समर्थः । तथा सन् शेते वा । शीतार्दितः बहिः । अन्तरुष्णः अन्तर्दाहवान् । अन्यच्च–

यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान् ॥ वक्रेण चैवोच्छ्वसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम् ॥ ९५६ ॥

हृष्टरोमा रोमांचवान्। हृदि संघातशूलवान्सान्निपातिकशूलवान्। वक्त्रेण चैव उच्छ्वसिति न तु नासिकया। अन्यच्च–

हिक्काश्वासतृषायुक्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम्॥ सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः॥ ९५७॥

क्षपयति समापयतीत्यर्थः॥ अन्यच्च–

हतप्रभेन्द्रियं क्षाममरोचकनिपीडितम्॥ गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत्॥ ९५८॥

हतप्रभेन्द्रियम्, हता प्रभा दीप्तिर्येषाम् अथ वा हता प्रभा प्रतिमा विषयग्रहणशक्तिर्येषां तथाविधानि इन्द्रियाणि यस्य तं हतप्रभेन्द्रियम्। क्षामं क्षीणम्। गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं गम्भीरः उक्तलक्षणकः तीक्ष्णवेगः अतिदुःसहवेगः ताभ्यामार्तं दुःखितम्॥ अन्यच्च–

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे॥ शेफसस्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः॥ ९५९॥

व्याख्यातोऽयं श्लोकः॥

जिन लक्षणोंसे रोगीका मरण जाना जाय उन लक्षणोंको आरिष्ट अथवा रिष्ट कहतेहैं॥ जो ज्वर बहुत बलवान् कारणोंसे उत्पन्न हुआ हो, और बहुतसे लक्षणों युक्त होय, और जिसके उत्पन्न होते ही चिकित्सा करने पर भी नेत्रादि इन्द्रियोंकी शक्तिका नाश होगयाहो, उसको शीघ्र प्राणनाशक जानना॥

जो मनुष्य ज्ञानशून्य बेहोश होगया हो, हर्षसे बिलकुल रहित होगया हो, निरंतर पडाही रहा करै, कभी उठाया ही नहीं जाय, अथवा असमर्थ होकर नित्य सोया ही करै, ऊपरसे शीतसे पीडितहो और भीतर दाहसे व्याकुल हो, वह मनुष्य ज्वरसे मृत्युको प्राप्त होताहै॥

जिस मनुष्यके रोमाच होआते हों, नेत्र लाल होगये हो, हृदयमें सान्निपात सम्बन्धी शूलकी पीडा होतीहो और नाकसे श्वास नहीं लेसकै, मुखसे ही श्वास लेताहो, उस मनुष्यको ज्वर मारदेताहै॥

जो हिचकी, श्वास और तृषासे पीडित होय, मूढ होगया हो, नेत्र फूटकर निकलेसे हो निरतर ऊँचा श्वास लियाकरे और क्षीण होगया हो, उस मनुष्यको ज्वर मारदेताहै॥

जिसकी काति नष्ट होगई हो, जिसकी इन्द्रियोकी शक्ति अपने अपने विषयको ग्रहण करनेकी नष्ट होगई हो, जो क्षीण होगया हो, जो गम्भीर ज्वरसे पीडित हो, जो अत्यत तीव्र वेगवाले ज्वरसे पीडित होय और जो अरुचिसे पीडित होय, उस ज्वरवाले रोगीको वैद्य छोड देवै॥ जब ज्वर वीर्यके स्थानमे पहुँच जाताहै तब लिगमें शिथिलता उत्पन्न होतीहै और वीर्य अधिकतर निकलताहै, ऐसा शुक्रगत ज्वर मनुष्यको मारदेताहै॥ ९५३–९५९॥

अथ विषमज्वराऽरिष्टम्।

आरम्भाद्विषमो यस्य यस्य वा दीर्घरात्रिकः॥ क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गम्भीरो यस्य हन्ति तम्॥ ९६०॥

यस्य आरम्भाद्विषमः प्रथममेव विषमः न तु ज्वरोत्सृष्टस्य। यस्य दीर्घरात्रिकः यस्य क्षीणस्य अतिरूक्षस्य च गम्भीरो भवति तं विषमो दीर्घरात्रिको गम्भीरश्च हन्तीत्यर्थः। इति ज्वराधिकारः॥

प्रथम अन्य प्रकारके सामान्य ज्वर आये विनाही जिसको विषम ज्वर उत्पन्न हुआ हो, अथवा जिसको बहुत कालसे ज्वर आताहो अथवा क्षीणहुए और अत्यत रूखे मनुष्योंको गम्भीर ज्वर उत्पन्न हुआ होय तो उनको वही ज्वर मार देताहै॥ ९६०॥

इति ज्वराधिकार सम्पूर्ण।

अथातिसाराधिकारः।

अतीसारनिदानम्।

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः॥ विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चापि भोजनैः॥ १॥ स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः॥ शोकदुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यतुपर्ययैः॥ २॥ जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः॥ नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते॥ ३॥

वायुरोग), अलसक (जिसमें पेट अफरकर मल तथा मूत्र बंद होजाताहै) अथवा दंडकालसक (विपूचिका भेद), अफारा, संग्रहणी, बवासीर, भगन्दर, सूजन, पाण्डुरोग, प्लीहा, गुल्म, प्रमेह, उदर रोग और ज्वरादि अनेक विकार उत्पन्न होतेहैं ॥ १०-११ ॥

डिम्भस्थः स्थविरस्थश्च वातपित्तात्मकश्च यः ॥ क्षीणधातुबलश्चापि बहुदोषोऽतिविश्रुतः ॥ आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरणं भवेत् ॥ १२ ॥ लंघनमेकं मुक्त्वा नचान्यदस्तीह भेषजं बलिनः ॥ समुदीर्णदोषनिचयं तत्पाचयेत्तथा शमयेत् ॥ १३ ॥

परन्तु जो वह आमातीसार बालक और वृद्धके उत्पन्न हुआ हो तथा वह रोगी वातपित्त स्वभाववाला हो, धातु क्षीण और बलहीन हो, अनेक दोषयुक्त हो और जिसके बहुत मलस्राव हुआ हो, ऐसे अतीसार रोगीको आमयुक्त होनेपर भी मलरोधक औषधि देकर दस्त रोकने चाहिये, क्योंकि ऐसे रोगी-पाचन औषधि देनेसे मरजातेहैं ॥ १२ ॥

अतीसारमें बलवान् रोगीको लंघनके सिवाय अन्य औषधि ही नहीं देनी चाहिये, क्यों कि लंघन बढे हुए दोषोंको शमन करतेहैं और पाचन भी करते हैं ॥ १३ ॥

अथ जलविधानम् ।

लंघन एव दोषः दुःसहपिपासायां दोषपाकार्थं षडंगविधिना अर्द्धश्रृतम् योगचतुष्टयमाह-

धान्याम्बुभ्यां श्रृतं तोयं तृष्णादाहातिसारिणे ॥ ह्रीबेरशृंगवेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा ॥ मुस्तोदीच्यश्रृतं शीतं प्रदातव्यं पिपासवे ॥ १४ ॥

जो अतीसारवाले रोगीको दाह (जलन) और अधिक तृषा (प्यास) होवे तो उसको धनिया और सुगंधवालाको जलमें औटाकर अर्द्धहीन शेष क्वाथ करके तृषादाहयुक्त अतीसारमें पिलावै (१) अथवा सुगन्धवाला और सोंठके द्वारा पकाया हुआ जल शीतल करके पीनेको देवै । (२) अथवा नागरमोथा और पित्तपापडा, इनके द्वारा जलको सिद्धकर शीतल करके पीनेको देवै । (३) अथवा नागरमोथा और सुगंधवाला, इनके द्वारा पकाया हुआ जल शीतल करके पीनेको देवै (४) ॥ १४ ॥

अथ लंघनान्तेभोजनम् ।

हितं लंघनमेवादौ पूर्वरूपेऽतिसारिणे ॥ कार्यं वाऽनशनस्यान्ते प्रद्रवं लघु भोजनम् ॥ १५ ॥

अतीसारके जब पूर्वरूपके लक्षण होनेलगें तो प्रथम लंघन (उपवास) कराने उत्तम हैं, पश्चात् लंघनके अन्तमें द्रव (पतले) और हलके पदार्थ भोजन करावै ॥ १५ ॥

अथ पथ्यादिक्वाथः ।

पथ्यादारुवचामुस्तैर्नागरातिविषान्वितैः ॥ आमातीसारनाशाय क्वाथमेभिः पिबेन्नरः ॥ १६ ॥

अमातीसारको नष्ट करनेके लिये हरड, दारुहलदी, वच, नागरमोथा, सोंठ और अतीस, इनका क्वाथ बनाकर पिये ॥ १६ ॥

अथ पाठादिचूर्णम् ।

पाठाहिंग्वजमोदोग्रापञ्चकोलाह्वजं रजः ॥ उष्णाम्बुपीतं सरुजं जयत्यामं ससैन्धवम् ॥ १७ ॥

पाढ, हींग, अजमोद, वच, पीपल, पीपलामूल, चव्य चीता और सोंठ इनका चूर्ण बनाकर सेंधानिमक डालकर गरम जलसे पान करै तो पीडायुक्त आमातीसार नष्ट होजाताहै ॥ १७ ॥

अथ हरीतक्यादिकल्कः ।

हरीतकी सातिविषा हिंगु सौवर्चलं वचा ॥ सैन्धवश्चापि संपिष्य पाययेदुष्णवारिणा ॥ आमातिसारं योगेन पाचयित्वा चिकित्सयेत् ॥ १८ ॥ आमातिसारो योगेन यद्येतेन न शाम्यति ॥ न तं योगशतेनापि चिकित्सति चिकित्सकः ॥ १९ ॥

हरड, अतीस, हींग, काला निमक, वच और सेंधानिमक इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पिये, यह योग आमातीसारमें आमको पचाकर अतीसारको

नष्ट करदेताहै। यदि इस प्रयोगको सेवन करनेसे जो आमातिसार शात नही हो तो फिर अन्य सैकडो प्रयोगोंसे भी शात नहीं होगा ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ वत्सकादिक्काथः।

वत्सकातिविषाबिल्वं मुस्तकं वालकं शटी ॥ अतीसारं जयेत्सामं चिरजं रक्तशूलजित् २०

इन्द्रजौ, अतीस, बेलगिरी, नागरमोथा, सुगधवाला और कचूर इनका क्वाथ बहुत कालके उत्पन्न हुए आम अतीसारको दूर करैहै तथा रुधिरविकार और शूलको नष्ट करैहै ॥ २० ॥

अथ शुंठीपुटपाककल्कौ।

एरण्डरससम्पिष्टं पक्कमामञ्च नागरम् ॥ आमातीसारशूलघ्नं पाचनं दीपनं परम् ॥ २१ ॥

सोठको अण्डके रसमे पीसकर फिर पुटपाकविधिसे पकावै, पश्चात् चूर्ण करके सेवन करनेसे अथवा कच्ची ही सोंठको सेवन करनेसे आमातीसार और शूल नष्ट होता है। यह पाचन और अत्यन्त दीपन है ॥ २१ ॥

अथ धान्यादिपंचकक्काथः।

धान्यवालकबिल्वाब्दनागरैःपाचितं जलम्॥ आमशूलविबन्धघ्नं पाचनं दीपनं परम् २२॥

धनिया, सुगन्धवाला, बेलगिरी, नागरमोथा और सोठ इनका क्वाथ आम, शूल और विबन्धनाशक पाचन और दीपन है ॥ २२ ॥

अथ धान्यादिचतुष्कक्काथः।

पित्ते धान्यचतुष्कन्तु शुण्ठीत्यागाद्वदन्ति हि॥रक्तेऽपि पित्तसाधर्म्याद्देयं धान्यचतुष्टयम् ॥ २३ ॥

यदि पित्तकी अधिकता होय तो सोटको छोडकर बाकीकी धनियाँ आदि चार औषधियोका क्वाथ बनाकर देवै और रुधिरका अतीसार होय तो भी रुधिरका धर्म पित्तके समान होनेसे उसमे भी यह ही क्वाथ देवै॥२३॥

अथ पक्वातीसारचिकित्सा।

लोध्रादिचूर्णम्।

सलोध्रं धातकीबिल्वमुस्ताम्रास्थिकलिङ्गकम् ॥ पिबेन्माहिषतक्रेण पक्वातीसारनाशनम् ॥ २४ ॥

लोध, धायके फूल, बेलगिरी, नागरमोथा, आमकी गुठली और इन्द्रजौ, इनका चूर्ण बनाकर भैंसके तक्र-(छाछ) के साथ पीनेसे पक्वातीसार नष्ट होताहै ॥ २४॥

समंगादियोगचतुष्टयम्।

समंगा धातकीपुष्पं मञ्जिष्ठा लोध्र एव च ॥ शाल्मलीवेष्टको लोध्रो दाडिमद्रुफलत्वचौ ॥ २५ ॥ आम्रास्थिमध्यं लोध्रश्च बिल्वमध्यं प्रियंगु च ॥ मधुकं शृंगवेरञ्च दीर्घवृन्तत्वमेव च ॥ २६ ॥ चत्वार एते योगाः स्युः पक्वातीसारनाशनाः॥ ते योगा उपयोज्याः स्युः सक्षौद्रास्तण्डुलाम्बुना ॥ २७ ॥

समंगा। लज्जालू। शाल्मलीवेष्टको मोचरसः। दाडिमस्य द्रुमफलयोः त्वचौ। प्रियंगोर्नपुंसकमत्र फले वर्तमानत्वात्। शृंगवेरमत्र शुण्ठी। दीर्घवृन्तः स्योनाकस्तस्य त्वचः। समंगादीनि चत्वारि चूर्णानि ॥

लज्जावती (छुईमुई), धायके फूल, मजीठ और लोध, इन चार औषधियोंके चूर्णको समगादि चूर्ण कहतेहै॥(१)

मोचरस, लोध, अनारके फलकी छाल और अनारके वृक्षकी छाल, इन चार औषधियोके चूर्णको शाल्मली वेष्टकादि चूर्ण कहतेहैं ॥ (२)

आमकी गुठलीकी मींग, लोध, बेलगिरी और फूल-प्रियंगू इन चार औषधियोंके चूर्णको आम्रास्थ्यादिचूर्ण कहतेहै ॥ (३)

मुलेठी, सोंठ और स्योनाककी छाल, इन तीन औषधियोंके चूर्णको मधुकादि चूर्ण कहतेहै ॥ (४)

इन चार चूर्णोंमेसे कोई सा एक चूर्ण लेकर सहतमे मिलाकर चावलोके जलके साथ पीनेसे पक्वातीसार नष्ट होता है ॥ २५–२७ ॥

पैत्तिके ॥ तदास्य जायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसार उल्वणः ॥ ४७ ॥

पित्तातीसारमें जब अधिकतर पित्तकारक पदार्थ सेवन किये जातेहैं तब मनुष्योंके घोर भयकर रक्तातीसार (रुधिरके दस्त) उत्पन्न होतेहैं ॥ ४७ ॥

अथ रक्तातिसारचिकित्सा ।

तत्र कुटजदाडिमकाथः ।

वत्सत्वग्दाडिमतरुशलाटुफलसम्भवात्वक् च ॥ त्वग्युगलं पलमानं विपचेदष्टांशसम्मिते तोये ॥ ४८ ॥ अष्टमभागशेषं क्काथं मधुना पिबेत्पुरुषः ॥ रक्तातिसारमुल्वणमतिशयितं नाशयेन्नियतम् ॥४९॥

कुडेकी छाल और अनारके कच्चे फलका छिलका यह दोनो दो दो तोले लेकर आठगुने जलमें पकावे, जब आठवां भाग जल शेष रहे तब सहत डालकर पिलावे तो अतिशयित और भयकर रक्तातीसारको नष्ट करे है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथ कुटजादिक्काथः ।

कुटजाऽतिविषा मुस्ता वालकं लोध्रचन्दनम् ॥ धातकी दाडिमं पाठा क्काथमेषां समाक्षिकम् ॥ ५० ॥ पिबेद्रक्तातिसारे तु दाहशूलप्रशान्तये ॥ कुटजादिकषायोऽयं सर्व्वातीसारनाशनः ॥ ५१ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धबाला, लोध, लालचन्दन, धायके फूल, अनार और पाढ, इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर रक्तातीसारमें उत्पन्नहुई दाह और शूलको शान्त करनेके लिये पिलावे तो यह कुटजादि क्वाथ सर्व प्रकारके अतीसारोंको नष्ट करे है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ तिलकल्कः ।

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्करापञ्चभागिकः ॥ आजेन पयसा पीतः सद्योऽतीसारनाशनः ॥ ५२ ॥

काले तिलोंका कल्क बनाकर उसमें पाँचवाँभाग सफेद खाँड मिलाकर बकरीके दूधके साथ पीवे तो यह कल्क-अतीसारको तत्काल बन्द करैहै ॥ ५२ ॥

अथ वत्सकादिक्काथः ।

सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः ॥ सामे सशूले सहशोणिते च चिरप्रवृत्ते विहितोऽतिसारे ॥ ५३ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, बेलगिरी, सुगन्धबाला और नागरमोथा, इनका क्वाथ आम, शूल और रुधिरयुक्त बहुत दिनोंके पुराने अतीसारमें परम हितकारी है ॥ ५३ ॥

अथ कृष्णमृदादिकल्कः ।

कृष्णमृन्मधुकं लोध्रं कौटजं तण्डुलाम्बुना ॥ पीतमेकत्र सक्षौद्रं रक्तसंग्राहणं परम् ॥ ५४ ॥

कालीमिट्टी, मुलेठी, लोध और इन्द्रजौ, इनका कल्क बनाकर उसमें सहत मिलाकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे रक्तातिसार शमन होजाताहै ॥ ५४ ॥

अथ गुडबिल्वः ।

गुडेन भक्षयेद्बिल्वं रक्तातीसारनाशनम् ॥ आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगहरं परम् ॥ ५५ ॥

बेलके गूदेमें गुड मिलाकर भक्षण करनेसे रक्तातीसार, आमशूल, मलबन्ध और कुक्षिरोग नष्ट होताहै ॥ ५५ ॥

अथ जम्ब्वादिस्वरसः ।

जम्ब्वाम्रामलकीनान्तु कुट्टयेत्पल्लवान्नवान् ॥ संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् ॥ तत्पीतं मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ५६ ॥

जामुन, आम और आमले इनके कोमल पत्ते लेकर उनको कूटकर रस निचोडलेवे, फिर उस रसमें सहत मिलाकर बकरीके दूधके साथ पीवे तो रक्तातिसार दूर हो ॥ ५६ ॥

अथ कुटजक्षीरम् ।

निक्काथ्य मूलममलं गिरिमल्लिकायाः सम्यक् पलद्वितयमम्बु चतुःशरावे ॥

तत्पादशेषसलिले खलु शोषणीयं क्षीरे पलद्वयमिते कुशलैरजायाः ॥ ५७ ॥ प्रक्षिप्य माषकानष्टौ मधुनस्तत्र शीतले॥ रक्तातिसारी तत्पीत्वा नैरुज्यं क्षिप्रमाप्नुयात् ॥ ५८ ॥

कुडेकी सत्तम छाल आठ तोले लेकर चार शराव (३२ तोलेका एक शराव होताहै,) जलमे विधिपूर्वक पकावै, जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेषरहै तब आठ तोले बकरीका दूध डालदेवै, जब केवल दूधमात्रही बाकी रहै तब उतार लेवै, शीतल होनेपर आठ मासे सहत मिलाकर पिलावै, इससे रक्तातीसार नष्ट होताहै ५७॥५८

अथ शतावरीकल्कः।

पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरभुग् जयेत् ॥ रक्तातिसारं पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः ॥ ५९ ॥

सतावरके कल्कको दूधके साथ पीनेसे अथवा सतावरके द्वारा सिद्ध किये हुए घृतको पीनेसे रक्तातीसार नष्ट होताहै, परन्तु इसपर दूधका भोजन करना चाहिये ५९॥

अथ नवनीतावलेहः।

गोदुग्धनवनीतं च मधुना सितया सह ॥ लीढं रक्तातिसारे तु ग्राहकं परमं मतम् ६०

गायके दूधमेंसे निकालेहुए नवनी घीको सहत और मिश्रीके साथ सेवन करनेसे रक्तातीसार नष्ट होता है॥६०

अथ चन्दनकल्कः।

पीतं मधुसितायुक्तं चन्दनं तण्डुलाम्बुना॥ रक्तातीसारजिद्रक्तपित्ततृड्दाहमेहनुत् ६१॥ चन्दनमत्र श्वेतचन्दनम् ॥

सफेद चदनको घिसकर सहत और खॉड मिलाकर चावलोंके धोवन जलके साथ पीनेसे रक्तातीसार, रक्तपित्त, तृषा, दाह और प्रमेह दूर होताहै ॥ ६१ ॥

अथ गुददाहपाकोपायः।

विरेकैर्बहुभिर्यस्य गुदं पित्तेन दह्यते ॥ पच्यते वा तयोः कार्यं सेकप्रक्षालनादिकम् ॥ ६२ ॥
आदिशब्देन लेपादिसंग्रहः ॥

पटोलयष्टीमधुकक्वाथेन शिशिरेण हि ॥ गुदप्रक्षालनं कार्यं तेनैव गुदसेचनम् ॥ ॥ ६३ ॥ दाहे पाके हितं छागीदुग्धं सक्षौद्रशर्करम् ॥ गुदस्य क्षालने सेके युक्तं पाने च भोजने ॥ ६४ ॥

बहुत दस्त होनेके कारण जो पित्तसे गुदामे दाह हो अथवा गुदा पकजाय तो गुदसेचन, प्रक्षालन और लेपादि करै ॥ ६२ ॥

पटोलपत्र और मुलेठी, इनका क्वाथ बनाकर शीतल करके उससे गुदाको धोवै अथवा उससे ही गुदाको सींचै ॥ ६३ ॥

गुदाके दाह और पाकमें मिश्री तथा सहत मिलाकर बकरीके दूधके द्वारा गुदसेचन, प्रक्षालन, पीना और भोजन करना, ये सब हितकारी हैं ॥ ६४ ॥

गुदबहिर्निःसरणचिकित्सा।

गुदनिःसरणे प्रोक्तं चाङ्गेरीघृतमुत्तमम् ॥ अतिप्रवृत्त्या महती भवेद्यदि गुदव्यथा ॥६५॥ स्विन्नमूषकमांसेन तदा संस्वेदयेद्गुदम् ॥ अथ गोधूमचूर्णस्य संश्रुतस्य तु वारिणा ॥ साज्यस्य गोलकं कृत्वा मृदु संस्वेदयेद्गुदम् ॥ ६६ ॥ गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्यान्तः प्रवेशयेत् ॥ प्रविष्टं स्वेदयेन्मन्दं मूषकस्यामिषेण हि ॥ ६७ ॥
मूषकस्यामिषेण: काञ्जिकस्विन्नेन एरण्डपत्रादिस्थापितेन स्वेदयेत् ॥
शाम्बूकमांसं सुस्विन्नं सतैललवणान्वितम्॥ ईषद् घृतेन चाभ्यज्य स्वेदयेत्तेन यत्नतः॥

॥ ६८ ॥ गुदभ्रंशमशेषेण नाशयेत्क्षिप्रमेव च॥ मूषकस्याथ वसया पायुं सम्यक्प्रलेपयेत् ॥ गुदभ्रंशाभिधो व्याधिः प्रणश्यति न संशयः ॥ ६९ ॥ चांगेरीकोलदध्यम्लक्षारनागरसंयुतम् ॥ घृतं विपक्वं पातव्यं गुदभ्रंशगदापहम् ॥ ७० ॥

चांगेरी चतुःपत्री अम्ललोणिका तस्याः स्वरसः । कोलस्य क्काथः दध्यम्लं दधिरूपमम्लम् । एतत्त्रयं मिलितं घृताच्चतुर्गुणम् । क्षारनागरयोः क्काथः ॥

कोमलं पद्मिनीपत्रं यः स्वादेच्छर्करान्वितम् ॥ एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ ७१ ॥

पद्मिनीपत्रं संशोष्य संचूर्ण्य शर्करायुक्तं खादेत् ॥ अयं तु गुदभ्रंशोऽतीसारं विनापि भवति, ततः क्षुद्ररोगेषु लिखितः। अत्र गुदस्य दाहपाकव्यथाप्रसंगाद् भ्रंशोऽपि लिखितः । चिकित्सा तु उभयत्र तुल्यैव ॥

मल त्यागते समय जो गुदा बाहेर निकल आवे तौ चांगेरी घृतका सेवन उत्तम हे ॥

अधिक दस्तोंके आनेसे जो गुदामें अत्यत पीडा उत्पन्न हुई होय तो चूहेके मासको पकाकर उससे गुदाको बफारा देवै, अथवा गेहूंके आटेको जलसे पकाकर उसमें घी डालकर गोला बनावै, उस गोलेका सुहाता सुहाता सेक करै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

जो गुदभ्रंश अर्थात् काँच बाहर निकल आवै तो उसके ऊपर स्नेहादि (तेल घी आदि) की मालिस करके उसको भीतरको प्रवेश करै । पश्चात् कोजीमे औटाये हुए और अडके पत्तो आदिपै रक्खेहुए चूहेके मासका थोडा थोडा सेक करै ।

बींधेके मासको पकाकर उसमे तेल और निमक डालकर प्रथम कुछेक घीको गुदापै मलकर पश्चात् इस मासके द्वारा विधिपूर्वक स्वेद देवै, तो गुदाका बाहर निकलना तत्काल बद होताहै ।

चूहेकी चरबीका गुदाके ऊपर अच्छे प्रकारसे लेप करनेसे निश्चय गुदभ्रंश रोग नष्ट होताहै ।

चार पत्तेकी खट्टी लोनियाका स्वरस, बेरका काथ और खट्टा दही, ये सब घीसे चौगुने लेकर सोंठ और जवाखार, इनका चूर्ण डालकर घृतको सिद्ध करै । इस घृतको पीनेसे गुदभ्रंशकी पीडा दूर होतीहै, इसको चांगेरी घृत कहतेहैं ॥ ६७–७० ॥

कमलिनीके कोमल पत्तोंको सुखाकर चूर्ण करलेवे, फिर उसमें मिश्री मिलाकर भक्षण करै तो निश्चय गुदाका निकलना बद होजाताहै ॥ ७१ ॥

यह गुदभ्रंश रोग अतीसारमे होताहै और अतीसारके विना भी उत्पन्न होजाताहै, इस कारण इसको क्षुद्र रोगोंमे कहाहै । गुदाका दाह और गुदाके पाककी पीडाके प्रसगसे यहाँपर भी लिख दिया है । अतीसारमें उत्पन्न हुए और विना अतीसारमें उत्पन्न हुए गुदभ्रंश दोनोंकी चिकित्सा एकसी जाननी ।

अथ कफातीसारलक्षणम् ।

श्वेतं स्निग्धं घनं बद्धं शीतलं मन्दवेदनम्॥ गौरवारुचिसंयुक्तं श्लेष्मणा सार्यते शकृत्७२

कफातीसारमे सफेद, चिकना, गाटा, बँदहुआ, शीत. अल्पपीडावाला, भारीपन और अरुचि सयुक्त ऐसा मल उतरता है ॥ ७२ ॥

अथ कफातिसारचिकित्सा ।

श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लंघनपाचनम्॥ योज्यश्चामातिसारघ्नो यथोक्तो दीपनो गणः ॥ ७३ ॥

कफातीसारमें प्रथम लघन और पाचन हितकारक है- तथा आमातीसारनाशक अग्निदीपक औषधिये भी प्रयोग करनी चाहिये ॥ ७३ ॥

अथ चव्यादिकाथः ।

चव्यं सातिविषामुस्तं वालबिल्वं सनागरम् ॥ वत्सकत्वक्फलं पथ्या छर्दिश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७४ ॥

चव्य, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, सोंठ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और हरड,इनका काथ वमन कफातिसारको नष्ट करैहै ॥ ७४ ॥

अथ हिग्वादिचूर्णम् ।

हिंगु सौवर्चलं व्योषमभयाऽतिविषा वचा॥ पीतमुष्णाम्बुना चूर्णमेषां श्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७५ ॥

हींग भूनी, कालानोन, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, अतीस और वच, इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीनेसे कफातीसार नष्ट होताहै ॥ ७५ ॥

अथ वातकफोत्पन्नातीसारचिकित्सा ।

क्रिमिशत्रुवचाबिल्वपाठाधान्याककट्फलम् ॥ एषां क्वाथं भिषग्दद्यादतीसारे द्विदोषजे ॥ तेषां चिकित्सा प्रोक्तैव विशिष्टा च निगद्यते ॥ ७६ ॥ कट्फलं मधुकं लोध्रं त्वग्दाडिमफलस्य च ॥ सतण्डुलजलं चूर्णं वातश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७७ ॥ चित्रकातिविषा मुस्तं बालबिल्वं सनागरम् ॥ वत्सकत्वक्फलं पथ्या वातश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७८ ॥

वैद्य वायु और कफसे उत्पन्न हुए अतीसारमें वायविडंग, बच, बेलगिरी, पाढ, धनिया और कायफल, इनका क्वाथ देवै ॥ ७६ ॥

कायफल, मुलेठी, लोध और अनारके फलकी छाल, इन सबका एकत्र चूर्ण करके चावलोंके जलके साथ पीनेसे वात कफातिसार नष्ट होताहै ॥ ७७ ॥

चीता, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, सोंठ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और हरड, इनका क्वाथ वातकफातीसारको नष्ट करे है ॥ ७८ ॥

अथ पित्तकफातीसारचिकित्सा ।

मुस्ता सातिविषा मूर्वा वचा च कुटजः समाः ॥ एषां कषायः सक्षौद्रः पित्तश्लेष्मातिसारनुत ॥ ७९ ॥

नागरमोथा, अतीस, चुरनहार और इन्द्रजौ, इनके क्वाथमे सहत डालकर पीनेसे पित्तकफातीसार नष्ट होताहै ॥ ७९ ॥

अथ सन्निपातातीसारलक्षणम् ।

तन्द्रायुक्तो मोहसादास्यशोषी वर्चः कुर्यान्नैकरूपं तृषार्तः ॥ सर्वोद्भूते सर्वलिंगोपपत्तिः कृच्छ्रैः साध्यो बालवृद्धाऽबलानाम् ॥ ८० ॥

तीनों दोषोसे उत्पन्नहुए अतीसारमे तीनों दोषोके लक्षण होते है, विशेष करके तृषाकी पीडा, तन्द्रा, मोह (बेहोसी), ग्लानि, मुखशोष और मलका रग अनेक प्रकारका होता है। बालक, वृद्ध और बलहीन मनुष्यके उत्पन्नहुआ यह त्रिदोषज अतीसार कष्टसाध्य है ॥ ८० ॥

सन्निपातातीसारचिकित्सा ।

पंचमूल्यादिक्वाथः ।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः ॥ पाठाभूनिम्बबर्हिष्ठकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥ ८१ ॥ सर्वजं हन्त्यतीसारं ज्वरश्चापि तथा वमिम् ॥ सशूलोपद्रवं श्वासं कासं चापि सुदुस्तरम् ॥ ८२ ॥ पञ्चमूली च सामान्या पित्ते योज्या कनीयसी ॥ वाते पुनर्बलासे च सा योज्या महती मता ८३॥

पचमूल, खिरैटी, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाढ, चिरायता, सुगधबाला और इन्द्रजौ इनका क्वाथ त्रिदोषज अतीसार, ज्वर, वमन, शूलके उपद्रव युक्त श्वॉस और दुस्तर खॉसीको भी नष्ट करै है । सामान्य रीतिसे पित्तके रोगोमें लघुपचमूल लेना चाहिये और वात तथा कफके रोगोमें वृहत्पचमूल लेना चाहिये ॥ ८१-८३ ॥

अथ चतुःसममोदकः ।

अभया नागरं मुस्तं गुडेन सह योजितम्॥ चतुःसमेय गुटिका सर्वातीसारनाशनी ॥ ॥ ८४ ॥ आमातीसारमानाहं सविबन्धं विषूचिकाम् ॥ क्रुमीनरोचकं हन्याद्दीपयत्याशु चानलम् ॥ ८५ ॥

हरड, सोंठ, नागरमोथा और गुड ये चारों पदार्थ समान भाग लेकर गोली बनालेवे । ये चतु.समगोली सर्व प्रकारके अतीसारोको नष्ट करै है । तथा आमातीसार, अफारा, मलबध, विषूचिका, कृमिरोग और अरुचिको हरै है और तत्काल अग्निको दीपन करै है ॥ ८४ ॥८५॥

अथ कुटजपुटपाकः ।

तत्कालकृष्टकुटजत्वचं तण्डुलवारिणा ॥ पिष्ट्वा चतुःपलमितां जम्बूपत्रेण वेष्टि-

ताम् ॥ ८६ ॥ सूत्रेण बद्धा गोधूमपिष्टेन परिवेष्टिताम् ॥ लिप्ताश्च घनपंकेन निर्दहेद्गोमयाग्निना ॥ ८७ ॥ अंगारवर्णाश्च मृदं दृष्ट्वा वह्नेः समुद्धरेत् ॥ ततो रसं समादाय शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ ८८ ॥ उक्तः कृष्णात्रिपुत्रेण पुटपाकस्तु कौटजः॥ जयेत्सर्वानतीसारान्रक्तजान्सुचिरोत्थितान् ॥ ८९ ॥

नीली कुडेकी छाल सोलह (१६) तोले लेकर चावलोके जलमें पीसकर गोला बनालेवै उस गोलेको जामुनके पत्तोंमें लपेटकर डोरेसे बाधदेवै, फिर उसके ऊपर गेहूँके आटेका लेप करदेवै, पश्चात् मट्टीके गारेका लेप करके अन्ने उपलोकी अग्निमें पकावै, जब पकते पकते मट्टीका रग अगारोकी समान लाल होजाय तब उसको निकाललेवै, फिर उसको निकालकर शीतल होनेपर सहत मिलाकर पियै । यह पुनर्वसुऋषिका कहाहुआ कुटजपुटपाक सर्व प्रकारके अतीसार, रक्तातीसार और बहुत पुराने अतीसारको नष्ट करैहै ॥ ८६-८९ ॥

अथ कुटजावलेहः ।

कुटजत्वक्कृतः क्काथो वस्त्रपूतो हिमीकृतः॥ सलीढोऽतिविषायुक्तः स्यात्रिदोषातिसारनुत् ॥ ९० ॥ इच्छन्त्यत्राष्टमांशेन क्काथादतिविषारजः ॥ प्रक्षेपयेच्चतुर्थांशमिति केचिद्वदन्ति हि ॥ ९१ ॥

कुडेकी छालका क्वाथ बनाकर वस्त्रसे छानकर शीतल करलेवै, फिर उसमें अतीसका चूर्ण मिलाकर सेवन करै तो त्रिदोषातीसार नष्ट होताहै । यहां कितनेक वैद्य कहते- हैं कि क्वाथसे अतीसका चूर्ण आठवॉ भाग लेना चाहिये और कितनेक वैद्य कहते हैं कि, क्वाथसे अतीसका चूर्ण चौथा भाग लेना चाहिये ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अथांकोटवटकः ।

पलमंकोटमूलस्य पाठां दार्वीश्च तत्समाम ॥ पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्मितान् ॥ ९२ ॥ छायाशुष्कांश्च तान्कुर्यात्तेष्वेकं तण्डुलाम्बुना ॥ पेषयित्वा प्रदद्यात्तं पानाय गदिने भिषक् ॥ ९३ ॥ वातपित्तकफोद्भूतान्द्वन्द्वजान्सान्निपातिकान्॥ हन्यात्सर्वानतीसारान्वटकोऽयं प्रयोजितः ॥९४॥

अकोलकी जड, पाढ और दारुहल्दी, ये तीनों औषधि चार चार तोले लेकर चावलोके जलमें पीसकर छायामें सुखाकर एक एक तोलेके बडे बनालेवै । प्रतिदिन एक बडा चावलोंके जलमे पीसकर रोगीको पीनेके लिये देवै । ये बडे—वातके दोषसे उत्पन्न हुए अतीसार, वा पित्तके दोपसे उत्पन्न हुए अतीसार, वा कफके दोपसे उत्पन्न हुए अतीसार, अथवा द्वन्द्वज दोपसे उत्पन्न हुए अतीसार, किवा सन्निपातसे उत्पन्न हुए अतीसार और भी अनेक प्रकारके अतीसारोंको शान्त करैं हैं ॥ ९२-९४ ॥

अथागन्तुजशोकातिसारसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तोः ॥ कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं तच्चाधस्तात्काकणन्तीप्रकाशम् ॥ निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड्वा निर्गन्धं वा गन्धवद्वाऽतिसारः ॥ शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः ॥ ९५ ॥

अयमर्थः । तैस्तैर्भावैः बन्धुवित्तक्षयादिभिः शोचतः शोकं कुर्वतः जन्तोः प्राणिनः बाष्पोष्मा बाष्पः शोकजः देहोष्मणा जनितं नेत्रनासागलादिषु जलं तेन सहितः उष्मा शोकजं देहतेजः । स कोष्ठं गत्वा वह्निमाविश्य जठराग्निं मन्दीकृत्य बाष्पसाहित्यात् उष्मणापि वह्नेर्मन्दीभाव इति न दोषः । वह्नेर्मन्दीभावादेव अल्पाशनस्येति, जन्तोर्विशेषणम् । ततः तस्य जन्तो रक्तं क्षोभयेत् । स्वस्थानात् चालयेदिति संप्राप्तिः । अथ लक्षणम् । तच्च रक्तम् अधस्तादृदात् । काकणन्तीप्रकाशम् गुञ्जा-

फलसदृशम्। विड्विमिश्रं गन्धवच्च। अविट्निर्गन्धं वा निर्गच्छेत् शोकोत्पन्नोऽतिसारः अतिमात्रं दुश्चिकित्स्यः, शोकापनोदनं विना केवलेन भषजेन प्रतीकर्तुमशक्यत्वात्। एषोऽतीसारः कष्टसाध्यः कथितः॥

बधुओके और धनादिके नष्ट होनेसे जब यह प्राणी शोक करताहै तब इसके ऑसू (शोकसे उत्पन्नहुए शरीरकी उष्णतासे नेत्र, नासिका और गलेमें रहनेवाला जल) सहित गरमी कोठेमे प्राप्त होकर अग्निको मद करैहै, उस अग्निके मंद होनेके प्रभावसे भोजन थोडा कियाजाताहै, तब वही बाष्पोष्मा कोष्ठमे जाकर मनुष्यके रक्तको विगाडकर अपने स्थानमेंसे चलायमान करदेतीहै (यह तो सम्प्राप्ति हुई अब लक्षण सुनो,) पश्चात् वह रुधिर गुदाके मार्गसे विष्ठासहित और दुर्गन्धसहित अथवा विष्ठा रहित और दुर्गन्ध रहित होकर घुँघुचीकी समान लाल निकलताहै, इसको शोकातीसार कहतेहैं॥ यह शोकातीसार चिकित्सा करनेमें अत्यत कठिन है क्योंकि विना शोकके दूर किये केवल औषधियोंसे ही इसका प्रतीकार और उपचार नही होता, इसकारण यह शोकातीसार कष्टसाध्य है॥ ९५॥

अथ भयातीसारलक्षणम्।

भयेन क्षोभिता दोषा दूषयन्ति मलं यदा॥
तदातिसार्यते जन्तुः क्षिप्रमुष्णं जलप्लवम्॥ ९६॥ वातपित्तातिसारस्य प्रायो लिंगैः समन्वितम्॥ अभयोपशमाच्छामो यस्मिन्स्यात्स भयात्स्मृतः॥ ९७॥

प्लवति इति प्लवम्, जले प्लवमानमित्यर्थः। ननु भयातिसारस्य कथमागन्तुजत्वमयमपि दोषज एव। यत आह-भयेन क्षोभिता दूषिता दोषा मलं दूषयन्ति तत् मलमतिसरति, अत्र पूर्वमेव दोषसम्बन्धः। उच्यते-

रागद्वेषभयाच्चैव ते स्युरागन्तवो गदाः९८

इति वचनात् भयातिसार आगन्तुज एव। भयेनैव हेतुभूतेन दोषा वातपित्तकफाः अतिसारं जनयन्ति। क्षोभिताः सञ्चालिताः न तु दूषिताः भयेन त्रयाणामपि दोषाणां दूषणासम्भवात्। अतिसर्तुं चलिता वातपित्तकफा मलं दूषयन्ति तत्सर्वं वातपित्तकफमलं भयेनैव अतिसार्यते। पश्चात् वातसम्बन्धेन भयाद्वायुरितिवचनात्। अत एव भयातिसारे वातहरी एव क्रिया कथितेति साधुः॥

भयरूप कारणोंसे क्षोभको प्राप्तहुए वात, पित्त और कफ, ये दोष जब मलको दूषित करतेहैं (यह सम्प्राप्ति जाननी) तब तत्काल विशेष करके वात और पित्तके लक्षणोंवाला गरम और पानीमें तैरनेवाला मल गुदाके मार्गसे प्रवाहरूप होकर निकलताहै, उसको भयातीसार कहतेहैं, इसमे भयके शात होनेसे रोगी सुखी होताहै, (यह लक्षण जानने)।

शका-भयातीसार आगतुज कैसे होसक्ता है? क्योंकि भयसे क्षोभको प्राप्तहुए अर्थात् दूषित हुए वातादि दोष मलको दूषित करतेहैं और वह मल प्रवृद्ध रूपसे निकलताहै, इस कहनेसे यह जानाजाताहै कि, इसमे पहिलेसे ही दोषोंका सम्बन्ध होताहै इस कारण भयातिसार दोषजन्य हैं।

समाधान-राग, द्वेष और भयसे जो रोग उत्पन्न होताहै उसको आगन्तुज कहतेहैं इस वचनानुसार भयातिसार आगन्तुज है। 'भयसे क्षोभको प्राप्त हुए' इस शब्दका अर्थ 'भयसे दूषित हुए' ऐसा नही समझना, किन्तु 'भयकरके चलायमान कियेहुए' ऐसा समझना चाहिये। कारण यह है कि-भयसे तीनो दोषोंका दूषित होना सम्भव नही हो सक्ता? भयका वेग आनेसे जोरसे निकलनेके लिये चलायमान हुए वात पित्त और कफ, वे मलको दूषित करतेहैं और फिर वात, पित्त, कफ और मल, ये सब भयके कारण चलित होजातेहैं। इस अतीसारमें पीछेसे दुष्ट वायुका सम्बन्ध होताहै, क्योंकि "भयसे वायु होतीहै" ऐसा कहा है इस कारण भयातीसारमें वातनाशक चिकित्सा ही करनी कही है,

इस प्रकार भयातीसारके आगन्तुज होनेमें कोई संदेह नहीं हैं ॥ ९६-९८ ॥

अथ शोकातीसारभयातीसारचिकित्सा ।

भयशोकसमुद्भूतौ ज्ञेयौ वातातिसारवत्॥ तयोर्वातहरी कार्या हर्षणाश्वासनैः क्रिया ॥ ९९ ॥

वातातिसारवद्वातातिसारलक्षणयोस्तयोश्चिकित्सा च हर्षणाश्वासनपूर्विका वातहरी कर्तव्या ॥

भयातीसार और शोकातिसारके लक्षण वातातीसारकी समान होतेहैं, इसलिये इन दोनों अतीसारोंमें हर्ष उत्पन्न करनेवाले कर्म करै, धीरज बँधावै और वातविनाशक चिकित्सा करै ॥ ९९ ॥

अथामातीसारसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तो दोषाः कोष्ठे धातुसंघान्मलांश्च ॥ नानावर्णान्नैकशः सारयन्ति शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ १०० ॥

अन्नं भुक्तं तदजीर्णश्चेति कर्मधारये अन्नाजीर्णम् तस्मात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः चालयन्तः। नैकश इत्यत्र नाकादित्वान्नाक्षरविपर्ययः । ननु आमेन दोषा दूष्यन्ते गुर्वादिभक्षणादिभिरिव ते च अतिसारम् उत्पादयन्ति, न तु आमोऽतिसारमुत्पादयति । तेन आमातिसारोऽपि दोषज एव किमर्थं पृथगुक्तम् ? उच्यते-आमातिसारस्य चिकित्सार्थम् । अतिसारेषु सर्वेषु एव संग्राहकमौषधमुक्तम् आमातिसारे तु संग्राहकं निषिद्धम् । यत उक्तम्-

नामे संग्राहकं दद्यादतिसारे कदाचन ॥ संगृहीतो बलादामो विकारान्कुरुते बहून् ॥ १०१ ॥

बलाद्भेषजबलाद्विकारान्ग्रहण्याध्मानशूलगुल्मशोथोहरज्वरादीन् ॥

भोजन किये हुए पदार्थोंके अजीर्ण होनेसे चलायमान हुए वातादि दोष कोठेकी रसरक्तादि धातुओंको और मलमूत्रादि मलोंको चलायमान करके वारंवार शूल(ऐंठन) युक्त और अनेक वर्णकी विष्ठाको गुदाके द्वारसे बाहर निकाले है यह छठा आमातीसार कहा ।

शंका-जिसप्रकार भारीपदार्थोंके भोजन आदिसे दोष दूषित होतेहैं, उसीप्रकार आमसे दोष दूषित होतेहैं, इसप्रकार दूषित हुए दोष ही अतीसारको उत्पन्न करतेहैं, परन्तु आम अतीसारको नहीं उत्पन्न करतीहै । इस लिये आमातीसारको भी दोषजन्य होनेपर फिर इसको अलग क्यों कहा ?

समाधान-आमातीसारकी चिकित्सा अलग जाननेके लिये आमातीसार अलग कहाहै, सर्व प्रकारके अतीसारोंमें मलको रोकनेकी औषधि कही हैं और आमातीसारमें मलको रोकनेकी औषधि निषेध हैं । कहा भी है कि-"आमातीसारमें कदापि संग्राहक औषधि नहीं देनी चाहिये, क्योंकि-संग्राहक औषधियोंके बलसे स्तम्भित हुई आम-संग्रहणी, अफारा, शूल, गुल्म, सूजन, उदररोग और ज्वरादि अनेक विकारोंको उत्पन्न करै-है" ॥ १०० ॥ १०१ ॥

अथामातीसारचिकित्सा ।

वत्सकातिविषाशुण्ठीबिल्वहिंगुयवाम्बुदाः॥ चित्रकेण युतः क्काथ आमातीसारनाशनः ॥ १०२ ॥

कुडाकी छाल, अतीस, सोंठ, बेलगिरी, हींग, इन्द्रजौ, नागरमोथा और चीता, इनका क्काथ आमातीसारको नष्ट करैहै ॥ १०२ ॥

अथ शोथातीसारचिकित्सा ।

शोथघ्नीन्द्रयवौ पाठा श्रीफलातिविषाघनाः ॥ क्कथिताः सोषणाः पीताः शोथातीसारनाशनाः ॥ १०३ ॥

शोथघ्नी पुनर्नवा । ऊषणं मरिचम् ॥

पुनर्नवा, इन्द्रजौ, पाढ, बेलगिरी, अतीस, नागरमोथा और कालीमिरच, इनका क्काथ बनाकर पीनेसे शोथातीसार नष्ट होताहै ॥ १०३ ॥

अथ छर्द्यतिसारचिकित्सा ।

आम्रास्थिमध्यमालूरफलक्काथः समा-

क्षिकः ॥ शर्करासहितो हन्याच्छर्द्यतीसारमुल्वणम् ॥ १०४ ॥

मालूरफलं बिल्वफलम् ॥

कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ॥ निहन्याच्छर्द्यतीसारं तृष्णां दाहं ज्वरं भ्रमम् ॥ १०५ ॥

आमकी गुठली और बेलगिरी, इनके क्वाथमें सहत और मिश्री डालकर पीनेसे भथकर छर्द्यतीसार नष्ट होताहै, भुनीहुई मूँगके क्वाथमें खीलै, सहत और मिश्री डालकर पान करनेसे छर्द्यतीसार (उलटी दस्त), तृषा, दाह, ज्वर और भ्रम दूर होताहै ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

अथ निःसारकचिकित्सा।

दध्ना ससारेण समाक्षिकेण भुञ्जीत निःसारकपीडितस्तु ॥ सुतप्तकुप्यक्कथितेन वापि क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ॥१०६॥

निःसारकः निठाहीति लोके । सुतप्तकुप्यक्कथितेन सुतप्तसुवर्णरजतनिर्वापणक्कथितेन भुञ्जीत पथ्यमिति शेषः ॥

निःसारसे पीडित हुए मनुष्यको मलाईवाले दहीमें सहत डालकर पथ्य भोजन करावे । अथवा अत्यन्त तपाया हुआ सोना या रूपा दूधमें बुझाकर फिर उस दूधको शीतल करके उसमे सहत डालकर पथ्य भोजन करावे ॥ १०६ ॥

अथ विष्ठाक्षयचिकित्सा।

दीप्ताग्निर्निःपुरीषो यः शकृत्त्यजति फेनिलम् ॥ स पिबेत्फाणितं शुण्ठीं दधि तैलं पयो घृतम् ॥ १०७ ॥ बलाविश्वाशृतं क्षीरं गुडतैलानुयोजितम् ॥ दीप्ताग्निं पाययेत्प्रातः सुखदं वर्चसः क्षये ॥ १०८ ॥

दीप्त अग्निवाले मनुष्यका जो मल क्षय होगया हो और उसकी गुदामेंसे झागोदार थोडा थोडा मल निकलता हो, उसको राब, सोंठ, दही, तेल, दूध और घी पिलावै ॥ पुरीपके क्षय होनेपर दीप्ताग्निवाले मनुष्यको खिरैंटी और सोंठके द्वारा सिद्ध किये हुए दूधमे गुड और तेल डालकर प्रातःकाल पिलावै तो इससे रोगी सुखी होताहै ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथ बिल्वतैलम्।

तुलां संकुट्य बिल्वस्य पचेत्पादावशेषितम् ॥ सक्षीरं साधयेत्तैलं श्लक्ष्णपिष्टैरिमैः समैः ॥ १०९ ॥ बिल्वं सधातकीकुष्ठं शुण्ठीरास्नापुनर्नवाः ॥ देवदारुवचामुस्तं लोध्रमोचरसान्वितम् ॥ ११० ॥ एभिर्मृद्वग्निना पक्कं ग्रहण्यर्शोऽतिसारनुत् ॥ बिल्वतैलमितिख्यातमत्रिपुत्रेण भाषितम् ॥ १११ ॥ ग्रहण्यर्शोऽधिकारे ये स्नेहाः समुपदर्शिताः ॥ प्रयोज्यास्तेऽतिसारेऽपि त्रयाणां तुल्यहेतुना ॥ ११२ ॥

बेलगिरी सौ (१००) पल लेकर कूटलेवै, फिर उसका चतुर्थांश शेष क्वाथ वनावै, फिर उस क्वाथमे दूध और तेल तथा बेलगिरी, धायके फूल, कूठ, सोंठ, रासना, पुनर्नवा, देवदारु, वच, नागरमोथा, लोध और मोचरस इनका कल्क डालकर तेलको मदमद अग्निसे पकावै। पुनर्वसुमुनिका कहा हुआ यह बिल्वतैल–ग्रहणी, बवासीर और आतिसारको नष्ट करैहै।

अतिदेश।

ग्रहणी और अर्श अधिकारमें जो तेल घृतादि स्नेह कहे हैं उन सबको अतीसारमें प्रयोग करना चाहिये, क्योकि इन तीनों रोगोंके हेतु समान हैं ॥ १०९–११२ ॥

प्रवाहिकासम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम्।

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य ॥ प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ११३ ॥

अस्य अयमर्थः। अहिताशनस्य अतिशयेन वातलभक्ष्यभोजिनः प्रवृद्धो वायुः प्रवाहतः कण्ठे हृल्लेन सशब्दं वायुमपानमार्गेण

त्यजतः निचितं सञ्चितं बलासं कफं मलाक्तं पुरीषयुक्तम् । अल्पं बहुशः वारंवारमधस्ताद् गुदान्नुदति । वैद्याः तां प्रवाहिकां प्रवदन्ति ॥

अत्यन्त वायुकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे मनुष्योंके अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई वायु जोरसे अपान वायु छोडते समय उस मनुष्यकी गुदामेंसे विष्ठासे मिलाहुआ और सञ्चित हुआ कफ वारवार थोडा थोडा नीचे गिरे, उसको वैद्य प्रवाहिका कहतेहैं ॥ ११३ ॥

अथ दोषभेदेन प्रवाहिकालक्षणम् ।

प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च॥ सशोणिता शोणितसम्भवा च ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥ ११४ ॥

तत्र रूक्षप्रभवा वातजा स्नेहप्रभवा कफजा तुशब्दात्तीक्ष्णोष्णप्रभवा पित्तजा रक्तजा च॥

जिस प्रवाहिकामें शूल होय उसको वायुसे उत्पन्न हुई जानना और वह रूक्ष पदार्थोंके सेवन करनेसे होतीहै ॥ जिस प्रवाहिकामें दाह हो उसको पित्तसे उत्पन्न हुई जानना और वह तीक्ष्ण तथा उष्णपदार्थोंके सेवन करनेसे होतीहै। जिस प्रवाहिकामें कफकी अधिकता हो उसको कफसे उत्पन्न हुई जानना और वह स्नेह पदार्थोंके सेवन करनेसे होतीहै । जिस प्रवाहिकामें रुधिर निकलता हो उसको रुधिरसे उत्पन्न हुई जानना और वह तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे होतीहै ॥ ११४ ॥

अथातिदेशः ।

तासामतीसारवदादिशेच्च लिंगं क्रमं चामविपक्कतां च ॥ ११५ ॥

प्रवाहिकाके लक्षण, चिकित्सा और पक्व अपक्वता अतीसारकी समान जाननी ॥ ११५ ॥

अथ प्रवाहिकाचिकित्सा ।

बिल्वाद्यवलेहः ।

बिल्वपेशी गुडं लोध्रं तैलं मरिचसंयुतम् ॥ लीढ्वा प्रवाहिकाक्रान्तः सत्वरं सुखमाप्नुयात् ॥ ११६ ॥

बेलगिरी, गुड, लोध, तेल और कालीमिर्च, इन सबको एकत्र करके अवलेह बनावै । इस अवलेहको सेवन करनेसे प्रवाहिकाका रोगी तत्काल सुखी होताहै ॥ ११६ ॥

अथ धातक्यादिः ।

धातकी बदरीपत्रं कपित्थं सहमाक्षिकम् ॥ सलोध्रमेकतो दध्ना पिबेन्निर्वाहिकार्दितः ॥ ११७ ॥

एकतः प्रत्येकं दध्ना पिबेदित्यर्थः ।

धायके फूल, बेरीके पत्ते, कैथका गूदा, सहत और लोध इनमेंसे किसी एकको अथवा सबको अलग अलग दहीके साथ पान करनेसे प्रवाहिका रोग नष्ट होताहै ॥ ११७ ॥

अथासाध्यातीसारलक्षणम् ।

पक्कजाम्बवसंकाशं यकृत्खण्डनिभं तनुम् ॥ घृततैलवसामज्जावेसवारपयोदधि ॥ ११८ ॥ मांसधावनतोयाभं कृष्णं नीलारुणप्रभम् ॥ कर्बुरं मेचकं स्निग्धं चन्द्रिकोपगतं घनम् ॥ ११९ ॥ कुणपं मस्तुलुंगाभं सगन्धं कथितं बहु ॥ तृष्णादाहारुचिश्वासहिक्कापार्श्वास्थिशूलिनम् ॥ ॥ १२० ॥ संमूर्च्छाऽरतिसंमोहयुक्तं पक्वलीगुदम् ॥ प्रलापयुक्तश्च भिषग्वर्जयेदतिसारिणम् ॥ १२१ ॥

जिसका मल पकी जामुनकी समान, यकृत्पिण्डकी समान, सूक्ष्म, घीकी समान, तेल सरीखा, चरबी और मज्जाकी समान, दालके पानीकी समान, दूध और दहीकी समान, मासके धोये हुए जलकी समान, काला, नीला और लालरंगका, चित्रितरंगका, अनेकरंगका, बहुत काला, चिकना. मोरपुच्छचन्द्रिकाकी समान, चित्र विचित्र सघन, सडेहुए मुरदेकी समान गंधवाला, मस्तकमें रहनेवाली चरबीके सदृश, भारी, दुर्गन्धयुक्त और बहुत, गरम होय तथा रोगीको तृषा, दाह, अरुचि, श्वास, हिचकी, पसलियोंमें शूल और हड्डियोंमें शूल, मूर्च्छा, बेचैनी और मोह (बेहोसी) हो, गुदाकी

वलि पकजायँ और रोगी प्रलाप (बकवाद) करै, ऐसे अतीसार युक्त मनुष्यका वैद्य उपाय न करै॥११८–१२१॥

असंवृतगुदं क्षीणं शूलाध्मानैरुपद्रुतम् ॥ गुदे पक्के गतोष्माणमतिसारिणमुत्सृजेत् ॥ १२२ ॥

असंवृतगुदं गुदसंवरणाक्षमम् । गुदे पक्के गुदापाकारम्भके पित्ते विद्यमानेऽपि शीतगात्रं नष्टाग्निं वा ॥

श्वासशूलपिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ॥ विशेषेण नरं वृद्धमतिसारो विनाशयेत् ॥ १२३ ॥

जिस अतीसारवाले रोगीकी गुदा—मल निकलनेके बाद बंद न हो तथा वह मनुष्य क्षीण होगया हो, शूल और अफारे युक्त हो, गुदाके पकानेवाले पित्तके रहनेपर भी शरीर शीतल हो और जिसकी जठराग्नि नष्ट होगई हो, ऐसे अतीसारवाले रोगीको वैद्य त्यागदेवै ॥ श्वास, शूल और तृषासे पीडित, क्षीण, ज्वरसे व्याकुल और विशेषकरके वृद्ध मनुष्योंके उत्पन्न हुआ अतीसार मारदेताहै ॥ १२२–१२३ ॥

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ॥ छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वाऽतीसारिणं त्यजेत् ॥ १२४ ॥ हस्तपादांगुलिसन्धिप्रपाको मूत्रनिग्रहः ॥ पुरीषस्योष्णतातीव मरणायाऽतिसारिणः ॥ १२५ ॥ अतिसारी राजरोगी ग्रहणीरोगवानपि ॥ मांसाग्निबलहीनो यो दुर्लभं तस्य जीवनम् ॥ १२६ ॥

सूजन, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, खाँसी, अरुचि, वमन, मूर्च्छा और हिचकी, इन लक्षणोंयुक्त अतीसाररोगीको त्यागदेवै ॥ जिसकी हाथ पाँवोंकी अंगुली पक गई हो, सन्धियें पकगई हो, मूत्र रुकगया हो और मल अत्यंत गरम हो, ये सब लक्षण अतीसार रोगीके मरनेके लिये उत्पन्न होतेहैं ॥ अतीसाररोगी, क्षयरोगी और ग्रहणीरोगी जो मांस और अग्निके बलसे हीन होगया हो तो उसका जीना दुर्लभ है ॥ १२४–१२६ ॥

बाले वृद्धे त्वसाध्योऽयं लिङ्गैरेतैरुपद्रुतः ॥ अपि यूनामसाध्यं स्यादतिदुष्टेषु धातुषु ॥ १२७ ॥

उपरोक्त लक्षणोंयुक्त बालकोंके और वृद्धोंके उत्पन्न हुआ अतीसार असाध्य है और धातुओंके दुष्ट होनेसे युवा मनुष्योंके भी उत्पन्न हुआ अतीसार असाध्य है ॥ १२७ ॥

अथातीसारमुक्तलक्षणम् ।

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ॥ दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥ १२८ ॥

जिसकी अग्निदीपन हो, कोठा हलका होगया हो और जिसके मलके विना मूत्र और अधोवायु अच्छे प्रकारसे निकलती हो, ऐसे मनुष्यको अतीसारसे मुक्त हुआ जानना ॥ १२८ ॥

अथातीसारेऽपथ्यम् ।

स्नानावगाहावभ्यंगं गुरुस्निग्धादिभोजनम् ॥ व्यायाममग्निसन्तापमतिसारी विवर्जयेत् ॥ १२९ ॥

स्नानमुद्रितजलेन । अवगाहो नद्यादौ ॥

अतीसारवाला रोगी स्नान नहीं करै, नदीमें नहीं घुसे, तथा तैलादिककी मालिस, भारी स्निग्ध भोजन और कसरत नहीं करै, तथा अग्निका सन्ताप भी त्याग देवै ॥ १२९ ॥

अथ शंखपोटलीरसः ।

प्रत्येकं दशगद्याणाः शुद्धसूतकगन्धयोः ॥ ॥ १३० ॥ विंशतिस्त्रिदिनं खल्वे पिष्ट्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ॥ पश्चादर्कस्य दुग्धेन पिष्ट्वा तां कज्जलीं त्र्यहम् ॥ १३१ ॥ ततो वज्रस्य दुग्धेन पिष्ट्वा तां कज्जलीं त्र्यहम् ॥ आर्द्रकं चित्रकं श्वेतं निःसहायश्च मर्दयेत् ॥ १३२ ॥ पेषयेत्तद्रसैरेवं कज्जलीं तां दिनत्रयम् ॥ पीतानाञ्च कपर्दीनां चूर्णं गद्याणविंशतिः ॥ ॥ १३३ ॥ विंशतिः शंखचूर्णस्य चत्वारिंशच्च मिश्रितम् ॥ त्रिदिनं मर्दयेत्खल्वे पूर्वोक्तेन क्रमेण च ॥ १३४

ऽ ह्यर्कस्य दुग्धेन वज्रीदुग्धेन च त्र्यहम् ॥ तन्मध्ये कज्जलीं क्षिप्त्वा चित्रकार्द्ररसेन तु ॥ १३५॥ खल्वे पिष्ट्वा द्वयोः कार्या गुट्यो बदरसम्मिताः ॥ लिप्त्वा दग्ध्वाशु चूर्णेन पक्वकुल्हरिकान्तरम् ॥ १३६ ॥ प्रक्षिप्य गुटिकास्तत्र चूर्णलिप्तपिधानकम् ॥ दत्त्वा वस्त्रं मृदा लिप्त्वा गर्तं हस्तप्रमाणकम् ॥ १३७ ॥ तद्गर्भे कुल्हरीं मुक्त्वा पुटो देयश्च शाणकैः ॥ पश्चाच्चित्रकनीरेण स्वाङ्गशीतञ्च पेषयेत् ॥ ॥ १३८ ॥ गुटिकां पूर्वरीत्यैव कृत्वा देयः पुनः पुटः ॥ दग्धानां गुटिकानाञ्च चूर्णं कृत्वाथ कूपके ॥ १३९ ॥ क्षेप्यं चैवं हि निष्पन्नो रसोऽयं शंखपोटली ॥ आमज्वरातिसारे च श्वासे कासे तथैव च ॥ १४० ॥ श्लेष्मपित्तामवातेषु मन्दाग्नौ ग्रहणीषु च ॥ अष्टादशप्रमेहेषु जीर्णे जीर्णबलेषु च ॥ १४१ ॥ द्वात्रिंशन्मरिचैः साकं सघृतं वल्लपञ्चकम् ॥ सर्वरोगेषु दातव्यं मरिच्याज्यं विना ज्वरे ॥ ॥ १४२ ॥ शालयो दधिदुग्धादि भोजनं मधुरं हितम् ॥ कट्वम्लक्षारतैलाद्यान्दूरतः परिवर्जयेत् ॥ १४३ ॥ विधिनाऽनेन कर्तव्यो रसोऽसौ शंखपोटली ॥ क्रमेण विनिवर्तन्ते प्रोक्तरोगा न संशयः ॥ १४४ ॥

पारा दश गद्याण (एक गद्याण ४८ रत्तीका होताहै) और शुद्ध गन्धक दश गद्याण लेकर तेईसदिनतक खरलमें पीसकर कज्जली बनावै, फिर इस कज्जलीको तीनदिनतक आकके दूधमें खरलकरै, फिर तीन दिनतक थूहरके दूधमें खरलकरै, पश्चात् अदरख और सफेद चीतके रसमें तीन तीन दिनतक खरलकरै तदनन्तर पीली कौडीके बीस गद्याण चूर्णको और बीसगद्याण गन्धकके चूर्णको मिलाकर इस चालीस गद्याण चूर्णको अलग खरलमें खरल करै, फिर इस चूर्णको ऊपर कहे अनुसार आकके दूधमें और तीन दिनतक थूहरके दूधमें खरल करै, फिर इस चूर्णमें उक्त कज्जलीको मिलाकर अदरख और चीतेके रसमें खरल करके बेरकी बराबर गोली बनालेवे, फिर मट्टीकी कुलिया लेकर उसमें चूना चुपटकर उसको अग्निमें तपावे और उसमें यह गोली रखकर उसके ऊपर चूनेसे लिपा हुआ ढकन ढक देवे, फिर उस कुलिया और ढकनेपै कपरमट्टी करके एक हाथ गहरा गड्ढा खोदै और उसमें कुलियाको रखकर पुट देवै, जब अच्छे प्रकारसे पकजाय तब उस कुलियामेंसे रसको निकालकर चीतेके रसमें खरल करै, इसीप्रकार फिर गोली बनाकर पहिले कहे अनुसार कुलियामें रखकर दूसरी बार पुट देवै, जब पक जाय तब गोलियोंका चूर्ण करके शीशीमें भरके रखदेवै तो शंखपोटलीरस होताहै ।

ज्वररोग, आमातिसार, श्वास, खाँसी, कफ, पित्त, आमवातरोग, मंदाग्नि, ग्रहणी, अठारह प्रकारके प्रमेह, अजीर्ण और बलकी क्षीणता, इनमें यह रस पाँच वल्ल (१५ रत्ती) प्रमाण सेवन करै, सर्व प्रकारके रोगोंमें ३२ मिरचोंके साथ घीमें मिलाकर इस रसको सेवन करै, परन्तु ज्वरमें मिर्च और घीके साथ नहीं खाय, इस रसपै शालि चावल, घी, दही, दूध आदि मधुर पदार्थ इनका पथ्य करै । इसपर तेल, तीक्ष्ण, अम्ल और क्षार आदि पदार्थोंको दूरसे छोड देवै । इस विधिके अनुसार इस शंखपोटली रसको सेवन करनेसे उपरोक्त सम्पूर्ण रोग नष्ट होजातेहैं ॥ १३०–१४४ ॥

अथ विजयावलेहः ।

त्रैलोक्यविजयाजातीफले तुल्ये कलिङ्गकम् ॥ गृहीत्वा द्विगुणं श्रेष्ठो लेहः सर्वातिसारनुत् ॥ १४५ ॥

एक भाग भाँग, एक भाग जायफल और दो भाग इन्द्रजौ, इन सबको एकत्र पीसकर सहत मिलाकर अवलेह बनावै, यह अवलेह सब प्रकारके अतीसारोंको शमन करैहै ॥ १४५ ॥

अथातिविषावलेहः ।

बिल्वमोचरसलोध्रधातकीपुष्पचूतफलबीजसंयुता॥ नाशयेदतिविषावलेहिका सिन्धुवेगमपि दुर्धरं ध्रुवम् ॥ १४६ ॥

इति अतिसाराधिकारः ।

बेलगिरी, मोचरस, लोध, धायके फूल, आमकी गुठलीकी मींग और अतीस, इन सबको समान भाग लेकर अवलेह बनाकर सेवन करनेसे समुद्रके वेगकी समान भी वेगवाले दस्त रुकजाते हैं ॥ १४६ ॥

इति अतिसाराधिकारः समाप्तः ।

अथ ज्वरातिसाराधिकारः ।

अथ ज्वरातिसारनिदानम् ।

ज्वरातिसारयोरुक्तं निदानं यत्पृथक्पृथक् ॥ तस्माज्ज्वरातिसारस्य निदानं नोदितं पुनः ॥ १ ॥

ज्वरका निदान और अतीसारका निदान पृथक् पृथक् कह आये हैं, इसकारण यहाँ ज्वरसहित अतीसारके निदानको दुबारा कहनेकी आवश्यकता नहीं है, ज्वरका निदान और अतीसारका निदान मिलाकर ज्वरातिसारका निदान होताहै ॥ १ ॥

अथ ज्वरातिसारचिकित्सा ।

ज्वरातिसारयोरुक्तं भेषजं यत्पृथक्पृथक् ॥ न तन्मिलितयोः कार्यमन्योन्यं वर्धयेद्यतः ॥ २ ॥

अयमभिप्रायः, ज्वरहरमनुलोमनं भवति अतिसारहरं स्तम्भनं भवति, अतः परस्परविरुद्धत्वात्पृथगुक्तं भेषजं मिलितयोर्न कार्यम् ॥

अनुलोमनं ज्वरघ्नं ग्राहकमतिसारहृद्भवति ॥ पृथगुक्तमौषधं तज्ज्वरातिसारे विरुद्धमन्योन्यम् ॥ ३ ॥ अतस्तौ प्रतिकुर्वीत विशेषोक्तचिकित्सितैः ॥ ४ ॥ लंघनमेकं मुक्त्वा नचान्यदस्तीह भेषजं बलिनः ॥ समुदीर्णदोषनिचयं तत्पाचयेत्तथा शमयेत् ॥ ५ ॥ लंघनमुभयोरुक्तं मिलिते कार्यं विशेषतस्तदनु ॥ उत्पलषष्ठकसिद्धं लाजमण्डादिकं सकलम् ॥ ६ ॥

ज्वरमें और अतीसारमें जो पृथक् पृथक् औषधि कही है, वह औषधि ज्वरातीसारमे नहीं सेवन करनी चाहिये, क्योंकि ज्वरोक्त औषधि अतीसारको बढाने वाली हैं और अतिसारोक्त औषधि ज्वरको बढाने वाली हैं, भावार्थ यह है कि, ज्वरनाशक औषधि मलको अनुलोमन करतीहैं और अतीसार नाशक औषधि मलरोधक है, इसकारण परस्पर विरुद्ध होनेसे ज्वरके लिये और अतिसारके लिये अलग अलग कही हुई औषधि मिलेहुए ज्वर और अतीसारमें सेवन नहीं करनी चाहिये । कहा भी है कि "ज्वरको हरनेवाली औषधि अनुलोमन है और अतीसारको हरनेवाली औषधि ग्राही है, इसकारण इन दोनों रोगोंके लिये अलग २ कही हुई औषधि ज्वर और अतीसार दोनो मिले हुएमें अन्योन्य विरुद्ध होतीहै" इसलिये ज्वरसहित अतीसारमें विशेष कहीहुई चिकित्सासे प्रतिकार करना चाहिये ।

बलवान् अतीसारवाले रोगीके लिये अतिरिक्त लंघनके अन्य कोई औषधि नहीं है लंघन-वृद्धिको प्राप्त हुए दोषोंको शमन करै है और पाचन भी करै है इसलिये मिले हुए ज्वर और अतीसारमें लंघन ही कराने चाहिये. पश्चात् उत्पलक्काथ और लाजमण्डादि क्काथ इत्यादि विशेष चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २-६ ॥

अथोत्पलषष्ठकक्काथः ।

पृष्टिपर्णीबलाबिल्वधनिकानागरोत्पलैः ॥ ज्वरातिसारयोर्वापि पिबेत्साम्लं शृतं नरः ॥ ७ ॥

अत्र लाजमण्डाद्यपेक्षया वाशब्दः । अतीसारे पुरीषातिप्रवृत्त्या अम्लत्वञ्च दाडिमरसादिना कर्तव्यम् ॥

पृश्निपर्णी (पिथिवन्,) खिरैटी, बेलगिरी, धनिया, सोंठ और कमल इनका क्काथ बनाकर खट्टा करके पियै तो ज्वर और अतीसार नष्ट होताहै, अतीसारमें मलकी अत्यन्त प्रवृत्ति होतीहै, इस कारण इस क्काथको अनार आदिके रससे खट्टा करना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ कणादिक्काथः ।

कणाकरिकणालाजक्काथो मधुसितायुतः ॥ पीतो ज्वरातिसारस्य तृष्णामाशु विनाशयेत् ॥ ८ ॥

पीपल, गजपीपल और खीलोंका क्काथ बनाकर सहत और शक्कर डालकर पियै तो ज्वरसहित अतीसारकी तृषा शान्त होतीहै ॥ ८ ॥

अथ नागरादिक्काथः।

नागराऽतिविषामुस्ताऽमृताभूनिम्बवत्सकैः॥ क्काथः सर्वज्वरान्हन्ति चातिसारं सुदारुणम्॥ ९॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, गिलोय, चिरायता और इन्द्रजौ, इनका क्काथ सर्व प्रकारके ज्वरोंको और महादारुण अतीसारको नष्ट करैहै॥ ९॥

अथ बृहद्गुडूच्यादिक्काथः।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीबिल्वाब्दवालकैः॥ पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनोशीरपर्पटैः॥ १०॥ पिबेत्कषायं सक्षौद्रं ज्वरातीसारनाशनम्॥ हृल्लासारुचितृड्दाहवमीनाश्च निवृत्तये॥ ११॥

गिलोय, अतीस, धनियाँ, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढ, चिरायता, इन्द्रजौ, लालचन्दन, खस और पित्तपापडा, इनका क्काथ बनाकर सहत डालकर पीनेसे ज्वरसहित अतीसार नष्ट होताहै, तथा उबकाई, अरुचि, तृषा, दाह और वमन भी दूर होतेहैं॥ १०॥ ११॥

अथोत्पलादिचूर्णम्।

उत्पलं दाडिमत्वक्च पद्मकेशरमेव च॥ पीतं तण्डुलतोयेन ज्वरातीसारनाशनम्॥ १२॥

कमल, अनारकी छाल और कमल केसर, इनका चूर्ण करके चावलोंके जलके साथ पीनेसे ज्वरातीसार नष्ट होताहै॥ १२॥

अथ बिल्वादिक्काथः।

बिल्ववालकभूनिम्बगुडूचीमुस्तवत्सकैः॥ कषायः पाचनः शोथज्वरातीसारनाशनः॥ १३॥

बेलगिरी, सुगन्धवाला, चिरायता, गिलोय, नागरमोथा और इन्द्रजौ, इनका क्काथ पाचन है तथा सूजन और ज्वरातीसारको दूर करैहै॥ १३॥

अथ नागरादिक्काथः।

नागराऽतिविषाबिल्वगुडूचीमुस्तवत्सकैः॥ कषायः पाचनः शोथज्वरातीसारनाशनः॥ १४॥

सोंठ, अतीस, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा और इन्द्रजौ, इनका क्काथ पाचन है तथा सूजन और ज्वरसहित अतीसारको हरैहै॥ १४॥

अथ दशमूलीक्काथः।

दशमूलीकषायेण विश्वामक्षसमां पिबेत्॥ ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे॥ १५॥

इति ज्वरातिसाराधिकारः।

दशमूलके क्काथमें एकतोलाभर सोंठका चूर्ण डालकर ज्वर, अतीसार और सूजनयुक्त संग्रहणी रोगमें पीना चाहिये॥ १५॥

इति ज्वरातिसाराधिकारः सम्पूर्णः।

अथ ग्रहणीरोगाधिकारः।

अथ ग्रहणीसम्प्राप्तिः।

अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः॥ भूयः सन्दूषितो वह्निर्ग्रहणीमपि दूषयेत्॥ १॥

अपिशब्दात् अजातातिसारस्यापि ग्रहणीरोगः स्यात्॥

अतीसारके निवृत्त होनेपर मन्दाग्निवाले और अपथ्य (अहित) पदार्थोंके सेवन करनेवाले मनुष्योंके फिर अग्नि दूषित होकर ग्रहणीको भी दूषित करैहै॥ मूलमें 'अपि' कहनेसे जाना जाताहै कि, जिसके अतीसार नहीं हुआ हो उसको भी ग्रहणी रोग होताहै॥ १॥

अथ ग्रहणीस्वरूपम्।

ग्रहणी अग्निधरा कला। यत आह चरके—

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता॥ अपक्वं धारयत्यन्नं पक्वं त्यजति चाप्यधः॥ २॥ षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्त्तिता॥ आमपक्वाशयान्तःस्था ग्रहणी साऽभिधीयते॥ ३॥ ग्रहण्या बलमग्निर्हि सचापि ग्रहणीबलः॥ तस्मादग्नौ प्रदुष्टे तु ग्रहण्यपि विदुष्यति॥ तस्मात्कार्यः परीहारो ह्यतिसारे विरिक्तवत्॥ ४॥

विरिक्तेनेव विरिक्तवत्॥

ग्रहणी अग्निधरा नामवाली कला है उसको चरकमें इसप्रकार कहा है कि—"अग्निके रहनेका जो स्थानहै वह अन्नको ग्रहण करैहै, इसी कारण उसको 'ग्रहणी' कहा जाताहै, यह ग्रहणी—अपक्क अन्नको धारण करतीहै और पक्व अन्नको नीचे निकालतीहै"।

सुश्रुतमें भी कहा है कि—"आमाशय और पक्वाशयके बीचमे रहनेवाली जो छठी पित्तधरा नामवाली कला कही है उसको ग्रहणी कहतेहैं, ग्रहणीका बल अग्नि है, इसलिये अग्नि भी ग्रहणी कहीजातीहै, अत एव अग्निके दूषित होनेसे ग्रहणी भी दूषित होतीहै" ॥ २–४ ॥

अथ ग्रहणीरोगसंख्यापूर्वकसामान्यलक्षणम्।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यन्तमूर्च्छितैः ॥ सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥ ५ ॥ पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् ॥ ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ६ ॥

अतीसारे द्रवधातुप्रवृत्तिः, ग्रहण्यान्तु बद्धस्यापि मलस्य प्रवृत्तिरिति तयोर्भेदः।

अत्यंत दूषित हुए वात, पित्त, कफ और तीनो दोषोंसे दूषित हुई ग्रहणी खाये हुए अन्नादिकको वारवार कच्चाही अथवा पक्का भी निकालती है, वह अन्नादिक पीडायुक्त दुर्गन्धसहित, बारवार बँधाहुआ और बारंवार पतला मल गिरता है, उस रोगको आयुर्वेदके जाननेवाले विद्वान् ग्रहणी कहते हैं ॥ ५–६ ॥

अतीसारमें द्रव (पतली) धातुकी प्रवृत्ति होती है और ग्रहणीमें बँधाहुआ मल उतरता है, इतना ही अतीसार और सग्रहणीमें भेद है।

वातोत्पन्नग्रहणीनिदानं सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणञ्च।

कटुतिक्तकषायातिरूक्षशीतलभोजनैः ॥ प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ ॥ ७ ॥ मारुतः कुपितो वह्निं सञ्छाद्य कुरुते गदम् ॥ तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खराङ्गता ॥ ८ ॥ कण्ठास्यशोषः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः ॥ पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुगभीक्ष्णं विषूचिका ॥ ॥ ९ ॥ हृत्पीडा कार्श्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकर्तिका ॥ गृद्धिः सर्वरसानाञ्च मनसः सदनं तथा ॥ १० ॥ जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च ॥ स वातगुल्महृद्रोगप्लीहाशकी च मानवः ॥ ११ ॥ चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् ॥ पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासश्वासार्दितोऽनिलात् ॥ १२ ॥

प्रमितं परिमितम्, गदं ग्रहणीगदम्। शुक्तपाकमम्लपाकम् ॥

चरपरे, कडवे आर कसैले भोजन करनेसे, अत्यतरूखे और शीतल भोजन करनेसे, विरुद्धभोजन करनेसे, भोजन पर भोजन करनेसे, अधिक भोजन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, उपवास करनेसे, अथवा अल्प (थोडा) भोजन करनेसे, अधिक मार्गके चलनेसे, मल मूत्रादिके वेगोको रोकनेसे और अत्यत मैथुन करनेसे, कुपित हुए वातादि दोष अग्निको आच्छादित करके ग्रहणीरोगको उत्पन्न करैहैं। ऐसे रोगीका अन्न अत्यत दुःखके साथ पचै और उसका पाक खट्टा हो, शरीरमें खरखरापन हो, कठ और मुख सूखै, क्षुधा और तृषा लगै, अँधेरा आवै, कानोंमें शब्द हो, पसली, जघा, वक्षण और कठमें पीडा हो, विषूचिका हो, अर्थात् दोनोंद्वारमे कच्चे अन्नकी प्रवृत्ति होवे, हृदयमे पीडा हो, देहमे कृशता और दुर्बलता हो, विरसता, पेटमे कतरनीकी समान पीडा हो, सम्पूर्ण रसोको खानेकी इच्छा हो, मनमें ग्लानि हो, भोजन किये हुए अन्नके जीर्ण होनेपर अफारा हो और भोजन करनेके पश्चात् सुख उत्पन्न हो, तथा इस वातग्रहणीवाले रोगीको वातगुल्म, हृदयरोग और प्लीहाकी आशका हो, वातके द्वारा खाँसी और श्वासकी पीडा हो और बहुत देरमे अत्यत दुःखसे पतला—सूखा—थोडा—कच्चा—शब्दयुक्त और झागोंदार मल उतरताहै ॥ ७–१२ ॥

अथ पित्तजग्रहणीनिदानं सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणञ्च।

कटुतिक्तविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्बण-

पहम् ॥ शस्यते श्वासकासार्शःक्षयकार्श्येषु दीपनम् ॥ ३० ॥

उत्तमं ग्राहि ग्रहण्यामतिश्रेष्ठमित्यर्थः ॥

बकरीका दही–उत्तम, मलरोधक, हलका, त्रिदोपनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला, तथा श्वास, खाँसी, बवासीर, क्षय और कृशतामें हितकारी है। बकरीका दही श्रेष्ठ और ग्राही होनेके कारण ग्रहणी रोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ३० ॥

अथ तक्रभेदाः।

तक्रन्तु घोलं मथितोदश्वित्तक्रप्रभेदतः ॥ सुश्रुताद्यैर्मुनिश्रेष्ठैश्चतुर्द्धा परिकीर्तितम् ॥ ॥ ३१ ॥ ससरं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम् ॥ तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्विच्चार्द्धवारिकम् ॥ ३२ ॥ वातपित्तहरं घोलं मथितं कफपित्तनुत् ॥ उदश्वित्कफदं बल्यं श्रमघ्नं परमं मतम् ॥ ३३ ॥

सुश्रुत आदि मुनियोने तक्रके चार भेद कहेहैं, तक्र, घोल, मथित और उदश्वित्, इन चारोंके बनानेकी रीति इसप्रकार समझना–

जो मलाई युक्त विना जलके दही मथागया होय उसको घोल कहतेहैं। जो मलाई निकालकर विना जलके मथागया होय उसको मथित कहतेहैं। जिसमें चौथाई भाग जल डालकर मथागया होय उसको तक्र कहतेहैं। और जिसमें आधाजल डालकर मथागया हो, उसको उदश्वित् कहतेहैं। तहाँ घोल–वातपित्त नाशक है, मथित–कफ और पित्तको दूर करनेवाला है। और उदश्वित्–कफकारक है, तथा बलदायक, श्रमविनाशक और परमहितकारक है ॥ ३१–३३ ॥

अथ तक्रगुणाः।

तक्रं ग्राहि कषायाम्लं मधुरं दीपनं लघु॥ वीर्योष्णं बलदं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् ॥ ३४ ॥ यान्युक्तानि दधीन्यष्टौ तद्गुणं तक्रमादिशेत् ॥ ग्रहण्यादिमतां तक्रं पथ्यं संग्राहि लाघवात् ॥ ३५ ॥ वातघ्नमम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कं त्वविदाहि च ॥ किश्च स्वादुविपाकं च अन्ते पित्तप्रकोपनम् ॥ कषायोष्णविकासित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे हितम् ॥ ३६ ॥

तक्र अर्थात् चौथाई भाग जल डालकर मथा हुआ मट्ठा–मलरोधक, कसैला, खट्टा, मधुर, अग्निको दीपन करनेवाला, हलका, उष्णवीर्य, बलकारक, वृष्य, तृप्तिकारक और वातविनाशक है। आठ प्रकारके जो दही कहेहैं उनके तक्रमे भी उनहींके अनुसार गुण जानने। तक्र–ग्रहणी आदि रोगवालोंको पथ्य (हित) है, हलका होनेके कारण मलरोधक है, अम्ल और सान्द्र होनेके कारण वातनाशक है। और ताजा अर्थात् तत्कालका मथाहुआ तक्र दाहकारक नहीं है, पाकमें मधुर है और अन्तमें पित्तको कुपित करैहै। कसैला, उष्ण, विकाशी (संधियोंको शिथिल करनेवाला) और रूक्ष होनेके कारण कफको भी दूर करैहै ॥ ३४–३६ ॥

निःसारितघृततक्रगुणाः।

स्तोकोद्धृतघृतं तस्माद्गुरु वृष्यं कफावहम् ॥ अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु पुष्टिबलप्रदम् ॥ ३७ ॥

जिसमेंसे सम्पूर्ण घी निकाल लिया हो ऐसा तक्र (मट्ठा) पथ्य और विशेषकरके हलका है। जिसमें थोडा घी निकाला हो ऐसा तक्र–भारी, वीर्यजनक, और कफकारक है। जिसमेंसे कुछ भी घी नहीं निकला होय ऐसा तक्र–गाढा, भारी, पुष्टिकारी और बलवर्द्धक है ॥ ३७ ॥

अथ रोगविशेषे तक्रविशेषः।

वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं पित्ते स्वाद्वम्लशर्करम् ॥ पिबेत्तक्रं कफे चापि क्षारत्रिकटुसंयुतम् ॥ ३८ ॥ हिंगुजीरयुतं घोलं सैंधवेनावधूलितम् ॥ ग्रहण्यर्शोऽतिसारघ्नं भवेद्वातहरं परम् ॥ रोचनं पुष्टिदं बल्यं वस्तिशूलविनाशनम् ॥ ३९ ॥

वातरोगमें–खट्टे तक्रमें सैंधानिमक डालकर सेवन करना चाहिये. पित्तरोगमें–खट्टा और मीठा तक्र मिश्री मिलाकर पीना चाहिये. कफके रोगमे–जवाखारादि और त्रिकुटेका चूर्ण तक्रमे डालकर पीना चाहिये। हींग, जीरा और सैंधानिमकमिश्रित घोल नामवाला तक्र–संग्रहणी, अतीसार और वातनाशक

है. रुचिकारक, पुष्टिदायक, बलकारक और वस्तिकी पीडाको शमन करैहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ पक्वापक्वतक्रगुणाः ।

तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च ॥ पीनसश्वासकासादौ पक्वमेव विशिष्यते ॥ ४० ॥

अपक्वतक्र-(कच्ची छांछ) कोठेके कफको दूर करैहै, और कंठमे कफको उत्पन्न करैहै, इस लिये-पीनस, श्वास और कासादि रोगोंमें पक्वतक्रही अर्थात् औटाई हुई छॉछही देनी चाहिये ॥ ४० ॥

अथ तक्रनिषेधः ।

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले ॥ न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके ॥ ४१ ॥

तक्र-ग्रीष्मऋतुमें, क्षत (घावके) रोगमे, दुर्वलतामें, मूर्च्छामें, भ्रममे, दाह और रक्तपित्त रोगमे नहीं देना चाहिये ॥ ४१ ॥

अथ तक्रप्रशंसा ।

न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ॥ यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ ४२ ॥

तक्रको सेवन करनेवाला मनुष्य कदापि रोगी नहीं होता और तक्रसे जलाये हुए रोग फिर कभी उत्पन्न नही होते, जिस प्रकार स्वर्गमें देवताओंको अमृत सुखकारक है उसी प्रकार पृथिवीमें मनुष्योंके लिये तक्र (छाछ) हितकारी है ॥ ४२ ॥

अथ-षडूषणम् ।

मुद्गयूषं रसं तक्रं धान्यजीरकसंयुतम् ॥ सैन्धवेनान्वितं दद्यात्षडूषणमितीरितम् ॥ ४३ ॥

रसं लघु ग्राहि मांसरसम् ॥

मूगका यूप, हलका तथा दस्तको रोकनेवाला मासका रस और धनिया, जीरा तथा सैंधानमक, इन करके सयुक्त तक्रको षडूषण कहतेहैं, यह षडूषण-ग्रहणी रोगमें हितकारी है ॥ ४३ ॥

अथ लाई चूर्णम् ।

कर्षं गन्धकमर्द्धपारदमुभे कुर्याच्छुभां कज्जलीं द्व्यक्षं त्र्यूषणतश्च पञ्चलवणं सार्द्धञ्च कर्षं पृथक् ॥ भृष्टं हिंगु च जीरकद्वययुतं सर्वार्द्धभंगान्वितं खादेट्टंकमितं प्रवृत्तिगदवांस्तक्रेण बिल्वेन वा ॥ ४४ ॥

शुद्ध गंधक १ तोला और शुद्धपारा आधातोला लेकर दोनोंकी सुन्दर कज्जली बनावै, फिर उसमें त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) का चूर्ण ३ तोले, पाँचों नोन डेढ (१॥) तोला, भुनी हींग और दोनों जीरोंका चूर्ण प्रत्येक एक एक तोला और सबसे आधी भॉग मिलावै, तक्रके साथ अथवा बेलके गूदेके साथ इस चूर्णको चौबीस (२४) रत्तीभर सेवन करै, यह सग्रहणी रोगमें अत्यत हितकारी है ॥ ४४ ॥

अथ जातीफलादिचूर्णम् ।

जातीफललवंगैलापत्रत्वङ्नागकेशरैः ॥ कर्पूरचन्दनतिलत्वक्क्षीरीतगरामलैः ॥ ॥ ४५ ॥ तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः ॥ शुण्ठीविडंगमरिचैः समभागं विचूर्णितैः ॥ ४६ ॥ यावन्त्येतानि सर्वाणि दद्याद्भंगाश्च तावतीम् ॥ सर्वचूर्णसमां कृत्वा प्रदेया शुभ्रशर्करा ॥ ४७ ॥ कर्षमात्रमिदं खादेन्मधुना प्लावितं जनः ॥ नाशयेद्ग्रहणीं श्वासं क्षयं कासमरोचकम् ॥ ४८ ॥

जायफल, लौंग, इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, कपूर, चन्दन, सफेदतिल, वंशलोचन, तगर, आमले, तालीसपत्र, पीपल, हरड, कलौंजी, चीता, सोंठ, वायविडंग और कालीमिरच, ये सब औषधि समान भाग लेवै और सबकी बराबर भॉग लेवै, सबका एकत्र बारीक चूर्ण करै और सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिलावै, इस चूर्णमेंसे प्रतिदिन एक तोलाभर लेकर सहतमें मिलाकर भक्षण करै तो ग्रहणी, खॉसी, क्षय, श्वास और अरुचि दूर होतीहै ॥ ४५-४८ ॥

अथ चित्रकादिवटिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं क्षारौ लवणपञ्चकम् ॥ व्योषं हिंग्वजमोदा च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ४९ ॥ वटिका मातुलुंगस्य रसेर्वा दाडिमस्य च ॥ कृता विपाचयत्याम

दीपयत्याशु चानलम् ॥ ५० ॥

अजमोदा यवानिका ॥

चीता, पीपलामूल, जवासार, पाँचों निमक, त्रिकुटा, भुनी हींग, अजमोद और चव्य, इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवें, इस चूर्णको बिजौरे नींबूके रसमें अथवा अनारके रसमें खरल करके गोली बनालेवें। यह गोली आमको पचातीहैं और जठराग्निको दीपन करतीहैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ बिल्वकल्कः ।

श्रीफलशलाटुमज्जानागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः ॥ ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा शीलितो जयति ॥ ५१ ॥

श्रीफलशलाटु बिल्वस्य आमं फलम् । गुडभागद्वयम् ॥

कच्चे बेलका गूदा और सोंठका चूर्ण, यह दोनों बराबर लेवें और इनमें गुड मिलाकर कल्क करे। इसको सेवन करके इसपर तक्रके साथ भोजन करे इससे अत्यत उग्र संग्रहणी भी दूर होजातीहै ॥ ५१ ॥

अथ वार्ताकुगुटिका ।

चतुष्पलं सुधाकाण्डं त्रिफलालवणत्रयम्। वार्ताकोः कुडवं चार्कमूलाद्बिल्वं तथाऽनलात् ॥ ५२ ॥ दग्ध्वा द्रवेण वार्ताकोर्गुटिका भोजनान्तरे ॥ भुक्ताभुक्तं पचत्याशु नाशयेद्ग्रहणीगदम् ॥ कासं श्वासं तथार्शांसि विषूचीश्च हृदामयम् ॥ ५३ ॥

थूहरकी लकडी सोलह (१६) तोले, हरड, बहेडा, आमला, सॉभर, सैंधा–काला–नमक, यह प्रत्येक भी सोलह सोलह तोले लेवै, बैंगन, आककी जड, बेलगिरी और चीता प्रत्येक एक एक कुडवपरिमाण लेवै, सबको एकत्र आगमें जलालेवै फिर महीन पीसकर बैंगनके रसमें गोली बनालेवै। भोजनके अंतमें इन गोलियोंको सेवन करनेसे भोजन तत्काल जीर्ण होजाताहै, तथा संग्रहणी, खाँसी, श्वास, बवासीर, विषूचिका और हृदयरोग नष्ट होताहै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ मुस्तकादिचूर्णम् ।

मुस्तकातिविषाबिल्वकौटजं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ मधुना च समालीढं ग्रहणीं सर्वजां जयेत् ॥ ५४ ॥

कौटज इन्द्रयवः ॥

नागरमोथा, अतीस, बेलगिरी और इन्द्रजौ, इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके सहत मिलाकर चाटे तो त्रिदोषजन्य संग्रहणी दूर होतीहै ॥ ५४ ॥

अथ सर्जरसचूर्णम् ।

श्वेतो वा यदि वा रक्तः सुपक्वो ग्रहणीगदः ॥ गुडेनाधिकसर्जेन भक्षितेनाशु नश्यति ॥ ५५ ॥

एकभाग गुडमें दो भाग रालका चूर्ण डालकर भक्षण करे तो सफेद अथवा लाल और पकाहुआ संग्रहणी रोग तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ५५ ॥

अथाजादुग्धम् ।

बिल्वाब्दशक्रयवबालकमोचसिद्धमाजं पयः पिबति यो दिवसत्रयं ना॥ सोऽतिप्रवृद्धचिरजं ग्रहणीविकारं सामं सशोणितमसाध्यमपि क्षिणोति ॥ ५६ ॥

बेलगिरी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला और मोचरस, इनको बकरीके दूधमें डालकर पकावै। फिर उस दूधको तीनदिनतक पिये तौ अत्यत बढी हुई, बहुत पुरानी आम और रुधिरयुक्त तथा असाध्य संग्रहणी भी नष्ट होजातीहै ॥ ५६ ॥

अथ कल्याणगुडः ।

प्रस्थत्रयं त्वामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वार्द्धतुलां गुडस्य ॥ चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योषैः सकृष्णाहपुषाजमोदैः ॥ ५७॥ विडंगसिन्धुत्रिफलायवानीपाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः ॥ दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत्॥ ॥ ५८ ॥ तं भक्षयेदक्षपलप्रमाणं यथेष्टचेष्टस्त्रिसुगन्धियुक्तम् ॥ अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ ॥५९॥ शाम्यन्ति चायं चिरमन्तरग्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः॥ स्त्रीणान्तु वन्ध्यामयनाशनः स्यात्कल्याणको नाम गुडः प्रसिद्धः ॥ ६०॥ तैले मनाक् त्रिवृद्भृष्ट-

त्रिफलायाः पलत्रयम्॥ सिद्धे निधेयमत्रैव गुडे कल्याणपूर्वके ॥ ६१ ॥

आमलोंका रस तीन (३) प्रस्थ, उत्तम शुद्धगुड दोसौ (२००) तोले, पीपलामूल, जीरा, चव्य, सोंठ, मिरच, पीपल, कालाजीरा, हाऊबेर, अजमोद, वायविडंग, सैंधानिमक, त्रिफला (हरड, बहेडा, आमला), अजवायन, पाढ, चीता, और धनियाँ, प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले; निसोत (तिधारा) का चूर्ण ८ पल और तिलका तेल ८ पल, लेकर इस चूर्णका आँवलेके रसमे मिलाकर ऊपर लिखी हुई औषधियोका चूर्ण उसमें डालकर विधिपूर्वक पाक बनालेवै। प्रतिदिन इसमेसे चार तोले लेकर कुछ त्रिसुगंधि (दालचीनी, इलायची, तेजपात) का चूर्ण मिलाकर भक्षण करै। इसको सेवन करनेसे—सर्वप्रकारकी ग्रहणी, श्वास, खाँसी, स्वरभेद और सूजन दूर होती है। तथा बहुत दिनोकी नष्ट हुई अग्नि फिरसे दीपन होती है और पुरुषत्व बढताहै। यह कल्याणगुड—स्त्रियोंके वंध्यापनको नष्ट करै है। इस कल्याण गुडमें निसोतका चूर्ण और त्रिफलेका चूर्ण तेलमें भूनकर डालना चाहिये ॥ ५७–६१ ॥

अथ महाकल्याणगुडः।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं गजपिप्पली॥ धान्यकश्च विडङ्गानि यवानी मरिचानि च ॥ ६२ ॥ त्रिफला चाऽजमोदा च नीलिनी जीरकस्तथा ॥ सैन्धवं रोमकश्चापि सामुद्रं रुचकं बिडम् ॥ ६३ ॥ आरग्वधश्च त्वक्पत्रं सूक्ष्मैला चोपकुञ्चिका ॥ शुण्ठी शक्रयवाश्चैव प्रत्येकं कर्षसम्मिताः ॥ ६४ ॥ मृद्वीकायाः पलान्यत्र चत्वारि कथितानि हि ॥ त्रिवृतायाः पलान्यष्टौ गुडस्यार्द्धतुलां तथा ॥ ६५ ॥ तिलतैलपलान्यष्टावामलक्या रसस्य तु ॥ प्रस्थत्रयमिदं सर्वं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ॥ ६६ ॥ औदुम्बरं चामलकं बदरश्च यथाबलम्॥ तावन्मात्रमिदं खादेद्भक्षयेद्वा यथानलम् ॥ ६७ ॥ निखिलान्ग्रहणीरोगान्प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ उरोघातं प्रतिश्यायं दौर्बल्यं वह्निसङ्क्षयम् ॥ ६८ ॥ ज्वरानपि हरेत्सर्वान्कुर्यात्कान्ति मति बलम्॥ पाण्डुरोगाञ्छ्वयाद्धन्ति रक्तपित्तश्च विड्ग्रहम् ॥ ६९ ॥ धातुक्षीणो वयःक्षीणः स्त्रीषु क्षीणः क्षयी च यः ॥ तेभ्यो हितश्च वन्ध्यायै महाकल्याणको गुडः ॥ ७० ॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, धनियाँ, वायविडग, अजवायन, कालीमिरच, हरड, बहेडा, आमला-अजमोद, नील, जीरा, सैंधानिमक, रेहगवाँ निमक, समुद्रनोंन, कालानोंन, विरिया सचरनोंन, अमलतास, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची, कलौंजी, सोंठ और इन्द्रजो, प्रत्येक एक एक तोला लेवै, दाख सोलह (१६) तोले, निसोत ८ पल, गुड पचास (५०) पल, तिलका तेल बत्तीस तोले और आमलोंका रस तीन प्रस्थ लेवै, सबको एकत्र मिलाकर मंदमद अग्निसे धीरे धीरे पकावै। अग्निका बलाबल विचारकर प्रतिदिन इसमेसे गूलरके फलकी समान, आमलेकी समान, अथवा बेरकी समान भक्षण करै। यह महाकल्याण गुड—सब प्रकारके ग्रहणीरोग, बीस प्रकारके प्रमेह, उरोघात, प्रतिश्याय, (जुकाम) दुर्बलता, मन्दाग्नि और सर्व प्रकारके ज्वरोंको दूर करै है। तथा कान्ति, बुद्धि और बलको बढावै है। पाण्डुरोग, रक्तपित्त, मलरोध, धातुक्षीण, अवस्थाक्षीण, स्त्रीसे क्षीण, क्षयसे क्षीण और बध्या स्त्री, इन सबको यह गुड—अत्यन्त हितकारी है ॥ ६२–७० ॥

अथ कूष्माण्डकल्याणगुडः।

कूष्माण्डानां सुपक्कानां स्विन्नानां निष्कुलत्वचाम्। सर्पिःप्रस्थं पलशतं ताम्रपात्रे शनैः पचेत् ॥ ७१ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं गजपिप्पली॥ धान्यकानि विडङ्गानि नागरं मरिचानि च ॥ ७२ ॥ त्रिफला चाजमोदा च कलिङ्गाजाजिसैन्धवम्॥ एकैकस्य पलश्चैकं त्रिवृतोऽष्टौ पलानि च ॥७३॥ तैलस्य च पलान्यष्टौ गुडात्पञ्चाशदेव तु॥ आमलक्या रसस्यात्र प्रस्थत्रयमुदीरितम् ॥ ७४ ॥ तावत्पाकं प्रकुर्वीत मृदुना वह्निना भिषक् ॥ यावद्दर्व्याः

प्रलेपः स्यात्तदैनमवतारयेत् ॥७५॥ औदुम्बरं चामलकं बादरं वा यथाबलम् ॥ तावन्मात्रमिदं खादेद्भक्षयेद्वा यथानलम् ॥ ॥ ७६॥ अनेनैव विधानेन प्रयुक्तस्य दिनेदिने ॥ निहन्ति ग्रहणीरोगान्कुष्ठानर्शोभगंदरान् ॥७७॥ ज्वरमानाहहृद्रोगं गुल्मोदरविषूचिकाः ॥ कामलां पाण्डुरोगश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ ७८ ॥ वातशोणितवीसर्पदद्रूयक्ष्महलीमकान् ॥ वातपित्तकफान्सर्वान्दुष्टाञ्छुद्धान्समाचरेत् ॥७९॥ व्याधिक्षीणा वयःक्षीणा स्त्रीषु क्षीणाश्च ये नराः ॥ तेभ्यो हितो गुडोऽयं स्याद्वन्ध्यानामपि पुत्रदः ॥ वृष्यो बल्यो बृंहणश्च वयसः स्थापनं तथा ॥ ८० ॥

अतिसाराधिकारलिखित बिल्वतैलञ्चात्र हितम् ।

इति ग्रहणीरोगाधिकारः ।

अच्छे प्रकारसे पकाहुआ पेठा लेकर फिर उसको छील कर टुकडे करके सौ (१००) पल लेकर तीन (३) प्रस्थ घीमें ताँबेके बासनमें मदमद अग्निसे पकावे, पश्चात् पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, धनियाँ, वायविडग, सोंठ, कालीमिरच, हरड, बहेडा, आमला, अजमोद, इन्द्रजौ, जीरा और सैंधानोंन, प्रत्येक चार चार तोले, निशोत बत्तीस (३२) तोले, तिलका तेल ३२ तोले, गुड दोसौ (२००) तोले और आमलोंका स्वरस ३ प्रस्थ सबको मिलाकर यथाविधिसे गुडको पकावे, जब करछीसे नहीं लगे तबतक मदमद अग्निसे पकाता जाय फिर उतार लेवे । प्रतिदिन इसमेंसे अग्निका बलाबल विचारकर गूलरकी समान, आमलेके समान अथवा बेरकी समान खाय । यह कूष्माड गुड—सर्व प्रकारके ग्रहणीरोग, कोढ, बवासीर, भग ज्वर, आनाह, हृदयरोग, गुल्म, उदररोग, विषूचि कामला, पाण्डुरोग, बीसप्रकारके प्रमेह, वातरक्त, वि दद्रु, राजयक्ष्मा, हलीमक, वातपित्त और समस्त कफ रोगोंको दूर करै है । जो मनुष्य रोगोंसे क्षीण होगये जो आयुसे क्षीण होगये हैं और जो मनुष्य अत्यत स्त्री प्रसग करनेसे क्षीण होगये हैं उनके लिये यह गुड—अत्यत हितकारी है, वध्या स्त्रियोंको पुत्र देनेवाला है, वीर्यजनक बलकारक, पुष्टिकारक और अवस्थाको स्थापन करनेवाला है ॥ ७१–८० ॥

बिल्वतैलम् ।

अतीसारके अधिकारमे जो बिल्वतैल कहा है वह भी इस सग्रहणी रोगमे हितकारी है ।

इति सग्रहणीरोगाधिकार. सम्पूर्ण. ।

इति श्रीभावप्रकाशे मध्यमखडे शालिग्रामवैश्यकृत-तवैद्यसजीविनीभाषाटीकायां प्रथमो भाग. सम्पूर्ण. ।

